CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

१०१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्री अभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतमाम्

श्रीकैलासविद्यालोकस्य द्वाचत्वारिंशः (४२) सोपानः

छान्दोग्योपनिषत्

आनन्दगिरिकृतटीकासंवलितशाङ्करभाष्यसमेता

'गोविन्दप्रसादिनी' टिप्पणी एवं 'कैलासविद्याप्रकाशक' क्रोडपत्र परिष्कर्ता विद्यावाचस्पति

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

❀

'विद्यानन्दीमिताक्षरा' व्याख्याकार वेदान्त-सर्वदर्शनाचार्य यतीन्द्रकुलतिलक श्रीकैलासपीठाधीश्वर

आचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

❀

'कुमुदतोषिणी' टीकाकार एवं सम्पादक

डॉ० उमेशानन्द शास्त्री

एम. ए., एल-एल. बी., पी. एच. डी., व्याकरणाचार्य

❀

श्री कैलास आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति, ऋषिकेश

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक
श्री कैलास आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति
कैलास गेट, ऋषिकेश (उ० प्र०)

दूरभाष
५९८

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराए गए रियायती दर के कागज पर मुद्रित

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण
२०००

वि० सम्वत् २०४० सन् १९८३

मूल्य
६०) रुपये

ग्रन्थ प्राप्ति स्थान—

श्री कैलास आश्रम, मुनिकीरेती, ऋषिकेश–२४९२०१
श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला, हरिद्वार–२४९४०१
श्री कैलास आश्रम, उजेली, उत्तरकाशी–२४९१९३
श्री राम आश्रम, समानामण्डी, पटियाला–१४७१०१
श्री ५३/१७ राधाकृष्ण मन्दिर, पुराना राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली–११००६०
श्री दक्षिणामूर्ति सं० म० विद्यालय, मिश्रपोखरा, वाराणसी–२२१०१०
श्री चौखम्भा विद्याभवन चौक, वाराणसी–२२१००१
श्री चौखम्भा विश्वभारती चौक, वाराणसी–२२१००१
श्री मोतीलाल बनारसीदास चौक, वाराणसी–२२१००१

मुद्रक:—श्री कैलास विद्या प्रेस, ब्रह्मानन्द आश्रम, मुनि-की-रेती ऋषिकेश (उ० प्र०)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

सम्पादकीय

श्रीकैलास आश्रम ऋषिकेश अपने आध्यात्मिक प्रकाशन की शृंखला में छान्दोग्योपनिषत् को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। तेजी से बदलते हुए सामाजिक मूल्यों में पूर्वमीमांसा प्रोक्त बहुत से कर्म अब मात्र ग्रन्थों की शोभा बढ़ा रहे हैं। ब्राह्मणग्रन्थ, गृह्यसूत्र एवं स्मृतिप्रोक्त भी नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों को निर्भय होकर एक ओर रख देने की कोशिश निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसमें कारण जो भी रहे हों किन्तु भौतिक विकास के साथ आध्यत्मिक मूल्यों की अक्षुण्णता रखना जरूरी है। इसके लिए अभी भी जनसामान्य एवं मनीषियों की दृष्टि हमारे आध्यात्मिक साहित्य उपनिषदादि पर टिकी हुई है। जीवन की पवित्रता को अवस्थित रखते हुए ब्रह्मज्ञान की पिपासा को जाग्रत् करने एवं शान्त करने का उत्तरदायित्व उपनिषदादिने सदा-सदा लिया है और भविष्य में भी ये स्तम्भदीप काकार्य करते रहेंगे।

उपक्रम-उपसंहारादि षड्विध तात्पर्य निर्णायक लिङ्गों से निश्चय होता है कि उपनिषदादि का चरम प्रतिपाद्य विषय कैवलाद्वैत ब्रह्म है। वेदों के कर्मकाण्ड परक मन्त्रों में ही सायण और यास्काचार्य आध्यात्मिक अर्थ करने का श्रीगणेश यत्र-तत्र करते हैं जिसे श्री कपाली शास्त्री ने भी पूर्ण करने का बीड़ा उठाया था, विधिवशात् वे इस कार्य को पूर्ण करने से पूर्व ही दिवंगत हो गए, फिर भी उन्होंने जितना कार्य किया, उससे वेदों के परम तात्पर्य समझने में एक नवीन दिशा मिलती है। वेद नित्य एवं अपौरुषेय हैं क्योंकि आद्य शंकराचार्य के शब्दों में "वेदा ह्यमृता नित्यत्वात्" वे नित्य हैं। उनकी अपौरुषेयता इसलिए है कि वे किसी से प्रयत्नपूर्वक नहीं हुए हैं भले ही कार्यरूप हैं। अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करतेहुए आनन्दगिरि वेदों को सर्वथा स्वीकार्य मानते हैं—"न हि वैदिकमुदाहरणं प्रमत्तगीतमिव हातुं शक्यम्"।

छान्दोग्य उपनिषत् का प्रयोजन

सामवेदीय इस छान्दोग्य उपनिषत् का मुख्य प्रयोजन अद्वैतात्मतत्त्व प्रतिपादन करना है क्योंकि मनुष्य का आत्यन्तिक कल्याण इसी में है कि कर्मकाण्ड के द्वैतरूप प्रपञ्च से युक्त होकर आवागमन से मुक्ति पाने के लिए अद्वैत आत्मज्ञान का सम्पादन करे। जिन्हें ब्रह्मात्मैक्यज्ञान नहीं है, जो द्वैत-परक बुद्धि से प्रयुक्त कर्मों के अनुष्ठान मात्र में लगे रहते हैं, उन्हें नाशवान् फलों की प्राप्ति होती है।

"अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति विपर्यये च स स्वराड्भवति"

अविद्या के प्रभाव में रहने वालों के लिए ही कर्मों का विधान कहते बनता है, अद्वैत ज्ञानसेयुक्त के लिए नहीं। लौकिक और वैदिक कर्मों का अनुष्ठान ब्रह्मचारी, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ जीवन में करना चाहिए ऐसा शास्त्र का विधान है; अमृतत्व प्राप्ति के लिए सगुण ब्रह्मविद्या का अनुष्ठान पूर्वक निर्गुण ब्रह्मविद्या का अनुशीलन करना चाहिए।

"सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति । ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति"

भगवान् भाष्यकार की छान्दोग्योपनिषत् प्रतिपादित विविध उपासनाओं के प्रति पूर्ण सद्भावना है। उनके अनुसार उपासना और अद्वैत ज्ञान में मन की वृत्तियों को प्रधान भूमिका निभानी पड़ती है। अन्तःकरण की शुद्धि करने वाली, ज्ञान की उपकारक, वस्तु के पारमार्थिक स्वरूप का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बोध कराने वाली इन उपासनाओं का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" के व्यवहित संबन्ध बोधक उद्घोष से श्रुति अव्यवहित संबन्ध की ओर अपनी दृष्टि लगाए रहती है। "एकस्मिन्भुक्ते विदुषि सर्वं जगत्तृप्तं भवति" तभी युक्ति संगत हो सकता है जब सब जीवों में रहने वाले आत्मा की परमात्मा से एकता हो। इसका छठे, सातवें एवं आठवें अध्याय में विशेष रूप से वर्णन है।

कर्म, उपासना और ज्ञान

कर्म, उपासना और ज्ञान की भारतीय दर्शनों में विशेष चर्चा है। उपनिषदों में आनुसंगिक रूप से वैदिक कर्मों के अनुष्ठान की यत्र-तत्र चर्चा है, उपासना का अनुपम वर्णन छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक उपनिषत् में है किन्तु इन सब का परम प्रयोजन ब्रह्मविद्या के उत्कर्ष प्रदर्शन में ही है। कर्म के प्रति पूर्ण अनुरक्त जीव उपासना के प्रति आकृष्ट नहीं हो सकता, उपासना के प्रति पूर्ण समर्पित को ब्रह्मात्मैक्य चिन्तन के लिए अवकाश नहीं। हाँ ज्ञान के प्रति पूर्णतः निष्ठावान् साधक तो कर्म और उपासना के आकर्षणों से ऊपर उठकर सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक तत्वज्ञान द्वारा जीवन्मुक्ति का अनुभव करता है। गीतोक्त निष्काम कर्म और उपासना में अधिकारी भेद से प्रथम का विशिष्ट स्थान हो सकता है; उपासना और वाचिक ब्रह्मज्ञान में भी दूसरे को उतनी प्रतिष्ठा देना सम्भव नहीं है। जो भी हो, कर्मों का अपना स्वभाव है इनके अनुष्ठान से मृत्यु का भय बना रहता है। छान्दोग्य उपनिषद् में वर्णन है—"देवताओं ने विचार किया कि वैदिक कर्मों का अनुष्ठान करने से मृत्यु से रक्षा हो जाएगी किन्तु ऐसा न हो सका, निराश होकर उन्हें ओंकार की उपासना का आश्रय लेना पड़ा"।

औपनिषद उपासना

छान्दोग्य उपनिषत्प्रोक्त वैदिक उपासना और पौराणिक उपासनाओं में पर्याप्त भेद हो गया है। उपनिषत्प्रोक्त उपासनाएँ अनुष्ठान करने वाले की मनोभूमि के विकास हेतु कर्मों की उपेक्षा करती हैं, अध्यात्म व अधिदैवत भावना को परिपक्व करने की दिशा में इन का महत्त्वपूर्ण स्थान है जबकि पौराणिक उपासनाएँ देवप्रीत्यर्थ कर्मों के प्रति उपराम होने का यत्न नहीं करतीं। भगवान् भाष्यकार ने उपासना को ब्रह्मज्ञान का उपकारक माना है। औपनिषद उपासनाओं के प्रकरण में उनका प्रयोजन समझने के लिए भाष्य अतीव उपादेय है। यथा शौव उद्गीथ के वर्णन में—

"अतीते खण्डेऽन्नाप्राप्तिनिमित्ता कष्टावस्थोक्तोच्छिष्टोच्छिष्टपर्युषितभक्षणलक्षणा सा मा भूदित्यन्नलाभाय शौव उद्गीथ प्रस्तूयते" (छा. उ. १. १२.१)

वामदेव्य उपासना का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् में है। वायु एवं जल के सम्बन्ध से वामदेव्य की उत्पत्ति प्रथम अध्याय के त्रयोदश खण्ड में निरूपित की गई है। आद्यशंकराचार्य के शब्दों में—

"वायुर्हाइकारः। वामदेव्ये सामनि हाइकारः प्रसिद्धः। वाय्वप्सम्बन्धश्च वामदेव्यस्य साम्नो योनिरिति"। (छा. उ. १. १३.१.)

दूसरे अध्याय के त्रयोदश खण्ड में भी 'वामदेव्य साम' का वर्णन आया है। यहाँ पुनः भाष्यकार लिखते हैं—

"वाय्वम्बुमिथुनसंबन्धाद्वामदेव्यं मिथुने प्रोक्तम्" (छा. उ. २. १३. १.)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पञ्चविध साम की भावना नारी में करने का विधान अमोघवीर्य होने के लिए किया गया है, इसमें "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:" यह मनुवचन भी उसका समर्थक है। वैषयिक दृष्टि से आचरण करने पर अमोघवीर्यत्व सम्भव नहीं। अतः उपासक नारी में पञ्चविध साम की भावना करते हुए संयतचित्त होकर उसे आश्रय दे। वामदेव्य उपासना का अधिकारी केवल गृहस्थी है।

पञ्चविध एवं सप्तविध साम में मीमांसा के यज्ञ परक शब्दों को आध्यात्मिक भावना को ओत-प्रोत करने हेतु प्रयुक्त किया गया है। हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन पञ्चविध साम तथा हिंकार, प्रस्ताव, आदि, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, निधन, ये सप्तविध साम हैं जिनकी उपास्य में भावना करने का विधान है। यज्ञ के अवयवों की सदृशता पुरुष में करने की बात तृतीय अध्याय के सोलहवें खण्ड में कही है। गायत्र, त्रिष्टुब्, जगती छन्दों में क्रमशः चौबीस, चौवालीस एवं अड़तालीस अक्षर हैं जो प्रातःसवन, मध्याह्नसवन एवं तृतीयसवन हैं इनका संचालन वसु, रुद्र और प्राण करते हैं। इस अहंग्रहोपासना को महिदास ऐतरेय ने भी किया था जिसे अपनी उपासना पर कितना दृढ़ विश्वास था। भाष्यकार के शब्दों में—

"हे रोग! कस्मान्मम एतदुपतपसि अहं यज्ञोऽनेन त्वत्कृतेनोपतापेन न मरिष्याम्यतो वृथा तव परिश्रम', स एवंनिश्चयः सन्षोडशं वर्षशतमजीवत्" (छा. उ. ३. १७. ७.)

चित्तवृत्ति को एकाग्र कर दीर्घायु देने वाली पुरुष यज्ञ की उपासना आयु विभाग अथवा योगेश्वरेश्वर श्री कृष्ण की लीलाओं का विभाग करने के लिए नहीं हैं क्योंकि उपनिषदों में उपासनाओं के निरूपण का प्रयोजन ब्रह्मविद्या की आत्यन्तिक प्रतिष्ठा कराने में है। चतुर्थाध्याय के चतुर्थ खण्ड में भी आख्यायिकाओं का प्रयोजन बतलाते हुए भगवान् भाष्यकार लिखते हैं—

"श्रद्धातपसोर्ब्रह्मोपासनाङ्गत्वप्रदर्शनायाऽऽख्यायिका" (छा. उ. ४. ४. १.)

उपनिषत्प्रोक्त उपासनाओं का सही स्वरूप प्रस्तुत करने में भगवान् भाष्यकार आयुर्वेदशास्त्र, ज्योतिर्विज्ञान, मीमांसाशास्त्र तथा उपनिषन्मन्त्रों के साथ-साथ अनुभव एवं तर्क का भी पर्याप्त प्रयोग करते हैं। संवर्गविद्या में प्राण को संवर्ग कहा था पुनः पञ्चम अध्याय के प्रथम खण्ड में प्राणों की ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता बतलाते हुए इसे आयु में भी बड़ा होने का मार्मिक तर्क प्रस्तुत करते हैं—

"गर्भस्थे हि पुरुषे प्राणस्य वृत्तिर्वागादिभ्यः पूर्वं लब्धात्मिका भवति यया गर्भो विवर्धते। चक्षुरादिस्थानावयवनिष्पत्तौ सत्यां पश्चाद्वागादीनां वृत्तिलाभ इति प्राणो ज्येष्ठो वयसा भवति"। (छा. उ. ५. ८. २.)

पञ्चाग्निविद्या के प्रकरण में भी द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और स्त्री रूपा अग्नि विद्या का निरूपण करते हुए क्रमशः सोम, वृष्टि, अन्न, वीर्य एवं शरीर की इसमें उत्पत्ति होती है। इसका विश्लेषण करते हुए आद्यशंकराचार्य लिखते हैं—"दृश्यते च द्रवबाहुल्यं सोमवृष्ट्यन्नरेतोदेहेषु। बहुद्रवं च शरीरं यद्यपि पार्थिवम्"। उपासना चाहे साम के अवयव विषयक हो अथवा पाञ्चभक्तिक, साप्तभक्तिक समस्त साम की उपासना हो, भाष्यकार उन्हें स्थल-स्थल पर ब्रह्म की उपासना के रूप में प्रस्तुत करते हैं, कहीं सगुणब्रह्मविद्या तक भी कह देते हैं यथा—

"वायुप्राणयोर्ब्रह्मणः पाददृष्टयध्यासः पुरस्ताद्वर्णितः। अथेदानीं तयोः साक्षाद्ब्रह्मत्वेनोपास्यत्वायोत्तरमारभ्यते"। (छा. उ. ४. १. १.)

"सगुणब्रह्मविद्याया उत्तरा गतिरुक्ता। अथेदानीं पञ्चमेऽध्याये पञ्चाग्निविदो गृहस्थस्योर्ध्वरेतसां च श्रद्धालूनां विद्यान्तरशीलिनां तामेव गतिमनूद्याद्या दक्षिणदिक्संबन्धिनी केवलकर्मिणां धूमादिलक्षणा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुनरावृत्तिरूपा तृतीया च ततः कष्टतरा संसारगतिर्वैराग्यहेतोर्वक्तव्येत्यारम्यते"। (छा. उ. ५. १. १.)

संवर्गविद्या प्रकरण में चतुर्थअध्याय में राजा जानश्रुति और महर्षि रैक्व की आख्यायिका है। राजा जानश्रुति ने महर्षि रैक्व के मन्त्रद्रष्टा के रूप में प्रसिद्धि की चर्चा हंसों के मुख से सुनी थी। राजा को उनमें सहज श्रद्धा उमड़पड़ी, वे कुछ भौतिक साधनों को भेंट के लिए संग में लेकर महर्षि रैक्व के दर्शनों को पहुँचे। महर्षि रैक्व को प्रत्यक्ष और परोक्ष का ज्ञान था। "हंसों द्वारा रैक्व के बारे में सुनकर पवित्र इच्छा से वह उन्हें द्रवित करने की इच्छा से आया है" इससे उन्होंने राजा को शूद्र सम्बोधित किया। किन्तु राजा मन्त्रद्रष्टा ऋषि का भाव नहीं समझ सका। एकदम क्षुब्ध होकर राजा पुनः अपनी नगरी में जाकर राजकन्या सहित अधिक भेंट सामग्री लाकर ऋषि के चरणों में विद्या प्राप्त करने के उद्देश्य से गिर पड़ा। इस प्रकरण में आचार्य शंकर रैक्व को बार-बार 'ऋषि' पद से सम्बोधित करते हैं। वे अन्य आचार्यों की व्यर्थ कल्पना की उपेक्षा कर विद्याप्रदाता सयुग्वा रैक्व को साक्षात् तीर्थ मानते हैं। कहा भी है—"ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः। विद्यया वा विद्यां प्राह तानि तीर्थानि षण्मम"। जबकि अन्य आचार्य राजा की तरह इसी उलझन में उलझे रहते हैं इसे धन की इच्छा के साथ साथ गृहस्थ आश्रम प्रवृत होने की इच्छा है तभी तो ज्यादा धन एवं राजकन्या लाने पर रैक्व प्रसन्न हो गए। वस्तुत. यह उनकी अद्वितीय निष्ठा ही थी जो उनकी स्मृति में रैक्वपर्ण नामक ग्राम महानगरी में परिवर्तित हो गया।

व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ता

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" वेदान्त के इस डिण्डिमघोष में जगत् मिथ्यात्व परमार्थतः स्वीकार किया है। व्यावहारिक दृष्टि से इसकी सत्यता है, श्रुति-स्मृति से अनुप्राणित आचार-विचार की सत्यता है। अद्वैत वेदान्त के पाठक वाचिक अर्थ में पड़कर अविधा के प्रकरण में "लौकिक और वैदिक सब व्यवहार अविद्यावस्था में होता है" अपने को इससे ऊपर उठा हुआ मान लेते हैं जबकि उनका मानसिक धरातल उस ब्राह्मी स्थिति तक पहुँचा हुआ नहीं होता। ब्रह्मवेत्ता अपने जीवन का चरम लक्ष्य "ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान" लाभ करें इसके लिए भगवान्भाष्यकार ने बार-बार सचेत किया है। इन्द्रियों को विषयों से विमुख करने से धर्म होता है एवं उन विषयों में लगाने से अधर्म होता है।

"इन्द्रियाणां विषयवैमुख्ये धर्मः स्यात्तेषां तदाभिमुख्ये पापस्योत्पत्तिः" (छा. उ. भा. १. २. १.) लौकिक आचार-विचार अन्तःकरण को शुद्ध करने में साधक ही हैं, बाधक नहीं भले ही वे 'तत्त्वमसि' महावाक्यों की अनुभूति कराने में साक्षात योगदान नहीं कर पाते। तभी तो शंकराचार्य जी इन्हें अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखते। उषस्ति चाक्रायण ने जूठे उड़द लाकर अपनी पत्नी को दिए। पत्नी ने बिना नाक-भौं सिकोड़े उन्हें रख लिया। इस लौकिक आदर्श पर भाष्य में आचार्य लिखते हैं— "स्त्रीस्वाभाव्यादनवज्ञाय तान्कुल्माषान्पत्युर्हस्तात्प्रतिगृह्य निक्षिप्तवती"। आनन्दगिरि भी समर्थन करते हुए कहते हैं—ऐसा होना ही चाहिए क्योंकि अपने पति की आज्ञा पालन करना स्त्री का धर्म है। एक अन्य प्रकरण में पति की अनुपस्थिति में पत्नी को अतिथि की सेवा के लिए उत्कण्ठित दिखाया गया है। उपकोसल को अनशन करने का निश्चय करते देख आचार्यपत्नी ने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा—हे ब्रह्मचारिन्! किस कारण भोजन नहीं कर रहे हो, तुम भोजन अवश्य करो, मानसिक दुःख तो लगा रहता है। शंकराचार्य के अनुसार स्त्री को घर काम काज में निपुण होना ही चाहिए इसी में उसकी शोभा है।

गुरु और शिष्य के मधुर सम्बन्धों को अत्यधिक स्थायी करने के लिए आचार्यशंकर बार-बार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संकेत करते हैं। गुरु में दोष दर्शन तो सर्वथा वर्जित ही है। गुरुदेव जो कुछ साधन बतालाएँ, उसी में शिष्य का कल्याण होता है। अनन्त शास्त्र हैं, असंख्य विद्याएँ है; अनुष्ठान तो गुरूपदिष्ट साधन का करना होगा। तभी तो श्वेतकेतु अपने पिता से पूछे जाने पर गुरुकुलवास एवं गुरुजी में किसी प्रकार की अपूर्णता को नहीं बतलाते। आनन्दगिरि प्रत्यवाय की संभावना प्रस्तुत करते हैं— "श्वेतकेतुर्गुरूणाम-ज्ञानमाचक्षाणो गुरुद्रोही प्रत्यवायी स्यात्" (छा. उ. ६. १. ७.)। गुरु की सन्निधि में रहना, गृहस्थधर्म के प्रति अलगाव रखना; अमृतत्व की प्राप्ति हेतु इन उच्च आदर्शों की भाष्यकार और आनन्दगिरि ने जगह-जगह प्रतिष्ठा की है—

"ये प्रजामीषिरेऽधीरास्ते श्मशानानि भेजिरे।
ये प्रजां नेषिरे धीरास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे" ॥ (भा. ५. १०. १.)
"अष्टाशीतिसहस्राणि यतीनामूर्ध्वरेतसाम्।
स्मृतं स्थानं तु यत्तेषां तदेव गुरुवासिनाम्" ॥ (आ. गि. ५. १०. १.)

यद्यपि ब्रह्मज्ञानी को स्त्री आदि विषयों से अपने आप ही उपरामता हो जाती है फिर उनके प्रति तृष्णा को सहसा नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि जन्म-जन्मान्तरों का अभ्यास जो पड़ा है। उन्हीं के शब्दों में "यद्यपि ब्रह्मविदां स्त्र्यादिविषयेभ्यः स्वयमेवोपरमो भवति तथाऽप्यनेकजन्मविषयसेवाभ्यास-जनिता विषयविषया तृष्णा न सहसा निवर्तयितुं शक्यत इति ब्रह्मचर्यादिसाधनविशेषो विधातव्यः" (छा. उ. ८. १. १.)

आचारशास्त्र के प्रति आदरप्रदर्शित करते हुए एक अन्य प्रकरण में आचार्य शङ्कर अत्यन्त दृढ़ता से यहाँ तक कह देते हैं कि स्त्री आदि विषयों में जिनकी तृष्णा बनी हुई है ऐसे तथाकथित वाणी मात्र से शास्त्रज्ञ को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती; इसलिए ब्रह्मचर्य रूप श्रेष्ठ साधन का अनुष्ठान शास्त्रज्ञों को भी करते रहना चाहिए। आद्यशङ्कराचार्य के ही शब्दों में

"यथोक्तं ब्रह्मलोकं स्त्रीविषयतृष्णात्यागेन शास्त्राचार्योपदेशं स्वात्मसंवेद्यतामापादयन्ति ये तेषामेव ब्रह्मचर्यसाधनवतां ब्रह्मविदामेष ब्रह्मलोकः; नान्येषां स्त्रीविषयसंपर्कजाततृष्णानां ब्रह्मविदाम-पीत्यर्थः". (छा. उ. ८.४.३)

स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हुए आनन्दगिरिटीकाकार लिखते हैं—"ब्रह्मविदामपीति वाङ्मात्रब्रह्मवित्त्वमुच्यते"। निष्कर्ष में भगवान् भाष्यकार कहते हैं—"तस्मात्परममेतत्साधनं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मविदाम्···ब्रह्मचर्यं परमं ज्ञानस्य सहकारिकारणं साधनमित्यतो ब्रह्मविदा यत्नतो रक्षणीयम्"। उनका प्रबल विश्वास है कि चित्त की वृत्तियाँ यदि बाहरी विषयों में फंसी रहीं तो प्रत्यगात्म अपरोक्ष विज्ञान क्या खाक करोगे? "बाह्यविषयतृष्णापहृतचित्तानां प्रत्यगात्मविवेकविज्ञानानुपपत्तेः" (छा. उ. भा. ८.५.४)

व्यर्थ बोलना भी आध्यात्मिक यात्रा में विघ्न उपस्थित करता है अतः वाणी का संयम अनिवार्य है। वैसे तो आत्मज्ञानी को "जडवत्" आचरण करने के लिए श्रुति कहती है। यदि ऐसा न हो सके तो आत्मज्ञान से विमुख करने वाले म्लेच्छ, अपवित्र और अधार्मिक लोगों के साथ भाषण न करे। इस स्मृति का उद्धरण करते हुए भाष्यकार कहते हैं—"न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत" (छा. उ. भा. ८.१२.१)। यद्यपि म्लेच्छ शब्द के बारे में भ्रामक अर्थ किये जाते हैं, तथापि बोधायन-स्मृति ठीक अर्थ करती है—"गोमांसखादको यस्तु विरुद्धं बहुभाषते। सर्वाचारविहीनश्च म्लेच्छ इत्यभिधीयते" ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मदर्शन

"आत्मा वाऽरे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य:" बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य द्वारा मैत्रेयी के प्रति प्रोक्त इस श्रुति वाक्य में आत्मदर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासन को जीवन का प्रधान साधन माना है। आत्म तत्त्व के साक्षात्कार हो जाने पर अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रह जाती। चित्तवृत्तियों का समाहित हो जाना आत्मदर्शन की प्रथम सीढी है। संभवत: इसी कारण से भाष्यकार उपासना के प्रकरण में बुद्धि का समाधान हो जाना अवश्य समझते हैं। यथा—"अधिदैवतोद्गीथोपासने वक्ष्यमाणे एतद् आत्मविषयमुद्गीथोपासनमित्युक्तोपसंहार: बुद्धिसमाधानार्थ:" (छा. उ. भा. १.२.१४)। आनन्दगिरिटीकाकार भी भाष्यकार की अनुभूतियों का आदर करते हुए छा. उ. १.५.२. की टीका में लिखते हैं—"वक्ष्यमाणेऽध्यात्मे बुद्धिसमाधानार्थमुक्तं देवताविषयं दर्शनम्"। षष्ठ अध्याय द्वादश खण्ड दूसरे मन्त्र में पुन: आद्यशंकराचार्य मन का समाहित होना 'तत्त्वमसि' महावाक्य ज्ञान के लिए अनिवार्य मानते हैं। यथा—

"यद्यपि न्यायागमाभ्यां निर्धारितोऽर्थस्तथैवेत्यवगम्यते तथाऽप्यत्यन्तसूक्ष्मेष्वर्थेषु बाह्यविषयासक्तमानस: स्वभावप्रवृत्तस्यासत्यां गुरुतरायां श्रद्धायां दुरवगमत्वं स्यात्। श्रद्धायां तु सत्यां मनस: समाधानं बुभुत्सितेऽर्थे भवेत्ततश्च तदर्थावगति:"।

मन के समाहित न होने के कारण ही प्रजापति द्वारा अपने पुत्रों को किये हुए उपदेश का अर्थ विरोचन ने ठीक नहीं समझा। बड़ी प्रसन्नता से घर लौटकर अपनी प्रजा को पिता का उपदेश प्रसारित करने लगा—"देहमात्रमेवाऽऽत्मा पित्रोक्त" इति (पिताजी ने देह के आत्मा होने का उपदेश दिया है)। इसलिए इस शरीर की सेवा पूजा करनी चाहिए। शरीर को आत्मा मानने से दो दोष तो तत्काल आ जाते हैं—सत्कार्यों में श्रद्धा का न होना एवं दान न करना। भगवान् शङ्कराचार्य इस भूल को पुन: स्मरण कराते हुए कहते हैं—"तथा विरोचनो, महाप्राज्ञ: प्राजापत्योऽपि देहमात्रात्मदर्शनो बभूव"।

शरीरत्रय में आत्म बुद्धि की निवृत्ति करना ही तो उपनिषद्वाक्यों का प्रयोजन है। अविद्या एवं उसके कार्यों में सत्यत्वाग्रह पूर्वक जीवात्मभाव करना किसी भी अवस्था में श्रेयस्कर नहीं है, इसकी निवृत्ति तत्त्वमसीत्यादि महावाक्यों के अर्थानुसन्धान करने से हो सकती है (छा. उ. भा. ६. १६.३)। यह आत्म तत्त्व दिशा-देश कालादि के भेद से परे है, सत् एक और अद्वितीय एवं सर्वात्मक है। किन्तु द्वैतवादी तो दिशा-देश एवं कालादि भेद से युक्त उस आत्मा की भावना करते हैं, उन मन्दबुद्धि लोगों की सहसा परमार्थ अद्वैत विषयिणी बुद्धि हो जाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए वह आत्मा हृदय कमल देश में रहता है, ऐसा श्रुति कहती है। किन्तु अन्तत: तो ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान के सम्पादन करने पर ही पुरुषार्थ सिद्ध होगा (छा. उ. भा. ८.१.१)।

भगवान् शङ्कराचार्य का भाष्य प्रसन्न एवं गम्भीर है। विरोधियों की शङ्का का निराकरण करते हुए उनके मौलिक चिन्तन, शास्त्र पर अधिकार एवं अद्वैत सिद्धान्त के प्रति चरम निष्ठा की मनोहारी छवि उनके शब्दों के माध्यम से सहज ही हृदय को आकर्षित करती है। उन्हीं की अमृतवाणी में—

"सत्यं, रमणीया तावदियं व्याख्या श्रोतम। नत्वर्थोऽस्य ग्रन्थस्यैवं संभवति"(छां. उ.८.१२.१) वे अपने समकालीन एवं पूर्ववर्ती दर्शनों की चर्चा करते हुए उनका सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं फिर भी उनके प्रति द्वेष की भावना जरा भी दृष्टिगोचर नहीं होती।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"आत्मविनाशभयत्रासागर एव वैनाशिका अमज्जन्। तथा सांख्या द्रष्टारं देहादिव्यतिरिक्तमवगम्यापि त्यक्तागमप्रमाणत्वात्मृत्युविषय एवान्यत्वदर्शने तस्थुः। तथाऽन्ये काणादादिदर्शनाः कषायरक्तमिवक्षारादिभिर्वस्त्रं नवभिरात्मगुणैर्युक्तमात्मद्रव्यं विशोधयितुं प्रवृत्ताः। तथाऽन्ये कर्मिणो बाह्यविषयापहृतचेतसो वेदप्रमाणा अपि परमार्थसत्यमात्मैकत्वं विनाशमिवेन्द्रवन्मन्यमाना घटीयन्त्रवदारोहावरोहप्रकारैरनिशं बम्भ्रमति। किमन्ये क्षुद्रजन्तवो विवेकहीनाः स्वभावत एव बहिर्विषयापहृतचेतसः" (छा. उ. ८. १२. १.)

द्वैतवादी दार्शनिकों को उदार, महाप्राज्ञ एवं विचारक कहना उनकी उदात्त भावनाओं का परिचायक है। परन्तु वे इतना संकेत अवश्य कर देते हैं कि आत्मज्ञान परमहंस, परिव्राजक वेदान्त विज्ञान के प्रति पूर्ण समर्पित, बाह्य एषणाओं को त्याग करने वाले को ही प्राप्त हो सकता है। (छा. उ. भा० ८. १२. १.)

प्रस्तुत संस्करण के सम्बन्ध में

श्री कैलास आश्रम ऋषिकेश का ब्रह्मविद्या के प्रचार-प्रसार करने में विशिष्ट स्थान है। इस संस्था के संस्थापक स्वामी धनराज गिरि जी महाराज ने अद्वैत ब्रह्म विद्या के पठन-पाठन के लिए यहाँ ब्रह्मविद्यापीठ की स्थापना की जिसमें विगत एक सौ तीन वर्षों के इतिहास में शाङ्करी विद्या के असंख्य विचारकों को तैयार किया है। वर्तमान कैलासपीठाधीश्वर अनन्त श्री स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज के सत्संकल्प से श्री कैलास आश्रम के पीठाचार्यों द्वारा सजाई संवारी हुई इस वेदान्त विद्या का लाभ सर्वसाधारण भी ले सकें। इस प्रकाशन में जहाँ कैलास आश्रम के आचार्यों की चिन्तन प्रणाली को पुस्तकाकार में सुरक्षित रखने का प्रयास है, वहाँ वेदान्त रसिकों के लिए इसकी उपयोगिता को अधिकाधिक बढ़ाने का ध्यान रखा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् के मन्त्रों का हिन्दी अनुवाद वर्तमान कैलासपीठाधीश्वर जी का ही है जिसे पूर्व प्रकाशित उनकी पुस्तक "द्वादशोपनिषद्" से ले लिया गया है। मूल मन्त्रों, शांकर भाष्य एवं आनन्दगिरि टीका पर विद्यावाचस्पति स्वामी विष्णुदेवानन्द जी महाराज की टिप्पणी भी पूर्व प्रकाशनों की तरह इस प्रकाशन में दी गई है। आद्यशंकराचार्य के भाष्य का हिन्दी अनुवाद महाराज श्री की इच्छा से मुझे ही करना पड़ा। शांकर भाष्य की इस 'कुमुदतोषिणी टीका' करने में श्री सद्गुरुधाम चाँदनी, पूर्णकुम्भ उज्जैन, उपनिषत्कुटीर दिल्ली एवं ब्रह्मानन्द आश्रम ऋषिकेश में ब्रह्मविद्या की ऐकान्तिक साधना हुई। अनुवाद करने में भाष्य के तात्पर्य को स्पष्ट करने के लिए आनन्दगिरि टीका का आश्रय लिया गया है।

प्रभु कृपा से छान्दोग्योपनिषद् का कैलास संस्करण पाठकों के हाथ में है। अद्वैत विद्या को अभिनव दीप्ति प्रदान करने में इस संस्करण का विशेष योगदान होगा। इसमें मन्त्र, भाष्य एवं आनन्दगिरि टीका को मोटे टाइप में रखा गया है। भाष्य से सम्बन्धित आनन्दगिरि टीका एवं 'कुमुदतोषिणी' टीका को उसी पृष्ठ में रखने का प्रयास किया गया है। पूज्य महाराज श्री ने अपनी भूमिका से इसे सनाथीकृत किया है, जिसमें उन्होंने पूरे ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय का सारगर्भित संक्षिप्त विवेचन किया गया है। जिससे ग्रन्थ को हृदयंगम करने की जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती जाएगी।

भगवती भागीरथी की कृपा से इतने दिनों तक अद्वैत मन्दाकिनी में स्नान करने का अलभ्य लाभ मिलता रहा। अन्त में "त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये"।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

श्रीकृष्णजन्माष्टमी
वि० सं० २०४०
ऋषिकेश

भगवदीय
उमेशानन्द

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रस्तावना

दिशन्तु शम्मे गुरुपादपांसवः

अनादि अपौरुषेय वेद का प्रामाण्य आस्तिक समाज में सर्वमान्य है। इसकी प्राचीनता को आधुनिक विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। ईसा से कई हजार वर्ष पूर्व की रचना का अन्दाज पाश्चात्य विद्वानों ने लगाया है; साथ ही यह भी कहा है कि विश्व के पुस्तकालय में सर्वप्रथम वेद ही आया है। यद्यपि इनके सभी विचारों से हम सहमत नहीं हैं। फिर भी इन्होंने सर्वाधिक प्राचीनता वेद की मानी है एतदर्थ ये धन्यवाद के पात्र हैं। सायणाचार्य ने वेद के विषय में कहा है कि—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥"

'वेदों की वेदता इसी बात में है कि जो उपाय प्रत्यक्ष या अनुमान प्रमाण से नहीं जाना जा सकता उसे लोग वेद से जान लेते हैं।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं, जिनके स्वरूप, साधन तथा अधिकारी आदि की सम्यक् प्रकार से चिन्ता वेदों में की गयी है। इन चारों में मोक्ष परम पुरुषार्थ है क्योंकि वह नित्य और निरतिशय है। मोक्ष का साधन ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान है और ब्रह्मात्मैक्यज्ञान वेद के शिरोभाग उपनिषदों के विचार से होता है। वेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान ये तीन काण्ड हैं। कर्म और उपासना से शुद्ध एवं शान्त अन्तःकरण वाले पुरुष के मन में लोक परलोक के समस्त भोगों से वैराग्य उत्पन्न हो जाता है तभी वह नित्य शाश्वत परमात्म स्वरूप मोक्ष की अभिलाषा करता है। इसीलिए कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड उपनिषत् का हेतुहेतुमद्भाव सम्बन्ध माना गया है।

"वेदानां सामवेदोऽस्मि" इस भगवद्गीता वाक्यानुसार सामवेद परमेश्वर की दिव्य विभूतियों में माना गया है। "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" इस उक्ति के अनुसार किसी समय सामवेद की सहस्र शाखायें थीं जिनमें कौथुम, जैमिनि, तलवकार तथा राणायण ये चार शाखायें आज भी उपलब्ध हैं। सायणाचार्य जी षड्विंश ब्राह्मण के भाष्य में लिखते हैं कि सामवेद के १–प्रौढ़ब्राह्मण (पंचविंश), २–षड्विंश ब्राह्मण, ३–सामविधान, ४–आर्षेय ब्राह्मण, ५–देवताध्याय ब्राह्मण, ६–उपनिषद् ब्राह्मण, ७–संहितोपनिषद् और ८–वंश ब्राह्मण माने जाते हैं अर्थात् सामवेद के सभी आठ ब्राह्मण हैं। यहाँ पर उपनिषद् ब्राह्मण का दूसरा नाम छान्दोग्य ब्राह्मण है। किन्तु कुमारिलभट्ट आदि ने जहाँ भी प्रमाण दिया है, उससे यह निश्चित होता है कि सामवेद के सभी ब्राह्मण छान्दोग्य नाम से प्रसिद्ध थे। अस्तु सामवेद की उपलब्ध उपर्युक्त चार शाखाओं में से तीसरी तलवकार शाखा का ब्राह्मण छान्दोग्य नामक है। जिसके सभी दश अध्याय हैं। उनमें से प्रारम्भ के दो अध्यायों को छोड़कर शेष आठ अध्यायों को छान्दोग्योपनिषद् कहते हैं। अतः तलवकार शाखीय छान्दोग्य ब्राह्मण के अन्तर्गत छान्दोग्योपनिषद् मानी जाती है। जिस पर आद्य शंकराचार्य भगवत्पादने प्रसन्न एवं गम्भीर भाष्य लिखा है। यद्यपि ब्रह्मसूत्र में छान्दोग्योपनिषद् की श्रुतियों का आलम्बन कर सर्वाधिक अधिकरणों की रचना भगवान् वेदव्यास ने की है जिनका अतिगम्भीर चिन्तन शांकरभाष्य में किया गया है; किन्तु छान्दोग्योपनिषत् के क्रमबद्ध विषयों का चिन्तन ब्रह्मसूत्र में नहीं हो सका। इसलिए छान्दोग्योपनिषत् पर पाठक्रमानुसार भाष्य लिखना आवश्यक समझकर भगवान् शंकराचार्य जी ने भाष्य की रचना की है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि द्राविड भाष्य में पाठक्रमानुसार छान्दोग्योपनिषत् का चिन्तन इससे पूर्व हो चुका था फिर भी संक्षेप में पाठक्रमानुसार भाष्य लिखना आवश्यक माना जाता है। इन दोनों बातों का वर्णन छान्दोग्योपनिषत् के सम्बन्ध भाष्य में आचार्य शंकर ने "ऋजुविवरणमल्पग्रन्थमिदमारभ्यते" इस वाक्य से किया है। छान्दोग्योपनिषत् के प्रारम्भिक पाँच अध्यायों में उपासना का विधान है और कहीं-कहीं कर्मों का भी विधान देखा जाता है–यथा लोकद्वार सामका पाठ और ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के उच्चारण में भूल होने पर "भूः स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से प्रायश्चित्य होम का विधान है शेष अन्तिम तीन अध्यायों में केवल दहरविद्या को छोड़कर सर्वत्र निर्गुण ब्रह्मका प्रतिपादन किया गया है।

आदर-सत्कारपूर्वक निरन्तर दीर्घकाल तक चिन्तन को उपासना कहते हैं। कर्माङ्ग अवबद्धोपासना, प्रतीकोपासना तथा अहंग्रहोपासना भेद से तीन प्रकारकी उपासनाएँ कही गयी हैं। भाष्यकारीय वचन के अनुसार कर्म समृद्धि के लिए कर्माङ्ग अवबद्ध उपासना, कैवल्य-संनिकृष्ट फलक उपासना और अभ्युदय साधनरूप उपासना, ऐसी तीन उपासनाएँ मानी गयी हैं। इनमें प्रथम उद्‌गीथावयव प्रणव में परमात्मदृष्टि का विधान किया गया है। उद्‌गीथ एक कर्म है और उद्‌गीथ नामक उपासना भी है। यह उपासना कर्मफल समृद्धि के लिए है। यजमान को प्राप्त होने वाले कर्मफल में ऋत्विजों द्वारा की गयी उद्‌गीथ उपासना कुछ अतिशय उत्पन्न करती है। अतएव यजमान से भी यह उपासना करायी जाती है। उपासना के अभाव में भो उद्‌गीथ कर्म का अनुष्ठान अंग विगुण नहीं है, अपितु सफल है। इसे "यदेव विद्या करोति" इस श्रुति में कहा गया है। उपकोसलविद्या शाण्डिल्यविद्या इत्यादि अहंग्रह उपासानाएँ हैं। इनमें उपास्य ब्रह्म को अहंभाव से ग्रहणकर चिन्तन किया जाता है। "आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत", "लोकेषु पञ्चविधं सामोपासीत", तथा पञ्चाग्निविद्या ये सब प्रतीक उपासनाएँ हैं। इनमें पञ्चाग्निविद्या का फल देवयान से ब्रह्मलोक की प्राप्ति बतलाया गया है। शेष प्रतीकोपासनाओं का फल अभ्युदय है, मोक्ष नहीं। इस प्रकार कर्म में अतिशय आधान करने वाली कर्माङ्गावबद्ध उद्‌गीथादि उपासना, अभ्युदय फलक प्रतीकोपासना तथा कैवल्य सन्निकृष्ट फलप्रद अहंग्रहोपासना का विस्तृत वर्णन इस छान्दोग्योपनिषद् में किया गया है। जिसका संक्षिप्त विचार इस प्रस्तावना में भी किया जाता है और इसका विस्तार मूलग्रन्थ के अध्ययन काल में ही स्वयं पाठक देख सकेंगे।

प्रथमाध्याय

प्रथमखण्डः—प्रथमाध्याय में तेरह खण्ड हैं, जिनमें प्रथमखण्ड के अन्तर्गत उद्‌गीथावयव प्रणव को सर्वलोक वेदसारत्व, सर्वकामावाप्ति गुणवत्त्व तथा समृद्धिगुण ऐसे तीन गुणों से विशिष्ट कहा गया हैं। इस प्रणव में परमात्मदृष्टि से उपासक को उपास्य के अनुरूप फल की प्राप्ति होती है। यों तो सभी वेदों में प्रणव आया है, किन्तु "व्याप्तेश्च समञ्जसम् (ब्र० ३।३।९)" इस सूत्र में भगवान् वेदव्यास ने सामभक्ति उद्‌गीथ के अवयव प्रणव को ही परमात्मदृष्टि से उपासना करने के लिए कहा है।

द्वितीयखण्डः—इसमें देवासुर संग्राम कथा व्याज से चक्षुरादि इन्द्रियों की अपेक्षा प्राण में श्रेष्ठत्व बतलाया गया है। ऐसे श्रेष्ठ प्राणरूपसे उद्‌गीथावयव प्रणवकी उपासनाका विधान किया गया है। अशास्त्रीय स्वाभाविक वृत्ति से प्राण का पराभव कभी भी नहीं होता। इसीलिए यही उपास्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। प्राण शरीर के अङ्गों में रसरूप से रहता है। अतः वह अङ्गिरा ऋषि है, वाणीका पति और आस्य से निकलने के कारण अयास्यरूप है। ऐसे प्राण के तीनों गुण उपासना के लिए कहे गए हैं।

तृतीयखण्डः—उद्गीथ अवयव प्रणव की उपासना आदित्यदृष्टि से इस तीसरे खण्ड में बतलायी गयी है। जैसे आदित्य, तम और तज्जनित भय को दूरकर डालता है, वैसे ही आदित्यदृष्टि से प्रणव की उपासना करने पर अज्ञान एवं तज्जन्य भय का नाश हो जाता है। अधिदैव तथा अध्यात्मदृष्टि से इस उद्गीथ की उपासना कहे जाने पर भी भेद नहीं माना गया।

चतुर्थखण्डः—अमृत अभय गुणविशिष्ट ब्रह्म है। इस ब्रह्मदृष्टि से कर्मनिरपेक्ष प्रणव की उपासना करने पर उपासक को आपेक्षिक अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

पञ्चमखण्डः—ऋग्वेदादि में आये हुए प्रणव में आदित्यदृष्टि की निन्दा की गयी है; साथ ही भेद विशिष्ट आदित्यरश्मिदृष्टि का विधान किया गया है। वैसे ही भेद गुण वाले प्राणदृष्टि से उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना भी कही गयी है। उद्गीथ और प्रणव में अभेद दर्शन से होतृ-प्रयुक्त शस्त्र से अपने कर्म में उत्पन्न अनिष्ट का परिहार उद्गाता कर लेता है।

षष्ठखण्डः—इसमें उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएँ कही गयी है। उपास्य को "कप्यासं पुण्डरीकम्" उपमा देकर विशिष्ट कहा गया है। आदित्यान्तर्गत पुरुष के लिए यह हीन उपमा उचित नहीं ऐसा वैष्णवाचार्यों ने कहा है। वस्तुतः आदित्यान्तर्गत पुरुषनेत्र के लिए 'पुण्डरीकम्' उपमा है और उस 'पुण्डरीकम्' का विशेषण 'कप्यासम्' है। अतः हीन आत्मा की आशंका अविचारित रमणीय है।

सप्तमखण्डः—इसमें उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना बतलायी गयी है। अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता का चिन्तन कहा गया है और उसका फल बतलाया गया है कि वह उपासक अपने या यजमान के लिए जिस किसी इष्ट कामना का उद्गान करेगा तो वह फल उसे प्राप्त हो ही जाएगा।

अष्टम तथा नवमखण्डः—अनेकों दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष बतलाया गया है। शिलक, चैकितायन और प्रवाहण की कथा से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष सिद्ध होता है। आकाश सबका आश्रय है। क्योंकि सभी भूत आकाश से उत्पन्न होते हैं, आकाश में स्थित रहते हैं और आकाश में लीन होते हैं। इस प्रकार ब्रह्मलिङ्ग को देखते हुए आकाश का अर्थ ब्रह्म ही मानना चाहिए। इस उपासना का फल है विशिष्ट जीवन अपना तथा पुत्र-पौत्रादि का इस लोक एवं परलोक को प्राप्त करना।

दशम तथा एकादशखण्डः—उषस्ति चाक्रायण के द्वारा जूठी उड़द को खाना तथा जूठे पानी का त्याग कर देना आपद्धर्म का सूचक है। प्राण एक ऐसा पदार्थ है जिसकी रक्षा के लिए आपातकाल में अभक्ष्य भक्षण भी किया जा सकता है। साम की प्रस्ताव भक्ति में जिस प्राण का चिन्तन बतलाया गया है, वह जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के कारण होने से परमात्मा ही है। इस प्रकार ध्यान करते हुए सामगान से कर्मफल में अतिशय आता है। साम भक्ति में परमात्मा उपास्य है, उद्गीथ भक्ति में आदित्य उपास्य है और प्रतिहार भक्ति में अन्नदेवता उपास्य है ऐसा बतलाया गया है।

द्वादशखण्डः—श्वानों के द्वारा देखे गये सामों को शौव साम कहते हैं। इस शौव साम के गान से अन्न की प्राप्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रयोदशखण्डः—गीतिकाल पूर्ण करने के लिए सामगान में "हाँउ" इत्यादि जिन निरर्थक अक्षरों का उपयोग होता है; उन्हें स्तोभाक्षर कहते हैं। इस खण्ड में स्तोभाक्षर विषयक उपासनाएँ बतलायी गयी हैं, जिनका फल अन्नवान् तथा अन्नादी होना माना गया है। इस प्रकार संक्षेपरूप में प्रथमाध्याय के विषयों का उल्लेख किया गया।

द्वितीयाध्याय

साम के एकदेश के साथ सम्बद्ध सामावयव विषयक उपासना बतलाने के बाद समस्त साम विषयक उपासना द्वितीय अध्याय में बतलायी जाती है हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन ये पांचों भक्तियाँ पाञ्चभक्ति साम के अवयव हैं। वैसे ही आदि और उपद्रव को मिलाकर साप्तभक्तिक साम के सात अवयव माने जाते हैं। ऐसे सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना का विधान इस द्वितीय अध्याय में किया गया है। इसमें चौबीस खण्ड हैं।

प्रथमखण्डमें सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना साधुदृष्टि से करने के लिए कहा गया है। इस समस्त साम की उपासना से उपासक को सभी शास्त्र सम्मत धर्म अतिशीघ्र प्राप्त होते हैं और विनम्रभाव भी आ जाते हैं। द्वितीयखण्ड से लेकर सप्तमखण्ड तक फल सहित क्रमशः लोकदृष्टि से वृष्टि दृष्टिसे, जल, ऋतु, पशु और प्राणदृष्टिसे पाञ्चभक्तिक सामकी उपासना कही गयी है। अष्टम से दशमखण्ड तक क्रमशः वाणी तथा आदित्यदृष्टि से साप्तभक्तिक साम की उपासना विधान के बाद मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना कही गयी है। एकादश से बीसवें खण्ड तक क्रमशः गायत्रसाम, रथन्तर, वामदेव्य, बृहत्, वैरूप्य, वैराज, शक्वरी, रेवती यज्ञायज्ञीय तथा राजन साम की उपासना फल सहित विविध प्रकार से बतलायी गयी है।

इक्कीसवें खण्ड में सर्वव्यापक साम की पञ्चविध उपासना से सर्वरूपता, सर्वज्ञता एवं सर्वैश्वर्य की प्राप्ति कही गयी है।

बाईसवें खण्ड में विनर्दि गुण युक्त साम की उपासना, स्तवन के समय में ध्यान विधि, स्वरादि वर्णों की देवरूपता तथा वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु का वर्णन है।

तेईसवें खण्ड में धर्म के तीन स्कन्धों का वर्णन करते हुये "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" वाक्य द्वारा संन्यासी को ब्रह्ममें सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति कही गयी है। तीनों लोकों के सार तीनों वेद हैं, उनका सार व्याहृति-त्रय और भूरादि व्याहृतियों के सार रूप से ओङ्कार का प्रादुर्भाव कहा गया है। पत्ते की नसों को भाँति ओङ्कार से संपूर्ण वाणी को व्याप्त कहा है। अतः ओङ्कार ही सब कुछ है।

चौबीसवें खण्ड में प्रातः सवन के देवता वसु, मध्याह्न सवन के रुद्र और सायं सवन के अधिष्ठातृदेव आदित्य तथा विश्वेदेवा आदि को जानने वाला ही यज्ञानुष्ठान का अधिकारी कहा गया है। प्रातः काल में पढ़ने योग्य शस्त्र नामक स्तोत्र के पाठ से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता सम्बन्धी साम का गान राज्यप्राप्ति के लिए करता है, जिससे वसुगण उस यजमान को प्रातः सवन प्रदान करादेते हैं। मध्याह्न सवन को प्रारम्भ करने से पूर्व यजमान दक्षिणाग्नि के पृष्ठभाग में उत्तराभिमुख बैठकर वैराज्यपद प्राप्ति के लिए रुद्रदेवता सम्बन्धी साम को गाता है जिसके फल स्वरूप रुद्रगण उस यजमान को मध्याह्न सवन प्रदान करते हैं। वैसे ही तृतीय-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। प्राण शरीर के अङ्गों में रसरूप से रहता है। अतः वह अङ्गिरा ऋषि है, वाणीका पति और आस्य से निकलने के कारण अयास्यरूप है। ऐसे प्राण के तीनों गुण उपासना के लिए कहे गए हैं।

तृतीयखण्डः—उद्गीथ अवयव प्रणव की उपासना आदित्यदृष्टि से इस तीसरे खण्ड में बतलायी गयी है। जैसे आदित्य, तम और तज्जनित भय को दूरकर डालता है, वैसे ही आदित्यदृष्टि से प्रणव की उपासना करने पर अज्ञान एवं तज्जन्य भय का नाश हो जाता है। अधिदैव तथा अध्यात्मदृष्टि से इस उद्गीथ की उपासना कहे जाने पर भी भेद नहीं माना गया।

चतुर्थखण्डः—अमृत अभय गुणविशिष्ट ब्रह्म है। इस ब्रह्मदृष्टि से कर्मनिरपेक्ष प्रणव की उपासना करने पर उपासक को आपेक्षिक अमृतत्व की प्राप्ति होती है।

पञ्चमखण्डः—ऋग्वेदादि में आये हुए प्रणव में आदित्यदृष्टि की निन्दा की गयी है; साथ ही भेद विशिष्ट आदित्यरश्मिदृष्टि का विधान किया गया है। वैसे ही भेद गुण वाले प्राणदृष्टि से उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना भी कही गयी है। उद्गीथ और प्रणव में अभेद दर्शन से होतृ-प्रयुक्त शस्त्र से अपने कर्म में उत्पन्न अनिष्ट का परिहार उद्गाता कर लेता है।

षष्ठखण्डः—इसमें उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएँ कही गयी है। उपास्य को "कप्यासं पुण्डरीकम्" उपमा देकर विशिष्ट कहा गया है। आदित्यान्तर्गत पुरुष के लिए यह हीन उपमा उचित नहीं ऐसा वैष्णवाचार्यों ने कहा है। वस्तुतः आदित्यान्तर्गत पुरुषनेत्र के लिए 'पुण्डरीकम्' उपमा है और उस 'पुण्डरीकम्' का विशेषण 'कप्यासम्' है। अतः हीन आत्मा की आशंका अविचारित रमणीय है।

सप्तमखण्डः—इसमें उद्गीथ अवयव प्रणव की अध्यात्मोपासना बतलायी गयी है। अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता का चिन्तन कहा गया है और उसका फल बतलाया गया है कि वह उपासक अपने या यजमान के लिए जिस किसी इष्ट कामना का उद्गान करेगा, तो वह फल उसे प्राप्त हो ही जाएगा।

अष्टम तथा नवमखण्डः—अनेकों दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष बतलाया गया है। शिलक, चैकितायन और प्रवाहण की कथा से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष सिद्ध होता है। आकाश सबका आश्रय है। क्योंकि सभी भूत आकाश से उत्पन्न होते हैं, आकाश में स्थित रहते हैं और आकाश में लीन होते हैं। इस प्रकार ब्रह्मलिङ्ग को देखते हुए आकाश का अर्थ ब्रह्म ही मानना चाहिए। इस उपासना का फल है विशिष्ट जीवन अपना तथा पुत्र-पौत्रादि का इस लोक एवं परलोक को प्राप्त करना।

दशम तथा एकादशखण्डः—उषस्ति चाक्रायण के द्वारा जूठी उड़द को खाना तथा जूठे पानी का त्याग कर देना आपद्धर्म का सूचक है। प्राण एक ऐसा पदार्थ है जिसकी रक्षा के लिए आपातकाल में अभक्ष्य भक्षण भी किया जा सकता है। साम की प्रस्ताव भक्ति में जिस प्राण का चिन्तन बतलाया गया है, वह जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय के कारण होने से परमात्मा ही है। इस प्रकार ध्यान करते हुए सामगान से कर्मफल में अतिशय आता है। साम भक्ति में परमात्मा उपास्य है, उद्गीथ भक्ति में आदित्य उपास्य है और प्रतिहार भक्ति में अन्नदेवता उपास्य है ऐसा बतलाया गया है।

द्वादशखण्डः—श्वानों के द्वारा देखे गये सामों को शौव साम कहते हैं। इस शौव साम के गान से अन्न की प्राप्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रयोदशखण्डः—गीतिकाल पूर्ण करने के लिए सामगान में "हाँउ" इत्यादि जिन निरर्थक अक्षरों का उपयोग होता है; उन्हें स्तोभाक्षर कहते हैं। इस खण्ड में स्तोभाक्षर विषयक उपासनाएँ बतलायी गयी हैं, जिनका फल अन्नवान् तथा अन्नादी होना माना गया है। इस प्रकार संक्षेपरूप में प्रथमाध्याय के विषयों का उल्लेख किया गया।

द्वितीयाध्याय

साम के एकदेश के साथ सम्बद्ध सामावयव विषयक उपासना बतलाने के बाद समस्त साम विषयक उपासना द्वितीय अध्याय में बतलायी जाती है हिङ्कार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन ये पांचों भक्तियाँ पाञ्चभक्ति साम के अवयव हैं। वैसे ही आदि और उपद्रव को मिलाकर साप्तभक्तिक साम के सात अवयव माने जाने हैं। ऐसे सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना का विधान इस द्वितीय अध्याय में किया गया है। इसमें चौबीस खण्ड हैं।

प्रथमखण्डमें सर्वावयव विशिष्ट साम की उपासना साधुदृष्टि से करने के लिए कहा गया है। इस समस्त साम की उपासना से उपासक को सभी शास्त्र सम्मत धर्म अतिशीघ्र प्राप्त होते हैं और विनम्रभाव भी आ जाते हैं। द्वितीयखण्ड से लेकर सप्तमखण्ड तक फल सहित क्रमशः लोकदृष्टि से वृष्टि दृष्टिसे, जल, ऋतु, पशु और प्राणदृष्टिसे पाञ्चभक्तिक सामकी उपासना कही गयी है। अष्टम से दशमखण्ड तक क्रमशः वाणी तथा आदित्यदृष्टि से साप्तभक्तिक साम की उपासना विधान के बाद मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना कही गयी है। एकादश से बीसवें खण्ड तक क्रमशः गायत्रसाम, रथन्तर, वामदेव्य, बृहत्, वैरूप्य, वैराज, शक्करी, रेवती यज्ञायज्ञीय तथा राजन साम की उपासना फल सहित विविध प्रकार से बतलायी गयी है।

इक्कीसवें खण्ड में सर्वव्यापक साम की पञ्चविध उपासना से सर्वरूपता, सर्वज्ञता एवं सर्वैश्वर्य की प्राप्ति कही गयी है।

बाईसवें खण्ड में विनर्दि गुण युक्त साम की उपासना, स्तवन के समय में ध्यान विधि, स्वरादि वर्णों की देवरूपता तथा वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु का वर्णन है।

तेईसवें खण्ड में धर्म के तीन स्कन्धों का वर्णन करते हुये "ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" वाक्य द्वारा संन्यासी को ब्रह्ममें सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति कही गयी है। तीनों लोकों के सार तीनों वेद हैं, उनका सार व्याहृति-त्रय और भूरादि व्याहृतियों के सार रूप से ओङ्कार का प्रादुर्भाव कहा गया है। पत्ते की नसों को भाँति ओङ्कार से संपूर्ण वाणी को व्याप्त कहा है। अतः ओङ्कार ही सब कुछ है।

चौबीसवें खण्ड में प्रातः सवन के देवता वसु, मध्याह्न सवन के रुद्र और सायं सवन के अधिष्ठातृदेव आदित्य तथा विश्वेदेवा आदि को जानने वाला ही यज्ञानुष्ठान का अधिकारी कहा गया है। प्रातः काल में पढ़ने योग्य शस्त्र नामक स्तोत्र के पाठ से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता सम्बन्धी साम का गान राज्यप्राप्ति के लिए करता है, जिससे वसुगण उस यजमान को प्रातः सवन प्रदान करादेते हैं। मध्याह्न सवन को प्रारम्भ करने से पूर्व यजमान दक्षिणाग्नि के पृष्ठभाग में उत्तराभिमुख बैठकर वैराज्यपद प्राप्ति के लिए रुद्रदेवता सम्बन्धी साम को गाता है जिसके फल स्वरूप रुद्रगण उस यजमान को मध्याह्न सवन प्रदान करते हैं। वैसे ही तृतीय-

Rajguru Mahant Shivlal, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सवन को प्रारम्भ करने से पूर्व यजमान आहनीय अग्नि के पीछे उत्तराभिमुख बैठकर स्वाराज्य और सामराज्य प्राप्ति के लिए क्रमशः आदित्य और विश्वेदेवा सम्बन्धी साम का गान करता है। जिसके फल स्वरूप आदित्य एवं विश्वेदेवा उस यजमान को तृतीय सवन प्रदान करते हैं। सामगान के अनन्तर उक्त देवताओं के नाम से यजमान हवन भी करता है इस प्रकार इस अध्याय का संक्षिप्त वर्णन समाप्त हो जाता है।

तृतीयाध्याय

इसमें उन्नीस खण्ड हैं। कर्माङ्ग उपासना बतलाकर कर्मफल रूप आदित्य की अब स्वतन्त्र उपासना इस अध्याय में बतलाते हैं। आदित्य सभी प्राणियों के कर्मफल रूप प्रत्यक्ष देवता है और सभी का उपजीव्य है। अतः यज्ञ उपदेश के अनन्तर उसके कार्यरूप आदित्य विषयक उपासना श्रेष्ठतम फलप्रद है। इसीलिए श्रुति आदित्य को देवमधु रूप से उपासना करने को कहती है। देवताओं को प्रसन्न करने वाले होने से आदित्य देवताओं का मधु है, द्युलोक ही उसका तिरछा बाँस है, यह अन्तरिक्ष मधु का छत्ता है और आदित्य किरणें उसके बच्चे हैं। ऐसा बतलाने के बाद आदित्य की पूर्वदिशा सम्बन्धी किरणों में मधु नाड्यादि दृष्टि प्रथमखण्ड में बतलायी गयी है।

द्वितीयखण्ड से पञ्चमखण्ड तक क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊर्ध्वदिक् सम्बन्धी आदित्य किरणों में मधु नाड्यादि दृष्टि बतलायी गयी है।

षष्ठखण्ड से दशमखण्ड तक क्रमशः वसुओं के जीवन आश्रयभूत प्रथम अमृत की उपासना, रुद्रों के जीवन आश्रयभूत द्वितीय अमृत की उपासना, आदित्यों के जीवन आश्रयभूत तृतीय अमृत की उपासना मरुद्गण के जीवन आश्रयभूत चतुर्थ अमृत की उपासना और साध्यों के जीवन आश्रयभूत पञ्चम अमृत की उपासना बतलायी गयी है। इस प्रकार उदय और अस्त द्वारा प्राणियों के स्वकर्म फल भोग में अनुग्रह कर भोगक्षय के अनन्तर वह ऊर्ध्वगत हो उदय एवं अस्तभाव से रहित ब्राह्मीभाव को उपासक प्राप्त कर लेता है। ऐसा एकादशखण्ड में बतलाने के बाद मधु विद्या का फल और हिरण्यगर्भ से लेकर उद्दालक पर्यन्त इस मधुविद्या की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है। ज्येष्ठ पुत्र अथवा सुयोग्य शिष्य को ही इस विद्या का अधिकारी समझकर उपदेश करने को कहा है और साथ ही यह भी कहा है कि मधुविद्या के ऋण से उऋण होने के लिए शिष्य के पास कोई धन नहीं है जिसे आचार्य को देकर वह विद्या के ऋण से मुक्त हो सके।

द्वादशखण्ड में प्रतीकोपासना बतलाते समय गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना कही गयी है। "गायत्री वा इदं सर्वम्" इस प्रकार वर्ण समुदाय गायत्री में सर्वात्मत्व सम्भव नहीं है। अतः गायत्री छन्द वाले ऋचा में उपास्यरूप से अनुगत ब्रह्म को "सोऽहम्" इस प्रकार अभेदभाव से उपासना के लिए कहा है। कार्य और शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप बतलाया गया है। गायत्री द्वारा कहा गया त्रिपाद अमृत स्वरूप ब्रह्म यही है, जो यह पुरुष से बाहर प्रसिद्ध आकाश है। जो उपासक इस प्रकार पूर्ण और अविनाशी गुण विशिष्ट की उपासना करता है, वह पूर्ण तथा अविनाशी विभूति को प्राप्त करता है।

त्रयोदश खण्ड में हृदय के अन्तर्गत पूर्वछिद्र रूप प्राण की उपासना कही गयी है। वैसे ही दक्षिण छिद्र में व्यान की, पश्चिमछिद्र में अपान की, उत्तरछिद्र में समान की और ऊर्ध्ववर्ती छिद्र में उदान की उपासना कही गयी है। उपर्युक्त प्राणादि द्वारपालों की उपासना का फल बतलाया गया,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हृदयस्थ मुख्य ब्रह्म की उपासना ज्योतिरूप से कही गयी है और हृदयस्थ पुरुष के दर्शन का उपाय बतलाया गया है।

चौदहवें खण्ड में सगुण ब्रह्म की उपासना शाण्डिल्यविद्या के रूप में कही गयी है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" इस वाक्य में प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषयभूत सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म में आरोपित है। अतः नामरूपात्मक जगत् का ब्रह्म के साथ बाधरूप सामानाधिकरण्य है। उस ब्रह्म में आरोपित मनोमयत्वादि चिन्तनीय गुणों का वर्णन किया गया है। वह अणु से अणु और महान् से महान् है। हृदयस्थ ब्रह्म तथा परब्रह्म का अभेदरूप से चिन्तन करने पर उपासक को ब्रह्मभाव की प्राप्ति कही गयी है। इस विद्या के उपदेशक आचार्य शाण्डिल्य ऋषि थे। इसीलिए इसे शाण्डिल्य विद्या कहते हैं।

पञ्चदश खण्ड में पुत्र की दीर्घायुष्य के लिए विराट् की उपासना कही गयी है। उस कोश की पूर्व दिशा जुहू नाम वाली है, दक्षिण दिशा सहमाना नाम वाली है, पश्चिम दिशा राज्ञी नाम वाली है और उत्तरदिशा सुभूता नाम वाली है। दिशाओं से उत्पन्न होने के कारण वायु उनका वत्स है। इस वायु की उपासना करने वाले को पुत्र के मरण अथवा वियोग जनित दुःख नहीं होता। पुत्र का नाम लेकर उसके दीर्घायुष्य के लिए प्रार्थना बतलायी गयी है। फलतः उपासक पुत्र की दीर्घायुष्य को प्राप्त होता है।

षोडश खण्ड में कहा गया है कि पुत्र के दीर्घायुष्य होने पर भी स्वयं यदि अल्पायुष्य हो तो फिर उससे क्या लाभ ? अतः अपनी दीर्घायुष्य के लिए आत्मयज्ञ का सम्पादन करना चाहिए। पुरुष की पूर्ण आयु एक सौ सौलह वर्ष की मानी जाती है। पहले चौबीस वर्ष तत्पश्चात् चौवालीस वर्ष और फिर अड़तालीस वर्ष कहे गये हैं। जीवन के इन तीन भागों को परस्पर जोड़ने के लिए आत्मयज्ञ बतलाया गया है। जिसके अनुष्ठान से उपासक दीर्घायुष्य को प्राप्त करता है। सप्तदशखण्ड में पुरुष की समस्त चेष्टाओं को आत्मयज्ञ उपासना के रूप में कहा गया है और जिसके फल अक्षयादि कहे गये हैं।

अष्टादश खण्ड में मनरूप अध्यात्म प्रतीक में और आकाशरूप अधिदैव प्रतीत में ब्रह्मदृष्टि करने को कहा है। वाक्, प्राण, चक्षु और श्रोत्र ऐसे चार पाद अध्यात्म में एवं अग्नि, वायु, आदित्य और दिशा ये चारपाद अधिदैव के कहे गये हैं। अध्यातम तथा अधिदैव पादों को अभिन्नरूप से चिन्तन करने के लिए कहा है और जिसका फल है, अतिशीघ्र आदित्य भाव की प्राप्ति।

उन्नीसवें खण्ड में आदित्य तथा अन्यदृष्टि से आध्यात्मिक एवं आधिदैविक उपासना कही गयी है। इस उपासना से आदित्यभाव की प्राप्ति कही गयी है। इस प्रकार तृतीय अध्याय के संगृहीत विषय बतलाये गये।

चतुर्थाध्याय

इसमें सप्तदश खण्ड हैं। इनके प्रारम्भिक तीन खण्डों में जानश्रुति और रैक्व के उपाख्यान द्वारा संवर्ग विद्या का वर्णन किया गया है। किसी भी साधक में कर्मानुष्ठानमात्र से कृतकृत्यता नहीं आती किन्तु उससे ऋषि और देवता अवश्य प्रसन्न होते हैं जिसके फलस्वरूप ब्रह्मविद्या के आचार्य की प्राप्ति होती है। ऐसी ही घटना जानश्रुति राजा के जीवन में भी घटती है। राजा जानश्रुति संवर्ग-विद्या के आचार्य रैक्व के पास जाता है और विपुल धन एवं कन्यारूप भेंट समर्पित कर उनसे संवर्गविद्या ग्रहण करता है। अधिदैव में वायु को संवर्ग कहा गया है क्योंकि इसी में अग्नि, वायु, सूर्य

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा जलका लय देखा जाता है। अध्यात्म में प्राण को संवर्ग कहा गया है; क्योंकि सुषुप्ति के समय प्राण में ही वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन का लय होता देखा जाता है। उपास्य के गुण उपासक में आ जाते हैं। अत: इनकी आत्मभाव से उपासना करने वाले को पूर्वोक्त दश देव स्वरूपत्व की प्राप्ति होती है और प्राण होकर सर्वत्र अन्नवान् तथा अन्नादी हो जाता है।

चतुर्थखण्ड से नवम खण्ड तक सत्यकाम जाबालोपाख्यान है। सत्यकाम [redacted] जाबाल आचार्य गौतम की आज्ञा से उनकी प्रसन्नता के लिए अरण्य में ब्रह्मचर्य तथा गोपालन करते हुए अनेक वर्षों तक रहता है। इसकी इस व्रतचर्या से प्रसन्न हो देवता ऋषभ में प्रविष्ट होकर स्वयं ही उपदेश करते हैं। ऋषभ ने सत्यकाम को प्राची, दक्षिणा, प्रतीची और उदीची ऐसे चार कला वाले ब्रह्म के प्रथम प्रकाशवान् नामक पाद का उपदेश किया, जिसकी उपासना का फल प्रसिद्धिमत्ता है। पृथिवी, अन्त-रिक्ष, द्युलोक और समुद्र ऐसे चार कला वाले ब्रह्म के अनन्तवान् नामक द्वितीय पाद का उपदेश अग्नि ने किया, जिसकी उपासना का फल है अविच्छिन्न सन्तति और अनन्त लोक की प्राप्ति। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, और विद्युत् रूप चार कला वाले ब्रह्म के ज्योतिष्मान नामक तृतीय पाद का उपदेश हंसरूप से सूर्य ने किया, जिसकी उपासना से उपासक दीप्तिमान हो जाता है। प्राण, चक्षु, श्रोत्र और मनरूप चारकला वाले ब्रह्म के आयतवान् नामक चतुर्थ पाद का उपदेश जाबाल को मद्गुपक्षीरूप से प्राण ने किया, जिसकी उपासना से उपासक सबका आश्रय बन जाता है लोक और परलोक में उसे विस्तृत आयतन की प्राप्ति होती है। इस प्रकार उपर्युक्त चारों से उपदेश प्राप्तकर सत्यकाम ब्रह्मज्ञानी की भाँति तेजस्वी होकर आचार्य हारिभ्रमत गौतम के पास लौटकर आता है और कहता है कि मुझे आप मेरी इच्छा के अनुसार उपदेश करें। मैंने आप जैसे महानुभावों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या ही साधिष्ठ को प्राप्त कराती है। तत्पश्चात् आचार्य गौतम ने सत्यकाम को देवताओं द्वारा प्राप्त विद्या का फिर से उपदेश किया। उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं की। फलत: सत्यकाम की विद्या पूर्ण हुई।

दशमखण्ड से पञ्चदश खण्ड पर्यन्त उपकोसल विद्या का प्रसंग आता है जिसमें सत्यकाम जाबाल ऋषि के प्रिय शिष्य उपकोसल को सर्व प्रथम तीनों अग्नियों ने मिलकर उपदेश किया कि प्राण ब्रह्म है अपरिच्छिन्न सुखरूप ब्रह्म है। तत्पश्चात् गार्हपत्याग्नि ने बतलाया पृथिवी, अन्न, अग्नि, और आदित्य, ऐसे मेरे चार शरीर हैं। अपना तथा आदित्य का अभेद बतलाया—जिसकी उपासना का फल पाप की निवृत्ति अग्नि लोक की प्राप्ति दीर्घायुष्य तथा दोनों लोकों में अग्नि परिपाल्यत्व कहा गया है।

दक्षिणाग्नि ने जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा इन चारों को अपना स्वरूप बतलाया चन्द्रमा तथा दक्षिणाग्नि में रहने वाले एक ही पुरुष उपास्य है। इस उपासना का फल भी पूर्व की भाँति ही कहा गया है। आहवनीयाग्नि ने कहा—प्राण, आकाश, द्युलोक, तथा विद्युत्; ये मेरे शरीर हैं। विद्यु-दभिमानी पुरुष में एवं आहवनीयाग्नि में ज्योति स्वरूप अभेदभाव से उपासना करने को कहा है और इस उपासना का फल पूर्व की भाँति कहा है। तत्पश्चात् तीनों अग्नियों ने संयुक्तरूप से पुन: उपकोसल को—कहा कि हे उपकोसल! हमने तुझे अपनी-अपनी विद्या एवं आत्मविद्या बतला दी है। अब इस विद्या की फल प्राप्ति के लिए मार्ग का उपदेश तुझे आचार्य करेंगे। कालान्तर में इसके आचार्य ने वहाँ आकर उससे कहा—हे उपकोसल! तेरी मुखाकृति ब्रह्मज्ञानी की भाँति प्रतीत हो रही है। बतलाओ तो सही तुझे किसने उपदेश किया। उपकोसल पिछली घटना को छिपाना चाहता था किन्तु भयभीत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अग्नियों की ओर देखकर उसे कहना पड़ा कि मेरी सेवा से प्रसन्न होकर इन अग्नियों ने मुझे उपदेश किया है आचार्य के पूछने पर अग्नियों से प्राप्त समग्र विद्या को उपकोसल ने ज्यों का त्यों सुना दिया आचार्य सत्यकाम ने कहा– अग्नियों ने तुझे केवल लोकों को ही बतलाया है; पर अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ जिसे जानने वाला जल में कमल की भाँति पापकर्म से लिप्त नहीं होता। यह जो नेत्र में पुरुष दीखता है, वह आत्मा है। वह अमर, अभय एवं ब्रह्म स्वरूप है। इसीलिए तो नेत्र में जल या घृत डालने पर उसमें प्रविष्ट नहीं होते, प्रत्युत इधर उधर से निकल जाते हैं। जिस नेत्रस्थ पुरुष का स्थान ही इतना निःसंग है, उस पुरुष की निःसंगता के विषय में तो कहना ही क्या है। उसके संयतवामत्व, वामनीत्व एवं भामनीत्व नित्य गुण हैं, उन गुणों से विशिष्ट नेत्रस्थ पुरुष की उपासना से तदनुरूप फल उपासक को प्राप्त होता है। इस विद्या के जानने वालों की अन्त्येष्टि करें या न करें, वे अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मलोक को प्राप्त करते ही हैं और वहाँ से वे उपासक वर्तमान मानव सृष्टि में नहीं लौटते, ऐसा कहा गया है।

षोडशखण्ड में गतिमान् यज्ञ की उपासना बतलायी गयी है। यह प्रत्यक्ष वायु यज्ञ स्वरूप है। वाणी और मन इस वायु रूप यज्ञ पुरुष के मार्ग हैं। इन दोनों मार्गों में से मौन धारण करने वाला एक मार्ग का मन से संस्कार करता है और वाणी द्वारा होता, अध्वर्यु एवं उद्गाता अवशिष्ट दूसरे मार्ग का संस्कार करते हैं। ब्रह्मा के मौन भंग से यज्ञ की हानि होती है और ब्रह्मा के मौन पालन से यज्ञ की प्रतिष्ठा होती है। यज्ञ की प्रतिष्ठा से यजमान प्रतिष्ठित होता है। इस प्रकार मौन विज्ञान युक्त ब्रह्मा से सहकृत यजमान इस यज्ञ का अनुष्ठान कर श्रेष्ठ हो जाता है।

सप्तदशखण्ड में कहा गया है कि यज्ञ में आये हुए दोषों की निवृत्ति के लिए व्याहृतियों की उपासना करनी चाहिए। इसीलिए प्रजापति ने तीनों लोकों को तपाकर उनके सार अग्नि, वायु और आदित्य को ग्रहण किया। पुन इन तीनों देवताओं के सार रूप से तीनों वेदों और उनके सारभूत "भूर्भुव: स्व:" इन व्याहृतियों को निकाला। अत: ऋग्वेद के अपभ्रंश आदि से प्राप्त होने वाले दोष की निवृत्ति के लिए "भू: स्वाहा" इस मन्त्र से गार्हपत्याग्नि में हवन करे, यजुर्वेद सम्बन्धी दोष निवृत्ति के लिए "भुव: स्वाहा" इस मन्त्र से दक्षिणाग्नि में हवन करे और सामवेद सम्बन्धी दोषों की निवृत्ति के लिए प्रायश्चित्त रूप से "स्व: स्वाहा" इस मन्त्र द्वारा आहवनीय अग्नि में हवन करे। फलत: तीनों लोक, तीनों देव और तीनों वेद के सारभूत भूरादि व्याहृतियों द्वारा हवन करने से यज्ञ के समस्त अरिष्ट की निवृत्ति होती है और वह यज्ञ सुसंस्कृत माना जाता है किन्तु यह सब विद्वान् ब्रह्मा के कार्य कौशल एवं वैदुष्य का सुपरिणाम है, जो यज्ञ, यजमान और सभी ऋत्विजों की रक्षा करता है। अत: यज्ञ में ऐसे विद्वान् को ही ब्रह्मा बनाना चाहिए।

पञ्चमाध्याय

पञ्चमाध्याय में चौबीस खण्ड हैं। प्रथम एवं द्वितीय खण्ड में प्राणोपासना का प्रसंग आता है। यद्यपि वाणी में वसिष्ठत्व, चक्षु में प्रतिष्ठात्व, श्रोत्र में सम्पत्त्व और मन में आयतनत्व गुण प्रारम्भ में कहे गये हैं। तथापि प्राण के श्रेष्ठत्व का निश्चय हो जाने के बाद घ्राणादि अमुख्य प्राणों ने अपने-अपने गुणों को प्राणाधीन समझकर उन्हें मुख्य प्राण में ही समर्पित कर दिया। क्योंकि प्रजापति के द्वारा ली गयी परीक्षा में केवल मुख्य प्राण ही उत्तीर्ण हुआ था। अत: ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, वसिष्ठत्व, प्रतिष्ठात्व, सम्पत्त्व तथा आयतनत्व रूप छः गुणों से युक्त मुख्य प्राण ही उपास्य है 'ऐसा षड्गुण विशिष्ट प्राण मैं हूँ' इस भाव से प्राण की उपासना करनी चाहिए। "प्राणियों द्वारा जो कुछ भी खाया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जाता है, वह सब प्राण की अन्न है", ऐसा भी चिन्तन प्राणोपासना के अङ्गरूप से प्राणोपासक को करना चाहिए। इससे उपासक अन्न के दोषों से लिप्त नहीं होता। भोजन से पूर्व और पश्चात् भी आचमन करना चाहिए। "अमृतोपस्तरणमसि" "अमृतापिधानमसि" इन मन्त्रों से उस आचमनीय जल में प्राण के वस्त्रोपवस्त्र की दृष्टि करनी चाहिए। इस प्राणोपासना के अङ्ग चिन्तन का फल वस्त्रादि की प्राप्ति है। यदि वह प्राणोपासक लोकों में महत्त्व प्राप्त करना चाहता हो तो उसे मन्थाख्य कर्म का भी अनुष्ठान करना चाहिए। इस मन्थाख्य कर्म का प्रतिपादन छान्दोग्योपनिषत् की अपेक्षा बृहदारण्यकोपनिषत् में विस्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है।

तृतीयखण्ड से दशमखण्ड तक पञ्चाग्नि विद्या का प्रसङ्ग आता है। जिसके द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और योषित् ये पाँचों आध्यात्मिक अग्नि माने गये हैं, जिनमें श्रद्धा, सोम, वृष्टि, औषधि तथा रेत को आहुति के रूप में चिन्तन करने को कहा है। क्रमशः इन पाँचों आहुतियों के पूर्ण होने पर वह श्रद्धा पुरुषसंज्ञा को प्राप्त करती है। प्रथम अग्नि में यजमान के द्वारा डाला गया आहुति रूप जल श्रद्धापद वाच्य है। उससे उत्पन्न अपूर्व सहित यजमान स्वर्गलोक रूप अग्नि में हवन करता है। इस प्रकार देवता यजमान को चन्द्रलोक प्राप्त कराते हैं। स्वर्गलोक प्राप्ति निमित्तक पुण्यकर्म के क्षीण हो जाने पर वह यजमान अपूर्व परिवेष्टित हो पर्जन्य में हवन करता है। क्रमशः वृष्टि द्वारा पृथिवी में, औषधि द्वारा पुरुषाग्नि में और शुक्र द्वारा योषाग्नि में वह हवन करता है। तत्पश्चात् वह जीव पुरुषसंज्ञा को प्राप्त होता है। इस पञ्चाग्निविद्या की उपासना गृहस्थों के लिए बतलायी गयी है और इसका फल है अर्चिरादि मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक की प्राप्ति। श्वेतकेतु के पिता आरुणि को प्रवाहण जैवलि राजा ने शेष चार प्रश्नों का उत्तर भी सुना दिया। पञ्चमहापातकों का विनाश भी इस पञ्चाग्निविद्या की उपासना से हो जाता है, यह बात भी वहाँ पर बतलायी गयी है। यद्यपि पञ्चाग्निविद्या भी प्रतीकोपासना ही है, फिर भी इससे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। ऐसा श्रुति और भाष्य में स्पष्ट कहा गया है।

एकादश खण्ड से चौबीस खण्ड तक वैश्वानरविद्या का प्रसंग आता है, जिसमें अश्वपति कैकेय के पास औपमन्यव, सत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल और उद्दालक इन छः ऋषियों को वैश्वानरविद्या सीखने के लिए आना कहा गया है। इन छः प्रार्थी ऋषियों की बात सुनकर राजा अश्वपति एकबार खिन्न चित्त हो जाता है। क्योंकि अब तक इस विद्या का अनुशासन क्षत्रिय राजा ही करते आ रहे थे, किन्तु इन श्रद्धालु विद्यार्थियों की प्रार्थना को अस्वीकार करना भी सम्भव नहीं था। अतः दूसरे दिन विधि पूर्वक वैश्वानरविद्या सीखने के लिए उन ऋषियों को अपने समीप आने का आदेश राजा अश्वपति ने दिया। राजा के पूछने पर अपनी-अपनी उपासना का स्वरूप ऋषियों ने बतलाया। उनका एक अवयव को सम्पूर्ण वैश्वानर मानकर उपासना करना अपूर्ण एवं अनुचित था। राजा ने वैश्वानर के समस्त रूप की उपासना उन्हें बतलायी। स्वर्ग शिर, सूर्य नेत्र, वायु प्राण, आकाश मध्यम भाग, जलाशय समुद्रादि मूत्रकोष और पृथिवी उस वैश्वानर आत्मा के पाद हैं। इस प्रकार सर्वलोकात्मक वैश्वानर आत्मा की उपासना अहंभाव से करनी चाहिए, जिसका फल है कि उपासक सम्पूर्ण भूतों में सर्वात्मभाव से अन्न का भक्षण करता है तथा उस भोजन जन्य तृप्ति का भागी भी बन जाता है। वैश्वानर के उपासक को प्राणाग्नि होत्र भी करना चाहिए। इसके लिए भोजनार्थ परोसे गये अन्न को "ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा; ॐ उदानाय स्वाहा, ॐ समानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा" इन मन्त्रों से मुख में डाले। यही प्राणाग्निहोत्र नाम से प्रसिद्ध है। इसमें अग्निहोत्र की भावना करने पर वह उपासक सम्पूर्ण लोकों में मानो अन्न की आहुति डाल रहा है और उससे सभी प्राणी तृप्त होते हैं। इस उपासना से उपासक के सभी पाप दग्ध हो जाते हैं क्षुधा से पीड़ित बालक जैसे स्तन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पान के लिए अपनी माता की उपासना करता है, वैसे ही सभी प्राणी उस उपासक के इस अग्निहोत्र रूप भोजन की उपासना करते हैं।

षष्ठाध्याय

इसमें सोलह खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में कहा गया है कि पिता की आज्ञा से द्वादशवर्षीय श्वेतकेतु चौवीस वर्ष की आयु तक गुरुकुलवास एवं समस्त वेदों का अध्ययन कर अपने को बहुत बड़ा विद्वान् मानकर पिता के पास लौट आता है। विद्या विनय को देती है किन्तु अपने पुत्र श्वेतकेतु की विपरीत दशा देखकर उद्दालक आरुणि ने उसे उपदेश करना प्रारम्भ कर दिया। एक के विज्ञान से सब विज्ञान कैसे होगा है" इस प्रश्न का उत्तर देना तो दूर रहा किन्तु उस प्रश्न को भी श्वेतकेतु न समझ सका। उद्दालक ऋषि ने मृत्पिण्ड स्वर्णाभूषण एवं नख निकृन्तन के दृष्टान्त से उस प्रश्न को समझाया,तत्पश्चात् प्रश्न के उत्तर न आने के कारण श्वेतकेतु अपने पिता उद्दालक ऋषि का शरणापन्न हो जाता है।

द्वितीय खण्ड में अनेक पक्षों का खण्डन कर जगत् की सद्रूपता का वर्णन किया गया है। तृतीय खण्ड में सृष्टिक्रम का वर्णन आता है। चतुर्थ खण्ड में एक के विज्ञान से सर्व विज्ञान को युक्ति से सिद्ध किया गया हैं। पञ्चम एवं षष्ठखण्ड में अन्नादि के त्रिविध परिणाम बतलाकर उनके सूक्ष्म भाग को मन, प्राण, तथा वाणी का पोषक कहा है। सप्तखण्ड में सोलह कला विशिष्ट पुरुष का उपदेश किया गया है। सुषुप्तिकाल में जीव की स्थिति का वर्णन अष्टम खण्ड में किया गया है। सुषुप्ति में सत्य की प्राप्ति का ज्ञान न होने में मधु-मक्खियों का दृष्टान्त नवम खण्ड में दिया गया है। दशमखण्ड में नदी के दृष्टान्त से ब्रह्म और आत्मा की एकता बतलायी गयी है। एकादश खण्ड में वृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश किया गया है। द्वादश से पञ्चदश खण्ड पर्यन्त क्रमशः वटवृक्ष, लवण, विवेकी पुरुष एवं मरणासन्न पुरुष के दृष्टान्त द्वारा उसी सत्य का उपदेश किया गया है। अन्तिम षोडशखण्ड में चौर के द्वारा तप्तपरशु को ग्रहण कराकर भी सत्य का ही उपदेश किया गया है।

तात्पर्य निर्णायक षड्विधलिंगों के द्वारा चिन्तन करने पर अद्वय ब्रह्म में ही इस छटे अध्याय के तात्पर्य का निर्णय होता है। "सदेव सोम्येदमिदमग्रमासीत" यह उपक्रम है "ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" यह उपसंहार है। "तत्त्वमसि" इस महावाक्य का नौबार उपदेश अभ्यास है "आचार्यवान् पुरुषो वेद" इससे उसकी अपूर्वता बतलायी गयी है। "तस्य तावदेवचिरं यावन्नविमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये" यह फल है " अत्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसे" यह अर्थवाद और "अन्नेन सोम्य! शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छ" यह उपपत्ति है। इस प्रकार निर्गुण निर्विशेष ब्रह्म में ही इस अध्याय का तात्पर्य निश्चित होता है।

सप्तमाध्याय

इस अध्याय में छब्बीस खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में कहा है कि ऋगादि चारों वेद; इतिहास, पुराणरूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित; उत्पत्ति ज्ञान, महाकाल निधि शास्त्र, तर्क शास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षा, कल्प, छन्द और चितिरूप ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुडविद्या, तथा नृत्य संगीतादि विद्या के अध्ययन कर लेने पर भी आत्मज्ञान न होने से शोकमग्न हो नारद सनत्कुमार के पास शिष्यभाव से उपसन्न हुए सनत्कुमार जी ने कहा तुम्हारी पढ़ी हुई यह समस्त विद्या नाम ही है। अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि की भाँति तू ब्रह्म बुद्धि से नाम की उपासना कर सनत्कुमार से उपदिष्ट नारद ने नाम ब्रह्म की उपासना की। तत्पश्चात् नारद ने उससे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रेष्ठ वस्तु को जानने के लिए बार-बार प्रश्न किया। अतः द्वितीयखण्ड से लेकर पन्द्रहवें खण्ड तक क्रमशः एक की अपेक्षा दूसरे को श्रेष्ठ कहकर वाणी, मन, संकल्प, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, जल, तेज, आकाश, स्मर, आशा और प्राण को श्रेष्ठ बतलाते हुए उनकी उपासना ब्रह्म बुद्धि से करने के लिए सनत्कुमार ने नारद को उपदेश किया। वहाँ पर इन प्रतीकोपासनाओं का पृथक्-पृथक् फल भी बतलाया गया है। तत्पश्चात् प्राण से श्रेष्ठ तत्त्व के विषय में नारद जी के प्रश्न न करने पर भी अपने शिष्य नारद को अकृतार्थ देखकर शिष्य को कृतार्थ करने के लिए सनत्कुमार जो उपदेश का क्रम बनाये रखते हैं। सोलहवें खण्ड से इक्कीसवें खण्ड तक सत्य, विज्ञान, मति, श्रद्धा, निष्ठा और कृति को उपासना के योग्य बतलाते हुए सनत्कुमार जी ने इनकी उपासना के लिए नारद जी को उपदेश किया।

बाईसवें खण्ड से छब्वीसवें खण्ड तक निर्गुण निर्विशेष सुख स्वरूप भूमातत्त्व का उपदेश सनत्कुमार ने किया है। जहाँ द्रष्टा, दर्शन एवं दृश्य भेद समाप्त हो जाता है, वही भूमा है। अपरिच्छिन्न ब्रह्मस्वरूप है, वह आत्मा है, उससे भिन्न परिच्छिन्न वस्तु नश्वर है। वह भूमा सबकी प्रतिष्ठा है, उसकी कोई अन्य प्रतिष्ठा नहीं है। वह तो अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित है। उस भूमा की व्यापकता बतलाते हुए तटस्थ रूप से, अहंकारादेश और आत्मादेश रूप से भी सनत्कुमार ने नारद को बतलाया है। भूमतत्त्व को जानने वाला सब कुछ जान लेता है। वह निर्विशेष ब्रह्मभाव से प्रतिष्ठित हो जाता है। इसीलिए उसे त्रिविध ताप सताते नहीं हैं। यदि उसके मन में संकल्प हो जाए तो अनेक रूपों में अपने को विभक्त देखता हुआ सम्पूर्ण विश्व के ऐश्वर्य का भोक्ता अपने को समझता है। इस भूमतत्त्व तक पहुँचने के लिए प्रथम आहार शुद्धि की आवश्यकता है, उससे अन्तःकरण की शुद्धि हो जाने पर अचल स्मृति होती है और इस स्मृति के बाद सम्पूर्ण ग्रन्थियों का विमोक हो जाता है। आचार्य सनत्कुमार से भूमतत्त्व का उपदेश ग्रहण कर नारद कृतकृत्य हो गए एवं शोक-मोह से अतीत हो गए उस समय विश्व के सभी विद्वान् सनत्कुमार जी को स्कन्द शब्द से सम्बोधित करने लगे।

अष्टमाध्याय

इसमें पन्द्रह खण्ड हैं। प्रथमखण्ड में दहरपुण्डरीक में ब्रह्म की उपासना बतलायी गयी है। और कर्मफल को अनित्य कहा गया है। द्वितीयखण्ड में दहर ब्रह्म की उपासना का फल सत्य संकल्पत्व की प्राप्ति बतलायी गयी है। तृतीयखण्ड में असत् से आवृतसत् की और नामाक्षर की उपासना कही गयी है। चतुर्थखण्ड में सेतु स्वरूप आत्मा की उपासना और उपासना का फल बतलाया गया है। पञ्चमखण्ड में ब्रह्मचर्य दृष्टि से यज्ञादि की उपासना कही गयी है। षष्ठखण्ड में हृदयस्थ नाड़ियाँ तथा आदित्य रश्मियों की उपासना बतलायी गयी है। सप्तमखण्ड में आत्मतत्त्व अनुसन्धानके लिए देवराज इन्द्र और असुरराट् विरोचन की शिष्यभाव से प्रजापति के पास जाने की बात कही गयी है। बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करते हुए आचार्य की उपासना के बाद अष्टमखण्ड में प्रजापति जलपूर्ण सकोरे में आत्म प्रतिबिम्ब का दर्शन कराते हैं, जिससे स्थूल शरीर को ही आत्मा मानकर असुरों का राजा विरोचन अपने को कृतकृत्य मानने लगा किन्तु स्थूल शरीर के प्रतिबिम्ब में या बिम्बभूत स्थूलदेह में प्रजापति की घोषणा के अनुसार आत्मा का लक्षण घटता न देखकर इन्द्र पुनः प्रजापति के पास आकर पूछते हैं। यह नवमखण्ड में वर्णित है। दशमखण्ड में बत्तीस वर्ष पुनः ब्रह्मचर्य पालन करते हुए अपने शरणापन्न इन्द्र को प्रजापति ने स्वाप्न पुरुष का उपदेश किया, फिर भी इन्द्र को आत्मा का यथार्थ बोध न हो सका। अतः उन्हें प्रजापति की आज्ञा से पुनः बत्तीस वर्ष तक गुरुकुल वास करना पड़ा। तत्पश्चात् प्रजापति ने इन्द्र को सौषुप्त पुरुष का उपदेश किया। इस सौषुप्त आत्मा में भी आत्मा के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्वोक्त लक्षण को घटता हुआ न देखकर संशय ग्रस्त हो इन्द्र पुनः प्रजापति की शरण होते हैं। इस बार केवल पाँच वर्ष तक ही ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुकुल वास करने के लिए प्रजापति ने इन्द्र को कहा, यह बात एकादशखण्ड में बतलायी गयी है।

द्वादशखण्ड में तीनों देहों को मरणधर्मा बतलाते हुए उनमें आत्मबुद्धि करने वाला शरीराभिमानी जीव इष्टानिष्ट से मुक्त नहीं हो सकता, किन्तु शरीराभिमान से शून्य आत्मनिष्ठ को इष्ट और अनिष्ट का कभी भी स्पर्श नहीं होता। ऐसा कहने के बाद प्रजापति ने यह भी कहा कि इन तीनों देहों में शरीराभिमान का परित्याग कर तत्त्ववित् पुरुष परम ज्योति को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वह ब्रह्म से अभेदभाव को प्राप्त हो जाता है। वह उत्तम पुरुष है, उसकी उपासना देवता लोग ब्रह्मलोक में करते हैं। वह सम्पूर्ण लोकों को तथा सम्पूर्ण भोगों को भी प्राप्त कर लेता है।

तेरहवें खण्ड में "श्यामाच्छबलं प्रपद्ये" इत्यादि मन्त्र का उपदेश जाप के लिए किया गया है चतुर्दशखण्ड में आकाश नामक प्रसिद्ध आत्मा को संसार के समस्त नामरूप का निर्वाहक कहा गया है वह आत्मा ब्रह्मस्वरूप और अमृत है। उस ब्रह्म को प्राप्त करने के बाद शरीर ग्रहण के लिए पुनः मातृगर्भ में न जाऊँ, ऐसी प्रार्थना बतलायी गयी है। पञ्चदश खण्ड में आत्मज्ञान का उपसंहार करते हुए इस विद्या की वंश परम्परा का वर्णन किया गया है। वेदाध्ययन कर आचार्य कुल से गार्हस्थ्य जीवन में आने वाले के लिए कुछ पालनीय कर्तव्यों का उपदेश किया गया है। अन्त में ब्रह्मलोक गये हुये जीव की अपुनरावृत्ति बतलायी गयी है।

इस प्रकार समस्त छान्दोग्योपनिषत् का संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है। विस्तार से मूल ग्रन्थ में अध्ययन करते समय शांकरभाष्य, आनन्दगिरि टीका, मूल तथा भाष्य के अनुवाद और टिप्पण में पाठकगण देखेंगे ही।

कैलास आश्रम शताब्दी प्रसंग पर संकल्पित प्रकाशनों में छान्दोग्योपनिषत् का प्रकाशन अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। इसकी टिप्पण की प्रेसकापी तथा भाष्य के अनुवाद करने में हमारे प्रिय श्री डॉ॰ उमेशानन्द जी शास्त्री ने अथक परिश्रम किया है। इसके सम्पादन में उन्होंने अपनी बुद्धि कौशल का अपूर्व परिचय दिया है। जिसके फलस्वरूप इसका सम्पादन तथा प्रकाशन निर्दोष सम्भव हो सका है। एतदर्थ डॉ॰ उमेशानन्द जी शास्त्री तथा इनके सहयोगी ब्रह्मचारी रामानन्द जी शास्त्री भूरिशः धन्यवाद के पात्र हैं। पर कागज की दुर्भलता के कारण पाठकों के पास तक इस प्रकाशन के पहुँचने में कुछ विलम्ब अवश्य हुआ। इससे सम्भवतः इसके प्रति अधिकाधिक रुचि बढ़ेगी ऐसी आशा की जाती है।

इससे पूर्व शांकरभाष्य सहित छान्दोग्योपनिषत् के समस्त प्रकाशनों की अपेक्षा प्रस्तुत प्रकाशन में अपूर्वता है। इसमें यथा सम्भव मन्त्र, उसका हिन्दी अनुवाद, भाष्य, उसकी आनन्दगिरि टीका और भाष्य का अनुवाद यथा सम्भव नियत पृष्ठ में रखे गये हैं, जिससे अध्ययन अध्यापन में प्रभूत सौविध्य प्राप्त होगा। आशा है पाठकगण इससे पूर्ण लाभ उठाकर अपने जीवन को कृतकृत्य बनायेंगे। इत्यों शम्।

श्रीशङ्करः प्रीयताम्

भगवत्पादीय:

श्रावणी पूर्णिमा
वि० सं०२०४०

आचार्य महामण्डलेश्वर स्वामी विद्यानन्द गिरि
कैलास आश्रम ऋषिकेश (उ॰प्र॰)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

प्रथम खण्ड—उपोद्घात १
उद्गीथदृष्टि से ओंकार की उपासना ७
रसों में श्रेष्ठ उद्गीथ है १०
उद्गीथ उपासनान्तर्वर्ती ऋक्, साम एवं उद्गीथ का निर्णय १२
उक्त मिथुन के ओंकार में संसृष्ट होने का फल १५
उक्त उपासना का फल १६
ओंकार में समृद्धि गुण १६
ओंकार की स्तुति १८
अज्ञानी और ज्ञानी के कर्मफल में भेद १६
द्वितीय खण्ड—निम्नाङ्कित आख्यायिका से प्राण उपासना श्रेष्ठ सिद्ध होती है २२
घ्राण आदि का असुरों से पराभव २४
मुख्य प्राण से आसुरों की हार २८
प्राण उपासक की महिमा २६
प्राण का आङ्गिरस नाम क्यों ? ३२
प्राण का बृहस्पति नाम क्यों ? ३३
प्राण का आयास्य नाम क्यों ? ३४
प्राण से ओंकार की उपासना ३५
तृतीय खण्ड—सूर्य दृष्टि से उद्गीथ की उपासना ३६
आदित्य और प्राण में साम्य होने के कारण प्राण दृष्टि से उद्गीथ की उपासना ३७
व्यान रूप से उद्गीथ की उपासना ३८
वाक्, ऋक्, साम और उद्गीथ समानता का हेतु ४०
उद्गीथ के अक्षरों में द्युलोकादि और साम वेदादि दृष्टि ४२
सकाम उपासन का प्रकार ४३
चतुर्थ खण्ड—उद्गीथ नामक ओंकार उपासना के लिए आख्यान ४६
ओम् की महिमा ४८
ओंकार उपासना का फल ४६
पंचम खण्ड—ओंकार, उद्गीथ और आदित्य की उपासना
रश्मि दृष्टि से सविता की व्यस्त उपासना का विधान
मुख्य प्राण रूप से उद्गीथ की उपासना
मुख्य प्राण की उपासना का फल
प्रणव और उद्गीथ का एकत्व
षष्ठ खण्ड—उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएँ
सप्तम खण्ड—उद्गीथ संबन्धी अध्यात्म उपासनाएँ
अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता
अभेद दृष्टि से की गई उपासना का फल
अष्टम खण्ड—अनेकधा दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष प्रदर्शन
नवम खण्ड—शिलक के मत में आकाश सब का आश्रय माना गया है
इस उद्गीथ की उत्कृष्टता और उपासना का परिणाम
दशम खण्ड—उषस्ति चाक्रायण का आख्यान
एकादश खण्ड—राजा और उषस्ति का संवाद
प्रस्ताव देवता के विषय में प्रस्तोता का प्रश्न
प्रस्ताव में अनुगत देवता प्राण है
उद्गाता का प्रश्न
उद्गीथानुगत देवता आदित्य है
प्रतिहर्ता का प्रश्न
प्रतिहारानुगत देवता अन्न है
द्वादश खण्ड—शौव साम का उपाख्यान
श्वानों द्वारा किया गया हिंकार
त्रयोदश खण्ड—साम के अवयव स्तोभाक्षर की उपासना
उक्त उपासनाओं का फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड—सर्वावयव विशिष्ट साम की साधु दृष्टि से उपासना ... ९९

द्वितीय खण्ड—लोक में पंचविध साम की उपासना ... १०२

अधोलोक में पाँच प्रकार की सामोपासना ... १०४

तृतीय खण्ड—वृष्टि में पाँच प्रकार की उपासना ... १०६

चतुर्थ खण्ड—जलों में पाँच प्रकार की सामोपासना ... १०७

पंचम खण्ड—ऋतुओं में पंचविध साम की उपासना ... १०८

षष्ठ खण्ड—पशुओं में पंचविध साम की उपासना ... ११०

सप्तम खण्ड—प्राणों में पञ्चविध साम की उपासना ... १११

अष्टम खण्ड—वाणी में सप्तविध साम की उपासना ... ११३

नवम खण्ड—आदित्य दृष्टि से सप्तविध साम की उपासना ... ११५

दशम खण्ड—मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना ... १२१

एकादश खण्ड—गायत्र नामक साम की उपासना ... १२५

द्वादश खण्ड—रथन्तर सामोपासना ... १२६

त्रयोदश खण्ड—वामदेव्य सामोपासना ... १२८

चतुर्दश खण्ड—आदित्य में बृहत्सामोपासना ... १३०

पंचदश खण्ड—मेघ में वैरूप सामोपासना ... १३१

षोडश खण्ड—वैराज सामोपासना ... १३२

सप्तदश खण्ड—शक्वरी सामोपासना ... १३३

अष्टादश खण्ड—पशुओं में रेवती सामोपासना ... १३४

एकोनविंश खण्ड—यज्ञायज्ञीय सामोपासना ... १३५

विंश खण्ड—राजन सामोपासना ... १३६

एकविंश खण्ड—सभी में साम उपासना ... १३८

सर्व विषयक सामोपासना का फल ... १३९

इस सामोपासना का उत्कर्ष ... १३९

द्वाविंश खण्ड—विनर्दि गुण युक्त सामोपासना ... १४०

स्तुति के समय में ध्यान विधि ... १४२

स्वरादि वर्णों की देवरूपता ... १४२

वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु ... १४४

त्रयोविंश खण्ड—धर्म के तीन स्कन्ध हैं ... १४५

त्रयी विद्या और व्याहृतियों का प्रादुर्भाव ... १५८

ॐकार का प्रादुर्भाव ... १५९

चतुर्विंश खण्ड—सवनों के अधिष्ठाता देवता ... १६०

साम आदि का ज्ञाता ही यज्ञ का अधिकारी है ... १६१

प्रातःसवन में वसुदेव संबन्धी सामगान ... १६२

मध्याह्न सवन में रौद्रसामगान ... १६४

तृतीय सवन संबन्धी देवता के सामगान ... १६५

तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड—आदित्यादि में मधु आदि की दृष्टि ... १६९

आदित्य की पूर्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि ... १७०

द्वितीय खण्ड—आदित्य के दक्षिणावर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि ... १७३

तृतीय खण्ड—आदित्य के पश्चिम दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि ... १७५

चतुर्थ खण्ड—आदित्य की उत्तर दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि ... १७६

पंचम खण्ड—आदित्य की ऊर्ध्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि ... १७७

षष्ठ खण्ड—वसुओं के उपजीवन रूप प्रथम अमृत की उपासना ... १७९

सप्तम खण्ड—रुद्रों के उपजीवन रूप द्वितीय अमृतकी उपासना ... १८२

अष्टम खण्ड—आदित्यों के उपजोवन रूप तृतीय अमृत की उपासना ... १८३

नवम खण्ड—मरुतों के उपजीवन रूप चतुर्थ अमृत की उपासना ... १८६

दशम खण्ड—साध्यों के उपजीवन रूप पंचम अमृत की उपासना ... १८८

एकादश खण्ड—भोग क्षय के बाद आदित्य रूप ब्रह्म में प्रतिष्ठा ... १९०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मलोक विषयक विद्वान् की अनुभव १६२
मधु विद्या का फल १६२
सम्प्रदाय परम्परा का वर्णन १६३
द्वादश खण्ड—गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना १६६
कार्य और शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप २००
भूत देह और हृदय में एक ही आकाश परिपूर्ण है २०१
त्रयोदश खण्ड—हृदयस्थ पूर्व छिद्र रूप प्राण की उपासना २०३
हृदयस्थ दक्षिण छिद्र रूपी व्यान की उपासना २०५
हृदयस्थ पश्चिम छिद्र रूप अपान की उपासना २०६
हृदयस्थ उत्तरदिग्वर्ती छिद्र रूप समान की उपासना २०७
हृदयस्थ ऊर्ध्व दिग्वर्ती छिद्र रूप उदान की उपासना २०८
उक्त प्राणादि द्वारपालकों की उपासना का फल २०९
हृदयस्थ मुख्य ब्रह्म की उपासना २१०
हृदयस्थ परम ज्योति का ज्ञापक लिङ्ग २११
चतुर्दश खण्ड—शाण्डिल्य विद्यान्तर्गत सर्व दृष्टि से ब्रह्मोपासना २१५
समग्र ब्रह्म में आरोपित चिन्तनीय गुण २१८
ब्रह्म अणु से अणु है और महान् से महान् है २२१
हृदयस्थ ब्रह्म और परब्रह्म का अभेद २२२
पञ्चदश खण्ड—विराट् कोश की उपासना २२५
षोडश खण्ड—आत्मयज्ञ का संपादन २२९
सप्तदश खण्ड—अक्षयादि फलप्रद आत्म यज्ञोपासना २३५
अष्टादश खण्ड—मन आदि में अध्यात्म और अधिदैव दृष्टि से ब्रह्म की उपासना २४२
एकोनविंश खण्ड—आदित्य और अण्ड दृष्टि से अध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना २४६

चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड—राजा जानश्रुति और रैक्व की कथा २५२
द्वितीय खण्ड—रैक्व के पास विधिपूर्वक जानश्रुति की उपसत्ति २५
तृतीय खण्ड—संवर्ग विद्या का उपदेश २६
संवर्ग विद्या की स्तुति के लिए आख्यान २६
चतुर्थ खण्ड—ब्रह्मचर्य पूर्वक सत्यकाम की गोसेवा २७
पञ्चम खण्ड—सत्यकाम को ब्रह्म के प्रथम पाद का उपदेश साँड ने किया २७
षष्ठ खण्ड—अग्नि द्वारा ब्रह्म के द्वितीय पाद का उपदेश २७
सप्तम खण्ड—हंस ने ब्रह्म के तृतीय पाद का उपदेश किया २८
अष्टम खण्ड—मद्गु ने ब्रह्म के चतुर्थ पाद का उपदेश किया २८
नवम खण्ड—आचार्य मुख से सत्यकाम का उपदेश ग्रहण २८
दशम खण्ड—अग्नि ने उपकोसल को ब्रह्म-विद्या का उपदेश किया २८
एकादश खण्ड—गार्हपत्याग्नि २९
द्वादश खण्ड—अन्वाहार्यपचनाग्नि विद्या २९
त्रयोदश खण्ड—आहवनीयाग्नि विद्या २९
चतुर्दश खण्ड—आचार्य का शुभागमन २९
गुरु-शिष्य संवाद ३०
पञ्चदश खण्ड—नेत्रस्थ पुरुष की उपासना का उपदेश ३०
ब्रह्मज्ञानी की गति ३०
षोडश खण्ड—यज्ञ की उपासना ३०
ब्रह्मा के मौन भंग होने पर यज्ञ की हानि ३१
ब्रह्मा के मौन धारण से यज्ञ की सिद्धि ३१
सप्तदश खण्ड—यज्ञ दोष के निवारणार्थ व्याहृति की उपासना ३१
विद्वान् ब्रह्मा की विशेषता ३१

पंचम अध्याय

प्रथम खण्ड—ज्येष्ठादि गुण विशिष्ट प्राण की उपासना ३
इन्द्रियों का परस्पर विवाद ३
श्रेष्ठता के लिए प्रजापति का निर्णय ३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाणी की परीक्षा ३२४
नेत्र की परीक्षा ३२५
श्रोत्र की परीक्षा ३२६
मन की परीक्षा ३२६
परीक्षा में प्राण की विजय ३२७
इन्द्रियों ने प्राण की स्तुति की ३२७
द्वितीय खण्ड—प्राण के अन्न का वर्णन ३३२
प्राण का वस्त्र ३३४
प्राणविज्ञान की स्तुति ३३६
मन्थ कर्म ३३७
तृतीय खण्ड—पाञ्चालों की परिषद् में श्वेतकेतु ३४२
श्वेतकेतु के प्रति प्रवाहण के प्रश्न ३४३
पिता-पुत्र का प्रवाहण के पास जाना ३४६
चतुर्थ खण्ड—द्युलोक रूप अग्नि विज्ञान ३५१
पंचम खण्ड—पर्जन्य रूपा अग्नि विद्या ३५४
षष्ठ खण्ड—पृथिवी रूपा अग्नि विद्या ३५५
सप्तम खण्ड—पुरुष रूपा अग्नि विद्या ३५७
अष्टम खण्ड—स्त्री रूपा अग्नि विद्या ३५८
नवम खण्ड—पंचम आहुति में पुरुषसंज्ञा को प्राप्त हुए 'आप' की गति ३६०
दशम खण्ड—प्रथम प्रश्न का उत्तर ३६२
द्वितीय प्रश्न का उत्तर ३७०
तृतीय प्रश्न का उत्तर ३७३
संस्कार युक्त जीवों की कर्मानुसार गति ३८६
चतुर्थ प्रश्न का उत्तर ३८८
पंचाग्नि विद्या की महिमा ३९१
एकादश खण्ड—आत्ममीमांसा का प्रस्ताव ३९२
औपमन्यवादि का उद्दालक के पास जाना ३९३
आए हुए ऋषियों के सहित उद्दालक अश्वपति के पास गया ३९४
अश्वपति द्वारा अभ्यागतों का स्वागत ३९५
अश्वपति के प्रति मुनियों की विधिपूर्वक उपसत्ति ३९७
द्वादश खण्ड—अश्वपति तथा औपमन्यव का संवाद ३९८
त्रयोदश खण्ड—अश्वपति और सत्ययज्ञ का संवाद ४००
चतुर्दश खण्ड—अश्वपति तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद ४०२
पंचदश खण्ड—अश्वपति और जन का संवाद ४०४
षोडश खण्ड—अश्वपति और बुडिल का संवाद ४०५
सप्तदश खण्ड—अश्वपति और उद्दालक का संवाद ४०७
अष्टादश खण्ड—समस्त वैश्वानर उपासना का फल ४०८
समस्त वैश्वानर का वर्णन ४१०
एकोनविंश खण्ड—भोजन में अग्निहोत्रत्व के लिए प्रथम प्राणाहुति का वर्णन ४११
विंश खण्ड—द्वितीय प्राणाहुति ४१३
एकविंश खण्ड—तृतीय आहुति का वर्णन ४१४
द्वाविंश खण्ड—चतुर्थ आहुति का वर्णन ४१४
त्रयोविंश खण्ड—पंचम आहुति का वर्णन ४१५
चतुर्विंश खण्ड—अविद्वानों का अग्निहोत्र ४१६
विद्वानों का अग्निहोत्र ४६१

षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड—आरुणि का श्वेतकेतु के प्रति उपदेश ४२०
द्वितीय खण्ड—पक्षान्तर खण्डनपूर्वक जगत् की सद्रूपता का वर्णन ४२६
तृतीय खण्ड—सृष्टि का क्रम वर्णन ४४३
चतुर्थ खण्ड—एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की उत्पत्ति ४५१
पंचम खण्ड—
षष्ठ खण्ड—अन्नादि का सूक्ष्म भाग ही मन आदि वर्णन ४६३
सप्तम खण्ड—षोडश कला विशिष्ट पुरुष का वर्णन ४६५
अष्टम खण्ड—सुषुप्ति-कालीन जीव की स्थिति का वर्णन ४७०
नवम खण्ड—मधुमक्खियों के दृष्टान्त से सौषुप्त पुरुष का ज्ञान ४८७
दशम खण्ड—नदी के दृष्टान्त से ब्रह्म आत्मा की एकता का वर्णन ४९०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एकादश खण्ड—वृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश ४९२
द्वादश खण्ड—वटवृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश ४९६
त्रयोदश खण्ड—लवण दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश ४९९
चतुर्दश खण्ड—विवेकी पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश ५०३
पंचदश खण्ड—मरणासन्न पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश ५०९
षोडश खण्ड—चोर के द्वारा तप्तपरशु को ग्रहण कराकर सत्य का उपदेश ५१२

सप्तम अध्याय

प्रथम खण्ड—सनत्कुमार के पास जाकर नारद का उपदेश ग्रहण ५२१
द्वितीय खण्ड—नाम की अपेक्षा वाणी की श्रेष्ठता ५२९
तृतीय खण्ड—वाणी से मन की श्रेष्ठता का वर्णन ५३१
चतुर्थ खण्ड—मन की अपेक्षा संकल्प की श्रेष्ठता का वर्णन ५३३
पंचम खण्ड—संकल्प की अपेक्षा चित्त की श्रेष्ठता ५३८
षष्ठ खण्ड—चित्त से ध्यान की श्रेष्ठता ५४१
सप्तम खण्ड—ध्यान से विज्ञान की श्रेष्ठता ५४४
अष्टम खण्ड—विज्ञान से बल की महत्ता ५४५
नवम खण्ड—बल से अन्न श्रेष्ठ है ५४८
दशम खण्ड—अन्न की अपेक्षा जल की श्रेष्ठता ५५०
एकादश खण्ड—जल की अपेक्षा तेज की श्रेष्ठता ५५२
द्वादश खण्ड—तेज की अपेक्षा आकाश की श्रेष्ठता ५५४
त्रयोदश खण्ड—आकाश की अपेक्षा स्मरण की श्रेष्ठता ५५६
चतुर्दश खण्ड—स्मरण से आशा की श्रेष्ठता ५५८
पंचदश खण्ड—आशा की अपेक्षा प्राण की श्रेष्ठता ५६०
षोडश खण्ड—सत्य ही ज्ञातव्य है ५६६
सप्तदश खण्ड—विज्ञान ही ज्ञातव्य है ५६७
अष्टादश खण्ड—मति ही जानने योग्य है ५७०
एकोनविंश खण्ड—श्रद्धा ही जानने योग्य है ५७०
विंश खण्ड—निष्ठा ही ज्ञातव्य है ५७१
एकविंश खण्ड—कृति ही ज्ञातव्य है ५७२
द्वाविंश खण्ड—सुख ही ज्ञातव्य है ५७२
त्रयोविंश खण्ड—भूमा ही ज्ञातव्य है ५७४
एतुविंश खण्ड—भूमा के स्वरूप का वर्णन ५७४
पंचविंश खण्ड—भूमा की सर्वव्यापकता ५७९
षड्विंश खण्ड—विद्वान् को सर्वत्र आत्मरूप हो जाता है ५८३

अष्टम अध्याय

प्रथम खण्ड—दहर कमल में ब्रह्म की उपासना ५८८
कर्मफल की अनित्यता ५९८
द्वितीय खण्ड—दहर ब्रह्म की उपासना का फल ६००
तृतीय खण्ड—असत् से ढके हुए सत् को और नामाक्षर की उपासना ६०३
चतुर्थ खण्ड—सेतु स्वरूप आत्मोपासना का फल ६११
पंचम खण्ड—यज्ञादि में ब्रह्मचर्य दृष्टि ६१५
षष्ठ खण्ड—हृदयस्थ नाड़ी तथा आदित्य रश्मि की उपासना ६२४
सप्तम खण्ड—आत्मतत्त्व की जिज्ञासा से इन्द्र और विरोचन का प्रजापति के पास आना ६३४
अष्टम खण्ड—जलपूर्ण सकोरे में आत्म प्रतिबिम्ब का दर्शन ६४२
नवम खण्ड—प्रजापति के पास फिर से इन्द्र का आना ६५०
दशम खण्ड—इन्द्र को स्वप्न पुरुष का उपदेश ६५५
एकादश खण्ड—इन्द्र के प्रति सुषुप्त पुरुष का उपदेश ६६०
द्वादश खण्ड—मरणधर्मा देहादि का उपदेश ६६३
त्रयोदश खण्ड—'श्यामाच्छबलम्' इत्यादि मन्त्र का जप के लिए उपदेश ६९०
चतुर्दश खण्ड—आकाश नामक ब्रह्म का उपदेश ६९१
पंचदश खण्ड—आत्मज्ञान का उपसंहार ६४६

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

सामवेदीया

छान्दोग्योपनिषत्

सटिप्पणव्याख्यात्रयोपेतशांकरभाष्यसमेता ।

(अथ श्रीमच्छंकरभगवत्पादविरचितं भाष्यम्)

(तत्र भाष्यकारोपोद्घातः ।)

ओमित्येतदक्षरमित्याद्यष्टाध्यायी छान्दोग्योपनिषत् । तस्याः संक्षेपतोऽर्थजिज्ञासुभ्य ऋजुविवरणमल्पग्रन्थमिदमारभ्यते ।

(अथाऽऽनन्दगिरिकृता टीका)

नमो जन्मादिसंबन्धबन्धविध्वंसहेतवे । हरये परमानन्दवपुषे परमात्मने ॥१॥
नमस्त्रय्यन्तसंदोहसरसीरुहभानवे । गुरवे परपक्षौघध्वान्तध्वंसपटीयसे ॥२॥

छन्दोगानामुपनिषद्भेदं व्याचिख्यासुर्भगवान्भाष्यकारश्चिकीर्षितग्रन्थपरिसमाप्तिप्रचयपरिपन्थिदुरितनिबर्हणसिद्ध्यर्थमोंकारोच्चारणलक्षणं मङ्गलाचरणं संपादयन्व्याख्येयस्वरूपं दर्शयति—ओमित्येतदिति । व्याख्यातं सप्रयोजनं प्रतिजानीते—तस्या इति । ननु शारीरके भूयःसु प्रदेशेषु विस्तरेण व्याख्यातत्वादमुष्या भाष्यं किमिति संप्रत्यारभ्यते तत्राऽऽह—संक्षेपत इति । विस्तरेण व्याख्यातत्वेऽपि संग्रहतो व्याख्यानमस्याः संप्रधीयते विस्तृतस्य संक्षिप्य [1]ग्रहणे सुग्रहत्वादित्यर्थः । किं च न चेयं यथापाठक्रमं व्याख्याता । प्रकृते तु पाठक्रममनतिक्रम्य व्याख्यायते तद्युक्तमिदं भाष्यमित्याह—ऋजुविवरणमिति । ऋजु पाठक्रमानुसारि विवरणमर्थस्फुटीकरणं प्रकृतोपनिषदो यस्मिन्भाष्ये तत्तथेति यावत् । अथ पाठक्रममाश्रित्यापि द्राविडं भाष्यं प्रणीतं तत्किमनेनेत्याशङ्क्याऽऽह—अल्पग्रन्थमिति । तथाऽपि विशिष्टाधिकार्यभावे कथमिदमारभ्यते तत्राऽऽह—अर्थजिज्ञासुभ्य इति । ये हि मुमुक्षवोऽस्या विवक्षितमर्थं जिज्ञासन्ते तेभ्यो भाष्यमिदं प्रस्तूयते । तथा च विशिष्टाधिकारिसंभवे तदारम्भः संभवति तस्य च प्रकृतोपनिषदर्थपरिज्ञानमवान्तरफलं तद्द्वारा कैवल्यं परमं फलमिति भावः ।

(अथ डॉ० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका)

ब्रह्मविद्यात्मिकां राधामकामेनाऽपि संस्तुताम् ।
कृष्णं तद्भावनायुक्तां नमामि भवमोचिनीम् ॥

"ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत" इत्यादि मन्त्र से प्रारम्भ होने वाली आठ अध्यायों से विभूषित छान्दोग्य उपनिषत् है । विवक्षित अर्थ के जिज्ञासु मुमुक्षुओं के लिए इसके पाठक्रमानुसारी विवरणात्मक अल्पग्रन्थ का समारम्भ किया जाता है ।

(अथ विद्यावाचस्पतिस्वामिविष्णुदेवानन्दगिरिविरचितं टिप्पणम्)

१. ग्रहणे व्याख्यान इति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्र। संबन्धः समस्तं कर्माधिगतं प्राणाग्न्यादिदेवताविज्ञानसहितमर्चिरादि-मार्गेण। ब्रह्मप्रतिपत्तिकारणम्। केवलं च धूमादिमार्गेण चन्द्रलोकप्रतिपत्तिकारणम्। स्वभावप्रवृत्तानां च मार्गद्वयपरिभ्रष्टानां कष्टाऽधोगतिरुक्ता।

न चोभयोर्मार्गयोरन्यतरस्मिन्नपि मार्गे आत्यन्तिकी पुरुषार्थसिद्धिरित्यतः

ननु कर्मविधिशेषत्वादुपनिषदस्तद्व्याख्यानेनैव कृतव्याख्यानत्वात्पिष्टपिष्टिप्रसङ्गात्कृतं तद्भाष्येणेत्याशङ्क्य शेषशेषित्वे प्रमाणाभावान्मैवमित्यभिप्रेत्य पूर्वोत्तरकाण्डयोर्नियतपूर्वापरभावप्रयुक्तं संबन्धं प्रतिजानीते—तत्रेति। तस्या व्याख्येयत्वेन प्रस्तुताया उपनिषदः कर्मकाण्डेन सह संबन्धोऽभिधीयत इत्यर्थः। कोऽसावित्यपेक्षायां तदभिधित्सया कर्मकाण्डार्थमनुवदति—समस्तमिति। विहितं प्रतिषिद्धं च कर्म पूर्वस्मिन्काण्डे प्रतिपन्नमित्यर्थः। तत्र हि विहितं समुच्चितमसमुच्चितं चेति द्विविधमित्यङ्गीकृत्य समुच्चितस्य फलमनुवदति—प्राणाग्न्यादीति। प्राणश्चाग्निश्चेत्याद्या देवता तद्विज्ञानं तदुपासनं तेन समुच्चितमग्निहोत्रादि कर्मार्चिराद्युपलक्षितेन देवयानेन पथा कार्यब्रह्मप्राप्तौ कारणं न तु ब्रह्मप्राप्तौ तस्य गन्तव्यत्वाभावात्कार्यस्यैव गन्तव्यताया 'बादर्यधिकरणे[1] राद्धान्तितत्वात्। तस्मान्न समुच्चितं विहितं कर्म परमपुरुषार्थहेतुरित्यर्थः। तस्यैवासमुच्चितस्य फलमाह—केवलं चेति। विहितस्य गतिमुक्त्वा प्रतिषिद्धस्य गतिमाह—स्वभावेति। स्वभावेन शास्त्रापेक्षामन्तरेण प्रकृतिवशादेव प्रवृत्ता यथेष्टचेष्टारसिकास्तेषां कर्मज्ञानाभावाद्देवयाने पितृयाणे च पथ्यनधिकृतानामधोगतिस्तिर्यगवस्था क्षुद्रजन्तुलक्षणाऽपुनरावृत्तिदुर्लभा वाक्येन।

अन्यतरस्मिन्नेवाधिकृतानां परमः पुरुषार्थः सेत्स्यति। "शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते" इति स्मृत्या तयोर्नित्यफलत्वप्रतिपत्तेरत आह—न चोभयोरित्यादि। ननु मार्गद्वयभ्रष्टानां पुरुषार्थाभावेऽपि द्वयोः पथोरन्यतरस्मिन्वा भविष्यतीति चेत्तत्र न तावद्देवयाने पथि निमित्ते निरतिशयपुरुषार्थसिद्धिः। "इमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते" "तेषामिह न पुनरावृत्तिः" इत्यत्रेममिहेति विशेषणादेकृया यात्यनावृत्तिमिति स्मृतावनावृत्तेरेतत्कल्पविषयत्वात्कल्पान्तरेऽप्यनावृत्तावपि विशेषणानर्थक्यात्। नापि पितृयाणे पथि निरतिशयपुरुषार्थसिद्धिः। "एतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते"। "अन्ययाऽऽवर्तते पुनः" इति चन्द्रस्थलस्खलनावगमात्। तस्मान्न कर्मवशादात्यन्तिकपुरुषार्थप्राप्तिरित्यर्थः। एवमनूद्य कर्मफलं फलितं संबन्धमाह—इत्यत इति। उक्तरीत्या कर्म यतो न

प्रस्तुत उपनिषत् का कर्मकाण्ड के साथ संबन्ध प्रदर्शित किया जाता है विधि-निषेध रूप कर्म का पूर्वकाण्ड में व्याख्यान हो चुका। उनमें समुच्चित विहित कर्म प्राण और अग्नि देवता की उपासना से समुच्चित अग्निहोत्रादि कर्म के विनियोग से अर्चिरादि देवयान मार्ग द्वारा कार्य ब्रह्मप्राप्ति में कारण है। असमुच्चित विहित कर्म तो धूमादि मार्ग द्वारा चन्द्रलोक प्राप्ति में हेतु है। वेद एवं शास्त्र की मर्यादा की उपेक्षा करने वाले मनमुखी आचरण में प्रवृत्त, देवयान एवं पितृयाण रूप दोनों मार्गों से भ्रष्ट हुए लोगों को कष्टमयी अधोगति प्राप्त होती है—यह भी निरूपण कर दिया गया।

दोनों मार्गों में से कोई मार्ग भी अपुनरावृत्ति रूप परम पुरुषार्थ की सिद्धि में पर्याप्त नहीं है। इसलिए (कर्म से आत्यन्तिक पुरुषार्थ लाभ न होने से) पूर्वोक्त तीनों सांसारिक गतियों में हेतुक कर्म

---

१. बादर्यधिकरणे इति—"कार्यं बादरिरस्य इत्युपपत्तेः" (ब्र. सू. ४-३-७) इत्यत्राधिकरण इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्मनिरपेक्षमद्वैतात्मविज्ञानं संसारगतित्रयहेतूपमर्दन वक्तव्यमित्युपनिषदारभ्यते।

न चाद्वैतात्मविज्ञानादन्यत्राऽऽत्यन्तिकी निःश्रेयसप्राप्तिः । वक्ष्यति हि—"अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति । विपर्यये च स स्वराड्भवति" इति।

निरतिशयपुरुषार्थहेतुरतः ससाधनात्कर्मणस्तत्फलाच्च विरक्तस्य निरतिशयपुरुषार्थं काङ्क्षतस्तत्साधनं केवलमात्मज्ञानं संसारान्तर्भूतपूर्वोक्तगतित्रयहेतुकर्मतद्धेतुनिराकरणेन वक्तव्यमित्यभिप्रायेणोपनिषदेषाऽऽरभ्यते। न हि कर्मानुष्ठानात्पुमर्थो निरतिशयो लभ्यते। तस्य तद्यथेहेत्यादौ क्षयिष्णुफलत्वश्रुतेः । तथा चेश्वरार्पणबुद्ध्याऽनुष्ठितशुभकर्मवशादुपजातशुद्धबुद्धेर्विरक्तस्य मुमुक्षोर्मोक्षसाधनज्ञानार्थोऽयमुपनिषदारम्भ इति हेतुहेतुमद्भावः संबन्ध इत्यर्थः।

ननु—

"मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः।
नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया" ॥

इति वृद्धैरुक्तत्वात्काम्यनिषिद्धे वर्जनीये। नित्यनैमित्तिके च कृत्वा व्यवस्थितस्य मुमुक्षोर्वर्तमानदेहपाते पुनर्देहान्तरग्रहे हेत्वभावादनायाससिद्धा ज्ञानादृतेऽपि मुक्तिरिति कथं तादर्थ्येनोपनिषदारभ्यते तत्राऽऽह—न चेति। न हि त्वदुत्प्रेक्षितो मोक्षोपायो विना प्रमाणं प्रकल्प्यते। न च पौरुषेयं वाक्यं मूलप्रमाणमन्तरेण प्रमाणम्। न चात्र श्रुतिस्मृती प्रत्यक्षादि वा मूलमालोच्यते। संभवति च यथावर्णितचरितस्यापि कर्मशेषवशाद्देहान्तरं न चैकभविकः कर्माशयः। तद्य इह रमणीयचरणास्ततः शेषेणेत्यादिश्रुतिस्मृतिविरोधात्तस्मादात्मज्ञानादेव मुक्तिरिति भावः । अद्वैतात्मज्ञानविधुराणां भेदज्ञानभाजां कर्मानुष्ठायिनां क्षय्यफलशालित्वे वाक्यशेषं प्रमाणयति—वक्ष्यति हीति। अद्वैतात्मोपदेशानन्तर्यमथशब्दार्थः। ये पुनरनुपासितगुरवस्तदुपदेशशून्या यथामति यथोक्तादद्वैतादन्यथा द्वैतमेव तत्त्वं विदन्ति ते परतन्त्राः सन्तो रागादिना कर्मानुतिष्ठन्तो विनाशिफलशालिनः स्युरिति श्रुत्यर्थः। अद्वैतात्मज्ञानादात्यन्तिकपुरुषार्थसिद्धिरित्यत्रापि वाक्यशेषमनुकूलयति—विपर्यये चेति। चकारात्[1]क्रियापदमनुकृष्यते स हि विद्वान्विद्यया निरस्ताविद्यादिमलः स्वपरिज्ञानात्स्वयमेव परमात्मा भवति । भेदप्रतिपत्तिहेतोरुच्छिन्नत्वादित्यर्थः

का निराकरणपूर्वक कर्म निरपेक्ष केवलाद्वैतात्म-विज्ञान का व्याख्यान होना चाहिए; इस अभिप्राय से इस छान्दोग्य उपनिषत् का प्रारम्भ किया जाता है।

(यद्यपि स्मृतिकार मुमुक्षु के लिए काम्य एवं निषिद्ध कर्मों का वर्जन कर नित्य नैमित्तिक कर्मों का विधान कर ज्ञान के बिना भी मोक्ष की सुलभता दिखाते हैं—) किन्तु अद्वैतात्म विज्ञान को छोड़कर निरतिशय पुरुषार्थ सिद्धि किसी अन्य मार्ग से संभव नहीं है। इसमें श्रुति प्रमाण है—"अद्वैत आत्मतत्त्व के उपदेश के अनन्तर भी जो (गुरुकृपा से वञ्चित) अद्वैततत्त्व से भिन्न द्वैत को ही तत्त्व जानते हैं, वे रागादि से युक्त कर्मों का अनुष्ठान करते हुए नश्वर लोकों को प्राप्त करते हैं। इसके विपरीत विद्या से अविद्या मलों का निराकरण कर विद्वान् तो स्वयमेव परमात्मा हो जाता है"।

---

१. क्रियापदं वक्ष्यतीत्येतत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथा द्वैतविषयानृताभिसंधस्य बन्धनं तस्करस्येव तप्तपरशुग्रहणे बन्धदाहभावः संसारदुःखप्राप्तिश्चेत्युक्त्वाऽद्वैतात्मसत्याभिसंधस्यातस्करस्येव तप्तपरशुग्रहणे बन्धदाहाभावः संसारदुःखनिवृत्तिर्मोक्षश्चेति । अत एव न कर्मसहभाव्यद्वैतात्मदर्शनम् ।

क्रियाकारकफलभेदोपमर्देन सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वमित्येवमादिवाक्यजनितस्य बाधकप्रत्ययानुपपत्तेः । कर्मविधिप्रत्यय इति चेत् । न । कर्तृभोक्तृस्वभाव-

---

भेदनिष्ठानां कर्मिणां पुरुषार्थो निरतिशयो न सिध्यति । अद्वैतनिष्ठानां तु कर्म त्यजतां पुमर्थः सेत्स्यतीत्यत्र वाक्यशेषस्थं लिङ्गं दर्शयति—तथेत्यादिना । द्वैतमेव विषयस्तस्मिन्वाचारम्भणश्रुतेरनृतेऽभिसंधा यस्याभिसंधा सत्यत्वाभिमानस्तस्य बन्धनं परमानन्दस्याऽऽविर्भावराहित्यं संसारात्मकस्य दुःखस्य प्राप्तिश्च । यथा वस्तुतस्तस्करस्य नाहं तस्करोऽस्मीति मिथ्यैवाभिमन्यमानस्य परिशोधनार्थं तप्तपरशोर्ग्रहणे दाहो बन्धनं दुःखप्राप्तिश्च प्रतीयते, तथैव द्वैताभिनिवेशवतोऽपीति प्रथममुक्त्वा वस्तुतोऽतस्करस्य परैरारोपिततस्करत्वस्य परिशुशुत्सया तप्तपरशुग्रहणे दाहाद्यभाववदद्वैताभावोपलक्षिते प्रत्यगात्मनि परमार्थसत्येऽभिमानवतो द्वैताच्च व्यावृत्तचित्तस्यानर्थध्वंसो निरतिशयानन्दाविर्भावश्चेति यथोक्तार्थानुरोधेनाग्रे श्रुतिर्वक्ष्यतीति योजना । केवलमात्मज्ञानं कैवल्यहेतुस्तत्सिद्ध्यर्थमुपनिषदारम्भ इति स्वपक्षो दर्शितः । स्वयूथ्यास्तु कर्मसमुच्चितमात्मज्ञानं मोक्षसाधनं तादर्थ्येनोपनिषदारम्भ इत्याहुस्तान्प्रत्याह—अत एवेति । यत्कृतकं तदनित्यमितिव्याप्त्यनुगृहीतया तद्यथेहेत्यादिश्रुत्या कर्मफलस्यानित्यत्वावगमाद्ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यादिश्रुत्या च ज्ञानफलस्य नित्यत्वसिद्धेर्ज्ञानकर्मणोर्विरुद्धफलत्वाध्यवसायादद्वैतस्याऽऽत्मनो दर्शनं नैव कर्मणा सह भवितुमुत्सहते । न हि विरुद्धयोस्तमःप्रकाशयोः समुच्चयः संगच्छते । तन्न समुच्चितज्ञानार्थत्वेनोपनिषदारम्भ इत्यर्थः ।

किं चाद्वैतात्मज्ञानं स्वसाध्यसिद्ध्यर्थं वा कर्मापेक्षते स्वबाधकविधूननार्थं वा । नाऽऽद्यः । तस्यासाध्यफलत्वादिति मन्वानो द्वितीयं प्रत्याह—क्रियेति । वाक्यजनितस्याद्वैतात्मज्ञानस्येति शेषः । तस्य बाधकाभावेन तत्परिहारार्थं सहकार्यपेक्षा नास्तीत्यर्थः । बाधकप्रत्ययाभावस्यासिद्धिमाशङ्कते—कर्मेति । तद्विषयो विधिप्रत्ययो यजेतेत्यादिविधिजनितः कर्तव्यताबोधः । स चाऽऽत्मनि कर्तृत्वादिकमाकाङ्क्षन्नकर्त्राद्यात्मज्ञानस्य बाधको भवतीत्यर्थः । कस्यायं कर्मविधिरज्ञस्य विदुषो वेति विकल्प्याऽऽद्यं प्रत्याह—नेत्यादिना । कर्त्राद्याकारं प्रमाणनिरपेक्षप्रकृतिप्रसूतं मिथ्याज्ञानं तद्वतस्तेन

(छान्दोग्योपनिषत् षष्ठ अध्याय के षोडश खण्ड में) द्वैतविषयक वाचारम्भण श्रुति मिथ्याभिनिवेश चोर के बन्धन के समान तपे हुए परशु को ग्रहण करने में बन्धदाहभाव एवं संसारात्मक दुःख की प्राप्ति बतलाकर अद्वैतात्म सत्याग्रही (लोगों द्वारा आरोपित तस्कर होने पर भी वस्तुतः) अतस्कर को तपे हुए परशु ग्रहण करने में बन्धदाह का अभाव एवं संसारात्मक दुःख की निवृत्ति व विदेहकैवल्य की प्राप्ति बतलाई गयी है। इसलिए (कर्मफल के अनित्य व ज्ञानफल के नित्यत्व सिद्ध होने पर) अद्वैतात्मा का दर्शन कर्म से होना संभव नहीं है।

(अद्वैतात्मज्ञान में कर्म की अपेक्षा स्वसाध्य की सिद्धि के लिए की जाती है अथवा स्वबाधक का परिहार करने के लिए; प्रथम संभव न होने पर कहते हैं—) 'सृष्टि से पूर्व वह अद्वितीय तत्त्व ही सत् था' 'यह सब कुछ चराचर जगत् आत्मा ही है' इत्यादि श्रुतिवाक्यजनित अद्वैतात्मज्ञान की क्रिया, कारक एवं फल भेद के नाश द्वारा बाधकभाव परिहार के लिए कर्म की अपेक्षा नहीं है। यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विज्ञानवतस्तज्जनितकर्मफलरागद्वेषादिदोषवतश्च कर्मविधानात् । अधिगतसकल-वेदार्थस्य कर्मविधानादद्वैतज्ञानवतोऽपि कर्मेति चेत् । न । कर्माधिकृतविषयस्य कर्तृ-भोक्त्रादिज्ञानस्य स्वाभाविकस्य सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वमित्यनेनोपमर्दितत्वात् । तस्मादविद्यादिदोषवत एव कर्माणि विधीयन्ते नाद्वैतज्ञानवतः । अत एव हि वक्ष्यति —"सर्वं एते पुण्यलोका भवन्ति । ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति" इति ।

मिथ्याज्ञानेन जनितकर्मफलविषयो रागादिदोषस्तद्वतश्च कर्म विधीयते । न हि कर्ताऽहमित्यादि-मिथ्याधियो रागादेश्चाभावे कर्म विधातुं शक्यम् । "यद्यद्धि कुरुते जन्तुस्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्" इति स्मृतेः । अतोऽज्ञस्य कर्मविधिपक्षे न तत्प्रत्ययो बाधकः 'प्राप्त्यभावादित्यर्थः । द्वितीयं शङ्कते—अधिगतेति । अधीतस्वाध्यायो हि वैदिके कर्मण्यधिक्रियते । अध्ययनं चार्थावबोधफलमिति मीमांसक-मर्यादा । तथा चाध्ययनवतो ज्ञातसर्ववेदार्थस्य यजेतेत्यादिना कर्मविधानादात्मज्ञानस्यापि कर्माङ्गत्वं गम्यते । ²न चाऽऽत्मज्ञानमपबाध्यते । अविरोधादित्यर्थः । न तावदर्थावबोधफलमध्ययनमिति प्रामाणिक-मक्षरावाप्तिफलं तदिति चाध्येतृप्रसिद्धं तत्राध्ययनविधिवशेन नाऽऽत्मज्ञानस्य कर्मविधिसंबन्धः सभवतीति परिहरति—नेति । किंच ममेदं कर्मेति कर्मण्यैश्वर्यं प्रतिपद्य व्यवस्थितं विषयीकृत्य प्रवृत्तस्य कर्त्राद्याकारविज्ञानस्य प्रमाणापेक्षामन्तरेण स्वभावप्राप्तस्य वाक्योत्थेन सम्यग्ज्ञानेनापहृतत्वात्कर्म-फलविषयरागाद्ययोगात्तन्निबन्धनस्य कर्मणोऽपि दुरनुष्ठानत्वान्नाऽऽत्मज्ञस्य कर्मोपपत्तिरित्याह—कर्माधिकृतेति । अद्वैतात्मज्ञानस्य कर्मप्रवृत्तिविरोधित्वे फलितमुपसंहरति—तस्मादिति । अज्ञस्य कर्मविधिर्न त्वात्मज्ञस्येत्यत्र श्रुतिं संवादयति—अत एवेति । एते त्रयोऽप्य श्रमिणः कर्माधिकृता इति यावत् । यथा ब्रह्मचारी गृहस्थो वानप्रस्थश्चेत्येते कर्मिणस्तथा ब्रह्मविदपि कर्मी चेन्न पृथक्क्रियेत । पृथक्करणाच्च न तस्य कर्मविधिरिति मत्वोक्तम्—ब्रह्मसंस्थ इति ।

कहो, दर्शपौर्णमास याग करे—इत्यादि विधिप्रत्यय से आत्मा में कर्तृत्व की आकांक्षा होने से वह आत्म-ज्ञान में बाधक है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि कर्म का विधान तो उसी के लिए किया जाता है जिसे कर्तृत्व-भोक्तृत्व स्वभाव का ज्ञान हो एवं जो उससे होने वाले कर्मफल के विषय राग-द्वेषादि दोषों से युक्त हो । यदि कहो, समस्त वेदों के तात्पर्य को जानने वाले के लिए कर्म के विधान के समान अद्वैतात्मज्ञानी के लिए भी कर्म का विधान है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि कर्म से अधिकृत विषय, स्वाभाविक कर्तृत्व-भोक्तृत्वादि ज्ञान का, 'सृष्टि से पूर्व वह अद्वितीय तत्त्व ही मत था' 'यह सब चराचर जगत् आत्मा ही है' इत्यादि श्रुतियों से बाध हो जाता है । । इसलिए (अद्वैता-त्मज्ञान का कर्म प्रवृत्ति विरोधी स्वभाव होने के कारण) अविद्यादि दोषवान् यज्ञ के लिए कर्म का विधान किया जाता है; अद्वैतात्मदर्शी के लिए नहीं । इसी को श्रुति भी कहेगी—(ब्रह्मचारी, गृहस्थ एवं वानप्रस्थी ये सभी कर्म से अधिकृत है, अतः पुण्यलोकों को प्राप्त करते हैं; ब्रह्मज्ञानी अमृतत्व लाभ करता है' ।)

---

१. प्राप्त्यभावादिति—बाध्यस्याकर्त्राद्यात्मज्ञानस्य तत्र प्राप्तेरभावात् । २. न चेत्यादि—तथा च कर्मप्रत्ययस्य पूर्वं बाधकत्वोक्तिः सिद्धान्त्यभिप्रायानुसारिण्येव न तु वस्तुत इति भावः । ज्ञानकर्मणोरङ्गाङ्गित्वे न सहभावित्वमात्रं त्वभिप्रेयते पूर्वपक्षिणेत्यवधेयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्रैतस्मिन्नद्वैतविद्याप्रकरणेऽभ्युदयसाधनान्युपासनान्युच्यन्ते । कैवल्यसंनिकृष्टफलानि चाद्वैतादीषद्विकृतब्रह्मविषयाणि "मनोमयः प्राणशरीरः" इत्यादीनि कर्मसमृद्धिफलानि च कर्माङ्गसंबन्धीनि । रहस्यसामान्यान्मनोवृत्तिसामान्याच्च यथाऽद्वैतज्ञानं मनोवृत्तिमात्रं तथाऽन्यान्यप्युपासनानि मनोवृत्तिरूपाणीत्यस्ति हि सामान्यम् । कस्तर्ह्यद्वैतज्ञानस्योपासनानां च विशेषः । उच्यते । स्वाभाविकस्याऽऽत्मन्यक्रियेऽध्यारोपितस्य कर्त्रादिकारकक्रियाफलभेदविज्ञानस्य निवर्तकमद्वैतविज्ञानम् । रज्ज्वादाविव सर्पाद्यध्यारोपलक्षणज्ञानस्य रज्ज्वादिस्वरूपनिश्चयः प्रकाशनिमित्तः । उपासनं तु यथाशास्त्रसमर्पितं किंचिदालम्बनमुपादाय तस्मिन्समानचित्तवृत्तिसंतानकरणं तद्विलक्षणप्रत्ययानन्तरित-

---

यदि समुच्चयासंभवात्केवलमेवाऽऽत्मज्ञानं कैवल्यसाधनमिति तादर्थ्येनोपनिषदारभ्यते । हन्त किमित्यस्यामुपनिषदि त्रिविधान्युपासनान्युपन्यस्यन्ते तत्राऽऽह—तत्रेति । उक्तया रीत्योपनिषदारम्भे सतीति यावत् । स यो वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदं रोदितीत्यादीन्यभ्युदयफलान्युपासनानि । कैवल्येन संनिकृष्टफलत्वं नाम क्रममुक्तिफलत्वम् । अद्वैतान्निष्प्रपञ्चादीषद्विकृतं सगुणं ब्रह्म । कर्मसमृद्धिफलानि कर्मफलगतातिशयफलान्युद्गीथाद्युपासनानीत्यर्थः । आत्मविद्याप्रकरणे त्रिविधोपासनोपन्यासे हेतुमाह—रहस्येति । उपनिषत्पदवेदनीयत्वस्याऽऽत्मविद्यायामुपासनेषु चाविशेषादित्यर्थः । तत्रैव हेत्वन्तरमुद्भाव्य विभजते—मनोवृत्तीत्यादिना । आत्मज्ञानस्योपासनानां च यथोक्तं सामान्यमिष्यते चेत्तर्हि फलतोऽपि विशेषो न स्यादिति मन्वानः शङ्कते—कस्तर्हीति । फलतो विशेषं दर्शयन्नुत्तरमाह—उच्यत इति । तत्र प्रथममात्मज्ञानस्योपासनाभ्यो विशेषमादर्शयति—स्वाभाविकस्येति । प्रत्यगात्मनि क्रियाकारकफलविभागविकले कूटस्थे स्वभावशब्दिताविद्याकृतमध्यारोपितं कर्त्राद्याकारविज्ञानम् । तस्याद्वितीयत्वादिलक्षणाधिष्ठानयाथात्म्यज्ञानं निवर्तकम् । यथा रज्ज्वादावधिष्ठाने सर्पादिसमारोपरूपस्य मिथ्याज्ञानस्य प्रकाशादिकारणप्रसूतो रज्ज्वाद्यधिष्ठानस्वरूपनिश्चयो निवर्तकस्तथेत्यर्थः । संप्रत्युपासनानामद्वैतज्ञानाद्विशेषं दर्शयति—उपासनं त्विति । शास्त्रं मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादि, किंचिदालम्बनं मनःप्रभृति विवक्षितम् । समानजातीयप्रत्ययसंतानकरणं विच्छिद्य विच्छिद्य ध्यायिनोऽपि सिध्यतीति विशिनष्टि—तद्विलक्षणेति । आत्मज्ञानस्योपासनानां चावान्तर-

---

(विदेह कैवल्यप्राप्ति तो आत्मज्ञान से ही होती है, इसे मन में निश्चय करके भी) यहाँ अद्वैतविद्या प्रकरण में त्रिविध उपासनाओं का वर्णन किया जाता है क्योंकि वे लौकिक समृद्धि में साधन हैं । 'मनोमय और प्राणशरीर वाला है" इत्यादि श्रुतिवाक्य क्रममुक्ति फल वाले तथा निष्प्रपञ्च ब्रह्म से थोड़ा परे सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं, (उद्गीथादि उपासनाएँ) कर्माङ्गसंबन्धी एवं कर्मफलगत अतिशय फलदायक हैं । उपनिषत् सामान्य एवं मनोवृत्ति सामान्य होने के कारण जिस प्रकार अद्वैतज्ञान मनोवृत्ति मात्र है, उसी प्रकार अन्य उपासनाएँ भी मनोवृत्ति रूप हैं, बस यही दोनों में समानता है । यदि ऐसा है तो अद्वैतज्ञान और त्रिविध उपासनों में भेद ही क्या है ? इस पर कहा जाता है । अद्वैतज्ञान नित्य कूटस्थ आत्मा में अविद्या से आरोपित कर्तादि कारक, क्रिया फलभेद विज्ञान का बाध करता है । जैसे प्रकाश रज्जु अधिष्ठान में सर्पादि बुद्धि के आरोप को नाशकर रज्जु का स्वरूप निश्चय कराता है; उसी प्रकार 'मन की ब्रह्म रूप से उपासना करनी चाहिए' इत्यादि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथोपनिषत्)

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । ओमिति ह्युद्-गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

उद्गीथ दृष्टि से ओंकार की उपासना

उद्गीथ शब्दवाच्य "ओम्" इस अक्षर की उपासना करे, (क्योंकि) "ओम्" ऐसा (उच्चारण करके यज्ञादि में उद्गाता) उच्च स्वर से साम गान करता है। उस अक्षर का ही उपव्याख्यान प्रारम्भ किया जाता है, अर्थात् किस प्रकार उसकी उपासना होती है, उसकी विभूति क्या है और फल क्या है, इत्यादि कथन को उपव्याख्यान कहते हैं ॥ १ ॥

मिति विशेषः ।

तान्येतान्युपासनानि सत्त्वशुद्धिकरत्वेन वस्तुतत्त्वावभासकत्वादद्वैतज्ञानोपकारकाण्यालम्बनविषयत्वात्सुसाध्यानि चेति पूर्वमुपन्यस्यन्ते । तत्र कर्माभ्यासस्य दृढीकृतत्वात्कर्मपरित्यागेनोपासन एव दुःखं चेतःसमर्पणं कर्तुमिति कर्माङ्गविषयमेव तावदादावुपासनमुपन्यस्यते ।

(इति भाष्यकारोपोद्घातः)

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमित्येतदक्षरं परमात्मनोऽभिधानं नेदिष्ठम् ।

विशेषमुपसंहरति—इति विशेष इति ।

ननु विद्याप्रकरणे यथोक्तोपासनानामुपदेशसंभवेऽपि विद्यैव प्राधान्यात्प्राथम्येनोच्यतामुपासनानि पुनरप्रधानत्वात्पाश्चात्येन वाच्यानीत्याशङ्क्याऽऽह—तानीति । उपासनानामीश्वरार्पणबुद्ध्याऽनुष्ठितनित्यादिकर्मवच्चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानकारणत्वात्कार्याच्च कारणस्य प्राथम्यप्रसिद्धेः साकारवस्तुविषयत्वेन सुसाध्यत्वाच्च मन्दानां सहसा तेषु प्रवृत्त्युपपत्तेरादावुपदेशः संभवतीत्यर्थः । तथाऽपि बहुविधेषूपासनेषु किमित्यङ्गावबद्धमेवोपासनं प्रथममुच्यते तत्राऽऽह—तत्रेति । प्राकृते पुरुषे कर्माभ्यासस्यानादिवासनया दृढीकृतत्वादभ्यस्ततत्तत्कर्मत्यागेऽतत्संबन्धिनि केवलोपासने चेतसः समर्पणं दुःखं कर्तुमित्यङ्गावबद्धमेव तावदुपासनमुच्यते । एवमादावुक्त्वा पुनरुपासनान्तराणि क्रमेण वक्तव्यानीत्यर्थः ।

काण्डद्वयस्य नियतपौर्वापर्यप्रयुक्तसंबन्धमुपनिषत्तात्पर्यं चोक्त्वा प्रत्यक्षरं व्याख्यातुकामः प्रतीकमादत्ते—ओमित्येतदक्षरमिति । तत्र प्रथममोंकारस्याभिधायकत्वपक्षमेवावलम्बते परमात्मन इति । अभिधानान्तरेभ्यो विशेषं दर्शयति—नेदिष्ठमिति । निकटतममतिशयेन प्रियमिति यावत् । ॐकारस्य

श्रुति समर्पित उपासना कुछ आलम्बन को प्रदान कर उसमें समानजातीय प्रत्यय का विस्तार कर उससे विलक्षण प्रत्यय का सम्पादन करती है, यही इसमें वैशिष्ट्य है।

वे ये उद्गीथादि विद्याएँ जहाँ अन्तकरण की शुद्धि में सहायक हैं, वहाँ वस्तु तत्त्व की प्रतिपादक होने से अद्वैतज्ञान में कारण हैं तथा साकार वस्तु विषय होने से अल्पज्ञों द्वारा भी सरलतया अनुष्ठान करने योग्य हैं, इसलिए (कार्य से कारण प्रथम होने से) उनका विवेचन पहले किया जाता है। सांसारिक मनुष्य को अनादि वासना के द्वारा कर्म करने का अभ्यास नहीं छूट पाता, उसका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मिन्हि प्रयुज्यमाने स प्रसीदति प्रियनामग्रहण इव लोकः। तदिहेतिपरं प्रयुक्तमभिधायकत्वाद्व्यावर्तितं शब्दस्वरूपमात्रं प्रतीयते। तथा चार्चादिवत्परस्याऽऽत्मनः प्रतीकं संपद्यते। एवं नामत्वेन प्रतीकत्वेन च परमात्मोपासनसाधनं श्रेष्ठमिति सर्ववेदान्तेष्ववगतम्। जपकर्मस्वाध्यायाद्यन्तेषु च बहुशः प्रयोगात्प्रसिद्धमस्य श्रेष्ठयम्। अतस्तदेतदक्षरं वर्णात्मकमुद्गीथभक्त्यवयवत्वादुद्गीथशब्दवाच्यमुपासीत। कर्माङ्गा-

---

नेदिष्ठत्वं समर्थयते—तस्मिन्निति। ॐकारस्यान्यत्र परमात्मनामत्वेऽपि प्रकृते किं विवक्षितमित्याशङ्क्याऽऽह—तदिहेति। प्रकृते हि वाक्ये तदोमिति पदमितिशब्दशिरस्कं प्रयुक्तमितिशब्दसामर्थ्यादिव वाचकत्वाद्व्यावर्तितं शब्दस्वरूपमात्रमुपास्यं गम्यते। यत्र हीतिपरः प्रयोगो न तत्राभिधेयविवक्षाऽस्ति यथा गौरित्ययमाहेति। तथा चात्रेतिपरत्वादोंकारस्य स्वरूपमात्रमुपास्यं विवक्षितमित्यर्थः। तस्योपास्यत्वार्थं श्रैष्ठ्यं साधयति—तथा चेति। इतिपरप्रयोगवशादभिधायकत्वाभावे सत्यर्चाशब्दितप्रतिमाया भगवत्प्रतीकत्ववदोंकारस्यापि परमात्मप्रतीकत्वेन श्रेष्ठत्वादुपास्यत्वसिद्धिरित्यर्थः। तदीयं श्रैष्ठ्यं सप्रमाणकं निगमयति—एवमिति। सर्ववेदान्तेष्वेतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परमित्यादिषु। किंच नास्य श्रैष्ठ्यं समर्थनीयं प्रसिद्धत्वादित्याह—जपेति। गायत्र्यादिजपे यज्ञादौ कर्मणि स्वाध्यायस्याऽऽदावन्ते चोंकारस्य प्रयोगो दृश्यते।

"तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥"
"ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते" इति स्मृतेः॥

ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाहेत्यादिश्रुतेश्चेत्यर्थः। ओमितीत्ययं भागो व्याख्यातः। संप्रत्येतदक्षरमित्यस्यार्थमाह—अत इति। श्रेष्ठत्वमुपास्यत्वार्थमनुकृष्यते। "व्याप्तेश्च समञ्जसमि"ति न्यायेन विशेषणस्यार्थवत्त्वमभिप्रेत्य रूढिर्योगमपहरतीति न्यायेनाक्षरशब्दस्य प्रकरणमनुसृत्य प्रसिद्धमर्थमाह—वर्णात्मकमिति। ग्रामो दग्धः पटो दग्ध इतिवदेकदेशे समुदायविषयं पदं प्रवृत्तमित्याह—उद्गीथेति। उपासिं विभजते—कर्मेति। उद्गीथावयवत्वादोंकारे तच्छब्दप्रवृत्तिरित्युक्तत्वादनन्तरवाक्यम-

---

उन-उन कर्मों से भिन्न केवल उपासना में मन लगाना अत्यन्त कठिन है। इसलिए (उन बहुविध उपासनाओं में) पहले कर्माङ्ग विषयक उपासना का आरम्भ किया जाता है।

उद्गीथशब्दवाच्य ओंकार की उपासना करे। 'ॐ' यह अक्षर परमात्मा का परम प्रिय नाम है। जिस प्रकार लोकव्यवहार में अपने प्रिय नाम द्वारा पुकारे जाने पर मनुष्य प्रसन्न होता है; उसी

---

१. "व्याप्तेश्च समञ्जसम्" ब्र. सू. ३-३-९। "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमि"त्योङ्कारोद्गीथशब्दयोः सामानाधिकरण्यं श्रूयते तत्किं नाम ब्रह्मे'तिवदध्यासार्थमुत यद्रजतं सा शुक्तिरितिवदपवादार्थमाहोस्वित् सिंधुरः करीतिवदैक्यप्रमित्यर्थमुताहो नीलोत्पलमितिवद्विशेषणविशेष्यभावनिबन्धनमिति संशये निर्धारणे कारणाभावादनिर्धारितार्थकमिति पूर्वपक्षः। सिद्धान्तस्तु ओङ्कारस्य ऋग्यजुःसामसु त्रिषु व्याप्तेर्व्याप्तत्वात् क ओङ्कार उपास्य इत्यपेक्षायामुद्गीथावयवत्वेनोङ्कारो विशेष्यते "ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतेति"। एवं चोद्गीथमित्योङ्कारस्य विशेषणमित्येव समञ्जसं निरवद्यम्। सौत्रचशब्देन तु शब्दस्थाननिवेशिनाऽध्यासापवादैक्यपक्षाणां निरासः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वयवभूत ॐकारे परमात्मप्रतीके दृढामैकाग्रचलक्षणां मतिं संतनुयात् । स्वयमेव श्रुतिरोंकारस्योद्गीथशब्दवाच्यत्वे हेतुमाह—ओमिति ह्यु द्गायति । ओमित्यारभ्य हि यस्मादुद्गायत्यत उद्गीथ ओंकार इत्यर्थः । तस्योपव्याख्यानं तस्याक्षरस्योपव्याख्यानमेवमुपासनमेवं विभूत्येवंफलमित्यादिकथनमुपव्याख्यानम् । प्रवर्तत इति

किंचित्करमित्याशङ्क्य श्रुत्युक्तो योऽस्मदुक्तो हेतुस्तेन स्फुटी क्रियते ततश्चोत्कृष्यास्माभिर्दर्शित इत्यभिप्रेत्याऽऽह—स्वयमेवेति । ओमित्येतदक्षरमित्यत्रोपासनोत्पत्तिविधिरुक्तः । संप्रति गुणं विवक्षुर्वाक्यान्तरमादाय व्याचष्टे—तस्येति । एवमुपासनमिति । रसतमत्वमाप्तिः समृद्धिरित्येवंगुणकमुपासनं यस्याक्षरस्य तत्तथेत्यर्थः । एवं विभूतीति । परमः परार्ध्यस्तेनेयं त्रयी विद्या वर्तत इत्याद्या विभूतिः स्तुतिर्यस्य तत्तथेति यावत् । एवंफलमिति । आपयिता ह वै कामानामित्यादि फलं यस्यो[1]पास्यसाक्षात्कारस्य तत्तथोक्तमित्यर्थः । [2]गोदोहनवदाश्रित्य विधानादधिकृताधिकारमिदमुपासनं तथाऽपि पृथगेव "[3]पृथग्ह्यप्रतिबन्धः फलमिति न्यायेन' फलवत्फलं याजमानमुद्गातुर्यजमानेन कर्मार्थं क्रीतत्वात्तत्कर्तृकस्योपासनस्यापि यजमानस्य स्वामिनः फलमिति वचनमादिशब्दार्थः । वाक्यस्य साकाङ्क्षत्वेनाऽऽनर्थक्यं वारयति—प्रवर्तत इति ॥१॥

प्रकार ॐकार शब्द से पुकारे जाने पर परमात्मा प्रसन्न होता है। मन्त्र में "ओमित्येतत्" यहाँ इतिपद परक होने से तथा वाचक होने से व्यावर्तित ओंकारस्वरूप मात्र की उपासना विवक्षित है ('गौरिति' 'अयमाहेति' के समान अभिधेय अर्थ की विवक्षा यहाँ अभिमत नहीं है)। देवपूजन में विग्रहस्थापना के समान यह भी परमात्मा का प्रतीक समझा जाता है। इस प्रकार नाम और प्रतीक रूप से ॐकार का आलम्बन भगवदुपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन है—यह सभी श्रुतिवाक्यों से सिद्ध होता है। गायत्र्यादि जप, यज्ञादि कर्म एवं वेदों के स्वाध्याय में आदि और अन्त में ॐकार के अधिकांशतः प्रयोग होने से भी इसकी श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। इसलिए उद्गीथ-उपासना के अवयव होने से उद्गीथशब्दवाच्य वर्णात्मक इस ओंकार अक्षर की उपासना करे। उद्गीथोपासना रूप कर्माङ्ग के अवयवभूत परमात्मा के प्रतीक ॐकार में दृढ और अनन्य बुद्धि की धारणा करे। 'ओमिति ह्युद्गायति' से श्रुति स्वयं ही ओंकार की उद्गीथशब्दवाचकता में हेतु प्रदर्शित करती है। क्योंकि 'ॐ' ऐसा

१. उपास्यसाक्षात्कारस्येति—उपास्यं साक्षात्क्रियतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या उपास्यसाक्षात्कारकरणस्याक्षरस्येत्यर्थः । २. गोदोहनवदिति—चमसेनापः प्रणयेद्गोदोहनेन पशुकामस्येति विहितमप्प्रणयनमाश्रित्य विहितं गोदोहनं यथाऽप्प्रणयनाधिकृताधिकारकं तद्वदित्यर्थः । ३. पूर्वमनित्यभोजनाश्रितप्राणाग्निहोत्रस्यानित्यत्वं यथा तद्वन्नित्यकर्माङ्गाश्रितोपासनानां नित्यत्वमिति दृष्टान्तसङ्गत्येदमाह—"तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम्" (ब्र.सू. ३-३-४२) । अत्र पूर्वपक्षे उपासनानां क्रतुषु पर्णतादिवदावश्यकत्वं सिद्धान्ते गोदोहनवदनावश्यकत्वमिति फलभेदः । तत्र सन्ति कर्माङ्गोद्गीथव्यपाश्रयाणि प्राणाद्युपासनानि किं तेषां नित्यवदनुष्ठानमुत नेति संदेहे नित्यवदनुष्ठानमिति पूर्वः पक्षः । सिद्धान्तस्तु तेषां कर्माङ्गाश्रितानां निर्धारणानामुपासनानामनियमः नित्यवदनुष्ठानाभावः । कुतः ? तद्दृष्टेः तस्यानियमस्य । "तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद" इति श्रुतौ दर्शनात् । उपासनानां पृथक्फलश्रवणादपि न नित्यवदनुष्ठानमित्याह—पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलमिति । हि यस्मात्कर्मफलतः पृथगेवाप्रतिबन्धः "यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति" इति । वीर्यवत्तरत्वात्कर्मसमृद्धिरूपं फलं लभ्यते । अतो न कर्माङ्गत्वमुपासनानामिति सिद्धम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसः। अपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः ॥ २ ॥

रसों में श्रेष्ठ उद्गीथ है।

इन चराचर प्राणियों का जन्म, स्थिति और लय स्थान होने के कारण पृथिवी रस है, पृथिवी का रस जल है, जल का रस औषधियाँ हैं उन औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाक् है, वाक् का रस ऋक् है, ऋक् का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है। (प्रकरण के बल से यहाँ पर ॐ कार को ही उद्गीथ कहा है, जो साम का भी सारतर है) ॥२॥

वाक्यशेषः ॥ १ ॥

एषां चराचराणां भूतानां पृथिवी रसो गतिः परायणमवष्टम्भः। पृथिव्या आपो रसोऽप्सु ह्योता च प्रोता च पृथिव्यतस्ता रसः पृथिव्याः। अपामोषधयो रसोऽप्परिणामत्वादोषधीनाम्। तासां पुरुषो रसोऽन्नपरिणामत्वात्पुरुषस्य। तस्यापि पुरुषस्य वाग्रसः। पुरुषावयवानां हि वाक्सारिष्ठा। अतो वाक्पुरुषस्य रस उच्यते। तस्या अपि वाच

तदेवोपव्याख्यानमनुवर्तयन्नोंकारस्य रसतमत्वं गुणं विधातुं पातनिकां करोति—एषामिति। गतिरित्युत्पत्तिकारणत्वं परायणमिति स्थितिहेतुत्वमवष्टम्भ इति प्रलयनिदानत्वमुच्यत इति भेदः। वैपरीत्येन वाऽमूनि पदानि नेयानि। अपां पृथिवीरसत्वं साधयति—अप्सु ह्योति। अस्यार्थस्य श्रुत्यन्तरप्रसिद्धिं द्योतयितुं हिशब्दः। ओषधीनामपः प्रति कारणत्वाभावात्कथं तत्र रसशब्दस्तत्राऽऽह—अप्परिणामत्वादिति। कारणपरतया पूर्वत्र व्याख्यातोऽपि रसशब्दो गोरस इतिवदुत्तरत्र कार्यपरतया व्याख्येय इत्यर्थः। कथमोषधीनां पुरुषो रसः। न हि ताभिरसौ क्रियते तत्राऽऽह—अन्नेति। पुरुषरसत्वं वाचः समर्थयते—पुरुषेति। वाग्विहीनं हि [1]प्रतिपुरुषान्तरं विनिन्दन्ति। अतो वाचः सारतमत्वं प्रसिद्धमिति हिशब्दार्थः। तस्याः सारिष्ठत्वप्रसिद्धिरतःशब्दार्थः। वाङ्निर्वर्त्यत्वादृचस्तद्रसत्वमित्य-

---

उच्चारण करके उद्गाता यज्ञादि में उच्च स्वर से गान करता है, इसलिए उद्गीथ ओंकार है। उस अक्षर की उत्तरोत्तर सम्पूर्ण रसों से श्रेष्ठ उपासना है, उत्कृष्ट, परार्ध्य एवं ऋग्वेदादि रूप त्रयी विद्या में प्रवृत्त होना इसकी विभूति है, इसकी उपासना यजमान को कामनाओं की प्राप्ति कराने वाली होती है; इत्यादि वर्णन ही उसका उपव्याख्यान करना है। मन्त्रोक्त वाक्य में आकांक्षा रहने से (उसका उपाख्यान) आरम्भ किया जाता है, यह समझ लेना चाहिए ॥ १ ॥

इन जड़ एवं चेतन भूतों का उत्पत्तिकारण, स्थितिहेतु तथा प्रलयस्थान होने से पृथिवी रस है। जल से ओत-प्रोत होने के कारण पृथिवी का रस जल है। जल का रस औषधियाँ हैं क्योंकि

---

१. पुरुषान्तरं प्रति विनिन्दन्तीत्यन्वयः। न हि मूकं प्रति मूकनिन्दाऽर्थवती तस्य बधिरत्वेन श्रोतुमसामर्थ्यादिति भावः। श्रवणे च क्रोधसंभवादेव वा साऽनर्हेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एष रसानाँ रसतमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः ॥ ३ ॥

वही यह उद्गीथ भूतादि उत्तरोत्तर सम्पूर्ण रसों में श्रेष्ठ रस और परमात्मा का प्रतीक होने के कारण उत्कृष्ट एवं परार्ध्य है, संख्या की दृष्टि से पृथिव्यादि रसों में आठवाँ है ॥३॥

ऋग्रसः सारतरा । ऋचः साम रसः सारतरम् । तस्यापि साम्न उद्गीथः प्रकृतत्वादोंकारः सारतरः ॥२॥

एवं स एष उद्गीथाख्य ॐकारो भूतादीनामुत्तरोत्तररसानामतिशयेन रसो रसतमः । परमः परमात्मप्रतीकत्वात् । परार्ध्योऽर्धं स्थानं परं च तदर्धं च परार्धं तदर्हतीति परार्ध्यः परमात्मस्थानार्हः परमात्मवदुपास्यत्वादित्यभिप्रायः । अष्टमः पृथिव्यादिरससंख्यायां यदुद्गीथो य उद्गीथः ॥३॥

भिप्रेत्याऽऽह—सारतरेति । ऋचः सकाशादपि तदध्यूढं साम गीयमानं वक्तृश्रोत्रोः सुखकरमिति मत्वाऽऽह—सारतरमिति । उद्गीथशब्दं चावयवे प्रकरणान्नियमयति—प्रकृतत्वादिति । न हि सामानोंकृतं फलाय भवतीति मन्वानो ब्रूते—सारतर इति ॥२॥

यदर्थं पृथिव्यादीनां रसत्वमुक्तं तदिदानीं दर्शयति—एवमिति । रसतमत्वगुणकमोंकारमुपास्यत्वार्थं विशेषणाभ्यां मही करोति—परम इति । तस्य परमात्मस्थानयोग्यत्वं समर्थयते—परमात्मवदिति । यथा परमात्मा स्वरूपत्वेनानुसंधीयते तथाऽस्यापि तदात्मनाऽनुसंधेयत्वाद्विष्णुबुद्ध्यालम्बनार्हप्रतिमावदयमपि परमात्मबुद्ध्यालम्बनयोग्यो भवतीत्यर्थः । ॐकारात्पराचीनो रसो नास्तीति तदीयरसतमत्वस्फुटीकरणार्थं परिगणनातः सिद्धमष्टमत्वमनुवदति—अष्टम इति । ननु भूतान्यारभ्य नवमत्वे प्रतीयमाने कथमोंकारस्याष्टमत्वं प्रतिज्ञायते तत्राऽऽह—पृथिव्यादीति । स एष इत्युक्तं व्यक्तीकर्तुं यदुद्गीथ इत्येतद्व्याचष्टे—य उद्गीथ इति । पूर्ववदुद्गीथशब्दोऽवयवपरो नेतव्यः ॥३॥

उनको जलपरिणामी जाना जाता है। उन ओषधियों का रस पुरुष है क्योंकि वह अन्नपरिणामी है। उस पुरुष का भी वाक् रस है क्योंकि पुरुष की सभी इन्द्रियों में वाणी सारतम इन्द्रिय है। इसी प्रसिद्धि के कारण वाक् पुरुष का रस कही जाती है। वाणी से निष्पादित होने के कारण उसका भी सारतर रस ऋक् है। ऋक् से भी (गीयमान होने से वक्ता एवं श्रोता के लिए सुखकर होने के कारण) साम सारतर रस है। उस साम का रस उद्गीथ है। (विना ओंकार के साम का फल न होने से) उद्गीथ को ही यहाँ ओंकार कहा गया है जो साम का सारतर रस है ॥ २ ॥

पृथिव्यादि उत्तरोत्तर आठ रसों में यह उद्गीथ शब्दवाच्य ओंकार सर्वश्रेष्ठ रस है क्योंकि यह परमात्मा का प्रतीक होने से परम है, विशिष्ट स्थान की योग्यता रखने से यह परार्ध्य है। जिस प्रकार परमात्मा का स्वरूपतः अनुसंधान किया जाता है, उसी प्रकार यह ओंकार भी परमात्म बुद्धि से आलम्बन करने योग्य है। पृथिव्यादि रसों की परिगणना में जो उद्गीथ है उसका आठवाँ स्थान है (तात्पर्य यह कि इस से सारतम पराचीन रस कोई नहीं है) ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कतमा कतमक्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति ॥ ४ ॥

उद्गीथ उपासनान्तर्वर्ती ऋक् साम एवं उद्गीथ का निर्णय

कौन-कौन ऋक् है ? कौन-कौन साम है ? और कौन-कौन उद्गीथ है ? इसी का अब विचार किया जाता है। (ऋग्वेद के एक होने पर भी ऋग् मन्त्र रूप व्यक्ति के बाहुल्य से "डतमच्" प्रत्यय का प्रयोग किया गया है) ॥४॥

वाच्च ऋग्रस इत्युक्तम्। कतमा सवर्कतमत्तत्साम कतमो वा स उद्गीथः। कतमा कतमेति वीप्साऽऽदरार्था। ननु "वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्"। न ह्यत्र ऋग्जातिबहुत्वं कथं डतमचप्रयोगः। नैष दोषः। जातौ परिप्रश्नो जातिपरिप्रश्न इत्येतस्मिन्विग्रहे जातावृग्व्यक्तीनां बहुत्वोपपत्तेः। न तु जातेः परिप्रश्न इति विगृह्यते।

अथ गुणान्तरविधानार्थं प्रश्नमवतारयन्वृत्तमनुवदति—वाच इति। ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रस इति चोक्तमिति द्रष्टव्यम्। इदानीमृगादिजातिं जिज्ञासमानः पृच्छति—कतमेति। वीप्सात्रयं प्रश्ने तत्तज्जातिज्ञाने श्रद्धातिरेकं दर्शयितुमित्याह—कतमा कतमेति। प्रश्नत्रयमाक्षिपति—नन्विति। अनेकजात्यवच्छिन्नानां मध्ये यदैकस्या जातेर्निर्धारणार्थः परिप्रश्नो भवति तदा तस्मिन्विषये विकल्पेन डतमच्प्रत्ययः स्याद्यथा बहूनां कठादीनां मध्ये कठजातिनिर्णयार्थं कतमे कठा इति प्रश्नो दृश्यते तथाऽन्यत्रापीति सूत्रार्थः। बहूनामेकस्या निर्धारणे डतमज्विधानेऽपि प्रकृते प्रश्नत्रये काऽनुपपत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—न हीति। अत्रेत्यध्यापकाध्येतृव्यवहारभूमिरुक्ता। ऋग्जातिग्रहणं सामजातेरुद्गीथजातेश्चोपलक्षणम्। तद्बहुत्वाभावेऽपि किं नश्छिद्यते तत्राऽऽह—कथमिति। ऋगादिजातयो यदि भूयस्यः स्युस्तदा तासां मध्ये कतमर्ग्जातिः कतमा सामजातिर्वा कतमा वोद्गीथजातिरत्र विवक्षितेति प्रश्नो युज्यते। न चास्ति तत्र जातिबहुत्वं प्रमाणाभावादतोऽनुपपन्नं प्रश्नत्रयमित्यर्थः। प्रश्नानुपपत्तिं दूषयति—नैष दोष इति। बहूनां तत्तज्जात्यवच्छिन्नानां संनिधाने जातौ सत्यां व्यक्तिबहुत्वसंभवात्तदन्यतमनिर्धारणार्थपरिप्रश्ने विकल्पेन डतमजिति सूत्रार्थाङ्गीकारादृगादिजातौ तद्व्यक्तिबाहुल्यात्कतमा तद्व्यक्तिर्वाच ऋग्रस इत्यादौ विवक्षितेति प्रश्नपर्यवसानादुपपन्नं प्रश्नत्रयमित्यर्थः। यत्तु विग्रहान्तरं गृहीत्वा प्रश्नानुपपत्तिरित्युक्तं तत्राऽऽह—न त्विति। तत्र चानुपपत्तिं यदि जातेरित्यत्र व्यक्ती करिष्यति। अस्मदिष्टविग्रहापरिग्रहे वृत्तिकारीयमुदाहरणं विरुध्यते। कठशब्दस्य व्यक्तिविशेषत्वा-

---

पूर्व मन्त्र में 'वाक् का रस ऋक् है' यह प्रतिपादित कर दिया गया। वह ऋक् कौन सी है, साम कौन सा है एवं उद्गीथ कौन सा है ? इस मन्त्र में "कौन-कौन सी" इस प्रकार वीप्सात्रय आदर के लिए है। 'डतमच्' प्रत्यय का प्रयोग तो अनेक जातियों से युक्त पदार्थों में एक जाति निर्धारणार्थ परिप्रश्न में विकल्प से होता है। यहां ऋक् जाति की अनेकता तो है नहीं फिर 'डतमच्' प्रत्यय का प्रयोग कैसे हुआ ? इसमें कोई दोष नहीं है। सूत्र में 'जाति में परिप्रश्न' ऐसा विग्रह करने पर ऋग्वेद की एक जाति होने पर भी ऋक् मन्त्र रूप व्यक्ति के बाहुल्य से 'डतमच्' प्रत्यय का प्रयोग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वागेवर्क्प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथः। तद्वा एत-न्मिथुनं यद्वाक्च प्राणश्चर्क्च साम च ॥ ५ ॥

वाणी ही ऋक् है, प्राण साम है, तथा "ओम्" यह अक्षर उद्गीथ है। वाक् और प्राण क्रमशः ऋक् और साम के कारण हैं। इसलिये वाक् ही ऋक् है और साम प्राण है। इस प्रकार इन दोनों के मिथुन (जोड़े) हैं ॥५॥

ननु जातेः परिप्रश्न इत्यस्मिन्विग्रहे कतमः कठ इत्याद्युदाहरणमुपपन्नं जातौ परिप्रश्न इत्यत्र तु न युज्यते। तत्रापि कठादिजातावेव व्यक्तिबहुत्वाभिप्रायेण परिप्रश्न इत्यदोषः। यदि जातेः परिप्रश्नः स्यात्कतमा कतमर्गित्यादावुपसंख्यानं कर्तव्यं स्याद्विमृष्टं भवति विमर्शः कृतो भवति ॥४॥

विमर्शे हि कृते सति प्रतिवचनोक्तिरुपपन्ना वागेवर्क्प्राणः सामेति। वागृचोरेकत्वेऽपि नाष्टमत्वव्याघातः पूर्वस्माद्वाक्यान्तरत्वादाप्तिगुणसिद्धये। वाक्प्राणावृक्साम-

---

भावादिति शङ्कते—नन्विति। उदाहरणेऽपि सत्यां कठजातौ तद्व्यक्तिबाहुल्यात्तदन्यतमनिर्धारणाभिप्रायेण परिप्रश्ने डतमजित्यङ्गीकारान्न परोक्तोदाहरणविरोधोऽस्मत्पक्षेऽस्तीति परिहरति—तत्रापीति। ननु द्विधाऽपि विग्रहोपपत्तौ किमिति त्वदिष्टो विग्रहो नियम्यते तत्राऽऽह—यदीति। त्वदिष्टविग्रहपरिग्रहश्चेदृगादिजातेरेकत्वात्प्रत्येकं बहुत्वायोगाद्वा बहूनामित्यादिसूत्रेण कतमर्क्कतमत्सामेत्युदाहरणं न सिध्येत्। तथा च तत्सिद्ध्यर्थं पृथग्विधानं प्रसज्येत। न हि वैदिकमुदाहरणं प्रमत्तगीतमिव हातुं शक्यं तस्मादृगादिव्यक्तिरेवात्र प्रष्टुं युक्तेत्यर्थः ॥ ४ ॥

किमिति यथोक्तरीत्या विमृश्यते। विवक्षितमृगादिस्वरूपमेवाऽऽदावुपन्यस्यतां लाघवादित्याशङ्क्याऽऽह—विमर्शे हीति। शिष्यभूतया श्रुत्या चोदिते सैवाऽऽचार्यभूता परिहरति—वागेवेति। नन्वाद्ये प्रतिवचने वागृचोरेकत्वावगमादोंकारस्य रसतमवाक्योपदिष्टमत्वं व्याहन्येतेत्याशङ्क्याऽऽह—वागृचोरिति। कथं पुना रसतमवाक्यादिदं प्रश्नप्रतिवचनरूपवाक्यं भिद्यतेऽर्थाधिक्याभावात्तत्राऽऽह—आप्तीति। पूर्वं हि वाक्यमोंकारस्य रसतमत्वं विदधाति। इदं तु तस्यैवाऽऽप्तिगुणं विधत्ते। तथा च तादृग्गुणविध्यर्थत्वेनास्य वाक्यान्तरत्वादेतद्वाक्यवशादष्टमत्वाभावेऽपि पूर्ववाक्यादोंकारस्याष्टमत्वमविरुद्धमित्यर्थः। तथाऽपि कथमृगादिजातीये पृष्टे वागेवर्गित्यादिप्रतिवचनमुचितं तद्व्यक्तिविशेषवचनमेव प्रश्नानुसारीत्याशङ्क्याऽऽह—वाक्प्राणाविति। वागृचो योनि-

---

करना सिद्ध हो जाता है। 'जाति का परिप्रश्न' ऐसा विग्रह नहीं किया जाता है। बहुत से कठादिकों के मध्य कठजाति का निर्णय करने के लिए कौन कठ है—यह उदाहरण तो 'जाति का परिप्रश्न' इस विग्रह में युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। हमारे पक्ष में तो वहाँ भी कठादि जाति में ही व्यक्ति के बाहुल्य से प्रश्न है, इसलिए कोई दोष नहीं है। यदि आप द्वारा अभिमत विग्रह होता तो 'कतमा कतमर्क्' इसमें विकल्प करना पड़ता (इससे "कतमर्क् कतमत्साम" आदि उदाहरण सिद्ध होता)। इसी का विमर्श किया जाता है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

'योनी' इति वागेवर्क्प्राणः सामेत्युच्यते। यथाक्रममृक्सामयोन्योर्वाक्प्राणयोर्ग्रहणे हि सर्वासामृचां सर्वेषां च साम्नामवरोधः कृतः स्यात्। सर्वर्क्सामावरोधे चर्क्सामसाध्यानां कर्मणावरोधः कृतः स्यात्। तदवरोधे च सर्वे कामा अवरुद्धाः स्युः। ओमित्येतद-क्षरमुद्गीथ इति भक्त्याशङ्का निवर्त्यते। तद्वा एतदिति मिथुनं निर्दिश्यते। किं तन्मिथुनमित्याह यद्वाक्च प्राणश्च सर्वऋक्सामकारणभूतौ मिथुनम्। ऋक्च साम चेति

स्तन्निर्वर्तकत्वात्। प्राणश्च साम्नो हेतुर्बलेन हि गीतिरुत्पाद्यते। तथा च वागेवेत्यादिना कार्यकारण-योरभेदोपदेशादङ्मात्रं साममात्रं वा तत्तत्कारणात्मकं प्रतीयते तेन पूर्वत्रापि व्यक्तिरविवक्षिता। प्रश्नप्रतिवचनयोरेकार्थत्वात्। न चैवमृगादिजातेरेकत्वाड्डुतमच्प्रत्ययानुपपत्तिस्तत्तज्जात्यवच्छिन्नाना-मृक्सामोद्गीथानां संनिधावृगादिजातेरेकस्या निर्धारणार्थं परिप्रश्ने तत्प्रयोगसंभवादृगादिषु प्रत्येकं भेदविवक्षया षष्ठीसमासे दूषणमुक्तम्। तत्र प्रत्येकमेकत्वमुपेत्योक्तरीत्या षष्ठीसमासे तु न किंचिद्दुष्यतीति भावः। ऋगात्मिकाया वाचः सामात्मकस्य प्राणस्य ग्रहणे फलितं दर्शयन्नुक्तमेव व्यनक्ति करोति—यथाक्रममिति। ऋक्साममात्रावरोधेऽपि किं सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—सर्वेति। तथाऽपि किं स्यादिति चेत्तदाह—सर्वे कामा इति। उक्तप्रक्रियया सर्वकामावाप्तिहेतुरोंकारो विवक्षिताप्तिगुणकः सिध्यतीत्यर्थः। तृतीये प्रतिवचने तात्पर्यमाह—ओमित्येतदिति। अत्रापि पूर्ववज्जातिगृहीतौ तद्व्यक्तित्वेन भक्तिरेवो-क्तेति शङ्कां निरसितुमोमित्येतदक्षरमिति विशेषणम्। तथा चोद्गीथस्तदवयवो विशेषणात्प्रकरणा-च्चेत्यर्थः। पारम्पर्येण वाक्प्राणयोः सर्वकामसंबन्धादुद्गीथस्यापि तथाभूतवागादिसंबन्धादस्ति सर्व-कामसंबन्ध इत्युक्तम्। इदानीमोंकारस्य वाक्प्राणद्वारा सर्वकामसंबन्धे हेत्वन्तरमाह—तद्वा इति। तदे-तत्पदयोर'क्षरविषयत्वं व्यावर्त्य वक्ष्यमाणविषयत्वं दर्शयति—मिथुनमिति। वैशब्दो मिथुन-प्रसिद्ध्यर्थः। वाक्च प्राणश्चेति यदुभयमुपलभ्यते तदेतन्मिथुनमिति योजनामङ्गीकृत्य वाक्यार्थमाह—ऋक्सामेति। वाक्प्राणयोर्ऋक्सामकारणत्वमुत्तरवाक्येन (ण) स्पष्टयति—ऋक्चेति। यथा वाक्प्राणौ

शिष्यभूता श्रुति प्रश्न कर विचार करने के बाद स्वयं ही उसका उत्तर आचार्य होकर देती है। इसमें 'वाणी ऋक् है, प्राण साम है' यह कथन उपयुक्त ही है। पूर्व मन्त्र में ओंकार को रसतम कहा, अब उसी में श्रुति आप्ति गुण का विधान करती है, इसलिए वाणी और ऋक् की समानता होने पर भी ओंकार में अष्टमत्व संख्या का व्याघात नहीं होता। (वाक् से निष्पादित होने के कारण) वाक् ऋक् का कारण है एवं (बल से सामगान संभव होने से) प्राण साम का हेतु है। इसी से 'वाक् ही ऋक् है और प्राण साम है'—ऐसा कहा जाता है। समस्त वाणी ऋगात्मक है तथा समस्त प्राण सामात्मक है ऐसा ग्रहण करने पर सभी ऋक् एवं साम का अवरोध हो जायगा। एवं सभी ऋक् एवं साम के अवरुद्ध हो जाने पर ऋक्-सामसाध्य कर्मों का अवरोध हो जाएगा। उसके अवरुद्ध हो जाने पर समस्त कामनाएँ ही अवरुद्ध हो जाएँगी। (तृतीय प्रश्न का उत्तर दिया जाता है—) "ओम्" यह अक्षर उद्गीथ है। यहाँ उद्गीथ भक्ति की शंका का निरास हो जाता है क्योंकि "ओम् यह अक्षर' यह उदगीथ का विशेषण दिया गया है। "तद्वा एतदिति" ग्रन्थ से मिथुन का निर्देश किया जाता है। वह मिथुन क्या है—इसे श्रुति कहती है कि वाक् और प्राण समस्त ऋक्

१. अक्षरमोङ्कारः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदेतन्मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे सꣳसृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम् ॥ ६ ॥

उक्त मिथुन के ओंकार में संसृष्ट होने का फल

वह यह मिथुन "ओम्" इस अक्षर में संसृष्ट होता है। जिस समय मिथुन के अवयव परस्पर मिलते हैं, उस समय में एक दूसरे की कामनाओं को प्राप्त कराते हैं। (ऐसा लोक में ग्राम्य धर्म के समय मिथुन के अवयव स्त्री और पुरुष के संसर्ग में देखा गया है) ॥६॥

ऋक्सामकारणभूतावृक्सामशब्दोक्तावित्यर्थः। न तु स्वतन्त्रमृक्च साम च मिथुनम्। अन्यथा हि वाक्च प्राणश्चेत्येकं मिथुनमृक्साम चापरं मिथुनमिति द्वे मिथुने स्याताम्। तथा च तदेतन्मिथुनमित्येकवचननिर्देशोऽनुपपन्नः स्यात्। तस्मादृक्सामयोन्योर्वाक्प्राणयोरेव मिथुनत्वम् ॥५॥

तदेतदेवंलक्षणं मिथुनमोमित्येतस्मिन्नक्षरे संसृज्यते। एवं सर्वकामाप्तिगुणविशिष्टं मिथुनमोंकारे संसृष्टं विद्यत इत्योंकारस्य सर्वकामाप्तिगुणवत्त्वं सिद्धम्। वाङ्मयत्वमोंकारस्य प्राणनिष्पाद्यत्वं च मिथुनेन संसृष्टत्वं मिथुनस्य कामापयितृत्वं प्रसिद्धमिति दृष्टान्त उच्यते। यथा लोके मिथुनौ मिथुनावयवौ स्त्रीपुंसौ यदा समागच्छतो

मिथुनमेवमृक्सामे च स्वातन्त्र्येण मिथुनं निर्देशसामान्यादित्याशङ्कयाऽऽह—न त्विति। विपक्षे दोषमाह—अन्यथेति। इष्टमेव मिथुनद्वयमिति चेन्नेत्याह—तथा चेति। ननु मिथुनयोरनुगतं मिथुनत्वमादायैकवचनमुपपत्स्यते चेन्नेत्याह—तस्मादिति। उपक्रमभङ्गान्न स्वतन्त्रमिथुनद्वयमस्तीत्यर्थः ॥५॥

भवतु वाक्प्राणाख्यमृक्सामात्मकवाक्प्राणरूपम्। ओंकारमिथुनयोः संसर्गे किं फलतीत्याह—एवमिति। कया पुनर्विधया मिथुनेन संसृष्टत्वमक्षरस्य सेत्स्यतीत्यत्राऽऽह—वाङ्मयत्वमिति। यत्तु सर्वकामाप्तिगुणविशिष्टं मिथुनमित्युक्तं तदुपपादयति—मिथुनस्येति। प्रसिद्धमिति। तादृगर्थो यथोक्ताक्षरस्य सर्वकामापयितृत्वे दृष्टान्तः सम्नुच्यतेऽनन्तरवाक्येने(णे)त्यर्थः। दृष्टान्तमेव विवृणोति—यथेत्यादिना। मिथुनद्वयं नास्तीत्युक्तत्वात्कथं मिथुनाविति द्विवचनं तत्राऽऽह—मिथुनावयवाविति।

और साम के कारणभूत मिथुन हैं। ऋक् और साम के कारणभूत ऋक् व साम शब्द कहे गए हैं। (वाक् प्राण अथवा) ऋक्-साम का स्वतन्त्र रूप से मिथुन संभव नहीं है। अन्यथा वाक्-प्राण का एक मिथुन एवं ऋक्-साम का दूसरा मिथुन—इस प्रकार दो मिथुन हो जाएँगे। इससे मन्त्र में 'मिथुन' शब्द में एकवचन का निर्देश निरर्थक हो जाएगा। इसलिए ऋक् व साम के कारणभूत वाक् और प्राण का ही मिथुन है (स्वतन्त्र मिथुनद्वय होना संभव नहीं है) ॥ ५ ॥

इस प्रकार के लक्षण वाला यह मिथुन 'ॐ' इस अक्षर में सम्पृक्त होता है। इस प्रकार समस्त कामनाओं की प्राप्ति कराने वाला मिथुन है ओंकार में मिला हुआ रहता है, इसीलिए ओंकार भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वान-क्षरमुद्गीथमुपास्ते ।। ७ ।।

तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किंचानुजानात्योमित्येव

उक्त उपासना का फल

जो उपासक इस प्रकार "ओम्" अक्षररूप उद्गीथ की उपासना करता है वह (यजमान की) कामनाओं को प्राप्त कराने वाला होता है ।।७।।

ओंकार में समृद्धि गुण

वह यह "ओंकार" ही अनुमतिसूचक अक्षर है। अतएव (लोक में कोई विद्वान् या धनी पुरुष धनादि के लिये) किसी को जो कुछ अनुमति देता है तो "ओम्" ऐसा ही कहता है। यह अनुज्ञा

ग्राम्यधर्मतया संयुज्येयातां तदाऽऽपयतः प्रापयतोऽन्योन्यस्येतरेतरस्य तौ कामम् । तथा स्वात्मानुप्रविष्टेन मिथुनेन सर्वकामाप्तिगुणवत्त्वमोंकारस्य सिद्धमित्यभिप्रायः ॥६॥

तदुपासकोऽप्युद्गाता तद्धर्मा भवतीत्याह—

आपयिता ह वै कामानां यजमानस्य भवति य एतदक्षरमेवमाप्तिगुणवदुद्गीथमुपास्ते तस्यैतद्यथोक्तं फलमित्यर्थः । "तं यथा यथोपासते तदेव भवति" इति श्रुतेः ॥७॥

ग्राम्यधर्मतया तथाविधव्यापारतयेति यावत् । वैशब्दोऽवधारणे । विवक्षितं दार्ष्टान्तिकमाचष्टे—तथेति ॥६॥

एवमोंकारमाप्तिगुणविशिष्टं शिष्ट्वा तदुपासनाफलं कथयति—तदुपासकोऽपीति । तद्धर्मेत्युपासकस्याऽऽप्तिगुणवैशिष्ट्योक्तिः । आप्तेति वक्तव्ये कथमापयितेत्युक्तं तत्राऽऽह—यजमानस्येति । निपातौ त्ववधारणार्थौ । उद्गीथं तदवयवभूतमिति यावत् । आप्तिगुणवदोंकारोपासनात्कथमुपासिता तद्गुणो भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—तमिति ॥७॥

समस्त कामना की प्राप्ति रूप गुण वाला है—ऐसा प्रसिद्ध है। ओङ्कार का वाङ्मयत्व एवं प्राण-निष्पाद्यत्व होना, मिथुन से संसृष्ट होना तथा मिथुन का कल्पतरु होना प्रसिद्ध ही है। इसी से दृष्टान्त कहा जाता है। लोकव्यवहार में भी देखा जाता है कि जब मिथुन के अवयव स्त्री और पुरुष मैथुन-धर्म में प्रवृत्त हुए परस्पर संसृष्ट हो जाते हैं, उस समय एक दूसरे की कामनाओं को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार स्वात्मानुप्रविष्ट मिथुन के द्वारा ओंकार में सर्वकामाप्ति रूप गुण सिद्ध हो जाता है ॥६॥

ओंकार का उपासक उद्गाता भी आप्तिगुणविशिष्ट धर्म से युक्त हो जाता है—

जो उपासक आप्तिगुणविशिष्ट इस ओंकार अक्षर रूप उद्गीथ की उपासना करता है, उसका यही फल होता है कि वह यजमान की कामनाओं को प्राप्त करता है। श्रुति भी है— 'उसी स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, जिस स्वरूप की जिस-जिस प्रकार उपासना करता है' ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदाहैषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा समर्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते ॥ ८ ॥

ही समृद्धि है। जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष समृद्धि गुणयुक्त इस उद्गीथ की उपासना करता है, निश्चय ही वह यह यजमान की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है ॥८॥

समृद्धिगुणवांश्चोंकारः। कथम्—तद्वा एतत्प्रकृतमनुज्ञाक्षरमनुज्ञा च साऽक्षरं च तत्। अनुज्ञाऽनुमतिरोंकार इत्यर्थः। कथमनुज्ञेत्याह श्रुतिरेव। यद्धि किंच यत्किंच लोके ज्ञानं धनं वाऽनुजानाति विद्वान्धनी वा तत्रानुमतिं कुर्वन्नोमित्येव तदाह। तथा च वेदे "त्रयस्त्रिंशदित्योमिति होवाच" इत्यादि। तथा च लोकेऽपि तवेदं धनं गृह्णामीत्युक्त ओमित्याह। अत एषा उ एवैषैव समृद्धिर्यदनुज्ञा याऽनुज्ञा सा समृद्धिस्तन्मूलत्वादनुज्ञायाः। [1]समृद्धो ह्योमित्यनुज्ञां ददाति तस्मात्समृद्धिगुणवानोंकार इत्यर्थः।

उत्तरग्रन्थस्य गुणान्तरविधाने तात्पर्यं दर्शयति—समृद्धीति। तस्य समृद्धिगुणवत्त्वमप्रामाणिकमित्याशङ्क्य परिहरति—कथमित्यादिना। तदेतत्पदयोरोंकाराख्यमक्षरं विषयत्वेन निर्दिशति—प्रकृतमिति। तस्य स्मृत्यर्थो वैशब्दः। अनुज्ञाक्षरमित्येतद्विगृह्य विवक्षितेनार्थेन घटयति—अनुज्ञा चेति। तस्यानुज्ञात्वे प्रश्नपूर्वकं प्रसिद्धिमुपन्यस्यति—कथमिति। तत्रेति ज्ञानधनयोरुक्तिस्तदित्यनुमन्तव्यं साधारण्येनोच्यते। ओंकारस्यानुज्ञाक्षरत्वे लोकप्रसिद्धिवद्वेदप्रसिद्धिं समुच्चिनोति—तथा चेति। कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति शाकल्येन पृष्टे त्रयस्त्रिंशदिति याज्ञवल्क्येन प्रत्युक्ते सत्योमिति शाकल्योऽनुज्ञां कृतवान्। पुनश्च कत्येवेति प्रश्ने षडिति प्रतिवचने सत्योमिति होवाचेत्यादि वाक्यं बृहदारण्यके यथोक्तार्थानुसारि प्रसिद्धमित्यर्थः। यद्धि किंचेत्यादावुक्तां लोकप्रसिद्धिमेव प्रकटयति—तथा च लोकेऽपीति। ओंकारस्य लोकवेदप्रसिद्धिभ्यामनुज्ञात्वेऽपि कथं समृद्धिगुणकत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति। उशब्दोऽप्यर्थः समृद्धिशब्दादुपरि संबध्यते। तस्याः समृद्धिमूलत्वं साधयति—समृद्धि हीति। अनुज्ञायाः समृद्धिं प्रति कारणत्वेन समृद्धित्वे सत्योंकारस्यापि तदात्मकस्य समृद्धिगुणवत्त्वं सिद्धमित्युपसंहरति—तस्मादिति। समर्धयितेत्यादिफलवाक्यं तत्राऽऽह—समृद्धीति। अस्मिन्वाक्ये समर्धयितेत्या-

---

ओंकार समृद्धि गुण से युक्त है। ऐसा किस प्रकार कहते हो—वह यह अक्षर 'ॐ' अनुमतिसूचक अक्षर हैं। अनुज्ञासूचक अक्षर कैसे है—इसे श्रुति स्वयं कहती है। लोकव्यवहार में विद्वान् अथवा धनी पुरुष जिस किसी को भी ज्ञान अथवा धन देता है तो अनुमति देने के लिए 'ओम्' यही शब्द उच्चारण करता है। (बृहदारण्यक उपनिषत् में तृतीयाध्यायस्थ शाकल्य ब्राह्मण में शाकल्य ने पूछा—देवता कितने हैं? याज्ञवल्क्य ने कहा—) "तैंतीस। शाकल्य ने कहा—ठीक है और फिर पूछा।" समाज में भी 'तुम्हारा यह धन लेता हूँ' कहने पर 'ओम्' यह अनुमतिसूचक शब्द कहा जाता है। लोक एवं वेद में ओंकार अनुमति अर्थ में प्रसिद्ध होने पर जो अनुमति है, वह समृद्धि है; जो समृद्धि है, वही अनुमति है क्योंकि वह अनुज्ञामूलक है। समृद्ध व्यक्ति ही 'ओम्' इस प्रकार अनुमति दे पाता है, इसलिए ओंकार

---

१. समृद्धो हीति—अकिञ्चनानुज्ञात्वकिञ्चित्करीति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेनेयं त्रयी विद्या वर्तत ओमित्याश्रावयत्योमिति शँसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन ॥ ९ ॥

ओंकार की स्तुति

उस अक्षर से ही वह ऋग्वेदादि रूपत्रयी विद्या (और उसमें विहित कर्म प्रवृत्त होते हैं) "ओम्" ऐसा उच्चारण कर अध्वर्यु आश्रावण कर्म कराता है, "ओम्" ऐसा बोल कर होता शंसन कराता है और "ओम्" ऐसा उच्चारण कर ही उद्गाता उद्गान करता है। इस अक्षर की पूजा के लिये ही (वेदोक्त सम्पूर्ण कर्म हैं) तथा ऋत्विक् यजमानादि के प्राणरूप महिमा से एवं व्रीहि-यवादि रस से निष्पन्न हुए हवि से वैदिक कर्म सम्पन्न होता है ॥९॥

समृद्धिगुणोपासकत्वात्तद्धर्मा सन्समर्धयिता ह वै कामानां यजमानस्य भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यादि पूर्ववत् ॥८॥

अथेदानीमक्षरं स्तौत्युपास्यत्वात्प्ररोचनार्थम्। कथं, तेनाक्षरेण 'प्रकृतेनेयमृग्वेदादिलक्षणा त्रयी विद्या त्रयीविद्याविहितं कर्मेत्यर्थः। न हि त्रयी विद्यैवाऽऽश्रावणादिभिर्वर्तते कर्म तु तथा प्रवर्तत इति प्रसिद्धम्। कथमोमित्याश्रावयत्योमिति शंसत्योमित्युद्गायतीति लिङ्गाच्च सोमयाग इति गम्यते। तच्च कर्मैतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै पूजार्थम्।

दिपदजातमापयितेत्यादिपूर्ववद्व्याख्येयमित्याह—इत्यादि पूर्ववदिति ॥८॥

ओंकारस्य गुणत्रयवतः सफलमुपासनमुक्तम्। तथा च वक्तव्याभावात्तेनेयमित्यादिवाक्यमनर्थकमित्याशङ्क्याऽऽह—अथेति। स्तुतेरानर्थक्यमाशङ्क्याऽऽह—उपास्यत्वादिति। प्ररोचनं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना। त्रयी विद्या वर्तत इति संबन्धः। त्रयी विद्येत्यस्योपचरितार्थत्वं कथयति—त्रयी विद्येति। किमिति श्रुतं त्यक्त्वा व्याख्यायते तत्राऽऽह—न हीति। तस्याः स्वरूपलाभस्यानादित्वेन हेत्वनपेक्षत्वादित्यर्थः। कर्मापि कथमाश्रावणादिभिरात्मानं लभते तत्राऽऽह—कर्म त्विति। प्रसिद्धिमेव प्रपञ्चयति—कथमित्यादिना। आध्वर्यवहौत्रौद्गात्रसमाहारस्य दर्शपूर्णमासादिष्वसंभवादग्निष्टोमादिषु च संभवात्तत्त्रितयसमाहारात्लिङ्गादोंकारेण प्रवर्तमानं त्रयीविहितं कर्म सोमयाग इति प्रतिभातीत्याह—लिङ्गाच्चेति। स्रवत्यनोंकृतं कर्मेति न्यायादोंकारेण वैदिकस्य कर्मणः स्थितिरिति स्तुतिं विधाय स्तुत्यन्तरमाह—तच्चेति। कथं पुनरक्षरं कर्मणा पूज्यते तत्राऽऽह—परमा-

---

भी-तदात्मक होने से समृद्धिगुणविशिष्ट है। जो विद्वान् 'ओंकार' इस अक्षर की इस प्रकार उपासना करता है, समृद्धिगुण का पुजारी होने के कारण वह यजमान की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान समझ लेनी चाहिए ॥ ८ ॥

उपास्य होने के कारण ॐकार इस अक्षर की अब प्ररोचन के उद्देश्य से स्तुति की जाती है। कैसे ? क्योंकि ॐकार अक्षर से ही ऋग्वेदादि स्वरूप त्रयीविद्या से विहित कर्म निष्पन्न होते हैं। आश्रावणादि के द्वारा त्रयी विद्या ही नहीं होती है, कर्म तो उस प्रकार प्रवृत्त होता है—ऐसा प्रसिद्ध है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद । नाना

अज्ञानी और ज्ञानी के कर्म फल में भेद

जो कोई उस अक्षर को इस प्रकार जानता है और जो ऐसा नहीं जानता है, वे दोनों ही उस

परमात्मप्रतीकं हि तत् । तदपचितिः परमात्मन एव सा । "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः" इति स्मृतेः । महिम्ना रसेन किंचैतस्यैवाक्षरस्य महिम्ना महत्त्वेन ऋत्विग्यजमानादिप्राणैरित्यर्थः । तथैतस्यैवाक्षरस्य रसेन व्रीहियवादिरसनिर्वृत्तेन हविषेत्यर्थः । यागहोमाद्यक्षरेण क्रियते । तच्चाऽऽदित्यमुपतिष्ठते । ततो वृष्ट्यादिक्रमेण प्राणोऽन्नं च जायते । प्राणैरन्नेन च यज्ञस्तायते । अत उच्यतेऽक्षरस्य महिम्ना रसेनेति ॥९॥

त्मेति । तस्य तत्प्रतीकत्वे किं स्यादिति चेत्तदाह—तदपचितिरिति । ननु कर्मणा परमात्मा चेदाराध्यते तर्हि तत्प्रतीकत्वादक्षरस्यापि तेनाऽऽराधनं स्यात् । न चेश्वरस्तेनाऽऽराध्यत इति प्रमाणमस्ति तत्राऽऽह—स्वकर्मणेति । वर्णाश्रमविहितेन कर्मणेश्वरं प्रसाद्य तत्प्रसादवशात्तत्फलं कर्ता प्राप्नोतीति भगवतोक्तत्वादीश्वरपूजार्थं कर्मेति गम्यते । तथा च तत्प्रतीकत्वादोंकारस्य तत्पूजार्थं कर्मेति युक्तमित्यर्थः । वैदिकं कर्माक्षरपूजार्थमित्यक्षरं स्तुत्वा विधान्तरेण स्तौति—किंचेति । यजमानादीत्यादिपदेन पत्नी गृह्यते । प्राणैस्त्रयीविहितं कर्म वर्तत इति संबन्धः । स्तुत्यन्तरमाह—तथेति । यथाऽक्षरविकारैर्यजमानादिप्राणैर्वैदिकं कर्म प्रवर्तते तथेति यावत् । हविषेत्यत्रापि पूर्ववदन्वयः । कथमृत्विगादिप्राणानां हविषश्चाक्षरविकारत्वंमत आह—यागेति । आदिशब्दोऽनुक्तवैदिककर्मसंग्रहार्थः । "तस्मादोमित्युदाहृत्य" इत्यादिस्मृतेरित्यर्थः ।

"अग्नौ प्रास्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः"

इति स्मृतिमाश्रित्याऽऽह—तच्चेति । वृष्ट्यादीत्यादिशब्देनान्नस्य प्रजानां चोत्पत्त्युपकरणं सर्वमुच्यते । तथाऽपि कथमेतस्यैवाक्षरस्य महिम्नेत्यादि तत्राऽऽह—प्राणैरिति ॥९॥

तो कैसे फिर "ॐ" यह उच्चारण कर अध्वर्यु आश्रावण कर्म कराता है, "ॐ" यह कहकर होता शंसन करता है तथा "ॐ" यह कहकर उद्गाता उद्गान करता है इत्यादि ज्ञापक होने से सोम याग जाना जाता है । वह वैदिक कर्म इसी अक्षर की पूजा के लिये है । वह परमात्मा का प्रतीक है । वह पूजा भी परमात्मा की ही है । श्रीमद्भगवद्गीता का वचन है—"वर्णाश्रम विहित कर्म से ईश्वर को सन्तुष्ट कर उसकी कृपा के वशीभूत हुआ सिद्धिरूप फल को प्राप्त करता है ।" तथा ऋत्विक् यजमान-यजमान-पत्नी के प्राणरूप इस अक्षर के महत्त्व से और व्रीहि-यवादि रस से निकली हुई हवि से वैदिक कर्म निष्पादित होता है । ॐकार से याग-होमादि किया जाता है । (अग्नि में डाली हुई आहुति आदित्य-मण्डल में प्रतिष्ठापित होती है) इसी से आदित्य की स्तुति होती हैं । इससे वृष्टि आदि क्रम से प्राण और अन्न की उत्पत्ति होती है । प्राण और अन्न से यज्ञ का विस्तार होता है । इसी से मन्त्र में कहा है—अक्षर की पूजा के लिए महिमायुक्त रस से वैदिक कर्म सम्पन्न होता है ॥ ९ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्या करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीति खल्वेत-स्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अक्षर के द्वारा कर्म करते हैं, परन्तु विद्या और अविद्या दोनों भिन्न फल वाले हैं। जो कोई विद्या श्रद्धा और योग से युक्त हो जिस कर्म को करता है उसका वही कर्म अन्य की अपेक्षा प्रबलतर होता है। अतएव निश्चय ही यह सम्पूर्ण संसार इस ओंकार अक्षर का ही व्याख्यान है ॥१०॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

तत्राक्षरविज्ञानवतः कर्म कर्तव्यमिति स्थितमाक्षिपति—तेनाक्षरेणोभौ यश्चै-तदक्षरमेवं व्याख्यातं वेद यश्च कर्ममात्रविदक्षरयाथात्म्यं न वेद तावुभौ कुरुतः कर्म। तयोश्च कर्मसामर्थ्यादेव फलं स्यात्किं तत्राक्षरयाथात्म्यविज्ञानेनेति। दृष्टं हि लोके हरीतकीं भक्षयतोस्तद्रसाभिज्ञेतरयोर्विरेचनम्। नैवम्। यस्मान्नाना[1] तु विद्या चाविद्या च। भिन्ने हि विद्याविद्ये। तुशब्दः पक्षव्यावृत्त्यर्थः। नोंकारस्य कर्माङ्गत्वमात्र-विज्ञानमेव रसतमाप्तिसमृद्धिगुणवद्विज्ञानं किं तर्हि ततोऽभ्यधिकम्। तस्मात्तदङ्गा-

---

अक्षरस्य स्तुत्या महीकृतत्वादुपासने सिद्धे किमुत्तरेण ग्रन्थेनेत्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति। पूर्वस्मिन्संदर्भे स्तुतिवशादक्षरविज्ञाने कर्तव्ये तन्निष्पाद्यं कर्म तद्विज्ञानवतोऽनुष्ठेयमिति स्थितं तदाक्षेप्तुमुत्तरं वाक्यमित्यर्थः। आक्षेपाक्षराणि व्याचष्टे—तेनेत्यादिना। ननु कर्मकर्तृत्वे विद्वदविदु-षोर्विद्वानेव तत्फलमश्नुते नाविद्वानि'ति कथमित्याशङ्क्याऽऽह—तयोश्चेति। इतिशब्दस्त्वाक्षिपती-त्यनेन संबध्यते। कथं विद्वदविदुषोरविशिष्टं फलमित्याशङ्क्य दृष्टान्तमाह—दृष्टं हीति। विमतं न स्वतन्त्रफलमङ्गज्ञानत्वादाज्यावेक्षणवदिति प्राप्ते प्रत्याह—नैवमिति। हेतुत्वेनावतारितं वाक्यं व्याचष्टे—भिन्ने हीति। विद्योपासना कर्माविद्या तयोर्भिन्नत्वं पृथक्फलवत्त्वं तत्र विद्यावैयर्थ्यमित्यर्थः। विद्यायाः स्वतन्त्रफलवत्त्वं नास्तीति पक्षस्य व्यावृत्तिप्रकारमेव प्रपञ्चयति—नेत्यादिना। अङ्गज्ञाना-द्गुणवदक्षरज्ञानस्याऽऽधिक्ये फलितमाह—तस्मादिति। तदङ्गं कर्माङ्गमुद्गीथमात्रज्ञानं तस्मादा-

---

पूर्वमन्त्रों में अक्षरविज्ञानी को कर्म करना चाहिए—यह निर्णय हो चुका। अब आक्षेप होता है—जो अक्षर के उपरोक्त स्वरूप को जानता है, एवं जो कोई कर्ममात्र में आस्था रखने वाला उसके यथार्थ स्वरूप को नहीं जानता; वे दोनों ही कर्म तो करते हैं। उन दोनों को कर्मसामर्थ्य से फल मिलता है, उस ॐकार अक्षर के याथात्म्य ज्ञान से क्या लाभ है ? लोकव्यवहार से सिद्ध है कि (हरीतकी (हरड़) खाने वालों में जिसे उसके रस का ज्ञान नहीं है, उसे भी विरेचन होता है। ऐसा यहाँ नहीं समझना चाहिए क्योंकि उपासना और कर्म विभिन्न फल वाले हैं। उनका पृथक्फलत्व प्रसिद्ध ही है। मन्त्र में "तु" शब्द पक्षव्यावृत्ति के लिए है। ॐकार का, कर्माङ्ग मात्र विज्ञान कराना रसतमत्व,

---

१. इति कथमित्येतन्नान्यूनानतिरिक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धिक्यात्फलाधिक्यं युक्तमित्यभिप्रायः । दृष्टं हि लोके वणिक्शबरयोः पद्मरागादिमणिविक्रये वणिजो विज्ञानाधिक्यात्फलाधिक्यम् । तस्माद्यदेव विद्यया विज्ञानेन युक्तः सन्करोति कर्म श्रद्धया श्रद्दधानश्च सन्नुपनिषदा योगेन युक्तश्चेत्यर्थः । तदेव कर्म वीर्यवत्तरमविद्वत्कर्मणोऽधिकफलं भवतीति । विद्वत्कर्मणो वीर्यवत्तर[त्व]वचनादविदुषोऽपि कर्म वीर्यवदेव भवतीत्यभिप्रायः । न चाविदुषः कर्मण्यनधिकारः । औषस्त्ये काण्डेऽविदुषामप्यार्त्विज्यदर्शनात् । रसतमाप्तिसमृद्धिगुणवदक्षरमित्येकमुपासनम् । मध्ये

धिक्याद्विशिष्टाक्षरज्ञानस्येति यावत् । यत्तु पुनरुक्तं तयोश्च कर्मसामर्थ्यादेव फलं स्यादिति तत्राऽऽह—दृष्टं हीति । यत्त्वङ्गज्ञानत्वादिति तत्किमङ्गत्वे सति ज्ञानत्वं किं वाऽऽश्रित्य विहितत्वमथवैतदेव ज्ञानत्वविशेषितम् । नाऽऽद्यः । 'तन्निर्धारणानियमन्यायेनासिद्धेः । न द्वितीयो गोदोहने व्यभिचारात् । न तृतीयो दृष्टान्तस्य साधनविकलत्वादाज्यावेक्षणस्याऽऽश्रित्य विध्युदाहरणबहिर्भूतत्वादङ्गसंबन्धिज्ञानत्वमात्रेण दृष्टान्तत्वे सत्यङ्गत्वोपाधेः संभवादित्यभिप्रेत्य ज्ञानाधिक्ये फलाधिक्यमित्यत्रानन्तरवाक्यं योजयति—तस्मादिति । विज्ञानमुद्गीथाद्यङ्गमात्रविषयमुपासनातिरिक्तं तेनेति यावत् । योगो देवतादिविषयमुपासनम् । इतिशब्दस्तदर्थसमाप्त्यर्थः । तत्रैवार्थसिद्धमर्थं कथयति—विद्वदिति । नन्वर्थी समर्थो विद्वानपर्युदस्तश्च कर्मण्यधिकारीत्यङ्गीकारादविदुषस्तल्लक्षणानाक्रान्तस्यानधिकारात्कथं तत्कर्म वीर्यवदिति प्रतिज्ञायते तत्राऽऽह—न चेति । औषस्त्य उषस्तिसंबन्धे मटचीहतेष्वित्यादिके तस्मिन्ग्रन्थजाते विद्याहीनानामपि कर्मानुष्ठानं दृश्यते प्रस्तोतर्या देवतेत्यादौ तां चेदविद्वानित्यादिलिङ्गात् । तस्मादविदुषोऽपि कर्मण्यधिकारः । अधिकारिलक्षणे तु ज्ञानाभावेऽपि द्रव्यादिज्ञानमात्रेण विशेषणसिद्धिरित्यर्थः । गुणवदक्षरज्ञानं स्वतन्त्रफलमित्युक्तम् । तत्तु रसतमगुणवदक्षरविषयमेकमुपासनम् । तत्र च विध्युद्देशे फलस्याश्रुतत्वेऽपि विश्वजिन्न्यायेन [२]वा तत्कल्प्यते । आप्तिगुणवतः समृद्धिगुणवतश्चाक्षरस्य द्वे विज्ञाने प्रत्येकं फलश्रुतेः । तथा चात्र त्रीण्युपासनानि पृथक्फलानि विवक्षितानीत्यत आह—रसतमेति । न तावदिहोपासीतेतिविधिव्यतिरेकेण मध्ये विध्यन्तरमुपलभ्यते । न चाऽऽपयिता

आप्तिमत्त्व या समृद्धिगुणविशिष्ट ज्ञान कराना ही नहीं है, बल्कि उससे भी अधिक फल बतलाना अभीष्ट है। इसलिए अङ्गज्ञान से गुणवत् ज्ञानाधिक्य फल कहना ठीक ही है, यह आशय है। लोकव्यवहार में वणिक् और भील में पद्मरागादि मणि बेचने के अवसर पर वणिक् को अधिक ज्ञान होने के कारण फलाधिक्य होता है। इसलिए जो कोई भी विज्ञान, श्रद्धा एवं योग से युक्त होकर कर्म करता है, उसका वही कर्म अविद्वान् पुरुष के कर्म की अपेक्षा अधिक फल वाला होता है। बलवत्तर प्रयोग करने से जहाँ विद्वान् के कर्म का बलवत्तर होने का निर्देश है, वहाँ अविद्वान् का कर्म भी बलयुक्त होता ही है, यह आशय है। अविद्वान् का कर्म में अधिकार नहीं है—ऐसा कहना ठीक नहीं। उषस्त चाक्रायण के आख्यान (छा.उ. १.१०.१-११) में अविद्वान् का ऋत्विक् होना दिखाया गया है। रसतम,

१. "तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम्" (ब्र. सू. ३-३-४२)। तेषां कर्माङ्गाश्रितानां निर्धारणानामुपासनानामनियमः नित्यवदनुष्ठानाभावः । तस्यानियमस्य 'तेनोभौ कुरुत' इत्यादि श्रुतौ दर्शनात् । किंच "यदेव विद्यया करोती"त्यादि श्रुत्या कर्मफलतः पृथगेव वीर्यवत्तरत्वात्मककर्मसमृद्धिरूपोऽप्रतिबन्धः फलमतोऽपि न नित्यवदनुष्ठानं तेषामित्यर्थः । २. वाक्यानो रात्रिसत्रन्यायेनेति स्खलितं गमयति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध

निम्नाङ्कित आख्यायिका से प्राण उपासना श्रेष्ठ सिद्ध होती है

प्रसिद्ध है कि प्रजापति के पुत्र देवता (शास्त्रालोकित इन्द्रिय वृत्तियाँ) और असुर (विषयासक्त तमःप्रधान इन्द्रिय वृत्तियाँ) किसी निमित्त से परस्पर युद्ध करने लगे। उनमें से देवताओं ने

प्रयत्नान्तरादर्शनात्। अनेकैर्हि विशेषणैरनेकधोपास्यत्वात्खल्वेतस्यैव प्रकृतस्योद्गीथाख्यस्याक्षरस्योपव्याख्यानं भवति ॥ १० ॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

देवासुरा देवाश्चासुराश्च। देवा दीव्यतेर्द्योतनार्थस्य शास्त्रोद्भासिता इन्द्रिय-

---

ह वै कामानामित्यादिवाक्ये फलश्रुत्या विधिरुन्नेयः। रसतमगुणवदक्षरविज्ञानविधौ फलाकाङ्क्षिण्यर्थवादस्थफलांशान्वयेनानेकगुणवदेकविज्ञानविधिसंभवे विधिभेदकल्पनायोगान्नो खल्वर्थवादिकफलवदनेकविशेषणकैकोपासनविषयविध्यस्युपगमेन वाक्यैक्यसंभवे वाक्यं भेत्तुमुचितम्। एतेन विश्वजिन्न्यायो निरस्तः। रात्रिसत्रन्यायस्तु 'प्रकृताविरोधीति भावः। तस्योपव्याख्यानमित्युक्तस्योपसंहारवाक्यं खल्वेतस्येत्यादि, तत्रैतच्छब्देन प्रकृताकर्षणे कारणमाह—अनेकैरिति। रसतमाप्तिसमृद्धिरूपाण्यनेकानि विशेषणानि तैर्विशिष्टत्वेनाक्षरस्यानेकप्रकारेणोपास्यत्वात्। प्रकारभेदेऽप्युपासनैक्यस्य प्रागेवोक्तत्वात्प्रकृतस्यैवाक्षरस्यैतदुपव्याख्यानं यत्खलु विहितमित्यर्थः ॥१०॥

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

गुणत्रयविशिष्टमुद्गीथावयवभूतमोंकाराख्यमक्षरं परमात्मप्रतीकं तद्बुद्ध्योपास्यमित्युपदिष्टमिदानीं तस्यैवाक्षरस्याध्यात्माधिदैवभेदेनाऽऽदित्यप्राणदृष्ट्योपासनं विवक्षन्कण्डिकान्तरमवतारयति—देवासुरा इति। तत्राक्षराणि व्याचिख्यासुरप्रतिभान्युदासार्थं विवक्षितं समासं दर्शयति—देवाश्चेति। देवशब्दनिष्पत्तिप्रकारं सूचयति—देवा इति। दीव्यतिर्द्योतनार्थः "दिवु क्रीडाविजीगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु" इति दर्शनात्तस्य चाजन्तस्य सति गुणे कर्तरि यथोक्तरूपसिद्धिरित्यर्थः। ते च द्योतका देवा रूढेरिन्द्रादयो भविष्यन्तीत्याशङ्क्याऽऽह—शास्त्रेति। इत्यध्यात्म-

---

आप्ति एवं समृद्धिगुणयुक्त अक्षर है, यह एक प्रकार की उपासना है क्योंकि बीच में विधानान्तर की उपलब्धि नहीं होती। अनेक विशेषणों से विशिष्ट अनेक प्रकार से उपास्य होने के कारण निश्चय ही यह सब कुछ इस उद्गीथसंज्ञक अक्षर का ही व्याख्यान है ॥ १० ॥

मन्त्र में देवताओं और असुरों के द्वन्द्व को देवासुर कहा गया है। 'दिव्' द्योतनार्थक धातु से निष्पन्न होने के कारण शास्त्रप्रद्योदित सत्त्वात्मक इन्द्रियवृत्तियाँ ही देव है। सात्त्विक इन्द्रियवृत्तियों

---

१. प्रकृताविरोधीति—तेन हि फलश्रुत्या विधिकल्पनायां ग्लृप्त एवोपक्रमोक्तो विधिः संबध्यत इति नैकवाक्यत्वं भज्यत इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवा उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति ॥१॥

यह निश्चय किया, कि इस उद्गीथ के द्वारा हम असुरों को जीत लेंगे, ऐसा निश्चय कर उद्गीथ का अनुष्ठान किया ॥१॥

वृत्तयः। असुरास्तद्विपरीताः स्वेष्वेवासुषु विष्वग्विषयासु प्राणनक्रियासु रमणात्स्वाभाविक्यस्तमआत्मिका इन्द्रियवृत्तय एव। ह वा इति पूर्ववृत्तोद्भासकौ निपातौ। यत्र यस्मिन्निमित्त इतरेतरविषयापहारलक्षणे संयेतिरे। संपूर्वस्य यततेः संग्रामार्थत्वमिति संग्रामं कृतवन्त इत्यर्थः। शास्त्रीयप्रकाशवृत्त्यभिभवनाय प्रवृत्ताः स्वाभाविक्यस्तमोरूपा इन्द्रियवृत्तयोऽसुराः। तथा तद्विपरीताः शास्त्रार्थविषयविवेकज्योतिरात्मानो देवाः स्वाभाविकतमोरूपासुराभिभवनाय प्रवृत्ता इत्यन्योन्याभिभवोद्भवरूपः संग्राम इव सर्वप्राणिषु प्रतिदेहं देवासुरसङ्ग्रामोऽनादिकालप्रवृत्त इत्यभिप्रायः। स इह श्रुत्या-

---

मित्युपसंहारविरोधात्प्रसिद्धेरेव हेयत्वादुपासकशरीरस्थकरणावस्था देवाः सत्त्वात्मकाः शास्त्रानुसारिणो देवशब्दवाच्या इत्यर्थः। तथाऽसुरा विरोचनादयः स्युरित्याशङ्क्य पूर्ववदुपसंहारविरोधमभिप्रेत्याऽऽह—असुरा इति। असुरा इन्द्रियवृत्तय एवेति संबन्धः। सात्त्विकेन्द्रियवृत्तिभ्यो वैपरीत्यं तासामसुरत्व-सिद्ध्यर्थं दर्शयति—तद्विपरीता इति। तासामसुरशब्दवाच्यत्वे निमित्तान्तरमाह—स्वेष्वेवेति। विष्वग्विषयासु विष्वञ्चो[1] नानागतयो विषया यासां तास्विति यावत्। प्राणनक्रियासु जीवनानुकूल-प्राणचेष्टास्वित्यर्थः। तदेव स्फोरयति—स्वाभाविक्य इति। शास्त्रापेक्षामन्तरेणैव स्वभाववशात्प्रवर्त-मानत्वं स्वाभाविकत्वम्। यथा च शास्त्रीयेन्द्रियवृत्तिभ्यो वैपरीत्यममूषामतिविशदमित्यर्थः। वैपरीत्यान्तरमाह—तमआत्मिका इति। कथं मिथो विषयापहारं निमित्तीकृत्य देवानामसुराणां [च] सङ्ग्रामोऽभूदित्यपेक्षायामासुरीं वृत्तिं प्रकटयति—शास्त्रीयेति। दैवीं वृत्तिं प्रथयति—तथेति। देवानामुक्तासुरवैपरीत्यं स्फुटयति—शास्त्रेति। स्वाभाविकः शास्त्रानपेक्षस्तमोरूपपाप्मासुरः परिच्छेदाभिमानस्तस्य तिरस्करणार्थमिति यावत्। उक्तमाध्यात्मिकसङ्ग्रामं निगमयति—इत्यन्योन्येति। उक्तरीत्या यथोक्तानां देवानामसुराणां च पराभिभवः स्वोद्भवश्चेत्येवंरूपः सङ्ग्रामः प्रतिदेहमनादिकालप्रवृत्तो यथा देवासुरसङ्ग्रामस्तथेति योजना। किमर्थं पुनरपुरुषार्थरूपो देवासुर-सङ्ग्रामः श्रुत्या श्राव्यते तत्राऽऽह—स इहेति। स हि सङ्ग्रामोऽस्मिन्प्रकरणे प्राणस्य विशुद्धित्रिषयं-

---

से विपरीत बहुविध विषयों में प्राणनक्रिया में व्यापृत शास्त्र बहिर्मुख स्वभाव से प्रेरित तमोयुक्त इन्द्रिय-वृत्तियाँ ही असुर हैं। "ह" एव "वै" पूर्वकथन को प्रकाशित करने वाले निपात हैं। ये दोनों किसी कारण से परस्पर युद्ध करने लगे। 'सम्' पूर्वक 'यत' धातु संग्राम अर्थ में प्रसिद्ध होने से 'संग्राम करने लगे' यह अर्थ हुआ। शास्त्रालोकित सत्त्वप्रधान वृत्तियों को दबाने के लिए स्वभावप्रेरित तमोप्रधान इन्द्रियवृत्तियों के प्रतीक असुर प्रवृत्त होते हैं। उसके विपरीत शास्त्रार्थविषय विवेक ज्योति रूप देवता

---

१. विष्वञ्च इति—विष्विवत्यव्ययं नानेत्यर्थे तत्पूर्वकादञ्चेः क्विन्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust Funding IKS-MoE-Grant-2

यदा च तदुद्गीथं कर्माऽऽजिहीर्षवस्तदा—

ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासांचक्रिरे त७

प्राण आदि का असुरों से पराभव

पहले देवताओं ने नासिका में रहने वाले घ्राण की उद्गीथ रूप से उपासना की। किन्तु

ऽऽख्यायिकारूपेण धर्माधर्मोत्पत्तिविवेकविज्ञानाय कथ्यते प्राणविशुद्धिविज्ञानविधिपरतया। अत उभयेऽपि देवासुराः प्रजापतेरपत्यानीति प्राजापत्याः। प्रजापतिः कर्मज्ञानाधिकृतः पुरुषः। "पुरुष एवोक्थमयमेव महान्प्रजापतिः" इति श्रुत्यन्तरात्। तस्य हि शास्त्रीयाः स्वाभाविकश्च करणवृत्तयो विरुद्धा अपत्यानीव तदुद्भवत्वात्। तत्त्रोत्कर्षापकर्षलक्षणनिमित्ते ह देवा उद्गीथमुद्गीथभक्त्युपलक्षितमौद्गात्रं कर्माऽऽजह्रुराहृतवन्तः। तस्यापि केवलस्याऽऽहरणासंभवाज्ज्योतिष्टोमाद्याहृतवन्त इत्यभिप्रायः। तत्किमर्थमाजह्रुरित्युच्यते। अनेन कर्मणैनानसुरानभिभविष्याम इत्येवमभिप्रायाः सन्तः ॥ १ ॥

विज्ञानं विधातुं प्रवृत्तः। तथा श्रुत्या कथारूपेणाऽऽख्यायते। इन्द्रियाणां विषयवैमुख्ये धर्मः स्यात्तेषां तदाभिमुख्ये पापस्योत्पत्तिरितिविवेकविज्ञानसिद्धयर्थं चाऽऽख्यायिका प्रणीयते। तस्मादिन्द्रियाणां प्रयत्नतो विषयप्रावण्यं परिहर्तव्यम्। तद्वैमुख्यं च तेषां श्रेयोर्थिभिर्यत्नादाधेयमिति भावः। यजमानप्राणानामेव देवासुरभावस्योक्तत्वमतःशब्दार्थः। प्रजापतिशब्दस्य रूढमर्थमपाकृत्य विवक्षितमर्थमाह—प्रजापतिरिति। उक्तरूपः पुरुषः प्रजापतिरित्यत्र गमकमाह—पुरुष एवेति। कथं पुनर्यथोक्तानां देवासुराणां तदपत्यत्वं तत्राऽऽह—तस्य हीति। यत्रेत्युक्तं सङ्ग्रामनिमित्तं परामृशति—तत्त्रेति। देवानामुत्कर्षोऽपकर्षश्चासुराणामित्यस्मिन्निमित्ते कथमुद्गीथभक्त्याहरणमित्याशङ्क्याऽऽह—उद्गीथेति। लक्षितलक्षणान्यायं सूचयति—तस्यापीति। उद्गीथभक्तेरिवेत्यपेरर्थः। तदाहरणप्रयोजनं प्रश्नपूर्वकं कथयति—तत्किमर्थमित्यादिना ॥१॥

संप्रत्युद्गीथाहरणप्रकारं प्रकटयति—यदा चेति। अचेतनस्य करणस्योद्गातृत्वासंभवा-

शास्त्रानपेक्ष तमोरूप पाप्मा असुरों को दबाने के लिए प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार सात्त्विक एवं तामसिक वृत्तियों का परस्पर उत्थान और पतन रूप संग्राम समस्त प्राणियों में अनादि काल से चला आ रहा है। उसी का धर्माधर्म-उत्पत्तिविवेक विज्ञान एवं प्राणविशुद्धि विज्ञान के लिए श्रुति द्वारा यहाँ आख्यायिका रूप से प्रतिपादित किया जाता है। देवता और असुर दोनों ही प्रजापति की सन्तति होने के कारण प्राजापत्य कहे जाते हैं। औपनिषदविज्ञान में कर्म व ज्ञान से अधिकृत पुरुष ही प्रजापति है। 'पुरुष ही उक्थ है एवं यही महान् प्रजापति है' ऐसी श्रुति भी इसमें ज्ञापक है। जिस प्रकार एक ही पुरुष की सन्तान विरुद्ध स्वभाव वाली होती है; उसी प्रकार उस प्रजापति की सात्त्विक एवं तामस विरुद्ध स्वभाव वाली अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं। उसमें दैवी वृत्तियों के उत्कर्ष एवं आसुरी वृत्तियों के अपकर्ष के लिए देवताओं ने उद्गीथ उपासना से उपलक्षित औद्गात्र कर्म का अनुष्ठान किया। इस कर्म से असुरों को हरा देंगे, इसी अभिप्राय से अनुष्ठान किया ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः ॥ २ ॥

असुरों ने अधर्म और आसक्ति पाप से घ्राणदेव को बिंध दिया। अतएव घ्राण से वह सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों ही को सूँघता है क्योंकि वह पाप से विंधा हुआ है ॥२॥

ते ह देवा नासिक्यं नासिकायां भवं चेतनावन्तं घ्राणं प्राणमुद्गीथकर्तारमुद्गातारमुद्गीथभक्त्योपासांचक्रिरे [उपासनं] कृतवन्त इत्यर्थः। नासिक्यप्राणदृष्ट्योद्गीथाख्यमक्षरमोंकारमुपासांचक्रिर इत्यर्थः। एवं हि प्रकृतार्थपरित्यागोऽप्रकृतार्थोपादानं च न कृतं स्यात्। खल्वेतस्यैवाक्षरस्येत्योंकारो ह्युपास्यतया प्रकृतः। ननूद्गीथोपक्षितं कर्माऽऽहृतवन्त इत्यवोच इदानीमेव कथं नासिक्यप्राणदृष्ट्योंकारमुपासांचक्रिर इत्यात्थ। नैष दोषः। उद्गीथकर्मण्येव हि तत्कर्तृ प्राणदेवतादृष्ट्योद्गीथभक्त्यवयवश्चोंकार उपास्यत्वेन विवक्षितो न स्वतन्त्रोऽतस्तादर्थ्येन कर्माऽऽहृतवन्त इति

द्विशिनष्टि—चेतनावन्तमिति। मुख्यं प्राणं व्यावर्तयति—घ्राणमिति। तत्रं न उद्गायेतिवाजसनेयकश्रुतिमाश्रित्याऽऽह—उद्गीथकर्तारमिति। अथोद्गीथभक्तिरेव श्रूयते न तूद्गाता तत्कथं तदुपासनमित्याशङ्क्याऽऽह—उद्गीथभक्त्येति। तयोपलक्षितमुद्गातारमुपासत इति यावत्। कथमुपासनमित्यपेक्षायामुद्गीथकर्तृत्वप्रार्थनयेत्याह—कृतवन्त इति। ते ह नासिक्यमित्यक्षरोक्तमर्थमुक्त्वा वाक्यार्थमाह—नासिक्येति। किमित्यक्षरमोंकाराख्यमिहोपास्यत्वेन व्याख्यायते तत्राऽऽह—एवं हीति। उक्तमेव स्फुटयति—खल्विति। तथा च प्राणस्योद्गातृदृष्ट्योपासने प्रकृतस्य परित्यागो भक्तेश्च प्राणप्राणदृष्ट्योपास्यत्वाङ्गीकारेऽप्रकृतोपादानमिति शेषः। पूर्वापरविरोधमाशङ्कते—नन्विति। उद्गीथोपलक्षितेनौद्गात्रेणोपलक्षितं ज्योतिष्टोमादि कर्माऽऽहृतमित्युक्तं तदाहरणं च तस्योपासनं तद्विरुद्धं नासिक्यप्राणदृष्ट्याऽक्षरोपासनवचनमित्यर्थः। स्वोक्तेर्मिथो विरोधं परिहरति—नैष दोष इति। उद्गीथोपलक्षितकर्मोपलक्षिते ज्योतिष्टोमादौ कर्मणि सत्येवोद्गातृप्राणदृष्ट्योपास्यत्वेनाक्षरं विवक्षितम्। ओंकारश्चोद्गीथावयवो ध्येयत्वेनेष्टो न स्वतन्त्रो व्यापकः। तथा चाक्षरोपासनार्थत्वेन कर्माहरणं न

औद्गात्र कर्मानुष्ठान करने के समय पहले देवताओं ने नासिका में रहने वाले चेतनावान् अमुख्य प्राण उद्गीथकर्ता की उद्गीथ रूप से उपासना की अर्थात् नासिका में रहने वाले प्राणरूप उद्गीथाख्य ओंकार अक्षर की उपासना की। इससे प्रकरणार्थ का परित्याग एवं प्रकरणभिन्न अर्थ का ग्रहण करना संभव नहीं होगा। इसी अक्षर की ओंकाररूप से उपासना प्रतिपादन करना ही प्रकरण है। इस पर शङ्का होती है, पहले तो औद्गात्र कर्म का अनुष्ठान करने लगे--ऐसा कहा था, अब नासिका में रहने वाले अमुख्य प्राण दृष्टि से ओंकार की उपासना करने लगे—ऐसा कहते हो। इसमें कोई विरोध नहीं आता। औद्गात्र कर्म में ही तत्कर्तृक प्राणदेवता रूप से उद्गीथ उपासना के अवयव ओंकार को उपास्य रूप से वर्णन किया गया; स्वतन्त्र रूप से नहीं। इसलिए औद्गात्र कर्म का अनुष्ठान किया, यह कहना उचित ही है। स्वाभाविक तमोप्रधान असुरों ने देवताओं द्वारा वरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युक्तमेवोक्तम् । तमेवं देववृतमुद्गातारं हासुराः स्वाभाविकतमआत्मानो ज्योतीरूपं नासिक्यं प्राणं देवं स्वोत्थेन पाप्मनाऽधर्मासङ्गरूपेण विविधुर्विद्धवन्तः संसर्गं कृतवन्त इत्यर्थः । स हि नासिक्यः प्राणः कल्याणगन्धग्रहणाभिमानासङ्गाभिभूतविवेकविज्ञानो बभूव । स तेन दोषेण पाप्मसंसर्गी बभूव । तदिदमुक्तमसुराः पाप्मना विविधुरिति । यस्मादासुरेण पाप्मना विद्धस्तस्मात्तेन पाप्मना प्रेरितो घ्राणः प्राणो दुर्गन्धिग्राहकः प्राणिनाम् । अतस्तेनोभयं जिघ्रति लोकः सुरभि च दुर्गन्धि च । पाप्मना ह्येष यस्माद्विद्धः । उभयग्रहणमविवक्षितम् । यस्योभयं हविरार्तिमार्छतीति यद्वत् । यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रतीति समानप्रकरणश्रुतेः ॥ २ ॥

ध्येयत्वेनेत्यविरोध इत्यर्थः । आश्रित्य विधानार्थं कर्माहरणमित्युक्त्वा तं हेत्यादि व्याचष्टे—तमेवमिति । स्वोत्थेन चाऽऽसुरेण नासिकासंबद्धेनेति यावत् । अधर्मादासङ्गस्तद्रूपेणेत्येतस्याऽऽसङ्गवेधं साधयति—स हीति । कल्याणो गन्धः सुरभिरुक्तस्तस्य ग्रहणे ममैवेत्यभिमानात्मा योऽयमासङ्गस्तेनाभिभूतमुपकारो गन्धाघ्राणकृतस्तुल्यः सर्वस्य कार्यकरणसंघातस्येति विवेकविज्ञानं यस्य स तथेति विग्रहः । ननु कथं यथोक्तासङ्गस्पर्शितेत्याशङ्क्याऽऽह—स तेनेति । उक्तेऽर्थे वाक्यं पातयति—तदिदमिति । घ्राणप्राणस्याऽऽसुरपाप्मविद्धत्वे कार्यलिङ्गकमनुमानं सूचयति—यस्मादिति । उक्तानुमानावद्योति वाक्यं व्याकरोति—अत इति । अतःशब्दार्थमेव स्पष्टयति—पाप्मनेति । ननु पाप्मना विद्धत्वात्तेन लोको दुर्गन्धं जानातीत्येव वक्तव्यं सुरभिज्ञानस्य पाप्मकर्मत्वाभावात् । तथा च कथं तेनोभयं जिघ्रतीत्युक्तं तत्राऽऽह—उभयग्रहणमिति । एकस्यापि हविषो द्रवात्मकस्य पुरोडाशादेर्वा काकादिसंबन्धाद्भ्रंशे प्रायश्चित्तसत्त्वेऽपि यस्योभयं हविरार्तिमार्छति स ऐन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेदित्यत्रोभयग्रहणमविवक्षितमिति स्थितं प्रथमे तन्त्रे तथाऽत्रापीत्याह—यस्येति । न केवलं पाप्मना हीति वाक्यशेषादत्रोभयग्रहणमविवक्षितं किंतु वाजसनेयके यथोक्तोद्गीथविद्याविषयत्वेन समानप्रकरणे यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मेति श्रुतेरत्रापि पाप्मवेधवशाद्दुर्गन्धं जानातीत्येव वक्तव्यत्वादविवक्षितमुभयग्रहणमित्याह—यदेवेति ॥२॥

किए ज्योतिस्वरूप नासिक्य प्राणरूप उद्गाता को अपने अधर्म और आसङ्ग रूप पाप से संसृष्ट कर दिया । इससे नासिका में रहने वाले प्राण को यह अभिमान व आसक्ति हो गई कि जितनी भी सुखद सुगन्धि है, वह सब मेरे ही कारण हैं । इस दोष से वह पाप से लिंपायमान हो गया । इसी से मन्त्र में कहा है—असुरों ने दैवी वृत्तियों को पाप से युक्त कर दिया । आसुरी पाप से संसिक्त होने के कारण उस पाप से प्रेरित अमुख्य प्राणरूपघ्राण प्राणियों को दुर्गन्धि ग्रहण कराता है । इसलिए घ्राण से मनुष्य सुगन्ध और दुर्गन्ध दोनों को सूँघता है क्योंकि वह पाप से संसृष्ट है । मन्त्र में "उभय" पद का ग्रहण आवश्यक नहीं है तो भी उसका ग्रहण किया जाता है । जिस प्रकार मीमांसाशास्त्र में (एकविध हवि होने पर भी द्रवात्मक या पुरोडाशादि की कल्पना कर) जो उभयविध हवि आर्ति में डालता है, वह इन्द्रसंबन्धी पाँच कसोरों में चावल डालें—यहाँ भी उभय पद अविवक्षित है । उद्गीथविद्यारूप समान प्रकरण होने पर श्रुति में कहा है 'जो इस प्रकार इस दुर्गन्ध को सूँघता है, वही पापी है' ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ह वाचमुद्गीथमुपासांचक्रिरे ताꣳ हासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा ॥ ३ ॥

अथ च चक्षुरुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ४ ॥

अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ शृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ५ ॥

तत्पश्चात् देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से वाणी की उपासना की, किन्तु असुरों ने उसे भी उक्त रीति से पाप के द्वारा वेध डाला। इसी से लोग वाणी द्वारा सत्य और असत्य दोनों ही प्रकार की बात बोलते हैं, क्योंकि वह वाणी आसक्तिरूप पाप से बिंधी हुई है ॥३॥

फिर देवताओं ने उद्गीथरूप से चक्षु की उपासना की, असुरों ने उसे भी उक्तरीत्या पाप से वेध दिया। अतएव नेत्र से देखने योग्य और अयोग्य दोनों प्रकार की वस्तुओं को देखता है, क्योंकि वह नेत्र विषयासक्तिरूप से बिंधा हुआ है ॥४॥

पुनः देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से श्रोत्र की उपासना की। पूर्वोक्त असुरों ने उसे भी पाप से वेध डाला। इसी से लोग सुनने योग्य और अयोग्य दोनों ही प्रकार की बात श्रोत्र से सुनते हैं। क्योंकि विषयासक्तिरूप पाप से बिंधा हुआ है ॥५॥

मुख्यप्राणस्योपास्यत्वाय तद्विशुद्धत्वानुभवार्थोऽयं विचारः श्रुत्या प्रवर्तितः। अतश्चक्षुरादिदेवताः क्रमेण विचार्याऽऽसुरेण पाप्मना विद्धा इत्यपोह्यन्ते। समानमन्यत्,

---

ननु नासिक्यस्य प्राणस्य पाप्मविद्धत्वादनुपास्यत्वे सिद्धे न्यायसाम्याद्वागादीनामपि नोपास्यत्वमिति सिध्यति तत्किमुत्तरग्रन्थेनेत्यत आह—मुख्यप्राणस्येति। न्यायसाम्येऽपि मुखतो निराकरणाभावे मुख्यप्राणस्यैवोपास्यत्वमित्यनिश्चयात्तदुपास्यतादार्ढ्यार्थं मुखतो वागादीनामुपास्यत्वमपाकर्तुमुत्तरग्रन्थ इत्यर्थः। विद्धा इति विचार्य क्रमेणापोह्यन्त इति संबन्धः। उत्तरवाक्येष्वक्षरव्याख्यानमनपेक्षितं पूर्वेण समानत्वादित्याह—समानमिति। [1]अवशिष्टवाक्यैकदेशग्रहणार्थमादिपदम्।

(नासिका में रहने वाले प्राण के पापयुक्त होने से अनुपास्य सिद्ध होने से वागादिकों का भी उपास्यत्व सिद्ध होना कठिन है, अतः) मुख्य प्राण के उपास्यत्व सिद्धि के लिए उसकी विशुद्धि होने से अनुभव के लिए यह विचार श्रुति द्वारा प्रारम्भ किया जाता है। इसी से चक्षु आदि देवताओं का

---

१. वाक्यैकदेशान्वितमवशिष्टत्वम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ह मन उद्गीथमुपासांचक्रिरे तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳ संकल्पयते संकल्पनीयं चासंकल्पनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम् ॥ ६ ॥

अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तꣳ हासुरा ऋत्वा विदध्वंसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसेत ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि में मन की उपासना की, बेचारे मन को भी असुरों ने पाप से ही वेध डाला। अतएव संकल्प के योग्य और अयोग्य दोनों ही प्रकार के पदार्थों का संकल्प मन से लोग करते हैं क्योंकि वह भी तो पाप से बिंधा हुआ है ॥६॥

मुख्य प्राण से असुरों की हार

तदनन्तर जो यह प्रसिद्ध मुख के भीतर प्राणवायु है, देवताओं ने उद्गीथ दृष्टि से उसकी उपासना की। किन्तु उस प्राण के निकट जाकर असुर ऐसे ही विध्वस्त हो गये, मानो अभेद्य पाषाण-खण्ड के पास जाकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो गया हो ॥७॥

अथ ह वाचं चक्षुः श्रोत्रं मन इत्यादि। अनुक्ता अप्यन्यास्त्वग्रसनादिदेवता द्रष्टव्याः। "एवमु खल्वेता देवताः पाप्मभिः" इति श्रुत्यन्तरात् ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

आसुरेण विद्धत्वाद्घ्राणादिदेवता अपोह्याथानन्तरं य एवायं प्रसिद्धो मुखे भवो मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासांचक्रिरे तं हासुराः पूर्ववद्दत्वा प्राप्य विदध्वंसुर्विनष्टा

ननु घ्राणादीनां पाप्मविद्धत्वादनुपास्यत्वेऽपि त्वगादीनां तद्विद्धत्वेनानुपास्यत्वावचनात्मुख्यस्यैव प्राणस्योपास्यत्वं नावसीयते तत्राऽऽह—अनुक्ता इति। उक्तानामनुक्तोपलक्षणत्वे बृहदारण्यकश्रुतिं संवादयति—एवमु खल्विति ॥३॥४॥५॥६॥

अथ हेत्यादि मुख्यप्राणविषयं वाक्यमुत्थाप्य व्याकरोति—आसुरेणेत्यादिना। पूर्ववद्वागादि-

---

यथाक्रम विचार कर 'वे भी आसुरी पाप से संसृष्ट हो गये'—कहकर उनके उपास्यत्व होने का खण्डन किया जाता है। वाक्, चक्षु, श्रोत्र एवं मनादि की भी यही स्थिति हुई, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। छान्दोग्य उपनिषत् में अनुक्त अन्य भी त्वक्-रसनादि देवताओं की यही स्थिति समझ लेनी चाहिए। "यह जो निषिद्ध संकल्प करता है, वही यह पाप है इस प्रकार इन देवताओं को निःसन्देह पाप का संसर्ग हुआ और ऐसे ही असुरों ने इन्हें पाप से बेध डाला" इत्यादि बृहदारण्यक श्रुति भी है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

घ्राणादि देवताओं का आसुरी वृत्ति से लिपायमान होने से उनका उपास्यत्व सिद्ध न होने से इसके पश्चात् जो यह प्रसिद्ध मुख के भीतर प्राणवायु है, उसकी उद्गीथ रूप से उपासना की। पहले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवं यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳ हैव स विध्वꣳसते य एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः ॥ ८ ॥

प्राण उपासक की महिमा

जैसे (टँकों से भी न टूटने वाले) दुर्भेद्य पाषाण को प्राप्त कर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है वैसे ही वह व्यक्ति विध्वस्त हो जाता है, जो इस प्रकार जानने वाले उपासक पुरुष के प्रति पापाचरण करना चाहता है, या जो इसे ताड़नादि करता है क्योंकि वह प्राण उपासक के समान दुर्धर्ष है ।८।।

अभिप्रायमात्रेण । अकृत्वा किंचिदपि प्राणस्य कथं विनष्टा इत्यत्र दृष्टान्तमाह—यथा लोकेऽश्मानमाखणं न शक्यते खनितुं कुद्दालादिभिरपि भेत्तुं न शक्योऽखण एवाऽऽखणस्तमृत्वा सामर्थ्याल्लोष्टः पांसुपिण्डः वा श्रुत्यन्तराच्चाश्मनि क्षिप्तोऽश्मभेदनाभिप्रायेण तस्याश्मनः किंचिदप्यकृत्वा स्वयं विध्वंसेत विदीर्येतैवं विदध्वंसुरित्यर्थः ॥ ७ ॥

एवं विशुद्धोऽसुरैरधर्षितत्वात्प्राण इति । एवंविदः प्राणात्मभूतस्येदं फलमाह—यथाऽश्मानमिति । एष एव दृष्टान्तः । एवं हैव स विध्वंसते विनश्यति । कोऽसावित्याह—य एवंविदि यथोक्तप्राणविदि पापं तदनर्हं कर्तुं कामयत इच्छति यश्चाप्येन-

---

च्छिवेति यावत् । टङ्कैश्च विदारकैर्लोहविशेषैरित्यर्थः । अश्रुतस्य लोष्टस्यात्रोपादाने हेतुमाह—सामर्थ्यादिति । तस्य ध्वंसनयोग्यत्वाद्ध्वंसतेश्च कर्त्रपेक्षत्वादित्यर्थः । तर्हि यस्य कस्यचिदेवंविधस्य संभवादलं लोष्टग्रहणेनेत्याशङ्क्य "यथाऽश्मानमृत्वा लोष्टो विध्वंसेत" इति बृहदारण्यकश्रुतेस्तस्यैवात्र ग्रहणमित्याह—श्रुत्यन्तराच्चेति ॥७॥

दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकाभ्यां सिद्धमर्थं निगमयति—एवमिति । प्राणस्य विशुद्धत्वात्तदुपासनं कर्तव्यमिति शेषः । फलवचनमवतार्य व्याकरोति—एवंविद इत्यादिना । प्राणवित्प्रतिस्पर्धिनो विनाशे

की तरह इस बार असुर उसको दबाने गये किन्तु बिना कुछ किए विनष्ट हो गए । मुख्य प्राण का कुछ भी बिगाड़े बिना कैसे विनष्ट हो गए, इस पर दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है—जिस प्रकार कुदालादि द्वारा भी अभेद्य पाषाणखण्ड के पास जाकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है । बृहदारण्यक श्रुति में प्रतिपादित किया है—जैसे पत्थर के टकराने पर मिट्टी का ढेला चूर-चूर हो जाता है; वैसे ही वे असुर लोग भी प्राण से टकराने पर बिना कुछ उसका बिगाड़े स्वयं 'विध्वस्त होकर अनेक प्रकार से नष्ट हो गए ॥ ७ ॥

असुरों द्वारा अपराजित होने से विशुद्ध मुख्य प्राण की उपासना करनी चाहिए । इस प्रकार जानने वाले प्राणात्मभूत का फल 'यथाऽश्मानम्...' मन्त्र से कहा जाता है । जो इस प्रकार जानने वाले यथोक्तप्राणवेत्ता उपासक पुरुष के प्रति उसके अयोग्य पापाचरण करना चाहता है अथवा इसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान्प्राणानवति ।

लोग इस मुख्य प्राण के द्वारा न सुगन्ध को और न दुर्गन्ध को ही जानते हैं, क्योंकि वह प्राण आसक्तिरूप पाप से पराभूत नहीं है। अतः यह प्राण जो कुछ खाता है या पीता है, उससे अन्य

मभिदासति हिनस्ति प्राणविदं प्रत्याक्रोशताडनादि प्रयुङ्क्ते सोऽप्येवमेव विध्वंसत इत्यर्थः। यस्मात्स एष प्राणवित्प्राणभूतत्वादश्माखण इवाश्माखणोऽधर्षणीय इत्यर्थः। ननु नासिक्योऽपि प्राणो वाय्वात्मा यथा मुख्यस्तत्र नासिक्यः प्राणः पाप्मना विद्धः प्राण एव सन्न मुख्यः कथम्। नैष दोषः। नासिक्यस्तु स्थानकरणवैगुण्याद्विद्धो वाय्वात्माऽपि सन्मुख्यः स्थानदेवताबलीयस्त्वा न्न[1] विद्ध इति युक्तम्। यथा वास्यादयः शिक्षावत्पुरुषाश्रयाः कार्यविशेषं कुर्वन्ति नान्यहस्तगतास्तद्वद्दोषवद्घ्राणसचिवत्वाद्विद्धा प्राणदेवता न मुख्यः ॥८॥

यस्मान्न विद्धोऽसुरैर्मुख्यस्तस्मान्नैवैतेन सुरभि दुर्गन्धि वा विजानाति घ्राणेनैव

हेतुमाह—यस्मादिति। नासिक्यप्राणस्य मुख्यप्राणस्य च वायुविकारत्वेन प्राणत्वाविशेषात्पाप्मना वेधावेधौ तुल्यावेव स्यातामिति शङ्कते—नन्विति। स्थानविशेषसंबन्धासंबन्धाभ्यां द्वयोरपि पाप्मवेधावेधव्यवस्था युक्तेति परिहरति—नैष दोष इति। स्थानावस्थावच्छिन्ने करणे वैगुण्यं विषयविशेषासक्तत्वं तस्मात्तद्रूपस्य नासिक्यप्राणस्यापि विद्धता स्यादिति यावत्। तदसंभवाद्विशेषसंबन्धप्रयुक्तवैगुण्यायोगादित्येतत्। युक्तमुपपन्नम्। स्थानसंबन्धविशेषाद्घ्राणप्राणस्य पाप्मविद्धत्वं तदभावाच्च मुख्यप्राणस्य तदविद्धत्वमित्येतद्दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। न मुख्यो दोषवद्घ्राणसचिवत्वाभावादिति शेषः ॥८॥

घ्राणदेवता विद्धा प्राणदेवता तु न विद्धेत्यत्र गमकत्वेनानन्तरवाक्यं व्याचष्टे—यस्मादिति।

डाँटता, फटकारता व मारता है, वह व्यक्ति भी उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे दुर्भेद्य पाषाण को प्राप्त कर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है। भावाशय यह है कि वह प्राणवेत्ता प्राणरूप होने के कारण प्रस्तर खण्ड के समान दुर्जेय है। यहाँ शङ्का होती है—नासिक्य प्राण और मुखान्तर्गत प्राण दोनों ही वायु के विकार हैं तो फिर नासिक्य प्राण ही क्यों पाप से बेध दिया जाता है; मुख्य प्राण क्यों नहीं ? ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है। नासिक्य प्राण वायु का विकार होते हुए भी अवस्थाविशिष्ट इन्द्रिय के विषय से आसक्ति के कारण बिधा गया, स्थान देवता के बलवान् होने के कारण मुख्य प्राण नहीं बिधा गया—यह सिद्ध हुआ। जिस प्रकार पुरुषाश्रित मुखादि शिक्षा के अनुरूप कार्य विशेष करते हैं; अन्य हस्त के अधीन नहीं, इसी प्रकार घ्राण सहकारी के अभाव होने से घ्राणदेवता बिध जाता है; मुख्य प्राण नहीं ॥ ८ ॥

---

१. न विद्ध इत्यनन्तरं तदसंभवादिति पाठः पतित इति टीकातोऽवगम्यते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतमु एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति ॥ ९ ॥

घ्राणादि इन्द्रियों का ही पोषण करता है। अन्त (मरणकाल) में इस मुख्य प्राण को न प्राप्त कर घ्राणादि प्राण समुदाय शरीर से निकल जाता है। अतएव मरण के समय में पुरुष मुख फाड़ देता है ॥९॥

तदुभयं विजानाति लोकः। अतश्च पाप्मकार्यादर्शनादपहतपाप्माऽपहतो विनाशितोऽपनीतः पाप्मा यस्मात्सोऽयमपहतपाप्मा ह्येष विशुद्ध इत्यर्थः। यस्माच्चाऽऽत्मंभरयः कल्याणाद्यासङ्गवत्त्वाद्घ्राणादयो न तथाऽऽत्मंभरिर्मुख्यः किं तर्हि सर्वार्थः। कथमिति, उच्यते—तेन मुख्येन यदश्नाति यत्पिबति लोकस्तेनाशितेन पीतेन चेतरान्घ्राणादीनवति पालयति। तेन हि तेषां स्थितिर्भवतीत्यर्थः। अतः सर्वंभर[1] प्राणोऽतो विशुद्धः। कथं पुनर्मुख्याशितपीताभ्यां स्थितिरेषां गम्यत इति, उच्यते—एतं (तमु एव) मुख्यं प्राणं मुख्यप्राणस्य वृत्तिमन्नपाने इत्यर्थः। अन्ततोऽन्ते मरणकालेऽवित्त्वाऽलब्ध्वो-

---

मुख्यप्राणस्य पाप्मवेधाभावमुपसंहरति—अतश्चेति। पाप्मकार्यमासङ्गस्तस्य प्राणेऽनुपलम्भादित्यतः-शब्दस्यैवार्थः। हिशब्देनोक्तं पाप्मावेधं विशुद्धत्वे हेतूकृत्य मुख्यप्राणविशुद्धिमुपसंहरति—ह्येष इति। तस्य विशुद्धत्वे हेत्वन्तरमाह—यस्माच्चेति। अतो विशुद्ध इत्युत्तरत्र संबन्धः। सर्वार्थत्वं प्राणस्य प्रश्नपूर्वकं प्रतिपादयति—कथमित्यादिना। प्राणादीत्यादिशब्देन कार्यमप्युच्यते। तेनैतास्तृप्यन्तीति श्रुत्यन्तरमाश्रित्याऽऽह—तेन हीति। प्राणवृत्तिहेतुभ्यामन्नपानाभ्यां संघातस्थितिरतःशब्दार्थः। सर्वार्थत्वं द्वितीयस्यातःशब्दस्यार्थः। मुख्यप्राणोपयुक्तत्वादन्नपानानां संघातस्थितिहेतुत्वमित्यत्र प्रश्नपूर्वकं लिङ्गं दर्शयति—कथमित्यादिना। वृत्तिमेव विशिनष्टि—अन्नपाने इति। अन्वहमुपयुज्यमाने अन्नपाने प्राणस्थितिहेतु इति यावत्। प्राणस्योच्चिक्रमिषायामपि संघातः स्वयमशनपाने कृत्वा स्थास्यतीत्या-

---

आसुरीवृत्ति मुख्य प्राण का अवरोधक न हो सकने के कारण मुख्य प्राण से सुगन्ध और दुर्गन्ध का ग्रहण नहीं होता; घ्राण से ही मनुष्य उक्त दोनों को जानता है। इसलिए पाप कार्य लुप्त होने से वह प्राण आसक्ति रूप पाप से पराभूत नहीं है अर्थात् विशुद्ध है। जिस प्रकार कल्याणादि आसक्ति से युक्त घ्राणादि अपना भरण करने वाले हैं; उस प्रकार मुख्य प्राण नहीं है। तो क्या है? सर्वार्थक है क्योंकि यह मुख्य प्राण जो कुछ खाता है या पीता है, उससे अन्य घ्राणादि इन्द्रियों की ही रक्षा करता है। उसी के कारण उनकी स्थिति होती है, सब का भरण करने से मुख्य प्राण विशुद्ध है। मुख्य प्राण द्वारा सेवित अन्न-पानादि से घ्राणादि संघात की स्थिति किस प्रकार होती है, इस पर कहा जाता है—प्रतिदिन अन्न-पान सेवन करने पर मुख्य प्राण का यही कार्य है कि वह इन्द्रियों का पोषण कर प्राणों की सुरक्षा करे। मरणकाल प्राप्त होने पर इस मुख्य प्राण को न प्राप्त होकर घ्राणादि

---

१. सर्वंभर इति प्राणसञ्ज्ञा। "सञ्ज्ञायां भृतृवृजिधारिसहितपिदम" इति खच्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तꣳ हाङ्गिरा उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवा-ऽऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः ॥ १० ॥

प्राण का आंगिरस नाम क्यों ?

अंगिरा नाम के ऋषि ने इस मुख्य प्राण की उद्गीथ रूप से उपासना की थी। अतः इस प्राण को आंगिरस मानते हैं, क्योंकि यह प्राण सम्पूर्ण अङ्गों का रसरूप है ॥१०॥

त्क्रामति। घ्राणादिप्राणसमुदाय इत्यर्थः। अप्राणो हि न शक्नोत्यशितुं पातुं वा। तेन तदोत्क्रान्तिः प्रसिद्धा घ्राणादिकलापस्य। दृश्यते ह्युत्क्रान्तौ प्राणस्याशिशिषा। अतो व्याददात्येवाऽऽस्यविदारणं करोतीत्यर्थः। तद्धचन्नालाभ उत्क्रान्तस्य लिङ्गम् ॥९॥

तं हाङ्गिरास्तं मुख्यं प्राणं हाङ्गिरा इत्येवं गुणमुद्गीथमुपासांचक्र उपासनं कृतवान्बको दाल्भ्य इति वक्ष्यमाणेन संबध्यते। तथा बृहस्पतिरित्यायास्य इति चोपासांचक्रे बक इत्येवं संबन्धं कृतवन्तः केचित्। एतमु एवाऽऽङ्गिरसं बृहस्पतिमायास्यं प्राणं मन्यन्त इति वचनात्। भवत्येवं यथाश्रुतासंभवे, संभवति तु यथाश्रुतमृषिचोदनायामपि

शङ्कयाऽऽह—अप्राणो हीति। तदा प्राणोच्चिक्रमिषावस्थायामिति यावत्। ननूत्क्रान्त्यवस्थायामशिशिषाद्यभावादेव संघातस्योत्क्रान्तिर्न त्वशनाद्यभावात्तत्र प्रमाणाभावादत आह—दृश्यते हीति। तदिति मुखव्यादानमुच्यते। अन्नग्रहणं पानोपलक्षणार्थम् ॥९॥

विशुद्धिगुणकमुख्यप्राणात्मोद्गातृदृष्टचोद्गीथावयवभूतमोंकाराख्यमक्षरमुपास्यमित्युक्तमिदानीं तत्रैवाऽऽङ्गिरसबृहस्पत्यायास्यगुणत्रयविधानार्थमुत्तरग्रन्थमुत्थापयति—तं हेति। तत्र वृत्तिकाराभिप्रेतं संबन्धं दर्शयति—तं मुख्यमिति। पराभिप्रेतसंबन्धे गमकमाह—एतमिति। अव्यवहितसंबन्धसंभवे व्यवहितसंबन्धकल्पना न युक्तेति परिहरति—भवत्येवमिति। ऋषीणामङ्गिरोबृहस्पत्यादिशब्दैरुपदेशेऽपि गुणत्रयविशिष्टप्राणोपासनं न विरुध्यते ततश्च प्रधानानामबाधे प्राणोपासकानामृषीणामुपदेशो न त्यागमर्हत्यङ्गिरोबृहस्पत्यादिशब्देभ्योऽपि प्रथमप्रतिपन्नानृषीन्विहाय यौगिकवृत्तिप्रति-

---

प्राण समुदाय शरीर से निकल जाता है क्योंकि प्राण के बिना कुछ भी खा-पी नहीं सकता। उस समय घ्राणादि समुदाय की उत्क्रान्ति प्रसिद्ध ही है। लोकव्यवहार में देखा जाता है कि प्राणोत्क्रमण काल में प्राणों को भूख-प्यास नहीं लगती। उस समय मुख खुला रह जाता है। मुख विदारण अन्न-पान के अलाभ होने पर उत्क्रमण में ज्ञापक है ॥ ९ ॥

विशुद्धिगुणसम्पन्न उस मुख्य प्राण की अङ्गिरा ऋषि ने उद्गीथ रूप से उपासना की। आगे तेरहवें मन्त्र में कहे जाने वाले दल्भ के पुत्र बक से इसी विद्या का संबन्ध है। इसी प्रकार बृहस्पति, आयास एवं बक ऋषि ने उपासना की, ऐसा कुछ लोग अव्यवहित संबन्ध की कल्पना करते हैं। इसी आयास्य आङ्गिरस प्राण को ही बृहस्पति मानते हैं—ऐसा छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक श्रुति भी कहती है। अव्यवहित संबन्ध संभव होने पर व्यवहित संबन्ध कल्पना करना उचित नहीं है—इसका निरास यथा-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेन तꣳ ह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासांचक्र एतमु एव

प्राण का बृहस्पति नाम क्यों ?

इसी कारण से बृहस्पति ने भी प्राण को उद्गीथ समझ कर उपासना की थी । अतः लोग इस

श्रुत्यन्तरवत् । तस्माच्छतर्चिन इत्याचक्षत एतमेव सन्तमृषिमपि । तथा माध्यमा गृत्समदो विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिरित्यादिऋषीनेव प्राणमापादयति श्रुतिः । तथैतानप्यृषीन्प्राणोपासकानङ्गिरोबृहस्पत्यायास्यान्प्राणं करोत्यभेदविज्ञानाय । "प्राणो ह पिता प्राणो माता" इत्यादिवचंच । तस्मादृषिरङ्गिरा नाम प्राण एव सन्नात्मानमङ्गिरसं प्राणमुदीथमुपासांचक्र इत्येतत् । यद्यस्मात्सोऽङ्गानां प्राणः सन्रसस्तेनासावाङ्गिरसः ॥१०॥

पत्तव्यगुणमात्रप्रतिपत्त्यनुपपत्तेरित्यर्थः । प्राणोपासकानामृषीणामभिधानमैतरेयकश्रुत्या द्रढयति—श्रुत्यन्तरवदिति । तदेव स्पष्टयति—तस्मादिति । शतर्चिनो नाम प्रथममण्डलदृश ऋषयः । एष च प्राणो यस्मात्पुरुषं संघाताख्यं शतवर्षाण्यभिगतवांस्तस्मादेतमेव प्राणं सन्तमृषिशरीरस्थितमपि शतर्चिशब्दवाच्यं वदन्तीति योजना । शतर्चिशब्दवदुभयविषयाणि शब्दान्तराण्यपि सन्तीत्याह—तथेति । आद्यन्ते मण्डले मुक्त्वा मध्यमानां मण्डलानां द्रष्टारो माध्यमा ऋषयस्तेऽपि प्राणस्तस्य स्वात्मनि मध्ये सर्वजगद्विधारकत्वात् । गृत्समदस्तु द्वितीयमण्डलदर्शी स्वापकाले वागादीनां गिरणात्प्राणो गृत्सो रेतोविसर्गकारणं मदहेतुत्वादपानो मदः प्राणापानात्मकत्वात्प्राणोऽपि तथोच्यते । तृतीयमण्डलदर्शी विश्वामित्रः प्राणोऽपि तथा व्यपदिश्यते । तस्य हि विश्वं भोज्यजातं स्थितिहेतुतया स्निग्धमासीत् । वामदेवस्तु चतुर्थमण्डलद्रष्टा प्राणोऽपि तच्छब्दवाच्यस्तस्य वागादिदेवतासंभजनीयत्वात् । पञ्चममण्डलद्रष्टाऽत्रिरित्युच्यते प्राणोऽपि तथैव कथ्यते । तस्य पाप्मनोऽनर्थरूपान्प्रति सर्वत्रात्तृत्वात् । आदिपदेन भरद्वाजादिपदानि गृहीतानि । दृष्टान्तमेवं व्याख्याय दार्ष्टान्तिकमाह—तथेति । किमित्यङ्गिरःप्रभृतीन्प्राणं करोति श्रुतिरत आह—अभेदेति । तथा च सप्तमे प्राणस्य सार्वात्म्यं वक्ष्यते तथाऽत्रापि तस्य तत्तदृषिरूपत्वं विवक्षितमित्याह—प्राणो हेति । अव्यवहितसंबन्धसंभवे फलितं वाक्यार्थं कथयति—तस्मादिति । प्राणस्याङ्गिरस्त्वं व्युत्पादयति—यस्मादिति ॥१०॥

श्रुत असंभावना में हो जाता है । ऐतरेय श्रुति के सदृश प्राणोपासक ऋषियों का नाम यथाश्रुत संभव है (इसलिए गुणत्रयविशिष्ट प्राणोपासना में ऋषियों के नाम की यौगिक वृत्ति भी ग्रहण कर लेनी चाहिए) । जिस प्रकार प्रथम मण्डल के मन्त्रद्रष्टा शतर्चि ऋषि ऐसा कहते हैं, इसी प्रकार यहां ऋषि का ग्रहण है । एवं गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि आदि माध्यम ऋषियों को भी श्रुति प्राण संज्ञा देती है । ऐसे ही प्राणों से अभेद प्रतिपादन के लिए आङ्गिरस; बृहस्पति एवं आयास्यादि ऋषियों को भी श्रुति प्राण संज्ञा प्रतिपादित करती है । छान्दोग्य उपनिषद् (७.१५.१) में प्राण का सार्वात्म्य बतलाते हुए कहा जाता है—"प्राण ही पिता है, प्राण ही माता है" । इसलिए आङ्गिरस् ऋषि ने प्राणस्वरूप होकर अपने स्वरूपभूत आङ्गिरस प्राण की उद्गीथ रूप से उपासना की । सम्पूर्ण अङ्गों का रसरूप यह प्राण है, इसलिए इसका आङ्गिरस नाम पड़ा ॥ १० ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि बृहती तस्या एष पतिः ॥ ११ ॥

तेन तँ हाऽऽयास्य उद्गीथमुपासांचक्र एतमु एवाऽऽयास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते ॥ १२ ॥

तेन तँ ह बको दाल्भ्यो विदांचकार । स ह नैमिशीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति ॥ १३ ॥

प्राण को ही बृहस्पति मानते हैं, क्योंकि वाक् ही बृहती है और प्राण उस बृहती का पति है ॥११॥

प्राण का आयास्य नाम क्यों ?

इसी से आयास नामक ऋषि ने प्राण की उद्गीथ दृष्टि से उपासना की थी । अतः लोग इस प्राण को ही आयास्य मानते हैं, क्योंकि यह प्राण आस्य (मुख) से निकलता है ॥१२॥

अतएव दल्भ के पुत्र बक ने भी पूर्वोक्त प्रकार से प्राण को जाना । इसी से वह नैमिषारण्य में यज्ञ करने वालों का उद्गाता हुआ और उन यजमानों की कामना के लिये दाल्भ्य ने प्राणविज्ञान सामर्थ्य से ही आगान किया ॥१३॥

तथा वाचो बृहत्याः पतिस्तेनासौ बृहस्पतिः । तथा यद्यस्मादास्यादयते निर्गच्छति तेनाऽऽयास्य ऋषिः प्राण एव सन्नित्यर्थः । तथाऽन्योऽप्युपासक आत्मानमेवाऽऽङ्गिरसादिगुणं प्राणमुद्गीथमुपासीतेत्यर्थः ॥११॥ १२॥

न केवलमङ्गिरःप्रभृतय उपासांचक्रिरे । तं ह बको नाम दल्भ्यस्यापत्यं दाल्भ्यो

अङ्गिरःशब्दवद्बृहस्पतिशब्दोऽप्युभयत्र नेतव्य इत्याह—तथेति । प्राणस्य बृहस्पतित्वं साधयति—वाच इति । अङ्गिरोबृहस्पतिशब्दवदायास्यशब्दोऽप्युभयत्र द्रष्टव्य इत्याह—तथेति । तस्योभयत्र वृत्तिं विशदयति—यद्यस्मादिति । यस्मादास्यादयते तेनाऽऽयास्यः प्राणः एवात्रोपासकत्वादृषिरपि तथेति योजना । यथोक्तानामृषीणामेवोक्तगुणकमुपासनं नान्येषां विशेषवचनादित्याशङ्क्याऽऽह—तथेति । विशिष्टस्य न शेषनिवर्तकत्वं प्रदर्शनार्थत्वादित्यर्थः ॥११॥१२॥

यथोक्तोपासनस्य त्रिषु नियमाभावे गमकं दर्शयति—न केवलमिति । संप्रति विहितोपासनस्य

अङ्गिरा की तरह बृहस्पति शब्द का भी द्विविध अर्थ है । बृहती वाक् का पति होने से बृहस्पति नाम पड़ा । ऐसे ही निर्गमन करने के कारण आयास्य नाम पड़ा, वही प्राण ही है । इससे अन्य उपासक को भी आङ्गिरसादि गुणों से युक्त अपने प्राण की उपासना करनी चाहिए—यह इसका भावार्थ है ॥ ११ ॥ १२ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वा-नक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम् ॥ १४ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

प्राण से ओंकार की उपासना

ऐसा जानने वाला जो विद्वान् इस उद्गीथ नामक ओंकार की पूर्वोक्त रीति से उपासना करता है, वह (अन्य उद्गाता भी) कामनाओं का आगान करने वाला हो जाता है। ऐसी यह अध्यात्म उपासना है ॥१४॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

विदांचकार यथादर्शितं प्राणं विज्ञातवान्। विदित्वा च स ह नैमिशीयानां सत्रिणामुद्गाता बभूव। स च प्राणविज्ञानसामर्थ्यादेभ्यो नैमिशीयेभ्यः कामानागायति स्म हाऽऽगीतवान्किलेत्यर्थः ॥१३॥

तथाऽन्योऽप्युद्गाताऽऽगाता ह वै कामानां भवति य एवं विद्वान्यथोक्तगुणं प्राणमक्षरमुद्गीथमुपास्ते तस्यैतद्दृष्टं फलमुक्तम्। प्राणात्मभावस्त्वदृष्टम्। "देवो भूत्वा देवानप्येति" इति श्रुत्यन्तरात्सिद्धमेवेत्यभिप्रायः। इत्यध्यात्ममेतदात्मविषयमुद्गीथोपासनमित्युक्तोपसंहारोऽधिदैवतोद्गीथोपासने वक्ष्यमाणे बुद्धिसमाधानार्थः ॥१४॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

दृष्टफलमादेष्टुं पातनिकां करोति—विदित्वेति ॥१३॥

भूमिकां कृत्वा विवक्षितमुपास्तिफलं कथयति—तथेति। दृष्टमिति विशेषणादभीष्टं फलान्तरमाष्टे—प्राणेति। आत्मविषयं शरीरवर्तिप्राणगोचरमिति यावत्। उपसंहारस्य प्रयोजनमाह—अधिदैवतेति ॥१४॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

विशुद्धसंज्ञकमुख्यप्राण की उपासना अङ्गिरादि तीन ऋषियों ने ही नहीं की। दल्भ के पुत्र बक ने भी पूर्वोक्त प्रकार से प्रदर्शित उस प्राण को जाना। इसे जानने से ही वह नैमिषारण्य में यज्ञ करने वालों का उद्गाता हुआ। मुख्यप्राणविज्ञान के सामर्थ्य से ही बक ने उन नैमिशीय यजमानों की कामनाओं के लिए औद्गात्र कर्म किया ॥ १३ ॥

जो कोई विद्वान् इस पूर्वोक्त गुणों से विशिष्ट उद्गीथसंज्ञक ओंकार अक्षर प्राण की उपासना करता है, उसका यह साक्षात् फल है कि वह अन्य उद्गाता भी कामनाओं का आगान करने वाला होता है। अभीष्ट प्राणात्मभाव की प्राप्ति ही इस उपासना का अलौकिक फल है। अन्यत्र श्रुति से भी परिलक्षित होता है—"सार्वात्म्य उपासना में देव होकर देवभाव की प्राप्ति कर लेता है"। शरीरवर्ती प्राण दर्शन की यह उद्गीथ उपासना है, जिसका अध्यात्म में उपसंहार किया गया है। यह छान्दोग्य उपनिषद् में तृतीय खण्ड में कही जाने वाली अधिदैवत उद्गीथ उपासना में बुद्धि प्रवेश कराने के लिए है ॥ १४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतो- द्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति । उद्य\ँस्तमो भयमप- हन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

सूर्य दृष्टि से उद्गीथ की उपासना

अब अधिदैवत उपासना बतलाई जाती है। जो यह सूर्य तपता है (वह उद्गीथ है) उस उद्गीथ की उपासना करे। क्योंकि यह आदित्य उदित होता हुआ प्रजाओं के अन्न उत्पत्ति के लिये उद्गान करता है। इतना ही नहीं, वह उदित होकर अन्धकार और तज्जन्य भय का भी नाश करता है। जो इस प्रकार इसे जानता है, वह आत्मा के जन्म मरणादि भय और उसके कारण अज्ञान को नष्ट कर डालता है ॥१॥

अथानन्तरमधिदैवतं देवताविषयमुद्गीथोपासनं प्रस्तुतमित्यर्थोऽनेकधोपास्यत्वा- दुद्गीथस्य य एवासावादित्यस्तपति तमुद्गीथमुपासीताऽऽदित्यदृष्ट्योद्गीथमुपासी- तेत्यर्थः । तमुद्गीथमित्युद्गीथशब्दोऽक्षरवाची सन्कथमादित्ये वर्तत इति, उच्यते—उद्यन्नु- द्गच्छन्वा एष प्रजाभ्यः प्रजार्थमुद्गायति प्रजानामन्नोत्पत्त्यर्थम् । न ह्यनुद्यति तस्मिन्व्री-

---

अनन्तरमाध्यात्मिकप्राणदृष्ट्योद्गीथोपासनवचनादिति शेषः । किमिति देवताविषयमुद्गीथो- पासनं प्रस्तूयते तत्राऽऽह—अनेकधेति । प्राणरूपेणाऽऽदित्यादिरूपेण चोद्गीथस्योपास्यत्वाद्देवता- विषयतदुपास्तिप्रस्तावो युक्त एवेत्यर्थः । [1]आदित्यादिमतयश्चेत्यादिन्यायेन वाक्यार्थं कथयति— आदित्यदृष्ट्येति । तमादित्यमुद्गीथमुपासीतेत्यादित्यशब्दस्योद्गीथशब्दस्य च सामानाधिकरण्यमयुक्तमु- द्गीथशब्दस्य प्रकरणादक्षरवाचित्वादादित्यशब्दस्य च ज्योतिर्विषयत्वाद्भिन्नार्थयोश्च शब्दयोः सामाना- धिकरण्यायोगादिति शङ्कते—तमुद्गीथमितीति । आदित्ये यद्यपि नोद्गीथशब्दो रूढ्या वर्तितुमर्हति तथाऽपि गौण्या च तत्र तत्र वृत्तेः सामानाधिकरण्यसिद्धिरित्युत्तरमाह—उच्यत इति । प्रजार्थमुद्गा- यतीत्येतदेव स्पष्टयति—प्रजानामिति । अन्नोत्पत्त्यर्थमुद्गायतीति पूर्वेण संबन्धः । तदेव व्यतिरेकद्वारा साधयति—न हीति । आदित्यस्यान्नार्थमागानमतःशब्दार्थः । न तस्योद्गातुरिव प्रत्यक्षमुद्गान-

---

आध्यात्मिक प्राण दृष्टि से उद्गीथ उपासना का निरूपण होने के अनन्तर आधिदैविक उपा- सना बतलाई जाती है। अनेक प्रकार से उद्गीथोपासना होने के कारण जो यह आदित्य तपता है, आदित्य दृष्टि से उद्गीथ की उपासना करे। उस उद्गीथ की उपासना करे—यहाँ उद्गीथ शब्द ओंकार अक्षर वाची होने के कारण आदित्य का ज्ञापक कैसे है; इस पर कहा जाता है क्योंकि यह सूर्य

---

१. "आदित्यादिमतयश्चाङ्ग उपपत्तेः" (ब्र. सू. ४-१-६) । उद्गीथादिषु कर्माङ्गेष्वादित्यादिमतय एव कर्तव्याः । कुतः ? कर्मसमृद्धिरूपफलोपपत्तेरित्यर्थः ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यपि स्थानभेदात्प्राणादित्यौ भिन्नाविव लक्ष्येते तथाऽपि न स तत्त्वभेदस्तयोः। कथम्——

समान उ एवायं चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वर इत्यमुं तस्माद्वा एतमिमममुं चोद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

आदित्य और प्राण में साम्य होने के कारण प्राण दृष्टि से उद्गीथ की उपासना

गुण दृष्टि से यह प्राण और यह आदित्य समान ही है, क्योंकि यह प्राण और वह सूर्य भी उष्ण है। इस प्राण को "स्वर" इस नाम से कहते हैं और उस आदित्य को भी "स्वर" एवं "प्रत्यास्वर" ऐसा पुकारते हैं। (अतः तत्त्वतः अभिन्न होने के कारण) इस प्राण और सूर्यरूप से उद्गीथ के अवयवरूप ओंकार को उपासना करे ॥२॥

ह्यादेः पङ्क्तिः स्यादत उद्गायतीवोद्गायति, यथैवोद्गाताऽन्नार्थमत उद्गीथः सवितेत्यर्थः। किंचोद्यन्नैशं तमस्तज्जं च भयं प्राणिनामपहन्ति तमेवंगुणं सवितारं यो वेद सोऽपहन्ता नाशयिता ह वै भयस्य जन्ममरणादिलक्षणस्याऽऽत्मनस्तमसश्च तत्कारणस्याज्ञानलक्षणस्य भवति ॥१॥

समान उ एव तुल्य एव प्राणः सवित्रा गुणतः सविता च प्राणेन। यस्मादु-

---

मुपलब्धमित्याशङ्क्याऽऽह—उद्गायतीवेति। उपमामेवोपपादयति—यथेति। अथाऽऽत्मनेऽन्नाद्यमागायेदितिश्रुत्यन्तरे यथाऽन्नार्थमुद्गाताऽऽगायतीत्यवगतं तथाऽऽदित्योऽपि प्रजानामन्नार्थमागायतीत्यर्थः। उद्गीथशब्दस्याऽऽदित्ये संभवं परामृश्य फलितमाह—अत इति। आदित्यदृष्ट्योद्गीथोपासनमुपपाद्य फलोक्तिं व्याचष्टे—किंचेत्यादिना। एवंगुणं तमस्तज्जभयनिवर्तकत्वगुणसहितमिति यावत् ॥१॥

नन्वध्यात्ममधिदैवतमिति स्थानभेदात्प्राणादित्ययोर्भिन्नत्वाद्भिन्नमेव तयोरुपासनमुपादेयमत आह—यद्यपीति। प्राणादित्ययोः स्वरूपभेदाभावं प्रश्नपूर्वकं प्रतिपादयति—कथमित्यादिना। उशब्दोऽप्यर्थः स्थानभेदतो भेदमनुजानाति। गुणतः साम्यं साधयति—यस्मादिति। नामतः साम्यं

उदित होता हुआ प्राणियों के अन्न की उत्पत्ति के लिए उद्गान करता है। उसके उदय न होने पर व्रीहि-यवादि अन्न पकने असंभव हो जाएँगे, इसलिए वह (प्रत्यक्ष उद्गान न करता हुआ) उद्गाता के समान उद्गान करता है। जैसे (श्रुति में) उद्गाता अपनी आत्मा के लिए अन्न का आगान करता है; अतः उद्गीथ आदित्य ही है। इसके साथ-साथ रात्रि के अन्धकार एवं उससे होने वाले भय का भी नाश करता है। जो पूर्वोक्त गुणों से युक्त आदित्य को जानता है, वह आत्मा के जन्म-मरणादि भय एवं उस भय में हेतु अज्ञान को नाश कर देता है ॥ १ ॥

यद्यपि स्थानभेद के कारण प्राण और आदित्य भिन्न से लगते हैं तथापि वह भेद वास्तविक नहीं है क्योंकि गुणदृष्टि से प्राण सविता के एवं सविता प्राण के समान है। यह प्राण भी उष्ण है;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानः । अथ यः प्राणा-

व्यानरूप से उद्गीथ की उपासना

अब (प्रकारान्तर से अध्यात्म उपासना) कही जाती है। व्यान दृष्टि से ही उद्गीथ उपासना करनी चाहिये। पुरुष जो प्राणन (मुख और नासिका द्वारा वायु का बहिर्गमन) करता है, वह प्राण है

ष्णोऽयं प्राण उष्णश्चासौ सविता। किंच स्वर इतीमं प्राणमाचक्षते कथयन्ति तथा स्वर इति प्रत्यास्वर इति चामुं सवितारम्। यस्मात्प्राणः स्वरत्येव न पुनर्मृतः प्रत्यागच्छति। सविता त्वस्तमित्वा पुनरप्यहन्यहनि प्रत्यागच्छति। अतः प्रत्यास्वरोऽस्माद्गुणतो नामतश्च समानावितरेतरं प्राणादित्यौ। अतः सतत्त्वाभेदादेतं प्राणमिमममुं चाऽऽदित्यमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

अथ खल्विति प्रकारान्तरेणोपासनमुद्गीथस्योच्यते व्यानमेव वक्ष्यमाणलक्षणं प्राणस्यैव वृत्तिविशेषमुद्गीथमुपासीत। अधुना तत्सतत्त्वं निरूप्यते—यद्वै पुरुषः प्राणिति

संगिरते—किंचेति। सवितृवत्प्राणेऽपि प्रत्यास्वरशब्दप्रवृत्तिमाशङ्क्याऽऽह—यस्मादिति। स्वरत्येव गच्छत्येवेति यावत्। तस्मिन्नेव स्थूलदेहे न प्रत्यागच्छति तस्मात्प्राणे स्वरशब्दप्रवृत्तिरेवेत्यर्थः। सवितर्यपि तर्हि तच्छब्दप्रवृत्तिरेवेत्याशङ्क्याऽऽह—सविता त्विति। आदित्यस्यास्तं गतस्य प्रत्यहमेकत्रैवाऽऽगतिदर्शनात्तस्मिन्प्रत्यास्वरशब्दस्यापि प्रवृत्तिरस्तीत्यर्थः। अतः प्राणादित्ययोरुक्तं साम्यं निगमयति—अस्मादिति। अन्योन्यसाम्यकृतं फलमाह—अत इति। प्राणादित्यावेकीकृत्य तद्दृष्ट्योद्गीथावयवभूतमोंकाराख्यमक्षरमुपास्यमित्यर्थः ॥२॥

अथाऽऽध्यात्मिकमाधिदैविकं चोद्गीथोपासनं प्रस्तुत्य तदेव समस्यैकीकृत्योक्तं तथा च वक्तव्याभावात्किमुत्तरेण ग्रन्थेनेत्याशङ्क्याऽऽध्यात्मिकमेवोद्गीथोपासनमनुसृत्याऽऽह—अथेति। कोऽसौ व्यानो यद्दृष्ट्योद्गीथोपासनमुपदिदिक्षितमत आह—वक्ष्यमाणलक्षणमिति। पक्षान्तरं व्यावर्तयति—प्राणस्यैवेति। वक्ष्यमाणलक्षणमित्युक्तं व्यक्ती करोति—अधुनेति। तन्निरूपणार्थमादौ प्राणापानौ निरूपयति—यद्वा इत्यादिना। ताभ्यामेव मुखनासिकाभ्यामित्येतत्। स्यातामेवं प्राणापानौ व्यानस्य

वह आदित्य भी उष्ण है। इतना ही नहीं, प्राण को "स्वर" नाम से पुकारते हैं और उस आदित्य को भी "स्वर" और "प्रत्यास्वर" नामों से पुकारते हैं, इस प्रकार नाम में भी साम्य है। प्राण भी जाता है, जाकर उसी स्थूल देह में पुनः नहीं आता। सूर्य भी अस्त होकर प्रतिदिन वापिस आता है। इसलिए प्रत्यास्वर होने से प्राण और आदित्य का नाम और गुण से परस्पर साम्य है। अतः वस्तुतः अभिन्न होने के कारण इस प्राण और सूर्य का एकीभाव दृष्टि से उद्गीथ के अवयवभूत ओंकार की उपासना करे ॥ २ ॥

"अथ खलु—" इत्यादि मन्त्र में प्रकारान्तर से आध्यात्मिक उद्गीथ उपासना का निरूपण किया जाता है। वक्ष्यमाण व्यान प्राण की वृत्ति-विशेष है, उसकी ही उद्गीथ रूप से उपासना करनी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पानयोः संधिः स व्यानो यो व्यानः सा वाक्।
तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति ॥ ३ ॥

(और जो मुख एवं नासिका द्वारा ही) वायु को भीतर खींचता है वह अपान है, तथा प्राणायाम की जो संधि है वह व्यान है। जो व्यान है वही वाक् है। अतएव पुरुष प्राण और अपान की क्रियायें न करता हुआ ही बोलता है ॥३॥

मुखनासिकाभ्यां वायुं बहिर्निःसारयति स प्राणाख्यो वायोर्वृत्तिविशेषो यदपानित्यपश्वसिति ताभ्यामेवान्तराकर्षति वायुं सोऽपानोऽपानाख्या वृत्तिः। ततः किमिति, उच्यते—अथ य उक्तलक्षणयोः प्राणापानयोः संधिस्तयोरन्तरा वृत्तिविशेषः स व्यानः, यः सांख्यादिशास्त्रप्रसिद्धः श्रुत्या विशेषनिरूपणान्नासौ व्यान इत्यभिप्रायः। कस्मात्पुनः प्राणापानौ हित्वा महताऽऽयासेन व्यानस्यैवोपासनमुच्यते। वीर्यवत्कर्महेतुत्वात्। कथं वीर्यवत्कर्महेतुत्वमित्याह—यो व्यानः सा वाक्। व्यानकार्यत्वाद्वाचः यस्माद्व्याननिर्वर्त्या वाक्तस्मादप्राणन्ननपानन्प्राणापानव्यापारावकुर्वन्वाचमभिव्याहरत्युच्चारयति लोकः ॥ ३ ॥

तु किमायातमिति शङ्कित्वा तत्स्वरूपं दर्शयति—तत इत्यादिना। संधिमेव स्फुटयति—तयोरिति। प्राणापानयोर्वृत्त्योरभावावस्थायां मध्ये च वायोर्वृत्तिविशेषो योऽस्ति स व्यानशब्दार्थः इत्यर्थः। संधिस्कन्धमर्मदेशवृत्तिर्व्यान इति सांख्या योगाश्चाऽऽहुस्तान्प्रत्याह—यः सांख्यादीति। सांख्यानां योगानां च शास्त्रे प्रसिद्धो यो वायोर्वृत्तिविशेषः स्कन्धादिदेशगो नासौ व्यानः श्रुत्या विशेषनिरूपणादिति योजना। व्यानस्य प्राणापानसापेक्षत्वात्तयोरन्यतरस्योपासनमेवोचितं न व्यानोपासनमिति मन्वानश्चोदयति—कस्मादिति। महताऽऽयासेन व्यानसतत्त्वनिरूपणेनेति यावत्। ताभ्यां तस्य वैशिष्ट्यमुपेत्य परिहरति—वीर्यवदिति। व्यानस्यैवोपासनमिति शेषः। तदेव प्रश्नद्वारा प्रपञ्चयति—कथमित्यादिना। कथं व्यानस्य वीर्यवत्कर्म प्रसिद्धं प्रतिज्ञायते कार्यकरणभावादित्याह—व्यानेति। वाचो व्याननिर्वर्त्यत्वे लिङ्गं दर्शयति—यस्मादिति ॥ ३ ॥

चाहिए। अब उसका तत्त्वतः निरूपण किया जाता है। पुरुष जो मुख और नासिका द्वारा वायु को बाहर निःसरण करता है, वह प्राणाख्य वायु की वृत्ति-विशेष है तथा जो मुख और नासिका के द्वारा ही वायु को भीतर खींचता है; वह अपानाख्य वृत्ति है। तथा उक्त लक्षणों से विशिष्ट प्राण और अपान की जो संधि है; वह व्यानाख्य वृत्ति-विशेष है। सांख्यादि दार्शनिक संधि, स्कन्ध और मर्म देश में रहने वाले वायु विशेष को व्यान कहते हैं, श्रुति में विशेष व्याख्यान होने से वह व्यान नहीं है। प्राण और अपान को छोड़कर व्यान की महत्ता निरूपण करते हुए व्यान की उपासना क्यों कही जाती है, उनके विशिष्ट वीर्य सम्पन्न होने से कर्म में हेतुक है। ऐसा इसलिए है कि जो व्यान है, वही वाक् है क्योंकि वाक् व्यान में कार्यकारणभाव है। वाक् व्यान से निष्पादित होती है, इसलिए प्राण और अपान का व्यापार न करते हुए ही मनुष्य बोलता है ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

 CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या वाक्सर्क्तस्मादप्राणन्ननपानन्नृचमभिव्याहरति यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्साम गायति यत्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति ।।४।।

अतो यान्यन्यानि वीर्यवन्ति कर्माणि यथाऽग्नेर्मन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत ।। ५ ।।

वाक् ऋक् साम, और उद्गीथ समानता का हेतु

जो वाणी है वही ऋक् है, इससे ही पुरुष प्राण और अपान क्रिया न करता हुआ वाक् विशेष ऋक् का उच्चारण करता है। जो ऋक् है, वही साम है, इसीलिये पुरुष प्राणायाम क्रिया न करता हुआ सामगान करता है। जो साम है, वही साम के अवयवरूप ओंकार उद्गीथ भी है। अतः उसका उद्गान भी प्राणायाम क्रिया न करता हुआ करता है ।।४।।

इसके सिवा जो अन्य भी अधिक प्रयत्न साध्य-सामर्थ्ययुक्त कर्म हैं, जैसे अग्नि का मन्थन एक सीमा तक दौड़ना और सुदृढ़ धनुष को खींचना इन सभी कर्मों को पुरुष प्राण और अपान क्रिया को न करता हुआ ही करता है। अतएव व्यानदृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिये (प्राण की अन्य वृत्तिरूप से नहीं) ।।५।।

तथा वाग्विशेषामृचमृक्संस्थं च साम सामावयवं चोद्गीथमप्राणन्ननपानन्व्यानेनैव निर्वर्तयतीत्यभिप्रायः ।। ४ ।।

न केवलं वागाद्यभिव्याहरणमेवातोऽस्मादन्यान्यपि यानि वीर्यवन्ति कर्माणि प्रयत्नाधिक्यनिर्वर्त्यानि यथाऽग्नेर्मन्थनमाजेर्मर्यादायाः सरणं धावनं दृढस्य धनुष आयमनमाकर्षणमप्राणन्ननपानंस्तानि करोति । अतो विशिष्टो व्यानः प्राणादिवृत्तिभ्यः ।

या वागित्यादिवाक्यानामर्थं संक्षिपति—तथेत्यादिना ।। ४ ।।

अतो यानीत्यादि व्याचष्टे—न केवलमिति । व्यानेन निर्वर्तयतीति पूर्वेण संबन्धः । यान्यन्यान्यपि यथोक्तानि कर्माणि तानि लोको व्यानेनैव करोतीत्युत्तरत्र संबन्धः । प्रयत्नाधिक्यनिर्वर्त्यानि कर्माण्येवोदाहरति—यथेति । यथा तानि कर्माणि तथाऽन्यान्यप्येवंप्रकाराणीति योजना । व्यानस्य वीर्यवत्कर्महेतुत्वे फलितमाह—अत इति । वैशिष्ट्येऽपि किं स्यादिति चेत्तदाह—विशिष्टस्येति ।

भावाशय यह है कि वाक्विशेष ऋक्संयुक्त एवं साम के अवयव प्राणन एवं अपानन क्रिया न कर व्यान से ही उद्गीथ का आगान सम्पन्न होता है ।। ४ ।।

व्यान वायु से वागादि का अभिव्याहार मात्र ही नहीं होता; बल्कि इससे भी अधिक प्रयत्नसाध्य कर्म हैं जो व्यान से निष्पन्न होते हैं। जैसे अग्निमन्थन, पूर्वनिर्धारित मर्यादा तक दौड़ना, दृढ धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाना आदि कर्म मनुष्य प्राणन, अपानन क्रियाओं को न करता हुआ ही व्यान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपासीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳ सर्वꣳ स्थितम् ॥ ६ ॥

अब उद्गीथ के अक्षरों की उपासना निश्चयपूर्वक करनी चाहिये। "उद्गीथ" इस शब्द में प्राण ही उत् है अर्थात् "उत्" अक्षर में प्राणदृष्टि करनी चाहिये क्योंकि सब लोग प्राण से ही उठते हैं। वाक् ही "गी" है क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष वाक् को "गिरः" ऐसा कहते हैं तथा अन्न ही "थ" है क्योंकि अन्न में ही यह सब स्थित है ॥६॥

विशिष्टस्योपासनं ज्यायः फलवत्त्वाद्राजोपासनवत्। एतस्य हेतोरेतस्मात्कारणाद्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत नान्यद्वृत्त्यन्तरम्। कर्मवीर्यवत्तरत्वं फलम् ॥ ५ ॥

अथाधुना खलूद्गीथाक्षराण्युपासीत भक्त्यक्षराणि मा भूवन्नित्यतो विशिनष्टि—उद्गीथ इति। उद्गीथनामाक्षराणीत्यर्थो नामाक्षरोपासनेऽपि नामवत एवोपासनं कृतं भवेदमुकमिश्रा इति यद्वत्। प्राण एवोत्, उदित्यस्मिन्नक्षरे प्राणदृष्टिः। कथं प्राणस्योत्त्वमित्याह—प्राणेन ह्युत्तिष्ठति सर्वोऽप्राणस्यावसाददर्शनादतोऽस्त्युदः प्राणस्य

वैशिष्ट्यफलमुपसंहरति—एतस्येति। फलवत्त्वादित्युक्तमुपास्तिफलं स्पष्टयति—कर्मेति। व्यानदृष्ट्योद्गीथोपासनस्याङ्गावबद्धत्वादिति शेषः ॥ ५ ॥

उद्गीथोपासनप्रसङ्गेनोद्गीथाक्षरोपासनां प्रस्तौति—अथेति। विशेषणतात्पर्यं दर्शयति—भक्तीति। उद्गीथाक्षराण्युपासीतेत्युक्ते भक्त्यक्षराण्युपास्यानि प्राप्तानि तानि मा भूवन्निति यतो मन्यते श्रुतिस्ततो विशेषणं करोतीत्यर्थः। विशेषणश्रुतिं व्याकरोति—उद्गीथेति। नामाक्षरोपासनमुद्गीथोपासनस्याकिंचित्करमित्याशङ्क्याऽऽह—नामेति। यथा लोके कृष्णमिश्रादिवाचकैशब्दप्रयोगे वाच्यस्य पुरुषविशेषस्योपासनं गम्यते तथेहापीत्यर्थः। नामाक्षरोपासने नामवदुपासनेऽपि तदुपासनमेव कथमित्याशङ्क्य विभजते—प्राण एवेति। प्राणस्योदः सादृश्यं प्रश्नपूर्वकमाह—कथमित्यादिना।

से सम्पादित करता है। इसलिए प्राणादि-वृत्तियों की अपेक्षा व्यान का विशेष स्थान है। जैसे राजा की सेवा करने का विशेष फल है क्योंकि विशिष्ट की उपासना महान् फलदायक हुआ करती है। इसलिए व्यान दृष्टि से ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए; प्राण-अपान वृत्ति से नहीं। विशिष्ट सामर्थ्ययुक्त कर्म होना ही इसका फल है ॥ ५ ॥

अब उद्गीथ के अक्षरों की उपासना करनी चाहिए। भक्तियुक्त अक्षरों में उपास्यत्व न आए, इसलिए मन्त्र में उद्गीथ विशेषण दिया गया। उद्गीथ नाम के अक्षरों की उपासना करे, नाम के अक्षरों की उपासना में भी नामी की उपासना विहित है। जैसे कृष्णमिश्रादि वाचक शब्द प्रयोग में वाच्य पुरुष की उपासना का बोध होता है। "उद्गीथ" इस शब्द में प्राण ही उत् है, "उत्" इस अक्षर में प्राणदृष्टि करनी चाहिए। प्राण के 'उत्' होने में कारण यह है कि प्राण से सब उठते हैं, निष्प्राण के चेतनशून्य होने से उत् और प्राण की साम्यता है। "उद्गीथ" में आया हुआ 'गी' अक्षर वाक् है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्यौरेवोदन्तरिक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थꣳसामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति ।७।

उद्गीथ के अक्षरों में द्युलोकादि और साम वेदादि दृष्टि

ऊंचे स्थान होने से द्यौ लोक ही "उत्" है। लोकों का ग्रासक होने से अन्तरिक्ष "गी" है और सबकी प्रतिष्ठा होने से पृथिवी "थ" है। उक्त न्याय से ही आदित्य उत् है, वायु "गी" है और अग्नि "थ" है। एवं सामवेद ही "उत्" है, यजुर्वेद "गी" है, ऋग्वेद "थ" है। क्योंकि ऋक् में ही साम अधिष्ठित है। इन अक्षरों को ऐसा जानकर जो इन उद्गीथ अक्षरों की उपासना करता है, उसके लिये जो ऋग्वेदादि वाक् का दोह है, उसे वाणी स्वयं ही दुहती है तथा वह अन्नवान् और अन्न का भोक्ता हो जाता है ॥७॥

च सामान्यम्। वाग्गीः। वाचो ह गिर इत्याचक्षते शिष्टाः। तथाऽन्नं थमन्ने हीदं सर्वं स्थितमतोऽस्त्यन्नस्य थाक्षरस्य च सामान्यम् ॥ ६ ॥

त्रयाणां श्रुत्युक्तानि सामान्यानि तानि तेनानुरूपेण शेषेष्वपि द्रष्टव्यानि। द्यौरेवोदुच्चैः स्थानात्। अन्तरिक्षं गीर्गिरणाल्लोकानाम्। पृथिवी थं प्राणिस्थानात्। आदित्य एवोदूर्ध्वत्वात्। वायुर्गीरग्न्यादीनां गिरणात्। अग्निस्थं यज्ञकर्मावस्थानात्। सामवेद एवोत्स्वर्गसंस्तुतत्वात्। यजुर्वेदो गीर्यजुषा प्रत्तस्य हविषो देवतानां गिरणात्।

गीरित्यस्मिन्नक्षरे वाग्दृष्टिः कर्तव्येत्याह—वाग्गीरिति। वाचो गिरश्च साहश्यं दर्शयति—वाचो हेति। उद्गीरक्षरयोः प्राणवाग्दृष्टिरिव थमित्यस्मिन्नक्षरेऽन्नदृष्टिः कार्येत्याह—तथेति। थकारान्नयोरपेक्षितं साहश्यं दर्शयति—अन्ने हीति ॥ ६ ॥

प्राण एवोदित्यादौ साहश्यं श्रुत्यैवोक्तं द्यौरेवोदित्यादौ तु नोक्तं तथा च तत्र साहश्याभावे कथं दृष्टिकरणमित्याशङ्क्याऽऽह—त्रयाणामिति। अन्तरिक्षमाकाशस्तदन्तःप्रतिष्ठा लोकास्तेन गीर्णा इवेति मत्वाऽऽह—गिरणादिति। अग्न्यादीनां गिरणादिति संवर्गविद्यायां द्रष्टव्यम्। सामवेदो वै स्वर्गो लोक इति स्वर्गलोकत्वेन सामवेदस्य संस्तुतत्वादिति हेतुमाह—स्वर्गेति। यजुषा स्वाहास्वधादिनेति यावत्। अध्यात्ममधिलोकमधिदैवमधिवेदं च नामाक्षरोपासनमुक्त्वा तत्फलोक्तिमवतार्य व्याकरोति—

शिष्ट लोग वाणी को 'गिरः' शब्द से भी पुकारते हैं। "उद्गीथ" के अन्तिम थकार अक्षर में अन्नदृष्टि करनी चाहिए क्योंकि अन्न में यह सब कुछ स्थित है। इसलिए अन्न और थकार अक्षर का साम्य है ॥ ६ ॥

तीनों का साम्य श्रुति द्वारा प्रतिपादित किया गया, उसके अनुरूप शेष में भी घटा लेना चाहिए। द्युलोक ऊँचे स्थान से युक्त होने से "उत्" है; लोकों का ग्रासक होने से अन्तरिक्ष "गी"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ खल्वाशीःसमृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत् ॥ ८ ॥

सकाम उपासना का प्रकार

इसके अनन्तर निश्चय ही कामनाओं की समृद्धि बतलाई जाती है। अपने ध्येयों की इस प्रकार उपासना करे। जिस साम-विशेष से उद्गाता की स्तुति करनी हो, उस साम का (उसकी उत्पत्ति आदि क्रम से) चिन्तन करे ॥८॥

ऋग्वेदस्थमृच्यध्यूढत्वात्साम्नः। उद्गीथाक्षरोपासनफलमधुनोच्यते—दुग्धे दोग्ध्यस्मै साधकाय। का सा वाक्, कं दोहम्। कोऽसौ दोह इत्याह—यो वाचो दोहः। ऋग्वेदादिशब्दसाध्यं फलमित्यभिप्रायस्तद्वाचो दोहस्तं स्वयमेव वाग्दोग्ध्यात्मानमेव दोग्धि। किंचान्नवान्प्रभूतान्नोऽन्नादश्च दीप्ताग्निर्भवति। य एतानि यथोक्तान्येवं यथोक्तगुणान्युद्गीथाक्षराणि विद्वान्सन्नुपास्त उद्गीथ इति ॥ ७ ॥

अथ खल्विदानीमाशीः समृद्धिराशिषः कामस्य समृद्धिर्यथा भवेत्तदुच्यत इति

उद्गीथेति। यो वाचो दोह इत्यत्र षष्ठी कर्मणि द्रष्टव्या। तमेव वाग्दोहं प्रकटयति—ऋग्वेदादीति। तत्साध्यं फलं स्वाधीनोच्चारणक्षमत्वं तदनायासेनास्य संभवतीत्यर्थः। तदिति प्रकृतफलपरामर्शः। षष्ठी पूर्ववत्। तमिति दोहोक्तिः। वाच एव दोहे कर्मत्वं कर्तृत्वं चेत्याह—आत्मानमेवेति। या दोग्धि सा वागेव सा चाऽऽत्मानमेव तं दोग्धीति योजना। यथोक्तानि प्राणवागन्नादिरूपत्वेनोक्तानीति यावत्। यथोक्तगुणान्युत्थानगिरणस्थित्यादिधर्मकाणीत्यर्थः। उद्गीथाक्षराणीत्युक्तं विशेषणानुवादेन स्फुटयति—उद्गीथ इति। उद्गीथ इत्येवंरूपस्य नाम्नोऽक्षराणीति यावत् ॥७॥

वागादिसमृद्धिफलकमुपासनमुपदिश्य फलसमृद्धिर्येन प्रकारेण भवति तत्प्रकारं ज्ञानं सर्वकाम्योपासनशेषभूतं प्रासङ्गिकं विधीयत इत्याह—अथ खल्विति। वागादिसमृद्धिफलकोपासनानन्तर्यमथशब्दार्थः। वक्ष्यमाणोपासनानां सर्वकाम्योपासनाशेषत्वद्योतनार्थं खल्वित्युक्तम्। प्रासङ्गिकत्वं दर्शयति—इदानीमिति। कामशब्दः फलविषयः। तच्छब्दः प्रकारज्ञानपरामर्शी। उच्यते विधीयत

है; प्राणियों को स्थान देने से पृथिवी "थ" है। इसी प्रकार ऊर्ध्व होने से आदित्य "उत्" है; (संवर्ग विद्या में) अग्नि आदि को ग्रस लेने से वायु "गी" है, यज्ञकर्मों की व्यवस्था करने से अग्नि "थ" है। इसी सादृश्य से स्वर्गलोकरूप से संस्तुत होने के कारण सामवेद "उत्" है; यजुष् (मन्त्रों) द्वारा स्वाहा-स्वधादि के द्वारा डाली गयी आहुति देवताओं द्वारा ग्रहण कर लेने के कारण यजुर्वेद 'गी' है; साम के ऋक् आश्रित रहने के कारण ऋग्वेद "थ" है। अब उद्गीथ अक्षर की उपासना का फल कहा जाता है—उस उपासक के लिए ऋग्वेदादि शब्द साध्यरूप फल को वाक् स्वयं ही दुहती है। इतना ही नहीं; वह प्रभूत अन्न से युक्त एवं प्रदीप्ताग्नि होकर अन्न का भोक्ता होता है, जो विद्वान् उत्थान-ग्रसन-स्थिति धर्म वाले उद्गीथ नाम के अक्षरों की उपासना करता है ॥ ७ ॥

वागादि समृद्धिफलक उपासना के अनन्तर जिस उपाय करने से कामनाओं की समृद्धि हो—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्यामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

येन च्छन्दसा स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्तँ स्तोममुपधावेत् ॥ १० ॥

जिस ऋचा में (वह साम अधिष्ठित हो) उस ऋचा का, जिस ऋषि वाला हो, उस ऋषि का तथा जिस देवता की स्तुति करनी हो, उस देवता का भी चिन्तन करे ॥९॥

वह जिस गायत्री आदि छन्द से स्तुति करने वाला हो, उस छन्द का चिन्तन करे। एवं जिस स्तोम से स्तुति करने वाला हो, उस त्रिवृत्पञ्चदशादिरूप स्तोम का भी चिन्तन करे ॥१०॥

वाक्यशेषः। उपसरणान्युपसर्तव्यान्युपगन्तव्यानि ध्येयानीत्यर्थः। कथम्, इत्युपासीत, एवमुपासीत। तद्यथा—येन साम्ना येन सामविशेषेण स्तोष्यन्स्तुतिं करिष्यन्स्याद्भवेदुद्गाता तत्सामोपधावेदुपसरेच्चिन्तयेदुत्पत्त्यादिभिः ॥ ८ ॥

यस्यामृचि तत्साम तां चर्चमुपधावेद्देवतादिभिः। यदार्षेयं साम तं चर्षिम्। यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत् ॥ ९ ॥

येन च्छन्दसा गायत्र्यादिना स्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेत्। येन स्तोमेन स्तोष्यमाणः स्यात्। स्तोमाङ्गफलस्य कर्तृगामित्वादात्मनेपदं स्तोष्यमाण इति। तं स्तोममुपधावेत् ॥ १० ॥

इत्यर्थः। ध्यानप्रकारं प्रश्नपूर्वकं विशदयति—कथमित्यादिना। इतिशब्दार्थमभिनयति—एवमिति। एवंशब्दार्थमुदाहरणनिष्ठतया स्पष्टयति—तद्यथेति। उत्पत्त्यादिभिरित्यादिशब्देन च्छन्दोदेवतादि गृह्यते ॥८॥

देवतादिभिरित्यादिपदेनाऽऽर्षेयादिग्रहः ॥९॥

गायत्र्यादिनेत्यादिपदमुष्णिगनुष्टुब्बृहत्यादिसंग्रहार्थम्। त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविंश इति प्रसिद्धः सोमयागे स्तोमः। आत्मनेपदप्रयोगप्रतिपन्नमर्थमाह—स्तोमाङ्गेति। यत्र कर्तृगामि फलं तत्राऽऽत्मनेपदं प्रयुज्यते, प्रकृते च स्तोष्यमाण इत्यात्मनेपदं दृश्यते, तस्मादेतत्फलस्य कर्तृगामित्वं गम्यते। अन्यथा पूर्वोत्तरयोरिव परस्मैपदप्रयोगप्रसङ्गादित्यर्थः ॥१०॥

उसे बतलाया जाता है। अपने ध्येय फलों की इस प्रकार उपासना करे। किस प्रकार करे—जिस साम विशेष के द्वारा उद्गाता को स्तुति करनी हो, उस साम देवता का उत्पत्ति-छन्द-देवतादि के द्वारा ध्यान करे ॥ ८ ॥

जिस ऋचा में वह साम प्रतिष्ठित हो, उस ऋचा का देवता एवं ऋषि आदि के सहित ध्यान करे। जिस ऋषि वाला हो, उस ऋषि का चिन्तन करे तथा जिस देवता की स्तुति करनी हो, उस देवता का ध्यान करे ॥ ९ ॥

जिस भी गायत्र्यादि छन्द से स्तुति करनी अभीष्ट हो, उस छन्द का भी ध्यान करे। जिस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत् ॥ ११ ॥
आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तो-ऽभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति ॥ १२ ॥

इति प्रथमध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

जिस दिशा की स्तुति करने वाला हो, देवतादि के सहित उस दिशा का चिन्तन करे ।।११।।

(उदगान करने के लिए समुद्यत) उद्गाता गोत्रोच्चारणपूर्वक अपने स्वरूप का चिन्तन करते हुए स्वरादि के उच्चारण में प्रमाद न करता हुआ स्तुति करे। जिस फलाभिलाषा वाला होकर वह उद्गाता स्तुति करता है, ऐसे उपासक के लिये वही फल तत्काल समृद्धि को प्राप्त होता है ।।१२।।

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेदधिष्ठात्रादिभिः ॥ ११ ॥

आत्मानमुद्गाता स्वरूपं गोत्रनामादिभिः सामादीन्क्रमेण स्वं चाऽऽत्मान-मन्ततोऽन्त उपसृत्य स्तुवीत । कामं ध्यायन्नप्रमत्तः स्वरोष्मव्यञ्जनादिभ्यः प्रमादम-कुर्वंस्ततोऽभ्याशः क्षिप्रमेव ह यद्यत्रास्मा एवंविदे स कामः समृध्येत समृद्धिं गच्छेत् । कोऽसौ, यत्कामो यः कामोऽस्य सोऽयं यत्कामः संस्तुवीतेति । द्विरुक्तिरादरार्था ॥१२॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

यां दिशमभीत्यभिव्याप्येत्यर्थः । स्तोष्यन्देवताविशेषमिति शेषः । अधिष्ठातृशब्देनेन्द्रादयो गृह्यन्ते । आदिपदं तत्तद्दिगवस्थितासाधारणधर्मसंग्रहार्थम् ॥११॥

आत्मानं स्वरूपं गोत्रादिभिरपसृत्योद्गाता स्तुवीतेति संबन्धः । नामादिभिरित्यादिशब्देन वर्णाश्रमादिग्रहणम् । अन्तत इत्यस्यार्थमाह—सामादीनिति । पूर्वोक्तान्सामादीन्सर्वानुक्तेन क्रमेण ध्यात्वा तदवसाने स्वात्मानमपि संचिन्त्यापेक्षितफलमनुसंदधानः स्वरादिभ्यः प्रमादमकुर्वन्नुद्गाता स्तुवीतेति योजना । यत्र कर्मण्ययमुद्गाता यथोक्तरीत्या स्तोता भवति तत्र क्षिप्रमेवास्मै स स कामः समृद्धिं गच्छेद्यत्कामः सन्यः स्तुवीतेत्यन्वयः । इतिशब्दः प्रासङ्गिकोपासनसमाप्त्यर्थः ॥१२॥

इति प्रथमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

स्तोम से स्तुति करने वाला हो, उस स्तोम का भी ध्यान करे। मन्त्र में "स्तोष्यमाणः" आत्मनेपद प्रयोग होने से फल भी कर्तृगामी सिद्ध हुआ ॥१०॥

जिस दिशा की स्तुति करने वाला हो, उस दिशा की इन्द्रादि अधिष्ठातृ देवताओं के सहित ध्यान करे ॥११॥

उद्गाता अपना नाम वर्णाश्रमादि का ग्रहण करते हुए सामादि क्रम से ध्यान करता हुआ अन्त में अपने स्वरूप का चिन्तन करता हुआ स्वर, ऊष्म, व्यञ्जनादि के उच्चारण में प्रमाद न करता हुआ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम् ॥ १ ॥

देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते छन्दो-

उद्गीथ नामक ओंकार उपासना के लिये आख्यान

"ओम्" यह अक्षर ही उद्गीथ है, इस रूप में ही उद्गीथ की उपासना करे क्योंकि ओम् ऐसा उच्चारण कर उद्गाता यज्ञ में उद्गान करता है। उसी की व्याख्या की जाती है। (पूर्वप्रस्तावित ओंकार का ही इस वाक्य द्वारा ग्रहण करना चाहिये। 'उद्गीथ' शब्द के अक्षरों की उपासना से व्यवहित होने के कारण ही पुनः उस मन्त्र की आवृत्ति की गयी है) ॥१॥

एक बार मृत्यु से भयभीत हुए देवताओं ने वेदत्रयी (द्वारा प्रतिपादित कर्म) में प्रवेश किया

ओमित्येतदित्यादिप्रकृतस्याक्षरस्य पुनरुपादानमुद्गीथाक्षराद्युपासनान्तरितत्वादन्यत्र प्रसङ्गो मा भूदित्येवमर्थम् । प्रकृतस्यैवाक्षरस्यामृताभयगुणविशिष्टस्योपासनं विधातव्यमित्यारम्भः । ओमित्यादि व्याख्यातम् ॥ १ ॥

देवा वै मृत्योर्मारकाद्बिभ्यतः किं कृतवन्त इत्युच्यते । त्रयीं विद्यां त्रयीविहितं कर्म प्राविशन्प्रविष्टवन्तो वैदिकं कर्म प्रारब्धवन्त इत्यर्थः । तन्मृत्योस्त्राणं मन्यमानाः

प्रासङ्गिकं हित्वा प्रकृतमनुसंधत्ते—ओमित्येतदित्यादीति । पुनरुपादानस्य तात्पर्यमाह—उद्गीथेति । आदिशब्देन पूर्वोक्तान्युपसरणानि गृह्यन्ते। उद्गीथस्य तैर्व्यवहितत्वात्प्रकरणविच्छेदशङ्कायां ततोऽन्यस्मिन्नर्थे प्रसङ्गः स्यात्स मा भूदित्येवमर्थं पुनरुपादानमित्यर्थः। देवा वै मृत्योरित्यादेस्तात्पर्यमाह—प्रकृतस्येति । अक्षरव्याख्यानप्राप्तावनुवादभागं प्रत्याह—ओमित्यादीति ॥१॥

देवासुरा ह वै यत्रेत्यत्र व्याख्याता देवा मारकादासुरात्पाप्मनः सकाशादिति यावत् । कोऽयं कर्मणि प्रवेशो नाम तत्राऽऽह—वैदिकमिति । तदिति वैदिकं कर्मोच्यते । ते छन्दोभिरित्यादि

स्तुति करे। जिस फल की इच्छा मन में रखते हुए वह उद्गाता स्तुति करता है उसे वह फल मिलता है कि वह तत्क्षण समृद्धि को प्राप्त होता है। मन्त्र में "यत्कामः स्तुवीतेति" यह द्विरुक्ति श्रुतिवचनों में आदर प्रदर्शन के लिए है ॥१२॥

"ओम्" यह अक्षर उद्गीथ है—इस प्रकार मन्त्र में पुनः ओंकारात्मक उद्गीथ की उपासना की आवृत्ति इसलिए की गई है ताकि उद्गीथ शब्द के अक्षरों की उपासना से व्यवहित होने के कारण दूसरे अर्थ में प्रसङ्ग न हो जाए। "मृत्यु से भयभीत हुए देवताओं ने वेदत्रयी में प्रवेश किया" इत्यादि मन्त्र का आरम्भ इसलिए किया जाता है क्योंकि अमृत, अभयादि गुणविशिष्ट ओंकारात्मक उद्गीथ अक्षर की उपासना का विधान करना है। 'ओम्' का व्याख्यान किया जा चुका है ॥१॥

आसुरी पाप रूप मृत्यु से भयभीत होकर देवताओं ने क्या किया? वेदत्रयी प्रतिपादित वैदिक कर्म करना प्रारम्भ किया। उनका निश्चय था कि वैदिक कर्म ही मृत्यु से रक्षा कर सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣲस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम् ॥ २ ॥

तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि । ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन् ॥ ३ ॥

तथा कर्मों में न विनियोग किये गये मन्त्रों से जप-होमादि करते हुए देवताओं ने अपने को इन मन्त्रों से आच्छादित कर दिया। उन्होंने जो छन्दों द्वारा अपने को आच्छादित किया, वही छन्दों (मन्त्रों) का छन्दस्त्व है ॥२॥

जैसे (मछुवा गहरे) जल में मछलियों को देख लेता है, वैसे ही मृत्यु ने ऋक् साम और यजुः संबन्धी कर्मों से संलग्न देवताओं को देखा। (वैदिक कर्मानुष्ठान के कारण विशुद्धान्तःकरण वाले) देवताओं ने मृत्यु की बात को जानकर ऋक्, साम और यजुः संबन्धी (कर्मों से निवृत्त हो) स्वर में ही प्रवेश किया ॥ ३ ॥

किंच ते कर्मण्यविनियुक्तैश्छन्दोभिर्मन्त्रैर्जपहोमादि कुर्वन्त आत्मानं कर्मान्तरेष्वच्छादयंश्छादितवन्तः । यद्यस्मादेभिर्मन्त्रैरच्छादयंस्तत्तस्माच्छन्दसां मन्त्राणां छादनाच्छन्दस्त्वं प्रसिद्धमेव ॥ २ ॥

तांस्तत्र देवान्कर्मपरान्मृत्युर्यथा लोके मत्स्यघातको मत्स्यमुदके नातिगम्भीरे परिपश्येद्बडिशोदकस्त्रावोपायसाध्यं मन्यमान एवं पर्यपश्यद्दृष्टवान्मृत्युः कर्मक्षयोपायेन साध्यान्देवान्मेन इत्यर्थः । क्वासौ देवान्ददर्शेत्युच्यते—ऋचि साम्नि यजुषि । ऋग्यजुः-

---

व्याचष्टे—किंचेति । न हि सर्वे मन्त्राः सर्वत्र विनियुज्यन्ते । तथा चैकस्मिन्कर्मण्यनुष्ठीयमाने विनियुक्तान्मन्त्रान्हित्वा कर्मान्तरेष्ववशिष्टैर्जपादि कुर्वन्तः स्वात्मानं देवाश्छादितवन्तः । तस्मान्न मृत्युवश्यता तेषामित्यर्थः । तेषां छन्दोभिश्छादितत्वे छन्दसां छन्दस्त्वप्रसिद्धिप्रकारमभिनयति—तत्तस्मादिति ॥२॥

कर्मानुतिष्ठतां देवानां मृत्युवश्यता न व्यावृत्तेत्याह—तानिति । तत्रेति वैदिककर्मप्रारम्भोक्तिः । उशब्दोऽप्यर्थः । यथोक्तकर्मपरानपि तान्मृत्युः पर्यपश्यदिति संबन्धः । कर्मणां मृत्युपदगोचरत्वं दृष्टान्तेनाऽऽह—यथेति । दार्ष्टान्तिकभागस्य विवक्षितमर्थं संगृह्णाति—मृत्युरिति । दार्ष्टान्तिके क्षुद्रोदकस्थानीयं किं स्यादिति प्रश्नपूर्वकं दर्शयति—क्वासावित्यादिना । ऋगादीनां नित्यत्वेन क्षयाभावान्न

इतना ही नहीं; उन्होंने कर्मों में विनियोग न किए गये मन्त्रों से जप-होमादि करते हुए अपने को अन्य कर्मों में आच्छादित कर दिया। क्योंकि इन मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित किया; इसलिए आच्छादन करने के कारण मन्त्र 'छन्दस्' नाम से प्रसिद्ध हैं ॥२॥

मृत्यु ने कर्मानुष्ठान में तत्पर देवताओं को कर्म क्षय उपाय साध्य माना। जैसे लोकव्यवहार में गहरे जल में प्रविष्ट मछलियों को मछुआ बडिश जल स्राव उपाय साध्य देखता है। देवताओं को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कथं पुनः स्वरशब्दवाच्यत्वमक्षरस्येत्युच्यते—

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येव॑ सामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन् ॥ ४ ॥

ओम् की महिमा

जब (अध्ययन द्वारा उपासक) ऋक् को प्राप्त करता है, तब वह "ओम्" ऐसा कहकर बड़े आदर से उच्चारण करता है। ऐसे ही वह साम और यजुः को भी प्राप्त करता है। यह जो अक्षर है, यही स्वर है, यह अमृत और अभय रूप है; इसमें प्रविष्ट हो देवता अमर और अभय हो गये हैं ॥ ४ ॥

सामसंबन्धिकर्मणेत्यर्थः। ते नु देवा वैदिकेन कर्मणा संस्कृताः शुद्धात्मानः सन्तो मृत्योश्चिकीर्षितं विदितवन्तः। विदित्वा च त ऊर्ध्वा व्यावृत्ताः कर्मभ्य ऋचः साम्नो यजुष ऋग्यजुःसामसंबद्धात्कर्मणोऽभ्युत्थायेत्यर्थः। तेन कर्मणा मृत्युभयापगमं प्रति निराशास्तदपास्यामृताभयगुणमक्षरं स्वरं स्वरशब्दितं प्राविशन्नेव प्रविष्टवन्तः। ओंकारोपासनपराः संवृत्ताः। एवशब्दोऽवधारणार्थः सन्समुच्चयप्रतिषेधार्थः॥ ३॥

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवं सामैवं यजुः। एष उ स्वरः।

क्षुद्रोदकस्थानीयतेत्याशङ्क्य विवक्षितमर्थमाह—ऋगिति। कर्मणश्च कृतकत्वेन फलतः स्वरूपतश्च क्षयिता प्रसिद्धेति भावः। मृत्युपरिहारोपायमुपदिशति—ते नु देवा इत्यादिना। कर्मभ्यः सकाशादूर्ध्वा व्यावृत्ता इत्यर्थः। सर्वकर्मसंग्रहार्थं कर्मभ्य इति बहुवचनम्। अवैदिककर्मत्यागस्य कर्मिष्वपि सिद्धत्वाद्वैदिककर्मत्यागार्थं विशिनष्टि—ऋच इति। कर्मत्यागमात्रात्कृतकृत्यताशङ्कां वारयति—तेनेति। किं तदक्षरं तदाह—ॐकारेति ॥३॥

उदात्तादिरूपत्वाभावादक्षरस्य न स्वरशब्दत्वमित्याशङ्क्य परिहरति—कथमित्यादिना। ऋचमाप्नोत्यध्ययनेन स्वाधीनां करोतीत्यर्थः। अतिस्वरत्यतिशयेनाऽऽदरधियोच्चारयतीति यावत्। ऋग्यजुःसाम्नां प्रत्येकमोंकारोच्चारणद्वारेणैवाऽऽप्तिदर्शनादित्यतिशब्दार्थः। उशब्दोऽपिपर्यायः।

किस के परायण देखा—ऋक्, साम और यजुष् कर्मों के आश्रित देखा। वैदिक कर्म करने से सुसंस्कृत एवं विशुद्धान्तःकरण वाले देवताओं ने मृत्यु की इच्छा को जान लिया। इसे जानकर ऋक्, यजुष् एवं साम-संबन्धी कर्मों से विरति धारण कर मृत्यु भय के नाश के प्रति निराश हुए, उन कर्मों के अनुष्ठान छोड़ कर अमृत एवं अभय गुणयुक्त स्वर शब्द में प्रवेश किया अर्थात् ॐकार की उपासना के आश्रित हुए। मन्त्र में "एव" शब्द अवधारणार्थक होकर समुच्चय प्रतिषेध के लिए है ॥३॥

ओंकारात्मक उद्गीथ अक्षर स्वर शब्द वाच्य किस प्रकार है। इसे कहा जाता है—

जब उपासक अध्ययन के द्वारा ऋक् को अपने अधीन करता है, तब वह 'ओम्' का अत्यन्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षर॰ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

ओंकार उपासना का फल

(उन देवताओं के समान ही दूसरा भी) वह जो इस प्रकार जानकर इस अक्षर की उपासना करता है, वह भी (उन देवताओं के समान ही) इस अमृत अभयरूप अक्षर में ही प्रवेश कर लेता है और उसमें प्रविष्ट हो जिस अमृतत्व से देव अमर हो गये थे, उसी अमृतत्व से युक्त हो यह भी अमर हो जाता है ।।५।।

।। इति चतुर्थः खण्डः ।।

कोऽसौ, यदेतदक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य यथागुणमेवामृता अभयश्चाभवन्देवाः ॥ ४ ॥

स योऽन्योऽपि देववदेवैतदक्षरमेवममृताभयगुणं विद्वान्प्रणौति स्तौति । उपासनमेवात्र स्तुतिरभिप्रेता । स तथैवैतदेवाक्षरं स्वरममृतमभयं प्रविशति । तत्प्रविश्य च राजकुलं प्रविष्टानामिव राज्ञोऽन्तरङ्गबहिरङ्गतावन्न परस्य ब्रह्मणोऽन्तरङ्गबहिरङ्गताविशेषः । किं तर्हि यदमृता देवा येनामृतत्वेन यदमृता अभूवंस्तेनैवामृतत्वेन विशिष्टस्तदमृतो भवति न न्यूनता नाप्यधिकताऽमृतत्व इत्यर्थः ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

संप्रतिपन्नस्वरवदिति दृष्टान्तार्थः । अमृतमभयं तथाविधब्रह्मप्रतीकत्वादित्यर्थः । तत्प्रविश्य ब्रह्मबुद्ध्या तद्ध्यानं कृत्वेत्यर्थः ।।४।।

भवतु देवानामेवमस्माकं तु किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—स योऽन्योऽपीति । राजगृहं प्रविष्टस्य विशेषदर्शनादक्षरं प्रविष्टस्यापि फले विशेषः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—तत्प्रविश्येति । अमृतत्वेन विशिष्टा इति शेषः ।।५।।

इति प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।।४।।

आदर के साथ उच्चारण करता है । इसी प्रकार वह साम और यजुष् को अपने अधीन करता है । यह स्वर ही है जो ब्रह्म का प्रतीक अमृत और अभय गुणयुक्त अक्षररूप है इसका ब्रह्मबुद्धि से ध्यान कर देवता अमर और अभय हो गए ।।४।।

देवताओं के समान अन्य जो कोई भी उपासक विद्वान् अमृत, अभयगुणसम्पन्न इस ॐकार अक्षर की स्तुति करता है; वह उन देवताओं के समान ही अमृत, अभयस्वरूप स्वर अक्षर में प्रवेश करता है । उपासना से यहाँ स्तुति अर्थ अभिप्रेत है । उसमें (अमृतत्व विशिष्टतारूप) प्रवेश लाभ कर जिस प्रकार देवता अमर हो गये, उसी प्रकार अमर हो जाता है । अमृतत्व में न्यूनता या अधिकता कुछ भी नहीं है । जिस प्रकार राजकुल में प्रविष्ट होने पर राजा की बहिरङ्ग या अन्तरङ्गता प्राप्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

प्राणादित्यदृष्टिविशिष्टस्योद्गीथस्योपासनमुक्तमेवानूद्य प्रणवोद्गीथयोरेकत्वं कृत्वा तस्मिन्प्राणरश्मिभेदगुणविशिष्टदृष्ट्याऽक्षरस्योपासनमनेकपुत्रफलमिदानीं वक्तव्यमित्यारभ्यते—

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ १ ॥

ओंकार उद्गीथ और आदित्य की उपासना

निस्सन्देह जो उद्गीथ है, वही ऋग्वेदियों का प्रणव है और जो प्रणव है, वही यहाँ पर उद्गीथ है। एवं यह आदित्य ही उद्गीथ है और यही प्रणव है, क्योंकि यह सूर्य "ओम्" ऐसा उच्चारण करता हुआ ही जाता है (अतएव सविता की अनुज्ञा पाकर प्राणों की प्रवृत्ति होती है) ॥१॥

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो बह्वृचानां यश्च प्रणवस्तेषां स एव च्छान्दोग्य उद्गीथशब्दवाच्यः। असौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणवः। प्रणवशब्दवाच्योऽपि स एव बह्वृचानां नान्यः। उद्गीथ आदित्यः। कथम्। उद्गीथाख्यमक्षरमोमित्येतदे

खण्डान्तरस्य तात्पर्यमाह—प्राणादित्येति। प्रणवस्योद्गीथस्य चैकत्वं कृत्वा तस्मिन्सत्यध्यात्म प्राणदृष्ट्याऽधिदैवतमादित्यदृष्ट्या च विशिष्टस्योद्गीथस्य यदुपासनमुक्तं तदेवानूद्य निन्दित्वा प्राणानां रश्मीनां च भेद एव गुणस्तद्विशिष्टदृष्ट्या तस्यैवोद्गीथावयवस्याक्षरस्यानेकपुत्रफलमुपासनमनेन ग्रन्थेन वक्तव्यमित्युत्तरो ग्रन्थः संप्रति प्रस्तूयत इत्यर्थः। अमृताभयगुणकाक्षरोपासनानन्तर्यमथशब्दार्थः। प्रणवोद्गीथयोरेकत्वे वैदिकप्रसिद्धिप्रदर्शनार्थं खल्वित्युक्तम्। तयोरेकत्वमुक्त्वाऽऽदित्यदृष्ट्योद्गीथोपास्तिमुक्तामनुवदति—असाविति। उद्गीथादित्ययोरेकत्वं प्रश्नपूर्वकमुपपादयति—उद्गीथ इत्यादिना।

होती है, उस प्रकार परब्रह्म में अन्तरङ्गता अथवा बहिरङ्गता रूप कोई विशेषता नहीं है ॥५॥

प्राणादित्य दृष्टिविशिष्ट उद्गीथ उपासना के कहे तात्पर्य को बतलाकर ॐकार और उद्गीथ में अभिन्नता सम्पादन कर उसमें प्राणों और रश्मियों के भेदरूप गुण की विशिष्टता की दृष्टि से अक्षर की उपासना अनेक पुत्रफलक है—इस प्रकार निरूपण करने के लिए अब आगे का ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है—

वैदिकप्रसिद्ध जो उद्गीथ है; वही ऋग्वेदियों का ॐकार है, जो ओंकार है, उनके लिए वही छान्दोग्य उद्गीथ शब्दवाच्य है। (आदित्य दृष्टि से उद्गीथ उपासना करनी चाहिए) आदित्य ही उद्गीथ है और यही ओंकार है। प्रणवशब्दवाच्य भी उन्हीं ऋग्वेदियों के मत में है; अन्य के मत में नहीं। उद्गीथ और आदित्य की एकता कैसे संभव है क्योंकि धातु के अनेक अर्थ होने से स्वर धातु का उच्चारण अथवा गमन अर्थ होने से यह सूर्य उद्गीथाख्य 'ओम्' उच्चारण करता हुआ जाता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रश्मीँस्त्वं पर्यावर्तयाद्बहवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥२॥

रश्मि दृष्टि से सविता की व्यस्त उपासना का विधान

निस्सन्देह मैंने प्रमुखरूप से इसी का (आदित्य और उसकी रश्मियों का अभेद करके) गान किया। इसी से तू मेरा एक ही पुत्र है, ऐसा कौषीतकी ने अपने पुत्र से कहा। अतः तू सूर्य और रश्मियों का भेदरूप से चिन्तन कर, इससे निश्चय ही तुझे बहुत से पुत्र होंगे, यह अधिदैवत उपासना है ॥२॥

हि यस्मात्स्वरन्नुच्चारयन्ननेकार्थत्वाद्धातूनाम् । अथवा स्वरन्गच्छन्नेति । अतोऽसावुद्गीथः सविता ॥ १ ॥

तमेतमु एवाहमभ्यगासिषमाभिमुख्येन गीतवानस्म्यादित्यरश्म्यभेदं कृत्वा ध्यानं कृतवानस्मीत्यर्थः । यतस्तस्मात्कारणान्मम त्वमेकोऽसि पुत्र इति ह कौषीतकिः । कुषीतकस्यापत्यं कौषीतकिः पुत्रमुवाचोक्तवान् । अतो रश्मीनादित्यं च भेदेन त्वं पर्यावर्तयात्पर्यावर्तयेत्यर्थः । त्वंयोगात् । एवं बहवो वै ते तव पुत्रा भविष्यन्तीत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥

उच्चारयन्नेतीति संबन्धः । स्वरतेर्गत्यर्थत्वात्कथमुच्चारयन्नित्युच्यते तत्राऽऽह—अनेकार्थत्वादिति । गच्छन्सविता प्राणिनां प्रवृत्त्यर्थमोमित्यनुज्ञां कुर्वन्निव गच्छति तस्मादोंकारत्वं सवितुरित्याह अथवेत्यादिना ॥१॥

आदित्यदृष्ट्योद्गीथमुपदिष्टमनूद्य निन्दति—तमेतमिति । निन्दाफलं दर्शयति—अत इति । पर्यावर्तयादिति प्रथमपुरुषे श्रूयमाणे किमिति मध्यमपुरुषो व्याख्यायते तत्राऽऽह—त्वंयोगादिति । युष्मद्युपपदे मध्यमपुरुषविधानादित्यर्थः । रश्मिभेदगुणदृष्टिविशिष्टोद्गीथोपासनस्य फलं कथयति—एवमिति । वक्ष्यमाणेऽध्यात्मे बुद्धिसमाधानार्थमुक्तं देवताविषयं दर्शनमुपसंहरति—इत्यधिदैवतमिति ॥२॥

अथवा चलते हुए सूर्य प्राणियों की प्रवृत्ति के लिए "ॐ" इस प्रकार अनुज्ञा करता हुआ सा जाता है। इसलिए ओंकारात्मक उद्गीथ ही आदित्य है ॥ १ ॥

निश्चय ही मैंने प्रमुख रूप से आदित्य और रश्मि की अभिन्नता सम्पादन कर गान किया। क्योंकि उसी का ध्यान किया, इसलिए तुम ही मेरे एक पुत्र हो—ऐसा कुषीतक की अपत्य कौषीतकि ने अपने पुत्र से कहा। अतः तुम सूर्य और रश्मियों का भेदबुद्धि से ध्यान करो, इससे तुम्हारे बहुत से पुत्र होंगे, यह अधिदैवत दर्शन है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतो-
मिति ह्येष स्वरन्नेति ॥ ३ ॥**

**एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति
ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणा ँस्त्वं भूमानमभि-
गायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति ॥ ४ ॥**

मुख्य प्राण रूप से उद्गीथ की उपासना

इसके बाद अध्यात्म उपासना कही जाती है। यह जो प्रमुख प्राण है, उसकी उद्गीथ रूप से उपासना करे, क्योंकि (वागादि प्रवृत्ति के लिये) यह "ओम्" इस प्रकार अनुज्ञा करता हुआ जाता है ॥३॥

मुख्य प्राण की व्यस्त उपासना का फल

मैंने प्रमुखरूप से केवल मुख्य प्राण का ही ध्यान किया था, इसीलिये तू अकेला ही मेरा पुत्र हुआ; ऐसा कौषीतकी ने अपने पुत्र से कहा। अतः तुझे बहुत से पुत्र होवें इस आशय से तू भेदगुण-विशिष्ट प्राणों का चिन्तन कर ॥४॥

अथानन्तरमध्यात्ममुच्यते । य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतेत्यादि पूर्ववत् । तथोमिति ह्येष प्राणोऽपि स्वरन्नेत्योमिति ह्यनुज्ञां कुर्वन्निव वागादि-प्रवृत्त्यर्थमेतीत्यर्थः । न हि मरणकाले मुमूर्षोः समीपस्थाः प्राणस्योंकरणं शृण्वन्तीति। एतत्सामान्यादादित्येऽप्योंकरणमनुज्ञामात्रं द्रष्टव्यम् ॥ ३ ॥

एतमु एवाहमभ्यगासिषमित्यादि पूर्ववदेव । अतो वागादीन्मुख्यं च प्राणं भेद-

---

अध्यात्मप्राणदृष्ट्योद्गीथोपास्तिमुक्तामनुवदति—अथेत्यादिना । कथं प्राणोद्गीथयोरेकत्व-मित्याशङ्क्याऽऽह—तथेति । यथा प्राणिनां प्रवृत्त्यर्थमोमित्यनुज्ञां कुर्वन्निवाऽऽदित्यो गच्छतीत्युक्तं तद्वदिति यावत् । उक्तमेव व्यतिरेकद्वारा स्फोरयति—न हीति । मुमूर्षुसमीपवर्तिनो बन्धवो मरणकाले प्राणस्य वागादिप्रवृत्त्यर्थमनुज्ञाकरणं नैव जानन्ति । तथा च जीवदवस्थायामोमिति तदनुज्ञावशादेव वागादीनां प्रवृत्तिरालक्ष्यते । तस्मात्प्राणस्यानुज्ञामात्रमोंकरणमित्यर्थः । प्राणादित्ययोरध्यात्माधि-दैवतयोरुद्गीथत्वाविशेषात्प्राणवदादित्येऽप्यनुज्ञामात्रमोंकरणमवधेयमित्याह—एतत्सामान्यादिति ॥३॥

प्राणदृष्ट्योक्तामुद्गीथोपास्तिं निन्दित्वा विवक्षितामुपास्तिमुपन्यस्यति—एतमु एवेति । भूमानं

बुद्धिसमाधान के लिए अधिदैवत उपासना निरूपण के अनन्तर अब अध्यात्म उपासना वर्णन की जाती है। जो यह मुख्य प्राण है, उसकी उद्गीथ-बुद्धि से उपासना करनी चाहिए—इत्यादि पूर्वकृत मन्त्रभाष्य की तरह यहाँ भी अर्थ समझ लेना चाहिए। प्राण-उद्गीथ अभिन्नता इसलिए है क्योंकि यही प्राण भी प्राणियों की प्रवृत्ति के लिए "ओम" इस प्रकार उच्चारण कर अनुज्ञा करता हुआ सा वाणी में बोलने की सामर्थ्य के लिए संचरण करता है। यही कारण है कि मरने के समय मुमूर्षु के समीप बैठे हुए लोग प्राण के ओंकार उच्चारण को नहीं सुन पाते हैं। अध्यात्म-प्राण और अधिदैवत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनुसमाहरतीति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

प्रणव और उद्गीथ का एकत्व

निश्चय ही जो उद्गीथ है, वही प्रणव है और जो प्रणव है वही उद्गीथ है। ऐसा समझकर होतृ सदन (होता के शंसन कर्म करने योग्य स्थान) से उद्गाता हौत्र कर्म में किये हुए दोषयुक्त उद्गान का अनुसंधान करता है, संशोधन करता है ॥५॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

गुणविशिष्टमुद्गीथं पश्यन्भूमानं मनसाऽभिगायतात् । पूर्ववदावर्तयेत्यर्थः । बहवो वै मे मम पुत्रा भविष्यन्तीत्येवमभिप्रायः सन्नित्यर्थः । प्राणादित्यैकत्वोद्गीथदृष्टेरेकपुत्रत्वफलदोषेणापोदितत्वाद्रश्मिप्राणभेददृष्टेः कर्तव्यता चोद्यतेऽस्मिन्काण्डे बहुपुत्रफलत्वार्थम् ॥ ४ ॥

अथ खलु य उद्गीथ इत्यादिप्रणवोद्गीथकत्वदर्शनमुक्तं तस्यैतत्फलमुच्यते—होतृषदनाद्धोता यत्रस्थः शंसति तत्स्थानं होतृषदनं हौत्रात्कर्मणः सम्यक्प्रयुक्तादित्यर्थः । न हि देशमात्रात्फलमाहर्तुं शक्यम् । किं तद्धैवापि दुरुद्गीतं दुष्टमुद्गीतमुद्गानं कृत-

---

बहुत्वोपेतमिति यावत् । मध्यमपुरुषे तातङ्ङादेशस्य वैकल्पिकत्वेऽपि प्रथमपुरुषशङ्कया दुरन्वयं व्यावर्तयति—पूर्ववदिति । एकत्वदृष्टिनिन्दाद्वारा प्रधानोपासनं सफलमुपसंहरति—प्राणेत्यादिना ॥४॥

पूर्वोत्तरयोर्ग्रन्थयोरसंगतिमाशङ्क्य तात्पर्यप्रदर्शनपूर्वकमुत्तरग्रन्थमवतार्य व्याकरोति—अथेत्यादिना । ननु यथाश्रुतं स्थानमेव होतृषदनं किं नेष्यते तत्राऽऽह—न हीति । हौत्रात्कर्मणो यत्फलमाह्रियते तत्प्रश्नपूर्वकमविशेषतो दर्शयति—किं तदित्यादिना । निपातद्वयमवधारणातिशयफलकं क्रियापदेन

आदित्य के उद्गीथ होने से साम्य होने के कारण आदित्य में भी ओङ्करण अनुज्ञामात्र ही समझनी चाहिए ॥ ३ ॥

'मैंने अकेले ही उसका ध्यान किया था' इत्यादि अर्थ पूर्वमन्त्र के समान है। अतः वागादि एवं मुख्य प्राण में भेदगुणविशिष्ट उद्गीथ की भावना कर बहुत्व का मन से ध्यान करो। प्राण और आदित्य में उद्गीथ दृष्टि से एकपुत्रफलरूप दोष निरूपण होने के अनन्तर "मेरे बहुत से पुत्र उत्पन्न हो जाएँ" इस आशय से इस खण्ड में प्राण-रश्मि में भेददृष्टि-कर्तव्यता बहुपुत्र लाभ के लिए कही जाती है ॥ ४ ॥

निश्चय ही जो उद्गीथ है, वह प्रणव है—इत्यादि श्रुति प्रणव-उद्गीथ का साम्य बतलाती है। अब इसका फल कहा जाता है। होता के शंसन कर्म करने के योग्य स्थान से उद्गाता का हौत्रकर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

अथेदानीं सर्वफलसंपत्त्यर्थमुद्गीथस्योपासनान्तरं विधित्स्यते—

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयत इयमेव साऽग्निरमस्तत्साम ॥ १ ॥

उद्गीथ संबन्धी आधिदैविक उपासनाएँ

यह पृथिवी ही ऋक् है तथा अग्नि साम है, वह यह (अग्नि नामक) साम इस (पृथिवीसंज्ञक) ऋक् में अधिष्ठित है। अतः (इस समय भी सामगायकों द्वारा) ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। यह पृथिवी ही 'सा' है और अग्नि 'अम' है। अतएव ये (दोनों मिलकर) साम हैं ॥१॥

मुद्गात्रा स्वकर्मणि क्षतं कृतमित्यर्थः। तदनुसमाहरत्यनुसंधत्त इत्यर्थः। चिकित्सयेव धातुवैषम्यसमीकरणमिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

इयमेव पृथिव्यृक्। ऋचि पृथिवीदृष्टिः कार्या। तथाऽग्निः साम। साम्न्यग्निदृष्टिः। कथं पृथिव्यग्न्योर्ऋक्सामत्वमिति। उच्यते। तदेतत्तदेतदग्न्याख्यं सामैतस्यां पृथिव्या-

---

संबध्यते। अपिशब्दस्तु निष्ठानन्तरभावितया नेतव्यः। दुष्टमुद्गानमेव स्पष्टयति—उद्गात्रेति। कथमन्य-निष्ठात्कर्मणोऽन्यत्र फलमाहर्तुं शक्यमित्याशङ्क्याऽऽह—चिकित्सयेति। उद्गाता प्रणवोद्गीथैकत्वविज्ञान-माहात्म्यात्प्रामादिकं स्वकर्मणि प्राप्तं क्षतं हौत्रात्कर्मणः सम्यक्प्रयुक्तात्प्रणवात्प्रतिसंदधातीत्यर्थः ॥५॥

इति प्रथमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

इयमेवेत्यादिसंदर्भस्य तात्पर्यमाह—अथेति। पुत्राद्यैश्वर्यैकदेशविषयोपासनोपदेशानन्तरमवसरे प्राप्ते ज्योतिष्टोमादावधिकृतस्य समग्रैश्वर्यप्राप्त्यर्थमधिदैवाध्यात्मविभागेनोद्गीथविषयमेवापूर्वमुपासन-मस्मिन्ग्रन्थे विधातुमिष्टमित्यर्थः। तत्र तदङ्गभूतमुपासनमादौ विदधाति—इयमेवेति। पृथिव्या-मृग्दृष्टिरत्र नेष्टा कर्माङ्गस्य संस्कर्तव्यत्वादित्यभिप्रेत्याऽऽह—ऋचीति। ऋचि यथा पृथिवीदृष्टिर-नन्तरवाक्ये विहिता तथाऽग्निः सामेत्यत्राग्निदृष्टिः साम्नि विधीयते पूर्ववदित्याह—तथेति। ऋक्त्वं पृथिव्याः सामत्वं चाग्नेरप्रसिद्धमिति शङ्कते—कथमिति। 'ऋक्सामत्वसिद्धावित्युत्तरमाह—उच्यत

में किए हुए दोषपूर्ण उद्गान का अनुसंधान करता है। देशमात्र से फलसंग्रह संभव नहीं है, जैसे उपचार के द्वारा ही धातुवैषम्य को सम किया जा सकता है ॥ ५ ॥

पुत्राद्यैश्वर्य-विषयक उपासना निरूपण के अनन्तर अब समस्त फल-संपत्ति के उद्गीथ की अन्य उपासना का विधान किया जाता है। यही पृथिवी ऋक् है। ऋक् में पृथिवीदृष्टि की भावना करनी चाहिए। इसी प्रकार अग्नि साम है। अतः साम में अग्निदृष्टि करनी चाहिए। पृथिवी और अग्नि का ऋक्-सामत्व रूप होना कैसे सिद्ध होता है, इस पर कहा जाता है। वह यह अग्निसंज्ञक साम इस

---

१. ऋक्सामसमत्वसिद्धेरिति युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम ॥ २ ॥

द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते द्यौरेव साऽऽदित्यो-ऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अन्तरिक्षरूप ही ऋक् है और वायु ही साम है, वह यह (वायुरूप) साम इस (अन्तरिक्षरूप) ऋक् में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। अन्तरिक्ष ही 'सा' है और वायु 'अम' है इस प्रकार ये दोनों साम कहे जाते हैं ॥२॥

द्युलोक ही ऋक् है और आदित्य साम है वह यह (आदित्यरूप) साम इस (द्योरूप) ऋक् में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान (आज भी) किया जाता है। द्यौ ही 'सा' है और आदित्य 'अम' है, इस प्रकार (ये दोनों मिलकर) साम हैं ॥३॥

मृच्यध्यूढमधिगतमुपरिभावेन स्थितमित्यर्थः । ऋचीव साम । तस्मादत एव कारणा-दृच्यध्यूढमेव साम गीयत इदानीमपि सामगैः । यथा च ऋक्सामनी[1] नात्यन्तं भिन्ने अन्योन्यं तथैतौ पृथिव्यग्नी । कथम्, इयमेव पृथिवी सा सामनामार्धशब्दवाच्या । इतरार्ध-शब्दवाच्योऽग्निरमस्तदेतत्पृथिव्यग्निद्वयं सामैकशब्दाभिधेयत्वमापन्नं साम । तस्मान्ना-न्योन्यं भिन्नं पृथिव्यग्निद्वयं नित्यसंश्लिष्टमृक्सामनी इव । तस्माच्च पृथिव्यग्न्यो-र्ऋक्सामत्वमित्यर्थः[2] । सामाक्षरयोः पृथिव्यग्निदृष्टिविधानार्थमियमेव साऽग्निरम इति केचित् ॥ १ ॥

अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः सामेत्यादि पूर्ववत् ॥ २ ॥ ३ ॥

इति । तयोराधाराधेयभावे गमकं दर्शयति—तस्मादिति । ऋचि पृथिवीदृष्टिः साम्नि चाग्निदृष्टिरित्यत्र हेत्वन्तरमाह—यथा चेति । पृथिव्यग्न्योरत्यन्तभेदाभावं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना । कर्माङ्गयोः सह प्रयोगादृक्सामयोरन्योन्यमव्यभिचारान्नात्यन्तभेदस्तथा पृथिव्यग्न्योरप्येकशब्दवाच्य-त्वान्नात्यन्तं भिन्नतेत्यर्थः । तयोरत्यन्तभेदाभावे फलितमाह—तस्माच्चेति । पृथिवी साशब्दवाच्या स्त्रीत्वादग्निरमः पुंस्त्वादिति द्रष्टव्यम् । पक्षान्तरमुत्थाप्याङ्गी करोति—सामाक्षरयोरिति ॥१॥

पृथिवी-संज्ञक ऋक् में उत्कृष्ट भाव से स्थित है। ऋक् की तरह साम भी प्रतिष्ठित है। इसीलिए ऋक् में अत्युन्नत भाव से स्थित अब भी साम को सामगान करने वाले गाते हैं। जिस प्रकार ऋक् और साम परस्पर अत्यन्त भिन्न नहीं हैं यही बात पृथिवी और अग्नि के लिए समझनी चाहिए।

---

१. समासान्तविधेरनित्यत्वादाह—ऋक्सामनी इति । २. ऋक्सामयोरिति—"अचतुरे' त्यादिना समासान्तोऽच् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नक्षत्राण्येवर्क्चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढँ साम तस्मादृच्यध्यूढँ साम गीयते नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम ॥ ४ ॥

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढँ साम तस्मादृच्यध्यूढँ साम गीयते ॥ ५ ॥

नक्षत्र ही ऋक् है और चन्द्रमा साम है, वह यह (चन्द्रमारूप) साम इस (नक्षत्ररूप) ऋक् में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का गान किया जाता है। नक्षत्र ही 'सा' है और चन्द्रमा 'अम' है इस प्रकार ये साम हैं ॥४॥

और यह जो आदित्य की शुक्ल प्रभा है, वही ऋक् है एवं आदित्य में जो नील वर्ण अत्यन्त श्यामता है, वह साम है। वह यह नीलवर्ण रूप साम इस शुक्ल रूप दीप्ति में अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है ॥५॥

नक्षत्राणामधिपतिश्चन्द्रमा अतः स साम ॥ ४ ॥

अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः शुक्ला दीप्तिः सैवक् । अथ यदादित्ये नीलं परः

कथं पुनर्नक्षत्रपर्याये तदेतदेतस्यामित्यादिवाक्यं न हि नक्षत्रेषु चन्द्रमसः स्थितिरत आह—नक्षत्राणामिति । नक्षत्राधिपत्यात्तदुपरिभावेन चन्द्रमसः स्थितेरित्यतःशब्दार्थः । नक्षत्रसहितं चन्द्रमसं परामृष्टुं सशब्दः ॥४॥

अङ्गोपासनानि कानिचिदुक्त्वा तादृगेवोपासनान्तरमाह—अथेति । आदित्यस्य मण्डलात्मनो यद्रूपं शुक्लं दृश्यत ऋचि तद्दृष्टिः कर्तव्येत्यर्थः । तदेव रूपं विशिनष्टि—भा इति । तामेव व्याचष्टे—शुक्ला दीप्तिरिति । ऋचि यथा पूर्वोक्तरूपदृष्टिस्तथा साम्नि वक्ष्यमाणरूपदृष्टिरनुष्ठेयेत्याह—अथेति ।

क्योंकि यह पृथिवी 'साम' शब्द के पूर्वार्ध 'सा' शब्द वाची है; "अग्नि" अग्रिम अर्ध शब्द "अम" की वाचक है। इसलिए ये पृथिवी और अग्नि मिलकर "साम" शब्दाभिधेय साम की निष्पत्ति हुई। अतः ऋक्, साम की तरह नित्यसंश्लिष्ट पृथिवी और अग्नि में परस्पर भिन्नता नहीं है। इससे पृथिवी-अग्नि का ऋक्सामत्व होना सिद्ध हो गया। पृथिवी स्त्रीत्वविवक्षा होने से 'सा' शब्दवाच्या है; अग्नि पुंस्त्वविवक्षा से 'अम' शब्दवाच्य है—ऐसा भी कुछ विचारक कहते हैं ॥ १ ॥

अन्तरिक्ष ही ऋक् है; वायु ही साम है—इत्यादि व्याख्यान पूर्व मन्त्र के समान है ॥२ ॥ ३ ॥
नक्षत्रों का अधिपति होने के कारण चन्द्रमा की उत्कृष्ट स्थिति है—इससे वह साम है ॥ ४ ॥
पूर्वमन्त्रों में अङ्गोपासनाओं का निरूपण कर उसी तरह की कुछ अन्य उपासनाएँ निरूपित की जाती हैं। आदित्यमण्डल में जो शुक्लरूप दिखाई देता है, उसकी ऋक् में दृष्टि करनी चाहिए तथा आदित्य में जो नील, अत्यन्त कृष्णरूपता है, उसमें साम की दृष्टि करनी चाहिए। एकान्तसेवन से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः ॥ ६ ॥

तथा यह जो आदित्य की शुक्ल प्रभा है, वही 'सा' है, और जो नीलवर्ण अत्यन्त कृष्णता है, वही 'अम' है। ये दोनों मिलकर साम हैं, एवं यह जो आदित्य के मध्य में सुवर्णमय के सदृश पुरुष दिखायी पड़ता है, जो सुवर्ण के समान दाढ़ी मूछों वाला और स्वर्ण के समान केशवाला है, एवं जिसका नख तक सभी अंग सुवर्ण सा है ॥६॥

कृष्णं परोऽतिशयेन कार्ष्ण्यं तत्साम । तद्धचेकान्तसमाहितदृष्टेर्दृश्यते ॥ ५ ॥

ते एवैते भाः शुक्लकृष्णत्वे सा चामश्च साम । अथ य एषोऽन्तरादित्य आदित्यस्यान्तर्मध्ये हिरण्मयो हिरण्मय इव हिरण्मयः । न हि सुवर्णविकारत्वं देवस्य संभवति । ऋक्सामगेष्णत्वापहतपाप्मत्वासंभवात् । न हि सौवर्णेऽचेतने पाप्मादि-प्राप्तिरस्ति येन प्रतिषिध्येत । चाक्षुषे चाग्रहणात् । अतो लुप्तोपम एव हिरण्मयशब्दो ज्योतिर्मय इत्यर्थः । उत्तरेष्वपि समाना योजना । पुरुषः पुरि शयनात्पूरयति वा स्वेना-

---

नन्वादित्ये शौक्ल्यवदनतिशयं कार्ष्ण्यं नास्माभिरनुभूयते तत्राऽऽह—तद्धीति । एकान्तेन समाहिता शास्त्रसंस्कृता यस्य दृष्टिस्तस्याऽऽदित्ये निरतिशयं कार्ष्ण्यं दृश्यते तथा च तद्दृष्टिः साम्नि श्लिष्टेत्यर्थः ॥५॥

अथ यदेवैतदित्यादेस्तात्पर्यमाह—ते एवेति । अङ्गोपासनानि समाप्यानन्तरमाधिदैविकीं प्रधानोपासनां विवक्षुरुपास्यस्वरूपमुपन्यस्यति—अथेत्यादिना । किमिति हिरण्मयपदमुपमार्थं व्याख्यायते हिरण्यविकारत्वमेवात्र विवक्षितं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—न हीति । अपहतपाप्मत्वासंभवं साधयति—न हीत्यादिना । पाप्मादीत्यादिपदं तत्कार्यसंग्रहार्थम् । किंच चक्षुष्युपास्ये पुरुषे सुवर्ण-विकारत्वस्याग्रहणाद्गौणमेव हिरण्मयपदमित्याह—चाक्षुषे चेति । न च तत्राप्यातिदेशिकं तद्ग्रहण-मृक्सामगेष्णत्वादिना तादृशेन विरोधात्तस्माद्गौणमेव हिरण्मयपदमित्युपसंहरति—अत इति । हिरण्यश्मश्रुरित्यादिविशेषणेष्वपि तुल्यं गौणत्वमित्याह—उत्तरेष्वपीति । नन्वादित्यादिमण्डले पुरुषो

समाहित शास्त्रसंस्कृत दृष्टि को ही सूर्य में अतिशय कृष्णरूपता दृष्टिगोचर होती है, वह दृष्टि साम में संबद्ध है ॥ ५ ॥

उस आदित्य की शुक्ल और कृष्ण वर्ण की आभाएँ 'सा' और 'अम्' हैं। अब आधिदैविक स्वरूप का निरूपण करने की इच्छा से कहा जाता है। जो इस आदित्यमण्डल में सुवर्ण के समान हिरण्मय पुरुष है; ऋक्-साम द्वारा गेष्ण होने के कारण निष्पाप होना संभव नहीं है। सुवर्ण के विकार अचेतन में पापादि कार्य की प्राप्ति संभव नहीं है जिससे उसका निषेध किया जाए। इसके साथ-साथ चक्षु मध्यवर्ती उपास्य पुरुष में सुवर्ण विकार ग्रहण न होने से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद ॥ ७ ॥

जैसे कप्यास (वानर की गुदा लाल) होती है, वैसे लाल वर्ण वाले कमल के समान अत्यन्त तेजस्वी उसके नेत्र हैं। ऐसे उस आदित्य मण्डलस्थ पुरुष का 'उत्' ऐसा नाम है क्योंकि वह सम्पूर्ण पापों (के सहित उनके कार्यों)से ऊपर उठा हुआ है। जो इस प्रकार जान लेता है, वह सम्पूर्ण पापों से ऊपर उठ ही जाता है ॥७॥

ऽऽत्मना जगदिति दृश्यते निवृत्तचक्षुर्भिः समाहितचेतोभिर्ब्रह्मचर्यादिसाधनापेक्षैः । तेजस्विनोऽपि श्मश्रुकेशादयः कृष्णाः स्युरित्यतो विशिनष्टि—हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश इति । ज्योतिर्मयान्येवास्य श्मश्रूणि केशाश्चेत्यर्थः । आप्रणखात्प्रणखो नखाग्रं नखाग्रेण सह सर्वः सुवर्ण इव भारूप इत्यर्थः ॥ ६ ॥

तस्यैवं सर्वतः सुवर्णवर्णस्याप्यक्ष्णोर्विशेषः । कथं तस्य यथा कपेर्मर्कटस्याऽऽसः कप्यासः । आसेरुपवेशनार्थस्य करणे घञ् । कपिपृष्ठान्तो येनोपविशति । कप्यास इव

नास्माभिर्दृश्यते तत्राऽऽह—निवृत्तचक्षुर्भिरिति । विशिष्टाधिकारिणामादित्यपुरुषदर्शनमुपपादयति—ब्रह्मचर्यादीति ॥६॥

सर्व एव सुवर्ण इति विशेषणादक्ष्णोरपि सुवर्णत्वे प्राप्ते प्रत्याह—तस्येति । विशेषमेव प्रश्नपूर्वकं विशदयति—कथमित्यादिना । यथा कप्यासवद्व्यवस्थितं पुण्डरीकं तथा तस्याक्षिणी इति योजना । आसशब्दनिष्पत्तिप्रकारं सूचयति—आसेरिति । घञन्तस्य शब्दस्य विवक्षितमर्थं कथयति—कपीति । तस्य करणत्वं स्फुटयति—येनेति । कपिः स कपिपृष्ठान्तः कप्यास इति शेषः । पदार्थमुक्त्वा वाक्यार्थमाह—कप्यास इवेति । निहीनोपमया देवस्य चक्षुषी व्यपदिशता तयोरपि निहीनत्वं व्यपदिष्टं

हिरण्मय पद गौण ही है। अतः ज्योतिर्मय हिरण्मयशब्द लुप्तोपमा वाला है। हिरण्यश्मश्रु आदि शब्दों में आगे भी ऐसे अर्थ लगा लेना चाहिए। देहाख्यपुरी में शयन करने व अपनी आत्मा से सम्पूर्ण जगत् को पूरण करने से वह पुरुष है; उसे ब्रह्मचर्यादि साधनों से समाहितचित्त एवं दिव्य दृष्टि के द्वारा देखा जा सकता है। तेजस्वी की भी दाढ़ी मूँछ काली ही होंगी, अतः हिरण्यश्मश्रु एवं हिरण्यकेश विशेषण दिया गया है अर्थात् उस आदित्यमण्डलवर्ती पुरुष के दाढ़ी और मूँछ ज्योतिर्मय हैं। नखाग्र-सहित सभी कुछ सुवर्ण के समान ज्योतिरूप है ॥ ६ ॥

सभी कुछ सुवर्ण की तरह ज्योतिरूप होने से आँखों में कुछ विशेषता है। देवता की आँखें कप्यास के समान अत्यन्त तेजस्वी हैं। बन्दर की पीठ के अन्तभाग गुदा को कप्यास कहते हैं। इससे वह बैठता है। 'मर्कट का आस' इस प्रकार 'कप्यास' में षष्ठी तत्पुरुष समास है। 'आस' शब्द बैठने अर्थ में है इसमें करण में "घञ्" प्रत्यय हुआ है। (देवता की आँखों की उपमा निकृष्ट अङ्ग से देने से उनमें भी हीनता न आए—इस शङ्का का समाधान करते हैं—) उपमान से उपमित होने से हीनो-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्यर्क्च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो

उस देव के ऋक् और साम गेष्ण (पक्ष) हैं। इसीलिये वह देव उद्गीथ कहा गया है। अतएव उसका गायक उद्गाता कहा जाता है। क्योंकि वह इस (उत्) का ही गाने वाला है। वह यह

पुण्डरीकमत्यन्ततेजस्व्येवमस्य देवस्याक्षिणी । उपमितोपमानत्वान्न हीनोपमा । तस्यैवंगुणविशिष्टस्य गौणमिदं नामोदिति । कथं गौणत्वम् । स एष देवः सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः पाप्मना सह तत्कार्येभ्य इत्यर्थः । य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादि वक्ष्यति । उदित उद् इत उद्गत इत्यर्थः । अतोऽसावुन्नामा । तमेवंगुणसंपन्नमुन्नामानं यथोक्तेन प्रकारेण यो वेद सोऽप्येवमेवोदेत्युद्गच्छति सर्वेभ्यः पाप्मभ्यः । ह वा इत्यवधारणार्थौ निपातौ । उदेत्येवेत्यर्थः ॥ ७ ॥

तस्योद्गीथत्वं देवस्याऽऽदित्यादीनामिव विवक्षितत्वादाह—तस्यर्क्च साम च

स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—उपमितेति । कप्यासेनोपमितं पुण्डरीकं तेनोपमानेनोपमितत्वाच्चक्षुषोर्न निहीनोपमानप्रयुक्तं निहीनत्वमित्यर्थः । यथोक्तस्याऽऽदित्यपुरुषस्य क्षेत्रज्ञत्वशङ्कां व्यावर्तयितुं नाम व्यपदिशति—तस्येति । नाम्नो गौणत्वं शङ्काद्वारा व्युत्पादयति—कथमित्यादिना । न तस्य सर्वपाप्मोदयस्तत्कार्यभाक्त्वादित्याशङ्क्याऽऽह—पाप्मनेति । आदित्यक्षेत्रज्ञेऽपि सर्वपाप्मोदयः संभवति, न ह वै देवान्पापं गच्छतीति श्रुतेरित्याशङ्क्य परमात्मविषयवाक्यशेषमुदाहरति—य आत्मेति । उक्तार्थयोगोऽतःशब्दार्थः । उपास्यं परमात्मानमुपन्यस्य तदुपासनमिदानीं सफलमुपन्यस्यति—तमेवंगुणसंपन्नमिति । यथोक्तेन प्रकारेणोन्नामानमिति संबन्धः ॥७॥

कथं परस्योपासनमित्यपेक्षायामुद्गीथे संपाद्येति दर्शयति—तस्येत्यादिना । यथाऽऽदित्यादीनामुद्गीथे संपाद्योपासनमत्र विवक्ष्यते तथा परमात्मनोऽपि तत्र संपाद्योपासनं विवक्षित्वा सर्वात्मत्वमाह तस्येत्यादिवाक्यमित्यर्थः । मण्डलावच्छिन्नस्य पुरुषस्य कथमृगादिगेष्णत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—

पमा दोष नहीं आ पाता क्योंकि वहाँ कप्यास से तेजस्वी गुण उपमित है। यथोक्तगुण से विशिष्ट आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का (क्षेत्रज्ञ नाम न होकर) गौण नाम "उत्" है। गौण नाम इसलिए है क्योंकि वह देव सम्पूर्ण पापसंयुक्त कार्यों से ऊपर उठा है। "यह आत्मा धर्माधर्म से शून्य, जरावस्था से रहित, मृत्युहीन, शोकरहित, क्षुधा से रहित, पिपासाशून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है" ऐसा छान्दोग्य श्रुति अष्टम अध्याय में प्रतिपादित करेगी। इसलिए यह "उत्" नामा है। इस प्रकार जो "उत्" नामा आदित्यमण्डलवर्ती पुरुष को यथोक्त प्रकार से जान लेता है, वह भी समस्त पापों से ऊपर उठ ही जाता है। मन्त्र में "ह" और "वै" अव्यय अवधारणार्थक हैं। भावाशय यह है कि वह निश्चय ही ऊपर उठ जाता है ॥ ७ ॥

आदित्यादिकों की तरह उस देवता की उद्गीथ विवक्षा होने से श्रुति कहती है—उस देवता :

---

१. छा. उ. ८-१-५ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

'उत्' नामक देव जो इस (आदित्य लोक) से ऊपर लोक हैं और जो इन देवताओं की कामनाएँ हैं; उन सभी का शासक है। बस! यह अधिदैवत उद्गीथ उपासना कही गयी ॥८॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

गेष्णौ पृथिव्याद्युक्तलक्षणे पर्वणी। सर्वात्मा हि देवः। परापरलोककामेशितृत्वादुपपद्यते पृथिव्यग्न्यृक्सामगेष्णत्वम्। सर्वयोनित्वाच्च। यत एवमुन्नामा चासावृक्सामगेष्णश्च तस्मादृक्साम'गेष्णत्वप्राप्तमुद्गीथत्वमुच्यते परोक्षेण परोक्षप्रियत्वाद्देवस्य तस्मादुद्गीथ इति। तस्मात्त्वेव हेतोरुदं गायतीत्युद्गाता। यस्माद्ध्येतस्य यथोक्तस्योन्नाम्नो गाताऽसावतो युक्तोद्गातेति नामप्रसिद्धिरुद्गातुः। स एष देव उन्नामा ये चामुष्मादादित्यात्पराञ्चः परागञ्चनादूर्ध्वा लोकास्तेषां लोकानां चेष्टे न केवलमीशितृत्वमेव चशब्दा-

---

सर्वात्मेति। परस्य स्वारस्येन सर्वात्मत्वादाध्यानार्थं मण्डलावच्छेदादुपपन्नमृगादिगेष्णत्वमित्यर्थः। तत्रैव हेत्वन्तरमाह—परापरेति। सर्वात्मत्वं साधयति—सर्वयोनित्वादिति। सर्वकारणत्वेन सर्वात्मत्वाहगादिगेष्णत्वं युक्तमेवेत्यर्थः। तस्मादुद्गीथ इति वाक्यं योजयति—यत इति। प्राप्ते सति तस्मादुद्गीथ इत्यनेन वाक्येनोद्गीथत्वं परोक्षेण नाम्ना देवस्योच्यते इति योजना। किमिति परोक्षनाम्ना देवो व्यपदिश्यत इत्याशङ्क्य "परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विष" इति श्रुत्यन्तरमाश्रित्याऽऽह—परोक्षप्रियत्वादिति। उन्नामत्वे देवस्योद्गातुरुद्गातृत्वप्रसिद्धिं प्रमाणयति—तस्मादिति। तच्छब्दार्थं स्फुटयति—यस्मादिति। प्रकृतस्योन्नाम्नो देवस्याऽऽगानादित्यतःशब्दार्थः। उद्गातुरुद्गातेति नामप्रसिद्धिर्युक्तेति योजना। सर्वपाप्मोदयलिङ्गात्तस्य चान्यत्रासंभवादादित्यान्तर्गतो देवः परमात्मेत्युक्तं तत्रैव हेत्वन्तरमाह—स एष इति। देवकामानामादित्यादुपरितन-

---

के ऋक् और साम पृथिव्यादि पूर्वोक्त लक्षण पर्व हैं क्योंकि मण्डलावच्छिन्न वह देव सर्वात्मा है। इहलोक और परलोक कामेशिता होने से पृथिवी अग्नि का ऋक व साम-गेष्ण होना युक्तिसंगत ही है क्योंकि सब का उत्पत्तिस्थान यही है। "उत्" नामा यह पुरुष ऋक् व साम-गेष्ण है, ऋक्-साम-गेष्णत्व गुणयुक्त होने से प्रत्यक्ष ही इसे उद्गीथ कहा जाता है। परोक्षप्रिय होने से "उत्" नामा देवता की उद्गीथ प्रसिद्धि है। क्योंकि "उत्" नामा देवता का उद्गान करता है, इसलिए उद्गाता है। क्योंकि इसी यथोक्त नाम का गायक है, अतः उद्गान करने वाले की उद्गाता नाम प्रसिद्धि युक्तिसंगत ही है। आदित्य लोक से ऊपर जितने लोक हैं; उन सभी को यह "उत्" नामा देव न केवल शासित करता है, बल्कि धारण भी करता है। 'उसने पृथिवी एवं अन्तरिक्ष लोक को धारण किया" ऐसा

---

१. 'गेष्णत्वे प्राप्ते' इति टीकानुरोधी पाठः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

अथाध्यात्मं वागेवर्क्प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम ॥ १ ॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। चक्षुरेव साऽऽत्माऽमस्तत्साम ॥ २ ॥

उद्‌गीथसंबन्धी अध्यात्म उपासनाएँ

अब अध्यात्म उपासना का वर्णन किया जाता है। वाक् ही ऋक् है और प्राण साम है। इस प्रकार इस (वाक्‌रूप) ऋक् में प्राणरूप साम अधिष्ठित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का (आज भी) गान किया जाता है। वाक् ही 'सा" है और प्राण ही 'अम' है; इस प्रकार ये साम हैं ॥१॥

नेत्र ही ऋक् है और जीवात्मा साम है। इस प्रकार इस ऋक् में यह साम बैठा है। इसलिये ऋक् में अधिष्ठित साम का गान ही किया जाता है। चक्षु ही "सा" है और जीवात्मा ही "अम" है, एवं ये दोनों साम हैं ॥२॥

द्धारयति च। "स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्" इत्यादिमन्त्रवर्णात्। किंच देवकामानामीष्ट इत्येतदधिदैवतं देवताविषयं देवस्योद्‌गीथस्य स्वरूपमुक्तम् ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथाधुनाऽध्यात्ममुच्यते। वागेवर्क्प्राणः साम। अधरोपरिस्थानत्वसामान्यात्। प्राणो घ्राणमुच्यते सह वायुना, वागेव सा प्राणोऽम इत्यादि पूर्ववत् ॥ १ ॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम। आत्मेति च्छायात्मा तत्स्थत्वात्साम ॥ २ ॥

लोकेष्वधिष्ठातारो ये देवास्तेषां कामाः काम्यमानफलविशेषास्तेषामिति यावत्। न हि निरङ्कुशं लोककामेशितृत्वं परस्मादन्यत्र संभवति। एष सर्वेश्वर इति श्रुतेरिति भावः ॥८॥

इति प्रथमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

आधिदैविकोपास्त्यानन्तर्यमथशब्दार्थः। ऋचि वाग्दृष्टिः साम्नि प्राणदृष्टिश्च कर्तव्येत्यत्र हेतुमाह—अधरेति। कथमृक्सामयोरिव वाक्प्राणयोरधरोपरिस्थानत्वं तत्राऽऽह—प्राण इति। प्राणमात्रत्वं व्यावर्तयति—सहेति ॥१॥

चक्षुषि भोक्तारं व्यावर्तयति—आत्मेति। छायात्मनः सामत्वे हेतुमाह—तत्स्थत्वादिति।

श्रुति भी कहती है। यही नहीं; "देवकामनाओं का प्रशासक है" ऐसा कहकर उद्‌गीथ का अधिदैवत स्वरूप भी प्रतिपादित कर दिया गया ॥ ८ ॥

अधिदैवत पक्ष से उपासना का स्वरूप बतलाकर अब अध्यात्म स्वरूप प्रस्तुत किया जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रोत्रमेवर्ङ् मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम ॥ ३ ॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳ साम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम ॥४॥

श्रोत्र ही ऋक् है और मन साम है। इस प्रकार इस (श्रोत्ररूपी) ऋक् में यह (मनरूप) साम बैठा है। अतः ऋक् में अधिष्ठित ही साम का गान किया जाता है। श्रोत्र ही "सा" है और मन ही "अम" है। इस प्रकार ये दोनों साम हैं ॥३॥

तथा यह जो नेत्रों की शुक्लप्रभा है वही ऋक् है और जो नीलवर्ण अत्यन्त श्यामता है, वह साम है। इस प्रकार इस ऋक् में यह साम स्थित है। अतः ऋक् में अधिष्ठित साम का ही गान किया जाता है। तथा यह जो नेत्र की शुक्लदीप्ति है, वही "सा" है और नीलवर्ण गहरी श्यामता है, वही "अम" है। इस प्रकार ये दोनों साम हैं ॥४॥

श्रोत्रमेवर्ङ् मनः साम, श्रोत्रस्याधिष्ठातृत्वान्मनसः सामत्वम् ॥ ३ ॥

अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्क् । अथ यन्नीलं परः कृष्णमादित्य इव दृक्शक्त्यधिष्ठानं तत्साम ॥ ४ ॥

च्छायात्मनः स्थितत्वादृचि सामवदित्यर्थः ॥२॥

आध्यात्मिकानि कानिचिदङ्गोपासनान्युक्त्वाऽनन्तरं प्रकारान्तरेणाङ्गोपासनमेव किंचिदुपदिशति—अथेति। अक्ष्णो यदेतद्रूपं शुक्लं दृश्यत ऋचि तद्दृष्टिः कर्तव्येत्यर्थः। तदेव रूपं विशिनष्टि—भा इति। ऋचि पूर्वोक्तरूपदृष्टिवद्वक्ष्यमाणरूपदृष्टिरपि साम्नि कर्तव्येत्याह—अथेति। यथाऽऽदित्यमण्डले समधिगम्यमतिकृष्णं रूपमुक्तं तथा चक्षुष्यपि दृक्शक्तेरधिष्ठानं तादृग्रूपमुपलभ्यते तद्दृष्टिः साम्नि कर्तव्येत्यर्थः ॥४॥

है। ओष्ठ के ऊपर स्थान साम्य से वाक् ही ऋक् है और प्राण साम है। वायु के साथ प्राण घ्राण कहा जाता है। वाक् ही "सा" है और प्राण ही "अम" है, इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् समझ लेना चाहिए॥ १ ॥

चक्षु ही ऋक् है और जीवात्मा साम है। चक्षु में छायात्मा के रहने के समान ऋक् में साम है॥ २ ॥

श्रोत्र ही ऋक् है और मन साम है। श्रोत्र के अधिष्ठानस्वरूप मन का सामत्व होना सिद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम ॥ ५ ॥

अध्यात्म एवं अधिदैव पुरुष की एकता

तथा यह जो नेत्रों के मध्य में पुरुष दीखता है वही ऋक् है, वही साम है, वही उक्थ है, वही यजुः है और वही ब्रह्म है। उस इस नेत्रस्थ पुरुष का वही रूप है, जो सूर्यमण्डलस्थ पुरुष का है और जो उसके पक्ष हैं, वे ही इसके भी पक्ष हैं; जो उसका नाम है, वही इसका भी नाम है ॥५॥

अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते । पूर्ववत् । सैवर्गध्यात्मं वागाद्या पृथिव्याद्या चाधिदैवतम् । प्रसिद्धा च ऋक्पादबद्धाक्षरात्मिका । तथा साम । उक्थसाहचर्याद्वा स्तोत्रं सामोक्थं शस्त्रमुक्थादन्यत्तथा यजुः स्वाहास्वधावषडादि सर्वमेव वाग्यजुस्तत्स एव । सर्वात्मकत्वात्सर्वयोनित्वाच्चेति ह्यवोचाम । ऋगादिप्रकरणात्तद्ब्रह्मेति त्रयो वेदाः । तस्यैतस्य चाक्षुषस्य पुरुषस्य तदेव रूपमतिदिश्यते । किं तद्यदमुष्या-

---

आध्यात्मिकप्रधानोपासनशेषत्वेनाङ्गोपासनान्युक्त्वाऽनन्तरं प्रधानोपासनाविषयं दर्शयति—अथेति । दृश्यत इति प्रयोगाच्छायात्माऽयमित्याशङ्क्याऽऽह—पूर्ववदिति । यथा पूर्वस्मिन्नाधिदैविके वाक्ये समाहितचेतोभिरादित्यपुरुषस्य दृश्यत्वमुक्तं तथा चाक्षुषपुरुषस्यापि विशिष्टाधिकारिभिरेव दृश्यत्वमेष्टव्यमित्यर्थः। छायात्मपक्षे वाक्यशेषविरोधमभिप्रेत्याऽऽह—सैवेति । येयमृग्यथा व्याख्याता सा सर्वा स एव पुरुष इत्यर्थः। ऋच्युक्तं न्यायं साम्न्यतिदिशति—तथेति । यत्किंचित्साम तत्सर्वं स एव पुरुष इत्यर्थः। ऋक्सामशब्दयोरर्थान्तरमाह—उक्थेति । ऋक्साम यद्वदिति दृष्टान्तस्तथाशब्दार्थः। कथमृगाद्यात्मत्वं परस्येत्याशङ्क्याऽऽह—सर्वात्मकत्वादिति । ब्रह्मशब्दस्य परमात्मविषयत्वं व्यावर्तयन्प्रकरणादित्युक्तन्यायेन त्रयो वेदाः स एव पुरुष इत्युपसंहारः। छायात्मनो जडस्य व्यावृत्त्यर्थं रूपातिदेशं दर्शयति—तस्येति । किं तदादित्यपुरुषस्य रूपमित्यपेक्षायामाह—हिरण्मय इत्यादीति । इतश्च

हो जाता है ॥ ३ ॥

कुछ आध्यात्मिक उपासनाओं के निरूपण के पश्चात् अब प्रकारान्तर से अङ्गोपासना का उपदेश किया जाता है—यह जो नेत्रों की शुक्ल ज्योति है; वही ऋक् है। जो आदित्यमण्डल में नील वर्ण अत्यन्त कृष्णरूपता है, उसी प्रकार चक्षु में भी दृक्शक्ति के अधिष्ठानरूप की दृष्टि साम में करनी चाहिए ॥ ४ ॥

आध्यात्मिक अङ्गोपासना के अनन्तर प्रधानोपासना के विषय को प्रदर्शित किया जाता है। जो यह चक्षु के मध्य पुरुष दिखाई देता है, वह छायात्मा है—इत्यादि व्याख्यान पूर्वमन्त्र के समान है। वही ऋक् अध्यात्म है, वागादि एवं पृथिव्यादि अधिदैवत है। ऋक् का पादबद्ध अक्षरात्मिका होना प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार जो भी कुछ साम है; वह सभी वही पुरुष है। उक्थ की समीपता होने के कारण ऋक् साम उक्थ है शस्त्र उक्थ से भिन्न है। इसी प्रकार 'स्वाहा, स्वधा, वषट् आदि सभी कुछ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऽऽदित्यपुरुषस्य । हिरण्मय इत्यादि यदधिदैवतमुक्तम् । यावमुष्य गेष्णौ पर्वणो तावेवा-स्यापि चाक्षुषस्य गेष्णौ । यच्चामुष्य नामोदित्युद्गीथ इति च तदेवास्य नाम । स्थान-भेदाद्रूपगुणनामातिदेशादीशितृत्वविषयभेदव्यपदेशाच्चाऽऽदित्यचाक्षुषयोर्भेद इति चेत् । न । अमुनाऽनेनैवेत्येकस्योभयात्मप्राप्त्यनुपपत्तेः । द्विधाभावेनोपपद्यत इति चेत् । वक्ष्यति हि स एकधा भवति त्रिधा भवतीत्यादि । न । चेतनस्यैकस्य निरवयवत्वाद्द्विधा-भावानुपपत्तेः । तस्मादध्यात्माधिदैवतयोरेकत्वमेव । यत्तु रूपाद्यतिदेशो भेदकारणम-वोचो न तद्भेदावगमाय । किं तर्हि स्थानभेदाद्भेदाशङ्का मा भूदित्येवमर्थम् ॥ ५ ॥

नायं छायात्मेत्याह—यावमुष्येति । नामातिदेशोऽप्येतमर्थमुपोद्बलयतीत्याह—यच्चेति । आदित्यचाक्षुषयोरुपास्ययोर्भेदादुपासनाऽपि भिन्नेति शङ्कते—स्थानेति । आदित्यमण्डलं चक्षुश्चेति स्थाने भिन्ने रूपं हिरण्मयो हिरण्यश्मश्रुरित्यादि ऋगादिगेष्णत्वादिर्गुण उदित्यादि नाम तेषामतिदेशस्तस्यैतस्य तदेव रूपमित्यादिः । ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम् । ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां मनुष्यकामानां (णां) चेत्यध्यात्मम् । इत्ययमीशितृत्वविषयभेदव्यपदेशः । अतश्चैतयोर्भेदादुपासनमपि भिन्नमेवेत्यर्थः । नोपास्यभेदादुपासनाभेदोऽस्तीति दूषयति-नेति । उपासकस्तावदमुनाऽऽदित्यात्मना पराचो लोकान्देवकामांश्चाऽऽप्नोति स एवानेन चाक्षुषरूपेणार्वाचीनलोकान्मनुष्यकामांश्चाऽऽप्नोतीति श्रूयते । न चैकस्य वस्तुनो भिन्नोभयरूपत्वप्राप्तिरुपपद्यते तस्माद्भेदकल्पना न युक्तेत्यर्थः । उभयात्मकत्वमेकस्यापि विद्यामाहात्म्याद्द्वैध्यभावोपगमादुपपन्नमिति शङ्कते—द्विधेति । एकस्य विद्यावशादनेकरूपत्वे वाक्यशेषं प्रमाणयति—वक्ष्यति हीति । एकस्यानेकशरीरपरिग्रहेऽपि न स्वरूपभेदोपपत्तिरिति परिहरति—न चेतनस्येति । एकत्वसाधकसद्भावत इच्छब्दार्थः । परोक्तं भेदकमनुवदति—यत्त्विति । भेदकारणमित्यस्मादुपरिष्टादितिशब्दो द्रष्टव्यः दूषयति—न तदित्यादिना । तदित्यतिदिश्यमानं रूपाद्युक्तम् ॥५॥

वाक् ही यजुः है, उसका सर्वात्मक, सर्वकारणत्व होना पहले ही कहा जा चुका है। यहाँ ऋगादि प्रकरण होने से वह ब्रह्म है, इस न्याय से वेदत्रयी मूलक वही चाक्षुष पुरुष है। इस चाक्षुष पुरुष के उसी रूप का निदर्शन किया जाता है। उसका वही रूप है, जो आदित्यमण्डलस्थ पुरुष का है। जो हिरण्मय पुरुष है, वह हिरण्यकेश एवं हिरण्यश्मश्रु है" इत्यादि अधिदैवत स्वरूप पहले ही कह दिया गया। जो इसके पक्ष हैं; वही इस चाक्षुष पुरुष के पक्ष हैं। जो उसका आदित्य उद्गीथ नाम है; वही इसका भी नाम है। आदित्यमण्डल और चक्षु का स्थानभेद होने से रूप, गुण और नाम का अतिदेश होने से तथा प्रशासनविषयक भेदनिरूपण होने से उनमें परस्पर वैशिष्ट्य है। उपास्य भेद होने से उपासना भेद करना युक्तिसङ्गत नहीं है। उपासक इस आदित्यात्मक रूप से लोकों एवं देव कामनाओं को प्राप्त करता है, वही उपासक इस चाक्षुष रूप से अर्वाचीन लोकों एवं मनुष्य कामनाओं को प्राप्त करता है—इस प्रकार एक ही पदार्थ उभयात्मक असंभव होने से उसमें भेद कल्पना करना युक्तिसङ्गत नहीं है। यदि कहो "वह एक रूप वाला है, तीन रूपों वाला है" इत्यादि श्रुतिवाक्यों से उसमें भेद सिद्धि हो जाती है—तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि चेतन एक है, उसके निरवयव होने के कारण उसमें भेदकल्पना संभव नहीं है। एकत्व साधक प्रमाण के उपस्थित रहने पर अध्यात्म और अधि-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्य-कामानां (णां) चेति तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते [1]धनसनयः ॥ ६ ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताँश्चाऽऽप्नोति देवकामाँश्च ॥ ७ ॥

वह यह नेत्रस्थ पुरुष इस (अध्यात्म आत्मा) से नीचे के लोक हैं, उनका तथा मनुष्यसंबन्धी शासन का काम करता है। अतः जो यह गायक लोग वीणा में गाते हैं, वे उस ईश्वर का ही गान करते हैं। अतएव वे धनवान् हो जाते हैं ॥६॥

अभेददृष्टि से की गयी उक्त उपासना का फल

तथा जो दोनों की एकता समझ कर साम गान करता है (चाक्षुष आत्मा और आदित्य आत्मा) दोनों की स्तुति करता है, एवं वह उपासक उस आदित्य के ही द्वारा जो इससे भी ऊपर के लोक हैं और जो देवताओं के भोग हैं, उन्हें भी प्राप्त कर लेता है ॥७॥

स एष चाक्षुषः पुरुषो ये चैतस्मादाध्यात्मिकादात्मनोऽर्वाञ्चोऽर्वाग्गता लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यसंबन्धिनां च कामानाम्। तत्तस्माद्य इमे वीणायां गायन्ति गायकास्त एतमेव गायन्ति। यस्मादीश्वरं गायन्ति तस्मात्ते धनसनयो धनलाभयुक्ता धनवन्त इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अथ य एतदेवं विद्वान्यथोक्तं देवमुद्गीथं विद्वान्साम गायत्युभौ स गायति चाक्षुष-

---

आधिदैविकपुरुषवदाध्यात्मिकेऽपि पुरुषे निरतिशयैश्वर्यश्रवणाच्च तयोरैक्यमित्याह—स एष इति। तयोर्भेदाभावे हेत्वन्तरमाह—तत्तस्मादिति। ईश्वरस्यैव प्रागुक्तहेतोर्गानविषयत्वयोग्यत्वादित्यर्थः। तच्छब्दार्थं स्फुटयति—यस्मादिति ॥६॥

स्थानभेदेन यथोक्तोपासनवतः फलोक्त्यर्थं पातनिकां करोति—अथेति। एतत्सामेति संबन्धः। एवं विद्वानित्येतदेव विभजते—यथोक्तमिति। विद्वानित्यस्मादुपरिष्टादथशब्दः संबध्यते। सोऽमुनैव

दैवत में अभिन्नता ही है। रूपादि शब्द से भेदहेतुक आख्यान का प्रतिपादन "स्थानभेद से भेद की आशङ्का न हो" इसकी निवृत्ति के लिए है, भेदज्ञान के लिए नहीं है ॥५॥

(आधिदैविक पुरुष की तरह आध्यात्मिक पुरुष का भी अतिशय ऐश्वर्य श्रवण होने के कारण उनकी एकता का प्रतिपादन किया जाता है—) यह चाक्षुष पुरुष अध्यात्म आत्मा से नीचे के लोकों तथा मनुष्यसंबन्धी लोकों का शासन करता है। इनमें अभेद होने का दूसरा यह भी हेतु है कि गायक लोग वीणावादन में इसी की महिमा का गान करते हैं। ईश्वर का गान करने से धनप्राप्ति होने से

---

१. धनसनय इति—छन्दसि वनसनरक्षिमथामिति इन् कर्मण्युपपदे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ता॑ँश्चाऽऽप्नोति मनुष्यकामा॑ँश्च तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयात् ॥ ८ ॥

कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

तथा चाक्षुष पुरुष के द्वारा ही जो इससे नीचे के लोक हैं, उन्हें एवं मानुषी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । अतः इस प्रकार जानता हुआ उद्गाता (यजमान से इस प्रकार) कहे ॥८॥

मैं तेरे लिए किन कामनाओं का आगान करूँ ? क्योंकि यह उद्गाता इष्ट कामनाओं के आगान में समर्थ होता है । जो ऐसा जानता है, वह सामगान करता है ॥९॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

मादित्यं च । तस्यैवंविदः फलमुच्यते—सोऽमुनैवाऽऽदित्येन स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तांश्चाऽऽप्नोति आदित्यान्तर्गतदेवो भूत्वेत्यर्थो. देवकामांश्च ॥ ७ ॥

अथानेनैव चाक्षुषेणैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तांश्चाऽऽप्नोति मनुष्यकामांश्च चाक्षुषो भूत्वेत्यर्थः । तस्मादु हैवंविदुद्गाता ब्रूयाद्यजमानं कमिष्टं ते तव काममागायानीति । एष हि यस्मादुद्गाता कामागानस्योद्गानेन कामं संपादयितुमीष्टे समर्थ इत्यर्थः । कोऽसौ, य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति । द्विरुक्तिरुपासन-

---

लोकान्कामांश्चाऽऽप्नोतीति संबन्धः । आप्तिप्रकारं विवृणोति—स एष इति । उपास्यवदुपासकस्यापि कुतो निरतिशयमैश्वर्यं न हि द्वयोर्निरङ्कुशमैश्वर्यं युक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—आदित्येति । अमुनैवाऽऽदित्येनेत्युक्तमेवात्र व्यक्तीकृतम् ॥७॥

अथशब्दस्तथापर्यायः । चाक्षुषो भूत्वाऽनेनैव चाक्षुषेणैवेति संबन्धः । उक्तफलस्य याजमानत्वं दर्शयति—तस्मादिति । तच्छब्दार्थमेव कथयति—एष हीति । उद्गातारं विशिनष्टि—कोऽसाविति । उद्गीथे परस्य संपाद्योपासनं विभागेनोक्तमुपसंहरति—द्विरुक्तिरिति ॥८।९॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

वे धनवान् हो जाते हैं ॥६॥

तथा जो उपासक यथोक्त देव उद्गीथ एवं चाक्षुष रूप व आदित्यमण्डलस्थ रूप की एक समझ कर सामगान करता है, वह उसी आदित्य से जो उससे भी श्रेष्ठ लोक हैं, आदित्यमण्डलवर्ती देवता होकर देव कामनाओं के साथ-साथ देवताओं को भी प्राप्त कर लेता है, यही इस उपासक का फल है ॥७॥

तथा इसी चाक्षुष पुरुष के द्वारा चाक्षुष मनुष्य होकर जो इससे नीचे के लोक हैं, उन्हें एवं ऐहिलौकिक कामनाओं को प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार का उपासक उदगाता बोले कि मैं यजमान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति ॥ १ ॥

अनेकधा दृष्टान्तों से उद्गीथ उपासना का उत्कर्ष प्रदर्शन

यह इतिहास प्रसिद्ध है कि शलावत का पुत्र शिलक, चिकितायन का पुत्र दाल्भ्य और जीवल का पुत्र प्रवाहण, ये तीनों ही उद्गीथ आदि के विज्ञान में कुशल थे। उन्होंने एक दूसरे से कहा—हम लोग उद्गीथ विद्या में कुशल हैं। अतः आप लोगों की सम्मति हो तो उद्गीथ विद्या के संबन्ध में परस्पर (पक्ष-प्रतिपक्ष के उपन्यासपूर्वक) विचार कहें ॥१॥

समाप्त्यर्था ॥ ८ ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अनेकधोपास्यत्वादक्षरस्य प्रकारान्तरेण परोवरीयस्त्वगुणफलमुपासनान्तरमानिनाय। इतिहासस्तु सुखावबोधनार्थः। त्रयस्त्रिसंख्याकाः। ह इत्यैतिह्यार्थः। उद्गीथ उद्गीथज्ञानं प्रति कुशला निपुणा बभूवुः। कस्मिंश्चिद्देशे काले च निमित्ते वा समेतानामित्यभिप्रायः। न हि सर्वस्मिञ्जगति त्रयाणामेव कौशलमुद्गीथादिविज्ञाने।

अध्यात्माधिदैवतस्थानभेदावच्छिन्नपरमात्मदृष्टयोद्गीथोपासनमखिलपाप्मापगमफलमुक्तम्। संप्रति स्थानभेदावच्छेदं हित्वा परोवरीयस्त्वगुणकपरमात्मदृष्टयोद्गीथोपासनं परोवरीयस्त्वप्राप्तिफलकमानीतवानाम्नाय इति प्रकरणतात्पर्यमाह—अनेकधेति। तर्हि विवक्षितमुपासनमेवोच्यतां किमाख्यायिकयेत्याशङ्क्याऽऽह—इतिहासस्त्विति। इतिहासः पूर्ववृत्तम्। इतिहस्य भाव ऐतिह्यम्। समेतानामिति निर्धारणे षष्ठी। ननु सर्वस्मिञ्जगति त्रयाणामेवोद्गीथादिज्ञाने कौशलमिति किं नोच्यते किमिति तेषां मध्ये त्रयाणामेव तन्नैपुण्यं प्रतिज्ञायते तत्राऽऽह—न हीति। अमुष्य प्रसिद्धस्यापत्य-

---

की किन अभीष्ट कामनाओं का आगान करूँ क्योंकि यह उद्गाता ही अभीष्ट उद्गानकर्म करने में समर्थ होता है। वह विद्वान् उपासक कौन सा होता है? जो यथोक्तगुणविशिष्ट विद्वान् साम का गान करता है ॥८॥९॥

ओङ्कारात्मक उद्गीथ अक्षर अनेकविध उपास्य होने से अन्य प्रकार से उत्तम एवं अधम गुण व फल वाली उपासनाओं का निरूपण किया गया। (उसी उपासना को आख्यायिका द्वारा इस मन्त्र में बतलाया जाता है—) सूक्ष्मतत्त्व का उपदेश सरलता से समझाने के लिए यह इतिहास है। शलावत के पुत्र शिलक-शालावत्य, चिकितायन के पुत्र दलभगोत्री चैकितायन-दाल्भ्य अथवा आमुष्यायण, जीवल के पुत्र प्रवाहण-जैवलि, ये तीनों उद्गीथ विज्ञान में निपुण थे। 'ह' शब्द मन्त्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ श्रोष्यामीति ॥ २ ॥

फिर वे "बहुत अच्छा" ऐसा कहकर बैठ गये, फिर जीवल के पुत्र प्रवाहण ने शेष दोनों के प्रति कहा—(कि ब्राह्मण होने के नाते) पहले आप दोनों पूज्य महानुभाव अपना विचार कहें और मैं आप दोनों ब्राह्मणों की कही हुई वाणी का श्रवण करूँगा ॥२॥

श्रूयन्ते ह्युषस्तिजानश्रुतिकैकेयप्रभृतयः सर्वज्ञकल्पाः । के ते त्रय इत्याह—शिलको नामतः शलावतोऽपत्यं शालावत्यः । चिकितायनस्यापत्यं चैकितायनः । दल्भगोत्रो दाल्भ्यो द्व्यामुष्यायणो वा प्रवाहणो नामतो जीवलस्यापत्यं जैवलिरित्येते त्रयस्ते होचुरन्योन्यमुद्गीथे वै कुशला निपुणा इति प्रसिद्धाः स्मः । अतो हन्त यद्यनुमतिर्भवतामुद्गीथ उद्गीथज्ञाननिमित्तां कथां विचारणां पक्षप्रतिपक्षोपन्यासेन वदामो वादं कुर्म इत्यर्थः । तथा च तद्विद्यसंवादे विपरीतग्रहणनाशोऽपूर्वविज्ञानोपजनः संशयनिवृत्तिश्चेति । अतस्तद्विद्यसंयोगः कर्तव्यः इति चेतिहासप्रयोजनम् । दृश्यते हि शिलकादीनाम् ॥ १ ॥

तथेत्युक्त्वा ते समुपविविशुर्होपविष्टवन्तः किल । तत्र राज्ञः प्रागल्भ्योपपत्तेः

मामुष्यायणो द्वयोरामुष्यायणो द्व्यामुष्यायणः । तव मम चायमिति परिभाषया धर्मतः परिगृहीत इति यावत् । किमर्थो वादारम्भ इत्यत आह—तथा चेति । प्रवृत्ते वादे तस्मिन्विवक्षितेऽर्थे विद्या येषां तैः सह संवादे दृष्टमेव फलमित्यर्थः । इतिशब्दस्य प्रयोजनमित्यनेन संबन्धः । वादारम्भस्य दृष्टफलत्वे फलितमाह—अत इति । इतिहासस्तु सुखावबोधार्थ इत्युक्तेन समुच्चयार्थश्चकारः । कथं यथोक्तं फलं दृष्टमित्याशङ्क्याऽऽह—दृश्यते हीति । शिलकादीनां तद्विद्यसंयोगे विपरीतधीध्वंसादिकं फलमिति शेषः ॥१॥

तत्रेति निर्धारणार्था सप्तमी । राज्ञः प्रागल्भ्योपपत्तेरित्ययुक्तं तस्य राजत्वे हेत्वभावादित्या-

---

में पुरा गाथा को द्योतित करता है। वे सब किसी समय, किसी देश में, किसी कारण को लेकर एकत्रित हुए। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि उद्गीथ-विज्ञान के समस्त विश्व में केवल तीन ही जानकार थे। उषस्ति, जानश्रुति, कैकय इत्यादि के विषय में भी सर्वज्ञता सुनी जाती है। तीनों ने एक दूसरे से कहा—हम लोग उद्गीथ-विद्या में कुशल हैं। अतः यदि आप सबकी सहमति हो तो पक्ष-प्रतिपक्ष की स्थापना करते हुए उदगीथज्ञान निमित्तक विचार प्रारम्भ किया जाए। इसके साथ-साथ वादविद्या-संवाद में अप्रासङ्गिक ज्ञान का नाश, अपूर्व ज्ञान का संग्रह एवं संशयनिवृत्ति की जाए। अतः विचार-परामर्श का समारम्भ करना चाहिए—यही इतिहास का प्रयोजन है। वादविद्या में प्रवृत्ति विपरीतज्ञाननाश फल वाली है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥

का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाच स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति होवाच प्राणस्य का गतिरित्यन्न-

तत्पश्चात् शिलक-शालावत्य ने चैकितायन-दाल्भ्य से कहा कि यदि तुम अनुमति दो तो मैं तुमसे कुछ पूछूँ। उसने कहा—"पूछो" ॥३॥

उद्गीथरूप साम का आश्रय क्या है--इसके उत्तर में "स्वर ही" उसका आश्रय है। स्वर की गति क्या है—इस प्रश्न के उत्तर में "प्राण" ऐसा कहा, क्योंकि स्वर प्राण से निष्पन्न होता है।

स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचेतरौ भगवन्तौ पूजावन्तावग्रे पूर्वं वदताम्। ब्राह्मणयोरिति लिङ्गाद्राजाऽसौ युवयोर्ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचं श्रोष्यामि। अर्थरहितामित्यपरे वाचमिति विशेषणात् ॥ २ ॥

उक्तयोः स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच—हन्त यद्यनुमंस्यसे त्वा त्वां पृच्छानीत्युक्त इतरः पृच्छेति होवाच ॥ ३ ॥

लब्धानुमतिराह—का साम्नः, प्रकृतत्वादुद्गीथस्य। उद्गीथो ह्यत्रोपास्यत्वेन प्रकृतः। "परोवरीयांसमुद्गीथम्" इति च वक्ष्यति। गतिराश्रयः परायणमित्येतत्।

शङ्कयाऽऽह—ब्राह्मणयोरितीति। पक्षान्तरं विशेषणसामर्थ्यादुत्थाप्याङ्गी करोति—अर्थेति ॥२॥

राज्ञा यथोक्तेन प्रकारेणोक्तयोर्ब्राह्मणयोर्मध्ये शालावत्यो दाल्भ्यं प्रत्युवाचेति संबन्धः ॥३॥

साम्नो गतिरित्यन्वयः। सामशब्दार्थमाह—प्रकृतत्वादिति। तस्य पूर्वोत्तरग्रन्थयोः प्रकृतत्वं प्रकटयति—उद्गीथो हीति। गतिशब्दस्य क्रियाविषयत्वं व्यावर्तयति—आश्रय इति। औपचारिकमाश्रयं निरस्यति—परायणमित्येतदिति। स्वरो ध्वनिभेदः स कथमुद्गीथस्य गतिरित्याशङ्कयाऽऽह—स्वरात्मक-

---

'ठीक है' ऐसा कहकर वे विचारार्थ बैठ गये। राजा की चातुरी लोकविश्रुत होने के कारण उन तीनों में से प्रवाहण जैवलि बोला—आप दोनों पूज्यनीय हैं, अतः पहले आप दोनों ही चर्चा प्रारम्भ करें। मन्त्र में ब्राह्मण में षष्ठी द्विवचन का प्रयोग इस बात का ज्ञापक है कि वह राजा है। आप दोनों ब्राह्मणों द्वारा विमर्शित वाणी का मैं श्रवण करूँगा। मन्त्र में "वाणी" विशेषण लगा देने से अर्थरहित वाणी का निर्देश है - ऐसा किन्हीं का मत है ॥ २ ॥

पूर्वोक्त दोनों ब्राह्मणों में से शिलक शालावत्य ने चैकितायन दाल्भ्य से कहा—यदि आपकी स्वीकृति मिल जाए तो मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछूँ। ऐसा कहने पर दाल्भ्य ने उत्तर दिया—आप अवश्य पूछिए ॥ ३ ॥

चैकितायन-दाल्भ्य द्वारा स्वीकृति मिल. जाने पर शिलक-शालावत्य ने पूछा - इस प्रकरण में उपास्य रूप से वर्णित उद्गीथात्मक साम का आश्रय क्या है? उद्गीथ के परोवरीयांस होने को श्रुति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच ।४। अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति

प्राण की गति क्या है—ऐसा पूछने पर "अन्न" ऐसा उत्तर दिया और अन्न की गति क्या है—ऐसा पूछने पर दाल्भ्य ने 'जल" है ऐसा कहा ।।४।।

जल की गति क्या है—इस पर दाल्भ्य ने वह "लोक" ऐसा कहा,(क्योंकि उस लोक से ही वृष्टि होती है) । उस लोक की गति क्या है—उसके उत्तर में कहा, स्वर्ग का अतिक्रमण साम को नहीं

एवं पृष्टो दाल्भ्य उवाच—स्वर इति । स्वरात्मकत्वात्साम्नः । यो यदात्मकः स तद्गतिस्तदाश्रयश्च भवतीति युक्तं मृदाश्रय इव घटादिः । स्वरस्य का गतिरिति, प्राण इति होवाच । प्राणनिष्पाद्यो हि स्वरस्तस्मात्स्वरस्य प्राणो गतिः । प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाच । अन्नावष्टम्भो हि प्राणः । "शुष्यति वै प्राण ऋतेऽन्नात्" इति श्रुतेः । "अन्नं दाम" इति च । अन्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच । अप्संभवत्वादन्नस्य ॥ ४ ॥

अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाच । अमुष्माद्धि लोकाद्वृष्टिः संभवति । अमुष्य लोकस्य का गतिरिति पृष्टो दाल्भ्य उवाच—स्वर्गममुं लोकमतीत्याश्रयान्तरं साम न

त्वादिति । तद्वचञ्जकतया तदाश्रयत्वेन तत्तादाम्याद्भवति स्वरस्तस्य गतिरित्यर्थः । साम्नः स्वरात्मकत्वेऽपि कथं तद्गतित्वमित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन परिहरति—यो यदात्मक इति । प्राणस्यान्नावष्टम्भत्वे वाजसनेयश्रुतिं प्रमाणयति—शुष्यतीति । वत्सस्थानीयस्य प्राणस्यान्नं दाम बन्धनमिति च श्रुतेरित्यर्थः । ता अन्नमसृजन्तेति श्रुतेरन्नस्याप्संभवत्वं द्रष्टव्यम् ।।४।।

कथमपामसौ लोको गतिस्तत्राऽऽह—अमुष्मादिति । इति पृष्टो दाल्भ्य उवाच हेति संबन्धः । तत्र च्छन्दसि कालनियमाभावमभिप्रेत्य क्रियापदं व्याकरोति—आहेति । यद्यपि परो नास्याऽऽश्रयान्तरं

आगे बतलाएगी । ऐसा पूछे जाने पर दाल्भ्य बोले—स्वरात्मक होने से स्वर ही साम का आश्रय है। जो जिससे निष्पादित होता है, वही उसकी गति एवं आश्रय होता है, जैसे मिट्टी के आश्रित घटादि रहते है । स्वर का गतिविषयक प्रश्न पूछने पर दाल्भ्य ने उत्तर दिया—प्राण स्वर की गति है क्योंकि स्वर प्राण से निष्पादित होता है । 'प्राण का क्या आशय है' ऐसा पूछने पर दाल्भ्य बोले—अन्न के आश्रित प्राण होने से प्राण की गति अन्न है । श्रुति में भी कहा है—"अन्न के विना प्राण सूख जाता है", "अन्न ही बन्धन है जो प्राणरूपी बछड़े को बाँधे रहता है" । यह पूछने पर कि अन्न की गति क्या है दाल्भ्य बोले—जल से अन्न की उत्पत्ति होना संभव है, इसलिए जल ही अन्न का आश्रय है ।। ४ ।।

पुनः शिलक-शालावत्य ने दाल्भ्य से पूछा—जल का आश्रय क्या है ? दाल्भ्य बोले—इसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳ सामाभिसꣳस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳ हि सामेति ॥ ५ ॥

तꣳ ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचा-प्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेर्तांह ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपते-दिति ॥ ६ ॥

करना चाहिये । हम साम को स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित करते हैं, क्योंकि साम की स्वर्गरूप से संस्तुति की गयी है । अतः स्वर्ग ही साम है ॥५॥

उस चैकितायन-दाल्भ्य से शालावत्य-शिलक ने कहा—हे दाल्भ्य ! निश्चय ही तेरा साम परोवरीय रूप से असमाप्त गति वाला है । यदि इस समय कोई असहिष्णु सामवेत्ता अप्रतिष्ठित साम को प्रतिष्ठित कह दे कि "तेरा मस्तक पृथिवी पर गिर जाय" तो निस्सन्देह तेरा शिर गिर जायगा ॥६॥

नयेत्कश्चिदिति होवाचाऽऽह । अतो वयमपि स्वर्गं लोकं सामाभिसंस्थापयामः । स्वर्ग-लोकप्रतिष्ठं साम जानीम इत्यर्थः । स्वर्गसंस्तावं स्वर्गत्वेन संस्तवनं संस्तावो यस्य तत्साम स्वर्गसंस्तावं हि यस्मात्स्वर्गो वै लोकः साम वेद इति श्रुतेः ॥ ५ ॥

तमितरः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच—अप्रतिष्ठितमसंस्थितं परोवरीयस्त्वेनासमाप्तगति सामेत्यर्थः । वा इत्यागमं स्मारयति किलेति च, दाल्भ्य

प्रतिपद्यते तथाऽपि त्वया तद्वाच्यमेवेत्याशङ्क्याऽऽह—अत इति । अतःशब्दार्थमेव स्फोरयति—स्वर्गेति । तस्मात्स्वर्गलोकप्रतिष्ठं सामेति पूर्वेण संबन्धः । स्वर्गसंस्तावं सामेत्यत्र प्रमाणमाह—स्वर्ग इति ॥५॥

उपदेशपारम्पर्यमागमः । यत्कृतकं तदनित्यमिति स्वर्गस्यान्तवत्त्वान्न परायणत्वं संभवतीत्या-शयेनाऽऽह—किलेति चेति । यथोक्तं न्यायं सूचयतीति शेषः । न्यायागमाभ्यामप्रतिष्ठितं ते सामेत्युप-

---

लोक से वृष्टि होने से लोक ही जल की गति है । यह पूछे जाने पर कि इस लोक का क्या आश्रय है, दाल्भ्य बोले—इस लोक का आश्रय स्वर्गलोक है । इस लोक का अतिक्रमण कर साम का अन्यत्र स्थान में आश्रय नहीं करना चाहिए । इसलिए हम स्वर्गलोक में साम की प्रतिष्ठा करते हैं क्योंकि कहीं-कहीं स्वर्ग का सादृश्य मानकर साम की स्तुति की गई है । श्रुति में भी आया है—"स्वर्गलोक में साम की भावना करनी चाहिए" ॥ ५ ॥

शिलक-शालावत्य ने चैकितायन-दाल्भ्य से कहा—इसमें कोई सन्देह नहीं, तुम्हारा साम परो-वरीय रूप से प्रतिष्ठालाभ नहीं करता, उसकी गति समाप्त होने वाली नहीं है । मन्त्र में "वै" एवं "किल" उपदेशपरम्परा का स्मरण दिलाते हैं । यदि इस समय मिथ्यावचन को न सहन करने वाला

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य

साम की इस प्रतिष्ठा को मैं आप से ही जानना चाहता हूँ। इस पर शालावत्य ने कहा—जान लो। तब उस लोक की गति क्या है, इसके उत्तर में शिलक ने कहा—"यह लोक", (क्योंकि यह

ते तव साम। यस्त्वसहिष्णुः सामविदेतर्ह्येतस्मिन्काले ब्रूयात्कश्चिद्विपरीतविज्ञानमप्रतिष्ठितं साम प्रतिष्ठितमित्येवंवादापराधिनं मूर्धा शिरस्ते विपतिष्यति विस्पष्टं पतिष्यतीति। एवमुक्तस्यापराधिनस्तथैव तद्विपतेन्न संशयो न त्वहं ब्रवीमीत्यभिप्रायः। ननु मूर्धपातार्हं चेदपराधं कृतवानतः परेणानुक्तस्यापि पतेन्मूर्धा न चेदपराध्युक्तस्यापि नैव पतति। अन्यथाऽकृताभ्यागमः कृतनाशश्च स्याताम्। नैष दोषः। कृतस्य कर्मणः शुभाशुभस्य फलप्राप्तेर्देशकालनिमित्तापेक्षत्वात्। तत्रैवं सति मूर्धपातनिमित्तस्याप्यज्ञानस्य पराभिव्याहारनिमित्तापेक्षत्वमिति ॥ ६ ॥

संहरति—दाल्भ्येति। स्वर्गप्रतिष्ठितं सामेति ज्ञाने दोषं दर्शयति—यस्त्विति। असहिष्णुर्मिथ्यावचनमसहमानः सन्निति यावत्। एतस्मिन्काले मिथ्यावचनावस्थायामित्यर्थः। विपरीतं विज्ञानं यस्य स तथोक्तस्तं प्रतीति विग्रहः। तदेव विपरीतज्ञानमभिनयति—अप्रतिष्ठितमिति। सामाप्रतिष्ठितं प्रतिष्ठितमिति विपरीतज्ञानं प्रति कश्चिद्ब्रूयादिति संबन्धः। तदीयवचनमेव दर्शयति—एवमिति। स तथा कथयतु मम तु किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—एवमुक्तस्येति। तथैव विदुषः शापवाक्यानुसारेणेति यावत्। तदिति शिरोनिरुक्तिः। शापदानाय प्रवृत्तस्त्वयमिति शङ्कां वारयति—न त्विति। मूर्धपातोपन्यासानर्थक्यमाशङ्कते—नन्विति। अपराधाभावेऽपि परोक्तिवशान्मूर्धपाते दोषमाह—अन्यथेति। सति चापराधे परोक्तिवैधुर्यान्मूर्धपाताभावे दोषं कथयति—कृतेति। अपराधस्य मूर्धपातहेतोरपि सहकार्यपेक्षत्वादभिव्याहरणं नानर्थकमित्युत्तरमाह—नैष दोष इति। कर्मणः शुभादेराचरितस्य निमित्तापेक्षया फलहेतुत्वेऽपि प्रकृतेऽपराधिनि कुतो व्याहरणापेक्षेत्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति। तत्र शुभादौ कर्मण्येवं निमित्तापेक्षया फलप्रदे सतीत्यर्थः। इति पराभिव्याहरणमर्थवदिति शेषः ॥६॥

कोई सामवेत्ता विपरीत विज्ञान वाले अप्रतिष्ठित साम को प्रतिष्ठित कह दे कि "तेरा शिर धड़ से अलग होकर पृथिवी पर गिर जाए" तो उसका शिर धड़ से अलग हो जाएगा—इसमें कोई संशय नहीं है। यदि शिरःपात के योग्य अपराध किया है तो दूसरे के द्वारा अनुक्त होने पर शिरःपात होगा, अपराधी द्वारा कहे जाने पर भी शिरःपात नहीं होगा; अन्यथा अपराध न होने पर भी मूर्धपात हो जाएगा और अपराध होने पर भी मूर्धपाताभावरूप दोष की प्रसक्ति हो जाएगी। ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है क्योंकि किए हुए कर्म की शुभाशुभ फलप्राप्ति देश, काल और निमित्त के अनुरूप होती है। ऐसा श्रुति-स्मृति सिद्ध होने पर मूर्धपातनिमित्तक अज्ञान दूसरे से अर्थपूर्वक कथन की अपेक्षा से ही होता है ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकँ सामाभिसँस्थापयामः प्रतिष्ठासँस्तावँ हि सामेति ॥ ७ ॥

लोक ही यागादि के द्वारा उस लोक का पोषक है) फिर इस लोक का आश्रय क्या है—ऐसा पूछने पर "सम्पूर्ण प्राणियों की प्रतिष्ठा", प्रत्यक्षसिद्ध पृथिवी लोक का अतिक्रमण साम को नहीं करना चाहिये। अतः हम प्रतिष्ठाभूत इस लोक में ही साम को भली प्रकार स्थित कराते हैं, क्योंकि साम की प्रतिष्ठारूप से ही संस्तुति की गयी है ॥७॥

एवमुक्तो दाल्भ्य आह—हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानि यत्प्रतिष्ठं सामेत्युक्तः प्रत्युवाच शालावत्यो विद्धीति होवाच। अमुष्य लोकस्य का गतिरिति पृष्टो दाल्भ्येन शालावत्योऽयं लोक इति होवाच। अयं हि लोको यागदानहोमादिभिरमुं लोकं पुष्यतीति। "अतःप्रदानं देवा उपजीवन्ति" इति हि श्रुतयः। प्रत्यक्षं हि सर्वभूतानां धरणी प्रतिष्ठेति। अतः साम्नोऽप्ययं लोकः प्रतिष्ठैवेति युक्तम्। अस्य लोकस्य का गतिरित्युक्त आह शालावत्यः। न प्रतिष्ठामिमं लोकमतीत्य नयेत्साम कश्चित्। अतो वयं प्रतिष्ठां लोकं सामाभिसंस्थापयामः। यस्मात्प्रतिष्ठासंस्तावं हि प्रतिष्ठात्वेन संस्तुतं

हन्तेत्यादि व्याकरोति—एवमिति। कथममुष्य लोकस्यैतल्लोकप्रतिष्ठत्वं तदाह—अयं लोक इति। आदिशब्दः श्राद्धादिसंग्रहार्थः। तत्रैव श्रुतिं प्रमाणयति—अत इति। अस्माल्लोकात्प्रदीयमानं चरुपुरोडाशाद्यग्निद्वारोपजीवन्ति देवा इति श्रौती प्रसिद्धिरित्यर्थः। भवतु परं लोकं प्रति प्रतिष्ठात्वमस्य लोकस्य तथाऽपि कथमयं लोकः साम्नः प्रतिष्ठेत्याशङ्क्याऽऽह—प्रत्यक्षं हीति। पृथिव्याः सर्वाणि भूतानि प्रति प्रतिष्ठात्वे फलितमाह—अत इति। साम्नोऽपि सर्वान्तर्भावादित्यर्थः। तथाऽपि प्रतिष्ठान्तरं त्वया वाच्यमित्याशङ्क्याऽऽह—अतो वयमिति। यस्मादेतल्लोकप्रतिष्ठात्वेन संस्तुतं साम तस्मादिदं साम प्रत्येतमेव लोकं प्रतिष्ठां जानीम इति योजना। कथं प्रतिष्ठात्वेन पृथिव्यात्मना साम संस्तुतमित्या-

---

इस पर दाल्भ्य बोले—हे भगवन्! सामप्रतिष्ठा को मैं आपसे जानना चाहता हूँ। इस प्रकार पूछने पर शिलक-शालावत्य ने कहा—जान लो, उस लोक का आश्रय क्या है? दाल्भ्य! यह लोक ही साम का आश्रय है क्योंकि यह लोक यागदान-होमादि के द्वारा उस लोक का पोषण करता है। श्रुतियाँ भी इसी का समर्थन करते हुए कहती हैं—"पृथिवी लोक से प्रत्यर्पित की गई चरु आदि से अग्नि के माध्यम से देवता जीवन लाभ करते हैं।" प्रत्यक्षतः सिद्ध है कि समस्त चराचर भूतों की प्रतिष्ठा पृथिवी ही है। इसलिए साम की प्रतिष्ठा पृथिवी ही है। दाल्भ्य ने फिर पूछा—इस पृथिवी लोक का आश्रय क्या है। शालावत्य बोले—इस पृथिवी लोक का अतिक्रमण साम को नहीं करना चाहिए। इसलिए हम सम्पूर्ण भूतों की प्रतिष्ठा साम में स्थापित कराते हैं क्योंकि प्रतिष्ठा का सादृश्य मानकर साम की स्तुति की गई है। श्रुति भी कहती है—"यह प्रत्यक्षसिद्ध पृथिवी रथन्तरशब्दवाच्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तꣳ ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः)

इतरोऽनुज्ञात आह—

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच

तब शालावत्य से जैवलि-प्रवाहण ने कहा—हे शिलक ! तुम्हारा साम निस्सन्देह नाशवान् है । अतः यदि कोई ऐसा कह दे, कि "तुम्हारा मस्तक गिर जायगा" तो निश्चय ही तुम्हारा मस्तक गिर गया होता । शालावत्य ने कहा—मैं इसे आपसे जानना चाहता हूँ । तब प्रवाहण ने 'जान लो' ऐसा उत्तर दिया ॥८॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

शिलक के मत में आकाश सबका आश्रय माना गया है

इस लोक का आश्रय क्या है, इस पर प्रवाहण ने कहा कि सर्वाभिन्न आकाशरूप परमात्मा है

सामेत्यर्थः । "इयं वै रथंतरम्" इति च श्रुतिः ॥ ७ ॥

तमेवमुक्तवन्तं ह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य सामेत्यादि पूर्ववत् । ततः शालावत्य आह—हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच ॥ ८ ॥

इति प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

शङ्कचाऽऽह—इयमिति । इयं वै 'रथंतरशब्दवाच्यस्य सामविशेषस्य पृथिवीत्वेन स्तुतत्वादुद्गीथस्यापि सामत्वाविशेषात्पृथिव्यात्मत्वं संभाव्यत इत्यर्थः ॥७॥

हन्ताहमेतदित्यत्रानन्तं सामैतदित्युच्यते ॥८॥

इति प्रथमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

साम ही है" ॥ ७ ॥

पूर्वमन्त्र प्रतिपादित पदार्थ के श्रवण करने पर प्रवाहण-जैवलि बोले—'हे शालावत्य ! निश्चय ही तुम्हारा साम अनित्य है' इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् है । तब शालावत्य ने कहा—हे भगवन् इसका रहस्य मैं जानना चाहता हूँ, आप ही बताइये । तब जैवलि बोले—जान लो कि इस लोक की गति क्या है ॥ ८ ॥

---

१. प्रसिद्धा पृथिवीत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम् ॥ १ ॥

आश्रय है, क्योंकि यह समस्त भूत आकाशरूप परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। आकाश में ही लीन होते हैं और आकाश ही इनसे बड़ा है। अतएव आकाश ही इनका आश्रय है ॥१॥

अस्य लोकस्य का गतिरिति। आकाश इति होवाच प्रवाहणः। आकाश इति च पर आत्माऽऽकाशो वै नामेति श्रुतेः। तस्य हि कर्म सर्वभूतोत्पादकत्वम्। तस्मिन्नेव हि भूतप्रलयः। तत्तेजोऽसृजत। तेजः परस्यां देवतायामिति हि वक्ष्यति। सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि स्थावरजङ्गमान्याकाशादेव समुत्पद्यन्ते तेजोबन्नादिक्रमेण सामर्थ्यात्। आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति प्रलयकाले तेनैव विपरीतक्रमेण हि यस्मादाकाश एवैभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ज्यायान्महत्तरोऽतः स सर्वेषां भूतानां परमयनं परायणं प्रतिष्ठा त्रिष्वपि कालेष्वित्यर्थः ॥[1] १ ॥

आकाशशब्दस्य भूताकाशविषयत्वं व्यावर्त्य परमात्मविषयत्वं वाक्यशेषवशाद्दर्शयति—आकाश इति चेति। किंच परस्याऽऽत्मनः सर्वभूतोत्पादकत्वं कर्मेति वेदान्तमर्यादा तदिहाऽऽकाशे श्रुतं तथा च परमात्मैवाऽऽकाशशब्द इत्याह—तस्य हीति। किंच परस्मिन्नेव भूतानां प्रलयः स चात्राऽऽकाशे श्रुतस्तस्मात्पर एवाऽऽत्माऽऽकाश इत्याह—तस्मिन्नेवेति। सर्वोत्पादकत्वं परस्य कर्मेत्यत्र मानमाह—तत्तेजोऽसृजतेति। परस्मिन्नेव लयो भूतानामित्यत्रापि मानमाह—तेज इति। भवतु परस्याऽऽत्मनः सर्वोत्पादकत्वं कर्म तथाऽपि किमायातमाकाशस्येति चेत्तत्राऽऽह—सर्वाणीति। कथमयं क्रमो लभ्यते। अविशेषेण हि ततः सर्वोत्पत्तिः श्रुतेत्याशङ्क्याऽऽह—सामर्थ्यादिति। आत्मन आकाशः संभूतस्तत्तेजोऽसृजतेत्यादिश्रुतिबलादित्यर्थः। तथाऽपि कथमाकाशे सर्वभूतलयस्तत्राऽऽह—आकाशं प्रतीति। विपर्ययेण तु क्रमोऽत' इति न्यायेनाऽऽह—विपरीतेति। आकाशस्य परमात्मत्वे हेत्वन्तरमाह—यस्मादिति। परायणत्वमपि तत्रैव लिङ्गमित्याह—अत इति ॥१॥

इस पृथिवी लोक की प्रतिष्ठा के विषय में पूछे जाने पर प्रवाहण-जैवलि बोले—आकाश ही इस पृथिवी लोक का आश्रय है। यहाँ आकाश से परमात्मा का ग्रहण है। श्रुति कहती है—"आकाश ही समस्त भूतों का उत्पादक है"। समस्त भूतों की उत्पत्ति करना परमात्मा का ही कार्य है, आकाश के विषय में भी ऐसा श्रवण होने से वह परमात्मा ही है क्योंकि उसी में समस्त सृष्टि का प्रलय होता है। सर्वोत्पादकत्व परमात्मा का कार्य है, इसमें श्रुति प्रमाण है—"उसने तेज की सृष्टि की"। तेज का भी परमात्मा में लय हो जाता है—इसे भी श्रुति बतलाएगी। श्रुतिप्रमाण बल से तेज, जल एवं अन्नादि क्रम से स्थावर-जङ्गम सभी भूत प्राणी आकाश से ही उत्पन्न होते हैं, प्रलयावस्था में आकाश में ही लय हो जाते हैं। क्योंकि क्रमविपर्यय से भी आकाश ही सम्पूर्ण भूतों में महान् है, इसलिए वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में सभी भूतों का आश्रय है ॥ १ ॥

---

१. अत उपपद्यते चेति शेषः (ब्र. सू. २-३-१४)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीया᳚ समुद्गीथमुपास्ते ॥ २ ॥

त᳚ हैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्यायोक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो

इस उद्गीथ की उत्कृष्टता और उपासना का परिणाम

वह यह उद्गीथ ही श्रेष्ठ से श्रेष्ठ है। अतः यह अनन्त भी है, जो इस प्रकार इसे जानकर इस परमात्मरूप अनन्त उद्गीथ की उपासना करता है, उस विद्वान् का (जीवन उत्तरोत्तर) उत्कृष्टतर हो जाता है और वह विद्वान् उत्तरोत्तर ब्रह्माकाश तक विशिष्ट लोकों को जीत लेता है ॥२॥

(इस उद्गीथ को जानने वाले) अतिधन्वा-शौनक ने इस उद्गीथ का उदर-शाण्डिल्य के प्रति

यस्मात्परं परं वरीयो वरीयसोऽप्येष वरः परश्च वरीयांश्च परोवरीयानुद्गीथः परमात्मसंपन्न इत्यर्थः। अत एव स एषोऽनन्तोऽविद्यमानान्तस्तमेतं परोवरीयांसं परमात्मभूतमनन्तमेवं विद्वान्परोवरीयांसमुद्गीथमुपास्ते। तस्यैतत्फलमाह—परोवरीयः परं परं वरीयो विशिष्टतरं जीवनं हास्य विदुषो भवति दृष्टं फलमदृष्टं च परोवरीयस उत्तरोत्तरविशिष्टतरानेव ब्रह्माकाशान्ताँल्लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वानुद्गीथमुपास्ते ॥ २ ॥

---

[1]आकाशस्तल्लिङ्गादिति न्यायेनाऽऽकाशस्य परमात्मत्वमुक्तमिदानीं तस्योद्गीथे संपादितस्य परोवरीयस्त्वं गुणमुपदिशति—यस्मादिति। उत्तरमुत्तरं श्रेष्ठादपि श्रेष्ठोऽयमित्येतत्। साममात्रस्य कथमयं गुणः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—परमात्मेति। आकाशस्य परमात्मत्वे लिङ्गान्तरमाह—अत एवेति। परमात्मसंपन्नत्वादिति यावत्। आकाशो हि प्रकृतोद्गीथे संपादितोऽनन्तः श्रुतः। न चाऽऽनन्त्यं ब्रह्मणोऽन्यत्र युक्तम्। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतेः। तस्मादाकाशो ब्रह्मेत्यर्थः। संप्रत्याकाशशब्दितस्य परस्योद्गीथे संपादितस्य परोवरीयस्त्वगुणविशिष्टस्योपास्तिं विदधाति—तमेतमिति। परं परमुपर्युपरीति यावत्। तस्मादेवमुपासीतेति भावः ॥२॥

(क्योंकि आकाश का परमात्मा होना सिद्ध है इसलिए अब उद्गीथविद्या में संपादित परोवरीय गुण का उपदेश किया जाता है—) श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ यह उद्गीथ परमात्मास्वरूप है। आकाश के परमात्मा होने में यह भी हेतु ज्ञापक है कि वह आकाश आनन्त्यगुण-सम्पन्न है। जो विद्वान् उपासक श्रेष्ठ से श्रेष्ठ तथा अनन्त इस परमात्मभूत उद्गीथ की उपासना करता है; उसका जीवन उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर हो जाता है—वह दृष्ट फल है। तथा उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर ब्रह्माकाशपर्यंन्त विशिष्ट लोकों को जीत लेता है, यह इसकी उपासना का अदृष्ट फल है ॥ २ ॥

---

१. ब्र. सू. १-१-२२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति ॥ ३ ॥

तथाऽमुष्मिल्ँलोके लोक इति स य एतदेवं विद्वानु-पास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिल्ँलोके जीवनं भवति तथाऽमुष्मिल्ँलोके लोक इति लोके लोक इति ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

निरूपण कर उससे कहा, जब तक तेरी प्रजा में से इस उद्गीथ को जानेंगे, तब तक इस लोक में उनका जीवन उत्तरोत्तर इन प्रसिद्ध लौकिक जीवनों की अपेक्षा उत्कृष्टतर होता जायेगा ॥३॥

तथा उस (अदृष्ट) परलोक में भी उसे उत्कृष्टतर लोक की प्राप्ति होगी। जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष इसकी उपासना करता है, उसका जीवन निश्चय ही इस लोक में उत्कृष्टतर होता है तथा परलोक में भी उसे विशिष्टतर लोक मिलता है। उसे (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) लोक प्राप्त होता है ॥४॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

किं च तमेतमुद्गीथं विद्वानतिधन्वा नामतः शुनकस्यापत्यं शौनक उदरशाण्डिल्याय शिष्यायैतदुद्गीथदर्शनमुक्त्वोवाच । यावत्ते तव प्रजायां प्रजासंततावित्यर्थः । एनमुद्गीथं त्वत्संततिजा वेदिष्यन्ते ज्ञास्यन्ति तावन्तं कालं परोवरीयो हैभ्यः प्रसिद्धेभ्यो लौकिकजीवनेभ्य उत्तरोत्तरविशिष्टतरं जीवनं तेभ्यो भविष्यति ॥ ३ ॥

तथाऽदृष्टेऽपि परलोकेऽमुष्मिन्परोवरीयाल्ँलोको भविष्यतीत्युक्तवाञ्शाण्डिल्यायातिधन्वा शौनकः । स्यादेतत्फलं पूर्वेषां महाभाग्यानां नैदंयुगीनामित्याशङ्कानिवृत्तय

विधिशेषमर्थवादं दर्शयति—किंचेति। इतश्चात्र विधिरस्तीत्येतत्तेभ्यस्त्वसंततिजा ये यथोक्तोद्गीथे वेदितारस्तदर्थमित्यर्थः ॥३॥

तथा दृष्टविशिष्टतरजीवनवदित्यर्थः । अदृष्टेऽपीति च्छेदः । स य एतमित्याद्युत्तरं वाक्यं शङ्कोत्तरत्वेनोत्थाप्य व्याचष्टे—स्यादित्यादिना । अस्मिन्युगे भवन्तीत्यैदंयुगीनास्तेषामैदंयुगीनानां

इतना ही नहीं; उद्गीथविद्या के विद्वान् शुनक के पुत्र अतिधन्वा-शौनक ने अपने शिष्य उदर-शाण्डिल्य के प्रति इस उद्गीथ उपासना का उपदेश देकर कहा—जब तक तुम्हारी प्रजासन्तति इस उद्गीथ की उपासना करती रहेगी, तब तक उन्हें प्रत्यक्षसिद्ध लौकिक जीवन की अपेक्षा उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जीवन की अनुभूति होती रहेगी ॥ ३ ॥

तथा अतिधन्वा-शौनक ने उदर-शाण्डिल्य को यह भी कहा कि उद्गीथविद्या के उपासक विद्वान् को अदृष्ट परलोक में भी उसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर लोक की प्राप्ति होगी। यदि कहो कि यह फल तो पहले जमाने में साधनापरायण अत्यन्त भाग्यशाली व्यक्तियों को प्राप्त होता था; आजकल ऐसा फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः)

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास ॥ १ ॥

उषस्ति चाक्रायण का आख्यान

वज्रपात से आहत कुरुदेश के महावत के ग्राम में (सर्वथा स्तनादि स्त्रीजनोचित चिह्नादि से रहित अल्पवयस्क) पत्नी के साथ चक्र का पुत्र उषस्ति (दुर्भिक्ष हो जाने के कारण) दुरवस्था में रहता था ॥१॥

आह—स यः कश्चिदेतदेवं विद्वानुद्गीथमेतद्ध्युपास्ते तस्याप्येवमेव परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति तथाऽमुष्मिँल्लोके लोक इति लोके लोक इति ॥ ४ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

उद्गीथोपासनप्रसङ्गेन प्रस्तावप्रतिहारविषयमप्युपासनं कर्त(वक्त)व्यमितीदमारभ्यते । आख्यायिका तु सुखावबोधार्था । मटचीहतेषु मटच्योऽशनयस्ताभिर्हतेषु नाशितेषु कुरुषु कुरुदेशसस्येष्वित्यर्थः । ततो दुर्भिक्षे जात आटिक्याऽनुपजातपयोधरादिस्त्रीव्यञ्जनया सह जाययोषस्तिर्ह नामतश्चक्रस्यापत्यं चाक्रायणः । इभो हस्ती तमर्हतीतीभ्य ईश्वरो हस्त्यारोहो वा तस्य ग्राम इभ्यग्रामस्तस्मिन्प्रद्राणकोऽन्नालाभात् । द्रा कुत्सायां

लोकः परोवरीयानिति शेषः । पुनरुक्तिरुद्गीथोपास्तिसमाप्त्यर्था ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

अथोद्गीथाक्षरोपासनस्यानेकधोक्तत्वाद्वक्तव्यानवशेषात्प्रपाठकपरिसमाप्तिरेव युक्तेत्याशङ्क्याऽऽह—उद्गीथेति । इदमा खण्डान्तरं परामृश्यते । प्रस्तावाद्युपासनं विवक्षितं चेत्तदेवोच्यतां किमनया कथयेत्याशङ्क्याऽऽह—आख्यायिका त्विति । मटच्यो मर्दनहेतवोऽशनयः पाषाणवृष्टयो वा । ततः सस्यनाशादित्येतत् । सर्वतः स्वैरसंचारेऽपि न व्यभिचारशङ्केति दर्शयितुमाटिक्येति विशेषणम् । प्रद्राणकपदस्य क्रियापदेन संबन्धः । कुत्सितगतिप्राप्तौ हेतुरन्नालाभादिति । प्रद्राणकशब्दार्थ

संभव नहीं है, इस शङ्का की निवृत्ति करने के लिए शौनक ने कहा—जो भी विद्वान् इस उद्गीथविद्या की इस प्रकार उपासना करता है, उसका जीवन इस लोक में निःसन्देह श्रेष्ठतर होता है तथा परलोक में भी उसे श्रेष्ठ जीवन की उपलब्धि होती है । मन्त्र में "लोके" शब्द की द्विरुक्ति उद्गीथ उपासना की परिसमाप्ति के लिए है ॥ ४ ॥

उद्गीथ उपासना के प्रसङ्ग में प्रस्ताव प्रतिहार-विषयक उपासना भी कहनी चाहिए, अतः दशम खण्ड का प्रारम्भ किया जाता है । प्रतिपाद्य तत्त्व का सुगमता से बोध हो, इसलिए आख्यायिका द्वारा कहा गया है । ओला वृष्टि से कुरुदेश के धान्य नष्ट होने जाने पर दुर्भिक्ष की स्थिति में चक्र का पुत्र उषस्ति-चाक्रायण अपनी बाला पत्नी, जिसके स्तनादि स्त्रीजनोचित अङ्ग अभी विकसित नहीं हुए थे, के साथ महावत के गाँव में अन्न के बिना किसी के घर में बड़ी शोचनीय स्थिति में रहा करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तꣳ होवाच ।
नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्चयेम इम उपनिहिता इति ॥२॥
एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपान-
मित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳस्यादिति होवाच ॥ ३ ॥

उसने कुत्सित उड़द खाते हुए एक महावत से माँगा। तब महावत ने उषस्ति से कहा—इन जूठे उड़दों के सिवा मेरे पास और उड़द नहीं हैं। जो एकत्रित थे, वे सभी मेरे इन पात्रों में रखे हुए हैं। (अतः अब मैं क्या करूँ और आपकी माँग को कैसे पूरा करूँ) ॥२॥

उषस्ति ने कहा— तुम मुझे इन उड़दों को ही दे दो। तब महावत ने उषस्ति को उड़द दे दिये (और पास के जल को देखकर कहा कि भाई) 'यह अनुपान भी ले लो'। इस उषस्ति ने कहा, यदि मैं इस जल को पीऊँगा तो निश्चय ही मुझसे उच्छिष्ट जल पीना माना जायगा ॥३॥

गतौ। कुत्सितां गतिं गतोऽन्त्यावस्थां प्राप्त इत्यर्थः। उवासोषितवान्कस्यचिद्गृहमाश्रित्य ॥ १ ॥

सोऽन्नार्थमटन्निभ्यं कुल्माषान्कुत्सितान्माषान्खादन्तं भक्षयन्तं यदृच्छयोपलभ्य बिभिक्षे याचितवान्। तमुषस्तिं होवाचेभ्यः। नेतोऽस्मान्मया भक्ष्यमाणादुच्छिष्टराशेः कुल्माषा अन्ये न विद्यन्ते। यच्चये राशौ मे ममोपनिहिताः प्रक्षिप्ता इमे भाजने किं करोमीत्युक्तः प्रत्युवाचोषस्तिः ॥ २ ॥

एतेषामेतानित्यर्थः। मे मह्यं देहीति होवाच। तान्स इभ्योऽस्मा उषस्तये प्रददौ प्रदत्तवान्। अनुपानीयं समीपस्थमुदकं हन्त गृहाणानुपानमित्युक्तः प्रत्युवाच। उच्छिष्टं वै मे ममेदमुदकं पीतं स्याद्यदि पास्यामीत्युक्तवन्तं प्रत्युवाचेतरः ॥ ३ ॥

धातूपन्यासद्वारा कथयति—द्रा कुत्सायामिति ॥१॥
यदृच्छया सहसेत्यर्थः। नेत इति वाक्योपादानं तद्व्याकरोति—अस्मादिति। यदित्यव्ययं बहुवचनान्तम्। उपनिहिताः कुल्माषा इति शेषः। [2]तेषां खल्विमे भाजने प्रक्षिप्ता इति योजना ॥२॥
हन्त कुल्माषा भक्षिताश्चेदित्यर्थः ॥३॥

था। 'द्रा' धातु कुत्सित स्थिति के अर्थ में है ॥ १ ॥
एक बार अन्न के लिए भटकते हुए उसने अचानक एक महावत को खराब उड़द खाते हुए पाकर उससे याचना करने लगा। महावत ने उषस्ति से कहा—यही तो जूठे उड़द मेरे पास हैं, जिन्हें मैं खा रहा हूँ इसके अतिरिक्त नहीं हैं। जितने भी उड़द इकट्ठे किए थे, वे सभी मैंने इसी पात्र में रखे हुए हैं। 'अब मैं क्या करूँ' इस प्रकार महावत द्वारा कहे जाने पर उषस्ति ने प्रत्युत्तर दिया ॥२॥
उषस्ति बोला—ये जो तुम खा रहे हो, इन्हीं को मुझे दे दो। उस महावत ने उन उड़दों को

---

१. चयपदार्थमाह—राशाविति। २. अर्थयोजनाऽभिप्रायेणाह—तेषामिति। तेषां कुल्माषाणां ममे भाजने प्रक्षिप्तास्त इत्यन्वय इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमा-
नखादन्निति होवाच कामो म उदपानमिति ॥ ४ ॥**

महावत ने कहा, क्या ये उड़द जूठे नहीं हैं ? यह सुनकर उषस्ति ने कहा कि भाई ! इन उड़दों को खाये बिना जीवित नहीं रह सकता था, पर जलपान तो मुझे इच्छानुसार मिल ही जाता है। (अतः जीवनरक्षणार्थं उच्छिष्ट अन्न का भोजन दोषावह नहीं है)॥४॥

किं न स्विदेते कुल्माषा अप्युच्छिष्टा इत्युक्त आहोषस्तिर्न वा अजीविष्यं न जीविष्यामीमान्कुल्माषानखादन्नभक्षयन्निति होवाच । काम इच्छातो मे ममोदकपानं लभ्यत इत्यर्थः । अतश्चैतामवस्थां प्राप्तस्य विद्याधर्मयशोवतः स्वात्मपरोपकारसमर्थस्यैतदपि कर्म कुर्वतो नाऽऽगःस्पर्श इत्यभिप्रायः । तस्यापि जीवितं प्रत्युपायान्तरेऽजुगुप्सिते सति जुगुप्सितमेतत्कर्म दोषाय । ज्ञानावलेपेन कुर्वतो नरकपातः स्यादेवेत्यभिप्रायः । प्रद्राणकशब्दश्रवणात् ॥ ४ ॥

किं प्रत्युवाचेत्याकाङ्क्षापूर्वकमाह—किमित्यादिना । अनुपानाभावेऽपि तुल्यं जीवनराहित्यमित्याशङ्क्याऽऽह—काम इति । अन्योच्छिष्टकुल्माषभक्षणमृषेर्वदन्त्याः श्रुतेस्तात्पर्यमाह—अतश्चेति। चाक्रायणस्य विदुषोऽभक्ष्यभक्षणदर्शनादिति यावत् । एतामवस्थां प्राप्तस्य जीवितसंदेहमापन्नस्येत्यर्थः। विद्याधर्मयशोवतो ज्ञानादिप्रयुक्तख्यातिं प्रपन्नस्येत्येतत् । स्वात्मोपकारे परोपकारे च सामर्थ्यं निग्रहानुग्रहशक्तिमत्त्वम् । एतत्कर्म जीवनमात्रकारणं कुत्सितं चेष्टितमित्यर्थः । उच्छिष्टोदकपानप्रतिषेधश्रुतेरभिप्रायमाह—तस्यापीति । एतत्कर्मेत्यभक्ष्यभक्षणोक्तिः । ननु ज्ञानिनो यथेष्टचेष्टाऽत्रानुज्ञायते । मैवम्। 'सर्वान्नानुमतिश्चेत्यादिन्यायविरोधादित्याह— ज्ञानेति । तस्मिन्नभिप्राये लिङ्गं दर्शयति—प्रद्राणकेति। चाक्रायणे प्रद्राणकशब्दप्रयोगात्परमापदमापन्नः सन्कुल्माषानुच्छिष्टान्भक्षितवानिति प्रतिभाति । तथा च ज्ञानिनो यथेष्टाचारे प्रमाणाभावादनेकप्रमाणविरोधाच्च नासावत्र विवक्षित इत्यर्थः ॥४॥

उषस्ति को दे दिया । समीपस्थ जल को देखकर कहा कि उड़द तो आपने खा लिए, अब जल भी ग्रहण कीजिए । यह सुनकर उषस्ति ने कहा—यदि मैंने जल को पी लिया तो यह उच्छिष्ट जल का लेना माना जाएगा । ऐसा उषस्ति से सुनकर महावत बोला ॥३॥

'क्या आप द्वारा खाये गए ये उड़द जूठे नहीं थे' ऐसा महावत द्वारा कहे जाने पर उषस्ति बोला—(क्षुधातुर होने के कारण) इन उड़दों को खाये बिना मैं जीवित नहीं रह सकता था । जलपान तो मुझे इच्छानुसार कहीं भी मिल सकता है । इसलिए चाहे कोई विद्या, धर्म और यश से युक्त क्यों न हो तथा भले ही स्वात्मोपकार व परोपकार करने की सामर्थ्य हो किन्तु जहाँ प्राणों का ही संकट आ जाए, वहाँ प्राणधारण के लिए कुत्सित कर्म में भी कोई पाप नहीं लगता । श्रुति जो उच्छिन्न उदक-पान का निषेध करती है, उसका अन्य अनिन्दनीय उपाय से प्राणरक्षा कर लिए जाने पर अभक्ष्यभक्षण कर्म निन्दनीय होने से दोषमय है । ज्ञानाभिमान से यथेष्टाचार करने में नरकगमन

१. ब्र. सू. ३-४-२८ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह खादित्वाऽतिशेषाञ्जायाया आजहार साऽग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ ॥ ५ ॥

स ह प्रातः संजिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्राꣳ राजाऽसौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति ॥ ६ ॥

उषस्ति ने उन उड़दों को खाकर शेष अपनी आटिकी पत्नी के लिये ले आया पर वह तो उनके आने से पूर्व ही पर्याप्त अन्न प्राप्त कर चुकी थी (फिर भी पति के आदर के लिये) उन जूठे उड़दों को उनके हाथ से लेकर रख लिया ॥५॥

उषस्ति ने प्रातःकाल निद्रा त्यागने के अनन्तर (अपनी पत्नी को सुनाते हुए कहा) भूख से पीड़ित हमें थोड़ा अन्न मिल जाय, तो उसे खाकर समर्थ हो हम थोड़ा धन प्राप्त कर लेते, क्योंकि वह राजा यज्ञ करेगा और समस्त ऋत्विक् कर्मों के लिये मुझ विद्वान् का अवश्य वरण करेगा ॥६॥

तांश्च स खादित्वाऽतिशेषानतिशिष्टाञ्जायायै कारुण्यादाजहार । साऽऽटिक्यग्र एव कुल्माषप्राप्तेः सुभिक्षा शोभनभिक्षा लब्धान्नेत्येतद्बभूव संवृत्ता । तथाऽपि स्त्रीस्वाभाव्यादनवज्ञाय तान्कुल्माषान्पत्युर्हस्तात्प्रतिगृह्य निदधौ निक्षिप्तवती ॥ ५ ॥

स तस्याः कर्म जानन्प्रातरुषःकाले संजिहानः शयनं निद्रां वा परित्यजन्नुवाच पत्न्याः शृण्वत्या यद्यदि बतेति खिद्यमानोऽन्नस्य स्तोकं लभेमहि तद्भुक्त्वाऽन्नं समर्थो गत्वा लभेमहि धनमात्रां धनस्याल्पम् । ततोऽस्माकं जीवनं भविष्यतीति । धनलाभे च कारणमाह—राजाऽसौ नातिदूरे स्थाने यक्ष्यते । यजमानत्वात्तस्याऽऽत्मनेपदम् । स च

स्त्रीस्वाभाव्यं पत्युराज्ञाकरणम् ॥५॥

तस्याः कर्म कुल्माषाणां परिरक्षणम् । यक्ष्यतीति कस्मान्नोक्तं तत्राऽऽह—यजमानत्वादिति । राज्ञो यजमानत्वाद्यागफलस्याऽऽत्मगामित्वाद्यक्ष्यत इत्यात्मनेपदं प्रयुक्तमित्यर्थः । अन्येषामुपद्रष्टृत्वसंभवे कुतस्त्वामेव राजा मानयिष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—स चेति ॥६॥

होता है। मन्त्र में उषस्ति-चाक्रायण के लिए प्रद्राणक विशेषण दिया है, इससे लगता है कि अतिशय विपत्ति में पड़कर उसने जूठे उड़द खा लिए (अतः श्रुतिस्मृति का प्रमाण न मिलने से तथा लौकिक-वैदिक आचारविरुद्ध होने से ज्ञानी के लिए भी स्वेच्छाचार का विधान नहीं है) ॥ ४ ॥

पत्नी के प्रति करुणावश होकर उषस्ति उनमें से बचे हुए उड़दों को पत्नी के लिए लाया। अज्ञातयौवना वह पत्नी पहले ही उड़द के प्राप्त हो जाने से सुन्दर भिक्षा कर चुकी थी। तथापि स्वामी की आज्ञा शिरोधार्य कर उन उड़दों को पति से लेकर सुरक्षित रख दिया ॥ ५ ॥

"इसने उड़द सुरक्षित रखे हैं" ऐसा जानकर अगले दिन प्रातःकाल उठकर अपनी पत्नी को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खा-
दित्वाऽमुं यज्ञं विततमेयाय ॥ ७ ॥
तत्रोद्गातॄनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह
प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

उषस्ति से उसकी पत्नी ने कहा—हे स्वामिन्! आपके दिये ये उड़द विद्यमान हैं, उन्हें ही लीजिये। उषस्ति उन्हें खाकर राजा के उस विस्तृत यज्ञ में गया ॥७॥

वहाँ जाकर आस्ताव (प्रस्तोतागण के स्तुति करने योग्य) स्थान में स्तुति करने वाले उद्गाताओं के समीप बैठ गया और प्रस्तोता से कहा ॥८॥

राजा मा मां पात्रमुपलभ्य सर्वैरार्त्विज्यैर्ऋत्विक्कर्मभिर्ऋत्विक्कर्मप्रयोजनायेत्यर्थो वृणीतेति ॥ ६ ॥

एवमुक्तवन्तं जायोवाच—हन्त गृहाण हे पत इम एव ये मद्धस्ते विनिक्षिप्तास्त्वया कुल्माषा इति। तान्खादित्वाऽमुं यज्ञं राज्ञो विततं विस्तारितमृत्विग्भिरेयाय ॥७॥

तत्र च गत्वोद्गातॄनु'द्गातृपुरुषानागत्य स्तुवन्त्यस्मिन्नित्यास्तावस्तस्मिन्नास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश समीप उपविष्टस्तेषामित्यर्थः। उपविश्य स ह प्रस्तोतारमुवाच ॥ ८ ॥

हन्तेत्यन्नलेशलाभश्चेदेवं धनलब्धिद्वारा जीवनहेतुरित्यर्थः ॥७॥

राज्ञो यज्ञस्तत्रेत्युच्यते। उद्गातुरेकत्वे कुतो बहूक्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—उद्गातृपुरुषानिति स्तुवन्त्यस्मिन्निति सप्तम्या संवाददेशो निर्दिश्यते ॥८॥

सुनाते हुए बोला—यदि मुझ क्षुधातुर को थोड़ा सा भी अन्न मिल जाता तो उससे क्षुधा निवृत्ति कर चलने की सामर्थ्य पाकर राजा के पास जाकर थोड़ा धन प्राप्त कर लेते, जिससे हमारा यापन हो जाता। धनलाभ में हेतु श्रुति कहती है—यहाँ से थोड़ी ही दूर वह यज्ञ करेगा। यजमान होने से आत्मार्थक यागफल होने से "यक्ष्यते" में आत्मनेपद प्रयोग है। वह राजा समस्त ऋत्विक् कर्मों के लिए मुझे योग्य अधिकारी समझकर अवश्य ही वरण करेगा॥ ६ ॥

अपने पति द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर पत्नी बोली—मैंने आपके द्वारा दिए गए उड़द सुरक्षित रख लिए थे, उन्हें आप ग्रहण कीजिए। उन्हें खाकर उषस्ति ऋत्विजों द्वारा सम्पादित विस्तृत यज्ञ में गया ॥ ७ ॥

राजा के यज्ञ में जाकर प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य इन तीनों स्तुति करने वाले उद्गाताओं के समीप स्तुति करने योग्य स्थान में बैठ गया। वहाँ बैठकर वह प्रस्तोता से बोला ॥८॥

१. उद्गातृपुरुषास्त्रयः प्रस्तोता प्रतिहर्ता सुब्रह्मण्यश्चेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्र-
स्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥**

हे प्रस्तोत: ! जो देवता प्रस्तावभक्ति में अनुगत है, यदि तुम उसे जाने बिना उसका प्रस्तवन करोगे तो मस्तक गिर जायगा। (भाव यह कि देवताज्ञानियों के समक्ष देव-अज्ञानी कर्म न करावे, उसके परोक्ष में कर्म कराने का देवता के न जानने वालों का भी अधिकार है) ॥९॥

हे प्रस्तोतरित्यामन्त्र्याभिमुखीकरणाय । या देवता प्रस्तावं प्रस्तावभक्तिमनुगताऽन्वायत्ता तां चेद्देवतां प्रस्तावभक्तेरविद्वान्सन्प्रस्तोष्यसि विदुषो मम समीपे। तत्परोक्षेऽपि चेद्विपतेत्तस्य मूर्धा कर्ममात्रविदामनधिकार एव कर्मणि स्यात् । तच्चानिष्टमविदुषामपि कर्मदर्शनात् । दक्षिणमार्गश्रुतेश्च । अनधिकारे चाविदुषामुत्तर एवैको मार्गः श्रूयेत । न च स्मार्तकर्मनिमित्त एव दक्षिणः पन्थाः। यज्ञेन दानेनेत्यादिश्रुतेः । तथोक्तस्य मयेति च विशेषणाद्विद्वत्समक्षमेव कर्मण्यनधिकारो न सर्वत्राग्निहोत्रस्मार्त-

---

किमर्थमामन्त्रणं तदाह—अभिमुखीकरणायेति । विदुषः समीपे देवतामविद्वान्प्रस्तोष्यसि चेन्मूर्धा ते विपतिष्यतीत्यग्रे संबन्धः । नन्वविद्वन्निन्दाया विवक्षितत्वाद्विद्वत्समीपवचनमकिंचित्करमिति चेन्नेत्याह—तत्परोक्षेऽपीति । तस्येत्यविद्वान्प्रस्तोतोच्यते । मा भूत्कर्ममात्रविदां कर्मण्यधिकार इति चेन्नेत्याह—तच्चेति । तेनोभौ कुरुत इत्यादिश्रुताविति शेषः । अविदुषामपि कर्माधिकारे हेत्वन्तरमाह—दक्षिणेति । तदेव व्यतिरेकद्वारा स्फोरयति—अनधिकारे चेति । तस्यैव समुच्चयफलत्वादित्यर्थः । ननु दक्षिणमार्गस्य वापीकूपतटाकादिस्मार्तकर्मप्रयुक्तत्वाद्वैदिके कर्मणि विद्वानेवाधिक्रियते नेत्याह—न चेति । यज्ञेन दानेन लोकाञ्जयन्तीति वैदिकर्मनिष्ठानामज्ञानामेव दक्षिणमार्गश्रवणादिति हेतुमाह—यज्ञेनेति । इतश्चाविदुषां विद्वत्समीपे कर्माधिकारो नास्तीत्याह—तथोक्तस्येति । देवताविज्ञानशून्यस्य ते मूर्धा विपतिष्यतीत्यनेन प्रकारेण मयोक्तस्य मूर्धा व्यपतिष्यदिति विशेषश्रवणाद्विद्वत्समीपे तदनुज्ञामन्तरेण कर्म कुर्वतोऽपराधित्वात्तस्य कर्मण्यनधिकार एवेत्यर्थः । विद्वदसमीपे पुनरविदुषोऽपि कर्मण्यधिकारो-

---

मन्त्र में "प्रस्तोता" सम्बोधन अपनी ओर समाहित चित्त से श्रवण कराने के लिए है। यदि बिना जाने ही प्रस्तावभक्ति में अनुगत देवता का मुझ विद्वान् के समक्ष स्तवन करोगे तो तुम्हारा मस्तक गिर जायगा। यदि अविद्वान् का मस्तक विद्वान् के परोक्ष में भी गिर जाए तो कर्म मात्र का ज्ञान रखने वालों का कर्म में अधिकार नहीं रह जाएगा, ऐसा अभीष्ट नहीं है क्योंकि अविद्वान् की भी कर्म में प्रवृत्ति देखी जाती है। उनके लिए दक्षिणमार्ग गमनविषयक श्रुति की भी सार्थकता हो जाएगी। यदि अविद्वानों का कर्म में अधिकार नहीं होता है, तो श्रुति में एक ही उत्तरायण मार्ग का निर्देश हुआ होता। वापी, कूप-तडागादि निर्माणरूप स्मार्तकर्म से दक्षिणायन की प्राप्ति हो. ऐसी बात नहीं है क्योंकि श्रुति कहती है—"उस परमतत्त्व को ज्ञानी लोग यज्ञ, दान एवं सतत साधना से जानने की इच्छा करते हैं"। (छान्दोग्य उपनिषद १.११.५ में) "तथोक्तस्य मया" यह विशेषण कहने से विद्वान् के समीप अज्ञानी का कर्म में अधिकार नहीं है; वैसे अग्निहोत्र स्मार्तकर्म अध्ययनादि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति । १०॥

एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासांचक्रिरे ॥११॥

इति प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

ऐसे ही उषस्ति ने उद्गाता से भी कहा—हे उद्गातः ! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है, यदि तुम उसे जाने बिना उद्गान करोगे, तो तेरा मस्तक गिर जायगा ॥१०॥

ऐसे ही प्रतिहर्ता से कहा, हे प्रतिहर्तः ! जो देवता प्रतिहार में अनुगत है, यदि तुम उसे जाने बिना प्रतिहरण करोगे, तो तेरा मस्तक गिर जायगा। तब वे प्रस्तोतादि (मस्तक गिर जाने के भय से) अपने-अपने कर्मों से उपरत हो चुपचाप बैठ गये ॥११॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

कर्माध्ययनादिषु च । अनुज्ञायास्तत्र तत्र दर्शनात् । कर्ममात्रविदामप्यधिकारः सिद्धः कर्मणीति मूर्धा ते विपतिष्यतीति ॥ ९ ॥

एवमेवोद्गातारं प्रतिहर्तारमुवाचेत्यादि समानमन्यत् । ते प्रस्तोत्रादयः कर्मभ्यः समारता उपरताः सन्तो मूर्धपातभयात्तूष्णीमासांचक्रिरेऽन्यच्चाकुर्वन्तः । अर्थित्वात् ॥ १० ॥ ११ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

ऽस्तीत्याह—न सर्वत्रेति । अग्निहोत्रादौ श्रौते कर्मणि स्मार्तेषु च वापीकूपतटाकादिकर्मस्वध्ययनजपादिषु च विद्वत्संनिधिमन्तरेणापि सर्वस्मिन्काले कर्ममात्रविदो नाधिकारोऽस्तीत्यशक्यं वक्तुमित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—अनुज्ञेति । भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्यादिना राज्ञा स्वकीयकर्मनिर्वर्तने प्रार्थनादेत एव मया समतिसृष्टाः स्तुवतामिति चानुज्ञोपलम्भादस्त्येवाविदुषामपि कर्मण्यधिकार इत्यर्थः । उक्तमर्थमुपसंहरति—कर्ममात्रेति । विद्वत्समीपे तदनुज्ञामलब्ध्वा नास्ति कर्मानुष्ठानमित्येतन्निगमयितुमितिशब्दः । मूर्धा ते विपतिष्यतीत्येतदन्तं प्रस्तोतृविषयं वाक्यं व्याख्यातमित्यनुवदति—मूर्धेति ॥९॥

तूष्णीमित्यस्यार्थमाह—अन्यच्चेति । तत्र हेतुमाह—अर्थित्वादिति । तत्तद्देवताविषयविज्ञानार्थित्वेन कर्मान्तरमकुर्वन्तश्चाक्रायणाभिमुखाः स्थिता इत्यर्थः ॥१०॥११॥

इति प्रथमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

में तो उसका भी अधिकार है क्योंकि उन-उन स्थलों में अज्ञानी प्रार्थना करते हुए देखा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि कर्म मात्र का ज्ञान रखने वालों का भी कर्म में अधिकार है ॥ ९ ॥

उषस्ति ने 'उद्गाता और प्रतिहर्ता से भी इसी प्रकार कहा'—इत्यादि व्याख्यान पूर्वमन्त्र के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच ॥ १ ॥

स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्याऽन्यानवृषि ॥ २ ॥

राजा और उषस्ति का संवाद

उसके बाद उस उषस्ति से यजमान राजा ने कहा—मैं भगवन् (आप) को जानना चाहता हूँ इस पर उषस्ति ने कहा—मैं चक्र का पुत्र उषस्ति हूँ ॥१॥

उस पर यजमान ने कहा—मैंने सम्पूर्ण ऋत्विक् कर्मों के लिये आपकी खोज की थी। पर आपको न प्राप्त कर ही मैंने दूसरे ऋत्विगों का वरण किया था ॥२॥

अथानन्तरं हैनमुषस्ति यजमानो राजोवाच। भगवन्तं वै पूजावन्तमहं विविदिषाणि वेदितुमिच्छामीत्युक्त उषस्तिरस्मि चाक्रायणस्तवापि श्रोत्रपथमागतो यदीति होवाचोक्तवान् ॥ १ ॥

स ह यजमान उवाच सत्यमेवमहं भगवन्तं बहुगुणमश्रौषं सर्वैश्च ऋत्विक्कर्मभिरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं पर्येषणं कृतवानस्मि। अन्विष्य भगवतो वा अहमवित्त्याऽलाभेनान्यानिमानवृषि वृतवानस्मि ॥२॥

अथ हैनमित्यादि व्याकरोति—अथेति। प्रस्तोतृप्रभृतीनां तूष्णींभावादिति शेषः ॥१॥ चाक्रायणस्य वचनमङ्गी करोति—सत्यमिति। अङ्गीकारमेव स्फोरयति—एवमिति। आर्त्विज्यैरित्यस्य व्याख्यानमृत्विक्कर्मभिरिति तदर्थमिति यावत्। यदि मामार्त्विज्यार्थमनुसंहितवानसि किमितीमानन्यान्वृतवानित्याशङ्क्याऽऽह—अन्विष्येति ॥२॥

समान समझ लेना चाहिए। वे प्रस्तोतादि कर्म से उपरत होकर मस्तक गिर जाने के भय से मौनभाव से स्थित हो गए। देवताविषयकविज्ञान को सुनने के लिए अन्य कर्मों से निवृत्त होकर उषस्ति के समक्ष बैठ गए ॥ १० ॥

प्रस्तोतादि के चुप रहने के पश्चात् यजमान राजा ने इस उषस्ति से कहा—आदरणीय! आपका मैं परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ। उषस्ति ने कहा—हो सकता है मेरे बारे में आपने भी सुना हो, मैं चक्र का पुत्र उषस्ति हूँ ॥ १ ॥

उषस्ति की उक्ति को सत्य मानकर राजा यजमान बोला—मैंने आदरणीय आपके गुणातिशय के विषय में सुना था तथा सम्पूर्ण ऋत्विक् कर्मों को करने के लिए आपकी खोज भी की थी। खोज पर आपका पता न चल पाया तो मैंने आपको न पाने से इन दूसरे ऋत्विजों का वरण कर लिया ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच ॥ ३ ॥

अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते

अब भी सम्पूर्ण ऋत्विक् कर्मों के लिये श्रीमान् ही रहें। राजा की बात सुनकर उषस्ति ने कहा—'ठीक है,' और फिर यह भी कहा कि वे ऋत्विक्गण मेरे द्वारा प्रसन्नता से आज्ञा प्राप्त कर स्तुति करें। याद रखो! इन सम्पूर्ण प्रस्तोता आदि को जितना धन दोगे, उतना ही धन मुझे देना। तब यजमान ने कहा—ऐसा ही होगा ॥३॥

प्रस्ताव देवता के विषय में प्रस्तोता का प्रश्न

उसके बाद उषस्ति के पास विनम्र भाव से प्रस्तोता गया, (और बोला) आपने जो मुझे

अद्यापि भगवांस्त्वेव मे मम सर्वैरार्त्विज्यैरृत्विक्कर्मार्थमस्त्वित्युक्तस्तथेत्याहोषस्तिः। किंत्वथैवं तर्ह्येत एव त्वया पूर्वं वृता मया समतिसृष्टा मया सम्यक्प्रसन्नेनानुज्ञाताः सन्तः स्तुवताम्। त्वया त्वेतत्कार्यम्। यावत्त्वेभ्यः प्रस्तोत्रादिभ्यः सर्वेभ्यो धनं दद्याः प्रयच्छसि तावन्मम दद्या इत्युक्तस्तथेति ह यजमान उवाच ॥३॥

अथ हैनमौषस्त्यं वचः श्रुत्वा प्रस्तोतोपससादोषस्तिं विनयेनोपजगाम। प्रस्तो-

---

एवं गते किमधुना कर्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—अद्यापीति। चाक्रायणानुमतिं श्रुत्वा किमिदमिति व्याकुलितेषु प्रस्तोतृप्रभृतिषु ब्रूते—किंत्विति। उभयानुमत्यपेक्षयाऽऽनन्तर्यम्[1]। ममालाभेनामीषां वृतत्वस्य निवृत्त्यवस्थायामित्याह—तर्हीति। अनुज्ञाताः सन्तः प्रस्तोत्रादयः स्तुतिं कुर्वतामित्याह—स्तुवतामिति। अस्त्वेवं त्वदर्थं पुनर्मया किं विधेयमित्याशङ्क्याऽऽह—त्वया त्विति ॥३॥

यजमानं प्रत्युषस्तिप्रोक्तं वचः श्रुत्वाऽनन्तरमेनमुषस्तिं प्रस्तोता त्यक्तव्याकुलत्वः शिष्यत्वेनोपसन्नवानित्याह—अथेति। उपगतिप्रकारमभिनयति—प्रस्तोतरिति ॥४॥

यजमान राजा के इस प्रकार कहने पर कि अब भी मैं समस्त ऋत्विक् कर्मों के लिए आपको वरण करता हूँ, उषस्ति ने 'ठीक है' कहते हुए इसे स्वीकार कर लिया। चाक्रायण की अनुमति सुनकर पूर्ववरण किए गए प्रस्तोतादि व्याकुल हो गए। किन्तु उषस्ति बोले—क्योंकि आपने इन्हें पहले वरण किया था; अतः वे भी अनुमति दें तथा प्रसन्नता से मेरे द्वारा आज्ञा पाकर स्तवन करें। आपको यह भी करना है कि इन प्रस्तोतादि को जितना धन दोगे, बस उतना ही धन मुझे देना। ऐसा सुनकर यजमान राजा ने अपनी स्वीकृति दे दी ॥ ३ ॥

---

१. आनन्तर्यमथशब्दार्थ इति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विपतिष्यतीति । मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ४ ॥

प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति ॥ ५ ॥

कहा था कि हे प्रस्तोतः ! जो देवता प्रस्ताव में अनुगत है यदि तू उसे जाने विना ही प्रस्तवन करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायगा । अतः वह देवता कौन है ? (जो प्रस्तावभक्ति में अनुगत है) ॥४॥

प्रस्ताव में अनुगत देवता प्राण है

"वह देवता प्राण है" ऐसा उषस्ति ने कहा, क्योंकि ये सभी चराचर भूत प्रलय काल में प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं और फिर प्राण से ही उत्पन्न होते हैं। अतः वह यह प्राण देवता ही प्रस्ताव में अनुगत है । यदि तू बिंना जाने ही प्रस्ताव भक्ति करता तो मेरे इस प्रकार कहे पर तेरा मस्तक अवश्य गिर जाता ॥५॥

तर्या देवतेत्यादि मा मां भगवानवोचत्पूर्वम् । कतमा सा देवता या प्रस्तावभक्तिमन्वायत्तेति ॥४॥

पृष्टः प्राण इति होवाच । युक्तं प्रस्तावस्य प्राणो देवतेति । कथं, सर्वाणि स्थावरजङ्गमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति प्रलयकाले प्राणमभि लक्षयित्वा प्राणात्मनैवोज्जिहते प्राणादेवोद्गच्छन्तीत्यर्थ उत्पत्तिकाले । अतः सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वांस्त्वं प्रास्तोष्यः प्रस्तवनं प्रस्तावभक्ति कृतवानसि यदि मूर्धा

प्रतिवचनमादाय प्रशब्दसामान्यं गृहीत्वा तात्पर्यमाह—पृष्ट इति । कथमिह प्राणशब्दार्थो निश्चीयतामित्याशङ्क्या'त एव प्राण इति न्यायेनाऽऽह—कथमिति । प्राणात्मनैव संविशन्तीति पूर्वेण संबन्धः । प्राणशब्दार्थस्य परमात्मत्वेन निर्णीतत्वमतःशब्दार्थः । चेच्छब्दार्थो यदीत्युक्तः । मया तथोक्तस्य

उषस्ति-चाक्रायण की बात सुनकर व्याकुलता त्याग कर प्रस्तोता बड़े विनम्र भाव से शिष्य भाव से उनकी शरण में गए और बोले—आपने कहा था प्रस्ताव में अनुगत देवता को जाने विना जो स्तवन करेगा तो शिरःपात हो जाएगा । इसलिए आदरणीय आप मुझे इसका उपदेश कीजिए कि प्रस्ताव उपासना में अनुगत देवता कौन है ॥ ४ ॥

प्रस्तोता द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उषस्ति ने कहा—वह देवता प्राण है। प्रस्ताव में अनुगत देवता प्राण ही हो सकता है क्योंकि सभी जड़ चेतन भूतप्राणी प्रलयावस्था में प्राण में ही प्रवेश कर जाते हैं, सृष्टि-उत्पत्ति वेला में प्राणात्मा से ही उत्पन्न होते हैं। प्राण शब्द परमात्मा का अभि-

---

१. ब्र. सू. १-१-२३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वा-यत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्य-तीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ६ ॥

आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूता-न्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथ-मन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्य-त्तथोक्तस्य मयेति ॥ ७ ॥

उद्गाता का प्रश्न

तदनन्तर उषस्ति के समीप उद्गाता गया और कहा, मुझसे जो आपने कहा था कि हे उद्गातः! जो देवता उद्गीथ में अनुगत है यदि उसे जाने बिना ही उसका उद्गान करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायगा। (इस पर उद्गाता ने भी पूछा कि) वह देवता कौन है? ॥६॥

उद्गीथानुगत देवता आदित्य है

इस प्रकार पूछे जाने पर "वह देवता आदित्य है" ऐसा उषस्ति ने कहा, क्योंकि ये सभी चराचर प्राणी ऊपर विद्यमान् आदित्य का ही गान करते हैं। वह यह आदित्य देवता ही उद्गीथ में अनुगत है। यदि तू उसे बिना जाने ही उद्गान करता, तो मेरे द्वारा उस प्रकार कहे जाने पर तेरा मस्तक गिर जाता ॥ ७ ॥

शिरस्ते व्यपतिष्यद्विपतितमभविष्यत्तथोक्तस्य मया तत्काले मूर्धा ते विपतिष्यतीति। अतस्त्वया साधु कृतम्। मया निषिद्धः कर्मणो यद्वुपरममकार्षीरित्यभिप्रायः ॥५॥

तथोद्गाता पप्रच्छ कतमा सोद्गीथभक्तिमनुगताऽन्वायत्ता देवतेति ॥६॥

पृष्ट आदित्य इति होवाच। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैरूर्ध्वं सन्तं गायन्ति शब्दयन्ति स्तुवन्तीत्यभिप्रायः। उच्छब्दसामान्यात्प्रशब्दसामान्यादिव प्राणोऽतः

मूर्धा ते विपतिष्यतीत्येवमुक्तस्य तव तत्काले स्वापराधावस्थायां मूर्धा व्यपतिष्यदेवेति योजना। प्रमादस्य महतस्त्वया परिहृतत्वादित्यतःशब्दार्थः ॥५॥

यथा प्रशब्दसामान्यात्प्राणः प्रस्तावदेवतेत्युक्तं तथाऽऽदित्योद्गीथयोरुच्छब्दसामान्यादुद्गीथ-देवताऽऽदित्य इत्याह—उच्छब्देति। उक्तसामान्यपरामर्शार्थोऽतःशब्दः ॥७॥

धायक होने से प्राण देवता ही प्रस्ताव में अनुगत है। यदि तुम उसे जाने बिना प्रस्ताव-उपासना करते तो अपने द्वारा किए अपराध करने के समय ही तुम्हारा शिरःपात हो जाता। इसलिए मेरे द्वारा रोक दिए जाने पर तुमने उस कर्म से विरति कर दी, यह अच्छा ही किया ॥ ५ ॥

उसी प्रकार उद्गाता ने भी पूछा—वह उद्गीथ उपासना किस देवता के अधीन है ॥ ६ ॥

उद्गाता द्वारा पूछे जाने पर उषस्ति ने कहा—उद्गीथभक्ति आदित्य देवता के अधीन है क्योंकि ये समस्त चराचर भूतप्राणी सबसे ऊपर विद्यमान आदित्य की ही स्तुति करते हैं। जैसे प्राण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति ॥ ८ ॥

अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहार-

प्रतिहर्ता का प्रश्न

पुनः प्रतिहर्ता उषस्ति के पास गया (और कहा) आपने मुझसे जो कहा था, हे प्रतिहर्तः ! जो प्रतिहार में अनुगत देवता है, यदि उसे जाने बिना ही तू प्रतिहरण करेगा, तो तेरा मस्तक गिर जायगा। अतः वह प्रतिहार में अनुगत देवता कौन है ? ॥८॥

प्रतिहारानुगत देवता अन्न है

इस प्रकार पूछे जाने पर उषस्ति ने कहा—वह देवता अन्न है क्योंकि सम्पूर्ण चराचर प्राणी अपने लिये अन्न का ही हरण करते हुए जीवित रहते हैं। वह यह अन्न देवता प्रतिहार में अनुगत है।

सैषा देवतेत्यादि पूर्ववत् ॥७॥

एवमेवाथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद कतमा सा देवता प्रतिहारमन्वायत्तेति ॥८॥

पृष्टोऽन्नमिति होवाच। सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेवाऽऽत्मानं प्रति सर्वतः प्रतिहरमाणानि जीवन्ति। सैषा देवता प्रतिशब्दसामान्यात्प्रतिहारभक्तिमनुगता। समानमन्यत्तथोक्तस्य मयेति। प्रस्तावोद्गीथप्रतिहारभक्तीः प्राणादित्यान्नदृष्ट्योपासीतेति

एवमेव प्रस्तोतृवदुद्गातृवच्चेत्यर्थः। ऋत्विग्भ्यां प्रस्तावोद्गीथदेवतयोर्विज्ञानानन्तर्यमथशब्दार्थः ॥८॥

कथमन्नस्य प्रतिहारत्वं तदाह—सर्वाणीति। तां चेदविद्वानित्याद्यन्यदित्युच्यते। तथोक्तस्य मयेत्येतदन्तमिति शेषः। कीदृगुपासनमस्मिन्प्रकरणे विवक्षितमित्याशङ्क्याऽऽह—प्रस्तावेति। उपास्ति-

---

में 'प्र' शब्द का सादृश्य है, उसी प्रकार यहाँ 'उत्' शब्द की समानता है अतः वही आदित्य देवता है इत्यादि व्याख्यान पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ॥ ७ ॥

प्रस्तोता एवं उद्गाता की ही तरह प्रतिहर्ता ने भी उषस्ति से पूछा—वह देवता कौन सा है जो प्रतिहार के अधीन है ॥ ८ ॥

ऐसा पूछे जाने पर उषस्ति बोला—वह देवता अन्न है क्योंकि सभी जड़-चेतन प्राणी अपने लिए अन्न को ही सब ओर से हरण करते हुए जीवित रहते हैं। "प्रति" शब्द की समानता से यही देवता प्रतिहार-उपासना के अधीन है। मन्त्र में "तथोक्तस्य मया" पर्यन्त का व्याख्यान पूर्व मन्त्र के समान है। प्रस्ताव-उद्गीथ-प्रतिहार उपासना प्राण-आदित्य एवं अन्न दृष्टि से करनी चाहिए—यही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

(अथ प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज ॥ १ ॥

यदि तू उसे जाने बिना ही प्रतिहरण करता, तो मेरे द्वारा उक्त प्रकार से कहे जाने पर निश्चय ही तेरा मस्तक गिर जाता ॥९॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

शौवसाम का उपाख्यान

उसके बाद अब अन्न प्राप्ति के लिये श्वानों द्वारा देखे गये उद्गीथ का आरम्भ किया जाता है। वहाँ प्रसिद्ध है, कि (पुराकाल में) दलभ का पुत्र बक, या मित्रा का पुत्र ग्लाव स्वाध्याय करने के लिये (एकान्त देश में स्थित) जलाशय के समीप गया ॥१॥

समुदायार्थः । प्राणाद्यापत्तिः कर्मसमृद्धिर्वा फलमिति ॥ ९ ॥

इति प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११॥

अतीते खण्डेऽन्नाप्राप्तिनिमित्ता कष्टावस्थोक्तोच्छिष्टोच्छिष्टपर्युषितभक्षणलक्षणा सा मा भूदित्यन्नलाभायाथानन्तरं शौवः श्वभिर्दृष्ट[1] उद्गीथ उद्गानं सामातः प्रस्तूयते । तत्त्र

त्रयस्य फलं दर्शयति—प्राणादीति ॥९॥

इति प्रथमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

पूर्वोत्तरखण्डयोः संगतिं दर्शयन्नुपासनान्तरं प्रस्तौति—अतीत इति । अन्नलाभस्यापेक्षिततत्वमतःशब्दार्थः । प्रकारान्तरेणोद्गीथोपासनमन्नकामस्य प्रस्तुत्य प्रतिपत्तिसौकर्यार्थमाख्यायिकामादत्ते—तत्तत्रेति । न केवलं दलभस्यापत्यं किंतु मित्रायाश्चेति चार्थः । न च सा दलभस्य पत्नीति युक्तम् । तथा

संगृहीत अर्थ है। उपासनात्रय का फल यह है कि इससे प्राणादि की प्राप्ति होती है अथवा कर्म में समृद्धि लाभ होता है ॥ ९ ॥

(एकादश एवं द्वादश खण्ड में संबन्ध बताते हुए कहते हैं) एकादश खण्ड में अन्न प्राप्ति के अभाव में शोचनीय अवस्था बतलाई गयी, उच्छिष्ट एवं उच्छिष्ट वासी भक्षण की नौबत न आए उसके लिए प्रतिहार में अन्न दृष्टि की भावना प्रतिपादित की गयी। इस द्वादश खण्ड में श्वानों से साक्षात्कृत अन्न लाभ के लिए सामोद्गान उद्गीथ का प्रारम्भ किया जाता है। किसी समय दलभ का

---

१. श्वभिर्दृष्ट इति—"दृष्टं सामे'त्यण् । तस्य च "अस्मिन्नर्थेऽण् डिद्वा वक्तव्य" इति डित्वाट्टिलोप इति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ह किल बको नामतो दल्भस्यापत्यं दाल्भ्यो ग्लावो वा नामतो मित्रायाश्चापत्यं मैत्रेयः। वाशब्दश्चार्थे। द्व्यामुष्यायणो ह्यसौ। वस्तुविषये क्रियास्विव विकल्पानुपपत्तेः। द्विनामा द्विगोत्र इत्यादि हि स्मृतिः। दृश्यते चोभयतः पिण्डभाक्त्वम्। उद्गीथे बद्धचित्तत्वादृषावनादराद्वा वाशब्दः स्वाध्यायार्थः। स्वाध्यायं कर्तुं ग्रामाद्बहिरुद्वव्राजोद्गतवान्विविक्तदेशस्थोदकाभ्याशम्। उद्वव्राज प्रतिपालयांचकारेति चैकवचनाल्लिङ्गादेकोऽसावृषिः। श्वोद्गीथकालप्रतिपालनादृषेः स्वाध्यायकरणमन्नकामनयेति लक्ष्यतेऽभिप्रायतः॥ १॥

सति मैत्रेयपदस्य वैयर्थ्यात्। पत्न्यन्तरापत्यत्वव्यावृत्त्यर्थमिति चेन्न। प्रयोजनाभावात्। नन्वत्र वाशब्दाद्द्वावृषी विवक्षिताविति चेन्नेत्याह—वाशब्द इति। कथं पुनर्दल्भस्यापत्यं बकस्तदभार्याया मित्रायाश्चापत्यं भवितुमुत्सहते तत्राऽऽह—द्व्यामुष्यायणो हीति। चैकितायनो दाल्भ्य इत्यत्रोक्तमेतदिति सूचयितुं हिशब्दः। उदितानुदितहोमवत्केषांचिद्दृष्ट्या बकोऽसावन्येषां ग्लाव इत्येकस्मिन्नपि विकल्पो भविष्यति नेत्याह—वस्तुविषय इति। कथं पुनर्विना मानमेकस्यैव द्विनामत्वाद्यङ्गी क्रियते तत्राऽऽह—द्विनामेति। इत्यादिवाक्यं स्मृतिरूपं धर्मशास्त्रे प्रसिद्धमित्यर्थः। द्विगोत्रत्वमेकस्य लोकेऽपि प्रसिद्धमित्याह—दृश्यते चेति। यतः सुतो जायते येन चायं धर्मतो गृह्यते तयोरुभयोरित्याह—उभयत इति। 'उभयोरप्यसावृक्थी[1] पिण्डदाता च धर्मतः' इति स्मरन्तीत्यर्थः। दाल्भ्यादन्यो मैत्रेय इत्यङ्गीकृत्याऽऽह—उद्गीथ इति। तदुपास्तौ तात्पर्यमृषावनादरे हेतुः। तस्मादृषित्रयमृषिद्वयं वा विवक्षितमित्यर्थः। पक्षान्तरद्योतनार्थो वाशब्दः। श्रौतो वाशब्दस्तर्हि किमर्थमित्याशङ्क्य पाठादन्यत्र तस्य फलमित्याह—वाशब्द इति। मैत्रेयान्तं वाक्यं व्याख्याय स्वाध्यायमित्यादि व्याचष्टे—स्वाध्यायमिति। यदुक्तमृषिरेको बकादिशब्दैरुच्यत इति तत्र लिङ्गमाह—उद्वव्राजेति। शुनामुद्गीथः श्वोद्गीथस्तत्कालस्य प्रतिपालनं प्रतीक्षणमृषेर्दृश्यते तेषां चोद्गानमन्नार्थं तदृषेरपि स्वाध्यायकरणं तदर्थमित्याह—श्वोद्गीथेति। यथोक्तार्थवाचिशब्दाभावेऽपि सामर्थ्यादयमर्थो भातीत्याह—अभिप्रायत इति॥१॥

पुत्र बक दाल्भ्य उपनाम मित्रा का पुत्र ग्लाव-मैत्रेय स्वाध्याय के लिए गाँव से बाहर निर्जन स्थान में स्थित जलाशय के पास गया। दल्भ का पुत्र बक है किन्तु मित्रा जो उसकी पत्नी नहीं है, उसका पुत्र कैसे हो सकता है क्योंकि वह द्व्यामुष्यायण है अर्थात् बक और मित्रा दोनों प्रसिद्ध हैं. अतः उनके नाम से जाना जाता है। किन्हीं की दृष्टि में बक हो, दूसरों के लिए ग्लाव हो; ऐसा विकल्प क्रियाओं के के समान वस्तु के विषय में होना संभव नहीं है। नामद्वय एवं गोत्रद्वय धर्मशास्त्र की दृष्टि से भी उचित है। क्योंकि जिसका पुत्र होता है एवं जो उसे धर्मपुत्र बनाता है, वह दोनों कुलों का पिण्डदाता होता है। ऐसा लोक व्यवहार में भी देखा जाता है। दाल्भ्य से मैत्रेय भिन्न होने के कारण उद्गीथ की उपासना में दत्तचित्त होने अथवा ऋषियों में अनादर हेतुक 'वा' शब्द है। मन्त्र में 'उद्वव्राज' शब्द में एकवचन इसका ज्ञापक है कि एक ही ऋषि स्वाध्याय प्रतिपालन हेतु गये। भावाशय यह है कि कुत्तों के उद्गीथ काल की प्रतीक्षा ऋषि को है, अन्न के लिए कुत्ते उद्गान करते हैं एवं ऋषि का स्वाध्याय में प्रवृत्त होना भी अन्नलाभ के लिए है॥ १॥

---

१. ऋक्थीति—"द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु" इत्यमरः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति ॥ २ ॥

तान्होवाचेहैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयांचकार ॥ ३ ॥

उस ऋषि के समीप (स्वाध्याय से संतुष्ट हो देवता या ऋषि) श्वेत कुत्ता बनकर प्रकट हुआ। उसके पास दूसरे कुत्तों ने आकर कहा—भगवन्! आप हमारे लिये अन्न का आगान करें, क्योंकि हम निश्चय भूखे हैं ॥२॥

उन छोटे-छोटे कुत्तों से श्वेत कुत्ते ने कहा—तुम प्रातःकाल इसी स्थान पर मेरे पास आना। तब दाल्भ्य बक या मैत्रेय-ग्लाव नामक ऋषि उसी स्थान पर प्रतीक्षा करता रहा ॥३॥

स्वाध्यायेन तोषिता देवतर्षिर्वा श्वरूपं गृहीत्वा श्वा श्वेतः संस्तस्मा ऋषये तदनुग्रहार्थं प्रादुर्बभूव प्रादुश्चकार। तमन्ये शुक्लं श्वानं क्षुल्लकाः श्वान उपसमेत्योचुरुक्तवन्तोऽन्नं नोऽस्मभ्यं भगवानागायत्वागानेन निष्पादयत्वित्यर्थः। मुख्यप्राणं वागादयो वा प्राणमन्वन्नभुजः स्वाध्यायपरितोषिताः सन्तोऽनुगृह्णीयुरेनं स्वरूपमादायेति युक्तमेवं प्रतिपत्तुम्। अशनायाम वै बुभुक्षिताः स्मो वा इति ॥ २ ॥

एवमुक्ते श्वा श्वेत उवाच तान्क्षुल्लकाञ्शुन इहैवास्मिन्नेव देशे मा मां प्रातः प्रातःकाल उपसमीयातेति। दैर्घ्यं छान्दसं समीयातेति प्रमादपाठो वा। प्रातःकाल-

---

तस्मा इत्यादि व्याचष्टे—स्वाध्यायेनेति। क्षुल्लकाः क्षुद्रकाः शिशव इति यावत्। श्वेतः श्वा कश्चिदृषिर्देवता वा। अन्ने च श्वानो देवता ऋषयो वेत्युक्तम्। संप्रति विवक्षितं पक्षमाह—मुख्येति। 'तमूचुरिति संबन्धः। तानेव विशिनष्टि—प्राणमन्विति। मुख्यप्राणसहितवागादिग्रहे हेतुमाह—स्वाध्यायेति। अन्यथा वाक्यमनिर्धारितार्थं स्यादिति भावः। किमित्यन्नं भवद्भ्यो मया संपाद्यते न हि भवतामभोक्तॄणां तेन कृत्यमस्तीत्याशङ्क्य त्वन्निष्ठचेतनद्वारेणास्माकमपि भोगसिद्धेर्मैवमित्याह—अशनायाम वा इत्यादिना ॥२॥

किमिति प्रातःकालप्रतीक्षणं कृतं तत्राऽऽह—प्रातरिति। उद्गानस्येति शेषः। प्रातःकाल-

---

स्वाध्याय से प्रसन्न हो देवता अथवा ऋषि उन एकान्तवासी बक-दाल्भ्य पर कृपा करने के लिए श्वेत कुत्ते का रूप धारण कर अवतरित हुए। उस अवतारी सफेद कुत्ते के पास बहुत से कुत्तों के पिल्ले इकट्ठे होकर बोले—माननीय! आप हमारे लिए अन्न का आगान करें क्योंकि हम भूखे हैं। अथवा ऐसा कहना युक्तिसंगत है कि क्षुधातुर प्राण के स्वाध्याय से प्रसन्न हो वागादि उस मुख्य प्राण से बोले—इसे अपने स्वरूपदर्शन से अनुगृहीत करना चाहिए ॥ २ ॥

इस पर श्वेत कुत्ता उन पिल्लों से बोला—तुम सभी प्रातःकाल इसी जगह इकट्ठे हो जाना।

---

१. तमिति—तं मुख्यं प्राणं वागादय ऊचुरित्यन्वय इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते ह यथैवेह बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः सꣳरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रुः ॥४॥

ओ३मदा३मों पिबा३मों३ देवो वरुणः प्रजापतिः

उन कुत्तों ने (वहाँ ऋषि के सामने आकर) जैसे कर्म में बहिष्पवमान् स्तोत्र से स्तवन करने वाले उद्गाता लोग एक दूसरे से मिलकर चलते हैं, वैसे ही (मुँह से एक दूसरे की पूँछ पकड़ कर) भ्रमण किया और वहाँ बैठकर हिंकार किया ॥४॥

श्वानों द्वारा किया गया हिंकार

ओं हम खाते हैं, ओं हम पीते हैं, ओं देवता, वरुण, प्रजापति, सूर्यदेव हमारे लिये यहाँ पर

करणं तत्काल एव 'कर्तव्यार्थम्[1] । अन्नदस्य वा सवितुरपराह्णेऽनाभिमुख्यात् । तत्तत्रैव ह बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेय ऋषिः प्रतिपालयांचकार प्रतीक्षणं कृतवानित्यर्थः ॥३॥

ते श्वानस्तत्रैवाऽऽगम्य ऋषेः समक्षं यथैवेह कर्मणि बहिष्पवमानेन स्तोत्रेण स्तोष्यमाणा उद्गातृपुरुषाः संरब्धाः संलग्ना अन्योन्यसेव मुखेनान्योन्यस्य पुच्छं गृहीत्वाऽऽससृपुरासृप्तवन्तः परिभ्रमणं कृतवन्त इत्यर्थः । त एवं संसृप्य समुपविश्योपविष्टाः सन्तो हिं चक्रुर्हिकारं कृतवन्तः ॥ ४ ॥

ओमदामों पिबामों देवो द्योतनात् । वरुणो वर्षणाज्जगतः । प्रजापतिः पालना-

---

प्रतीक्षणकरणे कारणान्तरमाह—अन्नदस्येति । तस्य वृष्टिद्वाराऽन्नदत्वं द्रष्टव्यम् । तद्धेत्यादि व्याचष्टे—तत्तत्रेति । ऋषेरन्नकामत्वमितोऽवगतम् ॥३॥

ते हेत्यादि व्याकरोति—ते श्वान इति । समक्षमाससृपुरिति संबन्धः । उद्गातृपुरुषा इत्यध्वर्यु-प्रमुखा यजमानपर्यन्ता गृह्यन्ते । अन्योन्यं संलग्नाः सर्पन्तीति शेषः ॥४॥

हिंकारस्वरूपमाह—ओमित्यादिना । त्रिवारमोंकारो गानार्थमुच्चरितः । अदामाशनं करवाम । पिबाम पानं करवामेत्येतत् । इतिशब्दो हिंकारसमाप्त्यर्थः । अन्नप्रसवितृत्वमादित्यस्य

"समीयातेति" में दीर्घ ग्रहण वैदिक मन्त्र होने के कारण है अथवा लेखक के प्रमाद से ऐसा हुआ है। प्रातःकाल की प्रतीक्षा उसी समय उद्गानकर्तव्यता के लिए है। अथवा वृष्टि द्वारा अन्न देने वाले सूर्य अपराह्ण के समय सामने नहीं रहते। अन्न कामना से वक-दाल्भ्य उपनाम मैत्रेय-ग्लाव ऋषि उस स्थल पर प्रतीक्षा करता रहा ॥ ३ ॥

उन कुत्तों ने ऋषि के समीप मुँह में एक दूसरे की पूँछ लेकर भ्रमण किया; जैसे यहाँ कर्म में बहिष्पवमान स्तोत्र से स्तुति करने वाले उद्गाता (अध्वर्यु से यजमान पर्यन्त) पुरुष एक दूसरे से सटे हुए चलते हैं। इस प्रकार वे चलकर फिर बैठ गये और हिंकार करने लगे ॥ ४ ॥

---

१. कर्तव्यत्वार्थमिति युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सविता२ऽन्नमिहा२ऽऽहरदन्नपते३ऽन्नमिहा२ऽऽहरा२-ऽऽहरो३मिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अन्न लावें। हे अन्नपते! (सम्पूर्ण अन्न का जनक होने से वही अन्नपति है) तुम हमारे लिये यहां अन्न लाओ। अन्न लाओ ॥५॥

॥ इति द्वादश: खण्डः ॥

त्प्रजानाम्। सविता प्रसवितृत्वात्सर्वस्याऽऽदित्य उच्यते एतैः पर्यायैः, स एवंभूत आदित्योऽन्नमस्मभ्यमिहाऽऽहरदाहरत्विति। त एवं हिं कृत्वा पुनरप्यूचुः—स त्वं हेऽन्नपते। स हि सर्वस्यान्नस्य प्रसवितृत्वात्पतिः। न हि तत्पाकेन विना प्रभूतमन्नमणुमात्रमपि जायते प्राणिनाम्। अतोऽन्नपतिः। हेऽन्नपतेऽन्नमस्मभ्यमिहाऽऽहराऽऽहरेति। अभ्यास आदरार्थः। ॐमिति ॥ ५ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

भक्तिविषयोपासनं सामावयवसंबद्धमित्यतः सामावयवान्तरस्तोभाक्षरविषयाण्युपासनान्तराणि संहतान्युपदिश्यन्तेऽनन्तरं सामावयवसंबद्धत्वाविशेषात्—

साधयति—न हीति। इहेति प्रकृतदेशोक्तिः। ॐकारः सवितृप्रार्थनामन्त्रसमाप्त्यर्थः। भक्तिविषयोपास्तिसमाप्त्यर्थमितिपदम् ॥५॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

ननु भक्तिसंबन्धानामुपासनानां नीतत्वात्समस्तस्येत्यादिवक्तव्ये किमनन्तरखण्डेनेत्याशङ्क्याऽऽह—भक्तीति। इत्यतोऽस्मात्प्रसङ्गादिति यावत्। ऋगक्षराणि गीयन्ते तद्व्यतिरिक्तानि वाच्यशून्यानि गीतिसिद्ध्यर्थानि स्तोभाक्षराणि परिभाष्यन्ते तानि च कर्मापूर्वनिर्वृत्तिद्वारेण फलवत्त्वादुपास्यानि तदुपास्तिविधिपरमुत्तरं वाक्यमित्यर्थः। वक्ष्यमाणोपासनानां प्रत्येकं स्वातन्त्र्यं नास्तीत्याह—संहतानीति। तेषामनन्तरमुपदेशे हेतुमाह—सामावयवेति। न चैवंविधस्तोभो नास्तीति वाच्य-

---

हिंकार का स्वरूप बतलाते हैं—ओम् हम अन्न खाते हैं, ॐ हम पीते हैं, ओं देवता, वरुण, प्रजापति और सविता नामों वाले आदित्य हमारे लिए अन्न लाएँ। दीप्तियुक्त होने से देवता कहे जाते हैं। जगत् में वर्षा होने में हेतु होने से वरुण हैं। प्रजापति सूर्य का ही नाम है क्योंकि वह प्रजा का पालन करता है। सबकी उत्पत्ति में हेतु होने से सविता है। हे अन्नपते! तुम हमारे लिए यहाँ अन्न लाओ। वह अन्न उत्पत्ति का कारण होने से अन्नपति है। अन्नप्राचुर्य बिना आदित्य द्वारा पकाये जाने से अणुमात्र भी अन्न प्राणियों के लिए उत्पन्न नहीं होगा, इसलिए भी अन्नपति है। "यहाँ लाइये" की तीन आवृत्ति आदर के लिए है। भक्तिविषयक उद्गीथ उपासना की पूर्णता के लिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः । आत्मेहकारोऽग्निरीकारः ।१॥

साम के अवयव स्तोभाक्षर की उपासना

यह लोक ही (रथन्तर साम में प्रसिद्ध) 'हा' उकार स्तोभ है। वायु 'हा' इकार है, चन्द्रमा अथकार है, आत्मा इहकार है, और अग्नि ईकार है ॥१॥

अयं वावायमेव लोको हाउकारः स्तोभो रथंतरे साम्नि प्रसिद्धः—इयं वै रथंतरमिति । अस्मात्संबन्धसामान्याद्धाउकारस्तोभोऽयं लोक इत्येवमुपासीत । वायुर्हाइकारः । वामदेव्ये सामनि हाइकारः प्रसिद्धः । वाय्वप्संबन्धश्च वामदेव्यस्य साम्नो योनिरिति । अस्मात्सामान्याद्धाइकारं वायुदृष्ट्योपासीत । चन्द्रमा अथकारः । चन्द्रदृष्ट्याऽथकारमुपासीत । अन्ने हीदं स्थितम् । अन्नात्मा चन्द्रः । थकाराकारसामान्याच्च । आत्मेहकारः । इहेति स्तोभोऽप्रत्यक्षो ह्यात्मेहेति व्यपदिश्यते । इहेति च स्तोभः ।

मित्याह—रथंतर इति । तथाऽपि कथं पृथिवीदृष्ट्या यथोक्तस्तोभस्योपास्यत्वं तत्राऽऽह—इयमिति । इयं वै रथंतरमित्यत्र पृथिव्या रथंतरत्वं श्रुतं प्रस्तुतश्च स्तोभो रथंतरेऽस्तीत्युक्तं तथा च यथोक्तात्संबन्धरूपात्साहश्यात्पृथिवीदृष्ट्या हाउकार उपास्य इत्यर्थः । कथं पुनर्वायुदृष्ट्या हाइकारस्योपास्यत्वं तत्राऽऽह—वाय्वप्संबन्धश्चेति । हाइकारो वामदेव्ये साम्नि प्रसिद्धः । तस्य च वायोरपां च संबन्धो योनिर्मैथुनेच्छावतीनामपां वायुः पृष्ठेऽत्यवर्तत ततो वामदेव्यं सामाभवदिति श्रुतेः । तस्माद्यथोक्ताद्वामदेव्यसामसंबन्धसामान्याद्वायुदृष्ट्या हाइकारमुपासीतेत्यर्थः । कथमथकारस्य चन्द्रदृष्ट्योपासनं तत्राऽऽह—अन्ने हीति । तथा च थकारसामान्याद्यथोक्तोपास्तिसिद्धिरिति शेषः । थकारवदकारसामान्याच्च चन्द्रदृष्ट्याऽथकारमुपासीतेत्याह—थकारेति । अथकारे तावद्व्यक्तोऽकारोऽन्नात्मनि चन्द्रमस्यपि सोऽस्ति तद्युक्तं यथोक्तमुपासनमित्यर्थः । प्रथममप्रत्यक्षः पश्चात्प्रत्यक्षीभवन्निति शेषः ।

"ॐ" के पश्चात् इति प्रयोग है ॥ ५ ॥

उद्गीथभक्तिविषयक उपासना सामावयव से संबद्ध है, इस प्रकरण से सामावयव से भिन्न (वाच्य शून्य) स्तोभाक्षरविषयक अन्य उपासनाएँ संबद्ध (उपदिष्ट) हैं क्योंकि सामावयव-संबद्धत्व साम्य होने के कारण उनका बाद में उपदेश किया गया है।

यह लोक ही रथंतर साम में प्रसिद्ध हाउकार स्तोभ है। यह पृथिवी रथंतर है—ऐसी श्रुति है। इसी संबन्ध की समानता से 'हा' उकार स्तोभ यह लोक है—इस प्रकार उपासना करे। वामदेव्य साम में वायु 'हा' इकार से प्रसिद्ध है। "वायु और जल का संबन्ध वामदेव्य-साम की योनि है"—ऐसी श्रुति है। इस सादृश्य से 'हा' इकार की वायु दृष्टि से उपासना करे। चन्द्रमा दृष्टि से अथकार की उपासना करे क्योंकि थकार सादृश्य से अन्न में यह स्थित है। चन्द्रमा अन्नात्मक है। थकार के सदृश अकार की समानता होने से चन्द्रदृष्टि से अथकार की उपासना करे। आत्मा इहकार है। वाच्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वे देवा औहोयिकारः प्रजापतिर्हिंकारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट् ॥ २ ॥

आदित्य ऊकार है, निहव (आह्वान) एकार है, विश्वेदेव औ होइकार है। प्रजापति हिंका[र] है, तथा प्राण स्वर है, अन्न या है एवं विराट् वाक् है ॥२॥

तत्सामान्यात् । अग्निरीकारः । ईनिधानानि चाऽऽग्नेयानि सर्वाणि सामानीत्यतस्त-त्सामान्यात् ॥ १ ॥

आदित्य ऊकारः । उच्चैरूर्ध्वं सन्तमादित्यं गायन्त्यूकारश्चायं स्तोभः । आदित्य-दैवत्ये वा साम्नि स्तोभ ऊ इत्यादित्य ऊकारः । निहव इत्याह्वानमेकारः स्तोभः। एहीति चाऽऽह्वयन्तीति तत्सामान्यात् । विश्वे देवा औहोयिकारो वैश्वदेव्ये साम्नि स्तोभस्य दर्शनात् । प्रजापतिर्हिंकारः । आनिरुक्त्याद्धिंकारस्य चाव्यक्तत्वात् । प्राण:

तत्सामान्यमिहेति व्यपदिश्यमानत्वं तस्मादात्मदृष्टिरिहेति स्तोभे कर्तव्येत्याह—तत्सामान्यादिति। अग्निदृष्टिरीकाराख्ये स्तोभाक्षरे कर्तव्येत्यत्र हेतुमाह—ईनिधानानीति। ईकारो निधीयते येषु साम[सु] तान्याग्नेयानि प्रसिद्धानि। तथा च तेष्वग्निरीकारश्चेत्युभयोर्भावादस्मात्साहश्यादीकारमग्निदृष्ट्यो[-]पासीतेत्यर्थः ॥१॥

ऊकारमादित्यदृष्ट्या कथमुपासीतेत्याशङ्क्याऽऽह—उच्चैरिति। ऊकारादित्ययोर्विधान्तरेण साहश्यमाह—आदित्येति। एकारसामान्यान्निहवदृष्टिरेकारे स्तोभे कार्येत्याह—निहव इत्यादिना। औहोयिकारस्य विश्वे(श्व)देवदृष्ट्योपास्तौ हेतुमाह—वैश्वदेव्य इति। प्रजापतिदृष्ट्या हिंकारोपास्त्[ौ] हेतुः—आनिरुक्त्यादिति। नीलपीतादिरूपेण निरुक्त्यविषयत्वात्प्रजापतेरित्यर्थः। अव्यक्तत्वाद्रूपादि[-]

शून्य 'इह' है, पहले अप्रत्यक्ष होता हुआ भी आत्मा प्रत्यक्ष 'इह' शब्द से व्यपदिष्ट होता है। इह और[-] स्तोभ से समानता होने से उसमें आत्मदृष्टि करनी चाहिए। जिस साम में ईकार का निधान किया जाता है, वे आग्नेय हैं, ईकार और अग्नि में समानता होने से ईकार की अग्नि दृष्टि से उपासना करनी चाहिए ॥ १ ॥

ऊकार की आदित्य दृष्टि से उपासना करनी चाहिए। दूर ऊपर रहकर आदित्य की स्तुति करते हैं। यह ऊकार स्तोभ है। अथवा आदित्य दैवत्य-साम में 'ऊ' स्तोभ है, ऐसा वर्णित होने से आदित्य ही ऊकार है। आओ और बुलाते हैं, ऐसा निर्वचन है। एकार साहश्य होने से एकार स्तोभ में निहव दृष्टि करनी चाहिए। वैश्वदव्य-साम में स्तोभ का दर्शन होने से विश्वेदेव औहोयिकार है। नीलपीतादि रूप से निरुक्ति का अविषय व रूपादिरहित होने से प्रजापति हिंकार है। स्वर स्तोभा-त्मक है, स्वरहेतुक साहश्य होने के कारण स्वर में प्राणदृष्टि करनी चाहिए। अन्न ही स्तोभात्मक 'या'

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः संचरो हुंकारः ॥ ३ ॥

स्तोभाक्षरोपासनाफलमाह—

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति

(अव्यक्त होने के कारण विशेषरूप से) जिसका निरूपण नहीं किया जा सकता और जो कार्य रूप से सञ्चार करने वाला है, वह तेरहवाँ स्तोभ हुंकार है ॥३॥

उक्त उपासनाओं का फल

जो इस प्रकार सामावयव रूप स्तोभाक्षर संबन्धी उपनिषद् को जानता है, उसे वाणी, जो उस

स्वरः। स्वर इति स्तोभः। प्राणस्य च स्वरहेतुत्वसामान्यात्। अन्नं या या इति स्तोभोऽन्नम्। अन्नेन हीदं यातीत्यतस्तत्सामान्यात्। वागिति स्तोभो विराडन्नं देवताविशेषो वा। वैराजे साम्नि स्तोभदर्शनात् ॥ २ ॥

अनिरुक्तोऽव्यक्तत्वादिदं वेदं वेति निर्वक्तुं न शक्यत इत्यतः संचारो विकल्प्यमानस्वरूपं इत्यर्थः। कोऽसावित्याह—त्रयोदशः स्तोभो हुंकारः। अव्यक्तो ह्ययमतोऽनिरुक्तविशेष एवोपास्य इत्यभिप्रायः ॥ ३ ॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहमित्याद्युक्तार्थम्। य एतामेवं यथोक्तलक्षणां साम्नां सामावयव-

---

हितत्वादित्यर्थः। प्राणस्य चेति चकारात्स्वरस्य चेत्यर्थः। स्वरहेतुत्वं तन्निर्वर्तकत्वेन तदात्मकत्वम्। न्नं या इति वाक्यं व्याचष्टे—या इति। अन्नदृष्टिर्या इति स्तोभे कर्तव्येत्यत्र हेतुमाह—अन्नेनेति। वराड्दृष्टिर्वागिति स्तोभे कार्येत्यत्र हेतुमाह—वैराज इति ॥२॥

अनिरुक्तः कारणात्मा। तस्यानिरुक्तत्वं साधयति—अव्यक्तत्वादिति। स चानेकधा कार्यरूपेण चरतीति संचरः। हुंकारोऽपि शाखाभेदेन विकल्प्यमानस्वरूपस्त्रयोदशश्चायं वावेत्यारभ्य गण्यमानतश्च कारणदृष्ट्या हुंकारमुपासीतेत्यर्थः। उक्तमेवोपपादयति—अव्यक्तो हीति। तत्र विकल्प्यमानत्वं हेतुः ॥३॥

क्योंकि अन्न से ही प्राणी चलने-फिरने की सामर्थ्य लाभ करते हैं अतः दोनों में समानता है। वाणी भात्मक में विराट् दृष्टि करनी चाहिए क्योंकि विराट् साम में स्तोभ का प्रकरण है, यही विराडन्न वा विराट देवता है।

अनिरुक्त कारणात्मा अव्यक्त होने के कारण उसकी इदंरूपता वर्णन करना असंभव है। इसलिए क प्रकार से कार्यरूप में विकल्प्यमान स्वरूप से संचार करने वाला तेरहवाँ स्तोभ हुंकार है। यह यक्त है, इसलिए अनिरुक्त कारण दृष्टि से इसकी उपासना करनी चाहिए ॥ ३ ॥

स्तोभाक्षर उपासना का फल कहा जाता है—

जो भी पूर्वोक्त लक्षण सामावयव स्तोभाक्षरविषयक औपनिषद उपासना को जानता है; उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य एतामेवꣳ साम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

इति छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

वाणी का फल है, उस फल को देती है, एवं वह अन्नवान् और अन्न भक्षण करने वाला होता है। 'उपनिषदं वेद' इस शब्द की आवृत्ति अध्याय समाप्ति के लिये की गयी है ॥४॥

॥ इति प्रथमाध्याये त्रयोदशः खण्डः ॥

स्तोभाक्षरविषयामुपनिषदं दर्शनं वेद तस्यैतद्यथोक्तं फलमित्यर्थः। द्विरभ्यासोऽध्या परिसमाप्त्यर्थः। सामावयवविषयोपासनाविशेषपरिसमाप्त्यर्थो वेति ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकर-भगवत्पादकृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

नैतानि व्यस्तान्युपासनानि प्रत्येकं फलाश्रवणात्। समस्तं पुनरेकमिदमुपासनमेकफलत्वादि भिप्रेत्याऽऽह—स्तोभाक्षरेति। उपनिषदं वेदोपनिषदं वेदेत्यावृत्तेस्तात्पर्यमाह—द्विरभ्यास इति प्रथमप्रपाठकव्याख्यानसमाप्ताविति शब्दः ॥४॥

इति प्रथमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां छान्दोग्यभाष्यटीकायां प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥१॥

वाणी अपने फल को देती है, वह अन्नवान् और अन्नाद होता है। मन्त्र में 'उपनिषदं वेद' की आवृ अध्यायसमाप्ति की सूचक है अथवा सामावयवविषयक विशिष्ट उपासना की समाप्ति के है ॥ ४ ॥

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् शाङ्करभाष्य में डॉ॰ उमेशानन्द शास्त्री कृत "कुमुदतोषिणी" टीका का प्रथम अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः)

ॐ । समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳ साधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याक्षते यदसाधु तदसामेति ॥ १ ॥

सर्वावयव विशिष्ट साम को साधु दृष्टि से उपासना

ओं समस्त (पाञ्चभक्तिक और साप्तभक्तिक) साम की उपासना निश्चय ही साधु है। जो साधु है वही साम है और जो असाधु होता है वह साम नहीं है (अर्थात् समस्त साम में साधुता है अवयव में नहीं) ऐसा इसे साम रहस्यविद् कहते हैं ॥१॥

ओमित्येतदक्षरमित्यादिना सामावयवविषयमुपासनमनेकफलमुपदिष्टम्। अनन्तरं च स्तोभाक्षरविषयमुपासनमुक्तम्। सर्वथाऽपि सामैकदेशसंबद्धमेव तदिति। अथेदानीं समस्ते साम्नि समस्तसामविषयाण्युपासनानि वक्ष्यामीत्यारभते श्रुतिः। युक्तं ह्येकदेशोपासनानन्तरमेकदेशिविषयमुपासनमुच्यत इति।

समस्तस्य सर्वावयवविशिष्टस्य पाञ्चभक्तिकस्य साप्तभक्तिकस्य चेत्यर्थः। खल्विति वाक्यालंकारार्थः। साम्न उपासनं साधु। समस्ते साम्नि साधुदृष्टिविधिपरत्वान्न पूर्वोपासननिन्दार्थत्वं साधुशब्दस्य। ननु पूर्वत्राविद्यमानं साधुत्वं समस्ते साम्न्य-

---

पूर्वोत्तरप्रपाठकयोः संगतिं दर्शयति—ओमित्येतदित्यादिना। सर्वथाऽपि सामवयवविषयत्वे स्तोभाक्षरविषयत्वे चेत्यर्थः। इतिशब्दो हेत्वर्थः। यस्मादेकदेशविषयाण्युपासनानि वृत्तानि तस्मात्तानि समस्तविषयाणि वक्तव्यानीत्यर्थः। एकदेशोपास्तिव्याख्यानन्तर्यमथशब्दार्थः। कथमुक्तवक्ष्यमाणोपासनयोरिदं पौर्वापर्यं तत्राऽऽह—युक्तं हीति। समस्तस्योपासनं साध्विति वचनादवयवोपासनं निन्दितत्वादननुष्ठेयमित्याशङ्क्याऽऽह—समस्त इति। अर्थादस्ति निन्देति शङ्कते—नन्विति। पूर्वत्रापि साधुत्वस्य

प्रथम अध्याय में "उद्गीथशब्दवाच्य 'ओम्' इस अक्षर की उपासना करे" इत्यादि ग्रन्थ से सामावयव-विषयक उपासनाएँ एवं उनके अनेक प्रकार के फल प्रतिपादित किए गए। इसके पश्चात् वाच्यशून्य गीति-सिद्ध-अर्थक स्तोभाक्षरविषयिणी उपासनाएँ कही गईं क्योंकि वे भी सर्वथा साम के एकदेश से संबद्ध हैं। एकदेशी उपासनाओं के निरूपण करने के अनन्तर अब समस्त साम में जो समस्त सामविषयिणी उपासनाएँ हैं, उनका निरूपण करना चाहिए, इसी को श्रुति आरम्भ करती है। एकदेशी उपासनाओं के बाद उनको विषय करने वाली उपासनाओं का विवेचन करना युक्तिसंगत है।

सर्वावयवविशिष्ट पाञ्चभक्तिक एवं साप्तभक्तिक साम की उपासना करना ही ठीक है। "खलु" शब्द मन्त्र में वाक्यालंकार में आया है। समस्त साम में शोभना दृष्टि के विधान होने से यहाँ साधु शब्द का ग्रहण पूर्वोपासना की निन्दा के लिए नहीं है। (इस पर पूर्वपक्षी शङ्का करता है—) अर्थतः निन्दा की अभिव्यक्ति होने से पूर्व अध्याय में अप्रयुक्त साधु शब्द समस्त साम का बोधक है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥ २ ॥

इसी विषय में विवेक करके कहते हैं (जब यह कहा जाता है कि) वह राजा आदि के प साम रूप से गया, तो लोग यही कहते हैं कि वह पुरुष राजा या सामन्त के पास साधु भाव से गया (और जहाँ इसके विपरीत बन्धनादि असाधु कार्य देखते हैं, वहाँ ये ऐसा कहते हैं) वह इसके प असाम रूप से गया अर्थात् वह इसके यहाँ अशोभन अप्रिय रूप से गया ॥२॥

भिधीयते । न । साधु सामेत्युपास्त इत्युपसंहारात् । साधुशब्दः शोभनवाची । कथमव गम्यत इत्याह—यत्खलु लोके साधु शोभनमनवद्यं प्रसिद्धं तत्सामेत्याचक्षते कुशलाः यदसाधु विपरीतं तदसामेति ॥१॥

तत्त्रैवं साध्वसाधुविवेककरण उताप्याहुः—साम्नैनं राजानं सामन्तं वोपागा पगतवान् । कोऽसौ । यतोऽसाधुत्वप्राप्त्याशङ्का स इत्यभिप्रायः । शोभनाभिप्रायेण सा नैनमुपागादित्येव तत्त्राऽऽहुर्लौकिका बन्धनाद्यसाधुकार्यमपश्यन्तः । यत्र पुनर्विप बन्धनाद्यसाधुकार्यं पश्यन्ति तत्रासाम्नैनमुपागादित्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः ॥२॥

विद्यमानस्यैव विशेषणत्वेनानुपादानान्नार्थदपि निन्देति परिहरति—न साध्विति । यत्खल्वित्या व्याख्यातुं पातनिकामाह—साधुशब्द इति । वाक्यमवतार्य व्याचष्टे—कथमित्यादिना ॥१॥

किं पुनरेवं विवेककरणे कारणमित्याशङ्क्याऽऽह—तत्त्रेति । विवेककरणोपायभेदविकल्प मुतेत्युभयत्र पदम् । साम्नैनमित्यादिना साधुनेत्यादिवाक्यस्य पौनरुक्त्यमाशङ्क्य व्याख्यानव्याख्ये भावान्मैवमित्याह—शोभनेति । [1]शोभनकार्यदर्शने सतीति यावत् । तत्रैव हेत्वन्तरमाह—बन्धनादीति असाम्नेत्यादि व्याचष्टे—यत्रेति ॥२॥

ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि "जो भी कोई पुरुष 'साम साधु है' इस प्रकार उपासना करता है" इ प्रकार प्रसङ्ग का उपसंहार किया गया है। साधुशब्द शोभनवाची है। इसमें हेतु कहा जाता है संसार में जो भी कुछ सुन्दर शोभनीय अनिन्द्य प्रसिद्ध है, उसे शास्त्रनिष्णात महानुभाव साम कह हैं। जो शोभनशील नहीं है; वह साम भी नहीं है ॥ १ ॥

उसी साधु और असाधु का इस प्रकार विवेक किया जाता है। जब यह कहा जाता है कि सामरूप अथवा सामन्त से राजा के पास गया, तब असाधुत्वप्राप्ति की शङ्का में लोग यही कहते कि अनिन्द्य भाव से वह राजा के पास गया। जब यह देखा जाता है कि उसके हाथों में हथकड़ी न लगी है। इसके विपरीत जब उसके हाथ पाँव में बेड़ी देखी जाती है तो कहते हैं, वह राजा के प असामरूप अर्थात् अशोभन कर्म करने के परिणामस्वरूप गया ॥ २ ॥

१. तत्रेत्यस्य व्याख्यानं शोभते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः ॥ ३ ॥

स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः ॥ ४ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

इसके बाद ऐसा भी कहते हैं कि हमारा साम हुआ अर्थात् जो शुभ होता है तो अहा! यह साधु है, ऐसा कहा जाता है और ऐसा भी कहते हैं हमारा असाम हुआ। अर्थात् अशुभ होने पर "अरे! बुरा हो गया" ऐसा कहते हैं (अतः साम और साधु शब्द समानार्थक सिद्ध हुए) ॥३॥

इसे इस प्रकार जानने वाला जो वह पुरुष "साम साधु है" ऐसी ही उपासना करता है, उसके पास शास्त्रसम्मत जो साधु धर्म हैं वे अतिशीघ्र आ जाते हैं और उसके प्रति विनम्र भाव भी आ जाते हैं ॥४॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

अथोताप्याहुः स्वसंवेद्यं साम नोऽस्माकं बतेत्यनुकम्पयन्तः संवृत्तमित्याहुः। एतत्तैरुक्तं भवति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुः। विपर्यये जातेऽसाम नो बतेति। यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः। तस्मात्सामसाधुशब्दयोरेकार्थत्वं सिद्धम् ॥३॥

अतः स यः कश्चित्साधु सामेति साधुगुणवत्सामेत्युपास्ते समस्तं साम साधुगुणवद्विद्वांस्तस्यैतत्फलमभ्याशो ह क्षिप्रं ह यदिति क्रियाविशेषणार्थमेनमुपासकं साधवः

कार्यगम्यं साधुत्वमसाधुत्वं चोक्त्वा स्वानुभवगम्यं तदुपन्यस्यति—अथेति। कार्यात्तस्य साधुत्वादिविवेकानन्तर्यमथशब्दार्थः। स्वसंवेद्यं साधुत्वमसाधुत्वं चेति शेषः। तत्र साधुत्वं स्वानुभवसिद्धमित्येतद्व्युत्पादयति—सामेति। यत्साध्वित्यादिवाक्यस्य पूर्वेण पौनरुक्त्यमाशङ्क्याऽऽह—एतदिति। असामेत्यादि व्याचष्टे— विपर्यय इति। बतेत्याहुरिति संबन्धः। किं तैरुक्तं भवति तदाह—यदसाध्विति। साधुशब्दः शोभनवाचीत्युक्तमुपसंहरति— तस्मादिति ॥३॥

तयोरेकार्थत्वमतःशब्दार्थः। उपासकमेव विशिनष्टि—समस्तमिति। आगच्छेयुरिति यत्तत्क्षि-

---

अब स्वानुभूति के आधार पर अनुकम्पित हुए ऐसा भी कहते हैं—हमारा साम हुआ। जो साधु होता है वही साधु हुआ ऐसा कहता है; इसके विपरीत होने पर असाम हुआ, उनके द्वारा कहा जाता है। अशोभनीय होने पर कहा जाता है, अरे! बहुत बुरा हुआ। इससे साम और साधु शब्द की एकार्थता सिद्ध होती है ॥ ३ ॥

उनकी एकार्थता होने से जो कोई भी शोभनगुण की तरह साम की उपासना करता है, उस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

लोकेषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत पृथिवी हिंकारः । अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु ॥ १ ॥

लोक में पञ्चविध साम की उपासना

लोक में पाँच प्रकार साम की उपासना करे। पृथिवी हिंकार है, अग्नि प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, आदित्य प्रतिहार और द्युलोक निधन है। इस प्रकार ऊपर के लोकों में लोक दृष्टि की जाने वाली उपासना वतलायी गयी है ॥१॥

शोभना धर्माः श्रुतिस्मृत्यविरुद्धा आ च गच्छेयुरागच्छेयुश्च न केवलमागच्छेयुरुप च नमेयुरुपनमेयुश्च भोग्यत्वेनोपतिष्ठेयुरित्यर्थः ॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः॥ १ ॥

कानि पुनस्तानि साधुदृष्टिविशिष्टानि समस्तानि सामान्युपास्यानीति। इमानि तान्युच्यन्ते लोकेषु पञ्चविधमित्यादीनि। ननु लोकादिदृष्टया तान्युपास्यानि साधुदृष्टया चेति विरुद्धम्। न। साध्वर्थस्य लोकादिकार्येषु कारणस्यानुगतत्वात्। मृदादिवद्घटादिविकारेषु। साधुशब्दवाच्योऽर्थो धर्मो ब्रह्म वा सर्वथाऽपि लोकादिकार्येष्वनुगतो यथा यत्र घटादिदृष्टिर्मृदादिदृष्टयनुगतैव सा। तथा साधुदृष्टयनुगतैव लोकादिदृष्टिः। धर्मादि-

---

प्रमेवेति क्रियाविशेषणत्वं यदित्यस्य द्रष्टव्यम् ॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

एकस्योभयदृष्टिविषयत्वमयुक्तम्। नहि घटदृष्टिगोचरः सन्पटदृष्टेरपि गोचरः स्यादिति शङ्कते—नन्विति। एकस्मिन्नपि प्रस्तुतं दृष्टिद्वयमविरुद्धमिति समाधत्ते—न साध्वर्थस्येति। यथा घटादिषु मृदाद्यनुगतं तथा साधुशब्दार्थस्य कारणस्य लोकादिषु कार्येष्वनुगतत्वाद्दृष्टौ साधुदृष्टेरनुगमात्र दृष्टिद्वयस्यैकत्र विरोधोऽस्तीत्यर्थः। तदेव स्फुटयति—साधुशब्देति। साध्वर्थस्य लोकेष्वनुगतिरपि शब्दार्थः। यत्रेति देवदत्तोक्तिः। सा घटादिदृष्टिस्तत्रेति शेषः। ननु साधुशब्दार्थयोर्धर्मब्रह्मणोस्तुल्यं

उपासक के पास श्रुति-स्मृति के अनुकूल सभी सुन्दर धर्म आ जाते हैं; इतना ही नहीं, भोग्यत्वरूप से उसके पास आ बसते हैं ॥ ४ ॥

साधु दृष्टि से विशिष्ट ऐसे कौन से सभी साम हैं, जो उपास्य हैं। वे सब लोक में पाँच प्रकार के हैं। लोकदृष्टि से भी उपास्य हैं और शोभनदृष्टि से भी उपास्य हैं इसमें परस्पर विरोध आता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि लोकादि कार्यों में शोभन अर्थ कारण के अधीन रहता है, जैसे घटादि कार्य मृदादि कारण के आश्रित रहता है। साधुशब्दवाची अर्थ धर्म अथवा ब्रह्म भी है जो पूर्णतः लोकादिकार्यों के अनुगत है। अतः जिस प्रकार जहाँ घटादि दृष्टि है, वह मृत्तिकादि दृष्टि के अनुगत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कार्यत्वाल्लोकादीनाम् । यद्यपि कारणत्वमविशिष्टं ब्रह्मधर्मयोः । धर्म एव साधुशब्दवाच्य इति युक्तं साधुकारी साधुर्भवतीति धर्मविषये साधुशब्दप्रयोगात् । ननु लोकादिकार्येषु कारणस्यानुगतत्वादर्थप्राप्तैव तद्दृष्टिरिति साधु सामेत्युपास्त इति न वक्तव्यम् । न । शास्त्रगम्यत्वात्तद्दृष्टेः । सर्वत्र हि शास्त्रप्रापिता एव धर्मा उपास्या न विद्यमाना अप्यशास्त्रीयाः ।

लोकेषु पृथिव्यादिषु पञ्चविधं पञ्चभक्तिभेदेन पञ्चप्रकारं साधु समस्तं सामोपासीत । कथम् । पृथिवी हिंकारः । लोकेष्विति या सप्तमी तां प्रथमात्वेन विपरिणमय्य पृथिवीदृष्ट्या हिंकारे पृथिवी हिंकार इत्युपासीत । व्यत्यस्य वा सप्तमीश्रुतिं

कारणत्वम् । तथा चात्र साधुशब्दार्थो न व्यवस्थितः स्यादन्याय्यं चानेकार्थत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपीति । धर्म एवेत्यत्र तथाऽपीति वक्तव्यम् । ब्रह्मणि तु परमानन्दे साधुशब्दो भक्त्या गमयितव्यः । न च धर्मस्य निमित्तकारणत्वान्न कार्येऽनुगतिरिति वाच्यम् । कर्मापूर्वसहितदधिपयःप्रभृत्यवयवसमुदायस्य धर्मत्वात्तत्परिणामत्वाच्च कार्यस्य तत्र तदनुगतिसिद्धेरिति द्रष्टव्यम् । अपूर्वत्वाभावेन विधिमाक्षिपति—नन्विति । कारणानुगमस्याऽऽनुमानिकत्वेऽपि तद्दृष्टिकरणमपूर्वमेवेति परिहरति—न शास्त्रगम्यत्वादिति । यश्चार्थादर्थो न स चोदनार्थ इति न्यायेनोक्तं विवृणोति—सर्वत्रेति ।

लोकेष्वित्यादिवाक्ये पञ्चविधसामदृष्ट्या लोकानामुपास्यत्वप्रतीतेर'त्रापि हिंकारदृष्ट्या पृथिव्या ध्येयत्वे प्राप्ते प्रत्याह—लोकेष्वितीति । लोकाः पञ्चविधं सामेत्युपासीतेति विभक्तिविपरिणामेन प्रथमवाक्यार्थपर्यवसानात्तदनुसारेणात्रापि पृथिवीदृष्ट्या हिंकारे ध्येये सति पृथिवी हिंकार इति पृथिवीदृष्टिमारोप्य हिंकारमुपासीतेति द्वितीयवाक्यं पर्यवस्यतीत्यर्थः । लोकसंबद्धा सप्तमीश्रुतिहिंकारादिषु तत्संबद्धा च द्वितीया लोकेषु नेतव्या । तथा च लोकविषया सप्तमी हिंकारादिषु तत्संबद्धा च द्वितीया लोकेषु व्यत्यस्य पृथिव्यादिदृष्टिं हिंकारादिषु कृत्वोपासीतेति पक्षान्तरमाह—व्यत्यस्येति ।

ही है; उसी प्रकार साधुदृष्टि के अधीन ही लोकादि दृष्टि है क्योंकि लोकादि ब्रह्म के कार्य हैं। यद्यपि ब्रह्म और धर्म में कारणत्व का साम्य है। "धर्माचरण करने वाले को धर्म होता है" इत्यादि श्रुति में धर्म के अर्थ में साधुशब्द का प्रयोग होने से धर्म भी साधुशब्दवाची है—यह कहना युक्तिसंगत है। इस पर शङ्का होती है—"साम साधु है, इस प्रकार उपासना करे" ऐसा कहना उपयुक्त नहीं क्योंकि लोकादि कार्यों में कारण के अधीन रहने के कारण वह साधु दृष्टि तो स्वभावतः प्राप्त है, ऐसी शङ्का निराधार है क्योंकि कारणगम्य होने पर भी वह दृष्टि शास्त्रगम्य है। सर्वत्र शास्त्रोक्त धर्म ही उपास्य हैं, गतिकानुगति रूप से विद्यमान किन्तु शास्त्रनिषिद्ध धर्म उपास्य नहीं है।

पृथिवी आदि पञ्चविध लोकों में साम की सम्यक् रूप से उपासना करे। पृथिवी हिंकार है। मन्त्र में "लोकेषु" पद में जो सप्तमी है, वह प्रथमा के रूप में विपरिणमित होकर आई है। तात्पर्य यह है कि पृथिवीदृष्टि से हिंकार ध्येय होने पर पृथिवी हिंकार है, इस प्रकार उपासना करे। अथवा विभक्तिव्यत्यय से लोक की सप्तमी हिंकारादि से संबद्ध द्वितीया विभक्ति समझ लेनी चाहिए।

१. अत्रापीति—पृथिवी हिंकार इति द्वितीयवाक्येऽपीत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथाऽऽवृत्तेषु द्यौर्हिंकार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्ष-मुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम् ॥ २ ॥

अधोलोक में पाँच प्रकार की सामोपासना

इसके बाद अधोमुख लोकों में सामोपासना बतलायी जाती है। द्युलोक हिंकार है, आदित्य प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, अग्नि प्रतिहार है और पृथिवी निधन है ॥२॥

लोकविषयां हिंकारादिषु पृथिव्यादिदृष्टिं कृत्वोपासीत तत्र पृथिवी हिंकारः। प्राथम्य-सामान्यात्। अग्निः प्रस्तावः। अग्नौ हि कर्माणि प्रस्तूयन्ते। प्रस्तावश्च भक्तिः। अन्तरिक्षमुद्गीथः। अन्तरिक्षं हि गगनम्। गकारविशिष्टश्चोद्गीथः। आदित्यः प्रति-हारः। प्रतिप्राण्यभिमुखत्वान्मां प्रति मां प्रतीति। द्यौर्निधनम्। दिवि निधीयन्ते होतो गता इत्यूर्ध्वेषूर्ध्वगतेषु लोकदृष्ट्या सामोपासनम् ॥ १ ॥

अथाऽऽवृत्तेष्ववाङ्मुखेषु पञ्चविधमुच्यते सामोपासनम्। गत्यागतिविशिष्टा हि लोकाः। यथा ते तथादृष्ट्यैव सामोपासनं विधीयते यतोऽत आवृत्तेषु लोकेषु।

ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षादिति न्यायेन पक्षद्वयमुक्त्वा प्रतिवाक्यं व्याचष्टे—तत्रेति। उक्तरीत्याऽन्योपासने प्रस्तुते सतीति यावत्। अध्यायस्य सादृश्यनिबन्धनत्वाद्व्यक्तसादृश्याभावेऽपि यथाकथंचित्कल्पनीयमिति मत्वाऽऽह—प्राथम्येति। लोकेषु पृथिव्याः सामसु च हिंकारस्य प्राथम्यमस्ति तस्मात्सामान्यादिति यावत्। अग्निदृष्ट्या प्रस्तावोपासने प्रस्तावत्वं सामान्यमाह—अग्नौ हीति। अन्तरिक्षदृष्ट्योद्गीथोपासने गकारसंबन्धस दृश्यं दर्शयति—अन्तरिक्षं हीति। आदित्यदृष्ट्या प्रतिहारोपास्तौ प्रतिशब्दसामान्यं हेतुमाह—प्रतिप्राणीति। द्युदृष्ट्या निधनोपासने निधनत्वसामान्यमाह—दिवीति। उक्तमुपासनमुप-संहरति—इत्यूर्ध्वेष्विति ॥१॥

अथाऽऽवृत्तेष्विति वाक्यं व्याकरोति—अथेति। पृथिवीमुख्येषु द्युपर्यन्तेषु पञ्चविधसामोपासन-कथनानन्तर्यमथशब्दार्थः। पूर्वोत्तरग्रन्थयोर्मिथो विरोधं शङ्कित्वा परिहरति—गत्यागतीति। यथा वा ते गतिविशिष्टास्तथादृष्ट्यैव हिंकाराद्युपासनं विहितम्। यथा चाऽऽगतिविशिष्टास्ते तथादृष्ट्यैव तदुपासनं विधीयते। तथा च शास्त्रानुसारेण क्रियमाणयोरुपासनयोर्न विरोधोऽस्तीत्यर्थः। द्विधोपास्ति-विषयसंदर्भयोर्विरोधाभावमनूद्य फलितमुपासनं दर्शयति—यत इति। द्युलोकदृष्ट्या हिंकारस्योपास्यत्वे

अर्थात् हिंकारादिकों में पृथिव्यादि-बुद्धि से उपासना करे। दोनों पक्षों में ही पृथिवी हिंकार है क्योंकि लोकों में पृथिवी एवं साम में हिंकार की प्राथमिकता है। अग्नि प्रस्ताव है क्योंकि अग्नि में कर्म प्रस्तुत किये जाते हैं। प्रस्ताव ही भक्ति है। अन्तरिक्ष उद्गीथ है। अन्तरिक्ष और गगन की सदृशता है। उद्गीथ गकारविशिष्ट है। आदित्य प्रतिहार है। आदित्य दृष्टि से प्रतिहार उपासना में हेतु यह है कि प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि आदित्य मेरे सम्मुख है। द्युलोक की दृष्टि से निधन की उपासना करे क्योंकि यहाँ से चले जाने पर द्युलोक में प्रतिष्ठित होते हैं। इस प्रकार ऊर्ध्व लोकों में

१. ब्र. सू. ४-१-५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

जो इस उपासना को इस प्रकार जानता है वह जानने वाला पुरुष लोकों में पञ्चविध समस्त साम की उपासना करता है उसके प्रति ऊर्ध्व मुख और अधोमुख लोक भोग्य रूप से उपस्थित होते हैं ॥३॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

द्यौर्हिंकारः प्राथम्यात् । आदित्यः प्रस्तावः । उदिते ह्यादित्ये प्रस्तूयन्ते कर्माणि प्राणिनाम् । अन्तरिक्षमुद्गीथः पूर्ववत् । अग्निः प्रतिहारः । प्राणिभिः प्रतिहरणादग्नेः । पृथिवी निधनम् । तत आगतानामिह निधनात् ॥ २ ॥

उपासनफलं—कल्पन्ते समर्था भवन्ति हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चाऽऽवृत्ताश्च गत्यागतिविशिष्टा भोग्यत्वेन व्यवतिष्ठन्त इत्यर्थः । य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं समस्तं साधु सामेत्युपास्त इति सर्वत्र योजना पञ्चविधे सप्तविधे च ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

हेतुमाह—प्राथम्यादिति । आवृत्तौ द्युलोकस्याऽऽरम्भे च हिंकारस्य प्राथम्यं द्रष्टव्यम् । आदित्यदृष्ट्या प्रस्तावस्योपास्यत्वे हेतुमाह—उदित इति । पूर्ववदिति गकाराक्षरसामान्यं विवक्षितम् । अग्निदृष्ट्या प्रतिहारोपास्तौ हेतुमाह—प्राणिभिरिति । प्रतिहरणमितस्ततो नयनम् ॥२॥

साध्वितिपदं सर्वत्र द्रष्टव्यमित्याह—इति सर्वत्रेति । सर्वत्रेत्यस्य व्याख्या—पञ्चविध इत्यादि ॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

लोकदृष्टि से साम उपासना बतलाई गई ॥ १ ॥

पृथिवी से द्युलोकपर्यन्त पञ्चविध सामोपासना बतलाने पर अब नीचे को मुख किए लोकों में पञ्चविध सामोपासना का प्रकरण आरम्भ किया जाता है। जिस गति और आगति से विशिष्ट वे लोक हैं, उसी दृष्टि से हिंकारादि की उपासना का विधान है। इसलिए अब अधोमुखी लोकों की उपासना में द्युलोक हिंकार है क्योंकि अधोमुखी लोकों में द्युलोक एवं आरम्भ में हिंकार का प्राथम्य है। आदित्य दृष्टि से प्रस्ताव की उपासना करे क्योंकि आदित्य के उदित होने पर उसे प्राणियों के कर्म प्रस्तुत किए जाते हैं। अन्तरिक्षदृष्टि से उद्गीथ की उपासना करे, ऐसा पूर्वभाष्य की तरह है। अग्निदृष्टि से प्रतिहार उपासना करे क्योंकि प्राणी अग्नि को इधर-उधर ले जाते हैं। पृथिवीदृष्टि से निधन की उपासना करे क्योंकि पृथिवी में आए हुए मृत्यु को अवश्य प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

लोकों में समस्त पाञ्चभक्तिक एवं साप्तभक्तिक साम साधु है। जो विद्वान् उपासक इस प्रकार उपासना करता है, उसके लिए गति और आगतियुक्त ऊर्ध्वमुख लोक एवं अधोमुख लोक भोग्यत्व रूप से प्रतिष्ठित हो जाते हैं ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपासीत पुरोवातो हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः ॥ १ ॥

उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य

वृष्टि में पाँच प्रकार की उपासना

वृष्टि में पाँच प्रकार की साम की उपासना करे। पूर्व वायु हिंकार है और जो मेघ उत्प होता है वही प्रस्ताव है। मेघ बरसता है यही श्रेष्ठता के कारण उद्गीथ है, बिजली कड़कती है प्रतिहार है ॥ १ ॥

बादल जल ग्रहण करता है यह निधन है, जो इस प्रकार जानने वाला पुरुष वृष्टि में प

वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीत । लोकस्थितेर्वृष्टिनिमित्तत्वादानन्तर्यम् । पुरोवा हिंकार। पुरोवाताद्युद्ग्रहणान्ता हि वृष्टिः । यथा साम हिंकारादिनिधनान्तम् अतः पुरोवातो हिंकारः । प्राथम्यात् । मेघो जायते स प्रस्तावः । प्रावृषि मेघजनने वृ प्रस्ताव इति हि प्रसिद्धिः । वर्षति स उद्गीथः श्रैष्ठ्यात् । विद्योतते स्तनयति स प्रति हारः । प्रतिहृतत्वात् ॥१॥

उद्गृह्णाति तन्निधनम् । समाप्तिसामान्यात् । फलमुपासनस्य—वर्षति हास

ननु लोकदृष्ट्या सामोपास्त्यनन्तरं किमिति वृष्टिदृष्ट्या तदुपास्तिरुपन्यस्यते तत्राऽऽह लोकस्थितेरिति । पुरोवातदृष्ट्या हिंकारोपासने हेतुमाह—पुरोवातादीति । उद्ग्रहणं वर्षोपसंहरण अतःशब्दार्थमाह—प्राथम्यादिति । मेघजन्मदृष्ट्या प्रस्तावोपास्तौ हेतुमाह—प्रावृषीति । वर्षणदृष्ट द्गीथोपासने हेतुमाह—श्रैष्ठ्यादिति । विद्योतनस्तनयित्नुदृष्ट्या प्रतिहारोपासने कारणमाह—प्रतिहृ त्वादिति । विद्युतां स्तनयित्नूनां च प्रतिहृतत्वं विप्रकीर्णत्वं तेन प्रतिशब्दसादृश्याद्विद्योतनादिदृष्ट कर्तव्या प्रतिहारोपास्तिरित्यर्थः ॥१॥

उद्ग्रहणदृष्ट्या निधनोपासने निदानमाह—समाप्तीति । वर्षति पर्जन्ये तदनुमन्तृत्वमर्कि

वृष्टि में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे। लोकदृष्टि से सामोपासना निरूपण के अ न्तर वृष्टि-बुद्धि से उपासना का प्रकरण इस कारण से है क्योंकि लोकस्थिति वृष्टि के कारण ही पुरोवात दृष्टि से हिंकार की उपासना करनी चाहिए क्योंकि पुरोवात से शुरु होकर जल का ग्र करने पर्यन्त ही वृष्टि है, जिस प्रकार हिंकार से निधन पर्यन्त साम है, इसलिए प्राथमिकता होने पुरोवात हिंकार है। जो मेघ उत्पन्न होता है, वही प्रस्ताव है। वर्षाकाल में मेघ उत्पत्ति के वृष्टि का प्रस्ताव होता है—ऐसी प्रसिद्धि है। श्रेष्ठ होने के कारण वर्षणदृष्टि से उद्गीथ की उपास करनी चाहिए। बिजली का चमकना और कड़कना प्रतिहार है क्योंकि वो फैली हुई रहती है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिंकारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम् ॥ १ ॥

प्रकार के साम की उपासना करता है, उसके लिये वर्षा होती है और वह स्वयं भी वर्षा करा लेता है ॥ २ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

जलों में पाँच प्रकार की सामोपासना

सब प्रकार के जलों में पञ्चविध साम की उपासना करे। मेघ जो घनीभूत होता है वह हिंकार है, वह जो बरसता है, वह प्रस्ताव कहा गया है। जो नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं वह उद्गीथ है और जो पश्चिम की ओर बहती हैं वह प्रतिहार है तथा समुद्र इसका निधन है, (क्योंकि उसी में इसका विलय होता है) ॥ १ ॥

इच्छातः। तथा वर्षयति ह्यसत्यामपि वृष्टौ। य एतदित्यादि पूर्ववत् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

सर्वास्वप्सु पञ्चविधं सामोपासीत। वृष्टिपूर्वकत्वात्सर्वासामपामानन्तर्यम्। मेघो यत्संप्लवत एकीभावेनेतरेतरं घनी भवति मेघो यदोन्नतस्तदा संप्लवत इत्युच्यते तदा-

---

त्करमित्याशङ्कयाऽऽह—असत्यामपीति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

किमिति वृष्टिदृष्टेरनन्तरमपां दृष्टिः साम्नि क्षिप्यते तत्राऽऽह—वृष्टिपूर्वकत्वादिति। मेघसंप्लव-दृष्टया हिंकारमारम्भसामान्यादुपासीतेत्याह—मेघ इति। वर्षदृष्टया प्रस्तावस्योपास्यत्वे हेतुमाह—

समाप्ति दोनों में सादृश्य होने के कारण बादल जल ग्रहण करता है, यह निधन है। इस प्रकार जो विद्वान् उपासक वृष्टि में पाँच प्रकार के साम की उपासना करता है, उसके इच्छानुकूल वर्षा होती है और वर्षाकाल न होने पर वह स्वयं भी वर्षा करा लेता है॥ २ ॥

सब प्रकार के जलों में साम की पाँच प्रकार से उपासना करे। सभी जल वृष्टि के कारण संभव होने से इस प्रकरण को बाद में लिया गया है। एक दूसरे से मिलकर उन्नत घनीभूत मेघ ही जल होने में कारण है, अतः मेघ संप्लव दृष्टि से हिंकार की उपासना करे। यह जो बरसता है, वह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

ऋतुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीत वसन्तो हिंकारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम् ॥ १ ॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष सभी जलों में पञ्चविध साम की उपासना करता (वह इच्छा न करने पर) जल में नहीं मरता और जल से सम्पन्न हो जाता है ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

ऋतुओं में पञ्चविध साम की उपासना

ऋतुओं में पांच प्रकार के साम की उपासना करे। वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव (क्योंकि वर्षा के लिये अन्न संग्रह का प्रस्ताव किया जाता है) प्रधानता के कारण वर्षा उद्गीथ शरत् प्रतिहार है और हेमन्त ऋतु निधन है ॥ १ ॥

ऽपामारम्भः स हिंकारः । यद्वर्षति स प्रस्तावः । आपः सर्वतो व्याप्तुं प्रस्तुताः । याः प्रा स्यन्दन्ते स उद्गीथः । श्रैष्ठ्यात् । याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः प्रतिशब्दसामान्यात् । स निधनम् । तन्निधनत्वादपाम् ॥१॥

न हाप्सु प्रैति । नेच्छति चेत् । अप्सुमानम्भाग्भवति फलम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

ऋतुषु पञ्चविधं सामोपासीत । ऋतुव्यवस्थाया [1]यथोक्तान्निमित्तत्वादानन्तर्य

आप इति । प्राच्यो नद्यो गङ्गाद्याः । प्रतीच्यस्तु नर्मदाद्या इति भेदः ॥१॥

तर्हि गङ्गादावपेक्षितमपि मरणं न स्यादिति चेत्तत्राऽऽह—नेच्छति चेदिति । असावुपा मरुस्थलीष्वपि यथेच्छमुदकवान्भवतीत्यर्थः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

किमिति सलिलदृष्ट्यनन्तरमृतुदृष्टिः साम्न्यारोप्यते तत्राऽऽह—ऋतुव्यवस्थाया इति ।

प्रस्ताव है क्योंकि जल सब ओर व्याप्त होकर प्रस्तुत होते हैं। श्रेष्ठ होने से जो गंगादि नदियाँ की ओर बहती हैं, वह उद्गीथ है एवं जो नर्मदादि पश्चिम की ओर बहती हैं, वह प्रतिहार है क्यो इनमें प्रति शब्द का सादृश्य है। समुद्र इसका निधन है क्योंकि उसीमें सभी जलों का विलय

---

१. यथोक्ता आपो निमित्तं यस्यास्तत्त्वादित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

जो इसे इस प्रकार जानकर ऋतुओं में पञ्चविध साम की उपासना करता है उसे ऋतुएँ अपने अनुरूप भोग देती हैं और वह ऋतु संबन्धी भोगों से सम्पन्न हो जाता है ॥ २ ॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

वसन्तो हिंकारः । प्राथम्यात् । ग्रीष्मः प्रस्तावः । यवादिसंग्रहः प्रस्तूयते हि प्रावृडर्थम् । वर्षा उद्गीथः । प्राधान्यात् । शरत्प्रतिहारः । रोगिणां मृतानां च प्रतिहरणात् । हेमन्तो निधनम् । निवाते निधनात्प्राणिनाम् ॥१॥

फलं—कल्पन्ते ह ऋतुव्यवस्थानुरूपं भोग्यत्वेनास्मा उपासकायर्तवः । ऋतुमानार्तवैर्भोगैश्च संपन्नो भवतीत्यर्थः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

ऋतुव्यवस्थानुरूपं तत्र क्रियाविशेषणम् । कस्यचिदनुपासितुरपि क्रमेण तत्तदृतुफलभोगभागितोपपत्तेर्नेदमुपासनानुरूपं फलमित्याशङ्क्याऽऽह—ऋतुमानिति । संपन्नः सर्वदा स्वेच्छावशादिति शेषः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

जाता है ॥ १ ॥

उपरोक्त प्रकार से जानने वाला, यदि वह मोक्षाभिलाषी हो, गङ्गादि नदियों में मरण की इच्छा न करे तो वह कभी भी जल में नहीं मरता । रेगिस्तान में भी उसे इच्छानुसार जल की प्राप्ति हो जाती है ॥ २ ॥

ऋतुओं में पाँच प्रकार के साम की उपासना करे । सलिल दृष्टि के अनन्तर ऋतुदृष्टि का वर्णन इसलिए है क्योंकि ऋतुओं की व्यवस्था जल के ही कारण होती है । वसन्त एवं हिंकार के प्रथम आने से वसन्त दृष्टि से हिंकार की उपासना करनी चाहिए । ग्रीष्मदृष्टि से प्रस्ताव की उपासना करनी चाहिए क्योंकि इस ऋतु में वर्षा ऋतु के लिए यवादि अन्न संग्रह कर लिया जाता है । वर्षादृष्टि से उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए क्योंकि दोनों की प्रधानता है । शीतऋतु ही प्रतिहार है क्योंकि रोगियों और मृतकों को इधर-उधर ले जाती है । हेमन्त ही निधन है क्योंकि वातरहितता प्राणियों के निधन में हेतु है ॥ १ ॥

ऋतुबुद्धि से सामोपासना का फल यह है कि उस उपासक को ऋतुक्रम के अनुरूप भोग्य पदार्थ प्राप्त होते हैं, उसे स्वेच्छा से सदा ही ऋतुसंबंधी भोग प्राप्त होते रहते हैं ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपासीताजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम् ॥ १ ॥

भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳ सामोपास्ते ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

पशुओं में पञ्चविध साम की उपासना

पशुओं में पांच प्रकार के साम की उपासना करे। बकरे हिंकार हैं, बकरे के सहचर होने से भेड़ें प्रस्ताव हैं और सर्वश्रेष्ठ गौवें उद्गीथ हैं, (वहन करने के कारण) अश्व प्रतिहार हैं और (आश्रय होने से) पुरुष निधन है ॥ १ ॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष पशुओं में पञ्चविध साम की उपासना करता है, उसे पशु प्राप्त होता है और वह पशुप्राप्ति जन्य फल भोग एवं दानादि से युक्त हो जाता है ॥ २ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

पशुषु पञ्चविधं सामोपासीत। सम्यग्वृत्तेष्वृतुषु पशव्यः काल इत्यानन्तर्यम्। अजा हिंकारः। प्राधान्यात्प्राथम्याद्वा। अजः पशूनां प्रथम इति श्रुतेः। अवयः प्रस्तावः। साहचर्यदर्शनादजावीनाम्। गाव उद्गीथः। श्रैष्ठ्यात्। अश्वाः प्रतिहारः। प्रतिहरणात्पुरुषाणाम्। पुरुषो निधनम्। पुरुषाश्रयत्वात्पशूनाम् ॥१॥

ऋतुदृष्ट्यनन्तरं साम्नि पशुदृष्ट्यारोपकारणमाह—सम्यगिति। अजादृष्ट्या हिंकारोपासने हेतुद्वयमाह—प्राधान्यादित्यादिना। अजाया यज्ञसंबन्धात्प्राधान्यम्। प्राथम्यं तु प्रथमपाठादिति द्रष्टव्यम्। ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या मुखतो ह्यसृज्यन्तेति श्रुतिमजाप्राधान्ये प्रमाणयति—अज इति। तस्माज्जाता अजावय इति श्रुतेरजानामवीनां च साहचर्यं हिंकारप्रस्तावयोः साहचर्यं प्रसिद्धम् ॥१॥

पशुओं में पांच प्रकार से साम की उपासना करे। ऋतुदृष्टि के पश्चात् साम में पशुदृष्टि आरोप में हेतु यह है कि सम्यक् आचरित ऋतुओं में ही पशुसंबधी काल होता है। बकरियों की यज्ञ संबन्धी प्रधानता एवं प्राथमिकता होने से वे हिंकार हैं। श्रुति भी है—"अज पशुओं में सर्वप्रथम हुए", भेड़ें प्रस्ताव हैं क्योंकि बकरियों के साथ भेड़ों का भी "तस्माज्जाता अजावयः" इस श्रुति में निर्देश मिलता है। गौएँ श्रेष्ठ होने के कारण उद्गीथ हैं। मनुष्यों के द्वारा इधर-उधर ले जाए जाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि ॥ १ ॥

प्राणों में पञ्चविध साम की उपासना

प्राणों में पाँच प्रकार के परोवरीय (उत्तरोत्तर श्रेष्ठ गुणवान् प्राण दृष्टि से विशिष्ट) साम की उपासना करे। उनमें घ्राणेन्द्रिय हिंकार है, वाणी प्रस्ताव है, (क्योंकि वाणी से सबका प्रस्ताव किया जाता है और वाणी प्राण से श्रेष्ठ है) चक्षु उद्गीथ है, (वाणी से भी अधिक विषय के प्रकाशक होने से चक्षु वाणी से श्रेष्ठ है) श्रोत्र प्रतिहार है, (क्योंकि सभी ओर से शब्द श्रवण होने के कारण नेत्र की अपेक्षा श्रवण उत्कृष्ट है) मन निधन है, (क्योंकि इन्द्रियों द्वारा उपस्थित विषय मन में रखे जाते हैं)। ये उपासनाएँ निश्चय ही उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर हैं ॥ १ ॥

फलं—भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति । पशुफलैश्च भोगत्यागादिभिर्युज्यत इत्यर्थः ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत। परंपरं वरीयस्त्वगुणवत्प्राणदृष्टि-विशिष्टं सामोपासीतेत्यर्थः। प्राणो घ्राणं हिंकारः। उत्तरोत्तरवरीयसां प्राथम्यात्। वाक्प्रस्तावः। वाचा हि प्रस्तूयते सर्वम्। वाग्वरीयसी प्राणात्। अप्राप्तमप्युच्यते वाचा

पशुमान्भवतीत्यस्य पूर्वेण पौनरुक्त्यं परिहरति—पशुफलैश्चेति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

पशुप्रसूतपयोघृतादिनिमित्तत्वात्प्राणस्थितेस्तद्दृष्ट्यनन्तरं प्राणदृष्ट्या सामोपास्तिं प्रस्तौति—प्राणेष्विति । प्राणशब्दस्य मुख्यप्राणविषयत्वं व्यावर्तयति—घ्राणमिति । मुख्यप्राणादुत्तरेषां वरीयस्त्वासंभवात्तस्य सर्वश्रेष्ठताया निर्धारितत्वात्परंपरं वरीयसां वागादीनां मध्ये प्रथमभावित्वेनो-क्तत्वाद्घ्राणमेवात्र प्राणशब्दमित्यर्थः। कथं प्राणाद्वाचो वरीयस्त्वं तत्राऽऽह—वाचेति । अप्राप्तत्वं

कारण अश्वदृष्टि से प्रतिहार की उपासना करे। पशुओं के पुरुषाश्रित होने से पुरुष निधन है ॥ १ ॥

पशुओं में पञ्चविध सामोपासना का फल यह है, उसे पशुधन की प्राप्ति होती है एवं पशुफल जनित भोग-त्यागादि से युक्त होता है ॥ २ ॥

प्राणों में पाँच प्रकार के उत्तरोत्तर श्रेष्ठ गुणयुक्त प्राणदृष्टि विशिष्ट साम की उपासना करे। यहाँ घ्राणेन्द्रिय के लिए प्रयुक्त प्राण हिंकार है क्योंकि वह उत्तरोत्तर श्रेष्ठ वागादिकों के मध्य प्रथम स्थान रखता है। वाक् प्रस्ताव है क्योंकि वाणी से ही सब कुछ प्रस्तुत किया जाता है। वाक् प्राणों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामो-पास्त इति तु पञ्चविधस्य ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

जो पुरुष इस प्राण दृष्टि से विशिष्ट परोवरीय साम को जानने वाला प्राणों में पाँच प्र[कार] के उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर साम की उपासना करता है उसका जीवन निश्चय ही उत्तरोत्तर उत्कृष्[ट] होता जाता है और वह परोवरीय लोकों को जीत लेता है। यह पाँच प्रकार की सामोपासना[का] निरूपण किया गया ॥ २ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

प्राप्तस्यैव तु गन्धस्य ग्राहकः प्राणः। चक्षुरुद्गीथः। वाचो बहुतरविषयं प्रकाशय[ति] चक्षुरतो वरीयो वाच उद्गीथः। श्रैष्ठ्यात्। श्रोत्रं प्रतिहारः। प्रतिहृतत्वात्। वरी[यश्] चक्षुषः सर्वतः श्रवणात्। मनो निधनम्। मनसि हि निधीयन्ते पुरुषस्य भोग्यत्[वे]न सर्वेन्द्रियाहृता विषयाः। वरीयस्त्वं च श्रोत्रान्मनसः। सर्वेन्द्रियविषयव्यापकत्वात् अतीन्द्रियविषयोऽपि मनसो गोचर एवेति। यथोक्तहेतुभ्यः परोवरीयांसि प्राणादीनि[॥] एतानि ॥ १ ॥

एतद्दृष्ट्या विशिष्टं यः परोवरीयः सामोपास्ते परोवरीयो हास्य जीव[नं]

व्यवहितत्वम्। चक्षुषो वरीयस्त्वं साधयति—वाच इति। शब्दस्येति यावत्। वाचः शब्दात्सकाश[ा]दित्यर्थः। उद्गीथत्वे चक्षुषो हेतुमाह—श्रैष्ठ्यादिति। मनसो वरीयस्त्वे हेत्वन्तरमाह—अतीन्द्रियेति[।] इति वरीयस्त्वमिति पूर्वेण संबन्धः। अप्राप्तमप्युच्यते वाचेत्यादयो यथोक्तहेतवः ॥१॥

महान् है। व्यवधान होने पर भी कहा जाता है कि वाक् द्वारा प्राप्त गन्ध का ग्राहक प्राण है। च[क्षु] उद्गीथ है। क्योंकि वाणी के अधिकांश विषय चक्षु प्रकाशित करती है, इसलिए शब्द से उद्गीथ श्रे[ष्ठ] है। श्रेष्ठ होने से ही चक्षु उद्गीथ है। श्रोत्र दृष्टि से प्रतिहार की उपासना करनी चाहिए क्योंकि वह इधर-उधर चला जाता है। सब ओर से सुन लेने के कारण चक्षु से श्रेष्ठ है। मन की निधन[से] समानता है क्योंकि पुरुष द्वारा भोग्य-बुद्धि से सभी इन्द्रियों द्वारा संकल्पित विषय मन में ही रहते हैं। मन की श्रोत्र से वरीयता सिद्ध हो जाती है क्योंकि सब इन्द्रियों के विषय मन में व्याप्त रहते हैं। इतना ही नहीं; इन्द्रियातीत विषय भी मन से अनुभव किए जाते हैं। उपरोक्त हेतुओं द्वारा ही प्राणादि श्रेष्ठ कहे जाते हैं ॥ १ ॥

जो भी विद्वान् उपासक इस प्राण दृष्टि से विशिष्ट उत्तरोत्तर श्रेष्ठ साम की उपास[ना] करता है, उसका जीवन उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता जाता है। इसीलिए वक्ष्यमाण साप्तभक्तिक विषय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधꣳ सामोपासीत यत्किंच वाचो हुमिति स हिंकारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः ॥ १ ॥

वाणी में सप्तविध साम उपासना

इसके बाद सप्तविध साम की उपासना आरम्भ की जाती है। वाक् दृष्टि से विशिष्ट सात प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिये। वाणी में जो कुछ "हुम्" ऐसा स्वरूप है, वह हिंकार है, (क्योंकि हुम् और हिंकार में हकार की समानता है) जो कुछ "प्र" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह प्रस्ताव है, (क्योंकि उन दोनों में "प्र" शब्द की समानता है) तथा जो कुछ "आ" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह आकार में समता के कारण आदि (ओंकार) है ॥ १ ॥

भवतीत्युक्तार्थमिति तु पञ्चविधस्य साम्न उपासनमुक्तमिति सप्तविधे वक्ष्यमाणविषये बुद्धिसमाधानार्थम्। निरपेक्षो हि पञ्चविधे वक्ष्यमाणे बुद्धि समाधित्सति ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अथानन्तरं सप्तविधस्य समस्तस्य साम्न उपासनं साध्विदमारभ्यते। वाचीति सप्तमी पूर्ववत्। वाग्दृष्टिविशिष्टं सप्तविधं सामोपासीतेत्यर्थः। यत्किंच वाचः शब्दस्य हुमिति यो विशेषः स हिंकारो हकारसामान्यात्। यत्प्रेति शब्दरूपं स प्रस्तावः

उक्तोपसंहारविरहेऽपि वक्ष्यमाणे बुद्धिसमाधानं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—निरपेक्षो हीति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

अधिकसंख्याज्ञानस्याल्पसंख्याज्ञानपूर्वकत्वात्पञ्चविधोपासनानन्तरं सप्तविधोपासनं प्रस्तौति—अथेति। पूर्ववल्लोकेष्विवतिवत्सप्तमी च नेतव्येत्यर्थः। वाक्शब्देन शब्दसामान्यमुच्यते तत्सप्तधाप्रविभक्तसामावयवेष्वारोप्योपासनं कर्तव्यमिति वाक्यार्थमाह—वाग्दृष्टीति। यत्किंच वाच इति वाक्योपादानं तस्यार्थमाह—शब्दस्येति ॥१॥

बुद्धि समाधान करने के लिए पञ्चविध साम की उपासना कही गयी। आगे कही जाने वाली पाञ्चभक्तिक साम में निरपेक्ष बुद्धि समाधान (श्रुति) करेगी ॥ २ ॥

इसके पश्चात् सप्तविध समस्त साम की उपासना सम्यक् रूप से वर्णन की जाती है। जैसे पूर्वमन्त्रों में 'लोकेषु' में सप्तमी विभक्ति थी, उसी प्रकार 'वाचि' में सप्तमी है। वाग् दृष्टि से विशिष्ट सामावयवों में सप्तधा प्रविभक्त आरोप करके उपासना करे। जो कुछ भी शब्द का 'हुम्' इस प्रकार स्वरूप है, हकार की समानता होने से वह हिंकार है। जो 'प्र' यह शब्दस्वरूप है, वह प्रस्ताव है क्योंकि 'प्र' की दोनों में समानता है। एवं जो कुछ 'आ' ऐसा शब्दस्वरूप है वह आदि है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो यन्नीति तन्निधनम् ॥ २ ॥

दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ सामोपास्ते ॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

जो कुछ "उत्" ऐसा शब्द है. वह उद्गीथ है, जो कुछ "प्रति" ऐसा शब्द है, वह प्रतिहार है, जो कुछ "उप" ऐसा शब्द है, वह उपद्रव है और जो कुछ 'नि" ऐसा शब्द स्वरूप है, वह निधन (इन सबकी समानता स्पष्ट है) ॥ २ ॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष वाणी में सप्तविध साम की उपासना करता है तो कुछ वाणी का सार है, उसे वाणी उस उपासक को दे देतो है तथा वह प्रचुर अन्न से सम्पन्न और का भोक्ता हो जाता है ॥ ३ ॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

प्रसामान्यात् । यत्—आ, इति स आदिः । आकारसामान्यात् । आदिरित्योंकार सर्वादित्वात् ॥ १ ॥

यदुदिति स उद्गीथः । उत्पूर्वत्वादुद्गीथस्य । यत्प्रतीति स प्रतिहारः । प्रति सामान्यात् । यदुपेति स उपद्रव उपोपक्रमत्वादुपद्रवस्य । यन्नीति तन्निधनम् । निध सामान्यात् ॥ २ ॥

दुग्धेऽस्मा इत्याद्युक्तार्थम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

॥ २ ॥
॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

क्योंकि दोनों में आकार की समानता है। सबसे आरम्भ में होने के कारण आदि ही ॐकार है ॥

जो 'उत्' है वही उद्गीथ है क्योंकि उद्गीथ उत्पूर्वक है। 'प्रति' की समानता होने से जो है, वह प्रतिहार है। जो 'उप' है, वह उपद्रव है क्योंकि उपद्रव भी पहले थोड़े से प्रारम्भ होता 'नि' शब्द दोनों में समान होने से जो 'नि' है, वही निधन है ॥ २ ॥

यथोक्त उपासना का फल है जो कुछ भी वाणी का सारभूत है, वाणी उसे दे दे इत्यादि ॥ ३॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः)

अथ खल्वमुमादित्यꣳ सप्तविधꣳ सामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम ॥ १ ॥

आदित्य दृष्टि से सप्तविध साम की उपासना

इसके बाद अब निश्चय ही आदित्य दृष्टि से विशिष्ट इस सात प्रकार के साम की उपासना करनी चाहिए। (वृद्धि और क्षय से रहित होने के कारण) आदित्य सर्वदा सम है इसी कारण से यह साम है। मेरे प्रति इस प्रकार वह सब में समान बुद्धि उत्पन्न करता है, (क्योंकि सभी प्राणी उसे सन्मुख देखते हैं) अतः इसी समता के कारण वह साम है ।१॥

अवयवमात्रे साम्न्यादित्यदृष्टिः पञ्चविधेषूक्ता प्रथमे चाध्याये। अथेदानीं खल्वमुमादित्यं समस्ते साम्न्यवयवविभागशोऽध्यस्य सप्तविधं सामोपासीत। कथं पुनः सामत्वमादित्यस्येति। उच्यते। उद्गीथत्वे हेतुवदादित्यस्य सामत्वे हेतुः। कोऽसौ, सर्वदा समो वृद्धिक्षयाभावात्तेन हेतुना सामाऽऽदित्यो मां प्रति मां प्रतीति तुल्यां बुद्धिमुत्पादयति। अतः सर्वेण समोऽतः साम समत्वादित्यर्थः। उद्गीथभक्तिसामान्यवचनादेव लोकादिषू-

---

वाग्दृष्टेरन्तरमादित्यदृष्टिर्विधीयते। तस्य [1]वाङ्मयत्वात्। न च तद्विधानं युक्तम्। पूर्वमप्यादित्यदृष्टिविशिष्टोपासनस्योपदिष्टत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—अवयवमात्र इति। तस्य सामत्वे हेतुं पृच्छति—कथमिति। सर्वदेत्यादिवाक्यमुत्तरत्वेनाऽऽदत्ते—उच्यत इति। उच्चैः सन्तमादित्यं गायन्तीत्यादित्यस्योद्गीथत्वे हेतुः श्रुत्योक्तः। तथा सामत्वेऽपि तस्य हेतुरुच्यत इत्यर्थः। तमेव प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कोऽसाविति। नोदेता नास्तमेतेत्यादिदर्शनादित्यर्थः। मां प्रतीत्यादि व्याचष्टे—मां प्रतीति। अन्यशब्दस्यान्यत्र वृत्तिर्नान्तरेण किंचिन्निमित्तमित्यादित्यस्य सामत्वे हेतुरुच्यते चेत्तर्हीदानीं हिंकारादित्वेऽपि कुतो निमित्तं श्रुत्या नोक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—उद्गीथेति। आदित्यस्योद्गीथेन सहोर्ध्वत्वं सामान्यं श्रुत्योक्तं तदनुसारेणास्मदुक्तप्राथम्यादि[2]सामान्यं यथा पृथिव्यादिषु हिंकारादित्वं

प्रथम अध्याय में सामावयवों में पञ्चविध आदित्यदृष्टि का विधान किया गया। अब समस्त सामावयव में विभागपूर्वक आदित्य बुद्धि का अध्यास करके सप्तविध साम की उपासना करे। आदित्य के साम होने में क्या हेतु है; इस पर कहा जाता है। जिस प्रकार उद्गीथ में हेतु है; उसी प्रकार आदित्य के साम होने में हेतु है क्योंकि सर्वदा वृद्धिक्षय से रहित सम होने से साम आदित्य है। तभी सभी लोग समझते हैं कि सूर्य मुझे देख रहा है, मुझे देख रहा है। अतः सबके द्वारा एक-सा देखे जाने के कारण साम का सामत्व प्रसिद्ध हुआ। उद्गीथ भक्ति की समानतावाची श्रुति से लोकादिकों में

---

१. वाङ्मयत्वादिति—वाचोऽग्निरिति श्रुतेः। श्रुतौ चाग्निस्तेजस्तन्मयश्चासावादित्य इति। वेदराशिप्रचुरत्वं वा तस्य तत्त्वम्। २. सामान्यमिति—अत्र सामान्यादिति युक्तम्। तेनेति वा शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिंकारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति हिंकारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ २ ॥

उस आदित्य में ये सभी भूत अनुगत हैं, ऐसा जानो। उस आदित्य के उदय से पूर्ववर्ती जो धर्मरूप है वह हिंकार है, सूर्य के उसी हिंकार रूप में पशु अनुगत है, इसीलिए वे पशु सूर्योदय से पूर्व हिंकार शब्द करते हैं। अतः वे पशु इस आदित्य नामक साम के (सेवन में तत्पर हुए) हिंकार पात्र हैं ॥ २ ॥

क्तसामान्याद्धिंकारादित्वं गम्यत इति हिंकारादित्वे कारणं नोक्तम्। सामत्वे पुनः सवि... रनुक्तं कारणं न सुबोधमिति समत्वमुक्तम् ॥ १ ॥

तस्मिन्नादित्येऽवयवविभागश इमानि वक्ष्यमाणानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तान्य... नुगतान्यादित्यमुपजीव्यत्वेनेति विद्यात्। कथं, तस्याऽऽदित्यस्य यत्पुरोदयाद्धर्मरूपं ... हिंकारो भक्तिस्तत्रेदं सामान्यं यत्तस्य हिंकारभक्तिरूपं तदस्याऽऽदित्यस्य साम्नः पशवो गवादयोऽन्वायत्ता अनुगतास्तद्भक्तिरूपमुपजीवन्तीत्यर्थः। यस्मादेवं तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति पशवः प्रागुदयात्। तस्माद्धिंकारभाजिनो ह्येतस्याऽऽदित्याख्यस्य साम्नस्तद्भक्तिभजन... शीलत्वाद्धि त एवं वर्तन्ते ॥ २ ॥

गम्यते तथाऽऽदित्यप्रभेदानामपि हिंकारादित्वं शक्यावगममिति श्रुत्या तेषां तद्भावे नोक्तं कारण... मित्यर्थः। तर्हि सामत्वेऽपि कारणोत्प्रेक्षासंभवान्न वक्तव्यं कारणमित्याशङ्क्याऽऽह—सामत्वे पुनरिति... समत्वं तत्र निमित्तमिति यावत् ॥१॥

समः सर्वेणेत्युक्तं व्यक्ती करोति—तस्मिन्निति। वेदनप्रकारं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्या... दिना। धर्मरूपं सुखकरत्वात्। धर्मकार्यात्मकं रूपमिति यावत्। तद्दृष्ट्या हिंकारोपासने प्राथम्य... हेतुः। पशवो यथोक्तमादित्यरूपमुपजीवन्तीत्यत्र किं प्रमाणं तदाह—यस्मादिति। तेषां हिंकार... साधयति—तस्मादित्यादिना। [1]तद्भक्तिभजनशीलत्वादित्यस्मात्प्रागेव तस्मादित्यस्य संबन्धः ॥२॥

उक्त समानता से हिंकारादि का बोध हो जाता है, इसीलिए हिंकारादि आदित्यादिकों में हेतु है—नहीं कहा गया। तथा आदित्य के साम होने में कारण की अनुक्ति सरलता से बोध कराने के लिए नहीं है, इसी से समत्व होना वहाँ हेतु है, ऐसा कहा गया ॥ १ ॥

उस आदित्य में उपजीव्य रूप से वक्ष्यमाण सभी भूत प्राणी अवयव-विभागपूर्वक अनुगत हैं, ऐसा जाने। उस आदित्य के उदय होने से पूर्व जो सुखकारक धर्म है, वह हिंकार है। प्रथम होना दोनों में समान होने से जो उसकी हिंकार उपासना है, गवादि पशु इस आदित्याख्य साम से जीवित रहते हैं...

---

१. इदं प्राथम्यमित्यर्थः। २. यस्मादेवं तस्मादित्यत्रोक्तं तस्मात्पदं विवृणोति—हिंकारभाजिनो हीत्यादिना। ३. तद्भक्तीत्यादि—तस्मात्तद्भक्तिशीलत्वादित्येवमन्वय इत्यर्थः। समानाधिकरणे च पञ्चम्याविति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥

अथ यत्संगववेलायाꣳ स आदिस्तदस्य वयाꣳस्यन्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायाऽऽत्मानं परिपतन्त्यादिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

तथा सूर्य के प्रथम उदय होने पर जो रूप होता है, वह प्रस्ताव है, इसके उस रूप के अनुगामी मनुष्य हैं। इसलिये वे प्रस्तुति (प्रत्यक्ष स्तुति) और प्रशंसा (परोक्ष स्तुति) की कामना करते हैं, क्योंकि वे इस साम के प्रस्ताव का भजन करने वाले हैं ॥ ३ ॥

तदनन्तर आदित्य के संगम वेला (सूर्योदय के तीन मुहूर्त के बाद) में जो रूप रहता है, वह आदि का (ओंकार) है। आदित्य के उस रूप के अनुगामी पक्षीगण हैं, क्योंकि वे इस साम के आदि रूप के भक्त हैं। इसीलिये वे अन्तरिक्ष में अपने को बिना आश्रय के ही सब ओर ले जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ यत्प्रथमोदिते सवितृरूपं तदस्याऽऽदित्याख्यस्य साम्नः स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्ताः पूर्ववत्। तस्मात्ते प्रस्तुतिं प्रशंसां कामयन्ते। यस्मात्प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ३ ॥

अथ यत्संगववेलायां गवां रश्मीनां संगमनं संगमो यस्यां वेलायां गवां वा वत्सैः सा संगववेला तस्मिन्काले यत्सावित्रं रूपं स आदिर्भक्तिविशेष ओंकारस्तदस्य वयांसि

सवितरि प्रथमोदिते सति यत्तस्य रूपं तद्दृष्ट्या प्रस्तावस्योपास्यत्वे पूर्वस्मादानन्तर्यं हेतुः। यथोदयात्प्राचीनं रूपं पशुभिरुपजीव्यते तथेत्याह—पूर्ववदिति। उदयात्पराचीनमादित्यरूपं मनुष्या उपजीवन्तीत्यत्र लिङ्गमाह—तस्मादिति। प्रत्यक्षपरोक्षभावेन प्रस्तुतिप्रशंसयोर्भेदः ॥३॥

गोशब्दवाच्यानां रश्मीनां जगन्मण्डलेन संगमनं संबन्धगमनमित्यर्थः। वत्सैः संगमनमिति संबन्धः। संगवकालीनमादित्यरूपमारोप्याऽऽदिभक्तेरोंकारस्योपास्यत्वे द्वयोराकारसामान्यं हेतुः।

इसीलिए पशु प्रातःकाल उठकर हिंकार करते हैं। अतः वे पशु इस आदित्यसञ्ज्ञक साम की उपासना में तत्पर हुए हिंकार के पात्र होते हैं ॥ २ ॥

इसी प्रकार सूर्य का प्रथमोदित रूप ही आदित्याख्य साम का रूप है, वह प्रस्ताव है। इसी के आश्रित मनुष्य रहते हैं—इत्यादि व्याख्या पूर्व मन्त्र के समान है। इसीलिए वे प्रत्यक्ष भाव से प्रस्तुति एवं परोक्षभाव से प्रशंसा चाहते हैं क्योंकि वे इस साम के प्रस्ताव की उपासना करने वाले हैं ॥ ३ ॥

तथा संगवकाल में आदित्य का जो रूप है, वह आदित्योपासना विशिष्ट ओंकार है, पक्षीगण उसी के आश्रित रहते हैं। जिस समय गोशब्दवाच्य रश्मियों का संगम होता है, अथवा गौओं का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्संप्रति मध्यंदिने स उद्गीथस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ६ ॥

अब मध्याह्न में आदित्य का जो रूप होता है, वह उद्गीथ है, इसके वाद उस रूप के अनु... देवता लोग हैं, इसीलिये वे प्रजापति के पुत्रों में विशिष्टतम हैं, क्योंकि वे इस साम की उद्गीथ ... के भाजन हैं ॥ ५ ॥

और आदित्य का जो रूप मध्याह्न के पश्चात् और अपराह्ण से पूर्व होता है, वह प्रतिहा... इसके उस रूप के अनुगामी गर्भ हैं। अतः वे सूर्य की प्रतिहार भक्तिरूप से और ऊपर आकृष्ट... जाने पर नीचे नहीं गिरते, क्योंकि गर्भ इस साम की प्रतिहार भक्ति के भाजन हैं ॥ ६ ॥

पक्षिणोऽन्वायत्तानि । यत एवं तस्मात्तानि वयांस्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यनालम्बनान्यात्... नमादायाऽऽत्मानमेवाऽऽलम्बनत्वेन गृहीत्वा परिपतन्ति गच्छन्त्यत आकारसामान्यादा... भक्तिभाजीनि ह्येतस्य साम्नः ॥ ४ ॥

अथ यत्संप्रति मध्यंदिन ऋजुमध्यंदिन इत्यर्थः । स उद्गीथभक्तिस्तदस्य ... अन्वायत्ताः । द्योतनातिशयात्तत्काले । तस्मात्ते सत्तमा विशिष्टतमाः प्राजापत्... प्रजापत्यपत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ५ ॥

अथ यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्प्रागपराह्णाद्यद्रूपं सवितुः स प्रतिहारस्तदस्य ...

पक्षिणां यथोक्तमादित्यरूपमुपजीव्यमित्यत्र हेतुमाह—यत इति ॥४॥

ऋजुमध्यंदिने यदादित्यस्य रूपं तद्दृष्ट्योद्गीथोपासने श्रेष्ठ्यं हेतुः । तत्कालीनादित्य... देवोपजीव्यत्वे हेतुमाह—द्योतनेति । तथाऽपि तस्य देवैरुपजीव्यत्वं 'कथमिति चेत्तत्रा'[2]... तस्मादिति ॥५॥

अथ यदूर्ध्वमिति वाक्यमादाय व्याचष्टे—मध्यंदिनादिति । तद्दृष्ट्या प्रतिहारो...

बछड़ों के साथ संगमन होता है; उसे संगववेला कहा जाता है। ऐसा होने से ही पक्षी अन्तरि... अपने को आश्रयरहित करके इधर-उधर उड़ते हैं। इसीलिए इनमें आकार की समानता होने... इस साम के आदि रूप की उपासना करने वाले हैं ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अब जो ऋजु मध्याह्न काल में आदित्य का रूप होता है, उस दृष्टि से उ...

---

१. कथमिति—कथमवगम्यमित्यर्थः । २. आहेति—सत्तमत्वहेतुनैव तदवगन्तव्यमित्याशयेनोत्तरमाहेत्यर्थः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्याऽऽरण्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳ श्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥७॥

तथा अपराह्ण के पश्चात् सूर्यास्त से पूर्व आदित्य का जो रूप होता है, वह उपद्रव है, इसके उस रूप के अनुगामी वन्य पशु हैं। इसीलिये पुरुष को देखकर वे भयभीत हो वन में या गुहा में भाग जाते हैं। क्योंकि वे इस साम की उपद्रव भक्ति के भाजन हैं ॥ ७ ॥

अन्वायत्ताः। अतस्ते सवितुः प्रतिहारभक्तिरूपेणोर्ध्वं प्रतिहृताः सन्तो नावपद्यन्ते नाधः पतन्ति तद्द्वारे सत्यपीत्यर्थः। यतः प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नो गर्भाः ॥ ६ ॥

अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्याऽऽरण्याः पशवोऽन्वायत्ताः। तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा भीताः कक्षमरण्यं श्वभ्रं भयशून्यमित्युपद्रवन्त्युपगच्छन्ति दृष्ट्वोपद्रवणादुपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः ॥ ७ ॥

प्रतिशब्दसामान्यं हेतुः। तस्मिन्काले सवितुरस्तं गिरिं प्रति हरणात्। यथोक्तमादित्यरूपं गर्भैरुपजीव्यमित्यत्र गमकमाह—अत इति। ऊर्ध्वं योनेरुपरिष्टाज्जठरं प्रतीत्यर्थः। यतो गर्भाः पूर्वोक्तविशेषणवन्तोऽत इति यावत्। तद्द्वारं पतनद्वारम् तत्र ॥६॥

तत्कालीनादित्यदृष्ट्योपद्रवमुपासीत तस्य तदाऽस्ताचलं प्रत्युपद्रवणादित्याह—अथेति। आरण्यानां पशूनां यथोक्तरूपोपजीवनमुपपादयति—तस्मादित्यादिना। श्वभ्रं गर्तं गुहेति यावत् ॥७॥

उपासना में श्रेष्ठता हेतु है क्योंकि देवता इसी रूप के आश्रित रहते हैं, इस समय में सूर्य अतिशय प्रखरता से चमकता है। वे देवता प्रजापति के सर्वश्रेष्ठ पुत्र हैं क्योंकि वे साम की उद्गीथ उपासना करने वाले हैं ॥ ५ ॥

एवं आदित्य का जो मध्याह्न के पश्चात् तथा अपराह्ण से पूर्ववर्ती रूप है, वह प्रतिहार है क्योंकि गर्भ इसी रूप के आश्रित रहते हैं। इसलिए सविता देवता की प्रतिहार उपासना से योनि के ऊपर जठर की ओर आकृष्ट हुए पतनद्वार से गर्भ नीचे नहीं गिरते क्योंकि गर्भ इस साम की प्रतिहार उपासना करने वाले हैं ॥ ६ ॥

इसी प्रकार अपराह्ण से पश्चात् एवं अस्ताचल पर्वत जाने से पूर्वकालीन आदित्य दृष्टि से उपद्रव की उपासना करनी चाहिए क्योंकि जङ्गली जानवर इसी रूप के आश्रित रहते हैं। इसी से वे पशु पुरुष को देखकर भयभीत हो वन अथवा भयशून्य गुफा में भाग जाते हैं। देखकर भाग जाने के कारण वे इस साम की 'उपद्रव' उपासना करने वाले हैं ॥ ७ ॥

---

१. इतीति— इत्येवंजातीयं स्थानमित्यर्थस्तथा च कक्षं श्वभ्रमिति प्रथमान्तं पदद्वयमित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यँ सप्तविधँ सामोपास्ते ॥ ८ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

और जो सूर्यास्त से पूर्व आदित्य का रूप होता है वह निधन है। इसके बाद उस रूप के अनुगा... पितृगण हैं, इसीलिये ये (श्राद्ध काल में) उन्हें (पितृपितामहादि रूप से दर्भों पर) स्थापित करते... क्योंकि वे पितृगण निश्चय ही इस साम की निधन भक्ति के भागी हैं। इस प्रकार इस आदित्य... से विशिष्ट सप्तविध साम की उपासना जो करता है (उसे आदित्य रूपता की प्राप्ति होती है)॥...

॥ इति नवमः खण्डः ॥

अथ यत्प्रथमास्तमितेऽदर्शनं जिगमिषति सवितरि तन्निधनं तदस्य पितरो... ऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति पितृपितामहप्रपितामहरूपेण दर्भेषु निक्षिपन्ति तांस्तद... पिण्डान्वा स्थापयन्ति। निधनसंबन्धान्निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्नः पितरः। एवमव... वशः सप्तधा विभक्तं खल्वमुमादित्यं सप्तविधं सामोपास्ते यस्तस्य तदापत्तिः फलमि... वाक्यशेषः ॥ ८ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

मृत्युरादित्यः। अहोरात्रादिकालेन जगतः प्रमापयितृत्वात्तस्यातितरणाय... सामोपासनमुपदिश्यते—

तत्सवितृरूपमिति शेषः। तद्दृष्ट्या निधनोपासने समाप्तिसामान्यं हेतुः। यथोक्तमादित्य... पितृभिरुपजीव्यमित्यत्र गमकमाह—तस्मादित्यादिना। तत्र तत्राथशब्दस्तत्तदुपासनानन्तर्या... व्याख्येयः। एवं खल्वित्यादिवाक्यमपेक्षितं पूरयन्व्याकरोति—एवमिति ॥८॥

इति द्वितीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

अथ खल्वात्मसंमितमित्यादेस्तात्पर्यमाह—मृत्युरिति। अनन्तरमित्यस्यापेक्षितं निक्षिपति...

तथा अस्ताचल पर्वत जाने से पूर्व सूर्य में जो लुप्त हो जाने की इच्छा है, वह निधन है क्यों... पितृगण इसी रूप के आश्रित हैं। इसलिए पिता, पितामह और प्रपितामहों को दर्भों में रखते हैं अथ... उनकी तृप्ति के लिए पिण्डादिक दान करते हैं। निधन से संबद्ध होने से पितृगण इस साम की नि... रूप से उपासना करने वाले हैं। इस प्रकार जो सात अवयवों में विभक्त आदित्य दृष्टि से विशि... सप्तविध साम की उपासना करता है, उसे आदित्य की प्राप्ति होती है ॥ ८ ॥

मृत्यु आदित्य है क्योंकि अहोरात्रादि काल से जगत् का माप कर लेने से उससे पार होने... लिए सामोपासना का वर्णन किया जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः)

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविध७ँ सामोपासीत हिंकार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ १ ॥

मृत्यु से अतीत सप्तविध सामोपासना

अब निश्चय ही यह बतलाना उचित है कि अपने समान अक्षरों वाले मृत्यु से पारगामी सप्तविध साम की उपासना करे। उनमें "हिंकार" यह तीन अक्षरों वाला है और (प्रस्ताव) यह भी तीन अक्षरों वाला है। अतः यह पहले नाम के समान है ॥ १ ॥

अथ खल्वनन्तरम् । आदित्यमृत्युविषयसामोपासनस्याऽऽत्मसंमितं स्वावयवतुल्यतया मितं परमात्मतुल्यतया वा संमितमतिमृत्यु मृत्य्वत्ययहेतुत्वात् । यथा प्रथमेऽध्याय उद्गीथभक्तिनामाक्षराण्युद्गीथ इत्युपास्यत्वेनोक्तानि, तथेह साम्नः सप्तविधभक्तिनामाक्षराणि समाहृत्य त्रिभिस्त्रिभिः समतया सामत्वं परिकल्प्योपास्यत्वेनोच्यन्ते। तदुपासनेन मृत्युगोचराक्षरसंख्यासामान्येन तं मृत्युं प्राप्य तदतिरिक्ताक्षरेण तस्याऽऽदित्यस्य मृत्योरतिक्रमणायैव संक्रमणं कल्पयति। अतिमृत्यु सप्तविधं सामोपासीत मृत्युमतिक्रान्तमतिरिक्ताक्षरसंख्ययेत्यतिमृत्यु साम । तस्य प्रथमभक्तिनामाक्षराणि हिंकार इत्येतत्त्र्यक्षरं भक्तिनाम प्रस्ताव इति च भक्तेस्त्र्यक्षरमेव नाम तत्पूर्वेण

आदित्येति । स्वशब्देन सामोच्यते तस्यावयवा हिंकारादयस्तन्नामाक्षराणां त्रित्वेन त्रित्वेन तुल्यतया मितं ज्ञातं सामेत्यर्थः । यथा परमात्मावगमो मृत्योर्मोक्षणहेतुस्तथेदमुपासनमपीत्यर्थान्तरमाह—परमात्मेति । कीदृगत्रोपासनं विवक्षितमित्यपेक्षायां सदृष्टान्तमुत्तरमाह—यथेत्यादिना । उद्गीथ इत्युद्गीथभक्तेर्नाम तदक्षराणीति यावत् । सामत्वं तेषां नामाक्षराणामित्यध्याहार्यम् । तदुपासनं तेषामक्षराणामादित्यदृष्ट्योपासनमित्यर्थः । मृत्युगोचराक्षरसंख्यैकविंशतित्वलक्षणा साऽस्त्येकाऽनेकेष्वक्षरेषु तत्सामान्येन तेष्वक्षरेष्वादित्यदृष्ट्या मृत्युमादित्यमित्यर्थः । अतिक्रमणाय तत्साधनमुपासनमिति शेषः । अतिमृत्यु मृत्योरत्ययहेतुत्वादित्युक्तमेव स्पष्टयति—मृत्युमिति । नामाक्षराणि कथ्यन्त

इसी प्रकार साम अवयव के तुल्य आदित्य मृत्युविषयक साम उपासना मृत्यु की भीति दूर करने वाली है अथवा जिस प्रकार परमात्मज्ञान मृत्यु से छुटकारा दिलाने में हेतु है, उसी प्रकार यह उपासना है। जैसे प्रथमाध्याय में उद्गीथ भक्ति से उद्गीथ नाम के अक्षरों को उपास्यरूप से कहा है; वैसे ही यह साम के सप्तविध उपासना में नाम के अक्षरों को बराबर तीन-तीन एकत्रित कर साम अक्षरों की कल्पना कर उपास्य रूप से कहे जाते हैं। उन अक्षरों की आदित्य दृष्टि से उपासना से मृत्यु गोचर इक्कीस अक्षर संख्या समानता से आदित्य को प्राप्त कर उससे भिन्न अक्षर द्वारा आदित्य की मृत्यु से जय के लिए कल्पना की जाती है। उनमें 'हिंकार' प्रथम उपासित तीन अक्षरों वाला है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदिरिति द्व्यक्षरं प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम् ॥ २ ॥

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम् ॥ ३ ॥

'आदि' यह दो अक्षरों वाला नाम है, (क्योंकि सात प्रकार के साम की संख्या पूर्ति में ओं को आदि वाला कहा गया है) तथा 'प्रतिहार' यह चार अक्षरों वाला नाम है, इसमें से एक अ निकाल कर आदि के दो अक्षरों में मिला दें, तो दोनों नाम समान अक्षर वाले हो जाते हैं ॥ २॥

"उद्गीथ" यह तीन अक्षरों वाला नाम है और "उपद्रव" यह चार अक्षरों का नाम ये दोनों तीन-तीन अक्षरों में समान हैं, किन्तु एक अक्षर बढ़ता है। (अतः विषमता को दूर करने लिये) वह एक होने पर भी "अक्षर" है। इसलिये वह नाम भी तीन अक्षरों वाला ही है, ऐसा कर लेने पर वह भी उन्हीं के समान है ॥ ३ ॥

समम् ॥ १ ॥

आदिरिति द्व्यक्षरं सप्तविधस्य साम्नः संख्यापूरण ओंकार आदिरित्युच्य प्रतिहार इति चतुरक्षरम् । तत इहैकमक्षरमवच्छिद्याऽऽद्यक्षरयोः प्रक्षिप्यते । तेन तत्स मेव भवति ॥ २ ॥

उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरम शिष्यतेऽतिरिच्यते । तेन वैषम्ये प्राप्ते साम्नः समत्वकरणायाऽऽह—तदेकमपि सद न्निति त्र्यक्षरमेव भवति । अतस्तत्समम् ॥ ३ ॥

इति शेषः ॥१॥

आद्यक्षरयोरादिभक्तिनामाक्षरयोरिति यावत् । तेन प्रक्षेपेण तदादिभक्तिनाम प्रतिहारन तुल्यमेवेत्यर्थः ॥२॥

उसी प्रकार प्रस्ताव भी तीन अक्षरों वाला है। अतः यह पहले नाम के समान है ॥ १ ॥

'आदि' यह दो अक्षरों से युक्त नाम है क्योंकि सप्तविध साम की संख्या पूर्ति में ओंका प्रारम्भ में कहा गया है। 'प्रतिहार' यह चार अक्षरों वाला नाम है, उसमें से एक अक्षर को नि कर 'आदि' भक्ति के नामाक्षरों में मिला दें तो दोनों नाम समान अक्षर वाले हो जाते हैं ॥ २॥

'उद्गीथ' यह नाम तीन अक्षरों से युक्त है, 'उपद्रव' यह चार अक्षरों से युक्त है। ये तीन-तीन अक्षरों में समान हैं किन्तु एक अक्षर बढ़ता है। इस विषमता के प्राप्त होने पर सा समानता करने के लिए कहा जाता है। फल यह है कि एक अक्षर की भी सत्ता तीन अक्षरों के रहती है। इसलिए वह भी उन्हीं के समान है ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविꣳशतिरक्षराणि ॥ ४ ॥

एकविꣳशत्याऽऽदित्यमाप्नोत्येकविꣳशो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविꣳशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम् ॥ ५ ॥

"निधन" यह तीन अक्षरों वाला नाम है। अतः यह उनके समान ही है (इस प्रकार तीन-तीन अक्षरों में समानता होने से उनमें सामत्व है और अक्षरों की गणना से) वे ही ये सात भक्तियों के वाईस अक्षर हैं ॥ ४ ॥

वहाँ इक्कीस अक्षरों द्वारा साधक आदित्य लोक रूप मृत्यु को प्राप्त करता है, (क्योंकि बारह महीने, पाँच ऋतु, तीन लोक और एक्कीसवाँ यह आदित्य लोक, इस श्रुति में) इस लोक से आदित्य निश्चय ही एक्कीसवाँ है। शेष बाईसवें अक्षर द्वारा वह मृत्यु मुख आदित्य लोक से परे दुःख एवं शोक रहित लोक को प्राप्त कर लेते हैं ॥ ५ ॥

निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति एवं त्र्यक्षरसमतया सामत्वं संपाद्य यथाप्राप्तान्येवाक्षराणि संख्यायन्ते—तानि ह वा एतानि सप्तभक्तिनामाक्षराणि द्वाविंशतिः ॥ ४ ॥

तत्रैकविंशत्यक्षरसंख्याऽऽदित्यमाप्नोति मृत्युम्। यस्मादेकविंश इतोऽस्माल्लोकादसावादित्यः संख्यया। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳश इति श्रुतेरतिशिष्टेन द्वाविंशेनाक्षरेण परं मृत्योरादित्याज्जयत्याप्नोतीत्यर्थः। यच्च तदादित्यात्परं किं तत्। नाकं कमिति सुखं तस्य प्रतिषेधोऽकं तन्न भवतीति नाकं कमे-

---

ननु यथोक्तया रीत्या चतुर्विंशत्यक्षराणि तत्कथं तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षराणीति तत्राऽऽह—एवमिति ॥४॥

आदित्यस्यास्माल्लोकादेकविंशत्वे श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—द्वादशेति। हेमन्तशिशिरावेकीकृत्य पञ्चर्तव इत्युक्तम्। आदित्यस्याहोरात्राभ्यां पौनःपुन्येन मृत्युहेतुत्वमस्मिँल्लोके दृश्यते। तदयं लोको

'निधन' यह तीन अक्षरों वाला नाम है, यह यथोक्त रीति से उनके समान ही है। इस तरह तीन-तीन अक्षरों की सरूपता से सामत्व सम्पादित कर यथाप्राप्त अक्षरों की गणना की जाती है। वे ही ये सप्तविध उपासना के बाईस अक्षर हैं ॥ ४ ॥

वहाँ इक्कीस अक्षरों द्वारा उपासक आदित्य लोक रूप मृत्यु को प्राप्त करता है क्योंकि इस लोक से आदित्य का इक्कीसवाँ क्रम है। बारह महीने, पञ्च ऋतुएँ, तीन लोक एवं सूर्य इक्कीसवाँ है, इस श्रुति से अवशिष्ट बाईसवें अक्षर से परे आदित्यात्मक मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है। उस आदित्य से परे ब्रह्म लोक है, जिसमें सुख का प्रतिषेध नहीं है क्योंकि दुःख मृत्युविषयक होता है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri & Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आप्नोति हाऽऽदित्यस्य जयं परो हास्याऽऽदित्यज-
याज्जयो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमृत्यु
सप्तविधꣳ सामोपास्ते सामोपास्ते ॥ ६ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

(वह पुरुष एक्कीस अक्षरों द्वारा) आदित्य लोक की जय प्राप्त करता है और बाईसवें अक्षर से उसे आदित्य जय की अपेक्षा भी उत्कृष्ट जय प्राप्त होती है; जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष अपने समान अक्षर वाले और मृत्यु से अतीत सप्तविध साम की उपासना करता है, सप्तविध साम की उपासना करता है ॥ ६ ॥

॥ इति दशमः खण्ड़ः ॥

वेत्यर्थः। मृत्युविषयत्वाद्दुःखस्य विशोकं च तद्विगतशोकं मानसदुःखरहितमित्यर्थः। तदाप्नोतीति ॥५॥

उक्तस्यैव पिण्डितार्थमाह—एकविंशतिसंख्ययाऽऽदित्यस्य जयमाप्नोति। परो हास्यैवंविद आदित्यजयान्मृत्युगोचरात्परो जयो भवति द्वाविंशत्यक्षरसंख्ययेत्यर्थः। एतदेवं विद्वानित्याद्युक्तार्थम्। तस्यैतद्यथोक्तं फलमिति द्विरभ्यासः साप्तविध्यसमाप्त्यर्थः ॥६॥

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

मृत्युविषयत्वाद्दुःखात्मकस्तदभावाद्ब्रह्मलोकः सुखात्मक इति मत्वाऽऽह— मृत्युविषयत्वादिति ॥५॥

पूर्वेणोत्तरस्य पौनरुक्त्यमाशङ्क्याऽऽह—उक्तस्यैवेति। व्याख्यातस्यैव ग्रन्थस्य समुदायार्थं संक्षिप्य बुद्धिसौकर्यार्थमनन्तरग्रन्थेनोच्यते। तत्र पौनरुक्त्यमित्यर्थः। 'जयमनु परो जयो भवती'ति संबन्धः। परो हास्येत्युपात्तं वाक्यं व्याकरोति—एवंविद इति। फलमिति शेष इति यावत्। साप्तविध्यं सप्तविधत्वं तदुपेतसामोपासनस्य समाप्त्यर्थोऽभ्यास इत्यर्थः ॥६॥

इति द्वितीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

तथा वहाँ मानस दुःख भी नहीं होता, उसी लोक को वह उपासक प्राप्त करता है ॥ ५ ॥

उपरोक्त मन्त्र का सारांश यह है कि वह उपासक इक्कीस अक्षरों के द्वारा आदित्यलोक में विजय लाभ करता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार जानने वाला उपासक बाईसवें अक्षर के द्वारा आदित्य लोक रूप मृत्यु जय की अपेक्षा उत्कृष्ट विजय का लाभ करता है। इस प्रकार के विद्वान् को सप्तविध साम उपासना का यथोक्त फल प्राप्त हो जाता है। मन्त्र में "सामोपास्ते" की द्विरावृत्ति सप्तविध सामोपासना प्रकरण समाप्ति के लिए है ॥ ६ ॥

---

१. आदित्यजयादित्येषा पञ्चमी न हेत्वर्था किन्तु दिग्योगलक्षणेत्याशयवानाह—जयमन्वित्यादि।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

मनो हिंकारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

गायत्र नामक साम की उपासना

(सम्पूर्ण इन्द्रियों में प्रथम होने से) मन हिंकार है (उसके पश्चात्वर्ती) वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है तथा प्राण निधन है। (क्योंकि सुषुप्ति में पूर्वोक्त इन्द्रियादि प्राण में लीन होते हैं) यह गायत्रसंज्ञक साम प्राणों में प्रतिष्ठित है। (क्योंकि गायत्री की प्राण रूप से स्तुति की गयी है) ॥ १ ॥

विना नामग्रहणं पञ्चविधस्य सप्तविधस्य च साम्न उपासनमुक्तम्। अथेदानीं गायत्रादिनामग्रहणपूर्वकं विशिष्टफलानि सामोपासनान्तराण्युच्यन्ते। यथाक्रमं गायत्रादीनां कर्मणि प्रयोगस्तथैव मनो हिंकारो मनसः सर्वकरणवृत्तीनां प्राथम्यात्। तदानन्तर्याद्वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रैष्ठ्यात्। श्रोत्रं प्रतिहारः प्रतिहृतत्वात्। प्राणो निधनं यथोक्तानां प्राणे निधनात्स्वापकाले। एतद्गायत्रं साम प्राणेषु प्रोतम्। गायत्र्याः प्राणसंस्तुतत्वात् ॥१॥

ननु पञ्चविधस्य सप्तविधस्य च साम्नो ध्यानं व्याख्यातम्। तथा च ज्ञातविषये वक्तव्याभावादलमनन्तरग्रन्थेनेत्याशङ्क्य पूर्वोत्तरग्रन्थयोरर्थभेदमाह—विनेत्यादिना। गायत्रं रथंतरमित्यादिनामग्रहणेन विशिष्टानि विशिष्टफलानि चेत्यर्थः। कथं पुनर्वक्ष्यमाणेषूपासनेषु निर्देशक्रमसिद्धिस्तत्राऽऽह—यथाक्रममिति। यादृशं क्रममाश्रित्य तेषां कर्मणि प्रयोगः कर्मिणामिष्टस्तेनैव क्रमेण तदुपासनोक्तिरित्यर्थः। तत्राप्राणस्य क्रियाज्ञानयोरसंभवात्प्राणस्य प्रधानत्वात्तद्दृष्ट्या गायत्रोपास्तिमादौ दर्शयति—मनो हिंकार इत्यादिना। प्राणमेव वागप्येतीत्यादिश्रुत्या स्वापकाले प्राणे वागादीनां निधनमवधेयम्। प्रोतं प्रगतं प्रतिष्ठितमिति यावत्। गायत्रस्य प्राणेषु प्रतिष्ठितत्वे हेतुमाह—गायत्र्या इति। प्राणो वै गायत्रीति हि श्रुतिः ॥१॥

बिना नाम ग्रहण किए पञ्चविध एवं सप्तविध साम की उपासना कही गई। इसके अनन्तर गायत्र रथन्तर आदि नाम ग्रहण पूर्वक अन्य साम उपासनाएँ कही जाती हैं, जिनका विशिष्ट फल है। कर्मकाण्डी जिस क्रम का आश्रय करके गायत्रादि का कर्म में प्रयोग करते हैं, उसी क्रम से उस उपासना का कथन है। सम्पूर्ण इन्द्रियों की वृत्तियों में प्रथम होने से मन हिंकार है, उसके पश्चवर्ती होने से वाक् प्रस्ताव है, श्रेष्ठता होने से चक्षु उद्गीथ है। इधर-उधर चले जाने से श्रोत्र प्रतिहार है। प्राण निधन है क्योंकि स्वप्नावस्था में वागादिकों का प्राण में निधन हो जाता है। यह गायत्रसञ्ज्ञक साम प्राणों में प्रतिष्ठित है क्योंकि प्राण ही गायत्री है; इस प्रकार संस्तुति की गई है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अभिमन्थति स हिंकारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार

वह जो इस प्रकार गायत्र संज्ञक साम को प्राण में प्रतिष्ठित जानता है, वह अविकल इं... वान् होता है, पूर्ण आयु (सौ वर्ष) उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा... पशुओं से महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है। वह उदार हृदय वाला होवे, ... उसका व्रत है ॥२॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

रथन्तर सामोपासना

(सर्व प्रथम होने के कारण जो अग्नि का) अभिमंथन करता है, वह हिंकार है। धूम ... होता है, वह प्रस्ताव है। अग्नि प्रज्ज्वलित होती है, वह उद्गीथ है। अंगार होते हैं, वह प्रतिहार...

स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति। अविकलकरणो भ... त्येतत्। **सर्वमायुरेति।** शतं वर्षाणि सर्वमायुः पुरुषस्येति श्रुतेः। **ज्योगु**ज्ज्व... सन् जीवति। **महान्भवति प्रजादिभिर्महांश्च कीर्त्या।** गायत्रोपासकस्यैतद्व्रतं भ... यन्महामना अक्षुद्रचित्तः स्यादित्यर्थः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

अविदुषोऽपि प्राणित्वसिद्धेर्नेदं विद्याफलमित्याशङ्क्याऽऽह—अविकलेति। कथं पुनर्नाना... सर्वमायुरेको ध्याता गन्तुमलमित्याशङ्क्याऽऽह—शतमिति। शतायुर्वै पुरुष इति श्रुतेरित्यु... ज्योक्शब्दो निपातः। स चोज्ज्वलनार्थः। उज्ज्वलः स्वपरोपकारसमर्थ इति यावत् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

जो इस प्रकार गायत्र सञ्ज्ञक साम को प्राणों में प्रतिष्ठित जानता है, वह अविद्वान् की... केवल प्राण धारण नहीं करता बल्कि पूर्ण इन्द्रियवान् होता है, पूर्ण आयु लाभ करता है। श्रुति... है—"मनुष्य की पूर्ण आयु सौ वर्ष की हुआ करती है"। उस उपासक का जीवन उज्ज्वल हो... कीर्ति और प्रजा पशु आदि से महान् होता है। गायत्रोपासक का यह व्रत होता है कि वह उदार... वाला होवे ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपशाम्यति तन्निधनꣳ सꣳशाम्यति तन्निधनमेत-द्रथंतरमग्नौ प्रोतम् ॥ १ ॥

स य एवमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभि-

(क्योंकि अंगारों का प्रतिहरण किया जाता है) और शान्त होने लगता है, वह निधन है। तथा सर्वथा शान्त हो जाता है, यह भी निधन है। यह रथन्तर साम अग्नि में ओतप्रोत है। (क्योंकि अग्नि-मन्थन में यह गाया जाता है) ॥१॥

वह जो इस प्रकार इस रथन्तर साम को अग्नि में व्याप्त जानता है, वह ब्रह्मतेज से सम्पन्न और अन्न का भोक्ता होता है, पूर्ण जीवन का उपभोग करता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है।

अभिमन्थति स हिंकारः प्राथम्यात्। अग्नेर्धूमो जायते स प्रस्ताव आनन्तर्यात्। ज्वलति स उद्गीथो हविः संबन्धाच्छ्रैष्ठ्यं च ज्वलनस्य। अङ्गारा भवन्ति स प्रतिहारोऽङ्गाराणां प्रतिहृतत्वात्। उपशमः सावशेषत्वादग्नेः संशमो निःशेषोपशमः समाप्ति-सामान्यान्निधनमेतद्रथंतरमग्नौ प्रोतम्। मन्थने ह्यग्नेर्गीयते ॥१॥

स य इत्यादि पूर्ववत्। ब्रह्मवर्चसी वृत्तस्वाध्यायनिमित्तं तेजो ब्रह्मवर्चसम्।

समग्रप्राणवतो मन्थनकर्तृत्वसंभवात्प्राणदृष्ट्यनन्तरं मन्थनादिदृष्टिमवतारयति—अभिमन्थतीत्यादिना। उपशमः संशमश्चेत्यर्थभेदाभावात्पुनरुक्तिमाशङ्क्य सावशेषनिरवशेषत्वाभ्यां विशेषमाह—उपशम इति। कथं पुना रथंतरसाम्नोऽग्नौ प्रतिष्ठितत्वम्। न हि तत्र किंचिन्निमित्तमुपलभ्यतेऽत आह—मन्थने हीति। मन्थनं निमित्तीकृत्याग्नेरुत्पत्तौ रथंतरसाम्नो गीयमानत्वदर्शनादग्नौ तस्य प्रतिष्ठितत्वसिद्धिरित्यर्थः ॥१॥

नन्वत्र ब्रह्मवर्चसीति फलमुक्तं बृहदुपासने तु तेजस्वी भवतीति वक्ष्यते। न च ब्रह्मवर्चसतेजसोर्भेदस्तथा च बृहद्रथंतरोपासनयोर्न फलवैषम्यमत आह—वृत्तेति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

अभिमन्थन कर्म हिंकार है क्योंकि उसे पहले किया जाता है। अग्नि में जो धूम होता है, वह प्रस्ताव है क्योंकि धूम बाद में होता है। जो प्रज्वलित होता है, वह उद्गीथ है क्योंकि आहुति से संबन्ध होने के कारण ज्वलन की श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। अग्नि से जो अङ्गार होते हैं, वे प्रतिहार हैं क्योंकि अङ्गारे इधर-उधर लिये जाते हैं अग्नि का बुझना ही निधन है क्योंकि पूर्णतः भस्मसात् हो जाती है अथवा सर्वथा शान्त होना भी निधन हैं क्योंकि उनमें समाप्ति की समानता है। यही रथन्तर साम अग्नि में प्रतिष्ठित है क्योंकि रथन्तर साम में अग्नि की उत्पत्ति मन्थन से हुई गायी जाती है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

र्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

उपमन्त्रयते स हिंकारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् ॥ १ ॥

प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है। अग्नि की ओर मुख करके कुछ भी भक्षण न करे न कफ का ही त्याग करे; यह व्रत है ॥२॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

वामदेव्य सामोपासना

(अवाच्य कर्म में प्रवृत्त उत्तराधर अरणी स्थानीय स्त्री पुरुष के मन्थन सामान्य दृष्टि वि के अनन्तर मैथुन दृष्टि का विधान किया गया है। पुरुष जो स्त्री को) संकेत करता है, वह हिंकार वस्त्राभूषण से प्रसन्न करता है, वह प्रस्ताव है। एक शय्या पर गमन करता है, वह उद्गीथ है। के सन्मुख होता है, वह प्रतिहार है और मैथुन के द्वारा कामना को प्राप्त करता है, वह निधन यह वामदेव्य साम मिथुन में अनुस्यूत है, क्योंकि वायु और जल से परस्पर वामदेव्य की उत्पत्ति गयी है ॥१॥

तेजस्तु केवलं त्विड्भावः। अन्नादो दीप्ताग्निः। न प्रत्यङ्ङग्निमग्नेरभिमुखो नाऽऽचा भक्षयेत्किंचिन्न निष्ठीवेच्छ्लेष्मनिरसनं च न कुर्यात्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

उपमन्त्रयते संकेतं करोति प्राथम्यात्स हिंकारः। ज्ञपयते तोषयति स प्रस्ता

उत्तराधरारणिस्थानीययोः स्त्रीपुरुषयोरवाच्ये कर्मणि प्रवृत्तयोर्मन्थनसामान्यान्मन्थन दृष्ट्यनन्तरं मैथुनदृष्टिं विदधाति—उपमन्त्रयत इत्यादिना। पुरुषो हि पशुकर्मार्थं स्त्रियं वस्त्रा प्रीणयति। तस्मिन्प्रारम्भसामान्यात्[1]प्रस्तावदृष्टिरित्याह—ज्ञपयत इति। कुतो वामदेव्यस्य स

'जो इस रथन्तर साम को अग्नि में प्रतिष्ठित जानता है', इत्यादि व्याख्यान पूर्वमन्त्र के है। वह आचार एवं स्वाध्याय विषयक तेज एवं दीप्ताग्नि युक्त होता है। 'ब्रह्मवर्चसी' शब्द में तेज सौन्दर्यबोधक है। अग्नि की ओर मुख करके कुछ खान-पान न करे, न ही कफ त्याग करे, यह है ॥ २ ॥

---

१. [प्र]स्तावे तद्दृष्टिरित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न कांचन परिहरेत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

वह जो इस वामदेव्य साम को मिथुन में प्रतिष्ठित जानता है, वह कभी विधुर नहीं होता और अमोघरेत वाला होता है, पूर्ण आयु जीता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है, (क्योंकि समागमार्थी आयी हुई) किसी भी स्त्री का परित्याग न करे; यह उसका व्रत है ।।२।।

।। इति त्रयोदश: खण्डः ।।

सहशयनमेकपर्यङ्कगमनं स उद्गीथः श्रैष्ठ्यात् । प्रति स्त्रीं शयनं स्त्रिया अभिमुखीभावः स प्रतिहारः । कालं गच्छति मैथुनेन पारं समाप्तिं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम् । वाय्वम्बुमिथुनसंबन्धात् ॥१॥

स य इत्यादि पूर्ववत् । मिथुनी भवत्यविधुरो भवतीत्यर्थः । मिथुनान्मिथुनात्प्रजायत इत्यमोघरेतस्त्वमुच्यते । न कांचन कांचिदपि स्त्रियं स्वात्मतल्पप्राप्तां न परिहरेत्समागमार्थिनीम् । वामदेव्यसामोपासनाङ्गत्वेन विधानात् एतस्मादन्यत्र प्रतिषेध-

---

मिथुने प्रोतत्वं तत्राऽऽह—वाय्यम्बुमिथुनेति । वायोरपां च मिथुनतया संबन्धाद्वामदेव्योत्पत्तेरुक्तत्वात्तस्य मिथुने प्रतिष्ठितत्वं युक्तमित्यर्थः ॥१॥

न कांचनेतिवाक्यमादाय व्याचष्टे—कांचिदपीति । पराङ्गनां नोपगच्छेदिति स्मृतिविरोधमाशङ्क्याऽऽह—वामदेव्येति । विधिनिषेधयोः सामान्यविशेषविषयत्वेन व्यवस्था प्रसिद्धेति भावः । किं च

मैथुनकर्म में प्रवृत्त स्त्री-पुरुष की ऊपर-नीचे की अरणी से तुलना की है। मन्थनदृष्टि के अनन्तर मैथुनदृष्टि का विधान किया जाता है। पुरुष स्त्री को संकेत करता है, वह हिंकार है क्योंकि हिंकार की तरह सर्वप्रथम संकेत हुआ करता है। वस्त्रादि के द्वारा प्रसन्न करना ही प्रस्ताव है। एक शय्या में ही गमन करना उद्‌गीथ है क्योंकि यह श्रेष्ठ है। स्त्री के साथ लेटे हुए एक-दूसरे के सम्मुख होना प्रतिहार है। मैथुन के द्वारा पूर्ण सन्तुष्टि लाभ करता है, वह निधन है। यह वामदेव्य साम मिथुन में प्रतिष्ठित है। वायु और जल का परस्पर संबन्ध होने से उसका मिथुन में प्रतिष्ठित होना युक्तिसंगत है ।। १ ।।

'जो इस वामदेव्य साम को मिथुन में प्रतिष्ठित जानता है' इत्यादि मन्त्र का पूर्ववत् व्याख्यान समझ लेना चाहिए। इस उपासना का यह फल है कि वह अविधुर जीवन व्यतीत करता है और उसका वीर्य अमोघ होता है। समागम की इच्छा से अपनी सेज में आई हुई किसी स्त्री को निराश न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

उद्यन्हिंकार उदितः प्रस्तावो मध्यंदिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

आदित्य में बृहत्सामोपासना

उदित होता हुआ सूर्य हिंकार है, (क्योंकि उसका दर्शन सर्वप्रथम होता है। कर्मों के प्रस्ता का हेतु होने से) उदित हुआ सूर्य प्रस्ताव है। मध्याह्नकालीन सूर्य उत्कृष्ट होने से उद्गीथ है। (आदि को अपने निवास की ओर ले जाने के कारण) अपराह्न का सूर्य प्रतिहार है और जो अस्त होने वाला सूर्य है, वह निधन है, (क्योंकि वह सभी प्राणियों का अपने घरों में निहित करता है)। बृहत्साम सूर्य में स्थित है (क्योंकि इसका देवता सूर्य है) ॥१॥

स्मृतयः। वचनप्रामाण्याच्च धर्मावगतेर्न प्रतिषेधशास्त्रेणास्य विरोधः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

उद्यन्सविता स हिंकारः प्राथम्याद्दर्शनस्य। उदितः प्रस्तावः प्रस्तवनहेतुत्वा मंणाम्। मध्यंदिन उद्गीथः श्रैष्ठ्यात्। अपराह्णः प्रतिहारः पश्वादीनां गृहान् हरणात्। यदस्तं यंस्तन्निधनं रात्रौ गृहे निधानात्प्राणिनाम्। एतद्बृहदादित्ये प्रो बृहत आदित्यदे(दे)वत्यत्वात् ॥१॥

शास्त्रप्रामाण्यादत्र धर्मोऽवगम्यते न कांचन परिहरेदिति च शास्त्रावगतत्वादवाच्यमपि कर्म भवितुमर्हति। तथा च श्रौतेऽर्थे दुर्बलायाः स्मृतेर्न प्रतिस्पर्धितेत्याह—वचनेति। यथोक्तोपासना ब्रह्मचर्यनियमाभावो व्रतत्वेन विवक्षितस्तन्न प्रतिषेधशास्त्रविरोधाशङ्केति भावः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

आदित्यस्य प्रजाप्रसवहेतुत्वात्तद्धेतुमैथुनदृष्ट्यनन्तरमादित्यदृष्टिमुत्थापयति—उद्यन्नित्यादिना।

करे क्योंकि इसे वामदेव्य सामोपासना का अङ्ग विधान किया गया है। इसके विपरीत इसका प्रति करने वाली स्मृतियाँ भी हैं। श्रुतिवाक्य के प्रामाण्य होने से श्रौत अर्थ में दुर्बल स्मृति प्रतिस्पर्धी है। अर्थात् यथोक्तोपासना करने वाला ब्रह्मचर्यनियम का अभाव भी व्रत के रूप में करे, इसमें प्रति शास्त्र का विरोध आने की शङ्का नहीं है ॥ २ ॥

उदय होता हुआ आदित्य हिंकार है क्योंकि उसका प्रथम दर्शन होता है। उदित हुआ सूर्य प्रस्ताव है क्योंकि कर्मों को प्रस्तुत करने में हेतु है। मध्याह्नकालीन सूर्य उद्गीथ है क्योंकि यह श्रेष्ठ अपराह्नकाल प्रतिहार है क्योंकि इस समय पशु आदि गृह के प्रति ले जाये जाते हैं। अस्तकाल का निधन है क्योंकि रात्रि को प्राणी अपने घर में शरण ले लेते हैं। यह बृहत्साम सूर्य में प्रतिष्ठि क्योंकि इस बृहत्साम का आदित्य देवता है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिंकारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम् ॥ १ ॥

वह जो पुरुष बृहत्साम को इस प्रकार सूर्य में स्थित जानता है, वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है, पूर्ण आयु वाला होता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, एवं कीर्ति के कारण भी महान् होता है, तपते हुए सूर्य की निन्दा न करे; यह बृहत्सामोपासक के लिये व्रत है ॥२॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः

मेघ में वैरूप सामोपासना

जल बरसाने के लिये जो बादल एकत्रित होते हैं वह हिंकार है, मेघ उत्पन्न होता है, वह प्रस्ताव है। जल बरसता है, वह उद्गीथ है। बिजली चमकती और कड़कती है, यह प्रतिहार है तथा वृष्टि का उपसंहार ही निधन है। यह वैरूप साम मेघ में व्याप्त है ॥१॥

स य इत्यादि पूर्ववत् । तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

अभ्राण्यब्भरणान्मेघ उदकसेक्तृत्वात् । उक्तार्थमन्यत् । एतद्वैरूपं नाम साम पर्जन्ये प्रोतम् । अनेकरूपत्वात् । अभ्रादिभिः पर्जन्यस्य वैरूप्यम् ॥१॥

॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

आदित्याज्जायते वृष्टिरिति स्मृतेरादित्यकार्यत्वात्पर्जन्यस्याऽऽदित्यदृष्टचनन्तरं पर्जन्यदृष्टिं दर्शयति—अभ्राणीति । कथं वैरूपं साम तस्मिन्प्रतिष्ठितं तत्राऽऽह—अनेकेति ॥१॥

'जो उपासक बृहत्साम को इस प्रकार आदित्य में प्रतिष्ठित जानता है' इत्यादि व्याख्यान पूर्वमन्त्रों की तरह समझ लेना चाहिए। उस उपासक के लिए इस व्रत का विधान है कि तपते हुए सूर्य की निन्दा न करे ॥ २ ॥

जल उनमें भरा होने के कारण अभ्र हैं एवं जलवृष्टि में हेतु होने से मेघ हैं। शेष मन्त्र भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपाँश्च सुरूपाँश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम् ।। २ ।।

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।। १५ ।।

(अथ द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

वसन्तो हिंकार ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम् ।।१।।

वह जो पुरुष इस प्रकार इस वैरूप साम को मेघ में व्याप्त जानता है, वह विरूप और सु पशुओं का अवरोध करता है। पूर्ण आयु को प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा पशुओं के तथा कीर्ति के कारण महान् होता है, बरसते हुए मेघ की निन्दा न करे; यह उ व्रत है ।।२।।

।। इति पञ्चदशः खण्डः ।।

वैराज सामोपासना

सर्वप्रथम होने के कारण वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद् प्रति है और हेमन्त निधन है। यह वैराज साम ऋतुओं में ओत-प्रोत है ।।१।।

विरूपांश्च सुरूपांश्चाजाविप्रभृतीन्पशूनवरुन्धे प्राप्नोतीत्यर्थः। वर्षन्तं निन्देत्तद्व्रतम् ।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।।१५।।

वसन्तो हिंकारः प्राथम्यात्। ग्रीष्मः प्रस्ताव इत्यादि पूर्ववत् ।।१।।

।।२।।

इति द्वितीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।।१५।।

पर्जन्यायत्तत्वादृतुव्यवस्थायास्तद्दृष्टेरनन्तरमृतुदृष्टिमाचष्टे—वसन्त इत्यादिना ।।१।।

यथोक्त अर्थ में है। यह वैरूपसञ्ज्ञक साम पर्जन्य में प्रतिष्ठित है क्योंकि उसके विविध रूप करते हैं। अभ्रादिकों से पर्जन्य की बहुरूपता प्रसिद्ध है ।। १ ।।

वैरूप साम का उपासक कुरूप एवं सुरूप सभी प्रकार के भेड़-बकरी आदि पशुओं को करता है। वह उपासक बरसते हुए बादल की निन्दा न करे; यह उसका व्रत है ।। २ ।।

पर्जन्य के अधीन ऋतुव्यवस्था है; इसलिए पर्जन्य दृष्टि के अनन्तर ऋतु दृष्टि का नि किया जाता है। ऋतुओं में वसन्त प्रथम होने के कारण हिंकार है। ग्रीष्म प्रस्ताव है इ व्याख्यान पूर्वमन्त्रों समान समझ लेना चाहिए ।। १ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्तूंन्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः ॥१॥

वह जो पुरुष इस वैराज साम को ऋतुओं में व्याप्त देखता है, प्रजा, पशु और ब्रह्मतेज के कारण सुशोभित होता है। वह पूर्ण आयु वाला होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी महान् होता है। ऋतुओं को निन्दा न करे; यह उसका व्रत है ॥२॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

शक्वरी सामोपासना

पृथिवी हिंकार है, अन्तरिक्ष प्रस्ताव है, द्युलोक उद्गीथ है, दिशाएँ प्रतिहार हैं और समुद्र निधन है। ये शक्वरी साम लोकों में व्याप्त हैं ॥१॥

एतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति ऋतुवद्यथर्तव आर्तवैर्धर्मैर्विराजन्त एवं प्रजादिभिर्विद्वानित्युक्तमन्यत्। ऋतून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

पृथिवी हिंकार इत्यादि पूर्ववत्। शक्वर्य इति नित्यं बहुवचनं रेवत्य इव।

वैराजस्य साम्नो युक्तमृतुषु प्रोतत्वं तेषां स्वधर्मैर्विराजनादित्याह—एतदिति। यद्वर्तूनामैन्नोत्पत्तिनिमित्तत्वाद्विराडात्मनश्चान्नत्वात्तस्य तेषु प्रतिष्ठितत्वात्तद्द्वारा वैराजमपि साम तेषु प्रोतमिति भावः ॥१६॥

इति द्वितीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

ऋतुषु सम्यग्वृत्तेषु लोकस्थितेः प्रसिद्धत्वादृतुदृष्ट्यनन्तरं लोकदृष्टिमाह—पृथिवीति। कथं शक्वर्य इत्येकस्यैव साम्नो नामधेयं बहुवचनाद्धि बहूनि सामानि प्रतीयन्ते तत्राऽऽह—शक्वर्य इतीति। नित्यबहुवचनत्वमुभयत्र तुल्यमिति द्योतनाय वक्ष्यमाणं दृष्टान्तयति—रेवत्य इवेति। महानाम्नीषु ऋक्षु शक्वर्यो गीयन्ते। तासां चाऽऽपो वै महानाम्नीरित्यद्भिः संबन्धः स्मृतः। अप्सु लोकाः प्रतिष्ठिता इति

जो उपासक वैराज साम को ऋतुओं में प्रतिष्ठित जानता है, वह प्रजा, पशु, तेज, आयु से युक्त होता है जैसे ऋतुओं को अपने धर्मों में स्थित देखा जाता है। उस उपासक को ऋतुओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए—यह उसके लिए व्रत है ॥ २ ॥

'पृथिवी हिंकार है' इत्यादि, व्याख्यान पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। "रेवत्यः" के समान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्-व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः)

अजा हिंकारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः ॥१॥

वह जो पुरुष इस प्रकार इस शक्वरी साम को लोकों में व्याप्त जानता है, वह लोकवान् है, सम्पूर्ण आयु को प्राप्त करता है। उज्ज्वल जीवन विताता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। लोकों की निन्दा न करे; यह शक्वरी सामोपासक के लिये) व्रत है ॥२॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

पशुओं में रेवती सामोपासना

बकरी हिंकार है, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएँ उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं, पुरुष निधन है। रेवती साम पशुओं में ओत-प्रोत है ॥१॥

लोकेषु प्रोताः ॥१॥

लोकी भवति लोकफलेन युज्यत इत्यर्थः। लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

अजा हिंकार इत्यादि पूर्ववत्। पशुषु प्रोताः ॥१॥

च श्रुतम्। यथा चास्मात्संबन्धाल्लोकेषु शक्वर्यः प्रतिष्ठिता इत्याह—लोकेष्विति ॥१॥ ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

पशूनां लोककार्यत्वाल्लोकदृष्ट्यनन्तरं पशुदृष्टिमुपन्यस्यति—अजेति। रेवत्य इति सामनाम... पूर्ववन्नित्यबहुचनान्तम्। पशवो वै रेवतीरिति श्रुत्यन्तरमाश्रित्याऽऽह—पशुष्विति ॥१॥

'शक्वर्यः' नित्य बहुवचन शब्द है अर्थात् ये शक्वरी साम लोकों में प्रतिष्ठित हैं ॥ १ ॥

शक्वरी साम का उपासक लोकफल से युक्त हो जाता है। उस उपासक को लोक की निन्दा न करने का व्रत लेना चाहिए ॥ २ ॥

'बकरी हिंकार है'—अवशिष्ट मन्त्र का व्याख्यान पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। यह रेवती साम पशुओं में प्रतिष्ठित है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान्भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः)

लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम् ॥ १ ॥

वह जो पुरुष इस प्रकार साम को पशुओं में व्याप्त जानता है, वह पशुमान् होता है, पूर्ण आयुष्मान् होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है। प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है, पशुओं की निन्दा न करे; यह (रेवती सामोपासक के लिये) व्रत है ॥२॥

॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

यज्ञायज्ञीय सामोपासना

लोम हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्गीथ है, अस्ति प्रतिहार है और मज्जा निधन है। यह यज्ञायज्ञीय साम देह के अवयवों में व्याप्त है ॥१॥

पशून्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

लोम हिंकारो देहावयवानां प्राथम्यात् । त्वक्प्रस्ताव आनन्तर्यात् । मांसमुद्गीथः श्रैष्ठ्यात् । अस्थि प्रतिहारः प्रतिहृतत्वात् । मज्जा निधनमान्त्यात् । एतद्यज्ञायज्ञीयं नाम साम देहावयवेषु प्रोतम् ॥१॥

॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

पशुविकारपयोदध्यादिना पुष्टिरङ्गानां दृष्टेति पशुदृष्ट्यनन्तरमङ्गदृष्टिमाह—लोमेति । रसो वै यज्ञायज्ञीयमिति श्रुतेरन्नरसविकारेण लोमादीनां संबन्धाद्यज्ञायज्ञीयं सामाङ्गेषु प्रतिष्ठितमित्याह—एतदिति ॥१॥

रेवती साम के उपासक के लिए पशुओं की निन्दा न करने के लिए व्रत ले लेना चाहिए ॥२॥

शरीर के अवयवों में प्रथम होने के कारण लोम हिंकार हैं। आनन्तर्य समान होने से त्वचा प्रस्ताव है। श्रेष्ठता गुण दोनों में होने से मांस उद्गीथ है। प्रतिहरण दोनों में होने से अस्थि प्रतिहार है। मज्जा निधन है क्योंकि दोनों अन्तिम अवस्था के सूचक हैं। यह यज्ञायज्ञीय नाम का साम देह के अवयवों में प्रतिष्ठित है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा ॥ २ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः)

अग्निर्हिंकारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम् ॥ १ ॥

वह जो पुरुष इस प्रकार यज्ञायज्ञीय साम को अङ्गों में व्याप्त जानता है, वह पूर्णाङ्ग होता है अङ्ग के कारण कुटिल नहीं होता। अर्थात् लंगड़ा या दाढ़ी-मूँछरहित नहीं होता। पूर्ण आयुष्मान् है, उज्ज्वल जीवन विताता है, प्रजा, पशुओं के कारण महान् होता है और कीर्ति के कारण भी म होता है। एक वर्ष तक मांस मत्स्य का भक्षण न करे; यह व्रत है, या सर्वदा मांसादि भक्षण न करे।

॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

राजन सामोपासना

सर्व प्रथम होने से अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहा चन्द्रमा निधन है, (क्योंकि उसी में कर्मकाण्डियों का निधन होता है) यह राजन साम देवता ओत-प्रोत है ॥१॥

अङ्गी भवति समग्राङ्गो भवतीत्यर्थो नाङ्गेन हस्तपादादिना विहूर्छति न कुटि भवति पङ्गुः कुणी वेत्यर्थः। संवत्सरं संवत्सरमात्रं मज्ज्ञो मांसानि नाश्नीयान्न भक्षये बहुवचनं मत्स्योपलक्षणार्थम्। मज्ज्ञो नाश्नीयात्सर्वदैव नाश्नीयादिति वा, तद्व्रतम्॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

अग्निर्हिंकारः प्रथमस्थानत्वात्। वायुः प्रस्ताव आनन्तर्यसामान्यात्। आदि

कुणिः श्मश्रुरहितः ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

अग्न्यादीनामङ्गेषु प्रतिष्ठितत्वादङ्गदृष्ट्यनन्तरमग्न्यादिदृष्टिमुत्थापयति—अग्निरित्यादि

जो भी उपासक यज्ञायज्ञीय साम की उपासना करता है, वह पूर्ण अङ्ग-अवयवों से युक्त है, हस्त-पादादि से कुटिल अर्थात् लूला-लंगड़ा या दाढ़ी-मूँछ रहित नहीं होता। वह उपासक पर्यन्त मांस न खाए अथवा सर्वदा ही मांस न खाए—ऐसा व्रत धारण करे। मन्त्र में 'मज्ज्ञः' बहु वचन मत्स्य आदि का उपलक्षण है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाꣳ सलोकताꣳ सार्ष्टिताꣳ सायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम् ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

वह जो पुरुष इस प्रकार साम को देवताओं में व्याप्त जानता है, उन्हीं देवताओं के सालोक्य समान ऐश्वर्य रूप सार्ष्टित्व और परस्पर मेलन रूप सायुज्य को प्राप्त होता है। वह पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान् होता है, तथा कीर्ति के कारण भी महान् होता है। ब्राह्मणों की निन्दा न करे; यह उसके लिये नियम है ॥२॥

॥ इति विंश: खण्ड: ॥

उद्गीथः श्रैष्ठ्यात् । नक्षत्राणि प्रतिहारः प्रतिहृतत्वात् । चन्द्रमा निधनं कर्मिणां तन्निधनात् । एतद्राजनं देवतासु प्रोतं देवतानां दीप्तिमत्त्वात् ॥१॥

विद्वत्फलम्—एतासामेवाग्न्यादीनां देवतानां समानलोकतां सार्ष्टितां समानर्द्धित्वं सायुज्यं सयुग्भावमेकदेहदेहित्वमित्येतत् । वाशब्दोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः । सलोकतां वेत्यादि । भावनाविशेषतः फलविशेषोपपत्तेः । गच्छति प्राप्नोति । समुच्चयानुपपत्तेश्च ।

राजनस्य साम्नो देवतासु प्रोतत्वे हेतुमाह—देवतानामिति ॥१॥

फलविकल्पार्थं वाशब्दस्यात्र सत्त्वे कथं वाक्यं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—सलोकतां वेत्यादीति । कथं पुनरेकस्मिन्नुपासने फलत्रयं विकल्प्यते तत्राऽऽह—भावनेति । ननु फलत्रयमत्र समुच्चितमिष्यतां किमिति वाशब्दं गृहीत्वा विकल्प्यते तत्राऽऽह—समुच्चयेति । न हि मिथो विरुद्धं फलत्रयमेकत्र समुच्चेतुं शक्यमतो विकल्पसिद्धिरित्यर्थः । ननु देवतादृष्ट्या राजनस्य साम्नो ध्यानाद्देवता न

अग्न्यादि के अङ्गों में प्रतिष्ठित रहने के कारण अङ्गदृष्टि के पश्चात् अग्न्यादि दृष्टि का विधान किया जाता है। प्रथम स्थान होने के कारण अग्नि हिंकार है। दोनों में आनन्तर्य की समानता होने से वायु प्रस्ताव है। श्रेष्ठ होने के कारण वायु उद्गीथ है। नक्षत्र प्रतिहार हैं क्योंकि दोनों ही प्रतिहृत होते हैं। चन्द्रमा निधन है क्योंकि कर्मकाण्डी वहीं समा जाते हैं। यह राजन साम देवताओं में प्रतिष्ठित है क्योंकि देवता कान्तियुक्त हुआ करते हैं ॥ १ ॥

राजन साम की उपासना का विद्वान् को यह फल है, वह इन अग्नि आदि देवताओं के समान लोक, समृद्धि तथा इनसे परस्पर सम्मिलन रूप संयोग को प्राप्त करता है। मन्त्र में "वा" शब्द लुप्त समझना चाहिए। सालोक्य, सार्ष्टि अथवा सायुज्य प्राप्त करता है—यह अर्थ है। एक की उपासना में फलत्रय का विकल्प इसलिए है क्योंकि भावनाविशेष से फलविशेष की प्राप्ति होती है। साथ ही तीनों फलों का एक साथ प्राप्त हो जाना असंभव है। इस उपासक का यह व्रत होना चाहिए कि ब्राह्मणों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः)

त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम् ॥१॥

सभी में साम उपासना

(सम्पूर्ण कर्मों के आरम्भ में होने के कारण) त्रयी विद्या हिंकार है, (इनके कार्य होने से) तीन लोक प्रस्ताव हैं। अग्नि, वायु और आदित्य ये (उत्कृष्टता के कारण) उद्गीथ हैं; नक्षत्र, (पक्षी और) किरणें—ये प्रतिहार हैं, विषधर सर्प, गन्धर्व और पितृगण—ये निधन हैं। यह सामोपासना (नाम विशेष के अभाव से) सब में ओत-प्रोत है ॥१॥

ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम्। एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद्ब्राह्मणा इति श्रुतेर्ब्राह्मणनिन्दा देवतानिन्दैवेति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

त्रयी विद्या हिंकारः। अग्न्यादिसाम्न आनन्तर्यं त्रयीविद्याया अग्न्यादिकार्यत्वश्रुतेः। हिंकारः प्राथम्यात्सर्वकर्तव्यानाम्। त्रय इमे लोकास्तत्कार्यत्वादनन्तराः प्रस्तावः। अग्न्यादीनामुद्गीथत्वं श्रैष्ठ्यात्। नक्षत्रादीनां प्रतिहृतत्वात्प्रतिहारत्वम्। सर्पादीनां धकारसामान्यान्निधनत्वमेतत्साम नामविशेषाभावात्साससमुदायः साम

निन्देदिति वक्तव्ये कथमन्यथोच्यते तत्राऽऽह—एत इति ॥२॥

इति द्वितीयाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

अग्न्यादिदृष्ट्यनन्तरं त्रयीविद्यादृष्टिविधाने कारणमाह—अग्न्यादीति। यदग्न्यादिसामोपास्यमुक्तं तस्मादानन्तर्यमुपास्यायास्त्रयीविद्याया युज्यते। ऋग्वेदोऽग्नेर्यजुर्वेदो वायोरादित्यात्सामवेद इति श्रुतेस्त्रय्यास्तत्कार्यत्वावगमादित्यर्थः। तत्कार्यत्वात्त्रयीसाध्यकर्मफलत्वादित्यर्थः।

निन्दा न करे। "ये ब्राह्मण लोग प्रत्यक्ष देवता हैं" इस श्रुतिवचन से भी ध्वनित होता है कि ब्राह्मण-निन्दा देवतानिन्दा ही है ॥ २ ॥

अग्न्यादिदृष्टि के अनन्तर त्रयीविद्या दृष्टि का निरूपण किया जाता है। त्रयीविद्या हिंकार है। अग्न्यादि साम का आनन्तर्य एवं त्रयीविद्या का अग्न्यादि कार्य होना श्रुति में प्रसिद्ध है। सब में हिंकार सर्वप्रथम आता है। त्रयीविद्या से साध्य कर्मफल होने से तीन लोक प्रस्ताव हैं क्योंकि अनन्तर में आते हैं। अग्नि, वायु व आदित्य श्रेष्ठ होने से उद्गीथ हैं। नक्षत्र, पक्षी और किरणें प्रतिहार हैं क्योंकि ये ले जाये जाते हैं। धकार साम्य होने से सर्प, गन्धर्व और पितर निधन हैं। नामविशेष के अभाव होने से साम समुदायक साम शब्द का संबन्ध सब में समझ लेना चाहिए।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳ ह भवति ॥२॥

तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति ॥३॥

सर्व विषयक सामोपासना का फल

जो इस प्रकार सब में व्याप्त इस साम को जानता है, वह सर्वरूप हो जाता है॥२॥

इस सामोपासना का उत्कर्ष

इस विषय में यह मन्त्र भी है, जो पाँच प्रकार के तीन-तीन कहे गये हैं, उन पाँच त्रिकों की अपेक्षा महान् इनसे भिन्न कोई नहीं है (अर्थात् इन्हीं में सम्पूर्ण वस्तुओं का अन्तर्भाव है) ॥३॥

सर्वस्मिन्प्रोतम् । त्रयीविद्यादि हि सर्वम् । त्रयीविद्यादिदृष्टचा हिंकारादिसामभक्तय उपास्याः । अतीतेष्वपि सामोपासनेषु येषु येषु प्रोतं यद्यत्साम तद्दृष्टचा तदुपास्यमिति । कर्माङ्गानां (णां) दृष्टिविशेषणाज्यस्येव संस्कार्यत्वात् ॥१॥

सर्वविषयसामविदः फलं—सर्वं ह भवति सर्वेश्वरो भवतीत्यर्थः । निरुपचरित-सर्वभावे हि दिक्स्थेभ्यो बलिप्राप्त्यनुपपत्तिः ॥२॥

तदेतस्मिन्नर्थे एष श्लोको मन्त्रोऽप्यस्ति । यानि पञ्चधा पञ्चप्रकारेण हिंकारादि-

---

सर्वस्मिन्प्रोतमित्युक्तं त्रयीविद्यादौ प्रोतमिति वक्तव्यत्वादत आह—त्रयीविद्यादीति । कथं पुनरत्र त्रयीविद्यादिदृष्टचा साम्नो ध्येयत्वं गम्यते तत्राऽऽह—त्रयीति । न चास्यां प्रतिज्ञायां पूर्वेण संदर्भेण विरोधः शङ्कामर्हतीत्याह—अतीतेष्वपीति । तत्र हेतुमाह—कर्माङ्गाना(णा)मिति । दर्शपूर्ण-मासाधिकारे पत्न्यवेक्षितमाज्यं भवतीति दृष्टिविशेषणमाज्यं संस्क्रियते । तथा सामप्रभेदानां दृष्टिविशेष-णत्वाविशेषात्तेषां कर्माङ्गानां(णां) तत्तदनङ्गदृष्टचा संस्कर्तव्यत्वादित्यर्थः ॥१॥

अथ यथाश्रुतं सर्वात्मत्वमेव किं न स्यादत आह—निरुपचरितेति ॥२॥

सर्वविषयसामविदः सर्वेश्वरत्वमित्यत्र मन्त्रं संवादयति—तदेतस्मिन्निति । परमित्यस्यैव

त्रयीविद्यादि ही सब कुछ है, अतः त्रयीविद्यादि दृष्टि से हिंकारादि साम उपासनाओं का अनुष्ठान करना चाहिए । पूर्व-पूर्व प्रसङ्गों में भी जिन-जिन सामोपासनाओं में ये साम प्रतिष्ठित है, उस-उस दृष्टि से उसकी उपासना करनी चाहिए । जिस प्रकार कर्माङ्गों में दृष्टि विशेष आज्य का दर्श-पूर्णमास में संस्कार होता है; इसी प्रकार साम के भेदों में तत्तदङ्ग दृष्टि द्वारा संस्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

सर्वात्मक सामोपासक विद्वान् सामोपासना से सर्वेश्वर हो जाता है । सर्वात्मभाव का उपचार नहीं होगा तो 'सम्पूर्ण दिशाओं में स्थित पुरुष इस उपासक को भेंट उपस्थित करते हैं' ऐसी श्रुति असंगत हो जाएगी ॥ २ ॥

'उपासक के सर्वेश्वर हो जाने में' यह मन्त्र भी है । जो पाँच प्रकार के हिंकारादि विभाग कहे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳ सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम् ॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

(अथ द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः)

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं

जो पुरुष इस सर्वात्मक साम को जानता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। सम्पूर्ण दिशाओं में रहने वाले पुरुष इस उपासक को भेंट उपस्थित करते हैं। "मैं सब कुछ हूँ" इस प्रकार इस साम की उपासना करे; (उपासक के लिए) यह नियम है, यह नियम है ॥४।

॥ इति एकविंशः खण्ड ॥

विनर्दि गुणयुक्त सामोपासना

साम के (बैल के शब्द के समान) विनर्दि नामक गान का वरण करता है, वह पशुओं के लिए हितकर है और अग्निदेवता संबन्धी उद्गीथ है। प्रजापति संबन्धी उद्गीथ विशेष रूप से विपरीत

विभागैः प्रोक्तानि त्रीणि त्रयीविद्यादीनि तेभ्यः पञ्चत्रिकेभ्यो ज्यायो महत्तरं व्यतिरिक्तमन्यद्वस्त्वन्तरं नास्ति न विद्यत इत्यर्थः। तत्रैव हि सर्वस्यान्तर्भावः ॥३॥

यस्तद्यथोक्तं सर्वात्मकं साम वेद स वेद सर्वं स सर्वज्ञो भवतीत्यर्थः। सर्वा दिशः सर्वदिक्स्था अस्मा एवंविदे बलिं भोगं हरन्ति प्रापयन्तीत्यर्थः। सर्वमस्मि भवामीत्येवमेतत्सामोपासीत तस्यैतदेव व्रतम्। द्विरुक्तिः सामोपासनसमाप्त्यर्था ॥४॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

सामोपासनप्रसङ्गेन गानविशेषादिसंपदुद्गातुरुपदिश्यते। फलविशेषसंबन्धात्

व्याख्यानमन्यदिति। वस्त्वन्तराभावे हेतुमाह—तत्रैवेति। सर्वज्ञत्वं सर्वेश्वरत्वं च तच्छब्दार्थः ॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

सामोपासनं समाप्तं चेत्किमुत्तरग्रन्थेनेत्याशङ्क्याऽऽह—सामेति। आदिशब्देन स्वरादयो गृह्यन्ते। किमित्युद्गातुर्यथोक्तोपास्तिरुच्यते तत्राऽऽह—फलेति। मृत्युपरिहारादिः फलविशेष

गए हैं तथा त्रयी विद्या आदि तीन-तीन कहे गये हैं; उन पाँच त्रिकों से श्रेष्ठ कोई दूसरी वस्तु नहीं है। उसी में सभी का अन्तर्भाव है ॥ ३ ॥

जो भी कोई विद्वान् उपासक पूर्वोक्त सर्वात्मक साम की उपासना करता है, वह सर्वज्ञ हो जाता है। समस्त दिशाओं में रहने वाले पुरुष इस उपासक को भेंट प्राप्त कराते हैं। 'मैं भी सर्वात्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार साम की उपासना करे, उसके लिए यही व्रत है। मन्त्र में 'तद्व्रतम्' की द्विरावृत्ति सामोपासना की पूर्णता ज्ञापन करने के लिए है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत् ॥१॥

नहीं किया जा सकता है। सोम देवता संबन्धी उद्गीथ स्पष्ट है। वायु का मृदुल और श्लक्षण (उच्चारण करने में सरल) है। इन्द्र का श्लक्षण और (अधिक प्रयत्न सापेक्ष होने से) बलवान् है। बृहस्पति का क्रौञ्च (क्रौञ्चपक्षी के शब्द के समान) है और वरुण का अपध्वान्त (फूटे हुए काँसे के स्वर के समान) है। इन सभी गान का प्रयोग करे; केवल वरुण संबन्धी गान का परित्याग करे ॥१॥

विनर्दि विशिष्टो नर्दः स्वरविशेष ऋषभकूजितसमोऽस्यास्तीति विनर्दि गानमिति वाक्यशेषः। तच्च साम्नः संबन्धि पशुभ्यो हितं पशव्यमग्नेरग्निदेवत्यं चोद्गीथ उद्गानम्। तदहमेवं विशिष्टं वृणे प्रार्थय इति कश्चिद्यजमान उद्गाता वा मन्यते। अनिरुक्तोऽमुकसम इत्यविशेषितः प्रजापतेः प्रजापतिदेवत्यः स गानविशेषः। आनिरुक्त्यात्प्रजापतेर्निरुक्तः स्पष्टः। सोमस्य सोमदेवत्यः स उद्गीथ इत्यर्थः। मृदु श्लक्ष्णं च गानं वायोर्वायुदेवत्यं तत्। श्लक्ष्णं बलवच्च प्रयत्नाधिक्योपेतं चेन्द्रस्यैन्द्रं तद्गानम्। क्रौञ्चं क्रौञ्चपक्षिनिनादसमं बृहस्पतेर्बार्हस्पत्यं तत्। अपध्वान्तं भिन्नकांस्यस्वरसमं वरुणस्यैतद्गानम्। तान्सर्वानेवोपसेवेत प्रयुञ्जीत वारुणं त्वेवैकं वर्जयेत् ॥१॥

त्संबन्धादेषोपास्तिरनुष्ठेयेत्यर्थः। पशुभ्यो हितत्वमस्य वचनादवगमयितव्यम्। वाक्यस्थमितिशब्दं व्याचष्टे—इति कश्चिदिति। इत्यविशेषितः। अनेन प्रकारेणायमिति विशेषितो व्यवच्छिद्य ज्ञातो न भवतीत्यर्थः। तस्य प्राजापत्यत्वे हेतुमाह—आनिरुक्त्यादिति। नीलपीतादिभिर्निश्चित्यावचनादित्यर्थः ॥१॥

सामोपासना समाप्त हो गया, फिर आगे का ग्रन्थ किस उद्देश्य से निरूपित किया जाता है। सामोपासना के प्रसङ्ग से गानविशेष में स्वरादि वर्ण की संपत् उद्गाता के लिए कही जाती है। मृत्यु पर जय प्राप्त करने के लिए विशिष्ट फल के संबन्ध होने से इस उपासना का अनुष्ठान करना चाहिए। कोई यजमान अथवा उद्गाता मानता है कि 'पशुओं के लिए हितकारक अग्नि देवता संबन्धी साम के विनर्दि गान का मैं वरण करता हूँ'। 'विनर्दि' एक विशिष्ट प्रकार का स्वर है, जो ऋषभ के शब्द के समान है। प्रजापतिसंबन्धी गान को 'यह इस प्रकार है' इस तरह भेद करके नहीं गाया जा सकता। अनिरुक्त प्रजापति का नील-पीतादि निरुक्त स्पष्ट है, वह सोम देवता संबन्धी उद्गान है। वायु देवता का उद्गान कोमल एवं गान करने में सरल है। इन्द्र देवता का उद्गान सरलता के साथ प्रयत्नाधिक्य वाला (तार सप्तक) होने से बलवान् है। क्रौञ्च पक्षी के स्वर के समान बृहस्पति देवता का उद्गान है। फूटे हुए कास्यपात्र के बजने के स्वर के समान वरुण का उद्गान है। इस तरह सभी गायकी का अभ्यास करे, केवल वरुण संबधी गान का अभ्यास न करे ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायानीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत ॥२।

सर्वे स्वरा इन्द्रस्याऽऽत्मानः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्र ७ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥३॥

स्तुति के समय में ध्यान विधि

मैं देवताओं के लिए अमृतत्व का आगान करूँ, (इस प्रकार चिन्तन करते हुए) आगान क पितरों के लिए स्वधा का (आगान करूँ) मनुष्यों के लिये प्रार्थित वस्तु का, पशुओं के लिए तृ का, यजमान के लिए स्वर्ग लोक का और अपने लिए अन्न का आगान करूँ। इस प्रकार इन्हें म चिन्तन करते हुए (स्वर, ऊष्म और व्यञ्जनादि के उच्चारण में) प्रमाद रहित होकर स्तुति करे।

स्वरादि वर्णों की देवरूपता

अकारादि सभी स्वर इन्द्र (प्राण) की आत्मा हैं, सभी ऊष्म वर्ण प्रजापति की आत्मा सभी स्पर्श वर्ण मृत्यु की आत्मा हैं। (इस प्रकार जानने वाले) उद्गाता को यदि कोई स्व उच्चारण में (तूने दोषयुक्त स्वर का प्रयोग किया है इस प्रकार) उपालम्भ दे, तो वह उसे उत्तर कि मैं इन्द्र के शरणापन्न हूँ, वही तुझे उत्तर देगा ॥३॥

अमृतत्वं देवेभ्य आगायानि साधयानि। स्वधां पितृभ्य आगायान्याशां मनुष्ये आशां प्रार्थनां प्रार्थितमित्येतत्। तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्म मह्यमागायानीत्येतानि मनसा चिन्तयन्ध्यायन्नप्रमत्तः स्वरोष्मव्यञ्जनादि स्तुवीत ॥२॥

सर्वे स्वरा अकारादय इन्द्रस्य बलकर्मणः प्राणस्याऽऽत्मानो देहावयवस्थानीया

स्वरविशेषज्ञानपूर्वकमुद्गानकाले ध्यातव्यार्थमाह—अमृतत्वमिति। स्वरोष्मव्यञ्जनादि इत्यत्राऽऽदिशब्देन स्थानप्रयत्नादिसंग्रहः ॥२॥

केनाप्याक्षिप्तस्योद्गातुरुद्गानकाले प्रतीकारज्ञानाय स्वरादिदेवताज्ञानमुपन्यस्यति—

'देवताओं के लिए अमृतत्व गान की साधना करूँ, पितरों के लिए स्वधा की स्वरसाधना तथा मनुष्यों के लिए प्रार्थित भोगसामग्री की, पशुओं के लिए तृणोदक की, यजमान के लिए स्वर्ग की, अपने लिए अन्नहेतुक स्वरसाधना करूँ'। इस प्रकार इन सभी विषयों का मन से ध्यान करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिँ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनँ स्पर्शेषूपालभेत मृत्युँ शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥४॥

और यदि कोई पुरुष इसे ऊष्म वर्णों के उच्चारण में दोष दिखलावे, तो वह उससे कहे—कि मैं प्रजापति के शरणापन्न हूँ, वही तुझे पीसेगा और यदि कोई इसे स्पर्श वर्णों के उच्चारण में उलाहना दे, तो उससे कहे कि मैं मृत्यु के शरणापन्न हूँ, वही तुझे जला डालेगी ॥४॥

सर्वे ऊष्माणः शषसहादयः प्रजापतेर्विराजः कश्यपस्य वाऽऽत्मानः। सर्वे स्पर्शाः कादयो व्यञ्जनानि मृत्योरात्मानस्तमेवंविदमुद्गातारं यदि कश्चित्स्वरेषूपालभेत स्वरस्त्वया दुष्टः प्रयुक्त इत्येवमुपालब्ध इन्द्रं प्राणमीश्वरं शरणमाश्रयं प्रपन्नोऽभूवं स्वरान्प्रयुञ्जानोऽहं स इन्द्रो यत्तव वक्तव्यं त्वा त्वां प्रति वक्ष्यति स एव देव उत्तरं दास्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ३ ॥

अथ यद्येनमूष्मसु तथैवोपालभेत प्रजापतिं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यति संचूर्णयिष्यतीत्येनं ब्रूयात्। अथ यद्येनं स्पर्शेषूपालभेत मृत्युं शरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यति भस्मी करिष्यतीत्येनं ब्रूयात् ॥ ४ ॥

स्वरा इति। शषसहादय इत्यादिशब्दस्तदवान्तरभेदाभिप्रायः। यत्तव वक्तव्यमित्यस्मादूर्ध्वं तच्छब्दो द्रष्टव्यः ॥३॥

तथैव स्वरेष्विवेति यावत् ॥४॥

विना प्रमाद के सतर्कता पूर्वक स्वर, व्यञ्जन और ऊष्मादि वर्णों से स्तुति करे ॥ २ ॥

सभी स्वर शक्ति सम्पादन करने वाले प्राण के देहावयवस्थानीय आत्मा हैं। श, ष, स, ह आदि सभी ऊष्म वर्ण विराट् प्रजापति अथवा कश्यप की आत्मा हैं। ककारादि सभी स्पर्श वर्ण मृत्यु की आत्मा हैं। इस प्रकार स्वरादि देवता के ज्ञान वाले उद्गाता को स्वरादि उच्चारण करते हुए कोई उलाहना दे कि तूने स्वर प्रयोग में स्खलन किया है, तो वह उसे विना विक्षिप्त हुए उत्तर दे कि मैं तो प्राणमय ईश्वर के आश्रय हूँ, इस विषय में जो कुछ कहना चाहिए, उसका उत्तर वही तुझे देगा ॥ ३ ॥

स्वरादि की तरह यदि इस उपासक को श-ष-स-ह आदि ऊष्म वर्णों के उच्चारण में कोई उलाहना दे, तो वह उससे कहे कि 'मैं विराट् की शरण में हूँ, वही तेरा गर्व चूर्ण करेगा'। यदि कोई इस उद्गाता को स्पर्श वर्णों के उच्चारण में उलाहना दे, तो वह उसे उत्तर दे 'मैंने मृत्यु देवता की शरण ली है, वही तुम्हें भस्म करेगा' ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥५॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

वर्णों के उच्चारण काल में चिन्तनीय वस्तु

सभी स्वर घोषयुक्त और बलयुक्त बोलने चाहिएँ। अतः (उनका उच्चारण करते समय) इन्द्र में बल का आधान करूँ। ऐसा (चिन्तन करना चाहिये, ऐसा ही) समस्त ऊष्म वर्ण ... भीतर प्रवेश किये बिना बाहर निकले और विस्तृत प्रयत्न से युक्त उच्चारण करना चाहिये। (... उनका उच्चारण करते समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि) मैं प्रजापति को आत्मदान करूं ... सम्पूर्ण स्पर्श वर्ण को एक दूसरे से थोड़ा भी न मिलाकर बोलना चाहिये और "मैं मृत्यु से अपने ... हटाऊँ" (उस समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये) ॥५॥

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

यत इन्द्राद्यात्मानः स्वरादयोऽतः सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या ... तथाऽहमिन्द्रे बलं ददानि बलमादधानीति। तथा सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अन्तरप्रवेशि... अनिरस्ता बहिरप्रक्षिप्ता विवृता विवृतप्रयत्नोपेताः प्रजापतेरात्मानं परिददानि प्रयच्छा... नीति। सर्वे स्पर्शा लेशेन शनकैरनभिनिहिता अनभिनिक्षिप्ता वक्तव्या मृत्योरात्मा...

देवताज्ञानबलेनोद्गात्रा न प्रमत्तेन भवितव्यं स्वरादीनामन्यथोच्चारणे देवताभेदप्रसङ्गा... स्वराद्युच्चारणे तात्पर्यं कर्तव्यमित्युद्गातारं शिक्षयति—यत इति। प्रयोगकाले चिन्तनीयमर्थं कथयति... तथेति। यथोक्तरीत्या स्वराणां प्रयोगावस्थायामित्यर्थः। आदधानीति चिन्तयेदिति शेषः। तथेत्यु... प्रयोगावस्थायामिति यावत्। विवृतप्रयत्नोपेताः प्रयोक्तव्या इति शेषः। तत्रापि ध्यातव्यं दर्शयति... प्रजापतेरिति। अतिद्रुतोच्चारणेन वर्णो वर्णान्तरे यथा निक्षिप्तो न भवति तथा प्रयुज्यमान...

सभी स्वरादि प्राण के देहावयवस्थानीय आत्मा हैं, इसलिए सभी स्वरों का घोषयुक्त एवं ब... युक्त प्रकार से उच्चारण करना चाहिए। यथोक्त रीति से स्वर के प्रयोग में 'मैं इन्द्र में बल आधान करूँ' इस प्रकार भावना करनी चाहिए। इसी प्रकार ऊष्म वर्णों के प्रयोग में ऐसी भाव... करनी चाहिए कि मैं प्रजापति को आत्म समर्पण करूँ, तथा उन्हें बिना अन्तःप्रवेश कराए, बिना ब... निकाले, विस्तृत प्रयत्न से युक्त हो उच्चारण करना चाहिए। एवं सभी स्पर्श वर्णों का धीरे-... उच्चारण करना चाहिए ताकि जल्दबाजी में वर्णों का एक दूसरे से मिला हुआ होना न सुनाई दे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः)

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति ॥ १ ॥

धर्म के तीन स्कन्ध हैं

धर्म के आधार स्तम्भ तीन हैं। अग्निहोत्रादि यज्ञ, (नियम पूर्वक ऋग्वेदादि का अभ्यास रूप) अध्ययन और (वेदी के बाहर यथाशक्ति द्रव्य प्रदान रूप) दान, यह पहला स्कन्ध है (यानी ये गृहस्थों से अनुष्ठेय हैं)। कृच्छ्रचान्द्रायणादि तप ही दूसरा धर्म स्कन्ध है (जो केवल आश्रम धर्म में स्थित परिव्राजक के लिये अनुष्ठेय है)। आचार्य कुल में रहने वाला ब्रह्मचारी है, जो आचार्य कुल में ही अपने शरीर को नियम-व्रतादि से अत्यन्त क्षीण कर देता है, वह तीसरा धर्म स्कन्ध है। ये सभी पुण्यलोक के भागी होते हैं। (चतुर्थ परिव्राजक तो) ब्रह्म में सम्यक् प्रकार से स्थित अमृतत्व को प्राप्त करता है ॥१॥

बालानिव शनकैः परिहरन् मृत्योरात्मानं परिहराणीति ॥ ५ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

ओंकारस्योपासनविध्यर्थं त्रयो धर्मस्कन्धा इत्याद्यारभ्यते। नैवं मन्तव्यं सामावयवभूतस्यैवोद्गीथादिलक्षणस्योंकारस्योपासनात्फलं प्राप्यत इति। किं तर्हि यत्सर्वैरपि

भिनिक्षिप्तत्वम्। मृत्योरात्मानमिति वाक्योपादानं तस्यार्थमाह—बालानिवेति। यथा लोकः शनकैर्जलादिभ्यो बालान्परिहरति तथा मृत्योरात्मानमहं परिहराणीति ध्यात्वा स्पर्शानां प्रयोगः कर्तव्य इत्यर्थः ॥५॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

अधिकृताधिकाराण्यङ्गावबद्धान्युपासनान्युक्तानि। संप्रति स्वतन्त्राधिकारिगोचरमोंकारोपासनं विधातुमारभते—ओंकारेति। अङ्गावबद्धोपासनाधिकारे यथोक्तस्वतन्त्रोपासनविधाने कोऽभिप्रायः श्रुतेरित्याशङ्क्याऽऽह—नैवमिति। न स्वतन्त्रस्य तस्योपासनादित्येवकारार्थः। कथं तर्हि मन्तव्यमित्यपेक्षायामाह—किं तर्हीति। सनियमस्य प्राङ्मुखत्वादिनियमसहितस्य पुरुषस्येति

समय ऐसा चिन्तन करे—'जिस प्रकार लोग बच्चों को जलादि से दूर हटाते हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने को मृत्यु से परे हटाऊँ'॥ ५ ॥

ओंकारोपासना के विधान के अनन्तर धर्म के तीन स्कन्धों का व्याख्यान आरम्भ किया जाता है। सामावयवभूत उद्गीथ आदि लक्षण ओंकार की उपासना से फल प्राप्त किया जाता है—ऐसा नहीं समझना चाहिए, बल्कि सभी सामोपासना कर्मों से जो अप्राप्य फल है, वह अमृतत्व फल केवल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सामोपासनैः कर्मभिश्चाप्राप्यं तत्फलममृतत्वं केवलादोंकारोपासनात्प्राप्यत इति तत्स्तुत्यर्थं सामप्रकरणे तदुपन्यासः। त्रयस्त्रिसंख्याका धर्मस्य स्कन्धा धर्मस्कन्धा ध प्रविभागा इत्यर्थः। के त इत्याह—यज्ञोऽग्निहोत्रादिः। अध्ययनं सनियमस्य ऋगादे भ्यासः। दानं बहिर्वेदि यथाशक्तिद्रव्यसंविभागो भिक्षमाणेभ्यः। इत्येष प्रथमो ध स्कन्धः। गृहस्थसमवेतत्वात्तन्निर्वर्तकेन गृहस्थेन निर्दिश्यते प्रथम एक इत्यर्थो द्विती तृतीयश्रवणान्नाऽऽद्यार्थः। तप एव द्वितीयस्तप इति कृच्छ्चान्द्रायणादि तद्वांस्ता परिव्राड्वा न ब्रह्मसंस्थ आश्रमधर्ममात्रसंस्थो ब्रह्मसंस्थस्य त्वमृतत्वश्रवणात्। द्विती धर्मस्कन्धः। ब्रह्मचार्याचार्यकुले वस्तुं शीलमस्येत्याचार्यकुलवासी। अत्यन्तं यावज्जी मात्मानं नियमैराचार्यकुलेऽवसादयन्क्षपयन्देहं तृतीयो धर्मस्कन्धः। अत्यन्तमित्या विशेषणान्नैष्ठिक इति गम्यते। उपकुर्वाणस्य स्वाध्यायग्रहणार्थत्वान्न पुण्यलो ब्रह्मचर्येण। सर्व एते त्रयोऽप्याश्रमिणो यथोक्तैर्धर्मैः पुण्यलोका भवन्ति। पुण्यो ले

यावत्। अभ्यासश्च स्वीकरणं विचारो जपः शिष्येभ्यो दानमावृत्तिश्चेति पञ्चविधः। यद्दीयते तस्य यज्ञाङ्गत्वात्पृथक्फलवत्त्वं नास्तीति मन्वानो विशिनष्टि—बहिर्वेदीति। गृ तदात्मनेत्यर्थः। कथं गृहस्थस्य प्राथम्यं ब्रह्मचारिणस्तथात्वादित्याशङ्क्याऽऽह—एक इत्यर्थ उक्तव्याख्याने वाक्यशेषस्य गमकत्वमाह—द्वितीयेति। प्राथम्यमेव प्रथमशब्दस्य नार्थो ब्रह्मचारिण प्रसिद्धिविरोधादित्याह—नाऽऽद्यार्थ इति। कीदृगत्र परिव्राड्गृह्यते तत्राऽऽह—नेति। कुतोऽत्र ब्रह्म न गृह्यते तत्राऽऽह—ब्रह्मसंस्थस्येति। वानप्रस्थग्रहणममुख्यस्य परिव्राजोऽपि प्रदर्शनार्थम्। ब्रह्म त्यादिवाक्यस्य नैष्ठिकविषयत्वं विशेषणसामर्थ्याद्दर्शयति—अत्यन्तमित्यादीति। अथोपकुर्वा ब्रह्मचारित्वाविशेषात्किमित्युपादानं न भवेत्तत्राऽऽह—उपकुर्वाणस्येति। ननु ब्रह्मचारिणो ब्रह्म पुण्यलोको न श्रूयते तत्राऽऽह—सर्व इति। कथमाश्रमिणां पुण्यलोकत्वविशेषवतां तदात्मकत्वमुच्य

ओंकार की उपासना से प्राप्त हो जाता है। उसकी स्तुति के लिए सामोपासना के प्रसङ्ग में ध तीन विभागों का समावेश किया गया है। यज्ञ, अध्ययन और दान यह धर्म का प्रथम स्कन्ध अग्निहोत्रादि यज्ञ है। पूर्वाभिमुख हो नियमपूर्वक ऋग्वेदादि का अभ्यास अध्ययन है। यज्ञ वे बाहर धनार्थियों को अपने सामर्थ्य के अनुसार द्रव्य वितरण करना दान है। उक्त तीनों कर्म गृ श्रम से सम्बद्ध एवं उसीसे निष्पन्न होने के कारण गृहस्थ से ही अनुष्ठेय हैं। मन्त्र में 'प्रथम' ब्रह्मचारी के अर्थ में नहीं है क्योंकि मन्त्र में द्वितीय एवं तृतीय शब्द का भी श्रवण है, जो गृहस्थ वानप्रस्थ के बोधक नहीं हैं। कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान करना रूप तप ही धर्म का प्रविभाग है। तप का विधान वानप्रस्थ एवं संन्यासी के लिए है। यहाँ परिव्राजक से ब्रह्मनि स्थितप्रज्ञ का ग्रहण अभीष्ट नहीं है क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ आश्रमानुसारी धर्मों के अनुष्ठान में ही चित्त लगाता। श्रुति भी कहती है—"ब्रह्म में स्थिति वाला पुरुष अमृत हो जाता है"। धर्म का स्कन्ध है—गुरुकुल में रहने वाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी जो जीवन पर्यन्त यम-नियमों अपने शरीर को सुखा देता है। मन्त्र में 'अत्यन्त' पद नैष्ठिक स्वरूप का बोधक है क्योंकि उप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

येषां त इमे पुण्यलोका आश्रमिणो भवन्ति। अवशिष्टस्त्वनुक्तः परिव्राड्ब्रह्मसंस्थो ब्रह्मणि सम्यक्स्थितः सोऽमृतत्वं पुण्यलोकविलक्षणममरणभावमात्यन्तिकमेति नाऽऽपेक्षिकं देवाद्यमृतत्ववत्। पुण्यलोकात्पृथगमृतत्वस्य विभागकरणात्।

यदि च पुण्यलोकातिशयमात्रममृतत्वमभविष्यत्ततः पुण्यलोकत्वाद्विभक्तं नावक्ष्यत्। विभक्तोपदेशाच्चाऽऽत्यन्तिकममृतत्वमिति गम्यते। अत्र चाऽऽश्रमधर्मफलोपन्यासः प्रणवसेवास्तुत्यर्थं न तत्फलविध्यर्थम्। स्तुतये च प्रणवसेवाया आश्रमधर्मफलविधये चेति हि भिद्येत वाक्यम्। तस्मात्स्मृतिसिद्धाश्रमफलानुवादेन प्रणवसेवाफलममृतत्वं ब्रुवन्प्रणवसेवां स्तौति। यथा पूर्णवर्मणः सेवा 'भक्तपरिधानमात्रफला राज-

पुण्य इति। आश्रमिषु प्रदर्श्यमानेषु किं परिव्राण्मुख्यो न प्रदर्श्यते तत्राऽऽह—अवशिष्टस्त्विति। कुतो हि पुण्यलोकवैलक्षण्यममृतत्वस्येत्याशङ्क्योक्तम्—आत्यन्तिकमिति। तस्या(स्याऽऽ)पेक्षित(क)त्वाभावे हेतुमाह—पुण्यलोकादिति।

अमृतत्वस्य पुण्यलोकात्पृथग्विभागकरणात्ततोऽन्यत्वादात्यन्तिकत्वसिद्धिरिति योजना। उक्तमेवार्थं व्यतिरेकमुखेन(ण) साधयति—यदि चेत्यादिना। ब्रह्मशब्दस्य यथाश्रुतं मुख्यमर्थं गृहीत्वा परब्रह्मात्मना साक्षात्कारवतो निरङ्कुशममृतत्वमुक्तं प्रकरणालोचनया तु प्रणवप्रतीके ब्रह्मोपासकस्य क्रमेणामृतत्वं भेदबुद्धेरनपायाद्द्रष्टव्यम्। कर्मिणामन्तवत्फलत्वाभिधानेन तन्निन्दया ब्रह्मसंस्थतास्तुतिदर्शनात्तस्याश्च विध्यर्थत्वादमृतत्वकामो ब्रह्मसंस्थः स्यादित्येकार्थपरत्वादेकमिदं वाक्यमित्याह—अत्र चेत्यादिना। स्तुतये फलविधये चेदं वाक्यं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—स्तुतये चेति। अर्थैकत्वादेकं वाक्यं तद्भेदे तद्भेदनियमादित्यर्थः। किंपरं तर्हीदं वाक्यं तत्राऽऽह—तस्मादिति। स्मृतिसिद्धेति। श्रुतेः स्मृत्यर्थानुवादत्वे वैपरीत्यात्तदनुमितश्रुतिसिद्धेति योज्यम्। स्तुतिमेव दृष्टान्तावष्टम्भेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। इतिशब्दो[2]ऽध्याहृतस्तुतय इत्यनेन संबध्यते। ननु ब्रह्मतत्त्वसे-

का स्वाध्याय के लिए ग्रहण होने से बिना नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पुण्यलोक प्राप्ति नहीं होती। स्व-स्वधर्म में रत तीनों आश्रमों के मनुष्य पुण्यलोक प्राप्त करते हैं। उनके लिए पुण्यलोक (स्थायीनिधि) हो जाते हैं। ब्रह्म में स्थित मोक्षधर्मपरायण मुख्य संन्यासी तो पुण्यलोकों से परे अद्वितीय आत्यन्तिक अमृतत्व प्राप्त कर लेता है, देवताओं की तरह सापेक्ष अमृतत्व लाभ नहीं करता क्योंकि अमृतत्व पद पुण्यलोक से विशिष्ट है।

(इसी को व्यतिरेक मुख से सिद्ध किया जाता है—) यदि पुण्यलोक का अतिशय मात्र ही अमृतत्व होता तो पुण्यलोक का विभाग न बतलाया गया होता। विभाग के उपदेश होने से आत्यन्तिक अमृतत्व की सिद्धि हो जाती है। यहाँ आश्रमधर्मों के आचरण का फल इसलिए निरूपित किया गया है कि ओंकार उपासना की स्तुति हो सके, केवल फलविधान के लिए वैसा नहीं किया गया क्योंकि एक ही श्रुतिवाक्य ओङ्कारोपासना की स्तुति एवं आश्रमधर्मफल के विधान के लिए नहीं हो सकता। इसलिए श्रुति-स्मृति सिद्ध आश्रम फल के कथन से 'ओंकारोपासना का फल अमृत है' इस प्रकार प्रतिपादित करते हुए ओंकारोपासना की स्तुति हो जाती है। लोक-व्यवहार में जैसे पूर्णवर्मा की सेवा

१. भक्तमन्नं परिधानं वासः। २. अध्याहृतेन स्तुतय इत्यनेन पदेनेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्मणस्तु सेवा राज्यतुल्यफलेति तद्वत् । प्रणवश्च तत्सत्यं परं ब्रह्म तत्प्रतीकत्वात्
एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परमित्याद्याम्नानात्काठके युक्तं तत्सेवातोऽमृतत्वम्

अत्राऽऽहुः केचिच्चतुर्णामाश्रमिणामविशेषेण स्वकर्मानुष्ठानात्पुण्यलोकतेहो
ज्ञानवर्जितानां सर्वे एते पुण्यलोका भवन्तीति । नात्र परिव्राडवशेषितः । परिव्राजकस्या
ज्ञानं यमा नियमाश्च तप एवेति । तप एव द्वितीय इत्यत्र तपःशब्देन परिव्राट्ता
गृहीतौ । अतस्तेषामेव चतुर्णां यो ब्रह्मसंस्थः प्रणवसेवकः सोऽमृतत्वमेतीति । चतु
मधिकृतत्वाविशेषात् ब्रह्मसंस्थत्वेऽप्रतिषेधाच्च । स्वकर्मच्छिद्रे च ब्रह्मसंस्थता
सामर्थ्योपपत्तेः । न च यववराहादिशब्दवद्ब्रह्मसंस्थशब्दः परिव्राजके रूढः । ब्रह्म

वातोऽमृतत्वं भवति न प्रणवसेवातस्तत्किमिति तस्य स्तुतिरित्याशङ्क्याऽऽह—प्रणवश्चेति । तत्र प्र
दर्शयन्फलितमाह—एतद्ध्येवेति ।

स्वव्याख्यानं वर्जितदोषमुक्त्वा ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीत्यत्र वृत्तिकारीयं व्याख्यानमुत्थापयति
अत्रेति । ये खल्वाश्रमिणश्चत्वारो ज्ञानवर्जितास्तेषां सर्वेषामप्यविशेषेण स्वाश्रमविहितधर्मानुष्ठा
पुण्यलोकभागिता सर्वे एते पुण्यलोका भवन्तीत्यत्रोक्ता । न तु पूर्वस्मिन्ग्रन्थे परिव्राडनुक्तः सन्नव
तोऽस्तीति योजना । ननु पूर्वस्मिन्ग्रन्थे वाचकपदं परिव्राजो नोपलभ्यते तथा चासावत्रोक्त
स्तत्राऽऽह—परिव्राजकस्यापीति । ज्ञानं यमा नियमाश्चोपायभूता इति यावत् । परिव्राडपि पूर्वं
भिहितश्चेद्ब्रह्मसंस्थवाक्यस्य कोऽर्थः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति । परिव्राजकस्यानवशिष्ट
चतुर्णामुपदिष्टत्वाविशेषोऽतःशब्दार्थः । सामान्यनिर्देशे हेतुमाह—चतुर्णामिति । अप्रतिषेधाच्चे
च्छेदः । नन्वाश्रमान्तराणां कर्मार्थत्वात्तत्रैव व्यापृतत्वान्न ब्रह्मसंस्थतायां सामर्थ्यमस्ति परिव्राज
तु निर्व्यापारस्य ब्रह्मसंस्थता सुकरेत्यत आह—स्वकर्मेति । ननु परिव्राजके ब्रह्मसंस्थशब्दो
गवादिशब्दवत् । तन्नासावाश्रमान्तरमास्कन्दति तत्राऽऽह—न चेति । निमित्तमादाय प्रवृत्त

रोटी, कपड़े और मकान के लिए ही होती है, राजवर्मा की सेवा राज्य सदृश फलदायक है। प्र
की सेवा से जो लाभ है, ब्रह्मतत्त्व साक्षात्कार से तो उसी अमृतत्व की प्राप्ति होती है, क्योंकि ओं
सत्य परब्रह्म का प्रतीक है। कठोपनिषद् में "यह प्रणव अक्षर ही ब्रह्म है, यही सर्वश्रेष्ठ है" इस
से ओंकारोपासना से अमृतत्व की प्राप्ति सिद्ध हो जाती है।

कुछ वृत्तिकार इस मन्त्र की इस प्रकार भी व्याख्या करते हैं। ज्ञानवर्जित ब्रह्मचर्य, गृह
वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रमी अविशिष्ट रूप से स्व-स्व आश्रमविहित धर्मानुष्ठान से पुण्यलो
भागी होते हैं। संन्यासी के यहाँ अलग से कोई विशेष विधान नहीं किया गया। ज्ञान के उपाय
यम, नियम तथा तप का विधान संन्यासी के लिए भी है। 'तप ही धर्म का द्वितीय स्कन्ध है',
तप शब्द से वानप्रस्थी एवं संन्यासी का ग्रहण है। इसलिए उन्हीं चतुराश्रमियों में ओंकारोपा
ब्रह्मज्ञ अमृतत्व-प्राप्ति करता है क्योंकि संन्यासी का उक्त चार आश्रमियों से अलग उपदेश नहीं कि
गया है, न ही उसके ब्रह्मनिष्ठ होने का कहीं प्रतिषेध किया गया है। निर्व्यापार होने से संन्या
सरलता से ब्रह्मनिष्ठ हो सकता है। वैसे यव वराहादि शब्दों की तरह 'ब्रह्मसंस्थ' शब्द संन्यासी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संस्थितिनिमित्तमुपादाय प्रवृत्तत्वात् । न हि रूढिशब्दा निमित्तमुपाददते । सर्वेषां च ब्रह्मणि स्थितिरुपपद्यते । यत्र यत्र निमित्तमस्ति ब्रह्मणि संस्थितिस्तस्य तस्य निमित्तवतो वाचकं सन्तं ब्रह्मसंस्थशब्दं परिव्राडेकविषये संकोचे कारणाभावान्निरोद्धुमयुक्तम् ।

न च पारिव्राज्याश्रमधर्ममात्रेणामृतत्वम् । ज्ञानानर्थक्यप्रसङ्गात् । पारिव्राज्यधर्मयुक्तमेव ज्ञानममृतत्वसाधनमिति चेन्न । आश्रमधर्मत्वाविशेषात् । धर्मो वा ज्ञानविशिष्टोऽमृतत्वसाधनमित्येतदपि सर्वाश्रमधर्माणामविशिष्टम् । न च वचनमस्ति परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थस्य मोक्षो नान्येषामिति । ज्ञानान्मोक्ष इति च सर्वोपनिषदां

किमिति रूढिर्न स्यादित्यशङ्क्याऽऽह—न हीति । नन्वेष शब्दो नैमित्तिकोऽपि परिव्राजकमात्रमधिकरोति । तत्रैव निमित्तस्य सत्त्वात्तत्राऽऽह—सर्वेषां चेति । ननु पङ्कजादिशब्दा निमित्तमस्तीत्येतावता नेन्दीवरादौ वर्तन्ते किंतु तामरसादिमात्रं विषयी कुर्वन्ति । तथा ब्रह्मसंस्थशब्दो निमित्तवत्यपि गृहस्थादावनवस्थितः परिव्राजकमेव परं गोचरयेदत आह—यत्रेति । ब्रह्मसंस्थशब्दं निरोद्धुमयुक्तमिति संबन्धः ।

रूढिपक्षे दोषान्तरमाह—न चेति । धर्मसहितस्य ज्ञानस्य ज्ञानसहितस्य वा धर्मस्यामृतत्वसाधनत्वान्न ज्ञानानर्थक्यमित्याशङ्क्याऽऽद्यपक्षमनुवदति—पारिव्राज्येति । पारिव्राज्यधर्मेणैवेति नायं नियमो गृहस्थादिधर्माणामप्याश्रमधर्मत्वेन तुल्यत्वात्तद्विशिष्टज्ञानममृतत्वहेतुरित्यपि वक्तुं सुकरत्वादित्याह—नाऽऽश्रमेति । द्वितीयं दूषयति—धर्मो वेति । यदि परिव्राजकधर्मो ज्ञानविशिष्टो मुक्तिहेतुरित्युच्यते तदैतदपि मुक्तिहेतुत्वं सर्वाश्रमधर्माणां ज्ञानविशिष्टानामविशिष्टम् । तथा च न रूढिपक्षेऽपि परिव्राजकस्यैव ज्ञानान्मुक्तिरित्यर्थः । इतश्च परिव्राजकस्यैव मुक्तिभाक्त्वमसिद्धमित्याह—न चेति । मा तर्हि कस्यचिदपि मुक्तिर्भूदिति तत्राऽऽह—ज्ञानादिति । ब्रह्मसंस्थवाक्यार्थमुपसंहरति—तस्मादिति ।

अर्थ में रूढ नहीं है । ब्रह्मनिष्ठा हेतु को लेकर उसकी प्रवृत्ति हुई है । रूढिशब्द किसी निमित्त को लेकर ग्रहण नहीं किए जाते । ब्रह्म में स्थिति तो सबके लिए संभव है । जहाँ-जहाँ ब्रह्मसंस्थ निमित्त को लेकर निमित्तवाची के वाचक ब्रह्मसंस्थ शब्द केवल संन्यासी के विषय में है, वहाँ उसके अर्थ में संकोच करने के लिए कोई कारण नहीं है, अतः उसका निरोध करना असंगत है ।

(रूढिपक्ष में अन्य दोष कहते हैं—) ऐसा भी नहीं है कि संन्यास आश्रम के धर्मानुष्ठान से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती हो क्योंकि इससे ज्ञान में अनर्थकता का प्रसङ्ग आ जाता है । यह भी जरूरी नहीं है कि संन्यासाश्रम विहित आचार से युक्त ज्ञान ही अमृतत्व का साधन हो क्योंकि संन्यासाश्रम की तरह गृहस्थाश्रम में भी आश्रमधर्म रूप से समानता ही है । (दूसरा दोष प्रदर्शित करते हैं—) यदि परिव्राजकधर्म ज्ञानविशिष्ट मुक्ति का हेतु कहा जाता है तो ज्ञानविशिष्ट सर्वाश्रमधर्मों की मुक्तिहेतुता एक जैसी है । इससे परिव्राजक का ही मुक्त होना सिद्ध नहीं होता है, इस पर कहते हैं कि ऐसी कोई श्रुति उपलब्ध नहीं होती जो यह बताए कि मोक्ष तो केवल ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी को होता है; अन्य किसी को नहीं । सभी उपनिषदों का सिद्धान्त है कि मोक्ष ज्ञान से होता है । इसलिए अपने-अपने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिद्धान्तः। तस्माद्य एव ब्रह्मसंस्थः स्वाश्रमविहितकर्मवतां सोऽमृतत्वमेतीति।

न। कर्मनिमित्तविद्याप्रत्यययोर्विरोधात्। कर्त्रादिकारकक्रियाफलभेदप्रत्यय हि निमित्तमुपादायेदं कुर्विदं मा कार्षीरिति कर्मविधयः प्रवृत्ताः। तच्च निमित्तं शास्त्रकृतम्। सर्वप्राणिषु दर्शनात्। सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वं ब्रह्मैवेदं सर्वमि शास्त्रजन्यः प्रत्ययो विद्यारूपः स्वाभाविकं क्रियाकारकफलभेदप्रत्ययं कर्मविधिनिमि मनुपमृद्य न जायते। भेदाभेदप्रत्यययोर्विरोधात्। न हि तैमिरिकद्विचन्द्रादिभेदप्रत्य मनुपमृद्य तिमिरापगमे चन्द्राद्येकत्वप्रत्यय उपजायते। विद्याविद्याप्रत्यययोर्विरोधा तत्रैवं सति यं भेदप्रत्ययमुपादाय कर्मविधयः प्रवृत्ताः स यस्योपमर्दितः सदेकमेवाद्वि

परिव्राजकस्यैवामृतत्वमित्यनियमाज्ज्ञानादेव तदिति च नियमादित्यर्थः।

ब्रह्मसंस्थः समुच्चयानुष्ठायीति वृत्तिकारमतं निराकरोति—न कर्मेति। कर्मनिमित्तप्रत्य शुद्धब्रह्मात्मतासाक्षात्कारस्य च मिथो विरोधान्न समुच्चयसिद्धिरिति। वस्तुसंग्रहवाक्यं विवृणोति कर्त्रादीति। कर्मविधयो निषेधाश्चेति द्रष्टव्यम्। तथाऽपि प्रत्ययत्वाविशेषात्[1]कारकाकारकविधिनिषेध विरोधोऽस्तीत्याशङ्क्याऽऽह—तच्चेति। [2]प्रत्ययत्वेऽपि शास्त्रीयाशास्त्रीयतया विद्याविद्याभावेन विरो स्तीत्यर्थः। सति विरोधे किं स्यादत्राऽऽह—स्वाभाविकमिति। विद्यारूपः प्रत्यय इति पूर्वेण संबन्ध तत्रोक्तमेव हेतुं स्मारयति—भेदेति। तत्र लोकप्रसिद्धमुदाहरणमाह—न हीति। भेदाभेदप्रत्यययो विद्यात्मनोर्विरोधेन समुच्चयासंभवात्तदनुष्ठायी ब्रह्मसंस्थो न भवति चेत्कस्तर्हि ब्रह्मसंस्थः स त्राऽऽह—तत्रेति। उक्तरीत्या समुच्चयायोगे सतीति यावत्।

आश्रमविहित धर्मों का अनुष्ठान करने वालों में जो भी ब्रह्मनिष्ठ होता है, वही अमृतत्व की प्र करता है।

समुच्चयवादी का उपरोक्त मत श्रुतिसंगत नहीं है; कर्मनिमित्तप्रत्यय एवं शुद्ध ब्रह्मात्म सा त्कार का परस्पर विरोध होने से पूर्वोक्त समुच्चय संभव नहीं है। "यह करो, यह न करो" इस प्र कर्म की विधि-निषेधमयी प्रवृत्तियाँ कर्ता, कारक, क्रिया एवं फल भेद प्रत्यय को निमित्त करके करती हैं। विधिनिषेध-मय यह निमित्त शास्त्र द्वारा उपदिष्ट नहीं है, वह तो स्वभावतः ही प्राणियों में देखा जाता है। "वह ब्रह्म निरुपाधिक एक ही है, द्वितीय नहीं है", "यह सब कुछ चर जगत् आत्मा ही है", "यह सब कुछ ब्रह्म ही है" इस प्रकार शास्त्रजनितप्रत्यय विद्यारूप है, शास्त्रानाधेय क्रिया-कारक-फल-भेदप्रत्यय कर्मविधि के कारण है, इसको मिटाये बिना विद्या उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि भेदप्रत्यय और अभेदप्रत्यय में परस्पर विरोध है। नेत्र के तिमिर दो दीखने वाले चन्द्रद्वय की भेदबुद्धि को बिना दूर किए नेत्रदोष के हटने से चन्द्रमा में एकत्वबुद्धि

---

१. कारकेति—इदं कुर्विति वाक्यजन्यो विधिप्रत्ययः कारकः प्रवर्तकः। इदं मा कार्षीरिति वाक्यजन्यो नि प्रत्ययोऽकारको निवर्तकस्तयोः प्रत्ययत्वाविशेषान्नैकत्वप्रत्ययेन विरोधः इत्यर्थः। तन्मूलभूतयथोक्तभेदप्रत्ययस्य प्रत्ययत्वादेवाविरोध इति भावः। २. प्रत्ययत्वेऽपीति—यथोक्तभेदप्रत्ययैकत्वप्रत्यययोरिति भावः। त विरुद्धभेदप्रत्ययकार्ययोर्विधिनिषेधयोरपि विरोध एवेति फलितम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्सत्यं विकारभेदोऽनृतमित्येतद्वाक्यप्रमाणजनितेनैकत्वप्रत्ययेन स सर्वकर्मभ्यो निवृत्तो निमित्तनिवृत्तेः, स च निवृत्तकर्मा ब्रह्मसंस्थ उच्यते, स च परिव्राडेवान्यस्यासंभवात् ।

अन्यो ह्यनिवृत्तभेदप्रत्ययः सोऽन्यत्पश्यञ्शृण्वन्मन्वानो विजानन्निदं कृत्वेदं प्राप्नुयामिति हि मन्यते । तस्यैवं कुर्वतो न ब्रह्मसंस्थता । वाचारम्भणमात्रविकारानृताभिसंधिप्रत्ययवत्वात् । न चासत्यमित्युपमर्दिते भेदप्रत्यये सत्यमिदमनेन कर्तव्यं मयेति प्रमाणप्रमेयबुद्धिरुपपद्यते । आकाश इव तलमलबुद्धिर्विवेकिनः । उपमर्दितेऽपि भेदप्रत्यये कर्मभ्यो न निवर्तते चेत्प्रागिव भेदप्रत्ययोपमर्दनादेकत्वप्रत्ययविधायकं वाक्यमप्रमाणीकृतं स्यात् । अभक्ष्यभक्षणादिप्रतिषेधवाक्यानां प्रामाण्यवद्युक्तमेकत्ववाक्यस्यापि प्रामाण्यम् ।

अन्यस्य गृहस्थादेर्ब्रह्मसंस्थतासंभवमुक्तं साधयति—अन्यो हीति । वाचारम्भणमात्रे विकारेऽनृते शरीरादौ ब्राह्मणोऽहमित्याद्यभिसंधानरूपो मिथ्याभिनिवेशात्मको यः प्रत्ययस्तद्वत्त्वादिति हेत्वर्थः । ननु ब्रह्मविदोऽपि संस्कारवशाद्द्वैतसत्यत्वाभिनिवेशपूर्वकं कर्मप्रवृत्तिसंभवान्न ब्रह्मसंस्थता सुप्रतिपाद्येत्यत आह—न चेति । असत्यमिदमिति विवेकेन सत्यत्वाभिनिवेशे शिथिलीकृते पुनः सत्यत्वाभिनिवेशेन न प्रवृत्तिरुपपद्यते । आभासरूपा तु भेदबुद्धिर्न कर्मप्रवृत्तिहेतुरित्यर्थः । अद्वैतज्ञानवतो निमित्तनिवृत्त्या कर्मनिवृत्तिरवश्यंभाविनीत्युक्तम् । विपक्षे दोषमाह—उपमर्दितेऽपीति । एकत्वप्रत्ययजनकं शास्त्रं न भवत्येव प्रमाणं पूर्वप्रवृत्तभेदप्रत्ययविरोधादिति मतमाशङ्क्याऽऽह—अभक्ष्येति । यथा न कलञ्जं भक्षयेदित्यादि शास्त्रं पूर्वप्रवृत्तकलञ्जादिभक्षणप्रत्ययविरोधेऽपि प्रमाणं रागादिदोषात्तस्य प्रत्ययस्याप्रमाणत्वात्तथैव भेदप्रत्ययस्याविद्योत्थत्वात्प्रामाण्यासंभवात्तद्विरोधेऽप्यद्वैतशास्त्रस्य युक्तमेव प्रामाण्यमित्यर्थः । कार्यपरत्वादद्वैते तात्पर्याभावात्कुतस्तच्छास्त्रस्य प्रामाण्यमित्याशङ्क्याऽऽह—

होती है क्योंकि विद्या और अविद्या प्रत्यय में परस्पर विरोध है । उक्त रीति से समुच्चय असंभव होने से जिस भेदप्रत्यय को ग्रहण कर कर्मकाण्ड के विधि-निषेध प्रवृत्त होते हैं, उसका बाध करना है । यह वही कर सकता है जो सत्, निरुपाधिक अद्वितीय ब्रह्म को सत्य माने एवं विकार भेद को असत्य माने । वह सब कर्मों से निवृत्त हो जाता है क्योंकि निमित्त की निवृत्ति हो जाती है । वह निवृत्तकर्मा ब्रह्मनिष्ठ कहा जाता है, ऐसा सर्वकर्मों से संन्यासधारण करने वाले परिव्राजक के लिए ही संभव है; अन्य किसी के लिए नहीं ।

भेद प्रत्यायक कर्मों में आसक्त गृहस्थ के लिए ब्रह्मसंस्थिति असंभव है क्योंकि उसका भेदप्रत्यय निवृत्त नहीं होता । वह द्वैत ही देखता है, द्वैत ही सुनता है द्वैत का ही मनन करता है, द्वैत ही जानता है, इसे करने से इसे पा लूँगा—ऐसा मानता है । इस प्रकार कर्म में समक्त पुरुष की ब्रह्मस्थिति संभव नहीं क्योंकि वह मिथ्या शरीरादि में 'मैं ब्राह्मण हूँ' इत्यादि मिथ्याभिनिवेशात्मक प्रत्यय करता है, जो सब कुछ वाणी का विकार मात्र है । यदि भेद प्रत्यय का नाश होकर विवेक से यह असत्य है ऐसा भासने लगे तो इस सत्यत्व अभिनिवेश को मेरे द्वारा इस प्रकार करना चाहिए, ऐसी प्रमाण-प्रमेय-बुद्धि का उत्पन्न होना समाप्त हो जाता है । जैसे विवेकियों को आकाश में नीलत्व बुद्धि हो जाया करती है । यदि कहीं ऐसा हो कि भेदप्रत्यय निवृत्ति होने पर भी कर्म से निवृत्ति न हो तो पूर्व प्रतिपादित भेदप्रत्यय के नाश एवं अभेदप्रत्ययविधायक संबन्धी शास्त्र अप्रमाणित हो जाएगा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वोपनिषदां तत्परत्वात् ।

कर्मविधीनामप्रामाण्यप्रसङ्ग इति चेत् । न । अनुपमर्दितभेदप्रत्ययवत्पुरुषवि प्रामाण्योपपत्तेः स्वप्नादिप्रत्यय इव प्राक्प्रबोधात् । विवेकिनामकरणात्कर्मवि प्रामाण्योच्छेद इति चेन्न । काम्यविध्यनुच्छेददर्शनात् । न हि कामात्मता न प्रश त्येवंविज्ञानवद्भिः काम्यानि कर्माणि नानुष्ठीयन्त इति काम्यकर्मविधय उच्छि ऽनुष्ठीयन्त एव कामिभिरिति । तथा ब्रह्मसंस्थैर्ब्रह्मविद्भिर्नानुष्ठीयन्ते कर्माणीति न तद्वि उच्छिद्यन्तेऽब्रह्मविद्भिरनुष्ठीयन्त एवेति ।१

परिव्राजकानां भिक्षाचरणादिवदुत्पन्नैकत्वप्रत्ययानामपि गृहस्थादीनाम

सर्वोपनिषदामिति । उपक्रमोपसंहारैकरूप्यादिषड्विधतात्पर्यलिङ्गदर्शनादद्वैते तात्पर्यं तासामव तद्युक्तमद्वैतशास्त्रस्य स्वार्थे प्रामाण्यमित्यर्थः ।

भेदालम्बनकर्मविधिविरोधान्नाद्वैतशास्त्रं स्वार्थे मानमिति शङ्कते—कर्मविधीनामिति । स्वप्नप्रत्ययो गन्धर्वनगरादिप्रत्ययश्च प्राक्तत्त्वज्ञानादज्ञं पुरुषमधिकृत्य प्रमाणं तथा कर्मविधि मप्यविदुषि पुरुषे प्रामाण्यसंभवान्नाद्वैतशास्त्रस्य तद्विरोधोऽस्तीति परिहरति—नानुपमर्दितेति "यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः" इति स्मृतेस्तत्त्वदर्शिनां कर्मभ्यः सकाशादुपरमे सत्यन्ये रंस्यन्ते । तथा च कर्मविधिविरोधतादवस्थ्यमिति शङ्कते—विवेकिनामिति । प्रकृतिपरवशत्वाल्लो नासौ विवेकिप्रवृत्तिमनुवर्तते । "प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति" इति स्मृतेः । ब्रह्मविदां नैष्कर्म्येऽपि न कर्मविधीनामप्रामाण्यप्रसक्तिरित्युत्तरमाह—न काम्येति । तदेव प्रपञ्चय न हीति । इति नोच्छिद्यन्त इति शेषः । अस्तु प्रस्तुते किमायातं तदाह—तथेति । अनुष्ठीयन्त ए तद्विधीनामनुच्छित्तिरिति वाक्यशेषः ।

अद्वैतवादिनोऽवश्यंभाविनी कर्मनिवृत्तिरित्युक्तं दृष्टान्तेन विघटयन्नाशङ्कते—परिव्रा नामिति । अद्वैतधीस्वभावालोचनायां भिक्षाटनादिप्रवृत्तिरप्यघटमानैवेति मन्वानः समाधत्ते

जिस प्रकार शास्त्र का प्रमाण है कि कलञ्जादि अभक्ष्य भक्षण न करे; उसी प्रकार अभेदप्रत्य वाक्यों का भी शास्त्र में श्रवण सुना जाता है क्योंकि सभी उपनिषदों का अद्वैत में तात्पर्य है।

यदि कहो कि ऐसे में सभी कर्मकाण्ड विधानों का अप्रामाण्य सिद्ध होने लगेगा ऐसी शङ्का करनी निरर्थक है । जिस प्रकार स्वप्नप्रत्यय और गन्धर्वनगरादि तत्त्वज्ञान से पूर्व अज्ञानी पुरुष के लिए है, उसी प्रकार कर्मविधान का भी अविद्वत्पुरु लिए प्रामाण्य संभव होने के कारण अद्वैतशास्त्र से कोई विरोध नहीं है । विद्वान् कर्म के न करने से तो कर्मविधान का प्रामाण्य नष्ट हो जाएगा, ऐसा कहते हुए नहीं बनता काम्य विधान का लोप शास्त्र एवं लोकव्यवहार में नहीं देखा जाता । यदि कामात्मता को अप्रश जानने वाले काम्यकर्मों का अनुष्ठान नहीं करते तो इतने मात्र से ही काम्यकर्म विधानों का लोप होता क्योंकि काम्यकर्म में संसक्त पुरुषों द्वारा उन-उन कर्मों का अनुष्ठान किया ही जाता है । यह है कि यदि ब्रह्मसंस्थिति प्राप्त ब्रह्मज्ञानी कर्मों का अनुष्ठान नहीं करते तो उन कर्मविधि लोप नहीं होता क्योंकि ब्रह्मज्ञानी से इतर पुरुष तो उन कर्मों का अनुष्ठान करते ही हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होत्रादिकर्मानिवृत्तिरिति चेन्न । प्रामाण्यचिन्तायां पुरुषप्रवृत्तेरदृष्टान्तत्वात् । न हि नाभिचरेदिति प्रतिषिद्धमप्यभिचरणं कश्चित्कुर्वन्दृष्ट इति शत्रौ द्वेषरहितेनापि विवेकिनाऽभिचरणं क्रियते । न च कर्मविधिप्रवृत्तिनिमित्ते भेदप्रत्यये बाधितेऽग्निहोत्रादौ प्रवर्तकं निमित्तमस्ति, परिव्राजकस्येव भिक्षाचरणादौ बुभुक्षादि प्रवर्तकम् ।

इहाप्यकरणे प्रत्यवायभयं प्रवर्तकमिति चेत् । न भेदप्रत्ययवतोऽधिकृतत्वात् । भेदप्रत्ययवाननुपमर्दितभेदबुद्धिर्विद्यया यः स कर्मण्यधिकृत इत्यवोचाम । यो ह्यधिकृतः कर्मणि तस्य तदकरणे प्रत्यवायो न निवृत्ताधिकारस्य गृहस्थस्येव ब्रह्मचारिणो विशेषधर्माननुष्ठाने । एवं तर्हि सर्वः स्वाश्रमस्थ उत्पन्नैकत्वप्रत्ययः परिव्राडिति चेत् ।

प्रामाण्येति । समुच्चयस्य प्रामाणिकत्वनिरूपणायां प्रत्ययाभासमूलस्य प्रवृत्त्याभासस्य नोदाहरणत्वम् । अग्निहोत्रादिप्रवृत्तेरप्याभासत्वे प्रामाणिकसमुच्चयसिद्धान्तहानिरतो नैतच्चोद्यमित्यर्थः । एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—न हीति । तद्वदविवेकिना कर्म क्रियमाणं दृष्टमिति विवेकिभिरपि तन्न क्रियते । भिक्षाटनादिप्रवृत्त्याभासस्त्वप्रामाणिकोऽग्निहोत्रादिप्रवृत्तेर्नोदाहरणमिति शेषः । इतश्च नेदमुदाहरणमित्याह—न चेति ।

अग्निहोत्रादावपि प्रवर्तकमस्तीति शङ्कते—इहापीति । अकरणकृतं प्रत्यवायाख्यं भयमविवेकिनो विवेकिनो वेति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—न भेदेति । कर्मणि भेदबुद्धिमतोऽधिकृतत्वेऽपि तस्य तदकरणे किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—यो हीति । द्वितीयं दूषयति—न निवृत्तेति । विवेकिनो निवृत्ताधिकारस्य प्रत्यवायाप्राप्त्या कर्मसु प्रवर्तकाभावात्कर्मभ्यो निवृत्तिरूपं पारिव्राज्यं चेदतिप्रसङ्गस्तर्हीति शङ्कते—एवं तर्हीति । कर्मसाधनं स्वं यज्ञोपवीतादि त्यज्यते न वा । त्यज्यते चेन्न स्वाश्रमधर्मः । ततो यज्ञोपवीताद्यन्तरेण गार्हस्थ्यादिभावासंभवात् । न त्यज्यते चेन्न पारिव्राज्यप्राप्तिः ।

(इस पर समुच्चयवादी पुनः शङ्का करता है—) जिस प्रकार संन्यासी के लिए भिक्षाटन का विधान है, उसी प्रकार अभेदप्रत्यययुक्त गृहस्थ आदिकों के लिए भी अग्निहोत्रादि कर्मों को करते रहना बता दिया जाए तो क्या हानि है ? (समाधान में कहा जाता है—) समुच्चय के प्रामाणिकत्व निरूपण प्रकरण में प्रत्ययाभासहेतु एवं प्रवृत्त्याभास का उदाहरण नहीं बनता । 'अभिचार कर्म न करे' इस प्रकार शास्त्र द्वारा निषेध करते हुए कोई सकामकर्मी शत्रु पर अभिचार कर्म प्रयोग करते हुए देखा जाता है, किन्तु निर्द्वेष ज्ञानी के द्वारा अभिचार कर्म का अनुष्ठान नहीं किया जाता । ऐसा भी नहीं होता कि कर्मविधि में प्रवृत्ति के हेतुक भेदप्रत्यय के नाश हो जाने पर भी अग्निहोत्रादि में प्रवृत्ति निमित्त हो जाए, जिस प्रकार संन्यासी को भोजन करने की इच्छा भिक्षाचर्या में प्रवृत्त करती है ।

यदि कहो अग्निहोत्रादि कर्मों के अनुष्ठान में भी प्रवर्तक यह है कि उनके न करने से प्रत्यवाय लगेगा तो ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि भेदप्रत्यय वालों के लिए उन कर्मों में अधिकार है । देवोपासना द्वारा जो भेदप्रत्ययवाला है, जिसकी द्वैतदृष्टि का नाश नहीं हो सका है, उसी का कर्म में अधिकार है—ऐसा हम पहले ही कह आए हैं । जिसका कर्म में अधिकार है, उसी के लिए उस अवस्था में प्रत्यवाय का विधान है, यदि वह उक्त कर्म न करे । निवृत्ताधिकार ब्रह्मचारी को गृहस्थ की तरह विशेष धर्म के अनुष्ठान न करने में प्रत्यवाय नहीं है । ऐसा होने पर तो चतुराश्रमी स्वाश्रमधर्म में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न । स्वस्वामित्वभेदबुद्ध्यनिवृत्तेः । कर्मार्थत्वाच्चेतराश्रमाणाम् । "अथ कर्म कुर्वी[illegible]" इति श्रुतेः । तस्मात्स्वस्वामित्वाभावाद्भिक्षुरेक एव परिव्राट् । न गृहस्थादिः ।

एकत्वप्रत्ययविधिजनितेन प्रत्ययेन विधिनिमित्तभेदप्रत्ययस्योपमर्दितत्वाद्यमनि[illegible]माद्यनुपपत्तिः परिव्राजकस्येति चेत् । न बुभुक्षादिनैकत्वप्रत्ययात्प्रच्यावितस्योप[illegible]निवृत्त्यर्थत्वात् । न च प्रतिषिद्धसेवाप्राप्तिः । एकत्वप्रत्ययोत्पत्तेः प्रागेव प्रतिषिद्धत्वा[illegible] न हि रात्रौ कूपे कण्टके वा पतित उदितेऽपि सवितरि पतति तस्मिन्नेव । तस्मा[illegible] निवृत्तकर्मा भिक्षुक एव ब्रह्मसंस्थ इति ।

साधनसंग्रहस्य साध्यार्थत्वादिति परिहरति—न स्वस्वामित्वेति । इतश्चाऽऽश्रमान्तरेषु न परि[illegible]मित्याह—कर्मार्थत्वादिति । जायापुत्रवित्तसंपत्त्यानन्तर्यं श्रुतावथशब्दार्थः । गृहस्थादिषु स्वाश्रमस्[illegible] पारिव्राज्यस्य दुर्वचत्वे फलितमाह—तस्मादिति । विवेकवशाद्यज्ञोपवीतादौ स्वशब्दार्थे स्वामित्वबु[illegible] भावादिति यावत् ।

यत्तु परिव्राजकस्य निवृत्ताधिकारस्य प्रत्यवायाप्राप्तिरिति तत्रानिष्टापत्तिमाशङ्[illegible] एकत्वेति । तद्विषयप्रत्ययस्य विधिरुत्पादकं तत्त्वमस्यादिवाक्यं तज्जनितेनैकत्वविषयेण प्रत्ये[illegible] यावत् । तथा च यथेष्टचेष्टाप्रसक्तिरिति शेषः । ज्ञानिनो वैधं यमादि नास्ति तत्प्रवृत्तिस्तु संस्कारा[illegible]दित्याशयेनाऽऽह—न बुभुक्षादिनेति । यो हि दृष्टेन दोषेण तत्त्वज्ञानात्कथंचित्प्रच्युतिमापादित[illegible] संस्कारवशाद्यमनियमानुष्ठानमुपपद्यते । तस्य दोषकृततत्त्वप्रच्युतिप्रसूतानियतचेष्टानिवृत्त्यर्थत्वेना[illegible]नुष्ठेयत्वात् । तथा च न यथेष्टचेष्टापत्तिरित्यर्थः । इतश्च विदुषो वैधप्रवृत्त्यभावेऽपि यथे[illegible] नास्तीत्याह—न चेति । अविदुषोऽपि न यथेष्टचेष्टा विदुषस्तु सा कुतस्त्येति दृष्टान्तेन स्फुटय[illegible]हीति । अन्येषां ब्रह्मसंस्थत्वासंभवे फलितमुपसंहरति—तस्मादिति ।

स्थित हो अभेदप्रत्यय होने पर परिव्राजक ही कहलाया जाएगा, ऐसा कहना असंगत है क्योंकि स्वामित्वादिरूप द्वैत बुद्धि की निवृत्ति नहीं होती । ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रमों में क[illegible] विधान है, उनमें रहने हुए संन्यास ग्रहण की आज्ञा नहीं । "जाया, पुत्र एवं वित्त सम्पत्ति प्राप्[illegible] के अनन्तर मैं कर्म करूँ" - ऐसा श्रुति कहती है । इसलिए गृहस्थादि को संन्यासी कहना अनुचि[illegible] से विवेक के वशीभूत यज्ञोपवीतादि एवं स्वामित्वबुद्धि के अभाद से युक्त भिक्षु ही परिव्राज[illegible] गृहस्थादि नहीं ।

(कर्मों में अधिकार न रह जाने से परिव्राजक के लिए प्रत्यवाय भी नहीं बनता, इसमें अ[illegible]पत्ति की शङ्का होती है—) एकत्वविषयक प्रत्यय के उत्पादक 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से [illegible] को अभेदबुद्धि उत्पन्न होती है, जिससे विधिनिषेधमय भेदप्रत्यय का नाश होता है, अतः ज्ञानी के यम-नियमादि का विधान नहीं है । ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि बुभुक्षा आदि दृष्ट दोष के [illegible] तत्त्वज्ञान में थोड़ी शिथिलता आ जाने से उसके लिए यम-नियमादि का अनुष्ठान युक्तिसंगत है; यथेष्ट चेष्टा की निवृत्ति होना संभव हो जाएगा । जब अज्ञानी के लिए ही यथेष्ट चेष्टा का [illegible] नहीं है तो विद्वान् परिव्राजक के लिए वह कैसे संभव होगी क्योंकि अद्वैतबुद्धि की उत्पत्ति से [illegible] उसका प्रतिषेध हो जाता है । रात्रि के घने अन्धकार में ही कूप अथवा कण्टकों में गिरता [illegible]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यत्पुनरुक्तं सर्वेषां ज्ञानवर्जितानां पुण्यलोकतेति। सत्यमेतत्। यच्चोक्तं तपःशब्देन परिव्राडप्युक्त इति। एतदसत्। कस्मात्। परिव्राजकस्यैव ब्रह्मसंस्थतासंभवात्। स एव ह्यवशेषित इत्यवोचाम। एकत्वविज्ञानवतोऽग्निहोत्रादिवत्तपोनिवृत्तेश्च। भेदबुद्धिमत एव हि तपःकर्तव्यता स्यात्। एतेन कर्मच्छिद्रे ब्रह्मसंस्थतासामर्थ्यम्। अप्रतिषेधश्च प्रत्युक्तः। तथा ज्ञानवानेव निवृत्तकर्मा परिव्राडिति ज्ञानवैयर्थ्यं प्रत्युक्तम्।

यत्पुनरुक्तं यववराहादिशब्दवत्परिव्राजके न रूढो ब्रह्मसंस्थशब्द इति तत्परिहृतम्। तस्यैव ब्रह्मसंस्थतासंभवान्नान्यस्येति। यत्पुनरुक्तं रूढशब्दा निमित्तं नोपाददत

परोक्तमनूद्याङ्गी करोति—यत्पुनरिति। उक्तमर्थान्तरमनुवदति—यच्चेति। किं परिव्राजकस्य ज्ञानहीनस्याऽऽश्रममात्रनिष्ठस्य तपःशब्देनोपादानमाहो ज्ञानवतोऽपीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गीकृत्य द्वितीयं दूषयति—एतदसदिति। ज्ञानवतोऽपि तपस्वित्वात्तपःशब्देनोपादानमुचितमिति शङ्कित्वा प्रत्याह—कस्मादित्यादिना। तपःशब्देन नासौ गृहीत इति शेषः। तस्य च ज्ञानवतोऽवशिष्टत्वं प्रागेवोपदिष्टमित्याह—स एवेति। इतश्च परमहंसपरिव्राजको न तपःशब्देन परामृष्ट इत्याह—एकत्वेति। तदेव स्फोरयति—भेदेति। यत्तु कर्मच्छिद्रे गृहस्थादेरपि ब्रह्मसंस्थतासामर्थ्यमिति तत्प्रत्याह—एतेनेति। अनिवृत्तभेदप्रत्ययस्य ब्रह्मसंस्थत्वासंभवेनेति यावत्। सामर्थ्यं प्रत्युक्तमिति संबन्धः। यत्तु चतुर्णामपि ब्रह्मसंस्थताया अप्रतिषेध इति तत्राऽऽह—अप्रतिषेधश्चेति। एकत्वोपदेशेन भेदप्रत्ययनिरासादनिवृत्तभेदप्रत्ययस्यार्थाद्ब्रह्मसंस्थता प्रतिषिद्धेत्यर्थः। पारिव्राज्यमात्रेणामृतत्वे ज्ञानवैयर्थ्यमुक्तं परिहरति—तथेति।

चोद्यान्तरमनूद्योक्तं परिहारं स्मारयति—यत्पुनरुक्तमिति। तत्र रूढोऽयं शब्द इति शेषं पञ्चम्या सूचयति। चोद्यान्तरमनूद्य दूषयति—यत्पुनरित्यादिना। आदिपदेन पङ्कजादिशब्दो गृह्यते।

आदित्य के उदित हो जाने पर प्रकाशावस्था में उसमें कोई नहीं गिरता। इसलिए कर्मों में निवृत्त अधिकार वाले परिव्राजक के लिए ब्रह्मसंस्थिति संभव है।

(पहले उठाए प्रकरण की स्मृति दिलाते हुए उसे अङ्गीकार करते हैं—) जो यह कहा गया था कि ब्रह्मात्मविज्ञान से शून्य सभी कर्मकाण्डियों के लिए पुण्यलोक की प्राप्ति होती है—ऐसा कथन उपयुक्त ही है। तथा 'तप' शब्द से परिव्राजक का ग्रहण करना कहा गया था, वह असंगत है क्योंकि परिव्राजक की ही ब्रह्मसंस्थिति संभव है। वही ज्ञानी परिव्राजक ही अवशिष्ट रह जाता है—ऐसा हम पहले ही कह आए हैं क्योंकि अद्वैतबुद्धियुक्त संन्यासी की अग्निहोत्रादि के समान तप से भी विमुक्ति कही गई है। भेदबुद्धियुक्त पुरुष के लिए तप का अनुष्ठान विहित है। इससे कर्मकाण्ड में संसक्त गृहस्थ में ब्रह्मसंस्थिति का निराकरण हो गया एवं जो यह कहा गया था कि चारों आश्रमों में से सभी कोई ब्रह्मसंस्थिति लाभ कर सकते हैं, उसका भी खण्डन हो गया। तथा कर्मों में निवृत्त अधिकार वाला ज्ञानी ही संन्यासी है, इससे ज्ञान की व्यर्थता का भी निरास हो गया।

एवं जो यह कहा गया था कि यव, वराहादि शब्दों की तरह ब्रह्मसंस्थित शब्द परिव्राजक अर्थ में रूढ है, इसका भी खण्डन हो गया। क्योंकि ब्रह्मसंस्थिति तो उसी की संभव है, अन्य की नहीं। एवं जो यह कहा गया था कि 'रूढ' शब्द कारण का ग्रहण नहीं करते, ऐसा भी कहना ठीक नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति। तन्न। गृहस्थतक्षपरिव्राजकादिशब्ददर्शनात्। गृहस्थितिप्रव्रज्यातक्षणादिनिमि
पादाना अपि गृहस्थपरिव्राजकावाश्रमिविशेषे विशिष्टजातिमति च तक्षेति
दृश्यन्ते शब्दाः। न यत्र यत्र तानि निमित्तानि तत्र तत्र वर्तन्ते। प्रसिद्ध्यभावा
तथेहापि ब्रह्मसंस्थशब्दो निवृत्तसर्वकर्मतत्साधनपरिव्राडेकविषयेऽत्याश्रमिणि परमहंस
वृत्त इह भवितुमर्हति। मुख्यामृतत्वफलश्रवणात्। अतश्चेदमेवैकं वेदोक्तं पा
व्राज्यम्। न यज्ञोपवीतत्रिदण्डकमण्डल्वादिपरिग्रह इति मुण्डोऽपरिग्रहोऽसङ्ग इति

श्रुतिरत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रमित्यादि च श्वेताश्वतरीये। 'निस्तुतिर्निर्नमस्
इत्यादिस्मृतिभ्यश्च। 'तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः। तस्मादलिङ्गो धर्मज्ञो

उक्तं प्रपञ्चयति—गृहस्थितीति। इहापीति प्रकृतवाक्योपादानम्। प्रकृते परमहंसे परिव्रा
ब्रह्मसंस्थपदमित्यत्र हेतुमाह—मुख्येति। इतश्च पारमहंस्यमेव श्रौतमित्याह—अतश्चेति। एवकार
कथयति—न यज्ञोपवीतेति। इतिशब्दः संन्यासप्रकरणे तथाविधश्रुत्यभावप्रदर्शनार्थः।

ब्रह्मसंस्थशब्दस्य परमहंसविषयत्वे श्रुत्यन्तरं संवादयति—श्रुतिरिति। अत्याश्रमिभ्यः पूर्वो
त्रयमतीत्य सर्वकर्म त्यक्त्वा स्थितेभ्यः परमहंसपरिव्राजकेभ्य इति यावत्। परमं पवित्रं निरति
परिशुद्धिकारणं परमपुरुषार्थसाधनं सम्यग्ज्ञानं प्रोवाचेत्यर्थः। स्मृतिभ्यश्च यथोक्तं पारिव्राज्यं सिध्यतं
शेषः। 'अनाशिषमनारम्भमित्यादिवाक्यसंग्रहार्थमादिपदम्। 'कर्मणो बन्धहेतुत्वं तच्छब्दार्थः। 'लिङ्ग
धर्मकारणत्वराहित्यं तस्मादित्युक्तम्। अलिङ्गो धर्मध्वजित्वरहितः। धर्मज्ञो यथावद्धर्मानुष्ठाता
अधर्मज्ञ इति वा पाठः। धर्मविचारनिष्ठारहितस्तत्रासारत्वप्रत्ययवानित्यर्थः। अलिङ्ग इत्युक्तेऽनार्थ

है क्योंकि गृहस्थ, तक्ष, परिव्राजक एवं पङ्कज आदि शब्दों का विना किसी निमित्त के ग्रहण होना दे
जाता है। यद्यपि इन शब्दों का भी निमित्त उपादान किया जा सकता है, जैसे घर में रहने के का
गृहस्थ, प्रव्रज्या ग्रहण करने से परिव्राजक, तक्षण कार्य करने से तक्षा इत्यादि; तथापि गृहस्थ
परिव्राजक शब्द आश्रम विशेष में एवं तक्षा शब्द जाति विशिष्ट में रूढ देखे जाते हैं। प्रसिद्धि न
से ऐसा नहीं होता कि जहाँ-जहाँ वे निमित्त हों, वहीं-वहीं उन शब्दों का ग्रहण किया जाए।
प्रकार इस श्रुतिवाक्य में 'ब्रह्मसंस्थ' शब्द अत्याश्रमी परमहंस परिव्राजक में ही रूढ हो सकता है क्यों
यही सब कर्मों से निवृत्ति का साधन है तथा अमृतफल की मुख्यता श्रुति प्रतिपादित करती
इसलिए श्रुति समर्थित पारिव्राज्य एक ही है। यज्ञोपवीत, त्रिदण्ड एवं कमण्डलु आदि का परिग्रह
संन्यासी के लिए उचित नहीं है—ऐसा श्रुति कहती है, परिव्राजक तो मुण्डी, परिग्रहरहित एवं अस
हुआ करता है।

श्वेताश्वतर उपनिषत् में भी "तीनों आश्रमों से अतीत परमहंस परिव्राजकाचार्य संन्यासि

१. वृत्तो वृत्तिमान् रूढ इति यावत्। इहेत्यधिकम्। २. इति च श्रुतेर्न यज्ञोपवीतादि परिग्रहः पारिव्रज्येऽभि
संबन्धः। ३. निस्तुतिरिति—निःस्वधाकार एव च चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेदिति गौडपादीयाभि
कारिकाशेषः। ४. अनाशिषमनारम्भमित्यादीत्यादिना निर्नमस्कारमस्तुतिम्। अक्षीणं क्षीणकर्माणं तं देवा
ब्राह्मणं विदुरिति स्मृतिशेषो गृह्यते। ५. 'कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते' इति पूर्वार्धमाश्रित्याह—कर्म
इति। ६. न लिङ्गं धर्मकारणमिति पूर्वार्धोक्तिमनुसृत्य तच्छब्दार्थमाह—लिङ्गस्येति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्तलिङ्गः' इत्यादिस्मृतिभ्यश्च ।

यत्तु सांख्यैः कर्मत्यागोऽभ्युपगम्यते । क्रियाकारकफलभेदबुद्धेः सत्यत्वाभ्युपगमात् । तन्मृषा । यच्च बौद्धैः शून्यताभ्युपगमादकर्तृत्वमभ्युपगम्यते । तदप्यसत् । तदभ्युपगन्तुः सत्त्वाभ्युपगमात् । यच्चाज्ञैरलसतयाऽकर्तृत्वाभ्युपगमः सोऽप्यसन् । कारकबुद्धेरनिर्वर्तितत्वात्प्रमाणेन । तस्माद्वेदान्तप्रमाणजनितैकत्वप्रत्ययवत एव कर्मनिवृत्तिलक्षणं पारिव्राज्यं

त्वमाशङ्क्याऽऽह—अव्यक्तेति । न व्यक्तं दम्भेन गृहीतं लिङ्गमाश्रमित्वमस्यास्तीत्यव्यक्तलिङ्गः । किंत्वदम्भेन श्रुतिस्मृत्युक्तप्रकारेण तदस्यास्तीत्यर्थः । आदिपदं 'त्यज धर्ममधर्मं चेत्यादि ग्रहीतुम् । अत्रापि पूर्वपदान्वयः ।

ननु कर्मनिवृत्तिमुपदिशता त्वया सांख्यमतमेवाऽऽश्रितं तेनापि शरीरादिव्यापारोपरमद्वारा ध्याननिष्ठतायाः स्वीकृतत्वात्तत्राऽऽह—यत्त्विति । न हि तन्मते कूटस्थात्मधीबलेन नैष्कर्म्यं युक्तम् । क्रियाकारकादिबुद्धेरविवेकस्य च सत्यत्वेन ज्ञानमात्रापनोद्यत्वायोगात् । न च सर्वव्यापारोपरमसंभवो मनोबुद्ध्यादीनां तच्छीलत्वात् । न हि कश्चित्क्षणमपीत्यादिस्मृतेः । अतः सांख्यवचो मिथ्यैवेत्यर्थः । ननु बौद्धेनापि नैरात्म्यमिच्छता नैष्कर्म्यमिष्टं तथा च कर्मत्यागमुपदिशता त्वयाऽपि तन्मतमेवानुमोदितं नेत्याह—यच्चेति । तदभ्युपगन्तुरित्यत्राकर्तृत्वं तच्छब्दार्थः । "दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्" इति स्मृतेरालस्योपहतैरज्ञैरकर्तृत्वमुपेयते । भवताऽपि कर्म त्यजता तन्मतमादृतमित्याशङ्क्याऽऽह—यच्चाज्ञैरिति । अकर्तृत्वाभ्युपगम इति च्छेदः । ते हि मोहादेव कर्म त्यजन्तो न तत्फलं लभन्ते । "स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्" इति स्मृतेः । वयं तु प्रमाणवशादेव कर्म त्यजन्तो न व्यामूढपक्षमाद्रियामहे । तस्मान्नैष्कर्म्यं श्रुतिस्मृतिप्रसिद्धमप्रत्याख्येयमिति भावः । पक्षान्तरे नैष्कर्म्योक्तेरमूलत्वे स्थिते फलितमुपसंहरति—तस्मादिति । यत्तु केश्चिदेकाश्रम्यमाश्रितं तत्प्रत्या-

को निरतिशय शुद्धि के कारण, परमपुरुषार्थ के साधन ज्ञान को भलीभाँति उपदेश किया" ऐसा 'ब्रह्मसंस्थ' शब्द का परमहंसविषयक अर्थ किया है। "संन्यासी को स्तुति और नमस्कार आशीर्वाद एवं कर्मारम्भ से परे रहना चाहिए" ऐसे स्मृतिवाक्यों से भी पारिव्राज्य सिद्ध होता है। "कर्मों को बन्ध का हेतु समझकर दूरदर्शी संन्यासी कर्मों को करने के चक्कर में नही पड़ते", "विशेष ढंग का प्रतीक (लिङ्ग) धर्म का कारण न होने से संन्यासी को धर्मध्वजी नहीं होना चाहिए, धर्मविचारनिष्ठा से रहित हो, उसमें असारबुद्धि धारण करे" इत्यादि अन्य भी स्मृतियाँ हैं।

और जो सांख्यमार्गावलम्बियों के मत में कर्मत्याग का स्वरूप है, वह मिथ्या ही है क्योंकि उनके मत में कूटस्थात्मबुद्धि बल से नैष्कर्म्य मानना उचित नहीं है। क्रिया-कारकादि बुद्धि वाले अविवेकी के लिए कर्म सत्यत्व होने से ज्ञानमात्र से अपमोदन होना युक्तिसंगत नहीं है (सर्वव्यापार से उपरति होनी संभव नहीं है क्योंकि मन बुद्धि के अधीन सब व्यापार हुआ करते हैं)। इसके अतिरिक्त बौद्धदर्शन ने भी नैरात्म्य के प्रतिपादन की इच्छा से नैष्कर्म्य के प्रति आस्था प्रकट की है किन्तु यह भी स्वरूपतः मिथ्या है क्योंकि नैष्कर्म्य के लिए वे सत्यत्व को स्वीकार करते हैं। और जो अज्ञानियों द्वारा (कायक्लेश भय से) आलसवशात् नैष्कर्म्य कल्पना करली है, वह भी मिथ्या ही है क्योंकि हम

१. त्यजेति—'उभे सत्यानृते त्यज । उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तं त्यजे'ति शिष्टा त्रिपादी ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यत्संस्थोऽमृतत्वमेति तन्निरूपणार्थमाह—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति ॥ २ ॥

त्रयीविद्या और व्याहृतियों का प्रादुर्भाव

प्रजापति ने लोकों के (सार ग्रहण की इच्छा से) ध्यानरूप तप किया, उन अभितप्त लोकों से उनकी सारभूता त्रयीविद्या प्रतिभान हुई और उस अभितप्त त्रयीविद्या से भूर्भुवः स्वः (ये व्याहृति रूप अक्षर प्रादुर्भूत हुए) ॥२॥

ब्रह्मसंस्थत्वं चेति सिद्धम् । एतेन गृहस्थस्यैकत्वविज्ञाने सति पारिव्राज्यमर्थसिद्धम् ।

नन्वग्न्युत्सादनदोषभाक्स्यात्परिव्रजन् । "वीरहा वा एष देवानां योऽग्निमुद्वासयते" इति श्रुतेः । न । दैवोत्सादितत्वादुत्सन्न एव हि स एकत्वदर्शने जाते । अपागादग्नेरग्नित्वमिति श्रुतेः । अतो न दोषभाग्गृहस्थः परिव्रजन्निति ॥१॥

प्रजापतिर्विराट् कश्यपो वा लोकानुद्दिश्य तेषु सारजिघृक्षयाऽभ्यतपदभि-

---

दिशति—एतेनेति । एकत्वविज्ञानेन भेदप्रत्ययस्योपमर्दितत्वोपपादनेनेति यावत् । एकत्वविज्ञानं च विवक्षितम् । अपरोक्षस्य पारिव्राज्यमन्तरेणायोगात् । तस्योपरतिशब्दितस्य शमादिवत्साध- श्रुतेरिति द्रष्टव्यम् ।

गृहस्थस्य पारिव्राज्ये श्रुतिविरोधं शङ्कते—नन्विति । ऐकात्म्यमेव सत्यं द्वैतमसत्य- विवेके जाते सत्यग्न्यादेरवस्तुत्वाध्यवसायात्तदभिनिवेशशैथिल्यान्न तत्त्यागे दोषप्राप्तिरिति दूषय- न्, दैवेति । सम्यग्ज्ञाने सत्यग्न्यादेरुत्सन्नत्वे मानमाह—अपागादिति । गृहस्थस्यापि विवे- वैराग्यद्वारा युक्तं पारिव्राज्यमित्याह—अत इति । इतिशब्दो ब्रह्मसंस्थवाक्यव्याख्यानसमाप्त्यर्थः ।

किं तद्ब्रह्मेत्याकाङ्क्षायामाह—यत्संस्थ इति । लोकानामभितो दग्धतयाऽभितापप्रति-

---

शास्त्रप्रमाण से कर्म का त्याग करते हैं । इसलिए श्रुति-स्मृति प्रमाणजनित एकत्व-प्रत्यययुक्त ही निवृत्तिसञ्ज्ञक पारिव्राज्य है, इसी अवस्था में ब्रह्मसंस्थिति होनी संभव है । इससे एकाश्रमी रहने का निरास हो सिद्ध हुआ कि गृहस्थाश्रमी भेदप्रत्यय का बाध उपपादन रूप एकत्वविज्ञान हो पारिव्राज्य अनिवार्य है । पारिव्राज्य के विना अपरोक्षानुभूति असंभव है ।

गृहस्थ में रहते हुए परिव्रज्या ग्रहण श्रुतिविरुद्ध है, इसी शङ्का को किया जाता है—परि- करते हुए अग्नि उपासना दोषप्रद है । श्रुति कहती है—'वह वीरों का हननकर्ता होता है जो देव- में अग्नि की उपासना नहीं करता' । ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि ब्रह्मात्मैक्य ही सत्य है मिथ्या है ऐसा विवेक उत्पन्न हो जाने पर अग्नि आदि में अवस्तुत्व बुद्धि होने से उसमें नि- शैथिल्य से उसके त्याग में दोष नहीं है । श्रुति कहती है—"सम्यक् ज्ञान हो जाने पर अग्नि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोंकार एवेदꣳ सर्वमोंकार एवेदꣳ सर्वम् ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

ॐकार का प्रादुर्भाव

(फिर प्रजापति ने) इन व्याहृतियों की आलोचना की, उन अभितप्त व्याहृतियों से ओंकार प्रादुर्भूत हुआ। जिस प्रकार पत्ते की नसों से सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं, उसी प्रकार परमात्मा के प्रतीक रूप ओंकार से सम्पूर्ण वाक् व्याप्त है। ओंकार ही यह सब है, ओंकार ही यह सब कुछ है ॥३॥

॥ इति त्रयोविंशः खण्डः ॥

कृतवान्ध्यानं तपः कृतवानित्यर्थः। तेभ्योऽभितप्तेभ्यः सारभूता त्रयी विद्या संप्रास्रवत्प्रजापतेर्मनसि प्रत्यभादित्यर्थः। तामभ्यतपत्। पूर्ववत्। तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतयः ॥२॥

तान्यक्षराण्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्रवत्तद्ब्रह्म, कीदृशमित्याह—तद्यथा शङ्कुना पर्णनालेन सर्वाणि पर्णानि पत्रावयवजातानि संतृण्णानि विद्धानि व्याप्तानीत्यर्थः। एवमोंकारेण ब्रह्मणा परमात्मनः प्रतीकभूतेन सर्वा वाक्शब्दजातं

व्यवच्छिनत्ति—ध्यानमिति। द्रवात्मत्वाभावे कथं प्रस्रवणं त्रय्याः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—प्रजापतेरिति। पूर्ववदिति। त्रयीविद्यासारजिघृक्षयाऽऽलोचितवानित्यर्थः ॥२॥

कथं तस्य ब्रह्मशब्दवाच्यत्वमित्याशङ्क्य महत्तरत्वादित्याह—कीदृशमित्यादिना। तत्र ब्रह्मशब्दप्रवृत्तौ हेत्वन्तरं सूचयति—परमात्मन इति। ॐकारावयवस्याकारस्यापि सर्ववाग्व्याप्तिरस्ति किमु वक्तव्यमोंकारस्येति मन्वानः श्रुत्यन्तरमुदाहरति—अकार इति। ओमितीदं सर्वमित्यादिवाक्य-

---

अग्नित्व बुद्धि निरस्त हो गई है"। इसलिए विवेक से युक्त गृहस्थ के लिए भी वैराग्य द्वारा पारिव्राज्य ग्रहण उचित ही है ॥ १ ॥

जिसमें संस्थित हुआ साधक अमृतत्व की प्राप्ति करता है; उसका निरूपण करते हुए श्रुति कहती है।

प्रजापति विराट् अथवा कश्यप ने चारों ओर से विषयाग्नि से दग्ध लोकों का सार ग्रहण करने की कामना से ध्यानरूप तपस्या आरम्भ की। उन अभितप्त लोकों से सारभूता त्रयीविद्या प्रजापति के मन में प्रतिभासित हुई। इसी प्रकार पुनः त्रयीविद्या का सार ग्रहण की इच्छा से प्रजापति विराट् ने ध्यान रूप तप किया—इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्रों के समान है। अभितप्त उस त्रयीविद्या से भूः, भुवः, स्वः; ये तीन व्याहृति रूप अक्षर प्रतिभासित हुए ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः)

सामोपासनप्रसङ्गेन कर्मगुणभूतत्वान्निवर्त्योंकारं परमात्मप्रतीकत्वादमृतत्वहेतुत्वे महीकृत्य प्रकृतस्यैव यज्ञस्याङ्गभूतानि सामहोममन्त्रोत्थानान्युपदिदिक्षन्नाह—

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातःसवनꣳ रुद्राणां माध्यंदिनꣳ सवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम् ॥ १ ॥

सवनों के अधिष्ठाता देवता

ब्रह्मवादी लोग कहते हैं कि प्रातः सवन वसुदेवों का है। मध्याह्न सवन रुद्रों का है; तृतीय सवन आदित्य और विश्वेदेवों का है। (इन्हीं अधिष्ठातृ देवताओं के द्वारा भूर्लोक और स्वर्ग के ऊपर यजमान विजय प्राप्त करता है) ॥१॥

संतृण्णा। "अकारो वै सर्वा वाक्" इत्यादिश्रुतेः। परमात्मविकारश्च नामधेयमा-मित्यत ओंकार एवेदꣳ सर्वमिति। द्विरभ्यास आदरार्थः। लोकादिनिष्पादनकथ-मोंकारस्तुत्यर्थमिति ॥३॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

मादिपदार्थः। ओंकारव्याप्तत्वेऽपि वाग्जातस्य न तस्य सर्वात्मत्वमाकाशादिपरमात्मविकारस्य पृ-विद्यमानत्वादित्यशङ्कयाऽऽह—परमात्मेति। सकलमपि जगत्परमात्मविकारत्वात्तदतिरेकेण नाति स च प्रकृतादोंकारान्नातिरिच्यते। "एतद्वै सत्यकाम परं चापरं च ब्रह्म यदोंकारः" इति श्रु-तस्माद्युक्तमोंकारस्य सर्वात्मत्वमित्यर्थः। ॐकारं सर्वात्मकं ब्रह्मरूपमुपासीतेतिविधिसमाप्त-मितिशब्दः। किमित्योंकारस्य लोकादिद्वारा निष्पत्तिरुच्यते तत्राऽऽह—लोकादीति। स्तुतिश्चो-स्त्यर्थ्रा। यस्तूयते तद्विधीयत इति स्थितेः। तथा च सिद्धमोंकारोपासनममृतत्वफलमिति वक्तुमितिशब्दः ॥२३॥

इति द्वितीयाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

इसके पश्चात् प्रजापति ने भूः, भुवः, स्वः; इन तीन व्याहृतियों का ध्यान किया। उन अभि-तप्त व्याहृतियों से ओंकार का प्रादुर्भाव हुआ। उस ब्रह्म को दृष्टान्त द्वारा समझाया जाता है। जिस प्रकार पर्णनाल से समस्त पत्तों के अवयव समूह व्याप्त रहते हैं; इस प्रकार परमात्मा के प्रतीकभूत ओंकारब्रह्म से सभी वाणी का विलास व्याप्त है। श्रुति भी कहती है—"ओंकार के अवयव अकार से समस्त वाणी का समूह व्याप्त है (फिर ओंकार का तो कहना ही क्या!)"। समस्त जगत् परमात्मा का विकार है, उसके बिना तो कुछ भी नहीं है। वही ओंकार है; इससे ओंकार का सर्वात्मक होना युक्तिसंगत है। मन्त्र में 'यह सब कुछ ओंकार ही है', यह द्विरुक्ति आदर के लिए है। लोकादि-प्रतिपादन द्वारा ओंकार की सिद्धि ओंकार उपासना में श्रद्धा स्थापित कराने के लिए है, यह उपासना अमृतत्व फल वाली है॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात् ॥ २ ॥

साम आदि का ज्ञाता ही यज्ञ का अधिकारी है

तो फिर यजमान का लोक कहाँ है (जिसके लिए वह यज्ञानुष्ठान करता है) जो यजमान उस लोक को नहीं जानता, वह अज्ञानी किस प्रकार यज्ञ अनुष्ठान कर सकेगा। अतः आगे बतलाये जाने वाले सामादि उपायों का ज्ञाता होकर ही कर्म करे ॥ २ ॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत्प्रातःसवनं प्रसिद्धं तद्वसूनाम्। तैश्च प्रातःसवनसंबद्धोऽयं लोको वशीकृतः सवनेशानैः। तथा रुद्रैर्माध्यंदिनसवनेशानैरन्तरिक्षलोकः। आदित्यैश्च विश्वेदेवैश्च तृतीयसवनेशानैस्तृतीयो लोको वशीकृतः। इति यजमानस्य लोकोऽन्यः परिशिष्टो न विद्यते ॥१॥

अतः क्व तर्हि यजमानस्य लोको यदर्थं यजते। क्वचिल्लोकोऽस्तीत्यभिप्रायः।

प्रासङ्गिकं हित्वा प्रकृतमनुसंधत्ते—सामेति। पञ्चविधं सप्तविधं च यज्ञाङ्गीभूतं साम तस्योपासनवचनादोंकारस्य तद्गुणस्य सुतरामेव कर्मगुणत्वे प्राप्ते ततस्तं व्यावर्त्य ब्रह्मप्रतीकत्वात्कैवल्यहेतुत्वेन तमेव महीकृत्य प्रस्तुतयज्ञाङ्गभूतसामादिविज्ञानविधानार्थमुत्तरवाक्यमित्यर्थः। 'सामहोममन्त्रोत्थानं सामादिज्ञानविधित्सया, तदपरिज्ञाने दोषमाह—ब्रह्मेत्यादिना। तेषां प्रातःसवनेशानत्वेऽपि यजमानस्य का हानिरित्याशङ्क्याऽऽह—तैश्चेति। यथा पृथिवीलोको वसुभिस्तथेति यावत्। अन्तरिक्षलोको वशीकृत इति पूर्वेण संबन्धः। तृतीयो लोको द्युलोकाख्यः। अस्तु तत्तद्देवानां तत्तल्लोकवशीकारस्तथाऽपि यजमानस्य लोकित्वे किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—इति यजमानस्येति ॥१॥

परिशिष्टलोकाभावोऽतःशब्दार्थः। तर्हि देहपातादूर्ध्वमित्येतत्। लोकापेक्षां विनाऽपि

(पूर्वप्रसङ्ग से थोड़ा हटकर सवनत्रय का प्रकरण आरम्भ करते हैं—) पञ्चविध एवं सप्तविध सामोपासना सम्बन्धी श्रुतिवचन से ओंकार एवं उसके गुण की कर्मगुण प्राप्ति होने पर उसकी व्यावृत्ति कर कैवल्य प्राप्ति के लिए ब्रह्म की प्रतीकोपासना को महत्त्व देकर प्रकृत में यज्ञाङ्गभूत सामादि होममन्त्रों को उपदेश करने की इच्छा से श्रुति कहती है।

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष कहते हैं, जो प्रातःसवन है, वह वसु देवता सम्बन्धी है—ऐसी प्रसिद्धि है। उन ब्रह्मवादी सवन करने वाले अधिपतियों के द्वारा यह प्रातःसवन सम्बन्धी लोक वश में किया हुआ है। इसी प्रकार माध्यन्दिन सवन के अधिपति रुद्रों के द्वारा अन्तरिक्ष लोक वश में किया हुआ है। तृतीय सवन के अधिपति आदित्य और विश्वेदेवों द्वारा द्युलोक वश में किया हुआ है। इस प्रकार तत्तद्देवताओं द्वारा तत्तल्लोक वश में किया हुआ है, यजमान के लिए अन्य कोई लोक अवशिष्ट नहीं रह जाता ॥ १ ॥

इसलिए (कोई लोक शेष न रहने से) यजमान का कौन सा लोक है, जिसके लिए वह यजन

'सामहोममन्त्रोत्थानमिति—सामादीत्यस्य टिप्पणमेवेत्थमुपन्यस्तमिति प्रतिभाति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳ सामाभिगायति ॥३॥

प्रातः सवन में वसुदेव संबन्धी साम गान

प्रातःकाल में पढ़ने योग्य अनुवाक (शस्त्र नामक स्तोत्र पाठ) से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवता संबन्धी साम का गान करता है ॥३॥

"लोकाय वै यजते यो यजते" इति श्रुतेः। लोकाभावे च स यो यजमानस्तं लो... स्वीकरणोपायं सामहोममन्त्रोत्थानलक्षणं न विद्यान्न विजानीयात्सोऽज्ञः कथं कुर्या... न कथंचन तस्य कर्तृत्वमुपपद्यत इत्यर्थः। सामादिविज्ञानस्तुनिपरत्वान्नाविदुषः कर्तृ... कर्ममात्रविदः प्रतिषिध्यते। स्तुतये च सामादिविज्ञानस्याविद्वत्कर्तृत्वप्रतिषेधाय ... हि भिद्येत वाक्यम्। आद्ये चौषस्त्ये काण्डेऽविदुषोऽपि कर्मास्तीति हेतुमवोचा... अथैतद्वक्ष्यमाणं सामाद्युपायं विद्वान्कुर्यात् ॥२॥

किं तद्वेद्यमित्याह—पुरा पूर्वं प्रातरनुवाकस्य शस्त्रस्य प्रारम्भाज्जघनेन गार्हप...

विधिवशाद्यागो भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—लोकायेति। लोकत्रयस्य वस्वाद्यधीनतया यजमाना... तस्य तदधीनत्वार्थं यज्ञाद्यनुष्ठानमित्याशङ्क्याऽऽह—लोकाभावे चेति। अज्ञो यज्ञं स्वर्गादिसाध... कथं कुर्यादित्याक्षेपादविद्वत्कर्मानुष्ठाननिन्दापरं वाक्यमित्याशङ्क्याऽऽह—सामादीति। अथैतीदं ... स्तुत्यर्थे निषेधार्थे च भविष्यति नेत्याह—स्तुतये चेति। इतश्चाविद्वत्कर्तृत्वं निषेद्धुमशक्यमित्य... आद्ये चेति। मटचीहतेष्वित्यादौ विदुषः संनिधाने तदनुज्ञामन्तरेणाविदुषः कर्म कर्तुमयु... प्रत्यवायप्रसङ्गात्। तदसंनिधौ तु तेनापि क्रियमाणं कर्म न दुष्यतीत्युपपादितमित्यर्थः। अथ... हेत्वर्थः। सामाद्यविज्ञाने यस्माद्यज्ञाद्यकरणमेव प्राप्तं तस्मादित्यर्थः ॥२॥

ज्ञातव्यं सामादि प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—किं तदित्यादिना। अप्रगीतमृग्जातं शस्त्रं यत्प्रात... शस्यते प्रातरनुवाकं तस्येति यावत्। उपाकरणादित्यस्यार्थमाह—प्रारम्भादिति। जघनेने...

करता है अर्थात् कोई सा भी लोक नहीं है। श्रुति भी कहती है—जो भी यज्ञ करता है, किसी न... लोक प्राप्ति के लिए ही करता है। (लोकत्रय वस्तु के अधीन है; यजमान के अधीन नहीं. उसे अधीन करने के लिए यज्ञ का विधान किया जाता है, ऐसी शङ्का होने पर समाधान किया जाता... लोकाभाव होने पर भी जो यजमान सोम-होम के मन्त्रोत्थान सञ्ज्ञक लोकत्रय की स्वीकृति के... को नहीं जानता, वह अज्ञानी स्वर्गादि लोकों के साधनभूत यज्ञ को किस प्रकार करेगा, वह इस... नहीं कर सकेगा। सामादि विज्ञान के स्तुतिपरक होने से कर्ममात्र के वेत्ता अज्ञ के लिए यज्ञकर्म... का निषेध नहीं है। सामादि विज्ञान को स्तुति के लिये विधान करने वाली एवं अज्ञ के लिए ... करने के प्रतिषेध का विधान करने वाली श्रुतियों में असामञ्जस्य होने लगेगा। प्रथम पक्ष को प... औषस्त्यकाण्ड में बताया गया है कि अविद्वान् के लिए भी कर्म का विधान है। (सामादि अवि... क्योंकि यज्ञादि का न ही करना प्राप्त है) अतः विद्वान् आगे कहे जाने वाले सामादि उपा...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लो३कद्वारमपावा३र्णू ३३ पश्येम त्वा वय७ रा ३ ३ ३ ३ ३ हु ३ म् आ ३ ३ ज्या ३ यो ३ आ ३ २ १ १ १ इति ॥ ४ ॥

अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ॥ ५ ॥

हे अग्ने ! तुम इस पृथिवी लोक की प्राप्ति के लिये इसका द्वार खोल दो, जिससे कि हम उस द्वार से राज्य प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें ॥४॥

उसके वाद (यजमान इस मन्त्र से) हवन करता है। पृथिवी लोक में रहने वाले पृथिवी लोक निवासी अग्निदेव को हम नमस्कार करते हैं। मुझ यजमान को तुम पुण्यलोक की प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमान का लोक है और मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ ॥५॥

पश्चादुदङ्मुखः सन्नुपविश्य स वासवं वसुदैवत्यं सामाभिगायति ॥३॥

लोकद्वारमस्य पृथिवीलोकस्य प्राप्तये द्वारमपावृणु हेऽग्ने तेन द्वारेण पश्येम त्वा त्वां राज्यायेति ॥४॥

अथानन्तरं जुहोत्यनेन मन्त्रेण नमोऽग्नये प्रह्वीभूतास्तुभ्यं वयं पृथिवीक्षिते पृथिवीनिवासाय लोकक्षिते पृथिवीलोकनिवासायेत्यर्थः। लोकं मे मह्यं यजमानाय विन्द लभस्व। एष वै मम यजमानस्य लोक एता गन्ताऽस्मि ॥५॥

द्वयाचष्टे—पश्चादिति। स गार्हपत्यस्य पृष्ठत उदग्भागे स्थित्वा वसुदेवताकं सामगानं कृतवानित्यर्थः। स वासवमित्यत्र सशब्दो यजमानविषयः ॥३॥

राज्याय त्वद्दर्शनेन त्वदनुज्ञया पृथिवीप्रयुक्तभोगायेत्यर्थः ॥४॥

पृथिव्यां क्षियति वसतीति पृथिवीक्षित्तस्मै पृथिवीक्षिते। पृथिवीलोके मया लब्धे तव किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—एष वै मम यजमानस्येति ॥५॥

अनुष्ठान करे ॥ २ ॥

जिस सामादि के विषय में जानना चाहिए उसका स्वरूप क्या है। शस्त्र नामक प्रातरनुवाक स्तोत्र पाठ करने से पूर्व वह यजमान गार्हपत्याग्नि के पीठ पीछे उत्तरदिशा की ओर मुँह करके बैठकर वह वसुदेवता संवन्धी गान करे ॥ ३ ॥

हे अग्नि ! तुम इस पृथिवीलोक की प्राप्ति का द्वार खोल दो ताकि पृथिवीप्रयुक्त भोगों के लिए हम तुम्हारे दर्शन कर सकें ॥ ४ ॥

इसके वाद यजमान 'नमोऽग्नये' इस मन्त्र से हवन करे—हे अग्नि देवता ! आप पृथिवीलोक में निवास करते हो, मुझ यजमान को आप पृथिवीलोक की प्राप्ति कराओ। (इससे आपका क्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै वसवः प्रातःसवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥

पुरा माध्यंदिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाऽऽग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳ सामाभिगायति ॥ ७ ॥

लो३कद्वारमपावा३र्णू३३पश्येम त्वा वयं वैरा३३-३३३ हु ३ म् आ ३३ ज्या ३ यो ३ आ३२१११ इति ॥ ८ ॥

इस लोक में यजमान "मैं आयु समाप्त होने पर (पुण्यलोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा" ऐसा बोलकर हवन करता है। तुम लोक द्वार की अर्गला को दूर करो इस मन्त्र को कहकर उत्थान करता है। इसके बाद वसुगण उस यजमान को प्रातः सवन प्रदान करते हैं ॥६॥

मध्याह्न सवन में रौद्र साम गान

मध्याह्न सवन का आरम्भ करने से पहले यजमान दक्षिणाग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर वैराज्य पद की प्राप्ति के लिये रुद्र देवता संबन्धी गान करता है ॥७॥

हे वायो ! तुम अन्तरिक्ष लोक का द्वार खोल दो जिससे कि उस द्वार से वैराज्य पद प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें ॥८॥

अत्रास्मिँल्लोके यजमानोऽहमायुषः परस्तादूर्ध्वं मृतः सन्नित्यर्थः । स्वाहेति जुहोति । अपजह्यपनय परिघं लोकद्वारार्गलमित्येवं मन्त्रमुक्त्वोत्तिष्ठति । एतैर्वसुभ्यः प्रातःसवनसंबद्धो लोको निष्क्रीतः स्यात्ततस्ते प्रातःसवनं वसवो यजमानाय संप्रयच्छन्ति ॥ ६ ॥

तथाऽऽग्नीध्रीयस्य दक्षिणाग्नेर्जघनेनोदङ्मुख उपविश्य स रौद्रं सामाभिगायति यजमानो रुद्रदैवत्यं वैराज्याय ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्वाहाशब्दो मन्त्रसमाप्त्यर्थो होमद्योतकः । सर्वेषु मन्त्रेष्वेतैः सामहोममन्त्रोत्थानैरित्यर्थः ॥६॥

यथा पृथिवीलोकजयोपायो दर्शितस्तथाऽन्तरिक्षलोकजयोपायोऽपि प्रदर्श्यत इत्याह-तथेति ॥७॥८॥

क्या बनेगा इस शङ्का का समाधान करते हैं—) मुझ यजमान का तो यही पृथिवीलोक है, इसीको ... प्राप्त करूँगा आपको हमारा नमस्कार है ॥ ५ ॥

इस लोक में यजमान 'मैं मरने के बाद पुण्यलोक को प्राप्त करूँगा' फिर स्वाहा बोलकर हवन करे। 'हे अग्नि ! लोक के द्वार की अर्गला को हटा लो' इस मन्त्र को पढ़कर उत्थान करे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एताऽस्मि ॥ ९ ॥

अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहाऽपजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यंदिनꣳ सवनꣳ संप्रयच्छन्ति ॥ १० ॥

पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाऽऽहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳ स वैश्वदेवꣳ सामाभिगायति ॥ ११ ॥

उसके पश्चात् (यजमान इस मन्त्र से) होम करता है, अन्तरिक्ष में रहने वाले अन्तरिक्षलोक निवासी वायुदेव को नमस्कार है। मुझ यजमान को उस लोक की प्राप्ति कराओ। निश्चय ही यह अन्तरिक्ष लोक यजमान का है, मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ ॥९॥

यहाँ पर यजमान "मैं मरने पर (अन्तरिक्ष लोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा" ऐसा बोल कर हवन करता है और लोकद्वार की अर्गला को दूर करो, ऐसा कहकर उत्थान करता है। तब वे रुद्रगण उस यजमान को मध्याह्न सवन प्रदान करते हैं ॥१०॥

तृतीय सवन संबन्धी देवता के साम गान

तृतीय सवन का आरम्भ करने से पूर्व यजमान आहवनीयाग्नि के पीछे की ओर उत्तराभिमुख बैठकर (स्वाराज्य और साम्राज्य प्राप्ति के लिये क्रमशः) आदित्य और विश्वेदेव संबन्धी साम का गान करता है ॥११॥

अन्तरिक्षक्षित इत्यादि समानम् ॥ ९ ॥ १० ॥

तथाऽऽहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यदैवत्यमादित्यं वैश्वदेवं च सामाभि-

---

अन्तरिक्षे क्षियतीत्यन्तरिक्षक्षिद्वायुस्तस्मै वायवे ॥९॥१०॥

यथा पृथिव्यन्तरिक्षयोराप्त्युपायस्तथा द्युलोकाप्त्युपायोऽप्युच्यत इत्याह—तथेति। स्वाराज्य-

---

कार साम-होम के मन्त्रोत्थान के द्वारा वसुगण के लिए प्रातःसवन से संबद्ध लोक बदले में मिल जाएगा। अतः वसुगण उस यजमान को प्रातःसवन प्रदान करते हैं ॥ ६ ॥

अब अन्तरिक्ष लोक के विजय का उपाय प्रदर्शित किया जाता है—दक्षिणाग्नि की पीठ की ओर उत्तरदिशा की ओर मुख करके बैठकर वह यजमान रुद्र देवता के लोकों के भोगों को प्राप्त करने के लिए रौद्र साम का गान करे ॥ ७ ॥ ८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लो३कद्वारमपावा३र्णू३३पश्येम त्वा वय७स्वारा३३-
३३३हु३म् आ३३ज्या ३ यो ३ आ३ २ १ १ १
इति ॥ १२ ॥

आदित्यमथ वैश्वदेवं लो३कद्वारमपावार्णू३३३ पश्येम
त्वा वय७ साम्ना ३३३३३हु३म् आ ३३ ज्या ३ यो
३आ ३२१११ इति ॥ १३ ॥

अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो
दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय
विन्दत ॥ १४ ॥

एष वै यजमानस्य लोक एताऽस्म्यत्र यजमानः पर-

हे देव ! तुम लोक का द्वार खोल दो जिससे हम स्वाराज्य प्राप्ति के लिये तुम्हें पा सकें। यह आदित्य साम है, इसके बाद विश्वेदेव साम कहते हैं। लोक का द्वार खोल दो जिससे हम साम्राज्य प्राप्ति के लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें ॥१३॥

तदन्तर (यजमान इस मन्त्र द्वारा) हवन करता है। स्वर्ग में रहने वाले द्युलोक नि- आदित्यों को तथा विश्वेदेवों को नमस्कार है। तुम मुझ यजमान को पुण्य लोक प्राप्त कराओ।

निश्चय ही यह यजमान का लोक है। मैं इसे प्राप्त करने वाला हूँ। यहाँ पर यजमान

गायति क्रमेण स्वाराज्याय साम्राज्याय ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

दिविक्षिद्भ्य इत्येवमादि समानमन्यत् । विन्दतापहतेति बहुवचनमात्रं विशे-

---

[1]मन्तरिक्षे स्वातन्त्र्यम् । आदित्यानामिव स्वातन्त्र्यमिह विवक्षितम् ॥११॥१२॥१३॥

अन्तरिक्षलोक में निवास करने वाले वायु देवता के लिए भी पूर्वोक्त मन्त्रों के द्वारा करे ॥ ९ ॥ १० ॥

(जिस प्रकार पृथिवी एवं अन्तरिक्ष लोक की प्राप्ति का उपाय वसुदेव एवं रौद्र संबन्धी उपासना में आविष्कृत किया गया है) उसी प्रकार द्युलोक प्राप्ति के लिए यजमान आहवनीय की ओर उत्तर को मुख किए आसन में बैठकर आदित्य एवं विश्वेदेव संबन्धी साम का आगान करे। आदित्यसंबन्धी साम गान से द्युलोक में निष्कण्टक गति की प्राप्ति होती है एवं विश्वेदेव संबन्धी गान से सार्वभौम राज्य की प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

---

१. अन्तरिक्ष इति—दिवीति युक्तं प्रतिपत्तम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तादायुषः स्वाहाऽपहत परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति ॥१५॥

तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनँ संप्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

इति च्छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

समाप्त होने पर (मैं स्वर्ग लोक को प्राप्त करूँगा) स्वाहा" ऐसा कहकर हवन करता है और संबन्धित लोक द्वार की अर्गला को हटाओ— ऐसा कहकर उत्थान करता है ॥१५॥

उस यजमान को आदित्य और विश्वेदेव तृतीय सवन देते हैं। जो इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ही यज्ञ के पूर्वोक्त यथार्थ स्वरूप को जानता है। द्विरुक्ति अध्याय समाप्ति के लिये है ॥१६॥

॥ इति द्वितीयाध्यायः, चतुर्विंशः खण्डः ॥

याजमानं त्वेतत् । एताऽस्म्यत्र यजमान इत्यादिलिङ्गात् ॥ १४ ॥ १५ ॥

एष ह वै यजमान एवंवित् यथोक्तस्य सामादेर्विद्वान्यज्ञस्य मात्रां यज्ञयाथात्म्यं

किमिदं सामाद्यार्त्विज्यमाहो याजमानिकमिति वीक्षायामाह—याजमानं त्विति । आदिपदेन लोकं मे यजमानायेति निर्देशो गृह्यते ॥१४॥१५॥

सामादिविज्ञानफलं कथयति—एष हेति । य एवं वेदेत्यस्य व्याख्या—यथोक्तस्येति ।

"जिन आदित्य एवं विश्वेदेव देवताओं का आवासस्थान द्युलोक है" इत्यादि व्याख्यान पूर्व-मन्त्रों के समान है। चौदहवें मन्त्र के "विन्दत" (प्राप्त कराएँ) एवं "अपहत" (हटाएँ) में इतनी ही विशेषता है कि यहाँ बहुवचन का प्रयोग है। यहाँ पुण्यलोक प्राप्ति एवं द्वार-अर्गला को हटाना यजमान विषयक है। क्योंकि पन्द्रहवें मन्त्र में "एताऽस्म्यत्र यजमानः" (मैं यजमान इसे प्राप्ति करने वाला हूँ) इत्यादि निर्देश इसका ज्ञापक है ॥ १४ ॥ १५ ॥

(सामादिविज्ञान का फल बतलाया जाता है—) साम की पूर्वोक्त उपासना को जो सामवेत्ता विद्वान् इस प्रकार तीनों सवनों में जानता है, यज्ञ के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला वह विद्वान् उसके अनुष्ठान द्वारा अभीष्ट फल की प्राप्ति करता है। १६वें मन्त्र में "य एवं वेद य एवं वेद" जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding by IKS-MoE Grant-2

वेद यथोक्तम् । य एवं वेद य एवं वेदेति द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्त्यर्था ॥ १६ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यपरमहंसपरिव्राजकाचार्य-
श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यथोक्तं सामादीत्येतत् । एवमित्युक्तप्रकारोक्तिः । तस्य यज्ञयाथात्म्यविदस्तदनुष्ठानद्वारा … संभवतीत्यर्थः ॥१६॥

इति द्वितीयाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां
छान्दोग्योपनिषद्भाष्यटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

इस प्रकार जानता है, (जो इस प्रकार जानता है) यह द्विरावृत्ति द्वितीय अध्याय समाप्ति के … से की गई है ॥ १६ ॥

इस प्रकार छान्दोग्य उपनिषत् द्वितीय अध्यायस्थ शांकरभाष्य की डॉ० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः)

ॐ। असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः ॥१॥

आदित्यादि में मधु आदि दृष्टि

ओं वह आदित्य निश्चय ही (देवताओं को प्रसन्न करने वाला होने से) देवताओं का मधु है। द्युलोक ही उसका तिरछा बाँस है, (क्योंकि वह तिरछा दिखायी पड़ता है) वह (लटक रहा) अन्तरिक्ष मधु का छत्ता है और किरणें (उस छत्ते में रहने वाले मक्खियों के) बच्चे हैं ॥१॥

असौ वा आदित्य इत्याद्यध्यायारम्भे संबन्धः। अतीतानन्तराध्यायान्त उक्तं यज्ञस्य मात्रां वेदेति यज्ञविषयाणि च सामहोममन्त्रोत्थानानि विशिष्टफलप्राप्तये यज्ञाङ्गभूतान्युपदिष्टानि। सर्वयज्ञानां च कार्यनिर्वृत्तिरूपः सविता महत्या श्रिया दीप्यते। स एष सर्वप्राणिकर्मफलभूतः प्रत्यक्षं सर्वैरुपजीव्यते। अतो यज्ञव्यपदेशानन्तरं तत्कार्यभूतसवितृविषयमुपासनं सर्वपुरुषार्थेभ्यः श्रेष्ठतमफलं विधास्यामीत्येवमारभते श्रुतिः—

असौ वा आदित्यो देवमध्वित्यादि। देवानां मोदनान्मध्विव मध्वसावादित्यः।

कर्माङ्गावबद्धं विज्ञानं परिसमाप्य कर्मफलस्याऽऽदित्यस्य स्वतन्त्रोपास्तिविध्यर्थमध्यायान्तरमारभमाणः संबन्धं प्रतिजानीते—असाविति। पूर्वोत्तरग्रन्थयोः संबन्धं प्रतिज्ञातं प्रकटयितुं वृत्तं कीर्तयति—अतीतेति। विशिष्टफलं पृथिव्यादिलोकत्रयम्। समनन्तरसंदर्भस्य तात्पर्यं वक्तुं पातनिकां करोति—सर्वेति। तस्य प्रेप्सितत्वं सूचयति—महत्येति। कथं पुनरादित्यस्य सर्वप्राणिकर्मफलभूतत्वमित्याशङ्क्य सर्वैरुपजीव्यत्वोपलम्भादित्याह—स एष इति। पातनिकां कृत्वोत्तरग्रन्थमुत्थापयति—अत इति। आदित्यस्य कर्मफलत्वादिति यावत्। तदुपदेशे हेत्वन्तरमाह—सर्वपुरुषार्थेभ्य इति। श्रेष्ठतमं फलं क्रमेण मुक्तिलक्षणमस्यास्तीति तथोक्तम्। आदित्ये कर्मफलशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमुक्तं

प्रथम मन्त्र में 'असौ वा आदित्यः' यह अध्याय के आरम्भ में संबन्ध प्रतिपादित करने के लिए है। पूर्व एवं अतीत अध्याय के अन्त में कहा है जो यज्ञ की मात्रा को जानता है, यज्ञविषय यज्ञाङ्गभूतों का साम याग मन्त्र से होने वाले पृथिवी आदि तीन लोकों की प्राप्ति के लिए उपदेश किया गया। आदित्य समस्त यज्ञों का कार्य निष्पादित करता है, इसलिए अतिशय शोभा से वह दीप्त होता है। वह सभी प्राणियों के कर्मफलों को देने वाला है, इस प्रकार आदित्य का उपजीवक भाव सभी द्वारा प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसलिए (आदित्य कर्मफलप्रदाता होने के कारण) यज्ञ विधान के पश्चात् पुरुषार्थचतुष्टय में श्रेष्ठतम फल मोक्ष के विधानहेतु उसके कार्यभूत आदित्यविषयक उपासना का आरम्भ श्रुति करती है—

वह आदित्य सचमुच देवताओं का मधु है। देवताओं को जिस प्रकार मधु प्रसन्न करता है, वैसे ही वह आदित्य मधु है। आदित्य समस्त यज्ञों के फल रूप में प्रस्तुत किया जाता है, इसलिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः। ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः ॥२॥

आदित्य की पूर्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

उस आदित्यरूप मधु की जो पूर्व दिग्वर्ती किरणें हैं वे ही इस अन्तरिक्षरूप छत्ते के पूर्व वा मधुनाड़ियाँ (छिद्र) हैं, ऋचाएँ मधुकर हैं, ऋग्वेद ही पुष्प है, (अग्नि में प्रक्षिप्त) वे सोमादि अमृत जल है ॥२॥

वस्वादीनां च मोदनहेतुत्वं वक्ष्यति सर्वयज्ञफलरूपत्वादादित्यस्य। कथं मधुत्वमित्याह- तस्य मधुनो द्यौरेव भ्रामरस्येव मधुनस्तिरश्चीनश्चासौ वंशश्चेति तिरश्चीनवंशः तिर्यग्गतेव हि द्यौर्लक्ष्यते। अन्तरिक्षं च मध्वपूपो द्युवंशे लग्नः सल्लम्बत इव मध्वपूपसामान्यादन्तरिक्षं मध्वपूपो मधुनः सवितुराश्रयत्वाच्च। मरीचयो रश्मिस्था आपो [1]भौमाः सवित्राकृष्टाः। एता वा आपः स्वराजो यन्मरीचय इति विज्ञायन्ते। ता अन्तरिक्षमध्वपूपस्थरश्म्यन्तर्गतत्वाद्भ्रमरबीजभूताः पुत्रा इव हि लक्ष्यन्त इति पुत्रा इव पुत्रा मध्वपूपनाड्यन्तर्गता हि भ्रमरपुत्राः ॥ १ ॥

व्यक्तीकर्तुमाह—वस्वादीनां चेति। चकारो विद्वत्संग्रहार्थः। वक्ष्यत्यादित्यस्येति संबन्धः। सर्वेषां यज्ञानां फलरूपत्वादिति हेतुः। वस्वादयश्च कर्मफलभोक्तारस्तत्फलमादित्यं दृष्ट्वा तृप्यन्ति युक्तमित्यर्थः। आदित्यं मधुदृष्ट्योपासीतेयुक्तं तत्र प्रसिद्धमधुसाम्यमादित्यस्य श्रुत्युक्तमाकाङ्क्षा दर्शयति—कथमित्यादिना। दिवि तिरश्चीनवंशदृष्टौ निमित्तमाह—तिर्यग्गतेति। अन्तरिक्षं सिभिरुपरि विसारितनयनैरिति शेषः। अन्तरिक्षे मध्वपूपदृष्टिं कथयति—अन्तरिक्षमिति। इत्युभयत्र संबन्धः। मरीचयः पुत्रा इति वाक्यं व्याचष्टे—मरीचय इति। आपो भूमेराकृष्टा रश्मि सन्तीत्यत्र प्रमाणमाह—एता इति। स्वराजः स्वतो भासमानस्य सवितुरिति यावत्। तासां प्रकटयति—ता इति। लोके हि भ्रमरबीजभूताः पुत्रा मध्वपूपच्छिद्रस्था दृश्यन्ते। एताश्चाऽऽपोऽन्त लक्षणमध्वपूपान्तर्गतरश्मिस्था भवन्ति। ततश्चैतास्वप्सु भ्रमरबीजदृष्टिः कर्तव्येत्यर्थः ॥१॥

वसु एवं ज्ञानियों को भी श्रुति कहेगी कि वे प्रसन्नता देने में हेतु हैं। आदित्य की मधुसाम्यता प्रकार है, इसे बतलाया जाता है। उस मधु का द्युलोक ही भ्रामर मधु के सदृश तिरछा क्योंकि द्युलोक का तिरछा लटकते होना देखा जाता है। द्युलोक वंश से सटे हुए लटकता है कारण अन्तरिक्ष ही मधु का छत्ता है। मधु के आदित्य के आश्रित रहने से अन्तरिक्ष एवं मधु के में समानता है। सूर्य द्वारा भूमि से खींचा हुआ जल रश्मि है क्योंकि सूर्य की किरणों में जल करता है। जलरूप में विद्यमान ये सूर्य की किरणें स्वभावतः ही प्रकाशित होती हैं। जिस मधुमक्खियों के बच्चे मधु के छत्ते में रहते हैं, उसी प्रकार जल अन्तरिक्ष रूप मधु के छत्ते में किरण रूप में रहते हैं, इसलिए जल में भ्रमरबीज दृष्टि का आधान करना चाहिए ॥ १ ॥

---

१. भौमा इति—अण् चेद्भौम्य इति युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य सवितुर्मध्वाश्रयस्य मधुनो ये प्राञ्चः प्राच्यां दिशि गता रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यः प्रागश्चानान्मधुनो नाड्यो मधुनाड्य इव मध्वाधारच्छिद्राणीत्यर्थः। तत्र ऋत एव मधुकृतो लोहितरूपं सवित्राश्रयं मधु कुर्वन्तीति मधुकृतो भ्रमरा इव यतो रसनादाय मधु कुर्वन्ति। तत्पुष्पमिव पुष्पमृग्वेद एव तत्र। ऋग्ब्राह्मणसमुदायस्यर्ग्वेदाख्यत्वाच्छब्दामात्राच्च भोग्यरूपरसनिस्रावासंभवादृग्वेदशब्देनात्र ऋग्वेदविहितं कर्म। ततो हि कर्मफलभूतमधुरसनिस्रावसंभवात्। मधुकरैरिव पुष्पस्थानीयादृग्वेदविहितात्कर्मणोऽप आदाय ऋग्भिर्मधु निर्वर्त्यते। कास्ता आप इत्याह—ताः कर्मणि प्रयुक्ताः सोमाज्यपयोरूपा अग्नौ प्रक्षिप्तास्तत्पाकाभिनिर्वृत्ता अमृता अमृतार्थत्वादत्यन्तरसवत्य आपो भवन्ति। तद्रसानादाय ता वा एता ऋचः पुष्पेभ्यो रसमाददाना एव भ्रमरा ऋचः॥ २॥

प्राचीदिग्गतेष्वादित्यरश्मिषु प्राचीनमधुनाडीदृष्टिर्विधेयेत्याह—तस्येति। मध्वाश्रयस्य लोहितादिरूपं मधु वक्ष्यमाणं तदाधारस्येत्यर्थः। ऋक्षु मन्त्ररूपासु भ्रमरदृष्टिमारोपयति—तत्रेति। प्रकृतं मधु सप्तम्यर्थः। तासां मधुकृत्त्वं साधयति—लोहितेति। ऋग्वेदविहिते कर्मणि पुष्पदृष्टिं संपादयति—यत इति। ऋचो मधुकृत इति मन्त्राणां पृथक्कृतत्वादृग्वेदः पुष्पमित्यग्वेदशब्देन ब्राह्मणसमुदायस्य वक्तव्यत्वात्कथंचिदृग्वेदविहिते कर्मणि तच्छब्देन लक्षिते पुष्पदृष्टयध्यासेऽपि कुतस्ततो मधुनिष्पत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—ततो हीति। तदेवोपपादयति—मधुकरैरिति। लोके तावदपः पुष्पाश्रयाः समादाय मधुकरैर्मधु निर्वर्त्यते तथेहापि मधुकरस्थानीयैर्ऋङ्मन्त्रैस्तद्वेदविहितात्पुष्पस्थानीयात्कर्मणः सकाशादपो गृहीत्वा मधु निष्पाद्यते। तस्मात्कर्मणः स्वफलभूतमधुनिष्पत्तेरुपपत्तेस्तस्मिन्पुष्पदृष्टिरित्यर्थः। ता अमृता आप इति वाक्यं प्रश्नपूर्वकं व्याचष्टे—कास्ता इत्यादिना। कर्मणि प्रयुक्तत्वमभिनयति—अग्नाविति। अग्निपाकाभिनिर्वृत्तत्वमपूर्वात्मत्वं परम्परया मुक्त्यर्थत्वममृतार्थत्वम्। यद्वा रोहितरूपामृतनिर्वर्तकत्वं तदर्थवत्त्वम्। उत्कृष्टफलवत्त्वमत्यन्तरसवत्त्वम्। ता वा एता इत्यादिव्याचष्टे—तद्रसानिति। यथा हि पुष्पेभ्यो भ्रमरा रसानाददानास्तान्यभितपन्ति तथैते मन्त्रास्तस्मिन्कर्मणि स्थितानम्मयान्रसानादाय मधु निर्वर्तयन्तो यथोक्तं कर्माभ्यतपन् समालोचयन्ति स्मेत्यर्थः॥२॥

उस आदित्यरूप मधु की ये जो पूर्ववर्ती दिशाओं में विद्यमान किरणें हैं, वे ही मधु के आधार-छिद्र हैं जो इस अन्तरिक्षरूप मधु के छत्ते के पूर्व में विराजमान हैं। (ऋक्मन्त्रों में मधुदृष्टि का आरोप किया जाता है—) आदित्यरूप मधु में ऋक्मन्त्र ही भ्रमर हैं; वह आदित्य के आश्रित लोहित रूप है। शहद बनाने के कारण भंवरे ही मधुकर हैं क्योंकि वे पुष्पों का रस लाकर मधु बनाते हैं, वहाँ पुष्पों के समान ऋग्वेद ही पुष्प है। ऋग्वेद शब्द से यहाँ ऋग्वेद से विधान किए कर्मों से तात्पर्य है क्योंकि ऋग्वेद और ब्राह्मण समुदाय का ऋग्वेद शब्द से ग्रहण होता है, शब्द मात्र होने से भोग्यरूप रस को निचोड़ना इससे संभव नहीं है। कर्मस्वरूपात्मक ऋक् से कर्मफलभूत मधु रस की निष्पत्ति संभव है। पुष्पस्थानीय ऋग्वेद विहित कर्म से जल ग्रहण कर ऋक्मन्त्रों से भ्रमरों के समान ही रस निष्पन्न किया जाता है। वह जल कैसा है, इस पर कहा जाता है—कर्म में प्रयुक्त अग्नि में सोमाज्य पय रूप से निवेदित किए अग्नि में पकने से निष्पन्न होने से मुक्ति रूप उत्कृष्ट प्रयोजन वाले जल होते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतमृग्वेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ॥३॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादि-

उन इन ऋग्रूप मधुकरों ने ही इस ऋग्वेदरूप पुष्प का अभिताप किया। उस अभितप्त ऋग्वेद से (यागादि रूप कर्मों के कारण) ख्याति, देह गत दीप्ति, समर्थ, इन्द्रियाँ, बल और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुए ॥३॥

वह (यश से लेकर अन्नाद्य पर्यन्त) रस विशेष रूप से गया (और जाकर) उसने आदित्य को

एतमृग्वेदविहितं कर्म पुष्पस्थानीयमभ्यतपन्नभितापं कृतवत्य इवैता ऋचः कर्मणि प्रयुक्ताः। ऋग्भिर्हि मन्त्रैः शस्त्राद्यङ्गभावमुपगतैः क्रियमाणं कर्म मधुनिर्वर्तकं रसं मुञ्चतीत्युपपद्यते पुष्पाणीव भ्रमरैराचूष्यमाणानि। तदेतदाह—तस्यर्ग्वेदस्याभितप्तस्य। कोऽसौ रसो य ऋङ्मधुकराभितापनिःसृत इत्युच्यते। यशो विश्रुतत्वं तेजो देहगता दीप्तिरिन्द्रियं सामर्थ्योपेतैरिन्द्रियैरवैकल्यं वीर्यं सामर्थ्यं बलमित्यर्थः। अन्नाद्यमन्नं च तदाद्यं च येनोपयुज्यमानेनाहन्यहनि [1]देवानां स्थितिः स्यात्तदन्नाद्यमेष रसोऽजायत यागादिलक्षणात्कर्मणः ॥ ३ ॥

यश आद्यन्नाद्यपर्यन्तं तद्व्यक्षरद्विशेषेणाक्षरदगमत्। गत्वा च तदादित्यमभितः

कथं पुनर्मन्त्राणां भ्रमरस्थानीयानां पुष्पस्थानीयमृग्वेदविहितं कर्माभितप्तवतां फलवत्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—एता ऋच इति। तासां कर्मणि प्रयुक्तत्वेऽपि किमायातं तदाह—ऋग्भिरिति। अभितप्तस्य रसोऽजायतेति संबन्धः। तं प्रश्नपूर्वकं विशदयति—कोऽसाविति ॥३॥

तच्छब्दार्थमाह—यश आदीति। अथानुष्ठितकर्मजनितं फलं कथमादित्यमाश्रयतीत्याशङ्क्याऽऽह—

हैं। जिस प्रकार पुष्पों से रस लेते हुए भ्रमर उसे तपाते हैं उसी प्रकार ये ऋक्मन्त्र जलमय रसों को लेकर मधु निष्पत्ति कर उन कर्मों को तपा कर फल देते हैं ॥ २ ॥

इस पुष्पस्थानीय ऋग्वेदविहित कर्म को अभितप्त करने के समान ही भ्रमरों ने अभिताप किया, इसीलिए ये ऋक्मन्त्र कर्म में प्रयुक्त हैं क्योंकि शस्त्रादि अङ्गभाव को प्राप्त ऋक्मन्त्रों द्वारा किया कर्म मधुनिष्पादन करने वाले रस को छोड़ता है, इससे भ्रमरों से फूलों से चूसे जाते हुए रस की संगति बैठ जाती है। इसीलिए मन्त्र में कहा है—ऋक्रूप भ्रमरों ने पुष्प का अभिताप किया। ऋक्मन्त्ररूप भ्रमरों के अभिताप से निकला हुआ रस कौनसा है। इस पर कहा जाता है—लोकविश्रुति, देहगत कान्ति, सामर्थ्यपूर्ण इन्द्रियों की अव्याकुलता, बल एवं अन्नाद्य हो रस हैं। अन्नाद्य वह है जिसके प्रयोग से प्रतिदिन वसु आदि देवताओं की सुरक्षा हो वही यागादि लक्षण कर्म ही रस रूप में निष्पन्न हुआ ॥३॥

पूर्वोक्त यश आदि से लेकर अन्नाद्य पर्यन्त वह रस विशेष रूप से गया। उसने जाकर आदित्य

---

१. वस्वादीनाम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्यस्य रोहित रूपम् ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥१॥

र्वभाग में आश्रय लिया। यह जो (उदित हुए) आदित्य का लाल रूप है, निश्चय ही वही यह स है ॥४॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

आदित्य के दक्षिणवर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और इसकी जो दक्षिण दिशा में किरणें हैं, वे ही इस आदित्यरूप मधु की दक्षिण दिशा वाली मधुनाड़ियाँ हैं (यजुर्वेद विहित कर्म ही पुष्प हैं तथा वे सोमादि रूप अमृत ही जल है ॥१॥

ार्श्वतः पूर्वभागं सवितुरश्रयदाश्रितवदित्यर्थः। अमुष्मिन्नादित्ये संचितं कर्मफलाख्यं धु भोक्ष्यामह इत्येवं हि यशआदिलक्षणफलप्राप्तये कर्माणि क्रियन्ते मनुष्यैः केदार-ष्पादनमिव कर्षकैः। तत्प्रत्यक्षं प्रदर्श्यते श्रद्धाहेतोस्तद्वा एतत्। किं तद्यदेतदादित्यस्यो-तो दृश्यते रोहितं रूपम् ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मय इत्यादि समानम्। यजूंष्येव मधुकृतो यजुर्वेदविहिते

ुष्मिन्निति। दृष्टान्ते भोक्ष्यामहे व्रीह्यादिजनितं फलमित्यभिप्रायेण व्रीह्यादिप्राप्त्यर्थमिति शेषः। किं कर्मफलं यदादित्यमाश्रित्य तिष्ठतीत्याशङ्क्याऽऽह—तत्प्रत्यक्षमिति। कर्मफले प्रत्यक्षे तत्साधने र्णि कर्मिणां श्रद्धासिद्धयर्थमिति यावत्। तदेव फलं प्रश्नपूर्वकं विशदयति—किमित्यादिना ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

मध्वन्तरं दर्शयति—अथेति। वक्तव्यविशेषं कथयति—यजूंषीति। कथं तेषां मधुकृत्त्वं तदाह—

बगल से पूर्व भाग को ग्रहण कर लिया। जिस प्रकार कृषक भूमि को हल से जोतकर अच्छी प्रकार ार करता है, उसी प्रकार मनुष्य यशादिलक्षण फलप्राप्ति के लिए कर्म करते हैं कि इससे इस दित्य में संचित कर्मफलरूप मधु का सेवन करेंगे। कर्मकाण्डियों का कर्मफल प्रत्यक्ष देखे जाने पर इसका निर्देश श्रद्धा जागृत् करने के लिए है, वह रस क्या है—यह जो उदित होते हुए आदित्य का वर्ण है, सचमुच वही यह रस है ॥ ४ ॥

मधु का दूसरा रूप प्रतिपादित किया जाता है। ये जो दक्षिणदिशावर्ती किरणें हैं, वे आदित्यरूप

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तानि वा एतानि यजूँष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपँस्त-स्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यँ रसोऽजायत ॥२॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लँ रूपम् ॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

उन इन यजुः श्रुतियों ने यजुर्वेद को अभितप्त किया। उसी अभितप्त यजुर्वेद से यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुआ ॥२॥

उस रस ने विशेष रूप से गमन किया और आदित्य के दक्षिण भाग में आश्रय लिया। यह जो आदित्य का शुक्ल रूप दीखता है, वही यह मधु है ॥३॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

कर्मणि प्रयुक्तानि । पूर्ववन्मधुकृत इव । यजुर्वेदविहितं कर्म पुष्पस्थानीयं पुष्पमित्युच्यते। ता एव सोमाद्या अमृता आपः ॥ १ ॥

तानि वा एतानि यजूंष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपन्नित्येवमादि सर्वं समानम् । मध्वेतदादित्यस्य दृश्यते शुक्लं रूपम् ॥ २ ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

पूर्ववदिति । ऋङ्मन्त्राणामृग्वेदविहिते कर्मणि प्रयुक्तानां यथा पूर्वं मधुकरत्वमुक्तं तथा यजुषामपीत्यर्थः । यजुर्वेदविहिते कर्मणि पुष्पदृष्टिमाचष्टे—यजुर्वेदेति । ता अमृता आप इत्यस्य पूर्ववद्व्याख्यानमित्याह—ता एवेति ॥१॥

यजुषामादित्यसंबन्धि मधु प्रत्यक्षं दर्शयति—एतदिति ॥२॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

मधु की दक्षिणदिक्वर्ती मधुनाडियाँ हैं—इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। यजुर्वेद से विधान किए गए कर्म में प्रयुक्त यजुर्मन्त्र ही भंवरे हैं। ऋक्मन्त्रों के समान इन यजुर्मन्त्रों का भ्रमर आरोप उचित ही है। पुष्पस्थानीय यजुर्वेदविहित कर्म में पुष्पदृष्टि का आधान करना चाहिए, ऐसा मन्त्र में कहा जाता है। कर्म में प्रयुक्त अग्नि में सोमादि रूप पय से अग्नि पाक से निष्पादित होने से मुक्ति रूप उत्कृष्ट प्रयोजन वाले ये जल हैं ॥ १ ॥

उन यजुर्मन्त्रों ने यजुर्वेद को अभितप्त किया—इत्यादि सभी व्याख्या पूर्वमन्त्रों के समान है। यजुर्मन्त्रों में आदित्य संबन्धी मधु वही है जो आदित्य का शुक्ल रूप है ॥ २ ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः ॥१॥

तानि वा एतानि सामान्येतँ सामवेदमभ्यतपँस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यँ रसोऽजायत ॥२॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णँ रूपम् ॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

आदित्य के पश्चिम दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और ये जो आदित्य की पश्चिम दिग्वर्ती किरणें हैं, वे ही इस सूर्य की पश्चिम वाली मधुनाड़ियाँ हैं। सामवेद की श्रुतियाँ ही मधुकर हैं। सामवेदोक्त कर्म ही पुष्प है तथा वह (सोमादि रूप) अमृत ही जल है ॥१॥

उन इन साम श्रुतियों ने ही इस सामवेद विहित कर्म को अभितप्त किया। उस अभितप्त सामवेद से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्य रूप रस उत्पन्न हुआ ॥२॥

वह रस विशेष रूप से गया और आदित्य के पश्चिम भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य का कृष्ण तेज है, वही यह रस है ॥३॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मय इत्यादि समानम्। तथा साम्नां मधु। एतदादित्यस्य कृष्णं रूपम् ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

तृतीयं मधु कथयति—अथेति। ऋचां यजुषां च मधु यथा कथितं तथेति यावत्। तस्य शास्त्रप्रत्यक्षत्वं दर्शयति– एतदिति ॥१॥२॥३॥

इति तृतीयाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

मधु का तीसरा रूप प्रतिपादित किया जाता है। ये जो सूर्य की पश्चिम दिशा वाली किरणें हैं, वे ही इस सूर्य की पश्चिमदिक्वर्ती नाडियाँ हैं, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। ऋक् व यजुर्मन्त्रों के समान साममन्त्रों का भी मधु है। यह जो आदित्य का कृष्ण रूप शास्त्रसिद्ध है; वही वह रस है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः ॥१॥

ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपँस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यँ रसोऽजायत ॥ २ ॥

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णँ रूपम् ॥ ३ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

आदित्य की उत्तर दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और जो आदित्य की उत्तर दिक् सम्बन्धी किरणें हैं; वे ही इस आदित्य की उत्तर दिशा वाली मधुनाड़ियाँ हैं। अथर्वाङ्गिरस मन्त्र ही मधुकर है, इतिहास पुराण ही पुष्प है, (क्योंकि अश्वमेध यज्ञ के पारिप्लव रात्रियों में इनकथाओं का क्रमाङ्ग रूप से विनियोग किया गया है) तथा वह सोमादि रूप ही अमृत जल है ॥१॥

इन अथर्वाङ्गिरस श्रुतियों ने इस इतिहास पुराण को अभितप्त किया। उस अभितप्त (इतिहास पुराण रूप पुष्प) से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस की उत्पत्ति हुई ॥२॥

वह रस विशेष रूप से गया और आदित्य के उत्तर भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य का अतिशय कृष्ण रूप है, वह यह रस है ॥३॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मय इत्यादि समानम्। अथर्वाङ्गिरसोऽथर्वणाऽङ्गिरसा च दृष्टा मन्त्रा अथर्वाङ्गिरसः कर्मणि प्रयुक्ता मधुकृतः। इतिहासपुराणं पुष्पम्। तयोश्चेति-

---

चतुर्थं मधु निदर्शयति—अथेति। किं तत्कर्मेत्याशङ्क्याऽऽह—इतिहासेति। तद्धयाथर्वणानामाङ्गिरसानां च प्रसिद्धं ब्राह्मणं तद्विहितं कर्म पुष्पं पुष्पस्थानीयमित्यर्थः। यदा प्रसिद्धयोरितिहासपुराणयोरुपादानं तदाऽपि न दूषणमित्याह—तयोश्चेति। अश्वमेधकर्मणि 'जामितापरिहारार्थं पारिप्लवो नानाविधोपाख्यानसमुदायो यत्र तत्पारिप्लवमाचक्षीतेतिविधिवशात्प्रयुज्यते। तासु रात्रिषु तस्यैव कर्मणोऽङ्गत्वेन मनुर्वैवस्वतो राजेत्येवं प्रकारयोर्विनियोगस्य पूर्वतन्त्रे पारिप्लवार्थाधिकरणेनैव

क्रमप्राप्त अब चतुर्थ मधु का प्रदर्शन किया जाता है। आदित्य की जो उत्तरदिक्वर्ती किरणें हैं, वही उत्तरदिक्वर्ती मधुनाडियाँ हैं, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। अथर्वा एवं अङ्गिरा

१. जामिता—आलस्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवाऽऽदेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः ।। १ ।।

ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳ रसोऽजायत ।। २ ।।

आदित्य की ऊर्ध्व दिग्वर्ती किरणों में मधुनाड्यादि दृष्टि

और इस आदित्य की जो ऊपर की ओर जाने वाली किरणें हैं, वही इसकी ऊर्ध्व दिग्वर्ती मधुनाड़ियाँ हैं। गुह्य आदेश (लोक के द्वार खोलने की प्रार्थना) ही मधुकर है, प्रणव रूप ब्रह्म ही पुष्प है तथा वह सोमादि रूप अमृत ही जल है ।।१।।

उन इन गोपनीय आदेशों ने ही प्रणव नामक ब्रह्म को अभितप्त किया, उस अभितप्त ब्रह्म से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ ।।२।।

हासपुराणयोरश्वमेधे पारिप्लवासु रात्रिषु कर्माङ्गत्वेन विनियोगः सिद्धः। मध्वेतदादित्यस्य परं कृष्णं रूपमतिशयेन कृष्णमित्यर्थः ।। १ ।। २ ।। ३ ।।

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः ।। ४ ।।

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मय इत्यादि पूर्ववत्। गुह्या गोप्या रहस्या एवाऽऽदेशा लोकद्वारीयादिविधय उपासनानि च कर्माङ्गविषयाणि मधुकृतो ब्रह्मैव शब्दाधिकारात्प्रणवाख्यं पुष्पम्। समानमन्यत्। मध्वेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव समाहितदृष्टेर्दृश्यते

सिद्धत्वात्तत्संबन्धि कर्म पुष्पमित्यर्थः। अस्यापि मधुनः शास्त्रप्रत्यक्षतामाह—मध्वेतदिति ।।१।।२।।३।।

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।।४।।

पञ्चमं मधु दर्शयति—अथेति। लोकद्वारीयादिविधयो लोकद्वारमपावृणु पश्येम त्वा वयमित्यादयः। ब्रह्मशब्दार्थमाह—शब्दाधिकारादिति। ऋगादिशब्दानां प्रकृतत्वादित्यर्थः। अस्यापि मधुनः शास्त्रवशात्प्रत्यक्षतामाह—मध्वेतदिति। समाहितदृष्टेः शास्त्रार्थे समाहितचित्त-

---

ऋषि से साक्षात्कृत एवं कर्मों में प्रयुक्त अथर्वाङ्गिरस मन्त्र ही मधुकर हैं। इतिहास पुराण में पुष्प दृष्टि करनी चाहिए। लोकप्रसिद्ध इतिहास-पुराण का भी अश्वमेध कर्म में आलस्य हटाने के लिए नाना उपाख्यानों को कही गई रात्रियों में कर्माङ्ग रूप से विनियोग सिद्ध है, वही पुष्प है। यह मधु भी शास्त्रसिद्ध है जो आदित्य का अत्यन्त कृष्ण वर्ण है, वही यह रस है ।। १ ।। २ ।। ३ ।।

क्रमप्राप्त पञ्चम मधु का प्रतिपादन किया जाता है। ये जो ऊर्ध्वदिक्वर्ती रश्मियां हैं, वे उत्तरदिक्वर्ती आदित्य की मधुनाडियाँ हैं, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्रों के समान ही है। गोपनीय एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव ॥ ३ ॥

ते वा एते रसानाँ रसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

वह रस विशेष रूप से गया और वह आदित्य के ऊपर वाले भाग में आश्रित हुआ। यह जो आदित्य के मध्य में सञ्चालित सा दीखता है, यही वह मधु है ॥३॥

वे ये (पूर्वोक्त रोहितादि रूप विशेष) ही रसों के रस हैं, (लोकों के सारभूत होने के कारण) वेद ही रस हैं और ये उनके भी रस हैं, वे ही ये अमृतों के अमृत हैं, क्योंकि नित्य होने के कारण वेद ही अमृत है, उनके भी रोहितादि रूप अमृत माने गये हैं ॥४॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

संचलतीव ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

ते वा एते यथोक्ता रोहितादिरूपविशेषा रसानां रसाः। केषां रसानामित्याह—वेदा हि यस्माल्लोकनिष्यन्दत्वात्सारा इति रसास्तेषां रसानां कर्मभावमापन्नानामप्येते रोहितादिविशेषा रसा अत्यन्तसारभूता इत्यर्थः। तथाऽमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृता नित्यत्वात्तेषामेतानि रोहितादीनि रूपाण्यमृतानि। रसानां रसा इत्यादि कर्मस्तुतिरेषा।

स्येत्यर्थः ॥१॥२॥३॥

पञ्च मधूनि व्याख्याय तेषां सर्वेषां ध्येयत्वसिद्ध्यर्थं स्तुतिं प्रकुरुते—ते वा एत इति। तस्मात्तेषामिति संबन्धः। कर्मणि विनियुक्तत्वेन तदङ्गत्वात्तद्भावापत्तिः। वेदानां कार्यत्वेऽपि प्रयत्नपूर्वकत्वाभावान्नित्यत्वम्। या मधुनि स्तुतिः सा कर्मस्तुतिरित्याह—रसानामिति। कर्मस्तुतिमभिनयति—

रहस्यमय लोकद्वार के उद्घाटक आदेश एवं कर्माङ्गविषयक उपासनाएँ ही भ्रमर हैं। ऋगादिशब्दों के अधिकार से प्रणवाख्य ब्रह्म ही पुष्प है। उपरोक्त मन्त्रों की अन्य व्याख्या पूर्वमन्त्रों के समान है। शास्त्रार्थ में समाहित चित्त वाले को जो आदित्य के मध्य में चलता हुआ सा दीखता है, वही यह मधु है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

पञ्चविध मधु का व्याख्यान कर उन सभी का ध्येयरूप सिद्ध करने के लिए स्तुति की जाती है। उनमें यथोक्त रोहितादि रूप विशेष रसों के रस हैं। किन रसों के रस हैं—इस पर कहा जाता है। लोकनिष्यन्दनात्मक सारभूत होने से वेद ही रस हैं। कर्म में विनियुक्त होने से कर्मभावापन्न होते हुए भी ये कृष्ण शुक्लादि अतिशय सारभूत रस हैं। इस प्रकार ये अमृतों के भी अमृत हैं। कार्य होने पर भी वेदों में प्रयत्न का अभाव होने के कारण अर्थात् नित्य होने से वेद अमृत हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

वसुओं के उपजीवन रूप प्रथम अमृत की उपासना

इनमें जो (रोहित रूप वाला) पहला अमृत है, वसुगण अग्नि प्रधान होकर उसके उपजीवी होते हैं। देवता न खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस (रोहित रूप) अमृत को समस्त इन्द्रियों से अनुभव कर ही तृप्त हो जाते हैं ॥१॥

यस्यैवंविशिष्टान्यमृतानि फलमिति ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

तत्तत्र यत्प्रथमममृतं रोहितरूपलक्षणं तद्वसवः प्रातःसवनेशाना उपजीवन्त्यग्निना मुखेनाग्निना प्रधानभूतेनाग्निप्रधानाः सन्त उपजीवन्तीत्यर्थः। अन्नाद्यं रसोऽजायतेति-वचनात्कवलग्राहमश्नन्तीति प्राप्तं तत्प्रतिषिध्यते—न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्तीति। कथं तर्ह्युपजीवन्तीत्युच्यते—एतदेव हि यथोक्तममृतं रोहितं रूपं दृष्ट्वोपलभ्य सर्वकरणै-रनुभूय तृप्यन्ति। दृशेः सर्वकरणद्वारोपलब्ध्यर्थत्वात्। ननु रोहितं रूपं दृष्ट्वेत्युक्तं

यस्यैवमिति। रसानां रसा अमृतानाममृतानीत्येवं विशिष्टान्यमृतानि यस्य फलं कर्मणस्तस्य महाभाग्यं किं वक्तव्यमिति स्तूयते कर्मेत्यर्थः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

अमृतानि ध्येयान्युक्त्वा तदुपजीविनो दैवतागणाननुचिन्तनीयानुपदिशति—तत्त्रेति। कवल-ग्राहं कवलं गृहीत्वा यथा लोकोऽश्नाति तद्वदित्येतत्। नन्वशनपानाभावे न युक्तमुपजीवनवचनमित्या-शङ्क्य परिहरति—कथमित्यादिना। चक्षुषेति वक्तव्ये कथं सर्वकरणैरित्यधिकमुच्यते तत्राऽऽह—दृशे-रिति। चक्षुषैव रूपग्रहणमिति नियममाश्रित्य शङ्कते—नन्विति। कर्मफलभूतस्य रसस्य लोहितामृता-

---

उनके ये रोहितादि रूप भी अमृत हैं। वे ये रोहितादि रूप रसों के भी रस हैं अमृतों के भी अमृत हैं, इत्यादि स्तुति जो मन्त्र में है वह मधु की कर्मपरक स्तुति है। जिस कर्म का इस प्रकार अमृतत्व रूप विशिष्ट फल है, उसके भाग्य का क्या कहना ॥ ४ ॥

उनमें जो रोहित रूप वाला पहला अमृत है प्रातःसवन के अधिष्ठातृ देवता वसु अग्निप्रधान होकर उसके उपजीवी होते हैं। उससे यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्य रूप रस की उत्पत्ति हुई, इससे देवताओं के ग्रास लेकर खाने की बात सिद्ध हो जाती है, उसका निषेध किया जाता है। देवता लोग लोकव्यवहार की तरह कुछ भी खाते-पीते नहीं हैं। तो फिर वह किस प्रकार जीवित रहते हैं।-पूर्वोक्त रोहित रूप अमृत को प्राप्त कर सभी इन्द्रियों से अनुभव कर तृप्त हो जाते हैं, क्योंकि समस्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

वे देवगण इस रूप को ही लक्षित कर उदासीन हो जाते हैं। (कि अभी हमारे भोग का अवसर नहीं है और जब समस्त भोग का अवसर आता है तो) फिर अमृत भोग के लिये इस रूप से ही उत्साहित हो जाते हैं ॥२॥

कथमन्येन्द्रियविषयत्वं रूपस्येति। न। यशआदीनां श्रोत्रादिगम्यत्वात्। श्रोत्रग्राह्यं यशः। तेजोरूपं चाक्षुषम्। इन्द्रियं विषयग्रहणकार्यानुमेयं करणसामर्थ्यम्। वीर्यं बलं देहगत उत्साहः प्राणवत्ता। अन्नाद्यं प्रत्यहमुपजीव्यमानं शरीरस्थितिकरं यद्भवति। रसो ह्येवमात्मकः सर्वः। यं दृष्ट्वा तृप्यन्ति देवा दृष्ट्वा तृप्यन्त्येतत्सर्वं स्वकरणैरनुभूय तृप्यन्तीत्यर्थः। आदित्यसंश्रयाः सन्तो वैगन्ध्यादिदेहकरणदोषरहिताश्च ॥ १ ॥

किं ते निरुद्यमा अमृतमुपजीवन्ति। न। कथं तर्हि, एतदेव रूपमभिलक्ष्याधुना भोगावसरो नास्माकमिति बुद्ध्वाऽभिसंविशन्त्युदासते। यदा वै तस्यामृतस्य भोगावसरो भवेत्तदैतस्मादमृतादमृतभोगनिमित्तमित्यर्थः। एतस्माद्रूपादुद्यन्त्युत्साहवन्तो भवन्तीत्यर्थः। न ह्यनुत्साहवतामननुतिष्ठतामलसानां भोगप्राप्तिर्लोके दृष्टा ॥ २ ॥

त्मकस्य नास्ति चक्षुर्मात्रग्राह्यत्वमिति परिहरति—नेत्यादिना। किमेतावता रसस्याऽऽयात्तं तदाह—रसो हीति। इति तस्यापि श्रोत्रादिग्राह्यतेति शेषः। एतदेवेत्यादिवाक्यमुपसंहरति—देवा इति। किं तेषां स्वतन्त्राणां तृप्तिर्नेत्याह—आदित्येति। वैगन्ध्यं दौर्गन्ध्यम्। आदिपदेन संभाविताः सर्वेऽपि देहकरणदोषा गृह्यन्ते ॥१॥

एतस्माद्रूपादिति व्याख्यातस्यानुवादमात्रम्। उत्साहवतां देवानां यथोक्तामृतोपजीवित्वमित्यत्र लोकप्रसिद्धिमनुकूलयति—न हीति ॥२॥

इन्द्रियों द्वारा उपलब्धि तो चक्षु के माध्यम से होती है। इस पर शङ्का होती है—रोहित रूप को देखा जा सकता है, वह चक्षु से भिन्न इन्द्रियों का विषय कैसे हो सकता है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। यश आदि का श्रोत्रादि से बोध होता है क्योंकि यश का श्रोत्र से ग्रहण होता है। चक्षु तेजो रूप को ग्रहण करती है। सामर्थ्यशाली इन्द्रियों से अव्याकुलता विषयबोध कार्य से अनुमान किया जाता है। वीर्य बल अथवा प्राणमय देहगत उत्साह है। प्रतिदिन शरीर की स्थिति के लिए जो उपजीवी होता है, वह अन्नाद्य है। यह सभी रस के ही स्वरूप हैं, जिसे देखकर सभी देवता तृप्त हो जाते हैं। "देखकर तृप्त हो जाते हैं" कहने से सब इन्द्रियों से अनुभूति प्राप्त कर के ही तृप्त होते हैं, यह अर्थ हुआ। स्वतन्त्र देवताओं की तृप्ति इसलिए नहीं होती क्योंकि वे सूर्य के आश्रित रहकर दुर्गन्धादि देह और इन्द्रियों के दोषों से रहित हैं ॥ १ ॥

इस प्रकार क्या वे बिना कुछ उद्यम किए अमृत के उपजीवी होते हैं, नहीं; वे तो इस रूप को ही अभिलक्षित कर ऐसा सोचकर उदास हो जाते हैं कि इस समय हमें भोग्यपदार्थ सेवन की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाऽग्निनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

वह जो कोई इस प्रकार इस यथोक्त अमृत को जानता है, वह वसुओं में ही प्रधान होकर अग्नि मुख से ही इस अमृत को देख कर तृप्त हो जाता है। पूर्वोक्त रीति से इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन होता है और इस रूप से ही उत्साहित भी होता है ॥३॥

जितने समय में आदित्य पूर्व की ओर उदित होता है और पश्चिम की ओर अस्त होता है, उतना ही वसुओं का भोग काल है। अर्थात् उतनी देर तक वह विद्वान् वसुओं के आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त हो जाता है ॥४॥

॥ इति षष्ठ: खण्ड: ॥

स यः कश्चिदेतदेवं यथोदितमृङ्मधुकरतापरसक्षरणमृग्वेदविहितकर्मपुष्पात्तस्य चाऽऽदित्यसंश्रयणं रोहितरूपत्वं चामृतस्य प्राचीदिग्गतरश्मिनाडीसंस्थतां वसुदेवभोग्यतां तद्विदश्च वसुभिः सहैकतां गत्वाऽग्निना मुखेनोपजीवनं दर्शनमात्रेण तृप्तिं स्वभोगावसर उद्यमनं तत्कालापाये च संवेशनं वेद सोऽपि वसुवत्सर्वं तथैवानुभवति ॥ ३ ॥

कियन्तं कालं विद्वांस्तदमृतमुपजीवतीत्युच्यते—स विद्वान्यावदादित्यः पुरस्ता-

---

पाठक्रमेणोक्तं ध्येयस्वरूपमनूद्य साधिकारं ध्यानविधिं दर्शयति—स य इति। एतदित्य[1]स्माकं मधु निदर्शयति। एवंशब्दार्थं विशदयति—यथोदितमिति। वसुदेवभोग्यतां वसुभिर्देवैरुपजीव्यत्वमिति यावत्। तथैव श्रुत्युक्तक्रमेणैवेत्यर्थः ॥३॥

भोगकालपरिमाणं प्रश्नपूर्वकं निर्धारयति—कियन्तमिति। आधिपत्यं स्वाराज्यमिति विशेष-

---

सुविधा प्राप्त नहीं है। किन्तु जब अमृत के सेवन का अवसर आता है, तो अमृत भोग के निमित्त इस रूप से उत्साहयुक्त हो जाते हैं। लोकव्यवहार में भी देखा जाता है कि उद्यमविहीन, बेकार बैठे आलसी लोगों को भोगप्राप्ति नहीं होती ॥ २ ॥

(ध्येय स्वरूप बतलाकर ध्यानविधि का निरूपण किया जाता है—) जो कोई भी इस मधु को पूर्वोक्त ऋक्मन्त्र, भ्रमर, अभिताप, रसक्षरण रूप ऋग्वेदविहित कर्म पुष्प से आधान करना, उस अमृत का आदित्य के आश्रित एवं रोहित रूप होना, पूर्वदिग्वर्ती किरणें एवं नाड़ियाँ होना, वसु देवताओं से उपजीवी होना, वसुओं में प्रधान होकर अग्निमुख से उपजीवी होना, दर्शनमात्र से तृप्त होना, स्वभोग के अवसर आने पर उद्यमशील होना एवं भोगसेवन की सुविधा चले जाने पर उदासीन

---

१. अस्माकमुपासकानामुपास्यमादित्यरूपं मधु न तु लोहितादिरूपमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

रुद्रों के उपजीवन रूप द्वितीय अमृत की उपासना

अब जो द्वितीय अमृत है, रुद्रगण इन्द्र प्रधान होकर उसके उपजीवी होते हैं। देवगण न खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को देखकर ही तृप्त हो जाते हैं ॥१॥

(भोग का काल न जानकर) वे देवगण इस रूप को लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और पुनः इसी से (भोग काल उपस्थित जानकर) उद्यमशील होते हैं ॥२॥

वह जो पुरुष इस प्रकार इस अमृत को जानता है, वह रुद्रों में से ही प्रमुख होकर इस अमृत को देख करके ही उदासीन हो जाता है और इस रूप से ही उद्यमशील हो जाता है ॥३॥

त्प्राच्यां दिश्युदेता पश्चात्प्रतीच्यामस्तमेता तावद्वसूनां भोगकालस्तावन्तमेव कालं वसूनामाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता परितो गन्ता भवतीत्यर्थः। न यथा चन्द्रमण्डलस्थः केवलकर्मी परतन्त्रो देवानामन्नभूतः। किं तर्ह्ययमाधिपत्यं स्वराड्भावं चाधिगच्छति ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीत्यादि समानम् ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

णयोस्तात्पर्यमाह—न यथेति ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य [illegible] डः ॥६॥

प्रथमममृतमधिकृत्य चिन्तनीयमुक्त्वा द्वितीयममृतमाश्रित्य तद्दर्शयति—अथेति ॥१॥२॥३॥

होने को जानता है, वह भी वसु देवता की तरह श्रुति द्वारा उक्त क्रम से अनुभव करता है ॥ ३ ॥

कितने काल पर्यन्त वह विद्वान् अमृत का उपजीवी होता है—इस पर कहा जाता है। जब तक सूर्य पूर्व की ओर से उदय हो पश्चिम की ओर अस्त होता है, तब तक वसुओं का भोगसेवन का समय है; वह विद्वान् उतने काल पर्यन्त वसुओं के आधिपत्य और स्वाराज्य को पूर्णरूप से प्राप्त कर लेता है। वह चन्द्रमण्डलस्थ केवल कर्मी, परतन्त्र एवं देवताओं का अन्नभाजन नहीं होता बल्कि आधिपत्य एवं स्वाराज्य भाव को प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्य७ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

जितने समय में सूर्य पूर्व से उदित होता है और पश्चिम में अस्त होता है, उससे दुगने समय में वह दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है। बस! इतने काल वह रुद्रों के ही आधिपत्य व स्वाराज्य को प्राप्त होता है ॥४॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

आदित्यों के उपजीवन रूप तृतीय अमृत की उपासना

अब जो तीसरा अमृत है, आदित्यगण वरुण प्रधान होकर उसके आश्रित होकर जीते हैं। देवगण न खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृत को सभी इन्द्रियों से अनुभव करके तृप्त होते रहते हैं ॥१॥

पूर्वोक्त रीति से वे इस रूप को ही लक्ष्य बनाकर उदासीन हो जाते हैं (भोग का अवसर देखकर) इसी से प्रयत्नशील हो जाते हैं ॥२॥

स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावत्ततो द्विगुणं कालं दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणां तावद्भोगकालः ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

विद्याफलं कथयति—स यावदिति। यावद्वसूनां भोगकालस्ततो द्विगुणो रुद्राणां भोगकालः। यथा प्रथमामृतध्यायिनां वसुभिस्तुल्यो भोगकालस्तथा द्वितीयामृतध्यायिनामपि रुद्रैस्तुल्यो भोगकाल इत्यर्थः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७।

(प्रथम अमृत की ध्यानविधि का निरूपण कर द्वितीय अमृत के विषय में श्रुति कहती है—) यह जो द्वितीय अमृत है, रुद्रगण उसके उपजीवी होते हैं—इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

(विद्या का फल निरूपित किया जाता है—) जितने समय तक पूर्व दिशा से सूर्य उदित हो पश्चिम दिशा में अस्त होता है, उससे दुगने काल में वह दक्षिण से उदय होकर उत्तर में अस्त होता है, उतने समय तक रुद्रों का भोग काल है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतदेवममृतं वेदाऽऽदित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

वह जो कोई उस अमृत को जानता है, आदित्यों में से हो प्रधान बनकर, वरुण को प्रमुख बनाकर वह इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूप से ही उदासोन होता है और इससे ही उद्योगशील होता है ॥३॥

तथा पश्चादुत्तरत ऊर्ध्वमुदेता विपर्ययेणास्तमेता। पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्द्विगुणोत्तरोत्तरेण कालेनेत्यपौराणं दर्शनम्। सवितुश्चतुर्दिशमिन्द्रयमवरुण[1]सोमपुरीषूदयास्तमयकालस्य तुल्यत्वं हि पौराणिकैरुक्तम्। मानसोत्तरस्य मूर्धनि मेरोः प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वादिति।

इतरामृतध्यायिनां फलानि निर्दिशति—तथेति। विपर्ययेण पुरस्ताद्दक्षिणतोऽधस्ताच्चेत्यर्थः। यथा पुरस्तादुदेता पश्चाच्चास्तमेता ततो दक्षिणतो द्विगुणेन कालेनोदेतोत्तरतश्चास्तमेतेत्युक्तम्। तथा ततो द्विगुणेन कालेन पश्चादुदेता पुरस्ताच्चास्तमेता तावानादित्यानां भोगकालः। तृतीयामृतध्यायिनामपि तावानेव भोगकालः। ततो द्विगुणेन कालेन यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता तावान्मरुतां भोगकालः। चतुर्थामृतध्यायिनामपि तावानेव भोगकालः। ततो द्विगुणेन कालेनोर्ध्वमुदेताऽधस्तादस्तमेता तावान्साध्यानां भोगकालः। पञ्चमामृतचिन्तकानामपि तावानेवेत्यर्थः। यत्पूर्वपूर्वोदयास्तमयकालापेक्षया द्विगुणेन कालेनोत्तरोत्तरोदयास्तमयावित्युक्तं तत्पुराणविरुद्धमिति शङ्कते—पूर्वस्मात्पूर्वस्मादिति। कथं श्रुत्युक्तस्यार्थस्य पुराणविरुद्धतेत्याशङ्क्याऽऽह—सवितुरिति। उक्तमेव संक्षिपति—मानसोत्तरस्येति। [2]महागिरेर्मेरोः प्राकारवत्परितः स्थितस्य मूर्धनि [3]संलग्नरथचक्राक्षस्य सवितुर्मेरोः प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वात्कालाधिक्ये कारणाभावाच्च चतसृष्वपि पुरीषूदयास्तमयकालस्य तुल्यत्वम्। उक्तं हि विष्णुपुराणे—

"शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम्।
[4]विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा" इति ॥

(दूसरे अमृतों के ध्यान का फल बतलाते हैं—) जितने समय में सूर्य पश्चिम, उत्तर और ऊपर की दिशाओं से उदय होता है, एवं पूर्व, दक्षिण एवं नीचे की दिशाओं में अस्त होता है। उदय और अस्त के पूर्व-पूर्व कालों की अपेक्षा उदय और अस्त का परवर्ती काल द्विगुणित हो जाता है—यह बात तो पुराणविरुद्ध है। पौराणिकों द्वारा ऐसा कहा जाता है कि आदित्य के चारों ओर

---

१. सोमः कुबेरः चन्द्र एव वा वक्ष्यति हि टीकाकृत् छा. उ. ४-१२-१ "उत्तरदिगधिष्ठातुरपी"त्यादिना। २. मानसोत्तरस्येत्येतद्व्याचष्टे—महागिरेरिति। तस्य विशेषणं मेरोः प्राकारवत्परितः स्थितस्येति। ३. संलग्नरथचक्रस्येति क्वचित्पाठः। ४. विकर्णौ विदिशौ कोणाविति यावत्। शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्नेष सविता पुरत्रयं द्वौ च विकर्णौ स्पृशतीत्यन्वयः। तथा विकर्णस्थः कोणदिक्स्थः त्रीन्कोणान् द्वे च पुरे स्पृशतीत्यर्थः। दिशः कर्णदेवतात्वेन कर्मत्वमाश्रित्य विदिशाविति वक्तव्ये विकर्णावित्युक्तमित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेताऽऽदित्यानामेव

वह सूर्य जितने समय में दक्षिण से उदित होता है और उत्तर में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने काल में पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता हैं, इतने समय में वह आदित्यों के ही

लैङ्गे चोक्तम्—

"मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः स्थिता पुरी ॥
दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य तु वारुणे ॥
सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवताः स्थिताः ।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभा क्रमात् ।
लोकपालोपरिष्टात्तु सर्वतो दक्षिणायने ।
काष्ठां गतस्य सूर्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥
दक्षिणां प्रक्रमेद्भानुः क्षिप्तेषुरिव धावति ।
पुरान्तगो यदा भानुः शक्रस्य भवति प्रभुः ॥
सर्वैः सांयमनैः सौरो ह्युदयो दृश्यते द्विजाः ॥
स एव सुखवत्यां तु [1]निशान्तस्थः प्रदृश्यते ॥
अस्तमेति यदा सूर्यो विभायां विश्वदृग्विभुः ।
मया प्रोक्तोऽमरावत्यां यथाऽसौ वारितस्करः ॥
तथा संयमनीं प्राप्य सुखां चैव विभां खगः ।
यदाऽपराह्णस्त्वाग्नेय्यां पूर्वाह्णो नैर्ऋते द्विजाः ॥
तदा त्वपररात्रश्च वायुभागे सुदारुणः ।
ऐशान्यां पूर्वरात्रस्तु गतिरेषाऽस्य सर्वतः" इति ॥

तथा चोपरिष्टादमरावत्यास्तिष्ठन्मध्याह्नं तत्रेशकोणस्थानां तृतीययाममाग्नेयकोणस्थानामाद्ययामं संयमन्यामुदयं च करोति सविता । एवं यदा याम्ये मध्याह्ने तिष्ठति तदैन्द्रेऽस्तमयः । आग्नेये तृतीययामः । निर्ऋतिकोणे प्रथमो यामः । वारुण उदयः । यदा च वारुणे मध्याह्नस्तदा याम्येऽस्तमयः । निर्ऋतिकोणे तृतीयो यामः । वायव्ये प्रथमयामः । सौम्य उदयः । तदा च सौम्ये मध्याह्नस्तदा वारुणेऽस्तमयः । वायव्ये तृतीययामः । ईशानकोणे प्रथमो यामः । ऐन्द्र उदयः । तथाऽऽग्नेये कोणे वर्तमानस्तत्रत्यानां मध्यंदिनं यमेन्द्रपुर्योराद्यतृतीययामौ निर्ऋतीशानकोणयोरुदयास्तमयौ च करोति । एवं सर्वासु दिक्षु विदिक्षु चेति पौराणिके दर्शने तद्विरुद्धमिदं श्रुत्योक्तमित्यर्थः ।

इन्द्रपुरी, यमराजपुरी, वरुणपुरी एवं कुबेरपुरी है, इन चारों पुरियों में उदय और अस्त के काल की समानता है क्योंकि मानसरोवर पर्वत के उत्तर में प्राकार के समान स्थित महागिरि मेरु के ऊपर सूर्य के रथ की प्रदक्षिणा की आवृत्ति तुल्य होने से अधिक समय लगने की संभावना नहीं है ।

---

१. निशान्तस्थः—निशाशंकर इति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः)

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त होता है ॥४॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

मरुतों के उपजीवन रूप चतुर्थ अमृत की उपासना

अब जो चतुर्थ अमृत है, मरुद्गण सोम की प्रमुखता से उसके उपजीवी हैं। देवगण न खाते हैं न पीते हैं, वे केवल इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाते हैं ॥१॥

अत्रोक्तः परिहार आचार्यैः। अमरावत्यादीनां पुरीणां द्विगुणोत्तरोत्तरेण कालेनोद्वासः स्यात्। उदयश्च नाम सवितुस्तन्निवासिनां प्राणिनां चक्षुर्गोचरापत्तिस्तदत्ययश्चास्तमनं न परमार्थत उदयास्तमने स्तः। तन्निवासिनां च प्राणिनामभावे तान्प्रति तेनैव

यद्यपि श्रुतिविरोधे स्मृतिरप्रमाणं तथाऽपि यथाकथंचिद्विरोधपरिहारं द्रविडाचार्योक्तमुपपादयति—अत्रेति। यदाऽमरावती शून्या स्यात्तदा हि तां प्रतिपुरस्तादुदेतीतिप्रयोगशून्यत्वाद्वसूनां भोगान्तः। एवमुत्तरासां पुरीणां विनाशे द्विगुणकालेन रुद्रादीनां भोगच्युतिः। अत इमां वचनव्यक्तिमाश्रित्य तमेव परिहारमाह—अमरावत्यादीनामिति। तथाऽपि कथं विरोधसमाधिस्तत्राऽऽह—उदयश्चेति। [तदुक्तम्—]

"यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः।
तिरोभावं च यत्रैति तदेवास्तमनं रवेः॥
नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः।
उदयास्तमने नाम दर्शनादर्शने रवेः" इति॥

अमरावत्यादिपुरीषु पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरत्रोद्वासकालद्वैगुण्यमस्तु। स्तां च दर्शनादर्शने सवितुरुदयास्तमयौ। स वा एष न कदाचनास्तमेति नोदेतीति श्रुतेर्वस्तुतो नोदयास्तमयौ स्तस्तथा च पुरीषु तुल्यत्वेन गच्छतः सवितुरुदयास्तमयकालवैषम्यमयुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—तन्निवासिनां चेति। भोग-

---

आचार्यों द्वारा उक्त शङ्का का परिहार किया जाता है। अमरावती आदि पुरियों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा द्विगुण काल पर्यन्त आदित्य का उदय और अस्त रहेगा। सूर्य का उदय होना तब कहा जाता है जब वहाँ के रहने वाले प्राणियों को दीखने लगे, जब दीखना बन्द हो जाए तो वह सूर्य का अस्त होना कहा जाता है, इसलिए वास्तव में न सूर्य उदय होता है, न ही अस्त होता है। अमरावती आदि पुरियों में रहने वाले प्राणियों के अभाव होने पर उनके प्रति उसी मार्ग से जाते हुए भी सूर्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥
स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥
स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव ताव-

वे इस रूप को लक्षित करके उदासीन हो जाते हैं और इसी से प्रयत्नशील भी होते हैं ।।२।।
वह जो इस अमृत की उपासना करता है, वह मरुतों में प्रमुख होकर सोम की प्रधानता से ही इस अमृत को देखकर ही तृप्त होता है (भोग का अवसर न जानकर) इस रूप से ही उदासीन होता है और (भोग का अवसर जान कर) इस रूप से ही उत्साहित होता है ।।३।।

वह आदित्य जितने समय में पश्चिम से उदित होता है और पूर्व में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने काल में उत्तर से उदित होता और दक्षिण में अस्त होता है । बस ! इतने काल तक वह

मार्गेण गच्छन्नपि नैवोदेता नास्तमेतेति चक्षुर्गोचरापत्तेस्तदत्ययस्य चाभावात् ।

तथाऽमरावत्याः सकाशाद्द्विगुणं कालं संयमनि पुरी वसत्यतस्तन्निवासिनः प्राणिनः प्रति दक्षिणत इवोदेत्युत्तरतोऽस्तमेतीत्युच्यतेऽस्मद्बुद्धिं चापेक्ष्य । तथोत्तरास्वपि पुरीषु योजना ।

कालद्वैगुण्यं न सवितृगतेराधिक्यापेक्षया श्रुत्योच्यते येन पुराणविरोधः किं त्वमरावत्यादीनां पुरीणां दैत्योपहतानां पूर्वपूर्वापेक्षयोत्तरोत्तरपुरीणां द्विगुणेन कालेनोद्वासात्तदपेक्षयोत्तरोत्तरस्थानेषु भोगकाले द्वैगुण्यं श्रुत्योक्तमिति भावः ।

अथोद्वासकालाधिक्याद्भोगच्युतिकालाधिक्यं न भोगकालाधिक्यमत आह—तथेति । यथोद्वासकालद्वैगुण्यमुक्तं तद्वदिति यावत् । अमरावतीनिवासिप्राणिवर्गापेक्षया संयमिनीनिवासिनः प्राणिनः प्रति द्विगुणेन कालेन सवितुरुदयास्तमयाविति युक्तं च वक्तुम् । दर्शनादर्शनयोर्द्विगुणकालभावित्वात् । न च तन्निवासिदृष्ट्यपेक्षया दक्षिणोत्तरयोरुदयास्तमयौ । तत्तद्दृष्ट्या पूर्वपश्चिमयोरेव तद्भावात् । अस्मद्बुद्धिमपेक्ष्य तु दक्षिणत उदेत्युत्तरतश्चास्तमेतीत्युच्यते । इवशब्दस्तयोस्तन्निवासिजनापेक्षया दक्षिणोत्तरस्थयोरसत्त्वं द्योतयतीत्यर्थः । यथाऽमरावत्यपेक्षया संयमिन्यामुद्वासकालाधिक्यमुक्तं तथा तदपेक्षया वारुण्यां तदपेक्षया च विभायां तत्कालाधिक्यमवधेयमित्याह—तथेति । संयमिनीं चान्तर्भाव्य बहुवचनम् ।

उदय होता है न अस्त होता है क्योंकि वहाँ चक्षु द्वारा दर्शन या अदर्शन ही संभव नहीं है ।

इसी प्रकार सूर्य यमराजपुरी इन्द्रपुरी से द्विगुण काल पर्यन्त वास करता है । इसलिए वहाँ के निवासियों के लिए हम को लगता है कि सूर्य दक्षिण से उदय होता है और उत्तर की ओर अस्त होता है । इसी प्रकार वरुण एवं कुबेर पुरियों में अन्वय लगा लेना चाहिए ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः । ९॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः)

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति ॥ १ ॥

त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति ॥ २ ॥

उपासक मरुद्गण के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त करता है ॥४॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

साध्यों के उपजीवन रूप पञ्चम अमृत की उपासना

अब जो पञ्चम अमृत है, साध्यगण ब्रह्म की प्रमुखता से उसी के आश्रित जीते हैं, देवगण न तो खाते हैं न पीते हैं, वे केवल इस अमृत को देखकर तृप्त हो जाते हैं ॥१॥

वे इस अमृत रूप की (पूर्वोक्त रीति से) लक्षित करके ही उदासीन होते हैं और इसी से उद्यमशील होते हैं ॥ २ ॥

सर्वेषां च मेरुरुत्तरतो भवति। यदाऽमरावत्यां मध्याह्नगतः सविता तदा संयमन्यामुद्यन्दृश्यते तत्र मध्याह्नगतो वारुण्यामुद्यन्दृश्यते, तथोत्तरस्यां, प्रदक्षिणावृत्तेस्तुल्यत्वात्।

इतश्चास्मद्बुद्धिमपेक्ष्य 'दक्षिणगत्यादिनाऽस्तमनमित्याह—सर्वेषां चेति। उद्यन्तमादित्यं पुरतोऽवलोकयतां वामभागे स्थितत्वान्मेरुः सर्वेषामेवोत्तरतो भवति। तथाचोदयास्तमयाभ्यां पूर्वापरदिग्विभागान्न तत्पुरवासिदृष्ट्यपेक्षया दक्षिणत इत्यादिवचनं. किंत्वस्मदृदृष्ट्यपेक्षयैवेत्यर्थः। उद्वासकालद्वैगुण्यापेक्षया भोगकालद्वैगुण्यमित्युक्तम्। संप्रति सवितृगत्याधिक्यापेक्षयैव भोगकालाधिक्यं किं न स्यादित्याशङ्क्य पुराणविरोधसमाधानासंभवान्मैवमित्याह—यदेत्यादिना। यथा संयमिन्यां मध्याह्नगो वारुण्यामुद्यन्भवति तथा तस्यां मध्याह्नगो विभायामुद्यन्दृश्यत इत्याह—तथेति। उक्तं च वायुप्रोक्ते—

"मध्यगस्त्वमरावत्यां यावद्भवति भास्करः।
वैवस्वते संयमने उदयंस्तत्र दृश्यते॥
सुखायामर्धरात्रश्च विभायामस्तमेति च" इति॥

पूर्व से उदित होते हुए सूर्य को देखकर बाईं ओर मेरु पर्वत स्थित रहने के कारण वह सब की दृष्टि में उत्तर की ओर स्थित है। जब इन्द्रलोक में सूर्य मध्याह्नकाल को प्राप्त होता है, उस समय यमलोक में उदित होता हुआ दिखाई देता है। जब यमलोक में मध्याह्नकाल को प्राप्त होता है तो वरुणलोक में उदित होता देखा जाता है। जब वरुणलोक में मध्याह्न अवस्था को प्राप्त होता है, तब

---

१. अत्र दक्षिणत इत्यादिवचनमित्येव युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति ॥ ३ ॥

वह जो इस प्रकार इस अमृत की उपासना करता है, साध्यगणों में से ही एक होकर ब्रह्मा के ही प्रमुखता से ही इस अमृत को देखकर तृप्त होता है, वह इस रूप को लक्ष्य करके उदासीन होता है और उसी रूप से उत्साहित होता है ॥ ३ ॥

इलावृतवासिनां सर्वतः पर्वतप्राकारनिवारितादित्यरश्मीनां सवितोर्ध्व इवोदेताऽर्वागस्तमेता दृश्यते । पर्वतोर्ध्वच्छिद्रप्रवेशात्सवितृप्रकाशस्य ।

तथर्गाद्यमृतोपजीविनाममृतानां च द्विगुणोत्तरोत्तरवीर्यवत्त्वमनुमीयते भोगकाल-

---

कथं पुनः स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्वं उदेताऽर्वाङस्तमेतेत्युच्यते । न हि तत्रो[1]द्वासकालस्य वाऽधिकत्वमस्ति येनोदयास्तमयकालाधिक्याद्भोगकालाधिक्यं स्यादत आह—इलावृतेति । मेरोश्चतुर्दिशमिलावृतं नाम वर्षं प्रसिद्धम् । तन्निवासिनां प्राणिनामुभयतः पर्वताभ्यां मानसोत्तरसुमेरुभ्यां प्राकारस्थानीयाभ्यामु[2]भयोर्ध्वस्थितमहाक्षेण विनिवारितादित्यरश्मीनामूर्ध्वमुदेताऽर्वाङस्तमेता च सविता दृश्यते । इवशब्दस्तूदयास्तमययोर्वस्तुतोऽसत्त्वद्योतनार्थं इत्यर्थः । कथं सवितोर्ध्वः सन्नुदेत्यर्वाङस्तमेति तत्राऽऽह—पर्वतेति । सर्वावृतप्रकाशस्य पर्वतयोरुपरितने छिद्रे प्रवेशादधोवर्तिनां प्राणिनामुपरि प्रसारितनेत्राणां सावित्रं प्रकाशं पश्यतां तत्रोद्यन्निव सवितोपलभ्यते प्रदेशान्तरे च दृश्यमानोऽधस्तादिवास्तमेति । यथोपरिष्टादत्रत्यैरुपलभ्यमानो मेघस्ततो दूराद्दृश्यो भूतललग्नश्चेत्येवावसीयते तथेहापीत्यर्थः ।

भोगकालस्याविरोधेनाऽऽधिक्यमापाद्य तेनैव लिङ्गेनातिशयवत्त्वममृतादेरपि कथयति—तथेति । भोगकालाधिक्ये सतीति यावत् । अनुमीयते कल्प्यते । यत्तु भोगकालमाकलय्योद्यमनं तदभावं

कुबेर लोक में उदित होते हुए देखा जाता है क्योंकि सूर्य की प्रदक्षिणा की आवृत्ति में समानता है।

मेरुपर्वत चारों दिशाओं में बसे इलावृतवर्ष के निवासियों को प्राकारस्थानीय मानस एवं सुमेरु पर्वत के ऊपर विशाल वातायन से आदित्य की किरणों को हटा देने से ऐसा दीखता है, जैसे सूर्य उत्तर की ओर से उदय होता है और दक्षिण की ओर अस्त हो जाता है। सर्वावृत प्रकाश के पर्वतों के ऊपरी छिद्र में प्रवेश होने के कारण नीचे रहने वाले प्राणी जब ऊपर की ओर नेत्र फैलाते हैं तो रवि उदय होता हुआ लगता है, प्रदेशान्तर में देखने पर नीचे अस्त हुआ लगता है क्योंकि पर्वतों के ऊर्ध्व छिद्र में सूर्य के प्रकाश का प्रवेश संभव है।

इस प्रकार ऋगादि मन्त्रों का अमृत के आश्रित होकर जीवित होना एवं अमृत का भोगकाल की द्विगुणता तापक होने से पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर द्विगुणित उत्साह बलयुक्त होने का अनुमान

---

१. निवासकालस्य । २. पर्वताभ्यामित्युक्तमेव व्याचष्टे—उभयोर्ध्वेत्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्व उदेताऽर्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यꣳ स्वाराज्यं पर्येता ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव

वह आदित्य जितने समय में उत्तर से उदित होता और दक्षिण में अस्त होता है, उसकी अपेक्षा दूने समय तक ऊपर की ओर उदित होता है और नीचे की ओर अस्त होता है। बस! इतने समय तक ही वह उपासक साध्यों के ही आधिपत्य और स्वाराज्य को प्राप्त हो जाता है ॥ ४ ॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

भोग क्षय के बाद आदित्य रूप ब्रह्म में प्रतिष्ठा

(इस प्रकार उदय और अस्त द्वारा प्राणियों को स्वकर्म फल भोग में अनुग्रह कर) भोग क्षय

द्वैगुण्यलिङ्गेन । उद्यमनसंवेशनादि देवानां रुद्रादीनां विदुषश्च समानम् । ॥१॥२॥३॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

कृत्वैवमुदयास्तमनेन प्राणिनां स्वकर्मफलभोगनिमित्तमनुग्रहं तत्कर्मफलोपभोगक्षये

ज्ञात्वोपरमणमग्न्यादिमुखत्वं दृष्टिमात्रेण तृप्तिमत्त्वं तत्सर्वं विदुषोऽपि कल्प्यते देवैः सममित्याह—उद्यमनेति ॥१॥२॥३॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

पञ्चभिः पर्यायैर्मधुविद्या यथावदुक्ता । क्रमेण मुक्तिफलपर्यवसायित्वं तस्या दर्शयितुमनन्तर

किया जाता है। देवताओं, रुद्रादि एवं विद्वानों का भोगों का अवसर देख प्रयत्नशील होना एवं भोगों का अवसर न देखकर उदास हो जाना आदि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः ॥ १ ॥

के बाद वह ऊर्ध्वगत हो उदित होने पर पुनः न तो उदित होता है और न अस्त ही होगा; बल्कि अकेला (निरवयव होकर ही) अपने में स्थित रहेगा। उस विषय में यह श्लोक है ॥ १ ॥

तानि प्राणिजातान्यात्मनि संहृत्याथ ततस्तस्मादनन्तरं प्राण्यनुग्रहकालादूर्ध्वः सन्नात्मन्युदेत्योद्गम्य यान्प्रत्युदेति तेषां प्राणिनामभावात्स्वात्मस्थो नैवोदेता नास्तमेतैकलोऽद्वितीयोऽनवयवो मध्ये स्वात्मन्येव स्थाता। तत्र कश्चिद्विद्वान्वस्वादिसमाचरणो रोहिताद्यमृतभोगभागी यथोक्तक्रमेण स्वमात्मानं सवितारमात्मत्वेनोपेत्य समाहितः सन्नेतं मन्त्रं दृष्ट्वोत्थितोऽन्यस्मै पृष्टवते जगाद। यतस्त्वमागतो ब्रह्मलोकात्किं तत्राप्यहोरात्राभ्यां परिवर्तमानः सविता प्राणिनामायुः क्षपयति यथेहास्माकमित्येवं पृष्टः प्रत्याह। तत्तत्र यथा पृष्टे यथोक्ते चार्थे एष श्लोको भवति तेनोक्तो योगिनेति श्रुतेर्वचनमिदम् ॥ १ ॥

वाक्यमवरुध्याऽऽह—कृत्वेत्यादिना। तस्मात्प्राण्यनुग्रहकालादनन्तरमिति तच्छब्दार्थः। ऊर्ध्वः सन्ब्रह्मीभूतो वर्तमान इति यावत्। आत्मन्युदेत्य स्वमहिम्नि प्रकाशं लब्ध्वेत्येतत्। स्थातेतिप्रयोगात्[1]क्रममुक्तिरत्र विवक्षिता। तत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति—तत्रेति। क्रममुक्तिः सप्तम्यर्थः। यथोक्तक्रमेणासौ वा आदित्यो देवमध्वित्यादिना पञ्चामृतत्वेन स्थितमित्यर्थः। स्वमात्मानं वेद्यतया विद्वदात्मसंभूतमित्यर्थः। आत्मत्वेनोपेत्याहंग्रहेण गृहीत्वेत्येतत्। कथं प्रश्न इत्याकाङ्क्षायामाह—यत इति। लब्धब्रह्मोपदेशो ब्रह्मविद्ब्रह्मविद्योक्तावस्थायां ब्रह्मणो वियुक्तावस्थायां केनचित्पृष्टः प्रत्युवाचेत्यर्थः। कथं प्रत्युक्तिरिति तत्राऽऽह—तत्तत्रेति ॥१॥

(पञ्चविध मधुविद्या का उपदेश कर उसका फल मोक्ष में ही है—इसे बतलाने के लिए आगे का ग्रन्थ कहा जाता है) इस प्रकार सूर्य का उदय और अस्त दिखाकर इससे प्राणियों के द्वारा अपने किए गए कर्मों के भोग हेतु अनुग्रह तथा उन कर्मों के फलोपभोग क्षय हेतु प्राणी समूह का आत्मा में उपसंहार करके प्राणियों पर अनुग्रह काल के बाद ब्रह्मीभूत हो स्वमहिमा से भासित हो जिनके प्रति उदित होता है, उन प्राणियों का सर्वथा अभाव होने से आत्मतत्त्ववेत्ता न तो उदित होता है, न ही अस्त होता है बल्कि अद्वितीय, निरवयव स्व स्वरूप में स्थित होता है। उस अवस्था में कोई विद्वान् वसुगण तुल्य आचरण वाला रोहितादि अमृत भोगों को प्राप्त करने वाला पूर्वोक्त क्रम से स्व स्वरूप को सूर्य में आत्मरूप से समर्पित कर दत्तचित्त हो इस मन्त्र का साक्षात्कार कर अन्य किसी पूछने वाले के प्रति कहता है। (क्या प्रश्न है इस पर कहा जाता है—) आप तो ब्रह्मलोक से आए हो; कृपया एक बात तो बतलाइये, क्या वहाँ भी सूर्य दिन और रात्रि का परिवर्तन कर प्राणियों की आयु को क्षीण करता है, जिस प्रकार वह इस संसार के लोगों की करता है। इस प्रकार पूछने पर पूर्वोक्त अर्थ में यह श्लोक है जिसे विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ द्वारा श्रुतिवाक्य के रूप में कहा गया है ॥ १ ॥

---

१. स्थातेति तिङन्तमित्याशयेनाह—क्रममुक्तिरिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन । देवास्ते-
नाहꣳ सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति ॥ २ ॥

न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै
भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद ॥ ३ ॥

ब्रह्मलोक विषयक विद्वान् का अनुभव

(जिस ब्रह्मलोक से मैं आया हूँ) निश्चय ही उसमें न कभी सूर्य का अस्त होता है और न कभी उदय होता है। हे देवताओ ! उस सत्य के द्वारा मैं ब्रह्म के स्वरूप से विरुद्ध न होऊँ अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति मुझे अवश्य हो ॥ २ ॥

मधुविद्या का फल

उपर्युक्त ब्रह्मवेत्ता के लिये न सूर्य उदित होता है और न अस्त होता है; जो इस प्रकार इस औपनिषद ब्रह्म को जानता है ॥ ३ ॥

न वै तत्र यतोऽहं ब्रह्मलोकादागतस्तस्मिन्न वै तत्रैतदस्ति यत्पृच्छसि । न हि तत्र निम्लोचास्तमगमत्सविता न चोदियायोद्गतः कुतश्चित्कदाचन कस्मिंश्चिदपि काल इति। उदयास्तमयवर्जितो ब्रह्मलोक इत्यनुपपन्नमित्युक्तः शपथमिव प्रतिपेदे । हे देवाः साक्षिणो यूयं शृणुत यथा मयोक्तं सत्यं वचस्तेन सत्येनाहं ब्रह्मणा ब्रह्मस्वरूपेण मा विराधिषि मा विरुध्येयम(या)प्राप्तिर्ब्रह्मणो मम मा भूदित्यर्थः ॥ २ ॥

सत्यं तेनोक्तमित्याह श्रुतिः—

न ह वा अस्मै । यथोक्तब्रह्मविदे नोदेति न निम्लोचति नास्तमेति किं तु ब्रह्मविदेऽस्मै सकृद्दिवा हैव सदैवाहर्भवति स्वयंज्योतिष्ट्वाद्य एतां यथोक्तां ब्रह्मोपनिषदं वेदगुह्यं

श्लोकमुपादाय व्याकरोति—न वै तत्रेत्यादिना । निमुम्लोचेत्यस्मिन्नर्थे निम्लोचेति च्छान्दसः प्रयोगः । इतिशब्दः पूर्वार्धव्याख्यासमाप्त्यर्थः । उत्तरार्धमुत्थापयति—उदयास्तमयेति । लोकत्वाविशेषादितरलोकवद्ब्रह्मलोकोऽपि नोदयास्तमयवर्जित इत्युक्तो विद्वानुत्तरार्धेन शपथं कुर्वन्परिहरतीत्यर्थः ॥२॥

एवं मन्त्रदृक्शपथद्वारा निर्णीतेऽर्थे न हेत्याद्या किमर्था श्रुतिरित्याशङ्क्याऽऽह—सत्यमिति। न हेत्याद्यां श्रुतिमादाय व्याचष्टे—यथोक्तेति । ब्रह्मोपनिषदमित्यस्यार्थमाह—वेदगुह्यमिति । एवं

जो आप पूछ रहे हो, वह उस ब्रह्मलोक में नहीं है, जहाँ से मैं आया हूँ। वहाँ न तो सूर्य का किसी काल में उदय होता है और न ही किसी काल में उसका अस्त ही होता है। ये तो असंगत सा लगता है कि ब्रह्मलोक में सूर्य का उदय व अस्त होता ही नहीं; इसे शपथ लेकर कहा जाता है। हे साक्षी देवताओ ! आप सुनिए, जिस प्रकार मैंने सत्य वचन कहा है, उस सत्य के प्रभाव से मैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायाऽऽरुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच ॥ ४ ॥

सम्प्रदाय परम्परा का वर्णन

हिरण्यगर्भ ने विराट् प्रजापति को पूर्वोक्त इस मधुविद्या को सुनाया था। इसे प्रजापति ने भी मनु को सुनाया और मनु ने इक्ष्वाकु आदि अपने संतति वर्ग को सुनाया और यही ब्रह्मविज्ञान पिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुण की संतान उद्दालक को सुनाया था ॥ ४ ॥

वेद। एवं [1]तन्त्रेण वंशादित्रयं प्रत्यमृतसंबन्धं च यच्चान्यदवोचामैवं जानातीत्यर्थः। विद्वानुदयास्तमयकालापरिच्छेद्यं नित्यमजं ब्रह्म भवतीत्यर्थः ॥ ३ ॥

तद्धैतन्मधुज्ञानं ब्रह्मा हिरण्यगर्भो विराजे प्रजापतय उवाच। सोऽपि मनवे। मनुरिक्ष्वाक्वाद्याभ्यः प्रजाभ्यः प्रोवाचेति विद्यां स्तौति ब्रह्मादिविशिष्टक्रमागतेति। किं च तद्धैतन्मधुज्ञानमुद्दालकायाऽऽरुणये पिता ब्रह्मविज्ञानं ज्येष्ठाय पुत्राय प्रोवाच ॥ ४ ॥

शब्दमादाय व्याकरोति—एवमित्यादिना। वंशादित्रयं तिरश्चीनवंशो मध्वपूपो मधूनाडयश्चेत्येवंरूपमित्यर्थः। प्रत्यमृतसंबन्धं च लोहिताद्यमृतेष्वेकैकवस्वादीनां संबन्धमित्यर्थः। अन्यदित्युद्यमनसंवेशनादिः गृह्यते। उक्तविद्याफलमुपसंहरति—विद्वानिति ॥३॥

ननु विद्या सफला चेदुक्ता तर्हि किमुत्तरग्रन्थेनेत्याशङ्क्याऽऽह—तद्धैतदिति। स्तुतिमेवाभिनयति—ब्रह्मादीति। तद्धैतदुद्दालकायेत्यादिना विद्याया योग्यं पात्रं प्रदर्श्यते। तद्व्याचष्टे—किंचेति। इतश्च स्तुत्यर्हमेतद्विज्ञानमित्यर्थः। मधुविज्ञानं व्याकरोति—ब्रह्मविज्ञानमिति ॥४॥

ब्रह्मस्वरूप के विषय में विरोध को न प्राप्त होऊँ अर्थात् मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो ॥ २ ॥

मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने सत्य ही कहा है—इसे श्रुति समर्थन करती है। उपरोक्त ब्रह्मवेत्ता के लिए सूर्य न उदित होता है न अस्त होता है किन्तु सदैव दिन ही रहता है जो इस स्वयंज्योतिष्ट्व वेद द्वारा गोपनीय ब्रह्म को जानता है। इस प्रकार तन्त्र से तिरछे बांस, मधु का छत्ता एवं ब्रह्मनाडी रूप वंशादित्रय के प्रति लोहितादि रूप अमृत संबन्ध एवं उद्यम और उदासीनता को जो जानता है, वह विद्वान् उदय एवं अस्तमय काल से अपरिच्छेद्य नित्य अजन्मा ब्रह्म हो जाता है ॥ ३ ॥

इस फलयुक्त मधु विद्या को सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ ने विराड् प्रजापति को सुनाया था। विराड् प्रजापति ने भी मनु को सुनाया। मनु ने अपनी सन्तति इक्ष्वाकु आदि को उपदेश किया। इस प्रकार हिरण्यगर्भ से विशिष्ट वंश परम्परा से प्राप्त विद्या की स्तुति की जाती है। इतना ही नहीं, इसी ब्रह्मविज्ञान रूप मधुविद्या को पिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र उद्दालक की संतान अरुण को सुनाया ॥ ४ ॥

---

१. तन्त्रेणेति—एवंशब्दस्य तन्त्रोक्त्याऽर्थत्रयपरामर्शित्वमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात्प्रणाय्याय वाऽन्तेवासिने ॥ ५ ॥

नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

(अतः अन्य विद्वान् भी) इस ब्रह्मविज्ञान का उपदेश पिता अपने ज्येष्ठ पुत्र या सुयोग्य शिष्य को ही करे ॥ ५ ॥

किसी और को इसका उपदेश न करे (इससे विद्या संप्रदान का योग्य पात्र ज्येष्ठ पुत्र या योग्य शिष्य को ही श्रुति बतला रही है ।) यद्यपि इस ब्रह्मविद्या के आचार्य को समुद्र से घिरी हुई धनादि सामग्रियों से परिपूर्ण सारी पृथिवी भी दे (तो भी वह इसका बदला नहीं चुका सकता है क्योंकि) उस दान से भी मधुविद्या का दान अधिक फल देने वाला है, यही अधिकतर फल देने वाला है ॥ ६ ॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

इदं वाव तद्यथोक्तमन्योऽपि ज्येष्ठाय पुत्राय सर्वप्रियार्हाय ब्रह्म प्रब्रूयात् । प्रणाय्याय वा योग्यायान्तेवासिने शिष्याय ॥ ५ ॥

नान्यस्मै कस्मैचन प्रब्रूयात्तीर्थद्वयमनुज्ञातमनेकेषां प्राप्तानां तीर्थानामाचार्यादीनाम् । कस्मात्पुनस्तीर्थसंकोचनं विद्यायाः कृतमित्याह—यद्यप्यस्मा आचार्यायेमां कश्चित्पृथिवीमद्भिः परिगृहीतां समुद्रपरिवेष्टितां समस्तामपि दद्यादस्या विद्याया

तस्य परोक्षत्वं व्यावर्तयति—इदं वावेति । अथ ज्येष्ठाय पुत्राय ब्रह्म वक्तव्यमिति पूर्वेषाम् नियमो नेदानींतनानामित्यत आह—अन्योऽपीति । पात्रान्तरमनुजानाति—प्रणाय्यायेति ॥५॥

पुत्रशिष्याभ्यां पात्रान्तरं प्रत्याचष्टे—नेति । तीर्थद्वयं विद्याप्रदानेऽधिकारिद्वयमित्यर्थः निर्धारणे षष्ठी । आचार्यो विद्यादाता । आदिपदाद्धनदायी श्रोत्रियो मेधावी च गृह्यते । सर्वेषामर्थिनामत्राधिकारमाशङ्क्य दूषयति—कस्मादित्यादिना । आचार्यायेति पुनरुपादानं क्रियापदेन तस्यान्वय

अन्य विद्वान् भी इस मधुविद्या का सर्वप्रिय वस्तु सुनाने के अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र अथवा योग्य शिष्य को उपदेश करे ॥ ५ ॥

आचार्यादि अनेक तीर्थों के प्राप्त होने पर विद्याप्रदान वेला में पुत्र एवं शिष्य रूप तीर्थद्वय को उपदेश करे, अन्य किसी को इस मधुविद्या का उपदेश न करे । विद्या के तीर्थों का विस्तृत अर्थ न कर विद्या के तीर्थों की कमी क्यों की, इस पर कहा जाता है—यद्यपि मधुविद्या के आचार्य को समुद्र से घिरी हुई यह सम्पूर्ण पृथिवी भी मिल जाए, इस विद्या के बदले धन से पूर्ण भोग सामग्रियों से परि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निष्क्रयार्थमाचार्याय धनस्य पूर्णां संपन्नां भोगोपकरणैर्नासावस्य निष्क्रयो यस्मात्ततोऽपि दानादेतदेव यन्मधुविद्यादानं भूयो बहुतरफलमित्यर्थः । द्विरभ्यास आदरार्थः ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

यत एवमतिशयफलैषा ब्रह्मविद्याऽतः सा प्रकारान्तरेणापि वक्तव्येति गायत्री वा इत्याद्यारभ्यते । गायत्रीद्वारेण चोच्यते ब्रह्म । ब्रह्मणः सर्वविशेषरहितस्य नेति नेतीत्यादिविशेषप्रतिषेधगम्यस्य दुर्बोधत्वात् । सत्स्वनेकेषु च्छन्दःसु गायत्र्या एव ब्रह्मज्ञानद्वारतयोपादानं प्राधान्यात् । सोमाहरणादितरच्छन्दोक्षराहरणेनेतरच्छन्दोव्याप्त्या च सर्वसवन-

---

द्योतनार्थम् । विद्यायामादरो वा मुख्यमधिकारकारणं फलतीति भावः ॥६॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

गतेन ग्रन्थेनोत्तरग्रन्थस्य गतार्थत्वं परिहरति—यत इति । सवितृद्वारकब्रह्मविद्यानन्तरं तद्देवताकगायत्रीद्वारेण तद्विद्योपदिश्यत इत्यर्थः । ब्रह्मविद्याया विवक्षितत्वे ब्रह्मैवोपदिश्यतां किं गायत्र्युपदेशेनेत्याशङ्क्याऽऽह—गायत्रीति । तथाऽपि च्छन्दोन्तराणि विहाय किमिति गायत्रीद्वारैव ब्रह्मोपदिश्यते तत्राऽऽह—सत्स्विति । ब्रह्मज्ञानद्वारतया तदुपादयतयेत्यर्थः । प्राधान्ये हेतुमाह—सोमाहरणादिति । सोमस्याऽऽहरणमानयनम् । तत्र साधनत्वं गायत्रीछन्दस्कानामृचां याजकैरिष्यते । तद्युक्तं तस्या यज्ञे प्राधान्यमित्यर्थः । यद्वा देवैः सोमाहरणमिच्छद्भिश्छन्दसां गायत्रीत्रिष्टुब्जगतीनां तादर्थ्येन नियोगे जगतीत्रिष्टुभोर्मध्येमार्गमशक्त्या निवृत्तौ गायत्री सोमं प्राप्य रक्षिणस्तस्य विजित्य तं देवेभ्यः समाहरदित्यैतरेयकब्राह्मणे सोमो वै राजाऽमुष्मिँल्लोक आसीदित्यत्र प्रसिद्धमतस्तत्प्राधान्यमित्यर्थः । तत्रैव हेत्वन्तरमाह—इतरेति । उष्णिगनुष्टुप्प्रभृतीनीतराणि च्छन्दांसि तेषां पादशोऽक्षराणि सप्ताष्टादिसंख्याकानि तेषामाहरणमापादनं गायत्र्यक्षरैः पादशः षड्भिः क्रियतेऽधिकसंख्याया न्यूनसंख्यामन्तरेणासंभवात्तस्मादितरेषु च्छन्दःसु गायत्र्या व्याप्तेश्च प्राधान्यमित्यर्थः । अथवा गायत्रीव्यतिरिक्तयोस्त्रिष्टुब्जगतीछन्दसोः सोमाहरणोद्यतयोरशक्तयोर्मार्गमध्ये जगत्या त्यक्तानि त्रीण्यक्षराणि त्रिष्टुभा त्वेकमक्षरम् । ततश्चाष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती पञ्चचत्वारिंशदक्षरा संवृत्ता । चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्च त्रिचत्वारिंशदक्षरा संवृत्ता । तत्र गायत्री सोममाहरन्ती त्यक्तानामक्षराणामाहरणेन पूर्णतां तयोरापाद्य ते व्याप्य स्थिता तेन तत्प्राधान्यमित्यर्थः । तत्रैव हेत्वन्तरमाह—सर्वसवनेति । सर्वाणि प्रातःसवनं माध्यंदिनं सवनं तृतीयसवनमित्येतानि तेषु गायत्र्या व्यापकत्वं

सभी कुछ दानादि में मिल जाए तो भी वह इस उपकार का फल नहीं चुका सकता क्योंकि इस दान से मधुविद्या के दान का अधिक फल है। मन्त्र में "एतदेव ततो भूय इति" यह द्विरुक्ति आदर के लिए है ॥ ६ ॥

(पूर्व ग्रन्थ से उत्तर ग्रन्थ का संबन्ध बतलाते हैं—) ब्रह्मविद्या का फल उत्कृष्ट है, इसलिए 'सब चेतन जड प्राणी गायत्री ही है'—इस प्रकार प्रकारान्तर से उसकी व्याख्या की जाती है। ब्रह्म का गायत्री द्वारा उपदेश किया जाता है क्योंकि ब्रह्म का उपदेश यदि सर्वविशेषणों से रहित किया जाए अथवा 'नेति नेति' इत्यादि विशेष प्रतिषेध गम्यरूप में किया जाए तो उसका समझना कठिन है। वेदों में अनेक प्रकार के छन्दों का निरूपण होने पर भी प्रधान होने से गायत्री का ही ब्रह्मज्ञान के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳ सर्वं भूतं गायति च त्रायते च ॥ १ ॥

गायत्री द्वारा ब्रह्मोपासना

निश्चय ही ये सब स्थावर जंगम प्राणीवर्ग गायत्री ही हैं। वाणी रूप गायत्री (सबका नामोच्चारण करती है और भयादि से) भूतों की रक्षा भी करती है॥ १॥

व्यापकत्वाच्च यज्ञे प्राधान्यं गायत्र्याः। गायत्रीसारत्वाच्च ब्राह्मणस्य मातरमिव हित्वा गुरुतरां गायत्रीं ततोऽन्यद्गुरुतरं न प्रतिपद्यते यथोक्तं ब्रह्मापीति। तस्यामत्यन्तगौरवस्य प्रसिद्धत्वात्। अतो गायत्रीमुखेनैव ब्रह्मोच्यते।

गायत्री वा इत्यवधारणार्थो वैशब्दः। इदं सर्वं भूतं प्राणिजातं यत्किंच स्थावरं जङ्गमं वा तत्सर्वं गायत्र्येव। तस्याश्छन्दोमात्रायाः सर्वभूतत्वमनुपपन्नमिति गायत्री-

---

मिश्रणं गायत्रं प्रातःसवनं त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनं जागतं तृतीयसवनमिति स्थितेऽपि त्रिष्टुब्जगत्योर्गायत्रीव्याप्तेरुक्तत्वात्तस्याश्च [1]पादाभ्यां मुखेन च सोमाहरणद्वारेण सवनत्रयसंबन्धादतश्च तस्या अस्ति यज्ञे प्राधान्यमित्यर्थः। कर्मणि तत्प्राधान्येऽपि कुतो ब्रह्मविद्यायां तत्प्राधान्यमित्याशङ्क्याऽऽह—गायत्रीति। ब्रह्मविद्यायां तत्प्राधान्यमिति शेषः। गायत्रीमेवाऽऽलम्बनत्वेन प्रतिपद्यते ब्रह्मेत्यत्र लोकप्रसिद्धिमनुकूलयति—तस्यामिति। गायत्र्या ब्रह्मज्ञानद्वारत्वेनोपादानमुक्तहेतुभ्यः सिद्धमित्युपसंहरति—अत इति।

[2]तथा चेतोर्पणनिगदादितिन्यायेन गायत्र्युपाधिकं ब्रह्मोपास्यमिति प्रतिजानीते—गायत्रीति। निपातमादाय व्याचष्टे—वा इति। अवधारणरूपमेवार्थं स्फुटयन्निदमित्यादि व्याकरोति—इदमिति। तदिदं सर्वं गायत्र्येवेति योजना। गायत्र्याः सर्वात्मकत्वाद्ब्रह्मदृष्ट्योपास्तिर्युक्तेत्युक्तं तत्रानुपपत्तिमाशङ्क्यानन्तरवाक्येनो(णो)त्तरमाह—तस्या इति। कथं वाचो गायत्रीत्वमित्याशङ्क्य तस्याः सर्वभूत-

---

उपाय से उपादान किया गया है। सोम के आनयन करने से, उष्णिक्, अनुष्टुप् आदि दूसरे छन्दों के पादशः अक्षरों को लाने से गायत्री दूसरे छन्दों में भी व्याप्त होने से तथा त्रैष्टुप् एवं जागत सवनों में भी गायत्री व्यापक रहने से यज्ञ में गायत्री की ही प्रधानता है। कर्मकाण्ड में गायत्री की ही प्रधानता होने पर भी ब्रह्मविद्या में उसकी प्रधानता क्यों है—इस पर कहते हैं। ब्राह्मण की गायत्री ही सार है, अतः माता के समान श्रेष्ठ गायत्री को छोड़कर इससे अन्य कोई वस्तु नहीं मिल सकती, इसी से ब्रह्मविद्या में भी इसकी प्रधानता है। गायत्री के आलम्बन से ही ब्रह्म साक्षात्कार होता है—इस प्रकार उसका अत्यन्त गौरव लोकप्रसिद्ध है। इसलिए गायत्री के आलम्बन से ब्रह्म का उपदेश किया जाता है।

उपरोक्त मन्त्र में 'वै' शब्द निर्धारण के लिए है। जड़चेतनमय यह जितना भी संसार है, सब कुछ गायत्री ही है। गायत्री के छन्दमात्र होने से उसका सर्वात्मक होना अनुपपन्न है, इसलिए श्रुति

---

१. पूर्ववदैतरेयकब्राह्मणस्थां कांचित् कथामभिप्रेत्याह—पादाभ्यामित्यादि। २. छन्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात्तथा हि दर्शनम् (ब्र. सू. १-१-२५)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याꣳ हीदꣳ सर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते ॥ २ ॥

उक्त लक्षण वाली जो वह गायत्री है वह यही है जो कि यह पृथिवी है। क्योंकि इस पृथिवी में ही ये सभी चराचर प्राणी स्थित हैं और वे इस पृथिवी का कभी भी अतिक्रमण नहीं कर सकते ॥२॥

कारणं वाचं शब्दरूपामापादयति गायत्रीं वाग्वै गायत्रीति। वाग्वा इदं सर्वं भूतम्। यस्माद्वाक्शब्दरूपा सती सर्वं भूतं गायति शब्दयत्यसौ गौरसावश्व इति त्रायते च रक्षत्यमुष्मान्मा भैषीः किं ते भयमुत्थितमित्यादिना सर्वतो भयान्निवर्त्यमानो वाचा त्रातः स्यात्। यद्वाग्भूतं गायति च त्रायते च गायत्र्येव तद्गायति च त्रायते च वाचोऽनन्यत्वाद्गायत्र्याः। गानात्त्राणाच्च गायत्र्या गायत्रीत्वम् ॥ १ ॥

या वै सैवंलक्षणा सर्वभूतरूपा गायत्री, इयं वाव सा येयं पृथिवी। कथं पुनरियं पृथिवी गायत्रीति, उच्यते—सर्वभूतसंबन्धात्। कथं सर्वभूतसंबन्धः, अस्यां पृथिव्यां हि यस्मात्सर्वं स्थावरं जङ्गमं च भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव पृथिवीं नातिशीयते नातिवर्तत इत्येतत्। यथा गानत्राणाभ्यां भूतसंबन्धो गायत्र्या एवं भूतप्रतिष्ठानाद्भूतसंबद्धा पृथिव्यतो

संबन्धं दर्शयति—वागिति। कुतो गायत्रीत्वं तत्राऽऽह—यस्मादिति। भवत्वेवं वाचः स्वरूपं गायत्र्यास्तु किमायातं तदाह—यद्वागिति। गायत्रीनामनिर्वचनादपि वाच्युक्तं रूपं गायत्र्यामेव द्रष्टव्यमित्याह—गानादिति ॥१॥

अस्ति हि वाचः सर्वभूतात्मकत्वं तद्वाचकत्वाद्वाच्यस्य च वाचकातिरेकेणानिरूपणात्तथा च वाग्भूता गायत्री सर्वभूतात्मिकेत्युक्तमिदानीं तस्या विधान्तरमाह—या वै सेति। एवंलक्षणत्वं व्याचष्टे—सर्वेति। गायत्रीमनूद्य पृथिवीत्वं तस्या विहितं प्रश्नपूर्वकमुपपादयति—कथं पुनरिति। गायत्र्याः सर्वभूतसंबन्धस्योक्तत्वात्पृथिव्यास्तत्संबन्धं चोद्यपूर्वकं व्युत्पादयति—कथमिति। सर्वस्य पृथिव्यां प्रतिष्ठितत्वं साधयति—एतामेवेति। तथाऽपि कथं पृथिव्या गायत्रीत्वं तदाह—यथेति ॥२॥

गायत्री के कारण वाणी को शब्दस्वरूपा उपदेश करती है—वाक् ही गायत्री है। वाक् ही यह सब भूत हैं क्योंकि वाक् के शब्दस्वरूपा होने पर सभी भूत प्राणी 'यह गौ है, यह अश्व है' ऐसा शब्द करता है; इससे भय मत करो, क्या तुझे भय लग रहा है इस प्रकार सब ओर से भय युक्त होने से वाणी के द्वारा बोलने से रक्षा हो जाती है। वाणी और गायत्री में अनन्यता है क्योंकि निर्वचन भी ऐसा ही है। जो वाक्रूप होकर गाई जाती है एवं रक्षा करती है, वह गायत्री ही गाई जाती है एवं रक्षा करती है। गान एवं त्राण गुण सम्पन्न होने से ही गायत्री का गायत्रीत्व है ॥ १ ॥

पूर्वोक्त लक्षण वाली जो गायत्री सर्वभूतात्मिका है, वह यह पृथिवी ही है। यह पृथिवी गायत्री किस प्रकार है, समस्त भूतों से संबन्ध होने के कारण यह पृथिवी ही गायत्री है। इसका सर्वभूतसंबन्ध होना इसी कारण है क्योंकि इस पृथिवी में स्थावर जङ्गम सभी प्राणी प्रतिष्ठित हैं, वे इस पृथिवी का अतिक्रमण नहीं करते। जिस प्रकार गान और त्राण गुणों से गायत्री का भूतसंबन्ध सिद्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

या वै सा पृथिवीयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ३ ॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते ॥ ४ ॥

जो भी यह पृथिवी रूप गायत्री है, वह यही है; जो भूत और इन्द्रियों के सजीव संघात में शरीर है क्योंकि इसी सघात में 'भूत' पद वाच्य ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और इसी संघात का वे प्राण अतिक्रमण नहीं करते ॥ ३ ॥

जो भी इस पुरुष में शरीर रूप गायत्री है, वह यही है कि जो इस पुरुष के मध्यवर्ती हृदय कमल है, क्योंकि इसी में ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और प्राण इसी का अतिक्रमण नहीं करते ॥ ४ ॥

गायत्री पृथिवी ॥२॥

या वै सा पृथिवी गायत्रीयं वाव सेदमेव तत्किं, यदिदमस्मिन्पुरुषे कार्यकरणसंघाते जीवति शरीरं पार्थिवत्वाच्छरीरस्य । कथं शरीरस्य गायत्रीत्वमिति । उच्यते—अस्मिन्हीमे प्राणा भूतशब्दवाच्याः प्रतिष्ठिताः । अतः पृथिवीवद्भूतशब्दवाच्यप्राणप्रतिष्ठाना-च्छरीरं गायत्री । एतदेव यस्माच्छरीरं नातिशीयन्ते प्राणाः ॥३॥

यद्वै तत्पुरुषे शरीरं गायत्रीदं वाव तत् । यदिदमस्मिन्नन्तर्मध्ये पुरुषे हृदयं पुण्डरीकाख्यमेतद्गायत्री । कथमित्याह—अस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता अतः शरीरवद्गायत्री

संप्रति गायत्र्याः शरीररूपत्वं निरूपयति—या वा इति । गायत्र्यात्मिकां पृथिवीमनू‌द्य तस्याः शरीररूपत्वं निरूप्य गायत्रीशरीरयोरभेदे हेतुमाह—पार्थिवत्वादिति । इदानीं गायत्रीशरीरयो-रेकत्वं प्रश्नपूर्वकं कथयति—कथमित्यादिना । प्राणानां शरीरे प्रतिष्ठितत्वं प्रकटयति—एतदेवेति ॥३॥

अथ गायत्र्या हृदयत्वमावेदयति—यद्वै तदिति । हृदयस्य गायत्र्याश्चैकत्वं प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कथमित्यादिना । हृदये प्राणानां प्रतिष्ठितत्वं प्रकटयति—एतदेवेति । प्राणानां भू-

---

है, इसी प्रकार भूतों का आधार होने से पृथिवी की प्राणियों से संबद्धता है। अतः गायत्री पृथिवी है ॥ २ ॥

(अब गायत्री को शरीररूप निरूपित किया जाता है—) जो यह गायत्र्यात्मिका पृथिवी है, वह यही है जो इस सजीव देहेन्द्रिय संघात पुरुष में शरीर है क्योंकि शरीर का पार्थिव होना प्रसिद्ध ही है। गायत्री एवं पार्थिव शरीर की अभिन्नता कैसे कहते हो क्योंकि इस देहेन्द्रियसंघात में भूतशब्दवाच्य प्राण प्रतिष्ठित हैं। इसलिए पृथिवी के सदृश भूतशब्दवाच्य प्राणों की प्रतिष्ठा होने से गायत्री शरीर है क्योंकि प्राण शरीर का अतिक्रमण नहीं करते ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाऽभ्यनूक्तम् ॥ ५ ॥

वह यह चार चरणों वाली गायत्री है, जिसके एक-एक चरण में छः-छः अक्षर हैं, वह गायत्री संज्ञक ब्रह्म ऋचाओं से भी प्रकाशित किया गया है ॥ ५ ॥

हृदयम् । एतदेव च नातिशीयन्ते प्राणाः । "प्राणो ह पिता । प्राणो माता ।" [इति,] "अहिंसन्सर्वभूतानि" इति च श्रुतेर्भूतशब्दवाच्याः प्राणाः ॥४॥

सैषा चतुष्पदा षडक्षरपादा छन्दोरूपा सती भवति गायत्री षड्विधा वाग्भूतपृथिवीशरीरहृदयप्राणरूपा सती षड्विधा भवति। वाक्प्राणयोरन्यार्थनिर्दिष्टयोरपि गायत्रीप्रकारत्वम् । अन्यथा षड्विधसंख्यापूरणानुपपत्तेः । तत् तस्मिन्नर्थे एतद्गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं गायत्रीमुखेनो(णो)क्तमृचाऽपि मन्त्रेणाभ्यनूक्तं प्रकाशितम् ॥५॥

शब्दवाच्यत्वे तत्संबन्धे सति भूतसंबन्धाद्गायत्र्याः शरीरादिभावः संभवति तेषां भूतशब्दवाच्यत्वे तु किं मानमित्याशङ्क्याऽऽह—प्राणो हेति । अहिंसावाक्येऽपि [1]प्राणपरं मारणं प्रतिषिध्यते तथाच भूतशब्दस्तत्र प्रतीतिगोचरो भवत्येवेत्याह—भूतेति ॥४॥

आध्यानशेषत्वेन गायत्र्याश्चतुष्पात्त्वं दर्शयति—सैषेति । [2]लक्षयित्वा तस्याः षड्विधत्वमनूद्य साधयति—षड्विधेति । गायत्रीहृदययोः सर्वभूतसंबन्धसिद्ध्यर्थमुपदिष्टयोर्वाक्प्राणयोर्गायत्रीप्रभेदत्वेन कथं व्याख्यानमित्याशङ्क्याऽऽह—वाक्प्राणयोरिति । [3]विधिपक्षे वाक्यशेषयोगात्तयोरपि गायत्रीभेदत्वमित्यर्थः । तस्मिन्नर्थे वाग्भूतपृथिवीशरीरहृदयप्राणभेदात्षड्विधां गायत्रीमनुचिन्त्याजहल्लक्षणया तदवच्छिन्नब्रह्मतत्त्वमनुचिन्तयेदिति [4]तच्छेषत्वेनैव [5]पूर्वोक्ते स्थिते सतीत्यर्थः ॥५॥

जो भी इस सजीव कार्यकरणसंघात पुरुष में शरीर है, वह गायत्री ही है। इस पुरुष के हृदय कमल के मध्य में भी वही गायत्री है क्योंकि इसी हृदय में प्राण प्रतिष्ठित हैं, इस कारण शरीर के सदृश गायत्री हृदय है। प्राण इसी का अतिक्रमण नहीं करते। श्रुति भी इसी का समर्थन करती है— "प्राण ही पिता है एवं प्राण ही माता है"। "सर्वभूतप्राणियों की हिंसा न करे"। उपरोक्त श्रुतियों में प्राण भूतशब्दवाच्य हैं ॥ ४ ॥

वह यह छन्दो रूपा गायत्री चार पादों से युक्त प्रत्येक पादों में छः-छः अक्षरों वाली है। वाक्, भूत, पृथिवी, शरीर, हृदय और प्राण रूपा होने से षड्विधा गायत्री है। वाक् और प्राण का गायत्री व हृदय के सर्वभूत संबद्धत्व सिद्धि के लिए उपदेश होने पर भी अन्यार्थ निर्दिष्ट होने के कारण गायत्री के

---

१. प्राणपरमिति—प्राणवियोजनाभिप्रायकमित्यर्थः । न चैवं हिंसार्थान्तर्भावात्कथं भूतशब्दवाच्यता प्राणस्येति वाच्यं हिंसार्थानां विनाशमात्रार्थत्वेनापि 'धर्म एव हतो हन्ती'त्यादौ प्रयोगदर्शनाद्भूतसमभिव्याहारेणैव प्राणविषयत्वादित्यलम् । २. लक्षयित्वेति गायत्रीमिति शेषः । ३. विधिपक्ष इति—विधिपक्षीय (विध्यात्मक) वाक्यशेषेत्यर्थः । वाक्यशेषश्च सैषा चतुष्पदा षड्विधेत्यादिरूपः । ४. तच्छेषत्वेनेति—आध्यानशेषत्वेनेत्यर्थः । ५. पूर्वोक्तेऽर्थे ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति ॥ ६ ॥

कार्य और शुद्ध ब्रह्म का स्वरूप

(पहले जो कुछ भी कह आये हैं) इस गायत्री संज्ञक ब्रह्म की उतनी ही विभूति का विस्तार है और शुद्ध ब्रह्म इससे भी महत्तर है। पृथिव्यादि सम्पूर्ण भूत भौतिक जगत् तथा स्थावर जंगम प्राणी उस इस पुरुष का एक पाद है और समस्त गायत्री रूप पुरुष का तीन पाद द्युलोक में प्रकाश स्वरूप आत्मा अमृत प्रकाशमय है ॥ ६ ॥

तावानस्य गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मणः समस्तस्य महिमा विभूतिविस्तारः। यावांश्चतुष्पात्षड्विधश्च ब्रह्मणो विकारः पादो गायत्रीति व्याख्यातः। अतस्तस्माद्विकारलक्षणाद्गायत्र्याख्याद्वाचारम्भणमात्रात्ततो ज्यायान्महत्तरश्च परमार्थसत्यरूपोऽविकारः पूरुषः पुरुषः सर्वपूरणात्पुरि शयनाच्च। तस्यास्य पादः सर्वा सर्वाणि भूतानि तेजोबन्नादीनि सस्थावरजङ्गमानि। त्रिपात्त्रयः पादा अस्य सोऽयं त्रिपात्। त्रिपादमृतं पुरुषाख्यं समस्तस्य [1]गायत्र्यात्मनो दिवि द्योतनवति स्वात्मन्यवस्थितमित्यर्थ इति ॥६॥

समस्तस्य पादविभागविशिष्टस्येति यावत्। विस्तारमेव विवृणोति—यावानिति। वाचारम्भणं विकारो नामधेयमिति वाक्यशेषमाश्रित्य विशिनष्टि—वाचारम्भणमात्रादिति। परमार्थसत्यत्वे हेतुमाह—अविकार इति। तावानस्येत्यादि स्पष्टयति—तस्येति। आदिपदेन वायुराकाशश्चेत्युभयमुक्तम्। ततो ज्यायानित्यादि स्फुटयति—त्रिपादिति। समस्तस्य सर्वप्रपञ्चात्मकस्येत्यर्थः। श्रुतावितिशब्दो मन्त्रसमाप्त्यर्थः ॥६॥

भेद ही हैं, नहीं तो षड्विध संख्या की पूर्ति न हो पाएगी। उस अर्थ में इस गायत्रीसञ्ज्ञक ब्रह्म जो गायत्री में अनुस्यूत है एवं गायत्री द्वारा उपदिष्ट है, उसे मन्त्र द्वारा प्रकाशित किया गया है ॥ ५ ॥

पादविभागविशिष्ट गायत्रीसञ्ज्ञक ब्रह्म का उतना ही विभूति विस्तार है, जितना ब्रह्म के विकार व पाद गायत्री को चतुष्पाद एवं षड्प्रकारक कहा है। वाणी से प्रस्तुत सभी नाम विकारात्मक होने से उस विकारलक्षण गायत्री से महान् परमार्थतः सत्यरूप अविकारी पुरुष है क्योंकि सब में पूर्णता उसी से आती है तथा वह हृत्प्रदेश में शयन करता है। तेज, जल, पृथिवी आदि सभी स्थावर व जङ्गम भूत उसी ब्रह्म का पाद है। इससे भी महान् होने से उसके तीन पाद हैं जिससे वह सर्वप्रपञ्चात्मक गायत्रीसंबन्धी पुरुषाख्य अमृतरूप प्रकाशवान् स्वात्मा में स्थित है ॥ ६ ॥

---

१. गायत्र्यात्मनः संबन्धिपुरुषाख्यममृतं रूपमिति संबन्धः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः ॥ ७ ॥

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥ ८ ॥

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णम-

भूत, देह और हृदय में एक ही आकाश परिपूर्ण है

जो भी (गायत्री द्वारा कहा हुआ त्रिपाद अमृत रूप) वह ब्रह्म है, वह यही है, वह यही है। जो यह पुरुष से बाहर प्रसिद्ध आकाश है तथा जो भी यह पुरुष के बाहर आकाश है, वह यही है, वह यही है ॥ ७ ॥

जो शरीर के भीतर आकाश है और जो भी यह शरीर के भीतर आकाश है, वह यही है ॥८॥

जोकि हृदय के भीतर आकाश है; वह हृदयाकाशस्थ आत्मा पूर्ण है और अविनाशी है। जो

यद्वै तत्त्रिपादमृतं गायत्रीमुखेनो(णो)क्तं ब्रह्मेतीदं वाव तदिदमेव तद्योऽयं प्रसिद्धो बहिर्धा बहिः पुरुषादाकाशो भौतिको यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाश उक्तः ॥७॥

अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुषे शरीर आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः ॥८॥

अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदये हृदयपुण्डरीक आकाशः। कथमेकस्य सत आकाशस्य त्रिधा भेद इति। उच्यते—बाह्येन्द्रियविषये जागरितस्थाने नभसि दुःखबाहुल्यं दृश्यते। ततोऽन्तःशरीरे स्वप्नस्थानभूते मन्दतरं दुःखं भवति स्वप्नान्पश्यतो, हृदयस्थे

यद्ब्रह्म गायत्र्यवच्छिन्नमुपास्यमुक्तं हृदयाकाशे तद्ध्येयमिति वक्तुं क्रमेण हृदयाकाशमवतारयति—यद्वै तदित्यादिना ॥७।

एकस्याऽऽकाशस्य कथं त्रैविध्यमुक्तमिति शङ्कते—कथमिति। औपाधिकत्रैविध्यमविरुद्धमिति, परिहरति—उच्यत इति। बाह्येन्द्रियविषयत्वं तद्विषयशब्दाद्याश्रयत्वं स्वप्नस्थानभूते नभसीति

तथा जो गायत्री रूप से कथित त्रिपाद अमृत वह ब्रह्म है, वह यही है जोकि यह लोकप्रसिद्ध पुरुष से परे आकाश है और जो भी भौतिक आकाश है, वह पुरुष से परे आकाश कहा गया ॥ ७ ॥

जो इस पुरुष शरीर के भीतर आकाश है और जो भी यह शरीर के भीतर आकाश है, यह वही है ॥ ८ ॥

यह जो हृदय कमल के मध्य आकाश है, यह वही है। एक होने पर भी जिस कारण से आकाश के तीन भेद हो जाते हैं, उसे कहा जाता है। जागरित स्थान आकाश में बाह्येन्द्रिय के शब्दादि विषयों में दुःखबाहुल्य देखा जाता है। स्वप्नस्थान भूत सूक्ष्म शरीर में स्वप्न देखते हुए उससे कम दुःख देखा जाता है। हृदयस्थ आकाश में न तो कोई कामना होती है, न ही कोई स्वप्न देखता है। इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवर्ति पूर्णमप्रवर्तिनीᳫं श्रियं लभते य एवं वेद ॥९॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

पुरुष इस प्रकार उक्त पूर्ण और अविनाशी गुण विशिष्ट ब्रह्म को जानता है, वह पूर्ण और कभी नष्ट न होने वाली विभूति को प्राप्त कर लेता है ॥ ९ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

पुनर्नभसि न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति । अतः सर्वदुःखनिवृत्तिरूपमाकाशं सुषुप्तस्थानम् । अतो युक्तमेकस्यापि त्रिधा भेदान्वाख्यानम् । बहिर्धा पुरुषादारभ्याऽऽकाशस्य हृदये संकोचकरणं चेतःसमाधानस्थानस्तुतये । यथा "त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते । अर्धतस्तु कुरुक्षेत्रमर्धतस्तु पृथूदकम्" इति तद्वत् । तदेतद्धार्दाकाशाख्यं ब्रह्म पूर्णं सर्वगतं न हृदयमात्रपरिच्छिन्नमिति मन्तव्यम् । यद्यपि हृदयाकाशे चेतः समाधीयतेऽप्रवर्ति न कुतश्चित्क्वचित्प्रवर्तितुं शीलमस्येत्यप्रवर्ति तदनुच्छित्तिधर्मकम् । यथाऽन्यानि भूतानि परिच्छिन्नान्युच्छित्तिधर्मकाणि न तथा हार्दं नभः पूर्णमप्रवर्तिनीमनुच्छेदात्मिकां श्रियं विभूतिं गुणफलं लभते दृष्टं य एवं

संबन्धः । न कंचनेत्यादिना निषेधद्वयेन पूर्वप्रकारमवस्थाद्वयं निषिध्यते । निषेधफलमाह—अत इति । सर्वदुःखं स्थूलं वासनामयं च तन्निवृत्त्या निरूप्यमाणं हृदयाकाशमित्यर्थः । औपाधिकत्रैविध्यमुपसंहरति—अत इति । तथाऽपि किमित्यनेन क्रमेणाऽऽकाशस्य संकोचो हृदये क्रियते तत्राऽऽह—बहिर्धेति । स्थानस्तुतिमुदाहरणेन स्फुटयति—यथेति । अत्र कुरुक्षेत्रमर्धतोऽर्धस्थानीयं पृथूदकमपि तथेति द्विदलयुगलमिव तदुभयं लोकत्रयापेक्षया विशिष्टतरमित्यर्थः । हृदयाकाशे चेतः समाधीयते चेत्तत्रत्यं परिच्छिन्नं ब्रह्म प्राप्तमित्याशङ्क्याऽऽह—तदेतदिति । पूर्णत्वेन जन्मनाशशून्यत्वं सिध्यतीत्याह—अप्रवर्तीति । प्रधानफलत्वं व्यावर्तयति—गुणफलमिति । दृष्टफलवते 'स्वर्गाप्तिरिति दृष्टमित्युक्तम् ।

प्रकार जागरित एवं स्वप्नावस्था का निषेध हो जाने से सुषुप्तस्थान आकाश में सब दुःखों की निवृत्ति हो जाती है । इस प्रकार एक के ही तीन भेद करना युक्तिसंगत ही है । पुरुष से परे आकाश है । इस प्रकार आकाश का प्रकरण आरम्भ करके उसका हृदय में संकोच करना हृदय के निर्धारित स्थान की स्तुति के लिए है । यह उसी प्रकार है जिस प्रकार कुरुक्षेत्र माहात्म्य निरूपण करते समय कहा जाता है—तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र की विशिष्टता है क्योंकि वहाँ आधे में तो कुरुक्षेत्र है एवं आधे में अगाध जल है । वह हृदयाकाशसञ्ज्ञक ब्रह्म हृदयमात्र में व्याप्त नहीं है बल्कि सर्वगत है । यद्यपि हृदयाकाश में चित्त को लगाया जाता है, ऐसा कि वह किसी दूसरे विषय में प्रवृत्त न होकर अनुच्छित्ति धर्म से युक्त हो जाता है । जिस प्रकार अन्य भूतप्राणी परिच्छिन्न और अनुच्छित्ति धर्म वाले हैं उस प्रकार हृदयाकाश पूर्ण अनुच्छेदात्मक विभूति स्वर्गप्राप्ति रूप प्रत्यक्ष गौणफल को प्राप्त नहीं करता है । जो

१. स्वर्गो हार्दं ब्रह्म तदाप्तिरदृष्टं फलमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ्सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद ॥ १ ॥

हृदयस्थ पूर्व छिद्र रूप प्राण की उपासना

उस इस प्रसिद्ध हृदय के (भीतर विद्यमान स्वर्ग लोक प्राप्ति के) द्वारभूत पाँच छिद्र हैं। इस स्वर्गलोक रूप भवन का पूर्व दिशा संबन्धी जो द्वार है वह प्राण है, वह चक्षु है, वही यह तेज और अन्नाद्य है। इस प्रकार स्वर्ग के द्वारभूत प्राण की उपासना करे। जो इस प्रकार इनकी उपासना करता है, वह आदित्य रूप से तथा अन्नाद्य रूप से सविता का तेज प्राप्त कर तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है ॥ १ ॥

यथोक्तं पूर्णाप्रवर्तिगुणं ब्रह्म वेद जानातीहैव जीवंस्तद्भावं प्रतिपद्यत इत्यर्थः ॥९॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

तस्य ह वा इत्यादिना गायत्र्याख्यस्य ब्रह्मण उपासनाङ्गत्वेन द्वारपालादिगुणविधानार्थमारभ्यते। यथा लोके द्वारपाला राज्ञ उपासनेन वशीकृता राजप्राप्त्यर्था भवन्ति तथेहापीति। तस्येति प्रकृतस्य हृदयस्येत्यर्थः। एतस्यानन्तरनिर्दिष्टस्य पञ्च पञ्चसंख्याका देवानां सुषयो देवसुषयः स्वर्गलोकप्राप्तिद्वारच्छिद्राणि देवैः प्राणादित्यादिभी रक्ष्यमाणा-

---

ज्ञानमेव विशिनष्टि—इहैवेति। वर्तमानो देहः सप्तम्यर्थः। यो विद्वानेवं स यथोक्तं फलं लभत इति संबन्धः ॥९॥

इति तृतीयाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

वक्ष्यमाणज्ञानस्य स्वातन्त्र्यं परिहृत्य प्रकरणभेदं व्यावर्तयितुमुत्तरग्रन्थस्य तात्पर्यमाह—तस्येति। द्वारपालादीत्यादिपदेन तद्‌गतो विशेषो गृह्यते। 'ब्रह्मण्युपासनेनाप्रसिद्धितो द्वारपालोपास्तिरयुक्तेत्याशङ्‌क्याऽऽह—यथेति। इति तदुपास्तिरर्थवतीति शेषः। स्वर्गलोकशब्दः परमात्मविषयः। स्वर्गं लोकमित ऊर्ध्वो विमुक्ता इति श्रुत्यन्तरात्। देवसुषित्वं साधयति—देवैरिति। स्वर्गलोकस्य परमात्मनो

इस प्रकार पूर्ण और अनुच्छित्ति स्वरूप वाले ब्रह्म को जानता है, वह यहाँ जीवित दशा में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

उपरोक्त 'तस्य ह वा' इत्यादि श्रुति से गायत्रीसञ्ज्ञक ब्रह्म उपासना अङ्ग से द्वारपालादि गुण-विधान के लिए आगे का ग्रन्थ प्रारम्भ किया जाता है। जिस प्रकार लोकव्यवहार में द्वारपाल राजा की उपासना से वश में करके राज्यप्राप्ति के अधिकारी हो जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए। मन्त्र में 'तस्य' प्रकरणस्थ हृदय का बोधक है। इस हृदय के परमात्मप्राप्ति के द्वारभूत पाँच

---

१. ब्रह्मणीति—ब्रह्मविषयकोपासनेन सह द्वारपालोपास्तिरयुक्ता ब्रह्मणो द्वारपालानामप्रसिद्धत्वादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नीत्यतो देवसुषयस्तस्य स्वर्गलोकभवनस्य हृदयस्यास्य यः प्राङ् सुषिः पूर्वाभिमुखस्य प्राग्गतं यच्छिद्रं द्वारं स प्राणस्तत्स्थस्तेन द्वारेण यः सञ्चरति वायुविशेषः स प्रागनितीति प्राणः। तेनैव संबद्धमव्यतिरिक्तं तच्चक्षुस्तथैव स आदित्यः "आदित्यो ह वै बाह्यप्राणः" इति श्रुतेश्चक्षूरूपप्रतिष्ठाक्रमेण हृदि स्थितः। "स आदित्यः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति चक्षुषि" इत्यादि हि वाजसनेयके। प्राणवायुदेवतैव ह्येका चक्षुरादित्यश्च सहाऽऽश्रयेण। वक्ष्यति च—प्राणाय स्वाहेति हुतं हविः सर्वमेतत्तर्पयतीति। तदेतत्प्राणाख्यं स्वर्गलोकद्वारपालत्वाद्ब्रह्म। स्वर्गलोकं प्रतिपित्सुस्तेजस्व्येतच्चक्षुरादित्यस्वरूपे-

---

भवनमायतनं तस्येति यावत्। प्राक्त्वेऽनवस्थामाशङ्क्योक्तं पूर्वाभिमुखस्येति। तत्स्थस्तेनेति। तच्छब्दो हृदयविषयः। तेनैवेति। प्राणविषयस्तच्छब्दः। तदव्यतिरिक्तत्वं स्वातन्त्र्येण चक्षुषोऽकिंचित्करत्वम्। [1]न हि चक्षुषा प्राणस्य संबन्धो तथैव यथा प्राणस्य चक्षुष्ट्वमित्यर्थः। प्राणादित्ययोरैक्ये प्रमाणमाह—आदित्यो हेति। कथं यथोक्तस्याऽऽदित्यस्य हृदयसुषिद्वारस्थानित्वं न हि बाह्यस्य तत्संबन्धे निबन्धनमस्ति तत्राऽऽह—चक्षुरिति। अधिष्ठातृत्वेनाऽऽदित्यश्चक्षुषि प्रतिष्ठितश्चक्षुश्च ग्राहकतया रूपे प्रतिष्ठितं [3]रूपदर्शने करणी भवति। वासनात्मना च हृदये रूपाणि प्रतिष्ठितानि[4]तदाऽनेन क्रमेणाऽऽदित्यो हृदये तिष्ठतीत्यर्थः। [5]तत्र श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—स आदित्य इति। एकदेवताभिन्नत्वादपि प्राणाभेदेन चक्षुरादित्ययोराध्यानं युक्तमित्याह—प्राणेति। आश्रयशब्देन रूपाणि हृदयं चोच्यते द्युलोको वा। आदित्यचक्षुषो[6]दिवस्तदधिष्ठितस्य च सर्वस्य प्राणात्मत्वे वाक्यशेषमनुकूलयति—वक्ष्यति चेति। न हि प्राणे तृप्यति सर्वस्य तृप्तिस्तादात्म्यमन्तरेण संभवतीति भावः। तदेतत्प्राणाख्यं ब्रह्म स्वर्गलोकं प्रतिपित्सुः सन्पुरुषस्तेजोऽन्नाद्यमित्याभ्यां गुणाभ्यां विशिष्टमुपासीतेति संबन्धः। किमिति यथोक्तोऽधिकारी प्राणोपासने नियुज्यते तत्राऽऽह—स्वर्गेति। तथाऽपि कथं यथोक्तगुणद्वयवैशिष्ट्यं प्राणाख्यस्य

छिद्र हैं। परमात्मा के उस आयतन हृदय के जो पूर्ववर्ती द्वार है, वह प्राण है। हृदयद्वार से जो वायु विशेष का सचार होता है वह पूर्व को ओर ले जाये जाने के कारण प्राण है। प्राण से ही सम्बद्ध चक्षु है जो उसके बिना अपने आप कुछ भी करने में समर्थ नहीं है। उसी प्रकार प्राण और आदित्य की एकता है। "आदित्य ही बाह्य प्राण है," इस श्रुति से सिद्ध होता है कि आदित्य चक्षु में प्रतिष्ठित है एवं चक्षु रूप में प्रतिष्ठित है; इस क्रम से हृदय में सब प्रतिष्ठित है। वाजसनेयक श्रुति कहती है—"वह आदित्य चक्षु में प्रतिष्ठित है"। एक ही प्राण वायु देवता है जो चक्षु और आदित्य एवं उनके आश्रय रूप और द्युलोक से अभिन्न है। आगे छा. उ. ५-१९-१ में कहा जायगा कि भोजन के समय पहले ग्रास को 'प्राणाय स्वाहा' कह कर आहुति दे। तादात्म्य होने पर ही प्राण के तृप्त होने पर सभी कुछ प्राणात्मक होने से सभी की तृप्ति हो जाती है। परमात्म प्राप्ति का द्वारपाल होने से प्राण ही ब्रह्म है। परमात्म प्राप्ति के इच्छुक पुरुष प्राण की तेज और अन्नाद्य

---

१. छा. उ. ५-१९-१। २. न हीत्यादिरनन्वितः पाठः स हीति वा पाठं प्रकल्प्य स हि चक्षुषः प्राणस्य च संबन्ध इति पूर्वोक्तिशेषत्वेन व्याख्येयम्। ३. रूपे प्रतिष्ठितमित्यस्यैव टिप्पणं रूपदर्शने करणीभवतीति। ४. तदेति—अत्र तथा चेति युक्तः प्रतिभाति पाठः। ५. तत्रेति—यथोक्तक्रमेणादित्यस्य हृदयप्रतिष्ठितत्व इत्यर्थः। ६. दिवः द्युलोकस्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रँ स चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद ॥ २ ॥

हृदयस्थ दक्षिण छिद्र रूप व्यान की उपासना

और इस हृदय का जो दक्षिण छिद्र है, उसमें स्थित वह व्यान वायु विशेष है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है, वही यह श्री एवं यश है। जो कोई श्री एवं प्रसिद्धि इन दो गुणों से युक्त व्यान की उपासना करता है, वह निश्चय ही विभूतिमान् और यशस्वी होता है ॥ २ ॥

णान्नदत्वाच्च सवितुस्तेजोऽन्नाद्यमित्याभ्यां गुणाभ्यामुपासीत । ततस्तेजस्व्यन्नादश्चाऽऽमयावित्वरहितो भवति य एवं वेद तस्यैतद्गुणफलम् । उपासनेन वशीकृतो द्वारपः स्वर्गलोकप्राप्तिहेतुर्भवतीति मुख्यं च फलम् ।।१।।

अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिस्तत्स्थो वायुविशेषः स वीर्यवत्कर्म कुर्वन्विगृह्य वा प्राणापानौ नाना वाऽनितीति व्यानस्तत्संबद्धमेव च तच्छ्रोत्रमिन्द्रियं तथा स चन्द्रमाः ।

ब्रह्मणः सिध्यति । तत्र तेजःशब्दं व्याकुर्वन्नाह—तेजस्वीति । एतत्प्राणाख्यं ब्रह्मोभयरूपेण तेजस्वी तथाच तेजोगुणविशिष्टतया तदुपासनामर्हति । सवितुश्चान्नदत्वं वृष्टिद्वारेण "आदित्याज्जायते वृष्टिः" इत्यादौ दृष्टमतश्चान्नं च तदाद्यं चेति गुणान्तरविशिष्टत्वेनापि सवितृरूपं प्राणाख्यं ब्रह्म ध्यानार्हमित्यर्थः । किं तर्हि मुख्यं फलमिति तदाह—उपासनेनेति ।।१।।

हृदयस्य पूर्वदिगवस्थितच्छिद्रसंबन्धित्वेन प्राणमुक्त्वा व्यानः श्रोत्रं चन्द्रमाश्चेति त्रितयमितरसंबद्धमुपास्यमित्याह—अथेति । वीर्यवत्कर्म कुर्वन्ननितीति संबन्धः । प्राणापानौ विगृह्य विरुध्य वाऽयमनितीति पक्षान्तरं नानास्कन्धसंधिमर्मसु विविधमनिति चेष्टत इति विकल्पान्तरं तेन व्यानेन संबन्धः श्रोत्रस्य श्रुत्युक्तत्वाद्ध्यानार्थो मन्तव्यः । यथा श्रोत्रस्य व्यानेन संबन्धस्तथा चन्द्रमसोऽपि तेन संबन्धस्य श्रुत्युक्तत्वादेव ध्यानार्थतया ग्राह्य इत्याह—तथेति । श्रोत्रचन्द्रमसोः संबन्धे श्रुत्यन्तरमनु-

---

स्वरूप से उपासना करे क्योंकि तेज चक्षु और आदित्य का स्वरूप तथा आदित्य अन्न को देने वाला होता है। जो हृदय के पाँच छिद्रों की इस प्रकार उपासना करता है, उसका गौण फल यह है कि वह तेजस्वी और अन्न का भोक्ता होता है, रोग एवं क्षुधादि विकारों से रहित होता है। उसका मुख्य फल यह है कि उपासना से वशीकृत किया हुआ द्वारपाल परमात्मप्राप्ति करता है ॥ १ ॥

(प्राण का निरूपण कर अब व्यान का निरूपण किया जाता है—) इस हृदय का जो दक्षिण छिद्र है, उसमें स्थित जो वायु विशेष है वह बलयुक्त कर्म करने अथवा प्राणापान का विरोध करने एवं विविध चेष्टा करने से व्यान कहा जाता है। श्रोत्रेन्द्रिय का व्यान से संबन्ध है। इसी प्रकार व्यान और चन्द्रमा की एकता है। "विराडात्मक श्रोत्र से दिशाओं और चन्द्रमा की सृष्टि हुई"—ऐसी श्रुति

---

१. आमयस्योपसंख्यानं दीर्घश्चेति विनिर्दीर्घश्च ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः सोऽपानः सा वाक्सोऽग्नि-स्तदेतद्ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्य-न्नादो भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥

हृदयस्थ पश्चिम छिद्र रूप अपान की उपासना

तथा इस हृदय का पश्चिमवर्ती छिद्र है, वह अपान वायु विशेष है। वह वाणी है, वह अ[ग्नि] है और वही यह (सदाचार और स्वाध्याय के कारण होने वाला) ब्रह्मतेज एवं अन्नाद्य है। इ[स] प्रकार उस अपान की जो उपासना करता है, वह ब्रह्म तेज वाला और अन्न का भोक्ता होता है ॥ ३ ॥

श्रोत्रेण सृष्टा दिशश्च चन्द्रमाश्चेति श्रुतेः। सहाश्रयौ पूर्ववत्तदेतच्छ्रीश्च विभूतिः श्रोत्र-चन्द्रमसोर्ज्ञानान्नहेतुत्वमतस्ताभ्यां श्रीत्वम्। ज्ञानान्नवतश्च यशः ख्यातिर्भवतीति यशो-हेतुत्वाद्यशस्त्वमतस्ताभ्यां गुणाभ्यामुपासीतेत्यादि समानम् ॥२॥

अथ योऽस्य प्रत्यङ्सुषिः पश्चिमस्तत्स्थो वायुविशेषः स मूत्रपुरीषाद्यपनयन्नधो-नितीत्यपानः सा तथा वाक्। तत्संबन्धात्तथाऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसं, वृत्तस्वाध्याय-

---

कूलयति—श्रोत्रेणेति। यद्विराजः श्रोत्रं तदात्मना दिशश्चन्द्रमाश्चेत्येते सृष्टा इति श्रुतेरित्यर्थः। मि[थः] संबन्धेऽपि कथमनयोर्व्यानात्मत्वं 'व्याने तृप्यतीत्यादिवाक्यशेषादित्याह—पूर्ववदिति। तदेतद्व्याना[ख्यं] ब्रह्म श्रीश्च यशश्चेत्याभ्यां गुणाभ्यामुपासीतेति संबन्धः। कथं तस्य गुणद्वयवतो ध्यानमित्याशङ्क्य[1] श्रोत्रस्य ज्ञानहेतुत्वाच्चन्द्रमसोऽन्नहेतुत्वात्तयोराश्रयत्वे तदात्मनो व्यानस्यापि तद्गुणत्वोपपत्तिरित्याह—श्रोत्रेति। व्यानाख्ये ब्रह्मणि गुणान्तरं साधयति—ज्ञानेति। उक्तस्य ब्रह्मणो गुणद्वयसंभवोऽतःशब्दार्थः। श्रीमानित्यादिफलवाक्यमादिशब्दार्थः। समानं तेजस्वीत्यादिवाक्येनेति शेषः ॥२॥

हृदयस्य पश्चिमदिगवस्थितसुषिसंबन्धत्वेनापानो वागग्निश्चेति त्रितयमन्योन्यसंबन्धं ध्येयमित्याह—अथ योऽस्येति। सोऽपान इत्यस्यार्थमाह—तत्स्थ इति। सोऽपान इति संबन्धः। अपानशब्दं वायुविशेषे व्युत्पादयति—मूत्रेति। आदिशब्देन शुक्रादि गृह्यते। यथा चक्षुषः श्रोत्रस्य प्राणत्वं व्यानत्वं चोक्तं तथा वागपानो भवत्यपाने तृप्यतीत्यादिश्रुतेरित्याह—सा तथेति। यथा चक्षुरादिद्वारेणाऽऽदित्यादेः प्राणादिरूपत्वमुक्तं तथा वाचोऽधिष्ठातृत्वेन संबन्धादग्निस्तद्द्वारेणापानो भवतीत्याह—तत्संबन्धादिति। तदेतदपानाख्यं ब्रह्म ब्रह्मवर्चसमन्नाद्यमित्याभ्यां गुणाभ्यां विशिष्ट-मुपासीतेति संबन्धः। ब्रह्मवर्चसं व्याचष्टे—वृत्तेति। कथमपानाख्ये ब्रह्मणि यथोक्तो गुणः सिध्यतीत्या[शङ्क्य]

भी है। इनका पारस्परिक आश्रयं होना पूर्वमन्त्र के भाष्य के समान है। इस व्यानाख्य ब्रह्म की श्री और यश रूप गुणों से उपासना करनी चाहिए। श्रोत्र और चन्द्रमा ज्ञान और अन्न का हेतुक होने से उन दोनों की विभूति है। ज्ञान और अन्नदान रूप यश ही ख्याति है, उनके यश हेतुक होने के कारण ज्ञान और अन्न का यशस्त्व प्रसिद्ध ही है। इसलिए श्री और यश रूप गुणों से व्यान की उपासना करे

---

१. इत्याशङ्क्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ योऽस्योदङ्सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान्व्युष्टिमान्भवति य एवं वेद ।। ४ ।।

हृदयस्थ उत्तर दिग्वर्ती छिद्र रूप समान की उपासना

और इस हृदय का जो उत्तरवर्ती छिद्र है, उसमें स्थित वह समान वायु विशेष है। वह मन है, वह वृष्टि है, वही यह समान संज्ञक ब्रह्म कीर्ति एवं कान्ति है। इन दो गुण विशिष्ट समान रूप ब्रह्म की इसी प्रकार उपासना करे। जो इस प्रकार जानता है, वह कीर्तिमान् और कान्तिमान् होता है ।।४।।

निमित्तं तेजो ब्रह्मवर्चसम् । अग्निसंबन्धाद्वृत्तस्वाध्यायस्य । अन्नग्रसनहेतुत्वादपानस्यान्नाद्यत्वम् । समानमन्यत् ।।३।।

अथ योऽस्योदङ्सुषिरुदग्गतः सुषिस्तत्स्थो वायुविशेषः सोऽशितपीते समं नयतीति समानः । तत्संबद्धं मनोऽन्तःकरणं स पर्जन्यो वृष्टयात्मको देवः पर्जन्यनिमि-

---

शङ्क्याग्निद्वारेत्याह—अग्निसंबन्धादिति । तथाऽपि कथमन्नाद्यत्वमित्याशङ्क्यापानद्वारेणेत्याह—अन्नेति । ब्रह्मवर्चसीत्यादिफलवाक्यं श्रीमानित्यादिना तुल्यार्थत्वान्न व्याख्यानापेक्षमित्याह—समानमिति ।।३।।

हृदयस्योत्तरसुषिसंबन्धत्वेन समानो मनः पर्जन्यश्चेति त्रितयं परस्परसंबद्धमुपास्यमित्याह—अथेति । स समान इति संबन्धः । समानशब्दं वायुविशेषे व्युत्पादयति—अशितेति । मनसः समानेन संबन्धः समाने तृप्यतीत्यादिश्रुतेर्ग्राह्य इत्याह—तत्संबद्धमिति । मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यतीति वाक्यशेषमाश्रित्य तयोः संबन्धमाह—पर्जन्य इति । श्रुत्यन्तरादपि तयोः संबन्धं वक्तुं पातनिकामाह—पर्जन्येति । शेषः प्रसिद्धिपरामर्शार्थः । तथाऽपि कथं पर्जन्यमनसोः संबन्धसिद्धिरित्याशङ्क्य वायोरपि कारणत्वेनाद्भिः

इससे उपासक श्रीमान् और यशस्वी होता है ।। २ ।।

तथा इस हृदय के पश्चिम की ओर के छिद्र में स्थित जो वायु विशेष है, वह मूत्र-पुरीष-शुक्रादि को नीचे निकालने के कारण अपान है, वह वाणी है। वाणी के अधिष्ठातृ रूप से संबन्ध होने से वह अग्नि है। अपानाख्य ब्रह्म की ब्रह्मवर्चस् और अन्नाद्य गुणों से विशिष्ट उपासना करे। सदाचार और स्वाध्याय के कारण झलकने वाला तेज ब्रह्मवर्चस् है क्योंकि सदाचार और स्वाध्याय का अग्नि से संबन्ध है। अन्नग्रसन में निमित्त होने के कारण अपान अन्नाद्य है। शेष मन्त्र की व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है ।। ३ ।।

तथा इस हृदय के जो उत्तरवर्ती छिद्र है उसमें स्थित वायुविशेष समान है क्योंकि खाये एवं पीए पदार्थों को समान कर देती है। मन से समान की अभिन्नता है। वही वृष्टयात्मक देवता पर्जन्य है क्योंकि वृष्टि से ही जल होता है। श्रुति भी कहती है—आप और वरुण की मन से सृष्टि हुई। वही समान ब्रह्म की कीर्ति है क्योंकि मन का ज्ञान कीर्ति में हेतु है। आत्मा से परोक्ष विश्रुति ही कीर्ति है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funded by IKS-MoE-Grant-2

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥

हृदयस्थ ऊर्ध्व दिग्वर्ती छिद्र रूप उदान की उपासना

और इस हृदय का ऊर्ध्व दिग्वर्ती छिद्र है, वह उदान वायु विशेष है। वह वायु है, वह आकाश है और वही यह ओज है एवं महत्ता के कारण 'महः' भी है। जो इस प्रकार उदान संज्ञक ब्रह्म की उपासना करता है, वह बलवान् और तेजस्वी होता है ॥ ५ ॥

त्ताश्चाऽऽप इति। "मनसा सृष्टा आपश्च वरुणश्च" इति श्रुतेः। तदेतत्कीर्तिश्च। मनो-ज्ञानस्य कीर्तिहेतुत्वात्। आत्मपरोक्षं विश्रुतत्वं कीर्तिर्यशः। स्वकरणसंवेद्यं विश्रुतत्व-व्युष्टिः कान्तिर्देहगतं लावण्यम्। ततश्च कीर्तिसंभवात्कीर्तिश्चेति। समानमन्यत् ॥४॥

अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदान आ पादतलादारभ्योर्ध्वमुत्क्रमणादुत्कर्षार्थं च कर्म कुर्वन्ननितीत्युदानः स वायुस्तदाधारश्चाऽऽकाशस्तदेतद्वाय्वाकाशयोरोजोहेतुत्वादोजो बलं महत्त्वाच्च मह इति। समानमन्यत् ॥ ५ ॥

संबन्धात्तद्द्वारा मिथोऽपि तत्सिद्धिरित्याह—मनसेति। तदेतत्समानाख्यं ब्रह्म कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्याभ्यां गुणाभ्यामुपासीतेति संबन्धः। तस्मिन्ब्रह्मणि कीर्तिरूपं गुणं साधयति—मनस इति। व्युष्टेरर्थान्तरत्वं :कीर्तेर्दर्शयति—आत्मेति। ततो व्युष्टेराचष्टे—स्वकरणेति। तामेवानुभवारूढतया कथयति—कान्तिरिति। कथं पुनर्देहगतस्य लावण्यस्य कीर्तितावक्तुं शक्यते तत्राऽऽह—ततश्चेति। लावण्ये पञ्चम्यर्थः। इत्यसंकीर्णगुणद्वयविशिष्टमुपासनं सिद्धमित्यर्थः। कीर्तिमानित्यादिफलवाक्यस्य ब्रह्मवर्च-सीत्यादिना तुल्यार्थत्वादव्याख्येयत्वमाह—समानमिति ॥४॥

हृदयस्योर्ध्वच्छिद्रवैशिष्ट्येनोदानो वायुराकाशश्चेति त्रितयमन्योन्यसंबन्धमुपास्यमित्याह—अथ योऽस्येति। उत्क्रमणादुदान इति संबन्धः। उदाने तृप्यति वायुस्तृप्यतीति वाक्यशेषमाश्रित्याऽऽह—स वायुरिति। वायोराकाशत्वमाधाराधेयसंबन्धाद्वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यतीति श्रुतेश्चेत्याह—तदाधारश्चेति। तदेतदुदानाख्यं ब्रह्म पूर्ववदोजो महश्चेत्याभ्यां विशिष्टमुपासीतेति संबन्धः। उक्तगुणद्वयं निर्दिशति—वाय्वाकाशयोरिति। ओजस्वीत्यादिवाक्यस्य कीर्तिमानित्यादिना तुल्यार्थ-त्वमाह—समानमिति ॥५॥

उसे ही यश कहा जा सकता है। आत्मेन्द्रिय मे संवेद्य व्युष्टि कान्ति है, जो शरीर में भासने वाला सौन्दर्य है। शारीरिक सौन्दर्य से भी कीर्ति संभव होने से कीर्ति और कान्ति रूप गुणद्वय विशिष्ट ब्रह्म की उपासना करे। शेष मन्त्र की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए ॥ ४ ॥

तथा इस हृदय के जो ऊर्ध्ववर्ती छिद्र है, वह उदान है। पादतल से लेकर ऊपर उत्क्रमण उन्नति हेतु कर्म करते हुए निकलता है, इसलिए उदान है। उदान के तृप्त होने पर वायु तृप्त हो जाती है इसलिए उदान वायु है। वायु और आकाश में आधार-आधेय भाव संबन्ध होने के कारण वायु के तृप्त होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद ॥ ६ ॥

उक्त प्राणादि द्वारपालकों की उपासना का फल

वे ये प्रसिद्ध हृदयस्थ ब्रह्म के पाँच पुरुष स्वर्गलोक के पाँच द्वारपाल हैं। वह जो कोई भी उपासक स्वर्ग के द्वारपालों इन पाँच ब्रह्म पुरुषों की उपासना करता है, उसके कुल में वीर पुत्र उत्पन्न होता है। जो कोई स्वर्गलोक के द्वारपाल इन चक्षुरादि पाँच पुरुषों की इस प्रकार उपासना करता है, वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

ते वा एते यथोक्ताः पञ्चमुषिसंबन्धात्पञ्च ब्रह्मणो हार्दस्य पुरुषा राजपुरुषा इव द्वारस्थाः स्वर्गस्य हार्दस्य लोकस्य द्वारपा द्वारपालाः। एतैर्हि चक्षुःश्रोत्रवाङ्मनःप्राणैर्बहिर्मुखप्रवृत्तैर्ब्रह्मणो हार्दस्य प्राप्तिद्वाराणि निरुद्धानि। प्रत्यक्षं ह्येतदजितकरणतया बाह्यविषयासङ्गानृतप्रत्यूढत्वान्न हार्दे ब्रह्मणि मनस्तिष्ठति। तस्मात्सत्यमुक्तमेते

तस्य ह वा एतस्येत्यादिनोक्तमनुवदति—ते वा इति। कथं ब्रह्मपुरुषास्तत्राऽऽह—राजपुरुषा इति। व्यपदिश्यन्त [1]इत्यर्थः। तेषां द्वारपालत्वं प्रपञ्चयति—एतैरिति। तत्र स्वानुभवं प्रमाणयति—प्रत्यक्षं हीति। विवेकवैराग्याभ्यां वशीकृतश्रोत्रादिकरणग्रामोपेतत्वाभावात्[2]परोक्षशब्दादिविषयासङ्गरूपानृताक्रान्तत्वादित्यर्थः। एतैरेव विषयविमुखैर्ब्रह्मप्राप्तिद्वाराणि समाध्यादिना विवृतानीत्यभिप्रेत्योपसंहरति—तस्मादिति। ब्रह्मपुरुषानुक्ताननूद्य सफलमुपासनं दर्शयति—अत इति।

पर आकाश तृप्त हो जाता है। इस उदानाख्य ब्रह्म की ओज और महत्ता गुणद्वय से उपासना करनी चाहिए क्योंकि वायु और आकाश के ओज हेतुक होने से ओज ही बल है, महत्त्वयुक्त होने से श्रेष्ठ है। शेष मन्त्र की व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है ॥५॥

पूर्वोक्त पाँच छिद्रों से संबद्ध हार्द ब्रह्म के पाँच पुरुष राजपुरुषों की तरह हृदयस्थ ब्रह्मलोक के द्वारपाल हैं। इन्हीं द्वारपालों के द्वारा हृदयस्थ ब्रह्म के प्राप्तिद्वारों चक्षु, श्रोत्र, वाक्, मन और प्राण के द्वारा बहिर्मुखी प्रवृत्ति से निरुद्ध करते हैं। यह बात स्वानुभव सिद्ध है कि अविजितेन्द्रिय का बाहरी विषयों में आसक्ति एवं मिथ्या पदार्थों में स्थिति रहने से हृदयस्थ ब्रह्म में मन स्थिर नहीं रहता। इसलिए सत्य ही कहा गया है कि ये पाँच ब्रह्मपुरुष ब्रह्मलोक के द्वारपाल हैं। इसलिए जो

---

१. इत्यर्थ इति—अत्र इति शेष इति युक्तम्। २. परोक्षेति—अलब्धेति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे ज्योतिस्तस्यैषा दृष्टिर्यत्रैतदस्मि-

हृदयस्थ मुख्य ब्रह्म की उपासना

और इस द्युलोक से परे जो नित्य प्रकाश होने से परम ज्योति विश्व के पृष्ठ पर अर्थात् सब के ऊपर सर्वोत्तम, उत्तम लोकों में भासमान हो रही है, वह निश्चय यही है जो कि इस पुरुष के भीतर ज्योति है; जो चक्षुरादि इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलती रहती है।

पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपा इति। अतः स य एतानेवं यथोक्तगुणविशिष्टान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदोपास्त उपासनया वशी करोति स राजद्वारपालानिवोपासनेन वशीकृत्य तैरनिवारितः प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं राजानमिव हार्दं ब्रह्म। किंचास्य विदुषः कुले वीरः पुत्रो जायते वीरपुरुषसेवनात्। तस्य चर्णापाकरणेन ब्रह्मोपासनप्रवृत्तिहेतुत्वम्। ततश्च स्वर्गलोकप्रतिपत्तये पारम्पर्येण भवतीति स्वर्गलोकप्रतिपत्तिरेवैकं फलम् ॥६॥

अथ यदसौ विद्वान्स्वर्गं लोकं वीरपुरुषसेवनात्प्रतिपद्यते। यच्चोक्तं त्रिपादस्या-

---

अनियतानां चक्षुरादीनां ब्रह्मप्राप्तिप्रतिबन्धकत्वं नियतानां तु तत्प्राप्तिहेतुत्वमित्यतःशब्दार्थः। यथोक्तगुणविशिष्टत्वं चक्षुरादीनामादित्याद्यात्मकत्वम्। अदृष्टं फलमुक्त्वा दृष्टं फलमाह—किंचेति। यथोक्तपुत्रोत्पत्तिविवक्षितब्रह्मप्राप्तावनुपयुक्तेत्याशङ्क्याऽऽह—तस्य चेति। पुत्रस्य ध्यानानुसारित्व [हेतुत्वं] ततःशब्दार्थः। पारम्पर्येणोपासनाद्वारेणेति यावत्। पुत्रस्य ध्यानद्वारा ब्रह्मप्राप्तिहेतुत्व फलितमाह—इति स्वर्गेति ॥६॥

गायत्र्युपाधिकं ब्रह्मोपास्यं तादर्थ्येन द्वारपालोपास्तिश्च कर्तव्या ततश्चाङ्गेषु श्रुतानि फलानि समुच्चित्य प्रधानोपासनादेव ब्रह्मप्राप्तिरित्युक्तम्। इदानीं विद्यान्तरं प्रस्तौति—अथेति। परस्ताद्दिवो दीप्यमानं ब्रह्म कौक्षेये ज्योतिषि, प्रतीकेऽध्यस्य दृष्टत्वश्रुतत्वाभ्यामुपासितव्यमिति श्रौतमर्थं सिद्धवत्कृत्वाऽऽर्थिकमर्थमादाय तात्पर्यमाह—यदसौ विद्वानिति। वीराणां वीर्यवतामादित्यादीनां

इन पूर्वोक्त गुणविशिष्ट ब्रह्मलोक के द्वारपालों की उपासना करता है; वह राजद्वारपालों के समान सेवा से वश में करके उन से बिना रोके-टोके हृदयस्थ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं, वीर पुरुष की सेवा करने से उस विद्वान् के कुल में वीर पुत्र उत्पन्न होता है। उस पुत्र की उपयोगिता इसलिए है कि ऋण शोधन के द्वारा ब्रह्मोपासना की प्रवृत्ति में कारण है। फिर पुत्रोत्पत्ति पूर्वक ब्रह्मलोक की प्राप्ति उपासना द्वारा परम्परा से होती है, इसलिए ब्रह्मलोक प्राप्ति यही इस उपासना का अन्यतम फल है ॥६॥

(अब विद्यान्तर को प्रस्तुत किया जाता है—) जो यह ज्ञानी आदित्यादि पुरुषों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ञ्छरीरे सꣳ स्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत उपशृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

हृदयस्थ परम ज्योति का ज्ञापक लिङ्ग

उस इस हृदयस्थ पुरुष के दर्शन का उपाय यही है—जब मनुष्य इस देह में हाथ से स्पर्श द्वारा उष्णता को जानता है। तथा यही उसके श्रवण का उपाय है—जिस समय यह कर्ण छिद्रों को बन्द करके रथ के घोष को, बैल के डकारने के शब्द के समान और जलते हुए अग्नि के शब्द के समान शब्द को सुनता है। वह यह ज्योति दृष्ट और श्रुतलिङ्ग से युक्त होने के कारण दृष्ट एवं श्रुत है। इस प्रकार इस परम ज्योति की उपासना करे। जो उपासक इस प्रकार उपासना करता है, वह दर्शनीय और विख्यात हो जाता है ॥ ७ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

मृतं दिवीति तदिदं लिङ्गेन चक्षुःश्रोत्रेन्द्रियगोचरमापादयितव्यम्, यथाऽग्न्यादि धूमादिलिङ्गेन। तथा ह्ययमेवेदमिति यथोक्तेऽर्थे दृढा प्रतीतिः स्यात्। अनन्यत्वेन च

पुरुषाणां सेवनादाध्यानादिति यावत्। लिङ्गेन स्पर्शविशेषेण [1]श्रवणविशेषेण चेत्यर्थः। चक्षुःश्रोत्रेन्द्रियगोचरमिति। मद्दृष्टिं प्रति दृष्टं श्रुतं च मयेत्यापादयितव्यम्। अन्यथा दृष्टत्वश्रुतत्वाभ्यां ब्रह्मणि ध्यानासिद्धेरित्यर्थः। परस्याप्रतिपत्तौ लिङ्गेन प्रत्यायने दृष्टान्तमाह—यथेति। विप्रतिपन्नं प्रति धूमादिलिङ्गेनाग्न्यादि प्रत्याय्यते तथा स्पर्शादिलिङ्गेन दृष्टत्वादिविशिष्टमिदं प्रत्येतव्यमित्यर्थः। यथोक्तस्य ज्योतिषो लिङ्गेन प्रत्यायनं किमिति क्रियते तत्राऽऽह—तथा हीति। लिङ्गद्वारा तस्य प्रत्यायने सति गुणद्वयविशिष्टमेवेदं ज्योतिर्नान्यथेत्येवं यथोक्ते परस्मिन्नुपास्यज्योतिषि दृढा धीः स्या[2]त्तदभावात्तद्गुणस्य ज्योतिषोऽध्यानादित्यर्थः। मा भूत्परस्य ज्योतिषो यथोक्तगुणस्याशेषोपासनमित्याशङ्क्याऽऽह—अनन्यत्वेनेति। कौक्षेयस्य ज्योतिषः संनिकर्षाज्जीवाभेदं परिकल्प्य जाठरं ज्योतिर्ब्रह्मेत्यनन्यत्वेन ध्याने जीवब्रह्मणोरेकतया निश्चयश्चार्थात्सिध्यति। अतो यथोक्तोपास्तिरर्थवतीत्यर्थः।

सेवन से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है तथा जो यह कहा गया "द्यु लोक में तीनों पादों का अमृतत्व है" उसका स्पर्शविशेष और श्रवणविशेष के ज्ञापक से दृष्टत्व और श्रुतत्व ग्रहण करना चाहिए, जिस प्रकार अग्नि का धूमादि लिङ्ग से ग्रहण होता है। इस प्रकार उक्त लिङ्ग के द्वारा 'यह वही है' ऐसा

---

१. श्रवणविशेषेणेति—शब्दविशेषश्रवणेनेत्यर्थः। २. तदभावादिति—दृढाया धियोऽभावात्तद्गुणस्य ज्योतिषो ध्यानासंभवादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निश्चय इति । अत आह—यदतोऽमुष्माद्दिवो द्युलोकात्परः परमिति लिङ्गव्यत्ययेन ज्योतिर्दीप्यते । स्वयंप्रभं सदाप्रकाशत्वाद्दीप्यत इव दीप्यत इत्युच्यते । अग्न्यादिवज्ज्वलनलक्षणाया दीप्तेरसंभवात् ।

विश्वतः पृष्ठेष्वित्येतस्य व्याख्यानं सर्वतः पृष्ठेष्विति । संसारादुपरीत्यर्थः। संसार एव हि सर्वः । असंसारिण एकत्वान्निर्भेदत्वाच्च । अनुत्तमेषु तत्पुरुषसमासाशङ्कानिवृत्तय आहोत्तमेषु लोकेष्विति सत्यलोकादिषु हिरण्यगर्भादिकार्यस्थपरस्येश्वरस्याऽऽसन्नत्वादुच्यत उत्तमेषु लोकेष्विति । इदं वावेदमेव तद्यदिदमस्मिन्पुरुषेऽन्तर्मध्ये

अथशब्दस्य विद्यान्तरारम्भार्थत्वमभ्युपेत्यानन्तरग्रन्थस्य तात्पर्यमुक्त्वाऽवशिष्टान्यक्षराण्यवतार्य व्याकरोति—अत आहेत्यादिना । यदित्युपक्रम्य ज्योतिरित्युपसंहारात्पर इति पुंलिङ्गाप्रयोगमाशङ्क्याऽऽह—परमिति । कादाचित्कप्रकाशत्वाभावात्कथं दीप्यत इति प्रयोगस्तत्राऽऽह—स्वयंप्रभमिति। कस्मादिवेति प्रयुज्यते मुख्यमेव दीप्यमानत्वं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—अग्न्यादीति । हेतोरुभयत्र संबन्धः ।

सर्वशब्दस्यासंकुचितवर्तित्वादात्मनोऽपि तेन संगृहीतत्वात्कथं 'तस्माद्रूर्ध्वं ब्रह्मे'त्युपपन्नमित्याशङ्क्याऽऽह—संसारादिति । तस्यैव सर्वशब्दवाच्यत्वमुपपादयति—संसार एव हीति । तस्यानेकत्वेन सर्वशब्दार्हत्वादित्यर्थः । आत्मनि सर्वशब्दानुपपत्तिमाह—असंसारिण इति । सर्वशब्दस्यानेकार्थवाचित्वादात्मनि चैकत्वात्प्रकारभेदस्य च नित्यमुक्ते तस्मिन्नसंभवान्न तस्य सर्वशब्दात्प्रतीतिरित्यर्थः। उत्तमा न भवन्तीत्यनुत्तमास्तेष्विति तत्पुरुषाशङ्कायां तन्निवृत्तिद्वारा बहुव्रीहिसिद्ध्यर्थं विशेषणमित्याह—तत्पुरुषेति । किमिति तेषु परब्रह्म निर्दिश्यते तस्य सर्वगतत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—हिरण्यगर्भादीति । तत्कार्यात्मना स्थितं परं ब्रह्मोत्तमेषु लोकेष्वित्युच्यते । तस्य सर्वत्र सतोऽपि सत्यलोकादिषु हिरण्यगर्भाद्यात्मनाऽतिशयेन नित्याभिव्यक्तत्व'[1]दित्यर्थः । यदिति सर्वनाम्ना प्रकृतं ब्रह्म परामृश्यते तस्योपास्यत्वार्थं संसारादुपरिष्टादवस्थामुक्तम् । इदानीं कौक्षेये ज्योतिषि तदारोपयति—इदमिति।

प्रतीत हो जाने पर यथोक्त अर्थ में सुदृढ़ प्रतीति हो जाएगी । जीव और ब्रह्म का अनन्य भाव से निश्चय हो जाएगा । इसलिए श्रुति कहती है—इस द्युलोक से परे जो ज्योति प्रज्वलित है । मन्त्र में 'वा' शब्द लिङ्ग व्यत्यय के कारण है । स्वयंप्रकाश सर्वदा प्रकाशमान् रहने के कारण प्रदीप्त होता हुआ कहा जाता है क्योंकि यहाँ प्रदीप्ति में अग्न्यादि की तरह प्रदीप्ति संभव नहीं है । मन्त्र में 'विश्व के ऊपर' का मन्त्र में ही 'सब से ऊपर' ऐसा व्याख्यान किया गया है । अर्थात् संसार के ऊपर प्रदीप्त है क्योंकि ऊपर ही सब कुछ है । असंसारी की एकता और निर्भेदता सिद्ध है । मन्त्र में 'अनुत्तमेषु' तत्पुरुष समास की शङ्का की निवृत्ति के लिए कहा है । हिरण्यगर्भादि के कार्यपरक ईश्वर के निकटवर्ती सत्यादिलोक ही उत्तम लोक हैं । इस शरीर के मध्य में जो कुछ भी दृष्टि एवं श्रोत्र विषय लिङ्ग एवं ऊष्मा शब्द से जाना जाता है; वह ज्योति ही है । जो त्वगिन्द्रिय द्वारा स्पर्श रूप से ग्रहण होता है रूप और स्पर्श का ऐक्याध्यास होने के कारण चक्षु ही है । त्वचा की दृढ़ प्रतीति में चक्षु द्वारा

---

१. तस्मादात्मन ऊर्ध्वं ब्रह्मेति कथमुपपद्येतेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्योतिश्चक्षुःश्रोत्रग्राह्येण लिङ्गेनोष्णिम्ना शब्देन चावगम्यते। यत्त्वचा स्पर्शरूपेण गृह्यते तच्चक्षुषैव। दृढप्रतीतिकरत्वात्त्वचः। अविनाभूतत्वाच्च रूपस्पर्शयोः।

कथं पुनस्तस्य ज्योतिषो लिङ्गं त्वग्दृष्टिगोचरत्वमापद्यत इति, आह—यत्र यस्मिन्काले। एतदिति क्रियाविशेषणम्। अस्मिञ्शरीरे हस्तेनाऽऽलभ्य संस्पर्शेनोष्णिमानं रूपसहभाविनमुष्णस्पर्शभावं विजानाति। स ह्युष्णिमा नामरूपव्याकरणाय देहमनुप्रविष्टस्य चैतन्यात्मज्योतिषो लिङ्गमव्यभिचारात्। न हि जीवन्तमात्मानमुष्णिमा व्यभिचरति उष्ण एव जीविष्यञ्शीतो मरिष्यन्निति हि विज्ञायते। मरणकाले

कौक्षेये ज्योतिषि प्रतीके प्रमाणं दर्शयति—चक्षुरिति। चक्षुष्यो भवतीतिफलवचनानुसारेण स्पर्शरूपैक्यमाध्यासिकमादायोष्णिम्नश्चाक्षुषत्वं द्रष्टव्यम्। रूपस्पर्शयोरैक्याध्यासं स्फुटयति—यत्त्वचेति। यदुष्णं तेजो द्रव्यात्मकं त्वगिन्द्रियेण स्पर्शरूपेण गृह्यते तच्चक्षुषैव गृह्यते तत्र हेतुमाह—दृढेति। त्वचो दृढायां प्रतीतौ हेतुत्वाच्चक्षुषा तादात्म्यारोपादित्यर्थः। यद्रूपवद्भवति तत्स्पर्शवदिति नियमाच्च रूपस्पर्शयोस्तादात्म्याध्यासात्तस्य चाक्षुषत्वसिद्धिरित्याह—अविनाभूतत्वाच्चेति।

ज्योतिषो लिङ्गमौष्ण्यं तस्य त्वगिन्द्रियग्राह्यस्य चाक्षुषत्वमुपपादयितुं पृच्छति—कथमिति। तस्यैषा दृष्टिरित्यादिवाक्येनोत्तरं दर्शयन्यत्रेत्यादि व्याकरोति—आहेत्यादिना। यथैतद्विज्ञानं स्यात्तथेति विज्ञानक्रियायां विशेषणमेतदिति पदमित्यर्थः। संस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति चेत्कथं तर्हि तस्य चाक्षुषत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—रूपसहभाविनमिति। भवत्वौपचारिकमौष्ण्यस्य चाक्षुषत्वं तथाऽपि कथं तस्य लिङ्गत्वमित्याशङ्क्य जीवनप्रत्यायनद्वारा कौक्षेयज्योतिषि तस्य लिङ्गत्वं साधयति—स हीति। जीवात्मना तस्याव्यभिचारं स्फोरयति—न हीति। तत्रैव श्रुतिं संवादयति—उष्ण एवेति। यदा जीवस्य लिङ्गमौष्ण्यं तदा परस्यापि ज्योतिषस्तल्लिङ्गं भवति, जीवपरयोरेकत्वावगमादित्याह—मरणकाले चेति। वागादि मनसि मनः प्राणे प्राणस्तेजसि [1]तदध्यक्षलक्षणंपरस्यां देवतायां परमात्माख्यायां संपद्यत इति श्रुत्या जीवस्य परेण [2]तदर्थात्मना सहाभिन्नत्वस्योपगमाज्जीवस्य लिङ्गं [3]तद्भवति परस्य लिङ्गमित्यर्थः। यदा हि जीवस्य परस्य च यथोक्तलिङ्गादवगतिस्तदा तत्र कौक्षेय-

---

तादात्म्यारोप हेतु है। जो रूपवान् होता है उसका स्पर्श भी होता है। इस प्रकार रूप और स्पर्श दोनों एक दूसरे के बिना नहीं हो सकते।

(इस पर शङ्का होती है—) औष्ण्य ज्योति में ज्ञापक त्वगिन्द्रिय ग्राह्यत्व एवं चाक्षुषत्व किस प्रकार होना संभव है, इस पर श्रुति कहती है। जिस समय इस शरीर में हाथ द्वारा स्पर्श कर ऊष्म रूप के साथ रहने वाले ऊष्मस्पर्श को भी जानता है। वह ऊष्मा नामरूप विकार के लिए शरीर में प्रविष्ट चैतन्यात्म ज्योति की ज्ञापक है क्योंकि उसका व्यभिचार नहीं होता। जीवित प्राणी में ऊष्मा का व्यभिचार नहीं होता, लोकव्यवहार में गर्माहट रहने पर जीवित एवं ठंडा पड़ जाने पर मरा हुआ कहा जाता है। मरणकाल मे तेज पर देवता में विलीन हो जाता है क्योंकि परब्रह्म में विभाग संभव

---

१. तदध्यक्षलक्षणमिति—अध्यक्षलक्षणं प्राणाध्यक्षजीवात्मकं तत्तेजः परस्यां देवतायामित्यर्थः। तथा च सूत्रम्—"सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः" ब्र. सू. ४-२-४। २. तत्पदार्थात्मना। ३. तद् औष्ण्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च तेजः परस्यां देवतायामिति परेणाविभागत्वोपगमात्। अतोऽसाधारणं लिङ्गमौष्ण्य-मग्नेरिव धूमः। अतस्तस्य परस्यैषा दृष्टिः साक्षादिव दर्शनं दर्शनोपाय इत्यर्थः।

तथा तस्य ज्योतिष एषा श्रुतिः श्रवणं श्रवणोपायोऽप्युच्यमानः। यत्र यदा पुरुषो ज्योतिषो लिङ्गं (शुश्रूषति) श्रोतुमिच्छति तदैतत्कर्णावपिगृह्य तच्छब्दः क्रिया-विशेषणम्। अपिगृह्यापिधायेत्यर्थोऽङ्गुलिभ्यां प्रोर्णुत्य निनदमिव रथस्येव घोषो निनदस्तमिव शृणोति 'नदथुरिव ऋषभकूजितमिव शब्दो यथा चाग्नेर्बहिर्ज्वलत एवं शब्दमन्तःशरीर उपशृणोति तदेतज्ज्योतिर्दृष्टश्रुतलिङ्गत्वाद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत। तथोपासनाच्चक्षुष्यो दर्शनीयः श्रुतो विश्रुतश्च। यत्स्पर्शगुणोपासननिमित्तं फलं तद्रूपे संपादयति चक्षुष्य इति। रूपस्पर्शयोः सहभावित्वात्। इष्टत्वाच्च दर्शनीयतायाः।

ज्योतिषस्तदधिकरणस्य सुतरामवगतिरस्तीत्याह—अत इति। उष्णस्य जाठरे ज्योतिषि प्रतीके लिङ्गत्वे सति 'तल्लिङ्गमाह—अतस्तस्येति। विष्णोरिव प्रतिमायां जाठरेण ज्योतिषा परस्य ज्योति-षस्तादात्म्यादित्यर्थः।

प्रतीकद्वारा दृष्टत्वमुपायवत्तस्य श्रवणोपायं लिङ्गान्तरं दर्शयति—तथेति। अपिगृह्य शृणो-तीति संबन्धः। यथा श्रवणमेतद्भवति तथा शृणोतीति श्रवणक्रियाया विशेषणमेतच्छब्द इति योजना। प्रोर्णुत्य पिधायेति यावत्। श्रूयमाणशब्दस्य 'वाच्यार्थभावस्फुटीकरणार्थमनेकदृष्टान्तोपादानम्। कौक्षेयज्योतिष्यारोपितस्य ज्योतिषो ध्येयस्य ध्यानोपायाङ्गत्वेन गुणद्वयमुपदिशति—तदेतदिति। दृष्ट-मित्युपासने फलमाचष्टे—तथेति। श्रुतमित्युपासने फलमाह—श्रुत इति। कथं पुनः स्पर्शगुणो-पासने स्पर्श्यो भवतीति वक्तव्ये चक्षुष्यो भवतीत्युच्यते तत्राऽऽह—यत्स्पर्शेति। संपादने निमित्तमाह—रूपस्पर्शयोरिति। इतश्च चक्षुष्यो भवतीति फलवचनमुचितमित्याह—इष्टत्वाच्चेति। फलवचनमपि

नहीं है। अतः अग्नि में धूम की तरह औष्ण्यविशिष्ट लिङ्ग है। इसलिए यह पर-ज्योति की दृष्टि, प्रतिमा में विष्णु के समान दर्शन का साक्षात् उपाय है।

इस प्रकार इस ज्योति के श्रवण करने के उपाय में अन्य ज्ञापक श्रुति कहती है। जिस समय यह पुरुष अङ्गुलियों से कान को बन्द करके रथ के घोष को, बैल के डकारने के शब्द को जलती हुई अग्नि के शब्द को ज्योतिर्मय लिङ्ग को सुनने की इच्छा करता है, तब यह ज्योति दृष्ट एवं श्रुत प्रतीक होने के कारण दृष्ट व श्रुत है। अतः गुणद्वय से इसकी उपासना करे। मन्त्र में अपिगृह्य शब्द क्रिया-विशेषण है। इस प्रकार उपासना से वह दर्शनीय और विश्रुत हो जाता है। जो स्पर्शगुणात्मक उपासना से होने वाला फल है, उसको रूप में संपादन करता है। अतः दर्शनीय फल होना कहा गया क्योंकि रूप और स्पर्श एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। साथ ही दर्शनीयता का होना इष्ट भी है। इस प्रकार विद्या के फल में युक्तियुक्तता सिद्ध हो जाती है केवल मृदुत्वादि स्पर्श की सिद्धि में तात्पर्य नहीं

---

१. नदथुरिव—ऋषभकूजितमिव यः शब्द एवंविधं शब्दमुपशृणोतीत्यन्वयः। २. एवं बहिर्ज्वलतोऽग्नेर्यथा शब्दो भवत्येवं शब्दमित्यर्थः। ३. तल्लिङ्गं—तल्लिङ्गत्वम्। ४. वाच्यार्थाभावेति—तथा च नासौ शब्दः कस्य-चिदर्थस्य वाचक इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ॥ १ ॥

शाण्डिल्य विद्यान्तर्गत सर्व दृष्टि से ब्रह्मोपासना

यह (प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषयभूत नामरूपात्मक) सम्पूर्ण जगत् निश्चय ब्रह्मरूप है, यह उस ब्रह्म से (अग्नि जलादि क्रम से) उत्पन्न होने वाला उसके विपरीत क्रम से उसी में लीन होने वाला और (स्थिति के समय) उसी में चेष्टा करने वाला है। अतः रागद्वेषादि से रहित संयत इन्द्रिय होकर उपासना करे, क्योंकि पुरुष निश्चय ही निश्चयात्मक है। इस लोक में जैसा निश्चय वाला पुरुष होता है; वैसा ही इस देह से मर कर होता है। इसलिए उस साधक को निश्चय करना चाहिये (क्योंकि शास्त्र प्रामाण्य से निश्चयानुरूप फल मिलना कहा गया है) ॥ १ ॥

एवं च विद्यायाः फलमुपपन्नं स्यान्न तु मृदुत्वादिस्पर्शवत्त्वे। य एवं यथोक्तौ गुणौ वेद। स्वर्गलोकप्रतिपत्तिस्तूक्तमदृष्टं फलम्। द्विरभ्यास आदरार्थः ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

पुनस्तस्यैव त्रिपादमृतस्य ब्रह्मणोऽनन्तगुणवतोऽनन्तशक्तेरनेकभेदोपास्यस्य विशिष्टगुणशक्तिमत्त्वेनोपासनं विधित्सन्नाह—

सर्वं समस्तं खल्विति वाक्यालंकारार्थो निपातः। इदं जगन्नामरूपविकृतं प्रत्यक्षादि-

---

संपादनकल्पकमित्याह—एवं चेति। यदा स्पर्शगुणोपासननिमित्तं फलं रूपे संपाद्यते तदा विद्यायाः श्रुतं फलमुपपन्नमिति फलश्रुतिरनुकूलिता स्यात्। रूपविशेषवति चक्षुष्यशब्दस्य प्रसिद्धत्वादित्यर्थः। यदि पुनर्मृदुत्वादिस्पर्शगुणस्योपासननिमित्तं फलं कल्प्यते तदा चक्षुष्यो भवतीति श्रुतं फलं नैवोपपन्नं स्यात्ततश्च फलश्रुतिरपबाधिता भवेदित्याह—न त्विति। कस्येदं फलमित्यपेक्षायामाह—य एवमिति। ननु परस्य ज्योतिषो जाठरे ज्योतिष्यारोपितस्य यथोक्तगुणवतो ध्यानात्कथमिदमत्यल्पं फलमननुरूपमुपदिश्यते तत्राऽऽह—स्वर्गलोकेति। फलवत्यां विद्यायामादरो विवक्षितः ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

प्रतीकद्वारा ब्रह्मोपासनमुक्त्वा प्रतीकं हित्वा सगुणब्रह्मोपासनमुपन्यस्यति—पुनरित्यादिना। तस्य निरुपाधिकत्वं व्यावर्तयति—अनन्तेति। कथमेकस्यानन्तगुणत्वं तत्राऽऽह—अनन्तशक्तेरिति। ननु पूर्वमेवास्योपासनान्यतिवृत्तानि तथाच वक्तव्यशेषो नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—अनेकेति। अनेकेषु भेदेषु गायत्र्याद्युपाधिषूपास्यस्यापि ब्रह्मणो मनोमयत्वादिविशिष्टगुणत्वेन विशिष्टशक्तिमत्त्वेन चोपासनान्तरविधानार्थमुत्तरवाक्यमित्यर्थः। तस्येदमा परामर्शे हेतुमाह—प्रत्यक्षदीति। ब्रह्मशब्दस्य

है। जो भी साधक उक्त गुणद्वय युक्त परम ज्योति की उपासना करता है उसका ब्रह्मप्राप्ति रूप अलौकिक फल की प्राप्ति होती है। मन्त्र में 'य एवं वेद' की द्विरुक्ति आदर के लिए है ॥ ७ ॥

पुनः उस सगुण त्रिपादी एवं अमृत ब्रह्म का जो अनन्त गुणों से युक्त, अनेक शक्ति से युक्त एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयं ब्रह्म कारणं वृद्धतमत्वाद्ब्रह्म। कथं सर्वस्य ब्रह्मत्वमित्यत आह—तज्जलानिति। तस्माद्ब्रह्मणो जातं तेजोबन्नादिक्रमेण सर्वम्। अतस्तज्जम्। तथा तेनैव जननक्रमेण प्रतिलोमतया तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते तदात्मतया श्लिष्यत इति तल्लम्। तथा तस्मिन्नेव स्थितिकालेऽनिति प्राणिति चेष्टत इति। एवं ब्रह्मात्मतया त्रिषु कालेष्वविशिष्टं तद्व्यतिरेकेणाग्रहणात्। अतस्तदेवेदं जगत्। यथा चेदं तदेवैकमद्वितीयं तथा षष्ठे विस्तरेण वक्ष्यामः। यस्माच्च सर्वमिदं ब्रह्म, अतः शान्तो रागद्वेषादिदोषरहितः संयतः सन्यत्तत्सर्वं ब्रह्म तद्वक्ष्यमाणैर्गुणैरुपासीत।

कथमुपासीत। क्रतुं कुर्वीत क्रतुर्निश्चयोऽध्यवसाय एवमेव नान्यथेत्यविचल

निरुपाधिकार्थविषयत्वं व्यावर्तयति—कारणमिति। कथं तस्य ब्रह्मत्वं तत्राऽऽह—वृद्धतमत्वादिति निरतिशयमहत्त्वादित्यर्थः। सर्वमनूद्य तस्य ब्रह्मत्वविधाने युक्तिं प्रश्नपूर्वकमाह—कथमित्यादिना। तज्जं च तल्लं च तदनं च तज्जलान्। [1]अवयवलोपश्छान्दसः। तत्र तज्जत्वं जगतो व्युत्पादयति—तस्मादिति। तल्लत्वमुपपादयति—तथेति। [2]विपर्ययेण तु क्रमोऽत इति न्यायात्प्रतिलोमतया जननव्युत्क्रमेण तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते जगदिति कृत्वा यथा तज्जं तथेति योजना। तत्र लयो नाम जगच्छून्यतेति शङ्कां व्यावर्तयति—तदात्मतयेति। तदनत्वं प्रतिपादयति—तथेति। यथा तज्जं तल्लं च तथा तदनं च जगदित्यर्थः। इति तदनमिति शेषः। युक्तिसिद्धमर्थं निगमयति—एवमिति। ब्रह्मव्यतिरेकेण त्रिष्वपि कालेषु जगतोऽग्रहणात्तदात्मत्वेनाविशिष्टं जगत्तदेव स्यादिति योजना। युक्तिसिद्धमपि जगतो ब्रह्मत्वं प्रत्यक्षादिविरुद्धं नाङ्गीकारमर्हति। न हि सद्वितीयमद्वितीयं युक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—यथा चेति। सर्वस्य ब्रह्मत्वे फलितमाह—यस्माच्चेति।

कियन्तं कालं प्रत्ययमावर्तयेदित्याकाङ्क्षापूर्वकं तत्त्वनिश्चयपर्यन्तमिति दर्शयितुं व्यवहितं वाक्यमवतार्य व्याचष्टे—कथमित्यादिना। उपासीतेत्यस्य क्रतुं कुर्वीतेत्यनेन व्यवहितेन संबन्ध इ

अनेक उपाधियों से उपासित है, उसकी विशिष्ट गुण एवं शक्ति से उपासना का विधान करते हुए श्रुति कहती है—

वह प्रत्यक्षादि विषय नामरूपात्मक समस्त जगत् ब्रह्म है क्योंकि अतिशय महान् होने से ब्रह्म ही इसका कारण है। मन्त्र में 'खलु' शब्द वाक्यालङ्कार में निपात है। सब कुछ ब्रह्म इसलिए है क्योंकि तेज, जल, अन्नादि क्रम से सब कुछ ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है, इससे वह 'तज्ज' है। तथा जनन क्रम से विपरीत उसी ब्रह्म में यह सब लीन हो जाता है, आत्मरूप से उसमें संश्लिष्ट हो जाता है, इसलिए वह 'तल्ल' है। इसी प्रकार स्थितिकाल में जगत् उसी में चेष्टा करता है, इससे वह 'अन' है। इसलिए त्रिकाल में भी ब्रह्म से व्यतिरिक्त जगत् का ग्रहण न होने से जगत् आत्मा से अभिन्न है। जिस प्रकार यह जगत् एक और अद्वितीय है, उसे छान्दोग्य उपनिषत् के षष्ठ अध्याय में विस्तार से बतलाएँगे। यह सब कुछ ब्रह्म है; इसलिए रागद्वेषादि दोषों से रहित व संयतेन्द्रिय होकर सर्वात्मक ब्रह्म

---

१. अवयवलोप इति—तदलोप इत्यपि बोध्यम्। २. "विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च" ब्र. सू. २-३-१४।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्ययस्तं क्रतुं कुर्वीतोपासीतेत्यनेन व्यवहितेन संबन्धः। किं पुनः क्रतुकरणेन कर्तव्यं प्रयोजनम्। कथं वा क्रतुः कर्तव्यः। क्रतुकरणं चाभिप्रेतार्थसिद्धिसाधनं कथमित्यस्यार्थस्य प्रतिपादनार्थमथेत्यादिग्रन्थः। अथ खल्विति हेत्वर्थः। यस्मात्क्रतुमयः क्रतुप्रायोऽध्यवसायात्मकः पुरुषो जीवः। यथाक्रतुर्यादृशः क्रतुरस्य सोऽयं यथाक्रतुर्यथाध्यवसायो यादृङ्निश्चयोऽस्मिँल्लोके जीवन्निह पुरुषो भवति तथेतोऽस्माद्देहात्प्रेत्य मृत्वा भवति। क्रत्वनुरूपफलात्मको भवतीत्यर्थः। एवं ह्येतच्छास्त्रतो दृष्टम्। "यं यं वाऽपि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्" इत्यादि। यत एवं व्यवस्था शास्त्रदृष्टाऽतः स एवं जानन्क्रतुं कुर्वीत यादृशं क्रतुं वक्ष्यामस्तम्। यत एवं शास्त्रप्रामाण्यादुपपद्यते क्रत्वनुरूपं फलमतः स कर्तव्यः क्रतुः ॥१॥

योजना। क्रत्वनुष्ठानस्य फलं पृच्छति—किं पुनरिति। तत्र क्रतुकरणं च केन प्रकारेणेति प्रश्नान्तरं दर्शयति—कथं वेति। ब्रह्मभावसाधनत्वात्क्रतुकरणस्य फलप्रश्नो नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—क्रतुकरणं चेति। न हि जीवस्य स्थितस्य नष्टस्य वा [1]सद्भावः संभवतीति भावः। क्रतुकरणस्येदं प्रयोजनं स च क्रतुरेवं क्रियते तत्करणं वाऽनया रीत्या ब्रह्मसद्भावं साधयतीत्यस्यार्थजातस्य प्रतिपादनार्थमा खण्डसमाप्तेरथेत्यादिरुत्तरो ग्रन्थ इत्याह—इत्यस्यार्थस्येति। अथ खल्वित्यत्र पूर्ववत्खलुशब्दोऽथशब्दस्तु हेत्वर्थ इत्यत्र हेतुरूपमर्थं विवृणोति—यस्मादिति। यद्वाऽथेत्यारभ्य पुरुष इत्यन्तो ग्रन्थो हेत्वर्थ इत्युक्त्वा तमेव हेतुरूपमर्थं दर्शयति—यस्मादिति। यथाक्रतुरित्यस्मादधस्तात्तस्माच्छब्दो द्रष्टव्यः। अस्मिँल्लोक इति श्रुतिमादाय व्याचष्टे—जीवन्निहेति। इह वर्तमाने देहे जीवन्सन्निति यावत्। क्रतुकरणेन किं कर्तव्यं फलमिति प्रश्नं व्याचष्टे—तथेति। क्रत्वनुरूपफलात्मकत्वे पुरुषस्य स्मृतिं संवादयति—एवं हीति। शास्त्रमेवोदाहरति—यं यमिति। कथं वा क्रतुः कर्तव्य इति प्रश्नं प्रत्याह—यत इति। क्रत्वनुरूपफलात्मकः पुरुषो भवतीत्येवंरूपा व्यवस्थेति यावत्। एवं जानन्क्रत्वनुरूपं फलमिति शास्त्रतः पश्यन्नित्यर्थः। कोऽसौ क्रतुरित्याशङ्क्याऽऽह—यादृशमिति। स क्रतुं कुर्वीतेत्यस्यार्थं निगमयति—यत एवमिति ॥१॥

वक्ष्यमाण गुणों से उपासना करनी चाहिए।

कब तक उपासना करे। तैलधारावच्छिन्न अविचल प्रत्यय युक्त निश्चय करे। मन्त्र में 'उपासीत' से 'क्रतुं कुर्वीत' का साक्षात् संबन्ध है। निश्चय करने का प्रयोजन क्या है एवं निश्चय किस प्रकार करना चाहिए। निश्चय क्रिया ब्रह्मभाव रूप अभीष्ट अर्थ की सिद्धि में किस प्रकार साधक है; इस अर्थ के प्रतिपादन के लिए 'अथ खलु' आदि ग्रन्थ है। मन्त्र में 'अथ खलु' हेत्वर्थक है क्योंकि जीव निश्चयात्मक है। इस वर्तमान देह में जीते हुए जैसा निश्चय होता है, उसी प्रकार इस देह को त्यागने पर होता है अर्थात् निश्चय के अनुरूप फल वाला होता है। शास्त्र द्वारा इसी का समर्थन किया गया है। "जिस-जिस भाव को स्मरण करते हुए अन्तकाल में शरीर को त्याग करता है, जीवात्मा उस-उस भाव से अनुप्राणित हुआ उसी को प्राप्त होता है" इत्यादि। यह व्यवस्था शास्त्र द्वारा प्रतिपादित की हुई है। अतः जीवात्मा वक्ष्यमाण क्रतु को इस प्रकार जानते हुए निश्चय करे। क्योंकि यह क्रत्वनुरूप फल शास्त्र प्रामाण्य से सिद्ध है, इसलिए इस निश्चय का सम्पादन करना चाहिए ॥ १ ॥

---

१. ब्रह्मभावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः ॥२॥

समग्र ब्रह्म में आरोपित चिन्तनीय गुण

(वह ब्रह्म विषयों में प्रवृत्ति के हेतुभूत मन के कारण) मनोमय है। प्राण, शरीर, चैतन्य स्वरूप, सत्य संकल्प, (सर्वव्यापकत्व, सूक्ष्मत्व रूपादि-हीनत्वादि आकाश के तुल्य होने से) आकाशात्मा, सर्वकर्मा, (दोष रहित) सम्पूर्ण काम वाला, सुखप्रद, सम्पूर्ण गन्ध वाला, सम्पूर्ण रस वाला, सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से व्याप्त कर लेने वाला, वाणी रहित, आप्त काम होने से आग्रह शून्य है ॥ २॥

कथम् । मनोमयो मनःप्रायः । मनुतेऽनेनेति मनस्तत्स्ववृत्त्या विषयेषु प्रवृत्तं भवति तेन मनसा तन्मयः । तथा प्रवृत्त इव तत्प्रायो निवृत्त इव च । अत एव प्राण-शरीरः प्राणो लिङ्गात्मा विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयसंमूर्छितः । "यो वै प्राणः सा प्रज्ञा या वा प्रज्ञा स प्राणः" इति श्रुतेः । स शरीरं यस्य स प्राणशरीरः । "मनोमयः प्राण-शरीरनेता" इति च श्रुत्यन्तरात् । भारूपः । भा दीप्तिश्चैतन्यलक्षणा रूपं यस्य स भारूपः ।

क्रतुकरणप्रकारमेव प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना । कथमिदं मनःप्रायत्वमित्य-पेक्षायां मनःशब्दार्थप्रदर्शनपूर्वकं तत्प्रायत्वं व्युत्पादयति—मनुत इति । मनोद्वारा तदुपाधिः पुरुषो विषयप्रवणो भवतीत्यर्थः । तत्प्रायत्वफलमाह—तथेति । पुरुषो हि तत्प्रायः सन्मनसि प्रवर्तमाने स्वयमपि तद्वदेव प्रवृत्त इव लक्ष्यते । तथा निवर्तमाने मनसि निवृत्त इव चावगम्यते । वस्तुतस्तु पुरुषो न प्रवृत्तो निवृत्तो वा ध्यायतीवेत्यादिश्रुतेरित्यर्थः । अत एव मनोमयत्वादेवेति यावत् । संमूर्छितं संपिण्डितत्वम् । विज्ञानशक्तेः क्रियाशक्तेश्चैकस्मिन्नेव लिङ्गात्मनि संपिण्डितत्वे श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—यो वा इति । आथर्वणीं श्रुतिं यथोक्ते विशेषणद्वये प्रमाणयति—मनोमयः प्राणेति । मनोवृत्तिभि-र्विभाव्यमानत्वादात्मा मनोमयः प्राण एव प्रत्यगात्मनः सूक्ष्मं शरीरं तस्य चासौ स्थूलाद्देहाद्देहान्तरं प्रति नेतेत्याथर्वणश्रुतेरात्मनि विशेषणद्वयसिद्धिः । एतच्च विशेषणद्वयं जीवगतमपि तदभेदविवक्षया ब्रह्मणि द्रष्टव्यमित्यर्थः ।

निश्चय किस प्रकार करना चाहिए। वह ब्रह्म मनः प्राय है। मनन के हेतुभूत एवं विषयों में स्वप्रवृत्ति द्वारा लगाये रखने वाले मन के कारण मनोमय है। मनुष्य मनोप्राय होने से मन में उठने वाले विचारों में प्रवृत्त होते दिखाई देता है, मन के निवृत्त होने पर निवृत्त सा जाना जाता है। मनोमय होने से प्राण शरीर है। विज्ञान एवं क्रिया शक्तिद्वय से संपिण्डित लिङ्गात्मा प्राण ही जिसका शरीर है; वह प्राण शरीर है। श्रुति कहती है—"जो प्राण है, वही प्रज्ञा है; जो प्रज्ञा है, वह प्राण है" ऐसे शरीर वाला प्राणशरीर है। ऐसा ही अन्य श्रुति में कहा है—"मन की वृत्तियों द्वारा निरीक्षण किए जाने के कारण मनोमय प्राण ही प्रत्यगात्मा का सूक्ष्म शरीर है, वह स्थूल देह से दूसरी देह के प्रति नेता है। 'भा' दीप्ति का नाम है, वह चैतन्यस्वरूप है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सत्यसंकल्पः। सत्या अवितथाः संकल्पा यस्य सोऽयं सत्यसंकल्पः। न यथा संसारिण इवानैकान्तिकफलः संकल्प ईश्वरस्येत्यर्थः। अनृतेन मिथ्याफलत्वहेतुना प्रत्यूढत्वात्संकल्पस्य मिथ्याफलत्वम्। वक्ष्यत्यनृतेन हि प्रत्यूढा इति। आकाशात्मा। आकाश इवाऽऽत्मा स्वरूपं यस्य स आकाशात्मा। सर्वगतत्वं सूक्ष्मत्वं रूपादिहीनत्वं चाऽऽकाशतुल्यतेश्वरस्य। सर्वकर्मा। सर्वं विश्वं तेनेश्वरेण क्रियत इति जगत्सर्वं कर्मास्य स सर्वकर्मा। "स हि सर्वस्य कर्ता" इति श्रुतेः। सर्वकामः। सर्वे कामा दोषरहिता अस्येति सर्वकामः। "धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि" इतिस्मृतेः। ननु कामोऽस्मीति वचनादिह बहुव्रीहिर्न संभवति सर्वकाम इति। न, कामस्य कर्तव्यत्वाच्छब्दादिवत्पारार्थ्यप्रसङ्गाच्च देवस्य। तस्माद्यथेह सर्वकाम इति बहुव्रीहिस्तथा कामोऽस्मीतिस्मृत्यर्थो वाच्यः।

सत्यसंकल्प इत्यत्र[1] विशेषणेन ध्वनितमर्थं दर्शयति—न यथेति। इवशब्दस्तथार्थः। कथं संसारिसंकल्पस्यानैकान्तिकफलत्वं तत्राऽऽह—अनृतेनेति। संकल्पस्यानृतेन संसारिणि प्रत्यूढत्वे वाक्यशेषं प्रमाणयति—वक्ष्यतीति। जडाजडयोराकाशेतरयोर्न तुल्यतेत्याशङ्क्याऽऽह—सर्वगतत्वमिति। सर्वकर्मेति सर्वक्रियाश्रयत्वमीश्वरस्योच्यते तदयुक्तं निष्क्रियत्वश्रुतेरित्याशङ्क्य व्याचष्टे—सर्वमिति। संसारिभ्यो विशेषसिद्धयर्थं विशिनष्टि—दोषरहिता इति। उदाहृतां स्मृतिमाश्रित्योक्तमाक्षिपति—नन्विति। कामसामानाधिकरण्ये बाधकोपलम्भाद्बहुव्रीहिरेवेति परिहरति—न कामस्येति। तस्य कार्यत्वात्तदैक्ये ब्रह्मणोऽनादित्वं बाध्यते चेतनशेषत्वाच्च कामस्य तदैक्ये ब्रह्मणः स्वातन्त्र्यं हीयते। तथा च कर्मधारयासंभवाद्बहुव्रीहिरेवेत्यर्थः। कथं तर्हि कामोऽस्मीति तादात्म्यस्मृतिरित्याशङ्क्याऽऽह—तस्मादिति। कामेश्वरयोः सामानाधिकरण्यासंभवात्प्रकृतश्रुतौ बहुव्रीहिर्यथेष्टस्तथा स्मृतावपि ब्रह्मपारतन्त्र्यमात्रं कामस्य विवक्षितम्, श्रुत्यनुसारेण स्मृतेर्नेतव्यत्वादित्यर्थः।

वह सत्य संकल्प वाला है। जिस प्रकार संसारी जीवों के फल ऐकान्तिक नहीं होते, उस प्रकार ईश्वर की बात नहीं है। संसारी प्राणियों के संकल्प मिथ्या फल वाले हैं क्योंकि वे मिथ्या फल के कारण से अध्यस्त हैं। श्रुति भी आगे कहेगी कि "संसारी लोगों में सभी संकल्प अनृत से अध्यारूढ हैं"। आकाश के समान स्वरूप होने से वह आकाशात्मा है। ईश्वर सर्वगत, सूक्ष्म और रूपादिरहित है; इससे उसकी आकाश से तुल्यता है। ईश्वर ने ही यह सर्व जगत् रचा है, यह विश्व उसी का कार्य होने से वह सर्वकर्मा है। श्रुति भी इसका समर्थन करते हुए कहती है कि 'वह समस्त विश्व का कर्ता है"। दोषरहित समस्त कर्म उस ईश्वर के होने के कारण वह सर्वकाम है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—"हे अर्जुन ! प्राणियों में जो भी धर्मानुकूल काम है, वह मैं ही हूँ"। यहाँ शङ्का होती है—'काम मैं ही हूँ' इस स्मृति वचन में काम और ईश्वर में सामानाधिकरण्य होने से श्रुतिप्रोक्त सर्वकाम पद में बहुव्रीहि समास होना संभव नहीं है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि काम की कर्तव्यता होने से ईश्वर में शब्द की तरह परतन्त्रता आ जाएगी। इसलिए जिस प्रकार श्रुति सर्वकाम कहती है, उसमें बहुव्रीहि है, स्मृति का अर्थ भी श्रुत्यनुसारी ग्रहण करना चाहिए।

---

१. अत्रात्रेत्यधिकं प्रतिभाति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वगन्धः। सर्वे गन्धाः सुखकरा अस्य सोऽयं सर्वगन्धः। "पुण्यो गन्धः पृथिव्याम्" इति स्मृतेः। तथा रसा अपि विज्ञेयाः। अपुण्यगन्धरसग्रहणस्य पाप्मसंबन्धनिमित्तत्वश्रवणात्। "तस्मात्तेनोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च। पाप्मना ह्येष विद्धः" इति श्रुतेः। न च पाप्मसंसर्ग ईश्वरस्य। अविद्यादिदोषस्यानुपपत्तेः।

सर्वमिदं जगदभ्यात्तोऽभिव्याप्तः। अततेर्व्याप्त्यर्थस्य कर्तरि निष्ठा। तथाऽवाक्युच्यतेऽनयेति वाग्वागेव वाकः। यद्वा वचेर्घञन्तस्य करणे वाकः। स यस्य विद्यते स वाकी न वाक्यवाकी। वाक्प्रतिषेधश्चात्रोपलक्षणार्थः। गन्धरसादिश्रवणादीश्वरस्य प्राप्तानि घ्राणादीनि करणानि गन्धादिग्रहणाय। अतो वाक्प्रतिषेधेन प्रतिषिध्यन्ते तानि। "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" इत्यादिमन्त्रवर्णात्। अनादरो-

---

सर्वशब्दाद्दुर्गन्धानामपि ब्रह्मणि प्राप्तौ विशिनष्टि—सुखकरा इति। सर्वशब्दसंकोचे कारणमाह—पुण्य इति। यथा सर्वगन्ध इत्यत्र सुखकरा गन्धा ब्रह्मसंबन्धिनो दर्शितास्तथा सर्वरस इत्यत्रापि सुखकरा एव रसास्तत्संबन्धिनो ग्राह्या इत्याह—तथेति। अत्रापि सर्वशब्दसंकोचे कारणमाह—अपुण्येति। न तद्ग्रहणं परस्मिन्निति शेषः। तच्छब्दार्थमेवोपपादयति—पाप्मना हीति। एष इति घ्राणप्राणोक्तिः। भवतु पाप्मसंसर्गकृतमपुण्यगन्धादिग्रहणं तथाऽपि कथं तदीश्वरे सर्वज्ञे नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—न चेति। निमित्ताभावादीश्वरस्य न स्वसंबन्धित्वेनापुण्यगन्धादिग्रहणमित्यर्थः। तस्य पाप्मासंसर्गे हेतुमाह—अविद्यादीति। आदिपदेनास्मितारागद्वेषाभिनिवेशादयो गृह्यन्ते।

अभ्यात्त इति रूपं तदर्थं च दर्शयन्कर्मणि निष्ठां व्यावर्तयति—अततेरिति। वाकशब्दस्य निष्पत्तिप्रकारं रचयति—वचेरिति। अत्रेति श्रुतेरीश्वरस्य चोक्तिः। उपलक्षणार्थो घ्राणादिप्रतिषेधस्येति शेषः। अथेश्वरे घ्राणादिप्राप्तेरभावात्तत्प्रतिषेधो नोपलक्ष्येतात आह—गन्धेति। आदिशब्देन कामादिरुक्तः। युक्तं चान्योपलक्षणं साक्षादेवान्यत्र प्रतिषेधश्रवणादित्याह—अपाणीति। आदिपदेन स

सभी सुखकारक गन्ध ईश्वर से ही उद्भूत होने से वह सर्वगन्ध है। गीता में श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं—"पृथिवी की सभी पवित्र गन्धों में मेरा ही रूप जानो"। सुखकारक गन्ध के समान ही, सभी सुखकारक रसों को ईश्वर का रूप जानना चाहिए क्योंकि अपवित्र गन्ध और रस जहाँ हैं, वहाँ पाप का सम्पर्क हेतु होना सुना जाता है। श्रुति भी कहती है—"इसी से यह सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों का सेवन करता है"। यह घ्राण प्राण पाप से बिधा हुआ है। सर्वज्ञ ईश्वर में पाप का संसर्ग संभव नहीं है क्योंकि आत्मा में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशादि दोषों की सिद्धि नहीं हो पाती।

वह सम्पूर्ण जगत् को सब ओर से व्याप्त करता है। व्याप्त्यर्थक 'अत' (सातत्यगमने) धातु से कर्ता में 'क्त' प्रत्यय है। इसी प्रकार वह अवाकी है क्योंकि इससे बोला जाता है, अतः वह वाक् है। वाक् ही वाक है। अथवा वाक शब्द की निष्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है कि 'वच' धातु से करण में घञ् प्रत्यय हुआ। जिसके पास वाक् विद्यमान हो, वह वाकी एवं इसके अभाव में वह अवाकी होगा। यहाँ ईश्वर में वाक् का निषेध घ्राणादिप्रतिषेध के उपलक्षण के लिए है। श्रुति में गन्ध-रसादि

---

१. सर्वज्ञ इति—अपुण्यगन्धाद्यज्ञाने हि सर्वज्ञत्वं न निर्वहतीति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एष म आत्माऽन्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः ॥ ३ ॥

ब्रह्म अणु से अणु है और महान् से महान् है

यह मेरा आत्मा हृदय कमल के भीतर धान से, यव से, सरसों से, श्यामक से अथवा श्यामक तण्डुल से भी सूक्ष्म है और हृदय कमल के भीतर यह मेरा आत्मा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक या इन सभी लोकों की अपेक्षा श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥

ऽसंभ्रमः । अप्राप्तप्राप्तौ हि संभ्रमः स्यादनाप्तकामस्य । न त्वाप्तकामत्वान्नित्यतृप्तस्येश्वरस्य संभ्रमोऽस्ति क्वचित् ॥२॥

एष यथोक्तगुणो मे ममाऽऽत्माऽन्तर्हृदये हृदयपुण्डरीकस्यान्तर्मध्येऽणीयानणुतरो व्रीहेर्वा यवाद्वेत्याद्यत्यन्तसूक्ष्मत्वप्रदर्शनार्थम् । श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वेति परिच्छिन्नपरिमाणादणीयानित्युक्तेऽणुपरिमाणत्वं प्राप्तमाशङ्क्यातस्तत्प्रतिषेधायाऽऽरभते—एष म आत्माऽन्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या इत्यादिना । ज्यायःपरिमाणाच्च ज्यायस्त्वं दर्शयन्ननन्तपरिमाणत्वं दर्शयति ॥३॥

वेत्ति 'वेद्यमित्यादि गृह्यते । ईश्वरस्य संभ्रमाभावं प्रतिपादयति—अप्राप्तप्राप्तौ हीति ॥२॥

यथोक्तस्य परस्य प्रत्यगात्माभेदं दर्शयति—एष इति । व्रीह्याद्यनेकोपादानस्योपयोगमाह—अत्यन्तेति । अणीयस्त्वज्यायस्त्वव्यपदेशयोर्मिथो विरोधमाशङ्क्य परिहरति—श्यामाकेति । पृथिव्यन्तरिक्षादिवदीश्वरस्य सातिशयं महत्त्वं विवक्षितमिति शङ्कां वारयति—ज्यायःपरिमाणाच्चेति ॥३॥

श्रवण होने के कारण ईश्वर में गन्धादिग्रहण के लिए घ्राणादि इन्द्रियों की प्राप्ति होना स्वाभाविक है। इसलिए वाक् के निषेध से उन सब इन्द्रियों का निषेध हो जाता है । श्रुति भी कहती है—"वह बिना हाथ के ग्रहण करता है, बिना पैर के वेग से चलता है, बिना चक्षु के देखता है, बिना कान के सुनता है" इत्यादि । वह संभ्रान्ति रहित है । जो आप्तकाम नहीं है, उसे ही अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति में संभ्रान्ति होती है । नित्यतृप्त ईश्वर तो आप्तकाम है, अतः उसमें कभी भी संभ्रान्ति संभव नहीं है ॥ २ ॥

'पर और प्रत्यगात्मा में अभेद गुण वाला यह मेरा आत्मा हृदय कमल के भीतर व्रीहि-जौ से भी सूक्ष्म है' इत्यादि मन्त्र आत्मा की अत्यन्त सूक्ष्मता प्रदर्शन करने के लिए है । मन्त्र में 'श्यामाक अथवा श्यामाक चावल से भी सूक्ष्म है', इससे परिच्छिन्न परिमाण होने के कारण आत्मा का अणु परिमाण होना सिद्ध हुआ, ऐसी शङ्का कर इसका परिहार करने के लिए आगे का ग्रन्थ कहते हैं।

---

१. आशङ्क्य इत्यधिकम् । २. वेद्यमित्यादीत्यादिना "न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्त"मिति मन्त्रशेषो गृह्यते ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति

हृदयस्थ ब्रह्म और परब्रह्म का अभेद

जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस और इस सम्पूर्ण जगत् को सभी ओर से व्याप्त करने वाला वाणी रहित और आग्रह रहित है। वही मेरा आत्मा हृदयकमलवर्ती है और यही ब्रह्म है। इस देह से मरकर या गमन करने पर मैं इसी ब्रह्म को प्राप्त होऊँगा; ऐसा जिसका निश्चय है और

मनोमय इत्यादिना ज्यायानेभ्यो लोकेभ्य इत्यन्तेन यथोक्तगुणलक्षण ईश्वरो ध्येयो न तु तद्गुणविशिष्ट एव। यथा राजपुरुषमानय चित्रगुं वेत्युक्ते न विशेषणस्याप्यानयने व्याप्रियते तद्वदिहापि प्राप्तमतस्तन्निवृत्त्यर्थं सर्वकर्मेत्यादि पुनर्वचनम्। तस्मान्मनोमयत्वादिगुणविशिष्ट एवेश्वरो ध्येयः। अत एव षष्ठसप्तमयोरिव तत्त्वमस्यात्मैवेदं सर्वमिति नेह स्वाराज्येऽभिषिञ्चत्येष म आत्मैतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति लिङ्गान्न स्वात्मशब्देन प्रत्यगात्मैवोच्यते। ममेति षष्ठ्याः संबन्धार्थप्रत्यायकत्वादेतमभिसंभवितास्मीति च कर्मकर्तृत्वनिर्देशात्।

पुनरुक्तेरुपयोगमाह—मनोमय इत्यादिनेति। 'यस्तैर्लक्ष्यते स एवेश्वरः केवल इति यावत्। ईश्वरो यथोक्तगुणो ध्येय इत्युक्ते गुणानामपि ध्यानकर्मत्वं दुर्वारमित्याशङ्क्याऽऽह—यथेति। पुनरुक्तिफलमुपसंहरति—तस्मादिति। सगुणस्येश्वरस्य ध्येयत्वे गमकान्तरमाह—अत एवेति। स्वरूपवाचकस्याऽऽत्मनः श्रुत्यनुपपत्तेर्न तद्बलादद्वैतवाक्यार्थसिद्धिरित्यर्थः।

हृदय कमल के भीतर यह आत्मा पृथिवी से महान् है। महत् परिमाण से महत्त्व प्रदर्शित करते हुए आत्मा का अनन्त परिमाण सिद्ध होता है॥ ३॥

दूसरे मन्त्र के मनोमय स्वरूप से प्रारम्भ कर 'इन सभी लोकों की अपेक्षा महान् है' इस तीसरे मन्त्र के अन्त तक यथोक्त गुणों से लक्षित ईश्वर ही ध्येय है, उन गुणों से विशिष्ट मात्र नहीं। जिस प्रकार 'राजपुरुष अथवा चितकबरी गौओं वाले को लाओ' ऐसा कहने पर कोई विशेषण को भी लाने में प्रवृत्त नहीं होता। इस प्रकार यहाँ भी संगति प्राप्त हुई, उसकी निवृत्ति के लिए मन्त्र में सर्वकर्मा आदि विशेषणों का उपपादन किया जाता है। इसलिए मनोमयत्व आदि गुण से विशिष्ट ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए। सगुण ईश्वर के ध्यान में अन्य हेतु यह भी है, इसलिए षष्ठ और सप्तम अध्याय की तरह "वह तू ही है", "यह सब कुछ जड़ चेतन जगत् सभी ब्रह्म है", "यहाँ स्वाराज्य में अभिषिक्त नहीं होता", "यह मेरा आत्मा है", "इस शरीर के उत्क्रमण के पश्चात् मैं इसी ब्रह्म को

---

१. यथोक्तगुणलक्षण इति भाष्यं व्याकरोति—यस्तैरिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यस्य स्यादद्धा न विचिकित्साऽस्तीति ह स्माऽऽह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

जिसे इस विषय में किंचित् भी सन्देह नहीं है (उसे अवश्यमेव ईश्वर की प्राप्ति होती है) ऐसा शाण्डिल्य ने कहा है ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

ननु षष्ठेऽप्यथ संपत्स्य इति सत्संपत्तेः कालान्तरितत्वं दर्शयति। न, आरब्धसंस्कारशेषस्थित्यर्थपरत्वात्। न कालान्तरितार्थता। अन्यथा तत्त्वमसीत्येतस्यार्थस्य बाधप्रसङ्गात्। यद्यप्यात्मशब्दस्य प्रत्यगर्थत्वं सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति च प्रकृतमेष म आत्माऽन्तर्हृदय एतद्ब्रह्मेत्युच्यते, तथाऽप्यन्तर्धानमीषदपरित्यज्यैवंतमात्मानमितोऽस्माच्छरीरात्प्रेत्याभिसंभवितास्मीत्युक्तम्।

भेदलिङ्गाच्चेदिह भेदो विवक्षितस्तर्हि षष्ठेऽपि तल्लिङ्गदर्शनान्नाखण्डवाक्यार्थसिद्धिरिति शङ्कते—नन्विति। नात्र भेदो विवक्षितः। आरब्धः संस्कारः सुखादिर्येन कर्मणा तच्छेषस्थितौ तात्पर्यादिति परिहरति—नाऽऽरब्धेति। सत्संपत्तौ कालान्तरितत्वमेवात्र विवक्षितं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—नेति। कालान्तरभावित्वे संपत्तेरिष्टे तत्त्वमसीति ब्रह्मभावस्य वर्तमानोपदेशानुपपत्तेरिति हेतुमाह—अन्यथेति। ननु प्रकरणानुगृहीताभ्यामात्मब्रह्मशब्दाभ्यामत्रापि ब्रह्मात्मैक्यमेव विवक्षितमित्यत आह—यद्यपीति। लिङ्गानुगृहीतषष्ठीश्रुतिवशात्प्रकरणानुगृहीते श्रुती कथंचिन्नेतव्ये प्रकरणश्रुतिभ्यां लिङ्गश्रुत्योर्बलवत्त्वादात्मश्रुतेश्चान्यथोपपत्तेरुक्तत्वादिति भावः।

प्राप्त होऊंगा'' इत्यादि श्रुति वाक्य ज्ञापक होने से आत्मा शब्द से प्रत्यगात्मा ही ध्वनित होता है क्योंकि मन्त्र में 'मम' इस पद में षष्ठी सम्बन्धार्थक होने से 'मैं इसी ब्रह्म को प्राप्त होऊँगा' यह कर्मकर्तृ निर्देश है।

इस पर शङ्का होती है—''उस तत्त्ववेत्ता के लिए विदेहकैवल्य प्राप्त करने में उतनी ही देर है, जब तक वह प्रारब्धकर्म को भोगकर वर्तमान देहबन्धन से मुक्त नहीं हो जाता'' इत्यादि षष्ठ अध्यायस्थ मन्त्र विदेह कैवल्य को कालान्तरभावी बतलाता है। ऐसा कहना अशास्त्रीय है क्योंकि यहाँ तो उन्हीं कर्मों की स्थिति शेष रहने में तात्पर्य है, जिससे सुखादि संस्कार प्रारम्भ हुआ है; कालान्तरभावी अर्थ में तात्पर्य नहीं है अन्यथा 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के अर्थ का बाध हो जायगा। यद्यपि ''स्थावर जङ्गम यह जगत् ब्रह्म है'', ''यह मेरी आत्मा हृदय कमल के मध्य में प्रतिष्ठित है'', इन श्रुति वाक्यों में आत्मा की प्रत्यगात्मार्थता प्रदर्शित की गई है, तथापि बिना जरा भी भेद को छोड़े ''इस देह से गमन करने पर मैं इसी ब्रह्म को प्राप्त होऊँगा'' यह मन्त्र कहा गया है।

---

१. अन्तर्धानमन्तरं भेद इति यावत् तम्। व्यवधानं वा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथाक्रतुरूपस्याऽऽत्मनः प्रतिपत्ताऽस्मीति यस्यैवंविदः स्याद्भवेदद्धा सत्यमेवं स्यामहं प्रेत्यैवं न स्यामिति न च विचिकित्साऽस्तीत्येतस्मिन्नर्थे क्रतुफलसंबन्धे स तथैवेश्वरभावं प्रतिपद्यते विद्वानित्येतदाह स्मोक्तवान्किल शाण्डिल्यो नामर्षिः। द्विरभ्यास आदरार्थः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

अस्य कुले वीरो जायत इत्युक्तम्। न वीरजन्ममात्रं पितुस्त्राणाय। "तस्मात्पुत्रमनुशिष्टं लोक्यमाहुः" इति श्रुत्यन्तरात्। अतस्तद्दीर्घायुष्ट्वं कथं स्यादित्येवमर्थं कोशविज्ञानारम्भः। अभ्यर्हितविज्ञानव्यासङ्गादनन्तरमेव नोक्तं तदिदानीमेवाऽऽरभ्यते–

सगुणब्रह्मोपासकस्य सकृत्तत्त्वधीमात्रान्नादृष्टं फलं सिध्यति। किंतु देहपातकालेऽपि साक्षात्कारानुवृत्त्या भवितव्यमित्यभिप्रेत्याऽऽह–यथाक्रतुरूपस्येति। अध्यवसायानुरूपस्य सगुणस्य परमात्मनोऽहं प्रतिपत्ताऽस्मीत्येवंविदो यस्याद्धा स्यान्निश्चयः प्रेत्याहमेवं स्यामेव न तु न स्यामिति क्रतुफलसंबन्धे संशयोऽस्ति। स क्रत्वनुसारेणैव परमात्मभावं प्राप्नोति। तथा चाद्धेति वाक्यान्मरणकालेऽपि साक्षात्कारेण भवितव्यमिति प्रतिभातीत्यर्थः। यथोक्तस्यार्थस्य सांप्रदायिकत्वं कथयति–इत्येतदिति। आदरः क्रतुफलसंबन्धविषयः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

शाण्डिल्यविद्यया समनन्तरग्रन्थस्य संबन्धो नास्तीत्याशङ्क्य व्यवहितेन संबन्धं दर्शयितुमनुवदति –अस्येति। संप्रत्युत्तरग्रन्थस्य तात्पर्यं वक्तुं भूमिकां करोति–न वीरेति। तत्र बृहदारण्यकश्रुतिं प्रमाणयति–तस्मादिति। पुत्रस्य लोक्यत्वादिति यावत्। [1]अनुशासनेन विषयीकृतस्य पुत्रस्य लोकप्राप्तिसाधनत्वादनुशासनं [2]वेदाध्ययनम्। पुत्रजन्मोक्त्यनन्तरमेव किमित्येतद्विज्ञानं नोपदिष्टमित्याशङ्क्याऽऽह–अभ्यर्हितेति। गायत्र्युपाधिकब्रह्मोपासनस्य कोक्षेये ज्योतिष्यारोप्य परब्रह्मोपासनमभ्यर्हितं तस्य च मनोमयत्वादिगुणकब्रह्मोपासनमन्तरङ्गम्। तथा च तद्वचनेन वैयग्र्यादनन्तरमेव कोशविज्ञानं

'अध्यवसाय के अनुसार सगुण परमात्मा की मैं प्राप्ति करूँगा' इस प्रकार जिसका निश्चय हो कि मैं शरीर का उत्क्रमण कर ब्रह्मप्राप्ति कर ही लूंगा। इसकी अप्राप्ति विषयक संदेह नहीं है। इस प्रकार वह विद्वान् निश्चय के फल के अनुरूप ही परमात्मभाव को प्राप्त करता है। इस पूर्वोक्त अर्थ को सम्प्रदायविद् महर्षि शाण्डिल्य ने कहा था। द्विरुक्ति क्रतुफल संबन्ध के विषय में आदर के लिए है ॥ ४ ॥

शाण्डिल्यविद्या में बतलाया गया कि इस ब्रह्मनिष्ठ के कुल में वीर पुत्र उत्पन्न होता है। बृहदारण्यक श्रुति के अनुसार–'पुत्र को लोक प्राप्ति में हितकर होने से लोक्य कहते हैं" इससे अपूर्ण कर्म की पूर्ति द्वारा पिता का वह त्राण करता है; अतः वीरपुत्र का जन्म माता-पिता के त्राण के लिए नहीं होता। इसलिए उसे दीर्घायु बनाने के लिए कोश विज्ञान का आरम्भ किया जाता है। मनोमयत्व आदि गुणयुक्त ब्रह्मोपासना के उपयुक्त विज्ञान के अत्यन्त निकट होने से वचन की व्यग्रता के कारण कोश विज्ञान को नहीं कहा गया, यथोक्त फल की सिद्धि के लिए अब उसका वर्णन किया जाता है।

---

१. अतःशब्दार्थमाह–अनुशासनेनेति। २. अस्य।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳ स एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳ श्रितम् ॥१॥ तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा

विराट् कोश की उपासना

अन्तरिक्ष उदर वाला (धर्माधर्म का आश्रयभूत) वह कोश पृथिवी रूप मूल वाला है (त्रैलोक्य स्वरूप होने से) वह कभी नष्ट नहीं होता। दिशाएँ इसके सभी कोण हैं, द्युलोक इसके ऊपर वाले बिल हैं। वह यह कोश कर्म फल रूप वसु का आधान स्थान है, उसी में यह सारा संसार स्थित है ॥१॥

उस कोश की पूर्व दिशा 'जुहू' नाम वाली है, (क्योंकि कर्मी लोग पूर्वाभिमुख होकर होमादि

अन्तरिक्षमुदरमन्तःसुषिरं यस्य सोऽयमन्तरिक्षोदरः कोशः कोश इवानेकधर्मसादृश्यात्कोशः। स च भूमिबुध्नो भूमिर्बुध्नो मूलं यस्य स भूमिबुध्नो न जीर्यति न विनश्यति त्रैलोक्यात्मकत्वात्। सहस्रयुगकालावस्थायी हि सः। दिशो ह्यस्य सर्वाः स्रक्तयः कोणाः। द्यौरस्य कोशस्योत्तरमूर्ध्वं बिलं स एष यथोक्तगुणः कोशो वसुधानो वसु धीयतेऽस्मिन्प्राणिनां कर्मफलाख्यमतो वसुधानः। तस्मिन्नन्तर्विश्वं समस्तं प्राणिकर्मफलं सह तत्साधनैरिदं यद्गृह्यते प्रत्यक्षादिप्रमाणैः श्रितमाश्रितं स्थितमित्यर्थः ॥१॥

तस्यास्य प्राची दिग्प्राग्गतो भागो जुहूर्नाम जुह्वत्यस्यां दिशि कर्मिणः प्राङ्मुखाः

नोक्तोपेति निवृत्ते तु व्यासङ्गे तद्दृष्टिरिदानीं यथोक्तफलसिद्ध्यर्थमुच्यत इत्यर्थः। कोशशब्देन हिरण्यादिनिक्षेपाधारा मञ्जूषोच्यते। कथं त्रैलोक्यात्मनः कोशत्वं तताऽऽह—कोश इवेति। अनेकधर्मसादृश्यं विनश्यति—स चेति। तथाऽपि कथमविनाशित्वं तत्राऽऽह—सहस्रेति। त्रैलोक्यात्मनि कोशदृष्टिवत्तत्रापि भूमौ बुध्नदृष्टिरित्युक्तम्। कोशस्य च सापेक्षमविनाशित्वं ध्येयत्वेन दर्शितम्। संप्रति दिक्षु कोशकोणदृष्टिः कर्तव्येत्याह—दिशो हीति। दिवि कोशस्योर्ध्वबिलत्वबुद्धिं दर्शयति—द्यौरिति। यथोक्ते कोशे वसुधानत्वदृष्टिं दर्शयति—यथोक्तेति। तदेव समर्थयते—तस्मिन्निति ॥१॥

कोशकोणत्वेनोक्तासु दिक्ष्ववान्तरविभागमाह—तस्येत्यादिना। दिशां विशिष्टनामवतीनामनु-

---

मञ्जूषा के समान अनेकविध धर्मों के सादृश्य वाला अन्तरिक्ष रूप अन्तः गुफा वाला वह कोश पृथिवी मूल वाला है। लोकत्रय में व्याप्त होने के कारण वह कभी विनष्ट नहीं होता क्योंकि वह सहस्रों युगों पर्यन्त स्थित रहता है। दिशाएं इसकी समस्त कोण हैं। द्युलोक इस कोश के ऊपर वाले बिल हैं। वह यह यथोक्त गुण वाला कोश वसुधान है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण प्राणियों के कर्मफलाख्य वसु का आधान किया जाता है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों के द्वारा जो कुछ भी यह साधनों सहित समस्त प्राणियों के कर्मफल का ग्रहण किया जाता है, वह सभी कुछ उसी में स्थित है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

राज्ञी नाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳ रोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳ रुदम् ॥ २ ॥

करते हैं। दक्षिणदिशा में स्थित यमलोक में जीव अपने पाप कर्मों का फल भोगता है)। अतः दक्षि दिशा "सहमाना" नाम वाली है। (सायंकालिक लालिमा से युक्त होने के कारण) पश्चिमदि 'राज्ञी' नाम वाली है और उत्तरदिशा (विभूति सम्पन्न) देवताओं से अधिष्ठित होने के का 'सुभूता' नाम की है। दिशाओं से उत्पन्न होने के कारण इनका वायु वत्स है। वह कोई भी पु इस प्रकार पूर्वोक्त गुण विशिष्ट दिशाओं के वत्सा रूप से वायु की उपासना करता है, वह पु निमित्त से रोदन नहीं करता। वह मैं इस प्रकार इस वायु को वत्सा रूपा से जानता हूँ। अतः मैं मरण निमित्त से होने वाला रोदन न करूँ अर्थात् मुझे पुत्र के लिए रोने का प्रसंग न आवे ॥ २॥

सन्त इति जुहूर्नाम। सहमाना नाम सहन्तेऽस्यां पापकर्मफलानि यमपुर्यां प्राणिन इ सहमाना नाम दक्षिणा दिक्। तथा राज्ञी नाम प्रतीची पश्चिमा दिग्राज्ञी राज्ञा वरु नाधिष्ठिता संध्यारागयोगाद्वा। सुभूता नाम भूतिमद्भिरीश्वरकुबेरादिभिरधिष्ठितत्वा त्सुभूता नामोदीची। तासां दिशां वायुर्वत्सो दिग्जत्वाद्वायोः। पुरोवात इत्यादिदर्शना स यः कश्चित्पुत्रदीर्घजीवितार्थ्येवं यथोक्तगुणं वायुं दिशां वत्सममृतं वेद स न पुत्र पुत्रनिमित्तं रोदनं न रोदिति पुत्रो न म्रियत इत्यर्थः। यत एवं विशिष्टं कोशदिग्व

चिन्तनीयत्वमुक्त्वा तत्संबन्धिनं वायुं तद्वत्समममरणधर्माणं चिन्तयेदित्याह—तासामित्यादिना पुरोवातादीत्यादिशब्दस्तथाविधलौकिकवैदिकप्रयोगसंग्रहार्थः। यथोक्तस्य विज्ञानस्य फलवत्त्वमि दर्शयति—स य इति। यथोक्तगुणमित्यस्य प्रकटीकरणममृतमिति। सफलमुपासनमुपदिष्टमुपसंहर यत इति ॥२॥

(कोश के कोण रूप से विराजित उक्त दिशाओं का अन्य उपविभाग किया जाता है—) कोशकोण की पूर्व दिशा का "जुहू" नाम है क्योंकि कर्मकाण्डी पूर्वाभिमुख होकर यज्ञ करते "सहमाना" नाम की दक्षिण दिशा है, इस यमपुरी में प्राणी अपने पापकर्मों का फल भोगते हैं। प दिशा का नाम "राज्ञी" है क्योंकि यह राजा वरुण से अधिष्ठित है अथवा सन्ध्याकालीन राग से रञ्जित है। उत्तर दिशा का नाम 'सुभूता" है क्योंकि यह विभूति सम्पन्न ईश्वर कुबेरादि देवता अधिष्ठित है (विशिष्ट नामों का अनुचिन्तन कर अब उसके सहचर वायु का चिन्तन किया ज है—) दिशा से उत्पन्न होने के कारण वायु उन दिशाओं का वत्स है क्योंकि लोक और वेद में पुरो इत्यादि शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जो कोई उपासक पुत्र के दीर्घ जीवन के लिए पूर्वोक्त विशिष्ट दिशा के पुत्र वायु के अमरत्व को जानता है, उसे पुत्र के निमित्त कभी रोना नहीं प अर्थात् उसका पुत्र (उसके सामने) नहीं मरता। कोशदिग्वत्सविषयक विशिष्ट ज्ञान है, इसलिए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अरिष्टं कोशं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना ।३।

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं यदिदं किंच तमेव तत्प्रापत्सि ॥ ४ ॥

(पुत्र की दीर्घायु के लिए) मैं पूर्वोक्त अमुक-अमुक-अमुक के सहित अविनाशी कोश की शरण हूँ, अमुक-अमुक-अमुक के सहित प्राण की शरण हूँ, अमुक ३ के सहित भूः की शरण हूँ, अमुक ३ के सहित मैं भुवः की शरण हूँ और अमुक ३ के सहित मैं स्वः की शरण हूँ (मन्त्र में हुए अमुक शब्द के स्थान में सर्वत्र पुत्र के नाम का उच्चारण करे अर्थात् तीन-तीन बार अपने पुत्र का नाम लेवे ॥ ३ ॥

और मैंने जो कहा कि मैं प्राण की शरण हूँ, सो यह सम्पूर्ण भूत समुदाय प्राण ही है, उसी विराट् की मैं शरण हूँ ॥ ४ ॥

विषयं विज्ञानमतः सोऽहं पुत्रजीवितार्थ्येवमेतं वायुं दिशां वत्सं वेद जाने । अतो मा पुत्ररोदं रुदं मा रुदं पुत्रमरणनिमित्तम् । पुत्ररोदो मम मा भूदित्यर्थः ॥२॥

अरिष्टमविनाशिनं कोशं यथोक्तं प्रपद्ये प्रपन्नोऽस्मि पुत्रायुषे । अमुनाऽमुनाऽमुनेति त्रिर्नाम गृह्णाति पुत्रस्य । तथा प्राणं प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भूः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना भुवः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना स्वः प्रपद्येऽमुनाऽमुनाऽमुना, सर्वत्र प्रपद्य इति त्रिर्नाम गृह्णाति पुनः पुनः ॥३॥

स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति व्याख्यानार्थमुपन्यासः । प्राणो वा इदꣳ सर्वं भूतं

दीर्घायुष्ट्वं पुत्रस्य कामयमानस्त्रैलोक्यात्मानं कोशाकारं परिकल्प्य तस्य चतस्रो दिशो विशिष्टनामवतीस्तासां स्त्रीत्वं तत्संबन्धेन वायुं तद्वत्समरणधर्माणं चिन्तयेदिति प्रधानोपास्तिरुक्ता। संप्रति तदङ्गं जपं दर्शयति—अरिष्टमित्यादिना । अमुना तेन पुत्रेण निमित्तीभूतेन दीर्घायुष्ट्वं निमित्तीकृत्येत्यर्थः। सर्वत्र सर्वेषु प्रपद्य इति क्रियापदमुपायं[1] दर्शयितुं पुनरुपात्तं निमित्तनिवेदनार्थं[2] च पुनः पुनर्मन्त्रेषु पुत्रस्य त्रिर्नाम गृह्णातीति योजना ॥३॥

अरिष्टमित्यादिमन्त्रस्य प्रागेव व्याख्यातत्वात्प्राणमित्यादिमन्त्रमादाय व्याचष्टे—स यदिति ।

के दीर्घ जीवन के लिए मैं वायु को दिशा के पुत्र रूप से जानता हूँ, इससे मुझे कभी पुत्र मरण के कारण रोदन न करना पड़े। मुझे अपने जीवनकाल में पुत्र के लिए रोना न देखना पड़े ॥ २ ॥

पुत्र की दीर्घायु प्राप्ति के लिए मैं यथोक्त अविनाशी कोश की शरण में हूँ। पुत्र के निमित्त "अमुना" का तीन बार ग्रहण किया गया है। अमुक, अमुक और अमुक के साथ पृथिवी की शरण में

---

१. उपायमिति—अरिष्टकोशादिप्रपत्तिरूपं पुत्रदीर्घायुष्ट्वोपायमित्यर्थः । २. दीर्घायुष्ट्वरूपनिमित्तेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदवोचं भूः प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ५ ॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम् ॥ ६ ॥

और मैंने जो कहा कि मैं भूः की शरण हूँ इससे मैंने इतना ही कहा है कि मैं पृथिवी की शरण हूँ, अन्तरिक्ष की शरण हूँ, द्युलोक की शरण हूँ ॥ ५ ॥

पुनः मैंने जो कहा कि मैं भुवः की शरण हूँ, इससे यही कहा है कि मैं अग्नि की शरण, वायु की शरण हूँ तथा आदित्य की शरण हूँ ॥ ६ ॥

यदिदं जगत् । यथा वाऽरा नाभाविति [1]वक्ष्यति । अतस्तमेव सर्वं तत्तेन प्राणप्रतिपादनेन प्रापत्सि प्रपन्नोऽभूवम् ॥४॥

तथा भूः प्रपद्य इति त्रीँल्लोकान्भूरादीन्प्रपद्य इति तदवोचम् ॥५॥

अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्न्यादीन्प्रपद्य इति तदवोचम् ॥६॥

सशब्दो वक्तृविषयः । प्राणस्य सर्वात्मत्वे वाक्यशेषानुगुण्यं दर्शयति—यथेति । तत्सार्वात्म्यमतःशब्दार्थः ॥४॥

॥ ५ ॥

॥ ६ ॥

हूँ; अमुक, अमुक और अमुक के साथ भुवः की शरण में हूँ; अमुक, अमुक और अमुक के साथ स्वर्लोक की शरण में हूँ। निमित्त की स्मृति दिलवाने के लिए मन्त्र में पुत्र का तीन बार पुनः पुनः नाम ग्रहण किया गया है, मैं सबकी शरण में हूँ ॥ ३ ॥

मुझ वक्ता द्वारा जो यह कहा गया कि मैं प्राण की शरण में हूँ उसी के व्याख्यान के लिए यह उपक्रम है। जड़-चेतनात्मक यह सम्पूर्ण जगत् प्राण ही है। सप्तम अध्याय में इसे ही उपपादित किया जाएगा "जैसे रथ के पहिए की नाभि में अरे लगे होते हैं, वैसे ही इस प्राण में सारा जगत् ओत-प्रोत हो रहा है"। अतः उस प्राण के सर्वात्मक प्रतिपादन करने से मैं उसी प्राण की शरण में हूँ ॥ ४ ॥

इसी प्रकार "मैं भूः की शरण में हूँ" इससे पृथिवी आदि तीनों लोकों की शरण में हूँ, ऐसा मैंने कहा ॥ ५ ॥

तथा मन्त्र में जो कहा "मैं भुवः की शरण में हूँ", इससे अग्नि आदि देवताओं की शरण में हूँ, ऐसा मैंने कहा ॥ ६ ॥

---

१. छा. उ. ७-१५-१ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदवोचᳬ स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम् ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विᳬशतिवर्षाणि

और मैंने जो कहा कि मैं "स्वः" की शरण हूँ, इससे मैंने यही कहा कि मैं ऋग्वेद की शरण हूँ और यजुर्वेद की शरण हूँ और सामवेद की शरण हूँ। (इसके बाद उक्त अविनाशी कोश का दिशाओं के वत्स के सहित भली प्रकार से ध्यान कर ऊपर के मन्त्रों का जप करे ॥ ७ ॥

॥ इति पंचदशः खण्डः ॥

आत्म यज्ञ का संपादन

निश्चय ही पुरुष यज्ञ है, उस (पुरुष की आयु) के जो चौबीस वर्ष हैं, वे (पुरुष संज्ञक)

अथ यदवोचं स्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदादीन्प्रपद्य इत्येव तदवोचमिति । 'उपरिष्टान्मन्त्राञ्जपेत्ततः पूर्वोक्तमजरं कोशं सदिग्वत्सं यथावद्ध्यात्वा । द्विर्वचनमादरार्थम् ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

पुत्रायुष उपासनमुक्तं जपश्च । अथेदानीमात्मनो दीर्घजीवनायेदमुपासनं जपं च विदधदाह । जीवन्हि स्वयं पुत्रादिफलेन युज्यते नान्यथा । इत्यत आत्मानं यज्ञं संपादयति—

कदा पुनरेषां मन्त्राणां जप इत्यपेक्षायां पूर्वोक्तप्रधानविद्यानन्तरमित्याह—उपरिष्टादिति । ध्यात्वोपरिष्टादिति संबन्धः । यथोक्ते विज्ञाने जपे वाऽऽदरः ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

वृत्तमनूद्य पुरुषो वावेत्यादिखण्डान्तरमवतारयति—पुत्रायुष इति । किमित्यात्मनो दीर्घजीवनं समर्थ्यते तत्राऽऽह—जीवन्निति । यथोक्तफलहेतुभूतां विद्यामुत्थापयति—इत्यत आत्मानमिति । कथं

इसी प्रकार मन्त्र में जो कहा कि "मैं स्वः की शरण में हूँ", इससे ऋग्वेदादि वेदत्रय की शरण में हूँ, ऐसा मैंने कहा । इन उपरोक्त मन्त्रों का जाप करे, साथ ही पूर्वोक्त रीति से अविनाशी कोश का दिशा एवं वत्स सहित ध्यान करे । मन्त्र में 'तदवोचम्' यह द्विरुक्ति आदर के लिए है ॥ ७ ॥

पुत्र की दीर्घायु के लिए उपासना एवं जप का विधान किया गया । इसके पश्चात् अपनी पूर्ण आयु के लिए उपासना एवं जप का विधान करते हुए श्रुति कहती है क्योंकि स्वयं जीकर ही तो पुत्रादि फल का होना सुखकर है, इसके बिना वह संभव नहीं, इससे आत्मा के लिए यज्ञ का सम्पादन किया जाता है ।

---

१. उपरिष्टादेतान् मन्त्रानिति पाठः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्प्रातःसवनं [1]चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः-सवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

यज्ञ के) प्रातः सवन हैं, क्योंकि गायत्री छन्द चौबीस अक्षर वाला है और विधि यज्ञ का प्रातः सवन भी गायत्री छन्द वाला है। (अतः पुरुष प्रातः सवन रूप से संपन्न हुई चौबीस वर्ष की आयु से युक्त होने के कारण यज्ञ स्वरूप हैं)। उस इस प्रातः सवन के वसुदेवता अनुगत हैं। वागादि इन्द्रियाँ और प्राणादि वायु वसु हैं, क्योंकि ये ही इस पुरुषादि सभी प्राणियों को बसाये हुए हैं ॥ १ ॥

पुरुषः पुरुषो जीवनविशिष्टः कार्यकरणसंघातो यथाप्रसिद्ध एव। वावशब्दोऽवधारणार्थः। पुरुष एव यज्ञ इत्यर्थः।

तथा हि सामान्यैः संपादयति यज्ञत्वम्। कथम्। तस्य पुरुषस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाण्यायुषस्तत्प्रातःसवनं पुरुषाख्यस्य यज्ञस्य। केन सामान्येनेत्याह—चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री छन्दो गायत्रं गायत्रीछन्दस्कं हि विधियज्ञस्य प्रातःसवनम्। अतः प्रातःसवन-

---

पुरुषस्याऽऽत्मनो यज्ञत्वं संपाद्यते तत्राऽऽह—पुरुष इति।

अवधारणार्थं समर्थयते—तथा हीति। यज्ञावयवसादृश्यात्पुरुषे यज्ञदृष्टिः कर्तव्येत्युक्तम्। कथं सादृश्याद्यज्ञसंपादनमिति पृच्छति—कथमिति। तत्र षोडशाधिकं वर्षशतं पुरुषस्याऽऽयुः फलभूतं तत्त्रेधा प्रविभज्य चतुर्विंशतिवर्षायुषि प्रातःसवनदृष्टिः कर्तव्येत्याह—तस्येति। गायत्र्याश्छन्दसश्चतुर्विंशत्यक्षरत्वेऽपि कथं [2]शब्दोक्ता प्रातःसवनदृष्टिरित्याशङ्क्याऽऽह—गायत्रीति। विधितोऽनुष्ठीयमानस्य बाह्ययज्ञस्य प्रातःकालोपलक्षितं कर्म प्रातःसवनं तत्र स्तोत्रादि गायत्रीच्छन्दस्कं गायत्रं प्रातःसवनमिति च श्रुतिः। यथोक्ते पुरुषायुषि चतुर्विंशतिवर्षाणि प्रातःसवने च चतुर्विंशत्यक्षराणीत्यर्थः। फलितमाह—अत इति।

मन्त्र में पुरुष शब्द लोकव्यवहार में प्रसिद्ध जीवनविशिष्ट कार्यकारणसंघात चेतन पुरुष का नाम है। 'वाव' शब्द निर्धारणार्थक है। भावार्थ यह है कि पुरुष ही यज्ञ है।

यज्ञ के अवयवों से सादृश्य होने के कारण पुरुष में यज्ञदृष्टि का संपादन किया जाता है क्योंकि पुरुष की पूर्ण आयु ११६ वर्ष है, उस आयु के जो प्रारम्भिक चौबीस वर्ष हैं, वही पुरुषाख्य यज्ञ का प्रातःसवन है। दोनों में समानता किस प्रकार है. इस पर श्रुति कहती है—गायत्री छन्द चौबीस अक्षर

१, चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्रीति—तथा च संस्काररत्नमालायामुक्तम् "चतुर्विंशत्यक्षरां तु गायत्रीं प्रजपन् हृदि। सर्वान् वर्णानभिध्यायेद्देवतामर्थमेव च" इति ॥ अक्षरशब्दः स्वरेषु वर्तते। तत्र यद्यपि स्वरास्त्रयोविंशतिरेव गायत्रीमन्त्रे वर्तन्ते तथापि ण्यमित्यत्र भावनया णियमिति स्वरद्वयं ज्ञेयम्। उक्तञ्च पिङ्गलेन "इयादिपूरणः" इति। पाद इत्यनुवर्तते। इयादिः पूरणो यस्य स इयादिपूरणः। आदिशब्देनोवादयो गृह्यन्ते। तत्रायमर्थः यत्र गायत्र्यादौ छन्दसि पादस्याक्षरसंख्या न पूर्यते तत्रेयादिभिः सा पूरयितव्या। यथा तत्सवितुर्वरेणियम्। दिवं गच्छ सुवः पतेत्येवमादय इति च हलायुधेन व्याख्यातम्। २. शब्दोक्ता—श्रुत्युक्ता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संपन्नेन चतुर्विंशतिवर्षायुषा युक्तः पुरुषः। अतो विधियज्ञसादृश्याद्यज्ञः। तथोत्तरयोरप्यायुषोः सवनद्वयसंपत्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यक्षरसंख्यासामान्यतो वाच्या।

किंच तदस्य पुरुषयज्ञस्य प्रातःसवनं विधियज्ञस्येव वसवो देवा अन्वायत्ता अनुगताः। सवनदेवतात्वेन स्वामिन इत्यर्थः। पुरुषयज्ञेऽपि विधियज्ञ इवाग्न्यादयो वसवो देवाः प्राप्ता इत्यतो विशिनष्टि—प्राणा वाव वसवो वागादयो वायवश्च। ते हि यस्मादिदं पुरुषादिप्राणिजातमेते वासयन्ति। प्राणेषु हि देहे वसत्सु सर्वमिदं वसति नान्यथा। इत्यतो वसनाद्वासनाच्च वसवः ॥१॥

तथाऽपि कथं पुरुषस्य यज्ञत्वं तदाह—अत इति। अतःशब्दस्यैवार्थो विधियज्ञसादृश्यादिति। विधिनाऽनुष्ठीयमानो यज्ञो विधियज्ञस्तेन सादृश्यं पुरुषस्य प्रातःसवनसंबन्धस्तस्मात्पुरुषो यज्ञ इत्यर्थः। यथा यथोक्ते पुरुषायुषि प्रातःसवनसंपत्तिस्तथा वक्ष्यमाणयोरपि पुरुषायुषोर्माध्यंदिनं सवनं तृतीयसवनमिति सवनद्वयसंपत्तिर्द्रष्टव्येत्याह—तथेति। चतुर्विंशतिवर्षमितपुरुषायुषि प्रातःसवनमतिः संख्यासामान्याद्वक्ष्यमाणपुरुषायुषोः सवनद्वयसंपत्तौ तु किं कारणमित्याशङ्क्याऽऽह—त्रिष्टुबिति। चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्प्रसिद्धा। त्रैष्टुभं च माध्यंदिनं सवनम्। अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जागती। जागतं च तृतीयसवनम्। अतः संख्यासामान्यादुत्तरयोः पुरुषायुषोः सवनद्वयसंपत्तिर्युक्तेत्यर्थः।

पुरुषस्य यज्ञत्वे विधियज्ञेन सह सादृश्यान्तरमाह—किंचेति। प्रातःसवने वसूनां तद्देवतात्वेनाऽऽयत्तत्वमेव संक्षिपति—सवनदेवतात्वेन स्वामिन इत्यर्थ इति। वसूनां सवनस्वामित्वमुभयत्र तुल्यमित्युक्ते प्रसिद्धान्वसून्पुरुषयज्ञेऽपि प्राप्तान्प्रत्युदस्यति—पुरुषयज्ञेऽपीति। तेषु वसुशब्दप्रवृत्तिं साधयति—ते हीति। [1]निमित्तान्तरमाह—प्राणेषु हीति। प्राणानां वसुत्वमुपपादितमुपसंहरति—इत्यत इति ॥१॥

वाला है एवं शास्त्रविधान से अनुष्ठीयमान बाह्य यज्ञ के प्रातःसवन में प्रयुक्त स्तोत्रादि भी गायत्री छन्द वाला है। इसलिए प्रातःसवन अनुष्ठान करने वाले चौबीस वर्षीय पुरुष की विधानपूर्वक अनुष्ठित यज्ञ से समानता है। जिस प्रकार यह सम्पत्ति है, उसी प्रकार पुरुष की आगे की आयु की माध्यन्दिन एवं तृतीयसवन सम्पत्ति है, जिसकी त्रिष्टुप् एवं जगती छन्द की अक्षर संख्या से समानता है (त्रिष्टुप् छन्द में चवालीस अक्षर होते हैं, माध्यन्दिन सवन में इसका प्रयोग है, जगती छन्द में अड़तालीस अक्षर होते हैं तृतीय सवन में इसका प्रयोग होता है)।

इतना ही नहीं, इस पुरुष के यज्ञत्व में विधिपूर्वक अनुष्ठित यज्ञ के समान वसु देवता भी प्रातःसवन के अनुगत हैं। या यूँ कहो कि सवन देवता रूप से वसु स्वामी हैं। विधियज्ञ के समान पुरुष-यज्ञ में भी अग्न्यादि वसु देवता हैं, उसी की व्याख्या की जाती है। प्राणादि वायु और वागादि इन्द्रियाँ ही वसु हैं क्योंकि ये ही पुरुषादि प्राणीसमूह को आश्रय देती हैं। देह में बसने वाले प्राणों में ही यह सम्पूर्ण संसार है, उसके विना कुछ भी नहीं है। इस प्रकार के निर्वचन से सिद्ध होता है कि निवास करने एवं कराने से प्राण ही वसु हैं ॥ १ ॥

---

१. निमित्तान्तरमिति—वसत्स्वित्यनेन वसनात्मकं निमित्तमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं माध्यंदिनꣳ सवनमनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यंदिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यं-

यदि इस प्रातः सवन रूप से सम्पन्न हुई आयु में उसे कोई व्याधि आदि कष्ट पहुँचावे तो व (यज्ञ सम्पादन करने वाला पुरुष अपने को यज्ञ मानता हुआ) कहे—हे प्राणरूप वसुगण ! मेरे इ प्रातःसवन को माध्यंदिन सवन आयु के साथ एकरूप कर दो। यज्ञस्वरूप मैं (प्रातः सवन के अधिष्ठाता) प्राणरूप वसुओं के मध्य में नष्ट न होऊँ (उस जप और ध्यान के द्वारा) उसके बाद क से मुक्त हो वह नीरोग हो जाता है ॥ २ ॥

इसके बाद पुरुष की आयु जो चौवालीस वर्ष है, वह माध्यंदिन सवन है। त्रिष्टुप् छ

तं चेद्यज्ञसंपादितमेतस्मिन्प्रातःसवनसंपन्ने वयसि किंचिद्व्याध्यादि मरणशङ्का-कारणमुपतपेद्दुःखमुत्पादयेत्स तदा यज्ञसंपादी पुरुष आत्मानं यज्ञं मन्यमानो ब्रूयाज्ज-पेदित्यर्थ इमं मन्त्रं हे प्राणा वसव इदं मे प्रातःसवनं मम यज्ञस्य वर्तते तन्माध्यंदि सवनमनुसंतनुतेति माध्यंदिनेन सवनेनाऽऽयुषा सहितमेकीभूतं संततं कुरुतेत्यर्थः। माऽहं यज्ञो युष्माकं प्राणानां वसूनां प्रातःसवनेशानां मध्ये विलोप्सीय विलुप्येय विच्छिद्ये-येत्यर्थः। इतिशब्दो मन्त्रपरिसमाप्त्यर्थः। स तेन जपेन ध्यानेन च ततस्तस्मादुपतापा-दुदेत्युद्गच्छति। उद्गम्य विमुक्तः सन्नगदो हानुपतापो भवत्येव ॥२॥

संप्रति पुरुषयज्ञविद्याङ्गभूतमाशीर्वादप्रयोगं दर्शयति—तं चेदिति। अनुसंतनुतेत्यत्रानुपद-मेकीभावे। 'मन्त्रजपस्य नानुबन्धित्वं विधियज्ञेन ॥२॥

यदि उस यज्ञानुष्ठान करने वाले पुरुष को प्रातःसवनरूप से सम्पन्न आयु में किसी व्याधि आदि से मरण की शङ्का कष्ट पहुँचाती हो तो वह यज्ञानुष्ठाता अपने को यज्ञस्वरूप मानता हुआ इस प्रकार मन्त्र जप करे—हे प्राणात्मक वसुओ ! यह मेरे यज्ञ का प्रातःसवन है, इसे ऐसा कर दो ताकि माध्यन्दिन सवन आयु एकीभूत हो जाए तथा आपका यज्ञात्मक मैं प्रातःसवन के अध्यक्ष प्राणरू वसुओं के बीच में नष्ट न होऊँ। मन्त्र में 'इति' शब्द मन्त्र समाप्ति का सूचक है। वह उस जप और ध्यान को करने से कष्ट से मुक्त हो जाता है। कष्ट से मुक्त होकर निश्चय ही सुखी हो जाता है ॥२॥

---

१. जपेन ध्यानेन चेति भाष्यसूचितमर्थं प्रकटयति—मन्त्रजपस्य नानुबन्धित्वं विधियज्ञेनेति। ध्यानयज्ञेनैव संबन्धो मन्त्रजपस्य न विधियज्ञेनेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दिन॑ँ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीद॑ँ सर्व॑ँ रोदयन्ति ॥ ३ ॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिन॑ँ सवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माऽहं प्राणाना॑ँ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अथ यान्यष्टाचत्वारि॑ँशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारि॑ँशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्याऽऽदित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावाऽऽदित्या एते हीद॑ँ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

चौवालीस अक्षरों वाला है और माध्यंदिन सवन त्रिष्टुप् छन्द से सम्बद्ध है। उसके रुद्रगण देवता सर्वत्र अनुगत हैं। निश्चय प्राण ही रुद्र है, क्योंकि ये प्राणरूप रुद्र ही प्राणी समुदाय को रुलाते हैं ॥ ३ ॥

यदि उस यज्ञकर्ता को (इस चौवालीस) वर्ष की अवस्था में कोई रोगादि संतप्त करें तो वह कहे—हे प्राणरूप रुद्रगण ! मेरे इस मध्याह्नकालिक सवन को तृतीय सवन के साथ एकीभूत कर दो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप रुद्रों के भीतर कभी विच्छिन्न न होऊँ, इतना कहने मात्र से वह व्याधि आदि कष्ट से छूट जाता है ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर पुरुष की जो अड़तालीस वर्ष शेष आयु के हैं, वे उस पुरुष यज्ञ के तृतीय सवन हैं। जगती छन्द भी अड़तालीस अक्षरों वाला है। तृतीय सवन जगती छन्द से सम्बद्ध है। इस तृतीय सवन के आदित्य देवता सर्वत्र अनुगत है। प्राण ही आदित्य है क्योंकि ये इस शब्दादि विषय समूह का आदान करते हैं ॥ ५ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणीत्यादि समानम्। रुदन्ति रोदयन्तीति प्राणा रुद्राः। क्रूरा हि ते मध्यमे वयस्यतो रुद्राः ॥३॥

समानं तस्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणीत्यादिनेति शेषः। प्राणेषु रुद्रशब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—रुदन्तीति। यदुक्तं रोदयन्तीति रुद्रा इति तदुपपादयति—क्रूरा हीति ॥३॥

मन्त्र में "जो पुरुष की चवालीस वर्ष की आयु है" इत्यादि की माध्यन्दिन सवन से समानता है। (प्राणों में रुद्र शब्द की प्रवृत्ति के लिए हेतु बतलाते हैं—) रोते अथवा रुलाते रहने से प्राणों का रुद्रत्व सिद्ध है। मध्यम अवस्था की आयु में प्राण क्रूर हो जाते हैं; इसलिए रुद्र हैं ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं चेदेतस्मिन्वयसि किंचिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माऽहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥

एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति स ह षोडशं

यदि इस आयु में उस उपासक को कोई रोगादि दुःखी करें; तो वह इस प्रकार कहे—हे प्राण रूप आदित्यगण! मेरे इस तृतीय सवन को आयु रूप से (एक सौ सोलह वर्ष तक) पूर्ण करो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप आदित्य के मध्य में विच्छिन्न न होऊँ। ऐसा कहने से वह उस व्याधि आदि कष्ट से मुक्त होकर रोगरहित हो जाता है ॥ ६ ॥

इसे प्रसिद्ध यज्ञ दर्शन को जानने वाले इतरा के पुत्र महिदास ने कहा था। हे रोग! तू मुझे यह संताप क्यों देता है? क्योंकि जो यज्ञस्वरूप मैं तेरे इस संताप से नहीं मर सकूँगा (अतः तेरा

तथाऽऽदित्याः प्राणाः। ते हीदं शब्दादिजातमाददतेऽत आदित्यास्तृतीयसवनमायुः षोडशोत्तरवर्षशतं समापयतानुसंतनुत यज्ञं समापयतेत्यर्थः। समानमन्यत् ॥५॥६॥

निश्चिता हि विद्या फलायेत्येतद्दर्शयन्नुदाहरति—

एतद्यज्ञदर्शनं ह स्म वै किल तद्विद्वानाह महिदासो नामतः। इतराया अपत्यं मैतरेयः। किं कस्मान्मे ममैतदुपतपनमुपतपसि स त्वं हे रोग योऽहं यज्ञोऽनेन त्वत्कृते-

---

यथा प्राणा वसवो रुद्राश्चोक्तास्तथेति यावत्। तेष्वादित्यशब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—ते हीति। तं चेदित्यादिना पूर्वेण ग्रन्थेन तं चेदेतस्मिन्नित्यादिवक्ष्यमाणग्रन्थस्य तुल्यार्थत्वान्न व्याख्यानापेक्षेत्याह—समानमन्यदिति ॥५॥६॥

महिदासोदाहरणस्य तात्पर्यमाह—निश्चिता हीति। तदेतद्यज्ञदर्शनं विद्वानाह स्मेति संबन्धः।

जिस प्रकार प्राणों की वसुओं एवं रुद्रों से समानता है, उसी प्रकार प्राणों की आदित्य से भी सदृशता है क्योंकि वे इस शब्दादि समूह का ग्रहण करते हैं। इसलिए मन्त्र में आदित्य से प्रार्थना की गई है कि तृतीय सवन को एक सौ सोलह वर्ष की आयु के समान पूर्ण करो। 'यदि इस आयु में उपासक को रोगादि से कष्ट हो' इत्यादि व्याख्यान समानार्थक होने से पिछले मन्त्र के समान होने से उसके भाष्य की अपेक्षा नहीं है ॥ ५ ॥ ६ ॥

(महिदास ऐतरेय उदाहरण का तात्पर्य उपक्रमभाष्य में कहते हैं—) उपासना निश्चित फल वाली होती है, इसी को प्रदर्शित करने के लिए दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है।

इस यज्ञ के दर्शन को महिदास ऐतरेय विद्वान् ने कहा था। इतरा का पुत्र होने से उनका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

(अथ तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः ॥ १ ॥

परिश्रम व्यर्थ है) ऐसा निश्चय कर वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा। जो अन्य कोई भी इस प्रकार उपासना करता है, वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहता है ॥ ७ ॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

अक्षयादि फलप्रद आत्मयज्ञोपासना

वह जो पुरुष भोजन करना चाहता है, जो जल पीना चाहता है, तथा जो (इष्ट वस्तु के अभाव में) प्रसन्न नहीं होता; वे ही (दुःख सादृश्य के कारण विधियज्ञीय दीक्षा के समान) इसकी दीक्षा हैं ॥ १ ॥

नोपतापेन नु प्रेष्यामि न मरिष्याम्यतो वृथा तव श्रम इत्यर्थः। इत्येवमाह स्मेति पूर्वेण संबन्धः। स एवंनिश्चयः सन्षोडशं वर्षशतमजीवत्। अन्योऽप्येवंनिश्चयः षोडशं वर्षशतं प्रजीवति य एवं यथोक्तं यज्ञसंपादनं वेद जानाति स इत्यर्थः ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

ह वा इतिनिपातयोः किलेत्यर्थः। उक्तस्य चोदाहरणस्य प्रसिद्धिविषयः। हे रोग कस्मान्मां त्वमुपतपसीति संबन्धः। कस्मादित्याक्षेपे हेतुमाह—योऽहमिति। यो यज्ञः सोऽहमनेनेति योजना। इतिशब्दस्यान्वयमाचष्टे—इत्येवमिति। निश्चिताया विद्याया ध्यानिनं प्रति फलं कथयति—स एवमिति। यद्यपि महिदासस्य यथोक्तनिश्चयवतो 'यथोक्तं तथाऽपीदानींतनस्य किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—अन्योऽपीति। प्रजीवतीति जीवनस्य प्रकर्षो रोगाद्युपतापराहित्यं प्रशब्देनोच्यते। एवंनिश्चय इत्युक्तं पुरुषं विशदयति—य एवमिति ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

ऐतरेय नाम पड़ा। उसने कहा—हे रोग ! तू मुझे इतनी पीड़ा क्यों देता है क्योंकि निरन्तर प्रातःसवन माध्यन्दिन एवं तृतीय सवन करने से मैं स्वयं यज्ञस्वरूप हो गया हूँ, इसलिए मुझे मारने में तेरा वस नहीं चलेगा, तू वृथा श्रम मत कर। वह उपासक इस प्रकार निश्चय कर एक सौ सोलह वर्ष तक जीता रहा। जो इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ का अनुष्ठान कर अपने में यज्ञ की भावना करता है, वह इस निश्चय के प्रभाव से एक सौ सोलह वर्ष जीता है ॥ ७ ॥

---

१. यथोक्तफलमिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति ॥२॥

और जो खाता है, जो पीता है तथा (इष्ट वस्तु की प्राप्ति से) जो रति का अनुभव करता है वह उपसदों के (पयोव्रत से होने वाले सुख की) सदृश्यता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

स यदशिशिषतीत्यादियज्ञसामान्यनिर्देशः पुरुषस्य पूर्वेणैव संबध्यते। यदशिशिषत्यशितुमिच्छति। तथा पिपासति पातुमिच्छति। यन्न रमत इष्टाद्यप्राप्तिनिमित्तं यदेवंजातीयकं दुःखमनुभवति ता अस्य दीक्षाः। दुःखसामान्याद्विधियज्ञस्येव ॥१॥

अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते रतिं चानुभवतीष्टादिसंयोगात्तदुपसदैः समानतामेति। उपसदां च पयोव्रतत्वनिमित्तं सुखमस्ति। अल्पभोजनीयानि चाहान्यासन्नानीति प्रश्वासोऽतोऽशनादीनामुपसदां च सामान्यम् ॥२॥

ननु पूर्वेणाऽऽशीर्वादप्रयोगेणोदाहरणेन च समनन्तरग्रन्थस्य संबन्धो नोपलभ्यते तत्राऽऽह—स यदिति। पूर्वेण ह्स्य यानि चतुर्विंशतिवर्षाणीत्यादिना सादृश्यनिर्देशेनेत्यर्थः। एवंजातीयकमशनायाविकृतमिति यावत्। अशिशिषादिषु दीक्षादृष्टौ हेतुमाह—दुःखेति ॥१॥

दीक्षावचनसादृश्यात्पुरुषस्य यज्ञत्वमुक्तमिदानीमुपसदुपेतत्वसादृश्यादपि तस्य यज्ञत्वं विज्ञेयमित्याह—अथेति। अशनादिषु कथमुपसद्दृष्टिस्तत्राऽऽह—उपसदां चेति। पयोव्रतत्वं पयोभक्षणयुक्तत्वम्। यज्ञे यान्यहान्यल्पभोजनीयानि प्रसिद्धानि तानि चोपसत्सु क्रियमाणान्यासन्नानीति तासु प्रश्वासः स्वास्थ्यविशेषः। अशनादिषु च सोऽस्तीति प्रसिद्धमिति भावः। सुखनिमित्तत्वं क्लेशनिवृत्तिहेतुत्वं च सामान्यम् ॥२॥

"वह उपासक जो कुछ भोजन करने की इच्छा करता है"—इत्यादि मन्त्र में यज्ञरूप पुरुष की[1] यज्ञ से समानता का निर्देश है—इसका पूर्व प्रतिपादित सवनत्रय से ही संबन्ध है। जो यज्ञात्मक पुरुष भोजन करने की इच्छा करता है एवं जल पीना चाहता है। इष्टादि वस्तु की प्राप्ति के बिना इसका चित्त नहीं लगता, इस प्रकार जो मन की स्थिति रूप दुःख का अनुभव करता है, वह इसकी दीक्षा है क्योंकि अशनाया की इच्छा में दीक्षादृष्टि करने का हेतु यह है कि विधियज्ञ के समान इसमें दुःख की समानता है ॥ १ ॥

इसी प्रकार जो कुछ अन्नग्रहण[2] करता है, जो कुछ जल-दुग्धादि पान करता है एवं जो कुछ प्रिय वस्तुओं की प्राप्तिरूप सुख अनुभव करता है, वह उपसदों के सुख के समान है क्योंकि उपसदों को भी पयोव्रत से होने वाला सुख मिलता है। यज्ञ में जिन दिनों में अल्प भोजन का विधान प्रसिद्ध है उन दिनों में पयोभक्षण से उपसदों को स्वास्थ्यविशेष का सुख रहता है, अतः क्षुधादि एवं उपसदों में समानता है ॥ २ ॥

---

१. यज्ञरूपस्य। २. अश्नाति भुङ्क्त ओदनादीत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति ॥ ३ ॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिꣳसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः ॥ ४ ॥

तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवावभृथः ॥ ५ ॥

और वह जो हँसता है, जो भक्षण करता है तथा जो मैथुन करता है, वह सब स्तुत शस्त्र की ही समानता को प्राप्त करता है, (क्योंकि शब्द युक्त होना दोनों में समान है) ॥ ३ ॥

तथा जो तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य भाषण है, वे ही इसकी दक्षिणा हैं (क्योंकि दक्षिणा के समान ये भी धर्म के पोषक हैं) ॥ ४ ॥

अतः (प्रसव होने वाली स्त्री के विषय में लोग) कहते हैं कि प्रसूता होगी (और बच्चे के जन्म के बाद) प्रसूता हुई, ऐसा कहते हैं, वही इसका पुनर्जन्म है तथा मरण ही (इस पुरुषयज्ञ का) अवभृथ स्नान है ॥ ५ ॥

अथ यद्धसति यज्जक्षति [1]भक्षयति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तत्समानतामेति। शब्दवत्त्वसामान्यात् ॥३॥

अथ यत्तपो दानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः। धर्मपुष्टिकरत्वसामान्यात् ॥४॥

यस्माच्च यज्ञः पुरुषस्तस्मात्त्वं जनयिष्यति माता यदा तदाऽऽहुरन्ये सोष्यतीति

स्तुतशस्त्रवैशिष्ट्यसाम्यादपि पुरुषस्य यज्ञत्वमित्याह—अथ यदिति। हासादिषु स्तुतशस्त्रदृष्टौ हेतुमाह—शब्दवत्त्वेति ॥३॥

दक्षिणावत्त्वसाम्यादपि पुरुषस्य यज्ञत्वमवधेयमित्याह—अथेति। तपोदानादिषु दक्षिणादृष्टौ हेतुमाह—धर्मेति।

प्रकारान्तरेण पुरुषस्य यज्ञत्वं साधयति—यस्माच्चेति। "षूङ् प्राणिप्रसवे" "षुञ् अभिषवे"

इसी प्रकार स्तुत शस्त्रविशिष्ट साम्य होने से भी पुरुष यज्ञरूप है क्योंकि जो हँसता है, जो पूरी आदि गरिष्ठ (कठिन) भोजन करता है एवं स्त्री प्रसङ्ग करता है; उसमें स्तुतशस्त्रदृष्टि की भावना करे। इसमें हेतु यही है कि शब्दवत्त्व सादृश्य है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार दक्षिणावत्त्व सादृश्य से भी पुरुष यज्ञरूप है क्योंकि जो भी यह तप, दान, सरलता, अहिंसा और सत्य वाणी है, वे ही इस उपासक पुरुष की दक्षिणा हैं। दक्षिणादृष्टि में यही हेतु है कि इनमें धर्म का पोषण करना रूप समानता है ॥ ४ ॥

(प्रकारान्तर से पुरुष की यज्ञरूपता सिद्ध की जाती है—) यज्ञात्मक पुरुष होने से जब मैं

---

१. भक्षयति शष्कुल्यादिकठिनमित्यर्थः। २. षुङिति—तथा च सोष्यतीति पदव्यत्ययश्छान्दस इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय 'देवकीपुत्रायोक्त्वो-वाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं

(जिस विद्या के प्रभाव से देवकीपुत्र कृष्ण अन्य विद्याओं के विषय में) वह तृष्णा हीन हो गया था, उसे आंगिरस गोत्र में उत्पन्न घोर नामा ऋषि ने अपने शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण को सुना

तस्य मातरं यदा च प्रसूता भवति तदाऽसोष्ट पूर्णिकेति विधियज्ञ इव सोष्यति सो देवदत्तोऽसोष्ट सोमं यज्ञदत्त इति, अतः शब्दसामान्याद्वा पुरुषो यज्ञः। पुनरुत्पाद मेवास्य तत्पुरुषाख्यस्य यज्ञस्य यत्सोष्यत्यसोष्टेति शब्दसंबन्धित्वं विधियज्ञस्येव। कि तन्मरणमेवास्य पुरुषयज्ञस्यावभृथः समाप्तिसामान्यात् ॥५॥

तद्धैतद्यज्ञदर्शनं घोरो नामत आङ्गिरसो गोत्रतः कृष्णाय देवकीपुत्राय शिष्या क्त्वोवाच 'तदेतत्त्रयमित्यादिव्यवहितेन संबन्धः। स चैतद्दर्शनं श्रुत्वाऽपिपास एवान्या विद्याभ्यो बभूव। इत्थं च विशिष्टेयं विद्या यत्कृष्णस्य देवकीपुत्रस्यान्यां विद्यां प्र

इति धातुद्वयदर्शनात्प्रसवे कण्डने च साधारणः सवनशब्दस्ततः सवनशब्दवत्त्वसामान्याद्वा पुरुषे यज्ञदृ कर्तव्येत्यर्थः। पुरुषगतं शब्दसामान्यं विशदयति—पुनरिति। यत्पुरुषाख्यस्य विधियज्ञस्येव सोष्य त्यादिशब्दसंबन्धित्वं तदुत्पादनमेव तदिति योजना। अवभृथसंबन्धित्वादपि पुरुषस्य यज्ञत्वमस्तीत्याह किंचेति ॥५॥

पुरुषे यज्ञदृष्टिरुक्ता संप्रति विशिष्टपुरुषसंबन्धेन विद्यां स्तोतुं विद्याङ्गं च जपं विधातुमुपक्रमते तद्धैतदिति। देवकीपुत्रस्यैतद्दर्शनश्रवणफलमाह—स चेति। किमर्थेयं गुरुशिष्याख्यायिकेत्याह—

को प्रसव होता है तो लोग कहते हैं—उसे माता उत्पन्न करेगी। जब बच्चे के जन्म के बाद प्रसूता हो तो विधियज्ञ में सोम सवन के समान कहते हैं—प्रसवकाल पूर्ण हुआ, जैसे देवदत्त सोम अभिषव करे एवं यज्ञदत्त सवन करेगा। इसलिए सवन शब्द की समानता होने से पुरुष ही यज्ञ है। "प्रसव हो और प्रसव हुआ" इन शब्दों का पुरुषाख्य यज्ञ से संबन्ध विधियज्ञ की तरह होना ही इसका पुनर्जन्म है इतना ही नहीं, समाप्ति दोनों में समान रूप से विद्यमान रहने से मरण ही इस पुरुषात्मक यज्ञ का अवभृथ स्नान है ॥ ५ ॥

(पुरुष में यज्ञदृष्टि निरूपण के अनन्तर अब विशिष्ट पुरुष के संबन्ध के द्वारा विद्या की स्तु एवं विद्या के अङ्गभूत जप के विधान किया जाता है-) इस यज्ञदर्शन का घोर आङ्गिरस ने अपने शि

---

१. देवकीपुत्रायेति—अनेन भगवान् वासुदेव एवात्र कृष्ण इति सूचयति। न हि भगवतोऽपि षोडशाद्वर्षशताद् कालमिह लोके परिवर्तनम्। तथाहि भागवते "ब्रह्मोवाच—यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम। शरच्छ व्यतीताय पञ्चविंशाधिकं प्रभो। नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् ॥ श्रीभगवानुवाच—अवधारितमे यदात्थ विबुधेश्वर। कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः" ॥ ११.६.२५-२८। २. तदेतदिति—अत्र दित्येव न्याय्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः ॥ ६ ॥

कहा कि उसे अन्तकाल में इन तीन मन्त्रों का जप करना चाहिये। १—तू अक्षय है। २—तू अविनाशी है। ३—तू अति सूक्ष्म प्राण वाला है। इन्हीं तीन यजुः के विषय में नीचे के ये दो मन्त्र हैं ॥ ६ ॥

तृड्विच्छेदकरीति पुरुषयज्ञविद्यां स्तौति। घोर आङ्गिरसः कृष्णायोक्त्वेमां विद्यां किमुवाचेति तदाह—स एवं यथोक्तयज्ञविदन्तवेलायां मरणकाल एतन्मन्त्रत्रयं प्रतिपद्येत जपेदित्यर्थः। किं तदक्षितमक्षीणमक्षतं वाऽसीत्येकं यजुः। सामर्थ्यादादित्यस्थं प्राणं चैकीकृत्याऽऽह। तथा तमेवाऽऽहाच्युतं स्वरूपादप्रच्युतमसीति द्वितीयं यजुः। प्राणसंशितं प्राणश्च स संशितं सम्यक्तनूकृतं च सूक्ष्मं तत्त्वमसीति तृतीयं यजुः। तत्रैतस्मिन्नर्थे विद्यास्तुतिपरे द्वे ऋचौ मन्त्रौ भवतो न जपार्थे। त्रयं प्रतिपद्येतेति त्रित्वसंख्याबाधनात्। पञ्चसंख्या हि तदा स्यात् ॥६॥

चेति। अक्षितमसीति कीदृशीं देवतां प्रत्युच्यते तत्राऽऽह—सामर्थ्यादिति। निकृष्टस्य स्तुतिसंबन्धायोगात्पुरुषयज्ञे सवनदेवतान्तरानुपपत्तेश्च प्राणानामेवाऽऽधिदैविकं रूपमादित्याख्यं जप्यमन्त्रार्थत्वेन संबध्यत इत्यर्थः। द्वितीयमन्त्रस्यार्थान्तरं वारयति—तथेति। प्रथममन्त्रवदित्यर्थः। न च द्वयोरेकार्थत्वे सत्यन्यतरस्य वैयर्थ्यं द्वयोरपि जप्यत्वेनोपयुक्तत्वादिति द्रष्टव्यम्। मन्त्रत्रयप्रतिपाद्यं सावित्रं तत्त्वमृग्भ्यामपि प्रतिपादितमिति प्रत्ययदार्ढ्यार्थमाह—तत्रेति। किमिति विद्यास्तुतिपरत्वमनयोरिष्यते जपार्थत्वमेव किं न स्यात्तत्राऽऽह—नेत्यादिना। अनयोर्जपार्थत्वेऽपि त्रित्वसंख्यायाः सत्त्वान्न सा बाध्येत्याशङ्क्याऽऽह—पञ्चेति। अनयोर्जप्यत्वे पञ्चकं प्रतिपद्येतेति पञ्चसंख्याया वक्तव्यत्वात्त्रित्वं बाधितं स्यादित्यर्थः ॥६॥

देवकीपुत्र कृष्ण को उपदेश कर कहा—तुम अक्षय, अविनाशी एवं सूक्ष्म प्राण वाले हो इत्यादि मन्त्र से इसका साक्षात् संबन्ध है। देवकीपुत्र कृष्ण की इस यज्ञदर्शन विद्या को सुनकर अन्य विद्याओं को जानने की इच्छा नहीं रही। यही इस पुरुषयज्ञ विद्या की स्तुति जो देवकीपुत्र कृष्ण को दूसरी विद्याओं के प्रति तृष्णाविहीन बनाती है। इस विद्या को कृष्ण के प्रति उपदेश कर घोर आङ्गिरस ने क्या कहा—उसे श्रुति कहती है। इस प्रकार यज्ञविद्यावेत्ता मरणकाल उपस्थित होने पर इन तीन मन्त्रों का जप करे। प्रथम यजुष् मन्त्र है—"तुम कभी क्षीण स्वभाव वाले नहीं हो"। मन्त्र के सामर्थ्य से यह आदित्यस्थ प्राण से एकता स्थापित कर रहा है। इसी द्वितीय यजुष् मंत्र का अर्थ है "तुम अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले स्वभाव से युक्त हो"। तृतीय मन्त्र यह है—"तुम अत्यन्त सूक्ष्म प्राण से युक्त हो"। विद्यास्तुति के अर्थ में ही नीचे के दो ऋक्मन्त्र हैं; जपार्थक नहीं हैं क्योंकि मन्त्र में कहा है तीन मन्त्रों का जाप करे, इससे तो त्रित्वसंख्या का बाध हो जाएगा, तब तो पञ्चसंख्या वाले मन्त्रों की प्राप्ति हो जायगी ॥ ६ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आदित्प्रत्नस्य रेतसः । उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तर७ स्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति ॥ ७ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

(इन दोनों मन्त्रों की) इस प्रकार से योजना करनी चाहिये । आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि । दूसरी योजनाः—उद्वयं तमस्सपरि, इत्यादि है । जिनका अ... यह है, विषयों से निवृत्तचित्त वाले ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म में स्थित परम देदीप्यमान तेज को सब ओर व्या... देखते हैं । पुरातन कारण का प्रकाश वे ब्रह्मचारी सर्वत्र देखते हैं, अज्ञान रूप अन्धकार से परे उत्कृ... ज्योति को देखते हुए तथा आत्मीय सर्वोत्तम तेज को देखते हुए (ऐसा समझते हैं कि) हम सम्पूर्ण दे... में प्रकाशमान सर्वोत्तम ज्योतिस्वरूप सूर्य को प्राप्त हो गये हैं । 'ज्योतिरुत्तमम्' इस शब्द की द्विरु... यज्ञ कल्पना की समाप्ति का सूचक है ॥ ७ ॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

आदिदित्यत्राऽऽकारस्यानुबन्धस्तकारोऽनर्थक इच्छब्दश्च । प्रत्नस्य चिरंतनस्य पुराणस्येत्यर्थः । रेतसः कारणस्य बीजभूतस्य जगतः सदाख्यस्य ज्योतिः प्रकाशं पश्यन्ति । आशब्द उत्सृष्टानुबन्धः पश्यन्तीत्यनेन संबध्यते । किं तज्ज्योतिः पश्यन्ति । वासरमहः... हरिव तत्सर्वतो व्याप्तं ब्रह्मणो ज्योतिः । निवृत्तचक्षुषो ब्रह्मविदो ब्रह्मचर्यादिनिवृत्ति...

"आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् । परो यदिध्यते दिवि" इति मन्त्र... प्रतीकग्रहणमादित्प्रत्नस्य रेतस इति, तत्पदच्छेदपूर्वकं व्याचष्टे—आदित्यादिना । इच्छब्दश्चानर्थक इ... पूर्वेण संबन्धः । किं तत्कारणमित्यपेक्षायां सदेव सोम्येदमित्यादिश्रुतिसिद्धं ब्रह्मेत्याह—सदाख्यस्येति... आनन्दं ब्रह्मणो विद्वानितिवत्प्रत्नस्य ज्योतिरिति संबन्धो द्रष्टव्यः । उत्सृष्टानुबन्धो ध्वस्ततकारः स इ... यावत् । ननु ब्रह्मस्वरूपभूतमेतज्ज्योतिर्नैव सर्वे पश्यन्तो दृश्यन्ते तत्राऽऽह—निवृत्तचक्षुष इति... निवृत्तानि विमुखीकृतानि विषयेभ्यश्चक्षूंषि करणानि येषां ते तथा । अत एव ब्रह्मविदः, "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" इति श्रुत्यन्तरम् । तत्रैवोपायान्तरं सूचयति—ब्रह्मचर्यादीति ।

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्"

मन्त्र में 'आदित्' शब्द में आकार का अनुबन्धक तकार एवं 'इत्' शब्द व्यर्थ ही है; जो छन्द... पूर्ति के लिए है । विषयों से पराङ्मुख की हुई इन्द्रियों वाले ब्रह्मवेत्ता अष्टाङ्गमैथुन से उदासीन... ब्रह्मचर्यादि निवृत्तिप्रधान साधनों से शुद्ध अन्तःकरण से युक्त ही उस ज्योति को सम्यक्रूप से देखते हैं... अत्यन्त पुरातन जगत् के कारणभूत प्रकाश को देखते हैं । 'आ'शब्द तकारानुबन्ध लोप वाला है...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधनैः शुद्धान्तःकरणा आ समन्ततो ज्योतिः पश्यन्तीत्यर्थः।

परः परमिति लिङ्गव्यत्ययेन, ज्योतिष्परत्वात्। यद्दिध्यते दीप्यते दिविद्योतनवति परस्मिन्ब्रह्मणि वर्तमानम्। येन ज्योतिषेद्धः सविता तपति चन्द्रमा भाति विद्युद्विद्योतते ग्रहतारागणा विभासन्ते।

किंचान्यो मन्त्रदृगाह यथोक्तं ज्योतिः पश्यन्। उद्वयं तमसोऽज्ञानलक्षणात्परस्तादिति शेषः। तमसो वाऽपनेतृ यज्ज्योतिरुत्तरमादित्यस्थं परिपश्यन्तो वयमुदगन्मेति व्यवहितेन संबन्धः। तज्ज्योतिः स्वः स्वमात्मीयमस्मद्धृदि स्थितम्। आदित्यस्थं च तदेकं ज्योतिः। यदुत्तरमुत्कृष्टतरमूर्ध्वतरं वाऽपरं ज्योतिरपेक्ष्य पश्यन्त उदगन्म वयम्। कमुदगन्मेत्याह। देवं द्योतनवन्तं देवत्रा देवेषु सर्वेषु सूर्यं रसानां रश्मीनां

[इत्युक्तं] ब्रह्मचर्यम्। आदिपदेना[1]हिंसास्तेयादयो गृह्यन्ते। एतैर्निवृत्तिप्रधानैः साधनैः शुद्धमुद्दीपितमन्तःकरणं येषां ते तथा। व्यत्यये हेतुमाह—ज्योतिष्परत्वादिति। यत्स्वमहिमप्रतिष्ठितं दीप्यते तत्परं ज्योतिरिति संबन्धः। दीप्यमानत्वं विवृणोति—येनेति।

मन्त्रान्तरमवतारयति—किंचेति। इतश्च विद्यास्तुत्यर्थेति यावत्। किमाहेत्यपेक्षायां द्वितीयं मन्त्रमादत्ते—उद्वयमिति। तं व्याकरोति—तमस इत्यादिना। [2]तस्यैव ज्योतिषः प्रधाने ज्योतिर्नान्यदस्तीत्यर्थः। [3]देवत्वेन प्रत्यगात्मत्वमाह—स्व इति। तयोरेकत्वं स यश्चायमित्यादिषु श्रुत्यन्तरसिद्धं दर्शयति—आदित्यस्थमिति। तत्पदार्थं त्वंपदार्थं चोक्त्वा तयोरैक्यमुक्तमिदानीमेकीभूतं ज्योतिर्विशिनष्टि—यदुत्तरमिति। एकत्वधीफलं कथयति—पश्यन्त इति। फलमेव प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—

जिसका मन्त्र के 'पश्यन्ति' पद से संबन्ध है। वह ज्योति ब्रह्मस्वरूपभूत ज्योति है जो हर समय सर्वत्र व्याप्त है। छान्दस प्रयोग होने से 'परः' शब्द का 'परम्' प्रयोग लिङ्गव्यत्यास से किया है क्योंकि नपुंसकलिङ्ग ज्योतिशब्द परे है। जो अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता हुआ द्युलोक में प्रकाशित है, प्रकाशस्वरूप परब्रह्म में भी विराजित है; वह परं ज्योति है। इस ज्योति से शक्ति पाकर प्रदीप्त हुआ सूर्य तपता है, चन्द्रमा प्रकाशित होता है, बिजली चमकती है, ग्रह-तारागण प्रकाशमान होते हैं।

इतना ही नहीं; दूसरा मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहता है कि विद्या के प्रभाव से ज्योति को देखते हैं। वह ज्योति अज्ञान लक्षण अन्धकार से परे है। अज्ञानान्धकार को मिटाने वाली विलक्षण ज्योति को आदित्य में स्थित देखते हुए हम उसे प्राप्त हो गए हैं इसका आगे से संबन्ध है। वह ज्योति बाहर दृष्टिगोचर नहीं होती; वह तो अपनी आत्मा होकर हमारे हृदय में स्थित है। जिससे उत्कृष्ट अथवा सर्वोच्च ज्योति को देखते हुए हम एकत्व को प्राप्त हो गए हैं। उसी को श्रुति कहती है—जो सभी देवताओं में प्रकाशमान है एवं रसयुक्त रश्मियों से जगत् के प्राणियों में प्राणों का संचार करता है, एवं जो सभी ज्योतियों से उत्कृष्ट ज्योति है; ऐसी महान् आदित्यरूप ज्योति को हम प्राप्त हो गए हैं।

१. अहिंसेति। तथा च सूत्रम्—अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा इति। २. उत्तरमित्यस्यार्थमाह—तस्यैवेत्यादिना। ३. देवत्वेनेति—न हि बहिर्दृश्यमानमण्डलात्मनेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्याष्टदशः खण्डः)

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च ॥१॥

मन आदि में अध्यात्म और अधिदैव दृष्टि से ब्रह्म की उपासना

'मन ब्रह्म है' ऐसी उपासना करे, यह आत्मविषयक दर्शन है। इसके बाद अब देवताविषयक दर्शन कहते हैं। आकाश ब्रह्म है (ऐसी उपासना करे) इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों प्रकार की ब्रह्म दृष्टि के विषय में उपदेश किया गया। (मन से ब्रह्म उपलब्ध होता है तथा आकाश सर्वव्यापक सूक्ष्म और उपाधि हीन है, इसीलिये ये दोनों ही ब्रह्म दृष्टि के योग्य हैं) ॥ १ ॥

प्राणानां च जगत ईरणात्सूर्यस्तमुदगन्म गतवन्तो ज्योतिरुत्तमं सर्वज्योतिर्भ्य उत्कृष्टतममहो प्राप्ता वयमित्यर्थः। इदं तज्ज्योतिर्यदृग्भ्यां स्तुतं यद्यजुस्त्रयेण प्रकाशितम्। द्विरभ्यासो यज्ञकल्पनापरिसमाप्त्यर्थः ॥७।

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

मनोमय ईश्वर उक्त आकाशात्मेति च ब्रह्मणो गुणैकदेशत्वेन। अथेदानीं मनआकाशयोः समस्तब्रह्मदृष्टिविधानार्थ आरम्भो मनो ब्रह्मेत्यादि। मनो मनुतेऽनेनेत्यन्तःकरणं तद्ब्रह्म परमित्युपासीतेति एतदात्मविषयं दर्शनमध्यात्मम्। अथाधिदैवतं देवताविषयमिदं वक्ष्यामः। आकाशो ब्रह्मेत्युपासीत। एवमुभयमध्यात्ममधिदैवतं

कर्मित्यादिना। फलविषयं स्वानुभवं दर्शयति—अहो इति। मन्त्राणां मन्त्रयोश्चैकवाक्यत्वमुपसंहरति—इदं तदिति ॥७॥

इति तृतीयाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

ननु यज्ञविज्ञानेन वक्ष्यमाणविज्ञानस्य न संगतिरस्तीति कथं पौर्वापर्यमित्याशङ्क्यानन्तरखण्डस्य व्यवहितेन संबन्धमाह—मनोमय इति। इति चेश्वर उक्त इति पूर्वेण संबन्धः। तत्र ब्रह्मणो गुणयोरेकदेशत्वेन मन आकाशश्चोक्त इत्याह—ब्रह्मण इति। यथोक्तगुणकब्रह्मदृष्टयसमर्थस्य तयोरेव संपूर्णब्रह्मदृष्टिकथनार्थमुत्तरग्रन्थमवतारयति—अथेति। एवमुभयमुपदिष्टं भवतीति संबन्धः। तदेवोभयं

यह वही ज्योति है, जिसकी दो ऋक्मन्त्रों से स्तुति की गई है एवं जिसका तीन यजुष् मन्त्रों द्वारा निरूपण किया गया है, इससे इन पाँचों मन्त्रों की एकवाक्यता सिद्ध हो जाती है। मन्त्र में "ज्योतिरुत्तमम्" की द्विरुक्ति यज्ञकल्पना का प्रसङ्ग समाप्त करने के लिए है ॥ ७ ॥

ब्रह्म के गुणों का एकदेश रूप से श्रुति ने वर्णन किया कि ईश्वर मनोमय एवं आकाशात्मा है। प्रस्तुत मन्त्र में 'मन की ब्रह्मरूप से उपासना करे' इत्यादि मन और आकाश में सम्पूर्ण ब्रह्मदृष्टि के विधान का उपक्रम किया जाता है। जिससे मनन किया जाता है, वह मन ही अन्तःकरण है। 'वह परब्रह्म है,' इस भावना से मन की उपासना करे, वह अध्यात्मदर्शन है। अब देवताविषयक अधिदैवत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म वाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्ममथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमेवाऽऽदिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च ॥ २ ॥

वह यह (मनः संज्ञक) ब्रह्म चार पाद वाला है; वाक् पाद है, प्राण पाद है, नेत्र पाद है और श्रोत्र पाद है। यह अध्यात्म दृष्टि है। अब अधिदैव दृष्टि कहते हैं—अग्नि पाद है, वायु पाद है, आदित्य पाद है और दिशाएँ पाद हैं। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों प्रकार के चतुष्पाद ब्रह्म का उपदेश किया गया है ॥ २ ॥

चोभयं ब्रह्मदृष्टिविषयमादिष्टमुपदिष्टं भवति। आकाशमनसोः सूक्ष्मत्वात्। मनसोपलभ्यत्वाच्च ब्रह्मणो योग्यं मनो ब्रह्मदृष्टेः। आकाशश्च सर्वगतत्वात्सूक्ष्मत्वादुपाधिहीनत्वाच्च ॥१॥

तदेतन्मनआख्यं चतुष्पाद्ब्रह्म, चत्वारः पादा अस्येति। कथं चतुष्पात्त्वं मनसो ब्रह्मण इत्याह—वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमित्येते पादा इत्यध्यात्मम्। अथाधिदैवतमाकाशस्य ब्रह्मणोऽग्निर्वायुरादित्यो दिश इत्येते। एवमुभयमेव चतुष्पाद्ब्रह्माऽऽदिष्टं भवत्य-

---

विभजते—अध्यात्ममिति। [1]कथं मनोदृष्टिविषयत्वेनाध्यात्मं मनो ब्रह्मेत्युपासनं विधित्स्यते तत्राऽऽह—मनसेति। तथाऽपि कथं ब्रह्मदृष्टेराकाशं विषयी भवति न हि तेनोपलभ्यते ब्रह्मेत्याशङ्क्याऽऽह—आकाशश्चेति। ब्रह्मदृष्टे[2]र्योग्यमिति पूर्वेण संबन्धः ॥१॥

अध्यात्ममधिदैवतं च विहितस्योपासनस्याङ्गानुचिन्तनं दर्शयति—तदेतदिति। मनसश्चतुष्पात्त्वं प्रश्नपूर्वकं व्युत्पादयति—कथमित्यादिना। आधिदैविकस्याऽऽकाशस्य चतुष्पात्त्वं प्रकटयति—अथेत्यादिना। मनआकाशयोरुक्तं चतुष्पात्त्वं निगमयति—एवमिति। आध्यात्मिकान्पादान्प्रपञ्चयति—

दर्शन कहेंगे। "आकाश ब्रह्म है" इस भावना से उपासना करे। इस प्रकार अध्यात्म एवं अधिदैवत दोनों ही ब्रह्मदृष्टि को विषय करती हैं क्योंकि आकाश और मन ब्रह्म की तरह सूक्ष्म हैं। मन से ब्रह्म की उपलब्धि होने के कारण मन में ब्रह्मदृष्टि करना उपयुक्त ही है। इसी प्रकार सर्वव्यापक, सूक्ष्म एवं रूपादि शून्य होने से आकाश ब्रह्म है ॥ १ ॥

इस मनसञ्ज्ञक ब्रह्म के चार पाद हैं। मन ब्रह्म के वाणी, प्राण, चक्षु और श्रोत्र, ये चार पाद हैं; यह अध्यात्म दृष्टि है। इसी प्रकार आकाश ब्रह्म के अग्नि, वायु; सूर्य और दिशाएँ—ये चार पाद हैं; यह अधिदैवत दृष्टि है। इस प्रकार मन एवं आकाश उभयविध ब्रह्म चतुष्पाद है एवं अध्यात्म और अधिदैवत दृष्टि से इसका उपदेश है। आध्यात्मिक पादों में वाणी मन ब्रह्म का पाद है। जिस प्रकार

---

१. कथमिति—अत्र कथं मनसो ब्रह्मदृष्टिविषयत्वं येनाध्यात्ममित्यादिरेव पाठो युक्तः प्रतिभाति। २. योग्य इति, लिङ्गविपरिणामः कार्यः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ३ ॥

वाणी ही मन रूप ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, वह अग्नि रूप ज्योति से प्रदीप्त होता और उष्ण भी करता है। जो इस प्रकार से इनकी उपासना करता है; वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है ॥ ३ ॥

ध्यात्मं चैवाधिदैवतं च तत्र वाग् मनसो ब्रह्मणः पादः[1]। वाचा हि पादेनेव गवादि वक्तव्यविषयं प्रति तिष्ठति। अतो मनसः पाद इव वाक्। तथा प्राणो घ्राणः पादः। तेनापि गन्धविषयं प्रति च क्रामति। तथा चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्येवमध्यात्मं चतुष्पात्त्वं मनसो ब्रह्मणः। अथाधिदैवतमग्निवाय्वादित्यदिश आकाशस्य ब्रह्मण उदर इव गोः पादा विलग्ना उपलभ्यन्ते। तेन तस्याऽऽकाशस्याग्न्यादयः पादा उच्यन्ते। एवमुभयमध्यात्मं चैवाधिदैवतं च चतुष्पादादिष्टं भवति ॥२॥

तत्र वागेव मनसो ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। सोऽग्निनाऽधिदैवतेन ज्योतिशा भाति च दीप्यते तपति च संतापं चौष्ण्यं करोति। अथवा तैलघृताद्याग्नेयाशनेनेद्धा वाग्भाति च

तत्रेति। पादत्वं वाचो व्युत्पादयति— वाचा होति। यथा गवादि गन्तव्यं पादेनैव प्राप्नोति देवदत्तो... वाचैव पादेन वक्तव्यं विषयं प्रतिलभते। तेन तस्या युक्तं पादत्वमित्यर्थः। प्राणस्य वाच इव पादत्वं दर्शयति—तेनापीति। आधिदैविकान्पादान्विवृणोति—अथेति। यथा गोरुदरे पादा लग्ना लक्ष्यन्ते तथाऽऽकाशस्योदर इवाग्न्यादयो लग्ना दृश्यन्ते। तस्मात्तस्य ते पादा इव भवन्तीत्यर्थः। द्विविधपाद-विवरणमुपसंहरति—एवमिति ॥२॥

संप्रत्याध्यात्मिकपादानामाधिदैविकपादैरधिष्ठेयतया संबन्धोऽनुचिन्तनीय इति दर्शयितुमु-पक्रमते—तत्रेति। सोऽग्निनेत्यादेरर्थान्तरमाह—अथवेति। कीर्तियशसोः प्रत्यक्षत्वपरोक्षत्वाभ्यां भेदः ॥३॥

गवादि गन्तव्य मार्ग को पैरों से चलकर पार करती है, इसी प्रकार (देवदत्त भी) वाणी रूप पाद से ही वक्तव्य विषय को जानता है, अतः वाणी मन के पाद के समान है। तथा प्राण अथवा घ्राण पाद है वह भी वाक् की तरह गन्धविषय को अनुभव करता है। इसी प्रकार चक्षु एवं श्रोत्र आत्मसंबन्धी मन ब्रह्म के चार पाद हैं। अधिदैवत दृष्टि से आकाश ब्रह्म के अग्नि, वायु, सूर्य एवं दिशाएँ चार पाद हैं जैसे गाय के उदर में उसके चारों पैर लगे रहते हैं, उसी प्रकार आकाश के उदर में अग्नि आदि चार पाद लगे हुए दिखाई देते हैं, इसी से अग्नि आदि आकाश के पाद कहे जाते हैं। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनों रीति से चतुष्पादी ब्रह्म का उपदेश किया गया है ॥ २ ॥

उनमें दूसरे तीन पादों की अपेक्षा वाक् ही मन ब्रह्म का चतुर्थ पाद है। वह अधिदैवत अग्नि

---

१. इतरपादत्रयापेक्षया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ४ ॥

चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद ॥ ५ ॥

श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद ॥ ६ ॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

प्राण ही मन रूप ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, वह वायु रूप ज्योति से गन्ध को ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित भी होता है। जो ऐसी उपासना करता है, वह कीर्ति (प्रत्यक्ष प्रशंसा) और ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है ॥ ४ ॥

मन नामक ब्रह्म का चतुर्थ पाद नेत्र ही है। वह आदित्यरूप ज्योति से रूप ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित होता है। जो इस प्रकार जानता है, वह कीर्ति, यश तथा ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता है और तपता भी है ॥ ५ ॥

मनोरूप ब्रह्म का श्रोत्र ही चतुर्थ पाद है, वह दिशारूप तेज से शब्द ग्रहण के लिये प्रकाशित होता है और उत्साहित भी होता है। जो ऐसी उपासना करता है वह कीर्ति, यश व ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता और तपता भी है। द्विरुक्ति विद्या की समाप्ति का सूचक है ॥ ६ ॥

॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

तपति च वदनायोत्साहवती स्यादित्यर्थः। विद्वत्फलं भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं यथोक्तं वेद ॥३॥

तथा प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। स वायुना [1]गन्धाय भाति च तपति च।

ज्योति से प्रदीप्त होता है, संताप एवं उष्णता प्रदान करता है। अथवा तैल एवं घी आदि तैजस पदार्थों के सेवन से वाणी उदीप्त होकर भासित होती है, शरीर में उत्साह का संचार करती है। जो विद्वान् इस पूर्वोक्त प्रकार से इनकी उपासना करता है, उसकी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष में प्रशंसा होती है, तथा वह ब्रह्मतेज से प्रकाशित होता और तपता भी है ॥ ३ ॥

इसी प्रकार प्राण ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, वह वायु के द्वारा गन्धग्रहण के लिए प्रकाशित होता

---

१. गन्धग्रहणायेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः)

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत् । तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत

आदित्य और अण्ड दृष्टि से अध्यात्म तथा आधिदैविक उपासना

'आदित्य ब्रह्म है' ऐसा आदेश है; उसी की व्याख्या की जाती है। (उत्पत्ति से पूर्व यह नाम रूपात्मक) जगत् असत् ही था, वह सत् यानी कार्याभिमुख हुआ। वह अंकुरित (हुए बीज के समान

तथा चक्षुरादित्येन रूपग्रहणाय श्रोत्रं दिग्भिः शब्दग्रहणाय। विद्याफलं समानं सर्वं ब्रह्मसंपत्तिरदृष्टं फलं य एवं वेद। द्विरुक्तिर्दर्शनसमाप्त्यर्था ॥४॥५॥६॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

आदित्यो ब्रह्मणः पाद उक्त इति तस्मिन्सकलब्रह्मदृष्टचर्यामिदमारभ्यते—

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेश उपदेशस्तस्योपव्याख्यानं क्रियते स्तुत्यर्थम्। असदव्याकृतनामरूपमिदं जगदशेषमग्रे प्रागवस्थायामुत्पत्तेरासीन्न त्वसदेव। कथमसतः सज्जायेतेत्यसत्कार्यत्वस्य प्रतिषेधात्। नन्विहासदेवेति विधानाद्विकल्पः स्यात्। न, क्रियास्विव

सर्वत्रेत्युभयतः संबध्यते ॥४॥५॥६॥

इति तृतीयाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

खण्डान्तरस्य संगतिमाह—आदित्य इति। तस्येत्यादित्यो गृह्यते। अनभिव्यक्तनामरूपत्वादि प्रायेणासच्छब्दो गौणो व्याख्यातस्तत्रैवकारावष्टम्भेन शङ्कते—नन्विहेति। कथमसतः सज्जायेतेत्य सत्कारणत्वस्य षष्ठे निराकरिष्यमाणत्वात्तत्र सत्कारणं भवतु प्रकृते तु सावधारणादसच्छब्दादसत् कारणं विवक्षितमित्युदितानुदितहोमवद्विकल्प इत्यर्थः। क्रियायाः कर्तृतन्त्रत्वात्तदिच्छया तत्र विकल्पः वस्तुनस्तु सिद्धस्य तदिच्छाननुविधायित्वान्न विकल्पः संभवति। न हि स्थाणुरेव कस्यचिदपेक्षा

है और तपता भी है। इसी प्रकार चक्षु आदित्य के सहयोग द्वारा रूप ग्रहण के लिए, श्रोत्र दिग्देवता के सहयोग से शब्द ग्रहण के लिए प्रकाशित होता है और तपता भी है। उपरोक्त तीनों मन्त्रों में सर्वत्र विद्याफल समान प्रदर्शित किया गया है, जो इस प्रकार उपासना करता है, वह सर्वत्र ब्रह्मसंपत्ति रूप अदृष्ट फल की प्राप्ति करता है ॥४॥५॥६॥

पूर्वमन्त्र में आदित्य को ब्रह्म का पाद बतलाया गया था। उसमें सम्पूर्ण ब्रह्मदृष्टि का विधान करने के लिए आगे का ग्रन्थ प्रारम्भ किया जाता है—

'आदित्य ब्रह्म है' यही उपदेश है। स्तुति के लिए उसी की व्याख्या की जाती है। उत्पत्ति से पूर्वावस्था में यह सम्पूर्ण जगत् अव्याकृत नाम रूप वाला असत् ही था। केवल असत् ही नहीं था। असत् से सत् की उत्पत्ति कैसे हुई क्योंकि असत्कार्यवाद का प्रतिषेध किया गया है (षष्ठ अध्याय में असत्कारणवाद का भी खण्डन किया जाएगा)। इस पर शङ्का होती है—"सूर्य उदित होने पर या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्ड-कपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम् ॥ १ ॥

हो गया। क्रमशः स्थूल होता हुआ जल से अण्डे के रूप में परिणत हो गया। वह एक वर्ष तक वैसा ही पड़ा रहा। तत्पश्चात् (वह पक्षियों के अण्डे के समान) फूट गया। वे दोनों अण्डों के खण्ड रजत तथा स्वर्ण रूप हो गये॥ १ ॥

वस्तुनि विकल्पानुपपत्तेः। कथं तर्हीदमसदेवेति। नन्ववोचामाव्याकृतनामरूपत्वादसदिवासदिति। नन्वेवशब्दोऽवधारणार्थः। सत्यमेवं, न तु सत्त्वाभावमवधारयति। किं तर्हि नामरूपव्याकृतविषये सच्छब्दप्रयोगो दृष्टः। तच्च नामरूपव्याकरणमादित्यायत्तं प्रायशो जगतः। तदभावे ह्यन्धं तम इदं न प्रज्ञायेत किंचनेत्यतस्तत्स्तुतिपरे वाक्ये सदपीदं प्रागुत्पत्तेर्जगदसदेवेत्यादित्यं स्तौति ब्रह्मदृष्टयर्हत्वाय। आदित्यनिमित्तो हि लोके सदिति व्यवहारः। यथाऽसदेवेदं राजकुलं सर्वगुणसंपन्ने पूर्णवर्मणि राजन्यसतीति

पुरुषो भवतीति परिहरति—न क्रियास्विवेति। विकल्पासंभवे वाक्यस्य गतिर्वक्तव्येति पृच्छति—कथमिति। असच्छब्दस्य वा गतिरवधारणस्य वा पृच्छ्यते तत्राऽऽद्यं प्रत्याह—नन्विति। द्वितीयं शङ्कते—नन्वेवशब्द इति। तस्य का गतिरिति शेषः। पूर्वकालीनसत्त्वाभिधायकासीच्छब्दस्य वाक्यशेषे श्रवणान्नोपक्रमे च(ऽपि) सत्त्वाभावावधारणं विवक्षितं किंत्वभिव्यक्त्यभावावधारणमादित्यस्तुत्यर्थमिति समाधत्ते—सत्यमेवमिति। क्व पुनरियमादित्यस्तुतिरुपयुज्यते तत्राऽऽह—ब्रह्मदृष्टीति। जगतो नामरूपव्याकरणमादित्यायत्तमिति तदुपपादयति—आदित्येति। तथाऽपि कथमादित्यस्तुतिरित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन दर्शयति—यथेति। किंचोपक्रमोपसंहारैकरूप्येणाऽऽदित्ये ब्रह्मदृष्टिविधिपरमिदं

करे अथवा सूर्योदय होने से पूर्व याग करे" इस प्रकार उदितानुदितहोम के समान यहाँ भी विकल्प मान लो कि असत् से असत् कार्य की उत्पत्ति होती है। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि क्रिया में ही विकल्प होता है, वस्तु में नहीं। विकल्प संभव न होने से असत् ही था, इसकी संगति कैसे होगी। (असत् शब्द गति अथवा अवधारणार्थक होने से प्रथम अर्थ की विवेचना करते हैं—) ऐसा कह लो कि अव्याकृत नाम और रूप होने से असत् के सदृश असत् है। दूसरी शङ्का होती है—मन्त्र में 'एव' शब्द अवधारणार्थक है, ऐसा अर्थ ठीक ही है क्योंकि सत्त्वाभाव का निश्चय करना अभीष्ट नहीं है, बल्कि अभिव्यक्ति के अभाव का अवधारण ही इष्ट है। तो क्या, नाम-रूप व्याकृत विषय में 'सत्' शब्द का प्रयोग देखा जाता है। जगत् में प्रायः ऐसा होता है कि समस्त नाम-रूप विकार आदित्य के अधीन हैं। इसके अभाव में जगत् में सर्वत्र घोर अन्धकार हो जाए, कुछ न पहचाना जाए, इसलिए आदित्य के स्तुतिपरक वाक्य में जगत् की सृष्टि से पूर्व सत् होते हुए भी असत् ही था, यह ब्रह्मदृष्टि-सम्पादन के लिए आदित्य की स्तुति की है। जगत् का नाम-रूप विकार आदित्य के अधीन होने से लोकव्यवहार में सत् की अनुभूति होती है। जिस प्रकार राजकुल के सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी पूर्णवर्मा राजा के न होने पर सब कुछ असत् ही है, उसी प्रकार आदित्य की स्तुति है। इतना ही नहीं,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्यद्रजत ँ सेयं पृथिवी यत्सुवर्ण ँ सा द्यौर्यज्जरायु

उनमें जो रजतमय खण्ड था, वही यह पृथिवी (रूप से उपलक्षित नीचे का भाग) है...

तद्वत् । न च सत्त्वमसत्त्वं वेह जगतः प्रतिपिपादयिषितमादित्यो ब्रह्मेत्यादेशपरत्वात्, उपसंहरिष्यत्यन्त आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्त इति ।

तत्सदासीत्तदसच्छब्दवाच्यं प्रागुत्पत्तेः स्तिमितमनिस्पन्दमसदिव सत्कार्याभिमुखमीषदुपजातप्रवृत्ति सदासीत्ततो लब्धपरिस्पन्दं तत्समभवदल्पतरनामरूपव्याकरणेनाङ्कुरीभूतमिव बीजम् । ततोऽपि क्रमेण स्थूलीभवत्तदद्भ्य आण्डं [1]समवर्तत संवृत्तम् आण्डमिति दैर्घ्यं छान्दसम् । तदण्डं संवत्सरस्य कालस्य प्रसिद्धस्य मात्रां परिमाणम् अभिन्नस्वरूपमेवाशयत स्थितं बभूव । ततः संवत्सरपरिमाणात्कालादूर्ध्वं निरभिद्यत निर्भिन्नं वयसामिवाण्डम् । तस्य निर्भिन्नस्याण्डस्य कपाले द्वे रजतं च सुवर्णं चाभवतां संवृत्ते ॥१॥

तत्तयोः कपालयोर्यद्रजतं कपालमासीत्सेयं पृथिवी पृथिव्युपलक्षितमधोऽण्डकपालं...

वाक्यं न तस्य कारणासत्त्वे तात्पर्यं कल्पयितुं शक्यमनन्यथासिद्धकल्पकाभावादित्याह—न चेति। तत्परत्वं कथमवगतमित्याशङ्क्योपसंहारस्योपक्रमानुसारित्वादित्याह—उपसंहरिष्यतीति ।

कथं तस्यासच्छब्दवाच्यत्वं तदाह—स्तिमितमिति । सत्त्वं तर्हि कथमिति तदाह—कार्याभिमुखमिति बीजस्योच्छूनतावत्कारणस्य सिसृक्षावस्थां दर्शयति—ईषदिति । लब्धपरिस्पन्दं प्राप्तपरिणामं सद्भूतसूक्ष्माकारेणाभवदित्यर्थः । सूक्ष्मभूतोत्पत्त्यनन्तरं स्थूलभूतोत्पत्तिमाह—ततोऽपीति । भूतसूक्ष्माकारप्राप्तेरनन्तरं पञ्चीकरणप्रक्रिययाऽन्योन्यावयवानुप्रवेशेन स्थूलभूतावस्थमासीदित्यर्थः । स्थूलेभ्यो भूतेभ्योऽण्डनिर्वृत्तिं प्रतिजानीते— अद्भ्य इति । अप्सहितेभ्यो भूतेभ्य इत्यर्थः ॥१॥

उपक्रम और उपसंहार में एकरूपता से आदित्य में ब्रह्मदृष्टि का विधान करने वाले इस श्रुतिवाक्य का तात्पर्य जगत् का कारण सत्त्व अथवा असत्त्व प्रतिपादन करना नहीं । तभी तो उपसंहार में उपक्रम के अनुरूप ही कहा है—जो उपासक इस आदित्य ब्रह्म की उपासना करता है, उसे सुन्दर घोष आ जाते हैं एवं वे उसे सुख देते हैं ।

जगत् की उत्पत्ति से पूर्व असत् शब्द वाच्य गतिहीन एवं निश्चल असत् की तरह कारण सृष्टि के समय स्थिति सत् कार्याभिमुखी होने की थी । अतः जिस प्रकार बीज अङ्कुरीभूत हो जाता है, उसी प्रकार परिणाम को प्राप्त हुआ सत् भूतसूक्ष्माकार से हुआ । सूक्ष्म भूतों की उत्पत्ति के अनन्तर पञ्चीकरण प्रक्रिया से स्थूल भूतों की उत्पत्ति हुई । फिर जलसहित भूतों से अण्ड की निवृत्ति हुई । मन्त्र में "आण्ड" शब्द में अकार दीर्घ छान्दस है । वह अण्ड एक वर्ष की अवधि पर्यन्त अभिन्न परिमाण रूप से पड़ा रहा । इसके बाद एक वर्ष पश्चात् पक्षियों के अण्डे के समान वह टूट गया। उस फूटे हुए अण्डे के दोनों भाग चाँदी और सोने के रूप में परिणत हो गये ॥ १ ॥

1. निरवर्ततेति बुक्तम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते पर्वता यदुल्बꣳ समेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳ स समुद्रः ॥ २ ॥

अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः ॥ ३ ॥

जो स्वर्णमय खण्ड था, वह द्युलोक है। उस अण्डे का जो स्थूल गर्भ वेष्टन था, वह पर्वत समूह हुआ। जो सूक्ष्म गर्भ वेष्टन था, वह मेघों के सहित कुहरा हुआ। जो उत्पन्न हुए गर्भस्थ शरीर में रक्त वाहिनी नाड़ियाँ थीं, वे नदियाँ हुईं और जो उसके मूत्राशय में जल था, वह समुद्र हुआ ॥ २ ॥

फिर गर्भ से जो उत्पन्न हुआ, वह यह आदित्य है। उस आदित्य के उत्पन्न होने पर सुदूर व्यापी शब्द उत्पन्न हुआ तथा उसी से सभी स्थावर जंगम जीव और उसके अन्न-वस्त्रादि विषय भोग उत्पन्न हुए। इसीलिये आज भी सूर्यदेव उदय और अस्त होने पर (सम्पूर्ण भूत और सारे भोग) घोष शब्द युक्त उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

मित्यर्थः। यत्सुवर्णं कपालं सा द्यौर्द्युलोकोपलक्षितमूर्ध्वं कपालमित्यर्थः। यज्जरायु गर्भपरिवेष्टनं स्थूलमण्डस्य द्विशकलीभावकाल आसीत्ते पर्वता बभूवुः। यदुल्बं गर्भपरिवेष्टनं तत्सह मेघैः समेघो नीहारोऽवश्यायो बभूवेत्यर्थः। या गर्भस्य जातस्य देहे धमनयः शिरास्ता नद्यो बभूवुः। यत्तस्य वस्तौ भवं वास्तेयमुदकं स समुद्रः ॥२॥

अथ यत्तदजायत गर्भरूपं तस्मिन्नण्डे सोऽसावादित्यस्तमादित्यं जायमानमनु-घोषाः शब्दा उलूलव उरूरवो विस्तीर्णरवा उदतिष्ठन्नुत्थितवन्त ईश्वरस्येवेह प्रथम-पुत्रजन्मनि सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि सर्वे च तेषां भूतानां कामाः काम्यन्त

अवश्यायशब्देन हिममुच्यते ॥२॥

उलूलव इत्युत्सवकालीनाः शब्दविशेषे देशविशेषा प्रसिद्धाः। स्त्रीवस्त्रान्नादय उदतिष्ठन्निति

उन दोनों खण्डों में जो रजतखण्ड था; वही पृथिवी से उपलक्षित नीचे का अण्ड कपाल है। तथा जो सुवर्णखण्ड था; वह द्युलोक से उपलक्षित ऊपर का अण्ड कपाल है। उस अण्डे का जो स्थूल गर्भपरिवेष्टन द्विभाग होने के समय था, वे पर्वत हुए। जो गर्भपरिवेष्टन था, वह मेघों के सहित हिम हुआ। एवं जो उत्पन्न हुए गर्भ के शरीर में नाड़ियाँ थीं; वे नदियाँ हुईं। एवं जो पेड़ू संबन्धी जल था, वही समुद्र है ॥ २ ॥

उस अण्ड से जो गर्भ उत्पन्न हुआ, वह यह आदित्य है। आदित्य के उत्पन्न होने पर उत्सव-कालीन सुदूरव्यापी शब्दविशेष उलूलव उत्पन्न हुए। ईश्वर के प्रथम पुत्र जन्म के अवसर पर यहाँ सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी एवं उनके स्त्री, वस्त्र-अन्नादि विषय भोग उत्पन्न हुए। आदित्य की सृष्टि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳ साधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन् ॥ ४ ॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति च्छान्दोग्योपनिषद्ब्राह्मणे तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

वह जो भी कोई ऐसे महिमा वाले आदित्य को इस प्रकार जानने वाला ब्रह्म समझकर उपासना करता है (वह उस उपासना से आदित्य स्वरूप ही हो जाता है तथा) उस उपासक के समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आ जाते हैं और उसे सुख भी देते हैं। द्विरुक्ति अध्याय समाप्ति और आदर के लिये है ॥ ४ ॥

॥ इति तृतीयाध्यायः, एकोनविंशः खण्डः ॥

इति विषयाः स्त्रीवस्त्रान्नादयः । यस्मादादित्यजन्मनिमित्ता भूतकामोत्पत्तिस्तस्मादद्यत्वेऽपि तस्याऽऽदित्यस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रत्यस्तगमनं च प्रत्यथवा पुनः पुनः प्रत्यागमनं प्रत्यायनं तत्प्रति तन्निमित्तीकृत्येत्यर्थः । सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा घोषा उलूलवश्चानूत्तिष्ठन्ति । प्रसिद्धं ह्येतदुदयादौ सवितुः ॥३॥

स यः कश्चिदेतमेवं यथोक्तमहिमानं विद्वान्सन्नादित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते स तद्भावं प्रतिपद्यत इत्यर्थः । किंच दृष्टं फलमभ्याशः क्षिप्तं तद्विदो यदिति क्रियाविशेषणमेनमेवंविदं साधवः शोभना घोषाः । साधुत्वं घोषादीनां यदुपभोगे पापानुबन्धाभावः । आ च

पूर्वेण संबन्धः । किमत्र प्रमाणमित्याशङ्क्याऽऽह—प्रसिद्धं हीति । एतदिति भूताद्युत्थानम् ॥३॥

अदृष्टफलमाहृयोक्त्वा[1] दृष्टफलमाचष्टे—किंचेति । तद्विदो दृष्टफलमिति संबन्धः । क्रियाविशेषणमिति । एवंविदं साधवो घोषा आगच्छेयुरिति यत्तत्क्षिप्रमप्रतिबन्धेनैवेत्यर्थः । आदित्ये ब्रह्मदृष्टि-

---

के साथ-साथ ही प्राणियों एवं विषयों की उत्पत्ति होती है, इसलिए आजतक भी प्रतिदिन उस आदित्य के उदय और अस्त होने के समय समस्त भूत एवं सभी भोग उरूरव शब्द सहित उत्पन्न होते हैं। आदित्य के उदय होने पर प्राणी उठ जाते हैं—ऐसा प्रसिद्ध ही है ॥ ३ ॥

जो भी कोई विद्वान् पूर्वोक्त महिमा वाले आदित्य ब्रह्म की उपासना करता है, वह ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, इस विद्या के वेत्ता को दृष्टफल एवं सुन्दर शब्द शीघ्र ही प्राप्त हो जाते हैं। मन्त्र में "यद्" शब्द क्रियाविशेषण है। सुन्दर शब्दों का सुनना पापानुबन्ध के अभाव का

---

१. आहृत्योपरिष्टान्मेलयित्वेत्यर्थः सामर्थ्यादिति वा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गच्छेयुरागच्छेयुश्चोप च निम्रेडेरन्नुपनिम्रेडेरंश्च न केवलमागमनमात्रं घोषाणामुपसुखयेयुश्चोपसुखं च कुर्युरित्यर्थः। द्विरभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थ आदरार्थश्च ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य
श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥३॥

रादरस्य विषयः ॥४॥

इति तृतीयाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां छान्दोग्यभाष्यटीकायां तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥३॥

द्योतक है। केवल सुन्दर घोष आते ही नहीं बल्कि उसे सुखी भी करते हैं। मन्त्र में 'निम्रेडेरन्' यह द्विरुक्ति अध्यायसमाप्ति एवं आदर के लिए है ॥ ४ ॥

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषत् में तृतीयाध्यायस्थ शांकरभाष्य की डॉ० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः)

ॐ। जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस स ह सर्वत आवसथान्मापयांचक्रे सर्वत एव मेऽत्स्यन्तीति ॥ १ ॥

राजा जानश्रुति और रैक्व की कथा

जनश्रुत के कुल में उत्पन्न उसका पोता ब्राह्मणों को श्रद्धा पूर्वक देने वाला बहुत दानी स्वभाव और भोजनार्थियों के लिये बहुत सा अन्न पकाने वाला प्रसिद्ध राजा था। सभी स्थानों पर लोग मेरा ही अन्न खायेंगे, इस अभिप्राय से जानश्रुति राजा ने सभी दिशाओं में अनेक धर्मशालाएँ बनवा रक्खी थीं ॥ १ ॥

वायुप्राणयोर्ब्रह्मणः पाददृष्टचध्यासः पुरस्ताद्वर्णितः। अथेदानीं तयोः साक्षाद्ब्रह्मत्वेनोपास्यत्वायोत्तरमारभ्यते। सुखावबोधार्थाऽऽख्यायिका विद्यादानग्रहणविधिप्रदर्शनार्था च। श्रद्धान्नदानानुद्धतत्वादीनां च विद्याप्राप्तिसाधनत्वं प्रदर्श्यत आख्यायिकया-

---

आदित्यस्य सूत्रावच्छेदभेदत्वात्तदुपासनानन्तरं सूत्रोपासनमुपन्यस्यते। नन्वध्यात्ममधिदैवं च वायुप्राणयोः सूत्रात्मभूतयोरुपासनं पूर्वाध्यायेऽपि व्याख्यातं तथा च कोऽत्र विशेषो येन तदुपासनं पुनरारभ्यतेऽत आह—वायुप्राणयोरिति। साक्षात्पादकल्पनं विनेति यावत्। ब्रह्मत्वेन 'ब्रह्मकार्यरूपेणेत्यर्थः। विद्येति।

"धर्मार्थौ यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्विधा।
तत्र विद्या न वक्तव्या शुभं बीजमिवोषरे" ॥

इतिस्मृतिमनुसंधाय पुष्कलधनमादाय रैक्वो राज्ञे विद्यां प्रादाज्जानश्रुतिश्च शास्त्रार्थं ज्ञात्वा पुष्कलधनं दत्त्वैव श्रद्धादिसंपन्नस्ततो विद्यामाददौ। तथाऽन्योऽपि विद्याया दाता ग्रहीता वा स्यादिति तद्दानग्रहणयोर्विधिप्रदर्शनार्था चाऽऽख्यायिकेत्यर्थः। ननु षट्शतानि गवामित्यादिदर्शनाद्धनदानमेव विद्याग्रहणे साधनमिह प्रतीयते न तु श्रद्धादीत्याशङ्क्याऽऽह—श्रद्धेति। आदिपदेन तात्पर्यप्रणिपातादयो गृह्यन्ते। आख्यायिकया तदु ह पुनरेवेत्यादिलक्षणयेति यावत्। जनश्रुतस्य पुत्रो यस्तस्य पौत्रः

अध्यात्म और अधिदैवत वायु प्राण की सूत्रात्मभूत रूप से उपासना पिछले अध्याय में वर्णित की गई। अब पादकल्पना के बिना उनकी साक्षात् कार्यब्रह्मरूप से उपासना प्रारम्भ की जाती है। यह आख्यायिका सुख से परमतत्त्व अवबोध हो जाए एवं विद्यादान ग्रहण का विधान प्रदर्शन किया जा सके; इसके लिए है। इस आख्यायिका के माध्यम से विद्या प्राप्ति के साधन प्रदर्शित किए गए हैं कि श्रद्धा, धनदान, अनुद्धता, प्रणिपातादि ही विद्याग्रहण के साधन हैं।

---

१. कार्यब्रह्मरूपेणेति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳ हꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षीस्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति ॥ २ ॥

उसी समय रात्रि में उधर से हंस उड़ गये (अर्थात् उसके अन्न दान से संतुष्ट हो देवता लोग हंस रूप धारण कर राजा के दृष्टिगोचर हुए)। उनमें से एक हंस ने उड़ते हुए दूसरे हंस से कहा—अरे ओ भल्लाक्ष ! जानश्रुति पौत्रायण की अन्नदान जनित प्रभाव से उत्पन्न हुई कान्ति द्युलोक के समान फैली हुई है। तू उसका स्पर्श न कर, कदाचित् वह ज्योति तुझे भस्म न कर डाले ॥ २ ॥

जानश्रुतिर्जनश्रुतस्यापत्यम् । ह ऐतिह्यार्थः । पुत्रस्य पौत्रः पौत्रायणः स एव श्रद्धादेयः श्रद्धापुरःसरमेव ब्राह्मणादिभ्यो देयमस्येति श्रद्धादेयः । बहुदायी प्रभूतं दातुं शीलमस्येति बहुदायी । बहुपाक्यो बहु पक्तव्यमहन्यहनि गृहे यस्यासौ बहुपाक्यः । भोजनार्थिभ्यो बह्वस्य गृहेऽन्नं पच्यत इत्यर्थः । एवंगुणसंपन्नोऽसौ जानश्रुतिः पौत्रायणो विशिष्टे देशे काले च कस्मिंश्चिदास बभूव । स ह सर्वतः सर्वासु दिक्षु ग्रामेषु नगरेषु चाऽऽवसथानेत्य वसन्ति येष्वित्यावसथास्तान्मापयांचक्रे कारितवानित्यर्थः । सर्वत एव मे ममान्नं तेष्वावसथेषु वसन्तोऽत्स्यन्ति भोक्ष्यन्त इत्येवमभिप्रायः ॥१॥

तत्रैवं सति राजनि तस्मिन्घर्मकाले हर्म्यतलस्थेऽथ ह हंसा निशायां रात्रावतिपेतुः । ऋषयो देवता वा राज्ञोऽन्नदानगुणैस्तोषिताः सन्तो हंसरूपा भूत्वा राज्ञो दर्शन-

---

पौत्रायणः स च प्रकृतो जानश्रुतिरेवेत्याह—पुत्रस्येति । श्रद्धया देयस्याल्पत्वशङ्कां वारयति—बहुदायीति । बहुपाकस्य फलमाह—भोजनेति । उक्तस्य राज्ञो वर्तमानत्वाभावादसत्त्वमाशङ्क्योक्तमेवमिति । स्वसमीपं प्राप्तेभ्य एवार्थिभ्योऽसावन्नं ददातीत्याशङ्क्याऽऽह—स हेति ॥१॥

विशिष्टान्नदानफलं दर्शयितुमारभते—तत्रेति । वाक्यार्थं दर्शयति—ऋषय इति । संबोधना-

---

प्राचीनकाल में किसी समय जानश्रुत का पौत्र राजा किसी देश में निवास करता था। वह ब्राह्मणादिकों को श्रद्धापूर्वक बहुत दान किया करता था। उसके घर में प्रतिदिन बहुत-सा भोजन पका कर भोजनार्थियों को खिलाया जाता था। दूर-दूर दिशाओं, ग्रामों और नगरों में उसने रहने के ठिकाने (धर्मशालाएँ) इस अभिप्राय से बनवाए थे ताकि लोग सब जगह से आकर वहीं ठहरेंगे एवं भोजन करेंगे ॥ १ ॥

राजा के पुण्य के प्रभाव से ग्रीष्म ऋतु में महल के ऊपर रात्रि में हंस उड़कर निकल गए। वास्तव में वे ऋषि या देवता थे जो राजा के अन्नदान रूप गुणों से प्रसन्न होकर हंस के रूप को धारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तꣳ सयु-

आगे चलने वाले दूसरे हंस ने उस हंस से कहा—तू किस महत्त्व से युक्त रहने वाले इस रा
के प्रति इस प्रकार सम्मानित वचन कह रहा है (यह बेचारा राजा तो अत्यन्त तुच्छ है, ऐसा कह

गोचरेऽतिपेतुः पतितवन्तः। तत्तस्मिन्काले तेषां पततां हंसानामेकः पृष्ठतः पतन्
पतन्तं हंसमभ्युवादाभ्युक्तवान्हो होऽयीति भो भो इति संबोध्य भल्लाक्ष भल्लाक्षेत्या
दर्शयन्यथा पश्य पश्याऽऽश्चर्यमिति तद्वत्। भल्लाक्षेति मन्ददृष्टित्वं सूचयन्नाह। अथ
सम्यग्ब्रह्मदर्शनाभिमानवत्त्वात्तस्यासकृदुपालब्धस्तेन पीडयमानोऽमर्षितया तत्सूच
भल्लाक्षेनि। जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं तुल्यं दिवा द्युलोकेन ज्योतिः प्रभास्वरम
दानादिजनितप्रभावजमाततं व्याप्तं द्युलोकस्पृगित्यर्थः। दिवाऽह्ना वा समं ज्यो
रित्येतत्। तन्मा प्रसाङ्क्षीः सञ्जनं सक्तिं तेन ज्योतिषा संबन्धं मा कार्षीरित्य
तत्प्रसङ्गेन तज्ज्योतिस्त्वा त्वां मा प्रधाक्षीर्मा दहत्वित्यर्थः। पुरुषव्यत्ययेन मा प्र
क्षीदिति ॥२॥

न्यासस्य विषयमाह—आदरं दर्शयन्निति। तदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति। भल्लाक्षशब्दार्थमाह
भल्लेति। भल्लाक्षशब्दो भद्राक्षविषयः सन्विरुद्धलक्षणया मन्ददृष्टित्वसूचकः। भल्लाक्षशब्द
विषयान्तरमाह—अथवेति। तस्य पृष्ठगामिनो हंसस्य महात्मा नातिक्रमणीयो विजानतेतिसम्यग्दर्श
भिमानशालित्वात्तेनाग्रगामी हंसो जानश्रुतिमतिचिक्रमिषुरमर्षितया पीडयमानः सन्न त्वं धर्मं जाना
ज्ञानाभिमानं तु वहसीत्युपालब्धस्तद् भल्लाक्षेत्युपालम्भस्वरूपं सूचयतीत्यर्थः। पृष्ठगामी हंसो नि
पूर्वकमग्रगामिनं(णं) हंसं संबोध्य किमूचिवानित्यपेक्षायामाह—जानश्रुतेरिति। मा प्रधाक्षी
पाठे कथं मा प्रधाक्षीदित्युच्यते तत्राऽऽह—पुरुषव्यत्ययेनेति। मध्यमपुरुषं प्रथमपुरुषं इ
व्याख्यानमित्यर्थः ॥२॥

कर उस (राजा) की दृष्टि का विषय हुए। उस समय उन उड़ने वाले हंसों में एक पीछे उड़ने व
हंस ने आगे उड़ने वाले हंस से कहा—अरे भल्लाक्ष! अरे ओ भल्लाक्ष! देखो, देखो तो यह आश्चर्य
'भो' सम्बोधन कर भल्लाक्ष पद आदर प्रदर्शन के लिए है। अगले हंस की मन्ददृष्टि सूचना भल्ल
पद देता है। अथवा पीछे उड़ने वाले हंस ने देखा कि आगे उड़ने वाला हंस जानश्रुति महात्मा
अतिक्रमण कर रहा है, इसे न सहन कर पीड़ित मन वाला होकर "तू धर्म का तत्त्व नहीं जानता,
ज्ञानाभिमान को ढो रहा है" इस प्रकार भल्लाक्ष! भल्लाक्ष! कह कर उसे उलाहना दे रहा
जानश्रुति के पौत्र की अन्न-दानादि के पुण्य के प्रभाव से उत्पन्न कान्ति द्युलोक की कान्ति की त
द्युलोक का स्पर्श कर गई है। वह दिन में फैली हुई ज्योति के समान है। उस ज्योति का सम्बन्ध
करते हुए तू कर, कहीं वह ज्योति तुझे भस्म न कर डाले। "मा प्रधाक्षीः" पाठ के स्थान पर मा
"मा प्रधाक्षीत्" पाठ मध्यमपुरुष के स्थान पर प्रथमपुरुष व्यत्यय होने के कारण है॥ २॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ग्वानमिव रैक्वमात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्व इति ॥ ३ ॥

यथा 'कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं

उसका अनादर करता है) क्या तू इसे गाड़ी वाले रैक्व के समान बतलाता है। ऐसा कहने वाले उस हंस से भल्लाक्ष ने पूछा—जिसके विषय में तुम कह रहे हो वह गाड़ी वाला रैक्व कैसा है ? ॥ ३ ॥

जिस प्रकार (लोक में द्यूतक्रीड़ा के समय) कृतनामक पासे से विजय प्राप्त करने वाले पुरुष के अधीन शेष तीन पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ भी सत्कर्म करती है वह सब उस

तमेवमुक्तवन्तं पर इतरोऽग्रगामी प्रत्युवाचारे निकृष्टोऽयं राजा वराकस्तं कमु एनं सन्तं केन माहात्म्येन युक्तं सन्तमिति कुत्सयत्येनमेवं सबहुमानमेतद्वचनमात्थ रैक्वमिव सयुग्वानं सह *युग्वना गन्त्र्या वर्तत इति सयुग्वा रैक्वः। तमिवाऽऽत्थैनम्। अननुरूपमस्मिन्नयुक्तमीदृशं वक्तुं रैक्व इवेत्यभिप्रायः। इतरश्चाऽऽह। यो नु कथं त्वयोच्यते सयुग्वा रैक्व इत्युक्तवन्तं भल्लाक्ष आह शृणु यथा स रैक्वः ॥३॥

यथा लोके कृतायः कृतो नामायो द्यूतसमये प्रसिद्धश्चतुरङ्कः स यदा जयति द्यूते

सन्तमेनं प्राणिमात्रं राजानमधिकृत्य सबहुमानमेतद्वचनमात्थेति कुत्सयतीति संबन्धः। तत्र वैधर्म्यदृष्टान्तमाह—रैक्वमिवेति। युगं वहतीति युग्यो बलीवर्दोऽश्वो वाऽस्यामस्तीति युग्वा शकटी तया सह वर्तत इति सयुग्वा रैक्वः। वकारो मत्वर्थीयः। त्वं रैक्वः ज्ञानमाहात्म्ययुक्तमधिकृत्य प्रशंसावचनं तथा कर्मिणमेनं राजानमधिकृत्य कथमेवमात्थेत्यर्थः। उक्तं वाक्यार्थं संकलयति—अननुरूपमिति। अस्मिन्वराके राजनि धर्ममात्रनिष्ठे नेदमनुरूपं वचनं रैक्वे पुनर्विज्ञानवति यथोक्तं वचो युक्तमेवेति। इतरः पृष्ठगामी हंसः। यः सयुग्वा रैक्वस्त्वयोच्यते स कथं नु स्यादित्यन्वयः ॥३॥

स रैक्वो येन प्रकारेण स्यात्तं प्रकारं शृण्विति प्रतिज्ञाय प्रकारप्रदिदर्शयिषया दृष्टान्तमाह—यथेति। द्यूतस्य समयः संकेतस्तदनुष्ठानकालो वा येन द्यूतविद्यायामेजति सोऽक्षस्तस्य कश्चिद्भागोऽयशब्दवाच्यस्तत्र यश्चतुरङ्को भागश्चत्वारोऽङ्काश्चिह्नान्यस्मिन्निति व्युत्पत्तेः कृतनामव्यवहृतेन यदा द्यूते

पीछे उड़ने वाले हंस से इस प्रकार सुनकर आगे उड़ने वाला हंस बोला—अरे यह बेचारा राजा तो अत्यन्त अल्प महत्त्व का है, आपने इसमें महात्मा के कौन से गुण देखे हैं, जिससे इस कुत्सित राजा के प्रति सम्मानित वचन कह रहे हो। क्या आप इसे गाड़ीवान् महात्मा रैक्व के समान श्रेष्ठ बतला रहे हो। उसे रैक्व के समान कहना अयुक्त है क्योंकि ज्ञान के माहात्म्य से युक्त रैक्व की प्रशंसा कर्मकाण्ड में लिप्त राजा के समान कैसे हो सकती है। पीछे उड़ने वाले हंस ने पूछा—जिस रैक्व के बारे में आप कह रहे हो, वह विज्ञानी रैक्व कैसा है ? इस पर वह बोला—उस रैक्व की चर्चा सुनो, जैसा वह है ॥ ३ ॥

---

१. कृतायेति—कृताय एव सन् कृत मित्युपात्तस्तथा च चतुर्थ्यन्तमिदमित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ४ ॥

कृत स्थानीय उस रैक्व को प्राप्त हो जाता है। वह रैक्व जिस बात को जानता है उसे जो कोई जानता है उसके विषय में भी मैंने फल बतला दिया—(अर्थात् रैक्व के समान ही वह भी कृत पासे के सदृश हो जाता है ॥ ४ ॥

प्रवृत्तानां तस्मै विजिताय तदर्थमितरे त्रिद्व्येकाङ्का अधरेयास्त्रेताद्वापरकलिनाम संयन्ति संगच्छन्तेऽन्तर्भवन्ति। चतुरङ्के कृताये त्रिद्व्येकाङ्कानां विद्यमानत्वात्तदन्त वन्तीत्यर्थः। यथाऽयं दृष्टान्त एवमेनं रैक्वं कृतायस्थानीयं त्रेताद्यायस्थानीयं सर्वं तदभि मैत्यन्तर्भवति रैक्वे। किं तद्यत्किंच लोके सर्वाः प्रजाः साधु शोभनं धर्मजातं कुर्व तत्सर्वं रैक्वस्य धर्मेऽन्तर्भवति। तस्य च फले सर्वप्राणिधर्मफलमन्तर्भवतीत्यर्थः। त ऽन्योऽपि कश्चिद्यस्तद्वेद्यं वेद। किं तद्यद्वेद्यं स रैक्वो वेद। तद्वेद्यमन्योऽपि यो तमपि सर्वप्राणिधर्मजातं तत्फलं च रैक्वमिवाभिसमैतीत्यनुवर्तते। स एवंभूतो विद्वानेतदुक्त एवमुक्तो, रैक्वत्स एव कृतायस्थानीयो भवतीत्यभिप्रायः ॥४॥

प्रवृत्तानां मध्ये स कोऽपि जयति तदा तस्मै कृतनामवते विजितायाधरेयाः संयन्तीति संबन्धः। व्याचष्टे—तदर्थमिति। अधरेयान्व्याकरोति—अधरेया इति। तानेव विशिनष्टि—त्रेतेति। यस्मिन्भागे त्रयोऽङ्काः स त्रेता नामायो भवति। यत्र तु द्वावङ्कौ स द्वापरनामकः। यत्रैकोऽङ्क कलिसंज्ञ इति विभागः। तादर्थ्येनेतराङ्काना(णा)मन्तर्भावमुक्तं व्यक्ती करोति—चतुरङ्क तदन्तर्भवन्ति तस्मिन्कृते त्रेतादयस्तेऽन्तर्भवन्तीति यावत्। महासंख्यायामवान्तरसंख्यान्तर्भावः एवेत्यर्थः। दृष्टान्तमनूद्य दार्ष्टान्तिकमाह—यथेति। रैक्वमभिव्याप्य सर्वं समैतीत्यस्यार्थं संक्षिप्य अन्तर्भवतीति। रैक्वे सर्वस्यान्तर्भावं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—किं तदित्यादिना। तद्धर्मस्य महत्त्वाद च धर्मजातस्यात्पत्वात्तस्येतरस्मिन्नन्तर्भावः संभवतीत्यर्थः। किंच सर्वेषां प्राणिनां धर्मफल यस्त्वान्महत्तरे रैक्वस्य धर्मफलेऽन्तर्भवतीत्याह—तस्य चेति। न केवलं रैक्वस्यैतन्माहा किंत्वन्यस्यापि ज्ञानवतोऽस्तीति जानश्रुतेरनुग्रहार्थमाह—तथेति ॥४॥

जिस प्रकार लोकव्यवहार में द्यूतानुष्ठान काल में प्रसिद्ध 'कृत' नाम पासा चतुरङ्क वाला द्यूतक्रीड़ा में इसे विजय के लिए प्रयुक्त करने पर अन्य तीन, दो और एक अङ्कों वाले त्रेता, द्वापर कलि नाम के पासे उसके अधीन हो जाते हैं क्योंकि तीन, दो और एक अङ्कों वाले पासे 'कृत' चतुरङ्क वाले में विद्यमान रहने से उनका इसी में अन्तर्भाव हो जाता है। इस दृष्टान्त के समान संसार में सम्पूर्ण प्रजा जो भी सुन्दर पुण्य कर्म करती है, वह सब त्रेतादि पासों के 'कृत' पासे में अन्तर्भाव होने के समान ही रैक्व के धर्म में अन्तर्भूत हो जाता है अर्थात् उसके धर्म का महत्त्व है

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्व मात्थेति यो नु कथꣳ सयुग्वा रैक्व इति ॥ ५ ॥

यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳ सर्वं तदभिसमैति यत्किंच प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति ॥ ६ ॥

महल के ऊपर भाग में बैठा हुआ जानश्रुति पौत्रायण ने (अपनी निन्दा रूप और रैक्व आदि की प्रशंसा रूप) इस बात को सुन लिया (हंस की इस बात का स्मरण करते हुए दूसरे दिन प्रातःकाल) निद्रा से उठते ही राजा ने सेवक से कहा—अरे भाई ! तू मुझे गाड़ी वाले रैक्व के समान बतला रहा है (रैक्व को जानने की आकांक्षा राजा के मन में है ऐसा समझकर सेवक ने कहा) जो गाड़ी वाला रैक्व है वह कैसा है ? ॥ ५ ॥ ६ ॥

तदु ह तदेतदीदृशं हंसवाक्यमात्मनः कुत्सारूपमन्यस्य विदुषो रैक्वादेः प्रशंसारूपमुपशुश्राव श्रुतवान्हर्म्यतलस्थो राजा जानश्रुतिः पौत्रायणः । तच्च हंसवाक्यं स्मरन्नेव पौनःपुन्येन रात्रिशेषमतिवाहयामास । ततः स बन्दिभी राजा स्तुतियुक्ताभिर्वाग्भिः प्रतिबोध्यमान उवाच क्षत्तारं संजिहान एव शयनं निद्रां वा परित्यजन्नेव हेऽङ्ग वत्सारे ह सयुग्वानमिव रैक्वमात्थ किं माम् । स एव स्तुत्यर्हो नाहमित्यभिप्रायः । अथवा सयुग्वानं रैक्वमात्थ गत्वा मम तद्दिदृक्षां, तदेवशब्दोऽवधारणार्थोऽनर्थको वा वाच्यः । स

प्रतिपन्नहंसवचनखेदित इतरो राजा रात्रिशेषमतिवाह्य शयनं जहदात्मनः समीपस्थं स्तुतिकर्तारं क्षत्तारमङ्गारे हेत्यादिवाक्यमुक्तवान् । तस्याभिप्रायमाह—स एवेति । कथमिवशब्दो द्वितीये घटते तत्राऽऽह—तदेति । अवधारणस्यापि नोपयोगोऽस्तीति चेत्तत्राऽऽह—अनर्थको वेति । प्रश्नवाक्यं

कारण अन्य धर्मसमूह भी उसकी अपेक्षा अल्प होने से उसका इतर में अन्तर्भाव है । इस वेद्य तत्त्व का रैक्व की तरह अन्य भी जो कोई जानता है, उसे सम्पूर्ण प्राणियों के पुण्य फल समूह का फल प्राप्त हो जाता है । भावाशय यह है—इस प्रकार पूर्वोक्त विद्वान् रैक्व के सदृश 'कृत' स्थानीय पासे की योग्यता प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥

महल में बैठे हुए राजा जानश्रुति पौत्रायण ने उन दोनों हंसों के मुख से अपने लिए अपशब्द एवं विद्वान् रैक्व के लिए प्रशंसा सुनी । उस हंसवाक्य का पुनः-पुनः स्मरण कर खिन्न हो शेष रात्रि व्यतीत की । स्तुति करते हुए वन्दियों द्वारा राजा को उठाए जाने पर वह राजा निद्रा त्याग करते ही उनसे बोला—अरे ! क्या तुम मुझे गाड़ीवान् रैक्व के समान कह रहे हो, वस्तुतः वह स्तुति करवाने योग्य है; मैं नहीं । अथवा गाड़ीवान् रैक्व के पास जाकर कहो कि मुझे उन्हें देखने की इच्छा है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह क्षत्ताऽन्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳ होवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्छेति ॥ ७ ॥

सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳ हाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्व इत्यहꣳ

वह सेवक उस रैक्व की खोज करने के बाद "मैंने रैक्व को नहीं जाना, नहीं पहिचाना" ऐसा कहता हुआ वापिस लौटा। तब राजा ने सेवक से कहा—अरे ! जिस निर्जन स्थान में ब्रह्मवेत्ता की खोज की जाती है, वहाँ इस रैक्व के पास जा और उसे पूछ ॥ ७ ॥

सेवक ने एक गाड़ी के नीचे खाज खुजलाते हुए रैक्व को देखा और वह उसके पास नम्रतापूर्वक बैठ गया। बोला—हे भगवान् ! क्या गाड़ी वाले रैक्व आप ही हैं ? उस पर रैक्व ने कहा—

च क्षत्ता प्रत्युवाच रैक्वानयनकामो राज्ञोऽभिप्रायज्ञो यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इति, राज्ञा चोक्त आनेतुं तच्चिह्नं ज्ञातुमिच्छन्यो नु कथं सयुग्वा रैक्व इत्यवोचत् । स च मल्लाक्ष वचनमेवावोचत् ॥५॥६॥

तस्य स्मरन्स ह क्षत्ता नगरं ग्रामं वा गत्वाऽन्विष्य रैक्वं नाविदं न व्यज्ञासिषमिति प्रत्येयाय प्रत्यागतवान् । तं होवाच क्षत्तारमरे यत्र ब्राह्मणस्य ब्रह्मविद एकान्तेऽरण्ये नदीपुलिनादौ विविक्ते देशेऽन्वेषणाऽनुमार्गणं भवति तत्तत्रैनं रैक्वमर्छ ऋच्छ गच्छ तत्र मार्गणं कुर्वित्यर्थः ॥७॥

इत्युक्तः क्षत्ताऽन्विष्य तं विजने देशेऽधस्ताच्छकटस्य गन्त्र्याः पामानं खर्जूं कषमाणं कण्डूयमानं दृष्ट्वाऽयं नूनं सयुग्वा रैक्व इत्युप समीप उपविवेश विनयेनोपविष्टवान्

व्याचष्टे—राज्ञेति । यो नु कथमित्यादि पूर्ववद्व्याख्येयम् ॥५॥६॥

तस्येति कर्मणि षष्ठी ॥७॥

मन्त्र में 'इव' शब्द निर्धारणार्थक है अथवा अनर्थक है—ऐसा भी कहा जा सकता है। स्तुतिकर्ता बन्दी ने रैक्वविषयक जिज्ञासा के लिए राजा का अभिप्राय जानकर कहा—जो गाड़ीवान् रैक्व है, वह कैसा है ? राजा द्वारा उस रैक्व के चिह्न जानने की इच्छा सुनकर वह आगे उड़ने वाले हंस की तरह प्रशंसासूचक वचन बोला ॥ ५ ॥ ६ ॥

राजा की बात को स्मरण कर वह स्तुतिकर्ता नगर अथवा ग्राम जाकर रैक्व को ढूंढने लगा किन्तु "उसे नहीं पहचाना" ऐसा कहकर लौट आया। उसे निराश आए देखकर राजा ने कहा—अरे बन्दी ! ब्रह्मवेत्ताओं को एकान्त वन, नदी-तटादि निर्जन देश में ढूंढा जाता है, इसलिए तू उन्हीं प्रदेशों में जाकर महात्मा रैक्व की खोज कर ॥ ७ ॥

राजा के इस प्रकार कहे जाने पर बन्दी ने निर्जन देश में उसकी खोजकर देखा कि वह रैक्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताऽविदमिति प्रत्येयाय ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳ हाभ्युवाद ॥ १ ॥

हाँ ! मैं ही हूँ। तब सेवक यह समझ कर लौट आया कि अब मैंने रैक्व को पहिचान लिया ॥ ८ ॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

रैक्व के पास विधिपूर्वक जानश्रुति की उपसत्ति

तब वह पौत्रायण जानश्रुति राजा (उनके अभिप्राय को जानकर) छः सौ गौएँ, एक गले का हार और दो खच्चरियों से जुता हुआ एक रथ लेकर उस रैक्व के पास आया एवं उससे कहा ॥ १ ॥

तं च रैक्वं हाभ्युवादोक्तवान् । त्वमसि हे भगवो भगवन्सयुग्वा रैक्व इति । एवं पृष्टोऽहमस्मि ह्यरा ३ अर इति हानादर एव प्रतिजज्ञेऽभ्युपगतवान् । स तं विज्ञायाविदं विज्ञातवानस्मीति प्रत्येयाय प्रत्यागत इत्यर्थः ॥८॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

तत्त्र ऋषेर्गार्हस्थ्यं प्रत्यभिप्रायं बुद्ध्वा धनार्थितां चो ह, एव जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कं कण्ठहारमश्वतरीरथमश्वतरीभ्यां युक्तं रथं तदादाय

मया हि गार्हस्थ्यं चिकीर्ष्यते तदर्थं च धनमर्थ्यते न चायं तादर्थ्येन किंचिदुपकर्तुमित्याशयेनानादरः । विज्ञातवानस्मि 'यदुक्तलक्षणं रैक्वं तस्य च गार्हस्थ्याभिप्रायं धनार्थित्वं चेति शेषः ॥८॥

इति चतुर्थाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

क्षत्तृवचने श्रुते सतीति सप्तम्यर्थः । धनार्थितां च बुद्ध्वेति पूर्वेण संबन्धः । उहशब्दस्य पूर्ववदत्राप्येवकारोऽर्थः ॥१॥

गाड़ी से अपनी देह खुजला रहा है। निश्चय ही यही गाड़ीवान् रैक्व हैं, ऐसा विचार कर वह उनके समीप विनयपूर्वक बैठ गया एवं उनसे पूछने लगा—हे भगवन् ! क्या आप ही गाड़ीवान् रैक्व हैं। ऐसा पूछने पर रैक्व ने अनादर से स्वीकार किया—अरे ! मैं ही रैक्व हूँ। इस प्रकार जानकर 'मैंने रैक्व को पहचान लिया' इस विश्वास के साथ लौट आया ॥ ८ ॥

राजा जानश्रुति पौत्रायण ने सुना कि ऋषि रैक्व की गृहस्थ करने की इच्छा है एवं उसके

---

१. उपकर्तुं समर्थ इति शेषः । २. यदुक्तेति—तदुक्तेति युक्तं यथोक्तलक्षणमिति यथास्थितार्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रैक्वेमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथोऽनु म एतां भगवो देवताꣳ शाधि यां देवतामुपास्स इति ॥ २ ॥

तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः

हे रैक्व ! मैं (आपके लिये) ये छः सौ गौएँ यह हार और खच्चरियों से जुता हुआ रथ लाया हूँ। (इस धन को आप स्वीकार करें और) हे भगवन् ! मुझे उस देवता का उपदेश करें जिसकी आप स्वयं उपासना करते हैं ॥ २ ॥

उस राजा से रैक्व ने कहा—हे शूद्र ! गौओं के सहित यह हार और रथ तेरे पास ही रहे (अर्थात् मेरी आवश्यकता के लिये यह पर्याप्त नहीं है) तत्पश्चात् फिर से वह जानश्रुति पौत्रायण

धनं गृहीत्वा प्रतिचक्रमे रैक्वं प्रतिगतवान् । तं च गत्वाऽभ्युवाद हाभ्युक्तवान् ॥१॥

हे रैक्व गवां षट् शतानीमानि तुभ्यं मयाऽऽनीतान्ययं निष्कोऽश्वतरीरथश्चायमेतद्धनमादत्स्व भगवोऽनुशाधि च मे मामेतां यां च देवतां त्वमुपास्से तद्देवतोपदेशेन मामनुशाधीत्यर्थः ॥२॥

तमेवमुक्तवन्तं राजानं प्रत्युवाच परो रैक्वः । अहेत्ययं निपातो विनिग्रहार्थीयो[1]ऽन्यत्रेह त्वनर्थकः । एवशब्दस्य पृथक्प्रयोगात् । हारेत्वा हारेण युक्तेत्वा गन्त्री सेयं हारेत्वा गोभिः सह तवैवास्तु तवैव तिष्ठतु न ममापर्याप्तेन कर्मार्थमनेन प्रयोजनमित्यर्थः

॥ २ ॥

अत्रापि विनिग्रहार्थत्वसंभवे किमित्यानर्थक्यमित्याशङ्क्य तवैवेत्येवकारादेव विनिग्रहसिद्धिरित्याह—एवशब्दस्येति । गार्हस्थ्यार्थिनस्तव कर्मानुष्ठानार्थमिदं धनं तिष्ठतादिति चेन्नेत्याह

लिए धन की भी इच्छा है तो छः सौ गाय, सुवर्ण का कण्ठहार, सुन्दर घोड़ियों से जुते रथ एवं धन लेकर रैक्व के दर्शनों के लिए चल पड़ा। उनके समीप जाकर राजा बोला ॥ १ ॥

हे मुनि रैक्व महाराज ! आपके लिए मैं छः सौ गौएँ, सुवर्ण का कण्ठहार, सुन्दर घोड़ियों से जुता रथ एवं धन लेकर आया हूँ। हे भगवन् ! कृपया इसे स्वीकार कर मुझे उपदेश करें कि आप किस देवता की उपासना करते हो ॥ २ ॥

इस प्रकार निवेदन किए जाने पर रैक्व ने राजा को कहा—हे शूद्र ! स्वर्णहार सहित यह गाड़ी, एवं गौओं सहित धन तेरे पास रहे। गृहस्थ के इच्छुक मेरे लिए कर्मप्रयोजक तेरा यह

१: विनिग्रहार्थीय इति—भर्त्सनावद्योतिना निपातेन गम्यमानो निषेधो विनिग्रहस्तस्मिन्नर्थे भव इत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे ॥ ३ ॥

सहस्र गौएँ एक हार खच्चरियों से जुता हुआ रथ तथा (ऋषि की अभीष्ट पत्नीरूप अपनी एक) कन्या लेकर उस रैक्व के पास गया ॥ ३ ॥

भिप्रायो हे शूद्रेति। ननु राजाऽसौ क्षत्तृसंबन्धात्स ह क्षत्तारमुवाचेत्युक्तम्। विद्याग्रहणाय च ब्राह्मणसमीपोपगमाच्छूद्रस्य चानधिकारात्कथमिदमननुरूपं रैक्वेणोच्यते हे शूद्रेति। तत्राऽऽहुराचार्याः—हंसवचनश्रवणाच्छुगेनमाविवेश। तेनासौ शुचा श्रुत्वा रैक्वस्य महिमानं वा द्रवतीति ऋषिरात्मनः परोक्षज्ञतां दर्शयञ्शूद्रेत्याहेति। शूद्रवद्वा धनेनैवैनं विद्याग्रहणायोपजगाम न च शुश्रूषया। न तु जात्यैव शूद्र इति। अपरे पुनरा-

---

न ममेति। शूद्रशब्देन जानश्रुतेः संबोधनमनुचितमिति चोदयति—नन्विति। तस्याशूद्रत्वे हेत्वन्तरमाह—विद्याग्रहणायेति। तस्य 'श्रुतिद्वारा[1] विद्याधिकारो नास्तीत्य'पशूद्राधिकरणे निर्धारितमित्याशयेनाऽऽह—शूद्रस्य चेति। जानश्रुतेः सति क्षत्रियत्वे शूद्रसंबोधनमयोग्यमित्युपसंहरति—कथमिति। न जातिशूद्रो जानश्रुतिः किंतु क्षत्रियोऽस्मिन्गौणः शूद्रशब्द इत्येकीयमतोपन्यासेन परिहरति—तत्रेति[2]। तेन शुगाविष्टत्वेनासौ जानश्रुतिः शुचा हेतुना रैक्वमाद्रवतीति शूद्रः श्रुत्वा वा हंसवाक्यं रैक्वमाद्रवतीति नैमित्तिकं तत्र शूद्रपदमित्यर्थः। तथाऽपि किमिति शूद्रपदेन राजानमृषिः संबोधयतीत्याशङ्क्याऽऽह—ऋषिरिति। उक्तप्रकारद्वयसमाप्ताविति शब्दः। प्रकारान्तरेण जानश्रुतेः शूद्रत्वं गौणं व्युत्पादयति—शूद्रवद्वेति। न च शुश्रूषया तेन शूद्र इति शेषः। मुख्यं शूद्रत्वं क्षत्तृसंबन्धेन व्यावर्तयति—न त्विति। क्षत्रिये जानश्रुतौ शूद्रशब्दप्रवृत्तौ निमित्तान्तरमाह—अपरे पुनरिति। तत्र गमकं दर्शयति—

पर्याप्त नहीं है। मन्त्र में 'अह' पद अन्यत्र भर्त्सनासूचक होते हुए भी यहाँ अनर्थक है क्योंकि 'एव' शब्द का पृथक् प्रयोग हुआ है। ('शूद्र' शब्द से राजा को सम्बोधन करना अनुचित है) इससे शङ्का होती है, शूद्र से संबन्ध होने से क्या राजा को शूद्र कहा। विद्याग्रहण के लिए ब्राह्मण की शरण जाने एवं शूद्र का उसमें अधिकार न होने से रैक्व ने क्षत्रिय राजा को शूद्र कह कर अनुचित संबोधन कैसे किया। इस पर आचार्य विवेचन करते हैं—हंसवचन को सुनकर राजा में जाति से शूद्र न होते हुए भी शूद्रत्व का प्रवेश हो गया था। शूद्रभाव के आविष्ट हो जाने से शोकाकुल जानश्रुति रैक्व को द्रवित करता है अथवा हंसवचन से शूद्र सुनना रैक्व को द्रवित करता है. इस प्रकार होने पर भी ऋषि ने अपनी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष वार्ता को देखकर उसके प्रति शूद्र कहा। (प्रकारान्तर से शूद्रत्व की गौणता स्वीकार करते हैं—) शूद्र न होते हुए भी यह शूद्र की तरह धन से ही विद्याग्रहण के लिए मेरे पास आया है; सेवा के द्वारा नहीं। कुछ दूसरे आचार्य कहते हैं कि रैक्व के पास अल्प धन लेकर विद्या-

---

१. श्रुतिद्वारा वेदवाक्यपूर्वकमित्यर्थः। २, "शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते" (ब्र. सू. १-३-३४) इत्यधिकरणं निर्दिशति—अपशूद्रेति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तꣳ हाभ्युवाद रैक्वेदꣳ सहस्रं गवामयं निष्कोऽयम-श्वतरीरथ इयं जायाऽयं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति ॥ ४ ॥

यह हार और यह खच्चरियों से युक्त रथ, यह आपकी भार्या होने के लिये अपनी कन्या और यह ग्राम जिसमें आप रहते हैं; इन सबको आप स्वीकार करें और हे भगवन् ! मुझे अवश्य ही उपदेश करें ॥ ४ ॥

हुरल्पं धनमाहृतमिति रुषैवैनमुक्तवाञ्छूद्रेति । लिङ्गं च बह्वाहरण उपादानं धनस्येति। तदु हर्षेर्मतं ज्ञात्वा पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणो गवां सहस्रमधिकं जायां चर्षेरभिमतां दुहितरमात्मनस्तदादाय प्रतिचक्रमे क्रान्तवान् ॥३॥

रैक्वेदं गवां सहस्रमयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायार्थं मम दुहिताऽऽनीताऽयं च ग्रामो यस्मिन्नास्से तिष्ठसि स च त्वदर्थे मया कल्पितः । तदेतत्सर्वमादायानुशाध्येव मा मां हे भगव इत्युक्तस्तस्या जायार्थमानीताया राज्ञो दुहितुर्हैव मुखं द्वारं विद्याया दाने तीर्थमुपोद्गृह्णञ्जानन्नित्यर्थः ।

"ब्रह्मचारी धनदायी मेधावी श्रोत्रियः प्रियः ।
[1]विद्यया वा विद्यां प्राह तानि तीर्थानि षण्मम" ॥

लिङ्गं चेति । तदृषेर्मतमधिकधनार्थित्वमिति यावत् । अधिकं षट्शतेभ्यः सकाशादिति शेषः ॥३॥

विद्यादाने तस्या द्वारत्वं तद्दातुश्च वरज्ञानदानतीर्थतां जानन्नुवाचेति संबन्धः । धनदातुर्विद्यादानतीर्थत्वे प्रमाणमाह—ब्रह्मचारीति । तस्या द्वारतां विद्यादाने तद्दातुस्तीर्थतां च जानन्नुवाचेत्यु-

---

ग्रहण करने आया था, इसलिए असन्तुष्ट होकर रैक्व ने राजा को शूद्र पद से सम्बोधित किया । इसका गमक यह है कि राजा और अधिक धन से पुनः उसकी शरण में आया । तभी तो राजा ने ऋषि की मनोकामना जानकर पहले से अधिक एक हजार गौएँ ऋषि के लिए अनुकूल अपनी पुत्री को जाया रूप में प्रत्यर्पित करने उनके पास गया ॥ ३ ॥

हे महर्षि रैक्व ! यह एक सहस्र गौएं सुवर्णहार, सुन्दर घोड़ियों का रथ, सहधर्मिणी रूप में अपनी पुत्री लाया हूँ, साथ में इस ग्राम को भी मैंने आपको देने की कल्पना की है, जिसमें आप रहेंगे। हे भगवन् ! कृपया इतना सब कुछ लेकर मुझे विद्या का उपदेश कीजिए । इस प्रकार राजा द्वारा कहे जाने पर जाया के निमित्त लाई राजपुत्री को विद्यादान का तीर्थ समझकर रैक्व बोले । विद्या के बारे इस प्रकार वचन भी सुना जाता है—"विद्याग्रहण के ये छः तीर्थ हैं जिनको विद्या दान की जानी चाहिए । वे हैं—ब्रह्मचारी, धनदाता, बुद्धिमान्, श्रुति का पारङ्गत, प्रिय एवं विद्या के बदले अपनी

---

१. विद्यां वा विद्यया प्राहेति पादकल्पनम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाऽऽजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनाऽऽलापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास तस्मै होवाच ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तब रैक्व ने उस विद्या के ग्रहण करने के मुख (विद्या ग्रहण द्वार) को समझते हुए कहा—अरे शूद्र! तू जो ये गौएँ आदि लाया है (वह उचित ही है) इस विद्या ग्रहण माध्यम से ही तू मुझसे सम्भाषण कराता है, वे ये रैक्व पर्ण नाम से प्रसिद्ध ग्राम महावृषदेश में है जहाँ वह रैक्व रहा करता था। इस प्रकार भेंट स्वीकार कर उस राजा को रैक्व ने उपदेश किया ॥ ५ ॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

इति विद्याया वचनं विज्ञायते हि। एवं जानन्नुपोद्गृह्णन्नुवाचोक्तवान्। आजहाराऽऽहृतवान्भवान्यदिमा गा यच्चान्यद्धनं तत्साध्विति वाक्यशेषः। शूद्रेति पूर्वोक्तानुकृतिमात्रं न तु कारणान्तरापेक्षया पूर्ववत्। अनेनैव मुखेन विद्याग्रहणतीर्थेनाऽऽलापयिष्यथा आलापयसीति मां भाषयसीत्यर्थः। ते हैते ग्रामा रैक्वपर्णा नाम विख्याता महावृषेषु देशेषु यत्र येषु ग्रामेषूवासोषितवान्रैक्वस्तानसौ ग्रामानदादस्मै रैक्वाय राजा। तस्मै राज्ञे धनं दत्तवते ह किलोवाच विद्यां स रैक्वः ॥४॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

क्तमनुवदति—एवं जानन्निति। किमुक्तमित्यपेक्षायामाह—आजहारेति। तत्र वैधर्म्यदृष्टान्तमाह—पूर्ववदिति। [1]'अल्पधनहरणानिच्छायां कारणापेक्षायां शूद्रेति संबोधनवदित्यर्थः। रैक्वेण ग्रामादिकं गृहीत्वा विद्या जानश्रुतये दत्तेत्यस्मान्प्रति श्रुतिर्ज्ञापयति—ते हैत इति। महावृषेषु महापुण्येष्विति यावत् ॥४॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

विद्या देने वाला"। आप जो ये एक सहस्र गौएँ तथा अन्य धन लाए हो वह ठीक ही है। पुनः शूद्र सम्बोधन पूर्वोक्त अनुकृति मात्र है; किसी अन्य हेतु की अपेक्षा को लेकर नहीं है। आप विद्याग्रहण तीर्थ के माध्यम से ही मुझसे उपदेश कराना चाहते हो। जिन ग्रामों में रैक्व निवास करता था, वे ये ग्राम महावृष देश में रैक्वपर्ण नाम से विख्यात हैं। राजा ने इन ग्रामों को रैक्व को दान किया। राजा द्वारा इस प्रकार धन दिए जाने पर रैक्व ने उसके प्रति विद्या का उपदेश किया ॥ ४ ॥ ५ ॥

---

१. अल्पेति—अत्राल्पधनाहरणेऽधिकधनेच्छारूपकारणापेक्षयेति युक्तः पाठोऽयमन्यथाकृतो भाति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति ॥ १ ॥

संवर्ग विद्या का उपदेश

वह बाह्य वायु ही संवर्ग है, क्योंकि जब अग्नि बुझता है तो वायु में ही लीन होता है, तथा जब सूर्य अस्त होता है तब वायु में ही लीन होता है और जब चन्द्रमा अस्त होता है तब वायु में ही लीन होता है (चन्द्र-सूर्यादि ग्रह वायु से ही गति शील होकर अस्त होते हैं। इसीलिये इनका वायु में विलय माना गया है) ॥ १ ॥

वायुर्वाव संवर्गो वायुर्बाह्यो वावेत्यवधारणार्थः। संवर्गः संवर्जनात्संग्रहणात्संग्रसनाद्वा संवर्गः। वक्ष्यमाणा अग्न्याद्या देवता आत्मभावमापादयतीत्यतः संवर्गः। संवर्जनाख्यो गुणो ध्येयो वायुवत्। कृतायान्तर्भावदृष्टान्तात्। कथं संवर्गत्वं वायोरित्याह। यदा यस्मिन्काले वा अग्निरुद्वायत्युद्वासनं प्राप्नोत्युपशाम्यति तदाऽसावग्निर्वायुमेवाप्येति वायुस्वाभाव्यमपिगच्छति। तथा यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति। यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति। ननु कथं सूर्याचन्द्रमसोः स्वरूपावस्थितयोर्वायावपिगमनम्। नैष दोषः।

कथं विद्यामुक्तवानित्याशङ्क्याधिदैवतं तदुक्तिप्रकारं दर्शयति—वायुरित्यादिना। प्राणो वाव संवर्ग इति वक्ष्यमाणेनापुनरुक्ततायै वायुं व्याचष्टे—वायुर्बाह्य इति। संवर्जनादित्यस्य व्याख्या संग्रहणादिति। संग्रहणपक्षं समर्थयते—वक्ष्यमाणा इति। किमिति संवर्गत्वं वायोरुपदिश्यते तत्र दृष्टान्तश्रुतिं प्रमाणयति—कृतायेति। संग्रसनाद्वेत्युक्तं पक्षमाकाङ्क्षापूर्वकं व्युत्पादयति—कथमित्यादिना। सूर्याचन्द्रमसोर्वायावपिगमनमाक्षिपति—नन्विति। आप्रलयात्तयोरधिकारपदे स्थित्यङ्गीकारात्स्वरूपावस्थितत्वं द्रष्टव्यम्। सूर्यादेः स्वरूपावस्थानेऽपि वायावप्ययः संभवतीति समाधत्ते—नैष दोष इति।

यह बाह्य वायु ही सवर्ग है। मन्त्र में 'वा' शब्द अवधारण के लिए है। संग्रहण अथवा संग्रसन ही संवर्ग है। आगे कहे जाने वाले अग्नि आदि देवता आत्मभाव की प्राप्ति कराने से भी संवर्ग है। वायु की तरह संवर्जनसंज्ञक गुण भी ध्येय है क्योंकि त्रेता द्वापर कलि पासों का कृत में अन्तर्भाव हो जाता है—ऐसा दृष्टान्त द्वारा सिद्ध किया है। वायु का संग्रसन गुण किस कारण से है, इस पर श्रुति कहती है। जिस समय अग्नि बुझ जाती है, उस समय यह अग्नि वायु के स्वभाव में लीन हो जाती है। इसी प्रकार जब सूर्य अस्त होता है तो वायु के स्वरूप में लय हो जाता है, जब चन्द्रमा अस्त होता है वह भी वायु में लीन हो जाता है। यहाँ शङ्का होती है—स्वरूप में स्थित सूर्य और चन्द्रमा का वायु में लय कैसे होता है। ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है क्योंकि अस्त होने में लोप प्राप्ति का कारण वायु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

**यदाऽऽप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैता-
न्सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम् ॥ २ ॥**

**अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राण-
मेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणꣳ श्रोत्रं प्राणं मनः
प्राणो ह्येवैतान्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥ ३ ॥**

जब जल सूखता है तो वह वायु में ही लीन होता है और वायु ही इन अग्नि आदि महाशक्तिशाली तत्त्वों को अपने में लीन करता है। (अतः संवर्ग गुण दृष्टि से वायु की उपासना करनी चाहिये) इस प्रकार देवताओं में संवर्ग दृष्टि कही गयी ॥ २ ॥

अब शरीर में संवर्ग कहा जाता है। मुख्य प्राण ही संवर्ग है क्योंकि यह पुरुष सोता है तो वागिन्द्रिय प्राण में लीन हो जाती हैं तथा चक्षु प्राण को ही श्रोत्र प्राण को ही और मन भी प्राण को ही प्राप्त हो जाता है, क्योंकि प्राण ही वागादि सभी को अपने में लीन करता है ॥ ३ ॥

अस्तमनेऽदर्शनप्राप्तेर्वायुनिमित्तत्वात् । वायुना ह्यस्तं नीयते सूर्यः । चलनस्य वायुकार्यत्वात् । अथवा प्रलये सूर्याचन्द्रमसोः स्वरूपभ्रंशे तेजोरूपयोर्वायावेवापिगमनं स्यात् ॥१॥

तथा यदाऽऽप उच्छुष्यन्त्युच्छोषमाप्नुवन्ति तदा वायुमेवापियन्ति । वायुर्हि यस्मादेवैतानग्न्याद्यान्महाबलान्संवृङ्क्ते । अतो वायुः संवर्गगुण उपास्य इत्यर्थः । इत्यधिदैवतं देवतासु संवर्गदर्शनमुक्तम् ॥२॥

अथानन्तरमध्यात्ममात्मनि संवर्गदर्शनमिदमुच्यते । प्राणो मुख्यो वाव संवर्गः । स पुरुषो यदा यस्मिन्काले स्वपिति प्राणमेव वागप्येति वायुमिवाग्निः प्राणं चक्षुः

अस्तमने सति सूर्यादेरदर्शनप्राप्तेर्वाय्वधीनत्वं व्युत्पादयति—वायुना हीति । सूर्यग्रहणं चन्द्रमसोऽप्युपलक्षणम् । गौणस्तर्हि वायावप्ययः सूर्यादेरित्याशङ्क्य पक्षान्तरमाह—अथवेति । संहृतिसमये हि संहरति वेत्यर्थः ॥१॥

॥२॥

कथं प्राणस्य संवर्गत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—स पुरुष इति । तस्मात्संवर्ग इत्यध्यात्ममिति

ही है। सूर्य को अस्ताचल पर्वत की ओर ले जाने में वायु ही कारण है क्योंकि गति सम्पादन करना वायु का कार्य है। अथवा अस्त होने के समय सूर्य और चन्द्रमा का स्वरूपभूत तेज भ्रष्ट हो जाने पर वायु में ही उसका लय होना संभव हो जाएगा ॥ १ ॥

इसी प्रकार जब जल तत्त्व सूख जाता है तो वह भी वायु में लीन हो जाता है क्योंकि वायु ही इन अग्नि आदि दुर्जेय तत्त्वों को अपने में संवरण करने का सामर्थ्य रखती है। इसलिए वायु की संवरण गुण रूप से उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार देवता संबन्धी संवर्गविद्या का व्याख्यान किया गया ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु ॥ ४ ॥

अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः ॥ ५ ॥

वे ये दो ही (संवर्जन गुण वाले होने से) संवर्ग हैं। देवताओं में वायु और वागादि इन्द्रियों में प्राण है ॥ ४ ॥

संवर्ग विद्या की स्तुति के लिये आख्यान

एक बार कपि गोत्र में उत्पन्न शुनक का पुत्र शौनक और कक्षसेन का पुत्र काक्षसेनी अभि-प्रतारी से भोजन परोसने के समय ही एक ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी ने भिक्षा माँगी। किन्तु (उसके ब्रह्मज्ञान के अभिमान को जान कर) उन्होंने उसे भिक्षा न दी ॥ ५ ॥

प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो हि यस्मादेवैतान्वागादीन्सर्वान्संवृङ्क्त इति ॥३॥

तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ संवर्जनगुणौ वायुरेव देवेषु संवर्गः प्राणः प्राणेषु वागादिषु मुख्यः ॥४॥

अथैतयोः स्तुत्यर्थमियमाख्यायिकाऽऽरभ्यते। हेत्यैतिह्यार्थः। शौनकं च शुनकस्यापत्यं शौनकं कापेयं कपिगोत्रमभिप्रतारिणं च नामतः कक्षसेनस्यापत्यं काक्षसेनिं भोजनायोपविष्टौ परिविष्यमाणौ सूपकारैर्ब्रह्मचारी ब्रह्मविच्छौण्डो बिभिक्षे भिक्षितवान्

शेषः ॥३॥

वायुप्राणावधिदैवताध्यात्मभेदेन संवर्गगुणावुक्तावुपसंहरति—ताविति ॥४॥

अथ हेत्याद्यनन्तरवाक्यं व्याचष्टे—अथैतयोरिति। ब्रह्मविच्छौण्डो ब्रह्मविदां मध्ये शूरमानी

इसके अनन्तर आत्मसंबन्धी संवर्गविद्या का निरूपण किया जाता है। मुख्य प्राण ही संवर्ग है। जिस समय यह पुरुष सोता है उस समय अग्नि के वायु में लीन होने के समान ही वाक् प्राण में लीन हो जाती है, चक्षु, श्रोत्र एवं मन भी प्राण में लीन हो जाते हैं क्योंकि प्राण ही वागादि सभी इन्द्रियों को अपने में संवरण कर लेता है ॥ ३ ॥

संवरण गुण वाले ये दो ही संवर्ग हैं। देवताओं में वायु ही संवर्ग है एवं वागादि इन्द्रियों में मुख्य प्राण है ॥ ४ ॥

इसके पश्चात् इनकी स्तुति के लिए इस आख्यायिका का आरम्भ किया जाता है। प्राचीन काल की बात है, एक बार कपिगोत्रीय शुनक पुत्र शौनक एवं कक्षसेन के पुत्र काक्षसेनी अभिप्रतारी भोजन के लिए बैठे थे, उन्हें परोसने वाले भोजन परोस रहे थे। इतने में अपने को ब्रह्मवेत्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति ॥ ६ ॥

उस ब्रह्मचारी ने कहा—भूरादि समस्त लोकों के रक्षक उस एक ही देव प्रजापति ने चार महात्माओं को ग्रस लिया (अर्थात् वायु ने अग्नि आदि को और प्राण ने वागादि को ग्रस लिया) हे कापेय ! हे अभिप्रतारिन् ! मनुष्य (अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत भेद से) अनेक प्रकार से वास करते हुए उस देव को अविवेकी पुरुष नहीं देखते। अतएव जिसके भक्षण के लिए अन्न का संस्कार किया जाता है। उस प्रजापति को ही अन्न नहीं दिया गया ॥ ६ ॥

ब्रह्मचारिणो ब्रह्मविन्मानितां बुद्ध्वा तं जिज्ञासमानौ तस्मा उ भिक्षां न ददतुर्न दत्तवन्तौ ह किमयं वक्ष्यतीति ॥५॥

स होवाच ब्रह्मचारी महात्मनश्चतुर इति द्वितीयाबहुवचनम्। देव एकोऽग्न्यादीन्वायुर्वागादीन्प्राणः। कः स प्रजापतिर्जगार ग्रसितवान्। कः स जगारेति प्रश्नमेके। भुवनस्य भवन्त्यस्मिन्भूतानीति भुवनं भूरादिः सर्वो लोकस्तस्य गोपा गोपायिता रक्षिता गोप्तेत्यर्थः। तं कं प्रजापतिं हे कापेय नाभिपश्यन्ति न जानन्ति मर्त्या मरणधर्माणो-

---

मन्यमान इति यावत्। बुद्ध्वा लिङ्गविशेषेणेति शेषः। जिज्ञासमानावित्युक्तमेव व्यनक्ति—किमयमिति ॥५॥

चतुर इति द्वितीयाबहुवचनदर्शनान्महात्मन इति तादृगेवेत्याह—द्वितीयेति। यद्वा महात्मन इत्यस्य पञ्चम्यादौ चतुर इत्यस्य च समीचीने प्रयोगदर्शनादिह तथा मा भूदिति मत्वाऽऽह—महात्मन इति। [1]अतो हि जगारेति संबन्धः। कः शब्दः प्रजापतिविषयो व्याख्यात संप्रति पक्षान्तरमाह—कः स इति। यस्ताञ्जगार स कः स्यादिति प्रश्नमेके वदन्तीत्यर्थः। अत्तारं प्राणमात्मानं चैकत्वेन

श्रेष्ठ मानने वाले एक ब्रह्मचारी ने उनसे भिक्षा माँगी। उन दोनों ने देखा कि यह ब्रह्मचारी अपने को ब्रह्मवेत्ता मानता है। 'देखें यह क्या कहेगा' ऐसा सोचकर उन्होंने उसे भिक्षा नहीं दी ॥ ५ ॥

उस ब्रह्मचारी ने कहा—इस संसार का एक प्रजापति है, जिसमें सभी भूतप्राणी आश्रित होकर रहते हैं; ऐसे भूरादि समस्त लोकों की वह रक्षा करने वाला है। उस एक देव ने चार महात्माओं को ग्रस लिया, वायु ने अग्नि आदि एवं प्राण ने वागादि को संवरण कर लिया। हे कपिगोत्री शौनक ! हे अभिप्रतारिन् ! मर्त्यलोक के विवेकहीन प्राणी उसकी इस महिमा को नहीं जानते कि वह अध्यात्म, अधिदैवत एवं अधिभूत प्रकार से समस्त भूत प्राणियों में वास करता है। प्रतिदिन जिस प्रजापति

---

1. अतः—तयोर्द्वितीयान्तत्वादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri Gyaan Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयाया-ऽऽत्मा देवानां जनिता प्रजानाꣳ हिरण्यदꣳष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति ॥ ७ ॥

कपि गोत्र में उत्पन्न शौनक ने उस ब्रह्मचारी के वाक्य का मनन कर उसके पास जाकर क (जिसके विषय में तुमने कहा कि मर्त्यगण उसे नहीं देखते,) जो देवताओं का आत्मा, चराचर प्रजाओं क उत्पत्तिकर्ता, अविनाशी दाढ़ों वाला, भक्षण शील और मेधावी है, जिसकी महती महिमा बतला गयी है। जो स्वयं दूसरों से न खाया जाने वाला तथा जो वस्तुतः अग्न्यादि देवताओं का अन्न नहीं (क्योंकि वह देव) उनको भी खा जाता है। हे ब्रह्मचारिन्! हम उसी की उपासना करते हैं। (फि उसने सेवकों से कहा कि) इस ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दो ॥ ७ ॥

ऽविवेकिनो वा हेऽभिप्रतारिन्बहुधाऽध्यात्माधिदैवताधिभूतप्रकारैर्वसन्तम् । यस्मै वा एत दहन्यहन्यन्नमदनायाऽऽह्रियते संस्क्रियते च तस्मै प्रजापतय एतदन्नं न दत्तमिति ॥६॥

तदु ह ब्रह्मचारिणो वचनं शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानो मनसाऽऽलोचयन्ब्रह्मचारिणं प्रत्येयायाऽऽजगाम । गत्वा चाऽऽह यं त्वमवोचो न पश्यन्ति मर्त्या इति तं वयं पश्यामः । कथम् । आत्मा सर्वस्य स्थावरजङ्गमस्य । किंच देवानामग्न्यादीनामात्मनि संहृत्य ग्रसित्वा पुनर्जनितोत्पादयिता वायुरूपेणाधिदैवतमग्न्यादीनाम् । अध्यात्मं च

पश्यन्ब्रह्मचारी मह्यं भिक्षां यन्न ददतुर्भवन्तौ तत्तस्मै देवायैव न ददतुरित्यज्ञत्वमेव तयोर्दर्शयन्नाह—यस्मा इति ॥६॥

दर्शनमेव प्रश्नद्वारा विशदयति—कथमित्यादिना । अधिदैवतमग्न्यादीनां वायुरूपेण जनितेति संबन्धः । [1]तस्याः प्राथमिकं कृत्वा दर्शयति—आत्मनीति । अग्न्यादीन्प्रलयकाले देवः स्वात्मनि वायुरूपेण ग्रसित्वा पुनरुत्पत्त्यवस्थायामुत्पादयितेति योजना । अध्यात्मं वागादीनपि स्वापावस्थायां स्वात्मनि प्राणरूपे संहृत्य पुनः प्रबोधावस्थायां तेषामुत्पादयिता देवः प्राणरूपेणेत्याह—अध्यात्म

देवता के लिए अन्न का संस्कार किया जाता है, उसको ही सचमुच अन्न नहीं दिया ॥ ६ ॥

कपिगोत्रीय शौनक ने ब्रह्मवित् ब्रह्मचारी के वचनों पर मन से विचार किया एवं उसके समी जाकर बोला—जिसे मर्त्यलोक के अविवेकी पुरुष नहीं जानते; उसे हम जानते हैं, उसके इस स्व की उपासना करते हैं। वह जड़ चेतन सभी का आत्मा है। इतना ही नहीं, वह अग्नि आदि देवता को अपने में लीन कर पुनः वायु रूप से अग्नि आदि देवताओं का उत्पन्नकर्ता है, तथा अध्यात्मदृष्टि

१. तस्याः—जने प्राथमिकं जन्यपेक्षया प्रथमभवं संहरणं कृत्वा आक्षिप्य दर्शयतीत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश

तब उन्होंने उसे भिक्षा दे दी । वे ये (अग्न्यादि और वायु, वागादि) पांच से अन्य हैं और

प्राणरूपेण वागादीनां प्रजानां च जनिता । अथ वाऽऽत्मा देवानामग्निवागादीनां जनिता प्रजानां स्थावरजङ्गमानाम् । हिरण्यदंष्ट्रोऽमृतदंष्ट्रोऽभग्नदंष्ट्र इति यावत् । बभसो भक्षणशीलः । अनसूरिः सूरिर्मेधावी न सूरिरसूरिस्तत्प्रतिषेधोऽनसूरिः सूरिरेवेत्यर्थः । महान्तमतिप्रमाणमप्रमेयमस्य प्रजापतेर्महिमानं विभूतिमाहुर्ब्रह्मविदः । यस्मात्स्वयमन्यैरनद्यमानोऽभक्ष्यमाणो यदनन्नमग्निवागादिदेवतारूपमत्ति भक्षयतीति । वा इति निरर्थकः । वयं हे ब्रह्मचारिन्, आ, इदमेवं यथोक्तलक्षणं ब्रह्म वयमा उपास्महे । वयमिति व्यवहितेन संबन्धः । अन्ये न वयमिदमुपास्महे । किं तर्हि परमेव ब्रह्मोपास्मह इति वर्णयन्ति । दत्तास्मै भिक्षामित्यवोचद्भृत्यान् ॥७॥

तस्मा उ ह ददुस्ते हि भिक्षाम् । ते वै ये ग्रस्यन्तेऽग्न्यादयो यश्च तेषां ग्रसिता

नेति । देवानामग्न्यादीनां प्रजानां वागादीनां च जनितेत्युक्तं संप्रति व्याख्यान्तरमाह—अथ वेति । अभग्नदंष्ट्रः सर्वसंहर्तुरपि न काचन ग्लानिर्भवतीत्यर्थः । प्रजापतेर्महिम्नोऽतिप्रमाणत्वं प्रकटयति—यस्मादिति । इतिशब्दात्परस्ताद्यच्छब्दस्य संबन्धः । तदर्थश्च यस्मादित्युक्तस्तस्मात्प्रजापतेर्महिमानमतिप्रमाणमाहुरिति पूर्वेण संबन्धः । वै वयमित्यादिभागं पदच्छेदपूर्वकमादाय व्याचष्टे—वयमित्यादिना । क्रियापदेन वयमित्यस्य संबन्धमुक्तमुपपादयति—वयमितीति । ब्रह्मचारिन्निदं वयमा समन्तादुपास्महे इत्युक्त्वा प्रकारान्तरेण पदच्छेदपूर्वकं व्याख्यानान्तरमाह—अन्ये नेति । शौनकस्याभिप्रतारिणश्च ज्ञानातिशयं दर्शयित्वा यतिश्च ब्रह्मचारी चे[1]त्यादिस्मृतिमनुसृत्याऽऽह—दत्तेति ॥७॥

आख्यायिकाद्वारा प्रकृतायां संवर्गविद्यायामात्मा देवानामित्यादि गुणजातमुपदिश्य गुणान्तरमुपदेष्टुमनन्तरवाक्यमवतारयति—ते वा इति । तद्व्याचष्टे—ये ग्रस्यन्त इति । त एते वागादिभ्यः

प्राणरूप से वागादि प्रजा का उत्पादक है । या यूँ कहो अग्नि आदि देवताओं, वागादि इन्द्रियों एवं स्थावरजङ्गम प्रजा की वही आत्मा सृष्टि करता है । उसकी दाढ़ें ऐसी हैं कि सब कुछ संहार कर लेने के बाद भी उसे ग्लानि नहीं होती । वह सब कुछ भक्षण कर लेता है । वह अत्यन्त बुद्धिमान् है । ब्रह्मवेत्ताओं के विचारानुसार इस प्रजापति की महती अतुलनीय विभूति है क्योंकि स्वयं यह दूसरों से भक्षण नहीं किया जा सकता किन्तु अग्नि और वागादि देवताओं को, जो अन्न नहीं हैं, खा जाता है । मन्त्र में 'वा' शब्द निरर्थक प्रयोग किया है । 'हे ब्रह्मचारिन् ! इसी ब्रह्म की सम्यक् रूप से हम पूजा करते हैं । 'वयम्' का 'उपास्महे' से व्यवहित संबन्ध है । प्रकारान्तर से पदच्छेद करके कुछ दार्शनिक ऐसा भी अर्थ निकालते हैं—हम इस अपर ब्रह्म की उपासना नहीं करते; बल्कि परब्रह्म की उपासना करते हैं । (यति और ब्रह्मचारी को बिना पक्वान्न निवेदन कर खाने से चान्द्रायण व्रत कर प्रायश्चित्त होता है । उक्त स्मृति का स्मरण कर) उन्होंने सेवकों से कहा—इस ब्रह्मचारी को भिक्षा दे दो ॥ ७ ॥

१. इत्यादीत्यादिना "पक्वान्नस्वामिनावुभौ । तयोरन्नमदत्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरे"दिति पादत्रयम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳ सैषा विराडन्नादी तयेदꣳ सर्वं दृष्टꣳ सर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥ ८ ॥

इति चतुर्थाऽध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

इनसे (वागादि तथा प्राण) ये पाँच अन्य हैं। इस प्रकार ये सभी दश होते हैं, ये दश होने के कारण कृत (चार अङ्कों वाले कृत नामक पासे से उपलक्षित द्यूत) हैं। अतः सम्पूर्ण दिशाओं में (अग्न्यादि और वागादि एक-एक को छोड़ कर) शेष ये अन्न हैं और ये दश होने के कारण ही कृत हैं। यह विराट ही अन्न भक्षण करने वाला है। उसके द्वारा यह सब देखा जाता है। जो इस प्रकार जानता है, उसे विद्वान् के द्वारा ये सम्पूर्ण जगत् उपलब्ध कर लिया जाता है और वह अन्न भक्षण करने वाला होता है। द्विरुक्ति उपासना की समाप्ति का सूचक है ॥ ८ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

वायुः पञ्चान्ये वागादिभ्यः, तथाऽन्ये तेभ्यः पञ्चाध्यात्मं वागादयः प्राणश्च, ते सर्वे दश भवन्ति संख्यया, दश सन्तस्तत्कृतं भवति ते, चतुरङ्क एकाय एवं चत्वारस्त्र्यङ्काय एवं त्रयोऽपरे द्व्यङ्काय एवं द्वावन्यावेकाङ्काय एवमेकोऽन्य इत्येवं दश सन्तस्तत्कृतं भवति।

सकाशादन्ये पञ्चेति संबन्धः। अधिदैवतमग्न्यादीन्वायुसहितान्पञ्चोक्त्वा तेनैव प्रकारेणाध्यात्ममपि तेभ्यः सकाशादन्ये प्राणसहिता वागादयः पञ्च सन्तीत्याह—तथेति। अवान्तरसंख्याविनिवेशमुक्त्वा तत्रैव महासंख्यानिवेशं दर्शयति—ते सर्व इति। दशसंख्यासंबन्धात्तेषां [1]संख्ययेति, कृतायोपलक्षितं द्यूतं कृतमित्युच्यते। [2]तत्र दशसंख्यावत्त्वस्य वक्तव्यत्वादिति द्रष्टव्यम्। यदुक्तमग्न्यादयो वागादयश्च दश सन्तस्तत्कृतं भवतीति तदुपपादयति—चतुरङ्क इत्यादिना। एकस्तावदयो द्यूते चतुरङ्को दृश्यते तद्वदग्न्यादयो वागादयश्च ग्रस्यमानाश्चत्वारो भवन्ति। यथा च द्यूते त्रेतानामकोऽयस्त्र्यङ्को गृह्यते तथाऽग्न्यादयो वागादयश्चैकैकन्यूनास्त्रयः। तथा च तत्र द्वापरनामायो द्व्यङ्को जायते तद्वद्वागादिष्व-ग्न्यादिषु च द्वौ द्वौ वर्जयित्वा द्वौ द्वौ भवतः। तथा च तत्र कलिसंज्ञायो भवत्येकाङ्को योऽग्न्यादीनां ग्रसिता वायुर्वागादीनां ग्रसिता प्राणश्चैकस्तेभ्यो ग्रस्यमानेभ्योऽन्य इत्येवं ग्रसितृत्वेन ग्रस्यमानत्वेन च दश सन्तस्ते पूर्वोक्तं कृतं भवतीत्यर्थः। द्यूतस्य सर्वान्नात्तृत्वप्रसिद्ध्या दशसंख्यावतां देवानां कृतत्व-

---

तब उनके सेवकों ने उसे भिक्षा दे दी। ये जो अग्न्यादि ग्रसे जाते हैं, एवं जो उनको ग्रसने वाला वायु है, वागादि पाँच से भिन्न हैं; इसी प्रकार इनसे प्राण सहित अध्यातम वागादि ये पाँच अन्य हैं। इस प्रकार सब मिलाकर उनकी संख्या दस होती है। ये दश होने के कारण द्यूतक्रीड़ा में कृत पासे से उपलक्षित हैं। द्यूत में कृत पासा चार अङ्कों का होता है उसी प्रकार ग्रस्यमान अग्न्यादि और वागादि चार चार अङ्कों वाले होते हैं। त्रेता नाम पासा तीन अङ्कों वाला होता है उसी प्रकार अग्नि आदि और वागादि में एक-एक कम होने से तीन-तीन अङ्क होते हैं। द्वापर नाम पासा दो अङ्कों वाला

---

१. संख्ययेत्युक्तमिति शेषः। २. तत्र द्यूते।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यत एवं तस्मात्सर्वासु दिक्षु दशस्वप्यग्न्याद्या वागाद्याश्च दशसंख्यासामान्यादन्नमेव दशाक्षरा विराड् विराडन्नमिति हि श्रुतिः। अतोऽन्नमेव दशसंख्यत्वात्। तत एव दश कृतं कृतेऽन्तर्भावाच्चतुरयत्वेनेत्यवोचाम।

सैषा विराड्दशसंख्या सत्यन्नं चान्नादिनी च कृतत्वेन। कृते हि दशसंख्याऽन्तर्भूताऽतोऽन्नमन्नादिनी च सा। तथा विद्वान्दशदेवतात्मभूतः सन्विराट्त्वेन दशसंख्य-

---

संपादनेनात्तृत्वं संपादितम्। इदानीं दशसंख्यावत्त्वेनैव विराट्त्वसंपादनेन तेषामन्नत्वं संपादयति—यत इति। अग्न्यादिषु वागादिषु च मिलितेषु दशसंख्यावत्त्वेऽपि कथमग्ने तद्वत्त्वं तथा च कथं संख्यासामान्ये-वैषामन्नत्वसंपादनमित्याशङ्कयाऽऽह—दशाक्षरेति। विराड्दशसंख्यावती प्रसिद्धा सा चान्नमिति श्रूयते, तथा च यथोक्तेष्वग्न्यादिषु वागादिषु च समुदितेषु संख्यासामान्याद्विराट्त्वं संपाद्यान्नत्वसंपादनं सुशकमित्याह—अत इति। तेषु कृतत्वेनान्न(त्तृ?)त्वं संपादितमुपसंहरति—तत एवेति। कृतोपलक्षितत्वेन कृतशब्दवाच्यस्य द्यूतस्यायचतुष्टयविशिष्टत्वेन तत्र दशसंख्यायाः सत्त्वात्तत एव संख्यासामान्या-दग्न्यादयश्च कृतं भवति ततश्च तेषामत्तृत्वमित्युक्तमित्यर्थः।

संप्रति प्रकृतेष्वग्न्यादिषु विराट्त्वमन्नत्वमत्तृत्वमिति त्रयमुपसंहरति—सैषेति। विराजो विधेयत्वात्तस्याश्च स्त्रीलिङ्गतया सैषेति विधेयलिङ्गभाजनम्। त एते प्रकृता देवा विराडित्यवगन्तव्याः। सा च दशदेवतात्मिका दशसंख्यावती भवत्यन्नमिति देवतानामन्नत्वसिद्धिः। अन्नादीत्यस्य विराजा संबन्धादन्नादिनीति व्याख्यानम्। ततश्च देवतात्मिका विराट्कृतत्वेनान्नादिनीति तदात्मकानामग्न्यादी-नामप्यत्तृत्वसिद्धिरित्यर्थः। विराट्त्वेनान्नत्वं कृतत्वेनात्तृत्वं चेति संपत्तिद्वयमग्न्यादौ दर्शितमुपसंहरति—कृते हीति। कृतोपलक्षिते द्यूते दशसंख्याऽन्तर्भूता प्रसिद्धा। सा चाग्न्यादौ दर्शिता। तथा च संख्यासामा-न्याद्द्यूतगतमत्तृत्वमग्न्यादिषु संपाद्यते तेनेदं दशकमन्नादीत्युच्यते विराड्वेदे दशसंख्यावतीत्युक्तम्। सा चान्नं विराडन्नमित्युक्तत्वात्। ततश्च विराट्संपत्त्या भवति प्रकृतं दशकमन्नमित्यर्थः। सगुणं संवर्ग-दर्शनमुक्त्वा तत्फलं वक्तुं विद्वत्स्वरूपं संगिरते—तथेति। यथाऽग्न्यादीनां विराट्त्वेनान्नत्वं कृतत्वेन

होता है, उसी प्रकार वागादि और अग्न्यादि में दो-दो कम करने से दो-दो अङ्क होते हैं। कलि नाम का पासा एक अङ्क वाला होता है, उसी प्रकार वायु और प्राण एक-एक अङ्क का रह जाता है। इस प्रकार ग्रासक और ग्रसिता की दश संख्या होती है। इसलिए समस्त दश दिशाओं की अग्न्यादि और वागादि की तरह दश संख्या की समानता होने पर ये तत्त्व अन्न ही हैं। श्रुति भी इसी का समर्थन करती है—विराड् छन्द में दश अक्षर हैं और विराड् ही अन्न है। इसलिए द्यूतक्रीडा में जैसे चारों पासों की दश संख्या का कृत में अन्तर्भाव हो जाता है, उसी प्रकार अन्न का अत्तृत्व होना सुसंगत ही है, ऐसा कहा जा चुका है।

(अब अग्न्यादिकों में विराट्त्व अन्नत्व और अन्नत्व दृष्टि का संपादन किया जाता है—) वही विराट् दश देवता वाली एवं दश संख्या वाली होने से कृत रूप मे अन्न और अन्नादिनी है। द्यूत में कृत पासे से उपलक्षित दश संख्या अन्तर्भूत है। इसलिए द्यूतगत संख्या सादृश्य से विराड् अन्न और अन्ना-दिनी है। (सगुण संवर्ग विद्या का निरूपण कर उसका फल कहने के लिए विद्वान् का स्वरूप कहा

---

१. दशाक्षरो वैदिकच्छन्दोविशेषो विराड्नामा। २. भागित्वम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयांचक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यपूर्वक सत्यकाम की गोसेवा

जबाला के पुत्र सत्यकाम ने अपनी माता जबाला को संबोधित करके निवेदन किया—हे मात मैं स्वाध्याय ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्य कुल में निवास करना चाहता हूँ। अतः आप बतला कि मैं किस गोत्र वाला हूँ ॥ १ ॥

याऽन्नं कृतसंख्ययाऽन्नादी तयाऽन्नान्नादिन्येदं सर्वं जगद्दशदिक्संस्थं दृष्टं कृतसंख्याभूतये पलब्धम्। एवंविदोऽस्य सर्वं कृतसंख्याभूतस्य दशदिक्संबद्धं दृष्टमुपलब्धं भवति। किञ्च अन्नादश्च भवति य एवं वेद यथोक्तदर्शी। द्विरभ्यास उपासनसमाप्त्यर्थः ॥८॥

इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

सर्वं वागाद्यग्न्यादि चान्नान्नादत्वसंस्तुतं जगदेकीकृत्य षोडशधा प्रविभज्य तस्मिन्ब्रह्

चान्नादत्वं तथा वायुमग्न्याद्यात्मकं प्राणं च वागाद्यात्मकमेकीकृत्याऽऽत्मत्वेन विद्वान्दशदेवतास्वरूप सन्दशसंख्यया विराट्त्वेनान्नं कृतशब्दितं द्यूतं तद्गतदशसंख्यावच्छिन्नतया कृतत्वेनान्नादी भवतीत्यर्थः फलोक्त्युपयोगित्वेनार्थान्तरमाह—तयेति। कृतोपलक्षितद्यूतस्थसंख्यावच्छिन्नत्वेनावस्थितयाऽन्नत्वेनान्ना दित्वेन व्यवस्थितया विराजा सर्वमिदं जगद्दशसु दिक्षु संस्थितं दृष्टमुपलब्धं भवति न हि देवतादश हित्वा जगन्नाम किंचिदस्ति तथा च दृष्टे देवतादशके दृष्टमेव सर्वं जगद्भवेदित्यर्थः। भूमिकामेवं कृ विद्याफलं दर्शयति—एवंविद इति। वायुं प्राणमत्तारमात्मत्वेन पश्यतः कृतसंख्यावच्छिन्नतया स्थित दशदेवताभूतस्य सर्वं जगद्दृष्टं भवति। दृष्टदेवतातिरिक्तस्य जगतोऽभावादित्यर्थः। यो यथोक्तदर्शी प्राणो भूत्वा सर्वत्रान्नादश्च भवतीति फलान्तरम् ॥८॥

इति चतुर्थाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

पूर्वेण संबन्धं दर्शयितुमुत्तरस्य तात्पर्यमाह—सर्वमिति। एकीकृत्य कारणरूपेणैक्यमादायेत्यर्थः

जाता है—) वह विद्वान् दशदेवता का स्वरूप होकर दशसंख्या से विराट्रूप से अन्न एवं कृत रूप अन्नादी होता है। इस प्रकार कृतोपलक्षित द्यूतस्थ संख्या के समान अन्न एवं अन्नादी रूप से व्यवस्थि होने पर यह सम्पूर्ण जगत् दश दिशाओं में संस्थित देखा जाता है। इस प्रकार जानने वाले विद्वान् को कृतसंख्या से उपलक्षित समस्त जगत् दशदेवतात्मक ही दृष्टिगोचर होता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार की दृष्टि से युक्त उपासक प्राण होकर सर्वत्र अन्नाद हो जाता है ॥ ८ ॥

पूर्व खण्ड के प्रतिपाद्य वस्तु से संबन्ध स्थापित करते हुए वागादि एवं अग्न्यादि की अन्न और अन्नाद रूप से प्रशंसा करके जगत् का कारण रूप से एकीकरण कर उसके षोडश विभागों में ब्रह्मदृ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽह-मेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥ २ ॥

जबाला ने सत्यकाम से कहा—हे तात ! जिस गोत्र वाला तू है, मैं उस तेरे गोत्र को नहीं जानती हूँ, तरुणावस्था में जब मैं पति के घर में आये हुये अभ्यागतों की परिचर्या में लगी रहती थी उस समय में मैंने तुझे प्राप्त किया था। (उसी समय तेरे पिता का देहावसान हो गया। अतः अनाथ) मैं जबाला नाम वाली हूँ और तू सत्यकाम नाम वाला है। अतः आचार्य के पूछने पर तू अपने को सत्यकाम जाबाल मैं हूँ, ऐसा कह देना ॥ २ ॥

दृष्टिर्विधातव्येत्यारभ्यते । श्रद्धातपसोर्ब्रह्मोपासनाङ्गत्वप्रदर्शनायाऽऽख्यायिका । सत्य-कामो ह नामतो हशब्द ऐतिह्यार्थो जबालाया अपत्यं जाबालो जबालां स्वां मातरमाम-न्त्रयांचक्र आमन्त्रितवान् । ब्रह्मचर्यं स्वाध्यायग्रहणाय हे भवति विवत्स्याम्याचार्यकुले, किंगोत्रोऽहं किमस्य मम गोत्रं सोऽहं किंगोत्रो न्वहमस्मीति ॥१॥

एवं पृष्टा जबाला सा हैनं पुत्रमुवाच—नाहमेतत्तव गोत्रं वेद हे तात यद्गोत्र-स्त्वमसि । कस्मान्न वेत्सीत्युक्ताऽऽह—बहु भर्तृगृहे परिचर्याजातमतिथ्यभ्यागतादि

तर्हि तस्मिन्ब्रह्मदृष्टिरेव विधीयतां किमित्याख्यायिका प्रणीयते तत्राऽऽह—श्रद्धातपसोरिति । ब्रह्मचर्य-वासस्योद्देश्यं फलं दर्शयति—स्वाध्यायेति । आचार्यो हि माणवकमुपनयते विज्ञातकुलगोत्रमेवेति मन्वानः पृच्छति—किंगोत्रोऽहमिति ॥१॥

अतिथ्यभ्यागताद्यधिकृत्य परिचर्याजातं बहु चरन्ती भर्तृगृहे यतोऽहं स्थिता तेन परिचरन्ती सती परिचरणचित्ततया गोत्रादीन्नापृच्छम् । तथा च तत्स्मरणे मनो मम नाऽऽसीदिति । गोत्रादि-

---

करनी चाहिए इसके लिए प्रकृत ग्रन्थ का उपक्रम किया जाता है। ब्रह्मोपासना के अङ्गस्वरूप से श्रद्धा एवं तप को प्रदर्शित करने के लिए यह आख्यायिका है। प्राचीन समय की बात है किसी देश में जबाला का पुत्र जाबाल सत्यकाम रहा करता था। उसने एक दिन अपनी माता से पूछा ! हे माता जी ! मैं ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर स्वाध्याय ग्रहण के लिए आचार्य के समीप निवास करना चाहता हूँ। क्योंकि आचार्य जी मेरे कुल-गोत्र को जानकर ही मुझे अपनी शरण में रखेंगे, अतः आप बताइये—मेरा गोत्र क्या है ? ॥ १ ॥

ऐसा पूछे जाने पर उस जबाला ने अपने पुत्र से कहा—मैं तेरे गोत्र के बारे में कुछ नहीं जानती। पुत्र ने सरल भाव से पूछा—आप भी नहीं बताएँगी तो कौन बताएगा ? माता बोली—तुम्हारे पिता के घर में बहुत से अतिथि-अभ्यागतों के आते-जाते रहने से मैं उनकी सेवा में तल्लीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ।। ३ ।।

त७ होवाच किंगोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातर७ सा

उस हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर कहा—मैं पूज्य श्रीमान् के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करूँगा। इसलिये आपकी सन्निधि में शिष्य भाव से आया हूँ, उस सत्यकाम से गौतम ने कहा सोम्य ! तू किस गोत्र वाला है। उसने कहा—भगवन् ! मैं जिस गोत्र वाला हूँ उसे मैं नहीं जानता

चरन्त्यहं परिचारिणी परिचरन्ती परिचरणचित्ततया गोत्रादिस्मरणे मम मनो नाभूत् यौवने च तत्काले त्वामलभे लब्धवत्यस्मि। तदैव ते पितोपरतः। अतोऽनाथा साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स त्वं सत्यकाम एवाहं जाबालोऽस्मीत्याचार्याय ब्रुवीथाः। यद्याचार्येण पृष्ट इत्यभिप्रायः ॥२॥

स ह सत्यकामो हारिद्रुमतं हरिद्रुमतोऽपत्यं हारिद्रुमतं गौतमं गोत्रत एत्य गत्वोवाच ब्रह्मचर्यं भगवति पूजावति त्वयि वत्स्याम्यत उपेयामुपगच्छेयं शिष्यत्वेन

प्रश्नाभावे हेत्वन्तरमाह—यौवन इति। यद्यपि तस्यामवस्थायां लज्जया गोत्रादि नाप्राक्षीस्तथापि कालान्तरे किमिति पितरं न पृष्टवतीत्याशङ्क्याऽऽह—तदैवेति। तथाऽपि किमित्यन्यमभिज्ञं नाप्राक्षी-रित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति। प्रथमं लज्जया पितरं प्रति न प्रश्नः पुनश्च तस्योपरतत्वात्तथा दुःखबाहुल्यादन्यं प्रति प्रश्न इति स्थिते प्रश्नाभावफलमाह—साऽहमिति। किं तर्हि तव ज्ञानमिति तदाह—जबाला त्विति। एवं स्थिते किमाचार्यं प्रति मया वक्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—स त्वमिति। नापृष्टः कस्यचिद्ब्रूयादिति न्यायं सूचयति—यदीति ॥२॥

मातृवचनश्रवणानन्तरं किं कृतवानित्यपेक्षायामाह—स हेति। आचार्यसमीपे ब्रह्मचर्यवासः शिष्यभावादृते न सिध्यतीत्यभिमन्वानायोक्तम्—अत इति। किमनया काकदन्तपरीक्षया भव

रही, मेरा मन गोत्रादि के स्मरण करने में न रहा। दूसरे यौवनावस्था में ही तुम उत्पन्न हो गए थे (बाद में भी तुम्हारे पिता से मैं इस संबन्ध में कुछ न पूछ सकी) उसके बाद ही तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हो गया था। इसके बाद वैधव्य दुःख के कारण अनाथा मैं किसी अन्य से भी न पूछ सकी इसलिए मैं तुम्हारे गोत्र के बारे में नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है, तेरा नाम सत्यकाम है। तू आचार्य से यदि वे पूछें तो इतना कह देना कि मैं जाबाल सत्यकाम हूँ ॥ २ ॥

वह सत्यकाम हरिद्रुमत के पुत्र हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर बोला—हे महाराज ! मैं ब्रह्मचर्यव्रत पूर्वक आपके गुरुकुल में निवास करूँगा, इसलिए आप पूज्य भगवान् मुझे शिष्यभाव से शरण में ले लें। इस प्रकार सुनकर गौतम बोले—हे सोम्य ! 'कुलगोत्र की स्थिति जानकर ही शिष्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साऽहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥

तꣳ होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ सोम्याऽऽहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्यो-

मैंने अपनी माता से पूछा था उसने मुझे यही उत्तर दिया कि युवावस्था में मै बहुत कार्य में व्यस्त हुई (तुम्हारे पिता के घर अतिथियों की) सेवा में लगी रहती थी, उस समय तुझे प्राप्त किया। इसलिये मैं नहीं जानती कि तू किस गोत्र वाला है। जवाला नाम वाली मैं हूँ और सत्यकाम नाम वाला तू है। अतः हे गुरुदेव ! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ ॥ ३ ॥ ४ ॥

उस सत्यकाम से गौतम ने कहा—ऐसा सरल एवं स्पष्ट भाषण ब्राह्मणेतर कोई नहीं कर सकता, (ब्राह्मण जाति के सत्यता तथा सरलता से तू भ्रष्ट नहीं हुआ) अतः हे सोम्य ! (संस्कारार्थ होम के लिये) समिधा ले आ, मैं तुझे ब्राह्मण का उपनयन कर दूँगा, क्योंकि तूने सत्य का त्याग नहीं

भगवन्तमित्युक्तवन्तं तं होवाच गौतमः। किंगोत्रो नु सोऽस्यासीति विज्ञातकुलगोत्रः शिष्य उपनेतव्य इति पृष्टः प्रत्याह सत्यकामः। स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्मि। किं त्वपृच्छं पृष्टवानस्मि मातरम्। सा मया पृष्टा मां प्रत्यब्रवीन्माता। बह्वहं चरन्तीत्यादि पूर्ववत्। तस्या अहं वचः स्मरामि सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥३॥४॥

तं होवाच गौतमो नैतद्वचोऽब्राह्मणो विशेषेण वक्तुमर्हत्यार्जवार्थसंयुक्तम्।

त्वहमुपनेतव्योऽस्मीत्याशङ्क्याऽऽह—विज्ञातेति। मातरं पृष्ट्वा विज्ञायाऽऽगम्यतामित्याशङ्क्याऽऽह—किं त्वित्यादिना ॥३॥४॥

को वरण करना चाहिए' इसलिए तुम अपना गोत्र तो बताओ। ऐसा पूछने पर सत्यकाम बोला—इस बात को मैं भी नहीं जानता कि मैं किस गोत्र का हूँ। इस संबन्ध में मैंने माता से जब पूछा तो वह बोली—"अतिथि-अभ्यागतों की सेवा में तल्लीन रह कर यौवन में ही तुझे प्राप्त कर लिया था, इसलिए मुझे पता नहीं है तुम्हारा गोत्र क्या है? मैं उसी के वचनों को स्मरण कर बताता हूँ कि महाराज ! मैं जाबाल सत्यकाम हूँ ॥ ३ ॥ ४ ॥

गौतम ने उस जाबाल सत्यकाम से कहा—इस तरह के वचन ब्राह्मण के बिना और कोई नहीं कह सकता क्योंकि यह अनृत और सरलता से युक्त है। ब्राह्मण स्वभाव से ही सरल हुआ करते हैं;

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणाऽऽवर्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳ संपेदुः ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

किया। ऐसा कह सत्यकाम का उपनयन कर चार सौ कृश और दुर्बल गौएँ (गो समूह से) पृथक् करके सत्यकाम से कहा—हे प्यारे ! तू इन गौओं के पीछे-पीछे अच्छी प्रकार से जा। उन्हें ले जाते हुए सत्यकाम ने कहा—कि इनकी एक सहस्र संख्या पूरी हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा। जब तक वे गौएँ एक सहस्र संख्या में हुईं, वह सत्यकाम अनेक वर्षों तक वन में ही रहा ॥५॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

ऋजवो हि ब्राह्मणा नेतरे स्वभावतः। यस्मान्न सत्याद्ब्राह्मणजोतिधर्मादगा नापेतवानसि। अतो ब्राह्मणं त्वामुपनेष्येऽतः संस्कारार्थं होमाय समिधं सोम्याऽऽहरेत्युक्त्वा तमुपनीय कृशानामबलानां गोयूथान्निराकृत्यापकृष्य चतुःशता चत्वारि शतानि गवामुवाचेमा गाः सोम्यानुसंव्रजानुगच्छ। इत्युक्तस्ता अरण्यं प्रत्यभिप्रस्थापयन्नुवाच—नासहस्रेणापूर्णेन सहस्रेण नाऽऽवर्तेय न प्रत्यागच्छेयम्। स एवमुक्त्वा गा अरण्यं तृणोदकबहुलं द्वंद्वरहितं प्रवेश्य स ह वर्षगणं [1]दीर्घं प्रोवास प्रोषितवान्। ताः सम्यग्गावो रक्षिता यदा यस्मिन्काले सहस्रं संपेदुः संपन्ना बभूवुः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

ब्राह्मणस्यैवाऽनृतं विना कथमार्जवसंयुक्तवचनमित्याशङ्क्याऽऽह—ऋजवो हीति। क्षत्रियादीनामपि केषांचिदार्जवमस्तीत्याशङ्क्याऽऽह—नेतर इति। ऋजुवचनत्वेन ब्राह्मणत्वं प्रतिजानीते—यस्मादिति। उपनीयाध्याप्य चेति शेषः। तस्यानुग्रहार्थं शुश्रूषामादिष्टवानित्याह—कृशानामिति। आचार्यनियोगश्च शिष्येण सफलीकर्तव्य इत्याशयेनाऽऽह—इत्युक्त इति। संपन्ना बभूवुस्तदर्थं भोऽभ्युक्तवानिति संबन्धः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

अन्य नहीं। क्योंकि ब्राह्मण जाति सत्य और धर्म से च्युत नहीं होते इसलिए तुझ ब्राह्मण स्वभाव वाले को मैं शिष्य भाव से वरण करूँगा। अतः जाओ ! संस्कारार्थ होम के लिए समिधा ले आओ। इस प्रकार उसे वरण कर दुबली-पतली निराश्रित गो-समूह में से चार सौ को निकाल कर दे दी और कहा—हे सोम्य ! इन गौओं को चराने के लिए अच्छो प्रकार ले जाओ। सत्यकाम उन गायों को लेकर जंगल में चराने के लिए निकल पड़ा और गुरु जो से बोला—जब ये गौएँ चार सौ से बढ़कर एक सहस्र हो जाएँगी तभी इनके साथ वापिस जाऊँगा। तब सत्यकाम ऐसे वन प्रदेश में गौओं को लेकर

---

१. दीर्घं कालमिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रँ स्मः प्रापय न आचार्यकुलम् ॥ १ ॥

ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति

सत्यकाम को ब्रह्म के प्रथम पाद का उपदेश साँड ने किया

तब सत्यकाम से हे सत्यकाम ! ऐसा साँड ने कहा। उसे सत्यकाम ने "भगवन्" ऐसा कहकर उत्तर दिया, साँड ने कहा—हे सोम्य ! हम एक सहस्र हो गये हैं (तेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी है। अतः) अब तू हमें गुरुकुल में पहुँचा दे ॥ १ ॥

मैं तुझसे परब्रह्म का एक पाद बतलाऊँगा। ऐसा कहे जाने पर सत्यकाम ने कहा

तमेतं श्रद्धातपोभ्यां सिद्धं वायुदेवता दिक्संबन्धिनी तुष्टा सत्यृषभमनुप्रविश्यर्षभापन्नाऽनुग्रहायाथ हैनमृषभोऽभ्युवादाभ्युक्तवान्सत्यकाम ३ इति संबोध्य, तमसौ सत्यकामो भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्रतिवचनं ददौ। प्राप्ताः सोम्य [1]सहस्रं स्मः पूर्णा तव प्रतिज्ञाऽतः प्रापय नोऽस्मानाचार्यकुलम् ॥१॥

किंचाहं ब्रह्मणः परस्य ते तुभ्यं पादं ब्रवाणि कथयानि। इत्युक्तः प्रत्युवाच—

कथमृषभः सत्यकामं प्रतिवक्तुमलं न हि लोके बलीवर्दस्य मनुष्यं प्रति प्रतिवचनं दृष्टमत आह—तमेनमिति। सत्यकामं श्रद्धादिसंपन्नमेनमथ तस्यामवस्थायामृषभोऽनुग्रहायाभ्युवादेति संबन्धः। ऋषभस्य स्वरूपमाह—वायुदेवतेति। अरण्ये तत्र तत्र गाश्चारयतः श्रद्धापूर्वकं तपश्चरतो वायुदेवता कथं तुष्टेत्याशङ्क्याऽऽह—दिक्संबन्धिनीति ॥१॥

वाक्यान्तरं च मदीयं श्रूयतामित्याह—किंचेति। वायुदेवता दिक्संबन्धिनीत्युक्तत्वा-

---

गया जो घास जल से पूर्ण था एवं द्वन्द्व रहित था। इस प्रकार वर्षों तक गौओं की सेवा करते हुए उसने वहाँ निवास किया। अच्छी प्रकार सुरक्षा करते जब वे गौएँ एक सहस्र हो गईं (तब एक साँड उसके पास आया) ॥ ५ ॥

सत्यकाम को वन में इधर-उधर श्रद्धापूर्वक गौएँ चराते हुए तप करते देख दिशाओं से संबन्धी वायु देवता बड़े प्रसन्न हुए। वे उस पर अनुग्रह करने के लिए ऋषभ में प्रविष्ट हो गए। इसके पश्चात् वह देवाविष्ट ऋषभ बोला—हे सत्यकाम ! सत्यकाम ने उत्तर दिया—कहिए महाराज ! ऋषभ बोला—हे सोम्य ! जैसे तुमने प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुरूप एक हजार गौएँ हो गईं हैं, इसलिए अब हमें गुरुकुल पहुँचाओ ॥ १ ॥

मेरी एक बात और सुनो—मैं तुम्हें परब्रह्म के एक पाद का उपदेश करूंगा। सत्यकाम जिज्ञासा

---

१. सहस्रं सहस्रत्वमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम ॥ २ ॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

भगवन् ! मुझे अवश्यमेव बतलावें। तब साँड ने उससे कहा—पूर्व दिक्कला, पश्चिम दिक्कला दक्षिण दिक्कला और उत्तर दिक्कला। हे सोम्य! ब्रह्म का यह पाद प्रकाशवान् नामक चार कलाओं वाला है (इसी प्रकार ब्रह्म के अन्य तीन पाद भी चार-चार अवयव वाले हैं)॥ २॥

वह जो कोई विद्वान् ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की इस प्रकार 'प्रकाशवान्' ऐसे गुण से युक्त मानकर उपासना करता है वह इस लोक में विख्यात होता है और मरने पर 'प्रकाशवान्' लोकों को जीतता है। जो विद्वान् इस प्रकार ब्रह्म के 'प्रकाशवान्' इस चतुष्कल पाद की उपासना करता है॥ ३॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

ब्रवीतु कथयतु मे मह्यं भगवान्। इत्युक्त ऋषभस्तस्मै सत्यकामाय होवाच। प्राची दिक्कला ब्रह्मणः पादस्य चतुर्थो भागः। तथा प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य ब्रह्मणः पादश्चतुष्कलश्चतस्रः कला अवयवा यस्य सोऽयं चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम प्रकाशवानित्येव नामाभिधानं यस्य। तथोत्तरेऽपि पादास्त्रयश्चतुष्कला ब्रह्मणः ॥२॥

स यः कश्चिदेवं यथोक्तमेतं ब्रह्मणश्चतुष्कलं पादं विद्वान्प्रकाशवानित्येन

दिग्गोचरमेव दर्शनमुवाचेत्याह—प्राचीति। ब्रह्मणः पादस्येति व्यधिकरणे षष्ठ्यौ। एकपादेव ब्रह्मेति विभ्रमं व्युदस्यति—तथेति ॥२॥

प्रथमपादोपासकस्य दृष्टमदृष्टं च फलमाह—स य इत्यादिना। कस्येदं फलमित्युक्ते पूर्वोक्तमेव

से बोला—कहिए महाराज! इस पर ऋषभ ने अपना उपदेश सत्यकाम को दिया—पूर्व दिक्कला जो ब्रह्म के पाद का चतुर्थ भाग है। इसी प्रकार पश्चिम दिक्कला है, दक्षिण दिक्कला है, उत्तर दिक्कला है। हे सोम्य! यही ब्रह्म का चार अवयवों वाला चतुष्कल पाद है जिसे प्रकाशवान् नाम से पुकारते हैं। इस प्रकार ब्रह्म के और भी तीन पाद चार अवयवों वाले हैं॥ २॥

जो भी कोई विद्वान् ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की प्रकाशवान् विशिष्टगुण से उपासना करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

[1]अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

अग्नि द्वारा ब्रह्म के द्वितीय पाद का उपदेश

अग्नि तुझे (ब्रह्म का दूसरा) पाद बतलायेगा। ऐसा (कह कर साँड मौन हो गया)। दूसरे दिन सत्यकाम ने (नित्य क्रिया से निवृत्त होकर) गौओं को (गुरुकुल की ओर) ले चला। सायंकाल में जहाँ एकत्रित गौएँ हुईं, वहाँ ही अग्नि स्थापित कर गौओं को रोक समिधा का आधान कर (साँड के वचनों को याद करता हुआ) अग्नि के पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया ॥ १ ॥

गुणेन विशिष्टमुपास्ते तस्येदं फलं प्रकाशवानस्मिँल्लोके भवति प्रख्यातो भवतीत्यर्थः। तथाऽदृष्टं फलं प्रकाशवतो ह लोकान्देवादिसंबन्धिनो मृतः सञ्जयति प्राप्नोति। य एतमेवं विद्वांश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते ॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

सोऽग्निस्ते पादं वक्तेत्युपररामर्षभः स सत्यकामो ह श्वोभूते परेद्युर्नैत्यकं कृत्वा गा अभिप्रस्थापयांचकाराऽऽचार्यकुलं प्रति। ताः शनैश्चरन्त्य आचार्यकुलाभि-

---

पासकमनुवदति—य एतमिति ॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

अवशिष्टं पादत्रयं कथं द्रष्टव्यमिति बुभुत्समानं सत्यकामं प्रत्याह—सोऽग्निरिति। अविदुषो विद्याभिमाननिमित्तकर्मत्यागो न युक्त इति मत्वाऽऽह—सत्यकाम इति। अभि सायं बभूवुः सायंकालं

है, उसका यह फल है कि वह इस लोक में प्रकाशवान् होकर विख्यात होता है। तथा उसका अदृष्ट फल यह है कि वह मरकर देवादिकों से संबन्धित प्रकाशवान् लोकों को प्राप्त करता है जो विद्वान् ब्रह्म के चतुष्कल पाद की 'प्रकाशवान्' इस प्रकार उपासना करता है ॥ ३ ॥

सत्यकाम से अवशिष्ट पादत्रय की जिज्ञासा होने पर आगे का पाद तुझे अग्नि देवता उपदेश देगा, इतना कह कर ऋषभ चुप हो गया। सत्यकाम अगले दिन प्रातःकाल उठकर नित्यकर्म कर गौओं को हाँककर गुरुकुल की ओर ले जाने लगा। उन्हें गुरुकुल की ओर जाते हुए जहाँ जिस समय सायं हुई,

---

१. अग्निष्ट इति। "युष्मत्तत्ततक्षुष्वन्तः पादम्" ८-३-१०३ पादमध्यस्थस्य सस्य मूर्धन्यः स्यात्तकारादिष्वेषु परेषु। युष्मदादेशाः त्वंत्वातेतवाः इति षत्वं तेन च ष्टुत्वम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥ ३ ॥

हे सत्यकाम ! ऐसा सत्यकाम से अग्नि ने संबोधित किया। तब सत्यकाम ने हे भगवन् ! ऐसा कर उसे उत्तर दिया ॥ २ ॥

हे सोम्य ! मैं तुझे ब्रह्म का एक पाद बतलाऊँ ? (सत्यकाम ने कहा) भग मुझे अवश्य बतलावें। तो अग्नि ने सत्यकाम से कहा—पृथिवी कला, अन्तरिक्ष कला, द्युलोक कला समुद्रकला है। हे सोम्य ! ब्रह्म का यह चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' नाम वाला है ॥ ३ ॥

मुख्यः प्रस्थिता यत्र यस्मिन्देशेऽभि सायं निशायामभिसंबभूवुरेकत्राभिमुख्यः संभूताः, त ग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय 'पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ऋषभम ध्यायन् ॥ १ ॥

तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति संबोध्य, तमसौ सत्यकामो भगव इति प्रतिशुश्राव प्रतिवचनं ददौ ॥२॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रबीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथि कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलेत्यात्मगोचरमेव दर्शनमग्निरब्रवी एष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम ॥३॥

प्राप्ता इति यावत्। तस्य ब्रह्मचर्यमव्यावृत्तमिति सूचयति—तत्रेति। उपोपविवेश तत्रोपश गवामग्नेश्च सामीप्ये निवेशनमस्योच्यते। अर्थिने विद्या वक्तव्येति सूचयति—ऋषभेति ॥१॥२॥

आत्मगोचरमग्नेश्चास्य विद्यमानमित्यर्थः। यद्वा पृथिव्यादिरूपेणाग्नेरवस्थानादग्निवि मित्यर्थः। यथोक्तपादे गुणविशेषं निर्दिशति—एष वा इति ॥३॥

वहीं एकत्र कर लिया, सब गौओं को रोककर अग्नि स्थापित कर समिधा लाकर फिर ऋषभ का करते हुए पूर्वाभिमुख हो गौओं एवं अग्नि के समीप बैठ गया ॥ १ ॥

अग्नि ने अवतरित हो उसे 'हे सत्यकाम' इस प्रकार संबोधित किया। सत्यकाम ने 'हे भगवन्' इस प्रकार कह कर उत्तर दिया ॥ २ ॥

हे सोम्य ! तुझे मैं ब्रह्म का पाद कहता हूँ। सत्यकाम बोला—कहिए भगवन् ! तब बोला—उस ब्रह्म के एक पाद में पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और समुद्र अवयव हैं, इनमें अग्नि वि

---

१. अनन्तरम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्तेऽनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङ्-

वह जो कोई पुरुष अनन्तवत्त्व गुण से युक्त इसे जानते हैं और ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' समझकर उपासना करता है, वह इस लोक में अनन्त गुण वाला हो जाता है और वह अनन्तवान् इस गुण से युक्त उपासना करता है ॥ ४ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

हंस ने ब्रह्म के तृतीय पाद का उपदेश किया

हंस (आदित्य) तुझे ब्रह्म का तीसरा पाद बतलायगा। दूसरे दिन उसने गौओं को गुरुकुल की ओर घुमा दिया, सायंकाल वे गौएं जहाँ एकत्रित हुईं, वहाँ पर सत्यकाम ने अग्नि जलाकर गौओं

स यः कश्चिद्यथोक्तं पादमनन्तवत्त्वेन गुणेनोपास्ते स तथैव तद्गुणो भवत्यस्मिँल्लोके मृतश्चानन्तवतो ह लोकान्स जयति य एतमेवमित्यादि पूर्ववत् ॥४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

द्वितीयपादोपासकस्य द्विविधं फलं दर्शयति—स य इति। यथोक्तं चतुष्कलमिति यावत्। तथैवोपास्यगुणानुरोधेनेत्यर्थः। तद्गुणस्तेन गुणेन गुणवाननन्तवानविच्छिन्नसंतानो भवतीत्यर्थः। अनन्तवतो लोकानक्षयानित्येतत् ॥४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

है अथवा पृथिव्यादि रूप से अग्नि विद्यमान रहने से यह अग्निविषयक दर्शन कहा गया। हे सोम्य! ब्रह्म का चार अवयवों वाला यह पाद 'अनन्तवान्' नाम वाला है ॥ ३ ॥

ब्रह्म के द्वितीय पाद का उपासक, जो उपरोक्त चार अवयवों वाले 'अनन्तवान्' गुण की उपासना करता है, वह उपास्य गुणों के अनुरोध से इस लोक में अविच्छिन्न संतान वाला होता है एवं मर कर अक्षय लोकों पर विजय प्राप्त कर लेता है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पोपविवेश ॥ १ ॥

तꣳ हꣳस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योति-

को रोका और समिधा का आधान कर अग्नि की पश्चिम की ओर पूर्वाभिमुख हो बैठ गया ॥ १॥

तब हंस ने उसके समीप जाकर कहा हे सत्यकाम ! उसने उत्तर दिया हे भगवन् ॥ २ ॥

हे सोम्य ! मैं तुझे ब्रह्म का तीसरा पाद बतलाऊँ। (ऐसा हंस ने कहा, तब सत्यकाम ने कहा) भगवान् मुझे अवश्य बतलावें । तब वह हंस सत्यकाम से बोला अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्र कला है और विद्युत् कला है। हे सोम्य ! ब्रह्म का यह चतुष्कल पाद "ज्योतिष्मान्" नाम वाला है ॥ ३॥

जो कोई इस प्रकार का विद्वान् पुरुष "ज्योतिष्मान्" ऐसे गुण से युक्त इस चतुष्कल पाद की उपासना करता है, वह इस लोक में तेजोयुक्त होता है तथा तेजस्वी लोकों को जीतता है। जो इस प्रकार इसे

सोऽग्निर्हंसस्ते पादं वक्तेत्युक्त्वोपरराम। हंस आदित्यः। शौक्ल्यात्पतनसामान्याच्च। स ह श्वोभूत इत्यादि समानम् ॥१॥२॥

अग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्येति ज्योतिर्विषयमेव

अवशिष्टपादद्वयं कथं ज्ञातव्यमिति जिज्ञासमानं प्रत्याह—सोऽग्निरिति। पक्षिविशेषविषयत्वं हंसशब्दस्य व्यावर्तयति—आदित्य इति। कथं तत्र हंसशब्दस्य प्रवृत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—शौक्ल्यादिति ॥१।२॥

आदित्योऽपि स्वविषयमेव दर्शनमुक्तवानित्याह—अग्निरिति। तृतीये पादेऽपि गुणविशेषमुपदिशति—एष वा इति। यतो हेतोर्ज्योतिर्विषयमेव दर्शनमुक्तवानत एव तस्याऽऽदित्यत्वं प्रतिभाती-

---

ब्रह्म के तृतीय पाद की जिज्ञासा देखकर सत्यकाम से अग्नि यह कहकर चुप हो गया कि अवशिष्ट तृतीय पाद तुझे हंसरूपधारी आदित्य उपदेश करेगा। हंस पक्षीविशेष होने पर आदित्य के समान है क्योंकि शुक्लरूप और आकाश में उड़ना दोनों में समान है। सत्यकाम ने प्रतिदिन की भाँति नित्यकर्म किया'''इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है ॥ १ ॥ २ ॥

हे सोम्य ! ब्रह्म के तृतीयपाद में चार अवयव हैं, वे हैं—अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ॥ ४ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयांचकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश ॥ १ ॥

जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद को 'ज्योतिष्मान्' ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है ।।४।।

।। इति सप्तमः खण्डः ।।

मद्गु ने ब्रह्म के चतुर्थ पाद का उपदेश किया

मद्गु (जलचर पक्षी) चौथा पाद तुझे बतलायेगा। ऐसा (कहकर हंस चला गया) दूसरे दिन सत्यकाम गौओं को, गुरुकुल की ओर ले चला। सायंकाल में जहाँ वे गौएँ एकत्रित हुईं, वहाँ पर अग्नि प्रज्वलित कर गौओं को रोक समिधा आधान कर सत्यकाम अग्नि के पीछे पूर्वाभिमुख बैठ गया।।१।।

च दर्शनं प्रोवाचातो हंसस्याऽऽदित्यत्वं प्रतीयते । विद्वत्फलं—ज्योतिष्मान्दीप्तियुक्तोऽस्मिँल्लोके भवति । चन्द्रादित्यादीनां ज्योतिष्मत एव च मृत्वा लोकाञ्जयति । समानमुत्तरम् ॥३॥४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

हंसोऽपि मद्गुष्टे पादं वक्तेत्युपरराम । मद्गुरुदकचरः पक्षी स चाप्संबन्धा-

---

त्वादित्यत्वे हंसस्य गमकान्तरमाह—ज्योतिर्विषयमेवेति । य एतमेवं विद्वानित्याद्युत्तरम् ॥३॥४॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

अवशिष्टं पादान्तरं तर्हि कथं ज्ञायतामित्याशङ्क्याऽऽह—हंसोऽपीति । मद्गुशब्दस्य वाच्यमर्थमन्वाचष्टे—मद्गुरिति । तस्य कथं सत्यकामं प्रत्युपदेष्टृत्वमत आह—स चेति ॥१॥

इस प्रकार ज्योति विषयक ही यह दर्शन है इसलिए हंस का आदित्यरूप होना सुसगत है। जो विद्वान् ज्योतिगुण वाले ब्रह्म की उपासना करता है, वह इस लोक में दीप्तियुक्त होता है एवं देह त्यागकर चन्द्रमा एवं आदित्यादि ज्योतिर्मय लोकों को ही प्राप्त करता है। आगे की व्याख्या पूर्वमन्त्र की

Jangamwadi Math Shaiva Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ॥ २ ॥

ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम ॥ ३ ॥

स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतन-

मद्गु ने निकट में जाकर सत्यकाम से कहा, सत्यकाम! तब उसने उत्तर दि[...] भगवन्! ॥ २ ॥

हे सोम्य! मैं तुझे ब्रह्म का चतुर्थ पाद बतलाऊँ? मुझे अवश्य बतलाइ[...] तब मद्गु ने कहा प्राण कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और मन कला है। हे सोम्य! ब्रह्म का यह च[तु]ष्कल पाद "आयतनवान्" नाम वाला है ॥ ३ ॥

वह जो कोई इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद [...]

त्प्राणः। स ह श्वोभूत इत्यादि पूर्ववत् ॥१॥

स च मद्गुः प्राणः स्वविषयमेवं च दर्शनमुवाच प्राणः कलेत्याद्यायतनवा[...] नित्येवं नाम। आयतनं नाम मनः सर्वकरणोपहृतानां भोगानां तद्यस्मिन्पादे विद्य[...] इत्यायतनवान्नाम पादः ॥२॥३॥

तं मद्गुरुपनिपत्येत्यत्र मद्गुशब्दार्थं पूर्वोक्तमेव स्मारयति—मद्गुः प्राण इति। प्राणः कलेत्[...] द्यायतनवानित्येवमिति यथोक्तगुणं समर्थयते—आयतनमित्यादिना। तद्यस्मिन्पादे वर्तते सोऽया[...] यतनवान्नाम पाद इति [2]द्रष्टव्यमिति योजना ॥२॥३॥

तरह है ॥ ३ ॥ ४ ॥

"ब्रह्म के अन्तिम पाद की व्याख्या तुझे मद्गु करेगा" सत्यकाम से इतना कहकर हंस चु[...] गया। मद्गु एक जलचर पक्षी होता है, उसका जल से संबन्ध रहने के कारण वह प्राण रूप [...] सत्यकाम ने पूर्व की तरह प्रातःकाल उठकर नित्यक्रिया से निवृत्त होकर…इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् है।[...]

उस प्राणरूप मद्गु ने अपने प्राणविषय से युक्त दर्शन का उपदेश किया कि आयतनवान् ब्रह्म[...] प्राण, चक्षु, श्रोत्र एवं मन रूप चार कलाएँ हैं। क्योंकि समस्त इन्द्रियों द्वारा अनुभूत भोगों का आ[...] मन ही है, वही ब्रह्म के इस चतुर्थ पाद में उपदिष्ट है, इस कारण इसका नाम आयतनवान् है ॥ २ ॥ ३ ॥

---

१. इत्याद्युवाचेति संबन्ध इति स्खलितो भाति पाठः। २. द्रष्टव्यम्—उपासितव्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वानित्युपास्त आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतन-
वतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं
पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते ।। ४ ।।

इति चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।। ८ ।।

(अथ चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः)

प्राप हाऽऽचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम३
इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।। १ ।।

"आश्रयवान्" ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है, वह इस लोक में आश्रय वाला होता है और मरने पर अवकाश युक्त लोकों को जीतता है; जो इसे इस प्रकार जानने वाला पुरुष ब्रह्म के इस चतुष्कल पाद की "आश्रयवान्" ऐसे गुण से युक्त उपासना करता है ।। ४ ।।

।। इत्यष्टमः खण्डः ।।

आचार्य मुख से सत्यकाम का उपदेश ग्रहण

(इस प्रकार सत्यकाम ब्रह्मवेत्ता होकर) गुरुकुल में पहुँचा, उससे आचार्य ने कहा, सत्यकाम ! सत्यकाम ने उत्तर दिया, भगवन् ! ।। १ ।।

तं पादं तथैवोपास्ते यः स आयतनवानाश्रयवानस्मिँल्लोके भवति । तथाऽऽयतनवत एव सावकाशाल्ँलोकान्मृतो जयति य एतमेवमित्यादि पूर्ववत् ।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

स एवं ब्रह्मवित्सन्प्राप ह प्राप्तवानाचार्यकुलम् । तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम३ इति । भगव इति ह प्रतिशुश्राव ।।१।।

द्विविधं विद्याफलमभिधत्ते—तं पादमिति । तथैवाऽऽयतनवत्त्वगुणाक्रान्तत्वेनैवेत्यर्थः ।।४।।

इति चतुर्थाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८।।

।। १ ।।

जो साधक ब्रह्म के आयतनवत्त्व गुण वाले पाद की उपासना करता है, वह इस लोक में कभी निराश्रित नहीं रहता एवं शरीर शान्त होने पर अवकाशयुक्त लोकों की ही प्राप्ति करता है ।। "इस प्रकार जो विद्वान् उपासना करता है" इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् ही है ।। ४ ।।

ऋषभ, अग्नि, हंस एवं मद्गु से ब्रह्म के चारों पादों का ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्मवित् हो सत्यकाम गुरुकुल आया । उसे देखकर आचार्य गौतम ने सम्बोधित किया—सत्यकाम ! जी महाराज ! ऐसा सत्यकाम ने उत्तर दिया ।। १ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वाऽनुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाꣳस्त्वेव मे कामे ब्रूयात् ॥ २ ॥

श्रुतꣳ ह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या

हे सोम्य ! तू ब्रह्मवेत्ता सा प्रतीत हो रहा है, (क्योंकि प्रसन्नेन्द्रिय हंसमुख नि[श्चिन्त] रहित ब्रह्मज्ञानी ही होता है) तुझे किसने उपदेश दिया है ? तब सत्यकाम ने उत्तर [दिया] मनुष्यों से भिन्न देवताओं ने मुझे उपदेश दिया। अब मेरी इच्छा के अनुसार आप भगवान् उपदेश करें ॥ २ ॥

मैंने आप जैसे ऐश्वर्यवान् ऋषियों से सुना है कि आचार्य से जानी गयी विद्या ही अ[तिशय]

ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि। प्रसन्नेन्द्रियः प्रहसितवदनश्च निश्चिन्तः कृता[र्थो] ब्रह्मविद्भवति। अत आचार्यो ब्रह्मविदिव भासीति को न्विति वितर्कयन्नुवा[च] कस्त्वामनुशशासेति। स चाऽऽह सत्यकामोऽन्ये मनुष्येभ्यः। देवता मामनुशिष्टवत्य[ः] कोऽन्यो भगवच्छिष्यं मां मनुष्यः सन्ननुशासितुमुत्सहेतेत्यभिप्रायः। अतोऽन्ये मनुष्ये[भ्य] इति ह प्रतिजज्ञे प्रतिज्ञातवान्। भगवांस्त्वेव मे कामे ममेच्छायां ब्रूयात्किमन्यैः[...] नाहं तद्गणयामीत्यभिप्रायः ॥२॥

ब्रह्मविदिव भासीत्युक्ते कीदृशो ब्रह्मविदित्यपेक्षायामाह—प्रसन्नेन्द्रिय इति। सत्यकामस्[य] तल्लक्षणवत्त्वमतःशब्दार्थः। 'मां त्वदाचार्यमवज्ञाय मच्छिष्यं त्वां कोऽन्यो मनुष्यो मच्छायापाद[...] शिष्यत्वेनाऽऽदायानुशासनं कृतवान्यदनुशासनात्ते ब्रह्मविद्या जातेति साक्षेपं पृच्छति—कस्त्वामि[ति]। मनुष्येभ्यः सकाशादन्ये मामनुशिष्टवन्त इति सामान्यप्रतिज्ञां विभजते—देवता इति। देवतानां[...] पदेष्टृत्वं व्यतिरेकद्वारा विशदयति—कोऽन्य इति। प्रतिज्ञां निगमयति—अत इति। मया तर्हि[...] न किंचिदस्ति तव कर्तव्यमित्याशङ्कां वारयति—भगवानिति ॥२॥

आचार्य बोले ! हे सोम्य ! तुम तो ब्रह्मवेत्ता के समान लग रहे हो। नित्य प्रसन्न, चि[न्ता] रहित एवं कृतकृत्यता अनुभव करना ब्रह्मवेत्ता का स्वभाव होता है। सत्यकाम में इन सभी लक्ष[णों] को विद्यमान देख "मेरे शिष्य को किस अन्य ने बिना किसी भय के उपदेश किया' इस प्रकार त[र्क-] वितर्क कर आचार्य बोले—किसने तुम्हें ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। सत्यकाम ने कहा—मुझे कि[सी] मनुष्य ने उपदेश नहीं दिया है; बल्कि देवताओं ने उपदेश किया है। आप महाराजश्री के शिष्य [होने] का सौभाग्य रखने वाले मुझे आपको छोड़कर और कौन दूसरा मनुष्य उपदेश करने का दुःसाहस [कर] सकता है। इसलिए सत्यकाम ने प्रतिज्ञा की कि मनुष्य से भिन्न ही मुझे उपदेश दे गये हैं। महाराजश्री ! अन्य द्वारा कृत उपदेश का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं है, इसलिए मेरी इच्छानु[सार] आप ही मुझे उपदेश करें ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विदिता साधिष्ठं प्रापदितीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किंचन वीयायेति वीयायेति ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

साधुता को प्राप्त होती है। ऐसा सुनकर आचार्य ने सत्यकाम को (देवताओं द्वारा प्राप्त) उसी विद्या का उपदेश किया, उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं की, न्यूनता नहीं हुई, अर्थात् उसकी विद्या पूर्ण हुई ॥ ३ ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

किंच श्रुतं हि यस्मान्मम विद्यत एवास्मिन्नर्थे भगवद्दृशेभ्यो भगवत्समेभ्य ऋषिभ्यः। आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं साधुतमत्वं प्रापदिति प्राप्नोतीत्यतो भगवानेव ब्रूयादित्युक्त आचार्योऽब्रवीत्तस्मै तामेव दैवतैरुक्तां विद्याम्। अत्र ह न किंचन षोडशकलविद्यायां किंचिदेकदेशमात्रमपि न वीयाय न विगतमित्यर्थः। द्विरभ्यासो विद्यापरिसमाप्त्यर्थः ॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

पुनर्ब्रह्मविद्यां प्रकारान्तरेण वक्ष्यामीत्यारभते ᐟगतिं च तद्विदोऽग्निविद्यां च।

इतश्च भगवानेव ब्रवीतु मे विद्यामित्याह—किंचेति। तदेव कारणं दर्शयति—श्रुतमिति। अस्मिन्नर्थ आचार्यादेव विद्या श्रोतव्येत्येवंलक्षणे। श्रुतमेव विशदयति—आचार्यादिति। विदिता प्राप्तेति यावत्। आचार्याधीना धीरेव फलवतीत्यतःशब्दार्थः। विद्यान्तरमाचार्येणोक्तमिति शङ्कामेवकारेण वारयति। दैवतैराचार्येण च सत्यकामायोक्तां विद्यामस्मान्प्रति श्रुतिर्ज्ञापयति—अत्रेति। न विगतं किंतु पूर्णैव विद्या वाय्वादिभिराचार्येण चोपदिष्टेति शेषः। तत्रापि पादचतुष्टयानुध्यानसमुच्चितमेकमेव विज्ञानं तत्फलं च संहृत्यैकविज्ञानफलत्वेन परिशेयमेकैकपादोपासनस्य कृतार्थत्वाहेतुत्वादित्याचार्योपदेशस्यैव सार्थकत्वमिति द्रष्टव्यम् ॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

सप्रपञ्चब्रह्मोपासनमुक्त्वा कार्यब्रह्मोपासनसमुच्चितं कारणब्रह्मोपासनं वक्तुं खण्डान्तरमवतारयति—पुनरिति। न केवलं ब्रह्मविद्यां किंतु तच्छेषत्वाद्गत्यादिकमपीत्याह—गतिं

इतना ही नहीं, यद्यपि मुझे विद्या प्राप्त हो गई है तो भी "आचार्य ही से विद्याश्रवण करनी चाहिए" इस प्रकार मैंने आप जैसे तत्त्वदर्शी महात्माओं से सुना है कि आचार्य ही से प्राप्त विद्या ही फलवती होती है। इसलिए हे भगवन्! आप मुझे उपदेश करें। इस प्रकार कहने पर आचार्य ने उसे देवताओं से उपदिष्ट विद्या का ही उपदेश किया। उपदिष्ट चार पादों की षोडशकलायुक्त विद्या में कुछ भी कमी नहीं की, क्योंकि वायु आदि से उपदिष्ट वह विद्या पूर्ण थी। मन्त्र में 'वीयायेति' पद की द्विरुक्ति विद्या परिसमाप्ति के अर्थ में है ॥ ३ ॥

१. अर्चिरादिमार्गम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः)

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तꣳ ह स्मैव न समावर्तयति ॥ १ ॥

तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलमग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाऽग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै

अग्नि ने उपकोसल को ब्रह्मविद्या का उपदेश किया

उपकोसल नाम से प्रसिद्ध कमल के पुत्र ने सत्यकाम जाबाल के पास ब्रह्मचर्यपूर्वक नि[illegible] किया। उसने बारह वर्षों तक उस आचार्य के अग्नियों की परिचर्या की। किन्तु उस आ[illegible] अन्य ब्रह्मचारियों का तो स्वाध्याय कराकर समावर्तन कर दिया, केवल उपकोसल का ही सम[illegible] नहीं किया ॥ १ ॥

आचार्य से उनकी पत्नी ने कहा—इस ब्रह्मचारी ने खूब तपस्या की है, इसने अग्नि[illegible] अच्छी प्रकार सेवा की है। कहीं अग्नियाँ आपकी निन्दा न करें, इसलिये इस उपकोसल को[illegible] अभीष्ट विद्या का उपदेश कर दीजिये। पत्नी द्वारा कहे जाने पर भी आचार्य उसे उपदेश कि[illegible]

आख्यायिका पूर्ववच्छ्रद्धातपसोर्ब्रह्मविद्यासाधनत्वप्रदर्शनार्था—

उपकोसलो ह वै नामतः कमलस्यापत्यं कामलायनः सत्यकामे जाबाले[illegible] चर्यमुवास तस्य ह ऐतिह्यार्थः। तस्याऽऽचार्यस्य द्वादश वर्षाण्यग्नीन्परिचचारा[illegible] परिचरणं कृतवान्। स ह स्माऽऽचार्योऽन्यान्ब्रह्मचारिणः स्वाध्यायं ग्राहयित्वा समा[illegible] यंस्तमेवोपकोसलमेकं न समावर्तयति स्म ह ॥१॥

चेति। पूर्ववदिति। यथा पूर्वस्मिन्खण्डे श्रद्धातपसोर्ब्रह्मोपासनाङ्गत्वप्रदर्शनायाऽऽख्यायिक[illegible] तद्वदित्यर्थः ॥१॥

सप्रपञ्च ब्रह्मोपासना उपदेश कर कार्यब्रह्मोपासना से समुच्चित कारणब्रह्मोपासना[illegible] निरूपण प्रकारान्तर से कहना है। इसलिए अर्चिरादि मार्ग, उसके विद्वान् एवं अग्नि विद्या[illegible] ब्रह्मविद्या के साथ निरूपण आरम्भ किया जाता है। पूर्व खण्ड में वर्णित आख्यायिका के समान[illegible] भी ब्रह्मविद्या के साधन श्रद्धा और तप को प्रदर्शित किया है—

प्राचीन समय की बात है कि कमल के पुत्र कामलायन उपकोसल ने सत्यकाम जाबाल के[illegible] ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास किया। वहाँ बारह वर्षों तक गुरु जी की अग्नियों की परिचर्या की। आ[illegible] ने स्वाध्याय पूर्ण करा कर अन्य ब्रह्मचारियों का समावर्तन तो करा दिया किन्तु केवल उपको[illegible] समावर्तन संस्कार नहीं किया ॥ १ ॥

Rajasthan Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हाप्रोच्यैव प्रवासांचक्रे ।। २ ।।

स ह व्याधिनाऽनशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रति-

ही बाहर चले गये ।। २ ।।

उपकोसल ने मानसिक दुःख ने अनशन करने का निश्चय किया (अग्निशाला में चुपचाप बैठे हुए) उससे गुरुपत्नी ने कहा—हे ब्रह्मचारिन् ! तू भोजन कर, क्या बात है, भोजन नहीं करता ?

तमाचार्यं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं सम्यगग्नीन्परिचचारीत्परिचरितवान् । भगवांश्चाग्निषु भक्तं न समावर्तयति । अतोऽस्मद्भक्तं न समावर्तयतीति ज्ञात्वा त्वामग्नयो मा परिप्रवोचन्गर्हां तव मा कुर्युः । अतः प्रब्रूह्यस्मै विद्यामिष्टामुपकोसलायेति । तस्मा एवं जाययोक्तोऽपि हाप्रोच्यैवानुक्त्वैव किंचित्प्रवासांचक्रे 'प्रवसितवान् ।।२।।

स होपकोसलो व्याधिना मानसेन दुःखेनानशितुमनशनं कर्तुं दध्रे धृतवान्मनः । तं तूष्णीमग्न्यागारेऽवस्थितमाचार्यजायोवाच हे ब्रह्मचारिन्नशान भुङ्क्ष्व किं नु कस्मान्नु

तप्त इति । भवदपेक्षितां शुश्रूषां विदधानो बहुकायक्लेशं कृतवानित्यर्थः । विवक्षितशुश्रूषाकरणमेव विशदयति—कुशलमिति । किमिति भवत्या मां ब्रूहीतीदमिदानीमुच्यते न हि मत्तोऽन्यत्र त्वदनुरागो युक्तिमानित्याशङ्क्य भगवति स्नेहादित्याह—भगवानिति । अग्नीन्परिचरमाणब्रह्मचारिणोऽसमावर्तनमतःशब्दार्थः । गर्हापरिहारो द्वितीयेनातःशब्देन परामृश्यते । आचार्यशुश्रूषापरं शिष्यं देवतैवानुगृह्णातीति ज्ञापयितुमारभते—तस्मा इति ।।२।।

आचार्याभिप्रायमजानतः शिष्यस्य दुःखप्राप्तिं दर्शयति—स हेति । अतिगमनं वस्तुस्वरूपमतीत्य

यह सब देखकर आचार्यपत्नी ने आचार्यश्री से कहा—आप द्वारा निर्दिष्ट सेवा करते हुए इस ब्रह्मचारी ने शरीर काफी तपा लिया है, अच्छी प्रकार से अग्नियों की परिचर्या कर ली है । आप ऐसा क्यों करते हैं कि अग्नियों की उपासना किए हुए ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार नहीं करते । कहीं ऐसा न हो कि "हमारी उपासना करने वाले ब्रह्मचारी का भी समावर्तन नहीं हो रहा है" ऐसा सोच कर अग्नियाँ आपकी निन्दा करने लग जाएँ । इसलिए इस उपकोसल को अभीष्ट विद्या का उपदेश कीजिए । (आचार्य की सेवा परायण शिष्य पर देवता ही अनुग्रह करते हैं इसे प्रदर्शित करने के लिए) आचार्य अपनी पत्नी द्वारा समझाये जाने पर भी उसे बिना उपदेश किए अन्यत्र किसी स्थान में देशाटन के लिए चले गए ।। २ ।।

मानसिक दुःख से पीड़ित उपकोसल ने भोजन न करने का निर्णय किया । अग्निशाला में उसे मौनव्रत एवं अनशनव्रत करते देख आचार्यपत्नी ने उससे कहा—हे ब्रह्मचारी ! क्या हो गया है तुम्हें,

---

१. छान्दसा वाम् दीर्घावित्याशयेनाह—प्रवसितवानिति । वसति क्षुधोरिट्संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति ॥ ३ ॥

अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी ने कहा इस अकृतार्थ साधारण मनुष्य में अनेक कामनाएँ रहती हैं, जो अनेक दिशा [...] जानेवाली हैं। मैं व्याधियों से परिपूर्ण हूँ। अतः मैं भोजन नहीं करूँगा ॥ ३ ॥

तब (उसकी सेवा से अनुकूल हुए तीनों) अग्नियों ने करुणावश एकत्रित होकर कहा-[...] ब्रह्मचारी ने हमारी अच्छी प्रकार सेवा की है। अतः इस श्रद्धालु ब्रह्मचारी को हम ब्रह्मवि[...] उपदेश करें। ऐसा निश्चयकर वे अग्नियाँ ब्रह्मचारी से बोली—"प्राण" ब्रह्म है 'क' ब्रह्म [...] ब्रह्म है ॥ ४ ॥

कारणान्नाश्नासीति। स होवाच बहवोऽनेकेऽस्मिन्पुरुषेऽकृतार्थे प्राकृते कामा इ[...] कर्तव्यं प्रति नानाऽत्ययोऽतिगमनं येषां व्याधीनां कर्तव्यचिन्तानां ते नानात्यया व्या[...] कर्तव्यताऽप्राप्तिनिमित्तानि चित्तदुःखानीत्यर्थः। तैः प्रतिपूर्णोऽस्मि। अतो नाशि[...] मीति ॥३॥

उक्त्वा तूष्णींभूते ब्रह्मचारिण्यथ हाग्नयः शुश्रूषयाऽऽवर्जिताः कारुण्यावि[...] सन्तस्त्रयोऽपि समूदिरे संभूयोक्तवन्तः। हन्तेदानीमस्मै ब्रह्मचारिणेऽस्मद्भक्ताय दुःखि[...]

विषयेषु प्रवेश इति यावत्। नानात्यया इति कामानां विशेषणम्। कथं तेन व्याधयो विशे[...] तत्राऽऽह—कर्तव्येति। कामा एव व्याधय इत्यर्थः ॥३॥

आचार्यप्रवासात्तज्जायाया ब्रह्मचारिण्यनुग्रहात्तस्य चानशनाध्यवसायादनन्तरमित्यथशब्द[...] हन्तेति यद्यर्थोऽस्मद्भक्तं ब्रह्मचारिणमुपेक्ष्य देशान्तरं [2]गतस्तर्हीति यावत्। अथ पुनरेत्या[...] ब्रह्मविद्यामस्मै विवक्षितां वक्ष्यति किं त्वरयेत्याशङ्क्याऽऽह—दुःखितायेति। ब्रह्मविद्यासाधनसंपत्ति[...]

भोजन क्यों नहीं कर रहे हो? उठो! भोजन कर लो। उपकोसल बोला—संसार में ऐसे [...] साधारण पुरुष होते हैं जो वस्तुस्वरूप से विमुख अकृतार्थ रहते हैं, उनके मन में नाना इच्छाएँ हैं [...] जो उन्हें स्वरूपावस्थिति से हटाकर नाना प्रकार के विषयों में प्रवेश कराती हैं, उससे कर्तव्यचि[...] व्याधियाँ आ जाती हैं जिसकी अप्राप्ति में चित्त दुःखित होता है। उन व्याधियों से मैं सम्यक् [...] घिरा हुआ हूँ; अतः मैं भोजन नहीं करूँगा ॥ ३ ॥

इस प्रकार स्वमत प्रस्तुत कर ब्रह्मचारी के चुप हो जाने पर उसके अनशनव्रत को [...] उसकी सेवा से प्रसन्न हो करुणा के वशीभूत होकर तीनों अग्नियों ने मिलकर कहा—[...]

---

१. वशीकृता अनुकूलिता इति यावत्। २. गत आचार्य इति शेषः

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

उसने कहा—यह तो मैं जानता हूँ कि प्राण ब्रह्म है (क्योंकि प्राण के रहने पर जीवन उसके अभाव में मृत्यु हो जाती है। अतः प्राण का ब्रह्म होना उचित ही है) किन्तु 'क' और 'ख' को मैं नहीं जानता हूँ, तब अग्नियों ने कहा—निश्चय ही जो 'क' है वही 'ख' है और जो 'ख' है वही 'क' है। (क्योंकि 'क' सुख है और वह सुख आकाशरूप होने नित्य एवं व्यापक है) इस प्रकार उन्होंने उस ब्रह्मचारी को प्राण और उसके आश्रय आकाश का उपदेश किया ॥ ५ ॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

तपस्विने श्रद्दधानाय सर्वे प्रब्रवाम ब्रह्मविद्यामिति। एवं संप्रधार्य तस्मै होचुरुक्तवन्तः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति ॥४॥

स होवाच ब्रह्मचारी विजानाम्यहं यद्भवद्भिरुक्तं प्रसिद्धपदार्थकत्वात्प्राणो ब्रह्मेति। यस्मिन्सति जीवनं यदपगमे च न भवतीति तस्मिन्वायुविशेषे लोके रूढोऽतो

दर्शयति—तपस्विन इति ॥४॥

प्राणो ब्रह्मेति [1]भवद्भिरुक्तं तदहं विजानामीति संबन्धः। तत्र हेतुमाह—प्रसिद्धेति। प्राणपदस्य प्रसिद्धार्थत्वमेव समर्थयते—यस्मिन्निति। [2]एवंभूतः प्राणशब्द इति शेषः। प्राणशब्दस्य प्रसिद्धार्थत्वेऽपि कुतो ब्रह्मत्वं तस्मिन्प्रसिद्धमित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति। [3]कार्यकरणसंघाते नष्टेऽग्रहणादित्यतःशब्दार्थः।

सही! इस ब्रह्मचारी ने बारह वर्षों तक हमारी सेवा की है (किन्तु इसका गुरु इसे बिना उपदेश दिए देशान्तर चला गया), (गुरु जी आकर उपदेश दे देंगे, जल्दी क्या है) यह दुःखित है, यह ब्रह्मविद्यासाधनसम्पन्न तपस्वी और श्रद्धालु है, अतः इसे हम ब्रह्मविद्या का उपदेश दे दें। इस प्रकार निश्चय कर अग्नियों ने ब्रह्मचारी से कहा—प्राण ब्रह्म है, 'क' ब्रह्म है, 'ख' ब्रह्म है ॥ ४ ॥

उस ब्रह्मचारी ने कहा—आप सब ने जो प्रसिद्ध पदार्थ कहा कि प्राण ब्रह्म है, इसे मैं जानता हूँ। प्राण तत्त्व के रहने पर ही मनुष्य जीवित रहता है, शरीर के नष्ट हो जाने पर प्राणतत्त्व के दर्शन नहीं होते; वह वायुविशेष ही प्राण अर्थ में प्रसिद्ध है। इसलिए कार्यकरणसंघात के नष्ट हो

---

१. यद्। २. रूढपदं परामृशति—एवंभूत इति। ३. कार्येति—ब्रह्मण इव प्राणस्यापि संघातावच्छेदेनैव ग्रहणादित्यर्थः। अनेन च यदपगमे च न भवतीति भाष्यं यत् प्राणतत्त्वं शरीरापगमे सति न गृह्यत इति व्याख्यातमिति प्रतिभाति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युक्तं ब्रह्मत्वं च तस्य । तेन प्रसिद्धपदार्थकत्वाद्विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्मेति । कं तु खं च न विजानामीति । ननु कंखंशब्दयोरपि सुखाकाशविषयत्वेन प्रसिद्धपदार्थक मेव, कस्माद्ब्रह्मचारिणोऽज्ञानम् । नूनं सुखस्य कंशब्दवाच्यस्य क्षणप्रध्वंसित्वात्खं वाच्यस्य चाऽऽकाशस्याचेतनस्य कथं ब्रह्मत्वमिति मन्यते । कथं च भवतां वाक्य प्रमाणं स्यादिति । अतो न विजानामीत्याह ।

तमेवमुक्तवन्तं ब्रह्मचारिणं ते हाग्नय ऊचुः । यद्वाव यदेव वयं कमवोचाम खमाकाशमित्येवं खेन विशेष्यमाणं कं विषयेन्द्रियसंयोगजात्सुखान्निवर्तितं स्यान्नीलेन विशेष्यमाणमुत्पलं रक्तादिभ्यः । यदेव खमित्याकाशमवोचाम तदेव च कं सुखमिति जानीहि । एवं च सुखेन विशेष्यमाणं खं भौतिकादचेतनात्खान्निवर्तितं स्यान्नीलोत्पल वदेव । सुखमाकाशस्थं नेतरल्लौकिकमाकाशं च सुखाश्रयं नेतरद्भौतिकमित्यर्थः । ननु

स्वकीयज्ञानसमुच्चयार्थश्चकारः । विजानाम्यहमित्युक्तमुपसंहरति—तेनेति । स्वेनाज्ञातं ब्रह्म दर्शयति—कं चेति । तस्याज्ञानमाक्षिपति—नन्विति । प्राणशब्दस्य वायुविशेषविषयत्वेन प्रसिद्धा वदित्यपेरर्थः । ब्रह्मचारिणोऽभिप्रायं दर्शयन्नुत्तरमाह—नूनमिति । ननु विरुद्धार्थत्वादग्नीनां वा भवत्वप्रमाणमित्याशङ्क्याऽऽह—कथं चेति । विरुद्धार्थत्वप्रतीतेराप्तवाक्यस्य चाप्रामाण्यायोगा ब्रह्मचारिणोऽज्ञानमिति निगमयति—अत इति ।

खस्य विशेषणत्वं कस्य च विशेष्यत्वमित्यङ्गीकारे फलं कथयति—इत्येवमिति । विशेषणत्वं खस्य विशेष्यत्वमित्येवमपि विशेषणविशेष्यत्वमवगन्तव्यमित्याह—यदेवेति । विशेषणविशेष्यभावे फलमाह—एवं चेति । यद्वावेत्यादिवाक्यार्थमुक्तमेव प्रतिपत्तिसौकर्यार्थं संक्षिप सुखमिति । इतरेतरविशेषणविशेष्यत्वमाक्षिपति—नन्विति । अन्यतरदेवेत्यत्र यदेव खमित्येत

जाने पर प्राण के ग्रहण न होने से उसका ब्रह्म होना युक्तिसंगत है। अतः लोकव्यवहार सिद्ध प्राण को मैं जानता हूँ कि यही ब्रह्म है। परन्तु मैं 'क ब्रह्म' और 'ख' ब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानता 'क' शब्द सुखवाची एवं 'ख' शब्द आकाशवाची प्रसिद्ध है; फिर ब्रह्मचारी इस विषय में अपनी अ क्यों प्रदर्शित करता है? (ब्रह्मचारी का अभिप्राय दिखाते हुए शङ्का का समाधान देते हैं-) शब्द का सुख अर्थ ग्रहण करें तो वह क्षण प्रध्वंसी है, इसी प्रकार 'ख' शब्द का यहाँ आकाश अर्थ तो वह अचेतन है इस प्रकार 'क' और 'ख' को ब्रह्म कैसे मानेंगे। विरुद्धार्थक होने से आपके वा में प्रामाणिकता कैसे सिद्ध होगी इससे मैं 'क' ब्रह्म और 'ख' ब्रह्म के तत्त्व को नहीं जानता।

ब्रह्मचारी के इस प्रकार कहने पर अग्नियाँ बोलीं—जिसे हमने 'क' ब्रह्म कहा है, वही ब्रह्म है। इस प्रकार 'ख' ब्रह्म से विशिष्ट 'क' ब्रह्म विषयेन्द्रिय संयोग से उत्पन्न सुख से निष्पन्न जैसे नील रंग से विशिष्ट कमल रक्तादिविशिष्ट भी होते हैं। जिसे 'ख' ब्रह्म आकाशवाची कहा उसे ही 'क' ब्रह्म सुखवाची जानो क्योंकि 'क' और 'ख' ब्रह्म में विशेषणविशेष्यभाव संबन्ध है। प्रकार सुखविशिष्ट 'ख' ब्रह्म भौतिक अचेतन 'ख' ब्रह्म से नील विशिष्टकमल के समान निवर्ति होगा। सुख आकाश में रहता है दूसरे लोक में रहता, तथा आकाश सुखाश्रय है दूसरा

Guru Nanak Sanskrit Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काशं चेत्सुखेन विशेषयितुमिष्टमस्त्वन्यतरदेव विशेषणं यद्वाव कं तदेव खमित्यतिरिक्तमितरत् । यदेव खं तदेव कमिति पूर्वविशेषणं वा । ननु सुखाकाशयोरुभयोरपि लौकिकसुखाकाशाभ्यां व्यावृत्तिरिष्टेत्यवोचाम ।

सुखेनाऽऽकाशे विशेषिते व्यावृत्तिरुभयोरर्थप्राप्तैवेति चेत्सत्यमेवं किंतु सुखेन विशेषितस्यैवाऽऽकाशस्य ध्येयत्वं विहितं न त्वाकाशगुणस्य विशेषणस्य सुखस्य ध्येयत्वं विहितं स्यात् । विशेषणोपादानस्य विशेष्यनियन्तृत्वेनैवोपक्षयात् । अतः खेन सुखमपि विशेष्यते ध्येयत्वाय । कुतश्चैतन्निश्चीयते । कंशब्दस्यापि ब्रह्मशब्दसंबन्धात्कं ब्रह्मेति ।

यद्वाव कं तदेव खमित्यत्र यद्वाव कमितीतरद्विशेषणमतिरिक्तमधिकमकिंचित्करमिति योजना । यदि तु यदेव खं तदेव कमिति खेन कं विशेष्यते, तदा यदेव खमित्येतदेव विशेषणमस्तु । यद्वाव कमिति पूर्वविशेषणमकिंचित्करमित्याह—यदेवेति । वाशब्दोऽतिरिक्तमित्येतदनुकर(र्ष)णार्थः । विशेषणयोरर्थवत्त्वं पूर्वोक्तं सिद्धान्ती स्मारयति—नन्विति । तथा च सुखस्य लौकिकसुखाद्व्यावृत्त्यर्थं यदेव खमिति विशेषणमाकाशस्य च लौकिकाकाशाद्व्यावृत्त्यर्थं यद्वाव कमिति विशेषणमर्थवदिति शेषः ।

अन्यतरविशेषणवशादपि यथोक्तव्यावृत्तिसिद्धेरकिंचित्करं विशेषणद्वयमिति शङ्कते—सुखेनेति । यदा सुखेनाऽऽकाशं विशेष्यते तदा भूताकाशादाकाशं व्यावर्तितं भवति सुखस्य तद्विशेषणत्वायोगात् । सुखमपि लौकिकसुखाद्व्यवच्छिद्यते । लौकिकसुखस्याऽऽकाशविशेषणत्वानुपपत्तेः । अतः सुखेनाऽऽकाशस्याऽऽकाशेन सुखस्य वा विशेषितत्वसामर्थ्यात्प्राप्तैव सुखाकाशयोर्लौकिकसुखाकाशाभ्यां व्यावृत्तिरित्यन्यतरदेव विशेषणमर्थवदित्यर्थः । किमन्यतरस्यैव विशेषणस्य व्यावर्तकत्वमित्यापाद्यते किं वा तस्यैवार्थवत्त्वमिति तत्राऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमेवमिति । द्वितीयं दूषयति—किं त्वित्यादिना । विशिष्टस्यैव ध्येयत्वे विशेषणस्यापि ध्येयत्वं सिध्यतीति चेन्नैवं दण्डी प्रैषानन्वाहेतिवद्विशेषणस्यान्यथासिद्धत्वादित्याह—विशेषणेति । द्वयोरपि विशेषणयोरर्थवत्त्वं निगमयति—अत इति । विधान्तरेण ध्येयत्वासंभवादित्यतःशब्दार्थः । खमिव सुखेनेत्यपेरर्थः । इतश्च सुखाकाशयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वमेष्टव्यमित्याह—कुतश्चेति । कुतःशब्दोपात्तमितःशब्दार्थं स्फुटयति—कंशब्दस्येति । खं ब्रह्मेति खंशब्दस्य ब्रह्मशब्दसंबन्धवदित्यपेरर्थः । गुणगुणिनोरुभयोरपि ध्येयत्वसिद्ध्यर्थमितरेतरविशेषणविशेष्यत्वं

भौतिक सुख नहीं है । (दोनों में पारस्परिक विशेषण-विशेष्यत्व मानने पर आक्षेप करते हैं—) यदि यदि आकाश को सुख से विशिष्ट मानना अभीष्ट हो तो ऐसा ही मान लो जो खं ब्रह्म है, वही कं ब्रह्म है। अथवा मन्त्र में "यद्वाव कं तदेव खं" यहाँ दूसरा विशेषण अधिक है जो निष्प्रयोजन है। अथवा कं ब्रह्म है, वही खं ब्रह्म है—यहाँ पूर्वविशेषण निरर्थक है। (इस पर सिद्धान्ती स्मरण दिलाता है—) सुख के लौकिक सुख से भिन्न एवं आकाश के लौकिक आकाश से भिन्न होने के कारण 'यद्वाव कं' यह विशेषण सार्थक सिद्ध होता है।

(अन्यतर विशेषण होने पर भी विशेषणद्वय निरर्थक है, इसी शङ्का को करते हैं—) यदि सुख आकाश का विशेषण है तो भूताकाश से आकाश की व्यावृत्ति होती है। सुख की भी लौकिक सुख से विशिष्टता है। लौकिक सुख आकाश का विशेषण नहीं हो सकता। अतः सुख आकाश का अथवा आकाश सुख का विशेषण सामर्थ्य से प्राप्त है, सुख और आकाश की लौकिक सुख और लौकिक

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदि हि सुखगुणविशिष्टस्य खस्य ध्येयत्वं विवक्षितं स्यात्कं खं ब्रह्मेति ब्रूयुरग्न[यः] प्रथमम् । न चैवमुक्तवन्तः । किं तर्हि कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति । अतो ब्रह्मचारिणो मोहाप-यनाय कंखंशब्दयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वनिर्देशो युक्त एव यद्वाव कमित्यादिः ।

[1]तदेतदग्निभिरुक्तं वाक्यार्थमस्मद्बोधाय श्रुतिराह—प्राणं च हास्मै ब्रह्मचारिणे तस्याऽऽकाशस्तदाकाशः । प्राणस्य संबन्ध्याश्रयत्वेन हार्दं आकाश इत्यर्थः । सुखगुणवत्त्व-निर्देशात्तं चाऽऽकाशं सुखगुणविशिष्टं ब्रह्म तत्स्थं च प्राणं ब्रह्मसंपर्कादेव ब्रह्मेत्युभ[यं] प्राणं चाऽऽकाशं च समुच्चित्य ब्रह्मणी ऊचुरग्नय इति ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

कंशब्दस्य खंशब्दस्य च प्रत्येकं ब्रह्मशब्दसंबन्धादपि स्वीकर्तव्यमित्युक्तं व्यतिरेकद्वारा साधयति—यदि हीति । उक्तरीत्या द्वयोरपि ध्येयत्वमतःशब्दार्थः । ब्रह्मचारिणो मोहो नामान्योन्यविशेषण-विशेष्यत्वाग्रहणादाकाशस्यैव गुणिनो ध्येयत्वं न तु सुखस्य गुणस्येति विभ्रमः ।

प्राणं चेत्यादि वाक्यं नाग्नीनां न ब्रह्मचारिणः । तथा च कथमुपाख्यायिकायामिदं निर्वहतीत्या-शङ्क्याऽऽह—तदेतदिति । आकाशस्य प्राणसंबन्धित्वं कया विधयेत्यपेक्षायामाह—आश्रयत्वेनेति । कार्यब्रह्मोपासनसमुच्चितं कारणब्रह्मोपासनमुपसंहर्तुमितिशब्दः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

आकाश से भिन्नता है इससे अन्यतर विशेषण सार्थक है । (इस पर सिद्धान्ती पूछता है—) क्या अन्यतर विशेषण की व्यावृत्ति अभीष्ट है अथवा उसके अर्थवत्त्व की व्यावृत्ति इष्ट है ? प्रथम पक्ष तो ठीक है । किन्तु द्वितीयपक्ष में दोष है । सुखविशिष्ट आकाश के ही ध्येयत्व का विधान किया है, आकाश गुण विशेषण सुख का ध्येयत्व सिद्ध नहीं होगा । विशेष्य के नियन्ता रूप से विशेषण का उपादान होने से विशेषण अन्यथासिद्ध हुआ करता है । इस प्रकार खं का सुख अथवा सुख का खं विशेषण ध्येयत्व सम्पादन के लिए है । यह निर्णय किस प्रकार किया । कं शब्द का ब्रह्म शब्द से संवन्ध होने के कारण मन्त्र में कं ब्रह्म कहा, इसी प्रकार, खं ब्रह्म समझ लेना चाहिए । यदि सुख गुणविशिष्ट 'खं' ब्रह्म का ध्येयत्व श्रुति को अभीष्ट था तो अग्नियों को प्रथम "कं खं ब्रह्मेति" इस प्रकार उपदेश करना था । किन्तु ऐसा तो कहा नहीं । उन्होंने तो 'कं ब्रह्म खं ब्रह्म' ऐसा उपदेश दिया । इसलिए ब्रह्मचारी के मोह को दूर करने के लिए 'कं' 'खं' शब्द को इतरेतर विशेषण विशेष्य निर्देश उचित ही है । इस से श्रुति कहती है—जो कम् है, वही खम् है इत्यादि ।

इस प्रकार अग्नियों द्वारा उपदेश दिए गए वाक्यार्थ को श्रुति हमें समझाने के लिए स्प[ष्ट] करती है । अग्नियों ने उस ब्रह्मचारी को प्राण एवं उसके आश्रयरूप से संबन्धी हार्द आकाश का उपदेश दिया । सुख गुण आकाश का निर्देश किया है, सुख गुणविशिष्ट ब्रह्म है उसमें रहने वाले प्राण का ब्रह्म से संपर्क होने से ब्रह्म है, इस प्रकार प्राण और आकाश का समुच्चय कर अग्नियों ने ब्रह्म का उपदेश किया ॥ ५ ॥

---

१. तदेतमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः)

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

गार्हपत्याग्नि

(उनमें से सबसे पहले) उस ब्रह्मचारी को गार्हपत्याग्नि ने शिक्षा दी=पृथिवी, अग्नि, अन्न, और आदित्य (ये मेरे चार शरीर हैं)। आदित्य में जो यह पुरुष दिखाई पड़ता है वह मैं हूँ ॥ १ ॥

संभूयाग्नयो ब्रह्मचारिणे ब्रह्मोक्तवन्तः । अथानन्तरं प्रत्येकं स्वस्वविषयां विद्यां वक्तुमारेभिरे । तत्राऽऽदावेनं ब्रह्मचारिणं गार्हपत्योऽग्निरनुशशास । पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति ममैताश्चतस्त्रस्तनवः । तत्र य आदित्य एष पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि गार्हपत्योऽग्निर्यश्च गार्हपत्योऽग्निः स एवाहमादित्ये पुरुषोऽस्मीति । पुनः परावृत्त्या स एवाहमस्मीति वचनम् । पृथिव्यन्नयोरिव भोज्यत्वलक्षणयोः संबन्धो न गार्हपत्यादित्ययोः । अत्तृत्वपक्तृत्वप्रकाशनधर्मा अविशिष्टा इत्यत एकत्वमेवानयोरत्यन्तम् । पृथिव्यन्नयोस्तु भोज्यत्वेनाऽऽभ्यां संबन्धः ॥१॥

प्रधानविद्यामुपदिश्याङ्गविद्याविधानायोपक्रमते—संभूयेति । अनन्तरं प्रधानविद्योपदेशादिति शेषः । अग्निविद्यां वक्तुमारब्धानामग्नीनां मध्ये प्रथममिति श्रुतावथशब्दार्थः । पृथिव्यादिचतुष्टय-मनूद्याग्न्यादित्ययोरवान्तरभेदं दर्शयति—तत्रेति । एवमग्न्यादित्ययोस्तादात्म्यमितीतिशब्दार्थः । य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मीत्येतावतैव तयोस्तादात्म्यसिद्धेः स एवाहमस्मीति पुनरुक्तिरनर्थिकेत्या-शङ्क्याऽऽह—पुनरिति । भोज्यत्वं लक्षणं स्वभावो ययोस्तयोर्गार्हपत्येन यथा संबन्धस्तथा गार्हपत्या-दित्ययोर्न संबन्धः किंतु तादात्म्यलक्षण एवेत्यत्र हेतुमाह—अत्तृत्वेति । पृथिव्यादावपि तादात्म्यं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—पृथिवीति । आभ्यामग्न्यादित्याभ्यामिति यावत् । स एवाहमस्मीति परावृत्त्या पुनर्वचनं यथोक्तार्थविशेषसिद्धयर्थमिति भावः ॥१॥

इससे पूर्व सभी इन्द्रियों ने इकट्ठे होकर ब्रह्मचारी उपकोसल को ब्रह्म का उपदेश दिया था। इसके पश्चात् प्रत्येक ने पृथक्-पृथक् अपनी-अपनी विद्या का उपदेश करना प्रारम्भ किया। वह बोली—पृथिवी, अग्नि, अन्न और आदित्य ये चारों मेरे ही शरीर हैं। पृथिव्यादि चतुष्टय में जो आदित्य में पुरुष दिखाई देता है वह मैं गार्हपत्य अग्नि हूँ, जो यह गार्हपत्य अग्नि है वही मैं आदित्य में पुरुष हूँ, इस प्रकार अग्नि और आदित्य में तादात्म्य है। परावृत्ति से निश्चय कराने के लिए पुनः 'वही मैं हूँ' ऐसा श्रुतिवचन है। पृथिवी और अन्न का जिस प्रकार भोज्यत्व संबन्ध है, उस प्रकार गार्हपत्य और आदित्य का संबन्ध नहीं है। किन्तु दोनों में तादात्म्य होने से अत्यन्त अभिन्नता है क्योंकि वे अत्तृत्व और पक्तृत्व धर्मों को प्रकाशित करते हैं। पृथिवी और अन्न का अग्नि और आदित्य से भोग्यत्व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

जो इसे इस प्रकार जानने वाला इसकी उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्मों को नष्ट कर देता है, अग्नि लोक वाला हो जाता है, पूर्ण आयु प्राप्त करता है, उज्ज्वल जीवन बिताता है तथा इसकी संतति-परम्परा में उत्पन्न पुरुष क्षीण नहीं होते तथा हम उसका इस लोक में जीवित और परलोक में भी पालन करते हैं। जो विद्वान् इस प्रकार जान कर इसकी उपासना करता है (उसे पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है) ॥ २ ॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

स यः कश्चिदेवं यथोक्तं गार्हपत्यमग्निमन्नान्नादत्वेन चतुर्धा प्रविभक्तमुपास्ते सोऽपहते विनाशयति पापकृत्यां पापं कर्म। लोकी लोकवांश्चास्मदीयेन लोकेनाऽऽग्नेयेन तद्वान्भवति यथा वयमिह च लोके सर्वं वर्षशतमायुरेति प्राप्नोति ज्योगुज्ज्वलं जीवति नाप्रख्यात इत्येतत्। न चास्यावराश्च ते पुरुषाश्चास्य विदुषः संततिजा इत्यर्थः न क्षीयन्ते संतत्युच्छेदो न भवतीत्यर्थः। किं च तं वयमुपभुञ्जामः पालयामोऽस्मिꣳश्च लोके जीवन्तममुष्मिंश्च परलोके। य एतमेवं विद्वानुपास्ते यथोक्तं तस्यैतत्फलमित्यर्थः ॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

उक्ताया विद्याया गार्हपत्यविषयाया द्विविधं फलं दर्शयति—स यः कश्चिदित्यादिना। कस्यैतत्फलमित्यपेक्षायामुक्तमेव संक्षिपति—य एतमेवमिति ॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

संबन्ध है ॥ १ ॥

जो भी कोई विद्वान् उपासक अन्न और अन्नाद रूप से चतुर्धा विभक्त गार्हपत्य अग्नि की उपासना करता है; वह शास्त्रनिषिद्ध पापकर्मों को भस्म कर देता है, अग्निलोक को प्राप्त करता है उसी प्रकार जिस प्रकार हम इस लोक में हैं, पूर्ण सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है, वह उज्ज्वल ख्याति से युक्त होकर जीता है, इस विद्वान् की संतति परम्परा का कभी उच्छेद नहीं होता। इतना ही नहीं ऐसे पुरुष का इस जीवन में हम योगक्षेम का वहन करते हैं। उपरोक्त फल उसी विद्वान् को प्राप्त होता है, जो गार्हपत्य अग्नि की इस प्रकार उपासना करता है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः)

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशासाऽऽपो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

अन्वाहार्य पञ्चाग्नि विद्या

फिर उपकोसल को दक्षिणाग्नि ने शिक्षा दी—जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा (ये चार मेरे शरीर हैं, अर्थात् अपने को चार प्रकार से विभक्त करके अन्वाहार्य पचन रूप से मैं स्थित हूँ) उनमें से चन्द्रमा में जो पुरुष दिखायी पड़ता है; वह मैं हूँ ॥ १ ॥

जो इसे इस प्रकार जान कर इस चतुर्धा विभक्त अग्नि की उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्मों को नाश कर देता है। लोकवान् होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है, विशुद्ध जीवन व्यतीत करता है। उसकी उत्तरवर्ती संतति क्षीण नहीं होती और हम उसका लोक-परलोक में पालन करते हैं; जो इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है ॥ २ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽनुशशास दक्षिणाग्निरापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इत्येता मम चतस्रस्तनवश्चतुर्धाऽहमन्वाहार्यपचन आत्मानं प्रविभज्यावस्थितः। तत्र य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति पूर्ववत्। अन्नसंबन्धाज्ज्यो-

---

गार्हपत्योपदेशानन्तर्यमथशब्दार्थः। अबादिचतुष्टयमनूद्य दक्षिणाग्नौ चन्द्रे च विशेषं दर्शयति—तत्रेति। अन्वाहार्यपचनचन्द्रमसोस्तादात्म्येनाऽपां नक्षत्राणां च ताभ्यां भोज्यत्वेन संबन्ध इति वक्तुं पुनर्वचनमित्याह—स एवेति। कथं पुनरन्वाहार्यपचनचन्द्रमसोस्तादात्म्यं तत्राऽऽह—अन्नसंबन्धादिति।

गार्हपत्य अग्नि द्वारा उपदेश देने के अनन्तर उस उपकोसल ब्रह्मचारी को दक्षिणाग्नि अन्वाहार्यपचन ने उपदेश दिया कि जल, दिशाएँ, नक्षत्र एवं चन्द्रमा; ये चारों मेरे शरीर हैं। मैं अन्वाहार्य अग्नि ही अपने चार विभाग कर इनमें स्थित हूँ। जलादिचतुष्टय में जो यह चन्द्रमा में पुरुष दिखाई देता है, वह मैं ही हूँ इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् है। अन्नसंबन्ध होने, ज्योतिष्ट्व गुण दोनों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः)

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्वि-द्युदिति य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति ॥ १ ॥

आहवनीयाग्नि विद्या

उसके बाद उस ब्रह्मचारी को आहवनीयाग्नि ने शिक्षा दी, प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्यु (ये चार मेरे शरीर हैं, इनमें से) यह जो विद्युत् में पुरुष दीख पड़ता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ ॥ १ ॥

तिष्ठसामान्याच्चान्वाहार्यपचनचन्द्रमसोरेकत्वं दक्षिणा(ण)दिक्संबन्धाच्च । अपां नक्षत्राणां च पूर्ववदन्नत्वेनैव संबन्धः । नक्षत्राणां चन्द्रमसो भोग्यत्वप्रसिद्धेः । अपा मन्नोत्पादकत्वादन्नत्वं दक्षिणाग्नेः पृथिवीवद्गार्हपत्यस्य । समानमन्यत् ॥१॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति ममाप्येताश्चतस्र

प्रसिद्धं हि दर्शपूर्णमासयोरन्वाहार्यपचने हविःश्रपणम् । ते चन्द्रं प्राप्यान्नं भवतीत्यादौ चन्द्रम प्रसिद्धोऽन्नसंबन्धः । तस्मात्तयोस्तादात्म्यमित्यर्थः । तयोरेकत्वे हेत्वन्तरमाह—ज्योतिष्ट्वेति । तत्र हेत्वन्तरमाह—दक्षिणेति । अन्वाहार्यपचनो हि दक्षिणाग्निरुच्यते । चन्द्रमाश्च दक्षिणेन पथा प्राप्यमा दक्षिणस्यां दिशि भवतीति गम्यते । उत्तरदिगधिष्ठातुरपि तस्य तत्संबन्धानिवारणात्त तयोरैक्यमित्यर्थः । अपां नक्षत्राणां च चन्द्रवदन्वाहार्यपचनेन तादात्म्यमाशङ्क्याऽऽह—अपामिति पूर्ववत्पृथिव्यन्नयोर्गार्हपत्यादित्याभ्यामन्नत्वेन संबन्धवदिति यावत् । संबन्धोऽन्वाहार्यपचनच मोभ्यामिति शेषः । कथं नक्षत्राणामन्नत्वं तत्राऽऽह—नक्षत्राणामिति । कथं पुनरपामन्नत्वं तदाह अपामिति । दक्षिणाग्नेर्दक्षिणाग्निं प्रतीति यावत् । पृथिव्या गार्हपत्याग्निं प्रत्यन्नत्ववदित्युदाहरणा स य एतमेवं विद्वानित्याद्यन्यदित्युक्तम् ॥१॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

गार्हपत्यस्य दक्षिणाग्नेश्चोपासनानन्तर्यमथशब्दार्थः । तत्रावान्तरभेदं दर्शयति—य एष इति

समान होने एवं दक्षिण दिशा से सम्पर्क होने से अन्वाहार्यपचन और चन्द्रमा में तादात्म्य है। पूर्वम में उपदिष्ट पृथिवी और अन्न की तरह यहाँ जल और नक्षत्र का अन्वाहार्यपचन और चन्द्रमा से अन्न रूप से संबन्ध है क्योंकि नक्षत्र एवं चन्द्रमा का भोग्यत्व होना प्रसिद्ध ही है। जल द्वारा अन्न उत्प होता है, दक्षिणाग्नि के प्रति अन्नत्व होना प्रदर्शित किया है। जो उपासक चतुर्धा विभक्त अग्नि इस प्रकार उपासना करता है, उसका फल पूर्वमन्त्र के समान है ॥ १ ॥ २ ॥

गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि उपासना के अनन्तर उपकोसल को आहवनीय अग्नि ने उपदे करना आरम्भ किया कि प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत् ये चारों मेरे ही शरीर हैं। जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते ॥ २ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

(अथ चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्याऽऽत्मविद्या

जो इसे इस प्रकार जानकर इस (चार भाग में विभक्त अग्नि) की उपासना करता है, वह पुरुष पाप कर्म को नष्ट करा देता है। लोकवान् होता है, पूर्ण आयु को प्राप्त होता है तथा विशुद्ध जीवन बिताता है। उस उपासक के परवर्ती क्षीण नहीं होते और हम इस लोक तथा परलोक में उसका पालन करते हैं, जो इसे उक्त रीति से जानकर इसकी उपासना करता है ॥ २ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

आचार्य का शुभागमन

उन अग्नियों ने फिर एक साथ कहा—हे उपकोसल ! हे सोम्य ! हमने तेरे प्रति यह अपनी

स्तनवः। य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मीत्यादि पूर्ववत्सामान्यात्। दिवा(द्य्वा)काशयोस्त्वाश्रयत्वाद्विद्युदाहवनीययोर्भोग्यत्वेनैव संबन्धः। समानमन्यत् ॥१॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

ते पुनः संभूयोचुर्होपकोसलैषा सोम्य ते तवास्मद्विद्याऽग्निविद्येत्यर्थः। आत्म-

---

सोऽहमस्मीत्याद्यन्यत्समानमिति संबन्धः। यथापूर्वं ज्योतिष्ट्वाविशेषाद्गार्हपत्यादित्ययोरन्वाहार्यपचनचन्द्रमसोश्च साम्यमुक्तं तथा ज्योतिष्ट्वसामान्याद्विद्युदाहवनीययोस्तादात्म्यमेष्टव्यमित्याह—पूर्ववदिति। कथं तर्हि ताभ्यां दिवा(द्य्वा)काशयोः संबन्धस्तत्राऽऽह—दिवा (द्य्वा)काशयोस्त्विति। आहवनीयस्य फलत्वाद्दिवो विषयत्वं तत्र होमादिद्वारा निष्पन्नापूर्वस्य द्युलोकफलत्वाभ्युपगमाद्विद्युतस्त्वाकाशाश्रयत्वं प्रसिद्धमतो विद्युदाहवनीययोर्भोग्यत्वेनैव दिवा(द्य्वा)काशयोः संबन्ध इत्यर्थः। स य एतमेवमित्याद्यन्यदित्युक्तम् ॥१॥२॥

इति चतुर्थाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

अग्नीनां मिथो विसंवादं व्यावर्तयति—ते पुनरिति। तथाऽप्यात्मविद्या श्रोतव्येत्याशङ्क्याऽऽह—

विद्युत् में पुरुष दिखाई देता है, वह मैं ही हूँ। जिस प्रकार पूर्वमन्त्रों ने गार्हपत्य आदित्य का, अन्वाहार्यपचन और चन्द्रमा की समानता प्रदर्शित की है, उसी प्रकार ज्योतिष्ट्व सादृश्य से आहवनीय और विद्युत् में तादात्म्य है। द्युलोक और आकाश का आहवनीय और विद्युत् से आश्रयत्व होने से इनका भोग्यत्व संबन्ध है। इस प्रकार जानने वाले विद्वान् उपासक का फल पूर्व मन्त्र के समान है ॥१॥२॥

Raj Guru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चाऽऽचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याऽऽचार्यस्त-माचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति ॥ १ ॥

भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वाऽनुशशासेति को नु माऽनु-शिष्याद्भो इतीहापेव निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्या-

विद्या और आत्मविद्या (प्राणो ब्रह्म, कं ब्रह्म, खं ब्रह्म, इत्यादि रूपा) कही, (इस विद्या के फल प्राप्ति के लिये) मार्ग तुझे आचार्य बतला देंगे। कालान्तर में उसके आचार्य आये और उससे कहा हे उपकोसल ! ॥ १ ॥

गुरु शिष्य संवाद

हे भगवन् ! ऐसा उपकोसल ने उत्तर दिया। आचार्य बोले—हे सोम्य ! तेरी मुखाकृति ब्रह्मज्ञानी के समान प्रतीत होती है, तुझे किसने उपदेश किया। ऐसा सुनकर ब्रह्मचारी ने कहा—देव ! आपके अभाव में मुझे कौन उपदेश करता। इस प्रकार कह कर, वह अग्नि के द्वारा किये हुए उपदेश को मानो छिपाने लगा। (फिर अग्नियों की ओर संकेत करते हुए बोला— निश्चय ही मेरी सेवा से प्रसन्न हो) इन अग्नियों ने उपदेश किया है, क्योंकि अग्नियाँ पहले अन्य प्रकार की थीं और अब

विद्या पूर्वोक्ता प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति च। आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता विद्या-फलप्राप्तय इत्युक्त्वोपरेमुरग्नयः। आजगाम हास्याऽऽचार्यः कालेन। तं च शिष्यमा-चार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति ॥१॥

भगव इति ह प्रतिशुश्राव। ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं प्रसन्नं भाति को त्वाऽनुशशासेत्युक्तः प्रत्याह। को नु माऽनुशिष्यादनुशासनं कुर्याद्भो भगवंस्त्वयि प्रोषिते इतीहापेव निह्नुतेऽपनिह्नुत इवेति व्यवहितेन संबन्धो न चापनिह्नुते न च यथा-

---

आत्मविद्येति। कथमाचार्योपदेशमन्तरेण भगवदुपदेशवशादेव मे विद्याफलवत्याचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठमित्यादि हि प्रागुक्तमत आह—आचार्यस्त्विति ॥१॥

अपनिह्नुत इवेत्यत्रेवशब्दतात्पर्यं दर्शयति—न चेति। उक्तमभिप्रायमाकाङ्क्षा-

---

इसके बाद सभी अग्नियों ने एकत्रित होकर कहा—हे सोम्य उपकोसल ! इस प्रकार हमने तुम्हें अग्नि विद्या के साथ आत्मविद्या का उपदेश दिया कि प्राण ब्रह्म है, कं ब्रह्म है एवं खं ब्रह्म है। आचार्य से ही विद्या फलवती होती है, इसलिए आचार्यश्री ही तुम्हें मार्ग का उपदेश करेंगे, इस प्रकार कहकर अग्नियां शान्त हो गईं। कुछ समय बीत जाने पर उपकोसल के गुरुजी भी आ गये। आचार्य ने अपने शिष्य को बुलाया—हे उपकोसल ! ॥ १ ॥

सुनते ही शिष्य (प्रसन्नता के मारे) बोला—हाँ महाराजश्री ! गुरुजी बोले—तुम्हारा मुख तो ब्रह्मतत्त्ववेत्ता के समान प्रसन्न लग रहा है, मेरी अनुपस्थिति में किसने तुम्हें उपदेश दिया। इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोच-न्निति ॥ २ ॥

इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्य तेऽवोच-न्नहं तु ते यद्वक्ष्यामि यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

कांपती हुई सी हो गई हैं। ऐसा कहकर उसने अग्नियों को उपदेशक रूप में बतलाया। आचार्य ने पूछा—हे सोम्य ! उन्होंने तुझे क्या उपदेश किया ? ॥ २ ॥

तब उपकोसल ने "यह बतलाया है" ऐसी प्रतिज्ञा की। आचार्य ने पूछा—हे सोम्य ! उन अग्नियों ने तुझे केवल लोकों को ही बतलाया है। अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ, जिससे जानने वाले में पाप कर्म का लेप वैसे ही नहीं होता जैसे कमल पत्र में जल का संबन्ध नहीं होता। ब्रह्मचारी ने कहा—भगवन् ! मुझे अवश्य बतलावें, तब आचार्य ने उससे कहा ॥ ३ ॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

दग्निभिरुक्तं ब्रवीतीत्यभिप्रायः। कथमिमेऽग्नयो मया परिचरिता उक्तवन्तो नूनं यतस्त्वां दृष्ट्वा वेपमाना इवेदृशा दृश्यन्ते पूर्वमन्यादृशाः सन्त इतीहाग्नीनभ्यूदेऽभ्युक्त-वान्काक्वाऽग्नीन्दर्शयन्। किं नु सोम्य किल ते तुभ्यमवोचन्नग्नय इति पृष्ट इत्येवमिद-मुक्तवन्त इत्येवं ह प्रतिजज्ञे प्रतिज्ञातवान्प्रतीकमात्रं किंचिन्न सर्वं यथोक्तमग्निभिरुक्त-

---

विवृणोति—कथमित्यादिना। काक्वा स्वरभङ्गेन(ण) भीतः सन्नुक्तवानस्फुटमिति यावत्। भीति शिष्यस्यापनयन्नाचार्यो ब्रूते—किं नु सोम्येति। आचार्यवाक्यस्थमितिशब्दमनूद्य व्याचष्टे—इत्येवमिति।' पृष्टः सन्निति पूर्वेण संबन्धः। यस्मादग्निभिरुक्तमाचार्याय प्रतीकद्वारा शिष्यो निवेदितवांस्तस्मादाचार्यः

उपकोसल ने कहा—आपके देशान्तर गमन के अनन्तर हे महाराज ! मुझे कौन शिक्षा देता ? इस प्रकार कहकर वह तीनों अग्नियों का उपदेश छिपाने सा लगा। मन्त्र में 'अप' का 'निह्नुते' से व्यवहित संबन्ध है। फिर स्वरभङ्ग से भयभीत हो अग्नियों को दिखाते हुए उपकोसल बोला—वस्तुतः इन अग्नियों ने मेरी सेवा को देखते हुए मुझे शिक्षा दी है, तभी तो आपको देखकर अपनी मौलिकता त्याग कर कांपती हुई सी दिखाई दे रही हैं। तब आचार्य ने पूछा—हे सोम्य ! उन अग्नियों ने तुझे क्या उपदेश दिया। उपकोसल ने जो अग्नियों ने उपदेश दिया था, उसे प्रतीकमात्र से बतला दिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः)

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचै-तदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति ॥ १ ॥

नेत्रस्थ पुरुष की उपासना का उपदेश

(संयत इन्द्रिय समुदाय समाहित चित्त विवेकियों द्वारा) "जो यह नेत्रों में दृष्टि का द्रष्टा पुरुष दिखलायी पड़ता है यह आत्मा है" यह अमृत है, यह अभय है और यह ब्रह्म है, ऐसा आचार्य ने कहा। उस (पुरुष का ऐसा माहात्म्य है कि उसके स्थान रूप नेत्र) में यदि घृत या जल डाला जाय तो वह इधर उधर पलकों में ही चला जाता है। (जब उसके स्थान की ऐसी महिमा है, तो भला स्थानी नेत्रस्थ पुरुष की निस्संगता के विषय में तो कहना ही क्या है) ॥ १ ॥

मवोचत्। यत आहाऽऽचार्यो लोकान्वाव पृथिव्यादीन्हे सोम्य किल तेऽवोचन्न ब्रह्म साकल्येन। अहं तु ते तुभ्यं तद्ब्रह्म यदिच्छसि त्वं श्रोतुं वक्ष्यामि, शृणु तस्य मयोच्यमानस्य ब्रह्मणो ज्ञानमाहात्म्यं यथा पुष्करपलाशे पद्मपत्र आपो न श्लिष्यन्त एवं यथा वक्ष्यामि ब्रह्मैवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते न संबध्यत इत्येवमुक्तवत्याचार्य आहोपकोसलो ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाऽऽचार्यः ॥२॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते निवृत्तचक्षुर्भिर्ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नैः शान्तैः

प्राप्त. सावकाशमित्याह—यत इति। कं [ब्रह्म] खं ब्रह्मेत्यादिना ब्रह्मापि तैरुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—न ब्रह्मेति। कथं तर्हि साकल्येन ब्रह्म ज्ञातव्यमित्यत आह—अहं त्विति। ब्रह्मज्ञाने किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—शृण्विति ॥२॥३॥

इति चतुर्थाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

कथमुपसन्नायाऽऽचार्यो ब्रह्मचारिणे ब्रह्मविद्यामुक्तवानित्यत आह—य एष इति। अक्षिस्थो

आचार्य ने अपने लिए उपदेश करने का अवकाश पाकर उससे कहा—हे सोम्य! अग्नियों ने तुम्हें पृथिव्यादि लोकों का ही उपदेश किया है, सम्पूर्णता से ब्रह्म का उपदेश नहीं किया। यदि तुम्हें सुनने की इच्छा हो तो मैं तेरे लिए उस पूर्ण ब्रह्म का उपदेश करूँगा। ब्रह्मज्ञान का क्या माहात्म्य है, उसे सुनो, जिस प्रकार पद्मपत्र में जल नहीं लगता, इस प्रकार ब्रह्म का वैसा पूर्ण स्वरूप जानने से उसे पापकर्म लिपायमान नहीं करते। ऐसी महिमा वाला ब्रह्मज्ञान सुनकर उपकोसल आचार्य से बोला—हे महाराज! मुझे आप उस ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिए। तब आचार्य ने उपदेश करना प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ ३ ॥

चक्षु आदि इन्द्रियों के द्वारा बाह्य विषयों से विमुख स्वभाव वाले, ब्रह्मचर्यादि साधनों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विवेकिभिर्दृष्टो द्रष्टा । "चक्षुषश्चक्षुः" इत्यादिश्रुत्यन्तरात् । नन्वग्निभिरुक्तं वितथं यत आचार्यस्तु ते गतिं वक्तेति गतिमात्रस्य वक्तेत्यवोचन्भविष्यद्विषयापरिज्ञानं चाग्नीनाम् । नैष दोषः । सुखाकाशस्यैवाक्षिणि दृश्यत इति द्रष्टुरनुवादात् । एष आत्मा प्राणिनामिति होवाचैवमुक्त्वानेतद्यदेवाऽऽत्मतत्त्वमवोचाम । एतदमृतममरणधर्म्यविनाश्यत एवाभयं यस्य हि विनाशाशङ्का तस्य भयोपपत्तिस्तदभावादभयमत एवैतद्ब्रह्म बृहदनन्तमिति । किंचास्य ब्रह्मणोऽक्षिपुरुषस्य माहात्म्यं तत्तत्र पुरुषस्य स्थानेऽक्षिणि यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति पक्ष्मावेव गच्छति न चक्षुषा संबध्यते पद्मपत्रेणेवोदकम् । स्थानस्याप्येतन्माहात्म्यं किं पुनः स्थानिनोऽक्षि-

---

तदुपलक्षितो द्रष्टा य एष पुरुषो दृश्यत संबन्धः । नासौ सर्वेषां छायात्मातिरिक्तो दृष्टिगोचरतामाचरतीत्याशङ्क्याधिकारिणो विशिनष्टि—निवृत्तेति । निवृत्तानि विषयेभ्यो विमुखानि चक्षूंषि बाह्यानि करणानि येषां तैरिति यावत् । बाह्यकरणानां स्ववशत्वाधीनं विशेषणान्तरमाधत्ते—ब्रह्मचर्यादीति । मनसो विषयपारवश्यराहित्ये विशेषणान्तरमाह—शान्तैरिति । तेषां निवृत्तचक्षुष्ट्वे हेतुमाह—विवेकिभिरिति । पुरुषोऽक्षिणि द्रष्टेत्यत्र बृहदारण्यकश्रुतिं प्रमाणयति—चक्षुष इति । आचार्येणापूर्वविद्योपदेशादग्नीनामुक्तिर्मिथ्या प्राप्तेति शङ्कते—नन्विति । अग्निवचनस्य गत्यन्तरमाह—भविष्यदिति । नाग्नीनामुक्तिर्मृषा नापि तेषां भविष्यद्विषयाज्ञानमिति दूषयति—नैष दोष इति । सत्सुखगुणकमाकाशमुपास्यमग्निभिरुपदिष्टं तस्यैव कारणब्रह्मणो द्रष्टृरूपस्याक्षिणि दृश्यत इत्यनुवादो गतिव्याख्यानायाऽऽचार्येण क्रियते तन्नास्ति दोषद्वयमित्यर्थः । अक्षिणि दृश्यत इति प्रयोगादाचार्येण च्छायात्मा विवक्षित इत्याशङ्क्याऽऽह—एष इति । इतश्च नायं पुरुषश्छायात्मेत्यनन्तरवाक्यमवतार्य व्याकरोति—एतदित्यादिना । इतिशब्दो यथोक्तगुणैरुपास्यः पुरुषो न च्छायात्मा भवितुमर्हतीत्यर्थः । असङ्गत्वाच्च नायं छायात्मेत्याह—किंचेति । माहात्म्यं स्थानद्वारेणोच्यत इति शेषः । किमेतावता पुरुषस्याऽऽयातमित्याशङ्क्याऽऽह—स्थानस्यापीति ॥१॥

सम्पन्न, शान्त एवं विवेकी पुरुषों द्वारा जो यह नेत्र में दृष्टि का द्रष्टा पुरुष दिखाई देता है, वह प्राणियों का आत्मा है—ऐसे आचार्य ने आत्मतत्त्व का उपदेश किया। बृहदारण्यक श्रुति में भी कहा है कि 'वह चक्षु का चक्षु है'। यहाँ शङ्का होती है कि अग्नियों को भविष्य के विषय में ज्ञान न होने से ही उन्होंने उपकोसल को कहा था कि आचार्य तुम्हें मार्गदर्शन करेंगे, इस प्रकार अग्नियों की बातें मिथ्या हो जाती हैं। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि अग्नियों के उपदेश में कोई दोष नहीं है। सुख गुण वाले आकाश का अग्नियों ने उपदेश किया था उसी कारण ब्रह्म द्रष्टृस्वरूप का चक्षु में देखा जाना कहा, उसी का उपदेश आचार्य ने अनुवाद रूप में कर दिया। यह आत्मतत्त्व अमरणधर्मा है क्योंकि इसका नाश होता ही नहीं, आत्मा अभय है क्योंकि मरण की आशङ्का भीति में हेतु है, आत्मा में उसका अभाव होने से वह अभय रूप है, इसलिए यह ब्रह्म बृहत् अर्थात् अनन्त है, उपरोक्त गुणों से युक्त उपास्य पुरुष छायात्मा नहीं हो सकता। इतना ही नहीं; इस नेत्रवर्ती पुरुष का स्थान और द्वार से माहात्म्य कहा जाता है। जब पुरुष के स्थान नेत्र में घी या जल डाला जाता है तो यह पलकों में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतꣳ संयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳ हि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥ २ ॥

एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥ ३ ॥

इस पुरुष को "संयद्वाम" ऐसा कहते हैं, क्योंकि संपूर्ण संभजनीय पदार्थ इसे सभी ओर से प्राप्त होते हैं। सभी संभजनीय पदार्थ इसे सभी ओर से प्राप्त होते हैं, जो ऐसा जानता है ॥ २ ॥

यही वामनी है, क्योंकि (प्राणियों के प्रति पुण्य कर्मानुसार) सम्पूर्ण पुण्य कर्म फलों को प्राप्त कराता है। सम्पूर्ण पुण्य कर्म फलों को यही प्राप्त कराता है, जो ऐसा जानता है ॥ ३ ॥

पुरुषस्य निरञ्जनत्वं वक्तव्यमित्यभिप्रायः ॥१॥

एतं यथोक्तं पुरुषं संयद्वाम इत्याचक्षते । कस्मात् । यस्मादेतं सर्वाणि वामानि वननीयानि संभजनीयानि शोभनान्यभिसंयन्त्यभिसंगच्छन्तीत्यतः संयद्वामः । तथैवंविदमेनं सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद ॥२॥

एष उ एव वामनीर्यस्मादेष हि सर्वाणि वामानि पुण्यकर्मफलानि पुण्यानुरूपं प्राणिभ्यो नयति प्रापयति वहति चाऽऽत्मधर्मत्वेन । विदुषः फलं—सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद ॥३॥

तस्यैवोपास्यत्वार्थं गुणान्तरं दर्शयति—एतमिति । पुरुषस्य संयद्वामत्वं ब्रह्मविदुक्त्या लिङ्गेन नान्वर्थमन्तरेण व्यक्तो भवतीति शङ्कते—कस्मादिति । अवयवार्थोपन्यासेन परिहरति—यस्मादिति । गुणोपास्तिफलमाह—तथेति । उपास्यगुणानुसारेणेत्यर्थः । एवंविदं संयद्वामगुणविशिष्टपुरुषोऽस्मीति वेदितारमित्येतत् ॥२॥

गुणान्तरमुपास्यत्वाय दर्शयति—एष इति । तद्व्युत्पादयति—एष इति ॥३॥

चला जाता है, पद्मपत्र के जल की तरह नेत्रों से संबन्धित नहीं होता । जब स्थान की ऐसी महिमा है तो स्थानी अक्षिपुरुष की असङ्गता के विषय में क्या कहना है ॥ १ ॥

पूर्वोक्त गुणों से विशिष्ट पुरुष को 'संयद्वाम' कहते हैं क्योंकि समस्त सुन्दर सम्भजनीय सेवनीय पदार्थ इसे चारों ओर से प्राप्त होते हैं । इस प्रकार जानने वाले विद्वान् को, जो "संयद्वाम गुणविशिष्ट पुरुष मैं ही हूँ" ऐसे अनुभव करता है, समस्त शोभनीय पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥

(दूसरा गुण ब्रह्म का निरूपित किया जाता है—) यही भामनी है क्योंकि यह आत्मधर्म से उसी प्रकार सभी पुण्यकर्म फलों को प्राप्त कराता है, जिस प्रकार प्राणियों के पुण्यकर्म होते हैं। विद्वान् इस प्रकार जानता है उसका फल है कि वह समस्त पुण्य कर्मफलों को प्राप्त कराता है ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च न तेऽर्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः संव-

यह भामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण (आदित्य चन्द्र और अग्नि आदि के रूप में) लोकों में भासमान् होता है। जो ऐसा जानता है, वह भी सम्पूर्ण लोकों में भासमान् होता है ॥ ४ ॥

ब्रह्मज्ञानी की गति

इस ब्रह्मवेत्ता के लिये शव कर्म करे, वह अर्चि मार्ग के अभिमानी देव को ही प्राप्त होते हैं, फिर अर्चि अभिमानी देव से दिन अभिमानी देवता को, दिनाभिमानी देवता से शुक्ल पक्षाभिमानी देवता को और शुक्ल पक्षाभिमानी देवता से उत्तरायण ६ मासों के अभिमानी देव को प्राप्त होता है।

एष उ एव भामनीरेष हि यस्मात्सर्वेषु लोकेष्वादित्यचन्द्राग्न्यादिरूपैर्भाति दीप्यते। "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" इति श्रुतेरतो भामानि नयतीति भामनीः। य एवं वेदासावपि सर्वेषु लोकेषु भाति ॥४॥

अथेदानीं यथोक्तब्रह्मविदो गतिरुच्यते। यद्यद्यु चैवास्मिन्नेवंविदि शव्यं शवकर्म मृते कुर्वन्ति यदि च न कुर्वन्ति ऋत्विजः सर्वथाऽप्येवंवित्तेन शवकर्मणाऽकृतेनापि प्रतिबद्धो न ब्रह्म प्राप्नोतीति न। न च कृतेन शवकर्मणाऽस्य कश्चनाभ्यधिको लोकः। "न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्" इति श्रुत्यन्तरात्। शवकर्मण्यनादरं दर्शयन्विद्यां

गुणान्तरं ध्यानायोक्त्वा व्युत्पादयति—एष इत्यादिना। आदित्यादिरूपेणास्यैव दीप्यमानत्वे श्रुत्यन्तरमनुकूलयति—तस्येति। गुणोपास्तिफलमाह—य एवमिति ॥४॥

गतिं वक्तुं पूर्वोक्तब्रह्मविद्यायामधिकगुणानेवाऽऽचार्योऽन्ववादीदिदानीं तामेव गतिमवतारयति—अथेति। तां वक्तुं पातनिकां करोति—यद्यदीति। करणाकरणाभ्यां विदुषो न वृद्धिर्नापि हानिरित्यत्र

(ब्रह्म का अन्य गुण भी ध्यान के लिए कहा जाता है—) यही भामनी है क्योंकि आदित्य, चन्द्र और अग्न्यादि रूप से समस्त लोकों में प्रकाशित होता है। श्रुति भी कहती है—"उसी ब्रह्म की ज्योति से यह सब प्रकाशित होता है"। इसलिए सभी भासमान् फलों को प्राप्त कराता है। जो विद्वान् इस प्रकार जानता है, वह भी समस्त लोकों में प्रकाशित होता है ॥ ४ ॥

इसके अनन्तर पूर्वोक्त ब्रह्मवेत्ता के मार्ग का निरूपण किया जाता है। ऋत्विक् इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता के मरणकाल उपस्थित होने पर अन्त्येष्टि संस्कार करें अथवा न करें; ऐसा नहीं होता कि शवकर्म न करने पर ब्रह्मभाव को प्राप्त न हो, न ही शवकर्म करने से ही किसी विशिष्ट फल वाले की प्राप्ति होती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्सर७ संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते नाऽऽवर्तन्ते ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

उन मासों से संवत्सराभिमानी को, संवत्सर से आदित्य को और आदित्य से चन्द्रमा को, चन्द्रमा विद्युत् को प्राप्त करता है। वहाँ से विद्युत्लोक में गये उपासकों को अमानव पुरुष ब्रह्मलोक से आ सत्यलोकस्थ ब्रह्मा के पास पहुँचा देता है। यह देव मार्ग है, यह ब्रह्म मार्ग है। इस मार्ग से जाने व उपासक इस मानव सृष्टि में नहीं लौटते, नहीं लौटते ॥ ५ ॥

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

स्तौति न पुनः शवकर्मैवंविदो न कर्तव्यमिति। अक्रियमाणे हि शवकर्मणि कर्मफलारम्भे प्रतिबन्धः कश्चिदनुमीयतेऽन्यत्र। यत इह विद्याफलारम्भकाले शवक स्याद्वा न वेति विद्यावतोऽप्रतिबन्धेन फलारम्भं दर्शयति। ये सुखाकाशमक्षिस्थं सं द्वामो वामनीर्भामनीरित्येवंगुणमुपासते प्राणसहितामग्निविद्यां च तेषामन्यत्कर्म भव मा वा भूत्सर्वथाऽपि तेऽर्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिरभिमानिनीं देवतामभिसंभवन्ति प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः।

श्रुत्यन्तरं प्रमाणयन्ति—न कर्मणेति। अथ यदु चैवेत्यादिवाक्यस्य तात्पर्यं दर्शयति—शवकर्मणीति तात्पर्यान्तरं दर्शयति—न पुनरिति। यदि विदुषोऽपि शवकर्म कर्तव्यं कस्तर्हि तस्य विशेषस्तत्राऽऽह अक्रियमाणे हीति। अन्यत्रेत्यविद्यावानुच्यते। इहेति। प्रस्तुतवाक्यस्य विद्यावतो वोक्तिरिति शवकर्म नादरपूर्वकमिति शेषः। विद्यावतः शवकर्मभावाभावयोरप्रतिबन्धं फलं सिध्यति। अविद्यावतः शवकर्माकरणे कर्माणि न फलदानीति विद्यास्तुतिरिहाभिप्रेतेति भावः। तेऽर्चिषमेवेत्यत्र तच्छब्द व्याचष्टे—ये सुखाकाशमिति।

अन्यत्र श्रुति में भी कहा है—"विद्वान् के लिए कुछ करने से वृद्धि अथवा कुछ न करने से हानि नहीं होती। शवकर्म के प्रति उपेक्षाभाव प्रदर्शित करते हुए ब्रह्मविद्या की स्तुति करते हैं कि इस प्रक जानने वाले विद्वान् का शवकर्म न करे। अविद्यावान् के विषय में अनुमान किया जाता है कि य उसका शवकर्म नहीं होता तो उसके कर्मों के फलारम्भ में कोई प्रतिबन्ध आ जाता है। किन्तु य विद्याफल का आरम्भ होने में शवकर्म हो या न हो विद्वान् के लिए फलारम्भ का प्रतिबन्ध नहीं होता जो उपासक सुखाकाश, चक्षुस्थ पुरुष, संयद्वाम, वामनी और भामनी गुण विशिष्ट ब्रह्म की उपास करता है, उनका अन्य कर्म हो अथवा न हो; वे अर्चि के अभिमानी देवता को प्राप्त हो जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्चिषोऽर्चिर्देवताया अहरहरभिमानिनीं देवतामह्न आपूर्यमाणपक्षं शुक्लपक्षदेवतामापूर्यमाणपक्षाद्यान्षण्मासानुदङ्ङुत्तरां दिशमेति सविता तान्मासानुत्तरायणदेवतां तेभ्यो मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरदेवतां ततः संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्तत्रस्थांस्तान्पुरुषः कश्चिद्ब्रह्मलोकादेत्यामानवो मानव्यां सृष्टौ भवो मानवो न मानवोऽमानव स पुरुष एनान्ब्रह्म सत्यलोकस्थं गमयति गन्तृगन्तव्यगमयितृत्वव्यपदेशेभ्यः । सन्मात्रब्रह्मप्राप्तौ तदनुपपत्तेः । ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येतीति हि तत्र वक्तुं न्याय्यम् । सर्वभेदनिरासेन सन्मात्रप्रतिपत्तिं वक्ष्यति । न चादृष्टो मार्गोऽगमनायोपतिष्ठते । "स एनमविदितो न भुनक्ति" इति श्रुत्यन्तरात् । एष देवपथो देवैरर्चिरादिभि-

सत्यलोकस्थमिति [1]देशव्यवच्छेदेन किमिति व्याख्यायते मुख्यमेव ब्रह्म ब्रह्मशब्दालम्बनं किं नोच्यते तत्राऽऽह—गन्तृगन्तव्येति । एतेभ्यो हेतुभ्यः सत्यलोकस्थं ब्रह्म न मुख्यमिति संबन्धः । मुख्यब्रह्मप्राप्तावपि यथोक्तव्यपदेशा भविष्यन्तीत्याशङ्क्याऽऽह—सन्मात्रेति । तदनुपपत्तेर्न तादृग्ब्रह्म ब्रह्मशब्दमिति शेषः । अनुपपत्तिमेव स्फोरयति—ब्रह्मैवेति । तत्रेति मुख्यप्राप्तिरुच्यते । कस्यचिदपि सन्मात्रब्रह्मप्राप्तिरत्र नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—सर्वभेदेति । वक्ष्यति षष्ठेऽध्याये श्रुतिरिति शेषः । जीवस्य सन्मात्रं ब्रह्म पारमार्थिकं रूपं चेदुपासकस्यापि न गतिरुचिता तस्यापि ब्रह्मातिरिक्तस्वरूपाभावादित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति । एकत्वलक्षणो मार्गो न दृष्टश्चेदगमनाय नोपतिष्ठते । न हि ध्याननिष्ठस्यादृष्टमेकत्वं गमनं वारयितुं पारयत्यज्ञानप्रतिबन्धात् । तस्य गमनभ्रान्तिसंभवादित्यर्थः । यद्वैकत्वलक्षणो मार्गो नावगतो न गमनाय मोक्षायोपस्थितो भवतीत्यर्थः । तत्र प्रमाणमाह—स एनमिति । स परमात्मा प्रत्यक्त्वेनाज्ञातः सन्नेनमधिकारिणं मुक्तिप्रदानेन न पालयतीत्यर्थः । प्रकृतां गतिमुपसंहरति—

अर्चि अभिमानी देवता से दिन के अभिमानी देवता को; दिन के अभिमानी देवता से शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता को, शुक्ल पक्ष के अभिमानी देवता से उत्तरायणस्थित सूर्य के छः मास के अभिमानी देवता को, उन छः मासों के अभिमानी देवता से संवत्सर के अभिमानी को, संवत्सर के अभिमानी देवता से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को, चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त करता है। इस प्रकार उन-उन लोकों में स्थित कोई अलौकिक पुरुष ब्रह्मलोक से आकर इन्हें सत्यलोकस्थ देशविशेषावच्छिन्न ब्रह्म की गन्तृ, गन्तव्य एवं गमयितृत्व व्यपदेश द्वारा प्राप्ति कराता है। अर्थात् इन हेतुओं से गौण ब्रह्म की प्राप्ति समझनी चाहिए; मुख्य ब्रह्म की नहीं। मुख्य ब्रह्म प्राप्ति में पूर्वोक्त हेतुओं का व्यपदेश सिद्ध नहीं होता। श्रुति कहती है—'ब्रह्म होकर ब्रह्म को ही प्राप्त करता है'। इसलिए वहाँ मुख्य ब्रह्म का व्यपदेश युक्तिसंगत है। छान्दोग्योपनिषत् षष्ठ अध्याय में समस्त द्वैत के निरासपूर्वक ब्रह्म होकर ब्रह्मप्राप्ति कराने का मार्ग प्रशस्त किया जाएगा। उपासक का ब्रह्मातिरिक्त स्वरूप का अभाव होने से अदृष्ट मार्ग अगमन कोई अनुष्ठान नहीं करता (एकत्वलक्षणमार्ग गति के लिए नहीं; मोक्ष के लिए उपस्थित होता है)। अन्य श्रुति में कहा है—प्रत्यगात्मा रूप से अज्ञात वह परमात्मा अधिकारी प्रमाता को मुक्ति प्रदान से रक्षा नहीं करता। देवों से अर्चिरादि मार्गों द्वारा गमयितृत्व

१. देशविशेषावच्छिन्नतयेति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गमयितृत्वेनाधिकृतैरुपलक्षितः पन्था देवपथ उच्यते। ब्रह्म गन्तव्यं तेन चोपल... इति ब्रह्मपथः। एतेन प्रतिपद्यमाना गच्छन्तो ब्रह्म मं मानवं मनुसंबन्धिनं म... सृष्टिलक्षणमावर्तं नाऽऽवर्तन्त आवर्तन्तेऽस्मिञ्जननमरणप्रबन्धचक्रारूढा घटीय... वत्पुनः पुनरित्यावर्तस्तं न प्रतिपद्यन्ते। नाऽऽवर्तन्त इति द्विरुक्तिः सफलाया विद्या... परिसमाप्तिप्रदर्शनार्था ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

रहस्यप्रकरण प्रसङ्गादारण्यकत्वसामान्याच्च यज्ञे क्षत उत्पन्ने व्याहृतयः प्रा... श्चित्तार्था विधातव्यास्तदभिज्ञस्य चर्त्विजो ब्रह्मणो मौनमित्यत इदमारभ्यते—

एष इति। गतिफलं निगमयति—एतेनेति। इममितिविशेषणादनावृत्तिरस्मिन्कल्पे। कल्पा... त्वावृत्तिरिति सूच्यते। आवर्तशब्दं व्याकरोति—आवर्तन्त इति। सफलाया यथोक्तेन गतिपूर्व... फलेन सहिताया इति यावत्। कार्यब्रह्मोपासनसमुच्चिता कारणब्रह्मोपासना यथोक्ता न वि... सहिताऽविद्याऽत्र विवक्षिता तस्या इत्यर्थः ॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

पूर्वोत्तरग्रन्थयोरसंगतिमाशङ्क्य प्रासङ्गिकीं संगतिमाह—रहस्यप्रकरण इति। रहस्यमुपा... तत्प्रकरणे विदुषां फलप्राप्तये मार्गोपदेशप्रसङ्गेन यज्ञस्य समाप्तिगमनायानन्तरग्रन्थेन मार्गोपदेशार्थ... संगतिरित्यर्थः। किंच पूर्वोत्तरग्रन्थयोरारण्यकत्वेन समानत्वादपि संगतिरस्तीत्याह—आरण्यकत्वे... किंचाग्निविषया विद्या प्रकृता यज्ञे च सिद्धेऽग्निसंबन्धे यदि किमपि क्षतमुत्पद्यते तदा प्रायश्चित्ता... व्याहृतयो विधातव्या इत्यनन्तरग्रन्थप्रवृत्तिरिति संगत्यन्तरमाह—यज्ञ इति। प्रकृतायामुपासना... मौनमङ्गी क्रियते वाग्व्यापारे विक्षिप्तचित्ततया ध्यानानुष्ठानासिद्धेः। ऋत्विग्विशेषस्य च प्रायश्चि... भिज्ञस्य मौनमत्र विधीयते तेनास्ति मिथः संगतिरित्याह—तदभिज्ञस्येति। यज्ञस्य देवतोद्दे... द्रव्यत्यागात्मकत्वात्क्रियायाश्च क्षणभङ्गिन्या गतिमत्त्वायोगान्मार्गोपदेशासंभवात्कथमाद्या संग...

रूप से अधिकृत व्यक्तियों से उपलक्षित यह मार्ग देवमार्ग कहा जाता है। गन्तव्य ब्रह्म से उपलक्षि... मार्ग ब्रह्मपथ है। इस ब्रह्मपथ को पाकर इस पर आरूढ हुए मनुष्य भगवान् मनु की आवृत्तिपूर्ण सृ... में बार-बार नहीं आते। 'यह संसार लगातार जनन-मरण के चक्कर से ग्रस्त है। इस प्रकार घ... यन्त्र के समान बार-बार आवागमन का नाम आवर्त है; ब्रह्मपथ के पथिक उसे प्राप्त नहीं करते... मन्त्र में 'नाऽऽवर्तन्ते' यह दो बार कहा गया है, जो फल सहित विद्या की परिसमाप्ति का द्यो... है ॥ ५ ॥

उपासना प्रकरण में पूर्व-उत्तर ग्रन्थ वन में कहा जाना सादृश्य होने से प्रसङ्गवशात् यज्ञ... अनजान में पाप हो जाने से प्रायश्चित्त के लिए मन्त्रों का विधान होना चाहिए; प्रायश्चित्त... अपरिचित ऋत्विक् के लिए मौन का विधान किया जाता है, इससे प्रकृत खण्ड का आरम्भ कि... जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः)

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदँ सर्वं पुनाति यदेष यन्निदँ सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी ॥ १ ॥

यज्ञ की उपासना

यह जो वायु रूप से चलता है, निश्चय यज्ञ ही है। निःसन्देह यह सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है। यह गमन करता हुआ निश्चय ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है, इसीलिये यही यज्ञ है। (यज्ञ के मन्त्रोच्चारण करने में प्रवृत्त) वाणी और यथार्थ वस्तु के ज्ञान में प्रवृत्त मन ये दोनों मार्ग हैं ॥ १ ॥

एष ह वा एष वायुर्योऽयं पवतेऽयं यज्ञः। ह वा इति प्रसिद्धार्थविद्योतकौ निपातौ वायुप्रतिष्ठो हि यज्ञः प्रसिद्धः श्रुतिषु। "स्वाहा वातेधाः" "अयं वै यज्ञो योऽयं पवते" इत्यादिश्रुतिभ्यः। वात एव हि चलनात्मकत्वात्क्रियासमवायी। "वात एव यज्ञस्याऽऽरम्भको वातः प्रतिष्ठा" इति च श्रवणात्। एष ह यन्गच्छंश्चलन्निदं सर्वं जगत्पुनाति पावयति शोधयति। न ह्यचलतः शुद्धिरस्ति। दोषनिरसनं चलतो हि

रित्याशङ्क्य गतिमत्त्वं संपादयितुं यज्ञस्य वायुरूपत्वमाह—एष इत्यादिना। यज्ञो वाय्याश्रयो वाय्वात्मक इति श्रौती प्रसिद्धिस्तामेव प्रकटयति—वायुप्रतिष्ठ इति। श्रुतीरुदाहरति—स्वाहेति। स्वाहाकारमुच्चार्य वाते वायौ धीयते क्षिप्यत इति वातेधा यज्ञः। श्रुत्यन्तरमाह—अयमिति। आदिशब्देन वाताद्यज्ञः प्रयुज्यतामिति श्रुतिर्गृह्यते। आदर्शितश्रुतीनामर्थं संगृह्णाति—वात इति। यो यज्ञः क्रियासमवायी तत्समुदायात्मकः स वायुरेव। द्वयोश्चलनात्मकत्वाविशेषात्। तस्माद्वायुप्रतिष्ठस्तदात्मको यज्ञ इत्यर्थः। वायुप्रतिष्ठो यज्ञ इत्यत्र श्रुत्यन्तरमाह—वात एवेति। पावनत्वश्रुत्याऽपि वायुयज्ञयोरेकत्वमाह—एष ह यन्निति। विनाऽपि वायुं शुद्धिः सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—न हीति। अचलतो विहितक्रियामननुतिष्ठत इति यावत्। शुद्धिर्नाम दोषनिरासः। स च निषिद्धं परित्यक्तुं यतमानस्य सिध्यति। न तु निषिद्धक्रियात्यागोदासीनस्य दोषनिरासात्मिका शुद्धिः संभवति। चलनं च वायुः। तस्माद्वायुरेव चलनद्वारा सर्वं जगत्पुनातीत्याह—दोषेति। वायोरस्तु पावनत्वं प्रकृते किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—

जो यह वायु रूप से चलता है, वह यज्ञ ही है। 'ह' 'वा' ये दोनों अव्यय प्रसिद्धार्थक हैं। यज्ञ वायु के आश्रित होने से वाय्वात्मक है, ऐसी श्रुतियों में प्रसिद्धि है। स्वाहाकार उच्चारण कर सामग्री वायु में फेंकी जाती है, वह वातेधा यज्ञ है। अन्य श्रुति भी कहती हैं "यह जो वात रूप चलता है, वह निश्चय ही यज्ञ है" जो यज्ञ क्रियासमवायी है, वह चलनात्मक होने से वायु ही है। श्रुति भी है—वायु ही यज्ञ का आरम्भक है इसलिए यज्ञ वायु में प्रतिष्ठित है। पावनत्व श्रुति भी वायु और यज्ञ की एकता बतलाते हुए कहती है—यह वायु यज्ञ ही है जो चलते हुए इस सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करती व कराती है एवं शुद्ध करती है। विहित क्रिया के अनुष्ठान बिना शुद्धि नहीं होती। शुद्धि चलते हुए ही देखी जाती है; स्थिर की नहीं। यह वायु चलता हुआ इस सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करता है,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा वाचा होताऽध्वर्युरुद्गाताऽन्यतराꣳ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति ॥ २ ॥ अन्यतरामेव वर्तनीꣳ सꣳस्करोति हीयतेऽन्यतरा स

ब्रह्मा के मौन भंग होने पर यज्ञ की हानि

उन दोनों मार्गों में से एक मार्ग का ब्रह्मा नामक ऋत्विक् विवेकयुक्त मन से संस्कार करते हैं तथा होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये तीनों ऋत्विक् भी वाणी रूप मार्ग द्वारा दूसरे मार्ग का संस्कार करते हैं। यदि प्रातरनुवाक के आरम्भ हो जाने पर परिधानीया ऋचा के उच्चारण से पूर्व ब्रह्मा बोले

दृष्टं न स्थिरस्य। यद्यस्माच्च यन्नेष इदं सर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञो यत्पुनातीति। तस्यास्यैवं विशिष्टस्य यज्ञस्य वाक्च मन्त्रोच्चारणे व्यापृता। मनश्च यथाभूतार्थज्ञाने व्यापृतम्। ते एते वाङ्मनसे वर्तनी मार्गौ याभ्यां यज्ञस्तायमानः प्रवर्तते ते वर्तनी। "प्राणापानपरिचलनवत्या हि वाचश्चित्तस्य चोत्तरोत्तरक्रमो यद्यज्ञः" इति हि श्रुत्यन्तरम्। अतो वाङ्मनसाभ्यां यज्ञो वर्तत इति वाङ्मनसे वर्तनी उच्येते यज्ञस्य ॥१॥

तयोर्वर्तन्योरन्यतरां वर्तनीं मनसा विवेकज्ञानवता संस्करोति ब्रह्मर्त्विग्वाचा

यद्यस्मादिति। वाय्वात्मना गतिविशिष्टस्य यज्ञस्य मार्गद्वयमुपदिशति—तस्येति। एवं विशिष्टस्य पावनस्य वायुरूपस्येति यावत्। यज्ञस्योक्तमार्गद्वयवैशिष्ट्ये 'सोपस्कारमैतरेयवाक्यमुदाहरति—प्राणेति। प्राणापानाभ्यमुच्छ्वासनिश्वासाभ्यां परिचलनं विद्यते यस्य स्तस्या वाचश्चित्तस्य च पूर्वापरभावक्रमेण यज्ञः संपाद्यते। मनसा हि ध्यायन्वाचमभिव्याहरन्पूर्वापरीभावेन यज्ञं संपादयतीत्यर्थः। यज्ञस्य मार्गद्वयविशिष्टत्वमुपसंहरति—अत इति ॥१॥

तयोरन्योन्यमुपकार्योपकारकभावं दर्शयति—तयोरिति। वाचा सम्यक्प्रयुञ्जयेति शेषः।

इसलिए यही यज्ञ है जो पावनगुणयुक्त है। पावनगुणविशिष्ट इसी यज्ञ के लिए वाणी मन्त्रोच्चारण में लगी रहती है। मन उसके अनुसार अर्थज्ञान में लगा रहता है। वे ये वाणी और मन मार्ग हैं, जिनसे यज्ञ सम्पादित होता है। ऐतरेयोपनिषत् में कहा है—"प्राण और अपान से उच्छ्वास और निश्वास होने से जिसका परिचलन होता है, उस वाणी और चित्त से पूर्वापर भाव क्रम से यज्ञ सम्पादित होता है"। इसलिए वाणी और मन से यज्ञ सम्पादित होता है क्योंकि मन से ध्यान कर वाणी से उच्चारण कर पूर्वापरीभाव से यज्ञ होता है। इससे सिद्ध होता है, वाणी और मन यज्ञ के मार्ग हैं ॥ १ ॥

उन दोनों मार्गों में से प्रथम मार्ग का ब्रह्मा नामक ऋत्विक् विवेक ज्ञानयुक्त मन से संस्कार करता है। दूसरे मार्ग का होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये तीनों ऋत्विक् भी वाणी से संस्कार करते

---

१. सयुक्तिकम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथैकपाद्व्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येव-मस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञꣳ रिष्यन्तं यजमानोऽनु-रिष्यति स इष्ट्वा पापीयान्भवति ॥ ३ ॥

जाय, तो वह एक वाणी रूप मार्ग का ही संस्कार करता है। दूसरा मन रूप मार्ग छिद्रयुक्त हो जाता है। जैसे एक पाद से चलने वाला पुरुष या एक चक्र से चलने वाला रथ नष्ट हो जाता है, वैसे ही इसका यज्ञ नष्ट हो जाता है। यज्ञ नष्ट हो जाने के बाद यजमान का भी नाश हो जाता है, फिर तो इस प्रकार यज्ञ करके वह और भी अधिकतर पापी होता है ॥ २–३ ॥

वर्तन्या होताऽध्वर्युरुद्गातेत्येते त्रयोऽप्यृत्विजोऽन्यतरां वाग्लक्षणां वर्तनीं वाचैव संस्कुर्वन्ति तत्रैवं सति वाङ्मनसे वर्तनी संस्कार्ये यज्ञे। अथ स ब्रह्मा यत्र यस्मिन्काल उपाकृते प्रारब्धे प्रातरनुवाके शस्त्रे पुरा पूर्वं परिधानीयाया ऋचो ब्रह्मा तस्मिन्नन्तरे काले व्यव-वदति मौनं परित्यजति यदि तदाऽन्यतरामेव वाग्वर्तनीं संस्करोति। ब्रह्मणाऽसंस्क्रिय-माणा मनोवर्तनी हीयते विनश्यति च्छिद्री भवत्यन्यतरा। स यज्ञो वाग्वर्तन्यैवान्यतरया वर्तितुमशक्नुवन्रिष्यति। कथमिवेत्याह। स यथैकपात्पुरुषो व्रजन्गच्छन्नध्वानं रिष्यति, रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो गच्छन्रिष्यत्येवमस्य यजमानस्य कुब्रह्मणा यज्ञो रिष्यति

संस्कृतायां च वाग्वर्तन्यां तयैव यज्ञो निष्पन्नो भवतीत्याह—वाचैवेति। किं तर्हि मनोवर्तन्या संस्क्रियत इत्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति। यज्ञस्य द्वाभ्यां मार्गाभ्यां नीयमानत्वे पूर्वोक्तरीत्या स्थिते सतीति यावत्। मनोवर्तनी ब्रह्मणा वाग्वर्तनी च मनोवर्तन्याः संस्काराभावे प्रत्यवायं दर्शयति—अथेत्यादिना। होतृप्रभृतिभिः संस्कार्येति व्यवस्थानन्तरमित्यर्थः। स ब्रह्मेत्यन्वयं सूचयति—ब्रह्मेति। पुनरुक्तिस्तस्य क्रियापदेन संबन्धद्योतनार्था एतस्मिन्नन्तरे काले प्रातरनुवाकशस्त्रमारभ्य तत्परिसमाप्तेरन्तरावस्थाया-मित्यर्थः। वाचो होत्रादिभिः संस्कार्यत्वमस्तु, मनसश्च ब्रह्मसंस्कार्यत्वं मा भूदेतावता यज्ञस्य किमाया-तमित्याशङ्क्याऽऽह—स यज्ञ इति। यज्ञेभ्रंशमेवाऽऽकाङ्क्षाद्वारा व्युत्पादयति—कथमित्यादिना।

है। यज्ञ का दोनों मार्गों से संपादन संभव होने से वाक् और मन दोनों मार्गों का यज्ञ में संस्कार करना चाहिए। (इसके बिना प्रत्यवाय लगता है) संस्कार की आवश्यकता होने पर भी अनवधान-वशात् यदि ब्रह्मा प्रातरनुवाक स्तुति के प्रारम्भ होने पर परिधानीया ऋचा के उच्चारण से पूर्व मौन खोल दे, तो वह वाणी रूप मार्ग का ही संस्कार करता है। इससे ब्रह्मा ऋत्विक् द्वारा असंस्कृत मन रूप मार्ग विनष्ट हो जाता है अर्थात् छिद्रयुक्त हो जाता है। वह यज्ञ वाक् मार्ग द्वारा हो संस्कृत होने से, किन्तु मन के द्वारा संस्कृत न होने से नष्ट हो जाता है। इसीको दृष्टान्त द्वारा कहा जाता है—जैसे एक पाद से चलने वाला मार्गभ्रष्ट हो जाता है तथा एक पहिए से चलने वाला रथ भी नष्ट हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदत्युभे एव वर्तनी सꣳस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा ॥ ४ ॥

स यथोभयपाद्व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान्भवति ॥ ५ ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

ब्रह्मा के मौन धारण से यज्ञ की सिद्धि

और यदि विद्वान् ब्रह्मा प्रातरनुवाक आरम्भ करने के बाद परिधानीया ऋचा से पूर्व मौन त्यागता नहीं तो (सभी ऋत्विक् मिलकर) दोनों ही मार्गों का संस्कार करते हैं, तब एक भी मार्ग नष्ट नहीं होता ॥ ४ ॥

जैसे दोनों पैरों से चलने वाला पुरुष या दोनों चक्रों से चलने वाला रथ प्रतिष्ठित रहता है इसी प्रकार इस यजमान का यज्ञ प्रतिष्ठित रहता है और यज्ञ के प्रतिष्ठित रहने पर (यज्ञ के साथ ही) यजमान भी प्रतिष्ठित रहता है (इस प्रकार मौन विज्ञानयुक्त ब्रह्मा वाला) वह यजमान यज्ञ करके श्रेष्ठ होता है ॥ ५ ॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

विनश्यति । यज्ञं रिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति । यज्ञप्राणो हि यजमानः । अतो युक्तं यज्ञरेषे रेषस्तस्य । स तं यज्ञमिष्ट्वा तादृशं पापीयान्पापतरो भवति ॥२॥३॥

अथ पुनर्यत्र ब्रह्मा विद्वान्मौनं परिगृह्य वाग्विसर्गमकुर्वन्वर्तते यावत्परिधानी-

---

नाशेऽपि यज्ञस्य यजमानस्य किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—यज्ञप्राणो हीति । वाग्वर्तनीसंस्काराभावेऽपि तुल्यो दोषः ॥२॥३॥

मौनगुणं दर्शयति—अथ पुनरिति । तथैव सम्यगनुष्ठातार इति यावत् । तथा सति ब्रह्मा चाले-

---

जाता है, इसी प्रकार कुब्रह्मा ऋत्विक होने से इस यजमान का यज्ञ नष्ट हो जाता है। यज्ञ के नष्ट होने पर यजमान भी नष्ट हो जाता है क्योंकि यज्ञ का प्राण यजमान है। इसलिए यह कहना युक्तिसंगत है कि यज्ञ के नष्ट होने पर यजमान का नाश हो जाता है। वह इस प्रकार असंस्कृत यज्ञ वाला और भी अधिक पापी होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

तथा जहाँ विद्वान् ब्रह्मा मौनव्रत लेकर वाणी को प्रयोग न कर रहता है, परिधानीया ऋचा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः)

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाँ रसान्प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः ॥१॥

यज्ञ दोष के निवारणार्थ व्याहृतियों की उपासना

प्रजापति ने लोकों को उद्देश्य बनाकर (इनके सार ग्रहण की इच्छा से) ध्यान रूप तप किया। उन तपे हुए लोकों में से उसने रस निकाला। पृथिवी से अग्नि रूप रस, अन्तरिक्ष से वायु रूप रस तथा द्युलोक से आदित्य रूप रस को निकाला॥ १ ॥

यथा न व्यववदति तथैव सर्वर्त्विज उभे एव वर्तनी संस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतराऽपि। किमिवेत्याह। पूर्वोक्तविपरीतौ दृष्टान्तौ। एवमस्य यजमानस्य यज्ञः स्ववर्तनीभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठति स्वेनाऽऽत्मनाऽविनश्यन्वर्तत इत्यर्थः। यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स यजमान एवं मौनविज्ञानवद्ब्रह्मोपेतं यज्ञमिष्ट्वा श्रेयान्भवति श्रेष्ठो भवतीत्यर्थः ॥४॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्यस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

अत्र ब्रह्मणो मौनं विहितं तद्भ्रेषे ब्रह्मत्वकर्मणि चाथान्यस्मिंश्च होत्रादिकर्मभ्रेषे व्याहृतिहोमः प्रायश्चित्तमिति तदर्थं व्याहृतयो विधातव्या इत्याह—

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपल्लोकानुद्दिश्य तत्र सारजिघृक्षया ध्यानलक्षणं तपश्चचार।

चर्त्विजो द्वे वर्तन्यौ संस्कुर्वन्त्येवेत्याह—नेति। वर्तनीद्वयसंस्कारे किं स्यादित्यपेक्षायामाह—एवमिति ॥४॥५॥

इति चतुर्थाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

नित्यानुष्ठानमुक्त्वा नैमित्तिकप्रायश्चित्तविधानार्थमुपक्रमते—अत्रेति। तद्भ्रेषे ब्रह्मणो मौनभ्रंशे

से पूर्व नहीं बोलता; सम्यक् अनुष्ठान करने वाले सभी ऋत्विक् दोनों मार्गों का संस्कार करते हैं, इससे एक मार्ग भी नष्ट नहीं होता। पूर्वमन्त्रों में कहे हुए दृष्टान्त से यहाँ भिन्न बात है। इस प्रकार मार्गद्वय के संस्कार से इस यजमान का यज्ञ अपने दोनों मार्गों में स्थित रहकर प्रतिष्ठित रहता है, अपने स्वरूप से बिना पृथक् हुए स्थित रहता है। यज्ञ के प्रतिष्ठित रहने पर यजमान प्रतिष्ठित रहता है। इस प्रकार मौनविज्ञान वाला ब्रह्मा ऋत्विक् से युक्त वह विद्वान् यज्ञ करके श्रेष्ठ हो जाता है ॥४॥५॥

(नित्यानुष्ठान के पश्चात् नैमित्तिक प्रायश्चित्त का विधान किया जाता है—) यहाँ ब्रह्मा के मौन का विधान किया, वह मौनव्रत भंग होने के बाद ब्रह्मत्व कर्म में अन्य होत्रादि कर्म के नष्ट हो जाने पर व्याहृतिहोम प्रायश्चित्त है, उसके लिए मन्त्रों का विधान करना चाहिए, इससे श्रुति कहती है।

प्रजापति ने लोकों का सार ग्रहण करने की इच्छा से ध्यानसञ्ज्ञक तप किया। उन लोकों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानाना्ँ रसान्प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजू्ँषि सामान्यादित्यात् ॥ २ ॥

स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्यास्तप्यमानाया रसान्प्रावृहद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः ॥ ३ ॥

फिर भी प्रजापति ने अग्न्यादि इन तीन देवताओं को लक्ष्य बनाकर तप किया। उन तपे हुए देवताओं से उसने रस निकाले। अग्नि से ऋक्, वायु से यजुः और आदित्य से साम को निकाला ॥२॥

उसके बाद उस प्रजापति ने इस त्रयीविद्या को लक्ष्य में रखकर तप किया। उस तपी हुई विद्या से उसने रस निकाले। ऋग्वेद से भूः, यजुर्वेद से भुवः और सामवेद से स्वः इन तीनों रसों को निकाला ॥ ३ ॥

तेषां तप्यमानानां लोकानां रसान्साररूपान्प्रावृहदुद्धृतवाञ्जग्राहेत्यर्थः। कान्। अग्निं रसं पृथिव्याः। वायुमन्तरिक्षात्। आदित्यं दिवः ॥१॥

पुनरप्येवमेवाग्न्याद्याः स एतास्तिस्रो देवता उद्दिश्याभ्यतपत्। ततोऽपि ... रसं त्रयीविद्यां जग्राह ॥२॥

स एतां पुनरभ्यतपत्त्रयीं विद्याम्। तस्यास्तप्यमानाया रसान् भूरिति व्याहृति मृग्भ्यो जग्राह। भुवरिति व्याहृतिं यजुर्भ्यः। स्वरिति व्याहृतिं सामभ्यः। अत ...

सतीति यावत्। रसान्विशेषतो ज्ञातुं पृच्छति—कानिति ॥१॥

एवं यथा लोकानभ्यतपत्तथेति यावत् ॥२॥

रसान् जग्राहेति संबन्धः। [1]तदेव विवृणोति—भूरिति व्याहृतिमित्यादिना। प्रथमोऽत्रा...

लिए तपस्या करते-करते उन्होंने सार रूप रस को ग्रहण कर लिया। उसने पृथिवी से अग्नि रूपी रस को, अन्तरिक्ष से वायु रूपी रस, द्युलोक से आदित्य रूपी रस को ग्रहण किया ॥ १ ॥

इसके बाद प्रजापति ने अग्नि, वायु एवं आदित्य इन तीनों देवताओं के लिए तपस्या ... उनका भी सार रूप रस त्रयी विद्या को, ग्रहण कर लिया ॥ २ ॥

फिर उस प्रजापति ने त्रयी विद्या के निमित्त तपस्या की। उसके लिए तपस्या करते-करते त्रयी विद्या का साररूप रस ग्रहण किया। ऋग्वेद से 'भूः' यह मन्त्र रस रूप में ग्रहण किया, यजुर्वेद से 'भुवः' यह मन्त्र रस रूप में, सामवेद से 'स्वः' यह मन्त्र रस रूप में ग्रहण किया। क्योंकि लोक, ...

---

१. तदेवेति—रसान् जग्राहेत्युक्तं रसग्रहणमेवेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्यदृक्तो रिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ४ ॥

अथ यदि यजुष्टो रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद्यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ५ ॥

उस यज्ञ में यदि ऋग्वेदों के संवन्ध से क्षति हो तो "भूः स्वाहा" ऐसा उच्चारण कर गार्हपत्याग्नि में हवन करे। इस प्रकार वह यजमान ऋचाओं के रस से ऋक् श्रुतियों के ओज द्वारा यज्ञ के ऋक् संबन्धी विच्छेद की पूर्ति करता है ॥ ४ ॥

और यदि यजुर्वेद के निमित्त से क्षति हो तो "भुवः स्वाहा" ऐसा उच्चारण कर दक्षिणाग्नि में हवन करे। इस प्रकार यजुर्वेद के रस से यजुर्वेद के ओज द्वारा यज्ञ के यजुः संबन्धी क्षति की पूर्ति करता है ॥ ५ ॥

लोकदेववेदरसा महाव्याहृतयः। अतस्तत्तत्र यज्ञे यद्यृक्त ऋक्संबन्धादृङ्निमित्तं रिष्येद्यज्ञः क्षतं प्राप्नुयाद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयात्। सा तत्र प्रायश्चित्तिः। कथम्, ऋचामेव तदिति क्रियाविशेषणं, रसेनर्चां वीर्येणौजसर्चां यज्ञस्य ऋक्संबधिनो यज्ञस्य विरिष्टं विच्छिन्नं क्षतरूपमुत्पन्नं संदधाति प्रतिसंधत्ते ॥३॥४॥

अथ यदि यजुष्टो यजुर्निमित्तं रिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयात्। तथा

यत इत्यस्मिन्नर्थे। यद्यृक्त इति। [1]ऋक्शब्दस्तस्मिन्। उक्तप्रायश्चित्तमेवाऽऽकाङ्क्षापूर्वकं विवृणोति—कथमित्यादिना। क्रियाविशेषणमिति। यज्ञस्य क्षतं संदधातीति यत्तदृचामेव रसेन संदधातीत्यर्थः। ओजसा संदधातीति संबन्धः ॥३॥४॥

तथा च यथोक्ते साधने सतीत्यर्थः। यथा पूर्वस्मिन्प्रायश्चित्ते यज्ञस्य क्षतमिव रसेन होता संदधाति तथा द्वितीयतृतीयप्रायश्चित्तयोरपि यजुषां साम्नां च रसेनाध्वर्युरुद्गाता च तत्क्षतं संधत्त

और वेद रूप रस वाले ये मन्त्र हैं, इसलिए वहाँ यज्ञ में यदि ऋक् शब्द से संबन्धित कोई प्रत्यवाय हो तो "भूः स्वाहा" इस मन्त्र का उच्चारण कर गार्हपत्य अग्नि में हवन करे, इसके लिए यही प्रायश्चित्त है। ऐसे प्रायश्चित्त का विधान क्यों किया है? "ऋक् के रस से पूर्ण करता है" यहाँ मन्त्र में 'ऋक् के रस से' यह क्रियाविशेषण है। वह यजमान ऋक्शब्दसम्बन्धी यज्ञ के विच्छिन्न प्रत्यवाय रूप से उत्पन्न ऋक् के रस से पूर्ण कर देता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

इसी प्रकार यजुर्निमित्तिक प्रत्यवाय होने से "भुवः स्वाहा" इस मन्त्र से दक्षिणाग्नि में हवन

---

१. ऋक्शब्दस्तस्मिन्निति ऋक्शब्दः ऋक्संबन्धे लाक्षणिक इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां वीर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति ॥ ६ ॥

तद्यथा लवणेन सुवर्णꣳ संदध्यात्सुवर्णेन रजतꣳ

एवं यदि साम श्रुतियों के निमित्त से क्षति हो तो "स्वः स्वाहा" ऐसा उच्चारण क आहवनीयाग्नि में हवन करे। इस प्रकार वह साम के रस से साम के ओज द्वारा साम संबन्धी यज्ञ क्षति की पूर्ति करता है ॥ ६ ॥

विद्वान् ब्रह्मा की विशेषता

इस संबन्ध में (ऐसा समझना चाहिये कि) जैसे लवण (क्षार) से सुवर्ण को, सुवर्ण से रज

सामनिमित्ते रेषे स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्। तथा पूर्ववद्यज्ञं संदधाति। ब्रह्म निमित्ते तु रेषे त्रिष्वग्निषु तिसृभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयात्। त्रय्या हि विद्यायाः स रेषः "अथ केन ब्रह्मत्वमित्यनयैव त्रय्या विद्यया" इति श्रुतेः। न्यायान्तरं वा मृग्यं ब्रह्मत्व निमित्ते रेषे ॥५॥६॥

तद्यथा लवणेन सुवर्णं संदध्यात्। क्षारेण टङ्कणादिना खरे मृदुत्वकरं हि तत्

इत्याह—पूर्ववदिति। होत्राद्यपराधाधीनयज्ञभ्रंशे प्रायश्चित्तमुक्त्वा ब्रह्मापराधकृते यज्ञनाशे किं प्रा श्चित्तमित्याशङ्क्याऽऽह—ब्रह्मेति। यथोक्तप्रायश्चित्ते लिङ्गं दर्शयति—त्रय्या हीति। ब्रह्मत्वस्त्रयीसाध्य प्रमाणमाह—अथ केनेति। साधारणकार्यस्य साधारणसामग्रीजन्यत्वनियमाद्वेदत्रयसाधारणे ब्रह्म वेदत्रयसाधारणमेव प्रायश्चित्तं वाच्यमित्येको न्यायो दर्शितः। संप्रत्य[1]स्यैवैकवेदकत्वप्रसिद्धेर्ब्रह्म सर्ववेदार्थाभिज्ञस्य ज्ञानमाहात्म्येनैव दोषनिरासान्नान्यत्प्रायश्चित्तं विधेयमिति न्यायान्तरमाह— न्यायान्तरं वेति ॥५॥६॥

वस्तुस्वभाववैचित्र्यादुत्पन्नस्यापि क्षतस्य केनचित्संधानं भवतीत्यत्र दृष्टान्तानाह—तद्यथेत ॰दिना। किं तत्र साधनमिति तद्दर्शयति—क्षारेणेति। खरे सुवर्णे वह्निसंयुक्ते द्रवीभूते क्षारप्रक्षे

करे। सामनिमित्तक प्रत्यवाय होने से "स्वः स्वाहा" इस आहवनीय अग्नि में हवन करे। इस प्र वह पूर्व मन्त्र के समान प्रायश्चित्त रूप में विच्छेद की पूर्ति करता है। ब्रह्मापराध पर यज्ञभङ्ग हो जाने पर तीनों मन्त्रों द्वारा तीनों अग्नियों में हवन करे। त्रयी विद्या का वह प्रत्यवाय है, इसलि यथोक्त-यथोक्त प्रायश्चित्त है। अन्य श्रुति भी कहती है—"ब्रह्मा का ब्रह्मत्व होने में त्रयी विद्या कारण है, वेदत्रय साधारण ब्रह्मत्व में वेदत्रय साधारण ही प्रायश्चित्त है"। सर्ववेदार्थ के जानने वा

---

१. अस्यैवेति—होत्रादेरेवैकवेदाभिज्ञत्वप्रसिद्धेर्युक्तं तद्रेषे प्रायश्चित्तविधानमिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रजतेन त्रपु त्रपुणा सीसꣳ सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा ॥ ७ ॥

एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवति ॥ ८ ॥

को, रजत से राँगे को, राँगे से शीशे को शीशे से लोहे को, लोहे से काष्ठ को या चमड़े के बन्धन से काष्ठ को जोड़ा जाता है ॥ ७ ॥

वैसे ही इन लोक, देवता और त्रयीविद्या के ओज से यज्ञ की क्षति की पूर्ति करते हैं। जिसमें इस प्रकार विद्वान् ब्रह्मा होता है, वह यज्ञ निश्चय ही मानो औषधियों द्वारा सुसंस्कृत होते हैं ॥ ८ ॥

सुवर्णेन रजतमशक्यसंधानं संदध्यात्। रजतेन तथा त्रपु त्रपुणा सीसं सीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा चर्मबन्धनेन। एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण रसाख्येनौजसा यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति। भेषजकृतो ह वा एष यज्ञः। रोगार्त इव पुमांश्चिकित्सकेन सुशिक्षितेनैष यज्ञो भवति। कोऽसौ। यत्र यस्मिन्यज्ञ एवंविद्यथोक्तव्याहृतिहोमप्रायश्चित्तविद्ब्रह्मर्त्विग्भवति स यज्ञ इत्यर्थः ॥७॥८॥

टङ्कणादिना मृदुकरणं मिथोऽवयवसंयोजनं संधानं प्रसिद्धमित्यर्थः। रजतं सुवर्णेन स्वरसतस्तावदशक्यसंधानं तथाऽपि वह्निसंयोगपूर्वकं पूर्ववदेव तत्रापि प्रसिद्धं संधानमित्याह—सुवर्णेनेति। रजतेनेत्यादावपि यथोक्तं द्रष्टव्यम्। संदधाति ब्रह्मेति शेषः। भेषजेनेव कृतः संस्कृत इति यावत्। तदेव स्फुटयति—रोगार्त इति। भवति संस्कृत इति शेषः ॥७॥८॥

के लिए ज्ञानमाहात्म्य द्वारा ही ब्रह्मत्वनिमित्तक प्रत्यवाय निरास हेतु अन्य प्रायश्चित्त का अनुष्ठान करना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥

(दृष्टान्तों द्वारा प्रत्यवाय की पूर्ति को बतलाया जाता है—) सुवर्ण के अवयवों को लवण से जोड़े। वह्नि से गर्मा कर द्रवीभूत होने पर लवण डालने से सुवर्ण नर्म हो जाता है। कठिन होते हुए भी सुवर्ण से वह्निसंयोग द्वारा रजत को जोड़े। इसी प्रकार चाँदी से राँगे को, राँगे से सीसे को, सीसे से लोहे को, लोहे से लकड़ी को अथवा लकड़ी को चमड़े के बन्धन से जोड़े। इस प्रकार इन लोकों को, इन देवताओं को इस त्रयी विद्या के रससंज्ञक तेज से यज्ञ के प्रत्यवाय को ब्रह्म जोड़ता है। यह यज्ञ भेषज की तरह संस्कृत हुआ करता है। जैसे रोग से पीड़ित व्यक्ति अच्छे डाक्टर से ठीक होता है, उसी प्रकार पूर्वोक्त मन्त्रों एवं होम के प्रायश्चित्तों के जानने वाले ब्रह्मा ऋत्विक् द्वारा यज्ञ संस्कृत होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳ ह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति ॥ ९ ॥

मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरूनश्वाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳसर्वाꣳश्चर्त्विजोऽभिरक्षति

जहाँ ऐसा विद्वान् होता है, वह यज्ञ उत्तर मार्ग की प्राप्ति कराने वाला होता है। इस प्र... जानने वाले ब्रह्मा को लक्ष्य में रखकर ही यह गाथा प्रसिद्ध हुई है कि जहाँ-जहाँ कर्म आवृत होता... वहाँ पर वह पहुँच जाता है (और यज्ञकर्त्ता की सब प्रकार की रक्षा करता है) एक मौनी (मनन... ब्रह्मा ही ऋत्विक् है। जैसे युद्ध में घोडी योद्धाओं की रक्षा सब प्रकार से करती है, वैसे ही... जानने वाला ब्रह्मा यज्ञ, यजमान और समस्त ऋत्विजों की भी रक्षा करता है। अतः इस प्र...

किंचैष ह वा उदक्प्रवण उदङ्निम्नो दक्षिणोच्छ्रायो यज्ञो भवति। उत्त... मार्गप्रतिपत्तिहेतुरित्यर्थः। यत्रैवंविद्ब्रह्मा भवत्येवंविदं ह वै ब्रह्माणमृत्विजं प्रत्येव... ऽनुगाथा ब्रह्मणः स्तुतिपरा। यतो यत आवर्तते कर्म प्रदेशादृत्विजां यज्ञः क्षतीभवति... तद्यज्ञस्य क्षतरूपं प्रतिसंदधत्प्रायश्चित्तेन गच्छति परिपालयतीत्येतत् ॥९॥

मानवो ब्रह्मा मौनाचरणान्मननाद्वा ज्ञानवत्त्वात्ततो ब्रह्मैवैकऋत्विक्कुरून्कर्तॄ... योद्धृनारूढानश्वा वडवा यथाऽभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानं सर्वांश्चर्त्विजो...

इतश्चैवंविदा ब्रह्मणा भवितव्यमित्याह—किंचेति। गाथाशब्दो गायत्र्यादिच्छन्दोव्यतिरि... च्छन्दोविषयः। यतो यतः प्रदेशात्कर्माऽऽवर्तत इत्युक्तं विवृणोति—ऋत्विजामिति। यत्र यत्र प्र... यज्ञस्य क्षतिरध्वर्युप्रभृतीनामभवत्तत्र तत्र यज्ञस्य क्षतरूपं प्रायश्चित्तेन प्रतिसंदधानो ब्रह्मा कर्तॄन्परि... पालयतीति संबन्धः ॥९॥

ऋत्विजि ब्रह्मणि मानवशब्दप्रवृत्तौ निमित्तद्वयमाह—मौनेति। ज्ञानातिशयस्तच्छब्दार्थः... कर्तॄनभिरक्षतीति संबन्धः उक्तमर्थं दृष्टान्तेन प्रकटयति—योद्धृनित्यादिना। प्रकरणार्थमुपसंहरति...

जहाँ इस प्रकार विद्वान् ब्रह्मा होता है, वहाँ वह यज्ञ उत्तर दिशा के निकट तथा दक्षिण... ऊपर यानी उत्तर दिशा की प्राप्ति का हेतु हुआ करता है। ऐसे विद्वान् ब्रह्मा के प्रति यह गाथा... व्यतिरिक्त छन्द विषयिणी गाथा स्तुतिपरक है कि जहाँ-जहाँ जिस-जिस प्रदेश से कर्म आवृत होता... वहाँ-वहाँ वह ऋत्विजों के क्षत हुए यज्ञ को प्रायश्चित्त से रक्षा करता है ॥ ९ ॥

मौनस्वभाव, मननशील एवं ज्ञानवान् होने से एक ही ऋत्विक् है जो कर्ता का पालन कर... है। जिस प्रकार युद्ध में अपने पर आरूढ़ योद्धा की घोड़ी सब ओर से रक्षा करती है, उसी प्रकार...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवं-
विदम् ॥ १० ॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

इति च्छान्दोग्योपनिषदि चतुर्थोऽध्यायः
समाप्तः ॥ ४ ॥

जानने वाले को ही ब्रह्मा बनावे। ऐसा न जानने वाले को ब्रह्मा न बनावे। दुरुक्ति अध्याय की समाप्ति का सूचक है ॥ ९ ॥ १० ॥

॥ इति चतुर्थाध्यायः, सप्तदशः खण्डः ॥

ऽभिरक्षति तत्कृतदोषापनयनात्। यत एवं विशिष्टो ब्रह्मा विद्वांस्तस्मादेवंविदमेव यथोक्तव्याहृत्यादिविदं ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं कदाचनेति। द्विरभ्यासोऽध्यायपरिसमाप्त्यर्थः ॥१०॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥

एवमिति ॥१०॥

इति चतुर्थाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां छान्दोग्योपनिषद्भाष्यटीकायां
चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥

ब्रह्म यज्ञ, यजमान और सभी ऋत्विजों द्वारा किए हुए दोषों को दूर कर रक्षा करता है। इसलिए यथोक्त व्याहृतियों को जानने वाले को ही ब्रह्मा बनावे, इससे अज्ञ को ब्रह्मा न बनावे। मन्त्र में 'नानेवंविदं' यह द्विरुक्ति अध्याय परिसमाप्ति की बोधिका है ॥ १० ॥

इस प्रकार छान्दोग्य उपनिषत् में चतुर्थ अध्यायस्थ शाङ्करभाष्य की डॉ० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः)

ॐ। यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च ॥ १ ॥

ज्येष्ठादि गुण विशिष्ट प्राण की उपासना

जो कोई (आयु में प्रथम होने से) ज्येष्ठ और (गुणों में अधिक होने से) श्रेष्ठ को जा... है, वह निश्चय ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है, (क्योंकि कार्यकरणसंघात में) निश्चय ही प्राण ज्ये... तथा श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

सगुणब्रह्मविद्याया उत्तरा गतिरुक्ता। अथेदानीं पञ्चमेऽध्याये पञ्चाग्निवि... गृहस्थस्योर्ध्वरेतसां च श्रद्धालूनां विद्यान्तरशीलिनां तामेव गतिमनूद्यान्या दक्षि... दिक्संबन्धिनी केवलकर्मिणां धूमादिलक्षणा पुनरावृत्तिरूपा तृतीया च ततः कष्टत... संसारगतिर्वैराग्यहेतोर्वक्तव्येत्यारभ्यते। प्राणः श्रेष्ठो वागादिभ्यः प्राणो वाव सं... इत्यादि च बहुशोऽतीते ग्रन्थे प्राणग्रहणं कृतं स कथं श्रेष्ठो वागादिषु सर्वैः संहत्...

वृत्तमनूद्य वर्तिष्यमाणाध्यायस्य संगतिं संगिरते—सगुणेति। विद्यान्तरं पञ्चाग्निविद्यावि... सगुणविद्या। तच्छीलिनां तन्निष्ठानामिति यावत्। तामेव गतिमर्चिरादिलक्षणामित्यर्थः। ततो गति... तृतीया च विद्याकर्मरहितानामिति शेषः। अथ क्रमेण मुक्तिसंभवादुत्तरा गतिरुच्यतां किमिति दक्षि... तृतीया च संसाररूपा गतिरतिनिकृष्टा व्यपदिश्यते तत्राऽऽह—कष्टतरेति। सगुणब्रह्मविद्यावतामर्चिरा... गतिमुक्त्वा समुच्चितानामसमुच्चितानां कर्मणां संसारगतिप्रभेदरूपं फलं वक्तुमयमार... इत्यर्थः। कर्मविधिश्च धनसंपत्तौ सत्यां भवति। तत्संपत्तिश्च ब्राह्मणस्य श्रैष्ठ्ये सत्येव संभवतीति... श्रैष्ठ्यसिद्धये प्राणोपासनं पूर्वत्रानुक्तं वक्तव्यमित्यनन्तरग्रन्थसंगतिं वदन्प्रसङ्गं करोति—प्राणः श्रे... इत्यादिना। प्राणो ब्रह्मेत्यादिवाक्यमादिशब्दार्थः। उदाहृतानुदाहृतश्रुत्यन्तरसमुच्चयार्थश्चकारः... प्राणस्य वागादिभ्यः श्रैष्ठ्यमुक्तमाक्षिपति—स कथमिति। सर्वैर्वागादिभिः संहत्य प्राणस्य कार्यकर... संप्रतिपन्ने स एव कथं श्रेष्ठो निर्धार्यते तेषामन्यतमस्यैव श्रैष्ठ्यं किं न स्यादित्यर्थः। तस्यैवोपासन...

इससे पूर्व के अध्याय में सगुण ब्रह्म-विद्या के उपासक की श्रेष्ठ गति प्राप्ति बतलायी गई। ... इस पाँचवें अध्याय में पञ्चाग्नि विद्या के विद्वान् गृहस्थ की एवं ऊर्ध्वरेता, श्रद्धालु पञ्चाग्निविद्या... अतिरिक्त सगुणविद्या में निष्ठा रखने वालों की अर्चिरादि मार्ग से गमन को पुनः कह कर केवल... कर्मकाण्डियों के लिए अन्य धूमादि संज्ञक पुनरावृत्तिरूप दक्षिणदिशा संबन्धी गति तथा उक्त दोनों... गतियों से भिन्न विद्या व कर्म से रहित लोगों के लिए अतिनिकृष्ट संसार प्राप्ति रूप गति है, इस... वैराग्य के लिए आगे का ग्रन्थ आरम्भ किया जाता है। (कर्मविधि में श्रैष्ठ्यसिद्धि हुआ करती है... इसी से प्राणों की उपासना का विधान किया गया) प्राण वागादिकों से श्रेष्ठ है, प्राण ही संवर्ग है... प्राण ही ब्रह्म है—इत्यादि बहुत से श्रुतिवाक्यों में प्राण का ग्रहण किया गया। सभी वागादिकों के... सहयोग से ही प्राण कार्य करने में सक्षम होता है फिर अकेले उसी की श्रेष्ठता क्यों है, सभी ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति

जो कोई (अत्यन्त आच्छादक और धनवान् होने से) वसिष्ठ को जानता है, वह स्वजातियों

कारित्वाविशेषे कथं च तस्योपासनमिति तस्य श्रेष्ठत्वादिगुणविधित्सया प्रथममिदमनन्तरमारभ्यते—

यो ह वै कश्चिज्ज्येष्ठं च प्रथमं वयसा श्रेष्ठं च गुणैरभ्यधिकं वेद स ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति। फलेन पुरुषं प्रलोभ्याभिमुखीकृत्याऽऽह—प्राणो वाव ज्येष्ठश्च वयसा वागादिभ्यः। गर्भस्थे हि पुरुषे प्राणस्य वृत्तिर्वागादिभ्यः पूर्वं लब्धात्मिका भवति यया गर्भो विवर्धते चक्षुरादिस्थानावयवनिष्पत्तौ सत्यां पश्चाद्वागादीनां वृत्तिलाभ इति प्राणो ज्येष्ठो वयसा भवति। श्रेष्ठत्वं तु प्रतिपादयिष्यति सुहय इत्यादिनिदर्शनेन। अतः प्राण एव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्चास्मिन्कार्यकरणसंघाते ॥१॥

यो ह वै वसिष्ठं वसितृतममाच्छादयितृतमं वसुमत्तमं वा यो वेद स तथैव

श्रेष्ठयमाशङ्क्य वागादीनामन्यतमस्योपास्यत्वमपास्य प्राणस्यैव नोपास्यत्वं हेत्वभावादित्याक्षेपान्तरमाह—कथं चेति। प्राणस्य श्रेष्ठत्वं ज्येष्ठत्वमित्यादिगुणविधानार्थमेव तावत्प्रथममारभ्यते—यो ह वै ज्येष्ठं चेत्यादिनेत्याद्यं चोद्यं परिहरति—प्रथममिति। प्राणस्यैवोपासनं न वागादीनामित्येतदनन्तरमारभ्यतेऽथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्नित्यादिनेति द्वितीयं चोद्यमुद्धरति—इदमनन्तरमिति। कोऽसौ ज्येष्ठत्वश्रेष्ठत्वगुणो वेदितव्य इत्यत आह—फलेनेति। कुतो वागादिभ्यो ज्यैष्ठ्यं प्राणस्य प्रतीतं सर्वे हि वागादयः सप्राणाः सहैव गर्भस्थे स्वतो वृत्तिभागिनो भवन्ति तत्राऽऽह—गर्भस्थे हीति। तत्र गर्भविवृद्धिदर्शनं प्रमाणयति—ययेति। कदा तर्हि वागादीनां वृत्तिलाभस्तत्राऽऽह—चक्षुरादीति। प्राणस्य ज्यैष्ठ्यं प्रतिपादितं निगमयति—इति प्राण इति। गुणद्वयमुपास्यत्वाय दर्शितं निगमयति—अत इति ॥१॥

तदर्थत्वेनैव गुणान्तरं दर्शयति—यो ह वा इति। वसुमत्तमं धनवत्त्वादन्येषां निवासकारण-

उपासना आवश्यक होने पर केवल प्राण की उपासना क्यों बतलाई गई, इस प्रकार उसके श्रेष्ठत्वादि गुण बतलाने की इच्छा से प्रथम ज्येष्ठता एवं श्रेष्ठता को फिर प्राणों की ही उपासना का विधान करने के लिए यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया जाता है।

लोकव्यवहार में जो भी आयु से बड़ा हो, वह ज्येष्ठ होता है; एवं अधिक गुणों वाला श्रेष्ठ कहा जाता है। मनुष्य को फल में आकृष्ट कर श्रुति प्रत्यक्ष बात कहती है। वागादि समस्त इन्द्रियों की आयु प्राण से छोटी होने से प्राण ज्येष्ठ है। प्राण की वृत्ति तो गर्भस्थ शिशु में वागादि इन्द्रियों से पूर्व ही पाई जाती है, इसी से गर्भ की वृद्धि होती है वागादिकों की वृत्ति तो तभी हुआ करती है जब चक्षु आदि स्थान व अवयवों की उत्पत्ति होती है, इससे आयु में प्राण बड़ा ही सिद्ध हुआ। मन्त्र में 'सुहय' इत्यादि निर्देश से उसकी श्रेष्ठता को आगे बतलाया जाएगा। इससे निष्कर्ष निकला कि इस कार्यकरणसंघात में प्राण ही ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाग्वाव वसिष्ठः ॥ २ ॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिꣳश्च लोकेऽमुष्मिꣳश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा ॥ ३ ॥

यो ह वै संपदं वेद सꣳ हास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च

में वसिष्ठ होता है। निश्चय ही वाग् वसिष्ठ है (क्योंकि श्रेष्ठ वक्ता लोग ही दूसरों को पराभव ... एवं धनी भी होते हैं) ॥ २ ॥

जो कोई प्रतिष्ठा को जानता है, वह इस लोक और परलोक में प्रतिष्ठित होता है। ... ही प्रतिष्ठा है (क्योंकि नेत्र से ही देखकर सम एवं विषम स्थानों में प्रतिष्ठित होता है) ॥ ३ ॥

जो कोई संपद् को जानता है, उसे दैव और मानुष भोग सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते हैं। ...

वसिष्ठो ह भवती स्वानां ज्ञातीनाम्। कस्तर्हि वसिष्ठ इत्याह। वाग्वाव वसिष्ठः ... वाग्मिनो हि पुरुषा वसन्त्यभिभवन्त्यन्यान्वसुमत्तमाश्चातो वाग्वसिष्ठः ॥२॥

यो ह वै प्रतिष्ठां वेद स चास्मिँल्लोकेऽमुष्मिंश्च परे प्रतितिष्ठति ह। का तर्हि प्रतिष्ठेत्याह। चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा। चक्षुषा हि पश्यन्समे च दुर्गे च प्रतितिष्ठति ... यस्मादतः प्रतिष्ठा चक्षुः ॥३॥

यो ह वै संपदं वेद तस्मा अस्मै दैवाश्च मानुषाश्च कामाः संपद्यन्ते ह। का तर्हि ...

मित्यर्थः। तथैवेत्युपासनानुसारेणेति यावत्। वसिष्ठो ह भवतीति 'आच्छादयिता वासयिता वेत्यर्थः ... वाचो वसिष्ठत्वं समर्थयते—वाग्मिनो हीति। वसुमत्तमाश्च तेनान्यान्निवासयन्तीति शेषः ॥२॥

गुणान्तरमाध्यानायोपदिशति—यो हेति। प्रतिष्ठात्वं चक्षुषो विशदयति—चक्षुषा हीति ॥३॥

गुणान्तरमाह—यो ह वा इति। दैवाः कामाः स्वर्गादयो मानुषाः पश्वादयः। श्रो...

गुणद्वय निरूपण के अनन्तर वाक् के वसिष्ठ गुण का निरूपण किया जाता है, वह सब... आच्छादन करने वाला, वैभवयुक्त होने के कारण सबका निवास स्थान है, इससे वसिष्ठ है। ... वसिष्ठ गुण वाले वाक् की उपासना से विद्वान् अपने बन्धु-बान्धवों में आच्छादयिता व वासयिता ... जाता है। वह वसिष्ठ वाक् ही है क्योंकि वाक्चातुर्य सम्पन्न पुरुष ही दूसरों का आच्छादन करने ... एवं दूसरों को आश्रय देने में समर्थ होते हैं ॥ २ ॥

(अन्य गुण की उपासना का उपदेश करते हैं—) जो कोई विद्वान् प्रतिष्ठागुण की उपासना करता है, वह इस लोक और परलोक में प्रतिष्ठित होता है। प्रतिष्ठागुण का कहां निवास है ऐसी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है—चक्षु ही प्रतिष्ठा है। चक्षु के होने पर ही समतल अथवा पर्वतीय स्थल का विवेक कर प्रतिष्ठित होता है। अतः चक्षु की प्रतिष्ठा सिद्ध हो जाती है ॥ ३ ॥

जो मनुष्य संपत् गुण की उपासना करता है, उसे स्वर्गादि दैव भोग एवं पशु आदि मानुष ...

---

१. अन्येषामभिभवनं ह्यत्राच्छादनम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत् ॥ ४ ॥
यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनꣳ ह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम् ॥ ५ ॥
अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳ श्रेयानस्म्यहꣳ श्रेयानस्मीति ॥ ६ ॥

ही संपद् है (क्योंकि श्रोत्र से वेद और उसके अर्थ को जानकर कर्मानुष्ठान करके भोगों को प्राप्त करता है)। जो कोई आयतन को जानता है, वह सजातियों का आयतन बन जाता है। निश्चय ही मन आयतन है (क्योंकि इन्द्रियों द्वारा उपस्थापित विषयों का मन ही आश्रय है) ॥ ४ ॥ ५ ॥

इन्द्रियों का परस्पर विवाद

एक बार "मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं ज्येष्ठ हूँ" इस प्रकार अपनी श्रेष्ठता के लिये इन्द्रियाँ परस्पर विवाद करने लग गयीं ॥ ६ ॥

संपदित्याह। श्रोत्रं वाव संपत्। यस्माच्छ्रोत्रेण वेदा गृह्यन्ते तदर्थविज्ञानं च ततः कर्माणि क्रियन्ते ततः कामसंपदित्येवं कामसंपद्धेतुत्वाच्छ्रोत्रं वाव संपत् ॥४॥

यो ह वा आयतनं वेदाऽऽयतनं ह स्वानां भवत्याश्रयो भवतीत्यर्थः। किं तदायतनमित्याह। मनो ह वा आयतम्। इन्द्रियोपहृतानां विषयाणां भोक्त्रर्थानां प्रत्ययरूपाणां मन आयतनमाश्रयः। अतो मनो ह वा आयतनमित्युक्तम् ॥५॥

अथ ह प्राणा एवं यथोक्तगुणाः सन्तोऽहंश्रेयस्यहं श्रेयानस्म्यहं श्रेयानस्मीत्ये-

---

संपत्त्वं साधयति—यस्मादिति। इत्येवं यस्मात्तस्मादिति योजना ॥४॥

संप्रति गुणान्तरमाह—यो हेति। कथं पुनरायतनत्वं मनसः सिद्धमित्यत आह—इन्द्रियोपहृतानामिति ॥५॥

यथोक्ता गुणा मुख्यप्राणगामिनो न प्रत्येकं वागादिषु भवन्तीति वक्तुमाख्यायिकां प्रमाणयति—अथेति ॥६॥

प्राप्त हो जाते हैं। संपत् की स्थिति विषयिणी जिज्ञासा होने पर 'श्रोत्र ही संपत् है'—ऐसा श्रुति कहती है। श्रोत्र से वेदों का श्रवण व उनके अर्थों का ज्ञान होता है, उसी से अनुप्रेरित हो कर्म किए जाते हैं, जिसे कामनाओं की प्राप्ति होती है। इस प्रकार भोगों की प्राप्ति में हेतु होने के कारण श्रोत्र ही संपत् है ॥ ४ ॥

जो आयतन गुण की उपासना करता है, वह अपने बन्धु-बान्धवों का आश्रय होता है। आयतन के स्वरूप विषयिणी जिज्ञासा होने पर श्रुति कहती है—मन ही आयतन है क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा गृहीत विषयों, भोक्ता के प्रत्यय रूप विषयों का आश्रय मन ही है। इसी से मन का आयतन होना कहा ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति ।७।

सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा कला अवदन्तः

श्रेष्ठता के लिये प्रजापति का निर्णय

इस प्रकार विवाद करते हुए उन प्राणों ने अपने पिता प्रजापति के पास जाकर कहा—भगवन् ! हममें कौन श्रेष्ठ है ? प्रजापति ने उन्हें उत्तर दिया—तुममें से जिसके उत्क्रमण करने से यह शरीर अत्यन्त पापिष्ठ (प्राणहीन एवं निकृष्ट) सा दिखायी दे, वही तुममें श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वाणी की परीक्षा

उस वाणी ने उत्क्रमण किया और उसने एक वर्ष तक प्रवास करने के बाद फिर लौट कर प्राणों से कहा—मेरे बिना तुम लोग कैसे जीवित रह सके ? अन्य इन्द्रियों ने उत्तर दिया—जैसे गूं

तस्मिन्प्रयोजने व्यूदिरे नाना विरुद्धं चोदिर उक्तवन्तः ॥६॥

ते ह ते हैवं विवदमाना आत्मनः श्रेष्ठत्वविज्ञानाय प्रजापतिं पितरं जनयितारं कंचिदेत्योचुरुक्तवन्तो हे भगवन्को नोऽस्माकं मध्ये श्रेष्ठोऽभ्यधिको गुणैरित्येवं पृष्टवन्तः तान्पितोवाच ह यस्मिन्वो युष्माकं मध्य उत्क्रान्ते शरीरमिदं पापिष्ठमिव जीवतोऽपि समुत्क्रान्तप्राणं ततोऽपि पापिष्ठतरमिवातिशयेन दृश्येत कुणपमस्पृश्यमशुचि दृश्येत स वो युष्माकं श्रेष्ठ इत्यवोचत्काक्वा तद्दुःखं परिजिहीर्षुः ॥७॥

कंचिद्विराजं कश्यपादीनामन्यतमं वेत्यर्थः । शरीरस्य पापिष्ठत्वं पापकार्यप्रधानत्वं इवशब्दोऽवधारणार्थः । उक्तमेवार्थं संक्षिप्याऽऽह—कुणपमिति । त्यक्तप्राणं शवरूपमिति यावत् । ननु प्रजापतिः सर्वज्ञो मुख्यमेव प्राणं किमिति श्रेष्ठं नाभिवदति तत्राऽऽह—काक्वेति । अयं श्रेष्ठ इत्युक्ते यत्तेषां वागादीनां दुःखं तत्परिहर्तुमिच्छन्प्रजापतिः स्वरभङ्गोपायविशेषेण श्रेष्ठमुक्तवान् स्फुटमित्यर्थः ॥७॥

(इसके अनन्तर आख्यायिका द्वारा प्राणों की ज्येष्ठता व श्रेष्ठता सिद्ध की जाती है यथोक्तगुण वागादिकों में मुख्य प्राण के कारण हैं। ऐसा न समझ कर प्रत्येक इन्द्रियों में एक बार बात का विवाद उठ खड़ा हुआ—सभी कहने लगीं मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ ॥ ६ ॥

इस प्रकार विवाद होते-होते किसी निष्कर्ष पर न पहुँचते देख वे अपने में से श्रेष्ठत्व जानने के लिए उत्पन्नकर्ता पिता प्रजापति के पास गईं और बोलीं—हे भगवन् ! हम सब में कौन अधिक वाला है। इसके पश्चात् प्रजापति ने कहा—तुम में से जिस किसी इन्द्रिय के निकल जाने पर शरीर रहते हुए भी निश्चित रूप से पाप कार्य प्रधान हो जाए, प्राण निकल जाने पर तो और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक् ॥८॥

चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथाऽन्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः ॥९॥

संसार में वाणी बिना बोले प्राण से प्राणन करते हुए जीवित रहते हैं; वैसे ही (हम जीवित रहे)। ऐसा सुनकर अपनी अश्रेष्ठता जानकर वाणी शरीर में पुनः प्रवेश कर गयी ॥ ८ ॥

नेत्र की परीक्षा

फिर नेत्र ने उत्क्रमण किया, उसने भी एक वर्ष प्रवास करने के बाद लौट कर शेष प्राणों से पूछा—मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके ? जैसे अंधे लोग नेत्र से रूप देखे बिना ही प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते हुए, कान से सुनते और मन से चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, वैसे ही (हम भी जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जानकर नेत्र ने फिर शरीर में प्रवेश किया ॥ ९ ॥

तथोक्तेषु पित्रा प्राणेषु सा ह वागुच्चक्रामोत्क्रान्तवती। सा चोत्क्रम्य संवत्सरमात्रं प्रोष्य स्वव्यापारान्निवृत्ता सती पुनः पर्येत्येतरान्प्राणानुवाच कथं केन प्रकारेणाशकत शक्तवन्तो यूयं मदृते मां विना जीवितुं धारयितुमात्मानमिति ते होचुर्यथा कला इत्यादि। कला मूका यथा लोकेऽवदन्तो वाचा जीवन्ति। कथम्। प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवं सर्वकरणचेष्टां कुर्वन्त इत्यर्थः। एवं

अन्यदित्यस्य विषयमाह—चक्षुरिति। बालानामपि बहिरन्तरिन्द्रियत्वाविशेषात्कथममनस

अतिशय पाप खटमल के समान अस्पृश्य एवं अत्यन्त अपवित्र दिखाई दे, वही तुम में से श्रेष्ठ होगा। सर्वज्ञ होने पर भी प्रजापति ने सीधे मुख्य प्राण को श्रेष्ठ न कह कर वागादि जो अपने को श्रेष्ठ समझते थे, उनका दुःख मिटाने के लिए स्वरभङ्ग उपाय विशेष श्रेष्ठता की कसौटी कही, स्पष्ट अपने मुख से किसी को श्रेष्ठ नहीं कहा ॥ ७ ॥

पिता प्रजापति के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इन्द्रियों में से वाणी ने इस देह से उत्क्रमण किया। वह निकल कर एक वर्ष पर्यन्त अपने बोलने रूप व्यापार से उपराम रही। एक वर्ष बाद लौटने पर अन्य इन्द्रियों से पूछने लगी—मेरे बिना इतने दिन तक तुमने अपनी रक्षा की। वे बोलीं—जिस प्रकार लोकव्यवहार में वाणी उच्चारण करने में असमर्थ मूक पुरुष प्राण से प्राणनक्रिया करते हुए, नेत्रों से देखते हुए, कानों से सुनते हुए, मन से ध्यान करते हुए, इस प्रकार समस्त इन्द्रियों के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रोत्रꣳ होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम् ॥१०॥

मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह मनः ॥११॥

श्रोत्र की परीक्षा

पुनः श्रोत्र ने उत्क्रमण किया। उसने भी एक वर्ष तक प्रवास करने के बाद लौट कर प्राणों से पूछा—मेरे बिना तुम लोग कैसे जीवित रहे ? जैसे बहरे कान से सुने बिना प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते, नेत्र से देखते और मन से चिन्तन करते हुए संसार में जीवित रहते हैं वैसे ही (हम भी जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जान कर श्रोत्र ने पुनः इस शरीर में प्रवेश किया ॥ १० ॥

मन की परीक्षा

तदनन्तर मन ने उत्क्रमण किया, उसने भी एक वर्ष तक प्रवास करने के दाद अन्य प्राणों से कहा—मेरे बिना तुम कैसे जीवित रहे ? जैसे अविकसित मन वाले बालक लोग प्राण से प्राणन करते हुए, वाणी से बोलते हुए, नेत्र से देखते और कान से सुनते हुए, जीवित रहते हैं, वैसे ही (हम भी) जीवित रहे)। इस प्रकार अपनी अश्रेष्ठता जानकर मन ने फिर से शरीर में प्रवेश किया ॥११॥

वयमजीविष्मेत्यर्थः। आत्मनोऽश्रेष्ठतां प्राणेषु बुद्ध्वा प्रविवेश ह वाक्पुनः स्वव्यापारे प्रवृत्ता बभूवेत्यर्थः। समानमन्यच्चक्षुर्होच्चक्राम श्रोत्रं होच्चक्राम मनो होच्चक्रामेत्यादि। यथा बाला अमनसोऽप्ररूढमनस इत्यर्थः ॥८॥९॥१०॥११॥

इति विशेषणमत आह—अप्ररूढेति ॥८॥९॥१०॥११॥

व्यापारों को करते हुए जीवित दिखाई देते हैं; इसी प्रकार हम भी जीवित हैं। इन्द्रियों में अपनी श्रेष्ठता को न सिद्ध करने के कारण वह वाक् पुनः देह में प्रविष्ट हो अपने व्यापार में प्रवृत्त हो गई। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों में चक्षु, श्रोत्र एवं मन ने उत्क्रमण किया परन्तु वे सभी अपनी श्रेष्ठता सिद्ध न कर सके। मूर्ख पुरुष की अन्तर्बहिरिद्रिय में विशेषता न होते हुए भी अस्थिर मन होने से उसका बिना मन के जीते हुआ होना कहा जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पड्वीश-शङ्कून्संखिदेदेवमितरान्प्राणान्समखिदत्तꣳहाभिसमे-त्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमी-रिति ॥१२॥

अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्व-

परीक्षा में प्राण की विजय

उसके बाद मुख्य प्राण ने उत्क्रमण करना चाहा। जिस प्रकार लोक में अच्छा घोड़ा (परीक्षा के लिये मनुष्य द्वारा चाबुक से मारे जाने पर) अपने पैर बाँधने की कीलों को उखाड़ डालता है, उसी प्रकार मुख्य प्राण ने वागादि अन्य प्राणों को उखाड़ डाला। तब उन सभी वागादि प्राणों ने मुख्य प्राण के सामने जाकर कहा—भगवन्! आप हमारे स्वामी हो। हम सबमें आप ही श्रेष्ठ हैं। अतः आप उत्क्रमण न करें॥ १२॥

इन्द्रियों ने प्राण की स्तुति की

तत्पश्चात् वाणी ने प्राण से कहा—मैं जो वसिष्ठत्व गुण वाली हूँ, वह तुम्हीं वसिष्ठत्व गुण

एवं परीक्षितेषु वागादिष्वथानन्तरं ह स मुख्यः प्राण उच्चिक्रमिषन्नुत्क्रमितुमिच्छन्किमकरोदित्युच्यते। यथा लोके सुहयः शोभनोऽश्वः पड्वीशशङ्कून्पादबन्धनकीलान्परीक्षणायाऽऽरूढेन कशया हतः सन्संखिदेत्समुत्खनेत्समुत्पाटयेत्, एवमितरान्वागादीन्प्राणान्समखिदत्समुद्धृतवान्। ते प्राणाः संचालिताः सन्तः स्वस्थाने स्थातुमनुत्सहमाना अभिसमेत्य मुख्यं प्राणं तमूचुर्हे भगवन्नेधि भव नः स्वामी यस्मात्त्वं नोऽस्माकं श्रेष्ठोऽसि मा चास्माद्देहादुत्क्रमीरिति ॥१२॥

परीक्षितेषु श्रेष्ठतारहितेषु निरूप्य निश्चितेष्वित्येतत्। पदनशीलाः पादास्तेषां संहतिः पड्विस्तस्या ईशा नियामकाः शङ्कवो वर्णविकारश्छान्दसः। तान्यथोक्तानश्वो युगपदुत्पाटयेद्यथेति दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाह—एवमिति ॥१२॥

वागादि के श्रेष्ठतानिर्धारण में असफल घोषित हो जाने के बाद मुख्य प्राण ने इस देह में सभी इन्द्रियों को छोड़कर उत्क्रमण करने की इच्छा की। फिर क्या किया—इसे श्रुति कहती है। लोकव्यवहार में जिस प्रकार सुन्दर घोड़े की परीक्षा करने के लिए जब उसे चाबुक मारा जाता है तो वह पाँव बाँधने की कीलों को उखाड़ देता है; उसी प्रकार वागादि इन्द्रियों को मुख्य प्राण ने उखाड़ डाला। अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त वे इन्द्रियाँ (मुख्य प्राण के वियोग से) अपने स्थान में रहने में असमर्थ हो गईं। सभी मिलकर मुख्य प्राण के समीप जाकर बोलीं—हे भगवन्! आप ही हमारे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठाऽस्मि त्वं तत्प्रतिष्ठाऽसीति ।१३।

अथ हैनꣳ श्रोत्रमुवाच यदहꣳसंपदस्मि त्वं तत्संपदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति ॥१४॥

न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳ-

से युक्त हो। पुन: नेत्र ने प्राण से कहा—जो मैं प्रतिष्ठा वाला हूँ, वह तुम्हीं प्रतिष्ठा वाले हो ॥१३॥

फिर प्राण से श्रोत्र ने कहा—मैं जो संपद् हूँ, वह तुम्हीं संपद् हो। पुन: प्राण से मन ने कहा—मैं जो आयतनत्व विशिष्ट हूँ, वह तुम्हीं आयतनत्व विशिष्ट हो ॥ १४ ॥

(लोक में इन समस्त इन्द्रियों को शास्त्रज्ञ पुरुष) न तो वाक् कहते हैं, न चक्षु, न श्रोत्र

अथ हैनं वागादयः प्राणस्य श्रेष्ठत्वं कार्येणाऽऽपादयन्त आहुर्बलिमिव हृत्वा राज्ञे विशः। कथं, वाक् तावदुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि यदिति क्रियाविशेषणं यद्वसिष्ठत्वगुणोऽस्मीत्यर्थः। त्वं तद्वसिष्ठस्तेन वसिष्ठत्वगुणेन त्वं तद्वसिष्ठोऽसि तद्गुणस्त्वमित्यर्थः। अथवा तच्छब्दोऽपि क्रियाविशेषणमेव। त्वत्कृतस्त्वदीयोऽसौ वसिष्ठत्वगुणोऽज्ञानान्ममेति मयाऽभिमत इत्येतत्। तथोत्तरेषु योज्यं चक्षुःश्रोत्रमनःसु ॥१३॥१४॥

श्रुतेरिदं वचो युक्तमिदं वागादिभिर्मुख्यं प्राणं प्रत्यभिहितं यस्मान्न वै लो

मयि श्रेष्ठत्वधीर्युष्माकमस्तीति कथं ज्ञातुं शक्यमित्याशङ्क्याऽऽह—अथेति। वचनं प्रकारं प्रकटयति—कथमित्यादिना। क्रियाविशेषणत्वमेव विशदयति—यद्वसिष्ठत्वेति। वसिष्ठत्वेन गुणेन गुणवानस्मीति यत्तत्त्वमेवेति योजना। अनन्तरं वाक्यमादाय व्याचष्टे—त्वमित्यादिना। तद्वसिष्ठ इति समस्तपदमिति गृहीत्वा व्याख्याय पक्षान्तरमाह—अथ वेति। यच्छब्दवदित्यपेरर्थः। यद्वसिष्ठत्वगुणोऽस्मीति यत्तत्त्वमेव वसिष्ठत्वगुणोऽसीति कथमिदानीमुच्यते। अन्यथा पूर्वमभिधानं तवाऽऽसीदित्याशङ्क्याऽऽह—त्वत्कृत इति। वाचि दर्शितं न्यायं चक्षुरादावतिदिशति तथेति ॥१३॥१४॥

वागादिवचनादुत्थाय प्राणाधीनतां वागादेः श्रुतिरेव कथयतीत्युत्तरस्य न वै वाच इत्यादेस्तात्पर्यमाह—श्रुतेरिति। तदेव च सोपस्कारं व्याकरोति—युक्तमित्यादिना। यदि सर्वाण्येव करणानि

स्वामी बने रहें क्योंकि हम सब में आप ही श्रेष्ठ हैं, इसलिए देह से उत्क्रमण न कीजिए ॥ १२ ॥

जिस प्रकार हारा हुआ राष्ट्र विजित राजा को कर अर्पित करता है, उसी प्रकार प्राण के कार्य की महत्ता को मान्यता देते हुए वागादि इन्द्रियाँ इस प्रकार बोलीं। उनमें वाणी बोली—मैं जो आच्छादयिता गुण से युक्त हूँ, वस्तुतः तुम ही आच्छादयिता व दामयिता गुण से युक्त हो। मन्त्र में "यद्" यह पद क्रियाविशेषण है। अथवा 'तद्' शब्द भी क्रियाविशेषण है। उक्त वसिष्ठ गुण आपकी महत्ता से सम्पादित होने के कारण आपका ही था, जिसे मैं अज्ञान से अपना समझ बैठी थी। व

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाऽऽचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति ॥१५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

न मन ही कहते हैं। किन्तु "प्राण" ऐसा ही कहते हैं, क्योंकि ये समस्त वागादि इन्द्रिय समुदाय प्राण ही हैं॥ १५॥

॥ इति प्रथम खण्डः ॥

वाचो न चक्षूंषि न श्रोत्राणि न मनांसीति वागादीनि करणान्याचक्षते लौकिका आगमज्ञा वा किं तर्हि प्राणा इत्येवाऽऽचक्षते कथयन्ति यस्मात्प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि वागादीनि करणजातानि भवत्यतो मुख्यं प्राणं प्रत्यनुरूपमेव वागादिभिरुक्तमिति प्रकरणार्थमुपसंजिहीर्षति।

ननु कथमिदं युक्तं चेतनावन्त इव पुरुषा अहंश्रेष्ठतायै विवदन्तोऽन्योन्यं स्पर्धेरन्निति। न हि चक्षुरादीनां वाचं प्रत्याख्याय प्रत्येकं वदनं संभवति। तथाऽपगमो

वाक्तन्त्राणि स्युस्तर्हि वाच इत्येव तानि ब्रूयुः। यदि चक्षुस्तन्त्राणि स्युस्तदा सर्वाण्येव चक्षूंषीति वदेयुः। न चैवं वदन्ति, प्राणा इति तु तानि कथयन्ति। तस्मात्प्राणपारतन्त्र्यं करणानां सिद्धमित्यर्थः। वागादिभिरुक्तं त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यादि प्राणस्यैव यथोक्तगुणवतो ध्येयत्वं प्रकरणार्थः। साक्षादुपसंहारादर्शनादुपसंजिहीर्षतीत्युक्तम्।

आख्यायिकाया यथाश्रुतमर्थमाक्षिपति—नन्विति। यथा पुरुषाश्चेतनावन्तो विवदमानाः स्पर्धन्ते तथा वागादयोऽचेतनाः स्वकीयश्रेष्ठत्वसिद्ध्यर्थं विप्रतिपन्ना मिथः स्पर्धेरन्निति नैव युक्तमचेतनेषु स्पर्धादेरदर्शनादित्यर्थः। किं च वाग्व्यतिरिक्तानामन्योन्यं वचनमेवानुचितं वचनस्य वाग्व्यापारत्वादित्याह—न हीति। किंच वागादीनां देहादवसर्पणाद्ययुक्तमचेतनत्वादित्याह—तथेति। वाशब्दो न

में दर्शित पद्धति को चक्षु, श्रोत्र एवं मन में भी समझ लेना चाहिए॥ १३॥ १४॥

इसलिए श्रुति ठीक ही कहती है कि वागादि इन्द्रियाँ मुख्य प्राण के अधीन हैं। लोकव्यवहार एवं आगमवादियों के अनुसार यदि सब इन्द्रियाँ वाक् के अधीन रहतीं तो उन्हें वाक् कहा जाता; यदि चक्षु के अधीन सभी इन्द्रियाँ रहतीं तो उन्हें चक्षु कहा जाता; यदि श्रोत्र अथवा मन के अधीन रहतीं तो उन्हें श्रोत्र या मन कहा जाता; किन्तु ऐसा नहीं होता। प्राण के अधीन सभी इन्द्रियों का रहना सिद्ध होने से प्राण ही को कहते हैं क्योंकि वागादि इन्द्रियसमूह मुख्य प्राण ही है। इसलिए वागादिकों को प्राण को अपने गुणों की मान्यता देना उचित ही है। अतः इतने कहने से ही प्राण का उपास्यत्व रूप प्रकरणार्थ का उपसंहार सिद्ध हो गया।

(यहाँ शङ्का होती है—) लोकव्यवहार में चेतन प्राणियों में ही विवाद हुआ करता है; अचेतन में स्पर्द्धा नहीं देखी जाती। अतः वागादि इन्द्रियों का चेतनायुक्त पुरुषों को स्वकीय श्रेष्ठता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देहात्पुनः प्रवेशो ब्रह्मगमनं प्राणस्तुतिर्वोपपद्यते ।

तत्राग्न्यादिचेतनावद्देवताधिष्ठितत्वाद्वागादीनां चेतनावत्त्वं तावत्सिद्धमागमत्। तार्किकसमयविरोध इति चेद्देह एकस्मिन्ननेकचेतनावत्त्वे । न । ईश्वरस्य निमित्तकार त्वाभ्युपगमात् । ये तावदीश्वरमभ्युपगच्छन्ति तार्किकास्ते मनआदिकार्यकरणानाम ध्यात्मिकानां बाह्यानां च पृथिव्यादीनामीश्वराधिष्ठितानामेव नियमेन प्रवृत्तिमिच्छ रथादिवत् । न चास्माभिरग्न्याद्याश्चेतनावत्योऽपि देवता अध्यात्मं कर्त्र्यो भोक्त्र्योऽ पगम्यन्ते, किं तर्हि, कार्यकरणवतीनां हि तासां प्राणैकदेवताभेदानामध्यात्माधिभू धिदैवभेदकोटिविकल्पानामध्यक्षतामात्रेण नियन्तेश्वरोऽभ्युपगम्यते । स ह्यकरणः

हीत्यस्यानुकर्षणार्थः ।

अग्न्यादयश्चेतनावत्यो देवतास्ताभिरधिष्ठितत्वात्तादात्म्याभिप्रायेण वागादीनां चेतनाव संभवाद्वदनादिव्यवहारः संभवतीत्यग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशदित्यादिश्रुतिमनुसृत्योत्तरमाह—तत्रेति एकस्मिन्देहेऽनेकचेतनावतां प्रसह्य विरुद्धानेकाभिप्रायानुविधायित्वेन देहस्योन्मथनप्रसङ्गादक्रिय प्रसङ्गाद्वा नानेकचेतनाधिष्ठितत्वमेकस्य देहस्य संभवतीति शङ्कते—तार्किकेति । किमेकशरीरमने चेतनाधिष्ठितं न भवति किं वा 'तैर्निर्णीतकर्तृभोक्त्रधिष्ठितमिति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—नेति । हि परमते शरीरस्य जीवाधिष्ठितस्यैवेश्वराधिष्ठितत्वं तथाचैकशरीरमनेकचेतनाधिष्ठितं न भवती नास्ति सेश्वरवादिनां शङ्केत्यर्थः । संग्रहवाक्यं विवृणोति—ये तावदिति । अचेतनानां चेतनाधिष्ठि नामेव प्रवृत्तिरित्यत्र दृष्टान्तमाह—रथादिवदिति । द्वितीयं प्रत्याह—न चेति । कार्यकरणाना धिष्ठातृदेवतानां तर्हि कार्यकरणानां किमधिष्ठातृदेवतान्तरमिति पृच्छति—किं तर्हीति । देवता करणानामधिष्ठातृदेवतान्तरमिष्टं चेदनवस्था स्यादिति मन्वानं प्रत्याह—कार्यकरणवतीनामिति [2]शाकल्यब्राह्मणमनुसृत्याह—प्राणेति । ननु भूयस्यो देवताः कथं तासां प्राणलक्षणैकदेवताप्रभेदत्वं आह—अध्यात्मेति । अध्यात्माधिभूताधिदैवानां भेद[3]कोटिभिर्विकल्पो यासामिति विग्रहः । नियन्तृ प्रयुक्तव्यापारवत्त्वं वारयितुं विशिनष्टि—अध्यक्षतामात्रेणेति । अथेश्वरस्यापि नियन्तृत्वात्कार्यकरणव देवतानामिव स्यादिति चेन्नेत्याह—स हीति । अकरणत्वमकार्यत्वस्योपलक्षणम् । तत्र

सिद्ध करने के लिए विवाद करते हुए परस्पर स्पर्द्धा करना जँचता नहीं । इसके अतिरिक्त वाक् छोड़कर चक्षु आदि इन्द्रियों का बोलना भी नहीं बनता । और न ही वागादिकों का देह से गमन, प्रवेश, प्रजापति के पास जाना अथवा प्राण की स्तुति करना संभव है ।

(शङ्का का समाधान देते हैं—) आगम प्रमाण से वागादि का चेतनायुक्त होना सिद्ध जाता है क्योंकि अग्नि आदि चेतन देवताओं की तरह उनका भी देवताओं से अधिष्ठित होने के का परस्पर तादात्म्य है । यदि कहो, एक देह में अनेक चेतन मानने से नैयायिकों के सिद्धान्त से विरो होने लगेगा, ऐसा कहना भी ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर को निमित्तकारण स्वीकृत किया जा चुका (इसलिए यह शङ्का सेश्वरवादियों की नहीं है) । और जो नैयायिक ईश्वर से अचेतन की प्रवृ

---

१. तैर्निर्णीतकर्तृभोक्त्रधिष्ठितमिति—तैरनेकैश्चेतनैर्निर्णीता निश्चिता येऽनेके कर्तारो भोक्तारश्च तदधिष्ठितमित्यर्थः
२. "कतम एको देवः प्राण" इति (बृ० उ० ३ ९।९) ३. कोटिशब्द संख्याविषयः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।" इत्यादिमन्त्रवर्णात्। "हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्" "हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्" इत्यादि च श्वेताश्वतरीयाः पठन्ति। भोक्ता कर्मफलसंबन्धी देहे तद्विलक्षणो जीव इति वक्ष्यामः।

वागादीनां चेह संवादः कल्पितो विदुषोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां प्राणश्रेष्ठतानिर्धारणार्थम्। यथा लोके पुरुषा अन्योन्यमात्मनः श्रेष्ठतायै विवदमानाः कंचिद्गुणविशेषाभिज्ञं पृच्छन्ति को नः श्रेष्ठो गुणैरिति। तेनोक्ता एकैकश्येनादः कार्यं साधयितुमुद्यच्छत येनादः कार्यं साध्यते स वः श्रेष्ठ इत्युक्तास्तथैवोद्यच्छन्त आत्मनोऽन्यस्य वा श्रेष्ठतां निर्धारन्ति। तथेमं संव्यवहारं वागादिषु कल्पितवती श्रुतिः। कथं नाम

प्रमाणयति—अपाणीति। आदिपदेन च न तस्य कार्यं करणं च विद्यत इत्यादिमन्त्रवर्णो गृहीतः। सूत्रात्मा हिरण्यगर्भः सा चैका समष्टिरूपा देवता तदवस्थाभेदानां देवतानामीश्वरो नियन्तेत्युक्तं तत्र प्रमाणमाह—हिरण्यगर्भमिति। आदिपदेन हिरण्यगर्भः समवर्ततेत्यादि गृह्यते। देवानामीश्वरस्य चास्मिन्देहे भोक्तृत्वाभावे कस्य भोक्तृत्वमित्यत आह—भोक्तेति। तद्विलक्षणो देवतेश्वराभ्यां व्यावृत्त इति यावत्।

वागादिशब्दवाच्याश्चेतनावत्यो देवता [1]इति स्वीकृत्याऽऽख्यायिकायाः [2]स्वार्थनिर्वृत्त्यर्थमुक्तमिदानीं तस्यास्तात्पर्यमाह—वागादीनां चेति। कल्पनाप्रयोजनमाह—विदुष इति। यथोक्तां कल्पनां दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। तेनोक्ता इत्युक्तमेव व्यनक्ति—एकैकस्येनेति। विदुष इत्यादिनोक्तं प्रयोजनं प्रकटयति—कथं नामेति। विद्वान्प्राणश्रेष्ठतां कथं नाम प्रतिपद्येतेति संबन्धः। प्रतिपत्ति-

मानते हैं, वे ईश्वर से अधिष्ठित ही आध्यात्मिक मन आदि कार्यकरण की, एवं पृथिवी आदि बाह्य पदार्थों की नियमतः प्रवृत्ति मानते हैं, जैसे रथ रथी के अधीन ही चलता है। दूसरे हम अग्नि आदि चेतन अध्यात्म देवताओं को हम भोक्ता नहीं मानते। हमारी दृष्टि में तो कार्यकारणवान् उन देवताओं में एक प्राण देवता को सर्वोच्च मान, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव भेद से असख्य विकल्पों का अध्यक्षता मात्र से नियन्ता ईश्वर को स्वीकार किया जाता है। वह कार्य रूप नहीं है। श्रुति कहती है—"वह परमात्मा बिना पाँव के तेज चलता है, बिना हाथ के ग्रहण करता है, बिना चक्षु के देखता है, बिना कान के सुनता है"। "हिरण्यगर्भ सूत्रात्मा एक होते हुए भी अवस्था भेद से देवताओं का नियन्ता है, वही यह सब होते हुए देखता है" "आरम्भ में हिरण्यगर्भ ने सृष्टि की" इत्यादि श्वेताश्वतरीय श्रुतियाँ भी उपलब्ध होती हैं। कर्मफलों के संबन्ध होने से इस देह में भोक्ता है, देवता एवं ईश्वर से विलक्षण जीव है।

इस खण्ड में जो यह वागादि का संवाद है, वह इसलिए है ताकि विद्वान् अन्वय-व्यतिरेक से प्राण की श्रेष्ठता निर्णय कर लें। लोकव्यवहार में भी ऐसा होता है कि आपस में श्रेष्ठता के लिए झगड़ते हुए लोग गुण के पारखी विशिष्ट व्यक्ति के पास जाकर पूछते हैं कि हम में से गुणों की दृष्टि से कौन श्रेष्ठ है। वह गुणज्ञ व्यक्ति उनसे एक-एक करके कहता है जो यह कार्य कर दिखाए, जो वह कार्य सिद्ध करे; वही आप में श्रेष्ठ होगा। इस प्रकार यथोक्त कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पादन करने

१. इत्युक्तमित्यन्वयः। २. स्वार्थो प्राणश्रेष्ठतार्थस्तत्सिद्ध्यर्थम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः)

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किंचिदिदमा श्वभ्य आ शकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किंचनानन्नं भवतीति ॥१॥

प्राण के अन्न का वर्णन

उस मुख्य प्राण ने कहा—भला मेरा क्या अन्न होगा ? तब वागादि इन्द्रियों ने कहा— और पक्षियों से लेकर सभी प्राणियों का यह जो कुछ भी प्रसिद्ध अन्न है। (वह सभी तेरा अन्न) वह यह सब प्राण का अन्न है, प्राण का "अन्न" यह प्रत्यक्ष नाम है (क्योंकि शरीर और इन्द्रियों सारी चेष्टाएँ प्राण से ही होती हैं)। इस प्रकार प्राण विज्ञान वाले के लिये कुछ भी अभक्ष्य रहता (क्योंकि वह विद्वान् प्राण स्वरूप हो जाता है) ॥ १ ॥

विद्वान्वागादीनामेकैकस्याभावेऽपि जीवनं दृष्टं न तु प्राणस्येति प्राणश्रेष्ठतां प्रतिप तेति। तथाच श्रुतिः कौषीतकिनाम्—"जीवति वागपेतो मूकान्हि पश्यामो जी चक्षुरपेतोऽन्धान्हि पश्यामो जीवति श्रोत्रापेतो बधिरान्हि पश्यामो जीवति मनो बालान्हि पश्यामो जीवति बाहुच्छिन्नो जीवत्यूरुच्छिन्नः" इत्याद्या ॥१५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

स होवाच मुख्यः प्राणः किं मेऽन्नं भविष्यतीति। मुख्यं प्राणं प्रष्टारमिव

प्रकारं संक्षिपति—वागादीनामिति। इति फलवती कल्पनेति शेषः। दृष्टेऽप्यर्थे श्रुतिमनुग्राह दर्शयति—तथा चेति ॥१५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

वागादीनां स्वामी श्रैष्ठ्यादिगुणः प्राणोऽस्मीति विद्यादिति प्रधानविद्यामुपदिश्य नाङ्गभूतान्नवासोदृष्टिविधानार्थे प्रक्रमे प्रथममन्नदृष्टिं विधातुं प्रसङ्गं प्रकुरुते—स होवाचेति। मु प्राणस्य प्रष्टृत्वं वागादीनां प्रतिवक्तृत्वं च काल्पनिकमित्याह—मुख्यमिति। यदिदमित्युक्तमेव

वाला श्रेष्ठ निर्धारित कर लिया जाता है, श्रुति उसी प्रकार का व्यवहार वागादिकों में करती है। विद्वान् प्राण की श्रेष्ठता किस प्रकार समझे—वह देखे कि वागादि इन्द्रियों में से एक के अभाव हो जाने पर भी चेतनता संचरित रहती है किन्तु प्राणों के उत्क्रमण हो जाने पर वैसा रह जाता। कौषीतकी श्रुति इसी का समर्थन करती है—"गूंगों को देखने से लगता है, वाणी जीता है; अन्धों को देखने से लगता है, नेत्रहीन भी जीता है; बहरों को देखने से लगता है, विहीन भी जीता है; विक्षिप्त मन वाले अविद्वान् को देखने से लगता है मनविहीन भी जीता है; प्रकार बाहु अथवा जांघों से रहित व्यक्ति भी जीता है" इत्यादि ॥ १५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पित्वा वागादीन्प्रतिवक्तॄनिव कल्पयन्ती श्रुतिराह—यदिदं लोकेऽन्नजातं प्रसिद्धमा श्वभ्यः श्वभिः सहाऽऽशकुनिभ्यः सह शकुनिभिः सर्वप्राणिनां यदन्नं तत्तवान्नमिति होचुर्वागादय इति । प्राणस्य सर्वमन्नं प्राणोऽत्ता सर्वस्यान्नस्येत्येवं प्रतिपत्तये कल्पिताख्यायिकारूपाद्व्यावृत्य स्वेन श्रुतिरूपेणाऽऽह । तद्वा एतद्यत्किंचिल्लोके प्राणिभिरन्नमद्यतेऽनस्य प्राणस्य तदन्नं प्राणेनैव तदद्यत इत्यर्थः । सर्वप्रकारचेष्टाव्याप्तिगुणप्रदर्शनार्थमन इति प्राणस्य प्रत्यक्षं नाम । प्राद्युपसर्गपूर्वत्वे हि विशेषगतिरेव स्यात् । तथाच सर्वान्नानामत्तुर्नामग्रहणमितीदं प्रत्यक्षं नामान इति सर्वान्नानामत्तुः साक्षादभिधानम् । न ह वा एवंविदि यथोक्तप्राणविदि प्राणोऽहमस्मि सर्वभूतस्थः सर्वान्नानामत्तेति तस्मिन्नेवंविदि ह वै किंचन किंचिदपि प्राणिभिराद्यं सर्वैरन्नमनाद्यं न भवति सर्वमेवंविद्यन्नं भवतीत्यर्थः । प्राणभूतत्वाद्विदुषः । "प्राणाद्वा एष उदेति प्राणेऽस्तमेति"

वाक्यार्थकल्पनार्थं यदन्नमित्यत्रानूद्यते । तद्वा एतदित्याद्युत्तरवाक्यस्य पूर्ववाक्यादर्थभेदाभावमाशङ्क्याऽऽह—प्राणस्येति । प्राणशब्दं विहायानशब्दप्रयोगे तात्पर्यमाह—सर्वप्रकारेति । अन चेष्टायामितिधातुजस्यानशब्दस्योपादानं सर्वप्रकारचेष्टया प्राणस्य व्याप्तिगुणप्रदर्शनार्थम् । तथा च यः कोऽपि दहति शोषयति प्लावयति वा स सर्वोऽपि प्राण एवेति युक्तं प्राणस्यान इति नामेत्यर्थः । प्रत्यक्षं पूर्वोक्तधातुजन्मनामेति यावत् । उक्तमेवार्थं समर्थयते—प्रादीति । अनशब्दस्येति शेषः । न प्राणस्य सर्वचेष्टा[1]प्तिरित्येवकारार्थः । तथा च प्राणादिशब्दोपादाने विशेषव्याप्तिरेवेति स्थिते सतीत्यर्थः । अन इति प्रत्यक्षमिदं नाम सर्वान्नानामत्तुर्नामग्रहणमिति संबन्धः । तदेव व्याचष्टे—सर्वान्नानामिति । ततश्च [2]प्राणशब्दस्य प्राणविदः सर्वमन्नं चेत्तद्विदुषो भक्ष्याभक्ष्यविभागासिद्धो तद्विषयं शास्त्रं विरुध्येतेत्याशङ्क्याऽऽध्यात्मिकं रूपं हित्वाऽऽधिदैविकेन रूपेण तस्य सर्वान्नत्वे विभागशास्त्रमाध्यात्मिकपरिच्छेदविषयत्वेनाविरुद्धमित्याह—प्राणभूतत्वादिति । प्राणभूतो विद्वानित्यत्र श्रुत्यन्तरं संवादयति—प्राणादिति ॥१॥

मुख्य प्राण वागादिकों से पूछने लगा कि मेरे लिए अन्न को क्या व्यवस्था होगी। यहाँ श्रुति मुख्य प्राण को पूछने वाला वागादिकों को उत्तर देने वाला; इस प्रकार कल्पना करते हुए कहती है। वागादि बोलीं—कुत्तों और पक्षियों से लेकर सभी प्राणियों पर्यंन्त जो भी प्रसिद्ध अन्न समूह है, वह सभी तुम्हारा अन्न है। प्राण का सभी अन्न है, प्राण ही सबका अत्ता है, इसे समझाने के लिए कल्पित आख्यायिका को छोड़कर स्वयं श्रुति कहती है—संसार में जो कुछ भी प्राणियों द्वारा खाया जाता है, वह प्राण का ही अन्न है क्योंकि वह प्राण से ही खाया जाता है। सभी प्रकार की चेष्टा के द्वारा प्राण का व्याप्तिगुण प्रदर्शन के लिए चेष्टार्थक 'अन' प्राण का प्रत्यक्ष नाम है। 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'अन' धातु विशिष्ट गति अर्थ में ही होती है। प्राणादि शब्द के उपादान से विशेष व्याप्ति ही होने पर सभी अन्नों का अत्ता नाम ग्रहण करने से 'अन' यह प्राण का प्रत्यक्ष नाम है क्योंकि वह सभी अन्नों का अत्ता है। इस प्रकार प्राण की उपासना करने वाले के लिए प्राणियों द्वारा भक्षण करने योग्य पदार्थ अनाद्य नहीं

१. प्राप्तिर्व्याप्तिः । २. प्राणशब्दितस्य ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति ॥२॥

प्राण का वस्त्र

तब फिर प्राण ने कहा—मेरा वस्त्र क्या होगा ? इस पर वागादि ने कहा—"जल"। अतः भोजन करने वाले विद्वान् पुरुष भोजन से पूर्व और पश्चात् भी मुख्य प्राण का (वस्त्र स्थानीय) जल से आच्छादन करते हैं। इसी से वह प्राण वस्त्र प्राप्त करने वाला और अनग्न होता है ॥ २ ॥

इत्युपक्रम्य—"एवंविदो ह वा उदेति सूर्य एवंविद्यस्तमेति" इति श्रुत्यन्तरात् ॥१॥

स होवाच पुनः प्राणः। पूर्ववदेव कल्पना। किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुर्वागादयः। यस्मात्प्राणस्य वास आपस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तो भोक्ष्यमाणा भुक्तवन्तश्च ब्राह्मणा विद्वांस एतत्कुर्वन्ति। किम्। अद्भिर्वासस्थानीयाभिः पुरस्ताद्भोजनात्पूर्वमुपरिष्टाच्च भोजनादूर्ध्वं च परिदधति परिधानं कुर्वन्ति मुख्यस्य प्राणस्य। लम्भुको लम्भनशीलो वासो ह भवति। वाससो लब्धैव भवतीत्यर्थः। अनग्नो ह भवति। वाससो लम्भुकत्वेनार्थसिद्धैवानग्नतेत्यनग्नो ह भवतीत्युत्तरीयवान्भवतीत्येतत्।

प्राणविद्याङ्गत्वेनान्नदृष्टिरुपदिष्टा। संप्रति तदङ्गत्वेन वासोदृष्टिं प्रस्तौति—स होवाचेति। अत्रापि प्राणस्य प्रष्टृत्वं वागादीनां प्रतिवक्तृत्वं च कल्पितमेवेत्याह—पूर्ववदिति। अपां प्राणं प्रति वासोरूपत्वे गमकमाह—यस्मादिति। वासोदृष्टिफलमाचष्टे—लम्भुक इति। अनग्नो ह भवतीत्यस्य पौनरुक्त्यमाशङ्क्यार्थविशेषमाह—वासस इति।

होता क्योंकि "मैं ही प्राण हूँ सब भूतों में स्थित हूँ सभी अन्नों का अत्ता हूँ" ऐसी उसकी निष्ठा रहती है इससे वह विद्वान् प्राणात्मक हो जाता है। "यह सूर्य प्राण से उदय होता है, प्राण में ही अस्त होता है" इस प्रकार प्रारम्भ कर अन्य श्रुति में कहा है "इस प्रकार जानने वाले विद्वान् से ही सूर्य निकलता है और इसी विद्वान् में अस्त होता है" ॥ १ ॥

अन्नदृष्टि निरूपण करने के पश्चात् वासोदृष्टि का विधान करने के लिए उस प्राण ने फिर पूछा। यहाँ भी प्राण प्रष्टा है एवं वागादि प्रतिवक्ता हैं। प्राण द्वारा वस्त्रविषयक जिज्ञासा होने पर वागादि बोलीं, जल ही प्राण का वस्त्र है। जल के वस्त्र होने से ही तो ब्राह्मण विद्वान् भोजन करते हुए एवं भोजन करने के पश्चात् वस्त्रस्थानीय जल से भोजन के प्रारम्भ एवं बाद में आचमन से परिधान करते हैं। वासोदृष्टि का फल यह है कि वह विद्वान् मुख्य प्राण का वस्त्र प्राप्त करता है, वह कभी नग्न नहीं रहता। वस्त्र प्राप्त करने मात्र से ही अनग्नता सिद्ध हो जाने पर भी अनग्न से उत्तरीय वस्त्र से युक्त होता है—यह अर्थ है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भोक्ष्यमाणस्य भुक्तवतश्च यदाचमनं शुद्धयर्थं विज्ञातं तस्मिन्प्राणस्य वास इति दर्शनमात्रमिह विधीयते । अद्भिः परिदधतीति नाऽऽचमनान्तरम् । यथा लौकिकैः प्राणिभिरद्यमानमन्नं प्राणस्येति दर्शनमात्रं तद्वत्किं मेऽन्नं किं मे वास इत्यादिप्रश्न-प्रतिवचनयोस्तुल्यत्वात् । यद्याचमनमपूर्वं तादर्थ्येन क्रियेत तदा कृम्याद्यन्नमपि प्राणस्य भक्ष्यत्वेन विहितं स्यात् । तुल्ययोर्विज्ञानार्थयोः प्रश्नप्रतिवचनयोः प्रकरणस्य विज्ञाना-र्थत्वादर्धजरतीयो न्यायो न युक्तः कल्पयितुम् ।

यत्तु प्रसिद्धमाचमनं प्रायत्यार्थं प्राणस्यानग्नतार्थं च न भवतीत्युच्यते न तथा वयमाचमनमुभयार्थं ब्रूमः । किं तर्हि प्रायत्यार्थाचमनसाधनभूता आपः प्राणस्य वास इति दर्शनं चोद्यत इति ब्रूमः । तत्राऽऽचमनस्योभयार्थत्वप्रसङ्गदोषचोदनाऽनुपपन्ना ।

आचमनान्तरं प्राणविदो विधीयत एवंविदशिष्यन्नाचामेदिति श्रुतेरित्याशङ्क्याऽऽह—भोक्ष्य-माणस्येति । आदिपदेन प्रतिवचने गृह्येते । सर्वप्राणिभोग्येऽन्ने तस्यान्नमितिदृष्टिवदाचमनीयास्वप्सु तस्य विधीयते वासोदृष्टिरित्युक्तं व्यतिरेकद्वारा विवृणोति—यदीति । तादर्थ्येनानग्नतार्थत्वेनेति यावत् । अथ पूर्वमन्नदृष्टिरेव विधीयते सर्वान्नभक्षणस्य प्रमाणविरुद्धत्वादिह त्वपूर्वमाचमनमविरोधा-द्विधीयतामित्याशङ्क्याऽऽह—तुल्ययोरिति ।

एकस्याऽऽचमनस्य शुद्धयर्थत्वमनग्नतार्थत्वं च वक्तुमशक्यं विरोधादित्याशङ्क्याऽऽह—यत्त्विति । विरोधो यथा स्यात्तथेति यावत् । तर्हि कीदृगाचमनं विवक्षितमित्याह—किं तर्हीति । प्रयतस्य भावः प्रायत्यं तदर्था याऽऽचमनक्रिया तत्साधनभूतास्वप्सु वासःसंकल्पनं क्रियान्तरमत्र विधित्सितमित्याह—प्रायत्येति । क्रियाभेदे फलितमाह—तत्रेति । अन्यार्थास्वप्स्वन्यार्थत्वचिन्तने प्रमाणविरोधाद्विधियोगेन वासोर्थमाचमनान्तरमेव विधेयं तत्र चानग्नतार्थत्वचिन्तनमुचितमिति शङ्कार्थः । वासोर्थापूर्वाचमन-विधाने तत्रानग्नतार्थत्वदृष्टिविधाने च वाक्यभेदप्रसङ्गात्प्रसिद्धाचमनसाधनभूतास्वप्सु वासोदृष्टिपर-

---

भोजन करने से पूर्व एवं भोजन कर चुकने के पश्चात् शुद्धि के लिए जो आचमन का विधान है वही प्राण का वस्त्र है, इसी दृष्टि का यहां विधान किया जाता है। जल से आच्छादन करता है—यह आचमन से पृथक् कुछ नहीं है। जिस प्रकार सामान्य प्राणियों द्वारा भक्षण करने योग्य प्राण का अन्न मात्र दर्शन के लिए है इसी प्रकार प्राण द्वारा यह कहना मेरा अन्न क्या है, मेरा वास क्या है इत्यादि प्रश्न और उत्तर उपरोक्त के समान है। यदि आचमन के बिना अनग्नता अभीष्ट की जाए तब तो कीड़े-मकोड़ों का अन्न भी प्राण के लिए भक्ष्य हो जाएगा। विज्ञानार्थ एवं प्रश्नोत्तर के तुल्य होने पर प्रकरण के विज्ञानार्थक होने से इसे अर्धजरतीय न्याय की कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं है।

(यहां शङ्का होती है—) आचमन तो शुद्धि के लिए प्रसिद्ध है, वह प्राण की अनग्नता के लिए भी कैसे हो जाएगा। इस पर कहा जाता है हम भी तो आचमन को उभयार्थक नहीं मानते। वस्तुतस्तु शुद्धि के निमित्त आचमन का साधनभूत जल प्राण का वस्त्र है, इस दृष्टि का विधान करने के लिए कहते हैं। इसलिए आचमन में उभयार्थता रूप दोष की कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं है।

---

१. अद्भिः परिदधतीति विधिबलेनेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायो-क्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेर-न्नेवास्मिञ्छाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति ॥३॥

प्राण विज्ञान की स्तुति

उस इस प्राण विज्ञान को सत्यकाम जाबाल ने गोश्रुति नामक वैयाघ्रपाद को बतला कहा—यदि प्राणवेत्ता पुरुष इस दर्शन को शुष्क स्थाणु से कहे, तो उसमें भी शाखाएँ उत्पन्न हो जाये और पत्ते निकल आयेंगे ॥ ३ ॥

वासोर्थ एवाऽऽचमने तद्दर्शनं स्यादिति चेत् । न । वासोज्ञानार्थवाक्ये वासोर्थापूर्वाचमनविधाने तत्रानग्नतार्थत्वदृष्टिविधाने च वाक्यभेदः । आचमनस्य तदर्थत्वमन्यार्थत्वं चेति प्रमाणाभावात् ॥२॥

तदेतत्प्राणदर्शनं स्तूयते । कथम् । तद्धैतत्प्राणदर्शनं सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये नाम्ना वैयाघ्रपद्याय व्याघ्रपदोऽपत्यं वैयाघ्रपद्यस्तस्मै गोश्रुत्याख्यायोक्त्वोवाचान्यदपि वक्ष्यमाणं वचः । किं तदुवाचेत्याह—यद्यपि शुष्काय स्थाणव एतद्दर्शनं ब्रूयात्प्राणविज्जायेरन्नुत्पद्येरन्नेवास्मिन्स्थाणौ शाखाः प्ररोहेयुश्च पलाशानि पत्राणि, किं जीवते पुरुषाय ब्रूयादिति ॥३॥

यथोक्तप्राणदर्शनविद इदं मन्थाख्यं कर्माऽऽरभ्यते—

मेव च वाक्यमित्युत्तरमाह—नेत्यादिना । वासोर्थत्वमन्यार्थत्वं दृष्टचर्थत्वमित्युक्ते प्रमाणस्य[1] वाक्यस्याप्रमाणत्वप्रसङ्गादिति यावत् ॥२॥

तद्धैतदित्यादि वाक्यं न विधानार्थं नापि फलवचनं तथाच व्यर्थमित्याशङ्क्याऽऽह—तदेतदिति स्तुतिमेव प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कथमिति । जीवते पुरुषाय प्राणविदेतद्दर्शनं ब्रूयात्तदाऽस्मिन्महान् भवतीति किमु वक्तव्यमिति योजना ॥३॥

गोदोहनवदधिकृताधिकारमिदं कर्म प्राणविदोऽस्मिन्नधिकारोऽस्तीत्याह—यथोक्तेति । अनन्

आचमन में वासदृष्टि मात्र की कल्पना रहने दो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। वासोज्ञानार्थक श्रुतिवाक्य में वासोर्थ अपूर्व आचमन विधान में तथा वहाँ अनग्नतार्थत्व दृष्टि विधान में केवल वाक्यभेद है। इसके अतिरिक्त आचमन अपने अर्थ में हो अथवा अन्य अर्थ में हो इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता ॥२॥

इस प्राणदर्शन की स्तुति की जाती है। इस प्राणविद्या को सत्यकाम जाबाल ने गोश्रुत नामक वैयाघ्रपाद के प्रति कहा। विद्या को कहकर अन्य भी कुछ बोला। प्राणवेत्ता इस प्राणविद्या को शुष्क स्थाणु के प्रति सुनाए तो इसी सूखे स्थाणु में शाखा और पत्ते निकल आते हैं, जीवित पुरुष को सुनाने के फल का तो कहना ही क्या है ? ॥ ३ ॥

---

१. एकस्य प्रमाणस्य वासोऽर्थत्वमित्येवमन्वयः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳ रात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनो-रुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥४॥

मन्थ कर्म

इसके बाद यदि वह महत्त्व को प्राप्त करना चाहे, तो उसे अमावस्या तिथि को दीक्षित पुरुष के समान नियमादि का आश्रय लेकर पूर्णिमा की रात्रि को सर्वौषध के भाग को लेकर दधि और मधु के सहित (कंसाकार गूलर के पात्र में डालकर) उस मन्थ का मंथन करे "ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा" ऐसा करते हुए आवसथ्याग्नि में आहुति देकर स्रुवा में लगे हुए शेष घृत को मन्थ पर गिरा देना चाहिये ॥ ४ ॥

अथानन्तरं यदि महन्महत्त्वं जिगमिषेद्गन्तुमिच्छेन्महत्त्वं प्राप्तुं यदि कामयेतेत्यर्थः। तस्येदं कर्म विधीयते। महत्त्वे हि सति श्रीरुपनमते। श्रीमतो ह्यर्थप्राप्तं धनं ततः कर्मानुष्ठानं ततश्च देवयानं पितृयाणं वा पन्थानं प्रतिपत्स्यत इत्येतत्प्रयोजन-मुररीकृत्य महत्त्वप्रेप्सोरिदं कर्म न विषयोपभोगकामस्य। तस्यायं कालादिविधिरुच्यते—अमावास्यायां दीक्षित्वा दीक्षित इव भूमिशयनादिनियमं कृत्वा तपोरूपं सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमित्यादिधर्मवान्भूत्वेत्यर्थः। न पुनर्दैक्षमेव कर्मजातं सर्वमुपादत्ते। अतद्विकार-

---

प्राणविद्यानिष्पत्तेरिति शेषः। वाक्यशेषं पूरयति—तस्येति। महत्त्वद्वारा विषयोपभोगकामुकस्य कर्मविधायि शास्त्रं श्येनादिशास्त्रवदनर्थफलमेवेत्याशङ्क्याऽऽह—महत्त्वे हीति। तस्येति प्रकृतमन्थाख्य-कर्मोक्तिः। कालादीत्यादिशब्दो द्रव्यादिसंग्रहार्थः। दैक्षं दीक्षायां भवं मौञ्ज्यभ्यञ्जनादि न सर्वमेवा-यमनुतिष्ठति। प्रकृतिधर्मा हि विकृतावनुवर्तन्ते। प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्येति न्यायात् न चेदं कर्म कस्य-

---

पूर्वोक्त रीति से प्राणविद्या को जानने वाले के लिए यह मन्थसञ्ज्ञक कर्म प्रारम्भ किया जाता है।

इसके पश्चात् यदि प्राणविज्ञानवेत्ता महत्त्व प्राप्ति की कामना करे तो उसके इस मन्थाख्य कर्म का विधान किया जाता है क्योंकि महानता पर ही लक्ष्मी भुकती है। लक्ष्मीवान् को धन मिलता है, फिर कर्मानुष्ठान में प्रवृत्ति होती है उसके बाद देवयान या पितृयाण मार्ग की प्राप्ति होगी इसी प्रयोजन को दृष्टिगत रखते हुए महत्त्वप्राप्ति की कामना वाले के लिए इस कर्म का विधान है; विषयोपभोग कामुक के लिए नहीं। उसके लिए श्रुति समय का विधान करती है। अमावास्या तिथि को दीक्षित पुरुष के समान भूमिशयनादि नियमों को ग्रहण कर तपरूप सत्यवचन और ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का संकल्प कर पूर्णिमा की रात्रि को मन्थाख्य कर्म प्रारम्भ करे। दीक्षित पुरुष के मौञ्जी अभ्यञ्जन आदि सभी कर्मों का अनुष्ठान करना यहाँ इष्ट नहीं है। प्रकृति धर्मों की विकृति में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातम-वनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपा-तमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपा-

(इसी प्रकार) "वसिष्ठाय स्वाहा" इस मन्त्र से उसी अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत को मन्थ पर डाले। "प्रतिष्ठायै स्वाहा" इस मन्त्र से अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत को मन्थ पर डाले। 'संपदे स्वाहा" इस मन्त्र से अग्नि में घृताहुति देकर अवशेष घृत का स्राव मन्थ

त्वान्मन्थाख्यस्य कर्मणः। "उपसद्व्रती" इतिश्रुत्यन्तरात्पयोमात्रभक्षणं च शुद्धिकारणं तप उपादत्ते पौर्णमास्यां रात्रौ कर्माऽऽरभते सर्वौषधस्य ग्राम्यारण्यानामोषधीनां यथाशक्त्यल्पमल्पमुपादाय तद्वितुषीकृत्याऽऽममेव पिष्टं दधिमधुनोरौदुम्बरे कंसाकारे चमसाकारे वा पात्रे श्रुत्यन्तरात्प्रक्षिप्योपमथ्याग्रतः स्थापयित्वा ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावावसथ्य आज्यस्याऽऽवापस्थाने हुत्वा स्रुवसंलग्नं मन्थे संपातमवनयेत्संस्रवमवपातयेत् ॥४॥

समानमन्यत्। वसिष्ठायै प्रतिष्ठायै संपद आयतनाय स्वाहेति प्रत्येकं ...

चिद्विकृतिरतो यथोक्तधर्मवत्त्वमेवात्र विवक्षितमित्यर्थः। दीक्षित्वेत्यनेन विवक्षितं धर्मान्तरमाह—... दिति। उपसदो नामेष्टयः प्रवर्ग्याहःसु प्रसिद्धाः। तासु व्रतं पयोमात्रभक्षणं तदुपेतो भूत्वा ... संपाद्य जुहोतीति वाजसनेयके समानप्रकरणे श्रवणादिति यावत्। पिष्टं कृत्वा तदाममपक्वमेव ... मधुनोः संबन्धिपात्रे प्रक्षिप्येति संबन्धः। औदुम्बरत्वे नियमः। पात्रस्याऽऽकारे तु विकल्पः। ... पात्रमत्र कल्पयते तत्राऽऽह—श्रुत्यन्तरादिति। औदुम्बरे [1]कंसाकारे कंसे चमसे वेति [2]वाजसनेय... णात्[3]सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेनापेक्षितं पात्रमत्र गृहीतमित्यर्थः। [4]आवसथसंबन्धी लौकिकोऽग्निरावस... विवक्षितो यस्मिन्नौ[5]पासनाख्यं कर्म क्रियते। आज्यस्य हुत्वेति संबन्धः। आवापस्थानमाहुति... प्रदेशो गृह्योक्तः ॥४॥

वसिष्ठाय स्वाहेत्यादिवाक्यं पूर्ववाक्येन(ण) तुल्यार्थमित्याह—समानमिति। तुल्य... स्पष्टयति—वसिष्ठायेति। स्वाहेति मन्त्रं समुच्चार्य हुत्वेति संबन्धः। तथैव प्रथमहोमान्तरमित्यर्थः।

अनुवृत्ति हुआ करती है किन्तु मन्थाख्य कर्म किसी की विकृति नहीं है। बृहदारण्यक श्रुति में '... व्रती होकर' दूध सेवन भी शुद्धिनिमित्तक तप कहा जाता है। विधि इस प्रकार है—ग्रामीण ... जंगली ओषधियों को यथाशक्ति थोड़ा-थोड़ा लेकर उसका छिलका निकालकर बिना पकाए ही पी... कंसाकर अथवा चमसाकार गूलर के पात्र में अन्य श्रुतिमन्त्रों से डालकर आगे रखकर "ज्ये... स्वाहा श्रेष्ठाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों से लौकिक अग्नि में आहुति डालने के प्रदेश में हवन ...

---

१. कंसाकार इत्येतत्तत्र भाष्यमेव। २. (बृ० उ० ६।३।१) ३. सर्वेति—गुणोपसंहारन्यायेनेत्यर्थः। ... च सूत्रम् "सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्" (ब्र० सू० ३।३।१) इति। ४. स्वीयगृहसंबन्धी स्मार्तो... ५. औपासनाख्यं कर्म स्मार्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत् ॥५॥

अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳ स हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाऽधिपतिः स मा ज्यैष्ठ्यꣳ श्रैष्ठ्यꣳ राज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳ सर्वमसानीति ॥६॥

डाले। एवं "आयतनाय स्वाहा" इस मन्त्र से उसी अग्नि में घृत की आहुति देकर अवशेष घृत का स्राव मन्थ पर डाले ॥ ५ ॥

फिर अग्नि से कुछ दूर हट कर मन्थ को अंजलि में रखकर "अमो नामास्यमा हि ते" इत्यादि मन्त्र का जाप करे अर्थात् हे मन्थ ! तू अम नाम वाला है, क्योंकि सम्पूर्ण भूत भौतिक जगत् तेरे (प्राण के) साथ स्थित है। वह तू ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, कान्तिमान् और सबका अधिष्ठान है। अतः वह तुम मुझे ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, राज्य और आधिपत्य प्राप्त कराओ। मैं भी आपके समान ही सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हो जाऊँ ॥ ६ ॥

संपातमवनयेद्धुत्वा ॥५॥

अथ प्रतिसृप्याग्नेरीषदपसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपतीमं मन्त्रम्। अमो नामास्यमा हि ते। अम इति प्राणस्य नाम। अन्नेन हि प्राणः प्राणिति देह इत्यतो मन्थद्रव्यं प्राणस्यान्नत्वात्प्राणत्वेन स्तूयतेऽमो नामासीति। कुतः। यतोऽमा सह हि यस्मात्ते तव प्राणभूतस्य सर्वं समस्तं जगदिदमतः। स हि प्राणभूतो मन्थो ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च।

आहुत्यानन्तर्यमथशब्दार्थः। भवतु प्राणस्येदं नाम मन्थस्य तु कथं मन्त्रार्थत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—अन्नेन हीति। प्रतिज्ञातेऽर्थे प्रश्नपूर्वकं हेतुमाह—कुत इति। अतश्चामो नामासीति पूर्वेण संबन्धः। हेतुं व्याचष्टे—यस्मादिति ॥ ६ ॥

स्रुवा में लगे घृत को स्राव मन्थ पर डाले ॥ ४ ॥

"वसिष्ठाय स्वाहा" इत्यादि वाक्य पूर्वश्रुतिवाक्य के समान है। वसिष्ठ, प्रतिष्ठा, संपत् और आयतन के लिए अर्पित हो इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र की आहुति के साथ अवशेष घृत का स्राव मन्थ पर डाले ॥ ५ ॥

आहुति डालने के अनन्तर अग्नि से थोड़ी दूर हटकर अञ्जली में मन्थ ग्रहण कर इस मन्त्र का जाप करे—"अमो नामास्यमा हि ते"। 'अम' यह प्राण का नाम है। शरीर में अन्न से ही प्राण प्राणनक्रिया करता है, अतः अन्नमय प्राण होने से मन्थद्रव्य की प्राणरूप से स्तुति की जाती है, "हे मन्थ ! तू प्राण नाम वाला है" क्योंकि तुम्हारा प्राणभूत यह समस्त जगत् तुम में स्थित है। वही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति वयं देवस्य भोजनमित्याचामति श्रेष्ठꣳ सर्वधातममित्याचामति तुरं भगस्य धीमहीति

इसके बाद वह इस (आगे कही जाने वाली) ऋचा से पादशः (मन्थ का एक-एक ग्रास) भक्षण करता है। "तत्सवितुर्वृणीमहे" (सम्पूर्ण विश्व के जनयिता आदित्य देव के उस मन्थरूप भोजन की हम प्रार्थना करते हैं) ऐसा कहकर भक्षण करता है। "वयं देवस्य भोजनम्" (हम उस देव का भोजन बनें) ऐसा कहकर भक्षण करता है। "श्रेष्ठं सर्वधातमम्" (सम्पूर्ण अन्नों की अपेक्षा प्रशस्यतम, सम्पूर्ण जगत् के अतिशय विधाता) ऐसा कहकर भोजन करता है। तथा—"तुरं भगस्य धीमहि" (हम ...

अत एव च राजा दीप्तिमानधिपतिश्चाधिष्ठाय पालयिता सर्वस्य। स मा मा... मन्थः प्राणो ज्यैष्ठ्यादिगुणपूगमात्मनो गमयत्वहमेवेदं सर्वं जगदसानि भवानि प्राणव... इतिशब्दो मन्त्रपरिसमाप्त्यर्थः ॥६॥

अथानन्तरं खल्वेतया वक्ष्यमाणयर्चा पच्छः पादश आचामति भक्षयति, मन्त्रस्यैकैकेन पादेनैकैकं ग्रासं भक्षयति। तद्भोजनं सवितुः सर्वस्य प्रसवितुः। प्राणमादि... चैकीकृत्योच्यते। आदित्यस्य वृणीमहे प्रार्थयेमहि मन्थरूपम्। येनान्नेन सावित्रेण भोजनेनोपभुक्तेन वयं सवितृस्वरूपापन्ना भवेमेत्यभिप्रायः। देवस्य सवितुरिति पूर्वेण संबन्धः। श्रेष्ठं प्रशस्यतमं सर्वान्नेभ्यः सर्वधातमं सर्वस्य जगतो धारयितृतममतिशये...

अनन्तरं जपकर्मणः सकाशादिति शेषः। तदेव स्पष्टयति—मन्त्रस्येति। मन्त्रस्यैकैकेन पादेन मन्थस्यैकैकं ग्रासं भक्षयतीति योजना। भोजनं मन्थरूपमिति संबन्धः। तत्कथं सवितुः स्यात्... हि मन्थद्रव्यमन्नमित्युक्तं तत्राऽऽह—प्राणमिति। उच्यते सवितुर्भोजनमिति शेषः। प्राणादित्ययो... फलितं वाक्यार्थमाह—आदित्यस्येति। मन्थरूपं तद्भोजनमिति पूर्वेण संबन्धः। प्रार्थनाविषयं भोजन... विशिनष्टि—येनेति। तस्यैव विशेषणान्तरं श्रेष्ठमित्यादि। स्थितिकारणत्वमुक्त्वा जनकत्वं पक्षान्तर... माह—अतिशयेनेति। जगद्व्याप्तौ फलदाने च ध्यातुः शैघ्र्यम्। किमिति भोजने कथ्यमाने ध्यानमु...

प्राणात्मक मन्थ ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है, इसी कारण कान्तिमान् एवं अध्यक्ष होकर सबका पालन करता है। वह प्राणस्वरूप मन्थ मुझे भी ज्येष्ठ-श्रेष्ठादि गुणों के समूह की प्राप्ति कराए। प्राण के अभिन्न मैं ही यह सम्पूर्ण जगत् हूँ। मन्त्र में 'इति' शब्द मन्त्र परिसमाप्ति का सूचक है ॥ ६ ॥

इसके पश्चात् वह वक्ष्यमाण ऋचा के एक-एक पाद मन्थ का एक-एक ग्रास भक्षण करे। मन्थरूप भोजन सृष्टिकर्ता आदित्य का है। प्राण और आदित्य के तादात्म्य होने से ऐसा कहा जाता है। हम उस आदित्य की प्रार्थना करते हैं ताकि वह मन्थरूप अन्न का भोजन करने से ...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वं पिबति निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा पश्चादग्नेः
संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः
स यदि स्त्रियं पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात् ॥७॥

ही सविता देव के स्वरूप का चिन्तन करते हैं) ऐसा कहकर कटोरे या चमचे को धोकर सारे मन्थ लेप को पी जाता है। तदनन्तर वह अग्नि के पीछे मृगचर्म या केवल पवित्र भूमि पर वाणी का संयम करके (स्त्री आदि अनिष्ट स्वप्न के दर्शन से) विकृत न होता हुआ सो जाता है। उस समय यदि वह स्वप्न में स्त्री को देखे, तो यह समझे कि मेरा यह कर्म सफल हो गया ॥ ७ ॥

विधातृतमिति वा। सर्वथा भोजनविशेषणम्। तुरं त्वरं तूर्णं शीघ्रमित्येतत्। भगस्य देवस्य सवितुः स्वरूपमिति शेषः। धीमहि चिन्तयेमहि विशिष्टभोजनेन संस्कृताः शुद्धात्मानः सन्त इत्यभिप्रायः। अथवा भगस्य श्रियः कारणं महत्त्वं प्राप्तुं कर्म कृतवन्तो वयं तद्धीमहि चिन्तयेमहीति सर्वं च मन्थलेपं पिबति निर्णिज्य प्रक्षाल्य कंसं कंसाकारं चमसं चमसाकारं वौदुम्बरं पात्रम्। पीत्वाऽऽचम्य पश्चादग्नेः प्राक्शिराः संविशति चर्मणि वाऽजिने स्थण्डिले केवलायां वा भूमौ। वाचंयमो वाग्यतः सन्नित्यर्थः। अप्रसाहो न प्रसह्यते नाभिभूयते स्त्र्याद्यनिष्टस्वप्नदर्शनेन यथा तथा संयतचित्तः सन्नित्यर्थः। स एवंभूतो यदि स्त्रियं पश्येत्स्वप्नेषु तदा विद्यात्समृद्धं ममेदं कर्मेति ॥७॥

तत्राऽऽह—विशिष्टेति। शुद्धधीत्वं ध्यानकारणमुक्त्वा प्रकृतकर्मवत्प्रेप्सितमहत्त्वे हेतुत्वादपि ध्यानमनुष्ठेयमित्याह—अथवेति। तदिति सावित्रं रूपमुक्तं नियमेनौदुम्बरं वैकल्पिताकारे विशेषः। पात्रं प्रक्षाल्य पिबतीति संबन्धः। मन्थलेपं पात्रं प्रक्षाल्य पीत्वाऽऽचमनपूर्वकमग्नेः पश्चिमभागे कृष्णाजिनव्यवहितायां केवलायां वा भूमौ प्राक्शिरा भूत्वा शयीतेत्याह—पीत्वेति। शयानस्य कर्तव्यं दर्शयति—वाचंयम इति। तस्य स्वप्ने कथंचिदुत्तमस्त्रीदर्शने शुभागमः सूच्यत इत्याह—स एवंभूत इति ॥७॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति करावे। मन्त्र में 'देवस्य' का आदित्य के साथ संबन्ध है। वह सब अन्नों से श्रेष्ठ है, समस्त जगत् को सम्यक् धारण करता है। यह सर्वथा भोजनविशेषण है। विशिष्ट भोजन से संस्कृत शुद्धात्मा हुए हम शीघ्र ही सविता के स्वरूप का ध्यान करते हैं। अथवा 'श्री के कारण महत्त्व प्राप्ति के लिए कर्म करते हुए हम उस आदित्य के स्वरूप का ध्यान करते हैं' इस मन्त्र में कंसाकार अथवा चमसाकार गूलर के पात्र को धोकर सारे मन्थलेप को पी जाए। पीकर आचमन कर अग्नि के पश्चिम भाग में पूर्व की ओर सिर करके कृष्णमृगचर्म अथवा केवल भूमि में मौनव्रती होकर स्त्री आदि अनिष्ट स्वप्न से जैसे का तैसा संयतचित्त हुआ शयन करे। इस प्रकार यदि उसे स्वप्न में उत्तम स्त्री के दर्शन होते हैं तो इसे शुभागम जानकर समझे कि मेरा कर्म सफल हो गया ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदेष श्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳ स्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने ॥८॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः)

श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेयः पञ्चालानाꣳ समितिमेयाय तꣳ

इस विषय में यह मन्त्र है। जिस समय सकाम कर्मों में स्वप्न में स्त्री को देखे, तो ऐसे स्व... के दर्शन होने पर कर्म की सफलता समझे। द्विर्वचन कर्म समाप्ति के लिए है ॥ ८ ॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

पाञ्चालों की परिषद् में श्वेतकेतु

अरुण का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चाल देशवासियों की सभा में आया। उस आये हुए से जीवल...

तदेतस्मिन्नर्थ एष श्लोको मन्त्रोऽपि भवति। यदा कर्मसु काम्येषु कामा... स्त्रियं स्वप्नेषु स्वप्नदर्शनेषु स्वप्नकालेषु वा पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्। कर्म... फलनिष्पत्तिर्भविष्यतीति जानीयादित्यर्थः। तस्मिन्स्त्र्यादिप्रशस्तस्वप्नदर्शने सती... भिप्रायः। द्विरुक्तिः कर्मसमाप्त्यर्था ॥८॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः संसारगतयो वक्तव्या वैराग्यहेतोर्मुमुक्षूणामि... आख्यायिकाऽऽरभ्यते—

श्वेतकेतुर्नामतो ह, इत्यैतिह्यार्थः। अरुणस्यापत्यमारुणिस्तस्यापत्यमारुणे... पञ्चालानां जनपदानां समितिं सभामेयायाऽऽजगाम। तमागतवन्तं ह प्रवाह...

॥ ८ ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

प्राणविद्या तदङ्गकर्म चेत्युभयमुक्तमिदानीमग्निविद्यामाख्यातुकामस्तावदाख्यायिकातात्पर्यं... —ब्रह्मादीति। तासां च वक्तव्यत्वे हेतुमाह—वैराग्यहेतोरिति। राजा कुमारेति संबोधयन्नभि...

इसी अर्थ का द्योतक यह श्रुतिमन्त्र भी है। यदि सकाम कर्मों का अनुष्ठान करते हुए ... समय स्वप्न में स्त्री दीख पडती है तो उत्तम स्त्री के स्वप्न में दर्शन को उन कर्मों की सिद्धि का सू... जाने। मन्त्र में "तस्मिन्स्वप्ननिदर्शने" मन्त्यकर्म की समाप्ति को परिलक्षित करता है ॥ ८ ॥

ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त संसार की गतियों को कहना चाहिए ताकि मोक्षाभिलाषी सा... को संसार से वैराग्य हो जाए इसीलिए यह आख्यायिका प्रारम्भ की जाती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाऽशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति ॥१॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्तन्त३ इति न भगव इति वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना३ इति न भगव इति ॥२॥

पुत्र प्रवाहण ने कहा—हे कुमार ! क्या पिता ने तुझे शिक्षा दी है ? ऐसा पूछने पर उसने कहा, हाँ भगवन् (मैं पिता से शिक्षित हूँ) ॥ १ ॥

श्वेतकेतु के प्रति प्रवाहण के प्रश्न

प्रवाहण—क्या तू जानता है कि इस लोक से ऊपर प्रजा कहाँ जाती है ?

श्वेतकेतु ने कहा—भगवन् ! (मैं उसे जानता) नहीं।

प्रवाहण ने पूछा—क्या तू जानता है, वे प्रजा फिर इस लोक में कैसे लौटतीं हैं ?

श्वेतकेतु—भगवन् ! मैं उसे नहीं जानता ।

प्रवाहण—क्या तू जानता है, देवयान और पितृयाण इन दोनों मार्गों का विलगाव कहाँ से होता है ?

श्वेतकेतु—भगवन् ! इसे भी मैं नहीं जानता ॥ २ ॥

नामतो जीवलस्यापत्यं जैवलिरुवाचोक्तवान् । हे कुमारानु त्वा त्वामशिषदन्वशिषत्पिता । किमनुशिष्टस्त्वं पित्रेत्यर्थः । इत्युक्तः स आहानु ह्यनुशिष्टोऽस्मि भगव इति सूचयन्नाह ॥१॥

तं होवाच यद्यनुशिष्टोऽसि वेत्थ यदितोऽस्माल्लोकादध्यूर्ध्वं यत्प्रजाः प्रयन्ति यद्गच्छन्ति तत्किं जानीष इत्यर्थः । न भगव इत्याहेतरो न जानेऽहं तद्यत्पृच्छसि । एवं तर्हि

श्वेतकेतोरपनिनीषति ॥ १ ॥

प्राचीनकाल की बात है। एक समय अरुण का पौत्र आरुणेय श्वेतकेतु पंजाबदेशवासियों की सभा में आया। अपनी सभा में उस श्वेतकेतु को आए हुए देख जीवल के पुत्र जैवलि प्रवाहण ने कहा—हे कुमार ! तुम्हारे पिताजी ने तुम्हें क्या कुछ शिक्षा दी है। इतना सुनकर श्वेतकेतु बोला—हाँ श्रीमन् ! मैं अपने पिताजी से अनुशिक्षित हूँ ॥ १ ॥

राजा प्रवाहण बोला—यदि तुम अनुशिक्षित हो तो क्या इतना जानते हो कि इस लोक से ऊपर प्रजा कहाँ जाती है ? तब श्वेतकेतु बोला—महाराज ! आपके प्रश्न का उत्तर तो मैं नहीं दे सकता। पुनः प्रवाहण ने पूछा—क्या तुम जानते हो जिस प्रकार से गई हुई प्रजा वापिस लौटती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वेत्थ यथाऽसौ लोको न संपूर्यत३ इति न भगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति ।।३।।

प्रवाहण—क्या तू जानता है, वह पितृलोक क्यों नहीं भर जाता ?

श्वेतकेतु—भगवन् ! मैं उसे नहीं जानता ।

प्रवाहण—क्या तू जानता है कि पाँच संख्या वाली आहुति के होम कर दिये जाने पर घृतादि जल प्रधान रस पुरुष संज्ञा को कैसे प्राप्त होते हैं ?

श्वेतकेतु—नहीं भगवन् ! मैं इसे भी नहीं जानता ।। ३ ।।

वेत्थ जानीषे यथा येन प्रकारेण पुनरावर्तन्त इति । न भगव इति प्रत्याह । ... पथोर्मार्गयोः सहप्रयाणयोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना व्यावर्तनमितरेतरवि... स्थानं सह गच्छतामित्यर्थः । न भगव इति ।।२।।

वेत्थ यथाऽसौ लोकः पितृसंबन्धी यं प्राप्य पुनरावर्तन्ते बहुभिः प्रयद्भिरपि ... कारणेन न संपूर्यत इति । न भगव इति प्रत्याह । वेत्थ यथा येन क्रमेण पञ्च... पञ्चसंख्याकायामाहुतौ हुतायामाहुतिनिर्वृत्ता आहुतिसाधनाश्चाऽऽपः पुरुषवचसः पु... इत्येवं वचोऽभिधानं यासां हूयमानानां क्रमेण षष्ठाहुतिभूतानां ताः पुरुषवचसः पु...

यथेत्यस्यार्थमाह—येनेति । विद्वदविदुषोस्तुल्यमार्गयोः सतोर्द्वौ मार्गौ तयोर्मध्ये देवयान... त्यादि योज्यम् । उक्तं वाक्यार्थं संक्षिपति—इतरेतरेति । विदुषां च कर्मिणां च मार्गद्वयमधिकृत्य... प्रस्थितानां यत्र मिथो वियोगो भवति तत्किं वेत्थेत्यर्थः ।। २ ।।

पितृसंबन्धिनं लोकमेव व्याकरोति—यं प्राप्येति । आहुतिनिर्वृत्ता इत्यस्य व्याख्या... माहुतिसाधनाश्चेति । अपूर्वरूपाणामपां भूतान्तरसमुच्चयार्थश्चकारः । अथवा पयोघृतादिरूपेणाऽऽ... साधयन्तीति चाऽऽहुत्या पुनरपूर्वात्मना निष्पन्ना इत्यर्थः । क्रमेणेति । श्रद्धासोमवृष्ट्यन्नरेतसां हवन... णेति यावत् । षष्ठाहुतिभूतानामन्त्येष्टिविधानेन शरीराहुतिद्वारा सूक्ष्मतां गतानामित्यर्थः ।। ३ ।।

इसे भी श्वेतकेतु न बता सका । प्रवाहण ने पूछा—क्या तुम जानते हो कि देवयान और पितृयाण दोनों मार्गों के एक साथ जाते हुए इनका आपस में पार्थक्य कहाँ से होता है । श्वेतकेतु बोला—महाराज ! मैं नहीं जानता ।। २ ।।

पुनः प्रवाहण ने पूछा—क्या तुम इसका कारण जानते हो कि जिसे पाकर लौट आना पड़... ऐसा वह पितृलोक बहुत से लोगों के जाने पर भी नहीं भरता । श्वेतकेतु बोला—नहीं भगवन् ! ... नहीं जानता । प्रवाहण ने पाँचवाँ प्रश्न किया—क्या तुम उस क्रम को जानते हो जिस क्रम से ... संख्या वाली आहुति के होम कर दिए जाने पर आहुति के साधन जल एवं भूतान्तर पुरुषसंज्ञक हो...

---

१. (छा० उ० ५।९।२) तं प्रेतमित्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ नु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात्कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हाऽऽयस्तः पितुरर्धमेयाय तꣳ होवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवानब्रवीदनु त्वाऽशिषमिति ॥४॥

पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकंचना-

फिर भला तूने "मुझे शिक्षा दी गई है" ऐसा अपने विषय में कैसे कहा ? जो पुरुष मेरे इन प्रश्नों को जानता नहीं, वह विद्वत् समाज में अपने को शिक्षित कैसे कह सकता है। इसके बाद राजा से त्रस्त होकर वह श्वेतकेतु अपने पिता के स्थान पर आया और उससे कहा—श्रीमान् ने मुझे शिक्षा दिये बिना ही (समावर्तन संस्कार के समय) कह दिया था कि मैंने तुझे शिक्षा दे दी है॥ ४॥

उस क्षत्रियबन्धु ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे थे, उनमें से एक का भी विवेचन मैं नहीं कर सका।

शब्दवाच्या भवन्ति पुरुषाख्यां लभन्त इत्यर्थः। इत्युक्तो नैव भगव इत्याह। नैवाहमत्र किंचन जानामीत्यर्थः ॥३॥

अथैवमज्ञः सन्किमनु कस्मात्त्वमनुशिष्टोऽस्मीत्यवोचथा उक्तवानसि। यो हीमानि मया पृष्टान्यर्थजातानि न विद्यान्न विजानीयात्कथं स विद्वत्स्वनुशिष्टोऽस्मीति ब्रुवीत। इत्येवं स श्वेतकेतू राज्ञाऽऽयस्त आयासितः सन्पितुरर्धं स्थानमेयायाऽऽगतवांस्तं च पितरमुवाचाननुशिष्यानुशासनमकृत्वैव मा मां किल भगवान्समावर्तनकालेऽब्रवीदुक्तवाननु त्वाऽशिषमन्वशिषं त्वामिति ॥४॥

यतः पञ्च पञ्चसंख्याकान्प्रश्नान्मा मां राजन्यबन्धू राजन्या बन्धवोऽस्येति

त्वत्पृष्टार्थजातातिरिक्तविषयमनुशासनं। ममास्तीत्यनुशिष्टोऽस्मीत्युक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—यो हीति॥ ४॥

अननुशिष्य त्वामन्वशिषमिति कथमुक्तवानस्मीत्याशङ्क्याऽऽह—यत इति। नैकंचनेत्युक्तमेव

अर्थात् जिन पाँचों के हवन कर दिए जाने पर षष्ठ शरीर आहुति द्वारा सूक्ष्मता को प्राप्त हुए पुरुष सञ्ज्ञा को प्राप्त होते हैं। श्वेतकेतु बोला—नहीं महाराज ! वह क्रम मैं नहीं जानता। भावाशय यह कि आपके द्वारा पूछे गए सभी प्रश्नों का उत्तर मैं नहीं जानता॥ ३॥

इस प्रकार सभी प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ तुम कैसे कहते हो कि मुझे शिक्षा दी गई है। जो विद्वान् मेरे इन पाँचों गम्भीर प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता, वह विद्वानों में अपने को शिक्षित होने का दावा कैसे कर सकता है। राजा के द्वारा इस प्रकार नीचा देखकर वह श्वेतकेतु अपने पिता के स्थान पर आया एवं उन्हें बोला, आपने मुझे शिक्षा दिए बिना ही समावर्तन संस्कार के समय कह दिया था कि मैंने तुम्हें शिक्षा दे दी है॥ ४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

शकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतान्-वदो यथाऽहमेषां नैकंचन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति ॥५॥

स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हां-चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तँ होवाच

उसके पिता ने कहा—तुमने आते ही उस समय मुझे ये जैसे प्रश्न सुनाये, उनमें से मैं एक को भी न जानता क्योंकि यदि मैं इन प्रश्नों को जानता होता तो (समावर्तन संस्कार के समय अपने प्रिय पु तुम्हें क्यों नहीं बतलाता ? ॥ ५ ॥

पिता पुत्र का प्रवाहण के पास जाना

तब वह गौतम गोत्रोत्पन्न मुनि राजा जैवलि के पास आया। अपने यहाँ आये हुए उस मु

राजन्यबन्धुः स्वयं दुर्वृत्त इत्यर्थः। अप्राक्षीत्पृष्टवांस्तेषां प्रश्नानां नैकंचनैकमपि नाश न शक्तवानहं विवक्तुं विशेषेणार्थतो निर्णेतुमित्यर्थः। स होवाच पिता यथा मा मां त्वं तदाऽऽगतमात्र एवैतान्प्रश्नानवद उक्तवानसि तेषां नैकंचनाशकं विवक्तुमिति त मां जानीहि, त्वदीयाज्ञानेन लिङ्गेन मम तद्विषयमज्ञानं जानीहीत्यर्थः। कथं, यथा हमेषां प्रश्नानामेकंचनैकमपि न वेद न जान इति। यथा त्वमेवाङ्ग तान्प्रश्ना जानीषे तथाऽहमप्येतान्न जान इत्यर्थः। अतो मय्यन्यथाभावो न कर्तव्यः। कुत एतदे यतो यद्यहमिमान्प्रश्नानवेदिष्यं विदितवानस्मि कथं ते तुभ्यं प्रियाय पुत्राय समावर्त

नन्पदं नाशकमिति संबन्धं दर्शयितुं पुनरुपात्तम्। अतो मां प्रति तव मिथ्यावादिता सिद्धेति शेषः पिता स्वकीयमिथ्यावादित्वशङ्कां परिहरति—स होवाचेति। यथा मा त्वमित्यादिवाक्यं पूर्वम व्याख्यायानन्तरवाक्यमाकाङ्क्षापूर्वकमुत्थापयति—कथमित्यादिना। तद्व्याचष्टे—यथेति। अज्ञान विशेषोऽन्तःशब्दार्थः। अन्यथाभावो ज्ञातेऽपि विषये तवानुक्तिरिति यावत्। त्वदीयमज्ञानं कुतो हे मया ज्ञातव्यमित्याशङ्कामुद्भाव्यानन्तरवाक्येनो(णो)त्तरमाह—कुत इत्यादिना। अतस्तव पात्रभूतस्य

श्वेतकेतु बोला—उस दुराचारी क्षत्रियबन्धु ने मुझे पाँच प्रश्न पूछे थे किन्तु मैं उन पाँचों प्रश्नों में से एक का भी अर्थ निर्णय नहीं कर सका। पिता बोले—हे वत्स ! जिस प्रकार तुमने आते ही उन पाँचों प्रश्नों को कह दिया था और उत्तर न देने की बात कही सो तुम्हारे उस अज्ञान का दोष मैं ही हूँ क्योंकि स्वयं मैं भी तो उन पाँचों प्रश्नों में से किसी एक का भी उत्तर नहीं जानता। हे प्रिय मैं भी तुम्हारी तरह ही उन प्रश्नों का उत्तर नहीं जानता। अतः मेरे विषय में तुम्हें गलत धारणा नहीं बना लेनी चाहिए। तुम तो उपदेश देने के पात्र थे यदि मैं उनको जानता होता तो तुझ प्रिय पुत्र को समावर्तन के समय अवश्य बतला देता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानुषस्य भगवन्गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव ॥६॥

गत की पूजा राजा ने की। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सभा में राजा के पास पहुँचने पर वह गौतम उसके पास गया। राजा ने उस गौतम से कहा—हे भगवन् गौतम! मनुष्यसंबन्धी ग्रामादि धन का वरदान यथेच्छ माँग लेवें। गौतम ने कहा—हे राजन्! यह मनुष्यसंबन्धी धन तुम्हारे ही पास रहे, तुमने मेरे पुत्र के प्रति जो पाँच प्रश्नरूप बात कही थी, वही बात मुझसे कहो। तब वह राजा धर्म-संकट में पड़ गया॥ ६॥

काले पुरा नादक्ष्यं नोक्तवानस्मीत्युक्त्वा स ह गौतमो गोत्रतो राज्ञो जैवलेरर्धं स्थानमेत्य गतवान्। तस्मै ह गौतमाय प्राप्तायार्हामर्हणां चकार कृतवान्। स च गौतमः कृतातिथ्य उषित्वा परेद्युः प्रातःकाले सभागे सभां गते राज्ञ्युदेयाय। भजनं भागः पूजा सेवा सह भागेन वर्तमानो वा सभागः पूज्यमानोऽन्यैः स्वयं गौतम उदेयाय राजानमुद्गतवान्। तं होवाच गौतमं राजा मानुषस्य भगवन्गौतम मनुष्यसंबन्धिनो वित्तस्य ग्रामादेर्वरं वरणीयं कामं वृणीथाः प्रार्थयेथाः। स होवाच गौतमस्तवैव तिष्ठतु राजन्मानुषं वित्तम्। यामेव कुमारस्य मम पुत्रस्यान्ते समीपे वाचं पञ्चप्रश्नलक्षणामभाषथा उक्तवानसि तामेव वाचं मे मह्यं ब्रूहि कथयेत्युक्तो गौतमेन राजा स ह कृच्छ्री दुःखी बभूव। कथं त्विदमिति ॥५॥६॥

नुपदेशान्मदीयमज्ञानं ज्ञातव्यमिति शेषः। अर्हणां योग्यां पूजामित्यर्थः। सभागपदं सप्तम्यन्तं राजविषयं प्रथमान्तं गौतमविषयमिति भेदः। गौतममागतं योगक्षेमार्थिनं बुद्ध्वा राजा प्रसन्नः सन्नुक्त्वानित्याह—तं होवाचेति। तर्हि कृतकृत्यस्य तव किमित्यागमनमित्याशङ्क्याऽऽह—यामेवेति। कृच्छ्रीभावमभिनयति—कथमिति ॥ ५॥ ६॥

इतना कहकर राजा प्रवाहण जैवलि के राजमहल में गया। राजा ने गौतम के पहुँचने पर उनकी यथायोग्य पूजा की। आतिथ्य को स्वीकार कर गौतम रात्रि विश्राम कर अगले दिन प्रातःकाल उठकर राजा की सभा में पहुँच जाने पर वह राजा के पास गया। 'भज सेवायाम्' से भाग शब्द बना; इसका अर्थ पूजा या सेवा है अर्थात् राजसभा में राजा अन्य लोगों द्वारा पूजित विद्यमान था, स्वयं गौतम राजा के पास गया। गौतम को आए देख राजा बोला—हे गौतम! मनुष्य संबन्धी ग्रामादि वित्त में आपको जो अभीष्ट कामना हो, उसे माँग लो। गौतम ने कहा—हे राजन्! मानुष वित्त तुम्हें ही मुबारिक हो। जिन पाँच प्रश्नों रूपी वाणी को तुमने मेरे पुत्र के प्रति कहा था, उसी वाणी को मुझे सुनाओ। गौतम द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर राजा दुःखी हो गया। दुःखी होने का कारण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तꣳ ह चिरं वसेत्याज्ञापयांचकार तꣳ होवाच यथा मा त्वं गौतमावदो यथेयं न प्राक्त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्त्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच ।७।

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

राजा ने उस गौतम को "चिरकाल तक यहाँ रहें" ऐसी आज्ञा दी और उस गौतम से कहा हे गौतम ! जिस प्रकार तूने मुझसे कहा है (इससे यही जान पड़ता है कि) पूर्वकाल में तुमसे पहले यह पंचाग्निविद्या ब्राह्मणों के पास नहीं गयी थी। इसीसे पूर्वकाल में सम्पूर्ण लोक में इस विद्या के शिष्यों के प्रति अनुशासन क्षत्रियों का ही होता रहा है—अर्थात् इतने समय तक यह विद्या क्षत्रियों की परम्परा में ही आती रही है। ऐसा कहकर राजा ने गौतम से कहा ॥ ७ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

स ह कृच्छ्रीभूतोऽप्रत्याख्येयं ब्राह्मणं मन्वानो न्यायेन विद्या वक्तव्येति मत्वा ह गौतमं चिरं दीर्घकालं वसेत्येवमाज्ञापयांचकाराऽऽज्ञप्तवान्, यत्पूर्वं [1]प्रत्याख्यातवान् विद्यां यच्च पश्चाच्चिरं वसेत्याज्ञप्तवान्, तन्निमित्तं ब्राह्मणं क्षमापयति हेतुवचनोक्त्या तं होवाच राजा सर्वविद्यो ब्राह्मणोऽपि सन्यथा येनं प्रकारेण मा मां हे गौतमावदः तामेव विद्यालक्षणां वाचं मे ब्रूहीत्यज्ञानात्तेन त्वं जानीहि । तत्रास्ति वक्तव्यं यथा

गौतमस्य वचनं राज्ञो दुःखीभावकारणं तर्हि प्रत्याख्यायतामित्याशङ्क्याऽऽह—स हेति। किमिति तर्हि चिरं वसेत्युक्तवानित्यत आह—न्यायेनेति । [2]संवत्सरं वसेति यावत् । वक्तव्या विद्येति शेषः। राज्ञो ब्राह्मणं प्रत्याज्ञां कुर्वतो न प्रत्यवायः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—यत्पूर्वमिति । [3]प्रत्याख्यानादि हेतुवचनम् । न केवलं विद्यावशादेव श्रैष्ठ्यं किंतु जातितोऽपीत्यपेरर्थः । तर्हि ब्रूहि तां वाचमित्याशङ्

बताते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

'यह पञ्चाग्नि विद्या ब्राह्मण को नहीं देनी चाहिए' ऐसा सोचकर दुःखी हुआ कि अब से कहनी पड़ेगी। अतः राजा ने गौतम को एक वर्ष पर्यन्त विद्याप्राप्ति के निमित्त वहीं रहने की आज्ञा दी। (ब्राह्मण को आदेश देने से राजा को प्रत्यवाय क्यों नहीं लगा, क्योंकि) राजा ने पहले विद्या के विषय में कहा था तथा बाद में जिसके लिए एक वर्ष पर्यन्त रहने की आज्ञा दी इस हेतुवचन-कथन ब्राह्मण का प्रत्यवाय क्षमा करवाता है। राजा ने गौतम को कहा—विद्वान् एवं जाति होने से श्रेष्ठ होते हुए भी जिस प्रकार आप कहते हो, उसी पञ्चाग्निविद्या की अज्ञता को

---

१. प्रत्याख्यातवानिति—मानुषस्य वित्तस्य वरं वृणीष्वेत्यनेनैवार्था द्विधा प्रत्याख्यातेति भावः । २. दीर्घं वसेति भाष्यार्थमाह—संवत्सरं वसेति यावदिति । ३. प्रत्याख्यानादीति—प्रत्याख्यानादिजन्यप्रत्यवायपरिहारेण क्षमापनार्थं यथा मा त्वं गौतमावद इत्यादि हेतुवचनमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकारेणेयं विद्या प्राक्त्वत्तो ब्राह्मणान्न गच्छति न गतवती, न च ब्राह्मणा अनया विद्ययाऽनुशासितवन्तः, तथैतत्प्रसिद्धं लोके यतस्तस्माद् पुरा पूर्वं 'सर्वेषु लोकेषु क्षत्त्रस्यैव क्षत्त्रजातेरेवानया विद्यया प्रशासनं प्रशास्तृत्वं शिष्याणामभूद्बभूव। क्षत्त्रियपरम्परयैवेयं विद्यैतावन्तं कालमागता। तथाऽप्यहमेतां तुभ्यं वक्ष्यामि त्वत्संप्रदानादूर्ध्वं ब्राह्मणान्गमिष्यति। अतो मया यदुक्तं तत्क्षन्तुमर्हसीत्युक्त्वा तस्मै होवाच विद्यां राजा ॥७॥

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

पञ्चम्यामाहुतावाप इत्ययं प्रश्नः प्राथम्येनापाक्रियते। तदपाकरणमन्वितरेषामपाकरणमनुकूलं भवेदिति। अग्निहोत्राहुत्योः कार्यारम्भो यः स उक्तो वाजसनेयके—"तं प्रति प्रश्नाः। उत्क्रान्तिराहुत्योर्गतिः प्रतिष्ठा तृप्तिः पुनरावृत्तिर्लोकं प्रत्युत्थायी"

ऽऽह—तत्रेति। विद्याप्रवचने प्रस्तुते सतीति यावत्। यथेत्यस्यापेक्षितं पूरयति—तथेति। प्रसिद्धमेव स्फोरयति—तस्मादिति। ब्राह्मणानामनया विद्यया प्रशास्तृत्वस्य प्रागभावादिति यावत्। इतिशब्दोपात्तमर्थं कथयति—क्षत्त्रियेति। उक्तप्रत्याख्यानादिकारणमतःशब्दार्थः ॥ ७ ॥

इति पञ्चमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

ननु यथाप्रश्नमेव प्रतिवचनमुचितं पञ्चमं तु प्रश्नं प्राथम्येन प्रतिवदता क्रमो निराकृतस्तत्र किं कारणमत आह—पञ्चम्यामिति। अर्थक्रममनुसृत्य पाठक्रमोऽभिधातव्य इत्यर्थः। ननु वाजसनेयकेऽग्निहोत्रप्रकरणेऽग्निहोत्राहुत्यपूर्वपरिणामं जगदित्युक्तं तदेवेहापि विवक्ष्यते चेत्किमनेन पिष्टपेषणन्यायेनेत्याशङ्क्यार्थभेदं वक्तुमग्निहोत्रप्रकरणस्थितमर्थमनुवदति—अग्निहोत्राहुत्योरिति। उक्तप्रकारमेव प्रदर्शयन्प्रथमं 'याज्ञवल्क्यस्य जनकं प्रति 'षट्प्रश्नानुत्थापयति—तं प्रतीति। कार्यारम्भस्त-

लीजिए। यह पञ्चाग्निविद्या किस कारण से क्षत्रियों के एकाधिकार में रहकर ब्राह्मणों के पास न गई तथा ब्राह्मण इस विद्या से शिक्षित नहीं हुए। इसी का समाधान देते हैं—प्राचीनकाल में ब्राह्मणादि चारों वर्णों में यह विद्या क्षत्रिय जाति की धरोहर थी, इस विद्या को परम्परा से क्षत्रियों को ही दिया गया और इसी परम्परा से अब तक यह विद्या क्षत्रियों के पास सुरक्षित रही। तथापि मैं इस विद्या को आपके प्रति उपदेश करता हूँ, आपको उपदेश करने के अनन्तर अब यह विद्या समान रूप से ब्राह्मणों को भी प्राप्त हो सकेगी। अतः मैंने जो आपको आदेश दिया उसे आप क्षमा करेंगे—इतना कहकर राजा ने विद्या का उपदेश करना प्रारम्भ किया ॥ ७ ॥

पांचों प्रश्नों को यथाक्रम न लेकर अन्तिम प्रश्न को पहले लिया जाता है। इसका उत्तर मिल जाने पर अन्य प्रश्नों का उत्तर देना आसान हो जाएगा। अग्निहोत्र और आहुति का कार्यारम्भ जो जगत् है, उसे शतपथ ब्राह्मण में बतलाया गया है। "कार्यारम्भ के प्रति प्रश्न हैं; अग्निहोत्र और

१. सर्वेषु लोकेषु ब्राह्मणादिषु। २. याज्ञवल्क्यस्येति—प्रथमं जनकेनैव साक्षेपं पृष्ठेष्वर्थे ज्ञानाभावात्तज्ज्ञातव्यत्वावश्यकत्वाच्च तत्र प्रश्नेषु जिज्ञासुभूतस्येत्यर्थः। ३. षट्प्रश्नानिति—पूर्वं राज्ञैव याज्ञवल्क्यं प्रति साक्षेपं कृतान् संप्रति च जिज्ञासयैव याज्ञवल्क्येनानूद्यमानानित्यर्थः। एतत्सर्वं माध्यंदिनीयशतपथब्राह्मणे ११।५।५८२ पृष्ठे स्पष्टम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति । तेषां चापाकरणमुक्तं तत्रैव—"ते वा एते आहुती हुते उत्क्रामतस्ते अन्तरिक्षमा-विशतस्ते अन्तरिक्षमेवाऽऽहवनीयं कुर्वाते वायुं समिधं मरीचीरेव शुक्लामाहुतिं ते अन्तरिक्षं तर्पयतस्ते तत उत्क्रामत इत्याद्येवमेव पूर्ववद्दिवं तर्पयतस्ते तत आवर्तेते इमामाविश्य तर्पयित्वा पुरुषमाविशतः । ततः स्त्रियमाविश्य लोकं प्रत्युत्थायी भवति

च्छन्दार्थः । अग्निहोत्राहुत्युत्पन्नापूर्वपरिणामो जगदिष्यते । तत्राग्निहोत्रे सायं प्रातश्च हुतयोराहुत्योर-स्माल्लोकादुत्क्रान्तिः । उत्क्रान्तयोः परलोकं प्रति गतिः । गतयोस्तत्र प्रतिष्ठा । प्रतिष्ठितयोः स्वा-संपाद्यमाना तृप्तिः । तृप्तिमापाद्यावस्थितयोः पुनरिमं लोकं प्रत्यावृत्तिः । आवृत्तयोराश्रयः पुमान्कथं लोकं प्रत्युत्थानशीलो भवतीति कार्यारम्भमधिकृत्य षट्प्रश्नाः प्रवृत्ता इत्यर्थः । तत्रैव वाजसने-याज्ञवल्क्यं प्रति जनकस्य प्रतिवचनं दर्शयति—तेषां चेति । अपूर्वरूपे खल्वाहुती यजमानमुत्क्रान्तं परिवेष्ट्योत्क्रामतः । ते च धूमादिना यजमानेऽन्तरिक्षमाविशति तदाश्रितत्वात्तदाविशतः । पुनरन्तरिक्षस्थयजमानानुकूलतया स्थिते स्वयमन्तरिक्षाधिकरणे तदाहवनीयमिव कुर्वाते । आहुत्यधि-करणस्याऽऽहवनीयत्वात् । तत्र वायुं समिधमिव कुरुतः । वायुनान्तरिक्षस्य समिध्यमानत्वात् । शुक्लां [1]शुद्धामाहुतिमिव मरीचीरेवाऽऽदधाते । मरीचीनामन्तरिक्षे व्याप्तत्वात् । ते चान्तरिक्ष-तन्निष्ठं यजमानं फलोन्मुखमादधाते । ते पुनरन्तरिक्षादुत्क्रामति यजमाने सहोत्क्रामतः । यज-माने च द्युलोकमाविशति सहाविशतः । तमाविश्य तमेवाऽऽहवनीयं कुर्वाते आदित्यं समिधमित्या-द्यन्तरिक्षवदेवोक्तम् । यथा वाऽऽहुती पूर्वमन्तरिक्षं तर्पयत इत्युक्तं तथैव द्युलोकस्थयजमानं फलदानेन सुखिनमातन्वाते । ते चाऽऽरब्धक्षये ततो द्युलोकाद्यजमाने पृथिवीमाविशत्यब्भूते सहाऽऽवर्तेते । पृथिवीं चाऽऽविश्य व्रीह्यादिना स्वाश्रयं श्लेषयित्वा रेतःसिचं पुरुषमाश्रयद्वारेणाऽऽविशतः । पुरुषाच्च रेतोद्वारा द्वितीयां प्रकृतिमाविश्य गर्भीभूतं स्वाश्रयं कर्मानुष्ठानयोग्यं देहभागिनमापादयतः । ततोऽसौ पारलौकिक-कर्मानुष्ठायान्ते लोकं प्रत्युत्थानशीलो भवति । इति सर्वं जनकेनोक्तमित्यर्थः । तथाऽपि कथमर्थ-सिद्धिरित्याशङ्क्योक्तमेव संक्षिप्याऽऽह—तत्रेति । वाजसनेयकं सप्तम्यर्थः । प्रकृतश्रुतेरर्थविशेषं दर्शयति

आहुति से उत्पन्न अपूर्व परिणाम जगत् है। अग्निहोत्र में सायंप्रातःहुत आहुति की इस लोक-परलोक में उत्क्रान्ति होती है। गतियों की वहाँ प्रतिष्ठा होती है। प्रतिष्ठित होने पर अपने आश्रय की विद्यमानता की तृप्ति होती है। तृप्ति में अवस्थिति पुनः इस लोक की ओर प्रेरित करती है। आवृत्तियों का आश्रय पुरुष किस प्रकार इस लोक से प्रत्युत्थान परायण होता है—इस प्रकार कार्यारम्भ को अधिकृत कर छः प्रश्न हैं।" जनक का उत्तर भी वहीं वाजसनेयक ब्राह्मण में विद्यमान है—"अपूर्व-रूप से ये आहुतियाँ यजमान के उत्क्रमण करने पर उत्क्रमण करती हैं। फिर अन्तरिक्ष में प्रविष्ट होती हैं। फिर अन्तरिक्षस्थ यजमान के अनुकूल रहकर अपने को आहवनीय के सदृश कर लेती हैं। वायु की समिधा की तरह करती हैं; शुद्ध आहुति के समान किरणों को ग्रहण करती हैं। फिर वे अन्तरिक्षस्थ यजमान को फलोन्मुख करती हैं। अन्तरिक्ष से भी फिर वे यजमान के साथ उत्क्रमण करती हैं। आगे यजमान के साथ फिर वे द्युलोक में प्रवेश कर जाती हैं। फिर उसी को आहवनीय करती हैं। आरब्ध-क्षय होने पर पुनः पृथिवी लोक में जलरूप हो प्रवेश होती हैं, व्रीहादि द्वारा रेतः सेक् द्वारा पुरुष में प्रवेश करती हैं। पुरुष से वीर्य द्वारा स्त्री में प्रवेश होती हैं, इस प्रकार यजमान लोक प्रत्युत्थानपरायण

१. शुद्धामिति—पयोघृताद्याहुतिमित्यर्थः । सा हि मांसाद्याहुत्यपेक्षया शुद्धा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्याऽऽदित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

द्युलोक रूप अग्नि विज्ञान

हे गौतम ! वह प्रसिद्ध द्यूलोक ही अग्नि है। उस अग्नि की आदित्य ही समिधा है, (क्योंकि उससे संदीप्त होने पर ही यह लोक देदीप्यमान् होता है) आदित्य की किरणें धूम हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अङ्गार है (क्योंकि दिन के शान्त होने पर चन्द्र प्रकट होता है) तथा नक्षत्रगण चिनगारियाँ हैं, (क्योंकि अग्नि से विस्फुलिङ्ग के समान चन्द्रमा के इधर-उधर बिखरे हुए से दीखते हैं) ॥ १ ॥

इति। तत्राग्निहोत्राहुत्योः कार्यारम्भमात्रमेवंप्रकारं भवतीत्युक्तम्। इह तु तं कार्यारम्भमग्निहोत्रापूर्वविपरिणामलक्षणं पञ्चधा प्रविभज्याग्नित्वेनोपासनमुत्तरमार्गप्रतिपत्तिसाधनं विधित्सन्नाह—

असौ वाव लोको गौतमाग्निरित्यादि। इह सायंप्रातरग्निहोत्राहुती हुते पयआदिसाधने श्रद्धापुरःसरे आहवनीयाग्निसमिद्धूमार्चिरङ्गारविस्फुलिङ्गभाविते कर्त्रादिकारकभाविते चान्तरिक्षक्रमेणोत्क्रम्य द्युलोकं प्रविशन्त्यौ सूक्ष्मभूते अप्समवायित्वादप्शब्दवाच्ये श्रद्धाहेतुत्वाच्च श्रद्धाशब्दवाच्ये तयोरधिकरणोऽग्निरन्यच्च तत्संबन्धं समिदादी-

---

इह त्विति। पञ्चधा द्युपर्जन्यपृथिवीपुरुषयोषित्प्रकारैरिति यावत्। पञ्चाग्निसंबन्धमवतार्य प्रथमपर्यायस्य तात्पर्यमाह—इहेति। अयं लोकः सप्तम्यर्थः। आहुत्योरप्समवायित्वसिद्ध्यर्थं विशिनष्टि—पयआदीति। तयो श्रद्धात्वसिद्ध्यर्थं श्रद्धापुरःसरे इत्युक्तम्। तयोरधिकरणोऽग्निरित्यादिकल्पनोपयोगित्वेन विशेषणान्तरमादत्ते—आहवनीयेति। तयोः स्वातन्त्र्यं परिहरति—कर्त्रादीति। अधिकरणशब्दो भावप्रधानो [1]धर्मिपरः। काल्पनिको द्युलोकाख्योऽग्निस्तत्संबन्धमिति तच्छब्दोऽग्निविषयः। अन्यच्चेत्युक्तं स्पष्टयति—समिदादीति। आदिशब्दो धूमार्चिरङ्गारादिविषयः। पर्यायतात्पर्यमुक्त्वा-

---

होता है। इस प्रकार वहाँ अग्निहोत्र और आहुति का कार्यारम्भ का प्रकार दिखलाया गया। छान्दोग्य उपनिषत् में उस कार्यारम्भक अग्निहोत्र के अपूर्व विकार सञ्ज्ञक 'द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, स्त्री' इस प्रकार पाँच विभाग करके अग्निरूप से उपासना उत्तरमार्ग प्राप्ति का साधन है, इसी का विधान करने की इच्छा से श्रुति कहती है।

हे गौतम ! यह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है। यहाँ सायं और प्रातः अग्निहोत्र और आहुति के होम करने पर श्रद्धासहित जल आदि साधन में आहवनीय अग्नि, समिधा, धूम, अर्चि, अङ्गार, विस्फुलिङ्ग से युक्त, उनके कर्त्रादि कारक के आश्रित होने पर यथाक्रम अन्तरिक्ष से उत्क्रमण कर

---

१. धर्मिपर इति—अधिकरणत्ववानित्यर्थक इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

उस इस द्युलोकरूप अग्नि में देवगण श्रद्धा (सूक्ष्म जल श्रद्धा पद लक्ष्य) का हवन करते उस आहुति से सोम राजा की उत्पत्ति होती है ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

त्युच्यते। या चासावग्न्यादिभावनाऽऽहुत्योः साऽपि तथैव निर्दिश्यते। असौ वाव लोकोऽग्निर्हे गौतम यथाऽग्निहोत्राधिकरणमाहवनीय इह। तस्याग्नेर्द्युलोकाख्यस्याऽऽदित्य एव समित्तेन हीद्धोऽसौ लोको दीप्यते। अतः समिन्धनात्समिदादित्यः। रश्मयो धूमस्तदुत्थानात्, समिधो हि धूम उत्तिष्ठति। अहरर्चिः प्रकाशसामान्यात्, आदित्यकार्यत्वाच्च। चन्द्रमा अङ्गाराः। अहः प्रशमेऽभिव्यक्तेः। अर्चिषो हि प्रशमेऽङ्गारा अभिव्यज्यन्ते। नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाश्चन्द्रमसोऽवयवा इव विप्रकीर्णत्वसामान्यात् ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्यथोक्तलक्षणेऽग्नौ देवा यजमानप्राणा अध्यात्मम्। अग्न्यादि अधिदैवतम्। श्रद्धामग्निहोत्राहुतिपरिणामावस्थारूपाः सूक्ष्मा आपः श्रद्धाभावि

ऽक्षराणि व्याकरोति—असावित्यादिना। इहेत्येतल्लोकनिर्देशः पूर्वेण संबध्यते। तदुत्थानादि तच्छब्देनाऽऽदित्यो गृहीतः ॥१॥

अध्यात्माधिदैवविभागेन देवान्विशदयति—यजमानेति। प्रत्ययविशेषत्वेन श्रद्धाया होम नुपपत्तिरित्याशङ्क्य श्रद्धां व्याकरोति—अग्निहोत्रेति। किंच प्रश्नप्रतिवचनयोरेकार्थत्वात्प्रश्ने

द्युलोक में प्रवेश कर फिर सूक्ष्मभूत अप् समवायी होने के कारण अप्शब्द वाच्य, श्रद्धाहेतुक श्रद्धा वाच्य में उनका अधिकरण अग्नि भिन्न है, अग्निसंबन्ध समिधा, धूम, अर्चि, अङ्गारादि विषय हैं ऐसा कहा जाता है। आहुतियों में जो यह अग्न्यादि भावना है, उसका भी उसी प्रकार ही किया जाता है। हे गौतम ! जिस प्रकार अग्निहोत्र के अधिकरण आहवनीय अग्नि को तरह अग्नि है। उस द्युलोकसञ्ज्ञक अग्नि का आदित्य ही समिधा है, उससे प्रज्वलित हुआ यह प्रकाशित होता है। प्रदीप्त करने से समिधा आदित्य में तादात्म्य है। रश्मियों एवं धूम से ताद है क्योंकि दोनों का उत्थान होता है। प्रदीप्त धूम ही उठता है। दिन अर्चि में तादात्म्य है प्रकाश की समानता है तथा वह आदित्य का कार्य है। चन्द्रमा अङ्गार है। दिन के प्रशान्त हो की अभिव्यक्ति होती है। अर्चि के शान्त हो जाने पर अङ्गारों की प्रतीति होती है। नक्षत्र विस्फु हैं, चन्द्रमा के अवयवों के समान फैला होना उनका साम्य है ॥ १ ॥

उस यथोक्तलक्षण अग्नि में यजमान के प्राणस्वरूप अध्यात्मदेव एवं अग्न्यादि रूप अधि देव अग्निहोत्र आहुति की विकारावस्था रूप सूक्ष्म जलात्मक श्रद्धा का होम करते हैं। "पाँचवीं आ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

श्रद्धा उच्यन्ते । "पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति" इत्यपां होम्यतया प्रश्ने श्रुतत्वात् । "श्रद्धा वा आपः श्रद्धामेवाऽऽरभ्य प्रणीय प्रचरन्ति" इति च विज्ञायते । तां श्रद्धामबूपां जुह्वति । तस्या आहुतेः सोमो राजाऽपां श्रद्धाशब्दवाच्यानां द्युलोकाग्नौ हुतानां परिणामः सोमो राजा संभवति । यथर्ग्वेदादिपुष्परसा ऋगादिमधुकरोपनीतास्त आदित्ये यशआदिकार्यं रोहितादिरूपलक्षणमारभन्त इत्युक्तं तथेमा अग्निहोत्राहुतिसमवायिन्यः सूक्ष्माः श्रद्धाशब्दवाच्या आपो द्युलोकमनुप्रविश्य चान्द्रं कार्यमारभन्ते फलरूपमग्निहोत्राहुत्योः । यजमानाश्च तत्कर्तार आहुतिमया आहुतिभावनाभाविता आहुतिरूपेण कर्मणाऽऽकृष्टाः श्रद्धाप्समवायिनो द्युलोकमनुप्रविश्य सोमभूता भवन्ति । तदर्थं हि तैरग्निहोत्रं हुतम् । अत्र त्वाहुतिपरिणाम एव पञ्चाग्निसंबन्धक्रमेण प्राधान्येन

होम्यतया श्रुतत्वात्प्रतिवचनेऽपि ताः श्रद्धाशब्दिता होम्यतया विवक्षिता इत्याह—पञ्चम्यामिति । अप्सु श्रद्धाशब्दस्य वृद्धव्यवहारप्रयोगाभावान्नैवमित्याशङ्क्याऽऽह—श्रद्धेति । कथमापः श्रद्धाशब्देन प्रसिद्धवदुच्यन्ते तत्राऽऽह—श्रद्धामिति । श्रद्धापूर्वकहोममुद्दिश्य पयःसोमाज्यादिसाधनं संपाद्य जुहोतीति तैत्तिरीयकाः पठन्ति । तथा चाप्सु श्रद्धाशब्दः संभवतीत्यर्थः । उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना । उक्तं [1]मधुविद्यायामिति शेषः । चान्द्रं कार्यं चन्द्रसमीपस्थं तत्सदृशं शरीरमित्यर्थः । तथाऽपि यजमानानां कथं फलितत्व(लित्व)मत आह—यजमानाश्चेति । आहुती तच्छब्दवाच्ये प्राधान्यं मयडर्थः । तदेव स्पष्टयति—आहुतिभावनाभाविता इति । [2]तत्संस्तुतस्तदनुसारिणस्तदाश्रया इत्यर्थः । तद्भावितत्वफलमाह—आहुतिरूपेणेति । तेनाऽऽकृष्टत्वं वशीकृतत्वम् । आहुतिभाविता इत्युक्तं स्पष्टयति—श्रद्धेति । तत्पूर्वकं पयःसोमादिसाध्यं यत्कर्म तदाश्रया इत्यर्थः । सोमभूतास्तत्समीपस्थं शरीरं प्राप्य [3]तत्स्वरूपा इत्यर्थः । कथं सोमसारूप्यं धर्मिणां फलमित्याशङ्क्याऽऽह—तदर्थमिति । यजमानानां सोमभावो गतिमन्तरेण न सिध्यति । तथाच वक्तव्या गतिरित्याशङ्क्याऽऽह—अत्रेति ।

में जल पुरुष की वाणी का विषय होते हैं" यह श्रुति प्रश्न में जल को होम करने की विवक्षा करती है। "श्रद्धा और जल में तादात्म्य है, श्रद्धापूर्वक होम के लिए जल, सोम, आज्यादि का संपादन कर हवन करते हैं" ऐसा जाना जाता है। उस आहुति से श्रद्धाशब्दवाच्य जल का द्युलोकाग्नि में हवन के परिणाम स्वरूप राजा सोम की उत्पत्ति होती है। जैसे मधुविद्या में कहा है—ऋग्वेदादि पुष्पों का रस है जो ऋगादि भौंरों से संग्रह किया गया है, वे आदित्य में यश आदि कार्य एवं रोहितादि रूप लक्षण आरम्भ करते हैं, इसी प्रकार अग्निहोत्र आहुति की समवायी सूक्ष्म श्रद्धाशब्दवाच्य जल द्युलोक में प्रविष्ट हो चन्द्रसमीपस्थ चान्द्रशरीर का कार्य आरम्भ करते हैं, जो अग्निहोत्र आहुति का फलरूप है। आहुतिकर्ता यजमान आहुतिप्रधान आहुतिभावना से आश्रित, आहुतिरूप कर्म से वशीकृत श्रद्धा जल समवायी द्युलोक में प्रवेश कर सोम के सदृश हो जाते हैं। इसी फल की प्राप्ति के लिए उन्होंने

---

१. मधुविद्यायामिति—"असौ वा आदित्यो देवमधु" इत्यादि पूर्वं (छा. उ. ३।१।१) भाष्ये स्पष्टम् ।
२. तत्संस्तुताः—आहुतिभिः सम्यक्स्तूयमानो इत्यर्थः । तथाहि श्रूयते 'एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः' इत्यादि ।
३. तत्सरूपा इति युक्तम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः)

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

पर्जन्य रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम ! (वृष्टि के अभिमानी देवता विशेषरूप) पर्जन्य ही अग्नि है, उसका वायु समिधा है, (क्योंकि पर्जन्यरूप अग्नि वायु से प्रदीप्त होता है)। बादल धूम है, विजली ज्वाला, वज्र अंगार है तथा गर्जन विस्फुलिङ्ग है (क्योंकि विस्फुलिङ्ग और शब्द में चारों ओर फैलना समानता है) ॥ १ ॥

विवक्षित उपासनार्थं न यजमानानां गतिः। तां त्वविदुषां धूमादिक्रमेणोत्तरत्र वक्ष्यति विदुषां चोत्तरां विद्याकृताम् ॥२॥

इति पञ्माध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

द्वितीयहोमपर्यायार्थमाह—पर्जन्यो वाव पर्जन्य एव गौतमाग्निः पर्जन्यो नाम वृष्ट्युपकरणाभिमानी देवताविशेषः। तस्य वायुरेव समित्। वायुना हि पर्जन्योऽग्निः समिध्यते। पुरोवातादिप्राबल्ये वृष्टिदर्शनात्। अभ्रं धूमो धूमकार्यत्वाद्धूमवत्

आहवनीयोऽग्निः सप्तम्यर्थः। सा तर्हि कुत्रोच्यते न हि तदुक्तिमन्तरेण यथोक्तं फलं सिध्यत्यत आह तां त्विति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

द्वितीयहोमसंबन्धी द्वितीयः पर्यायस्तस्यार्थं निर्ज्ञातुं तमेव पर्यायमादत्ते श्रुतिरित्याह पुरोवातादीत्यादिशब्देन वर्षहेतुर्वायुभेदो गृह्यते। उक्तं चाभ्राणां धूमकार्यत्वं पौराणिकैः

"यज्ञधूमोद्भवं त्वभ्रं द्विजानां च हितं सदा।
दावाग्निधूमसंभूतमभ्रं वनहितं स्मृतम् ॥
मृतधूमोद्भवं त्वभ्रमशुभाय भविष्यति।
अभिचाराग्निधूमोत्थं भूतनाशाय वै द्विजाः" ॥इति॥१॥

अग्निहोत्र होम किया है। यहाँ आहवनीय अग्नि में आहुति परिणाम ही पञ्चाग्नि संबन्ध कर्म है प्रधान रूप से उपासना के लिए है; यजमानों की गति के लिए नहीं। अविद्वानों की गति धूमादिक्रम से आगे श्रुति बतलाएगी, विद्वान् की विद्याकृत श्रेष्ठगति को भी श्रुति कहेगी ॥ २॥

द्वितीय होमसंबन्धी द्वितीयपर्याय है, उसका अर्थ जानने के लिए श्रुति कहती है। हे गौतम वृष्टि उपकरण का अभिमानी देवताविशेष पर्जन्य ही अग्नि है। वायु ही उसकी समिधा है क्योंकि वायु से ही पर्जन्य अग्नि प्रज्वलित होती है। पुरावात आदि की अधिक बलवत्ता के कारण वृष्टि होती देखा जाता है। बादल धूम हैं क्योंकि वे धूम का कार्य हैं एवं धूम की तरह परिलक्षित होते

---

१. खण्डः। २. अशुभायेति—रोगाद्यनिष्टफलायेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳ राजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षꣳ संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समि-

उस इस अग्नि में देवगण राजा सोम का हवन करते हैं, उस आहुति से वृष्टि होती है (श्रद्धा नामक आप द्वितीय पर्याय में सोम रूप से परिणत हो पर्जन्य अग्नि को प्राप्त करके वृष्टि रूप में बदल जाते हैं) ॥ २ ॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

पृथिवी रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम ! पृथिवी ही अग्नि है, उसका संवत्सर ही समिधा है (क्योंकि संवत्सर काल से युक्त

लक्ष्यमाणत्वात् । विद्युदर्चिः । प्रकाशसामान्यात् । अशनिरङ्गाराः । काठिन्याद्विद्युत्सं-बन्धाद्वा । ह्लादनयो विस्फुलिङ्गाः । ह्लादनयो गर्जितशब्दाः मेघानां विप्रकीर्णत्व-सामान्यात् ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः पूर्ववत्सोमं राजानं जुह्वति । तस्या आहुतेर्वर्षं संभवति । श्रद्धाख्या आपः सोमाकारपरिणता द्वितीये पर्याये पर्जन्याग्निं प्राप्य वृष्टित्वेन परिणमन्ते ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

पृथिवी वाव गौतमाग्निरित्यादि पूर्ववत् । तस्याः पृथिव्याख्यस्याग्नेः संवत्सर

अध्यात्मं यजमानस्य प्राणा इन्द्रादयस्त्वधिदैवतं देवा इत्याह—पूर्ववदिति । सोमं राजान-मित्यादि व्याचष्टे—श्रद्धाख्या इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

बिजली अर्चि है क्योंकि उसमें प्रकाश सादृश्य है। वज्र अङ्गार हैं क्योंकि उनकी कठिनता एवं विद्युत् से संबन्ध प्रत्यक्षसिद्ध है। मेघों का गर्जनशब्द ह्लादन विस्फुलिङ्ग है क्योंकि उनमें बिखरा हुआ होना सादृश्य है ॥ १ ॥

इस पर्जन्य अग्नि में अधिदैव एवं अध्यात्मदेव पूर्व मन्त्र की तरह राजा सोम का होम करते हैं। उस आहुति से वृष्टि होती है। श्रद्धासञ्ज्ञक जल सोम रूप में परिणत होकर द्वितीय पर्याय में पर्जन्याग्नि को प्राप्त कर वृष्टि रूप में परिणत होते हैं ॥ २ ॥

RajGuru Vedic Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा, अवान्तर-दिशो विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳ संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

होकर पृथिवी धान्यादि की निष्पत्ति में समर्थ होती है)। आकाश धूम है, तमोरूपा रात्रि ज्वाला दिशाएँ अंगार हैं एवं क्षुद्र होने के कारण अवान्तर दिशाएँ विस्फुलिङ्ग हैं ॥ १ ॥

उस इस पृथिवी रूप अग्नि में देवगण वृष्टि का हवन करते हैं, उस आहुति से यवादिक होता है ॥ २ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

एव समित् । संवत्सरेण हि कालेन समिद्धा पृथिवी व्रीह्यादिनिष्पत्तये भवति । आका धूमः पृथिव्या इवोत्थित आकाशो दृश्यते । यथाऽग्नेर्धूमः । रात्रिरर्चिः पृथिव्या ह्यप्र शात्मिकाया अनुरूपा रात्रिः । तमोरूपत्वात् । अग्नेरिवानुरूपमर्चिः । दिशोऽङ्गा उपशान्तत्वसामान्यात् । अवान्तरदिशो विस्फुल्लिङ्गाः क्षुद्रत्वसामान्यात् ॥१॥

तस्मिन्नित्यादि समानम् । तस्या आहुतेरन्नं व्रीहियवादि संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

॥१॥

॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

हे गौतम ! पृथिवी ही अग्नि है—इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। इस पृथिवीरू अग्नि का संवत्सर ही समिधा है। संवत्सर रूप काल से प्रदीप्त हुई पृथिवी व्रीह्यादि उत्पत्ति सहायक होती है। आकाश धूम है क्योंकि आकाश पृथिवी की तरह ऊपर उठा हुआ दिखाई दे जिस प्रकार अग्नि में धूम उठा हुआ दिखाई देता है। रात्रि पृथिवी की अर्चि है क्योंकि अप्र स्वरूप होने से रात्रि के तुल्य है। रात्रि भी तमोरूप है। अग्नि के समान अर्चि की सदृशता दिशाएँ अङ्गार हैं क्योंकि उन में उपशान्तत्व समानता है। अवान्तर दिशाएँ विस्फुलिङ्ग हैं उनमें क्षुद्रत्व समानता है ॥१॥

उस पृथिवी रूप अग्नि में उभयविध देवता लोग वृष्टि का हवन करते हैं। उस आहुति व्रीहि-यवादि अन्न उत्पन्न होता है ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः)

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वाऽर्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुते रेतः संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

पुरुष रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम ! पुरुष ही अग्नि है, उसकी वाणी ही समिधा है, (क्योंकि वाणी से ही पुरुष सुशोभित होता है) । प्राण धूम है, लाल होने के कारण जिह्वा ज्वाला है । प्रकाश का आश्रय होने से नेत्र अंगार है और श्रोत्र विस्फुलिङ्ग है ॥ १ ॥

उस इस अग्नि में देवगण अन्न का हवन करते हैं, उस अन्नरूप आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

पुरुषो वाव गौतमाग्निः । तस्य वागेव समित् । वाचा हि मुखेन समिध्यते पुरुषो न मूकः । प्राणो धूमो धूम इव मुखान्निर्गमनात् । जिह्वाऽर्चिर्लोहितत्वात् । चक्षुरङ्गारा भास आश्रयत्वात् । श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः । विप्रकीर्णत्वसाम्यात् ॥१॥

समानमन्यत् । अन्नं जुह्वति व्रीह्यादिसंस्कृतम् । तस्या आहुते रेतः संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

॥१॥

॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

हे गौतम ! पुरुष ही अग्नि है । उसकी वाणी ही समिधा है क्योंकि वाणी द्वारा मुख से पुरुष प्रदीप्त होता है गूँगा पुरुष वैसा नहीं करता । प्राण ही धूम है क्योंकि धूम के समान वह मुख से निकलता है । रक्तवर्ण होने के कारण जिह्वा अर्चि है । प्रकाश का आश्रयस्थान होने से चक्षु अङ्गारे हैं । फैला हुआ होने की समानता से श्रोत्र विस्फुलिङ्ग है ॥१॥

इस पुरुषरूप अग्नि में देवता व्रीह्यादि से संस्कृत अन्न का होम करते हैं । उस आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदु-पमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहु-

स्त्री रूपा अग्नि विद्या

हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है, उसका उपस्थ ही समिधा है (क्योंकि पुत्रादि उत्पन्न करने के लिये वह प्रदीप्त होता है) पुरुष जो उपमन्त्रणा करता है, वह धूम है, लाल होने के कारण योनि ज्वाला है तथा जो भीतर की ओर करता है, वह अग्नि से संबन्धित होने के कारण अंगार है तथा उससे जो क्षुद्र सुख होता है, वह विस्फुलिङ्ग है ॥ १ ॥

उस इस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं, उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है।

योषा वाव गौतमाग्निः। तस्या उपस्थ एव समित्। तेन हि सा पुत्राद्युत्पादनाय समिध्यते। यदुपमन्त्रयते स धूमः। स्त्रीसंभवादुपमन्त्रणस्य। योनिरर्चिर्लोहितत्वात्। यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अग्निसंबन्धात्। अभिनन्दाः सुखलवा विस्फुलिङ्गाः क्षुद्रत्वात् ॥१॥

तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति। तस्या आहुतेर्गर्भः संभवतीति। श्रद्धासोमवर्षान्नरेतोहवनपर्यायक्रमेणाऽऽप एव गर्भीभूतास्ताः। तत्रापामाहुतिसम-

---

तस्या आहुतेर्गर्भः संभवतीत्युक्तं व्यक्ती करोति—एवमिति। यथोक्तया रीत्या श्रद्धा-रेतान्तानां यानि द्युलोकादिषु योषिदन्तेष्वग्निषु हवनानि तेषामेकैकस्मिन्पर्याये यः क्रमो व्या-तस्तेनेति यावत्। कथं पुनरापो गर्भी भवन्ति भूतान्तराणामपि तुल्यो गर्भीभावस्तस्य पाञ्चभौतिकत्वा-आह—तत्रेति। भूतानां मध्ये। किमित्यपां प्राधान्यविवक्षयैष निर्देशस्तासामेव केवलानां कार्या-

---

हे गौतम ! स्त्री ही अग्नि है। उसकी योनि के ऊपर का भाग ही समिधा है क्योंकि वह पुत्रादि उत्पादन के लिए प्रदीप्त होती है। पुरुष जो उससे गुह्य भाषण करता है, वह धूम है क्योंकि गुह्य भाषण स्त्री के साहचर्य से उत्पन्न होता है। रक्तवर्ण होने के कारण योनि के अन्दर का भाग है। और जो अन्तः प्रवेश करता है, वे अङ्गार हैं क्योंकि उसका अग्नि से संबन्ध है। क्षुद्र होने से उससे होने वाला सुखलेश विस्फुलिङ्ग है ॥१॥

उस स्त्री रूप अग्नि में उभयविध देवता वीर्य से होम करते हैं। उस की आहुति से गर्भ होता है। इस प्रकार श्रद्धा, सोम, वृष्टि, अन्न, वीर्य रूप द्युलोक

---

१. उपरितनो देशः। २. योनिरायतनं तस्य देशः। वस्तुतः उपस्थः पुंलिङ्गम्। योनिः स्त्रीगुह्यम्।

Rajghat Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेर्गर्भः संभवति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

प्रकार श्रद्धा, सोम, वर्षा, अन्न और वीर्यरूप आहुतियों के होम से क्रमशः आप ही गर्भरूप में परिणत होता है) ॥ २ ॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

पित्वात्प्राधान्यविवक्षाऽऽपः पञ्चम्यामाहुतौ पुरुषवचसो भवन्तीति। न त्वाप एव केवलाः सोमादिकार्यमारभन्ते। न चाऽऽपोऽत्रिवृत्कृताः सन्तीति। त्रिवृत्कृतत्वेऽपि विशेषसंज्ञालाभो दृष्टः पृथिवीयमिमा आपोऽयमग्निरित्यन्यतमबाहुल्यनिमित्तः। तस्मात्समुदितान्येव भूतान्यब्बाहुल्यात्कर्मसमवायीनि सोमादिकार्यारम्भकाण्याप इत्युच्यन्ते। दृश्यते च द्रवबाहुल्यं सोमवृष्टयन्नरेतोदेहेषु। बहुद्रवं च शरीरं यद्यपि पार्थिवम्। तत्र पञ्चम्यामाहुतौ हुतायां रेतोरूपा आपो गर्भीभूताः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

कत्वविवक्षा किं न स्यात्तत्राह—न त्विति। भूतान्तरासहकृतानां केवलानामपामारम्भकत्वे यदारब्धं कार्यं न तद्भोगायतनं तस्य जलबुद्बुदवदत्यन्तचञ्चलत्वादित्यर्थः। केवलानामप्त्वमुपेत्योक्तमिदानीं तदेव नास्तीत्याह—न चेति। इतिशब्दस्तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोदिति श्रुतेरिति हेत्वर्थः। सर्वस्य त्रिवृत्कृतत्वे कथं दृष्टो विशेषव्यपदेशो युज्येतेत्याशङ्क्याऽऽह—त्रिवृत्कृतत्वेऽपीति। अपां प्राधान्यविवक्षया प्रश्नप्रतिवचनयोरप्शब्द इत्युक्तमुपसंहरति—तस्मादिति। केवलानामपामसत्त्वादिति यावत्। कथमारम्भकेषु भूतेष्वपां बाहुल्यमवगतमित्याशङ्क्य कार्यद्वारा तदधिगतिरित्याह—दृश्यते चेति। सोमादीनामब्बाहुल्येऽपि कथं पार्थिवशरीरस्य तद्बाहुल्यमित्याशङ्क्याऽऽह—बहुद्रवं चेति। पञ्चमप्रश्ननिर्णयमुपसंहर्तुं पातनिकां करोति—तत्रेति। योषाग्नाविति यावत्। गर्भीभूताः पुरुषवचसो भवन्तीति संबन्धः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

में होम के पर्याय क्रम से जल ही गर्भ धारण करते हैं। भूतों के मध्य जल की आहुति समवाय होने से उनकी प्रधानता विवक्षित है, जल ही पञ्चम आहुति में पुरुष की वाणी का विषय होते हैं। केवल जल ही सोमादि कार्य का आरम्भ नहीं करते। जल का त्रिवृत्करण नहीं हुआ है, इसमें श्रुति प्रमाण है। त्रिवृत्करण होने पर भी विशेष व्यपदेश देखा जाता है। यह पृथिवी है यह जल है, यह अग्नि है; इस प्रकार बहुलता से जल का अन्यतम निर्देश है। इसलिए सभी भूत ही जलबाहुल्य होने से जल ही कर्मसमवायी सोमकार्य के आरम्भक कहे जाते हैं। कार्य द्वारा भी देखा जाता है कि सोम, वृष्टि, अन्न, वीर्य और शरीर में द्रव का बाहुल्य है। शरीर पार्थिव होते हुये भी उसमें तरल पदार्थ की अधिकता है। पञ्चम प्रश्न का उपसंहार करते हुये स्त्री अग्नि में पञ्चम आहुति में होम किये जाने पर वीर्यरूप गर्भीभूत हो पुरुष की वाणी का विषय होते हैं ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः)

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते ॥१॥

पञ्चम आहुति में पुरुष संज्ञा को प्राप्त हुए "आप" की गति

इस प्रकार पाँचवी आहुति में आप पुरुष शब्दवाची हो जाते हैं। वह जरायु से वेष्टित गर्भ दश या नौ मास तक अथवा जब तक (कम या अधिक समय में सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं हो जाते, तक माता की) कुक्षि में ही शयन करने के अनन्तर पुनः उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

इति त्वेवं तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति व्याख्यात एकः प्र यत्तु द्युलोकादिमां प्रत्यावृत्तयोराहुत्योः पृथिवीं पुरुषं स्त्रियं क्रमेणाऽऽविश्य लोकं प्र त्थायी भवतीति वाजसनेयक उक्तं तत्प्रासङ्गिकमिहोच्यते। इह च प्रथमे प्रश्न वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति। तस्य चायमुपक्रमः। स गर्भोऽपां पञ्चमः परिणा विशेष आहुतिकर्मसमवायिनीनां श्रद्धाशब्दवाच्यानामुल्बावृत उल्बेन जरायुणाऽऽवृ वेष्टितो दश वा नव वा मासानन्तर्मातुः कुक्षौ शयित्वा यावद्वा यावता कालेन न्यूने तिरिक्तेन वाऽथानन्तरं जायते।

उक्तार्थे वाक्यं योजयति—इति त्विति। अपां गर्भीभावोक्तिमात्रेण पुरुषवचस्त्वस्य निर्णी दलमुत्तरग्रन्थेनेत्याशङ्क्य तस्य तात्पर्यमाह—यत्त्विति। आहुत्योः संबन्धीति शेषः। प्रासङ्गि गर्भीभावोक्तिप्रसङ्गादागतमिति यावत्। इहेति प्रकृतश्रुत्युक्तिः। प्रासङ्गिकीं संगतिं त्यक्त्वा साक्षा पूर्वोत्तरग्रन्थयोरस्ति संगतिरिति तात्पर्यान्तरमाह—इह चेति। प्रजानामूर्ध्वगमनमुत्तरत्र निरूपयि तादर्थ्येन तासामुत्पत्तिरादावुच्यत इत्यर्थः। द्विधा संगतिमुक्त्वा वाक्याक्षराणि योजयति—स इति। सोमवृष्ट्यन्नरेतांस्यपेक्ष्य पञ्चमत्वं गर्भाख्यस्य परिणामस्य द्रष्टव्यम्। अपां प्रकृतत्वद्योतन माहुतीत्यादि विशेषणद्वयम्। अथवा पूर्वोक्तात्कालान्न्यू[ने]नाधिकेन वा कालेन यावता समग्राङ्गो जायते तावता कालेन कुक्षौ शयित्वेति संबन्धः। अनन्तरं योनितो निर्गमनकार

(उक्तार्थ में श्रुति वाक्य का समन्वय किया जाता है) इस प्रकार पञ्चम आहुति पुरुषवाची हो जाते हैं, यह कहा जा चुका। एवं जो वाजसनेय संहिता में कहा गया है कि द्यु इसके प्रति आवृत आहुतियों में से क्रमशः पृथिवी, पुरुष स्त्री रूप में प्रविष्ट हो द्युलोक के प्रति उत्था शील होता है, उसी का गर्भीभाव उक्ति प्रसङ्ग से यहाँ प्रारम्भ किया जाता है। श्वेतकेतु से प्रवा ने इस छान्दोग्य श्रुति में प्रथम प्रश्न पूछा था—क्या तुम जानते हो, इस लोक से ऊपर प्रजा जाती है। उसी प्रश्न के उत्तर के लिए इस ग्रन्थ का आरम्भ किया जाता है। प्रारम्भ में उत्पत्ति के विषय में कहा जाता है। रेतस् का परिणाम विशेष वह गर्भ आहुति कर्म समवायी श्रद्धाशब्दवाच्य रूप जल जरायु से आवृत नौ-दस मास अथवा इससे कुछ कम ज्यादा समय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय

इस प्रकार उत्पन्न हुआ वह पूर्ण आयु जीवित रहता है, फिर मरने पर कर्मवश परलोक प्रस्थान

उल्बावृत इत्यादि वैराग्यहेतोरिदमुच्यते। कष्टं हि मातुः कुक्षौ मूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्मादिपूर्णे तदनुलिप्तस्य गर्भस्योल्बाशुचिपटावृतस्य लोहितरेतोशुचिबीजस्य मातुरशितपीतरसानुप्रवेशेन विवर्धमानस्य निरुद्धशक्तिबलवीर्यतेजःप्रज्ञाचेष्टस्य शयनम्। ततो योनिद्वारेण पीड्यमानस्य कष्टतरा निःसृतिर्जन्मेति वैराग्यं ग्राहयति। मुहूर्तमप्यसह्यं दश वा नव वा मासानतिदीर्घकालमन्तः शयित्वेति च ॥१॥

स एवं जातो यावदायुषं पुनः पुनर्घटीयन्त्रवद्गमनागमनाय कर्म कुर्वन्कुलालचक्रवद्वा तिर्यग्भ्रमणाय यावत्कर्मणोपात्तमायुस्तावज्जीवति। तमेनं क्षीणायुषं प्रेतं

कर्माभिव्यक्तेरिति शेषः।

उल्बावृतत्वं कुक्षौ चिरं शयनं योनितो निःसरणमित्येतदशेषमतिप्रसिद्धं किमिति श्रुत्या व्यपदिश्यते तत्राऽऽह—उल्बावृत इत्यादाति। वैराग्यार्थत्वमस्य स्फुटयति—कष्टं हीति। श्लेष्मादीत्यादिशब्देनासृक्पूयस्नायुमज्जादीनि गृह्यन्ते। तदनुलिप्तस्येति तच्छब्दो मूत्रपुरीषादिविषयः। शक्तिर्बुद्धिसामर्थ्यम्। बलं देहसामर्थ्यम्। वीर्यमिन्द्रियसामर्थ्यम्। तेजः शरीरगता कान्तिः। प्रज्ञा चेतना जीवनधर्मः। चेष्टा प्राणधर्मः। ता निरुद्धा यस्य तस्येति विग्रहः। मातुरुदरे शयानस्य कष्टत्वेऽपि तदुदराद्योनिद्वारा निःसरणं सुखकरमिति चेन्नेत्याह—तत इति। तद्ग्राहकत्वप्रकारमेवाभिनयति—मुहूर्तमपीति। यन्मातुरन्तःशयनं मुहूर्तमपि दुःसहं तत्कथं दीर्घकालं शयितुं शक्यम्। कथं च दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा पुनर्योनिद्वारा दुष्करं निःसरणं दुसह्यं स्यादिति वैराग्यं ग्राहयति श्रुतिरित्यर्थः ॥१॥

जातस्य पुनरनर्थो नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—स एवमिति। यावदायुषमित्येतद्व्याचष्टे—पुनरिति। घटीयन्त्रवदूर्ध्वगमनार्थं विहितं कुलालचक्रवत्तिर्यग्भ्रमणार्थं वा निषिद्धं कर्म पौनःपुन्येनाऽऽचरन्यावत्कर्मणार्जितमायुस्तावदस्मिन्देहे जीवति ततो म्रियते। तथा च जातस्य मृत्युध्रौव्यान्नास्ति सम्यग्ज्ञानं विना स्वस्तिप्राप्तिरित्यर्थः। अस्तु तर्हि मृतस्य कृतकृत्यतेत्याशङ्क्याऽऽह—तमेनमिति।

माता की कोख में शयन कर योनि से उत्पन्न होता है।

मन्त्र में "जरायु से आवेष्टित" यह विशेषण वैराग्य उत्पादन के लिए है। माता के गर्भ में शयन करना कितना कष्टप्रद है। वह स्थान मूत्र विष्टा वात-पित्त-श्लेष्मादि से पूर्ण रहता है। इन सब से युक्त अपवित्र जरायु में गर्भ पड़ा रहता है, जो अशुद्ध रज-वीर्य के कारण होता है एवं माता द्वारा खाए पीए रस के अनुप्रवेश से बढ़ता है एवं इतने समय तक इसकी बुद्धि सामर्थ्य, देह सामर्थ्य, इन्द्रिय सामर्थ्य, शरीरगत कान्ति, जीवन धर्म चेतना एवं प्राणधर्म निरुद्ध हो जाता है। इतना ही नहीं, माता की योनिद्वार से पोड़ा सहकर बड़े कष्ट से निकलकर जन्म लेता है—यह वैराग्य की ओर प्रेरित करता है। उस जगह एक क्षण भी सोना असहनीय है, जहाँ कि वह नौ-दस के लम्बे अरसे तक सोता रहता है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति ॥२॥
इति पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः)

तद्य इत्थं विदुः । ये चेमेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपा-

किये हुए उस जीवात्मा को अग्नि के लिये ले जाते हैं, जहाँ से वह आया था और जिस अग्नि से उत्पन्न हुआ था ॥ २ ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

प्रथम प्रश्न का उत्तर

उक्त अधिकारी गृहस्थों में जो इस प्रकार (उक्त पञ्चाग्नि विद्या को) जानते हैं और वे

मृतं दिष्टं कर्मणा निर्दिष्टं परलोकं प्रति यदि 'चेज्जीवन्वैदिके कर्मणि ज्ञाने वाऽधिकृत- स्तमेनं मृतमितोऽस्माद्ग्रामादग्नयेऽग्न्यर्थमृत्विजो हरन्ति पुत्रा वाऽन्त्यकर्मणे । एवेत आगतोऽग्नेः सकाशाच्छ्रद्धाद्याहुतिक्रमेण, यतश्च पञ्चभ्योऽग्निभ्यः संभूत उत्पन्नो भवति तस्मा एवाग्नये हरन्ति स्वामेव योनिमग्निमापादयन्तीत्यर्थः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीत्ययं प्रश्नः प्रत्युपस्थितोऽपाकर्तव्यतया । तत्र

सर्वस्य तर्हि मृतस्य परलोकित्वं स्यादिति चेन्नेत्याह—यदीति । तदा परलोकं प्रति कर्मणा निर्दिष्ट- पूर्वेण संबन्धः । युक्तं च तन्मृतस्याग्न्यर्थं नयनमित्याह—यत इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

स उल्बावृत इत्यादिनोक्तमनुवदति—वेत्थेति । प्रत्युपस्थितः प्रजोत्पत्तिप्रदर्शनेन प्रसङ्ग इति यावत् । तद्य इत्थं विदुरित्येतद्व्याचष्टे—तत्तत्रेत्यादिना । सप्तम्यर्थमेव स्फोरयति—लोकवि-

---

इस प्रकार उत्पन्न होकर वह घटीयन्त्र के आने जाने की क्रिया की तरह अथवा कुलाल के चक्र की तरह टेढ़े घूमते हुए निषिद्ध कर्मों को पुनः पुनः आचरण करते हुए, जब तक कर्मों से अर्जित आयु शेष रहती है तब तक इस शरीर में रहता है फिर मर जाता है। (जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है, किन्तु सम्यक् ज्ञान के बिना श्रेय की प्राप्ति नहीं हो सकती) । क्षीण आयु होने से मरने पर जीवितावस्था में किए हुए वैदिक कर्म अथवा ज्ञान से अधिकृत परलोक के लिए प्रयाण करता है तो इसे इस स्थान से ऋत्विक् लोग अथवा पुत्र अन्त्येष्टि कर्म के लिए अग्नि की ओर ले जाते हैं, जिस अग्नि के पास से श्रद्धा आदि आहुति कर्म से आया था तथा जिन पाँचों अग्नियों से उत्पन्न हुआ है उसी अग्नि के लिए ले जाते हैं अर्थात् अपने उद्गम स्थान अग्नि को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

'क्या तुम जानते हो कि इस लोक से ऊपर प्रजा कहाँ जाती है' इस प्रजा की उत्पत्ति

---

१. 'चेदित्यधिकम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणप-क्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाᳪंस्तान् ॥१॥

मासेभ्यः संवत्सरᳪंसंवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्था इति ।२॥

कि अरण्य में श्रद्धा एवं तप—इन दोनों की उपासना करते हैं, (वे मरने के बाद) अर्चिरभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। पुनः अर्चिरभिमानी देवताओं से दिन के अभिमानी देवताओं को, दिन के अभिमानी देवताओं से शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं को, शुक्लपक्षाभिमानी देवताओं से जिन छः महीनों में सूर्य उत्तरायण की ओर जाता है, उन छः महीनों को प्राप्त होते हैं॥ १॥

उन छः महीनों से संवत्सर को, संवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चन्द्रमा को एवं चन्द्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं। उस विद्युत् लोक में एक अमानव पुरुष है, वही उन अधिकारियों को हिरण्यगर्भ लोक में ले जाता है। बस यही देवयान मार्ग है॥ २॥

लोकं प्रत्युत्थितानामधिकृतानां गृहमेधिनां य इत्थमेवं यथोक्तं पञ्चाग्निदर्शनं द्युलोका-द्यग्निभ्यो वयं क्रमेण जाता अग्निस्वरूपाः पञ्चाग्न्यात्मान इत्येवं विदुर्जानीयुः। कथ-मवगम्यत इत्थं विदुरिति गृहस्था एवोच्यन्ते नान्य इति। गृहस्थानां ये त्वनित्थंविदः केवलेष्टापूर्तदत्तपरास्ते धूमादिना चन्द्रं गच्छन्तीति वक्ष्यति। ये चारण्योपलक्षिता वैखानसाः परिव्राजकाश्च श्रद्धा तप इत्युपासते तेषां चेत्थंविद्भिः सहार्चिरादिना

निर्धारणार्था षष्ठी। वेदनप्रकारमनुवदति - द्युलोकादीति। तेऽर्चिषमभिसंभवन्तीत्युत्तरत्र संबन्धः। साधारणोक्तेर्विशेषे संकोचो हेतुं विना न सिध्यतीति शङ्कते—कथमिति। पारिशेष्यं संकोचकमिति परिहरति—गृहस्थानामिति। षष्ठी निर्धारणे। अतश्च केवलकर्मिणो गृहस्था न विदुरिति ग्रहणमर्हन्तीति शेषः। परिव्राजका वानप्रस्थाश्च गृह्यन्तामिति चेन्नेत्याह—ये चेति। केषां तर्हीह,

---

प्रदर्शन कर उत्तर दे दिया। इस प्रकार अनुष्ठानरत अधिकारी गृहस्थों के मध्य जो द्युलोक से अग्नि एवं पुरुष क्रम से उत्पन्न अग्निस्वरूपा पञ्चाग्निविद्या को जानते हैं, वे मरने के बाद अर्चिरभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। यहाँ शङ्का होती है—'जो इस पञ्चाग्निविद्या को जानते हैं' इस स्थल में गृहस्थियों के लिए ही संकेत है; अन्यों के लिए नहीं क्योंकि आगे श्रुति कहेगी—गृहस्थों में भी जो इस विद्या को नहीं जानते, केवल इष्टापूर्त एवं दत्त कर्मों के प्रति आसक्त हैं, वे धूमादि मार्ग से चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। श्रुति यह भी आगे कहेगी कि अरण्यवासी से उपलक्षित जो वानप्रस्थो एवं संन्यासी श्रद्धा और तप इन दोनों की उपासना करते हैं, वे अर्चिरादि मार्ग से देवताओं को प्राप्त करते हैं। परिशेषतः अग्निहोत्र और आहुति के अपूर्व परिणामात्मक जगत् को पञ्चधा विभाग कर अग्निरूप से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गमनं वक्ष्यति पारिशेष्यादग्निहोत्राहुतिसंबन्धाच्च गृहस्था एव गृह्यन्त इत्थं विदुरिति। ननु ब्रह्मचारिणोऽप्यगृहीता 'ग्रामश्रुत्याऽरण्यश्रुत्या चानुपलक्षिता विद्यन्ते... पारिशेष्यसिद्धिः। नैष दोषः। पुराणस्मृतिप्रामाण्यादूर्ध्वरेतसां नैष्ठिकब्रह्मचारिणा... मुत्तरेणार्यम्णः पन्था प्रसिद्धः। अतस्तेऽप्यरण्यवासिभिः सह गमिष्यन्ति। उपकुर्वाण... कास्तु स्वाध्यायग्रहणार्था इति न विशेषनिर्देशार्हाः।

ननूर्ध्वरेतस्त्वं चेदुत्तरमार्गप्रतिपत्तिकारणं पुराणस्मृतिप्रामाण्यादिष्यत इत्थं...

ग्रहणमत आह—पारिशेष्यादिति। गृहस्थ एव हेत्वन्तरमाह—अग्निहोत्रेति। तदाहुत्यपूर्वपरिणाम... जगदत्र पञ्चधा प्रविभज्याग्नित्वेन दर्शनमुत्तरमार्गप्राप्तिसाधनं चोद्यते। अतो विद्यायास्तत्संबन्ध... गृहस्थानामपि तत्संबन्धस्य प्राप्तत्वात्तेषामेवेह ग्रहणमुचितमित्यर्थः।

पारिशेष्यमाक्षिपति—नन्विति। ग्रामे सपत्नीको वासः। न च ब्रह्मचारिणां पत्नीसंबन्ध... तन्न ग्रामश्रुत्या ब्रह्मचारिणो गृहीताः। गुरुकुलवासित्वाच्च नारण्यश्रुत्योपलक्षिताः। ततस्तेषामिह ग्रह... संभवान्न पारिशेष्यमित्यर्थः। किं नैष्ठिकब्रह्मचारिणोऽत्रेत्थं विदुरिति गृह्यन्ते किं वोपकुर्वाणा इति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—नैष दोष इति।

"अष्टाशीतिसहस्राणि यतीनामूर्ध्वरेतसाम्।
स्मृतं स्थानं तु यत्तेषां तदेव गुरुवासिनाम्" ।।

इत्यादिपुराणस्मृतेः श्रुतिमूलत्वेन प्रामाण्यान्नैष्ठिकब्रह्मचारिणामूर्ध्वरेतसामादित्यसंवर्ति... नोत्तरायणेनोपलक्षितो देवयानाख्यो मार्गो यावता प्रसिद्धस्तस्मात्तेषामरण्यवासिभिः सहाख्या... ब्रह्मचर्येणैवार्चिरादिगतिलाभान्न पञ्चाग्निवित्त्वेन प्रयोजनमिति पारिशेष्यसिद्धिरित्यर्थः। द्विती... प्रत्याह—उपकुर्वाणकास्त्विति। ते हि स्वाध्यायग्रहणार्थास्तस्मिन्गृहीते स्वेच्छावशादाश्रमान्... गृह्णन्तस्तत्फलेनैव फलवन्तो भवन्तीति न गृहस्थादिभ्यो विभज्येत्थं विदुरिति निर्देशमर्हन्तीत्यर्थः।

किं नैष्ठिकानां ब्रह्मचारिणामुत्तरमार्गप्राप्तिसंभवोऽस्ति न वाऽऽद्येऽनर्थकमित्थंवित्त्वं प्राप्ति... श्रुतिविरोधो द्वितीये तु पारिशेष्यासिद्धितादवस्थ्यमिति शङ्कार्थः। किमित्थंवित्त्वं नैष्ठिकान्प्रत्यन...

प्रदर्शित कर उत्तरमार्ग प्राप्ति का साधन कहे जाने से "जो पञ्चाग्नि विद्या को जानते हैं" इस स्थान में गृहस्थियों के लिए ही संकेत है।

पुनः शङ्का होती है—परिशिष्ट में तो ब्रह्मचारी भी आ सकते हैं क्योंकि ग्रामश्रुति एवं अरण्यश्रुति से उनका उपलक्षण नहीं होकर वे वहाँ नहीं ग्रहण किये जा सकते। समाधान में कहते हैं इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि पुराणों एवं स्मृतियों के प्रमाण से ऊर्ध्वरेता नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के लिए उत्तरदिशा से अर्यमा मार्ग प्रसिद्ध है। इसलिए उनका भी अरण्यवासियों के साथ ग्रहण संभव हो सकेगा। गृहस्थ में जाने के इच्छुक उपकुर्वाण ब्रह्मचारियों का विशेष रूप से ग्रहण नहीं किया क्योंकि वे केवल स्वाध्याय मात्र के लिए गुरुकुल में वास करते हैं।

यदि ऊर्ध्वरेतसत्व ही पुराणस्मृति के प्रमाण से उत्तरमार्गप्राप्ति का हेतु है तो पञ्चाग्निविद्या का जानना निरर्थक हो जाएगा। ऐसी शङ्का करनी उचित नहीं है क्योंकि ऊर्ध्वरेता होने में असमर्थ...

१. छा. उ. ५।१०।३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्वमनर्थकं प्राप्तम् । न । गृहस्थान्प्रत्यर्थवत्त्वात् । ये गृहस्था अनित्थंविदस्तेषां स्वभावतो दक्षिणो धूमादिः पन्थाः प्रसिद्धस्तेषां य इत्थं विदुः सगुणं वाऽन्यद्ब्रह्म विदुः । "अथ यदु चैवास्मिञ्शव्यं कुर्वन्ति यदि नार्चिषमेव" इति लिङ्गादुत्तरेण ते गच्छन्ति । ननूर्ध्वरेतसां गृहस्थानां च समान आश्रमित्व ऊर्ध्वरेतसामेवोत्तरेण पथा गमनं न गृहस्थानामिति न युक्तमग्निहोत्रादिवैदिककर्मबाहुल्ये च सति । नैष दोषः । अपूता हि ते । शत्रुमित्रसंयोगनिमित्तौ हि तेषां रागद्वेषौ । तथा धर्माधर्मौ हिंसानुग्रहनिमित्तौ । हिंसानृतमायाऽब्रह्मचर्यादि च बह्वशुद्धिकारणमपरिहार्यं तेषाम् । अतोऽपूताः । अपूतत्वा-

---

त्वमित्युच्यते किं वा सर्वानेव प्रतीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गीकृत्य द्वितीयं दूषयति—न गृहस्थानिति । तान्प्रत्यर्थवत्त्वमेवेत्थंवित्त्वस्य विभज्य समर्थयते—ये गृहस्था इति । स्वभावतस्तत्वनुष्ठितेष्टापूर्तबलादित्यर्थः । तेषामेव गृहस्थानां मध्ये ये केचिदुक्तेन प्रकारेणेत्थं पञ्चाग्निदर्शनं विदुरग्निभ्योऽन्यद्वा सगुणं ब्रह्म विदुस्ते देवयानेनोत्तरेण पथा गच्छन्तीति संबन्धः । न केवलं गृहस्थानां पञ्चाग्निवित्त्वमेव किंतु सगुणब्रह्मवित्त्वमपि तेषामस्तीति प्रमाणमाह—अथेति । अन्त्येष्टिकरणाकरणयोरविशेषेण ब्रह्मविदामर्चिरादिगतिश्रवणादस्ति गृहस्थानामपि ब्रह्मवित्त्वमिति गम्यते । परिव्राजकादिष्वन्त्येष्ट्यसंभवेन विद्यास्तुतेरपि दुर्वचनत्वादित्यर्थः । विहितत्वाविशेषादाश्रमाणां तुल्यत्वमाश्रित्य शङ्कते—नन्विति । साम्यमुक्त्वा गृहस्थेषु विशेषं दर्शयति—अग्निहोत्रादिति । वैदिकानि कर्माणि भूयांसि सन्ति । तेषां च बाहुल्ये सत्यविदुषामूर्ध्वरेतसामेव देवयानेन पथा गमनं न गृहस्थानामित्ययुक्तं साधनभूयस्त्वे फलभूयस्त्वन्यायविरोधादित्यर्थः । आश्रमित्वाविशेषेऽपि धर्मविशेषाद्विशुद्धितारतम्यसंभवान्नैकरूप्यमिति परिहरति—नैष दोष इति । कथं गृहस्थानामग्निहोत्रादिभूयोधर्मवतां विद्याहीनानामप्यपूतत्वं तत्राऽऽह—शत्रुमित्रेति । अब्रह्मचर्यादीत्यादिपदेन परिग्रहित्वादि गृह्यते । अशुद्धिबाहुल्यकारणमतःशब्दार्थः । तुल्यमूर्ध्वरेतसामप्यशुद्धिहेतुबाहुल्यादपूतत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—हिंसेति । ऊर्ध्वरेतसां पूतत्वे

गृहस्थियों के लिए उसकी उपयोगिता सिद्ध है । जो गृहस्थ इस पञ्चाग्नि विद्या को नहीं जानते, वे स्वभावतः इष्टपूर्तादि कर्मों के आचरण से धूमादि दक्षिणमार्ग की प्राप्ति करते हैं । उन्हीं गृहस्थों में जो पञ्चाग्नि विद्या अथवा सगुण ब्रह्म को जानते हैं, वे उत्तरमार्ग को प्राप्त करते हैं । श्रुति इसमें प्रमाण है—"चाहे उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की जाए अथवा नहीं; वे अर्चिरादि मार्ग के अभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं" । विशेष विधान के अभाव में ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी एवं गृहस्थियों का एक-सा आश्रम होने से "ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियों का उत्तर दिशा से गमन होता है, गृहस्थियों का नहीं" यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म अनेक होते हैं (साधन की अनेकता होने से फल की अनेकता होना स्वाभाविक है) । (आश्रमविशिष्टता न होने पर भी धर्मविशेष से विशुद्धि तारतम्य संभव होने से एकरूपता नहीं है—इसका परिहार किया जाता है) इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि विद्या से विहीन गृहस्थ लोग अपवित्र होते हैं । शत्रु-मित्र से सम्पर्क होने के कारण उनमें राग द्वेष होता है तथा हिंसा और अनुग्रह के कारण उनमें धर्म और अधर्म होते हैं । हिंसा, झूठ, कपट एवं अब्रह्मचर्य आदि जो बहुत से अपवित्रता के हेतु हैं, उन्हें छोड़ना उनके लिए संभव नहीं है, इसलिए वे

---

१. छा. उ. ४।१५।५ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्रोत्तरेण पथा गमनम्। हिंसानृतमायाऽब्रह्मचर्यादिपरिहाराच्च शुद्धात्मानो है
शत्रुमित्ररागद्वेषादिपरिहाराच्च विरजसस्तेषां युक्त उत्तरः पन्थाः। तथाच पौराणिका

"ये प्रजामीषिरेऽधीरास्ते श्मशानानि भेजिरे।
ये प्रजां नेषिरे धीरास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे"॥ इत्याहुः।

इत्थंविदां गृहस्थानामरण्यवासिनां च समानमार्गत्वेऽमृतत्वफले च सत्यर
वासिनां विद्यानर्थक्यं प्राप्तम्। तथाच श्रुतिविरोधः। "न तत्र दक्षिणा यन्ति नावि
द्वांसस्तपस्विनः" इति। "स एनमविदितो न भुनक्ति" इति च विरुद्धम्। न। आभू
संप्लवस्थानस्यामृतत्वेन विवक्षितत्वात्। तत्रैवोक्तं पौराणिकैः—"आभूतसं
स्थानममृतत्वं हि भाष्यते" इति। यच्चाऽऽत्यन्तिकममृतत्वं तदपेक्षया न तत्र दक्षि
यन्ति स एनमविदितो न भुनक्तीत्याद्याः श्रुतय इत्यतो न विरोधः। न च पुनराव

सिद्धे फलितमाह—तेषामिति। ऊर्ध्वरेतसां देवयाने पथ्यनुप्रवेशे प्रमाणमाह—तथा चेति। पौरा
आहुरिति संबन्धः।

आश्रमधर्ममात्रेणोत्तरमार्गद्वारेणामृतत्वमूर्ध्वरेतसामुक्तमाक्षिपति—इत्थंविदामिति। त
विद्यानर्थक्यमिष्टमेवेत्याशङ्क्याऽऽह—तथा चेति। स परमात्मा स्वयमज्ञातः सन्नेनमधिकारिणम
प्रदानेन न पालयतीति च वाक्यं विद्यामन्तरेणामृतत्वं ब्रुवतो विरुद्धमित्यर्थः। ऊर्ध्वरेतसाममृ
स्याऽऽपेक्षिकत्वात्तत्र विद्यानर्थक्यमेवेति परिहरति—नाऽऽभूतेति। आपेक्षिकममृतत्वमित्यत्र प्रमा
माह—तत्रैवेति। यत्र प्रजाः कामयमाना मुक्तिभाजो न भवन्तीत्युक्तं तत्रैव तत्संनिधाविति या
कथं तर्हि यथोक्तश्रुतिविरोधसमाधिरित्याशङ्क्याऽऽह—यच्चेति। आदिशब्दस्तमेवं विद्वानमृत
भवतीत्यादिश्रुतिसंग्रहार्थः। आपेक्षिकामृतत्वे श्रुतिविरोधो न शक्यते परिहर्तुमिति शङ्कते—न चे

अपवित्र हैं। अपूत व्यक्ति कभी उत्तरमार्ग में प्रवेश नहीं कर सकते। हिंसा, झूठ, कपट, अब्रह्म
का त्याग करने वाले दूसरे पूतात्मा शत्रु-मित्र, राग-द्वेष से अतीत मलरहित होने वाले व्यक्तियों
उत्तरमार्ग प्राप्ति युक्तिसंगत है। इस तथ्य का प्रतिपादन पौराणिक भी करते हैं—

"जो धैर्यहीन प्रजोत्पादन में रत रहे उन्होंने परिणाम में धूममार्ग की प्राप्ति ही की,
अपने को इससे ऊपर उठाकर प्रजोत्पादन से विमुख रहे, ऐसे धीर व्यक्तियों ने अमृतत्व लाभ किया

इस प्रकार जानने वाले गृहस्थ एवं अरण्यवासियों में समान मार्ग एवं समान अमृतत्व
फल होने से अरण्यवासियों के लिए पञ्चाग्नि विद्या की कोई सार्थकता नहीं रह जाएगी। इतना
नहीं, श्रुति में भी विरोध हो जाने लगेगा। "वहाँ दक्षिणमार्गी विद्वत्ता सम्पादन से विमुख अरण्य
नहीं जाते" इस श्रुति एवं "वह परमात्मा स्वयं अज्ञात हुआ अधिकारी को मोक्ष प्रदान कर उस
पालन नहीं करता" इस श्रुति में परस्पर विराध होने लगेगा। ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारियों के लि
आपेक्षिक अमृतत्व होने से विद्या की सार्थकता हो जाती है क्योंकि सभी भूतों का संप्लव स्थान अ
ही विवक्षित है। इसी पर पौराणिक कहते हैं—"सभी भूतों का जो संप्लव स्थान है वह 'अमृत'
से कहा जाता है"। उपरोक्त जो दो श्रुतियाँ "न तत्र दक्षिणा यन्ति" एवं "स एनमविदितो न भुनक्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इतीमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्त इत्यादिश्रुतिविरोध इति चेत्। न। इमं मानवमिति विशेषणात्तेषामिह न पुनरावृत्तिरस्तीति च। यदि ह्येकान्तेनैव नाऽऽवर्तेरन्निमं मानवमिहेति च विशेषणमनर्थकं स्यात्। इममिहेत्याकृतिमात्रमुच्यत इति चेत्। न। अनावृत्तिशब्देनैव नित्यानावृत्त्यर्थस्य प्रतीतत्वादाकृतिकल्पनाऽनर्थिका। अत इममिहेति च विशेषणार्थवत्त्वायान्यत्राऽऽवृत्तिः कल्पनीया। न च सदेकमेवाद्वितीयमित्येवंप्रत्ययवतां मूर्धन्यया नाड्याऽर्चिरादिमार्गेण गमनम्। "ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति"। "तस्मात्तत्सर्वमभवत्"। "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति। अत्रैव समवलीयन्ते" इत्यादिश्रुतिशतेभ्यः।

ननु तस्माज्जीवादुच्चिक्रमिषोः प्राणा नोत्क्रामन्ति सहैव गच्छन्तीत्ययमर्थः

आदिशब्दस्तेषामिह न पुनरावृत्तिरित्यादिवाक्यसंग्रहार्थः। इममिहेति विशेषणावष्टम्भेन निराचष्टे—नेत्यादिना। तदेव व्यतिरेकमुखेन (ण) विशदयति—यदीति। सर्वकल्पेषु श्रुतेरेतादृशत्वादिममिहेतिपदद्वयस्य सामान्येन सर्वकल्पविषये विशेषणानर्थक्यं दुर्वारमित्युत्तरमाह—नानावृत्तीति। विधानन्तरेण [1]विशेषणार्थासंभवे फलितमाह—अत इति। यस्मिन्कल्पे ब्रह्मलोकप्राप्तिस्तस्मात्कल्पान्तरमन्यत्रेत्युक्तम्। ऊर्ध्वरेतसामाश्रमधर्ममात्रनिष्ठानाममृतत्वमापेक्षिकमुपक्षिप्तं संप्रति तेषामेव साक्षात्कृतब्रह्मतत्त्वानामात्यन्तिकममृतत्वं गतिनिरपेक्षं सिध्यतीत्याह—न चेति। तेषां गत्यादिनिरपेक्षमात्यन्तिकममृतत्वं भवतीत्यत्र प्रमाणमाह—ब्रह्मैवेति।

न तस्मात्प्राणा उत्क्रामन्तीति माध्यंदिनश्रुतिमनुसृत्य न तस्येत्यादिकाण्वश्रुतिरपि नेतव्येति

इत्यादि हैं, वे आत्यन्तिक अमृतत्व की अपेक्षा से कही गई हैं, अतः उनमें विरोध नहीं समझना चाहिए। (पुनः पूर्ववादी कहता है—) इतना ही नहीं 'वह पुनरावृत्ति को प्राप्त नहीं करते' इससे इस मानव का संकेत है कि "आवृत्ति की पुनरावृत्ति को नहीं प्राप्त करते" इत्यादि श्रुतियों में विरोध तो होगा ही। नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। 'इस मानव का' यह विशेषण लगा देने से उनको यहाँ पुनरावृत्ति नहीं होती, यह अर्थ निकलता है। यदि अकेले की आवृत्ति नहीं होने पर जोर होता तो "इमम् मानवम्" और "इह" विशेषण निरर्थक हो जाते। यदि कहो "इमम्" और "इह" यह पद (आकृति सामान्य) रूप से कहे गये हैं तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि अनावृत्ति शब्द से ही नित्य अनावृत्ति अर्थ की प्रतीति होने के कारण आकृति कल्पना व्यर्थ है। इसलिए विशेषणद्वय की अर्थवत्ता सिद्ध न होने से उसके लिए कल्पान्तर में आवृत्ति की कल्पना कर लेनी चाहिए। 'वह ब्रह्म सत्, एक एवं अद्वितीय है' इस प्रकार ब्रह्मतत्त्व के साक्षात्कार करने वाले का गतिनिरपेक्ष होने के कारण मूर्धन्य नाडी से अर्चिरादि मार्ग से गमन संभव नहीं है। जैसा कि सैकड़ों श्रुतियाँ इसीका समर्थन करती हैं—"ब्रह्मीभाव से ब्रह्म ही हो जाता है" "उसे जानकर वह सर्वात्मक हो गया", "उस ब्रह्मवेत्ता के प्राण उत्क्रमण नहीं करते, यहाँ ही समवलीन हो जाते हैं" इत्यादि।

यदि कहो "उस जीव से उत्क्रमण करने की इच्छा वाले प्राण उत्क्रमण नहीं करते, साथ ही चले जाते हैं" इस प्रकार माध्यन्दिन श्रुति की तरह काण्वश्रुति का अर्थ कल्पना कर लेना चाहिए तो

---

१. विशेषणार्थासंभवे—विशेषणस्यार्थवत्त्वासंभव इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कल्प्यत इति चेत् । न । अत्रैव समवलीयन्त इतिविशेषणानर्थक्यात् । सर्वे प्रा
अनूत्क्रामन्तीति च प्राणैर्गमनस्य प्राप्तत्वात् । [1]तस्मादुत्क्रामन्तीत्यनाशङ्क्यं वे
यदाऽपि मोक्षस्य संसारगतिवैलक्षण्यात्प्राणानां जीवेन सहाऽऽगमनमाशङ्क्य तस्मा
त्क्रामन्तीत्युच्यते तदाऽप्यत्रैव समवलीयन्त इति विशेषणमनर्थकं स्यात् ।

न च प्राणैर्वियुक्तस्य गतिरुपपद्यते जीवत्वं वा । सर्वगतत्वात्सदात्मनो निरव
त्वात्प्राणसंबन्धमात्रमेव ह्यग्निविस्फुलिङ्गवज्जीवत्वभेदकारणमित्यतस्तद्वियोगे जी
गतिर्वा न शक्या परिकल्पयितुं श्रुतयश्चेत्प्रमाणम् । न च सतोऽणुरवयवः स्फुटि

शङ्कते—ननु तस्मादिति । वाक्यशेषविरोधान्नैवमिति दूषयति—नात्रेति । श्रुत्यन्तरालोचनाया
न स्वयूथ्यकल्पनेत्याह—सर्वे प्राणा इति । प्राणैः सह जीवस्येति शेषः । संसारदशायां प्राणैः
विज्ञानात्मनो गमनेऽपि मोक्षे नास्ति प्राणानां जीवेन सह गमनमित्याशङ्कायां न तस्मादित्यादिवा
मित्याशङ्क्याऽऽह—यदाऽपीति ।

भवतु प्राणानामत्रैव समवलयस्तथाऽपि जीवस्य गमनायत्तममृतत्वमित्याशङ्क्याऽऽ
न चेति । कस्मिन्न्वहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि । कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति
प्राणमसृजतेति श्रुतेरिति शेषः । किंच प्राणैर्वियुक्तस्य चिदात्मनो जीवत्वं नोपपद्यते प्राणोपाधिक
तस्य जीवशब्दवाच्यत्वादित्याह—जीवत्वं वेति । उक्तमर्थं समर्थयते—सर्वगतत्वादिति । चिदात्मा
कल्पनायामधिष्ठानत्वे सति यतो निर्भागं सर्वस्याऽऽत्मा तस्मादग्नेर्विस्फुलिङ्गवज्जीवत्वाख्यभेदसंप
तस्य प्राणसंबन्धमात्रमेवेति वैदिकानां प्रसिद्धम् । तथा च प्राणवियोगे चिदात्मनो जीवत्वं गतिर्वा
शक्यते कल्पयितुम् । पूर्णत्वादिप्रतिपादकश्रुतीनां प्रमाणत्वादित्यर्थः । सदात्मनः सर्वगतस्य जीवा
भेदकरणं न प्राणोपाधिकृतं किं तु स्वत एव तस्यांशो जीवस्तथा चाग्निविस्फुलिङ्गवत्तस्य गत्युपपत्ति

ऐसा कहना ठीक नहीं । ऐसा अर्थ करने से "यहीं उसके प्राण लीन हो जाते हैं" यह विशेषण अनर्थ
हो जाएगा । "सभी प्राण उत्क्रमण नहीं करते" इस श्रुति के अनुसार प्राण का जीव के स
गमन प्राप्त है । "जीव से उत्क्रमण करते हैं" इस मन्त्र में शङ्का के लिए कोई अवसर नहीं रह जाता
जब 'संसार दशा में प्राणों के साथ जीवात्मा का गमन होने पर भी मोक्षावस्था में वैसा होना सं
नहीं क्योंकि संसार की गति बिलक्षण है' ऐसी शङ्का का प्राण उत्क्रमण नहीं करते ऐसा कहा जाता
तब भी "उसके प्राण यहीं विलीन हो जाते हैं", यह विशेषण निरर्थक हो जाएगा ।

पुन: पूर्ववादी शङ्का करता है—प्राणवियुक्त जीव का उत्क्रमण संभव है अथवा प्राणोपा
जीव का उत्क्रमण संभव है । चिदात्मा के सर्वव्यापक, सर्वात्मा एवं निरवयव होने के कारण प्रा
संबन्धमात्र ही अग्निविस्फुलिङ्ग भेद के समान जीवभेद कल्पना संभव है, उसके बिना जीव
उत्क्रमण सिद्ध नहीं होता क्योंकि इसमें श्रुतियाँ भी प्रमाण हैं । न ही ऐसी कल्पना की जा सकती
कि सदात्मा सर्वगत का अणु, अवयव और जीवसञ्ज्ञक अंश सद्रूप को छिद्रयुक्त करता हुआ उत्क्र

---

१. तस्मादित्यादि–जीवादुत्क्रामन्ति प्राणा इति शङ्कैव न प्राप्नोति यादर्थ्येन निषेधः साफल्यमनुभवे
भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जीवाख्यः सद्रूपं छिद्रीकुर्वन्गच्छतीति शक्यं कल्पयितुम्। तस्मात् "तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति" इति सगुणब्रह्मोपासकस्य प्राणैः सह नाड्या गमनं सापेक्षमेव चामृतत्वं न साक्षान्मोक्ष इति गम्यते। "तदपराजिता पूस्तदैरं मदीयं सरः" इत्याद्युक्त्वा "तेषामेवैष ब्रह्मलोकः" इति विशेषणात्।

अतः पञ्चाग्निविदो गृहस्था ये चेमेऽरण्ये वानप्रस्थाः परिव्राजकाश्च सह नैष्ठिकब्रह्मचारिभिः श्रद्धा तप इत्येवमाद्युपासते श्रद्दधानास्तपस्विनश्चेत्यर्थः। उपासनशब्दस्तात्पर्यार्थः। इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासत इति यद्वत्। श्रुत्यन्तराच्च[1] सत्यं ब्रह्म हिरण्यगर्भाख्यमुपासते ते सर्वेऽर्चिषमर्चिरभिमानिनीं देवतामभिसंभवन्ति प्रतिपद्यन्ते। समानमन्य-

रित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति। निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादिश्रुतेरिति शेषः। प्रकरणार्थमुपसंहरति—तस्मादिति। निर्गुणब्रह्मविदामात्यन्तिकामृतत्वस्य गमनादिनिरपेक्षत्वादिति यावत्। सगुणब्रह्मोपासकस्य सापेक्षममृतत्वमित्यत्र विशेषणश्रुतिमनुकूलयति—तदपराजितेति। आदिपदेन तदश्वत्थः सोमसवन इत्यादि गृह्यते। तेषामेव ब्रह्मविदामेष पूर्वोक्तविशेषणो ब्रह्मणः सत्याख्यस्य लोको नान्येषामकृतात्मनामिति विशेषदर्शनादमृतत्वं तेषां तल्लोकनिवासिभिः समं सापेक्षमेवेति निर्धारितमित्यर्थः।

ऊर्ध्वरेतसामाश्रममात्रनिष्ठानामपि ब्रह्मलोको लभ्यते गृहस्थानां पुनर्विदुषामेवेत्युपपाद्य प्रकृतश्रुतिव्याख्यानमनुवर्तयति—अत इति। पूर्वोक्तपारिशेष्यादिवशादिति यावत्। परिव्राजकाश्चेत्यमुख्यसंन्यासिनस्त्रिदण्डिनो गृह्यन्ते मुख्यसंन्यासिनां ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीति पृथक्कृतत्वात्। श्रद्धां सत्यमित्युपासत इति[2] श्रुत्यन्तरम्। पञ्चाग्निविदो गृहस्थाः स्वाश्रममात्रप्रवणा ऊर्ध्वरेतसः सत्यब्रह्मोपासकाश्चोभये सर्वशब्देनोच्यन्ते। चतुर्थे यदुपकोसलविद्यायां गतिव्याख्यानमतिवृत्तं तेन समानमर्चिषोऽहरित्यादिवाक्यव्याख्यानं तथा च तन्न पृथक्कर्तव्यमित्याह—समानमिति। उत्तरमार्गव्याख्यानमुपसंहरति—एष इति।

करता है। इसलिए कहा है "उनसे ऊर्ध्व उत्क्रमित हो अमृतत्व को प्राप्त करता है" इससे सिद्ध होता है कि प्राणसहित नाडी उत्क्रान्ति सगुण उपासकों के लिए सापेक्ष अमृतत्व ही है, निर्गुण ब्रह्मवेत्ताओं के लिए अमृतत्व तो गतिनिरपेक्ष होने के कारण मोक्ष में वैसी कल्पना करनी संभव नहीं है। "यह अपराजिता पुरी है, वह उपयोग करने वालों के लिए हर्षोत्पादक मण्ड से पूर्ण सर है, (वह अश्वत्थ है सोमसवन है)" इत्यादि कहकर उनका विशेषण देकर कहा गया है कि "उनके लिए यह सापेक्ष ब्रह्मलोक है"।

परिशेषतः पञ्चाग्निविद्या के जानने वाले गृहस्थ, अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थी एवं त्रिदण्डी संन्यासी नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के साथ श्रद्धालु एवं तपस्वी होकर उपासना करते हैं। उपासना शब्द प्रयोजन अर्थ में है जिस प्रकार इष्टापूर्त और दत्त की उपासना फलमूलक होती है। अन्य श्रुति में भी ऐसा प्रकरण होने के कारण जो सत्यात्मक हिरण्यगर्भाख्य ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे सभी अर्चिरभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। मन्त्र में शेष व्याख्यान तो चतुर्थाध्याय की उपकोसल विद्या के समान है, उसे पृथक् नहीं करना चाहिए। इस प्रकार उत्तरमार्ग का व्याख्यान किया गया जिसका

१. श्रुत्यन्तरात् श्रुत्यन्तरमाश्रित्येत्यर्थः। २. बृ. उ. ६।२।१५। ३. श्रुत्यन्तरं तस्मादिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिँ रात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्या-

द्वितीय प्रश्न का उत्तर

अब जो यह गृहस्थ लोग (अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मरूप) इष्ट (वापी-कूप-तड़ागादि नि[र्माण]रूप) पूर्त और (वेदी से बाहर अधिकारी व्यक्तियों को यथाशक्ति धन देना रूप) दत्त—इनकी उपा[सना] करते हैं, वे धूमाभिमानी देवता को प्राप्त होते हैं। धूमाभिमानी देवता से रात्रि के अभिमानी दे[व]...

च्चतुर्थगतिव्याख्यानेन । एष देवयानः पन्था व्याख्यातः सत्यलोकावसानो नाण्डाद्बहि[ः] "[1]यदन्तरा पितरं मातरं च" इति मन्त्रवर्णात् ॥१॥२॥

अथेत्यर्थान्तरप्रस्तावनार्थो य इमे गृहस्था ग्रामे । ग्राम इति गृहस्थानामसाधा[रण]विशेषणमरण्यवासिभ्यो व्यावृत्त्यर्थम् । यथा वानप्रस्थपरिव्राजकानामरण्यं विशे[षणं] गृहस्थेभ्यो व्यावृत्त्यर्थं तद्वत् । इष्टापूर्ते इष्टमग्निहोत्रादिवैदिकं कर्म पूर्तं वापीकूपतडा[ग]रामादिकरणम् । दत्तं बहिर्वेदि यथाशक्त्यर्हेभ्यो द्रव्यसंविभागो दत्तम् । इत्येवं[वि]...

देवयानेन पथा बहिरण्डाद्व्यवस्थितं ब्रह्म गन्तव्यमित्येके तान्प्रत्याह—नाण्डादिति । तत्र हेतुमा[ह]... यदन्तरेति । पितरं द्युलोकं मातरं च पृथिवीं मध्ये ये द्वे सृती अशृणवं ताभ्यामिदं विश्वं कर्मज्ञाना[भ्यां] गच्छति न चाण्डाद्बहिरस्ति गतिद्वयमित्यर्थः ॥१॥२॥

वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीत्यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनं देवयानोपदेशेन व्याख्यातं सं[प्रति] पितृयाणोपदेशेनापि तद्व्याचष्टे—अथेत्यादिना । ननु ग्राम इति कथं गृहस्थानामेव ग्रहणमूर्ध्वरे[तसा]मपि ग्रामनिवासित्वाविशेषादित्याशङ्क्याऽऽह—ग्राम इतीति । सपत्नीको हि वासो ग्राम इत्यु[च्यते] न च सपत्नीकत्वमूर्ध्वरेतसां युक्तं तथा च गृहस्थानामेव ग्रामविशेषणमसाधारणं न च तदनर्थकमू[र्ध्व]रेतोभ्यस्तेषां व्यावृत्त्यर्थत्वादित्यर्थः । तदेव दृष्टान्तेन स्फुटयति—यथेति । वेद्यन्तर्भावव्यासेधाद्बहिर्वे[दि] विशेषणमादौ दत्तमिति प्रतीकोपादानं पुनर्व्याख्यातस्यानुवाद इत्यपुनरुक्तिः । इतिशब्दार्थमा[ह] इत्येवंविधमिति । परिचरणं गुर्वादिशुश्रूषा । परित्राणं रक्षणम् । आदिपदं नित्यस्वाध्यायादिसंग्रहा[र्थम्]

सत्यलोक में उपसंहार होता है, वह बहिरण्ड से व्यवस्थित नहीं है। श्रुति में अन्यत्र कहा गया है "पितरों और देवों के हमने दो मार्ग सुन रखे हैं जो मनुष्य से संबन्ध रखने वाले हैं। ये द्युलोक [और] पृथिवी के मध्य में हैं, जिन्हें माता-पिता भी कहते हैं" ॥ १ ॥ २ ॥

देवयान पथ के पश्चात् पितृयाणपथ निरूपण के लिए 'य इमे' मन्त्र से अर्थान्तर की प्रस्ता[वना] करते हैं। जो सामान्य गृहस्थी अग्निहोत्रादि वैदिक इष्ट कर्म, बावली-कूप-तालाब, बाग आदि नि[र्माण] रूप पूर्त कर्म, बहिर्वेदी में यथाशक्ति योग्यपात्र में द्रव्यवितरण रूप दत्तकर्म एवं इसी प्रकार गुरु[शुश्रूषा] रक्षण आदि का तात्पर्य से अनुष्ठान करते हैं, दर्शनवर्जित होने के कारण वे धूमाभिमानी देवता...

---

१. अपि हि न ऋषेर्वचः श्रुतम् । द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्[समेति] यदन्तरा पितरं मातरं चेति । बृ. उ. ६।२।२ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्षड्दक्षिणैति मासाꣳस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥३॥

रात्रि के अभिमानी देवों से कृष्णपक्षाभिमानी देव को तथा कृष्णपक्षाभिमानी देव से जिन छः महीने में सूर्य दक्षिणायन से जाता है, उन छः महीनों को प्राप्त होते हैं एवं ये लोग संवत्सर को प्राप्त नहीं करते ॥ ३ ॥

परिचरणपरित्राणाद्युपासते। इतिशब्दस्य प्रकारदर्शनार्थत्वात्। ते दर्शनवर्जितत्वाद्धूमं धूमाभिमानिनीं देवतामभिसंभवन्ति प्रतिपद्यन्ते। तयाऽतिवाहिता धूमाद्रात्रिं रात्रिदेवतां रात्रेरपरपक्षदेवता'मेव कृष्णपक्षाभिमानिनीमपरपक्षाद्यान्षण्मासान्दक्षिणा दक्षिणां दिशमेति सविता। तान्मासान्दक्षिणायनषण्मासाभिमानिनीर्देवताः प्रतिपद्यन्त इत्यर्थः। संघचारिण्यो हि षण्मासदेवता इति मासानिति बहुवचनप्रयोगस्तासु। नैते कर्मिणः प्रकृताः संवत्सरं संवत्सराभिमानिनीं देवतामभिप्राप्नुवन्ति। कुतः पुनः संवत्सरप्राप्तिप्रसङ्गो यतः प्रतिषिध्यते। अस्ति हि प्रसङ्गः संवत्सरस्य ह्येकस्यावयवभूते दक्षिणोत्तरायणे तत्रार्चिरादिमार्गप्रवृत्तानामुदगयनमासेभ्योऽवयविनः संवत्सरस्य प्राप्तिरुक्ता। अत इहापि तदवयवभूतानां दक्षिणायनमासानां प्राप्तिं श्रुत्वा तदवय-

उपासते तात्पर्येणानुतिष्ठन्तीति यावत्। कथमितिशब्दस्य यथोक्तार्थत्वमिति ह स्मोपाध्यायः कथयतीतिवत्प्रकृतमात्रगामित्वादित्याशङ्क्याऽऽह—इतिशब्दस्येति। देवयानाधिकृतेभ्यः सकाशात्पितृयाणाधिकृतेषु विशेषान्तरमाह—नैत इति। अप्राप्तप्रतिषेधोऽयमिति शङ्कते—कुत इति। प्राप्तिं दर्शयन्नुत्तरमाह—अस्ति हीति। पूर्ववद्यथा पूर्वं देवयानेन पथाऽवयवेभ्योऽवयविनः संवत्सरस्य प्राप्तिस्तथेति

प्राप्त करते हैं। मन्त्र में 'ग्रामे' यह अरण्यवासियों से विशिष्टता द्योतन के लिए गृहस्थियों का असाधारण विशेषण है, जिस प्रकार गृहस्थियों की व्यावृत्ति के लिए वानप्रस्थ और त्रिदण्डी संन्यासियों के लिए अरण्य विशेषण लगाया है। मन्त्र में 'इति' शब्द प्रकार प्रदर्शन के लिए है। धूमाभिमानी देवता से रात्रि के अभिमानी देवता को; रात्रि के अभिमानी देव से कृष्णपक्ष के अभिमानी देवता को, कृष्णपक्ष के अभिमानी देवता से जिन छः मासों में सूर्य दक्षिणायन से जाता है, उन दक्षिणायन षण्मासाभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं। छः मास के अभिमानी देवता समुदाय में विचरण करते हैं, इसलिए मन्त्र में "मासान्" यहाँ बहुवचन का प्रयोग हुआ है। पितृयाण पथ में अधिकृत ये कर्मकाण्डी संवत्सराभिमानी देवता को प्राप्त नहीं करते। (यहाँ शङ्का होती है—) जब संवत्सराभिमानी देवता की प्राप्ति का प्रतिषेध किया है तो फिर उसकी प्राप्ति का प्रसङ्ग कैसे आएगा। इसका समाधान देते हैं—क्योंकि एक ही संवत्सर के अवयवभूत दक्षिणायण और उत्तरायण में प्रसङ्ग है वहाँ अर्चिरादि मार्ग में प्रवृत्त लोगों की उद्गयन (उत्तरायण) मासों से अवयवी संवत्सर की प्राप्ति कही गयी। इसलिए यहाँ भी उसके अवयवभूत दक्षिणायन मासों की प्राप्ति सुनकर देवयान पथ की तरह उसके

१. अनपेक्षित एवकारः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति ॥४॥

दक्षिणायन के छः महीनों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को और आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त होते हैं। यह चन्द्रमा ही ब्राह्मणों का राजा सोम है, वह देवताओं का अन्न है। उस चन्द्र रूप अन्न का इन्द्रादि देवता भक्षण करते हैं ॥ ४ ॥

विनः संवत्सरस्यापि पूर्वंत्प्राप्तिरापन्नेत्यतस्तत्प्राप्तिः प्रतिषिध्यते नैते संवत्सरमभि प्राप्नुवन्तीति ॥३॥

मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसम्। कोऽसौ यस्तै प्राप्यते चन्द्रमा य एष दृश्यतेऽन्तरिक्षे सोमो राजा ब्राह्मणानां तदन्नं देवानां तं चन्द्रमसमन्नं देवा इन्द्रादयो भक्षयन्ति। अतस्ते धूमादिना गत्वा चन्द्रभूताः कर्मिणो देवैर्भक्ष्यन्ते। नन्वनर्थायेष्टादिकरणं यद्यन्नभूता देवैर्भक्ष्येरन्। नैष दोषः। अन्नमित्युप-करणमात्रस्य विवक्षितत्वात्। न हि ते कवलोत्क्षेपेण देवैर्भक्ष्यन्ते। किं तर्हि उपकरण-मात्रं देवानां भवन्ति ते स्त्रीपशुभृत्यादिवत्। दृष्टश्चान्नशब्द उपकरणेषु स्त्रियोऽन्नं पशवोऽन्नं विशोऽन्नं राज्ञामित्यादि। न च तेषां स्त्र्यादीनां पुरुषोपभोग्यत्वेऽप्युपभो-

---

यावत् ॥३॥

अन्नशब्दस्य यथाश्रुतमर्थं गृहीत्वा चोदयति—नन्विति। औपचारिकमर्थं गृहीत्वा परिहरति—नैष दोष इति। वृद्धप्रयोगमन्तरेण कथमुपकरणविषयोऽन्नशब्दो व्याख्यायते तत्राऽऽह—दृष्टश्चेति। भवतु कर्मिणां देवान्प्रत्युपकरणत्वं तथाऽपि स्वयमुपभोगाभावादनर्थकमिष्टादिकरणमित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति। अन्योपभोग्यानामपि स्वयंभोगसत्त्वं तस्मादित्युच्यते। तथाऽपि तेषां मृतानामशरीरिणां

अवयवी संवत्सर की भी प्राप्ति सिद्ध है। अतः उस प्रकार की प्राप्ति का निषेध किया जाता है कि पितृयाणमार्गी संवत्सराभिमानी देवता को प्राप्त नहीं करते ॥ ३ ॥

दक्षिणायन के छः मासों से पितृलोक को, पितृलोक से आकाश को, आकाश से चन्द्रमा को प्राप्त करता है। वह कौन है जो चन्द्रमा उनके द्वारा प्राप्त किया जाता है? यह जो आकाश में दिखाई देता है; वह चन्द्रमा ही ब्राह्मणों का राजा सोम है। वह देवताओं का अन्न है, उस चन्द्रमा रूप अन्न को इन्द्रादि देवता भक्षण करते हैं। इसलिए वे कर्मी धूमादि मार्ग से जाकर चन्द्रमा स्वरूप होकर देवताओं द्वारा भक्षण किए जाते हैं। तब तो इष्टापूर्तादि कर्म करने से कोई लाभ नहीं है यदि उसके परिणाम में देवताओं का अन्न हो पड़े और वे इसे खा जाएँ। इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि यहाँ अन्न से देवताओं का उपकरण मात्र विवक्षित है। देवता उन्हें कभी भी ग्रास ग्रहण कर भक्षण नहीं करते, वे तो देवताओं के उसी प्रकार उपकरण हैं, जिस प्रकार स्त्री, पशु और भृत्य हुआ करते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथेतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाऽभ्रं भवति ॥५॥

तृतीय प्रश्न का उत्तर

उस चन्द्रलोक में वहाँ के उपभोग के निमित्त कर्मों का नाश होने तक रहकर फिर वे लोग उसी मार्ग से लौटते हैं, जिस मार्ग से वे पहले गये थे। उस समय वे सर्वप्रथम आकाश को प्राप्त होते हैं। आकाश से वायु को, वायु होकर वे धूम होते हैं और धूम होकर पुनः बादल बनते हैं ॥ ५ ॥

नास्ति। तस्मात्कर्मिणो देवानामुपभोग्या अपि सन्तः सुखिनो देवैः क्रीडन्ति। शरीरं च तेषां सुखोपभोगयोग्यं चन्द्रमण्डल आप्यमारभ्यते। तदुक्तं पुरस्ताच्छ्रद्धाशब्दा आपो द्युलोकाग्नौ हुताः सोमो राजा संभवतीति। ता आपः कर्मसमवायिन्य इतरैश्च भूतैरनुगता द्युलोकं प्राप्य चन्द्रत्वमापन्नाः शरीराद्यारम्भिका इष्टाद्युपासकानां भवन्ति। अन्त्यायां च शरीराहुतावग्नौ हुतायामग्निना दह्यमाने शरीरे तदुत्था आपो धूमेन सहोर्ध्वं यजमानमावेष्ट्य चन्द्रमण्डलं प्राप्य कुशमृत्तिकास्थानीया बाह्यशरीरारम्भिका भवन्ति। तदारब्धेन च शरीरेणेष्टादिफलमुपभुञ्जाना आसते ॥४॥

यावत्तदुपभोगनिमित्तस्य कर्मणः क्षयः संपतन्ति येनेति संपातः कर्मणः क्षयो

मुख्योपभोगः संभवतीत्याशङ्क्याऽऽह—शरीरं चेति। कथमपां चन्द्रलोके तद्देहारम्भकत्वं तदाह—तदुक्तमिति। अथापां सोमत्वमेवात्र प्रतीयते नतु कर्मिदेहारम्भकत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—ता आप इति। कर्मसमवायिनीनामपां कर्मापूर्वद्वारा यजमानदेहप्रतिष्ठानां कथं द्युलोकप्रवेशादि संभवतीत्याशङ्क्याऽऽह—अन्त्यायां चेति। अद्भिरारब्धस्य शरीरस्य भोगायतनत्वं दर्शयति—तदारब्धेनेति ॥४॥

तद्देवानामन्नमित्यादि व्याख्याय तस्मिन्नित्यादि व्याचष्टे—यावदिति। चन्द्रलोकस्तच्छब्दार्थः। यावत्संपातमुषित्वेति श्रूयते कथमन्यथा व्याख्यायते तत्राऽऽह—संपतन्तीति। पुनःशब्दप्रयोगस्य

है। अन्न का उपकरण शब्द के पर्याय के रूप में प्रयोग देखा जाता है। जैसे राजाओं के लिए स्त्रियाँ अन्न हैं, पशु अन्न हैं एवं वैश्य अन्न हैं इत्यादि। स्त्री आदि का पुरुष के उपभोग्य होने पर भी इष्टादि कर्मों का स्वयं कोई उपभोग नहीं है। इसलिए कर्मी लोग देवताओं के उपभोग्य होकर भी सुखपूर्वक देवताओं के साथ क्रीडा करते हैं। उनके लिए सुखोपभोग करने के लिए चन्द्रमण्डल से जलीय शरीर प्राप्त होता है। इसीसे पहले श्रुति में कहा है—श्रद्धाशब्दवाच्य जल होमे गए द्युलोकाग्नि में राजा सोम उत्पन्न होता है। कर्मसमवायी वे जल अन्य भूतों के साथ द्युलोक को प्राप्त कर चन्द्रभाव को ग्रहण कर इष्टादि कर्म करने वालों के शरीरादि को प्रारम्भ करते हैं। अन्तिम शरीराहुति को अग्नि में होमे जाने पर शरीर के अग्नि में जल जाने पर, उससे उत्पन्न जल धूम से ऊपर यजमान को आवेष्टित कर चन्द्रमण्डल को प्राप्त कर कुशमृत्तिकास्थानीय बाह्य शरीर से आरम्भ होते हैं। जल से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यावत्संपातं यावत्कर्मणः क्षय इत्यर्थः । तावत्तस्मिंश्चन्द्रमण्डल उषित्वाऽथानन्तरमेव वक्ष्यमाणमध्वानं मार्गं पुनर्निवर्तन्ते । पुनर्निवर्तन्त इति प्रयोगात्पूर्वमप्यसकृच्चन्द्रमण्डलं गता निवृत्ताश्चाऽऽसन्निति गम्यते । तस्मादिह लोक इष्टादिकर्मोपचित्य चन्द्रं गच्छन्ति । तत्क्षये चाऽऽवर्तन्ते । क्षणमात्रमपि तत्र स्थातुं न लभ्यते । स्थितिनिमित्तकर्मक्षयात् । स्नेहक्षयादिव प्रदीपस्य ।

तत्र किं येन कर्मणा चन्द्रमण्डलमारूढस्तस्य सर्वस्य क्षये तस्मादवरोहणं किं वा सावशेष इति । किं ततः । यदि सर्वस्यैव क्षयः कर्मणश्चन्द्रमण्डलस्थस्यैव मोक्षः प्राप्नोति । तिष्ठतु तावत्तत्रैव मोक्षः स्यान्न वेति । तत आगतस्येह शरीरोपभोगादि न संभवति । ततः शेषेणेत्यादि[1]स्मृतिविरोधश्च स्यात् । नन्विष्टापूर्तदत्तव्यतिरेकेण

तात्पर्यमाह—पुनरिति । अथेत्यादिवाक्यार्थमुपसंहरति—तस्मादिति । तच्छब्दपरामृष्टं हेतुं स्पष्टयति—स्थितीति । यथा दीपस्य स्नेहक्षये स्थितिनिमित्ताभावादस्थितिस्तथा चन्द्रलोके स्थितिनिमित्तस्येष्टादेर्भोगेन क्षयात्तत्र स्थित्यसंभवादावृत्तिरेवेत्यर्थः ।

तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वेत्यत्र विचारयति—तत्रेति । तस्य चन्द्रमण्डलप्रापकस्यातिरिक्तस्य सर्वस्य कर्मणः क्षये सतीति यावत् । सावशेषो भुक्तात्कर्मणः सकाशादतिरिक्तेन केनचित्कर्मणा सहितः सन्नित्यर्थः । पक्षद्वयेऽपि फलं पृच्छति—किं तत इति । तत्राऽऽद्यं पक्षं पूर्वपक्षिमुखेन(ण) प्रतिक्षिपन्नादौ तत्फलमाह—यदीति । तत्रैव दूषणान्तरमाह—तिष्ठत्विति । चन्द्रमण्डलं सप्तम्यर्थः । ततश्चन्द्रमण्डलादित्येतत् । इहेत्येतल्लोकोक्तिः । आदिपदं शुभाशुभकर्मानुसारिसर्वव्यापारसंग्रहार्थम् । न केवलं सर्वकर्मक्षयपक्षे मुक्तिरेव विरुध्यते किंतु स्मृतिश्चेत्याह—तत इति । चन्द्रलोके भोक्तव्यस्य कर्मणो भोगेन क्षयादूर्ध्वं शेषेणानुपभुक्तेन कर्मणा जन्म प्रतिपद्यन्त इत्याद्या स्मृतिः सर्वकर्मक्षयपक्षे विरुध्यत इत्यर्थः । सर्वकर्मक्षयपक्षे पूर्वपक्षिणाऽन्यथावादिना प्रतिक्षिप्ते सावशेषपक्षमुत्तरवादी प्रतिपद्यते—नन्विति ।

प्रारम्भ हुए शरीर से इष्टादि कर्मों के फल का उपभोग करते हुए स्थित रहता है ॥ ४ ॥

जब तक उस चन्द्रलोक के उपभोग के निमित्त कर्मों का क्षय नहीं हो जाता; तब तक वे चन्द्रलोक में निवास करते हैं । इसके पश्चात् जिस मार्ग से आए थे, उसी मार्ग से पुनः लौट आते हैं । "पुनः लौट आते हैं" इस प्रयोग से ऐसा ध्वनित होता है कि पहले भी चन्द्रलोक में वे बार-बार जाते रहे । इसलिए इस लोक में इष्टादि कर्मों (के पुण्य) को संचित कर चन्द्रलोक को जाते हैं और उन कर्मों के क्षय हो जाने के बाद पुनः लौट आते हैं । इसके पश्चात् तो वहाँ एक क्षण भी रहने नहीं मिलता क्योंकि स्थिति के हेतुभूत कर्मों का क्षय हो जाता है, जिस प्रकार दीप में तेल न रहने पर बाती बुझ जाती है ।

अच्छा यह बतलाइए कि जिस कर्म से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, उस कर्म के पूर्णतः क्षय हो जाने पर चन्द्रलोक से पतन होता है अथवा कुछ अन्य कर्म भी भोगने के लिए अवशिष्ट रहते

१. स्मृतीति—यथाह गौतमः "वर्णा आश्रमाश्च स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्यकर्मफलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजातिकुलरूपायुः श्रुतवृत्तवित्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यन्त" इति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्यलोके शरीरोपभोगनिमित्तानि कर्माण्यनेकानि संभवन्ति न च तेषां चन्द्रमण्डल उपभोगः । अतोऽक्षीणानि तानि । यन्निमित्तं चन्द्रमण्डलमारूढस्तान्येव क्षीणानीत्यविरोधः । शेषशब्दश्च सर्वेषां कर्मत्वसामान्यादविरुद्धः । अत एव च तत्रैव मोक्षः स्यादिति दोषाभावः । विरुद्धानेकयोन्युपभोगफलानां च कर्मणामेकैकस्य जन्तोरारम्भकत्वसंभवात् । न चैकस्मिञ्जन्मनि सर्वकर्मणां क्षय उपपद्यते । ब्रह्महत्यादेश्चैकैकस्य कर्मणोऽनेकजन्मारम्भकत्वस्मरणात । स्थावरादिप्राप्तानां चात्यन्तमूढानामुत्कर्षहेतोः

तान्यपि चन्द्रमण्डले भुक्तान्येवेति नावशेषोऽस्तीत्याशङ्क्याऽऽह—न चेति । न हि सर्वकर्मवशाच्चन्द्रमण्डलप्राप्तिरिति भावः । तर्हि चन्द्रमण्डले कर्मफलोपभोगाभावादलं तदारोहेणेत्याशङ्क्याऽऽह—यन्निमित्तमिति । अविरोधश्चन्द्रमण्डले भोगस्य शेषकर्मसद्भावस्य चेति शेषः । यत्तु ततः शेषेणेत्यादिस्मृतिविरोध इति तत्राऽऽह—शेषशब्दश्चेति । निःशेषेष्वपि भुक्तेषु कर्मस्वभुक्तकर्मसु शेषशब्दो न विरुध्यतेऽभुक्तानां कर्मत्वस्य तुल्यत्वान्नात्र सावशेषपक्षे स्मृतिविरोधोऽस्तीत्यर्थः । यच्च चन्द्रमण्डलस्थस्यैव मोक्षः स्यादिति तत्राऽऽह—अत एवेति । शेषकर्मसद्भावादेवेति यावत् । इतश्च कर्मशेषसिद्धिरित्याह—विरुद्धेति । आरम्भकत्वसंभवादेकजात्युपभोग्यकर्मक्षयेऽपि कर्मशेषः संभवतीति शेषः । अथैकस्मिञ्जन्मनि सर्वाणि क्षीयन्ते कर्माशयस्यैकभविकत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति । ऐकभविकन्यायस्योपरिष्टान्निराकरिष्यमाणत्वादित्यर्थः । इतश्च शेषकर्मसिद्धिरित्याह—ब्रह्महत्यादेश्चेति । 'श्वसूकरखरोष्ट्राणा'मित्यादिस्मरणम् । घृतभाण्डस्नेहशेषवद्भुक्तस्यैव कर्मणः शेषात्पुनरावृत्तिर्भविष्यतीत्यत आह—स्थावरादीति ।

है। दोनों पक्ष की कल्पना का क्या फल है । यदि कर्म का सम्पूर्णतः क्षय होने पर चन्द्रलोक से पतन होता हो तो चन्द्रलोक में स्थित रहते हुए का ही मोक्ष होने लग जाएगा । इसे तो रहने दो कि वहीं मोक्ष होने लग जाएगा या नहीं, यहाँ तो एक और मुसीबत खड़ी हो जाती है कि चन्द्रलोक से आए हुए का इस लोक में शरीरोपभोग आदि संभव न हो सकेगा । तथा "चन्द्रलोक में भोक्तव्य कर्म को भोग से क्षय कर अवशिष्ट अनुपयुक्त कर्म से इस लोक में जन्म लेना पड़ता है" इत्यादि श्रुति में विरोध होने लगेगा । (सावशेष पक्ष में उत्तरवादी शङ्का करता है—) यूँ तो इष्ट, पूर्त और दत्त कर्म से भिन्न अन्य भी अनेक शरीरोपभोग के हेतुभूतकर्म मनुष्यलोक के होते हैं और उन सभी कर्मों के फलों का चन्द्रलोक में ही होता हो. ऐसा संभव नहीं है । इसलिए वे सभी कर्म क्षीण नहीं होते । जिनके कारण चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, वे ही कर्म क्षीण होते हैं; अन्य नहीं । इससे चन्द्रलोक में शेष कर्मों की सत्ता रह ही जाती है—यह निर्विरोध सिद्ध हो जाता है । स्मृति में जो कहा गया है कि अनुपभुक्त कर्म से जन्म प्राप्त होता है' यह सभी कर्मों को सामान्य रूप से प्रतिपादन करता है, इससे इसमें कोई विरोध नहीं आता । अतः चन्द्रमण्डलस्थ पुरुष का मोक्ष होता है—ऐसा मानने में कोई दोष नहीं । परस्पर विरुद्ध अनेक योनियों में उपभोग किए जाने वाले कर्मों के फलों का क्रमशः एक-एक करके जीव के जन्मों का आरम्भक बनना संभव है । (एक ही जीव में सम्पूर्ण कर्मों का समूह रहने के कारण भी) एक ही जन्म में सम्पूर्ण कर्मों के फलोपभोग का क्षय हो जाए—ऐसा कहना युक्तिसंगत नहीं है । स्मृति कहती है कि ब्रह्महत्या करने वाले को कुत्ता, सूकर, गदहा ऊँट, बकरी, भेड़, मृग,

---

१. इत्यादित्यादिना—अजाविमृगपक्षिणां चण्डालपुल्कसानां च ब्रह्महा योनिमृच्छतीति स्मृतिशेषो ग्राह्यः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्मण आरम्भकत्वासंभवात् । गर्भभूतानां च स्रंसमानानां कर्मासंभवे संसारानुपपत्ति
तस्मान्नैकस्मिञ्जन्मनि सर्वेषां कर्मणामुपभोगः ।

यत्तु कैश्चिदुच्यते सर्वकर्माश्रयोपमर्देन प्रायणे कर्मणां जन्मारम्भकत्वम् ।
कानिचित्कर्माण्यनारम्भकत्वेनैव तिष्ठन्ति कानिचिज्जन्माऽऽरभन्त इति नोपपद्य
मरणस्य सर्वकर्माभिव्यञ्जकत्वात्स्वगोचराभिव्यञ्जकप्रदीपवदिति । तदसत् । सर्व
सर्वात्मकत्वाभ्युपगमात् । न हि सर्वस्य सर्वात्मकत्वे देशकालनिमित्तावरुद्धत्वात्सर्व

शेषकर्मसिद्धौ हेत्वन्तरमाह—गर्भभूतानामिति । कर्मशेषसद्भावमुपसंहरति—तस्मादिति । एकस्य
कर्मणोऽनेकजन्महेतुत्वं तच्छब्दार्थः ।

मतान्तरमुत्थापयति—यत्त्विति । यावत्प्रवृत्तफलं कर्म न क्षीयते तावत्प्रवृत्तिप्रतिबन्धादन्
कर्माणि स्वफलं नाऽऽरभन्ते । मरणकाले तु प्रतिबन्धकाभावात्सर्वकर्माश्रयसंघातोपमर्देन तेषामु
शरीरारम्भकत्वमविरुद्धमित्यर्थः । तथाऽपि कथं शेषकर्मसद्भावासिद्धिरित्यत आह—तत्रेति । अनार
कर्मणां सर्वेषामुत्तरशरीरारम्भकत्वे सतीति यावत् । प्रायणकाले यानि कर्माण्यभिव्यक्तानि तान्येवो
शरीरारम्भकाणीतरेषां तु न शरीरारम्भकत्वमिति दूषयति—तदसदिति । [1]मधुब्राह्मणोक्तेन न्या
सर्वस्य सर्वात्मकत्वाङ्गीकाराद्देहस्यापि तथात्वान्न सर्वात्मनोपमर्दोपपत्तिरित्यर्थः । उक्तमर्थमुपपाद
सामान्यन्यायमाह—न हीति । सर्वं सर्वस्य कारणं कार्यं चेति [2]न्यायेन सर्वस्य सर्वात्मकत्वे नि

चण्डाल व पुल्कस योनियों की प्राप्ति होती है—इस प्रकार एक-एक कर्म के लिए अनेक जन्मों
आरम्भ होना सिद्ध है । स्थावरादि अत्यन्त मूढ योनियों को प्राप्त करने वालों के लिए उत्कर्ष के लि
कर्मों का आरम्भकत्व होना संभव नहीं है । गर्भ में प्रवेश होने वाले एवं इससे विमुक्ति पाने की इ
वाले चेतन प्राणियों के नियन्त्रण के लिए कर्म की सत्ता न मानने पर तो संसार की उपलब्धि
समाप्त हो जाएगी । इससे सिद्ध होता है कि एक ही जन्म में सभी कर्मों का उपभोग नहीं हुआ कर

(मतान्तर निरूपण करते हैं—) एवं कुछ दार्शनिक तो ऐसा कहते हैं कि मरणकाल उप
होने पर (कर्मप्रवृत्ति के प्रतिबन्धक के अभाव होने से) समस्त कर्मों का आश्रयसंघात का नाश हो
कर्मों का उत्तर शरीराम्भकत्व रूप से नहीं रहते हों एवं कुछ जन्म को आरम्भ करते हों; ऐसा क
नहीं बनता । जिस प्रकार प्रदीप अपने क्षेत्र की वस्तुओं को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार मरण
में अभिव्यक्त सभी कर्म आरम्भक होते हैं । (उत्तरवादी कहता है—) ऐसा कहने में दोष है क्यों
सभी को सर्वात्मक स्वीकार कर देह को भी वैसा मानने से सर्वात्मा का बाध नहीं होगा । 'सभी
समस्त जड़ चेतन जगत् का कार्य एवं कारण है'' इस न्याय से सभी के सर्वात्मक सिद्ध होने से
काल एवं निमित्त के अवरोध से किसी के किसी भी समय बाध होने से सर्वात्मा का बाध होने

१. मधुब्राह्मणेति—"इयं पृथिवी सर्वेषां भूतानां मधु अस्यै पृथिव्यै सर्वाणि भूतानि मधु य इति" बृ. उ.
मधुब्राह्मणम् । अत्र मधुशब्दः कार्यपरस्तथा चेयं पृथिवी ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानां प्राणिनां कार्यं सर्वप्राणि
जनितत्वात् । सर्वाणि भूतानि चास्याः कार्यमित्यर्थः । २. तत्रोक्तो न्यायोऽनुमानं तथाहि सर्वं सर्व
सर्वकारणत्वान्मूलकारणवदिति । स्पष्टं चेदं मधुब्राह्मणीयप्रथमपर्यायव्याख्याने २४ वार्तिके । ३. न्यायेनं
मधुब्राह्मणोक्तेनैवेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नोपमर्दः कस्यचित्क्वचिदभिव्यक्तिर्वा सर्वात्मनोपपद्यते । तथा कर्मणामपि साश्रयाणां भवेत् । यथा च पूर्वानुभूतमनुष्यमयूरमर्कटादिजन्माभिसंस्कृता विरुद्धानेककवासना मर्कटत्वप्रापकेन (ण) कर्मणा मर्कटजन्माऽऽरभमाणेन नोपमृद्यन्ते तथा कर्माण्यप्यन्य-जन्मप्राप्तिनिमित्तानि नोपमृद्यन्त इति युक्तम् । यदि हि सर्वाः पूर्वजन्मानुभववासना उपमृद्येरन्मर्कटजन्मनिमित्तेन कर्मणा मर्कट जन्मन्यारब्धे मर्कटस्य जातमात्रस्य मातुः शाखायाः शाखान्तरगमने मातुरुदरसंलग्नत्वादिकौशलं न प्राप्नोति । इह जन्मन्यन-भ्यस्तत्वात् । न चातीतानन्तरजन्मनि मर्कटत्वमेवाऽऽसीत्तस्येति शक्यं वक्तुम् । "तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते पूर्वप्रज्ञा च" इति श्रुतेः । तस्माद्वासनावन्नाशेषकर्मोपमर्द इति शेषकर्मसंभवः । यत एवं तस्माच्छेषेणोपभुक्तात्कर्मणः संसार उपपद्यत इति न

सति कस्यचित्क्वचित्सर्वात्मनोपमर्दस्तथाऽभिव्यक्तिर्वा नोपपद्यते । प्रतीयमानोपमर्दादेर्देशविशेषादि-कृतत्वादित्यर्थः । उक्तन्यायं प्रकृते योजयति—तथेति । इतश्च कर्मशेषः संभवतीति [1]क्रमवत्तायां दृष्टान्त-माह—यथा चेति । पूर्वं क्रमेणानुभूतानि यानि मनुष्यादिजन्मानि तैरभिसंस्कृताः संपादिता विरुद्धा या भूयस्यो वासनास्तज्जातिविशेषप्रापकेन(ण) कर्मणा तस्मिन्नारभ्यमाणे न निरुध्यन्त इत्यर्थः । दार्ष्टान्तिकमाह—तथेति । दृष्टान्तं विवृणोति—यदि हीति । व्यवहितवासनोच्छेदेऽपि ना[2]व्यवहित-देशोच्छिद्यते तथा चानन्तरजन्मोत्थवासनासामर्थ्यान्मर्कटशिशोर्यथोक्तकौशलमविरुद्धमित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति । किंच पूर्वप्रज्ञा चेत्यविशेषेण पूर्वजन्मार्जितवासना जीवमनुगच्छतीति श्रवणादव्यवहित-पूर्वजन्मवासनैव तमन्वेतीति न शक्यं विशेषतो वक्तुमित्याह—तं विद्येति । दृष्टान्तमुपपाद्य दार्ष्टान्तिकं निगमयति—तस्मादिति । शेषकर्मसद्भावे फलितमाह—यत इति । उपभुक्तात्कर्मणः शेषेणेति संबन्धः ।

जाएगा एवं अभिव्यक्ति से सर्वात्मा की उपलब्धि होने लग जाएगी । इस प्रकार आश्रययुक्त कर्मों का भी बाध होने लग जाएगा । जिस प्रकार पूर्वानुभूत मनुष्य मयूर बन्दर आदि योनियों में पड़ हुए संस्कारों से परस्पर विरुद्ध अनेक वासनाएँ बन्दर योनि के प्रापक कर्म से बन्दर जन्म के आरम्भक होने से समाप्त नहीं की जा सकती, उसी प्रकार अन्यान्य जन्मों के प्राप्ति निमित्तक कर्म भी समाप्त नहीं किए जा सकते, यह कहना उचित है । यदि पूर्व जन्मों में अनुभव की हुई समस्त वासनाएँ समाप्त होने लग जाएँ, तब तो बन्दर के जन्म के प्रापक कर्म से बन्दर के जन्म के आरम्भ में माता से उत्पन्न होते ही बन्दर का एक शाखा से दूसरी शाखा में जाना एवं अपनी माँ के पेट में चिपट जाना आदि कौशल उपलब्ध न हो सकेंगे क्योंकि उनका इस जन्म में तो अभ्यास ही नहीं किया गया । न ही यह कहा जा सकता है, वह पूर्व एवं बाद के जन्म में बन्दर ही था । "उस जीव के साथ विद्या, कर्म पूर्व जन्मार्जित वासना संग में ही जाती है" ऐसा श्रुति कहती है । इसलिए वासना की तरह समस्त कर्मों का बाध न होने से कुछ कर्मों का शेष रहना संभव है । ऐसा होने से उपभुक्त कर्म से अवशिष्ट

---

१. क्रमवत्तायामिति—नानाविधसुखदुःखफलकर्मणामपर्यायेण प्रायशोऽभिव्यक्तिश्चेत्फलाभिमुख्यलक्षणत्वाद-भिव्यक्तेर्युगपत्तत्तत्फलभोगप्रसङ्गात्तस्य चादृष्टेस्तत्तत्प्रबलकर्मप्रतिबन्धध्वंसमपेक्ष्य क्रमेणैव तत्तत्कर्माभिव्यक्ता-वित्यर्थः । २. अव्यवहितदेशा वासनेति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कश्चिद्विरोधः ।

कोऽसावध्वा यं प्रति निवर्तन्त इत्युच्यते । यथेतं यथागतं निवर्तन्ते । मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमिति गमनक्रम उक्तो न निवृत्तिः । किं तर्ह्याकाशाद्वायुमित्यादि, कथं यथेतमित्युच्यते । नैष दोषः । आकाशप्राप्तेस्तुल्यत्वात्पृथिवीप्राप्तेश्च । न चात्र यथेतमेवेति नियमोऽनेवंविधमपि निवर्तन्ते पुनर्निवर्तन्त इति तु नियमः । अत उपलक्षणार्थमेतद्यथेतमिति । अतो भौतिकमा...

कश्चिदिति । [1]श्रौतो वा स्मार्तो वा [2]यौक्तिको वा लौकिको वेत्यर्थः ।

एतमेवाध्वानमिति प्रकृतमध्वानं प्रश्नपूर्वकं विशदयति—कोऽसावित्यादिना । यथेतमित्... माक्षिपति—नन्विति । किं यथेतमित्येतदेव न संभवति किं वा यथेतमेवेति नियमो नोप... तत्राऽऽद्यं दूषयति—नैष दोष इति । द्वितीयं प्रत्याह—न चेति । अत्रेति निवृत्तिरुक्ता । अनेवंविधमपि... यथा गतिक्रमो दर्शितो न तथा निवृत्तिर्नियता किं तु विधान्तरेणापि संभवतीत्यर्थः । निवृत्तेः... नियमाभावे [3]कीदृशो नियमो विवक्षित इत्याशङ्क्याऽऽह—पुनरिति । केनाभिप्रायेण तर्हि यथेतमित्... मत आह—अत इति । गतिक्रमवन्निवृत्तिक्रमे नियमाभावोऽतःशब्दार्थः । [4]उक्तं च यथेतमनेवं... निवृत्तिनियमे फलितमाह—अत इति । परमात्मानं व्यावर्तयितुं भौतिकमित्युक्तम् । कथं पूर्वसिद्धा... तादात्म्यापत्तिरवरोहतां सिध्यतीत्याशङ्क्य तत्साम्यगमनमेव तद्भावापत्तिरित्युपचर्यते [5]साभाव्या...

रहे कर्म से संसार की प्राप्ति होती है—यह श्रुति, स्मृति, युक्ति एवं लोक व्यवहार से सिद्ध हो जाता...

वह कौन-सा मार्ग है जिससे गया हुआ लौटकर आता है—इस पर कहा जाता है। ... क्रम जिस प्रकार बताया कि मासाभिमानी देवता से पितृलोक, पितृलोक से आकाश, आकाश... चन्द्रलोक जाता है, वैसा लौटने का क्रम नहीं है। लौटते समय तो आकाश से वायु इत्यादि क्र... फिर गये हुए मार्ग के समान लौटकर आता है—ऐसा क्यों कहा है। इसमें कोई दोष नहीं है क्... आकाश प्राप्ति एवं पृथिवी प्राप्ति की समानता है। दूसरे यहाँ यथागत मार्ग से लौटना कोई नि... नहीं है, लौटकर तो दूसरे मार्ग से भी आया जा सकता है। जहाँ तक लौटने का संबन्ध है, यह तो नि... है ही। गति क्रम के समान निवृत्तिक्रम न होने से "पूर्वागत मार्ग से ही लौट आता है" यह... उपलक्षण के लिए है। इसलिए परमात्मा की व्यावृति कर भौतिक आकाश को प्राप्त होते हैं। ... चन्द्रलोक में उनके शरीराम्भक जल हैं वे उन उपभोग निमित्तक कर्मों के विलय होने पर विली...

१ श्रौत इति—तद्य इह रमणीयचरणा इति श्रुतिसंबन्धी । स्मार्तः ततः शेषेणेति, श्वसूकरखरोष्ट्र... च स्मृतिप्रयुक्तः । २. यौक्तिकः तदसदित्यादिनोक्तयुक्तिमूलः । लौकिकः शुभाशुभकर्मानुसारी प्रत्य... सर्वव्यापारो लोकस्तदुत्थो वा विरोधो नास्माकं कर्मशेषसद्भाववादिनामित्यर्थः । इत्यादिनेति इत्यत आ... मरणस्येत्यादिग्रन्थेनेत्यर्थः । ३. कीदृशो नियम इति—अथैतमेवेत्येवकारलभ्य इत्यर्थः । ४. ... सूत्रकृद्भिरिति शेषः । तथा च सूत्रम् "कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च" ब्र. सू. ३।१।८ ५. साभाव्येति—"तत्साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः" ब्र. सू. ३।१।२३ इति सूत्रादित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो

अभ्र होकर वह (वर्षा करने में समर्थ) मेघ होता है, मेघ होकर ऊँचे स्थानों में बरसता है। उसके बाद वे जीव इस लोक में धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल और उड़द इत्यादि होकर उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् यह निष्क्रमण निश्चय हीं उसके लिये अत्यन्त कष्ट प्रद होता है। जो-जो जीव उस

तावत्प्रतिपद्यन्ते। यास्तेषां चन्द्रमण्डले शरीरारम्भिका आप आसंस्तास्तेषां तत्रोपभोगनिमित्तानां कर्मणां क्षये विलीयन्ते। घृतसंस्थानमिवाग्निसंयोगे ता विलीना अन्तरिक्षस्था आकाशभूता इव सूक्ष्मा भवन्ति। ता अन्तरिक्षाद्वायुर्भवन्ति। वायुप्रतिष्ठा वायुभूता इतश्चामुतश्चोह्यमानास्ताभिः सह क्षीणकर्मा वायुभूतो भवति। वायुर्भूत्वा ताभिः सहैव धूमो भवति। धूमो भूत्वाऽभ्रमब्भरणमात्र रूपो भवति ॥५॥

अभ्रं भूत्वा ततः सेचनसमर्थो मेघो भवति मेघो भूत्वोन्नतेषु प्रदेशेष्वथ प्रवर्षति। वर्षधारारूपेण शेषकर्मा पततीत्यर्थः। त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इत्येवंप्रकारा जायन्ते। क्षीणकर्मणामनेकत्वाद्बहुवचननिर्देशः। मेघादिषु पूर्वेष्वेकरूप-

---

रिति न्यायादित्याह—यास्तेषामिति। घृतस्य संस्थानं काठिन्यम्। तास्वाकाशभूतासु तत्परिवेष्टिताः कर्मिणोऽध्यवरोहन्तस्तद्भूता इव भवन्तीत्यर्थः। आकाशाद्वायुमित्यस्यार्थं साधयति—ता अन्तरिक्षादिति ॥ ५ ॥

उन्नतेषु समुद्रादिव्यतिरिक्तेषु प्रदेशेष्विति यावत्। त इत्यनुशयिनो निर्दिश्यन्ते। इहेति पृथिवी कथ्यते। कथमस्मिन्वाक्ये बहुवचनेनानुशयिनां निर्देशः कृतस्तत्राऽऽह—क्षीणकर्मणामिति। कथं तर्हि मेघो भूत्वा प्रवर्षतीत्यादावेकवचननिर्देशस्तत्राऽऽह—मेघादिष्विति। ये पूर्वे मेघादयो

जाते हैं। घृतसंस्थान के काठिन्य की तरह अग्निसंयोग होने पर वे विलीन हुए अन्तरिक्षस्थ आकाश की तरह सूक्ष्म हो जाते हैं। वे अन्तरिक्ष से वायु को प्राप्त होते हैं। वायु में प्रतिष्ठित वायुरूप इधर-उधर ले जाया जाता हुआ उनके साथ कर्मों के क्षीण होने पर वायु स्वरूप हो जाता है, वायु होकर उन्हीं के साथ धूम हो जाता है। धूम होकर उनके साथ जल भरा बांदल बनता है ॥ ५ ॥

बादल होकर जल बरसाने वाला मेघ होता है, मेघ होकर समुद्र व्यतिरिक्त उन्नत प्रदेशों में बरसता है अर्थात् वृष्टि की धारा रूप से कर्म समाप्त हो गिरता है। वे वृष्टि की बूँदें इस पृथिवीलोक में धान, जौ, औषधि, वनस्पति, तिल, उड़द; इस प्रकार उत्पन्न होती हैं। इन योनियों में अनेक कर्मों के क्षीण होने के कारण यहाँ मन्त्र में बहुवचन का निर्देश है। मेघादिकों पूर्वोक्तों में तो एक रूप होने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति ॥६॥

अन्न को खाता है और जो वीर्य सेचन करता है वह तद्रूप ही हो जाता है। (यदि ऊर्ध्वरेता, बा नपुंसक या वृद्ध पुरुष ने उस अन्न को खाया हो, तो वह उनके उदर में ही नष्ट हो जाता है। क चित् वीर्य सेचन करने वालों के द्वारा खाये जाने पर वह अपने कर्मों की वृत्ति का लाभ कर पाता है अतएव अन्नरूप में आ जाने के बाद वहाँ से उसका निकलना कठिन माना गया है) ॥६॥

त्वादेकवचननिर्देशः । यस्माद्गिरितटदुर्गनदीसमुद्रारण्यमरुदेशादिसंनिवेशसहस्रा वर्षधाराभिः पतितानाम्। अतस्तस्माद्धेतोर्वै खलु दुर्निष्प्रपतरं दुर्निष्क्रमणं दुर्निःसरण यतो गिरितटादुदकस्रोतसोह्यमाना नदीः प्राप्नुवन्ति ततः समुद्रं ततो मकरा भिर्भक्ष्यन्ते। तेऽप्यन्येन। तत्रैव च सह मकरेण समुद्रे विलीनाः समुद्राम्भोभिर्ज धरैराकृष्टाः पुनर्वर्षधाराभिर्मरुदेशे शिलातटे वाऽगम्ये पतितास्तिष्ठन्ति कदाचिद्व्या मृगादिपीता भक्षिताश्चान्यैः। तेऽप्यन्यैरित्येवंप्रकाराः परिवर्तेरन्। कदाचिदभक्ष्

नभोन्तास्तेषु प्रत्येकमभिमानिदेवतानामेकरूपत्वात्तदुपश्लिष्टानामनुशयिनामप्येकवचनेन निर्देशो इत्यर्थः। अतो वै खल्वित्यादिवाक्यं व्याचष्टे—यस्मादिति । अनुशयिनां दुःशकं निःसरणमित् प्रपञ्चयति—यत इत्यादिना । मकरादिभिर्भक्षितानामनुशयिनां तेभ्यस्तत्समानजातीयत्वेन समुद्र भविष्यतीति चेन्नेत्याह—तेऽपीति । मकरादयोऽपि जलचारिभिरन्यैर्भक्ष्यन्ते तथा च समुद्रे पति नामनुशयिनां तत्रैव लयः स्यादित्यर्थः। नन्वेवमनुशयिनः समुद्रे लीना न ततः पुनरुद्धर्तुं शक्यन्ते त च कृतविनाशः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—जलधरैरिति । समुद्राम्भोभिरिति तृतीया सहार्थे। सर्पव्याघ्रोपभुक्तानामनुशयिनां तत्समानजातीयदेहभोगः स्यादिति चेन्नेत्याह—भक्षिताश्चेति येस्तर्हि सर्पादयो भक्ष्यन्ते तेभ्यस्तत्समानजातीयत्वेनानुशयिनामुद्भवः स्यादिति चेन्नेत्याह—तेऽपी तथाऽपि यथोक्तरीत्या परिवर्तनात्ते रेतःसिग्योगमपि यदा कदाचित्प्रपद्येरन्निति चेन्नेत्याह—कदा

कारण एकवचन का निर्देश है। क्योंकि मेघ से लेकर आकाश पर्यन्त प्रत्येक के अभिमानी देवता हैं तथा पर्वत, तट, दुर्ग, नदी, समुद्र, वन मरुदेशादि में प्रविष्ट हजारों वर्षा की धाराएँ पड़ती है। उन सबको उन-उन स्थानों से उसको निकालना अत्यन्त कठिन है क्योंकि पर्वत तट से जलप्रवाह ले जाई जाती हुई वे धाराएँ नदियों को प्राप्त होती हैं, उसके बाद समुद्र में जा गिरती हैं, मगरमच्छ आदि उन्हें पी जाते हैं, उन मगरमच्छादिकों को भी अन्य जलचर जीव खा जाते हैं। फिर मगरमच्छ के सहित समुद्र में विलीन वे समुद्रजल के साथ बादलों में आकृष्ट की जाती हैं। फिर व की बूंदों से मरुस्थल अथवा अगम्य पर्वततट में वे पतित हुई दीख पड़ती हैं। कभी सर्प एवं मृगादि पी जाती हैं, उन्हें कोई अन्य भक्षण कर लेते हैं। सर्पादिकों को भक्षण करने वालों को खाने व हो जाते हैं, इस प्रकार परिवर्तन होता रहा है। कभी अभक्ष्य जड़ पदाथ रूप में उत्पन्न होकर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्थावरेषु जातास्तत्रैव [1]शुष्येरन् । भक्ष्येष्वपि स्थावरेषु जातानां रेतःसिग्देहसंबन्धो दुर्लभ बहुत्वात्स्थावराणामित्यतो दुर्निष्क्रमणत्वम् ।

अथवाऽतोऽस्माद्व्रीहियवादिभावाद्दुर्निष्प्रपतरं दुर्निर्गमतरम् । दुर्निष्प्रपतरमिति तकार एको लुप्तो द्रष्टव्यः । व्रीहियवादिभावो [2]दुर्निष्प्रपततरतस्मादपि दुर्निष्प्रपताद्रेतः-सिग्देहसंबन्धो दुर्निष्प्रपततरं इत्यर्थः । यस्मादूर्ध्वरेतोभिर्बालैः पुंस्त्वरहितैः स्थविरैर्वा भक्षिता अन्तराले शीर्यन्ते । अनेकत्वादन्नादानाम् । कदाचित्काकतालीयवृत्त्या रेतः-सिग्भिर्भक्ष्यन्ते यदा तदा रेतःसिग्भावं गतानां कर्मणो [3]वृत्तिलाभः । कथम् । यो यो ह्यन्नमत्त्यनुशयिभिः संश्लिष्टं रेतःसिग्यश्च रेतः सिञ्चत्यृतुकाले योषिति तद्भूय एव तदाकृतिरेव भवति । तदवयवाकृतिभूयस्त्वं भूय इत्युच्यते रेतोरूपेण योषितो

दिति । तथाऽपि भक्ष्येषु जातानां रेतःसिग्योगः सुलभः स्यादिति चेन्नेत्याह—भक्ष्येष्वपीति । इतिशब्दो यच्छब्देन पूर्वेण सबध्यते ।

पूर्वमतःशब्दो हेतुपरतया व्याख्यातः संप्रति व्रीह्याद्यवधिवाचकत्वेन तं व्याचष्टे—अथवेति । दुर्निष्प्रपततरमिति तकारसहिते पाठे सति विवक्षितमर्थमाह—व्रीहियवादीति । तत्र हेतुमाह—यस्मादिति । तर्हि तेषामन्तराले विशीर्णानां देहभागित्वाभावादनुशयवैयर्थ्यमित्याशङ्क्याऽऽह—कदाचिदिति । काकतालीयया वृत्त्या यादृच्छिकन्यायेनेति यावत् । अनुशयाख्यस्य कर्मणो भाविदेहा-रम्भौन्मुख्यं प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कथमित्यादिना । अनुशयिनो रेतःसिगाकारभाक्त्वे हेतुमाह—

सूखते रहते हैं। भक्ष्यों में भी स्थावरों में उत्पन्न होने पर वीर्यसिंचन करने वाला देहसंबन्ध दुर्लभ ही है क्योंकि स्थावरों की बहुलता प्रसिद्ध है, इससे यह निष्क्रमण अत्यन्त कठिन है।

अथवा इन धाराओं के धान, जौ आदि रूप में परिणत हो जाने पर उनको पुनः उनमें से निकालना कठिन है । मन्त्र में "दुर्निष्प्रपततर" के एक तकार को वैदिक प्रयोग से लुप्त कर दिया है। इससे यह अर्थ निकलता है कि धान-यवादि भाव का निष्क्रमण करना कठिन है वीर्य सेचनरूप देहसंबन्ध उससे भी कठिन है क्योंकि ऊर्ध्वरेता, बालक, नपुंसक अथवा पौरुषरहित वृद्ध ने उन अन्नों को खाया हो तो वे उनके उदर में ही विशीर्ण हो जाते हैं। अन्नाद अनेक हुआ ही करते हैं। कभी यादृच्छिक न्याय से जब रेतःसिक् मनुष्यों द्वारा खाए जाते हैं, तब रेतःसिग्भाव को प्राप्त हुए कर्म की फलोन्मुखता को प्राप्त होते हैं । अनुशयसंज्ञक कर्म भाविदेहारम्भक हैं क्योंकि जो-जो अन्न खाता है अनुशयी द्वारा मिश्रित पुरुष ऋतुकाल उपस्थित होने पर स्त्री में वीर्य का सेचन करता है वह पुनः उसकी आकृति में जन्म लेता है। उसके अवयव की आकृति द्वारा पुनः तुम संस्कृत हुए हो—ऐसा कहा जाता है। इस प्रकार अनुशयी रेतःसेचन करने वाला स्त्री के गर्भाशय में वीर्यरूप से प्रविष्ट हुआ

१. शुष्येयुः । २. दुःखेन निष्प्रपत्यते निर्गम्यतेऽस्मादिति दुर्निष्प्रपतः बाहुलकादपादानेऽत्र खन् . यद्वा निष्प्रपत्यत इत्यस्य निस्त्यज्यत इत्यर्थो धातूनामनेकार्थत्वात् । ३. फलौन्मुख्यम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गर्भाशयेऽन्तः प्रविष्टोऽनुशयी । रेतसो रेतःसिगाकृतिभावितत्वात् । "सर्वेभ्योऽङ्गेभ्य... संभूतम्" इति श्रुत्यन्तरात् । अतो रेतःसिगाकृतिरेव भवतीत्यर्थः ।

तथा हि । पुरुषात्पुरुषो जायते गोर्गवाकृतिरेव न जात्यत्यन्तराकृतिस्तस्मा... तद्भूय एव भवतीति । ये त्वन्येऽनुशयिभ्यश्चन्द्रमण्डलमनारुह्यैहैव पापकर्मभिर्व्री... हियवादिभावं प्रतिपद्यन्ते पुनर्मनुष्यादिभावं तेषां नानुशयिनामिव दुर्निष्प्रपतत्वं... कस्मात् । कर्मणा हि तैर्व्रीहियवादिदेह उपात्त इति तदुपभोगनिमित्त... व्रीह्यादिस्तम्बदेहविनाशे यथाकर्मार्जितं देहान्तरं नवं नवं जलूकावत्संक्रमन्ते सविज्ञा... एव "सविज्ञानो भवति सविज्ञानमेवान्ववक्रामति" इति श्रुत्यन्तरात् ।

रेतस इति । तस्य रेतःसिगाकृत्या [2]तदंशेन भावितत्वात्संस्कृतत्वात्तदङ्गसंभूतत्वात्तद्रूपेण गर्भा... मनुप्रविष्टोऽनुशयी रेतःसिगाकृतिर्भवतीत्यर्थः । रेतसो रेतःसिगङ्गसमुत्थत्वे प्रमाणमैतरेयकश्रुतिरि... सर्वेभ्य इति । रेतोरूपेण गर्भाशयं प्रविष्टस्य रेतःसिगाकारत्वमुक्तं निगमयति—अत इति ।

अनुशयिनो रेतःसिगाकारत्वे लौकिकानुभवमनुकूलयति—तथा हीति । चन्द्रस्थलस्था... नामवरोहतां व्रीह्यादिदेहसंश्लिष्टानां द्राघीयसा कालेन देहान्तरलाभश्चेत्तर्हि व्रीह्यादिदेहाभिमानि... मपि दुःशकं निष्क्रमणं व्रीह्यादिदेहसंबन्धाविशेषादित्यत आह—ये त्विति । व्रीह्यादिदेहसंबन्धावि... कुतस्तद्देहभाजां ततो निःसरणमशक्यं न भवतीत्याशङ्क्य विशेषमाह—कस्मादित्यादिना । [3]"शरी... [4]"कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः" इत्यादि श्रुतिस्मृत्योर्येषां कर्मनिमित्तं स्थावरं जन्म तेषां कर्म... एवावधिः । अवरोहतां तु कर्मासंकीर्तनाद्वैषम्यमित्यर्थः । यथा जलूका तृणात्तृणान्तरं दीर्घ... संक्रमते तथाऽननुशयिनो व्रीह्यादिदेहभाजोऽपि [5]तत्त्यागेन देहान्तरं गच्छन्तस्तद्विषयविज्ञानवन्त... गच्छन्तीत्यत्र बृहदारण्यकश्रुतिं प्रमाणयति—सविज्ञान इति ।

करता है क्योंकि वीर्य वीर्यसेचन करने वाले की आकृति से संस्कृत हुआ करता है । अन्यत्र भी... में भी कहा है "वीर्य वीर्यसेचन करने वाले के सभी अङ्गों से निकल कर तेजरूप में उत्पन्न हुआ... इसलिए वह वीर्यसेचन करने की आकृति ही हो जाता है ।

लोकव्यवहार से भी यही सिद्ध होता है कि पुरुष से पुरुषाकृति का जन्म होता है, गौ से... की आकृति का जन्म होता है; अन्य जाति की आकृति का जन्म नहीं होता । इसलिए ठीक है... कि पुनः उसी की आकृति के रूप में जन्म लेता है एवं जो दूसरे अनुशयिओं द्वारा बिना, चन्द्र... प्राप्त किए इसी लोक में घोर पापकर्मों से धान-यवादिभाव को प्राप्त होते हैं फिर मनुष्यादि भाव... प्राप्त होते हैं, उनका निष्क्रमण होना अनुशयिओं की तरह कठिन नहीं है क्योंकि उन्हें व्रीहि यव... भाव की प्राप्ति कर्मों से होती है । इसलिए उसका उपभोग का हेतु क्षय होने पर व्रीह्यादि स्तम्ब... के विनष्ट हो जाने से कर्मों के अनुरूप जलूका की तरह नूतन-नूतन देह में विज्ञानयुक्त होकर संक्र...

---

१. सविज्ञानमिति—अनन्तरं विशेषविज्ञानोद्भासितं देहान्तरं गच्छति प्राप्नोतीति यावत् । २. तदंशेनेति... रेतःसिचोऽङ्गेनेति यावत् । ३. शरीरजैरिति—"वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातितामि"ति स्मृतिः... ४. स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति । ५. तदिति—व्रीह्यादिदेहोक्तिः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यप्युपसंहृतकरणाः सन्तो देहान्तरं गच्छन्ति तथाऽपि स्वप्नवद्देहान्तरप्राप्ति-निमित्तकर्मोद्भावितवासनाज्ञानेन सविज्ञाना एव देहान्तरं गच्छन्ति। श्रुतिप्रामाण्यात्। तथाऽर्चिरादिना धूमादिना च गमनं स्वप्न इवोद्भूतविज्ञानेन लब्धवृत्तिकर्मनिमित्त-त्वाद्गमनस्य। न तथाऽनुशयिनां व्रीह्यादिभावेन जातानां सविज्ञानानामेव रेतःसिग्योषि-द्देहसंबन्ध उपपद्यते। न हि व्रीह्यादिलवनकण्डनपेषणादौ च सविज्ञानानां स्थितिरस्ति।

ननु चन्द्रमण्डलादप्यवरोहतां देहान्तरगमनस्य तुल्यत्वाज्जलूकावत्सविज्ञानतैव युक्ता। तथा सति घोरो नरकानुभव इष्टापूर्तादिकारिणां चन्द्रमण्डलादारभ्य प्राप्तो

अथोपसंहृतकरणानां विज्ञान कारणासंभवात्कथं सविज्ञानत्वं तत्राऽऽह—यद्यपीति। दृष्ट-कारणाभावेऽप्यदृष्टमेवैकं वासनात्मकं ज्ञानोत्पत्तौ निमित्तमिति तेन सविज्ञाना एव गच्छन्ति देहान्तर-मित्यत्र हेतुमाह—श्रुतिप्रामाण्यादिति। श्रुतिरत्र बृहदारण्यकश्रुतिः। यथा सविज्ञानानामेव व्रीह्यादीनां देहान्तरगमनं तथा ज्ञानिनामर्चिरादिना कर्मिणां धूमादिना च गमनं स्वप्नवदुद्भूतवासनात्मक-विज्ञानेन सविज्ञानानामेवेत्याह—तथेति। तेषां सविज्ञानत्वे हेतुमाह—लब्धवृत्तीति। अनुशयिनामपि तर्हि व्रीह्यादिषु संश्लिष्टानां रेतःसिगादिदेहसंबन्धः सविज्ञानानामेवेति चेन्नेत्याह—न तथेति। अनुपपत्तौ हेतुमाह—न हीति। व्रीह्यादिसंश्लिष्टानामनुशयिनां सविज्ञानत्वे तल्लवनादौ तज्जीववत्तेषामपि प्रवास-प्रसङ्गान्न रेतःसिग्देहसंबन्धः सिध्येदित्यर्थः।

व्रीह्यादिषु देहान्तरं गच्छत्सु सविज्ञानत्वोपलम्भादनुशयिष्वपि देहान्तरप्राप्तेरविशेषाद्युक्तं सविज्ञानत्वमिति शङ्कते—नन्विति। तृणात्तृणान्तरं प्रति जलूकागमनवदवरोहतामपि देहाद्देहान्तरं प्रति गमनस्य तुल्यत्वाद्व्रीह्यादिवद्युक्त सविज्ञानतेति योजना। अस्तु तेषां सविज्ञानत्वं का हानिरित्यत आह—तथा सतीति। इष्टापूर्तादिकारिणामन्तराले नरकानुभवे। तथा च सति तदनुष्ठानस्यानर्थार्थं

करते हैं। "वह विज्ञानयुक्त होता है, इसके अनन्तर विशेष विज्ञान से उद्भासित अन्य देह को प्राप्त करता है"—ऐसी बृहदारण्यक श्रुति भी है।

यद्यपि सभी इन्द्रियों का उपसंहार होने पर ही अन्य देह को प्राप्त करते हैं तथापि स्वप्न के समान देहान्तर प्राप्ति के हेतुभूत कर्मों से संस्कृत वासना ज्ञान से विज्ञानयुक्त ही देहान्तर की प्राप्ति करते हैं क्योंकि इस वासनात्मक अदृष्ट कारण में बृहदारण्यक श्रुति प्रमाण है। इसी प्रकार ज्ञानी अर्चिरादि मार्ग एवं कर्मकाण्डी धूममार्ग से संस्कृत विज्ञान से जाते हैं, यह भी स्वप्न के समान है। उत्क्रमण में लब्ध वृत्ति वाले कर्म ही प्रेरक हैं। अनुशयन करने वाले व्रीह्यादि भाव से उत्पन्न विज्ञान युक्त का ही वीर्यसेचक एवं स्त्री शरीर का सम्पर्क संभव नहीं है क्योंकि व्रीह्यादि में संश्लिष्ट अनुशयी की विज्ञानवत्ता होने पर उनके काटने, पीटने, पीसने आदि पर, जीव की तरह उनकी स्थिति संभव नहीं है।

(यहाँ शङ्का होती है—) चन्द्रलोक से देहान्तर गमन के लिए प्रवास करते समय जोंक की तरह विज्ञानवत्ता कल्पना करनी उचित ही है। ऐसा होने पर तो इष्टापूर्तादि शुभ कर्म करने वालों को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यावद्ब्राह्मणादिजन्म । तथा च सत्यनर्थायैवेष्टापूर्ताद्युपासनं विहितं स्यात् । श्रुते
प्रामाण्यं प्राप्तं वैदिकानां कर्मणामनर्थानुबन्धित्वात् ।

न वृक्षारोहणपतनवद्विशेषसंभवात् । देहाद्देहान्तरं प्रतिपित्सोः कर्मणो लब्धवृ
त्वात्कर्मणोद्भावितेन विज्ञानेन सविज्ञानत्वं युक्तम् । वृक्षाग्रमारोहत इव फलं जिघृक्षो
तथार्चिरादिना गच्छतां सविज्ञानत्वं भवेत् । धूमादिना च चन्द्रमण्डलमा[1]रुरुक्षताम्।
तथा चन्द्रमण्डलादवरुरुक्षतां वृक्षाग्रादिव पततां सचेतनत्वम् । यथा च मुद्गरा
भिहतानां तदभिघातवेदनानिमित्तसंमूर्छित[2]प्रतिबद्धकरणानां स्वदेहेनैव देशाद्देशान्त
नीयमानानां विज्ञानशून्यता दृष्टा तथा चन्द्रमण्डलान्मानुषादिदेहान्तरं प्रत्यवरुरु

विहितत्वे श्रेयःसाधनविषयककर्मकाण्डं विरुध्येतेत्याह—श्रुतेश्चेति ।

यथा बुद्धिपूर्वं वृक्षमारोहतां सविज्ञानत्वेऽपि तस्मादबुद्धिपूर्वं पततां न सविज्ञानत्वं विज्ञा
तथा चन्द्रमण्डलमारोहतां सविज्ञानत्वेऽपि ततोऽवरोहतां नैव तदस्ति । उद्भूतकर्माभावात् । इत्या
हावरोहयोर्ज्ञानाज्ञानविशेषसंभवान्नैवमिति परिहरति—न वृक्षेति । संग्रहवाक्यं विवृणोति—दे
दित्यादिना । चकाराद्गच्छतां सविज्ञानत्वं भवेदिति संबन्धः । अवरोहतां जीवानां सर्वथा विज्ञान
त्वमयुक्तं तेषां चैतन्यस्वाभाव्याद्वृक्षात्पततामपि विज्ञानमात्रमस्त्येवेत्याशङ्क्योदाहरणान्तरमा
यथा चेति । तेन मुद्गरादिना योऽभिघातस्तेन हेतुना यद्वेदनाख्यं निमित्तं तेन संमूर्छितानि संहृ

भी चन्द्रलोक से लेकर ब्राह्मणादि जन्म पर्यन्त घोर नरक का अनुभव करना पड़ेगा। तब
इष्टापूर्तादि का विधान निरर्थक हो जाएगा। इससे तो वैदिक कर्मों के अनर्थफलक होने से श्रुतियाँ
कर्मकाण्ड को श्रेय साधन विषय मानती हैं, अप्रमाणित हो जाएँगी।

उक्त शङ्का का परिहार किया जाता है—ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि यह भी
में चढ़ने और उतरने के समान है जो बुद्धि पूर्वक होता है। देह से देहान्तर जाने की इच्छा वाले
लिए कर्म से संस्कृत विज्ञान से विज्ञानयुक्त होना ठीक ही है क्योंकि कर्म की वृत्ति उपलब्ध होती
जिस प्रकार फल ग्रहण करने का इच्छुक वृक्ष के आगे-आगे चढ़ता है, उसी प्रकार अर्चिरादि मार्ग
जाने वालों की विशेष विज्ञानवत्ता होगी तथा धूमादि मार्ग से चन्द्रलोक जाने की इच्छा वाले
काण्डियों के लिए विज्ञानवत्ता सिद्ध हो जाएगी। चन्द्रलोक से नीचे आने की इच्छा वालों के लि
वृक्ष के अग्रभाग से गिरने वालों की तरह चेतनयुक्तता नहीं होगी। जैसे मुद्गर आदि से पीटे
वाले उसकी मार की वेदना से सम्मूर्छित हो निश्चेष्ट हो जाते हैं, अपनी देह से ही एक देश से दू
देश को ले जाए जाते हुए चेतनशून्य देखे जाते हैं, उसी प्रकार चन्द्रलोक से मनुष्यादि देहों को जाने
इच्छा वालों की चेतन शून्यता प्रसिद्ध है क्योंकि स्वर्ग भोग में हेतुक कर्मक्षय होने से उनका उ
शरीर नष्ट हो जाता है। इसलिए देहभाव के हेतु अपूर्व कर्म न त्यागकर वे जल उपहित जीव भूमि

---

१. आरुरुक्षतामित्यनपेक्षितं टीकाकृत् । २. प्रतिबद्धेत्येतदपि तथा ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वर्गभोगनिमित्तकर्मक्षयान्मृदिताब्देहानां प्रतिबद्धकरणानाम्। अतस्तेऽपरित्यक्तदेहबीजभूताभिरद्भिर्मूर्छिता इवाऽऽकाशादिक्रमेणेमामवरुह्य कर्मनिमित्तजातिस्थावरदेहैः संश्लिष्यन्ते प्रतिबद्धकरणतयाऽनुद्भूतविज्ञाना एव।

तथा लवनकण्डनपेषणसंस्कारभक्षणरसादिपरिणामरेतःसेककालेषु मूर्छितवदेव। देहान्तरारम्भकस्य कर्मणोऽलब्धवृत्तित्वात्। देहबीजभूताप्संबन्धापरित्यागेनैव सर्वास्ववस्थासु वर्तन्त इति जलूकावच्चेतनावत्त्वं न विरुध्यते। अन्तराले त्वविज्ञानं

प्रतिबद्धानि वा करणानि येषां तेषामिति यावत्। मृदितोऽभिनष्टो देहोऽम्मयः स्थूलो देहो येषां तेषां तत एव प्रतिबद्धकरणानां युक्ता विज्ञानशून्यतेति संबन्धः। यथोक्तदृष्टान्तवशाच्चन्द्रमण्डलादवरोहन्तो विज्ञानशून्याः सिध्यन्तीति निगमयति—अत इति। तथाऽपि मूर्छितानां स्थूलदेहसद्भावाद्देशान्तरगमनं युक्तम्। अवरोहतां तु तदभावे कथं व्रीह्यादिभावः संभवतीत्यत आह—अपरित्यक्तेति। न परित्यक्तं देहभावस्य बीजं कर्मापूर्वं याभिस्ताभिरद्भिरुपहिता जीवा मूर्छितवद्विज्ञानशून्या गमनादिक्रमेण पृथिवीं प्राप्य कर्मफलभूतजातिस्थावरशरीरैः संश्लिष्यन्त इति संबन्धः। स्थावरदेहसंबन्धित्वात्तद्गतजीववत्तदा सविज्ञानत्वं संभवतीत्याशङ्क्याऽऽह—प्रतिबद्धेति। व्रीह्यादिसंश्लेषावस्थायामनुशयिनां कर्मणोऽनुद्भूतवृत्तित्वात्करणानां च तत्र वृत्तिलाभाभावादनुद्भूतविज्ञानत्वं युक्तमित्यर्थः।

न केवलं व्रीह्यादिसंश्लेषकालेऽनुद्भूतविज्ञानत्वं किंतु व्रीह्यादेर्लवनादिकालेऽपीत्याह—तथेति। पाकः संस्कारः। रसादीत्यादिशब्देन शोणितमांसमेदोस्थिमज्जारेतांस्युच्यन्ते। तस्मिन्काले मूर्छितवदनुद्भूतविज्ञानत्वे देहाद्बहिर्निर्गतानां प्राग्देहान्तरप्राप्तेस्तदस्त्येवेत्यत्र हेतुमाह—देहेति। अलब्धवृत्तित्वादिति च्छेदः। कथं पुनरनुशयिनां विज्ञानशून्यत्वे तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्याऽऽत्मानमुपसंहरतीत्यादौ सचेतना जलूका दृष्टान्तत्वेनोपादीयते तत्राऽऽह—देहबीजभूतेति। सर्वास्ववस्थासु तासु तासु व्रीह्यादिसंश्लेषतल्लवनादिदशास्विति यावत्। न चेतनावत्त्वं जलूकादृष्टान्ते विवक्षितं किंतु [1]सातत्यमात्रमिति भावः। जलूकावत्त्वं जलूकासादृश्यमनुशयिनामित्यर्थः। आरोहतां सविज्ञानत्वमवरोहतां विज्ञानराहित्यपपाद्याऽऽरोहतामपि यावत्स्वस्थानेभ्यः करणान्युपसंहृत्य हृदयेऽवस्थानं तावदेव सविज्ञानत्वं न देहाद्बहिर्निर्गतानां प्राग्देहान्तरप्राप्तेस्तदस्त्यनुशयिनां तु चन्द्रमण्डलादवरुरुक्षतामपि न भाविदेहपर्यन्ता वासना दीर्घा भवति प्रमाणाभावादित्याह—अन्तराले त्विति। चन्द्र-

---

हुए से आकाशादि क्रम से इस पृथिवी को प्राप्त कर कर्मों के फल से उत्पन्न स्थावर शरीरों से युक्त होते हैं; उस समय इन्द्रियाँ निश्चेष्ट एवं कर्मों की वृत्ति लाभ न होने से वे अनुद्भूत विज्ञान वाले होते हैं।

इतना ही नहीं व्रीह्यादि के काटने, पीटने, पीसने, पकाने खाने तथा उसके शोणित मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य में परिणत होने एवं वीर्यसेचन काल में अनुद्भूत विज्ञान वाले होने से वे मूर्च्छित के समान ही होते हैं क्योंकि अन्य देह के आरम्भक कर्म की वृत्ति उपलब्ध नहीं रहती। देहभाव के कारणभूत जलीय सम्पर्क को बिना परित्याग किये हुए ही वे व्रीह्यादि संश्लेष लवनादि सभी अवस्थाओं में रहते हैं इस प्रकार जोंक के समान चेतनायुक्त होने में यहाँ विरोध नहीं है। पूर्वदेह से बाहर निकले हुए एवं देहान्तर प्राप्ति के पूर्व के बीच वाली स्थिति में वह मूर्च्छित व्यक्ति के समान

---

१. सातत्यं देहपरम्परानुच्छेदः। देहसंबन्धानुच्छेदो वा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा

संस्कार युक्त जीवों की कर्मानुसार गति

उन संस्कार युक्त जीवों में से जो अच्छे आचरण वाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्तम योनि

मूर्छितवदेवेत्यदोषः ।

न च वैदिकानां कर्मणां हिंसायुक्तत्वेनोभयहेतुत्वं शक्यमनुमातुम् । हिंसायाः शास्त्रचोदितत्वात् । "अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः[1]" इति श्रुतेः शास्त्रचोदितायाः हिंसाया नाधर्महेतुत्वमभ्युपगम्यते । अभ्युपगमेऽप्यधर्महेतुत्वे मन्त्रैर्विषादिवत्तदपनयोपपत्तेर्न दुःखकार्यारम्भकत्वोपपत्तिर्वैदिकानां कर्मणां मन्त्रेणेव विषभक्षणस्येति ॥६॥

तत्तत्र तेष्वनुशयिनां मध्ये य इह लोके रमणीयं शोभनं चरणं शीलं येषां

मण्डलादवरोहतां देहान्तरगमनस्य तुल्यत्वेऽपि विज्ञानशून्यत्वमदुष्टमित्युपसंहरति—इत्यदोष इति।

यत्तु हिंसानुग्रहात्मकत्वादिष्टादिकर्मणां स्थावरत्वमपि तत्फलमेव तथा च वैदिकानां कर्मणामनर्थानुबन्धित्वादप्रामाण्यं श्रुतेरिति तत्राऽऽह—न चेति । उभयहेतुत्वमर्थानर्थहेतुत्वमिति यावत् । अहिंसन्नित्यादिश्रुतेः शास्त्रचोदितवैदिकेषु कर्मसु हिंसा नानर्थहेतुरित्याह—अभ्युपगतेऽपीति । यद्यपि स्वरूपेण हिंसाऽनर्थहेतुरभ्युपगम्यते तथाऽपि तद्युक्तानां वैदिककर्मणां नानर्थारम्भकत्वं यथा स्वरूपेण विषदध्यादेर्मरणज्वरादिहेतुत्वेऽपि मन्त्रशर्करादिभिः सहोपयुक्तं सन्न तत्कार्यारम्भकम् । तथा हिंसायाः स्वतोऽधर्महेतुत्वेऽपि वैदिककर्मनिष्ठाया[2] न तद्धेतुत्वं वैदिकैरेव कर्मभिस्तत्कृतदोषापनयनसिद्धेरित्यर्थः। पूर्वोक्तमेव दृष्टान्तं स्पष्टयति—मन्त्रेणेति । तेन सहोपभुक्तस्य विषस्यानर्थाहेतुत्वेन पुष्टिहेतुत्ववद्वैदिककर्मानुप्रविष्टाया हिंसायाः पुरुषार्थत्वमेव । अशुद्धमिति चेन्न शब्दादिति[3] न्यायादित्यर्थः ॥६॥

तद्भूय एव भवती[4]त्येतत्प्रसङ्गागतं परिसमाप्य प्रकृतं श्रुतिव्याख्यानमनुवर्तयति—तत्तत्रेति

चेतनाशून्य रहता है—यह मानने में कोई दोष नहीं है।

इष्टापूर्तादि वैदिक कर्म हिंसामूलक होने से वे अनर्थ एवं अर्थ दोनों के हेतु हैं—ऐसा अनुमान करना उचित नहीं है। क्योंकि उस (वैदिकी) हिंसा का तो शास्त्र द्वारा प्रतिपादन किया गया है। "शास्त्र की आज्ञा से विरुद्ध प्राणियों की हिंसा न करता हुआ वह अधिकारी पुरुष ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है" इस छान्दोग्य श्रुति से सिद्ध होता है कि शास्त्रसमर्थित हिंसा से अधर्म नहीं होता। हिंसा को स्वरूपतः अनर्थ का हेतु स्वीकार किए जाने पर वैदिक कर्मनिष्ठ होने से उसके दोषों का निवारण हो जाता है, जैसे विष एवं दधि मरण और ज्वर का कारण होते हैं, किन्तु मन्त्र से विष भक्षण पुष्टिकारक हो जाता है ॥ ६ ॥

१. छा. उ. ८-१५-१ । २. निष्ठाया हिंसाया इति संबन्धः । ३. ब्र. सू. ३-१-२५ । ४. इत्येतत्प्रसङ्गागतं विचारमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैश्ययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा ॥७॥

प्राप्त होते हैं, अर्थात् वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि या वैश्ययोनि को प्राप्त करते हैं और जो अशुभ आचरण वाले होते हैं, वे कुत्ते की योनि, सूकरयोनि या चाण्डाल योनिरूप अशुभ शरीर को प्राप्त करते हैं ॥७॥

रमणीयचरणा रमणीयचरणेनोपलक्षितः शोभनोऽनुशयः पुण्यं कर्म येषां ते रमणीयचरणा उच्यन्ते। क्रौर्यानृतमायावर्जितानां हि शक्य उपलक्षयितुं शुभानुशयसद्भावः। तेनानुशयेन पुण्येन कर्मणा चन्द्रमण्डले भुक्तशेषेणाभ्याशो ह क्षिप्रमेव यदिति क्रियाविशेषणं ते रमणीयां क्रौर्यादिवर्जितां योनिमापद्येरन्प्राप्नुयुर्ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्त्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वा स्वकर्मानुरूपेण। अथ पुनर्ये तद्विपरीताः कपूयचरणोपलक्षितकर्माणोऽशुभानुशया अभ्याशो ह यत्ते कपूयां यथाकर्म योनिमापद्येरन्कपूयामेव धर्मसंबन्धवर्जितां जुगुप्सितां योनिमापद्येरञ्श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं

'अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापादिति न्यायेन तेषु व्रीह्यादिषु संश्लिष्टा येऽनुशयिनस्तेषां मध्ये ये केचिदस्मिँल्लोके चन्द्रमण्डलप्राप्तेः प्रागवस्थायामनुष्ठिताभुक्तरमणीयचरणास्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्निति संबन्धः। उक्तमेव स्पष्टयति—शोभन इति। कथं रमणीयचरणानुरोधेन शोभनोऽनुशयो लक्ष्यते तत्राऽऽह—क्रौर्येति। ते खल्वनुशयिनो रेतःसिग्योगानन्तरं तेन कर्मणा रमणीयां योनिमापद्येरन्निति यत्तत्क्षिप्रमेवेति योजना। 'तत्रापि हेतुमाह—स्वकर्मेति। अथेति प्रतीकं गृहीत्वा व्याचष्टे—पुनरिति। तद्विपरीतास्तेभ्यो विलक्षणा इति यावत्। ते कपूयां योनिमशुभानुशयवशाद्रेतःसिग्योगानन्तरमापद्य-

---

उन व्रीहि-यवादि भावों को प्राप्त संस्कृत लोगों में जो इस पृथिवी लोक में रमणीय स्वभाव से उपलक्षित पुण्यवान् होते हैं, क्रूरता अनृत माया से रहित होते हैं, वे उस चन्द्रलोक में भुक्त शेष पुण्य कर्म के प्रभाव से शीघ्र ही क्रूरताशून्य ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य की योनियों को स्व कर्मानुरूप प्राप्त होते हैं। मन्त्र में 'यत्' शब्द क्रिया विशेषण है। इसके विपरीत जो अशुभ आचरण से युक्त अधर्म परक कर्मों को करते हैं वे अपने-अपने कर्मों के अनुरूप धर्मविवेकशून्य कुत्ते, सूकर अथवा चाण्डाल की घृणित योनि को प्राप्त करते हैं। उनमें जो द्विजाति स्वधर्मपरायण होकर इष्टापूर्तादि

---

१. ब्र. सू. ३-१-२४। अन्येति—अन्यैर्जीवैरधिष्ठितेषु व्रीह्यादिषु संसर्गमात्रमनुशयिनां भवति कुतः पूर्ववदभिलापात्—यथाऽऽकाशादि वर्षान्तेषु कर्मपरामर्शमन्तरेणैव प्रवेश उक्त एवं व्रीह्यादिष्वपि कर्मपरामर्शं विनैव प्रवेशाभिलापादित्यर्थः। २. योनिविकल्पेऽपीत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथैतयोः पथोर्न कतरेणच न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳ स्थान तेनासौ लोको न संपूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः ॥८॥

चतुर्थ प्रश्न का उत्तर

वे पापात्मा धूम या अर्चिरादि मार्गों में से किसी भी मार्ग से नहीं जाते, वे ये बेचारे क्षुद्र और पुनः-पुनः आने जाने वाले प्राणी होते हैं। जन्मो और मरो; यही तृतीय स्थान उनके लिये होता है। बस ! यही कारण है जिससे कि स्वर्गादि परलोक भरता नहीं। अतः (जन्मना-मरणात्मक संसार गति से विवेक शील व्यक्ति को) घृणा करनी चाहिये। इस विषय में यह मन्त्र है ॥८॥

स्वकर्मानुरूपेणैव । ये तु रमणीयचरणा द्विजातयस्ते स्वकर्मस्थाश्चेदिष्टादिकारिणो धूमादिना गच्छन्त्यागच्छन्ति च पुनः पुनर्घटीयन्त्रवत् । विद्यां चेत्प्राप्नुयुस्तदार्चिरादिना गच्छन्ति ॥७॥

यदा तु न विद्यासेविनो नापीष्टादिकर्म सेवन्ते तदाऽथैतयोः पथोर्यथोक्तयोरर्चिर्धूमादिलक्षणयोर्न कतरेणान्यतरेण चनापि यन्ति तानीमानि भूतानि क्षुद्राणि

रश्नित यत्तदपि क्षिप्रमेवेति योजना । तत्रापि विकल्पे कारणमाह—स्वकर्मेति । तृतीयं पन्थानमव-तारयितुं पूर्वोक्तौ पन्थानौ संक्षिप्यानुवदति—ये त्विति । शुभानुशयवशाद्ये केचिद्ब्राह्मणादि-योनिमापन्नास्ते स्ववर्णाश्रमविहितकर्मनिष्ठाः सन्तो यदीष्टादिकर्म कृतवन्तस्तदा दक्षिणेन पथा चन्द्रं गच्छन्ति । तत्र च भोक्तव्ये भोगेन क्षीणे पुनरवशिष्टेन कर्मणा पृथिवीमागच्छन्ति । एवं घटीयन्त्र-वत्पुनः पुनरारोहन्तोऽवरोहन्तश्च केवलकर्मिणो दृश्यन्ते । चेद्द्विजातयः स्वकर्मस्थाः सन्तो ध्यानं लभेरन्नुत्तरेण यानेनेतो ब्रह्मलोकं गच्छन्तीत्यर्थः ॥७॥

इदानीं तृतीयस्थानमुपदिशति—यदा त्विति । पौनःपुन्ये लोण्मध्यमैकवचना[1]त्तयोः सर्वास्वपि

कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, वे केवल कर्मकाण्डी धूममार्ग से घटीयन्त्र की तरह पुनः-पुनः आते-जाते रहते हैं किन्तु जो द्विजाति स्वधर्मपरायण हो ध्यान लाभ करते हैं, वे अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मलोक को जाते हैं ॥ ७ ॥

(अब तृतीय स्थान का उपदेश किया जाता है—) तथा जो न तो ध्यान करते हैं और न ही इष्टापूर्तादि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, तब वे अर्चिरादि, अथवा धूमादि किसी एक भी मार्ग से नहीं जाते। वे तो बार-बार होने वाली डाँस, मच्छर कीटादि निकृष्ट योनियों को प्राप्त करते हैं। इस

---

१. तयोर्लोण्मध्यमैकवचनयोः सर्वलकारापवादेन विधानादित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दंशमशककीटादीन्यसकृदावर्तीनि भवन्ति । अत उभयमार्गपरिभ्रष्टा ह्यसकृज्जायन्ते म्रियन्ते चेत्यर्थः । तेषां जननमरणसंततेरनुकरणमिदमुच्यते जायस्व म्रियस्वेतीश्वर-निमित्ता वा चेष्टोच्यते । जननमरण¹लक्षणेनैव कालयापना भवति । न तु क्रियासु भोगेषु वा कालोऽस्तीत्यर्थः । एतत्क्षुद्रजन्तुलक्षणं तृतीयं पूर्वोक्तौ पन्थानावपेक्ष्य स्थानं संसरताम् । येनैवं दक्षिणमार्गगा अपि पुनरागच्छन्त्यनधिकृतानां ज्ञानकर्मणोरगमनमेव दक्षिणेन पथेति । तेनासौ लोको न संपूर्यते । पञ्चमस्तु प्रश्नः पञ्चाग्निविद्यया व्याख्यातः । प्रथमो दक्षिणोत्तरमार्गाभ्यामपाकृतो दक्षिणोत्तरयोः पथोर्व्यावर्तनाऽपि मृतानामग्नौ प्रक्षेपः समानस्ततो व्यावर्तनाऽन्येऽर्चिरादिना यन्त्यन्ये धूमादिना पुनरुत्तरदक्षिणायने षण्मासान्प्राप्नुवन्तः संयुज्य पुनर्व्यावर्तन्ते । अन्ये संवत्सरमन्ये मासेभ्यः पितृलोकमिति व्याख्याता । पुनरावृत्तिरपि क्षीणानुशयानां चन्द्रमण्डलादाकाशादिक्रमेणोक्ता । अमुष्य

विधानात्पुनः पुनर्जायन्ते म्रियन्ते चेत्यस्मिन्नर्थे जायस्व म्रियस्वेति प्रयोग इत्याह—तेषामिति । यद्वा सर्वेश्वरो मार्गद्वयभ्रष्टं दृष्ट्वा तं जायस्व म्रियस्वेति प्रेरयत्येतदिहोच्यत इति द्रष्टव्यम् । तेनासावित्या-दिवाक्यं व्याचष्टे—येनैवमिति । उक्तया रीत्या निर्णीतान्प्रश्नान्विविच्य प्रतिपत्तिसौकर्यार्थं कथयति—पञ्चमस्त्विति । व्यावर्तनाऽपि व्याख्यातेत्युत्तरत्र संबन्धः । मृतानामविदुषां विदुषां चेत्यर्थः । अन्त्येष्टच-नन्तरं विदुषां कर्मिणां च मध्येऽन्ये संवत्सरमिति ज्ञानिनो गृह्यन्ते । अन्ये पितृलोकमिति केवलकर्मिण इति विभागः । क्षीणानुशयानां चन्द्रलोके भोक्तव्यं कर्म भोगेन क्षपितवतामिति यावत् । स्वशब्दमेवानु-

---

प्रकार वे दोनों मार्गों से विभ्रष्ट होकर बार-बार जन्मते और मरते रहते हैं । उनकी जन्म-मरण रूप संतति के अनुकरण के लिए यह कहा जाता है अथवा 'जन्म लो और मर जाओ' यह ईश्वर कृत चेष्टा कही जाती है । जन्म-मरण संज्ञक व्यापार से ही कालचक्र चलता रहता है । क्रियाओं अथवा भोगों में ही काल नहीं रहता । पूर्वोक्त अर्चि एवं धूममार्ग से भ्रष्ट हुए कालचक्र में संसरण करने वाले निकृष्ट जीवों के लिए तृतीयस्थान है । इस प्रकार क्योंकि दक्षिणमार्ग को जाने वाले भी पुनः लौटकर जन्म लेते हैं; ज्ञान कर्म से अनधिकृत मनुष्यों का दक्षिणमार्ग से जाने का विधान नहीं है, इसलिए यह पृथिवीलोक कभी भी नहीं भरता । पञ्चम प्रश्न तो सरलता से समझाने के लिए पञ्चाग्निविद्या द्वारा कह दिया गया । पहले धूम और अर्चि मार्गियों के लिए दक्षिण-उत्तर मार्गों द्वारा दक्षिण-उत्तर मार्गों का निराकरण किया गया, फिर पुनरावृत्ति का व्याख्यान, फिर अविद्वान् और विद्वानों समान रूप से अग्नि में अन्त्येष्टि संस्कार हो धूम और अर्चिरादि मार्ग से जाने का निरूपण है । पुनः उत्तरायण और दक्षिणायन में छः मासों के अभिमानी देवताओं को प्राप्त हो पुनः लौट कर आते हैं । विद्वानों और कर्मकाण्डियों में से ज्ञानी संवत्सराभिमानी देवताओं को प्राप्त होते हैं एवं केवल कर्म-काण्डी मासों से पितृलोक को प्राप्त होते हैं—इसकी व्याख्या हो चुकी । चन्द्रलोक में भोगे जाने वाले कर्म को भोगकर क्षीण पुण्य हो वहाँ से आकाशादि क्रम से पृथिवीलोक की पुनः प्राप्ति भी कह दी

---

१. लक्षणेन व्यापारेणेति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाऽऽचरꣳस्तैरिति ॥९॥

ब्राह्मण का सोना चुराने वाला, ब्राह्मण होकर मदिरा पीने वाला, गुरुपत्नी से गमन करने वाला और ब्राह्मण की हत्या करने वाला, ये चारों पतित होते हैं तथा पाँचवाँ उनके साथ आचरण करने वाला भी (पतित होता है) ॥९॥

लोकस्यापूरणं स्वशब्देनैवोक्तम्—तेनासौ लोको न संपूर्यत इति। यस्मादेवं कष्टा हि संसारगतिस्तस्माज्जुगुप्सेत। यस्माच्च जन्ममरणजनितवेदनानुभवकृतक्षणाः क्षुद्रजन्तवो ध्वान्ते च घोरे दुस्तरे प्रवेशिताः सागर इवागाधेऽप्लवे निराशाश्चोत्तरणं प्रति तस्माच्चैवंविधां संसारगतिं जुगुप्सेत बीभत्सेत घृणी भवेन्मा भूदेवंविधे संसारमहोदधौ निपात इति। तदेतस्मिन्नर्थ एष श्लोकः पञ्चाग्निविद्यास्तुतये ॥८॥

स्तेनो हिरण्यस्य ब्राह्मणसुवर्णस्य हर्ता। सुरां पिबन्ब्राह्मणः सन्। गुरोश्च तल्पं दारानावसन्। ब्रह्महा ब्राह्मणस्य हन्ता चेत्येते पतन्ति चत्वारः। पञ्चमश्च ...

वदति—तेनेति। किमर्थ[1]मेषां महायासवती तीव्रा संसारगतिरुक्तेत्याशङ्क्याऽऽह—यस्मादिति। तृतीयस्थानस्य कष्टत्वं स्पष्टयति—यस्माच्चेति। जन्मादिना जनिता या वेदना तदनुभवे कृतः क्षणो नान्यत्र येषां ते तथा। अप्लव इति च्छेदः। तृतीयस्थानवदितरयोरावृत्तिमत्त्वात्तुल्या कष्टतेत्यभिप्रेत्याऽऽह—तस्माच्चेति। संसारगत्युपवर्णनस्य तात्पर्यमुक्त्वा पञ्चाग्निविद्यायामनुष्ठानसिद्ध्यर्थं तत्स्तावकं श्लोकमुदाहृत्य व्याचष्टे—तदेतस्मिन्नित्यादिना। पञ्चाग्निविद्यामाहात्म्यं सप्तम्यर्थः ॥८॥

गई। इसी से श्रुति इस लोक के न भरे जाने को अपने शब्दों में कहती है—इसलिए यह लोक नहीं भरता। उभयमार्ग से भ्रष्ट लोगों के लिए संसार की गति इस प्रकार दुःखकारक है अतः विद्वान् को इससे घृणा करनी चाहिए। तृतीय स्थान के निकृष्ट जीवों को जन्म-मरण से होने वाली वेदना की अनुभूति का अन्यत्र समय ही नहीं है, वे घोर दुस्तर अन्धकार में प्रविष्ट हुए रहते हैं एवं संसार के अपार समुद्र को पार करने के लिए नौका न मिलने से निराश रहते हैं, अतः इस प्रकार संसार की गति को देखकर इससे घृणा करनी चाहिए कि कहीं मुझे इस संसार रूपी घोर महासमुद्र में न डूबना पड़ जाए। इसी अर्थ में पञ्चाग्निविद्या की संस्तुतिपरक यह श्लोक है ॥ ८ ॥

ब्राह्मण के सुवर्ण को चुराने वाला, ब्राह्मण होकर सुरापान करने वाला, गुरुपत्नी से अभिगमन करने वाला एवं ब्राह्मण की हत्या करने वाला; ये चारों पतित माने गए हैं इनके साथ ...

---

१. एषाम्—उक्तोभयमार्गपरिभ्रष्टानामित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद ॥१०॥

इति पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

पञ्चाग्नि विद्या की महिमा

जो कोई इस प्रकार पञ्चाग्नियों को जानता है, वह उन पतितों के साथ संसर्ग करता हुआ भी पाप से लिपायमान नहीं होता है। इसीलिये वह शुद्ध पवित्र और पुण्यलोक का भागी बन जाता है जो इस प्रकार जानता है ॥१०॥

॥ इति दशमः खण्डः॥

सहाऽऽचरन्निति ॥९॥

अथ ह पुनर्यो यथोक्तान्पञ्चाग्नीन्वेद स तैरप्याचरन्महापातकिभिः सह न पाप्मना लिप्यते शुद्ध एव। तेन पञ्चाग्निदर्शनेन पावितो यस्मात्पूतः पुण्यो लोकः प्राजापत्यादिर्यस्य सोऽयं पुण्यलोको भवति य एवं वेद यथोक्तं समस्तं पञ्चभिः प्रश्नैः पृष्टमर्थजातं वेद। द्विरुक्तिः समस्तप्रश्ननिर्णयप्रदर्शनार्था ॥१०॥

इति पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

दक्षिणेन पथा गच्छतामन्नभाव उक्तस्तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्तीति क्षुद्रजन्तु-

---

॥ ९ ॥

पञ्च महापातकिनः श्लोके निर्दिश्यन्ते न तु पञ्चाग्निविद्यास्तुतिरिह भातीत्याशङ्क्याऽऽह—अथेति। शुद्धत्वे हेतुमाह—तेनेति। कस्येदं फलमित्यपेक्षायां पूर्वोक्तविद्यावन्तमनुवदति—य एवमिति ॥१०॥

॥ इति पञ्चमाध्यायस्य दशमः खण्डः॥ १०॥

पूर्वोत्तरसंदर्भयोः संबन्धं दर्शयन्नुत्तरसंदर्भमवतारयति—दक्षिणेनेत्यादिना। उत्तरग्रन्थस्य

रहकर इनका सहयोग करने वाला पाँचवा व्यक्ति भी पतित है ॥ ९ ॥

इस प्रकार जो कोई भी पूर्वोक्त पञ्चाग्निविद्या को जानता है, वह महापातकियों के साथ आचरण करता हुआ भी तज्जनित पापों से लिपायमान नहीं होता। इस प्रकार शुद्ध एवं पञ्चाग्निविद्या के प्रभाव से पवित्र हुआ वह प्रजापति आदि पुण्यवान् लोकों को प्राप्त करता है; जो इन पाँचों प्रश्नों के सारगर्भित अर्थ को जानता है। मन्त्र में 'य एवं वेद' यह द्विरुक्ति समस्त प्रश्नों का समाधान प्रदर्शन हो जाने का सूचक है ॥ १० ॥

पूर्व प्रकरण में दक्षिणमार्ग से जाने वालों का अन्न भाव होना बतलाया गया। वह देवताओं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाꣳसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति ॥१॥

आत्ममीमांसा का प्रस्ताव

उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि का पौत्र इन्द्रद्युम्न, शार्क… का पुत्र जन, एवं आश्वतराश्व का पुत्र बुडिल ये पाँचों बड़े कुटुम्ब वाले महागृहस्थ तथा महाश्रो… एकत्रित होकर आपस में विचार करने लगे कि हमारा आत्मा कौन है और ब्रह्म क्या है? ॥१॥

लक्षणा च कष्टा संसारगतिरुक्ता। तदुभयदोषपरिजिहीर्षया वैश्वानरात्तृभावप्र… पत्त्यर्थमुत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते। अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमित्यादिलिङ्गात्। आख्यायिका… सुखावबोधार्था विद्यासंप्रदानन्यायप्रदर्शनार्था च—

प्राचीनशाल इति नामत उपमन्योरपत्यमौपमन्यवः। सत्ययज्ञो नाम… पुलुषस्यापत्यं पौलुषिः। तथेन्द्रद्युम्नो नामतो भल्लवेरपत्यं भाल्लविस्तस्या… भाल्लवेयः। जन इति नामतः शर्कराक्षस्यापत्यं शार्कराक्ष्यः। बुडिलो नामतोऽश्वत… श्वस्यापत्यमाश्वतराश्विः। पञ्चापि ते हैते महाशाला महागृहस्था विस्तीर्णा… शालाभिर्युक्ताः संपन्ना इत्यर्थः। महाश्रोत्रियाः श्रुताध्ययनवृत्तसंपन्ना इत्यर्थः।

वैश्वानराख्यात्तृभावप्रतिपत्त्यर्थत्वे गमकमाह—अत्सीति। विद्यायाः संप्रदानं शिष्यस्तस्य … विनयादिसंपत्तिस्तत्प्रदर्शनार्था चाऽऽख्यायिका। दृश्यते चात्र प्राचीनशालप्रभृतीनां तत्संपत्तिरित्याह…

का अन्न है, उसे देवता भक्षण करते हैं इस प्रकार क्षुद्रजीवों के लिए संसार की गति बड़ी कष्टप्र… है। उक्त उभय दोषों की निवृत्ति करने की इच्छा से, वैश्वानर अत्तृ-भाव प्राप्ति के लिए आगे का ग्र… प्रारम्भ किया जाता है। श्रुति इसमें प्रमाण है—"तुम दीप्ताग्नि होकर अन्न भक्षण करते हो… पुत्र-पौत्रादि रूप प्रिय का दर्शन करते हो"। यह आख्यायिका प्रतिपाद्य तत्त्व को सरलता से सम… एवं शिष्य में विनयादि सम्पत्ति के प्रदर्शन के लिए है।

उपमन्यु के पुत्र औपमन्यव प्राचीनशाल, पुलुष के पुत्र पौलुषि सत्ययज्ञ, भल्लव के पौ… भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष के पुत्र शार्कराक्ष्य जन एवं अश्वतराश्व के पुत्र आश्वतराश्वि बुडि… ये पाँचों विशाल भवनों से युक्त महागृहस्थ तथा श्रवण, अध्ययन एवं आचारयुक्त महाश्रोत्रिय …

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते ह संपादयांचक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तँ हन्ताभ्यागच्छामेति तँ हाभ्याजग्मुः ॥२॥

औपमन्यवादि का उद्दालक के पास जाना

उन सभी पूज्यों ने (उक्त तत्त्व का निश्चय न होने से) हम निष्कर्ष पर पहुँचें कि यह अरुण का पुत्र आरुणि उद्दालक इस समय वैश्वानर आत्मा को जानता है। अतः हम सब उनके पास चलें, इस प्रकार निश्चय कर वे उस आरुणि के पास आये ॥२॥

एवंभूताः सन्तः समेत्य संभूय क्वचिन्मीमांसां विचारणां चक्रुः कृतवन्त इत्यर्थः। कथम्। को नोऽस्माकमात्मा किं ब्रह्मेत्यात्मब्रह्मशब्दयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वम्। ब्रह्मेत्यध्यात्मपरिच्छिन्नमात्मानं निवर्तयत्यात्मेति चाऽऽत्मव्यतिरिक्तस्याऽऽदित्यादिब्रह्मण उपास्यत्वं निवर्तयति। अभेदेनाऽऽत्मैव ब्रह्म ब्रह्मैवाऽऽत्मेत्येवं सर्वात्मा वैश्वानरो ब्रह्म स आत्मेत्येतत्सिद्धं भवति। मूर्धा ते व्यपतिष्यदन्धोऽभविष्यदित्यादिलिङ्गात् ॥१॥

ते ह मीमांसन्तोऽपि निश्चयमलभमानाः संपादयांचक्रुः संपादितवन्त आत्मन

विद्येति। कथमात्मब्रह्मशब्दयोरितरेतरविशेषणविशेष्यत्वं व्यावर्त्याभावादित्याशङ्क्याऽऽह—ब्रह्मेतीति। उक्तरीत्या मिथो विशेषणविशेष्यत्वे फलितमाह—अभेदेनेति। इतश्चोपास्यस्य सर्वात्मत्वं गम्यते परिच्छिन्नोपासनस्य निन्दितत्वाद्[1]भूम्नः[2]क्रतुवज्[3]ज्यायस्त्वमिति न्यायादित्याह—मूर्धेति। १॥

इस प्रकार के गुणों से युक्त वे सब मिलकर आपस में विचार करने लगे कि हमारा आत्मा क्या है, ब्रह्म क्या है, क्या आत्मा व ब्रह्म शब्द का पारस्परिक विशेषण विशेष्यभाव है? 'ब्रह्म' कहने से अध्यात्म परिच्छिन्न आत्मा की निवृत्ति हो जाती है, 'आत्मा' शब्द से आत्म व्यतिरिक्त आदित्यादि ब्रह्म के उपास्य होने की निवृत्ति हो जाती है। अभेद दृष्टि से आत्मा ही ब्रह्म है, ब्रह्म ही आत्मा है। इस प्रकार जो सर्वात्मा वैश्वानर ब्रह्म है, वही आत्मा है क्योंकि परिच्छिन्न उपासना की श्रुति में निन्दा की गई है—"ऐसा नहीं मानने से तुम्हारा शिर धड़ से अलग हो जाएगा", "तुम अन्धे हो जाओगे" इत्यादि।

पूजनीय उन सभी ने विचार करते-करते किसी निश्चय पर न पहुँचने के कारण अपने

---

१. भूम्नः ब्र. सू. ३।३।५७ भूम्नः समस्तोपासनस्यैवास्मिन्वाक्ये ज्यायस्त्वं प्राधान्येन प्रतिपाद्यत्वं न व्यस्तोपास्तीनामपि। २. क्रतुवत् यथा दर्शपूर्णमासादेः क्रतोः साङ्गप्रधानस्यैकस्यैव प्रयोगो विवक्ष्यते न व्यस्तानामपि प्रयाजादीनां तद्वदित्यर्थः। तथाहि दर्शयति प्रकृता श्रुतिरिति। ३. ज्यायस्त्वमिति—तथाहि दर्शयतीति सूत्रशेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह संपादयांचकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति ॥३॥

तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति त ँ हन्ताभ्यागच्छामेति त ँ हाभ्याजग्मुः ॥४॥

आये हुये ऋषियों के सहित उद्दालक अश्वपति के पास गया

उद्दालक ने निश्चय किया कि ये महागृहस्थ और परम श्रोत्रिय मुझसे (वैश्वानर के वि... में) पूछेंगे पर मैं इन्हें अच्छी प्रकार से बतला न सकूँगा। अतः अच्छा होगा कि मैं इन्हें दूसरा उ... देशक बतलादूँ ॥३॥

उद्दालक ने ऋषियों से कहा—हे भगवन्! इस समय कैकय का पुत्र अश्वपति इस वैश्वा... आत्मा को ठीक-ठीक जानता है, आइये हम सब उसी के पास चलें। ऐसा कहकर वे सभी अश्वपति के पास आये ॥४॥

उपदेष्टारम्। उद्दालको वै प्रसिद्धो नामतो भगवन्तः पूजावन्तोऽयमारुणिररुणस्या... संप्रति सम्यगिममात्मानं वैश्वानरमस्मदभिप्रेतमध्येति स्मरति। तं हन्तेदानीमभ्या... गच्छामेत्येवं निश्चित्य तं हाभ्याजग्मुर्गतवन्तस्तमारुणिम् ॥२॥

स ह तान्दृष्ट्वैव तेषामागमनप्रयोजनं बुद्ध्वा संपादयांचकार। कथम्। प्रक्ष्यन्ति मां वैश्वानरमिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्योऽहं न सर्वमिव पृष्टं प्रतिपत्स्ये व... नोत्सहे। अतो हन्ताहमिदानीमन्यमेषामभ्यनुशासानि वक्ष्याम्युपदेष्टारमिति ॥३॥

एवं संपाद्य तान्होवाच। अश्वपतिर्वै नामतो भगवन्तोऽयं केकयस्यापत्यं कैके...

भगवन्तः सन्तः संपादयांचक्रुरिति पूर्वेण संबन्धः ॥२॥

॥३॥

अश्वपतिरित्यादौ भगवन्त इति प्राचीनशालप्रभृतयः संबोध्यन्ते ॥४॥

उपदेष्टा के निर्णय पर पहुँचे कि यह अरुण का पुत्र आरुणि उद्दालक हम सब की इष्ट इस वैश्वा... आत्मा को अच्छी तरह से स्मरण करता है। आओ! हम उन्हीं के पास चलें। ऐसा निश्चय क... आरुणि उद्दालक के पास चले आए ॥ २ ॥

उन्हें देखते ही उनके आगमन का हेतु समझकर उद्दालक ने निश्चय किया कि ये प... महागृहस्थ और महाश्रोत्रिय मुझे वैश्वानर संबन्धी प्रश्न पूछेंगे। उन सबके पूछे हुए प्रश्नों का मैं ... कोई उत्तर नहीं दे पाऊँगा। इसलिए यही उचित होगा कि मैं इन्हें दूसरा उपदेशक बतला दूँ ॥३॥

इस प्रकार निश्चय का उद्दालक बोले—केकय का पुत्र कैकेय अश्वपति आप पूजनीय मह...

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयांचकार स ह प्रातः संजिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति ॥५॥

अश्वपति द्वारा अभ्यागतों का स्वागत

अपने पास आये हुए उन ऋषियों का राजा ने (पुरोहित और सेवकों से) पृथक्-पृथक् सत्कार कराया। दूसरे दिन प्रातः काल उठते ही (उनके पास जाकर विनयपूर्वक) उसने कहा। मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, धनवान् कोई कृपण नहीं, न मद्यपान करने वाला, न अनाहिताग्नि, न अविद्वान्, और न परस्त्री लम्पट ही है, फिर कोई दुराचारिणी स्त्री कैसे हो सकती है। हे पूज्यगण! मैं भी यज्ञ करने वाला हूँ (उसके लिये मैंने धन का संकल्प कर लिया है, तदनुसार) मैं एक ऋत्विक् को जितना धन दूंगा, उतना ही धन आपमें से प्रत्येक को भी दूंगा। अतः आप लोग यहीं ठहरिये (और मेरा यज्ञ देखिये) ॥५॥

संप्रति सम्यगिममात्मानं वैश्वानरमध्येतीत्यादि समानम् ॥४॥

तेभ्यो ह राजा प्राप्तेभ्यः पृथक्पृथगर्हण्यर्हणानि पुरोहितैर्भृत्यैश्च कारयांचकार कारितवान्। स हान्येद्यू राजा प्रातः संजिहान उवाच विनयेनोपगम्यैतद्धनं मत्त उपादद्ध्वमिति तैः प्रत्याख्यातो मयि दोषं पश्यन्ति नूनं यतो न प्रतिगृह्णन्ति मत्तो धनमिति मन्वान आत्मनः सद्वृत्ततां प्रतिपिपादयिषन्नाह। न मे मम जनपदे स्तेनः

स हेत्यादि [1]सोपस्कारं व्याचष्टे—स हान्येद्युरित्यादिना। यथोक्तं शास्त्रप्रसिद्धमिति यावत्।

भावों को इस वैश्वानर का उपदेश करेगा, उसे इसका स्मरण है। आगे पूर्ववत् व्याख्या है।॥४॥

उन पाँचों महागृहस्थ एवं महाश्रोत्रियों के अपने यहाँ पधारने पर राजा अश्वपति ने पुरोहित एवं सेवकों से उनकी पृथक्-पृथक् पूजा करवाई। अगले दिन प्रातःकाल उठकर ही उनके पास जाकर विनयपूर्वक बोला—यह मेरा धन है इसे ग्रहण कर लीजिए। उनके द्वारा यह आशङ्का करने पर कि "तुम्हारा धन दोषयुक्त है इसलिए इसे हम नहीं लेंगे" राजा अपने को सदाचार परायण प्रतिपादन करने की इच्छा से कहता है। मेरे राज्य में कोई किसी दूसरे के धन को नहीं चुराता, वैभवयुक्त होने

---

१. सोपस्कारं—सवाक्याध्याहारमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳ हैव वदे-दात्मानमेवेमं वैश्वानरꣳ संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति ॥६॥

उन ऋषियों ने कहा, जिस प्रयोजन से कोई पुरुष किसी के पास जावे तो उसे अपना प्र[illegible] बतला देना चाहिये। इस समय आप इस वैश्वानर आत्मा को भली प्रकार जानते हैं। अतः उ[illegible] वर्णन आप हमसे करें ॥६॥

परस्वहर्ता विद्यते। न कदर्योऽदाता सति विभवे। न मद्यपो द्विजोत्तमः सन्। ना[illegible] हिताग्निः शतगुः। नाविद्वानधिकारानुरूपम्। न स्वैरी परदारेषु गन्ता। अत[illegible] स्वैरिणी कुतो दुष्टचारिणी न संभवतीत्यर्थः। तैश्च न वयं धनेनार्थिन इत्युक्त आह[illegible] मत्वैते धनं न गृह्णन्तीति। यक्ष्यमाणो वै कतिभिरहोभिरहं हे भगवन्तोऽस्मि। त[illegible] क्लृप्तं धनं मया यावदेकैकस्मै यथोक्तमृत्विजे धनं दास्यामि तावत्प्रत्येकं भगवद्भ्यो[illegible] दास्यामि। वसन्तु भगवन्तः पश्यन्तु च मम यागमित्युक्तास्ते होचुः। येन हैवा[illegible] प्रयोजनेन यं प्रति चरेद्गच्छेत्पुरुषस्तं हैवार्थं वदेत्। इदमेव प्रयोजनमागमनस्ये[illegible] न्यायः[1] सताम्। वयं च वैश्वानरज्ञानार्थिनः। आत्मानमेवेमं वैश्वानरं संप्रत्य[illegible] सम्यग्जानासि। अतस्तमेव नोऽस्मभ्यं ब्रूहीत्युक्तस्तान्होवाच। प्रातर्वो [illegible]

किं तर्हि भगवदागमनस्य प्रयोजनं तदाह—वयं चेति। तन्वमापि नास्तीति शङ्कां निरस्यति—आत्म[illegible]

पर कोई कृपण नहीं, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होने पर कोई सुरापान नहीं करता, कोई अनाहिताग्नि न[illegible] न ही अपने अधिकार के अनुरूप कोई अविद्वान् ही है। कोई परदारालोलुप नहीं, फिर परपुरु[illegible] कामना करने वाली स्त्री कैसे होगी। जब उन्होंने कहा कि हमें धन नहीं चाहिए तो राजा ने सो[illegible] शायद ये मुझे छोटा समझकर मेरा धन ग्रहण नहीं करते। तब राजा ने कहा—हे पूजनीय महर्षि[illegible] मेरी इच्छा है कि मैं कुछ दिन यज्ञ करूँ। उसके लिए मैंने निश्चय कर लिया है कि जितना ध[illegible] एक-एक ऋत्विक् को दूंगा, उतना-उतना धन आपमें से प्रत्येक को दूँगा। इसलिए आप यहीं ठह[illegible] और मेरा यज्ञ देखिए। यह सुनकर वे बोले—मनुष्य जिस इच्छा से किसी के पास जाए, उसे [illegible] प्रयोजन बता देना चाहिए कि हमारे आने का हेतु यह है—ऐसी ही सज्जनों की नीति है। व[illegible] आपसे हम वैश्वानर का ज्ञान प्राप्त करने आए हैं। आप इस वैश्वानर आत्मा को अच्छी प्रकार ज[illegible] हो। इसलिए आप हमें उसी का उपदेश कीजिए।

इस प्रकार निवेदन करने पर राजा अश्वपति ने उन महर्षियों से कहा—अगले दिन प्रातः[illegible]

---

१. न्यायो नीतिः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच ॥७॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

अश्वपति के प्रति मुनियों की विधिपूर्वक उपसत्ति

अश्वपति ने उन मुनियों से कहा कि मैं आप लोगों को इसका उत्तर प्रातःकाल दूँगा। राजा के अभिप्राय को जानकर दूसरे दिन पूर्वाह्न में वे मुनिगण हाथों में समिधायें लेकर राजा के पास गए। राजा ने उनका उपनयन न करके ही उस वैश्वानर विद्या का उपदेश कर दिया ॥७॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

प्रतिवक्तास्मि प्रतिवाक्यं दातास्मीत्युक्तास्ते ह राज्ञोऽभिप्रायज्ञाः समित्पाणयः समिद्भारहस्ता अपरेद्युः पूर्वाह्णे राजानं प्रतिचक्रमिरे गतवन्तः। यत एवं महाशाला महाश्रोत्रिया ब्राह्मणाः सन्तो महाशालत्वाद्यभिमानं हित्वा समिद्भारहस्ता जातितो हीनं राजानं विद्यार्थिनो विनयेनोपजग्मुः। तथाऽन्यैर्विद्योपादित्सुभिर्भवितव्यम्। तेभ्यश्चादाद्विद्यामनुपनीयैवोपनयनमकृत्वैव तान्। यथा योग्येभ्यो विद्यामदात्तथाऽन्येनापि विद्या दातव्येत्याख्यायिकार्थः। एतद्वैश्वानरविज्ञानमुवाचेति वक्ष्यमाणेन सम्बन्धः ॥५॥६॥७॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

मिति। शिष्यभावेनोपसन्नेभ्यो विद्या दातव्या न यथाकथंचिदिति राज्ञाऽभिप्रायः। ते हेत्यादिवाक्यस्य तात्पर्यं दर्शयति—यत इति। योगक्षेमार्थं राजानं प्रत्युपगमनमिष्टमेवेति मन्वानो विशिनष्टि—विद्यार्थिन इति। तथेत्यत्रातःशब्दो द्रष्टव्यः। उपनयनं पादयोर्निप(पा?) तनम्। वक्ष्यमाणं वैश्वानरविज्ञानं तेनैतदित्यस्य संबन्ध इति यावत्। आख्यायिकातात्पर्यमुपसंहरति—यथेति। ।५॥६॥७॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११।

मैं आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा। इस प्रकार आश्वस्त होकर वे 'शिष्यभाव से शरण आए को विद्या दान करना चाहिए' राजा के इस अभिप्राय को जानकर अगले दिन पूर्वाह्न में हाथों में समिधाएँ लिए राजा के समीप आए। जब इस प्रकार के महागृहस्थ एवं महाश्रोत्रिय ब्राह्मण, अपने महाशालत्व आदि का अहं त्यागकर समिधाएँ हाथों में लिए जाति से निकृष्ट राजा के पास विद्याप्राप्ति की इच्छा से विनयपूर्वक आए, तब तो औरों को भी जो विद्या प्राप्त करने के इच्छुक हों, इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिए। राजा ने बिना चरणों में नमस्कार कराए उन्हें वैश्वानर विद्या का उपदेश दिया। जिस प्रकार राजा ने अधिकारी समझकर विद्या दी, उसी प्रकार दूसरे आचार्यों को भी अधिकारी देखकर ही विद्यादान करना चाहिए, यह इस आख्यायिका का तात्पर्य है। राजा ने उस वैश्वानर विद्या का उपदेश किया इसका संबन्ध अग्रिम ग्रन्थ से है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते ॥१॥

अश्वपति तथा औपमन्यव का संवाद

(राजा ने कहा) हे औपमन्यव ! तुम किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो ? हे पू[ज्य] राजन् ! मैं द्यु लोक को ही वैश्वानर मानकर उपासना करता हूँ, ऐसा औपमन्यव ने उत्तर दि[या] (राजा ने कहा—) तुम जिस आत्मा को उपासना करते हो निश्चय ही यह सुतेजा नाम से प्र[सिद्ध] वैश्वानर आत्मा है, (क्योंकि आत्मा का यह अवयव है) इसीलिए तुम्हारे कुल में "सुत" (एकाह[ा]-रूप ज्योतिष्टोमादि अहर्गण में निकाला हुआ सोमरूप लता द्रव्य) "प्रसुत" (अहीनादि कर्म में अ[च्छी तरह] निकाला हुआ सोमरस) तथा (सत्र में प्रकर्ष से निकाला हुआ सोमरस रूप) "आसुत" दिखा[ई] देते हैं ॥ १ ॥

स कथमुवाचेत्याह—औपमन्यव हे कमात्मानं वैश्वानरं त्वमुपास्स इति पप्रच्छ[।] नन्वयमन्याय आचार्यः सञ्शिष्यं पृच्छतीति । नैष दोषः । [1]यद्वेत्थ तेन मोपसीद तत[स्त] ऊर्ध्वं वक्ष्यामीतिन्यायदर्शनात् । अन्यत्राप्याचार्यस्याप्रतिभानवति [2]शिष्ये प्रतिभोत्पा[-] दनार्थः प्रश्नो दृष्टाऽजातशत्रोः, [3]क्वैष तदाऽभूत्कुत एतदागादिति । दिवमेव द्युलोकमे[व]

शिष्यो हि प्रष्टाऽऽचार्यस्तु प्रतिवक्तेति न्यायेन शङ्कते—नन्विति । वाक्यशेषावष्टम्भेन दूषय[ति—] नैष दोष इति । बृहदारण्यकश्रुत्यालोचनायामपि नैतदन्याय्यमित्याह—अन्यत्रापीति । आचार्यस्याज[ा]...

उपदेश का उपक्रमकर राजा ने पूछा—हे औपमन्यव प्राचीनशाल ! तुम किस वैश्वा[नर] आत्मा की पूजा करते हो ? इस पर शङ्का होती है—यह तो लोकरीति नहीं है कि आचार्य हो[कर] शिष्य से प्रश्न पूछे । समाधान देते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है (क्योंकि सप्तमाध्याय प्रथमखण्ड [में] प्रसङ्ग है—नारद जी ने शिष्यभाव से योगीश्वर सनत्कुमार के पास जाकर प्रश्न किया—हे भगव[न्] मुझे उपदेश करें।) तब सनत्कुमार ने नारद से कहा—तुम जो कुछ जानते हो, उसे बतलाते [हुए] मेरे पास आओ। तब मैं तुम्हें उससे आगे ज्ञान का उपदेश करूँगा। यह श्रुति इसमें ज्ञापक है[।] बृहदारण्यकोपनिषत् में भी आचार्य अजातशत्रु ज्ञानाभिमानी दृप्तबालाकि शिष्य को प्रतिभा सम्पा[दन] करने के लिए प्रश्न पूछते हुए देखा जाता है" हे गार्ग्य ! हाथ से दबाकर जगाने से पूर्व जब [यह] विज्ञानमय पुरुष सोया हुआ था, उस समय वह कहाँ था और यह कहाँ से आया"। तब प्राचीनशा[ल]...

१. छां. उ. ७।१।१ । २. शिष्ये—दृप्ते बालाक्याख्ये गार्ग्ये इत्यर्थः । ३. बृ. उ. २।१।१६ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्य-द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

तुम दीप्ताग्नि होकर अन्न भक्षण करते हो तथा पुत्र पौत्रादिरूप प्रिय का दर्शन करते हो। जो वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह अन्य भी कोई व्यक्ति अन्न का भक्षण करता है, प्रिय वस्तु का दर्शन करता है और उसके कुल में (सुत, प्रसुत एवं आसुत इत्यादि कर्मित्वरूप) ब्रह्मतेज होता है। फिर भी यह वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा राजा ने कहा। साथ ही यह भी कहा—यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते तो निश्चय ही तुम्हारा मस्तक गिर जाता ॥ २ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

वैश्वानरमुपासे भगवो राजन्निति होवाच। एष वै सुतेजाः शोभनं तेजो यस्य सोऽयं सुतेजा इति प्रसिद्धो वैश्वानर आत्माऽऽत्मनोऽवयवभूतत्वाद्यं त्वमात्मानमात्मैकदेशमुपास्से तस्मात्सुतेजसो वैश्वानरस्योपासनात्तव सुतमभिषुतं सोमरूपं कर्मणि प्रसुतं प्रकर्षेण च सुतमासुतं चाहर्गणादिषु तव कुले दृश्यतेऽतीव कर्मिणस्त्वत्कुलीना इत्यर्थः ॥१॥

अत्स्यन्नं दीप्ताग्निः सन्पश्यसि च पुत्रपौत्रादि प्रियमिष्टम्। अन्योऽप्यत्त्यन्नं पश्यति च प्रियं भवत्यस्य सुतं प्रसुतमासुतमित्यादि कर्मित्वं ब्रह्मवर्चसं कुले यः कश्चिदेतं

शत्रोरिति संबन्धः। तस्याऽऽत्मत्वे हेतुमाह—आत्मन इति। एकाहादिरूपो ज्योतिष्टोमादिरहर्गणस्तत्र सुतं सोमरूपं लताद्रव्यमहीने प्रसुतं सत्रे त्वासुतमिति भेदः। तवेति पुनर्वचनमन्वयदर्शनार्थम्। १॥

न केवलं प्राचीनशालनिष्ठमिदं फलं किंत्वन्यस्यापि भवतीत्याह—अन्योऽपीति। तर्हि यथोक्त-

---

ने कहा—हे पूजनीय महाराज! मैं तो द्युलोक की ही वैश्वानर आत्मा के रूप में पूजा करता हूँ। राजा ने कहा—तुम जिस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो वह सुन्दर तेज वाला होकर सुतेजा नाम से प्रसिद्ध है। यह तो उस आत्मा का अवयवभूत ही है जिस वैश्वानर के एकदेश की तुम पूजा करते हो। इसीलिए सुतेजा वैश्वानर की उपासना से तुम्हारे कुल में सोमरूप कर्म में निकाले गए 'सुत' अधिकता से निकाले गए 'प्रसुत' एवं एकाहादि रूप ज्योतिष्टोमादि में निकाले गए 'आसुत' दिखाई देते हैं अर्थात् तुम्हारे कुल में उत्तम कर्मकाण्डी उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

हे प्राचीनशाल! इस प्रकार वैश्वानर की उपासना करने से तुम दीप्ताग्नि होकर अन्न का भक्षण करते हो तथा पुत्र-पौत्रादि इष्टजनों का दर्शन करते हो। अन्य भी जो कोई इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।)

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते ॥१॥

अश्वपति और सत्ययज्ञ का संवाद

फिर अश्वपति ने पौलुषि सत्ययज्ञ से कहा—हे प्राचीनयोग्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ? उसने कहा—हे पूज्य राजन् ! मैं आदित्य की ही वैश्वानर दृष्टि से उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा—) यह निश्चय ही विश्वरूप वैश्वानर आत्मा है, (क्योंकि यह वैश्वानर का अवयव है) जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, इस उपासना के कारण से ही तेरे कुल में बहुत-से 'ऐहिक और पारलौकिक) विश्वरूप साधन दीखता है ॥ १ ॥

यथोक्तमेवं वैश्वानरमुपास्ते । मूर्धा त्वात्मनो वैश्वानरस्यैव न समस्तो वैश्वानरः। अतः समस्तबुद्धया वैश्वानरस्योपासनान्मूर्धा शिरस्ते विपरीतग्राहिणो व्यपतिष्यद्विपतितमभविष्यत् यद्यदि मां नाऽऽगमिष्यो नाऽऽगतोऽभविष्यः । साध्वकार्षीर्यन्मामागतोऽसी-त्यभिप्रायः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्ड ॥१२॥

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं हे प्राचीनयोग्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमे-

---

वैश्वानरज्ञानादेव कृतकृत्यतेत्याशङ्कयाऽऽह—मूर्धा त्विति । अक्षरार्थमुक्त्वा विवक्षितार्थमाह—साध्विति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

अथ प्राचीनशाले तूष्णींभूते जिज्ञासमाने सत्यनन्तरमित्यर्थः । आदित्यस्य शुक्लत्वादिरूप-

---

वैश्वानर की उपासना करता है, वह दीप्ताग्नि होकर अन्न का भक्षण करता है एवं पुत्र-पौत्रादि प्रिय पदार्थों का दर्शन करता है। उसके कुल में सुत-प्रसुत और आसुत आदि कर्मकाण्डी एवं ब्रह्मतेज से सम्पन्न पुरुष होते हैं। (तो क्या इसी वैश्वानर के ज्ञान से कृतकृत्यता समझ लेनी चाहिए, इसका निराकरण करते हैं—) यह तो वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही है, यह सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है। तब राजा ने कहा—यदि तुम मेरे पास न आए होते तो इसी को समस्त बुद्धि से वैश्वानर की उपासना करने से विपरीत ज्ञान वाला तुम्हारा मस्तक गिर जाता। अच्छा किया जो तुम यहाँ ज्ञान प्राप्त करने के लिए आ गये हो ॥ २ ॥

प्राचीनशाल के चुप हो जाने पर राजा ने पौलुषि सत्ययज्ञ से पूछा—हे प्राचीनयोग्य ! तुम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वेतदात्मन इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

दो खच्चरियों से जुता हुआ रथ और दासियों से युक्त हार प्राप्त है। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न भक्षण करता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है। फिर भी यह वैश्वानर आत्मा का नेत्र ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा कहकर राजा ने फिर कहा—यदि तुम मेरे पास नहीं आते तो अन्धे हो जाते ॥ २ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

भगवो राजन्निति होवाच। शुक्लनीलादिरूपत्वाद्विश्वरूपत्वमादित्यस्य सर्वरूपत्वाद्वा। सर्वाणि रूपाणि हि त्वाष्ट्राणि यतोऽतो वा विश्वरूप आदित्यस्तदुपासनात्तव बहु विश्वरूपमिहामुत्रार्थमुपकरणं दृश्यते कुले ॥१॥

किंच त्वामनु प्रवृत्तोऽश्वतरीभ्यां युक्तो रथोऽश्वतरीरथो दासीनिष्को दासीभिर्युक्तो निष्को हारो दासीनिष्कः। अत्स्यन्नमित्यादि समानम्। चक्षुर्वैश्वानरस्य तु सविता।

ष्टमे स्पष्टी भविष्यति। तस्य सर्वरूपत्वेन विश्वरूपत्वमुक्तमुपपादयति—सर्वाणीति ॥१॥

अत्स्यन्नमित्यादि चक्षुष्ट्वेतदित्यतः प्राक्तनमिति शेषः। चक्षुष्ट्वेतदित्यादिवाक्यं व्याचष्टे—

किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो? वह बोला—हे पूजनीय महाराज! मैं आदित्यरूप से वैश्वानर आत्मा की उपासना करता हूँ क्योंकि शुक्लनीलादि रूप होने अथवा सर्वरूपता होने से आदित्य की विश्वरूपता प्रसिद्ध है। संसार में जितने रूप दृष्टिगोचर होते हैं वे सभी आदित्य से होने से वह विश्वरूप है। उसी की उपासना के प्रभाव से तुम्हारे कुल में ऐहिक और पारलौकिक बहुत-सी साधन सामग्री दीख पड़ती है ॥ १ ॥

इतना ही नहीं, तुम्हारे अधीन दो खच्चरियों का रथ है, दासियों से सुसज्जित हार तुम्हें प्राप्त है। तुम दीप्ताग्नि होकर अन्न भक्षण करते हो इत्यादि व्याख्या पिछले मन्त्रों के समान है। आदित्य तो उस सम्पूर्ण वैश्वानर आत्मा का चक्षु ही है। यदि तुम मेरे पास न आए होते तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।)

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्माऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति ॥१॥

अश्वपति तथा इन्द्रद्युम्न का संवाद

उसके बाद राजा ने भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न से कहा—हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ? उसने कहा—हे पूज्य राजन् ! मैं वैश्वानर दृष्टि से वायु की उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा—) जिस आत्मा की तुम उपासना करते हो, वह निश्चय ही (आवह-उद्वह आदि अनेकों भेद वाला) पृथक् वर्त्मा वैश्वानर आत्मा है। इसी के प्रभाव से तेरे पास पृथक्-पृथक् उप[illegible] आते हैं और तेरे पीछे पृथक्-पृथक् रथ की पंक्तियाँ चलतीं हैं ॥ १ ॥

तस्य समस्तबुद्ध्योपासनादन्धोऽभविष्यश्चक्षुर्हीनोऽभविष्यो यन्मां नाऽऽगमिष्य इति पूर्ववत् ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादि समान[illegible] पृथग्वर्त्मा नाना वर्त्मानि यस्य वायोरावहोद्वहादिभिर्भेदैर्वर्तमानस्य सोऽयं पृथग्व[illegible]

चक्षुरित्यादिना । तत्रापि तात्पर्यं यथापूर्वं द्रष्टव्यमित्याह—पूर्ववदिति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

सत्ययज्ञोपरमान्तरमित्यथशब्दार्थः । पृथगित्यतः प्राक्तनमादिपदेन गृहीतम् । पृथग्व[illegible] प्रतीकमादाय व्याचष्टे—नानेति । आभिमुख्येनाऽऽगच्छन्नावहः । ऊर्ध्वेन वहतीत्युद्वहः । तस्मा[illegible]

आदित्य की ही वैश्वानर के समस्त बुद्धि से उपासना करने से चक्षु से विहीन हो जाते, इ[illegible] व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए ॥ २ ॥

सत्ययज्ञ के उपराम हो जाने पर राजा ने भाल्लवेय इन्द्रद्युम्न से कहा—हे वैयाघ्रपद्य ! [illegible] किस वैश्वानर आत्मा की उपासना करते हो इत्यादि ग्रन्थ पूर्ववत् लगा लेना चाहिए। जिस वै[illegible] की तुम वायु रूप से उपासना करते हो, वह अनेक मार्गों वाला है। सामने से आने से उसे 'आ[illegible] वायु कहते हैं, ऊपर रहकर चलने से वह 'उद्वह' है। इसलिए 'पृथग्वर्त्मा' गुण विशिष्ट वै[illegible]

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदक्रमिष्य-द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

तुम अन्न भक्षण करते हो, प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह भी अन्न भक्षण करता है, प्रिय वस्तु को देखता है और उसके कुल में ब्रह्मतेज होता है। किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का प्राण ही है (सम्पूर्ण वैश्वानर नहीं है) ऐसा राजा ने कहा और यह भी कहा, यदि तुम मेरे पास नहीं आये होते, तो तेरा प्राण निकल जाता ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

वायुः। तस्मात्पृथग्वर्त्मात्मनो वैश्वानरस्योपासनात्पृथङ्नानादिक्कास्त्वां बलयो वस्त्रान्ना-दिलक्षणा बलय आयन्त्यागच्छन्ति। पृथग्रथश्रेण्यो रथपङ्क्तयोऽपि त्वामनुयन्ति ॥१॥

अत्स्यन्नमित्यादि समानम्। प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्ते तवोद-क्रमिष्यदुत्क्रान्तोऽभविष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

मित्यादि व्याचष्टे—तस्मादिति। नानादिक्का नानाविधासु दिक्षु भवा इत्येतत् ॥१॥

अत्स्यन्नमित्यादि समानमित्यत्राऽऽदिपदमुपास्त इत्यन्नवाक्यसंग्रहार्थम्। उत्तरवाक्येऽप्यभिप्राय-साम्यं मत्वाऽऽह—प्राणस्त्विति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

आत्मा की उपासना करने से तुम्हारे पास अनेक देश देशान्तरों से वस्त्र-अन्नादि के उपहार आते हैं। इतना ही नहीं, तुम्हारे पीछे पृथक्-पृथक् रथ की पंक्तियाँ चलती हैं ॥ १ ॥

जो इस प्रकार वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है, वह दीप्ताग्नि होकर अन्न भक्षण करता है, इत्यादि व्याख्या पूर्वग्रन्थ के समान है। राजा बोला—यदि तुम मेरे पास न आए होते तो तुम्हारे प्राण निकल गए होते ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।)

अथ होवाच जनꣳ शार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च ॥१॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते

अश्वपति और जन का संवाद

फिर अश्वपति ने जन से कहा—हे शार्कराक्ष्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ? जन ने कहा—हे राजन् ! मैं वैश्वानर दृष्टि से आकाश की ही उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा)—यह निश्चय ही बहुल नामक वैश्वानर आत्मा है जिसकी तुम उपासना करते हो। इसी उपा[सना] के बल से तुम प्रजा और स्वर्णादि धन से परिपूर्ण हो ॥ १ ॥

तुम अन्न भक्षण करते हो, प्रिय वस्तु को देखते हो। इस प्रकार अन्य जो कोई भी [मनुष्य] इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार से उपासना करता है, वह भी अन्न भक्षण करता है, प्रिय [वस्तु]

अथ होवाच जनमित्यादि समानम्। एष वै बहुल आत्मा वैश्वानरः। बहुल[त्व]माकाशस्य सर्वगतत्वाद्बहुलगुणोपासनाच्च। त्वं बहुलोऽसि प्रजया च पुत्रपौत्रा[दि]लक्षणया धनेन च हिरण्यादिना ॥१॥

संदेहस्त्वेष संदेहो मध्यमं शरीरं वैश्वानरस्य। दिहेरुपचयार्थत्वान्मांसरुधि[र]

इन्द्रद्युम्नोपरमानन्तर्यमथशब्दार्थः। अत्राऽऽदिपदमेष इत्यस्मात्प्राक्तनवाक्यसंग्रहार्थम्। कथमा[]काशस्य बहुलत्वमत आह—बहुलत्वमिति ॥१॥

कथं शरीरस्य मध्यमे भागे संशयवाची संदेहशब्दो वर्तते तत्राऽऽह—दिहेरिति। आका[श]

'इसके अनन्तर राजा ने शार्कराक्ष्य जन से पूछा' इत्यादि ग्रन्थ पूर्ववत् लगा लेना चाहिए। राजा ने कहा—जिस वैश्वानर आत्मा की तुम आकाश रूप से उपासना करते हो वह बहुल[ता] वाला है। सर्वव्यापक एवं बहुलगुण से इसकी उपासना करने के कारण आकाश की बहुलता [सिद्ध] हो जाती है। इसी उपासना के प्रभाव से तुम पुत्र-पौत्रादि सन्तति परम्परा एवं सुवर्णादि धन से [भर]पूरे हो ॥ १ ॥

मन्त्र में "सन्देह" शब्द शरीर के मध्यम भाग का द्योतक है अर्थात् आकाश तो [यह] वैश्वानर शरीर का मध्यभाग ही है क्योंकि 'दिह' धातु का वृद्धि अर्थ है शरीर में (निरन्तर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्य-द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।)

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वꣳ रयिमान्पुष्टिमानसि ॥१॥

को देखता है और उसका कुल ब्रह्मतेज से युक्त होता है, पर याद रखो इस वैश्वानर आत्मा का यह आकाश केवल मध्यभाग है, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। ऐसा राजा ने कहा, साथ यह भी कहा, कि यदि तू मेरे पास नहीं आता, तो तेरा देह का मध्यभाग नष्ट हो जाता ॥ २ ॥

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

अश्वपति और बुडिल का संवाद

उसके बाद राजा ने आश्वतराश्व के पुत्र बुडिल से कहा—हे वैयाघ्रपद्य ! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो ? बुडिल ने कहा—हे पूज्य राजन् ! मैं तो वैश्वानर दृष्टि से जल की ही उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा—) जिसकी तुम उपासना करते हो, वह निश्चय ही धन नामक वैश्वानर आत्मा है (क्योंकि जल से अन्न होता है और अन्न से धन)। इसीलिए तुम धनवान् शरीर से हृष्ट-पुष्ट हो ॥ १ ॥

स्थ्यादिभिश्च बहुलं शरीरं तत्संदेहस्ते तव शरीरं व्यशीर्यच्छीर्णमभविष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विमित्यादि समानम्। एष वै रयिरात्मा वैश्वानरो

सर्वगतत्वेन बहुलत्वाद्देहस्य च परिच्छिन्नत्वेन तदभावात्कथमाकाशं वैश्वानरस्य शरीरं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—मांसेति। तच्छरीरमिति संबन्धः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

जनस्योपरमानन्तर(यं)मथशब्दार्थः। कथमबात्मको वैश्वानरो रयिरिति धनेन निर्दिश्यते

वाले) मांस, रक्त एवं अस्थि आदि की बहुलता हुआ करती है इससे 'सन्देह' शब्द संशयवाची न होकर शरीर के मध्यभाग का वाचक है। राजा बोला—यदि तुम मेरे पास न आए होते तो परिच्छिन्न ज्ञान के कारण तुम्हार शरीर का मध्य भाग नष्ट हो जाता ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्य-द्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

तुम अन्न खाते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई पुरुष इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न खाता है, प्रिय वस्तु को देखता है और कुल में ब्रह्म तेज होता हैं। किन्तु यह वैश्वानर आत्मा का मूत्र संग्रह स्थान है, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है, ऐसा राजा ने कहा और यह भी कहा, यदि तू मेरे पास नहीं आया होता, तो तेरा बस्ति स्थान फट जाता ॥ २ ॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

धनरूपः। अद्भ्योऽन्नं ततो धनमिति। तस्माद्रयिमान्धनवांस्त्वं पुष्टिमांश्च शरीरे पुष्टेश्चान्ननिमित्तत्वात् ॥१॥

बस्तिस्त्वेष आत्मनो वैश्वानरस्य बस्तिर्मूत्रसंग्रहस्थानं बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्भिन्नोऽ भविष्यद्यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

तत्राऽऽह—अद्भ्य इति। आयुर्वै घृतमितिवत्कार्यवाचकेन कारणं लक्ष्यत इत्यर्थः। तस्माद्वैश्व वैश्वानरोपासनादित्येतत्। धनरूपवैश्वानरोपासनाद्धनवानित्येव वक्तव्ये कथं पुष्टिमानित्यभि वापस्तत्राऽऽह—पुष्टेश्चेति ॥१॥

[1]मूत्राशयो धनुर्वक्रो बस्तिरित्यभिधीयत इत्याशयेनाऽऽह—बस्तिरिति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

इसके पश्चात् राजा ने आश्वतराश्वि बुडिल से पूछा इत्यादि व्याख्या पूर्वग्रन्थ के समान है। यह जो जल रूप से वैश्वानर की उपासना करते हो वह धन नामक वैश्वानर है। जल से अन्न पैदा होता है एवं उससे धन मिलता है। वैश्वानर की धन रूप में उपासना करने से ही तुम धनवान हो एवं अन्न से ही पुष्टि संभव होने के कारण तुम शरीर से भी पुष्ट हो ॥ १ ॥

हे बुडिल ! किन्तु यह तो वैश्वानर आत्मा का मूत्र संग्रह स्थान (बस्ति) है, सम्पूर्ण वैश्वानर रूप नहीं है। अच्छा हुआ तुम मेरे पास आए अन्यथा वैश्वानर के परिच्छिन्न ज्ञान से तुम्हारा बस्ति (मूत्र संग्रह स्थान) फट गया होता ॥ २ ॥

---

१. मूत्राशय इति—नाभेरधस्तादलाबुसदृशमेधोनालमन्नेकंच्छिद्रं मूत्रभाजनं बस्तिरित्युच्यते इति द्रष्टव्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः।)

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम क त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वैं प्रतिष्ठाऽऽत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्व प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च ॥१॥

अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

अश्वपति और उद्दालक का संवाद

अश्वपति ने उद्दालक आरुणि से कहा—हे गौतम! तुम किस आत्मा की उपासना करते हो? उद्दालक ने कहा—हे पूज्य राजन्। मैं वैश्वानर दृष्टि से पृथिवी की ही उपासना करता हूँ। (राजा ने कहा,—) जिसकी तुम उपासना करते हो, यह निश्चय ही उस वैश्वानर आत्मा के चरण हैं, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। इसी की उपासना से तुम प्रजा और पशुओं से युक्त हो ॥ १॥

तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रिय वस्तु को देखते हो। जो कोई अन्य व्यक्ति भी इस वैश्वानर आत्मा की इस प्रकार उपासना करता है, वह अन्न खाता है, प्रिय वस्तु को देखता है, उसके कुल में ब्रह्म तेजस्वी होता है। पर याद रखो यह आत्मा के चरण ही हैं, सम्पूर्ण वैश्वानररूप नहीं है। ऐसा राजा ने कहा, साथ मेंयह भी कहा यदि तू मेरे पास नहीं आता, तो तेरे पाद शिथिल हो जाते ॥२॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

अथ होवाचोद्दालकमित्यादि समानम्। पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाच। एष वै प्रतिष्ठा पादौ वैश्वानरस्य। पादौ ते व्यम्लास्येतां विम्लानावभविष्यतां श्लथीभूतौ यन्मां नाऽऽगमिष्य इति ॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

प्राचीनशालप्रभृतिषु पञ्चसु मौनमातिष्ठमानेष्वनन्तरमित्यथशब्दार्थः ॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

इसके पश्चात् राजा अश्वपति ने उद्दालक आरुणि से पूछा, इत्यादि व्याख्या पूर्व ग्रन्थ के समान है। आरुणि ने कहा—भगवन्! मैं तो उस वैश्वानर की पृथिवी रूप में उपासना करता हूँ। तुम जिस रूप की उपासना करते हो, वे तो वैश्वानर के पैर हैं। यदि तुम यहाँ न आए होते तो तुम्हारे दोनों पांव काम करना बन्द कर देते ॥ १ ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।)

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति ॥१॥

समस्त वैश्वानर उपासना का फल

व्यस्त उपासना करने वाले उन ऋषियों से राजा अश्वपति ने कहा—ये सभी तुम लोग इस वैश्वानर आत्मा को पृथक्-पृथक्-सा जान कर अन्न भक्षण करते हो। जो कोई 'यही मैं हूँ' इस प्रकार अभिमान करता हुआ इस अभिमान के विषय (द्युलोक से लेकर पृथिवी पर्यन्त) प्रादेशमात्र वैश्वानर आत्मा की उपासना करता है वह (वैश्वानर वेत्ता सर्वात्मा होकर अन्न भक्षण करता है, अज्ञानियों के समान देहमात्र में अभिमान करके अन्न नहीं खाता किन्तु) समस्त लोकों में, समस्त प्राणियों में और शरीरादि सम्पूर्ण आत्माओं में अन्न भक्षण करता है ॥ १ ॥

तान्यथोक्तवैश्वानरदर्शनवतो होवाच । एते यूयं वै खल्वित्यनर्थकौ यूयं पृथगिव पृथक्सन्तमिममेकं वैश्वानरमात्मानं विद्वांसोऽन्नमत्थ परिच्छिन्नात्मबुद्ध्येत्येतद्धस्तिदर्शन इव जात्यन्धाः । यस्त्वेतमेवं यथोक्तावयवैर्द्युमूर्धादिभिः पृथिवीपादान्तैर्विशिष्टं

उद्दालकांस्तेषु विद्यार्थिषूपसन्नेषु सामस्त्येन वैश्वानरविद्यां वक्तुकामस्तेषां मिथ्याज्ञानं वदति—तानित्यादिना । [1]अनर्थकाविवानर्थकौ निपातौ न त्वनर्थकावेव । तेषां मिथ्याज्ञानित्वप्रसिद्धिस्मारकत्वात् । यूयमित्यन्वयार्थं प्रागुक्तमपि पाठक्रमेण पुनरनूद्य पृथगिव विद्वांस इति [2]संबन्धः । यथा जात्यन्धा हस्तिदर्शने भिन्नदृष्टयो भवन्ति तथा यूयं वैश्वानरमात्मानमेकमपि सर्वात्मकं सन्तं भिन्नमिव विद्वांसः परिच्छिन्नात्तृरूपेणाऽऽत्मानं बुद्धवन्तः । तथा च मिथ्यादर्शिनो यूयं प्रागेव प्रत्यवायान्मामुपगतवन्तः साधु कृतवन्त इत्यर्थः । प्रधानविद्यां वक्तुं पातनिकां कृत्वा तामिदानीमुपदिशति—यस्त्वित्यादिना । एतमेवंभूतं यस्तूपास्ते स सर्वेष्वन्नमत्तीति संबन्धः । एवंशब्दार्थमाह—यथोक्तेति । एकं समस्त

इसके अनन्तर वैश्वानर का यथोक्त परिच्छिन्न ज्ञान रखने वाले उन महर्षियों से राजा अश्वपति बोले—तुम लोग 'यह एक वैश्वानर है यह एक वैश्वानर है'—इस प्रकार पृथक्-पृथक् कल्पना कर अपने को विद्वान् मानकर भोजन करते हो। जिस प्रकार कुछ अन्धों ने हाथी को पाकर उसका स्पर्श कर अपने-अपने हाथ में आए अङ्गों के अनुरूप उसका स्वरूप वर्णन कर दिया उसी प्रकार वैश्वानर का समग्र रूप न बतलाकर परिच्छिन्न बुद्धि से निरूपण करने से तुम सब जन्म से ही अन्धे हो। जो भी कोई प्रत्यगात्मा से "यही मैं हूँ" इस प्रकार अभिमान करता हुआ मूर्धादि गुणयुक्त द्युलोक से लेकर पादयुक्त पृथिवी पर्यन्त वैश्वानर के अवयवों को समस्त त्रैलोक्यात्मक प्रादेशमात्र

---

१. अनर्थकाविवेति—अनावश्यकत्वादिति भावः । २. संबन्धः कार्य इति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रादेशमात्रं 'प्रादेशैर्द्युमूर्धादिभिः पृथिवीपादान्तैरध्यात्मं मीयते ज्ञायत इति प्रादेशमात्रम् । मुखादिषु वा करणेष्वकर्तृत्वे मीयत इति प्रादेशमात्रः । द्युलोकादिपृथिव्यन्तप्रदेशपरिमाणो वा प्रादेशमात्रः । प्रकर्षेण शास्त्रेणाऽऽदिश्यन्त इति प्रादेशा द्युलोकादय एव तावत्परिमाणः प्रादेशमात्रः । शाखान्तरे तु मूर्धादिचिबुकप्रतिष्ठित इति प्रादेशमात्रं कल्पयन्ति । इह तु न तथाऽभिप्रेतः । तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मन इत्याद्युपसंहारात् । प्रत्यगात्मतयाऽभिविमीयतेऽहमिति ज्ञायत इत्यभिविमानस्तमेतमात्मानं वैश्वानरं विश्वान्नरान्नयति पुण्यपापानुरूपां गतिं सर्वात्मैष ईश्वरो वैश्वानरो विश्वो नर एव वा सर्वात्मत्वात् । विश्वैर्वा नरैः प्रत्यगात्मतया प्रविभज्य नीयत इति वैश्वानरस्तमेवमुपास्ते यः सो[2]ऽदन्नन्नादी सर्वेषु लोकेषु द्युलोकादिषु सर्वेषु भूतेषु चराचरेषु सर्वेष्वात्मसु

त्रैलोक्यात्मकमिति यावत् । प्रादेशमात्रमित्येतद्विभजते—प्रादेशैरिति । यथोक्तैराधिदैविकैरवयवैरध्यात्मं प्रत्यगात्मन्येवायं मीयत इति व्युत्पत्त्या प्रादेशमात्रस्तमिति यावत् । प्रकारान्तरेण व्याचष्टे—मुखादिषु वेति । तेषु हि प्रदेशेष्वयमकर्तृत्वे साक्षितया मीयत इति व्युत्पत्त्या तथोच्यत इत्यर्थः । विधान्तरेण व्याचष्टे—द्युलोकादिति । अर्थान्तरमाह—प्रकर्षेणेति । [3]आमनन्ति चैनमस्मिन्निति न्यायेन पक्षान्तरमाह—शाखान्तरे त्विति । अस्तु तर्हि जाबालश्रुत्यनुसारेण मूर्धानमारभ्याधरफलकपर्यन्ते देहावयवे संपादितो वैश्वानरः प्रादेशमात्र इति नेत्याह—इह त्विति । सर्वात्मत्वेन वैश्वानरस्योपसंहारदर्शनान्नात्र जाबालश्रुतिरनुसर्तव्येत्यर्थः । विशेषणान्तरं व्याचष्टे—प्रत्यगात्मतयेति । सर्वेश्वरत्वं सर्वात्मत्वं सर्वप्रत्यक्षत्वं वा हेतूकृत्य वैश्वानरशब्दमनेकधा व्याकरोति—विश्वानित्यादिना । ईश्वरो वैश्वानर इत्यत्र वैश्वानरपदमुभयत्र संबध्यते । स वैश्वानरविदन्नमदन्सर्वेषु लोकादिषु स्थित्वाऽन्नम-

---

जानकर उपासना करता है, वह वैश्वानर तत्त्ववेत्ता द्युलोकादि समस्त लोकों में, समस्त चराचर प्राणियों और शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि समस्त आत्माओं में सर्वात्मा होकर अन्न भक्षण करता है; देहाभिमानी अज्ञानी जीवों की तरह अन्न का भक्षण नहीं करता। द्युमूर्धादि से पृथिवीपादान्त द्वारा अध्यात्म का ज्ञान होने से वह प्रादेश मात्र है। आधिदैविक अवयवों से प्रत्ययगात्मा में ज्ञान कराता है अतः प्रादेशमात्र है। अथवा मुखादि इन्द्रियों में साक्षीरूप अकर्तृत्वबुद्धि से अवगत हो जाने से प्रादेशमात्र है अथवा द्युलोक से पृथिवीलोक पर्यन्त प्रदेश का परिमाण प्रादेशमात्र है। (प्रादेशमात्र का व्युत्पत्ति से अन्य अर्थ करते हैं—) शास्त्र द्वारा जो सम्यक् प्रकार से निर्दिष्ट होते हैं, वे प्रादेश हैं। द्युलोकादि ही प्रादेशमात्र परिमाण वाले हैं। जाबाल श्रुति के आचार्य मूर्धा से लेकर चिबुक पर्यन्त प्रतिष्ठित है, इस प्रकार वैश्वानर के प्रादेशमात्र की कल्पना करते हैं। यहाँ सर्वात्मक रूप से वैश्वानर का उपसंहार होने से जाबाल श्रुति प्रोक्त मत अभीष्ट नहीं है क्योंकि यहाँ उपसंहार किया गया है—"उस वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही द्युलोक है"—इत्यादि। (वैश्वानर शब्द की

---

१. प्रदेशा एव प्रादेशा इत्याशयेनाह—प्रादेशैरिति। २. अत्र अदन्नन्नमित्येव टीकानुसारी पाठः। ३. आमनन्तीति—अस्मिन्प्रादेशपरिमाणे मूर्धचुबुकान्तराले एनं परमेश्वरं जाबालाः—"य एषोऽनन्तोऽव्यक्त आत्मा सोऽविमुक्ते प्रतिष्ठित इत्याद्यामनन्ति पठन्तीत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मनो वैश्वावरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

समस्त वैश्वानर का वर्णन

उस इस प्रकृत वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही द्युलोक है, चक्षु सूर्य है, प्राण पृथग्वर्त्मा वायु है, शरीर का मध्यभाग आकाश है, बस्ति ही जल है और पृथिवी दोनों पाद हैं, वक्षःस्थल वेदी है, लोम कुशाएँ हैं, (क्योंकि वेदी में बिछे हुए दर्भ के समान वक्षःस्थल पर बिछे हुए से दीखते हैं) हृदय गार्हपत्याग्नि है। हृदय से उत्पन्न हुआ मन अन्वाहार्यपचन अग्नि है और मुख आहवनीयाग्नि है (क्योंकि इसी में अन्न का हवन किया जाता है) ॥२॥

॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

शरीरेन्द्रियमनोबुद्धिषु तेषु ह्यात्मकल्पनाव्यपदेशः प्राणिनामन्नमत्ति वैश्वानरवित्सर्वात्मा सन्नन्नमत्ति । न यथाऽज्ञः पिण्डमात्राभिमानः सन्नित्यर्थः ॥१॥

कस्मादेवम् । यस्मात्तस्य ह वै प्रकृतस्यैवैतस्याऽऽत्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्माऽऽत्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव

त्तीति संबन्धः । कथमात्मशब्देन शरीरादयो गृह्यन्ते तत्राऽऽह—तेषु हीति । सर्वेषु लोकेष्वित्यादिवाक्यस्य तात्पर्यार्थं दर्शयति—वैश्वानरविदिति ॥१॥

वैश्वानरोपासकः सर्वात्मा सन्नन्नमत्तीत्येवं कस्माद्धेतोर्निश्चितमित्याशङ्कामनूद्य हेतुप्रदर्शनपरत्वेनोत्तरं वाक्यमुपादत्ते—कस्मादित्यादिना । वैश्वानरस्य सर्वात्मत्वात्तदुपासकस्यापि तदात्मतया

अनेक प्रकार से व्युत्पत्ति दिखाई जाती है) समस्त मनुष्यों को उनके पुण्य और पाप के अनुरूप गति प्राप्त कराता है इससे सर्वात्मा ईश्वर ही वैश्वानर है। अथवा सर्वात्मक होने से समस्त प्राणी ही वैश्वानर है अथवा सम्पूर्ण प्राणियों द्वारा प्रत्यगात्म रूप से विभाग कर उसका ग्रहण किया जाता है इससे वैश्वानर है। मन्त्र में आत्मा शब्द से शरीर का ग्रहण है क्योंकि शरीरों में प्राणियों की आत्मकल्पना का व्यपदेश है ॥ १ ॥

(वैश्वानरविद्या के फल में हेतु निरूपित करते हैं—) इस प्रकृत समस्त वैश्वानर आत्मा का मस्तक ही तेजवान् द्युलोक है, चक्षु विश्वरूप सूर्य है, प्राण पृथक्वर्त्मा रूप वायु है, शरीर का मध्यभाग बहुलसंज्ञक आकाश है, बस्ति ही जल है, और पृथिवी दोनों पाद हैं। अथवा ऐसा भी अर्थ किया जा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः।)

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳ स यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति ॥१॥

भोजन में अग्निहोत्रत्व के लिए प्रथम प्राणाहुति का वर्णन

(पूर्वोक्त सिद्धान्त के कारण वैश्वानर उपासक का यह कर्तव्य है) कि भोजन के समय जो अन्न पहले आवे, उसका हवन करे। वह भोक्ता जो पहली आहुति दे तो उसे "प्राणाय स्वाहा" ऐसा कहकर मुख में अन्न डाले, उससे प्राण तृप्त होता है ॥१॥

...दौ। अथवा विध्यर्थमेतद्वचनमेवमुपास्य इति। अथेदानीं वैश्वानरविदो भोजनेऽग्निहोत्रं संपिपादयिषन्नाह—एतस्य वैश्वानरस्य भोक्तुरुर एव वेदिराकारसामान्यात्। लोमानि बर्हिर्वेद्यामिवोरसि लोमान्यास्तीर्णानि न दृश्यन्ते। हृदयं गार्हपत्यो हृदयाद्धि मनः प्रणीतमिवानन्तरी भवत्यतोऽन्वाहार्यपचनोऽग्निर्मनः। आस्यं मुखमाहवनीय इवाऽऽहवनीयो हूयतेऽस्मिन्नन्नमिति ॥२॥

तत्तत्रैवं सति यद्भक्तं भोजनकाल आगच्छेद्भोजनार्थं तद्धोमीयं तद्धोतव्यमग्नि-

...सर्वात्मत्वादसौ सर्वात्मा भूत्वा सर्वत्रान्नमत्तीति युक्तमित्यर्थः। तस्येत्यादिवाक्यस्य तात्पर्यान्तरमाह—...वेति। प्रधानविद्यामुक्त्वा तदङ्गप्राणाग्निहोत्रं दर्शयितुकामो भूमिकां करोति—अथेति संपादयितु-...दौ तदङ्गान्यश्वपतिराहेत्यर्थः। वेदिरिति स्थण्डिलमात्रं गृह्यते। अग्निहोत्रे तावन्मात्रस्योप-...त्वादितरस्य दर्शपूर्णमासाद्यङ्गत्वात्। वेद्यामास्तीर्यन्ते ये दर्भा [स्ते] बर्हिःशब्देनोच्यन्ते। हृदयस्य गार्हपत्यत्वं मनःप्रणयनहेतुत्वात्, प्रणीतमुत्पन्नमिवेत्यर्थः। आहवनीयसादृश्यं च मुखस्य दर्शयति—आहवनीय इति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

एवं सतीत्युक्तन्यायेनाग्निहोत्रे संपादिते सतीत्यर्थः। संपादितस्याग्निहोत्रत्वस्य सामान्या[१]दग्न्यु-

...सकता है कि यह श्रुति उपासना पद्धति का विधान करने के लिए है। अब वैश्वानरविद्या के विद्वान् के लिए भोजन में अग्निहोत्र संपादन करने की इच्छा से श्रुति कहती है—इस भोक्ता वैश्वानर की वक्षःस्थल ही वेदी है क्योंकि उन दोनों में आकार की समानता है। लोम वेदी में फैलाई हुई कुशाएँ हैं क्योंकि वक्षःस्थल में भी लोम फैले हुए दिखाई देते हैं। हृदय गार्हपत्य अग्नि है। हृदय से मन उत्पन्न होने के समान गार्हपत्य अग्नि से अन्वाहार्यपचन अग्नि होती है, अतः मन अन्वाहार्यपचन अग्नि है। आहवनीय अग्नि के समान मुख में अन्न डाला जाता है, अतः मुख आहवनीय अग्नि है ॥ २ ॥

इस प्रकार अग्निहोत्र का संपादन करने पर भोजन के समय जो भी भोज्य पदार्थ सामने

१. अग्न्युद्धरणेति—प्राकृत आहवनीयः शालामुखीय इत्युच्यते शालामुखीयसकाशादुत्तरवेद्यां प्रणयनार्थमग्निरुद्ध्रियते तदग्न्युद्धरणम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किंच द्यौश्चाऽऽदित्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

प्राण के तृप्त होने पर नेत्र इन्द्रिय तृप्त होती है, नेत्र इन्द्रिय के तृप्त होने पर आदित्य तृप्त होता है। सूर्य के तृप्त होने पर द्युलोक तृप्त होता है तथा द्युलोक के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर द्युलोक और आदित्य (स्वामी भाव से) अधिष्ठित हैं, वह भी तृप्त होता है और उसके तृप्त होने पर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज के द्वारा तृप्त होता है ॥२॥

॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

होत्रसंपन्मात्रस्य विवक्षितत्वान्नाग्निहोत्राङ्गेतिकर्तव्यताप्राप्तिरिह स भोक्ता यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां कथं जुहुयादित्याह—प्राणाय स्वाहेत्यनेन मन्त्रेणाऽऽहुतिशब्दादवदानप्रमाणमन्नं प्रक्षिपेदित्यर्थः। तेन प्राणस्तृप्यति ॥१॥

प्राणे तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुरादित्यो द्यौश्चेत्यादि तृप्यति यच्चान्यद्द्यौश्चाऽऽदित्यश्च स्वामित्वेनाधितिष्ठतस्तच्च तृप्यति तस्य तृप्तिमनु स्वयं भुञ्जानस्तृ

द्धरणादीनि तदङ्गान्यत्र भवेयुरित्याशङ्क्य तद्बुद्धिमात्रस्य विवक्षितत्वान्मैवमित्याह—अग्निहोत्रेति। इहेति वैश्वानरविदो भोजनमुच्यते। प्रकृतहोमगतावान्तरविभागमाह—स भोक्तेति। कथमिति मन्त्रो वा द्रव्यपरिमाणं वा फलं वा पृच्छ्यते तत्र प्रथमं प्रत्याह—प्राणायेति। यदि द्वितीयस्तत्राऽऽह—आहुतीति। अवदानस्य प्रमाणं परिमाणं कर्मिणां प्रसिद्धं तेन परिमितमिति यावत्। तृतीयस्तत्राऽऽह—तेनेति।

आएँ, उनसे पहले हवन करना चाहिए। यहाँ अग्निहोत्र के समान संपादन मात्र विवक्षित होने के कारण अग्नि होत्र के अङ्गों की इतिकर्तव्यता प्राप्त नहीं है। वैश्वानरविद्या का विद्वान् भोजन में प्रथम आहुति का हवन करे। किस प्रकार होम करे, इसे श्रुति स्वमुख से कहती है। प्राणतृप्ति के लिए 'प्राणाय स्वाहा'–(यह प्राण के लिए अर्पित हो) इस मन्त्र से अवदान प्रमाण अन्न की आहुति मुख में डाले ॥१॥

प्राण के तृप्त हो जाने पर चक्षु इन्द्रिय तृप्त हो जाती है चक्षु इन्द्रिय के तृप्त हो जाने पर आदित्य की तृप्ति होती है, उससे द्युलोक की तृप्ति होती है। जिस किसी के ऊपर द्युलोक और आदित्य ईश्वरभाव से अधिष्ठित हैं, वह भी तृप्त हो जाता है। उसकी तृप्ति से स्वयं भोक्ता भी तृप्त हो जाता है यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है (जबकि प्राणादि की तृप्ति शास्त्र से जानी जाती है)। इतना ही नहीं सन्तति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ।)

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति ॥१॥

व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किंच दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

द्वितीय आहुति

उसके बाद जो दूसरी आहुति दे तो उसे "व्यानाय स्वाहा" इस मन्त्र को बोलकर मुख में डाले, इस प्रकार व्यान तृप्त होता है ॥१॥

व्यान के तृप्त होने पर श्रोत्र तृप्त होता है, श्रोत्र के तृप्त होने पर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमा के तृप्त होने पर दिशाएँ तृप्त होती हैं और दिशाओं के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर चन्द्रमा एवं दिशाएँ (स्वामी भावसे) अधिष्ठित हैं, वह तृप्त होता है। उसकी तृप्ति के पीछे वह भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज एवं ब्रह्मतेज से तृप्त हो जाता है ॥२॥

॥ इति विंशः खण्डः ॥

प्यतीत्येव प्रत्यक्षम् । किं च प्रजादिभिश्च । तेजः शरीरस्था दीप्तिरुज्ज्वलत्वं प्रागल्भ्यं वा, ब्रह्मवर्चसं वृत्तस्वाध्यायनिमित्तं तेजः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

अथ यां द्वितीयां तृतीयां चतुर्थीं पञ्चमीमिति समानम् ॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

भुञ्जानस्य तृप्तौ प्रत्यक्षं प्रमाणं प्राणादेस्तृप्तौ शास्त्रमिति विभागमभिप्रेत्याऽऽह—प्रत्यक्षमिति। प्रजादिभिश्च भोक्ता तृप्यतीति संबन्धः ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥१९॥

इति पञ्चमाध्यायस्य विंशः खण्डः ॥२०॥

परम्परा सहित भोक्ता तृप्त होता है। मन्त्र में 'तेज' शब्द शरीरस्थ कान्ति उज्ज्वलत्व अथवा चातुर्य का बोधक है। इसी प्रकार मन्त्र में 'ब्रह्मवर्चस्' शब्द सदाचार एवं स्वाध्याय जनित तेज का द्योतक है ॥२॥

प्रथम आहुति के अनन्तर द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम आहुति का व्याख्यान पूर्वग्रन्थ के समान है ॥ १ ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ।)

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति ॥१॥

अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किंच पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।)

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति ॥१॥

तृतीय आहुति का वर्णन

पुनः जिस तीसरी आहुति को दे उसे "अपानाय स्वाहा" इस मन्त्र के द्वारा मुख में डाले, इस प्रकार अपान तृप्त हो जाता है ॥१॥

अपान के तृप्त होते ही वाणी तृप्त होती है, उससे अग्नि तृप्त होती है, अग्नि के तृप्त होने पर पृथिवी तृप्त होती है और पृथिवी के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर पृथिवी तथा अग्नि(स्वामी भाव से) प्रतिष्ठित हैं वह तृप्त होता है एवं उसकी तृप्ति के पीछे भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त हो जाता है ॥२॥

॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

चतुर्थ आहुति का वर्णन

फिर जिस चतुर्थ आहुति को दे, तो उसे "समानाय स्वाहा" इस मन्त्र से मुख में डाले, इससे समान तृप्त होता है ॥१॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किंच विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।)

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति ॥१॥

उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किंच वायुश्चाऽऽकाशश्चाधि-

समान के तृप्त होने पर मन तृप्त होता है, मन के तृप्त होने पर पर्जन्य तृप्त होता है। पर्जन्य के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर विद्युत् और पर्जन्य अधिष्ठित हैं, वह तृप्त होता है। इस प्रकार उसकी तृप्ति के पीछे भोक्ता, प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है ॥२॥

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

पंचम आहुति का वर्णन

पुनः जिस पंचम आहुति को दे, उसे "उदानाय स्वाहा" इस मन्त्र से मुख में डाले, इस प्रकार उदान तृप्त होता है ॥१॥

उदान के तृप्त होने पर त्वगिन्द्रिय तृप्त होती है, त्वचा के तृप्त होने पर वायु तृप्त होता है। वायु के तृप्त होने पर आकाश तृप्त होता हे तथा आकाश के तृप्त होने पर जिस किसी के ऊपर वायु

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति ॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

(अथ पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।)

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाऽङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात् ॥१॥

और आकाश (स्वामी भाव से)अधिष्ठित हैं, वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति के पीछे स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेज से तृप्त होता है ॥२॥

॥ इति त्रयोविंश: खण्ड: ॥

अविद्वानों का अग्निहोत्र

वह जो कोई इस वैश्वानर विद्या को न जानता हुआ लोक प्रसिद्ध अग्निहोत्र करता है–उसका वह अग्निहोत्र ऐसा ही है, जैसे आहुति योग्य अंगारों को हटाकर भस्म में आहुति डाले (इस प्रकार वैश्वानर उपासक के अग्निहोत्र की प्रशंसा की गयी है) ॥१॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

स यः कश्चिदिदं वैश्वानरदर्शनं यथोक्तमविद्वान्सन्नग्निहोत्रं प्रसिद्धं जुहोति यथाऽङ्गारानाहुतियोग्यानपोह्यानाहुतिस्थाने भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्तुल्यं तस्य तदग्निहोत्रहवनं स्याद्वैश्वानरविदोऽग्निहोत्रमपेक्ष्येति प्रसिद्धाग्निहोत्रनिन्दया वैश्वानरविदोऽग्निहोत्रं स्तूयते ॥१॥

॥१॥२॥

इति पञ्चमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

प्रसिद्धाग्निहोत्रनिन्दाद्वारेण वैश्वानरविदो यथोक्तमग्निहोत्रमवश्यकर्तव्यतायै स्तौति—स य: कश्चिदित्यादिना ॥१॥

जो भी कोई इस वैश्वानरविद्या को पूर्वोक्त रीति से न जानकर मीमांसाप्रसिद्ध अग्निहोत्र का अनुष्ठान करता है, उसका वह अग्निहोत्र करना ऐसा ही है, जैसे कोई आहुति देने के लिए उपयुक्त स्थान अङ्गारों को हटाकर अनुचित स्थान भस्म में आहुति डाले। वैश्वानर विद्या के उपासक के अग्निहोत्र की दृष्टि से लोकप्रसिद्ध अग्निहोत्र की निन्दाकर वैश्वानरतत्त्ववेत्ता के अग्निहोत्र की प्रशंसा की गई है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति ॥२॥

तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवꣳ हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति ॥३॥

विद्वानों का अग्निहोत्र

किन्तु जो इस प्रकार इस वैश्वानर को जानकर अग्निहोत्र करता है, उसका सम्पूर्ण लोक, सम्पूर्ण भूत और पूर्वोक्त सम्पूर्ण आत्माओं में हवन हो जाता है ॥२॥

इस विषय में यह दृष्टान्त है—जैसे सींक का अग्रभाग अग्नि में डालते ही जल कर राख हो जाता है, वैसे ही जो इस प्रकार जानता हुआ अग्निहोत्र करता है, उसके सम्पूर्ण पाप जलकर भस्म हो जाते हैं ॥३॥

अतश्चैतद्विशिष्टमग्निहोत्रम् । कथम् । अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य यथोक्तवैश्वानरविज्ञानवतः सर्वेषु लोकेष्वित्याद्युक्तार्थम् । हुतमन्नमत्तीत्यनयोरेकार्थत्वात् ॥२॥

किंच तद्यथेषीकायास्तूलमग्रमग्नौ प्रोतं प्रक्षिप्तं प्रदूयेत प्रदह्येत क्षिप्रमेवं हास्य

प्राणाग्निहोत्रस्य वैशिष्ट्ये हेत्वन्तरमतःशब्दोपात्तं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना । कर्मिकाग्निहोत्रनिन्दाद्वारा प्राणाग्निहोत्रस्तुत्यनन्तरं विधान्तरेण तस्यैव निरवद्यता कीर्त्यत इत्यथशब्दार्थः । एतदिति वैश्वानरदर्शनमुक्तम् । एवमिति । वैश्वानरस्योक्तसर्वात्मत्वादिप्रकारेणेत्यर्थः । अग्निहोत्रमिति सांपादिकमग्निहोत्रं गृह्यते । कथमिदमुक्तार्थं सर्वेषु लोकादिष्वन्नमत्तीति वाक्यं व्याख्यातं तस्य सर्वेषु लोकादिषु हुतं भवतीत्यन्यादृशमिदं वाक्यं तत्राऽऽह—हुतमिति ॥२॥

इतश्च वैश्वानरविद्यावतोऽग्निहोत्रं विशिष्टमिति वक्तुं वैश्वानरविद्यां स्तौति—किंचेति । 'तत्र वैश्वानरविद्यामाहात्म्ये दृष्टान्त इति यावत् । इषीकाया मुञ्जामध्यवर्तितृणस्येत्येतत् । सर्वशब्दा-

---

इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र की लोकप्रसिद्ध अग्निहोत्र से कुछ विशिष्टता है । प्रकारान्तर से इसे कहते हैं—जो भी इस वैश्वानरविद्या को सर्वात्मक प्रकार से जानकर सांपादिक अग्निहोत्र करता है; उस यथोक्त वैश्वानरविद्यावेत्ता का द्युलोकादि समस्त लोक, चराचर प्राणी एवं शरीर-इन्द्रिय मन बुद्धि में हवन हो जाता है अर्थात् वह सर्वात्मा होकर अन्न को ग्रहण करता है ॥ २ ॥

इतना ही नहीं, जिस प्रकार मूंज के मध्यवर्ती तृण का अग्रभाग अग्नि में डाले जाने पर

---

१. तद्यथेत्यस्यार्थमाह—तत्रेत्यादिना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मादु हैवंविद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छे-दात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतᳪ स्यादिति तदेष श्लोकः ॥४॥

अतः वह इस प्रकार जानकर यदि चाण्डाल को उच्छिष्ट भी दे तो भी उस उपासक का वह अन्न वैश्वानर आत्मा में ही हवन किया हुआ माना जाता है, इस विषय में यह श्लोक भी है ॥४॥

विदुषः सर्वात्मभूतस्य सर्वान्नानामत्तुः सर्वे निरवशिष्टाः पाप्मानो धर्माधर्माख्या अनेकजन्मसंचिता इह च प्राग्ज्ञानोत्पत्तेर्ज्ञानसहभाविनश्च प्रदूयन्ते प्रदह्येरन्वर्तमानशरीरारम्भकपाप्मवर्जं लक्ष्यं प्रति मुक्तेषुवत्प्रवृत्तफलत्वात्तस्य न दाहः। य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति भुङ्क्ते ॥३॥

स यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टानर्हायोच्छिष्टं प्रयच्छेद्दुच्छिष्टं दद्यात्प्रतिषिद्धमुच्छिष्टदानं यद्यपि कुर्यादात्मनि हैवास्य चण्डालदेहस्थे वैश्वानरे तद्धुतं स्यान्नाधर्मनिमित्तमिति विद्यामेव स्तौति। तदेतस्मिन्स्तुत्यर्थे श्लोको मन्त्रोऽप्येष भवति ॥४॥

त्प्रारब्धकर्मणोऽपि दाहमाशङ्क्याऽऽह—वर्तमानेति। वैश्वानरविद्याया महाफलत्वे सिद्धे तद्वतोऽग्निहोत्रं विशिष्टमिति तत्कर्तुः सर्वदोषास्पर्शित्वमित्याशयेनाऽऽह—य एतदिति ॥३॥

विद्यामेव विद्यास्तुतिद्वाराऽग्निहोत्रमिति यावत्। स्तुत्यर्थेऽग्निहोत्रस्य स्तुतिरूपो योऽर्थस्तस्मिन्नित्येतत् ॥४॥

बहुत जल्दी ही जल जाता है, उसी प्रकार सर्वात्मभावापन्न सर्वान्नों के भोक्ता वैश्वानरविद्या के विद्वान् के धर्म-अधर्म संज्ञक अनेक जन्मों से संचित एवं इस जन्म में ज्ञानोत्पत्ति से पूर्व ज्ञान के सहचर रूप में स्थित समस्त अवशिष्ट पाप विनष्ट हो जाते हैं। (सब पाप कहने से क्या प्रारब्धकर्म का भी नाश हो जाता है—) वर्तमान शरीर का आरम्भ पापरहित है, लक्ष्य के प्रति तरकस से छोड़े गए बाण के समान उसके फल की प्रवृत्ति होगी ही, अतः उसके दाह का विधान नहीं है। सर्वदोष उसे स्पर्श नहीं करते, जो इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र की आहुतियों को भक्षण करता है ॥ ३ ॥

इस प्रकार का उपासक यदि उच्छिष्ट देने के अयोग्य चाण्डाल को प्रतिषिद्ध उच्छिष्ट भोजन दे दे तो भी चाण्डाल के शरीर में गया हुआ वह अन्न वैश्वानर आत्मा में ही हवन किया हुआ माना जाता है। वह कभी भी अधर्म का हेतु नहीं है, इस प्रकार वैश्वानरविद्या की स्तुति के माध्यम से यह अग्निहोत्र की स्तुति है। अग्निहोत्र की स्तुति में यह मन्त्र भी है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳ सर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति ॥५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

इति च्छान्दोग्योपनिषदि पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५॥

जैसे इस लोक में क्षुधा से पीड़ित बालक सभी प्रकार से माता की उपासना करते हैं (कि माता हमें कब अन्न देगी) ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी इस प्रकार जानने वाले के अग्निहोत्ररूप भोजन की उपासना करते हैं। अग्निहोत्र की उपासना करते हैं ॥५॥

॥ इति पंचमाध्यायः, चतुर्विंशः खण्डः ॥

यथेह लोके क्षुधिता बुभुक्षिता बाला मातरं पर्युपासते कदा नो माताऽन्नं प्रयच्छतीत्येवं सर्वाणि भूतान्यन्नादान्येवंविदोऽग्निहोत्रं भोजनमुपासते कदा त्वसौ भोक्ष्यत इति, जगत्सर्वं विद्वद्भोजनेन तृप्तं भवतीत्यर्थः। द्विरुक्तिरध्यायपरिसमाप्त्यर्था ॥५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

इति श्रीमद्गोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५॥

मन्त्रस्य तात्पर्यार्थं दर्शयति—जगदिति। विदुषो वैश्वानरात्मनः सर्वात्मत्वादित्यर्थः ॥५॥

इति पञ्चमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां छान्दोग्योपनिषद्भाष्यटीकायां पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥५॥

जिस प्रकार यहाँ लोक व्यवहार में भोजन करने की इच्छा वाले भूखे बालक सर्व प्रकार से अपनी माता की शरण में आते हैं कि कब हमें यह भोजन देगी, इसी प्रकार अन्न ग्रहण करने के इच्छुक समस्त प्राणी प्राणाग्निहोत्रविद्या के उपासक के अग्निहोत्ररूप भोजन की उपासना करते हैं कि कब यह भोजन करेगा क्योंकि वैश्वानर आत्मा के विद्वान् सर्वात्मा हो जाने पर उसके भोजन करने से चराचर जगत् के प्राणी तृप्त हो जाते हैं। 'अग्निहोत्रमुपासत इति' यह द्विरुक्ति पञ्चम अध्याय की समाप्ति के लिए है ॥ ५ ॥

इस प्रकार शाङ्करभाष्य पञ्चमाध्याय की डॉ० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ ५ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।)

हरिः ॐ ।

श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आस तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यं न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ॥१॥

आरुणि का श्वेतकेतु के प्रति उपदेश

शास्त्र में यह प्रसिद्ध है कि अरुण का पौत्र श्वेतकेतु था। उससे उसके पिता ने कहा, हे श्वेतकेतु ! तू (हमारे कुल के अनुरूप गुरु के पास जाकर) ब्रह्मचर्य पूर्वक वास कर, क्योंकि हे सोम्य ! यह उचित नहीं है, हमारे कुल में उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष अध्ययन न करके ब्रह्मबन्धु के समान हो जावे ॥१॥

श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आसेत्याद्यध्यायसंबन्धः । सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानित्युक्तं कथं तस्माज्जगदिदं जायते तस्मिन्नेव च लीयतेऽनिति च तेनैवेत्येतद्वक्तव्यम् । अनन्तरं चैकस्मिन्भुक्ते विदुषि सर्वं जगत्तृप्तं भवतीत्युक्तं तदेकत्वे सत्यात्मनः सर्वभूतस्थस्योपपद्यते नाऽऽत्मभेदे कथं च तदेकत्वमिति तदर्थोऽयं षष्ठोऽध्याय आरभ्यते । पितापुत्राख्यायिका विद्यायाः सारिष्ठत्वप्रदर्शनार्था । श्वेतकेतुरिति नामतो हेत्यैतिह्यार्थः । आरुणेयोऽरुणस्य

वर्तिष्यमाणाध्यायस्यातीतेन संदर्भेण संबन्ध वक्तुं प्रतीकं गृहीत्वा तं प्रतिजानीते—श्वेतकेतुरिति । तमेव प्रकटयन्प्रथमं तृतीयेनाध्यायेनास्य संबन्धं कथयति—सर्वमिति । एतद्वक्तव्यं तदर्थोऽयं षष्ठोऽध्याय आरभ्यत इति संबन्धः । व्यवहितं संबन्धमुक्त्वाऽव्यवहितं तमादर्शयति—अनन्तरं चेति । अध्यायतात्पर्यमुक्त्वाऽऽख्यायिकातात्पर्यमाह—पितेति । पिता प्रतिवक्ता पुत्रश्च प्रष्टेत्येवंविधेयमाख्यायिका । सा च विद्यायाः सारिष्ठत्वद्योतनार्था । पिता हि पुत्राय सारतममेवोपदिशतीत्यर्थः ।

'ऐसा इतिहास प्रसिद्ध है कि आरुणि का पुत्र आरुणेय श्वेतकेतु था' यह पूर्व अध्याय से संबन्ध प्रदर्शन के लिए कहते हैं। तृतीय अध्याय में जो यह कहा—"यह प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषयभूत नामरूपात्मक सम्पूर्ण जगत् निश्चय ब्रह्मरूप है, यह उस ब्रह्म से अग्नि जलादि क्रम से उत्पन्न होने वाला, उसके विपरीत क्रम से उसी में लीन होने वाला और स्थिति के समय उसी में चेष्टा करने वाला है" तो यह बतलाना चाहिए किस प्रकार उससे यह जगत् उत्पन्न होता है, उसी में लीन होता है तथा उसी के द्वारा चेष्टा करता है। उसके पश्चात् पञ्चम अध्याय में बतलाया "एक वैश्वानर तत्त्ववेत्ता के अकेले भोजन कर लेने पर सम्पूर्ण जगत् के प्राणी तृप्त हो जाते हैं"। उसके एक होने पर ही आत्मा की सर्वभूतों में व्यापकता सिद्ध होती है; भेद होने पर नहीं। 'उसका एकत्व कैसे है' इसे प्रदर्शित करने के लिए यह छठा अध्याय प्रारम्भ किया जाता है। इस आख्यायिका में पुत्र प्रष्टा है, पिता प्रतिवक्ता है। पुत्र पर विशेष अनुराग होने से पिता सारतम तत्त्व का ही उपदेश करता है इसलिए इसमें विद्या का सारतम स्वरूप निरूपण किया गया है। श्वेतकेतु नाम इतिहास में प्रसिद्ध है। वह अरुण का पौत्र था। अपने पुत्र को विद्या का योग्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंꣳशतिवर्षः सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय तꣳ ह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यः ॥२॥

पिता के कहने पर वह श्वेतकेतु बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन कराके चौबीस वर्ष की अवस्था तक सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर और उनका अर्थ जानकर अपने को बड़ा बुद्धिमान और व्याख्याता मानता हुआ अविनीत स्वभाव होकर घर लौटा। पिता ने उससे कहा हे सोम्य ! तुम जो पंडित और उद्दण्ड दीखते हो, वह क्या तूने उस आदेश को पूछा है ॥२॥

पौत्र आस बभूव । तं पुत्रं हाऽऽरुणिः पिता योग्यं विद्याभाजनं मन्वानस्तस्योपनयनकालात्ययं च पश्यन्नुवाच हे श्वेतकेतोऽनुरूपं गुरुं कुलस्य नो गत्वा वस ब्रह्मचर्यम् । न चैतद्युक्तं यदस्मत्कुलीनो हे सोम्याननूच्यानधीत्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति ब्राह्मणान्बन्धून्व्यपदिशति न स्वयं ब्राह्मणवृत्त इति ॥१॥

[1]तस्यातः प्रवासोऽनुमीयते पितुः । येन स्वयं गुणवान्सन्पुत्रं नोपनेष्यति । स पित्रोक्तः श्वेतकेतुर्ह द्वादशवर्षः सन्नुपेत्याऽऽचार्यं यावच्चतुर्विंशतिवर्षो बभूव तावत्सर्वान्वेदांश्चतुरोऽप्यधीत्य तदर्थं च बुद्ध्वा महामना महद्गम्भीरं मनो यस्यासममात्मानमन्यैर्मन्यमानं मनो यस्य सोऽयं महामना अनूचानमान्यनूचानमात्मानं मन्यत इत्येवंशीलो

कुलस्यानुरूपमित्यादिवचनान्न कुलाधमस्य गुरुत्वमिति गम्यते । ब्रह्मचर्यमध्ययनार्थमिति शेषः । गत्वेत्यादिवचनान्माणवकाधीनमध्ययनमिति सूचितम् । मा भूदुपनयनमध्ययनं चेत्याशङ्क्याऽऽह—न चैतद्युक्तमिति ॥१॥

किमिति पिता स्वयमेवोपनीय पुत्रं नाध्यापयति तत्राऽऽह—तस्येति । अतः शब्दः स्वगृहविषयः अनुमानं कल्पनं तत्र कल्पकमाह—येनेति । अनूचानोऽनुवचनसमर्थः । कर्मव्युत्पत्त्या करणव्युत्पत्त्या

अधिकारी मानकर तथा यज्ञोपवीत संस्कार के काल का अतिक्रमण होते देख पिता आरुणि ने कहा— हे श्वेतकेतो ! अपने कुल के अनुरूप गुरु के पास जाकर अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करो । हे सोम्य ! यह उचित नहीं है कि हमारे कुल में होने वाला कोई भी पुरुष अध्ययन न करके स्वयं ब्राह्मण का आचरण न कर ब्राह्मणबन्धु के समान हो जाए ॥ १ ॥

इस प्रकार श्वेतकेतु का पिता उसकी घर से प्रवास की कल्पना करता है क्योंकि स्वयं गुणवान् होकर भी पुत्र का उपनयन नहीं करता । पिता द्वारा ऐसी आज्ञा होने पर बारह वर्ष की आयु वाला वह श्वेतकेतु आचार्य के पास गया, वहाँ उनने बारह वर्षों तक चारों वेदों का अध्ययन किया उनके अर्थों को जानकर किसी को अपने समान महागम्भीर न समझते हुए तथा अपने को अनुवचन

---

१. तस्य पितुः प्रवास इति संबन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

येनाश्रुतꣳ श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति ॥३॥

जिस आदेश के द्वारा न सुना हुआ पदार्थ भी सुना हो जाता है, न मनन किया हुआ पदार्थ भी मनन हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ भी निश्चित हो जाता है। (इस बात को सुनकर श्वेतकेतु ने कहा। भगवन्! वह आदेश कैसा होता है ॥३॥

यः सोऽनूचानमानी स्तब्धोऽप्रणतस्वभाव एयाय गृहम्। तमेवंभूतं हाऽऽत्मनोऽननुरूपशीलं स्तब्धं मानिनं पुत्रं दृष्ट्वा पितोवाच सद्धर्मावतारचिकीर्षया। श्वेतकेतो यन्विदं महामना अनूचानमानी स्तब्धश्चासि कस्तेऽतिशयः प्राप्त उपाध्यायादुतापि तमादेशमादिश्यत इत्यादेशः केवलशास्त्राचार्योपदेशगम्यमित्येतद्येन वा परं ब्रह्माऽऽदिश्यते स आदेशस्तमप्राक्ष्यः पृष्टवानस्याचार्यम् ॥२॥

तमादेशं विशिनष्टि येनाऽऽदेशेन श्रुतेनाश्रुतमप्यन्यच्छ्रुतं भवत्यमतं मतमतर्कितं तर्कितं भवत्यविज्ञातं विज्ञातमनिश्चितं निश्चितं भवतीति। सर्वानपि वेदानधीत्य सर्वं चान्यद्वेद्यमधिगम्याप्यकृतार्थ एव भवति यावदात्मतत्त्वं न जानातीत्याख्यायिकातोऽवगम्यते। तदेतदद्भुतं श्रुत्वाऽऽह कथं न्वेतदप्रसिद्धमन्यविज्ञानेनान्यद्विज्ञातं भवतीत्येवं मन्वानः पृच्छति कथं नु केन प्रकारेण हे भगवः स आदेशो भवतीति ॥३॥

चाऽऽदेशशब्दो व्याख्यातः ॥२॥

किमित्यधीतसर्ववेदमधिगततदर्थं च पुत्रमात्मविद्यामधिकृत्य पिता पृच्छति तस्य सर्ववेदाध्ययनादिनैव कृतार्थत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—सर्वानपीति। तदेतदद्भुतं श्रुत्वाऽऽहेत्युक्तं विवृणोति—कथं न्विति ॥३॥

करने में समर्थ मानते हुए अविनीत स्वभाव वाला होकर घर को वापिस लौट आया अपने पुत्र को इस प्रकार अननुरूप आचरण वाला एवं अविनम्र स्वभाव वाला देखकर पिता सद्धर्म अवतरण की इच्छा से बोला—हे श्वेतकेतो! तुम जो महागम्भीर अनुवचन करने में समर्थ एवं अविनीत स्वभाव वाले हो, तुमने गुरु जी से विशेष क्या प्राप्त किया है। केवल शास्त्र एवं आचार्य द्वारा समझ में आने योग्य अथवा जिससे परब्रह्म का उपदेश हो उस आदेश को क्या तुमने आचार्य को पूछा है ॥ २॥

पिता उस आदेश की विशेषता बतलाता है—जिस आदेश के श्रवण करने से अश्रुत भी अन्य के द्वारा श्रुत हो जाता है, न तर्क किया पदार्थ भी तर्कित हो जाता है तथा न निश्चित किया हुआ पदार्थ निश्चित हो जाता है। इस आख्यायिका से यह अर्थ ध्वनित होता है कि जब तक आत्मतत्त्व को नहीं जानता है तब तक चाहे सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर लें, चाहे अन्यद्वेद्य पदार्थों को जान ले, वह अकृतार्थ ही रह जाता है। पिता द्वारा यह अद्भुत सारगभित वाणी सुनकर श्वेतकेतु बोला—अन्य के विज्ञान से अन्य का विज्ञान हो जाता है' यह तो लोक प्रसिद्ध नहीं है। इसलिए हे भगवन् आप बतलाइए, (ब्रह्मविषयक) वह आदेश किस प्रकार का है ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ॥४॥

हे सोम्य लोक में जिस प्रकार मृत्तिका के एक पिण्ड द्वारा सम्पूर्ण मृत्तिका के कार्य समूह का ज्ञान हो जाता है, कि विकार केवल वाणी के आधार नाममात्र ही है, वस्तुतः सत्य तो केवल मृत्तिका ही है ॥४॥

यथा स आदेशो भवति तच्छृणु हे सोम्य। यथा लोक एकेन मृत्पिण्डेन करककुम्भादिकारणभूतेन विज्ञातेन सर्वमन्यत्तद्विकारजातं मृन्मयं मृद्विकारजातं विज्ञातं स्यात्। कथं मृत्पिण्डे कारणे विज्ञाते कार्यमन्यद्विज्ञातं स्यात्। नैष दोषः। कारणेनानन्यत्वात्कार्यस्य। यन्मन्यसेऽन्यस्मिन्विज्ञातेऽन्यन्न ज्ञायत इति। सत्यमेवं स्यात्। यद्यन्यत्कारणात्कार्यं स्यान्न त्वेवमन्यत्कारणात्कार्यम्। कथं तर्हीदं लोक इदं कारणमयमस्य विकार इति। शृणु। वाचाऽऽरम्भणं वागालम्बनमित्येतत्। कोऽसौ विकारो नामधेयं नामैव नामधेयं स्वार्थे धेयप्रत्ययः। वागालम्बनमात्रं नामैव केवलं न विकारो नाम वस्त्वस्ति परमार्थतो मृत्तिकेत्येव तु मृत्तिकैव तु सत्यं वस्त्वस्ति ॥४॥

मृन्मयमित्यस्य व्याख्या मृद्विकारजातमिति। तद्यथा मृत्पिण्डेन विज्ञातेन विज्ञातं स्यात्तथा-न्यदपि सर्वं कारणेन विज्ञातेन तद्विकारजातं विज्ञातं भवतीति योजना। अन्यविज्ञानादन्यविज्ञान-महत्त्वादश्लिष्टमिति शङ्कते—कथमिति। कार्यकारणयोरन्यत्वासिद्धेर्मैवमिति परिहरति—नैष दोष इति। तदेव स्फुटयति—यन्मन्यस इत्यादिना। अन्यत्वाभावे लोकप्रसिद्धिविरोधं शङ्कते—कथं तर्हीति। वाचाऽऽरम्भणमित्यत्र वाचेति तृतीया षष्ठ्यर्थे द्रष्टव्या। नामधेयमित्यस्यार्थं कथयति—नामैवेति। विकारस्य मिथ्यात्वे किं परमार्थतोऽस्तीत्याशङ्क्याऽऽह—मृत्तिकेत्येवेति ॥४॥

आरुणि बोले—हे सोम्य ! जिस प्रकार वह आदेश है, उसे श्रवण करो लोक व्यवहार में करक-कुम्भ के कारणभूत एक ही मृत्तिका पिण्ड के जानने से अन्य सब विकार समूह जो मृत्तिका के हैं, वे जान लिए जाते हैं। इस पर शङ्का होती है—कारणभूत मृत्तिकापिण्ड के जान लेने पर अन्य सभी कार्य कैसे जान लिए जाते हैं। समाधान में कहते हैं—ऐसा मानने में कोई दोष नहीं है क्योंकि कार्य और कारण की अनन्यता सिद्ध है। एवं जो ऐसा मानते हो अन्य के विज्ञान होने पर और दूसरा नहीं जाना जाता है। ऐसा होता तो है कि जो अन्य कारण से कार्य हो, इसी तरह अन्य किसी कारण से कार्य नहीं होता। अन्यत्व के अभाव होने पर फिर यह लोकव्यवहार में कैसे कहा जाता है कि यह कारण समूह इसका विकार है। इसे सुनो। विकार तो केवल वाणी का आलम्बन नाम मात्र है वस्तु ही परमार्थतः सत्य है; जिस प्रकार मृत्तिका ही सत्य वस्तु है। मन्त्र में 'नामधेयं' में स्वार्थ में 'धेय' प्रत्यय है ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम् ॥५॥

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳ स्याद्वाचाऽऽरम्भण विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳ सोम्य स आदेशो भवतीति ॥६॥

हे सोम्य ! जैसे एक सुवर्णपिण्ड के द्वारा सम्पूर्ण सुवर्णमय पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर आधारित नाममात्र ही है, सत्य तो केवल सुवर्ण ही है ॥५॥

हे सोम्य ! जैसे एक नख कृन्तन के ज्ञान से सम्पूर्ण लौह विकार समूह जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणी पर आधारित है, केवल नाममात्र है, सत्य तो केवल लोहा ही है, हे सोम्य ! ऐसा ही वह आदेश भी है (जिसे मैंने कहा है) ॥६॥

यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सुवर्ण[1]पिण्डेन सर्वमन्यद्विकारजातं कटकमुकुटकेयूरादि विज्ञातं स्यात् । वाचाऽऽरम्भणमित्यादि समानम् ॥५॥

यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेनोपलक्षितेन कृष्णायसपिण्डेनेत्यर्थः । सर्वं कार्ष्णायसं कृष्णायसविकारजातं विज्ञातं स्यात् । समानमन्यत् । अनेकदृष्टान्तोपादानं [2]दार्ष्टान्तिकानेकभेदानुगमार्थं दृढप्रतीत्यर्थं च । एवं सोम्य स आदेशो यो मयोक्तो ॥ ५ ॥

एकेनैव दृष्टान्तेन विवक्षितार्थसिद्धौ किमनेकदृष्टान्तोपादानेनेत्याशङ्क्याऽऽह—अनेकेति । न वा

हे सोम्य ! जिस प्रकार एक ही लोह मणि सुवर्णपिण्ड के जानने से अन्य सभी लोह सुवर्ण के कटक, मुकुट एवं केयूरादि विकार समूह को जान लिया जाता है क्योंकि विकार तो वाणी पर अवलम्बित नाममात्र ही है, इत्यादि व्याख्या पूर्वग्रन्थ के समान समझ लेनी चाहिए ॥ ५ ॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार नखनिकृन्तन से उपलक्षित एक ही लोह-पिण्ड के ज्ञान से अन्य लोह विकार समूह जान लिए जाते हैं—इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए । एक ही दृष्टान्त से विवक्षित अर्थ की सिद्धि हो जाने से अनेक दृष्टान्तों का प्रतिपादन तेज-जल-अन्नादि अनेक भेदों से युक्त दार्ष्टान्तिक को जानने के लिए एवं दृढप्रतीति के लिए है । हे सोम्य ! जिस आदेश को मैंने कहा था; वह वस्तुतः ऐसा ही है । पिता के इस प्रकार उपदेश करने पर श्वेतकेतु बोला—लगता है,

---

१ पिण्डेन विज्ञातेनेति शेषः । २. दार्ष्टान्तिकेति—दार्ष्टान्तिके. येऽनेके भेदास्तेजोऽबन्नरूपास्तेषां संग्रहार्थमिति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन्कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवा ँ स्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

निश्चय ही वे मेरे पूज्य गुरुदेव आपकी पूछी हुई इस बात को नहीं जानते थे। यदि वे जानते होते तो, मुझ गुणवान् भक्त और अनुगत शिष्य को क्यों नहीं बतलाते। अब आप ही मुझे उस वस्तु को बतलावें। तब पिता ने कहा, अच्छा सोम्य ! तुझे उस तत्त्व को बतलाता हूँ ॥७॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

भवतीत्युक्तवति पितर्यहितरो न वै नूनं भगवन्तः पूजावन्तो गुरवो मम ये त एतद्य-द्भवदुक्तं वस्तु नावेदिषुर्न विज्ञातवन्तो नूनम्। यद्यदि ह्यवेदिष्यन्विदितवन्त एतद्वस्तु कथं मे गुणवते भक्तायानुगताय नावक्ष्यन्नोक्तवन्तस्तेनाहं मन्ये न विदितवन्त इति। अवाच्यमपि गुरोर्न्यग्भावमवादीत्पुनर्गुरुकुलं प्रति प्रेषणभयात्। अतो भगवांस्त्वेव मे मह्यं तद्वस्तु येन सर्वज्ञत्वं ज्ञातेन मे स्यात्तद्ब्रवीतु कथयत्वित्युक्तः पितोवाच तथाऽस्तु सोम्येति ॥६॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

इत्यादिप्रतीकमादाय व्याचष्टे—भगवन्त इति। तेषामज्ञाने हेतुमाह—यदित्यादिना। ननु श्वेतकेतुर्गु-रूणामज्ञानमाचक्षाणो गुरुद्रोही प्रत्यवायी स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—अवाच्यमपीति। गुरूणामज्ञान-मतःशब्दार्थः ॥६॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

आप द्वारा पूछे हुए आदेश को मेरे पूजनीय गुरु जी निश्चय ही नहीं जानते थे क्योंकि यदि वे जानते होते तो निश्चित ही गुणवान् भक्त और अपने अनुगत शिष्य को बतलाते। न बतलाने से मैं समझता हूँ, वे जानते ही नहीं थे। गुरु जी का अज्ञान बतलाना गुरुद्रोह एवं प्रत्यवाय मूलक है, इसे नहीं कहना चाहिए तब भी उसने 'पुनः पिता जी गुरुकुल न भेज दें' इस डर से कहा। गुरु जी के इस विषय में अज्ञानी होने के कारण आप ही मुझे उस वस्तु का उपदेश करें, जिसके जानने से सर्वज्ञ हो जाता है। पुत्र की जिज्ञासा जानकर पिता बोले—हे सोम्य ! तुम्हारी जिज्ञासा को मैं शान्त करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।)

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत ॥१॥

पक्षान्तर का खण्डन पूर्वक जगत् की सद्रूपता का वर्णन

हे सोम्य ! उत्पत्ति से पूर्व यह दीखने वाला नामरूपात्मक जगत् (सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद शून्य) एकमात्र अद्वितीय सत् ही था। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों ने ऐसा भी कहा है, कि आरम्भ में यह जगत् एकमात्र अद्वितीय असद्रूप ही था। उसी असत् से सत् की उत्पत्ति हुई ॥१॥

सदेव सदित्यस्तितामात्रं वस्तु सूक्ष्मं निर्विशेषं सर्वगतमेकं निरञ्जनं निरवयवं विज्ञानं यदवगम्यते सर्ववेदान्तेभ्यः । एवशब्दोऽवधारणार्थः । किं तदवध्रियत इत्याह। इदं जगन्नामरूपक्रियावद्विकृतमुपलभ्यते यत्तत्सदेवाऽऽसीदित्यासीच्छब्देन संबध्यते। कदा सदेवेदमासीदित्युच्यते । अग्रे जगतः प्रागुत्पत्तेः ।

किं नेदानीमिदं सद्येनाग्र आसीदिति विशेष्यते । न । कथं तर्हि विशेषणम्। इदानीमपीदं सदेव किंतु नामरूपविशेषणवदिदंशब्दबुद्धिविषयं चेतीदं च भवति।

यद्विज्ञानेन सर्वविज्ञानं लभ्यते तद्विज्ञानं प्रतिज्ञातं प्रकटीकर्तुं प्रथमं सर्वस्य सन्मात्रत्वं प्रतिजानीते—सदेवेति । सच्छब्दस्य सामान्यविषयत्वं व्युदस्यति—सदितीति । तस्य पृथिव्यादिभ्यो विशेषं दर्शयति—सूक्ष्ममिति । आकाशादिभ्यो विशेषमाह—निर्विशेषमिति । अन्त्यविशेषव्यावृत्त्यर्थं विशेषमाह—सर्वगतमिति । तस्य ताटस्थ्यं व्यावर्तयति—एकमिति । प्रत्यगभिन्नस्य तस्य संसारित्वं वारयति—निरञ्जनमिति । निष्क्रियत्वेन तत्कूटस्थत्वमाह—निरवयवमिति । यथोक्ते वस्तुनि प्रमाण-माह—यदवगम्यत इति ।

विशेषणानुसारेण शङ्कते-किं नेदानीमिति । वर्तमानदशायामसत्त्वं जगतो नास्तीत्याह—नेति। सदा सत्त्वाविशेषे विशेषणं न निर्वहतीति शङ्कते—कथमिति । किं विशेषणसामर्थ्यादिदानी-मसत्त्वं जगतश्चोद्यते किं वा विशेषणस्यार्थवत्त्वं पृच्छ्यते तत्राऽऽद्यं दूषयति—इदानीमपीति। प्रत्यक्षविरोधान्न वर्तमानावस्थायां जगदसत्त्वसिद्धिरित्यर्थः । द्वितीयं प्रत्याह—किंत्विति । यच्चेदं

मन्त्र में 'सद्' यह अस्तितामात्र वस्तु है जो समस्त उपनिषदों द्वारा पृथिव्यादि भूतों से विशिष्ट सूक्ष्म, आकाशादि से भिन्न निर्विशेष, सर्वव्यापक, एक प्रत्यगभिन्न होने से निरञ्जन, निष्क्रिय होने से कूटस्थ एवं विज्ञान रूप से जानी जाती है। मन्त्र में 'एव' शब्द निश्चयार्थक है। क्या निश्चय किया जाता है—इस पर श्रुति कहती है। यह जगत् जो नाम, रूप, क्रिया के सदृश विकारवान् दिखाई देता है, वह सृष्टि से पूर्व सत् ही था।

क्या इस समय यह जगत् सत् नहीं है, जो सृष्टि से पूर्व सत् था, ऐसा प्रतिपादन करते हो?

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रागुत्पत्तेस्त्वग्रे केवलसच्छब्दबुद्धिमात्रगम्यमेवेति सदेवेदमग्र आसीदित्यवधार्यते। न हि प्रागुत्पत्तेर्नामवद्रूपवद्वेदमिति ग्रहीतुं शक्यं वस्तु सुषुप्तकाल इव। यथा सुषुप्तादुत्थितः सत्त्वमात्रमवगच्छति सुषुप्ते सन्मात्रमेव केवलं वस्त्वति तथा प्रागुत्पत्तेरित्यभिप्रायः।

यथेदमुच्यते लोके पूर्वाह्णे घटादि सिसृक्षुणा कुलालेन मृत्पिण्डं प्रसारितमुपलभ्य ग्रामान्तरं गत्वा प्रत्यागतोऽपराह्णे तत्रैव घटशरावाद्यनेकभेदभिन्नं कार्यमुपलभ्य मृदेवेदं घटशरावादि केवलं पूर्वाह्ण आसीदिति तथेहाप्युच्यते सदेवेदमग्र

वर्तमानं जगन्नामरूपविशेषणवदालक्ष्यते तदिदंशब्दस्य तद्बुद्धेश्च विषयभावेन स्थितं भवतीति कृत्वेदमिदमिदानीमित्यपि व्यवह्रियते तदेव त्वग्रे प्रागुत्पत्तेः सच्छब्दस्तद्बुद्धिश्चेत्येतावन्मात्रगम्यमेव न त्विदंशब्दस्य तद्बुद्धेश्च विषयो भवतीत्यग्रे सदेवेदमासीदित्यवधार्यते तस्माद्विशेषणमिदंशब्दबुद्धिव्यावृत्त्यपेक्षं प्राक्कालीने जगत्यविरुद्धमित्यर्थः। अथावर्तमानावस्थायामपि जगतः सत्त्वे किमिति तत्रेदंशब्दबुद्धी न क्रमेते अत आह—न हीति। यथा सुषुप्ते काले सदपि वस्तु नेदंशब्दबुद्ध्योर्गोचरं तथा प्रागुत्पत्तेः सदपि जगन्नामवत्त्वेन रूपवत्त्वेन चेदमिति न व्यवहर्तुं शक्यं करणोपसंहारस्योभयत्र तुल्यत्वादित्यर्थः। सुषुप्तेऽपि वस्तुनो न सत्त्वं मानाभावादित्याशङ्क्याऽऽह—यथेति। नहि तत्र वस्तुनोऽसत्त्वमुत्थितस्य परामर्शादनुभूतस्यानुभवितुश्चाभावे तदयोगात्। न च तत्र विभक्तं वस्तु दृश्यते सुषुप्त्यभावप्रसङ्गादतस्तत्र केवलसन्मात्रं वस्त्वति यथाऽवगमस्तथा प्रागुत्पत्तेरपि सर्वं सन्मात्रमेवेत्यर्थः।

उक्तमेवार्थं संप्रतिपन्नेनोदाहरणान्तरेण समर्थयते—यथेत्यादिना। किमिदं सदित्यपेक्षायां

ऐसा कहना ठीक नहीं। तो फिर 'अग्रे' विशेषण का किस लिए प्रयोग किया। प्रत्यक्षविरोध होने पर भी वर्तमान अवस्था में भी यह जगत् सत् ही है (विशेषण की भी अर्थवत्ता है—) किन्तु यह जो वर्तमान जगत् नाम रूप विशेषण की तरह लगता है, वह इदं शब्द और इदं बुद्धि के विषय रूप से है (इदं शब्दबुद्धि से प्राक्कालीन 'एव' इस वर्तमान जगत् में अविरोध है) इससे अब भी वैसा ही है। उत्पत्ति से पूर्व अवस्था में केवल सच्छब्द और सद्बुद्धि मात्र से गम्य ही था इसलिए उस समय यह जगत् सत् ही था—ऐसा निर्णय किया जाता है। जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था में सद् वस्तु भी इदं शब्द व बुद्धि की गोचर नहीं होती, इसी प्रकार इन्द्रियों के शान्त हो जाने पर सृष्टि से पूर्व सद् जगत् का नाम रूप से व्यवहार करते नहीं बनता। जैसे सुषुप्त्यवस्था से उठने पर सत्त्वमात्र को जानता है, इसलिए सुषुप्ति में केवल सद् वस्तु ही विद्यमान रहती है, ठीक इसी प्रकार उत्पत्ति से पूर्व सब कुछ सद् ही था, यह अभिप्राय है।

इसी को लोक विश्रुत उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है। जिस प्रकार घटादि-निर्माण के इच्छुक कुलाल द्वारा फैले हुए मृत्पिण्ड पूर्वाह्ण में देखकर अन्य ग्राम में जाकर लौटने पर सायंकाल घटशरावादि भिन्न कार्यों को पाकर निश्चय करता है। पूर्वाह्ण में जो मृत्पिण्ड देखा था, वही घटशरावादि है, इससे यह भी मिट्टी ही है; इसी प्रकार यहाँ भी कहा जाता है सृष्टि से पूर्व यह नामरूपात्मक जगत् सत् ही था। अपने एवं अपने कार्य के अन्तर्गत किसी अन्य को न देखने से श्रुति में उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसीदिति। एकमेवेति। [1]स्वकार्यपतितमन्यन्नास्तीत्येकमेवेत्युच्यते। अद्वितीयमिति। मृद्व्यतिरेकेण मृदो यथाऽन्यद्घटाद्याकारेण परिणमयितृकुलालादिनिमित्तकारणं दृष्टं तथा सद्व्यतिरेकेण सतः सहकारिकारणं द्वितीयं वस्त्वन्तरं प्राप्तं प्रतिषिध्यतेऽद्वितीयमिति नास्य द्वितीयं वस्त्वन्तरं विद्यत इत्यद्वितीयम्। ननु वैशेषिकपक्षेऽपि सत्सामानाधिकरण्यं सर्वस्योपपद्यते। द्रव्यगुणादिषु सच्छब्दबुद्ध्यनुवृत्तेः। सद्द्रव्यं सन्गुणः सत्कर्मेत्यादिदर्शनात्। सत्यमेवं स्यादिदानीं प्रागुत्पत्तेस्तु नैवेदं कार्यं सदेवाऽऽसीदित्यभ्युपगम्यते वैशेषिकैः प्रागुत्पत्तेः कार्यस्यासत्त्वाभ्युपगमात्। न चैकमेव सदद्वितीयं प्रागुत्पत्तेरिच्छन्ति। तस्माद्वैशेषिकपरिकल्पितात्सतोऽन्यत्कारणमिदं सदुच्यते मृदादिदृष्टान्तेभ्यः।

तल्लक्षणमाह—एकमिति। अवतारिते लक्षणवाक्ये प्रथमं विशेषणयोरर्थमाह—स्वकार्येति। सजातीयस्वगतभेदहीनमित्यर्थः। विशेषणान्तरमादाय व्याकरोति—अद्वितीयमितीति। विजातीयभेदशून्यमित्यर्थः। यदुक्तं सत्सामानाधिकरण्यात्सदेव सर्वमिति तत्राऽऽरम्भवादी शङ्कते—नन्विति। किं कार्यस्य सत्सामानाधिकरण्यं वर्तमानदशायां परपक्षेऽपि संभवतीत्युच्यते किं वा प्रागवस्थायामपीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति। द्वितीयं दूषयति—प्रागुत्पत्तेस्त्विति। लक्षणवाक्यं च परपक्षे दुर्योज्यमित्याह—न चेति। वाक्यद्वयपर्यालोचनया परपक्षासंभवमुपसंहरति—तस्मादिति। दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोरैकरूप्याद्दृष्टान्तानां कार्यकारणाभेदनिष्ठत्वाच्च वैशेषिकपक्षासिद्धिरित्याह—मृदादीति।

सजातीय और स्वगत भेद से शून्य 'एक' कहा गया है। जैसे मिट्टी का उससे भिन्न घटादि रूप देने में परिणमन करने वाला कुलालादि निमित्त कारण देखा जाता है उस प्रकार यहाँ सद् से भिन्न सद् का सहकारी कारण द्वितीय वस्तु की प्राप्ति का प्रतिषेध किया जाता है क्योंकि इससे भिन्न द्वितीय वस्तु की उपलब्धि न होने से यह विजातीय भेद से शून्य 'अद्वितीय' है। यहाँ आरम्भवादी शङ्का करता है—वैशेषिक सिद्धान्त में 'सत् सामानाधिकरण होने से यह सब कुछ सत् है' ऐसा कहा गया है। क्योंकि द्रव्यगुणादिकों में सच्छब्द एवं सद्बुद्धि की अनुवृत्ति होती है। सद्द्रव्यों, सद्गुणों एवं सत्कर्मों की उपलब्धि होती है। इस समय भी कार्य का सत्सामानाधिकरण्य होना उनके मत में ठीक ही है किन्तु उत्पत्ति से पूर्व वह कार्य सत् नहीं था—ऐसा वैशेषिकों द्वारा माना जाता है क्योंकि उत्पत्ति से पूर्व वे कार्य की सत्ता ही नहीं मानते। लक्षणश्रुति की उनके मत में सङ्गति लगाना भी कठिन है क्योंकि वे नहीं चाहते कि उत्पत्ति से पूर्व एक ही सत् अद्वितीय हो। इसलिए वैशेषिकों द्वारा परिकल्पित सत् से भिन्न कारण ही यह सत् मृदादि दृष्टान्त द्वारा प्रतिपादित किया गया है (अतः वैशेषिक मत श्रुति विरुद्ध है)।

---

१. स्वेति—स्वान्तर्गतं स्वकार्यान्तर्गतं चेत्यर्थः। स्वान्तर्गतमन्यन्नास्तीति स्वगतभेदाभावः स्वकार्यान्तर्गतमन्यदस्तीति सजातीयभेदाभावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्तत्र हैतस्मिन्प्रागुत्पत्तेर्वस्तुनिरूपण एके वैनाशिका आहुर्वस्तु निरूपयतोऽसदभावमात्रं प्रागुत्पत्तेरिदं जगदेकमेवाग्रेऽद्वितीयमासीदिति । सदभावमात्रं हि प्रागुत्पत्तेस्तत्त्वं कल्पयन्ति बौद्धाः । न तु सत्प्रतिद्वंद्वि[1] वस्त्वन्तरमिच्छन्ति । यथा सच्चासदिति गृह्यमाणं यथाभूतं तद्विपरीतं तत्त्वं भवतीति नैयायिकाः । ननु सदभावमात्रं प्रागुत्पत्तेश्चेदभिप्रेतं वैनाशिकैः । कथं प्रागुत्पत्तेरिदमासीदसदेकमेवाद्वितीयं चेति कालसंबन्धः संख्यासंबन्धोऽद्वितीयत्वं चोच्यते तैः । बाढं न युक्तं तेषां भावाभावमात्रमभ्युपगच्छताम् । असत्त्वमात्राभ्युपगमोऽप्ययुक्त एवाभ्युपगन्तुरनभ्युपगमानुपपत्तेः । इदानीमभ्युपगन्ताऽभ्युपगम्यते न प्रागुत्पत्तेरिति चेत् । न । प्रागुत्पत्तेः सदभावस्य

वैशेषिकपक्षासंभवेऽपि वैनाशिकपक्षो भविष्यतीति शङ्कते—तत्तत्रेति । असच्छब्दस्य तुच्छव्यावृत्तविषयत्वं वारयति—अभावमात्रमिति । सतोऽन्यदसदिति स्थितेरसद्वादिनाऽपि प्रतियोगिभूतं सदास्थितमित्याशङ्क्याऽऽह—सदभावमात्रमिति । तदेव वैधर्म्यदृष्टान्तेन स्फुटयति—यथेति । सदिति यथाभूतमसदिति च ततो विपरीतं गृह्यमाणं सच्चासच्चेति द्विविधं तत्त्वं भवतीति यथा नैयायिका वदन्ति द्वे तत्त्वे सदसती भावाभावाविति तैरप्यभ्युपगमान्न तथा बौद्धैर्द्विविधं तत्त्वमिष्टं सदत्यन्ताभावोऽसदित्यभ्युपगमादप्रतीतप्रतियोगिकाभावस्यात्यन्ताभावतया शशविषाणं नास्तीत्यादौ प्रसिद्धत्वादित्यर्थः । तमिमं वैनाशिकपक्षं शिष्यमुखेन (ण) दूषयति—न्वित्यादिना । शिष्योक्तमङ्गीकरोति—बाढमिति । भावस्य योऽभावस्तन्मात्रमसदित्यभ्युपगच्छतां तेषां पक्षे न युक्तं कालसंबन्धासत इति युक्तमेव त्वयोक्तमित्यर्थः । किं च तन्मते यस्य कस्यचिदसत्त्वमिष्टं सर्वस्य वेति विकल्प्याऽऽद्यमुपेत्य द्वितीयं दूषयति—असत्त्वेति । किमभ्युपगन्ता यदा कदाचिदभ्युपगन्तव्यः किं वा प्रागवस्थामपीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गीकृत्य द्वितीयं दूषयन्नाशङ्कते—इदानीमिति । स किं तदानीमसत्त्वान्नाभ्युपगम्यते किं वा तदभ्युपगन्तुरभावान्नाऽऽद्य इत्याह—न प्रागुत्पत्तेरिति । न द्वितीयः प्रागुत्पत्तेर्जगदसदि-

---

उत्पत्ति से पूर्व वस्तु तत्त्व का निरूपण करते हुए (वैशेषिक मत के असंभव होने पर भी) बौद्धमतानुयायी वैनाशिक कहते हैं कि यह जगत् उत्पत्ति से पूर्व एक और अद्वितीय था, असत् अभाव मात्र था। बौद्धदर्शन में सत् अभावमात्र रूप तत्त्व की उत्पत्ति से पूर्व कल्पना की जाती है, सत् की प्रतियोगी अन्य वस्तु को स्वीकार नहीं करते। जिस प्रकार नैयायिक भी तत्त्वद्वय मानते हैं यथाभूत सत् तत्त्व है एवं अयथाभूत असत् तत्त्व है। यदि कहो उत्पत्ति से पूर्व सत् अभाव मात्र वैनाशिक बौद्धों को भी अभीष्ट है। तो फिर वे "उत्पत्ति से पूर्व यह तत्त्व असत् था वही एक ही अद्वितीय था" इस श्रुति की संगति कैसे लगाएँगे, इसका समाधान काल संबन्ध एवं संख्या संबन्ध से अद्वितीयत्व मानने से हो जाता है। ऐसी वैनाशिक शिष्य की उक्ति उचित ही है। भाव का जो अभाव है; उसे ही असत् मान लेना युक्ति संगत नहीं है। किसी की भी सत्ता स्वीकार न करना भी उचित नहीं है क्योंकि स्वीकार करने वाले की सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता। यदि यह मान भी लिया जाए कि स्वीकार करने वाले की सत्ता वर्तमान में है किन्तु क्या पूर्व में थी ? नहीं, क्योंकि उत्पत्ति

---

१. प्रतिद्वन्द्वि—प्रतियोगी, वस्त्वन्तरं सत्नेच्छन्तीति संबन्धः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रमाणाभावात् । प्रागुत्पत्तेरसदेवेतिकल्पनानुपपत्तिः ।

ननु कथं वस्त्वाकृतेः शब्दार्थत्वेऽसदेकमेवाद्वितीयमितिपदार्थवाक्यार्थोपपत्तिस्तदनुपपत्तौ चेदं वाक्यमप्रमाणं प्रसज्येतेति चेत् । नैष दोषः । सद्ग्रहणनिवृत्तिपरत्वाद्वाक्यस्य । सदित्ययं तावच्छब्दः सदाकृतिवाचकः । एकमेवाद्वितीयमित्येतौ च सच्छब्देन समानाकरणौ । तथेदमासीदिति च । तत्र नञ् सद्वाक्ये प्रयुक्तः सद्वाक्यमेवावलम्ब्य सद्वाक्यार्थ-

त्यस्याभ्युपगन्ता संप्रत्यभ्युपगम्यते यथा तथा प्रागवस्थायामभ्युपगन्ता सन्नित्यस्याप्यभ्युपगन्तुरिदानीमभ्युपगमसंभवान्न हि प्रागुत्पत्तेस्तत्सत्त्वे मानाभावः । विमतः कालो ज्ञातृसत्तावान्कालत्वात्संमतवदित्यनुमानादित्याह—प्रागुत्पत्तेरिति ।

परपक्षं दूषयित्वा वाक्यतात्पर्यं दर्शयितुं चोदयति—नन्विति । 'अन्यापोहस्य[2] शब्दार्थत्वे सत्य[3]'पोह्यवस्तुनस्तदर्थत्वे वा '[4]कथमसदिति शब्दस्यार्थसिद्धि'[5]राकृतेश्च मीमांसकप्रक्रियया शब्दार्थत्वे सत्येकमद्वितीयमितिपदयोराकृतिवाचकत्वायोगादर्थानुपपत्तिस्तदभावे च पदार्थसंसर्गाद्यात्मनो वाक्यार्थस्यानुपपत्तिर्वाक्यार्थस्यानुपपत्तौ च निर्विषयमिदं वाक्यमप्रमाणं स्यादित्यर्थः । '[6]सदभिनिवेशनिवृत्त्यर्थमिदं वाक्यं न तु शून्यमेव '[7]साक्षादभिधत्ते तन्न वाक्याप्रामाण्यमिति परिहरति—नैष दोष इति । तथाऽपि कथमसदादिशब्दानामगृहीतशक्तिकत्वे वाक्यार्थोपपत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—सदित्ययमिति । एकमद्वितीयमिति शब्दद्वयवदिदमासीदिति च शब्दौ सच्छब्देन समानाधिकरणावेवेत्याह— तथेति । सदेवेत्यादिवाक्यस्योक्तविधयाऽर्थवत्त्वेऽपि कथमसदेवेत्यादिवाक्यमर्थवदित्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति । इवशब्दो यद्वदित्यस्मिन्नर्थे

से पूर्व सत्तत्त्व के अभाव में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है । उत्पत्ति के पूर्व जगत् असत् था यह कल्पना भी सिद्ध नहीं हो सकती ।

इस पर शङ्का होती है, वस्तु की जो जाति होती है, वही उसका शब्दार्थ होता है, ऐसा नियम है । ऐसे में "उत्पत्ति से पूर्व वह तत्त्व असत् था, वही एक अद्वितीय था" इन मन्त्रों के जाति भिन्न होने से अर्थ न हो सकेगा फिर वाक्यार्थ कैसे संभव होगा । वाक्यार्थ संभव न हो सकने के कारण यह श्रुतिवाक्य अप्रामाणिक होने लग जाएगा । इस पर कहते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है। इस श्रुतिवाक्य का तात्पर्य वह भ्रम मिटाने में है जो जगत् में परमार्थ बुद्धि सम्पादित करता है। श्रुतिवाक्य में "सद्" यह शब्द सत् जाति (शक्ति) का वाचक है । "एक" और "अद्वितीय" शब्दों की तरह "यह था" इसका सत् शब्द से समानाधिकरण है । ('सत् ही था' इस वाक्य की अर्थवत्ता स्वीकृत

१. अन्यभेदस्य । २. अन्यापोहस्य शब्दार्थत्व इति—तथाहि गोशब्दश्रवणात्सर्वासां गोव्यक्तीनामुपस्थितेरतस्मादगोभिन्नादश्वादितो व्यावृत्तिदर्शनाच्च अतद्व्यावृत्तिरूपः अगोव्यवच्छेदरूपोऽपोह एव शब्दार्थः वाच्यार्थः स च विज्ञानधर्म एवेति बौद्धमतम् । तत्त्वसंग्रहे तट्टीकायां पञ्जिकायां चापोहवादस्वरूपस्य बहूपपादनं दृश्यते। तथाहि—स्वलक्षणेऽपि तद्धेतावन्यविश्लेषभावतः । प्रसज्यप्रतिषेधश्च गौरगौर्नभवत्ययम् । अतिविस्पष्ट एवायमन्यापोहोऽवगम्यते इत्युक्तमन्यत्र । ३. अपोह्यं भेद्यं भेदधर्मीति यावत् । ४. कथमिति—सद्भेदस्य तद्भिन्नस्य वा सिद्धान्तेऽनभ्युपगमादिति भावः । ५. आकृतेः जातेरित्यर्थः । मीमांसकप्रक्रिया आनन्त्यव्यभिचारात्मिका । ६. सदभिनिवेशेति—जगतः परमार्थसत्त्वभ्रमनिरासार्थमित्यर्थः । ७. साक्षादिति—शक्त्येत्यर्थः । तथा च परमार्थसत्त्वाभावं बोधयल्लक्षणयाऽव्याकृतमेवाह असत्पदमिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथ-

पर हे सोम्य ! भला ऐसा कैसे हो सकता है, असत् से सत् की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती

विषयां बुद्धिं सदेकमेवाद्वितीयमिदमासीदित्येवंलक्षणां ततः सद्वाक्यार्थान्निवर्तयत्यश्वारूढ इवाश्वालम्बनोऽश्वं तदभिमुखविषयान्निवर्तयति तद्वत् । न तु पुनः सदभावमेवाभिधत्ते । अतः पुरुषस्य विपरीतग्रहणनिवृत्त्यर्थपरमिदमसदेवेत्यादि वाक्यं प्रयुज्यते । दर्शयित्वा हि विपरीतग्रहणं ततो निवर्तयितुं शक्यत इत्यर्थवत्त्वादसदादिवाक्यस्य श्रौतत्वं प्रामाण्यं च सिद्धमित्यदोषः । तस्मादसतः सर्वाभावरूपात्सद्विद्यमानमजायत समुत्पन्नम् । अडभावश्छान्दसः ॥१॥

तदेतद्विपरीतग्रहणं महावैनाशिकपक्षं दर्शयित्वा प्रतिषेधति । कुतस्तु प्रमाणा-

---

तद्वदिति पृथक्प्रयोगात् । किमिति वाक्यस्य सदभिनिवेशनिवृत्तिपरत्वं सदभावपरत्वमेव किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—न त्विति । सदभावस्यात्यन्ताभावलक्षणस्य तुच्छत्वाच्छब्दशक्तिगोचरत्वासंभवादित्यर्थः । अन्यपरत्वासंभवे सदभिनिवेशनिवृत्तिपरत्वं वाक्यस्य सिद्धमित्युपसंहरति—अत इति । प्राक्काले पुरुषस्य सदभिनिवेशनिवृत्तिरत्र विवक्षिता चेत्तर्हि नञ्पदमेव प्रयोक्तव्यं किमित्यसदेवेदमग्र आसीदिति प्रयुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—दर्शयित्वा हीति । अथवा सदेवेत्यादिना स्वपक्षमुक्त्वा तद्दृढीकरणार्थत्वेनासदेवेत्यादिनाऽनुवादोऽयमिति तात्पर्यान्तरमाह—दर्शयित्वा हीति । प्रथमे पक्षे तस्मादित्यादिवाक्यस्यार्थाभावाद्द्वितीयः पक्षो गृहीतस्तत्र कारणस्यासत्त्वमुक्तमिदानीं कार्यस्यापि तद्दर्शयति—तस्मादिति । अजायतेति वक्तव्ये कथं श्रुत्या जायतेति प्रयुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—अडभाव इति ॥१॥

कुतस्तु खल्वित्यादिवाक्यालोचनायामपि द्वितीयः पक्षो ग्राह्य इत्यभिप्रेत्याऽऽह—तदेतदिति ।

होने पर "असत् ही था" इस श्रुतिवाक्य की अर्थवत्ता कैसे सिद्ध होगी, इस पर कहते हैं—) श्रुतिवाक्यों में सद्वाक्य में 'असत्' शब्द का प्रयोग सद् वाक्य को आश्रित करके सद् वाक्य की अर्थ से विशिष्टता हटा देता है जिस प्रकार घोड़े पर सवार पुरुष घोड़े के आश्रित होकर घोड़े को उसके अन्य विषयों से पृथक् कर देता है । पुनः सद्भाव की शब्दवत्ता प्रतीति नहीं करता । इसलिए पुरुष के विपरीत बोध की निवृत्ति के लिए अगली श्रुति में 'असत् ही है' ऐसे श्रुति वाक्य का प्रयोग है । विपरीत बोध को प्रदर्शित करके ही उससे निवृत्ति की प्रेरणा ली जा सकती है, इसी में श्रुति का परम तात्पर्य होने से "सृष्टि से पूर्व असद् ही था' इस वाक्य का श्रुतिसंगत एवं प्रामाणिक होना सिद्ध हो जाता है. इसमें कोई दोष नहीं है । इसलिए असत् के सर्वथा अभाव से सद्भावरूप पदार्थ हुआ । 'जायत' इस पद में "अडभाव" छान्दस है नहीं तो "अजायत" प्रयोग होना चाहिए था ॥ १ ॥

इस प्रकार इस विपरीत बोध रूप महावैनाशिक के मत को प्रदर्शित कर 'कुतस्तु खलु सोम्य' इस श्रुति द्वारा उसका निरास किया जाता है । हे सोम्य ! असत् से सत् उत्पन्न होता है इसमें क्या

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मसतः सज्जायेतेति । सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥२॥

है ? अतः हे सोम्य ! आरम्भ में यह नामरूपात्मक जगत् एकमात्र अद्वितीय सत् ही था । (ऐसा पिता ने अपने पुत्र से कहा) ॥२॥

त्खलु हे सोम्यैवं स्यादसतः सज्जायतेत्येवं कुतो भवेन्न कुतश्चित्प्रमाणादेवं संभवतीत्यर्थः । यदपि बीजोपमर्देऽङ्कुरो जायमानो दृष्टोऽभावादेवेति तदप्यभ्युपगमविरुद्धं तेषाम् । कथम् । ये तावद्बीजावयवा बीजसंस्थानविशिष्टास्तेऽङ्कुरेऽप्यनुवर्तन्त एव न तेषामुपमर्दोऽङ्कुरजन्मनि । यत्पुनर्बीजाकारसंस्थानं तद्बीजावयवव्यतिरेकेण वस्तुभूतं न वैनाशिकैरभ्युपगम्यते यदङ्कुरजन्मन्युपमृद्येत । अथ तदस्त्यवयवव्यतिरिक्तं वस्तुभूतं तथा च सत्यभ्युपगमविरोधः । अथ संवृत्याऽभ्युपगतं बीजसंस्थानरूपमुपमृद्यत इति चेत् । केयं संवृतिर्नाम किमसावभाव उत भाव इति । यद्यभावो दृष्टान्ताभावः । अथ

विमतमभावपुरःसरं कार्यत्वादङ्कुरवदिति प्रमाणं शङ्कते—यदपीति । [1]अप्रसिद्धविशेषणत्वं मत्वा परिहरति—तदपीति । बीजोपमर्देनाङ्कुरोत्पत्तेरिष्टत्वात्कथमप्रसिद्धविशेषणतेति शङ्कते—कथमिति । किमङ्कुरोत्पत्तौ बीजावयवा उपमृद्यन्ते किं वा बीजाकारसंस्थानमिति विकल्प्याऽऽद्यं प्रत्याह—ये तावदिति । द्वितीयं दूषयति—यत्पुनरिति । तत्किं परमार्थवस्तु किं वा संवृतिसिद्धं नाऽऽद्योऽभ्युपगमविरोधादित्युक्तं द्वितीयमुत्थापयति—अथ संवृत्येति । संवृतिं विकल्पयति—केयमिति । आद्ये भावस्याभावादुत्पत्तौ दृष्टान्ताभावः संवृतेरवस्तुत्वेन बीजसत्त्वासाधकत्वादित्याह—यदीति । द्वितीयमनूद्य दूषयति—अथेति । तत्त्वं यया संव्रियत आच्छाद्यते सा संवृति[2]र्लौकिकी बुद्धिः सा चेद्भावरूपेष्टा तर्हि

प्रमाण है ? लोक व्यवहार में धरती में बीज बोने से उसके भूमि के रस से विकृत होकर अङ्कुरित होना देखा जाता है वह भी बीज के अभाव हो जाने के कारण ही है, ऐसी युक्ति भी स्वीकृत होने योग्य नहीं है । ऐसा क्यों कहते हो ? क्योंकि वस्तु स्थिति तो यह है कि बीज के क्षीण होने पर जो बीज के अवयव हैं वे बीज के मौलिक तत्त्वों से युक्त रहने के कारण अंकुर में भी स्वभावतः आ जाते हैं, बीज के गुणों का सर्वथा नाश होकर अंकुर का जन्म होना असंभव है । एवं जो बीजाकार संस्थिति है वह बीज के अवयव से व्यतिरिक्त वस्तु रूप नहीं है जिससे अंकुर के आ जाने पर उसका नाश हो, ऐसा वैनाशिक मानते है । ऐसे में यदि बीजावयव से भिन्न वस्तु होगी तो ऐसा मानना न्यायविरुद्ध होगा । तथा संवृति से प्राप्त हुए बीज की स्थिति का उपमर्दन होना मानते हो तो महाशय जी ! यह बताने का कष्ट करें यह संवृति क्या है, क्या यह अभावरूप है अथवा भावरूप है । यदि यह अभाव रूप है तो दृष्टान्त ही (असंगत होने से) नहीं मिलेगा तथा यदि भावरूप है तो भी अभाव से

---

१. अप्रसिद्धविशेषणत्वमिति—अप्रसिद्धसाध्यकत्वं साध्याप्रसिद्धिरिति यावत् । साध्यस्य पक्षविशेषणत्वात् ।
२. लौकिकी बुद्धिरिति—भ्रान्तिरिति यावत् । प्रमा हि शास्त्रीया धीः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावस्तथाऽपि नाभावादङ्कुरोत्पत्तिर्बीजावयवेभ्यो ह्यङ्कुरोत्पत्तिः।

अवयवा अप्युपमृद्यन्त इति चेत्। न। तदवयवेषु तुल्यत्वात्। यथा वैनाशिकानां बीजसंस्थानरूपोऽवयवी नास्ति तथाऽवयवा अपीति तेषामप्युपमर्दानुपपत्तिः। बीजावयवानामपि सूक्ष्मावयवास्तदवयवानामप्यन्ये सूक्ष्मतरावयवा इत्येवं प्रसङ्गस्यानिवृत्तेः सर्वत्रोपमर्दानुपपत्तिः। सद्बुद्ध्यनुवृत्तेः सत्त्वानिवृत्तिश्चेति सद्वादिनां सत एव सदुत्पत्तिः सेत्स्यति। न त्वसद्वादिनां दृष्टान्तोऽस्त्यसतः सदुत्पत्तेः। मृत्पिण्डाद्घटोत्पत्तिर्दृश्यते सद्वादिनां तद्भावे भावात्तदभावे चाभावात्।

त्वा बीजावयवानामङ्कुराकारपरिणामसिद्धेर्दृष्टान्तासिद्धिरित्यर्थः।

लौकिकबुद्धिमनाश्रित्य परमतमेवाऽऽदाय शङ्कते—अवयवा इति। असत्यवयविन्युपमर्दायोगवयवेष्वपि तदयोगस्य तुल्यत्वान्नेदं चोद्यमित्युत्तरमाह—न तदवयवेष्विति। तदेव स्फुटयति—यथेति। नन्वस्मत्पक्षे परमावयवी नास्त्यवयवास्तु सन्त्येवेति चेत्तत्राऽऽह—बीजावयवानामपीति। तर्हि तेषामङ्कुरजन्मन्युपमर्दः स्यादिति चेत्तत्राऽऽह—तदवयवानामपीति। न चाङ्कुरजन्मन्यवयवपरम्पराविश्रान्तिभूमिरुपपद्यते तस्याः शून्यत्वे तदुपमर्दे सत्कारणवादापातात्। अशून्यत्वेऽपि कार्यत्वे कादाचित्कद्रव्यस्य सावयवत्वेनोक्तदोषतादवस्थादकार्यत्वे भावश्चेदुपमर्दासिद्धिरभावश्चेत्तदुपमर्दे सत्कारणवादापत्तिरेवेति भावः। असद्वादस्याप्रामाणिकत्वमुक्त्वा सद्वादस्य प्रामाणिकत्वमाह—सद्बुद्धीति। परमते दृष्टान्ताभावमुक्तमनूद्य स्वमते तत्सत्त्वं च समुच्चिनोति—न त्विति।

अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती, वह अंकुर की उत्पत्ति तो बीज के अवयवों से ही संभव है।

लोक व्यवहार को ताक में रखकर वैनाशिक मत को ही लेकर शङ्का की जाती है—) यदि कहो अवयवों का भी विनाश होता है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि (अवयवी के रहने पर ही उसके गुण धर्मों से योग या वियोग हुआ करता है) बीजावयवों में वह समानरूप से रहता है। जैसे वैनाशिकों के मत में बीज संस्थानरूप अवयवी का अभाव है, इसी प्रकार अवयव भी नहीं है, इससे उनके विनाश होने का प्रसङ्ग ही कहाँ आएगा। हमारे पक्ष में परमावयवी है अवयव नहीं हैं ऐसा मानने से कहते हैं—) बीजावयवों के भी सूक्ष्म अवयव होते हैं, उन सूक्ष्म अवयवों के भी अन्य सूक्ष्मतर अवयव होते हैं इस प्रकार इस प्रसङ्ग का कहीं भी विराम न होने के कारण कहीं भी विनाश की प्राप्ति संभव नहीं है (इस प्रकार असद्वादियों के मत को अप्रामाणिक कहकर सद्वाद को प्रामाणिक कहते हुए प्रशंसा करते हैं—) सद् (भाव) बुद्धि की अनुवृत्ति से सत्त्व का अविनाश होता है इस प्रकार सद्वादियों के मत में सत् से ही सत् की उत्पत्ति सिद्ध होगी। असत् से सत् की उत्पत्ति मानने वाले असद्वादियों के पास कोई दृष्टान्त ही नहीं है जिससे वे अपने पक्ष की सिद्धि कर सकें। इधर सद्वादियों का दृष्टान्त लोक प्रसिद्ध है। मृत्पिण्ड से घड़े की उत्पत्ति देखी जाती है, मृत्पिण्ड के होने पर ही घड़े का होना संभव है, नहीं होने पर उसका अभाव है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्यभावादेव घट उत्पद्येत घटार्थिना मृत्पिण्डो नोपादीयेत । अभावशब्दबुद्ध्यनुवृत्तिश्च घटादौ प्रसज्येत न त्वेतदस्त्यतो नासतः सदुत्पत्तिः । यदप्याहुर्मृद्बुद्धिर्घटबुद्धेर्निमित्तमिति मृद्बुद्धिर्घटबुद्धेः कारणमुच्यते न तु परमार्थत एव मृद्घटो वाऽस्तीति तदपि मृद्बुद्धिर्विद्यमाना विद्यमानाया एव घटबुद्धेः कारणमिति नासतः सदुत्पत्तिः। मृद्घटबुद्ध्योर्निमित्तनैमित्तिकतयाऽऽनन्तर्यमात्रं न तु कार्यकारणत्वमिति चेत् । न। बुद्धीनां नैरन्तर्ये गम्यमाने वैनाशिकानां बहिर्दृष्टान्ताभावात् । अतः कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यादिति होवाच कथं केन प्रकारेणासतः सज्जायेतेति । असतः सदुत्पत्तौ न कश्चिदपि दृष्टान्तप्रकारोऽस्तीत्यभिप्रायः । एवमसद्वादिपक्षमुन्मथ्योपसंहरति सत्त्वेव सोम्येदमग्र

घटस्याप्यभावादेवोत्पत्तेरिष्टत्वाद्दृष्टान्तासंप्रतिपत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—यदीति । किंच यद्यस्योपादानं दृष्टं तच्छब्दप्रत्ययौ तत्रानुवर्तेते यथा तथाऽभावश्चेद्घटादेरुपादानं तच्छब्दधियौ तत्रानुवृत्ते स्यातां न चानुवर्तेते तस्मादसतः सदुत्पत्तिरयुक्तेत्याह—अभावेति । भावस्य सतो मृत्पिण्डस्य घटादिकारणत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यामुक्तं तत्रान्वयव्यतिरेकयोरन्यथासिद्धिमुद्भावयति—यदपीति । तस्मिन्नपि पक्षे न मत्पक्षक्षतिरित्युत्तरमाह—तदपीति । यदुक्तं सद्रूपाया बुद्धेः सद्रूपां बुद्धिं प्रति कारणत्वमिति तदसिद्धमिति शङ्कते—मृद्घटबुद्ध्योरिति । सत्त्वसिद्धौ हि पूर्वभावित्वं कारणत्वं कार्यत्वं चोत्तरभावित्वं युक्तं बुद्धीनां चासत्त्वादानन्तर्यमात्रेण व्यवह्रियते निमित्तनैमित्तिकत्वमित्यर्थः । असतीनामपि बुद्धीनामानन्तर्येण निमित्तनैमित्तिकत्वमित्येतन्न शक्यं संभावयितुं दृष्टान्ताभावादित्युत्तरमाह—न बुद्धीनामिति । कुतस्तु खल्वित्यादिवाक्यं व्याख्यातमुपसंहरति—अत इति । पूर्वमसतः सदुत्पत्तौ दृष्टान्ताभाव उक्त इदानीमन्यदुपसंहृतमिति शङ्कां वारयति—असत इति । स्वपक्षसिद्धिमुपसंहरतीति

यदि मृत्पिण्ड के बिना ही घट की उत्पत्ति हो जाती तो कुम्हार घट बनाने के लिए मृत्पिण्ड की आवश्यकता की उपेक्षा कर सकता था। यदि असत् से ही सत् की सृष्टि मानें तो अभाव शब्द और बुद्धि की अनुवृत्ति मात्र से ही घट की सृष्टि हो जाना नहीं देखते बनता अतः असद्वाद मत की कल्पना ठीक नहीं है। एवं जो ऐसा कहो कि मृद्बुद्धि ही घटबुद्धि में निमित्तक होने से मृद्बुद्धि ही घटबुद्धि का कारण है (समस्त विज्ञानमात्र होने से) परमार्थतः मृद्घट तो है नहीं, इससे भी हमारे पक्ष में कमजोरी आती है। विद्यमान मृद्बुद्धि उपस्थित घटबुद्धि में ही कारण है; इसलिए असद् से सद् की उत्पत्ति संभव नहीं। यदि कहो निमित्त और नैमित्तिक रूप से मृद्बुद्धि एवं घटबुद्धि पश्चाद्भावी मात्र हैं, कार्य-कारणत्व भाव नहीं है तो ऐसा भी कहना अनुचित है क्योंकि वैनाशिकों के मत में बुद्धि के निरन्तर गतिशील होने के कारण इससे बाहर कोई दृष्टान्त बन ही नहीं सकता। इसलिए श्रुति कहती है—हे सोम्य ! असत् से सत् की उत्पत्ति किस प्रकार संभव हो सकती है। अभिप्राय यह है कि असत् से सत् सृष्टि के होने में दृष्टान्त का सर्वथा अभाव है। इस प्रकार असद्वादी के पक्ष को भली प्रकार मथकर निष्कर्ष में अपने पक्ष की सिद्धि करते हुए श्रुति उपसंहार में कहती

---

१. न त्विति—सर्वस्य विज्ञानमात्रत्वादिति भावः । २. तदपि नास्मत्पक्षक्षतिकरं यत इति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आसीदिति स्वपक्षसिद्धिस् ।

ननु सद्वादिनोऽपि सतः सदुत्पद्यत इति नैव दृष्टान्तोऽस्ति घटाद्घटान्तरोत्पत्त्यदर्शनात् । सत्यमेवं न सतः सदन्तरमुत्पद्यते किं तर्हि सदेव संस्थानान्तरेणावतिष्ठते । यथा सर्पः कुण्डली भवती । यथा च मृच्चूर्णपिण्डघटकपालादिप्रभेदैः । यद्येवं सदेव सर्वप्रकारावस्थं कथं प्रागुत्पत्तेरिदमासीदित्युच्यते ? ननु न श्रुतं त्वया सदेवेत्यवधारणमिदंशब्दवाच्यस्य कार्यस्य । प्राप्तं तर्हि प्रागुत्पत्तेरसदेवाऽऽसीन्नेदंशब्दवाच्यमिदानीमिदं जातमिति । न । सत एवेदंशब्दबुद्धिविषयतयाऽवस्थानाद्यथा मृदेव पिण्डघटादिशब्द-

---

संबन्धः ।

सिद्धान्तेऽपि दृष्टान्तासिद्धिस्तुल्येति शङ्कते—नन्विति । यद्यपि मृदो घटोत्पत्तिर्दृष्टा तथाऽपि न मृदो मृदन्तरं घटाद्घटान्तरमुत्पद्यमानमुपलभ्यते तस्मान्न सतः सदन्तरोत्पत्तिरित्यर्थः । किं सदन्तरस्य सतः सकाशादुत्पत्तिरेव वार्यते किंवा कारणत्वं सतो निराक्रियते तत्राऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति । द्वितीयं निराकरोति—किं तर्हीति । तत्रापि दृष्टान्ताभावमाशङ्क्याऽऽह—यथेति । कुण्डलीभावे कार्यत्वप्रसिद्धिर्नास्तीत्याशङ्क्योदाहरणान्तरमाह—यथा चेति । प्रभेदैरवतिष्ठत इति संबन्धः । सत एव सर्वप्रकारेणावस्थाने प्राक्कालिकं कार्यस्य सत्त्ववचनमयुक्तं तस्य सर्वदा सत्त्वाविशेषादिति शङ्कते—यद्येवमिति । प्रागवस्थं हि कारणं सन्मात्रत्वं च कार्यस्यावधार्यते तथाच कारणस्यैव सतस्तेन तेनाऽऽकारेणावस्थानमित्यङ्गीकारेऽपि कार्यस्य प्राक्कालिकं सत्त्वावधारणमविरुद्धमित्युत्तरमाह—नन्विति । कार्यस्य कारणमात्रत्वं चेदवधृतं तर्हि कारणमेवाऽऽसीन्न कार्यं तदसदेवेदानीं जातमित्यसत्कार्यवादिमतमायातमिति शङ्कते—प्राप्तमिति । कारणस्यैव कार्यरूपेणावस्थानान्नासत्कार्यवादापत्तिरिति दृष्टान्तेन परिहरति—नेत्यादिना ।

है—हे सोम्य ! सृष्टि से पूर्व एकमात्र सत् ही था ।

अपने सिद्धान्त की अयुक्तता होते देख असद्वादी शङ्का करता है—) सत् से सत् की सृष्टि होती है इस प्रकार मानने वाले सद्वादियों के पास भी प्रस्तुत करने के लिए कोई दृष्टान्त नहीं है । (यद्यपि मृत्तिका से घट की उत्पत्ति संभव है किन्तु मृत्तिका से दूसरी मृत्तिका एवं) घट से दूसरे घट की उत्पत्ति हो जाना लोक विरुद्ध है । (सत् से अन्य सत् की उत्पत्ति न होना एक बात है एवं सत् का कारण होना दूसरी बात है ।) इसमें पहली बात तो ठीक है कि सत् से अन्य सत् की उत्पत्ति नहीं होती किन्तु दूसरी बात में कोई जान नहीं है क्योंकि सत् की दूसरे संस्थान विशेष से स्थिति रहती है । जैसे सर्प कुण्डली होता है तथा जिस प्रकार मृत्तिका का चूर्ण पिण्ड घट-कपालादि भेदों में स्थित रहता है । यदि ऐसा है तो सत् ही सब प्रकार से सब अवस्थाओं में उत्पत्ति से पूर्व यह कैसे था—इस पर कहते हैं । अरे भाई ! आपने नहीं सुना कि 'सृष्टि से पूर्व सत् ही था' यह 'इदं' शब्द वाच्य कार्य के अवधारण के लिए है । (कार्य यदि कारण रूप से विद्यमान था तब तो कारण ही था कार्य नहीं, ऐसे में) तो उत्पत्ति से पूर्व असत ही था, इदं शब्द वाच्य 'यह अब हुआ' नहीं था ऐसे असत्कार्यवादी का मत ही उपस्थित हो गया । ऐसा नहीं कह सकते । कारणरूप सत् की ही कार्य रूप से इदं शब्द बुद्धि विषय से अवस्थित होने से असत्कार्यवाद संभव नहीं जिस प्रकार मृत्तिका ही पिण्ड

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

बुद्धिविषयत्वेनावतिष्ठते तद्वत् ।

ननु यथा मृद्वस्त्वेवं पिण्डघटाद्यपि तद्वत्सद्बुद्धेरन्यबुद्धिविषयत्वात्कार्यस्य सतोऽन्यद्वस्त्वन्तरं स्यात्कार्यजातं यथाऽश्वाद्गौः । न । पिण्डघटादीनामितरेतरव्यभिचारेऽपि मृत्वाव्यभिचारात् । यद्यपि घटः पिण्डं व्यभिचरति पिण्डश्च घटं तथापि पिण्डघटौ मृत्वं न व्यभिचरतस्तस्मान्मृन्मात्रं पिण्डघटौ । व्यभिचरति त्वश्वं गौरश्वो वा गाम् । तस्मान्मृदादि संस्थानमात्रं घटादयः । एवं सत्संस्थानमात्रमिदं सर्वमिति युक्तं प्रागुत्पत्तेः सदेवेति । वाचारम्भणमात्रत्वाद्विकारसंस्थानमात्रस्य ।

ननु निरवयवं सन्निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनं दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यज इत्यादिश्रुतिभ्यो निरवयवस्य सतः कथं विकारसंस्थानमुपपद्यते ।

विमतमुपादानाद्भिद्यते तद्विलक्षणबुद्धिविषयत्वाद्यथाऽश्वबुद्धिविलक्षणविषयो महिषस्ततो भिद्यते । तथाच कथं सत एवेदंधीविषयानिर्वाच्यावस्थाङ्गीकारेणासत्कार्यवादापत्तिसमाधिरिति चोदयति—नन्विति । विलक्षणबुद्धिविषयत्वस्य भेदमात्रसाधकत्वे सिद्धसाधनं तात्त्विकभेदसाधकत्वे दृष्टान्तासिद्धिरित्यभिप्रेत्याऽऽह—नेति । किंच कार्यस्य व्यभिचारित्वेन रज्जुसर्पादिवन्मिथ्यात्वानुमानादनिर्वाच्यसंस्थानादेव कार्यबुद्ध्यालम्बनत्वं सतोऽङ्गीकर्तव्यमित्याह—पिण्डेति । तदेव स्फुटयति—यद्यपीति । मृत्वमन्तरेण पिण्डघटयोः स्वरूपभावादिति तच्छब्दार्थः । अव्यभिचारेऽश्वमित्यादि'दृष्टान्तः। अव्यभिचारफलमाह—तस्मादिति । दृष्टान्तगतमर्थं दार्ष्टान्तिके समर्थयति—एवमिति । पृथगेव प्रथमानस्य कार्यस्य कथं सन्मात्रत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—वाचारम्भणेति ।

कार्यमिथ्यात्वं स्फुटीकर्तुं चोदयति—नन्विति । यथा खल्वज्ञातेभ्यो रज्ज्वाद्यवयवेभ्यः सर्पादिसंस्थानमनिर्वाच्यमिष्टं तथा श्रुतिजनितजगत्कारणत्वबुद्ध्यनुपपत्त्या कल्पितेभ्यः सतो मायोपाधि-

---

घटादि शब्द-बुद्धि रूप से स्थित रहती है ।

(इस पर शङ्का होती है—) मृत्तिका वस्तु की तरह पिण्ड-घटादि भी सद्बुद्धि अन्य बुद्धि का विषय हो जाती है तब तो सत्कार्य से कार्यान्तर की भी बुद्धि होने लगेगी कि जैसे अश्व से गौ। ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि पिण्ड और घटादिकों का एक दूसरे से व्यभिचार होने पर भी मृत्तिकात्व रूप से व्यभिचार नहीं है । यद्यपि घट से पिण्ड एवं पिण्ड से घट पृथक् है तथापि पिण्ड और घट मृत्तिका रूप ही है । इसलिए पिण्ड घट (नाम मात्र होने से) मिथ्या ही है । व्यतिरेकी दृष्टान्त में भी अश्व से गौ में अथवा गौ से अश्व में भी व्यभिचार है । इसलिए घटादि मृत्तिका के ही संस्थिति-विशेष हैं । इस प्रकार संस्थिति मात्र ही सब कुछ वस्तुतः सिद्ध हो जाने के कारण यह कहना युक्तियुक्त है कि उत्पत्ति के पूर्व सद् ही विद्यमान था । संस्थान का विकार केवल वाणी का विलास मात्र ही है।

(कार्य मिथ्यात्व को विस्पष्ट रूप से समझाते हुए भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—) यदि कोई शंका करे कि श्रुतियाँ तो परमतत्त्व को निरवयव, सत्, निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, निरवद्य, निरञ्जन,

---

१. दृष्टान्तो व्यतिरेकीत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥ ३ ॥

उस सत्य ने ईक्षण किया "मैं बहुत हो जाऊँ, अनेकरूप से उत्पन्न होऊँ" इस प्रकार ईक्षण पूर्वक उस सत् ने तेज की सृष्टि की। उस तेज ने ईक्षण किया "मैं बहुत रूप होऊँ", "नाना प्रकार से उत्पन्न होऊँ" इस प्रकार ईक्षण पूर्वक उस तेज ने जल की सृष्टि की, इसीलिए तो आज भी जहाँ कहीं पुरुष शोक सन्ताप करता है, तो उसे पसीना आ जाता है। उस समय वह उस तेज से ही जल की उत्पत्ति होती है ॥३॥

नैष दोषः। रज्ज्वाद्यवयवेभ्यः सर्पादिसंस्थानवद्बुद्धिपरिकल्पितेभ्यः सदवयवेभ्यो विकारसंस्थानोपपत्तेः। वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमेवं सदेव सत्यमिति श्रुतेः। एकमेवाद्वितीयं परमार्थत इदंबुद्धिकालेऽपि ॥२॥

तत्सदैक्षतेक्षां दर्शनं कृतवत्। अतश्च न प्रधानं सांख्यपरिकल्पितं जगत्कारणम्। प्रधानस्याचेतनत्वाभ्युपगमात्। इदं तु सच्चेतनमीक्षितृत्वात्। तत्कथमैक्षतेत्याह—बहु

सत्यावयवेभ्यो विकारसंस्थानमुपपद्यते तस्मादयं द्वैतप्रपञ्चो ब्रह्मविवर्तः संभवतीति परिहरति—नैष दोष इति। ब्रह्मविवर्तो जगदित्यत्र श्रुतिमनुकूलयति—वाचाऽऽरम्भणमिति। प्रपञ्चमिथ्यात्वे फलितमुपसंहरति—एकमेवेति ॥२॥

अद्वितीयत्वसमर्थनार्थमुत्तरवाक्यमुत्थाप्य व्याचष्टे—तत्सदिति। सच्छब्दवाच्यं जगत्कारणं प्रधानमिति केचित्तदप्येतेन निरस्तमित्याह—अतश्चेति। ईक्षापूर्वकारित्वादिति यावत्। अचेतनत्वा-

---

दिव्य निराकार, पुरुष, सर्वत्र व्यापक एवं अजन्मा कहती हैं, ऐसे में सत् निरवयव की विकार संस्थिति (कार्यरूप में परिणति) कैसे सिद्ध होगी, तो ऐसा कहना ठीक नहीं, क्योंकि यह समस्त द्वैत प्रपञ्च ब्रह्म का विवर्त है। जैसे अज्ञात रज्जु आदि अवयवों से सर्पादि स्थिति की भ्रान्ति होती है, उसी प्रकार सत् के बुद्धि में कल्पित मायोपाधिक अवयवों से विकार जात कार्य की सृष्टि संभव है। जगत् ब्रह्म विवर्त्त में श्रुति भी है—"हे सोम्य! कार्य समूह वाणी का विलास मात्र है, वस्तुतः मृत्तिका ही सत्य है"। इससे सिद्ध हुआ सत् ही परमार्थ वस्तु है, प्रपञ्च मिथ्या है। इदं बुद्धि के समय भी परमार्थतः ब्रह्म एक और अद्वितीय है, यही सार है ॥ २ ॥

उस सत् ने दर्शन किया (अद्वितीयत्व श्रुति के समर्थन के लिए तीसरे मन्त्र से उपक्रम करते हैं—) इसलिए सांख्यमतानुसारी जगत् का कारण नहीं है क्योंकि सांख्य शास्त्र में प्रधान को अचेतन माना है। दर्शन क्रिया सम्पादन करने से यह सत् चेतन है। उसने किस प्रकार दर्शन किया (परिणामवाद-विवर्तवाद के दो उदाहरण श्रुति स्वयं कहती है) अधिक होऊँ, प्रकर्षता से सृष्टि करूँ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रभूतं स्यां भवेयं प्रजायेय प्रकर्षेणोत्पद्येय। यथा मृद्घटाद्याकारेण यथा वा रज्ज्वादि सर्पाद्याकारेण बुद्धिपरिकल्पितेन। असदेव तर्हि सर्वं यद्गृह्यते रज्जुरिव सर्पाद्याकारेण। न। सत एव द्वैतभेदेनान्यथागृह्यमाणत्वान्नासत्त्वं कस्यचित्क्वचिदिति ब्रूमः। यथा सतोऽन्यद्वस्त्वन्तरं परिकल्प्य पुनस्तस्यैव प्रागुत्पत्तेः प्रध्वंसाच्चोर्ध्वमसत्त्वं ब्रुवते तार्किका न तथाऽस्माभिः कदाचित्क्वचिदपि सतोऽन्यदभिधानमभिधेयं वा वस्तु परिकल्प्यते। सदेव तु सर्वमभिधानमभिधीयते च यदन्यबुद्धया। यथा रज्जुरेव सर्पबुद्धया सर्प इत्यभिधीयते यथा वा पिण्डघटादि मृदोऽन्यबुद्धया पिण्डघटादिशब्देनाभिधीयते लोके रज्जुविवेकदर्शिनां तु सर्पाभिधानबुद्धी निवर्तेते यथा च मृद्विवेकदर्शिनां घटादिशब्दबुद्धी तद्वत्सद्विवेकदर्शिनामन्यविकारशब्दबुद्धी निवर्तेते। यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सहेति। अनिरुक्तेऽनिलयन इत्यादिश्रुतिभ्यः।

भ्युपगमान्न तस्येक्षापूर्वकं स्रष्टृत्वमिति शेषः। परिणामविवर्तवादावाश्रित्योदाहरणद्वयम्। बहु स्यामित्यादिश्रुतितात्पर्यं वक्तुं निरस्तमेव चोद्यमुद्भावयति—असदेवेति। बहु स्यां प्रजायेयेत्यनेनेक्षितुरेव कार्याकारापत्तिवचनेन वैशेषिकादिमतमेतन्निरस्तमिति श्रुतितात्पर्यं दर्शयन्नुत्तरमाह—नेत्यादिना। तदेव प्रपञ्चयति—यथेत्यादिना। प्रतिज्ञातमर्थं मतद्वयानुसारेण दृष्टान्ताभ्यां स्पष्टयति—यथा रज्जुरिति। अज्ञानान्वयव्यतिरेकाभ्यां रज्जुसर्पादेरज्ञानमयत्वं [1]च द्वैताभिनिवेशस्य सन्मात्राविवेके सत्येवोत्पत्तेर्विचारेण तद्विवेके चानुत्पत्तेर्द्वैतमप्यज्ञानमयमेव तस्य तु तत्त्वं सन्मात्रमधिष्ठानं वाङ्मनसातीतमित्यर्थः। तस्य वाङ्मनसातीतत्वे प्रमाणमाह—यत इति। अन्यदेव तद्विदितादित्यादि वाक्यमादिपदार्थः।

जिस प्रकार मृत्तिका घटरूप एवं रज्जु सर्पादि आकार बुद्धिकल्पित है, उसी प्रकार कार्यरूप होऊं। सर्पादि आकार जो कुछ रज्जु के समान देखा जाता है वह तब तो असत् ही सिद्ध होने लगेगा. वैशेषिक की यह उक्ति ठीक नहीं है क्योंकि द्वैत भेद से सत् की ही सर्वत्र अन्यथाबुद्धि ग्रहण होती है कहीं किसी असत् की नहीं—ऐसा हम कहते हैं। तार्किक लोग सत् का जिस प्रकार भिन्न वस्तु मानकर पुनः उसी का उत्पत्ति से पूर्व नाश होने से एवं बाद में असत् मात्र रहने को कहते हैं वैसे हमारी धारणा नहीं है क्योंकि सत् से भिन्न कहीं भी कुछ भी अभिधान या अभिधेय नहीं है। जो भी अन्य बुद्धि से नाम रूप होता है; वह सब कुछ सत् ही है। (इसी को दृष्टान्त से इस प्रकार समझने का प्रयास करें— लोक व्यवहार में रज्जु में जब सर्प बुद्धि हो जाती है तो उसे सर्प कहने लगते हैं मृत्तिका की पिण्ड-घटादि रूप से अन्य बुद्धि होती है तो उन्हें पिण्ड-घटादि शब्द से कहते हैं। जिस प्रकार रज्जु का विवेक हो जाने पर सर्प बुद्धि का बाध हो जाता है तथा जिस प्रकार मृत्तिका को तत्त्वतः जान लेने पर घटादि शब्द बुद्धि की निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार सद् विवेकियों को अन्य विकार शब्द बुद्धि की निवृत्ति हो जाती है। सत्तत्त्व के वाणी-मन से अतीत होने में श्रुतियाँ प्रमाण हैं-

---

१. रज्जुमात्राधिष्ठानतत्त्वकत्वमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमीक्षित्वा तत्तेजोऽसृजत तेजः सृष्टवत् । ननु तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूत इति श्रुत्यन्तर आकाशाद्वायुस्ततस्तृतीयं तेजः श्रुतमिह कथं प्राथम्येन तस्मादेव तेजः सृज्यते तत एव चाऽऽकाशमिति विरुद्धम् । नैष दोषः । आकाश-वायुसर्गानन्तरं तत्सत्तेजोऽसृजतेतिकल्पनोपपत्तेः । अथ वाऽविवक्षित इह सृष्टिक्रमः सत्कार्यमिदं सर्वमतः सदेकमेवाद्वितीयमित्येतद्विवक्षितम् । मृदादिदृष्टान्तात् । अथवा त्रिवृत्करणस्य विवक्षितत्वात्तेजोबन्नानामेव सृष्टिमाचष्टे । तेज इति प्रसिद्धं लोके

तैत्तिरीयकश्रुतिविरोधमाशङ्कते—नन्विति । तथाऽपि कथं विरोधधीरित्याशङ्क्याऽऽह—इति विरुद्धमिति । अस्यां श्रुतौ सतः सकाशादेव प्राथम्येन तेजः सृज्यमानमुच्यते श्रुत्यन्तरे तु तस्मादेव सतः सकाशादाकाशं प्राथम्येन सृष्टमित्युपदिष्टं तथा च कथमिदं मिथो विरुद्धं सिध्यतीत्यर्थः । तैत्ति-रीयश्रुत्यनुसारेण च्छान्दोग्यश्रुतेर्व्याख्यानसंभवान्न विरोधोऽस्तीति परिहरति—नैष दोष इति । सृष्टिक्रमस्य विवक्षितत्वमङ्गीकृत्योक्तं तदेव नास्त्यद्वितीयत्वं तु सतो विवक्षितमिति पक्षान्तरमाश्रि-त्याऽऽह—अथ वेति । तत्र गमकं दर्शयति—मृदादीति । मृदादिकार्यं घटादि तद्व्यतिरेकेण नास्ति मृदाद्येव तु सत्यमितिदृष्टान्तोपादानाद्ब्रह्मणः सतस्तेजोबन्नादिकार्यं तदतिरेकेण नास्ति सन्मात्रमेव सत्यमिति दार्ष्टान्तिकेऽपि विवक्षितं प्रतिभातीत्यर्थः । तत्तेजोऽसृजतेत्यादिश्रुतेस्तात्पर्यान्तरमाह—अथवा त्रिवृत्करणस्येति । तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीत्यादौ त्रिवृत्करणस्येष्टत्वात्त्रयाणामेव भूतानामिह सृष्टिरुच्यते । न चैवं पञ्चीकरणमविवक्षितमिति वाच्यं भूतत्रयसृष्टिश्रुतौ श्रुत्यन्तरसिद्धा-काशादिसृष्टेरुपलक्षणवत्त्रिवृत्करणश्रुत्या पञ्चीकरणोपलक्षणात् । तथाच श्रुत्यन्तरसिद्ध-योराकाशवाय्वोस्तेजःप्रभृतिष्वन्तर्भावमभिप्रेत्य लघूपायेन सर्वस्य सन्मात्रत्वं मन्तव्यमिति मन्वाना श्रुतिस्त्रिवृत्करणमेवाऽऽचक्षाणा तदनुरोधेन त्रयाणामेव सृष्टिमाहेत्यर्थः । तेजसोऽचेतनस्य कथमीक्षि-

---

"जहाँ मन सहित वाणी बिना कुछ प्राप्त किए लौट आती है (वही परम पद है)" "उस अनिर्वचनीय एवं स्वतन्त्र तत्त्व में" इत्यादि ।

इस प्रकार देखकर उस सत् ने तेज की रचना की। (तैत्तिरीय श्रुति से विरोध होने की आशंका से कहते हैं—) तैत्तिरीय श्रुति में "उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ" इस प्रकार आकाश की सृष्टि का वर्णन है आकाश से वायु एवं उसके बाद तृतीय स्थान तेज का आता है, यहाँ प्रथम स्थान तेज का आता है, उसके बाद आकाश का क्रम है, इसमें पारस्परिक श्रुति विरोध का प्रसङ्ग हो जाता है । (शंका का परिहार किया जाता है—) इसमें कोई दोष नहीं है । उस सत् ने आकाश, वायु की सृष्टि कर लेने पर तेज की सृष्टि की; इस प्रकार सृष्टिक्रम कहने में मूल उद्देश्य यही है कि उस सत् से ही यह सृष्टि हुई, इस प्रकार कल्पना संभव है । या यूँ भी कह सकते हैं—सृष्टिक्रम निरूपण मात्र करना श्रुति को इष्ट नहीं है, यह तो सब कुछ सत्कार्य ही है वस्तुतः सत् एक, अद्वितीय तत्त्व का निरूपण श्रुति को अभीष्ट है । मृदादि दृष्टान्त से नाम रूप विकार को मिथ्या बतलाते हुए सत्य तो मृत्तिका को बतलाया है । (इस श्रुति का एक यह भी तात्पर्य है—) 'तीनों में से एक-एक को करूँ' ऐसा सोचकर तेज, जल और अन्न की सृष्टि कही जाती है । लोक में प्रसिद्ध है कि तेज तत्त्व जलाने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त तस्माद्यत्र क्व च वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते ॥ ४ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

पुनः उस जल के रूप में स्थित सत् ने ईक्षण किया कि "हम बहुत हो जाएँ" अनेकरूप से उत्पन्न हो जाएँ। इस प्रकार ईक्षणपूर्वक उस जल ने अन्न की सृष्टि की। इसी से आज भी जहाँ कहीं वर्षा होती है—वहाँ ही बहुत-सा अन्न उत्पन्न होता है। वह अन्नाद्य जल से ही उत्पन्न होता है ॥४॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

दग्धृ पक्तृ प्रकाशकं रोहितं चेति। तत्सत्सृष्टं तेज ऐक्षत तेजोरूपसंस्थितं सदैक्षतेत्यर्थः। बहु स्यां प्रजायेयेति पूर्ववत्। तदपोऽसृजत। आपो द्रवाः स्निग्धाः स्यन्दिन्यः शुक्लाश्चेति प्रसिद्धा लोके। यस्मात्तेजसः कार्यभूता आपस्तस्माद्यत्र क्वच देशे काले वा शोचति संतप्यते स्वेदते प्रस्विद्यते वा पुरुषस्तेजस एव तत्तदाऽऽपोऽधि जायन्ते ॥ ३ ॥

ता आप ऐक्षन्त पूर्ववदेवावाकारसंस्थितं सदैक्षतेत्यर्थः। बह्व्यः प्रभूताः स्याम भवेम प्रजायेमह्युत्पद्येमहीति। ता अन्नमसृजन्त पृथिवीलक्षणम्। पार्थिवं ह्यन्नं यस्मादप्कार्यमन्नं तस्माद्यत्र क्व च वर्षति देशे तत्तत्रैव भूयिष्ठं प्रभूतमन्नं भवति। अतोऽद्भ्य

तृत्वमित्याशङ्क्य वाक्यार्थमाह—तेजोरूपेति। अपां तेजःकार्यत्वे लोकानुभवमनुकूलयति—यस्मादिति ॥३॥

पृथिव्यामन्नशब्दप्रयोगे हेतुमाह—पार्थिवं हीति। अपां कार्यमन्नमित्यत्रापि लोकप्रसिद्धिं दर्शयति—यस्मादिति। ता अन्नमसृजन्तेत्यत्राद्भ्योऽन्नसृष्टिरुपदिष्टा दृष्टान्तेऽपि ताभ्यस्तत्सृष्टिरुपदिश्यते

वाला, पकाने वाला, प्रकाशक एवं रक्त वर्ण का होता है। उस सत् से सृष्ट तेज रूप में संस्थित सत् तत्त्व ने देखा कि "मैं बहुत रूप धारण करूँ, नाना रूप से उत्पन्न होऊँ' इस प्रकार व्याख्यान पूर्वमन्त्र की तरह है। इस प्रकार देखकर उसने जल की सृष्टि की। जल तरल स्निग्ध, बहने वाला एवं शुक्ल वर्ण वाला होता है—ऐसा लोक व्यवहार सिद्ध है। जल को तेज का कार्य कहने में लोक प्रमाण है क्योंकि जहाँ कहीं भी अथवा जिस देश काल में भी मनुष्य सन्ताप करता अथवा पसीने से युक्त होता है, उस समय तेज से जल की सृष्टि होती है ॥ ३ ॥

पूर्व मन्त्र की व्याख्या के समान जल के रूप में संस्थित सत् तत्त्व ने देखा कि हम अधिक हो जाएँ, अनेक उत्पन्न हो जाएँ। उस जल रूप सत् तत्त्व से पृथिवी संज्ञक अन्न की सृष्टि हुई। जल का कार्य होने से अन्न पृथिवी का रूप ही है क्योंकि जहाँ-कहीं वर्षा होती है वहाँ अन्न पर्याप्त मात्रा में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदन्नाद्यमधिजायते । ता अन्नमसृजन्तेति पृथिव्युक्ता पूर्वमिह तु दृष्टान्तेऽन्नं च तदाद्यं चेति विशेषणाद्व्रीहियवा उच्यन्ते । अन्नं च गुरु स्थिरं धारणं कृष्णं च रूपतः प्रसिद्धम् । ननु तेजःप्रभृतिष्वीक्षणं न गम्यते हिंसादिप्रतिषेधाभावात्त्रासादिकार्यानुपलम्भाच्च तत्र कथं तत्तेज ऐक्षतेत्यादि । नैष दोषः । ईक्षितृकारणपरिणामत्वात्तेजःप्रभृतीनां सत एवेक्षितुर्नियतक्रमविशिष्टकार्योत्पादकत्वाच्च तेजःप्रभृतीक्षत इवेक्षत प्रत्युच्यते भूतम् ।

ननु सतोऽप्युपचरितमेवेक्षितृत्वम् । न । सदीक्षणस्य केवलशब्दगम्यत्वान्न शक्यमुपचरितं[1] कल्पयितुम् । तेजःप्रभृतीनां त्वनुमीयते मुख्येक्षणाभाव इति युक्तमुपचरितं कल्पयितुम् । ननु सतोऽपि मृद्वत्कारणत्वादचेतनत्वं शक्यमनुमातुम् । अतः प्रधानस्यैवा-

---

तथा च पौनरुक्त्यमित्याशङ्क्यार्थविशेषं दर्शयति—अन्नमिति । तत्तेज ऐक्षतेत्यादौ यथाश्रुतमर्थं गृहीत्वा चोदयति—नन्विति । प्राणिषु हिंसाप्रतिषेधवदनुग्रहविधानवच्च तेजःप्रभृतिषु तदभावात्तेष्वीक्षणकार्यदृष्टिवदेतेषु तद्दृष्टयभावाच्च नैतेष्वीक्षणं प्रामाणिकं तथा च प्रकृतं प्रमत्तगीतमित्यर्थः । तेषां गौणमीक्षितृत्वमुपेत्य परिहरति—नैष दोष इति ।

सतोऽपि गौणमीक्षणमुपचारप्राये पाठादिति शङ्कते—नन्विति । संनिधेः शब्दस्य बलीयस्त्वमुपेत्य परिहरति—न सदीक्षणस्येति । तुल्यं तेजःप्रभृतिष्वपि शब्दगम्यत्वमीक्षणस्येति चेन्नेत्याह—तेजःप्रभृतीनां त्विति । विमतमीक्षितृ न भवत्यचेतनत्वात्कुम्भवदित्यनुमानात्तेजोमुख्ये जगतीक्षणासंभवात्तत्र क्षतं तदौपचारिकमुचितमित्यर्थः । सांख्योऽनुमानावष्टम्भेन शङ्कते—नन्विति । अचेतनस्य कथमीक्षणमित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति । अनुमातुं कल्पयितुमिति यावत् । कथमचेतने चेतनवदुप-

---

होता है। इसलिए जल से ही अन्नाद्य उत्पन्न होता है। जल से अन्न की सृष्टि हुई ऐसे पहले पृथिवी को कहा गया किन्तु प्रकृत दृष्टान्त में अन्न और अन्नाद्य रूप विशेषण से व्रीहि-यव कहे गए हैं। लोक में अन्न भारी, स्थिर धारणगुणयुक्त एवं कृष्ण रूप वाला प्रसिद्ध है। (यहाँ शङ्का होती है—) तेज आदि देखना कैसे संभव है ? प्राणियों में हिंसानिषेध अनुग्रहविधान की तरह तेज में ऐसी कल्पना करना कि लोकोपकार के लिए सत्तत्त्व उस तेज ने ईक्षण किया प्रमत्तगीत की तरह ही है। इसका परिहार करते हुए कहते हैं कि ऐसा कहना युक्तिसंगत ही है। तेज इत्यादि वीक्षणकर्ता के कारण से होते हैं एवं विशिष्ट कार्य का उत्पादन द्रष्टा के नियत क्रम से ही होता है अतः सत् ही है जो तेज इत्यादि को देखने के समान देखता है ऐसा सिद्ध हो चुका।

इस पर शङ्का होती है कि सत् तत्त्व द्वारा ईक्षण क्रिया प्रधान अर्थ प्रतिपादन न कर गौण अर्थ में तात्पर्य है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। शब्द सन्निधि मात्र से सत् की वीक्षणक्रिया गौण नहीं हो सकती। तेज इत्यादि में तो मुख्य वीक्षणक्रिया का अभाव अनुमान कर लिया जाता है इसलिए गौणी कल्पना उचित ही है। यदि कहो कि सत् तत्त्व का मृत्तिका के समान कोई न कोई कारण होने से उसमें अचेतन धर्म को मान लो। इसलिए (सांख्य दर्शन के) प्रधान की ही तरह अचेतन सत् के चेतनार्थक होने एवं नियत कालक्रम विशिष्ट कार्य के उत्पादक होने से देखने के समान देखा, ऐसा

---

१. उपचरितं सदीक्षणमिति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चेतनस्य सतश्चेतनार्थत्वान्नियतकालक्रममविशिष्टकार्योत्पादकत्वाच्चैक्षतेवैक्षतेति शक्यमनुमातुमुपचरितमेवेक्षणम्। दृष्टश्च लोकेऽचेतन चेतनवदुपचारः। यथा कूलं पिपतिषतीति तद्वत्सतोऽपि स्यात्। न। तत्सत्यं स आत्मेति तस्मिन्नात्मोपदेशात्। आत्मोपदेशोऽप्युपचरित इति चेद्यथा ममाऽऽत्मा भद्रसेन इति सर्वार्थकारिण्यनात्मन्यात्मोपचारस्तद्वत्। न। सदस्मीति सत्सत्याभिसंधस्य तस्य तावदेव चिरमिति मोक्षोपदेशात्।

सोऽप्युपचार इति चेत्। प्रधानात्माभिसंधस्य मोक्षसामीप्यं वर्तत इति मोक्षोपदेशोऽप्युपचरित एव। यथा लोके ग्रामं गन्तुं प्रस्थितः प्राप्तवानहं ग्राममिति ब्रूयात्त्वरापेक्षया तद्वत्। न। येन विज्ञातेनाविज्ञातं विज्ञातं भवतीत्युपक्रमात्। सत्येकस्मिन्विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति तदनन्यत्वात्सर्वस्याद्वितीयवचनाच्च। न चान्यद्विज्ञातव्य-

चारस्तत्राह—दृष्टश्चेति। आत्मशब्दावष्टम्भेन परिहरति—नेत्यादिना। आत्मोपदेशोऽपि प्रधाने गौणो भविष्यतीति शङ्कते—आत्मोपदेशोऽपीति। तामेव शङ्कां दृष्टान्तद्वारा विवृणोति—यथेति। 'इदं परिहरन्स्मिन्नात्मोपदेशो गौणो न भवति 'तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशादित्युत्तरमाह—नेत्यादिना।

मोक्षोपदेशोऽप्युपचरितो भविष्यतीति शङ्कते—सोऽपीति। शङ्कामेव विवृणोति—प्रधानात्मेति। एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपदेशमाश्रित्य परिहरति—न येनेति। उक्तमेव विवृणोति—सत्येकस्मिन्निति। सतोऽन्यस्य ज्ञातव्यस्याप्रामाणिकत्वाच्च सतो ज्ञाने सर्वज्ञानोपदेशो युक्तिमानित्याह—न चेति। संप्रति

अनुमान किया जा सकता है इसलिए ईक्षण उपचार मात्र ही है, लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि अचेतन में चेतन की भावना कर ली जाती है। (जल के वेग से) अब किनारे निश्चित ही गिर जाना चाहेंगे—ऐसे व्यवहार के समान सत् में भी अचेतन कल्पना कर लें तो क्या दोष है। इस पर (आत्मनिष्ठा की दृढ़ता से) कहते हैं—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि "वह सत्य है, वह आत्मा है" इस प्रकार श्रुति में आत्मा के उपदेश का प्रसंग है। इस पर पूर्वपक्षी कहता है क्या श्रुति आत्मा के उपदेश में गौणत्व प्रतिपादन नहीं कर सकती? जिस प्रकार भद्रसेन को अपनी आत्मा मानने वाले का भावाशय आत्मा के वास्तविक स्वरूप प्रतिपादन में नहीं है। उसी प्रकार मोक्षोपदेशक शास्त्र आत्मस्वरूप निरूपण अवसर में "मैं सत् हूँ" इस प्रकार सत् के प्रति निष्ठावान् के लिए परमतत्त्व लाभ में जरा भी देरी नहीं है, इस प्रकार आत्मा की गौणी कल्पना असंगत है।

इस पर तार्किक पुनः शङ्का करता है कि मोक्ष का उपदेश भी गौण अर्थ में लिया जा सकता है। प्रधान आत्मा के प्रति पूर्ण समर्पित के लिए मोक्ष अत्यन्त सुलभ है, इस प्रकार मोक्ष का उपदेश शास्त्र में गौण रूप से ही है। लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि ग्राम को जाने के लिए प्रस्थान कर लेने पर कोई कहे कि अब मैं ग्राम में पहुँच गया हूँ। यह बिना पहुँचे पहुँचना जल्दीबाजी में कहा गया होने से गौण ही है, इसी प्रकार यह भी समझ लो। (शङ्का का परिहार किया जाता है—) ऐसा कहना ठीक नहीं है। आत्मतत्त्वनिरूपण प्रसंग में उपक्रम श्रुति कहती है "जिसके जानने से अविज्ञात वस्तु भी विज्ञात हो जाती है", "उस एक आत्मतत्त्व को जान लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है"

१. गौणश्चेन्नात्मशब्दादिति (ब्र. सू. १।१।६) न्यायमाश्रित्याह—नेति। २. इदं प्रधानस्य सच्छब्दवाच्यत्वम्
३. ब्र. सू. १।१।७।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।)

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्या-

सृष्टि का क्रम वर्णन

इन (स्थावर-जंगम) प्रसिद्ध प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं। आण्डज, जीवज और

वशिष्टं श्रावितं श्रुत्याऽनुमेयं वा लिङ्गतोऽस्ति येन मोक्षोपदेश उपचरितः स्यात्। सर्वस्य च प्रपाठकार्थस्योपचरितत्वपरिकल्पनायां वृथा श्रमः परिकल्पयितुः स्यात्पुरुषार्थ-साधनविज्ञानस्य तर्केणैवाधिगतत्वात्तस्य। तस्माद्वेदप्रामाण्यान्न श्रुतार्थपरित्यागः। अतश्चेतनावत्कारणं जगत इति सिद्धम् ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

तेषां जीवाविष्टानां खल्वेषां पक्ष्यादीनां भूतानामेषामिति प्रत्यक्षनिर्देशान्न तु

हि प्रधानज्ञाने तद्विकारस्य तदभिन्नस्य ज्ञानं तस्य च पुरुषार्थत्वात्तज्ज्ञाने पुरुषाणामपि ज्ञानमुपचर्यते तस्मादेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानोपदेशान्न मोक्षोपदेशमुख्यत्वसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—सर्वस्य चेति। कृत्स्नमुपनिषदारम्भो वृथेत्युच्यते पुमर्थसाधनज्ञानार्थत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—पुरुषार्थेति। तस्यानु-मानवादिनः सांख्यस्य मते मुक्तिहेतोर्ज्ञानस्य जडाजडयोरैक्यानुपपत्तिरित्यादिना तर्केणैव सिद्धत्वादुप-निषदारम्भो वृथैवेत्यर्थः। श्रुतेर्मुख्यार्थत्वे बाधकाभावात्तत्परित्यागायोगादीक्षत्यधिकरणन्यायेन प्रधान-वादासिद्धिरिति परमतनिरसनमुपसंहरति—तस्मादिति। प्रधानवादासंभवे परिशेषायातं स्वमतं निगमयति—अत इति ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

महाभूतानामचेतनानां ब्रह्मकार्यतोक्ता संप्रति जीवाविष्टानां भौतिकानामपि परम्परया ब्रह्मकार्यत्वेति वक्तुं तान्यनुवदति—तेषामिति। पूर्वाध्याये येषां गत्यागती दर्शिते तृतीयं च स्थानमुक्तं तानि तच्छब्देन परामृश्यन्ते। तेषा प्रसिद्धत्वद्योतनार्थं खल्वित्युक्तम्। भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्तीत्युत्तरत्र संबन्धः। भूतशब्दस्य तेजःप्रभृतिषु रूढत्वात्तेषामिह ग्रहणं किं न स्यादित्याश-ङ्क्याऽऽह—एषामितीति। भूतानां प्रत्यक्षत्वमेषामिति निर्दिश्यते। संभवति च पक्ष्यादीनां प्रत्यक्षतेति

इससे सिद्ध होता है कि आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है और सब अद्वय तत्त्व ही है। इतने पर भी "जानने योग्य कुछ बाकी बच रहता है", ऐसा श्रुति मुख से निरूपित कराया गया एवं प्रमाण से भी अनुमान कर लिया गया कि ऐसा तत्त्व है, इससे मोक्ष का उपदेश करने में सर्वज्ञानोपदेश युक्तियुक्त ही सिद्ध होगा। सम्पूर्ण उपनिषद् के अर्थ का गौणी कल्पना करना तो वृथा श्रम का हेतु ही होगा फिर उपनिषद् निरूपण की ही क्या आवश्यकता है, अनुमानवादी सांख्य के मत में भी तर्क से ही पुरुषार्थ साधन विज्ञान की सिद्धि हो जाएगी। अतः श्रुति के मुख्य अर्थ का बाध न होने से वेद प्रामाण्य होने से उसके अर्थ का परित्याग करना उचित नहीं है। प्रधानवाद सर्वथा असंभव होने से चेतनायुक्त तत्त्व ही जगत् का कारण है, ऐसा सिद्ध हो गया ॥ ४ ॥

(अभी तक अचेतन महाभूतों की ब्रह्मकार्यता प्रतिपादित की गई, अब जीवों में प्रविष्ट भूतों को भी

---

१. ईक्षतेर्नाशब्दम् ब्र. सू. १।१।५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति ॥१॥

उद्भिज्ज। (इससें अधिक नहीं होते, स्वेदज और उष्मज का यथा संभव आण्डज और उद्भिज्ज में अन्तर्भाव मान लेने पर ही तीन बीज कहे गये हैं) ॥१॥

तेजःप्रभृतीनां तेषां त्रिवृत्करणस्य वक्ष्यमाणत्वादसति त्रिवृत्करणे प्रत्यक्षनिर्देशानुपपत्तिः। देवताशब्दप्रयोगाच्च तेजःप्रभृतिष्विमास्तिस्रो देवता इति। तस्मात्तेषां खल्वेषां भूतानां पक्षिपशुस्थावरादीनां त्रीण्येव नातिरिक्तानि बीजानि कारणानि भवन्ति। कानि तानीत्युच्यन्ते। आण्डजमण्डाज्जातमण्डजमण्डजमेवाऽऽण्डजं पक्ष्यादि। पक्षिसर्पादिभ्यो हि पक्षिसर्पादयो जायमाना दृश्यन्ते। तेन पक्षी पक्षिणां बीजं सर्पः सर्पाणां तथाऽन्यदप्यण्डाज्जातं तज्जातीयानां बीजमित्यर्थः।

नन्वण्डाज्जातमण्डजमुच्यतेऽतोऽण्डमेव बीजमिति युक्तं कथमण्डजं बीजमुच्यते। सत्यमेवं स्याद्यदि त्वदिच्छातन्त्रा श्रुतिः स्यात्स्वतन्त्रा तु श्रुतिर्यत आहाऽऽण्डजादीत्

तान्येवात्र भूतानि विवक्षितानि न तु तेजःप्रभृतीनि तेषां प्रत्यक्षत्वायोगादित्यर्थः। तेजःप्रभृतीनां प्रत्यक्षत्वायोगादेषामिति निर्देशानुपपत्ति समर्थयते—तेषामिति। तेषां प्रत्यक्षतया निर्देशासंभवे हेत्वन्तरमाह—देवताशब्देति। देवतानां परोक्षत्वप्रसिद्धेरेतेषु च देवतापदप्रयोगान्नैतेषां प्रत्यक्षत्वोपपत्तिरित्यर्थः। तस्मान्महाभूतानामत्र भूतशब्देनोपादानायोगादित्यर्थः। आण्डजं पक्ष्यादीत्येतत्प्रत्यक्षेणोपपादयति—पक्षिसर्पादिभ्यो हीति। अन्यदपीति गोधाद्युच्यते।

अण्डाज्जातमितिव्युत्पत्त्यनुसारेणाण्डमेव बीजं न त्वण्डजमिति शङ्कते—नन्विति। पौरुषेयी व्युत्पत्तिः श्रुत्या बाध्येति परिहरति—सत्यमित्यादिना। न केवलं श्रुतेरेषा व्यवस्था किंतूपपत्तेश्चे-

---

परम्परा से ब्रह्म का कार्य सिद्ध करने का उपक्रम करते हैं–) जीवों में प्रविष्ट उन प्रसिद्ध पक्षी आदि चेतन प्राणियों के तीन कारण होते हैं। मन्त्र में 'एषाम्' से प्रत्यक्ष निर्देश होने से भूतशब्द में रूढ तेज आदि का ग्रहण अभीष्ट नहीं है। प्रत्यक्ष तो तेज आदि का नहीं हुआ करता पक्षी आदि का होता है। त्रिवृत्करण का प्रतिपादन अभीष्ट होने से उनका त्रिवृत्करण न होने से प्रत्यक्ष निर्देश संभव नहीं है। (इसमें दूसरा हेतु भी भाष्यकार प्रस्तुत करते हैं–) देवता की परोक्षत्व प्रसिद्धि होने से तेज आदि में "ये तीन देवता हैं" इस प्रकार देवता पद का प्रयोग होने से प्रत्यक्ष निर्देश असंभव है इसलिए इन पशु-पक्षी चेतन आदि प्राणियों के तीन ही कारण होते हैं; अन्य नहीं। वे कौन से हैं, उन्हें श्रुति कहती है। अण्डे से उत्पन्न होने वाले अण्डज हैं, अण्डज ही आण्डज पक्षी आदि है। पक्षी-सर्पादि से पक्षी-सर्प आदि ही उत्पन्न होते हुए दिखाई देते हैं। इससे पक्षी का कारण पक्षी एवं सर्प का कारण सर्प है। इसी प्रकार अन्य भी अण्डे से होने वाले प्राणी अपनी-अपनी जाति से उत्पन्न होते हैं।

इस पर पूर्वपक्षी शङ्का करता है कि व्युत्पत्ति से आपने अण्डे से उत्पन्न होने वाले को अण्डज कहा, इसलिए अण्डे को ही कारण मानिए, अण्ड से उत्पन्न होने वाले प्राणी को कारण क्यों मानते हैं? उसका निरास करते हुए भाष्यकार कहते हैं—सचमुच ऐसा कहना हो जाता, यदि श्रुति आपकी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता

उस इस (सत् नाम वाली तेज, अप् और अन्न की योनिरूपा) देवता ने ईक्षण किया। मैं इस

बीजं नाण्डादीति। दृश्यते चाण्डजाद्यभावे तज्जातीयसंतत्यभावो नाण्डाद्यभावे। अतोऽण्डजादीन्येव बीजान्यण्डजादीनाम्। तथा जीवाज्जातं जीवजं जरायुजमित्ये- त्पुरुषपश्वादि। उद्भिज्जमुद्भिनत्तीत्युद्भित्स्थावरं ततो जातमुद्भिज्जं धाना वोद्भित्ततो जायत इत्युद्भिज्जं स्थावरं स्थावराणां बीजमित्यर्थः। स्वेदजसंशोकजयोरण्डजो- द्भिज्जयोरेव यथासंभवमन्तर्भावः। एवं ह्यवधारणं त्रीण्येव बीजानीत्युपपन्नं भवति ॥१॥

सेयं प्रकृता सदाख्या तेजोबन्नयोनिर्देवतोक्तैक्षतेक्षितवती यथापूर्वं बहु स्यामिति।

त्याह—दृश्यते चेति। सत्येवाण्डजादौ तज्जातीयमण्डजादि संतत्या जायते तदभावे तदभाव इत्यन्वयव्य- तिरेकाभ्यामण्डजाद्येवाण्डजजातिकारणम्। यद्यप्यण्डाद्यभावे नाण्डजादि जायते तथाऽप्यण्डादिभावेऽपि नद्भवतीति[1] नान्वयः। तस्मादण्डजादीनामण्डजान्येव बीजानि नाण्डादीनीत्यर्थः। धानाशब्दो बीजविषयः। ननु स्वेदजं संशोकजमिति बीजद्वयमवशिष्यते तत्किमिति न व्युत्पाद्यते तत्राऽऽह— स्वेदजेति। स्वेदमुद्भिद्य जायमानं दंशमशकादि तदुद्भिज्जेऽन्तर्भवति। संशोकादौष्ण्याज्जायमानं यूकादि तदण्डजेऽन्तर्भवति। यद्वा स्वेदजं यूकादि तदण्डजेऽन्तर्भूतं संशोकादौष्ण्याद्भूमिमुद्भिद्य जातं मशकादि तस्योद्भिज्जेऽन्तर्भावः। तथा च न तयोरस्ति पृथग्व्युत्पादनापेक्षेत्यर्थः। स्वेदजादेरण्डजा- द्यावन्तर्भावस्य प्रापकमाह—एवमिति ॥१॥

जीवाविष्टानां भूतानां सत्कार्यत्वं प्रकरणप्रामाण्यादुक्तमिदानीं जीवानां विशिष्टरूपेण ब्रह्मकार्यत्वेऽपि न स्वरूपेण तत्कार्यत्वं ब्रह्मैवोपाधिप्रविष्टं जीवव्यवहारास्पदमित्यङ्गीकारात्तथा च ब्रह्मणि विज्ञाते जीवविज्ञानं [2]सेत्स्यति जीवानां च भोगायतनानि भौतिकानि कार्याणि तेषां नामरूप- निर्माणं वक्तव्यमित्यभिप्रेत्योत्तरग्रन्थमादाय व्याकरोति—सेयमित्यादिना। यथा बहु स्यामिति

इच्छा की अनुकूल बना ली जाती, किन्तु श्रुति तो स्वतन्त्र है वह अण्डे से होने वाले चेतन प्राणी को कारण मानती है; अण्डादि को नहीं। श्रुति से ही नहीं, लोक व्यवहार से भी यह सिद्ध होता है अण्डज आदि चेतन प्राणियों के न रहने पर उनकी जाति की सन्तान परम्परा का विच्छेद हो जाता है, अण्डों के अभाव होने पर ऐसा नहीं होता। अतः अण्डज प्राणियों की सृष्टि में अण्डज प्राणी ही कारण होते हैं। इसी प्रकार जीव से होने वाले जीवज हैं, इन्हें ही जरायुज कहा जाता है, जैसे पुरुष और पशु आदि। अक्रियाशील धरती को फोड़ कर निकलने वाले उद्भिज्ज हैं, उसमें भी कारण उद्भिज्ज हैं। अचल पेड़-पौधे अचल पेड़-पौधों के कारण हैं। पसीने और गर्मी से होने वालों का अण्डज और उद्भिज्ज में ही अन्तर्भाव समझ लेना चाहिए। इस प्रकार सिद्ध हुआ कि तीन ही कारण हैं ॥१॥

प्रकरणस्थ सत् सञ्ज्ञक तेज, जल और पृथिवी की कारणभूता उस इस देवता ने विचार

१. इत्येवमन्वयो नास्तीत्यन्वयः। २. सेत्स्यतीत्यभिप्रेत्येति संबन्धः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनेन जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति ॥२॥

जीवात्मरूप से इन तीनों देवताओं में अनुप्रविष्ट हो नाम और रूपों की अभिव्यक्ति करूँ ॥२॥

तदेव बहुभवनं प्रयोजनं नाद्यापि निर्वृत्तमित्यत ईक्षां पुनः कृतवती बहुभवनमेव प्रयोजनमुररीकृत्य। कथम्। हन्तेदानीमहमिमा यथोक्तास्तेजआद्यास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनेति स्वबुद्धिस्थं पूर्वसृष्ट्यनुभूतं प्राणधारणमात्मानमेव स्मरन्त्याहानेन जीवेनाऽऽत्मनेति। प्राणधारणकर्त्रात्मनेति वचनात्स्वात्मनोऽव्यतिरिक्तेन चैतन्यस्वरूपतयाऽविशिष्टेनेत्येतद्दर्शयति। अनुप्रविश्य तेजोबन्नभूतमात्रासंसर्गेण लब्धविशेषविज्ञाना सती नाम च रूपं च नामरूपे व्याकरवाणि विस्पष्टमाकरवाण्यसौ नामाऽयमिदंरूप इति व्याकुर्यामित्यर्थः।

ननु न युक्तमिदमसंसारिण्याः सर्वज्ञाया देवताया बुद्धिपूर्वकमनेकशतसहस्रा-

---

पूर्वमीक्षितवती तथा किमिति पुनरैक्षत प्रयोजनाभावादित्याशङ्क्याऽऽह—तदेवेति। इदानीं महाभूतसृष्टेरनन्तरमिति यावत्। ब्रह्मणो मायोपाधिकस्य कारणत्वान्मायोपाधिवशात्पूर्वसृष्टावनुभूतत्वं तत्संस्कारस्य बुद्धिस्थत्वं स्मरणं चेत्यादि न विरुद्धमिति द्रष्टव्यम्। आत्मनेतिविशेषणस्य तात्पर्यमाह— प्राणेति। निर्विकल्पकचिन्मात्ररूपा देवता मायावशान्महाभूतानि सृष्ट्वा तेषु यदा प्रविष्टा तदा तदारब्धेषु सूत्रविराट्प्रभृतिषु समष्टिव्यष्ट्यात्मसु देहेषु प्रविश्य तत्तद्देहाभिमानवती देवदत्तादिनाम्ना रूपेण च शौक्ल्यादिना संयोज्य पिण्डं व्याकरोतीत्याह—अनुप्रविश्येति।

देवतायाः सर्वज्ञत्वादसंसारित्वात्स्वातन्त्र्याच्च संकल्पप्रवेशावयुक्ताविति शङ्कते—नन्विति।

किया कि मैं पहले की तरह बहुत रूप हो जाऊँ। वह बहुत रूप होने वाला उद्देश्य अभी तक भी निवृत्त नहीं हुआ है, इसलिए उसी प्रयोजन को मन में धारण करते हुए पुनः विचार किया। क्या विचारा ? काश ! मैं तेज, जल और पृथिवी रूप तीनों देवताओं में जीवात्मा रूप से प्रविष्ट होकर नाम-रूप की अभिव्यक्ति करता। मन्त्र में 'अनेन जीवेन' से स्व बुद्धि में स्थित पूर्व जन्म में अनुभव किए हुए प्राणधारण करने वाले आत्मा को स्मरण करते हुए श्रुति कहती है। प्राण धारण कर्ता जीवात्मा इस श्रुतिवचन से स्वात्मा से अभिन्न चैतन्य स्वरूप से युक्त जीवात्मा का प्रदर्शन होता है। तेज, जल एवं पृथिवी भूत मात्रा के संसर्ग से विशेष विज्ञान से युक्त होकर नाम और रूप की विस्पष्ट अनुभूति की अनुकामना देवता कर रही है कि मैं 'इस नाम वाला, इस रूप वाला" इस प्रकार स्पष्ट अभिव्यक्ति करूँ।

देवता के सवज्ञ, असंसारी एवं स्वतन्त्र होने से उसमें संकल्प एवं प्रवेश कैसे संभव है, भाव यह है कि देह तो अनेक सैकड़ों हजारों अनर्थ की आश्रय है उसमें बुद्धि पूर्वक प्रवेश करके 'मैं दुःख की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

र्याश्रयं देहमनुप्रविश्य दुःखमनुभविष्यामीति संकल्पनमनुप्रवेशश्च स्वातन्त्र्ये सति । सत्यमेवं न युक्तं स्याद्यदि स्वेनैवाविकृतेन रूपेणानुप्रविशेयं दुःखमनुभवेयमिति च संकल्पितवती न त्वेवम् । कथं तर्हि । अनेन जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्येति वचनात् । जीवो हि नाम देवताया आभासमात्रम् । बुद्ध्यादिभूतमात्रासंसर्गजनित आदर्श इव प्रविष्टः पुरुषप्रतिबिम्बो जलादिष्विव च सूर्यादीनाम् । अचिन्त्यानन्तशक्तिमत्या देवताया बुद्ध्यादिसंबन्धश्चैतन्याभासो देवतास्वरूपविवेकाग्रहणनिमित्तः सुखी दुःखी मूढ इत्याद्यनेकविकल्पप्रत्ययहेतुः । छायामात्रेण जीवरूपेणानुप्रविष्टत्वाद्देवता न दैहिकैः

किं साक्षादनुप्रवेशादि विरुध्यते किं वा जीवद्वाराऽपीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति । साक्षादनुप्रवेशादि नास्ति चेत्तर्हि कथं तदित्याकाङ्क्षापूर्वकं द्वितीयं दूषयति—कथमिति । देवताया जीवद्वारेणानुप्रवेशाद्यविरुद्धमिति शेषः । अविरोधमेव साधयितुं जीवस्वरूपमाह—जीवो हीति । आभिमुख्येनाहमित्यापरोक्ष्येण भासत इत्याभासः स्वतोऽपरोक्षश्चित्प्रतिबिम्बस्तन्मात्रं जीवो नामेत्यर्थः । तस्य स्वरूपेणानादित्वेऽपि विशिष्टरूपेण सादित्वं दर्शयति—बुद्ध्यादीति । बुद्ध्यादि-भि[1]र्भूतमात्रादिभिश्च चिदात्मनः संसर्गस्तेन जनितस्तत्तन्त्र इति यावत् । ननु चिदात्मा कूटस्थोऽसङ्गोऽद्वितीयश्चेष्यते स कथं बुद्ध्यादिभिर्भूतमात्रादिभिश्च संसृज्यते तत्राऽऽह—अचिन्त्येति । [2]सत्त्वादिप्रकारैरशक्यचिन्तनीयाऽनादिरनिर्वाच्या सम्यग्ज्ञानमन्तरेण नाशशून्या दण्डायमाना या मायाशक्तिस्तस्या विषयत्वेनाऽऽश्रयत्वेन च परा देवताऽवतिष्ठते । तस्याश्च स्वनिष्ठमायाशक्तिवशाद्बुद्ध्यादिभिरात्मनः संबन्धः सिध्यतीत्यर्थः । बुद्ध्यादिसंबन्धफलमाह—चैतन्येति । तदाभासो जीवशब्दवाच्यः सिध्यतीति शेषः । बुद्ध्यादिभिरात्मनः संबन्धे मायाशक्तिरुपादानमित्युक्तं तत्रैव निमित्तकारणमाह—देवतेति । आवरणविक्षेपशक्तिसंपन्ना हि मायाशक्तिस्ततोऽविद्योत्थदेशकालाद्यनवच्छिन्नदेवतास्वरूपोऽहमितिविशेषाग्रहणमावरणं निमित्तं कृत्वा बुद्ध्याद्यध्यासः सिध्यतीत्यर्थः । बुद्ध्याद्यध्यासस्य कार्यान्तरं दर्शयति—सुखीति । परैव तर्हि देवता संसारिणी स्यादिति चेत्सत्यमज्ञानद्वारा बुद्ध्यादिसंबन्धमनुभूय जीवत्वं प्राप्य सैव संसरतीत्याह—छायामात्रेणेति । परस्या देवतायाः स्वतः

अनुभूति करूँगा" इस प्रकार संकल्प करना एवं उसके स्वतन्त्र होने पर प्रवेश करना युक्तियुक्त नहीं लगता । हाँ, साक्षात् अनुप्रवेश करना तो ठीक नहीं किन्तु जीव द्वारा ऐसा होना संभव है । यदि परमेश्वर अपने अविकारी रूप से प्रवेश करता एवं दुःख अनुभव करता, संकल्प करता तो अनुचित था किन्तु श्रुति कहती है—उसने जीवात्मा रूप से प्रवेश किया । जीव देवता के अपरोक्ष भासने वाले प्रतिबिम्ब का नाम है । स्वरूप से उसके अनादि होने पर विशिष्ट रूप से वह सादि है । बुद्धि आदि भूत मात्रा के संसर्ग होने वाले दर्पण में पड़े हुए पुरुष के प्रतिबिम्ब एवं जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब के समान वह है । अचिन्तनीय एवं अनन्त शक्ति सम्पन्न देवता का बुद्धि आदि से संबन्ध स्वनिष्ठ माया शक्ति से होता है, उससे वह चैतन्य आभास जीव देवता के स्वरूप ग्रहण करने में असमर्थ होकर सुखी दुःखी मूढ इत्यादि अनेक विकल्पों का आधान करने लग जाता है । छाया मात्र से ही जीव द्वारा अनुप्रवेश होने के कारण देवता देहधारियों के द्वारा अनुभूत सुख-दुःखादि से लिप्त नहीं होता । जिस

१. भूतारब्धस्थूलशरीरैरित्यर्थः । २. सत्त्वासत्त्वादिना अशक्यचिन्तनेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वतः सुखदुःखादिभिः संबध्यते। यथा पुरुषादित्यादय आदर्शोदकादिषु च्छायामात्रेणानुप्रविष्टा आदर्शोदकादिदोषैर्न संबध्यन्ते तद्वद्देवताऽपि।

"सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः॥
आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः" इति हि काठके।
"ध्यायतीव लेलायतीव" इति च वाजसनेयके।

ननु च्छायामात्रश्चेज्जीवो मृषैव प्राप्तस्तथा परलोकेहलोकादि च तस्य। नैष दोषः। सदात्मना सत्यत्वाभ्युपगमात्। सर्वं च नामरूपादि सदात्मनैव सत्यं विकारजातं स्वतस्त्वनृतमेव। वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमित्युक्तत्वात्। तथा जीवोऽपीति।

संसाराभावं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। तस्याः स्वतो दुःखाद्यसंबन्धे श्रुतिं प्रमाणयति—सूर्य इति। उपाधिद्वारा तस्याः संसारित्वे च श्रुतिरस्तीत्याह—ध्यायतीति।

प्रतिबिम्बे छायाशब्दप्रयोगान्मिथ्यात्वमिष्टमिति मन्वानः शङ्कते—नन्विति। तन्मृषात्वमिष्टमेवेत्याशङ्क्याऽऽह—तथेति। जीवस्य मृषात्वे स्वीकृते सति तस्येहलोकपरलोकौ 'तद्धेतुर्मोक्षस्तद्धेतुश्चेति[1] सर्वं मृषा स्यादित्यर्थः। विशिष्टरूपेण मिथ्यात्वेऽपि स्वरूपेण सत्यत्वाज्जीवस्य ब्रह्मास्मीतिज्ञानान्मुक्तिः संभवतीति समाधत्ते—नैष दोष इति। यत्तु परलोकेहलोकादि मृषा स्यादिति तत्राऽऽह—सर्वं चेति। कथं तर्हि तस्य मिथ्यात्वोक्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—स्वत इति। यथा प्रपञ्चो ब्रह्मात्मना सत्योऽपि स्वरूपेण मिथ्येत्युक्तं तथा जीवशब्दवाच्योऽपि ब्रह्मात्मना सत्यः स्वरूपेण मिथ्येति स्वीकर्तव्यमित्याह—तथेति। अथ भोक्ता स्वरूपेणापि सत्योऽस्तु भोग्यप्रपञ्चस्यैव मिथ्यात्वमिष्यतामित्याशङ्क्

प्रकार पुरुष एवं सूर्य आदि दर्पण एवं जलादि में छाया मात्र से प्रविष्ट होकर भी दर्पण एवं जल के दोषों से लिपायमान नहीं होते, ठीक इसी प्रकार आत्मा को भी जानना चाहिए।

"जैसे (अपने प्रकाश से लोक उपकार करता हुआ) सूर्य सम्पूर्ण लोक का नेत्र होकर भी आध्यात्मिक पाप, दोष तथा पवित्र पदार्थों के संसर्ग से होने वाले नेत्र सम्बन्धी वाह्य दोषों से लिप्त नहीं होता। वैसे ही सम्पूर्ण भूतों का अन्तरात्मा एक ही (भ्रमजन्य) संसार के दुख से लिप्त नहीं होता, बल्कि (रज्जु आदि के समान भ्रम बुद्धि जन्य अध्यास से) बाहर ही रहता है" "आकाश के समान सर्वव्यापक एवं नित्य है" ऐसे कठोपनिषद् के वचन हैं। उसमें संसारित्व उपाधि द्वारा वाजसनेयक श्रुति कहती है, "वह ध्यान करता हुआ सा, जिह्वा से स्वाद लेता हुआ सा प्रतीत होता है"।

इस पर शङ्का होती है यदि जीव का स्वरूप प्रतिबिम्ब मात्र है तो जीव के मिथ्या होने से उस की परलोक एवं मर्त्यलोकादि की प्राप्ति भी मिथ्या ही होगी। समाधान करते हुए कहते हैं इसमें कोई दोष नहीं है। विशिष्ट रूप से मिथ्यात्व होने पर भी जीव के स्वरूपतः सत्य होने से जीव का 'ब्रह्मास्मि' इस ज्ञान से मोक्ष संभव है। वैसे तो नाम-रूपादि सदात्मा से ही सत्य ही है किन्तु विकार युक्त होने से स्वरूपतः मिथ्या ही है। श्रुति कहती है—"समस्त नाम-रूप जगत् वाणी का विकार है,

---

१. तद्धेतुः लोकद्वयहेतुः कर्मोपासनादिरूपः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ॥३॥

और इन तीनों देवताओं में से एक-एक देवता को त्रिवृत्-त्रिवृत् करूँ, (त्रिवृत् करण में एक-एक की प्रधानता और दो-दो की गौणता रहती है। यह त्रिवृत्करण पंचीकरण का उपलक्षण है) ऐसा विचार कर देवता ने इस जीवात्मारूप से ही उन तीन देवताओं ने सूर्य प्रतिबिम्ब समान अनुप्रवेश कर नाम-रूपों का व्याकरण किया ॥ ३ ॥

यक्षानुरूपो हि बलिरिति न्यायप्रसिद्धिः। अतः सदात्मना सर्वव्यवहाराणां सर्वविकाराणां च सत्यत्वं सतोऽन्यत्वे चानृतत्वमिति न कश्चिद्दोषस्तार्किकैरिहानुवक्तुं शक्यः। यथेतरेतरविरुद्धद्वैतवादाः स्वबुद्धिविकल्पमात्रा अतत्त्वनिष्ठा इति शक्यं वक्तुम् ॥२॥

सैवं तिस्रो देवता अनुप्रविश्य स्वात्मावस्थे बीजभूते अव्याकृते नामरूपे व्याकरवाणीतीक्षित्वा तासां च तिसृणां देवतानामेकैकां त्रिवृतं त्रिवृतं करवाणि। एकैक-

---

यक्ष—यक्षानुरूपो हीति। लौकिकन्यायानुसारेण भोग्यप्रपञ्चस्य मिथ्यात्वे भोक्तुरपि विभक्तरूपेण तत्प्रसिद्धिरतो जीवशब्दवाच्यस्य मिथ्यात्वेऽपि तल्लक्ष्यस्य सन्मात्रस्य सत्यत्वमिति व्यवस्थेत्यर्थः। यत्तु तार्किकैरुच्यते प्रपञ्चस्य मिथ्यात्वे सौगतमतानुमतिः सत्यत्वे चाद्वैतव्याहतिरिति तदप्युक्तन्यायेन निरस्तमित्याह—अत इति। अद्वैतवादे दोषाभावं वैधर्म्यदृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति ॥२॥

व्याकरवाणीत्येतदन्तं वाक्यं व्याख्याय तदनूद्य तासामित्यादि व्याचष्टे—सैवमित्यादिना। करवाणीत्यैक्षतेति संबन्धः। कथं पुनरिदं त्रिवृत्करणमित्याशङ्क्य प्रथममेकैकां देवतां द्विधा द्विधा कृत्वैकैकं भागं द्विधा द्विधा कृत्वा तदितरभागयोर्निक्षिप्य त्रिवृत्करणं विवक्षितमित्याह—एकैकस्या

आत्मा ही सत्य है" इसी प्रकार जीव भी स्वरूप से मिथ्या है ब्रह्मात्मा रूप से सत्य है। 'जैसा यक्ष हो उसी के अनुरूप बलि दी जाती है' ऐसी लोकोक्ति प्रसिद्ध है। इस प्रकार सद् आत्मारूप से समस्त व्यवहार समस्त विकार की सत्यता कही जा सकती है, सत् से भिन्न सब कुछ मिथ्या है; इसमें कोई तार्किक दोष दर्शन नहीं कर सकता। अद्वैतवाद में किसी प्रकार का दोष नहीं है, द्वैतवादी तो आपस में एक दूसरे से भिन्न-भिन्न बोलते हुए अपनी बुद्धि के विकल्प मात्र कहते हुए तत्त्व में स्थिति से कोसों दूर रहते हैं—ऐसे कहा जा सकता है ॥२॥

इस प्रकार (तेज, जल एवं पृथिवी की योनिरूपा) 'इन तीनों देवताओं में अनुप्रविष्ट होकर आत्मभूत बीजरूप अव्याकृत नाम रूप की अभिव्यक्ति करूँ, ऐसा विचार कर इन तीनों देवताओं में से एक-एक देवता को त्रिवृत-त्रिवृत करूँ ऐसा सोचा। एक-एक के त्रिवृत्करण करने में एक-एक की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

उस देवता ने उन देवताओं में से एक-एक को गुण प्रधान भाव से त्रिवृत्-त्रिवृत् किया। हे सोम्य ! जिस प्रकार ये तीनों देवता (इन पिण्डों से बाहर भी) एक-एक करके त्रिवृत् हैं, उसे मेरे द्वारा अच्छी प्रकार से समझ ले ॥४॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

स्यात्त्रिवृत्करण एकैकस्याः प्राधान्यं द्वयोर्द्वयोर्गुणभावोऽन्यथा हि रज्ज्वा इवैकमेव त्रिवृत्करणं स्यात् । न तु तिसृणां पृथक्पृथक्त्रिवृत्करणमिति । एवं हि तेजोबन्नानां पृथङ्नामप्रत्ययलाभः स्यात्तेज इदमिमा आपोऽन्नमिदमिति च पृथङ्नामप्रत्ययलाभे देवतानां सम्यग्व्यवहारस्य प्रसिद्धिः प्रयोजनं स्यात् । एवमीक्षित्वा सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव यथोक्तेनैव जीवेन सूर्यबिम्बवदन्तः प्रविश्य वैराजं पिण्डं प्रथमं देवादीनां च पिण्डाननुप्रविश्य यथासंकल्पमेव नामरूपे व्याकरोदसौनामाऽयमिदंरूप इति ॥३॥

तासां च देवतानां गुणप्रधानभावेन त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोत्कृतवती देवता।

इति । गुणप्रधानभावानङ्गीकारे समानपरिमाणसूत्रत्रयनिर्मितरज्जुवत्त्रिवृत्करणमेकमेव स्यादित्याह— अन्यथेति । एवकारार्थं दर्शयति—न त्विति । गुणप्रधानभावेन त्रिवृत्करणमुपसंहर्तुमितिशब्दः। इतश्च गुणप्रधानभावेन त्रिवृत्करणमेष्टव्यमित्याह—एवं हीति । पृथङ्नामप्रत्ययलाभेनापि किं स्या-दित्याशङ्क्याऽऽह—पृथगिति । सेयमित्यादि व्याचष्टे—एवमित्यादिना ॥३॥

संक्षेपेण त्रिवृत्करणं प्रतिज्ञायोदाहरणतः स्फुटीकर्तुमारभमाणो देहे त्रिवृत्करणस्याग्रे स्फुटी-

---

प्रधानता होती है अन्य दो-दो की गौणता होती है नहीं तो रज्जुके समान एक का त्रिवृत्करण होने लगेगा। • यहाँ तो प्रथम एक-एक देवता के दो-दो प्रकार से विभाग करके पुनः उस एक-एक भाग के दो-दो भाग करके उसे दूसरे में स्थापित करके त्रिवृत्करण अभीष्ट है, तीनों का पृथक्-पृथक् त्रिवृत्करण विवक्षित नहीं है। इस से तेज जल और पृथिवी के नामों की पृथक्-पृथक् प्रतीति बनी रहेगी; यह तेज है, यह जल हैं, यह पृथिवी है। पृथक् नाम की प्रतीति बने रहने पर देवताओं के भली प्रकार व्यवहार की प्रसिद्धि रूप प्रयोजन सिद्ध हो जाएगा। इस प्रकार विचार कर उस देवता ने यथोक्त जीवात्मरूप से ही उन तीनों देवताओं में सूर्य के बिम्ब के समान अन्तः प्रवेश कर उनके विराट् पिण्ड में अनुप्रविष्ट हो संकल्प के अनुसार नाम-रूपों की अभिव्यक्ति की यह देवता इस नाम वाला है—इत्यादि ॥३॥

उस देवता ने उन तीनों देवताओं में से एक-एक को गौण प्रधान भाव से त्रिवृत्-त्रिवृत् किया। नाम-रूप से अभिव्यक्त देवतादि पिण्डों की तेज, जल और पृथिवी रूप से त्रिविध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।)

यदग्ने रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥१॥

एक विज्ञान से सर्व विज्ञान की उत्पत्ति

(लोक में त्रिवृत्) अग्नि का जो लालरूप है, वह अत्रिवृत् तेज का ही रूप है। वैसे ही जो शुक्लरूप है, वह जल का है तथा जो कृष्ण रूप है वह पृथिवी का है। इस प्रकार अग्नि से अग्नित्व निवृत्त हो गया, क्योंकि (अग्नि बुद्धि और अग्नि शब्दमात्र ही) विकार वस्तु वाणी से कहने के लिए नाममात्र है।। वस्तुतः उक्त तीनरूप ही हैं, इतना ही सत्य है ॥१॥

तिष्ठतु तावद्देवतादिपिण्डानां नामरूपाभ्यां व्याकृतानां तेजोबन्नमयत्वेन त्रिधात्वं यथा तु खलु बहिरिमाः पिण्डेभ्यस्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे मम निगदतो विजानीहि विस्पष्टमवधारयोदाहरणतः ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

यत्तद्देवतानां त्रिवृत्करणमुक्तं तस्यैवोदाहरणमुच्यते। उदाहरणं नामैकदेश-प्रसिद्ध्याऽशेषप्रसिद्ध्यर्थमुदाह्रियत इति। तदेतदाह—यदग्नेस्त्रिवृत्कृतस्य रोहित रूपं प्रसिद्धं लोके तदत्रिवृत्कृतस्य तेजसो रूपमिति विद्धि। तथा यच्छुक्लं रूपमग्नेरेव तदपामत्रिवृत्कृतानां यत्कृष्णं तस्यैवाग्ने रूपं तदन्नस्य पृथिव्या अत्रिवृत्कृताया इति

...व्यत्वाद्देहातिरिक्तेषु प्रथमं तदुदाहर्तुमुपक्रमते—तिष्ठतु तावदिति ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

कथमुदाहरणतोऽवधारणमित्याशङ्क्यानन्तरवाक्यमवतारयति—यत्तदिति। उदाहरणशब्दं व्युत्पादयति—उदाहरणं नामेति। तत्रैव श्रुतिमवतार्य व्याचष्टे—तदेतदित्यादिना। अत्रिवृत्कृतानां

रहने दीजिए, जिस प्रकार ये तीनों देवता इन पिण्डों से बाहर भी एक-एक करके त्रिवृत्-त्रिवृत् है उसे मैं उदाहरण द्वारा भली भाँति समझा कर कहूँगा तुम उसे हस्तामलकवत् जान लो ॥४॥

पूर्व मन्त्र में जो देवताओं का त्रिवृत्करण निरूपित किया गया था, उसी को उदाहरण द्वारा श्रुति निरूपित कर रही है। नाम की एकदेश में प्रसिद्धि से सम्पूर्ण प्रसिद्धि के लिए गरिमा बढ़ाने हेतु आख्यान करने का नाम उदाहरण है। श्रुति इसे स्वयं कहती है–त्रिवृत् की हुई अग्नि का लाल वर्ण जो लोक विश्रुत है, वह अत्रिवृत् किए तेज का रूप जानो। इसी प्रकार जो अग्नि का शुक्ल रूप दीखता है, वह अत्रिवृत् किए हुए जल का रूप है तथा उसी अग्नि का जो काला वर्ण दीखता है, वह अत्रिवृत् की हुई पृथिवी का रूप जानो। इस प्रकार तीन रूपों से व्यतिरिक्त जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदादित्यस्य रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं

आदित्य का जो रक्त रूप है, वह अत्रिवृत् तेज का रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जल का है,

विद्धि ।- तत्रैवं सति रूपत्रयव्यतिरेकेणाग्निरिति यन्मन्यसे त्वं तस्याग्नेरग्नित्वमिदानीमपागादपगतम् । प्राग्रूपत्रयविवेकविज्ञानाद्याऽग्निबुद्धिरासीत्ते साऽग्निबुद्धिरपगताऽग्निशब्दश्चेत्यर्थः । यथा दृश्यमानरक्तोपधानसंयुक्तः स्फटिको गृह्यमाणः पद्मरागोऽयमितिशब्दबुद्ध्योः प्रयोजको भवति प्रागुपधानस्फटिकयोर्विवेकविज्ञानात्तद्विवेकविज्ञाने तु पद्मरागशब्दबुद्धी निवर्तेते तद्विवेकविज्ञातुस्तद्वत् । ननु किमत्र बुद्धिशब्दकल्पनया क्रियते प्राग्रूपत्रयविवेककरणादग्निरेवाऽऽसीत्तदग्नेरग्नित्वं रोहितादिरूपविवेककरणादपागादिति युक्तं यथा तन्त्वपकर्षणे पटाभावः । नैवं बुद्धिशब्दमात्रमेव ह्यग्निर्यत आह वाचाऽऽरम्भणमग्निर्नाम विकारो नामधेयं नाममात्रमित्यर्थः । अतोऽग्निबुद्धिरपि मृषैव । किं तर्हि तत्र सत्यं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं नाणुमात्रमपि रूपत्रयव्यतिरेकेण सत्यमस्तीत्यवधारणार्थः ॥१॥

तथा यदादित्यस्य यच्चन्द्रमसो यद्विद्युत इत्यादि समानम् । ननु यथा तु खलु

रूपमिति विद्धीति संबन्धः । तत्राग्नौ रूपत्रये पूर्वोक्तरीत्या पृथक्कृते सतीति यावत् । इदानीं विवेकदशायामित्यर्थः । अक्षरार्थमुक्त्वा वाक्यतात्पर्यार्थमाह—प्रागिति । रूपत्रयविवेकात्प्रागवस्थायामग्निशब्दबुद्धी तद्विवेकादूर्ध्वं तन्निवृत्तिरित्येतमर्थं दृष्टान्तेन समर्थयते—यथेत्यादिना । अग्निविषये श्रुतं हित्वाऽधिककल्पनायां नास्ति निबन्धनमिति शङ्कते—नन्विति । रोहितादिरूपत्रयविवेके सत्यग्नेरग्नित्वमपगच्छतीत्यत्र दृष्टान्तमाह—यथेति । शब्दबुद्धिप्रक्षेपेऽपि न श्रुतत्यागोऽस्तीति परिहरति—नैवमिति । तत्र प्रमाणत्वेनानन्तरवाक्यमादाय व्याचष्टे—यत इति । अग्नेर्नाममात्रत्वमतःशब्दार्थः ॥१॥

प्रक्रमपर्यालोचनायामुदाहरणे न्यूनत्वमस्तीति शङ्कते—नन्विति । यद्वापीकूपादे रोहितं रूपं

अग्नि का स्वरूप तुम समझते हो इससे अग्नि का अग्नित्व विनष्ट हो गया। तीन रूपों की विशिष्टता के विज्ञान होने से पूर्व जो तुम्हें अग्नि बुद्धि थी, वह अग्नि बुद्धि विनष्ट हो गई, अग्नि शब्द भी इसके साथ-साथ विनष्ट हो गया। जिस प्रकार रक्तिम उपाधि से संयुक्त स्फटिक मणि में पद्मराग की बुद्धि होती, उपाधि से पूर्व विशुद्ध स्फटिक के ज्ञान हो जाने पर उसमें पद्मराग शब्द एवं बुद्धि की निवृत्ति हो जाती है, इसी प्रकार अग्नि के वास्तविक विज्ञान से अग्नि की निवृत्ति हो जाती है। इस पर शंका होती हैं यहाँ बुद्धि और शब्द की कल्पना द्वारा रूपत्रय के विवेक होने से पूर्व क्या किया जाता है, अग्नि ही अग्नि का अग्नित्व है, लालवर्ण आदि रूप के विवेक से अग्नित्व का नष्ट होना उसी तरह से है, जिस प्रकार वस्त्र से तन्तु निकल जाने पर वस्त्र का अभाव हो जाता है। इस प्रकार बुद्धि शब्द मात्र ही अग्नि नहीं है क्योंकि श्रुति कहती है-विकार वस्तु अग्नि वाणी से कहने के लिए नाम मात्र है अतः अग्नि बुद्धि भी नाममात्र होने से मिथ्या ही है। तो फिर वहाँ सत्य क्या है, तीन ही रूप हैं, यही सत्य है; रूपत्रय से भिन्न कुछ भी नहीं है, यही परिष्कृत अर्थ निकला ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादित्यत्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥२॥

जो कृष्णरूप है, वह पृथिवी का है। इस प्रकार आदित्य से आदित्यत्व निकल गया, क्योंकि वह विकार वाणी से कहने के लिए नाममात्र है। वस्तुतस्तु उक्त तीन रूप ही है, इतना ही सत्य है ॥२॥

सौम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीत्युक्त्वा तेजस एव चतुर्भिरप्युदाहरणैरग्न्यादिभिस्त्रिवृत्करणं दर्शितं नाबन्नयोरुदाहरणं दर्शितं त्रिवृत्करणे। नैष दोषः। अबन्नविषयाण्यप्युदाहरणान्येवमेव च द्रष्टव्यानीति मन्यते श्रुतिः। तेजस उदाहरणमुपलक्षणार्थम्। रूपवत्त्वात्स्पष्टार्थत्वोपपत्तेश्च। गन्धरसयोरनुदाहरणं त्रयाणामसंभवात्। न हि गन्धरसौ तेजसि स्तः। स्पर्शशब्दयोरनुदाहरणं विभागेन

तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्य यच्च व्रीहियवादे रोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्येत्युदाहरणसंभवान्न न्यूनतेति परिहरति—नैष दोष इति। तर्हि तेजोविषय-मप्युदाहरणमूहनीयं किमित्युदाहृतमित्याशङ्क्याऽऽह—तेजस इति। यदि क्वचिदपि नोदाहरणमुच्येत तदोपलक्षणमेव सिध्येदतस्त्रयाणां रूपवत्त्वेन यथोक्तरूपविभागस्य तेषु स्फुटत्वसंभवात्तेजसो दृष्टान्त-प्रदर्शनमन्नादिविषयोदाहरणोपलक्षणार्थं तेन नोपेक्षितमित्यर्थः। अबन्नयोरपि त्रिवृत्करणमुपलक्षितं चेत्तर्हि तत्र रसगन्धयोरसाधारण्यात्तयोस्त्रिवृत्करणमुदाहर्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—गन्धरसयोरिति। यथा यदबन्नयोर्भास्वरं लोहितं रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्येति शक्यते रूपं विवेक्तुं न तथाऽमुको रसो गन्धो वा [1]तेजसोऽपामन्नस्यचास्तीति ज्ञातुं शक्यमित्यनुदाहरणं तयोरित्यर्थः। ननु त्रिवृत्करणे त्रिष्वपि रूपवद्गन्धरसौ संभावितौ तत्कथं तयोस्त्रयाणामसंभवोक्तिस्तत्राऽऽह—न हीति। संभावितावपि तौ त्रिषु विवेक्तुमशक्यावित्यनुदाहरणीयावित्यर्थः। तर्हि सर्वेषु भूतेषु संभावितयोः स्पर्शशब्दयोरुदाहरणं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—स्पर्शशब्दयोरिति। यथा लोहितादिरूपत्रयं त्रयाणां

इसी प्रकार जो आदित्य, चन्द्रमा एवं विद्युत् का रूप है इत्यादि मन्त्रों के भाष्य का अर्थ पूर्व के समान है। इस पर शङ्का होती है—षष्ठाध्याय तृतीयखण्ड के चतुर्थ मन्त्र में प्रतिज्ञा की थी कि हे सोम्य! जिस प्रकार ये तीनों देवता (इन पिण्डों के बाहर भी) एक-एक करके त्रिवृत् हैं, उसे मेरे द्वारा अच्छी प्रकार से जान लो" किन्तु त्रिवृत्करण के उदाहरण में तेज का ही चारों मन्त्रों में अग्नि आदि से त्रिवृत्करण प्रदर्शित किया, जल और पृथिवी का क्यों नहीं किया? इस पर कहते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है। श्रुति मानती है कि जल और पृथिवी के उदाहरण भी इसी प्रकार समझ लेने चाहिएं। तेज का उदाहरण उपलक्षण मात्र के लिए है क्योंकि तेज की रूपवत्ता एवं स्पष्टार्थवत्ता होने से त्रिवृत्करण सिद्ध करना सरल हो जाता है। गन्ध और रस को, पृथिवी जल में तेज की तरह

1. तेजसः तेजोनिष्ठ इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यच्चन्द्रमसो रोहितँ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥३॥

त्रिवृत् भूत के कार्य चन्द्रमा में जो रोहितरूप है, वह अत्रिवृत् कृत तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है, वह जल का एवं जो कृष्णरूप है वह पृथिवी का है। इस प्रकार चन्द्रमा से चन्द्रत्व चला गया, क्योंकि चन्द्रमारूप विकार तो वाणी पर आधारित नाममात्र है। वास्तव में उक्त तीन ही हैं। इतना ही सत्य है ॥३।

दर्शयितुमशक्यत्वात्।

यदि सर्वं जगत्त्रिवृत्कृतमित्यग्न्यादिवत्त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमग्नेरग्नित्ववदपागाज्जगतो जगत्त्वम्। तथाऽन्नस्याप्यप्शुङ्गत्वादाप इत्येव सत्यं वाचारम्भणमात्रमन्नम्। तथाऽपामपि तेजःशुङ्गत्वाद्वाचारम्भणत्वं तेज इत्येव सत्यम्। तेजसोऽपि सच्छुङ्गत्वाद्वाचारम्भणत्वं सदित्येव सत्यमित्येषोऽर्थो विवक्षितः। ननु वाय्वन्तरिक्षे त्वत्रिवृत्कृते

विभागेन दर्शयितुं शक्यं न तथा शब्दत्रयं स्पर्शत्रयं च त्रयाणां विभागेन दर्शयितुं शक्यं नो खल्वेकत्रोष्णशीतानुष्णाशीतस्पर्शत्रयं दृश्यते नापि खरमधुरमध्यमशब्दत्रयमेकत्रोपलब्धमित्यर्थः।

सर्वस्य त्रिवृत्कृतत्वे फलितमाह—यदीति। यथाऽग्न्यादि त्रिवृत्कृतं तथा सर्वमेव जगद्यदि त्रिवृत्कृतमित्यङ्गीकृतं तदाऽग्नेरग्नित्ववज्जगतो जगत्वमपगतं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमिति योजना। तथाऽपि कथं सन्मात्रपरिशेषः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—तथेति। रूपत्रयव्यतिरेकेण जगतोऽभाववत्कृष्णस्यापि रूपस्य पृथिवीशब्दितस्य शुक्लरूपमात्रजलकार्यत्वात्तदतिरेकेणासत्त्वं पृथिवीवदपामपि शुक्लरूपमात्राणां लोहितरूपमात्रतेजोविकारत्वात्तद्व्यतिरेकेणाभावस्तस्यापि सत्कार्यत्वात्ततो भेदेनासत्त्वमिति सन्मात्रमेव परिशिष्टमित्येतत्त्रिवृत्करणप्रकरणे विवक्षितमित्यर्थः। त्रिवृत्करणपक्षे नैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं सिध्यति परिशिष्टविज्ञेयसद्भावादिति शङ्कते—नन्विति। इतिपदं कथमित्यादिना

रक्त, शुक्ल, कृष्ण तीनों का उदाहरण देना संभव नहीं है। तेज में गन्ध और रस नहीं रहते। तेज के त्रिक की तरह स्पर्श (उष्ण, शीत व अनुष्णाशीत) शब्द (खर, मधुर एवं मध्यम) के अनुदाहरण विभागपूर्वक प्रदर्शित किया जाना असंभव है।

यदि सम्पूर्ण जगत् त्रिवृत् किया हुआ होने से अग्नि आदि की तरह तीनों रूप ही सत्य हैं, अग्नि से अग्नित्व की तरह जगत् का जगत्त्व विनष्ट हो गया है। इस प्रकार अन्न भी जल का कार्य होने से जल ही सत्य है, अन्न तो वाणी का विकार मात्र है। इसी तरह जल भी तेज का कार्य होने से जल तो वाणी का विकार मात्र है, तेज ही सत्य है। तेज भी सत्कार्य होने से वाणी का विकार मात्र है; सत्तत्त्व ही सत्य है यही निकृष्ट अर्थ निकला। इस पर शङ्का होती है कि वायु और आकाश की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्विद्युतो रोहितꣳ रूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम् ॥४॥

विद्युत् का जो लालरूप है, वह तेज का रूप है। जो शुक्लरूप है वह जल का रूप है। जो कृष्णरूप है वह अन्न का रूप है। इस प्रकार विद्युत् से विद्युत्त्व निकल गया इसका विद्युत्त्वरूप केवल वाणी का विकार है। वास्तव में इसके यही तीन रूप हैं। यही सत्य है ॥४॥

तेजःप्रभृतिष्वनन्तर्भूतत्वादवशिष्येते एवेति गन्धरसशब्दस्पर्शाश्चावशिष्टाः। कथं सता विज्ञातेन सर्वमन्यदविज्ञातं विज्ञातं भवेत्तद्विज्ञाने वा प्रकारान्तरं वाच्यम्। नैष दोषः। रूपवद्द्रव्ये सर्वस्य दर्शनात्। कथम्। तेजसि तावद्रूपवति शब्दस्पर्शयोरप्युपलम्भाद्वायन्तरिक्षयोस्तत्र स्पर्शशब्दगुणवतोः सद्भावोऽनुमीयते। तथाऽबन्नयो रूपवतो रसगन्धान्तर्भाव इति। रूपवतां त्रयाणां तेजोबन्नानां त्रिवृत्करणप्रदर्शनेन [1]सर्वं तदन्तर्भूतं [2]सद्विकार-

---

संबध्यते। गन्धादयश्च शब्दान्ता गुणा गुणिष्वनन्तर्भूताः सन्तीति न सद्विज्ञानेन तद्विज्ञानोपपत्तिरित्याह—गन्धेति। तद्विज्ञाने सद्विज्ञानेन यद्वाय्वादिविज्ञानं तत्र प्रकारान्तरं तत्कार्यत्वादतिरिक्तमिति यावत्। आकाशादेस्त्रिष्वेवान्तर्भावसंभवान्न परिशिष्टविज्ञेयमस्तीति परिहरति—नैष दोष इति। कथं तेजोबन्नेषु सर्वस्याऽऽकाशादेर्दर्शनमित्याह—कथमिति। तत्र शब्दस्पर्शयोराकाशवाय्वोश्च भूत्रये प्रत्यक्षानुमानाभ्यामुपलब्धि दर्शयति—तेजसीति। तेजोग्रहणमबन्नयोरुपलक्षणं तत्रापि स्पर्शाद्युपलब्धेरविशेषाद्यत्तु गन्धादि ज्ञेयान्तरमिति तत्राऽऽह—तथेति। भूतत्रये स्पर्शाद्यन्तर्भाववदिति यावत्। त्रिष्वेवान्तर्भावे फलितमाह—रूपवतामिति। भूतत्रये रूपवत्याकाशादेरन्तर्भावं व्यतिरेकद्वारा समर्थयते—

आपने त्रिवृत्करण किया नहीं उनका तेज आदि में अन्तर्भाव न होने से उनका निरूपण करना तो रह ही गया; स्पर्श, शब्द, गन्ध और रस भी श्रुतिमुख का आस्वादन न ले सके। ऐसा कैसे कह लोगे कि सत्तत्त्व के जान लेने पर अन्य सब कुछ न जाना हुआ भी जान लिया जाता है। अथवा सद्विज्ञान से जो वायु आदि का विज्ञान है; वहाँ उसका कार्यत्व होने से अतिरिक्त समझ लेना चाहिए। (आकाशादि का तीनों में अन्तर्भाव होने से परिशिष्ट कल्पना करनी वृथा है—इस प्रकार शङ्का का परिहार करते हुए कहते हैं—) इसमें कोई दोष नहीं है। रूपवान् द्रव्य में सबका दर्शन संभव है। वह कैसे ? रूपयुक्त तेज में शब्द और स्पर्श के उपलब्ध होने पर वायु और आकाश के स्पर्श और शब्द गुण वाले होने पर भूतत्रय में प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से उनकी सत्ता मान ली जाती है। इसी प्रकार तेज का ग्रहण जल और पृथिवी का उपलक्षण मात्र होने से रूपयुक्त जल, पृथिवी में रस गन्ध का अन्तर्भाव है। रूपयुक्त तेज, जल और पृथिवी इन तीनों के त्रिवृत्करण प्रदर्शन से 'सब कुछ उसके अन्दर ही समीभूत होने से रूपत्रय का विकार

---

१. सर्वं तदन्तर्भूतं विज्ञातं त्रीण्येव रूपाणि च सर्वमिति संबन्धः। २. सद्विकाररूपत्रयविकारत्वादिति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतविज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदांचक्रुः ॥५॥

पूर्व के महाशाल एवं महाश्रोत्रिय विद्वानों ने ऐसा ही कहा है। हमारे में से कोई भी अश्रुत, अमृत तथा अविज्ञात उदाहरण नहीं देगा, ऐसा इन लोगों से जाना ॥५॥

त्वात्त्रीण्येव रूपाणि विज्ञातं मन्यते श्रुतिः। न हि मूर्तं रूपवद्द्रव्यं प्रत्याख्याय वाय्वाकाशयोस्तद्गुणयोर्गन्धरसयोर्वा ग्रहणमस्ति। अथवा रूपवतामपि त्रिवृत्करणं प्रदर्शनार्थमेव मन्यते श्रुतिः। यथा तु त्रिवृत्कृते त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यं तथा पञ्चीकरणेऽपि समानो न्याय इत्यतः सर्वस्य सद्विकारत्वात्सता विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमिति सिद्धमेव भवति। तदेकस्मिन्सति विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति सूक्तम् ॥२॥३॥४॥

एतद्विद्वांसो विदितवन्तः पूर्वेऽतिक्रान्ता महाशाला महाश्रोत्रिया आहुर्ह स्म वै

न हीति। अन्तर्भावोक्तिप्रयासं परिहर्तुं पक्षान्तरमाह—अथवेति। प्रदर्शनार्थं पञ्चीकरणस्येति शेषः। कथं पञ्चीकरणे सन्मात्रपरिशेषः सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—यथेति। यदा पञ्चापि भूतानि प्रत्येकं द्वेधा विभज्य पुनरेकैकं भागं चतुर्धा कृत्वा स्वभागातिरिक्तेषु पूर्वेषु भागेष्वेकैकशो निक्षिप्यन्ते तदा पञ्चीकरणं श्रुत्यपलक्षितं लभ्यते तत्रापि पञ्चानां भागानां पृथक्करणे पञ्चैव तन्मात्राण्यवशिष्यन्ते तान्यपि पृथिव्यादीन्यबादिकार्यत्वात्तत्तत्कारणव्यतिरेकेण न सिध्यन्तीति त्रिवृत्करणवत्पञ्चीकरणेऽपि न्यायसाम्यात्सर्वस्य सद्विकारत्वात्तद्व्यतिरिकेणाभावात्तेन विज्ञातेन तदपि विज्ञातमेव स्यात्सन्मात्रं तु परमार्थसत्यं परिशिष्टं भवतीत्यर्थः। उक्तन्यायेनैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिरविरुद्धेत्युपसंहरति—तदेकस्मिन्निति ॥२॥३॥४॥

त्रिवृत्करणपक्षेऽप्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिरविरुद्धेत्युपपाद्य त्रिवृत्करणमुदाहरणान्तरेण

होने से भगवती श्रुति तीन रूपों को ही जानने की मान्यता देती है। मूर्त रूपवान् द्रव्य का खण्डन कर वायु एवं आकाश तथा उनके गुणों का अथवा गन्ध रस का श्रुति ग्रहण नहीं करती। अथवा रूपवान् भूतों के त्रिवृत्करण से पञ्चीकरण प्रदर्शन के लिए श्रुति अवकाश देती है। जिस प्रकार त्रिवृत्करण में तीन रूप ही सत्य हैं, उसी प्रकार पञ्चीकरण में पाँच रूप ही सत्य हैं, इससे सभी को सत् का विकारी मानने से सत्तत्त्व के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाएगा। वह सत्तत्त्व एक और अद्वितीय है, सत्य है; ऐसा सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार एक विज्ञान से सर्वविज्ञान प्रतिपादन करने वाली श्रुति में किञ्चिन्मात्र भी विरोध उपस्थित नहीं होने से उसकी सही उक्ति होना सिद्ध हो जाता है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

प्राचीन काल के महागृहस्थ और महाश्रोत्रिय विद्वानों ने भी इस सत्तत्त्व का इसी प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitized by ... Sastri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपा᳟ रूपमिति तद्विदांचक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदांचक्रुः ॥६॥

जो रोहित जैसा हुआ वही तेज का रूप है, ऐसा जाना। जो शुक्ल जैसा हुआ वही जल का रूप है, ऐसा जाना। जो कृष्ण जैसा हुआ वही अन्न का रूप है, ऐसा जाना ॥६॥

किल। किमुक्तवन्त इत्याह—न नोऽस्माकं कुलेऽद्येदानीं यथोक्तविज्ञानवतां कश्चन कश्चिदप्यश्रुतममतमविज्ञातमुदाहरिष्यति नोदाहरिष्यति सर्वं विज्ञातमेवास्मत्कुलीनानां सद्विज्ञानवत्त्वादित्यभिप्रायः। ते पुनः कथं सर्वं विज्ञातवन्त इत्याह—एभ्यस्त्रिभ्यो रोहितादिरूपेभ्यस्त्रिवृत्कृतेभ्यो विज्ञातेभ्यः सर्वमप्यन्यच्छिष्टमेवमेवेति विदांचक्रुर्विज्ञातवन्तो यस्मात्तस्मात्सर्वज्ञा एव सद्विज्ञानात्त आहुरित्यर्थः। अथवैभ्यो विदांचक्रुरित्यग्न्यादिभ्यो दृष्टान्तेभ्यः विज्ञातेभ्यः सर्वमन्यद्विदांचक्रुरित्येतत् ॥५॥

कथम्। यदन्यद्रूपेण संदिह्यमाने कपोतादिरूपे रोहितमिव यद्गृह्यमाणमभूत्तेषां पूर्वेषां ब्रह्मविदां तत्तेजसो रूपमिति विदांचक्रुः। तथा यच्छुक्लमिवाभूद्गृह्यमाणं तदपां रूपं यत्कृष्णमिव गृह्यमाणं तदन्नस्येति विदांचक्रुरेवमेवात्यन्तदुर्लक्ष्यं यदु अप्य-

---

दर्शयितुमारभते—एतदिति। त्रिवृत्करणमिति यावत्। ते पुनरिति त्रिवृत्करणविज्ञानवन्तो निर्दिश्यन्ते ॥५॥

वेदनप्रकारमेवाऽऽकाङ्क्षापूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना। अन्यदग्न्यादिभ्यः सकाशादिति शेषः। यदनेकरूपत्वात्कपोतादिरूपेण संदिह्यमानमेतद्दृश्यते तस्मिन्कपोतादिस्वरूपे यत्किंचिद्रोहितमिव रूपं गृह्यमाणं पूर्वेषामासीत्तत्तेजसो रूपमिति ते विदितवन्त इति योजना। अत्यन्तदुर्लक्ष्यं नामरूपाभ्यां

निरूपण किया है। किस प्रकार ? इसे श्रुति कहती है—एक विज्ञान से सर्वविज्ञान की विचारधारा में निष्ठा होने से हमारे कुल में अब कोई अश्रुत, अमत और अविज्ञात उदाहरण नहीं देगा। उन्हें सर्वविज्ञान की उपलब्धि कैसे हुई इस पर कहते हैं—इन तीन रोहितादि रूपों के त्रिवृत्करण ज्ञान होने पर अन्य सभी अवशिष्ट भूतों को उन्होंने जान लिया, सद्विज्ञान के कारण वे सर्वविज्ञानी हुए। अथवा श्रुति में "एभ्यो विदांचक्रुः" से अभिप्रेत अर्थ यह है कि अग्न्यादि दृष्टान्तों के जान लेने पर अन्य सब कुछ जान लिया ॥ ५ ॥

ऐसा किस पद्धति से जाना ? अग्नि आदि के साथ कपोतादि रूप में अन्य रूप की आशंका होने पर उसमें जो लाल वर्ण जैसा रूप लगा उसे पूर्वकाल के ब्रह्मवादी महापुरुषों ने तेज का रूप जाना तथा जो शुक्ल जैसा रूप लगा, उसे जल का जाना इसी प्रकार कृष्ण वर्ण जैसी उपलब्धि होने पर उसे अन्न (पृथिवी) का रूप जाना। इसी प्रकार नाम-रूप से समझ न आ सकने वाले

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यद्वविज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवताना७ समास इति तद्विदांचक्रुर्यथानु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति ॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।)

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो

जो जैसा जाना गया वह इन्हीं देवताओं का समास है, ऐसा उन्होंने जाना। हे सोम्य ! जैसे ये तीनों देवता त्रिवृत्-त्रिवृत् रूप हैं, वे पुरुष को प्राप्त कर एक-एक अलग-अलग होते हैं; इसे मुझसे जानो ॥७॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

खाया हुआ अन्न तीन भागों में विभक्त होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह पुरीष है। जो

विज्ञातमिव विशेषतोऽगृह्यमाणमभूत्तदप्येतासामेव तिसृणां देवतानां समासः समुदाय इति विदांचक्रुः। एवं तावद्बाह्यं वस्त्वग्न्यादिवद्विज्ञातं तथेदानीं यथा नु खलु हे सोम्येमा यथोक्तास्तिस्रो देवताः पुरुषं शिरःपाण्यादिलक्षणं कार्यकरणसंघातं प्राप्य पुरुषेणोपयुज्यमानास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहि निगदत इत्युक्त्वाऽऽह ॥६।७॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

अन्नमशितं भुक्तं त्रेधा विधीयते जाठरेणाग्निना पच्यमानं त्रिधा विभज्यते।

दुर्ज्ञानं द्वीपान्तरादागतं पक्ष्यादीत्यर्थः। अगृह्यमाणमिति च्छेदः। यथा नु खल्वित्यादिवाक्यं वृत्तानुवादपूर्वकमवतारयति—एवं तावदिति। यथा खल्वेकैका देवता पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृद्भवति तथेदानीं तदाध्यात्मिकं त्रिवृत्करणमेवमेवेति जानीहीति संबन्धः। 'आध्यात्मिकं त्रिवृत्करणमिति शेषः ॥६।७॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

(द्वीपान्तर के पक्षी की तरह) रूप को उन्होंने ऐसा जाना कि यह इन तीन देवताओं का समुदाय है। इस प्रकार तीन रूपों से पृथक् वस्तु को भी अग्नि आदि के समान जाना। यहाँ भी "हे सोम्य! पूर्वोक्त ये तीनों देवता सहस्रशीर्ष सहस्रपाणि संज्ञक कार्यकरणसंघात पुरुष को प्राप्त कर अपने त्रिवृत्-त्रिवृत् रूप से एक-एक हो जाते हैं ऐसा मुझसे जानो"—इतना कहकर इसका प्रतिपादन श्रुति पञ्चम खण्ड में करती है ॥ ६ ॥ ७ ॥

खाये हुए अन्न को जाठराग्नि पका कर तीन भागों में विभाजित कर देती है। किस प्रकार ?

---

१. आध्यात्मिकमित्याद्यधिकं भाष्ये वा तदाध्यात्मिकमिति पाठः प्रकल्प्यः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माᳫंसं योऽणिष्ठस्तन्मनः ॥१॥

...मध्यम है, वह माँस है। जो सूक्ष्म है, वह मन है ॥१॥

...कथं, तस्यान्नस्य त्रिधा विधीयमानस्य यः स्थविष्ठः स्थूलतमो धातुः स्थूलतमं वस्तु विभक्तस्य स्थूलोंऽशस्तत्पुरीषं भवति। यो मध्यमोंऽशो धातुरन्नस्य तद्रसादिक्रमेण परिणम्य मांसं भवति योऽणिष्ठोऽणुतमो धातुः स ऊर्ध्वं हृदयं प्राप्य सूक्ष्मासु हिताख्यासु नाडीष्वनुप्रविश्य वागादिकरणसंघातस्य स्थितिमुत्पादयन्मनो भवति मनोरूपेण विपरिणमन्मनस उपचयं करोति। ततश्चान्नोपचितत्वान्मनसो भौतिकत्वमेव न वैशेषिकतन्त्रोक्तलक्षणं नित्यं [1]निरवयवं चेति गृह्यते। यदपि मनोऽस्य दैवं चक्षुरिति [2]वक्ष्यति तदपि न नित्यत्वापेक्षया किं तर्हि सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टादिसर्वेन्द्रियविषयव्यापकत्वापेक्षया। यच्चान्येन्द्रियविषयापेक्षया नित्यत्वं तदप्यापेक्षिकमेवेति

कथं त्रिधा विभज्यमानत्वं कथं वा तस्य विनियोग इति प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कथमित्यादिना। रसादीत्यादिशब्देन [3]रुधिरादि गृह्यते। हितस्य कर्मफलस्य [4]नाडीचरो भोक्तेति हिताख्या नाड्यस्तास्विति यावत्। कथमन्नोपयोगात्प्रागेव मनसः सिद्धत्वात्तन्मनो भवतीत्युच्यते तत्राऽऽह—मनोरूपेणेति। मनसोऽन्नोपचितत्ववचनाद्वैशेषिकपरिभाषाऽपि दूषिता वेदितव्येत्याह—ततश्चेति। मनसो दैवत्वविशेषणान्नित्यत्वसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—यदपीति। केनाभिप्रायेण तर्हि विशेषणमित्याशङ्क्याऽऽह—किं तर्हीति। तर्हि चक्षुरादिभ्यो वैलक्षण्यादस्ति तदपेक्षया नित्यत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—यच्चेति। यद्वा चक्षुरादिष्वसत्स्वपि मनसः सत्त्वोपलम्भात्तदपेक्षया तस्य नित्यत्वमेष्टव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—यच्चेति।

तीन रूपों में विभक्त उस अन्न की स्थूलतम वस्तु अथवा स्थूल अंश मल में परिवर्तित हो जाती है। अन्न का मध्यम अंश रुधिरादि क्रम से परिवर्तित होकर माँस बनता है, अन्न की जो अणुतम धातु है, वह ऊपर हृदय को प्राप्त कर (कर्मफल भोग सम्पादिका) सूक्ष्म हिता नाडियों में प्रवेश कर वागादि की प्रतिष्ठा कर मन होता है, मन के रूप में परिवर्तित होकर (मन की पूर्वस्थिति होते हुए भी) मन की वृद्धि करता है। इस प्रकार अन्न से वृद्धि को प्राप्त होने के कारण मन भौतिक ही है, वैशेषिक दर्शनशास्त्र प्रतिपादित नित्य निरवयव नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् अष्टमाध्याय के द्वादश खण्ड के पाँचवें मन्त्र में जो कहा कि "मन उस परमेश्वर का दिव्य नेत्र है, वह नित्यत्व की अपेक्षा से न कहकर केवल सूक्ष्म, अलग एवं दूर स्थित समस्त इन्द्रियों के विषय की व्यापकता की दृष्टि से कहा गया है। अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा जो नित्यत्व है, वह भी सापेक्ष ही है, इसे आगे श्रुति प्रतिपादित

१. निरवयवं च मन इति शेषः। २. छा. उ. ८।१२।१। ३. रुधिरादीत्यादिशब्देन रुधिरमांसयोरन्तरालदशा गृह्यतेऽन्यथा छा. उ. ५।१०।६ टीकोक्तिविरोधात्। ४. नाडीचरो जीवः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः ॥२॥

तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक् ॥३॥

पीया हुआ जल तीन भागों में विभाजित होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह मूत्र है। जो मध्यम है, वह लोहित है। जो सूक्ष्म है, वह प्राण है ॥२॥

उपभुक्त तेज भी तीन भागों में विभक्त होता है। उसकी जो स्थूल धातु है, वह अस्थि है। जो मध्यम है, वह मज्जा है। जो सूक्ष्म है, वह वाणी है ॥३॥

वक्ष्यामः। सदेकमेवाद्वितीयमिति श्रुतेः ॥१॥

तथाऽऽपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति। यो मध्यमस्तल्लोहितं भवति। योऽणिष्ठः स प्राणो भवति। वक्ष्यति ह्यापोमयः प्राणो नपिबतो विच्छेत्स्यत इति ॥२॥

तथा तेजोऽशितं तैलघृतादि भक्षितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति। यो मध्यमः स मज्जाऽस्थ्यन्तर्गतः स्नेहः। योऽणिष्ठः सा वाक्।

आत्मवन्मनसो [1]नित्यत्वं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—सदिति ॥१॥

भुक्तस्यान्नस्य त्रैविध्यमुक्त्वा पीतानामपामपि त्रैविध्यमाह—तथेति ॥२॥

कथं तेजसोऽग्न्यादित्यादेरशनमित्याशङ्क्य विशिनष्टि—तैलेति। मज्जाशब्दार्थमाह—अस्थीति।

करेगी। श्रुति इसमें प्रमाण है कि वह सत्तत्त्व एक और अद्वितीय है ॥ १ ॥

इसी प्रकार पीया हुआ जल तीन प्रकार से परिणति को प्राप्त होता है, उसमें स्थूल वस्तु मूत्र बन जाती है, मध्यम अंश रक्त बन जाता है एवं उसका अणुतम भाग प्राण होता है। इसी की पुष्टि आगे श्रुति करेगी—"प्राण जल का विकार है, अतः जल का ग्रहण करते रहने से जल के कार्य प्राण का विच्छेद नहीं होता" ॥ २ ॥

इसी प्रकार तेल घी आदि चिकने पदार्थों का सेवन भी तीन प्रकार से विपरिणत हो जाता है। उसका जो स्थूलतम अंश है, वह हड्डियों में बदल जाता है, जो मध्यम अंश है, वह मज्जा बन जाता है। हड्डियों के अन्तर्गत जो स्निग्ध अंश है वही मज्जा है। उसकी अणुतम अंश वाणी है। लोक

---

१. नित्यत्वं निरवयवद्रव्यत्वादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

इस प्रकार, हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजमय है। यह सुनकर, हे भगवन् ! आप फिर में मुझे बतलाइये, ऐसा सोम्य ने कहा। इस बात को सुनकर आरुणि ने कहा–अच्छा, समझाता हूँ ॥४॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

तैलघृतादिभक्षणाद्धि वाग्विशदा भाषणे समर्था भवतीति प्रसिद्धं लोके ॥३॥

यत एवमन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वाक्। ननु केवलान्नभक्षिण आखुप्रभृतयो वाग्मिनः प्राणवन्तश्च तथाऽब्मात्रभक्ष्याः सामुद्रा मीनमकरप्रभृतयो मनस्विनो वाग्मिनश्च तथा स्नेहपानामपि प्राणवत्त्वं मनस्वित्वं चानुमेयं यदि सन्ति तत्र कथमन्नमयं हि सोम्य मन इत्याद्युच्यते। नैष दोषः। सर्वस्य

योऽणिष्ठः सा वागित्युक्तं व्यक्ती करोति—तैलघृतादीति ॥३॥

भुक्तस्यान्नस्य पीतानामप्यपामशितस्य तैलादेश्च येऽणिष्ठा धातवस्ते मनोवाक्प्राणा इत्येवं यतः सिद्धमतस्तेषामन्नादिमयत्वं युक्तमित्याह—यत इति। तेषामन्नादिमयत्वं व्यतिरेकसिद्धिमाश्रित्याऽऽक्षिपति—नन्विति। आखुप्रमुखानां (णां)स्फुटोदपानाद्यनुपलम्भेऽपि यत्तेषां भक्ष्यं तत्रैवोदकाद्यन्तर्भावसंभवात्प्राणादेरम्मयत्वाद्युपपन्नमित्युत्तरमाह—नैष दोष इति। सर्वस्यान्नादेस्त्रिवृत्कृतत्वस्योक्तत्वात्तस्य सर्वस्यैव भक्ष्यस्य भूतत्रयात्मत्वसंभवादेकैकं भक्षयतोऽपि सर्वभक्षकत्वोपपत्तेर्मनआदेर-

---

व्यवहार से सिद्ध है कि तेल-घी आदि के सेवन से वाणी साफ एवं भाषण करने में समर्थ हो जाती है ॥ ३ ॥

उपरोक्त तीनों मन्त्रों से निष्कर्ष यह निकला कि हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है, वाक् तेजोमयी है। इस पर शङ्का होती है कि चूहे आदि जल और चिकनाहट न खाकर केवल अन्न खाने से बोलने एवं प्राणधारण की सामर्थ्य रखते हैं। समुद्र में रहने वाले मछली, मगरमच्छ जल के सेवन से ही मनस्वी एवं बोलने वाले देखे जाते हैं, इसी प्रकार स्नेहपान करने वाले भी प्राणयुक्त एवं मनस्वी यदि देखे जाते हैं तो श्रुति का यह कहना है कि 'हे सोम्य ! मन अन्नमय है' कैसे युक्तियुक्त हो सकता है। (इसका परिहार करते हैं—, इसमें दोष नहीं है; अन्न में स्पष्ट जल, चिकनापन न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रिवृत्कृतत्वात्सर्वत्र सर्वोपपत्तेः। न ह्यत्रिवृत्कृतमन्नमश्नाति कश्चिदापो वाऽत्रिवृत्कृताः पीयन्ते तेजो वाऽत्रिवृत्कृतमश्नाति कश्चिदित्यन्नादानामाखुप्रभृतीनां वाग्मित्वं प्राणवत्त्वं चेत्याद्यविरुद्धम्। इत्येवं प्रत्यायितः श्वेतकेतुराह—भूय एव पुनरेव मा मां भगवानन्नमयं हि सोम्य मन इत्यादि विज्ञापयतु दृष्टान्तेनावगमयतु नाद्यापि ममास्मिन्नर्थे सम्यङ्निश्चयो जातः। यस्मात्तेजोबन्नमयत्वेनाविशिष्टे देह एकस्मिन्नुपयुज्यमानान्यन्नाप्स्नेहजातान्यणिष्ठधातुरूपेण मनःप्राणवाच उपचिन्वन्ति स्वजात्यनतिक्रमेणेति दुर्विज्ञेयमित्यभिप्रायोऽतो भूय एवेत्याद्याह। तमेवमुक्तवन्तं तथाऽस्तु सोम्येति होवाच पिता शृण्वत्र दृष्टान्तं यथैतदुपपद्यते यत्पृच्छसि ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

न्नादिमयत्वमविरुद्धमित्यर्थः। उक्तमेव व्यक्ती करोति—न हीत्यादिना। उक्तरीत्या मनआदेरन्नादिमयत्वप्रत्यायनद्वारा प्रनाड्या सन्मात्रपरिशेषे प्रत्यायिते सति श्वेतकेतुश्चोदयतीत्याह—इत्येवमिति। सर्वेषां संनिधानाविशेषेऽन्नस्य सूक्ष्मांशो मन एवोपचिनोति न प्राणमिति निश्चयासिद्धिरित्याह—नाद्यापीति। पार्थिवोंऽशः पार्थिवमेवोपचिनोतीति विशेषमाशङ्क्याऽऽह—यस्मादिति। एकस्मिन्नुदरे प्रविष्टानामन्नादीनां मिश्रीभूतत्वान्मनसश्च सर्वभूतगुणव्यञ्जकत्वेन सर्वभूतारब्धत्वात्पार्थिवत्वासिद्धेर्नोक्तो विशेषः संभवतीत्यर्थः। यस्मादेवमभिप्रायः श्वेतकेतोरत इति योजना। मनआदेरन्नादिमयत्वमुपपादयितुमुत्तरग्रन्थमवतारयति—तमेवमिति। यत्त्वं मनआदेरन्नादिमयत्वं कथमिति पृच्छसि तदिदं यथोपपद्यते तथाऽत्रान्नादिमयत्वे तस्य दृष्टान्तमुच्यमानं शृण्विति योजना ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

दीखने पर भी त्रिवृत्करण सब कुछ सबमें उपलब्ध हो जाता है। ऐसा नहीं हो सकता कोई बिना त्रिवृत् किए अन्न को खा सके, बिना त्रिवृत् किए जल का पान कर ले, बिना त्रिवृत् किए तैजस पदार्थ का सेवन कर सके, इस प्रकार केवल अन्न खाने वाले चूहे आदि यदि प्राणधारण एवं बोलने की सामर्थ्य रखते हैं तो इसमें कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार आश्वस्त हो जाने पर श्वेतकेतु बोला—हे भगवन्! जो आपने मुझे अन्नमय मन आदि का उपदेश दिया, उसके अर्थ का ठीक प्रकार से निर्धारण मुझे अभी तक भी नहीं हो पाया। कृपया इसे पुनः दृष्टान्त से समझाइए क्योंकि एक ही उदर में अन्न, जल व तेज प्रविष्ट होते हैं अन्नमय प्राणमय तेजोमय देह होने से अणुतम धातु के रूप से मन, प्राण और वाणी का विकास करते हैं इसमें उनके अपने जन्म का अतिक्रमण न होने से इसका समझ पाना अत्यन्त कठिन है अतः पुनः विस्पष्ट कहिए, ऐसी श्रुति है। अपने शिष्य पुत्र श्वेतकेतु के ऐसा पूछने पर पिता बोले—हे सोम्य! जो आपकी जिज्ञासा है, उसे अब दृष्टान्त द्वारा शान्त करने जा रहा हूँ ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।)

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥

एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति ॥२॥

अपाꣳ सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः

अन्नादि का सूक्ष्म भाग ही मन आदि वर्णन

हे सोम्य ! मथे जाते हुए दधि का जो सूक्ष्म भाग है, वह ऊपर इकट्ठा होकर नवनीतरूप से आ जाता है, वह घृत होता है ॥१॥

उसी प्रकार हे सोम्य ! भक्षण किये हुए अन्न का जो सूक्ष्म भाग होता है, वह सम्यक् प्रकार से ऊपर आ जाता है, वही मन होता है ॥२॥

हे सोम्य ! पीये हुए का जो सूक्ष्म भाग होता है वह एकत्रित होकर ऊपर आ जाता है, वह

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमाऽणुभावः स ऊर्ध्वः समुदीषति संभूयोर्ध्वं नवनीतभावेन गच्छति तत्सर्पिर्भवति ॥१॥

यथाऽयं दृष्टान्त एवमेव खलु सोम्यान्नस्यौदनादेरश्यमानस्य भुज्यमानस्योदर्येणाग्निना वायुसहितेन खजेनेव मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति मनोवयवैः स संभूय मन उपचिनोतीत्येतत् ॥२॥

तथाऽपां सोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति स प्राणो

मिश्रीभावेऽपि सूक्ष्मभागस्य पृथगेव कार्यकारणत्वे दृष्टान्तमाह—दध्न इति ।

दृष्टान्तमनूद्य दार्ष्टान्तिकमाह—यथेति । खजो मन्थास्तेन मथ्यमानस्य दध्नो यथाऽणिमा तथा यथोक्तस्यान्नस्य योऽणिमेति योज्यम् । कथं तन्मनो भवतीत्युच्यते प्रागपि मनसः सिद्धत्वादित्याशङ्क्याऽऽह—मनोवयवैरिति ॥२॥

हे सोम्य ! दधि को मथ लेने पर जो उसका अणुभाव है, वह एकत्र होकर ऊपर माखन के रूप में निकल जाता है, वह घी हो जाता है ॥ १ ॥

इस दृष्टान्त का ही श्रुति दार्ष्टान्तिक रूप श्रुति प्रस्तुत करती है—हे सोम्य ! खाये हुए भातादि अन्न का वायु सहित जाठराग्नि द्वारा मथानी की तरह मथने पर जो सूक्ष्म भाग होता है, वह निर्बाध रूप से, ऊपर आ जाता है वह पूर्वप्रसिद्ध मन, मन के अवयवों सहित निकलकर मन रूप में पूर्ण विकास को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समुदीषति स प्राणो भवति ॥३॥

तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥४॥

अन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥५॥

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

प्राण होता है ॥३॥

हे सोम्य ! खाये हुए तेज का जो सूक्ष्म भाग होता है, वह एकत्रित ऊपर आ जाता है और वह वाणी हो जाती है ॥४॥

इसलिए हे सोम्य ! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है ऐसा (आरुणि ने कहा तब श्वेतकेतु कहता है) हे भगवन् ! मुझे (अन्न का महत्त्व) फिर से समझाइए। इस बात को सुनकर आरुणि ने कहा—अच्छा। समझाता हूँ ॥५॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

भवतीति ॥३॥

एवमेव खलु सोम्य तेजसोऽश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति ॥४॥

अन्नमयं हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति युक्तमेव मयोक्तमित्यभिप्रायोऽतोऽप्तेजसोरस्त्वेतत्सर्वमेवम्। मनस्त्वन्नमयमित्यत्र नैकान्तेन मम निश्चयो

॥३॥

॥४॥

मनआदेरन्नादिमयत्वमुपसंहरति—अन्नमयं हीति। अतो भवदभिप्रायादिति यावत्। एतत्सर्वमिति प्राणस्याम्मयत्वं वाचस्तेजोमयत्वं चोच्यते। हृदयप्रदेशे प्राणादिसंनिधानाविशेषे कथं मनस एवान्नरसेनोपचय इत्येतन्नाद्यापि समाहितमिति मत्वाऽऽह—मनस्त्ववति। मनसो विशेषतोऽन्नमयत्व-

---

हे सोम्य ! इसी प्रकार पीए गए जल का जो अणुतम अंश होता है, वह मथने पर निकल आता है; वह प्राण होता है ॥ ३ ॥

हे सोम्य ! इसी प्रकार तैजस पदार्थ घी तेलादि का सेवन करने पर उनको जो सूक्ष्म अंश होता है, वह मथने पर ऊपर आ जाता है; वह वाणी होती है ॥ ४ ॥

हे सोम्य ! अब तुम समझ गए होगे कि जो मैंने कहा था कि अन्नमय मन, जलमय प्राण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।)

षोडशकलः सोम्य पुरुषः पञ्चदशाहानि माऽशीः काममपः पिबाऽऽपोमयः प्राणो नपिबतो विच्छेत्स्यत इति ॥१॥

षोडश कला विशिष्ट पुरुष का वर्णन

हे सोम्य ! सोलह कलायें जिस पुरुष की हैं, वह सोलह कला वाला पुरुष माना जाता है, (इसे प्रत्यक्ष से अनुभव करने के लिये) तू पन्द्रह दिन तक भोजन न कर केवल यथेच्छ जलपान कर। प्राण जल का विकार है। इसलिये जल पीते रहने से जल के कार्य प्राण का नाश नहीं होगा॥ १ ॥

जातोऽतो भूय एव मा भगवान्मनसोऽन्नमयत्वं दृष्टान्तेन विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच पिता ॥५॥

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

अन्नस्य भुक्तस्य योऽणिष्ठो धातुः स मनसि शक्तिमधात्साऽन्नोपचिता मनसः शक्तिः षोडशधा प्रविभज्य पुरुषस्य कलात्वेन निर्दिदिक्षिता। तया मनस्यन्नोपचितया शक्त्या षोडशधा प्रविभक्तया संयुक्तस्तद्वान्कार्यकरणसंघातलक्षणो जीवविशिष्टः पुरुषः षोडशकल उच्यते यस्यां सत्यां द्रष्टा श्रोता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञाता सर्वक्रियासमर्थः

मुपपादयितुमुत्तरग्रन्थमुत्थापयति—तथेति ।५॥

इति षष्ठाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यां मनसोऽन्नरसोपचितत्वं दर्शयितुमन्नरसजनितां शक्तिं कलात्वेन कल्पयति—अन्नस्येत्यादिना। षोडशदिनावच्छेदेन षोडशधा कल्पनं द्रष्टव्यम्। तथाऽपि पुरुषस्य कथं षोडशकलत्वमत आह—तयेति। तामेव प्रकृतामन्नरसकृतां शक्तिं विशिनष्टि—यस्यामिति। तया संयुक्तः पुरुषः षोडशकल इति पूर्वेण संबन्धः। अन्नरसजनितं मानसशक्तिप्रयुक्तं संघातस्य सामर्थ्यमित्यत्र वाक्यशेषं

एवं तेजोमयी वाणी है; वह ठीक ही है। श्वेतकेतु बोला—इतना तो मुझे निश्चय हो गया कि जलमय प्राण एवं तेजोमयी वाणी है किन्तु अन्नमय मन के बारे में पूर्ण निश्चय नहीं हो पाया। अतः हे भगवन् ! मन के अन्नमयत्व होने को दृष्टान्त के द्वारा मुझे अच्छी प्रकार समझाइए। अग्रिम मन्त्र से पिता आरुणि बोला—हे श्वेतकेतो ! अच्छा ! समझाता हूँ, सुनो ॥ ५ ॥

खाए हुए अन्न का जो सूक्ष्म अंश है, उसने मन में शक्ति का संचार किया, अन्न के द्वारा विकास को प्राप्त हुई उस शक्ति के सोलह भाग हुए, उसे पुरुष की कला रूप से देखने की इच्छा हुई। मनमें अन्न से विकसित उस शक्ति द्वारा सोलह भाग से युक्त हो कार्यकरणसंघात सञ्ज्ञक जीवात्मा पुरुष सोलह कलाओं वाला कहा जाता है। उन सोलह कलाओं के रहने से पुरुष द्रष्टा, श्रोता, मन्ता,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ह पञ्चदशाहानि नाऽऽशाथ हैनमुपससाद किं

ऐसा सुनकर उसने मन की अन्नमयता को जानने के लिये भोजन नहीं किया। उसके बाद वह

पुरुषो भवति हीयमानायां च यस्यां सामर्थ्यहानिः। वक्ष्यति चाथान्नस्याऽऽये द्रष्टेत्यादि। सर्वस्य कार्यकरणसंघातस्य सामर्थ्यं मनःकृतमेव। मानसेन हि बलेन संपन्ना बलिनो दृश्यन्ते लोके ध्यानाहाराश्च केचिदन्नस्य सर्वात्मकत्वात्। अतोऽन्नकृतं मानसं वीर्यं षोडश कला यस्य पुरुषस्य सोऽयं षोडशकलः पुरुष एतच्चेत्प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छसि पञ्चदशसंख्याकान्यहानि माऽशीरशनं मा कार्षीः काममिच्छातोऽपः पिब यस्मान्नपिबतोऽपस्ते प्राणो विच्छेत्स्यते विच्छेदमापत्स्यते यस्मादापोमयोऽब्विकारः प्राण इत्यवोचाम। न हि कार्यं स्वकारणोपष्टम्भमन्तरेणाविभ्रश्यमानं स्थातुमुत्सहते ॥१॥

स हैवं श्रुत्वा मनसोऽन्नमयत्वं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छन्पञ्चदशाहानि नाऽऽशाशनं न

प्रमाणयति—वक्ष्यति चेति। आयो लाभोऽस्यास्तीत्यायी यावदन्नं प्राप्यात्ता भवति तावदेवास्य द्रष्टेत्यादिव्यवहारः संभवतीत्यर्थः। उक्तेऽर्थे लोकानुभवमनुकूलयति—सर्वस्येति। तदेव स्पष्टयति—मानसेनेति। किंच केचिन्मानसेनैव बलेन ध्यानाहारा दृश्यन्ते तच्च ध्यानमन्नपरम्परापरिनिष्पन्नमनस्यैव देहादिरूपेण परिणतत्वादित्याह—ध्यानेति। एवं पातनिकां कृत्वा षोडशकलशब्दार्थमाह—अत इति। यतोऽन्नकृतं मानसं वीर्यमतस्तदेव षोडशधा विभज्य कला यस्येति योजना। एतच्छब्देनान्नकृतं मानसं वीर्यं परमृश्यते। विच्छेत्स्यते विच्छेदमापत्स्यते यस्मात्तस्मादपः पिबेति पूर्वेण संबन्धः। अपां पानपरित्यागे प्राणविच्छेद कारणमाह—यस्मादिति। प्राणस्याम्मयत्वेऽपि किमित्यपां परित्यागे तस्योच्छेदस्तत्राऽऽह—न हीति ॥१॥

बोद्धा, कर्ता, विज्ञाता सब क्रियाओं को करने में समर्थ हो जाता है, उन कलाओं के न रहने पर सामर्थ्य का अभाव हो जाता है। सप्तमाध्याय नवम खण्ड प्रथम मन्त्र में बतलाया जाएगा—"अन्न के मिलने पर वह द्रष्टा होता है" इत्यादि। सब कार्य-करण-संघात की सामर्थ्य मन के द्वारा ही सम्पादित होती है। मन के बल से युक्त ही संसार में बलशाली दीख पड़ते हैं, मन के बल से ध्यानाहार देखे जाते हैं क्योंकि अन्न सर्वात्मक होने से देहादि रूप में परिणत हुआ है। इसलिए अन्न से सम्पादित मन का बल ही सोलह कलाओं में विभक्त होकर यह सोलह कला वाला पुरुष कहाता है। इस षोडश कला वाले पुरुष का प्रत्यक्ष करना चाहते हो तो पन्द्रह दिन तक भोजन न करो, स्वेच्छा से जल मात्र का ग्रहण करो, क्योंकि जल न पीने से तुम्हारे प्राणों का विच्छेद हो जाएगा क्योंकि जलमय प्राण है, ऐसा पहले कह चुके हैं। अपने कारण की उपलब्धि के बिना कार्य की बिना नष्ट हुए स्थिति कैसे रह सकती है ॥ १ ॥

---

१. छा. उ. ७।९।१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति ॥२॥ तꣳ होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टा स्यात्तयैर्तर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति ॥३॥

अपने पिता के पास आया और कहा—पिताजी क्या कहूँ। इस पर पिता ने कहा—हे सोम्य! ऋग्, यजु: और साम के मन्त्रों का पाठ करो। तब श्वेतकेतु ने कहा, मुझे उन ऋगादि मन्त्रों का स्फुरण नहीं होता ॥ २ ॥

श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा—हे सोम्य! लोक में जिस प्रकार बहुत से ईंधन के द्वारा बढ़ाये हुए परिमाण वाले अग्नि का एक जुगनु के बराबर अंगारा यदि शेष रह जाय तो वह उस अंगारे से अधिक दाह नहीं कर सकता। हे सोम्य! उसी प्रकार तेरी सोलह कलाओं में से (पन्द्रह दिन के उपवास से) केवल एक कला शेष रह गयी है। इसीलिए उसके द्वारा इस तू वेदों का अनुभव नहीं कर सकता। अत: अब तू भोजन कर, इसके पश्चात् तू मेरी बात ठीक-ठीक समझ जायगा ॥ ३ ॥

कृतवान्। अथ षोडशेऽहनि हैनं पितरमुपससादोपगतवानुपगम्य चोवाच किं ब्रवीमि भो इति। इतर आह ऋचः सोम्य यजूंषि सामान्यधीष्वेति। एवमुक्तः पित्राऽऽह—न वै मा मामृगादीनि प्रतिभान्ति मम मनसि न दृश्यन्त इत्यर्थो हे भो भगवन्निति ॥२॥

एवमुक्तवन्तं पिताऽऽह शृणु तत्र कारणं येन ते तान्यृगादीनि न प्रतिभान्तीति तं होवाच यथा लोके हे सोम्य महतो महत्परिमाणस्याभ्याहितस्योपचितस्येन्धनैरग्ने-

---

॥२॥

आचार्यमुख से इस प्रकार श्रवण कर मन के अन्नमयत्व को प्रत्यक्ष करने के लिए श्वेतकेतु ने पन्द्रह दिनों तक भोजन नहीं किया। सोलहवें दिन आचार्य पिताजी के पास आकर कहने लगा—हे पिताजी! क्या कहूँ ? इस पर पिताजी ने कहा—हे सोम्य! ऋक्, यजुष् एवं साम मन्त्रों का पाठ करो। पिता के द्वारा इस प्रकार उपदेश दिए जाने पर श्वेतकेतु बोला—हे भगवन्! मेरे मन को ऋगादि मन्त्र दीख ही नहीं रहे हैं ॥ २ ॥

श्वेतकेतु द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उसके पिता आरुणि बोले—तुम्हें जिस कारण से ऋग्मन्त्रों की प्रतीति नहीं हो रही है, वह सुनो। हे सोम्य! लोक व्यवहार में जिस प्रकार अत्यधिक मात्रा में लकड़ियों से वृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि का जुगनु परिमाण का एक अँगारा भी बचा हुआ रह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स हाऽऽशाथ हैनमुपससाद तꣳ ह यत्किंच पप्रच्छ सर्वꣳ ह प्रतिपेदे ॥४॥

। होवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलये-त्तेन ततोऽपि बहु दहेत् ॥५॥

पिता के आदेशानुसार श्वेतकेतु ने भोजन किया और फिर आरुणि के पास आया तब आरुणि ने जो कुछ भी पूछा, उन सभी ऋगादि मन्त्रों और उनके अर्थ को जान लिया ॥ ४॥

श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा—हे सोम्य ! जैसे बहुत से ईंधन के द्वारा बढ़ाये हुए अग्नि का एक खद्योतमात्र अंगारा रह जाय और उसे तिनके आदि के द्वारा सम्पन्न करके प्रज्वलित किया जाय तो वह प्रदीप्त हुआ अंगारा पहले की अपेक्षा अधिक दाह कर सकता है ॥ ५ ॥

रेकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः खद्योतपरिमाणः शान्तस्य परिशिष्टोऽवशिष्टः स्यात्तेने-नाङ्गारेण ततोऽपि तत्परिमाणादीषदपि न बहु दहेदेवमेव खलु सोम्य ते तवान्नो-पचितानां षोडशानां कलानामेका कलाऽवयवोऽतिशिष्टाऽवशिष्टा स्यात्तया त्वं खद्योत-मात्राङ्गारतुल्ययैतर्हीदानीं वेदान्नानुभवसि न प्रतिपद्यसे श्रुत्वा च मे मम वाचमथाशेषं विज्ञास्यस्यशान भुङ्क्ष्व तावत् ॥३॥

स ह तथैवाऽऽश भुक्तवानथानन्तरं हैनं पितरं शुश्रूषुरुपससाद तं होपगतं पुत्रं यत्किंचर्गादिषु पप्रच्छ ग्रन्थरूपमर्थजातं वा पिता स श्वेतकेतुः सर्वं ह तत्प्रतिपेदे ऋगाद्यर्थतो ग्रन्थतश्च ॥४॥

तं होवाच पुनः पिता यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्येत्यादि समानमेकमङ्गारं

ऋगाद्यप्रतिभानं तत्रेत्युच्यते । ईषदपि न दहेत्कुतो बहु दहेदिति योजना ॥३॥ ॥४॥

जाए तो उस अँगारे के परिमाण से जरा-सा भी नहीं जला सकता, अधिक कहाँ से जलाएगा; इसी प्रकार हे सोम्य ! अन्न से विकसित तुझ सोलह कलायुक्त पुरुष में (पन्द्रह दिन उपवास करने के परिणामस्वरूप पन्द्रह कलाओं के नष्ट हो जाने पर) एक ही कला शेष रह गयी है। जुगनु परिमाण वाले अङ्गार के समान तेरी एक कला अब वेदों का अनुभव नहीं कर सकती। मेरी बात को अच्छी प्रकार समझ कर अब तुम भोजन ग्रहण कर लो ॥ ३ ॥

पिता आचार्य आरुणि की आज्ञा मान कर श्वेतकेतु ने सोलहवें दिन भोजन किया। इसके पश्चात् पिता से उपदेश श्रवण करने के लिए उनके पास गया। अपने पास आए हुए पुत्र से ऋगादि ग्रन्थ अथवा उसके अर्थ के संबन्ध में जो कुछ भी पिता ने पूछा, पुत्र श्वेतकेतु ने उस ऋगादि ग्रन्थ एवं अर्थ को पूरी तरह जान लिया ॥ ४ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवꣳ सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूत्साऽन्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳ हि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥६॥

इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

हे सोम्य ! तेरी सोलह कलाओं में से एक कला शेष रह गयी थी। वही जब अन्न के द्वारा बढ़ा दी गयी, तो अब उसी से तू वेदों का और उसके अर्थ का अनुभव कर रहा है, क्योंकि हे सोम्य ! मन अन्न का विकार, प्राण जल का विकार है और वाणी तेज का विकार है। इस प्रकार पिता के कहे गये इस मन आदि के अन्नमयत्वादि को श्वेतकेतु विशेषरूप से समझ गया। विशेषरूप से समझ गया ॥ ६॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

शान्तस्याग्नेः खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैश्चूर्णैश्चोपसमाधाय प्राज्वलयेद्वर्धयेत्। तेनेद्धेनाङ्गारेण ततोऽपि पूर्वपरिमाणाद्बहु दहेत् ॥५॥

एवं सोम्य ते षोडशानामन्नकलानां सामर्थ्यरूपाणामेका कलाऽतिशिष्टाऽभूदतिशिष्टाऽऽसीत्पञ्चदशाहान्यभुक्तवत एकैकेनाह्नैकैका कला चन्द्रमस इवापरपक्षे क्षीणा साऽतिशिष्टा कला तवान्नेन भुक्तेनोपसमाहिता वर्धितोपचिता प्राज्वाली 'दैर्घ्यं छान्दसं प्रज्वलिता वर्धितेत्यर्थः। प्राज्वालीदिति पाठान्तरं तदा तेनोपसमाहिता स्वयं

॥२॥

इसके पश्चात् पिता ने पुनः कहा—हे सोम्य ! अत्यधिक लकड़ियों से वृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि का जुगनु मात्र परिमाण का एक अङ्गारा भी बच कर रह जाने से उसे पुनः यदि बारीक तिनकों से प्रज्वलित किया जाए तो पुनः उस जले हुए अंगारे से पहले से भी अधिक अग्नि प्रज्ज्वलित हो सकती है ॥ ५ ॥

हे सोम्य ! इसी प्रकार तुझमें सोलह अन्न कलाओं की सामर्थ्य थी, पन्द्रह दिन अन्न ग्रहण न करने से एक ही कला शेष रह गई, कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह एक-एक दिन में एक-एक कला क्षीण होती गई। बची हुई वह एक कला ही तुम्हारे सोलहवें दिन भोजन करने मात्र से विकास को प्राप्त हुई, प्रज्वलित होकर बढ़ गई। मन्त्र में "प्राज्वाली" में दीर्घ छान्दस प्रयोग होने से समझना चाहिए। 'प्राज्वालीत्' इस पाठ को मानने से यह अर्थ निकलेगा कि भोजन कर लेने से विनष्ट हुई

---

१. भिण्णन्तस्य लघ्वन्तत्वौचित्यादाह—दैर्घ्यं छान्दसमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः)

उद्दालको हाऽऽरुणिः श्वेतकेतु पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम

सुषुप्तिकालीन जीव की स्थिति का वर्णन

प्रसिद्ध उद्दालक नामा आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु से कहा—हे सोम्य ! तू मुझसे सुषुप्ति या स्वप्न के स्वरूप को स्पष्टरूप से समझ ले। जिस समय यह पुरुष "सोता है" ऐसा कहा जाता है।

प्रज्वलिवतीत्यर्थः। तया वर्धितयैतर्हीदानीं वेदाननुभवस्युपलभसे। एवं व्यावृत्त्यनुवृत्तिभ्यामन्नमयत्वं मनसः सिद्धमित्युपसंहरत्यन्नमयं हि सोम्य मन इत्यादि। यथैतन्मनसोऽन्नमयत्वं तव सिद्धं तथाऽऽपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागित्येतदपि सिद्धमेवेत्यभिप्रायः। तदेतद्धास्य पितुरुक्तं मनआदीनामन्नादिमयत्वं विजज्ञौ विज्ञातवाञ्श्वेतकेतुः। द्विरभ्यासस्त्रिवृत्करणप्रकरणसमाप्त्यर्थः ॥६॥

इति षष्ठाऽध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

यस्मिन्मनसि जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविष्टा परा देवताऽऽदर्श इव पुरुषः प्रतिबिम्बेन जलादिष्विव च सूर्यादयः प्रतिबिम्बैः। तन्मनोऽन्नमयं तेजोऽम्मयाभ्यां वाक्प्राणाभ्यां

व्यावृत्तिर्व्यतिरेकोऽन्नोपयोगाभावे मनसः सामर्थ्याभावः। अनुवृत्तिरन्वयोऽन्नोपयोगे मनसः सामर्थ्यमिति भेदः। मनसोऽन्नमयत्वमुपपादयितुमुपक्रान्तमापोमयः प्राण इत्यादि कथमिहोच्यते तत्राऽऽह—यथैतदिति। विद्यासमाप्तिमन्तरेण कथं द्विर्वचनमित्याशङ्क्याऽऽह—द्विरभ्यास इति ॥६॥

इति षष्ठाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

त्रिवृत्करणनिर्णयविषयमवान्तरप्रकरणं परिसमाप्य महाप्रकरणं सद्विषयमेवानुवर्तयन्मनसो लये सुषुप्तौ जीवस्य सत्संपत्ति वक्तुं मनउपाधिकत्वमुक्तमनुवदति—यस्मिन्निति। उपाधेः स्वरूपमुक्तं

कलाएँ पुनः स्वयं प्रदीप्त हो गईं। उन विकास को प्राप्त हुईं पूर्ण सोलह कलाओं द्वारा तुम वेदों की साक्षात् अर्थ सहित अनुभूति कर रहे हो। इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक से मन का अन्नमयत्व सिद्ध हो गया। इसी को श्रुति स्वयं अपने श्रीमुख से उपसंहार कर रही है—हे सोम्य ! मन अन्नमय है। तुम्हारे समक्ष जब मन के अन्नमयत्व को व्यावहारिक दृष्टान्त द्वारा सिद्ध कर दिया तब प्राण के जलमय एवं वाणी के तेजोमयी से कोई सन्देह नहीं रह जाता। इस प्रकार अपने पिता द्वारा उपदिष्ट मन आदि के अन्नमयत्वादि को श्वेतकेतु ने भली भाँति जाना। 'विजज्ञाविति' यह द्विरुक्ति त्रिवृत्करण प्रकरण की समाप्ति प्रदर्शित करती है ॥ ६ ॥

मन में जीवात्मा रूप से परमात्मा उसी प्रकार अनुप्रविष्ट होता है जैसे पुरुष का अपना प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़े अथवा सूर्यादि का प्रतिबिम्ब जल में हो, उस मन का अन्नमयत्व निरूपण हो चुका, साथ में तेजोमयी वाणी एवं जलमय प्राण को भी समझा दिया गया। जीव जिस उपाधि से युक्त होता है, उसी में स्थित रहकर मनन, दर्शन तथा श्रवणादि व्यवहार को करता है, उपाधि के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳ स्वपितीत्याचक्षते स्वꣳ ह्यपीतो भवति ॥१॥

हे सोम्य ! उस समय यह सत् के साथ सम्पन्न हो जाता है और यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसीलिए इसे "स्वपिति" ऐसा कहते हैं, क्योंकि उस समय जीव अपने को ही प्राप्त हो जाता है ॥ १ ॥

संगतम्[1]धिगतम् । यन्मयो यत्स्थश्च जीवो मननदर्शनश्रवणादिव्यवहाराय कल्पते तदुपरमे च स्वं देवतारूपमेव प्रतिपद्यते । तदुक्तं श्रुत्यन्तरे–[2]ध्यायतीव लेलायतीव सधीः स्वप्नो भूत्वेमं लोकमतिक्रामति [3]स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय इत्यादि, [4]स्वप्नेन शारीरमित्यादि, [5]प्राणन्नेव प्राणो नाम भवतीत्यादि च । तस्यास्य मनस्थस्य मनआख्यां गतस्य मनउपशमद्वारेणेन्द्रियविषयेभ्यो निवृत्तस्य यस्यां परस्यां देवतायां स्वात्मभूतायां यदवस्थानं तत्पुत्रायाऽऽचिख्यासुरुद्दालको ह किलाऽऽरुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाचोक्तवान् ।

संचारयति—तन्मन इति । उपाध्युपहिते कार्यकरत्वं दर्शयति—यन्मय इति । मनसो भावे जाग्रत्स्व-प्नव्यवहारसिद्धिरित्युक्त्वा तदभावे सुषुप्तिमवतारयति—तदुपरमे चेति । आत्मनि मनोवशादेव दर्शना-दिव्यवहारो न स्वारस्येनेत्यत्र बृहदारण्यकश्रुतिं प्रमाणयति—तदुक्तमिति । द्वितीये वाक्ये सधीरित्येत-दुपयुज्यते । तृतीये तु विज्ञानमयो मनोमय इति च पदद्वयमुपजीव्यते । एवं भूमिकां कृत्वा समनन्तर-वाक्यमादत्ते—तस्येति । तत्पुत्रायेत्यत्र तस्यां देवतायां तदवस्थानमिति तच्छब्दार्थः ।

विलीन हो जाने पर परमात्मतत्त्व का अपना स्वरूप लाभ करता है। बृहदारण्यक श्रुति में कहा है—"वही बुद्धि वृत्ति के अनुसार चिन्तन करता हुआ-सा और प्राणवृत्ति के अनुसार चेष्टा करता हुआ सा जान पड़ता है, वही स्वप्न होकर देहेन्द्रिय संघात रूप इस लोक को पार कर जाता है", "वह यह आत्मा ही ब्रह्म है, वह विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथिवीमय, जलमय, वायुमय, आकाशमय, तेजोमय, अतेजोमय, काममय, अकाममय, क्रोधमय, अक्रोधमय, धर्ममय, अधर्ममय और सर्वमय है" "यह आत्मा स्वप्न के द्वारा देह को चेष्टा रहित कर स्वयं न सोता हुआ सोए हुए समस्त पदार्थों को सभी ओर से प्रकाशित करता है", "इसलिए लोग उसे देख नहीं पाते, वह असम्पूर्ण है प्राणन क्रिया का कारण होने से वह प्राण है" इत्यादि। उपरोक्त श्रुतियों में मन के स्वरूप, स्थिति, उसकी उपाधियुक्तता एवं मन की इन्द्रियों-विषयों से निवृत्ति की पुष्टि की गई, ऐसा निवृत्त हुआ मन स्वात्मभूत परतत्त्व में स्थित हो जाता है । इसी तत्त्व को उद्दालक आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहने की इच्छा से उपक्रम किया ।

---

१. अवगतम् । २. बृ. उ. ४।३।७ । ३. बृ. उ. ४।४।५ । ४. बृ. उ. ४।३।११ । ५. बृ. उ. १।४।७ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वप्नान्तं स्वप्नमध्यं स्वप्न इति दर्शनवृत्तेः स्वप्नस्याऽऽख्या तस्य मध्यं स्वप्नान्तं सुषुप्तमित्येतत् । अथवा स्वप्नान्तं स्वप्नसतत्त्वमित्यर्थः । तत्राप्यर्थात्सुषुप्तमेव भवति। स्वमपीतो भवतीति वचनात् । न ह्यन्यत्र सुषुप्तात्स्वमपीतिं जीवस्येच्छन्ति ब्रह्मविदः। तत्र ह्यादर्शापनयने पुरुषप्रतिबिम्ब आदर्शगतो यथा स्वमेव पुरुषमपीतो भवत्येवं मनआद्युपरमे चैतन्यप्रतिबिम्बरूपेण जीवेनाऽऽत्मना मनसि प्रविष्टा नामरूपव्याकरणाय परा देवता सा स्वमेवाऽऽत्मानं प्रतिपद्यते जीवरूपतां मनआख्यां हित्वा । अतः सुषुप्त एव स्वप्नान्तशब्दवाच्य इत्यवगम्यते । यत्र तु सुप्तः स्वप्नान्पश्यति तत्स्वाप्नं दर्शनं सुखदुःखसंयुक्तमिति पुण्यापुण्यकार्यम् । पुण्यापुण्ययोर्हि सुखदुःखारम्भकत्वं प्रसिद्धम्। पुण्यापुण्ययोश्चाविद्याकामोपष्टम्भेनैव सुखदुःखतद्दर्शनकार्यारम्भकत्वमुपपद्यते नान्यथेत्य- विद्याकामकर्मभिः संसारहेतुभिः संयुक्त एव स्वप्न इति न स्वमपीतो भवति।

तत्रेति द्वितीयपक्षोक्तिः । अर्थादिति । स्वप्नस्य हि कार्यस्य सतत्त्वं कारणं तच्च सुषुप्तमेव। सुषुप्ताख्यं तमोऽज्ञानं बीजं स्वप्नप्रबोधयोरि[१]त्युभयापगमनात् । द्वितीयव्याख्याने सुषुप्तमेवार्थवशात्फल- तीत्यर्थः । इतश्च स्वप्नान्तशब्देन साक्षादर्थाद्वा सुषुप्तमेवोक्तमित्याह—स्वमिति । नन्ववस्थान्तरेऽपि स्वमपीतो भवतीतिवचनमविरुद्धमिति चेन्नेत्याह—न हीति । तत्रापि कथं स्वाप्ययः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति । स्वपितिनामनिर्वचनसामर्थ्यसिद्धमर्थं निगमयति—अत इति । ननु स्वप्नान्तशब्दो बुद्धान्तशब्दवद्यदा स्वप्नमेवान्वाचष्टे तदाऽपि स्वमपीतो भवतीत्यविरुद्ध[२] सर्वदा जीवस्य सद्ब्रह्म- प्राप्तेस्तुल्यत्वादत आह—यत्र त्विति । स्वप्नदर्शनस्य पुण्यापुण्यकार्यत्वं प्रकटयति—पुण्यापुण्ययोर्हीति। न केवलं पुण्यापुण्याभ्यामेव स्वप्ने संयुज्यते किंत्वविद्यादिभिश्चेति न तत्र स्वाप्ययः संभवतीत्याह— पुण्यापुण्ययोश्चेति । तर्हि स्वप्नवन्न सुषुप्तेऽपि स्वाप्ययः स्यात्तत्रापि कामकर्मादिसंबन्धसंभवादित्या-

---

हे सोम्य ! तुम मुझसे सुषुप्ति के स्वरूप को भली भाँति समझ लो । मन्त्र में स्वप्नान्त सुषुप्ति का द्योतक है । स्वप्न में दर्शन वृत्ति रहती है स्वप्न की स्मृति दिलाने वाली वृत्ति स्वप्नकाल में रहती है, उसके अन्त में सुषुप्त स्थिति आ जाती है । दूसरा अर्थ यह भी किया जा सकता है "तत्त्व सहित स्वप्न का स्वरूप" । दूसरे पक्ष में भी सुषुप्त ही निष्पन्न अर्थ सिद्ध होता है क्योंकि "उस समय अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है" ऐसा श्रुति वाक्य है । सुषुप्ति से भिन्न जीव को अपने स्वरूप की प्राप्ति होना कठिन है ऐसा ब्रह्मनिष्ठ मानते हैं । जिस प्रकार दर्पण के हटा लेने से दर्पणस्थ प्रतिबिम्ब पुरुष में पुनः प्रतिष्ठित हो जाता है, इसी प्रकार मन आदि के उपरत हो जाने पर चैतन्य प्रतिबिम्ब जीवात्मा रूप से मन में प्रविष्ट नाम-रूप विकार से युक्त परमात्मदेव स्वस्वरूप को प्राप्त हो जाता है, मनसञ्ज्ञक जीवरूपता को छोड़ देता है । इसलिए मन्त्र में स्वप्नान्त शब्द सुषुप्त अर्थ का द्योतक है । सोया हुआ जीव जब स्वप्नों को देखता है तब स्वप्न में दीखने वाले सभी पदार्थ सुख-दुःख से युक्त होते हैं, पुण्य-पाप के कार्य होते हैं । पुण्य से सुख, पाप से दुःख का मिलना लोकविश्रुत है । स्वप्न में पुण्य-पाप के साथ अविद्या काम भी सुख दुःख एवं उसका दर्शन कार्य सम्पादन करते हैं, इसमें जरा-सा भी संशय नहीं

---

१. स्वयं प्रत्यपीतिमित्यध्याहृत्य योज्यम् । २. इत्यभ्युपगमादिति युक्तम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अनन्वागतं पुण्येनानन्वागतं पापेन तीर्णो हि तदा सर्वाञ्छोकान्हृदयस्य भवति तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा, एष परम आनन्द इत्यादिश्रुतिभ्यः। सुषुप्त एव स्वं देवतारूपं जीवत्वविनिर्मुक्तं दर्शयिष्यामीत्याह। स्वप्नान्तं मे मम निगदतो हे सोम्य विजानीहि विस्पष्टमवधारयेत्यर्थः।

कदा स्वप्नान्तो भवतीत्युच्यते। यत्र यस्मिन्काल एतन्नाम भवति पुरुषस्य स्वप्स्यतः। प्रसिद्धं हि लोके स्वपितीति। गौणं चेदं नामेत्याह। यदा स्वपितीत्युच्यते पुरुषस्तदा तस्मिन्काले सता सच्छब्दवाच्यया प्रकृतया देवतया संपन्नो भवति संगत एकीभूतो भवति। मनसि प्रविष्टं मनआदिसंसर्गकृतं जीवरूपं परित्यज्य स्वं सद्रूपं यत्परमार्थसत्यमपीतोऽपिगतो भवति। अतस्तस्मात्स्वपितीत्येनमाचक्षते लौकिकाः। स्वमात्मानं हि यस्मादपीतो भवति। गुणनामप्रसिद्धितोऽपि स्वात्मप्राप्तिर्गम्यत इत्यभिप्रायः। कथं पुनर्लौकिकानां प्रसिद्धा स्वात्मसंपत्तिर्जाग्रच्छ्रमनिमित्तोद्भवत्वात्स्वा-

---

शङ्क्याऽऽह—अनन्वागतमिति।

सति जीवरूपे कथं देवताभावः संभवतीत्याशङ्क्याऽऽह—मनसीति। तस्मादित्यस्यातःशब्दो व्याख्यातस्तेन परामृष्टं हेतुमेव स्पष्टयति—स्वमात्मानमिति। स्वपितिनामनिर्वचनफलं दर्शयति—गुणेति। सुषुप्ते स्वरूपावस्थानस्य मुख्यस्यासंभवान्मुक्तत्वेनानुत्थानप्रसङ्गात्स्वरूपावस्थानप्रसिद्धे-र्निमित्तं वक्तव्यमिति पृच्छति—कथं पुनरिति। ज्वरादिरोगग्रस्तस्य रोगापगमे स्वभावस्थितौ प्रसिद्धः

है। संसार के हेतुक अविद्या काम कर्म द्वारा संयुक्त हुए ही स्वप्न होता है, उस अवस्था में अपने स्वरूप को प्राप्त होना कैसे सभव है। बृहदारण्यक श्रुति इसमें प्रमाण है—"उस समय वर्णाश्रम धर्म की या पुण्य-पाप की प्रतीति नहीं होती। यह पुरुष पुण्य से असंबद्ध तथा पाप से भी असंबद्ध हो जाता है। उस अवस्था में हृदयस्थ समस्त शोकों को पार कर जाता है", "वह इस पुरुष का रूप निःसन्देह कामनाशून्य, पापरहित और अभयस्वरूप है,, "जो आप्त तथा कामना से शून्य श्रोत्रिय विद्वान् का आनन्द है वही परम उत्कृष्ट आनन्द है, यही ब्रह्मलोक है" इत्यादि। सुषुप्त अवस्था में ही जीवन भाव से छुड़ाकर अपने स्वरूप की उपलब्धि दिखलाऊँगा—ऐसा आरुणि ने कहा। हे सोम्य! मुझ द्वारा प्रतिपादित सुषुप्त को तुम अच्छी तरह से समझ लो, यही इसका भाव है।

सुषुप्त अवस्था में कब स्थित होता है, इसे कहा जाता है। जिसकाल में सोते हुए सुषुप्त सञ्ज्ञक होता है। लोक में प्रसिद्ध है कि यह सोता है। स्वप्न गौण है। जब ऐसा कहते हैं कि वह पुरुष सोता है, उस समय सच्छब्द सञ्ज्ञक परतत्त्व से संयुक्त हो एकीभूत हो जाता है। मन में प्रविष्ट मन आदि के संपर्क से हुए जीवभाव का परित्याग कर परमार्थसत्यस्वरूप सत्तत्त्व को प्राप्त हो जाता है। संसारी लोग 'यह सोता है' ऐसा इसे कहते हैं। क्योंकि वह अपनी आत्मा को प्राप्त हो जाता है। सोने के गुण और नाम निर्वचन की प्रसिद्धि से भी यही फल निकलता है कि स्वस्वरूप की उपलब्धि करता है। (सुषुप्ति में स्वरूपावस्थिति हो और उठकर क्रिया-कलाप में लग जाए, इससे वास्तविक

---

१. बृ० उ० ४।३।२२। २. "तद्वा अस्यैतदतिच्छन्दा अपहतपाप्माभयꣳ रूपम्"। अतिच्छन्दा अतिच्छन्दं कामवर्जितमिति यावत्। ३. बृ० उ० ४।३।३३।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पस्यैत्याहुः । जागरिते हि पुण्यापुण्यनिमित्तसुखदुःखाद्यनेकायासानुभवाच्छ्रान्तो भवति ततश्चाऽऽयस्तानां करणानामनेकव्यापारनिमित्तग्लानानां स्वव्यापारेभ्य उपरमो भवति । श्रुतेश्च 'श्राम्यत्येव वाक्श्राम्यति चक्षुरित्येवमादि । तथा च [2]गृहीता वाग्गृहीतं चक्षुर्गृहीतं श्रोत्रं गृहीतं मन इत्येवमादीनि करणानि प्राणग्रस्तानि प्राण एकोऽश्रान्तो देहे कुलाये (यो) जागर्ति तदा जीवः श्रमापनुत्तये स्वं देवतारूपमात्मानं प्रतिपद्यते । नान्यत्र स्वरूपावस्थानाच्छ्रमापनोदः स्यादिति युक्ता प्रसिद्धिर्लौकिकानां स्वं ह्यपीतो भवतीति । दृश्यते हि लोके ज्वरादिरोगग्रस्तानां तद्विनिर्मोके स्वात्मस्थानां विश्रमणं तद्वदिहापि स्यादिति युक्तम् । तद्यथा श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्त इत्यादिश्रुतेश्च ॥१॥

श्रमाभावः सुषुप्तं च श्रमापनोदावस्थानं तथा च तत्र स्वरूपस्थितिप्रसिद्धिरविरुद्धेत्याह–जाग्रदिति। संगृहीतं समाधानं विवृणोति—जागरिते हीति । करणानामनेकव्यापारनिमित्ता ग्लानिर्भवतीत्यत्र मानमाह—श्रुतेश्चेति । अनुभवसमुच्चयार्थश्चकारः । सुषुप्त्यवस्थायां करणानामुपरतौ प्रमाणमाह–तथा चेति । सुषुप्तौ प्राणस्यापि वागादिवदुपसंहृतत्वमाशङ्क्याऽऽह—करणानीति । अन्यथा मृतिभ्रान्तिः स्यादिति भावः । जीवस्यापि [3]बहिर्व्यापारः स्यादिति चेन्नैवं करणाभावादित्याह–तदेति। ननु सुषुप्ते श्रमापनोदमात्रं [4]न स्वरूपावस्थानं तत्कुतो लौकिकी प्रसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—नान्यत्रेति। उक्तमर्थं लौकिकदृष्टान्तेन स्पष्टयति—दृश्यते हीति । बृहदारण्यकश्रुत्यालोचनायामपि सुषुप्त्यवस्थाद्वयजनितश्रमापोहार्थं ब्रह्मनीडप्राप्तिर्गम्यत इत्याह—तद्यथेति ॥१॥

अभिप्राय जानने की इच्छा से पूछते हैं—) सांसारिक लोग तो स्वप्न को स्थिति जाग्रत् कालीन थकान को दूर करने के उद्देश्य से करते हैं, इसमें स्वात्मोपलब्धि तो नजर नहीं आती । जाग्रदवस्था में मनुष्य पुण्य-पाप से होने वाले सुख-दुःखादि अनेक प्रयत्नों से हुए अनुभव से थक जाता है, इससे इन्द्रियों को पीड़ा होती है, अनेक कर्मों को सम्पादित करते रहने से इन्द्रियों को अपनी दत्तचित्तता से ग्लानि हो जाती है और जीव विश्राम लेता है । बृहदारण्यक श्रुति कहती है—"भाषण में प्रवृत्त हुई वाणी श्रान्त हो जाती है । देखने में प्रवृत्त हुआ नेत्र श्रान्त होता ही है" "उस समय प्राण गृहीत रहता है, वाक् निगृहीत रहती है, चक्षु निगृहीत रहता है, श्रोत्र निगृहीत रहता है और मन भी निगृहीत हो जाता है" इस प्रकार सभी इन्द्रियाँ प्राण के द्वारा ग्रस्त कर ली जाती हैं, केवल प्राण ही देह रूपी घोंसले में विना थके हुए जागता रहता है । तब जीवात्मा थकान को दूर करने के लिए स्वात्मरूप में स्थित हो जाता है । इससे उत्तम स्थान अपने स्वरूप में स्थित के लिए कहीं भी नहीं है । अतः लोगों की यह मान्यता उचित ही है कि यह अपने में चला गया है (सो गया है) । रोग से पीड़ित हुए लोगों के विषय में देखा जाता है कि वे रोगमुक्त (ठीक) हो जाने पर स्वास्थ्य लाभ करते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी होगा, ऐसा कहना उचित ही है । बृहदारण्यक श्रुति में आता है "जिस प्रकार बाज अथवा पक्षी थककर अपने घोंसले में विश्राम लेते हैं उसी प्रकार जाग्रत् स्वप्न से सुषुप्तावस्था रूप ब्रह्मनीड में

---

१. बृ० उ० १।५।२१ । २. बृ० उ० २।१।१७ । ३. अप्ययात्मकान्तरव्यापारापेक्षया बहिरित्युक्तम् । ४. मात्रकृत्यं वक्ति—नेति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वाऽन्यत्राऽऽयतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनँ हि सोम्य मन इति ॥२॥

जिस प्रकार व्याध के हाथ में पकड़ी हुई डोरी से बँधा हुआ पक्षी दिशा-विदिशा में उड़कर भी अन्यत्र विश्राम स्थान न प्राप्त करके बन्धन-स्थान का ही आश्रय लेता है। इसी प्रकार हे सोम्य ! निश्चय ही यह मन भी दिशा-विदिशाओं में जाकर और आत्मा से भिन्न कहीं भी विश्राम स्थान न मिलने से प्राण द्वारा उपलक्षित परदेवता का ही आश्रय लेता है, क्योंकि हे सोम्य ! मन प्राणरूप बंधन वाला ही है ॥ २ ॥

तत्रायं दृष्टान्तो यथोक्तेऽर्थे स यथा शकुनिः पक्षी शकुनिघातकस्या हस्तगतेन सूत्रेण प्रबद्धः पाशितो दिशं दिशं बन्धनमोक्षार्थी सन्प्रतिदिशं पतित्वाऽन्यत्र बन्धनादायतनमाश्रयं विश्रमणायालब्ध्वाऽप्राप्य बन्धनमेवोपश्रयते। एवमेव यथाऽयं दृष्टान्तः खलु हे सोम्य तन्मनस्तत्प्रकृतं षोडशकलमन्नोपचितं मनो निर्धारितं तत्प्रविष्टस्तत्स्थस्तदुपलक्षितो जीवस्तन्मन इति निर्दिश्यते मञ्चाक्रोशनवत्। स मनआख्योपाधिर्जीवोऽविद्याकामकर्मोपदिष्टां दिशं दिशं सुखदुःखादिलक्षणां जाग्रत्स्वप्नयोः पतित्वा गत्वाऽनुभूयेत्यर्थः। अन्यत्र सदाख्यात्स्वात्मन आयतनं विश्रमणस्थानमलब्ध्वा प्राणमेव

तत्रेति सुषुप्त्यवस्थोच्यते। यथोक्तोऽर्थो हि जीवस्य ब्रह्मण्यवस्थानं तस्मिन्निति यावत्। तत्रशब्दो दृष्टान्तविषयः शकुनिविषयो वा। अप्राप्येति च्छेदः। यथा मञ्चाक्रोशनेन मञ्चस्थो देवदत्तो लक्ष्यते तथा तन्मन इति मनसि स्थितो जीवो लक्ष्यो भवतीत्याह—मञ्चाक्रोशनवदिति। न केवलं

प्राकर स्वस्वरूपावस्थिति लाभ करता है" ॥ १ ॥

इसी अर्थ में यह दृष्टान्त है—जिस प्रकार बहेलिये के हाथ में पकड़ी हुई डोरी से बँधा हुआ पक्षी बन्धन से छूटने के लिए दिशा-विदिशाओं में उड़ता-पड़ता हुआ बन्धन को छोड़कर अन्य कोई विश्राम स्थल न पाकर बन्धन में ही विश्राम पाता है; हे सोम्य ! इसी प्रकार मन में स्थित जीव की स्थिति है। यह मन षोडश कला वाला है, अन्न से विकास को प्राप्त होता है ऐसा निश्चय करा दिया था उसमें प्रविष्ट हुआ, वहीं रहने वाला, मन से ही उपलक्षित जीव का ही "तन्मनः" से श्रुति में निर्देश है जैसे मञ्चाकोशन के द्वारा मञ्च में बैठा हुआ देवदत्त अभिलक्षित होता है। मन सञ्ज्ञक उपाधि से विशिष्ट वह जीव अविद्या, काम और कर्म से बतलाई हुई सुख-दुःखादि सञ्ज्ञक दिशा में जाकर जाग्रत् एवं स्वप्न की अनुभूति कर मन सञ्ज्ञक स्वात्मा रूप विश्रामस्थल को छोड़कर कोई

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाऽऽप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा

हे सोम्य ! तू मुझसे भूख और प्यास को स्पष्ट रूप से समझ। जिस समय यह पुरुष "खाना चाहता है" ऐसे नाम वाला होता है, उस समय उसके खाये हुये अन्न को जल ही ले जाता है। जैसे

प्राणेन सर्वकार्यकरणाश्रयेणोपलक्षिता प्राण इत्युच्यते सदाख्या परा देवता। 'प्राणस्य प्राणं' 'प्राणशरीरो भारूप' इत्यादिश्रुतेः। अतस्तां देवतां प्राणं प्राणाख्यामेवोपश्रयते। प्राणो बन्धनं यस्य मनसस्तत्प्राणबन्धनं हि यस्मात्सोम्य मनः प्राणोपलक्षितदेवताश्रयं मन इति तदुपलक्षितो जीव इति ॥२॥

एवं स्वपितिनामप्रसिद्धिद्वारेण यज्जीवस्य सत्यस्वरूपं जगतो मूलं तत्पुत्रस्य दर्शयित्वाऽऽहान्नादिकार्यकारणपरम्परयाऽपि जगतो मूलं सद्दिदर्शयिषुः। अशनापिपासे अशितुमिच्छाऽशना यालोपेन। पातुमिच्छा पिपासा ते अशनापिपासे अशनापिपासयोः

प्रकरणात्प्राणशब्देन परा देवता लक्ष्यतेऽन्यत्र प्रयोगदर्शनाच्चेत्याह—प्राणस्येति। प्राणशब्देन परदेवतालक्षणायां फलितमाह—अत इति। प्राणमेवोपश्रयते विज्ञानात्मेत्यत्र हेतुमाह—प्राणबन्धनमिति ॥२॥

वृत्तमनूद्यानन्तरवाक्यमुत्थापयति—एवमिति। आहाशनापिपासे मे सोम्येत्यादीति शेषः। किमभिप्रायः सन्पिता पुत्रं प्रत्येवमाहेत्याकाङ्क्षायामाह—अन्नादीति। अन्नादीनि कार्याणि कारणान्बादीनि तेषां या परम्परा तयाऽपि जगतो यत्सल्लक्षणं मूलं तद्दर्शयितुमिच्छन्पिता पुत्रं प्रत्यशनेत्यादिकं वाक्यमाहेत्यर्थः। अशनेत्यस्य सन्नन्तत्वाभावेऽपि कथं तदर्थो व्याख्यायते तत्राऽऽह—अशनेति।

स्थान भी नहीं ढूंढ पाता अतः प्राण सञ्ज्ञक देवता का ही आश्रय ले लेता है। प्राण से सर्व देहेन्द्रिय संघात से उपलक्षित सदाख्य परमात्मा ही प्राण है। "ब्रह्म की शक्ति से अधिष्ठित इन्द्रियों में स्व व्यापार सामर्थ्य होने से उसे जो प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु, श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन जानते हैं, वे ही उस पुरातन और आगे रहने वाले ब्रह्म को जानते हैं", "वह ब्रह्म विषयों में प्रवृत्ति के हेतुभूत मन के कारण मनोमय है, प्राण, शरीर, चैतन्य रूप है" इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं। प्राण ही इस मन का बन्धन है। हे सोम्य ! विज्ञानात्मा प्राण के आश्रित रहता है, प्राण से उपलक्षित देवता के आश्रित मन है, मन से उपलक्षित जीव है ॥ २ ॥

इस प्रकार पूर्व मन्त्र में 'स्वपिति' नाम से प्रसिद्ध मन उपहित जीव के सत्य स्वरूप जगत् के मूल कारण का पुत्र को उपदेश किया; अन्नादि की कार्यकारण परम्परा से भी सत् ही जगत् का मूल कारण है, इसे स्पष्ट करने की इच्छा से आरुणि अपने पुत्र श्वेतकेतु से बोले—हे सोम्य ! भूख और

१. बृ० उ० ४।४।१८। २. छा० उ० ३।१४।२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥३॥

लोक में (गौ ले जाने वाले को) गोनाय, (घोड़े ले जाने वाले को) अश्वनाय तथा (पुरुषों को ले जाने वाले राजा या सेनापति को) पुरुषनाय कहते हैं; उसी प्रकार (पुरुष द्वारा खाये हुये अन्नादि को ले जाने के कारण) जल को अश्वनाय नाम से पुकारते हैं। हे सोम्य! उस जल से ही तुम इस शरीररूप अंकुर को उत्पन्न हुआ समझो, क्योंकि सर्वथा कारण के अभाव में यह शरीररूप कार्य हो नहीं सकता ॥ ३ ॥

सतत्त्वं विजानीहीत्येतत्। यत्र यस्मिन्काल एतन्नाम पुरुषो भवति। किं तदशिशिषत्यशितुमिच्छतीति। तदा तस्य पुरुषस्य किंनिमित्तं नाम भवतीत्याह। यत्तत्पुरुषेणाशितमन्नं कठिनं पीता आपो नयन्ते द्रवीकृत्य रसादिभावेन विपरिणमयन्ते तदा भुक्तमन्नं जीर्यति। अथ च भवत्यस्य नामाशिशिषतीति गौणम्। जीर्णे ह्यन्नेऽशितुमिच्छति सर्वो जन्तुः।

तत्रापामशितनेतृत्वादशनाया इति नाम प्रसिद्धमित्येतस्मिन्नर्थे। यथा गोनायो

यकारस्य लोपेनास्मिन्प्रयोगे सन्प्रत्ययः प्रयुक्तस्तथाच तदर्थोक्तिरविरुद्धेत्यर्थः। तत्राशनायापिपासयोः सतत्त्वं विज्ञापयति—यत्रेति। सामान्येनोक्तं नाम विशेषतो ज्ञातुं पृच्छति—किं तदिति। यत्कठिनमन्नं पुरुषेणाशितं तत्पीता आपो नयन्त इति संबन्धः। तदेति परिणामावस्थोक्तिः। अथेत्यन्नस्य भुक्तस्य जीर्णत्वानन्तर्यमुच्यते। कथं तदा नाम्नो गौणत्वं तदाह—जीर्णे हीति।

तद्यथेत्यत्र तच्छब्दार्थमाह—तत्रेति। एतस्मिन्नर्थे दृष्टान्त उच्यत इति शेषः। अशनायेति

प्यास को तत्त्व सहित अच्छी प्रकार से जानो। खाने की इच्छा का नाम अशनाया है इसमें 'या' का लोप किया गया है, पीने की इच्छा का नाम पिपासा है। जिस समय पुरुष "अशिशिषति (खाना चाहता है)" ऐसे नाम वाला होता है, तो यह नाम उस पुरुष का किस कारण से होता है? पुरुष गरिष्ठ अन्न का सेवन करता है, जल उस अन्न को द्रवीभूत कर रसादि भाव में परिवर्तित करते हैं, उसके पश्चात् खाया हुआ अन्न पुराना हो जाता है। तब "खाने की इच्छा करता है (अशिशिषति)" यह नाम गौण हो जाता है क्योंकि अन्न के जीर्ण हो जाने पर सभी प्राणी पुनः खाने की इच्छा करते हैं।

पुरुष द्वारा खाये हुए अन्न को ले जाने के कारण जल को अशनाया कहते हैं। जिस प्रकार लोक

१. यकारस्येति—सन्समानार्थो यकारोऽस्मिन्प्रयोगे लोपेन निर्दिष्ट इति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्या-न्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन

इस शरीर का मूलकारण अन्न को छोड़कर और कहाँ हो सकता है अर्थात् अन्न ही इसका मूल कारण है। हे सोम्य ! ऐसे ही अन्नरूप कार्य से इसके मूलरूप को खोजो और हे सोम्य ! जलरूप

गां नयतीति गोनाय इत्युच्यते गोपालः। तथाऽश्वान्नयतीत्यश्वनायोऽश्वपाल इत्युच्यते। पुरुषनायः पुरुषान्नयतीति राजा सेनापतिर्वा। एवं तत्तदाऽप आचक्षते लौकिका अशनायेति विसर्जनीय लोपेन। तत्रैवं सत्यद्भी रसादिभावेन नीतेनाशितेनान्नेन निष्पादितमिदं शरीरं वटकणिकायामिव शुङ्गोऽङ्कुर उत्पतित उद्गतस्तमिमं शुङ्गं कार्यं शरीराख्यं वटादिशुङ्गवदुत्पतितं हे सोम्य विजानीहि। किं तत्र विज्ञेयमित्युच्यते। शृण्विदं शुङ्गवत्कार्यत्वाच्छरीरं नामूलं मूलरहितं भविष्यतीत्युक्त आह श्वेतकेतुः ॥३॥

यद्येवं समूलमिदं शरीरं वटादिशुङ्गवत्तस्यास्य शरीरस्य क्व मूलं स्याद्भवेदित्येवं पृष्ट आह पिता। तस्य क्व मूलं स्यादन्यत्रान्नादन्नं मूलमित्यभिप्रायः। कथम्। अशितं ह्यन्नमद्भिर्द्रवीकृतं जाठरेणाग्निना पच्यमानं रसभावेन परिणमते। रसाच्छोणितं

कथमपामाख्यानमशनाया इति हि वक्तव्यं तत्राऽऽह—विसर्जनीयेति। तत्रेत्यस्य व्याख्यानमेवं सतीत्यपामशितनेतृत्वे सतीत्यर्थः। अद्भिः पीताभिरिति शेषः। तत्रेति शरीरनिर्देशः ॥३॥

अन्नस्य देहमूलत्वमाकाङ्क्षापूर्वकं व्युत्पादयति—कथमित्यादिना। तथा पुरुषभुक्तान्नवदिति

व्यवहार में 'गोनाय' गो ले जाने वाले गोपाल को कहते हैं, इसी प्रकार 'अश्वनाय' अश्व ले जाने वाले अश्वपाल को कहते हैं अथवा "पुरुषनाय" पुरुष ले जाने वाले राजा या सेनापति का नाम है। इस प्रकार जल को अन्न का ले जाने वाला सिद्ध हो जाने के कारण पीए हुए जल से खाया हुआ अन्न रसादि रूप में परिवर्तित हो जाता है जिससे यह शरीर चलता है। हे सोम्य ! वटकणिका के समान इस शरीर अंकुर को जल से उत्पन्न हुआ जान। बड़ के छोटे से बीज से ही अंकुर निकल जाता है, उसी प्रकार जल से अंकुर शरीररूपी कार्य है। क्या जाने ? इस पर श्रुति कहती है—सुनो ! अंकुर के समान शरीर के कार्य होने से यह मूल के बिना नहीं हो सकेगा। इस प्रकार कारण की उत्कट जिज्ञासा से श्वेतकेतु ने पूछना आरम्भ किया ॥ ३ ॥

यदि बड़ आदि के अंकुर के समान इस शरीर का कोई न कोई मूल कारण है तो वह क्या है ? इस प्रकार श्वेतकेतु के पूछने पर पिता बोले—अन्न को छोड़कर इस शरीर का दूसरा मूल कारण क्या होगा। ऐसा क्यों कहते हो ? खाया हुआ अन्न जल से द्रवीभूत हो जाता है जाठराग्नि से पकाकर

१. लोपेन च्छान्दसेनेति भावः। २. अशनाया इति—प्रथमाबहुवचनम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूल-मन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ ४ ॥

अंकुर के द्वारा जल के मूल कारण तेज को खोजो। ऐसे ही तेजरूप कार्य के द्वारा सद्रूप मूल का अन्वेषण करो, हे सोम्य ! इस प्रकार यह सम्पूर्ण प्रजा सन्मूलक है और सत् ही इसका आश्रय है एवं अन्त में सत्य ही इसकी प्रतिष्ठा (लय स्थान) है ॥ ४ ॥

शोणितान्मांसं मांसान्मेदो मेदसोऽस्थीन्यस्थिभ्यो मज्जा मज्जायाः शुक्रम् । तथा योषिद्भुक्तं चान्नं रसादिक्रमेणैव परिणतं लोहितं भवति । ताभ्यां शुक्रशोणिताभ्या-मन्नकार्याभ्यां संयुक्ताभ्यामन्नेनैवं प्रत्यहं भुज्यमानेनाऽऽपूर्यमाणाभ्यां कुडचमिव मृत्पिण्डैः प्रत्यहमुपचीयमानोऽन्नमूलो देहशुङ्गः परिनिष्पन्न इत्यर्थः । यत्तु देहशुङ्गस्य मूलमन्नं निर्दिष्टं तदपि देहवद्विनाशोत्पत्तिमत्त्वात्कस्माच्चिन्मूलादुत्पतितं शुङ्ग एवेति कृत्वाऽऽह । यथा देहशुङ्गोऽन्नमूल एवमेव खलु सोम्यान्नेन शुङ्गेन कार्यभूतेनापो मूलमन्नस्य शुङ्गस्यान्विच्छ प्रतिपद्यस्व । अपामपि विनाशोत्पत्तिमत्त्वाच्छुङ्गत्वमेवेति अद्भिः सोम्य शुङ्गेन कार्येण कारणं तेजो मूलमन्विच्छ । तेजसोऽपि विनाशोत्पत्ति-मत्त्वाच्छुङ्गत्वमिति तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमेकमेवाद्वितीयं परमार्थसत्यम् । यस्मिन्सर्वमिदं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमनृतं रज्ज्वामिव सर्पादिविकल्पजात-

---

मावत् । तथाऽपि कथं सतो मूलस्य सिद्धिरत आह—यत्त्विति । सतो मूलस्य वास्तवं रूपं दर्शयति—एकमिति । तस्य सर्वकल्पनाधिष्ठानत्वेन परिणामवादं व्युदस्यति—यस्मिन्निति । अध्यासे मूलकारण-

---

स्वभाव में परिणत होता है। रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य होता है। पुरुष से खाये हुए अन्न की तरह स्त्री द्वारा खाया हुआ अन्न भी रस, रक्त मांसादि क्रम में परिणत हुआ रज होता है। अन्न के कार्य उस रज वीर्य से युक्त मृत्पिण्डों से दीवाल को भरने के समान प्रतिदिन भक्षण किए हुए अन्न से बढ़ता हुआ अन्नमूलक देहरूप कार्य सम्पादित होता है। जब देहरूप कार्य का मूल कारण अन्न बतलाया गया, अन्न भी देह की तरह उत्पन्न और विनाश होने वाला है तो किस आदि कारण का यह कार्य है इसे श्रुति कहती है—जिस प्रकार देहकार्य अन्न मूलक ही है, हे सोम्य ! इसी प्रकार अन्न रूप कार्य से जल रूप मूल की उपलब्धि करो। जल भी तो उत्पत्ति-विनाश वाला है, विकारी है, इसलिए हे सोम्य ! जल के मूल कारण तेज की उपलब्धि करो। तेज भी उत्पत्ति-विनाशशील होने से कार्य है, अतः हे सोम्य ! कार्य तेज के मूल कारण सत् अद्वितीय परमार्थतत्त्व की उपलब्धि करो। परिणामवाद कल्पना का अधिष्ठान होने से यह सब नाम वाणी का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं

(अब जलरूप अंकुर से सद्रूप मूल का ज्ञान कराने के लिए आरुणि कहता है) जिस समय यह पुरुष 'पिपासति' (पीना चाहता है) ऐसे नाम वाला हो जाता है, तो उसके पीये हुये जल को

मध्यस्तमविद्यया तदस्य जगतो मूलमतः सन्मूलाः सत्कारणा हे सोम्येमाः स्थावरजङ्गमलक्षणाः सर्वाः प्रजा न केवलं सन्मूला एवेदानीमपि स्थितिकाले सदायतनाः सदाश्रया एव । नहि मृदमनाश्रित्य घटादेः सत्त्वं स्थितिर्वाऽस्ति । अतो मृद्वत्सन्मूलत्वात्प्रजानां सदायतनं यासां ताः सदायतनाः प्रजाः । अन्ते च सत्प्रतिष्ठाः सदेव प्रतिष्ठा लयः समाप्तिरवसानं परिशेषो यासां ताः सत्प्रतिष्ठाः ॥४॥

अथेदानीमप्शुङ्गद्वारेण सतो मूलस्यानुगमः कार्य इत्याह । यत्र यस्मिन्काल एतन्नाम पिपासति पातुमिच्छतीति पुरुषो भवति । अशिशिषतीतिवदिदमपि गौणमेव

माह—अविद्ययेति । प्रजाः सर्वाः सन्मूलाः सदायतनाश्चेत्युक्तमर्थं दृष्टान्तेन समर्थयते—न हीति । सत्प्रतिष्ठाः सदायतनाश्चेत्यनयोरर्थभेदाभावमाशङ्क्याऽऽह—अन्ते चेति । प्रतिष्ठाशब्दस्य लयवाचित्वादायतनशब्दस्य चाऽऽश्रयविषयत्वान्न पौनरुक्त्यमित्यर्थः । लयशब्दस्य सुषुप्त्यादिविषयत्वं वारयति—समाप्तिरिति । सम्यगाप्तिः समाप्तिरिति प्राप्तिरत्र विवक्षितेति शङ्कां वारयति—अवसानमिति । तस्याभावत्वेन तुच्छरूपत्वं निरस्यति—परिशेष इति ॥४॥

अन्नाख्यशुङ्गद्वारा सतो मूलस्याधिगतेरनन्तरमित्यथशब्दार्थः । पिपासतीत्येतन्नाम 'पुरुषो यस्मि-

---

विकार मिथ्या है, रज्जु में सर्पादि प्रतीति की तरह मिथ्या अध्यस्त है, अविद्या के कारण जगत् के मूल कारण में इसका अध्यास होता है। इसलिए सत्कारणवाद को प्रतिष्ठा सिद्ध है। हे सोम्य! जड़ चेतनमय यह समस्त सृष्टि सद् से केवल उत्पन्न ही नहीं होती बल्कि इस समय स्थिति काल में भी सत् के आश्रित ही रहती है। घटादिकों की उत्पत्ति एवं स्थिति मृत्तिका का आश्रय लिए बिना हो ही नहीं सकती। इसलिए मृत्तिका से उत्पन्न घट की तरह प्रजाएँ सत् के आश्रित हैं एवं अन्त में सत् में ही उनका लय हो जाता है, सत् की सम्यक प्राप्ति अर्थात् उसी में पर्यवसान हो जाता है, प्रजाएँ अभाव की स्थिति में किसी तुच्छ रूप को न प्राप्त कर सत् में प्रतिष्ठित हो जाती हैं ॥ ४ ॥

अब जल रूप कार्य से मूल सत्तत्त्व का बोध करना चाहिए, अतः आरुणि कहता है—जब पुरुष "पीने की इच्छा करता है (पिपासति)" इस नाम वाला होता है। "अशिशिषति" के समान "पिपासति" नाम भी गौण है। यदि तेज अपने सुखाने का कार्य न करे तो खाये हुए द्रवीभूत अन्न

---

१. पुरुषस्येति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳ सोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति ॥५॥

तेज ही ले जाता है। अतः जैसे गोनाय, अश्वनाय और पुरुषनाय कहे जाते हैं; वैसे ही उस तेज को 'उदन्या' (उदक को ले जाने के कारण) ऐसे नाम पुकारते हैं। हे सोम्य! उस जलरूप मूल से यह शरीररूप अंकुर उत्पन्न हुआ है, ऐसा तू जान, क्योंकि यह शरीर मूल के बिना हो नहीं सकता॥ ५॥

नाम भवति। द्रवीकृतस्याशितस्यान्नस्य नेत्र्य आपोऽन्नशुङ्गं देहं क्लेदयन्त्यः शिथिलीकुर्यु रब्बाहुल्याद्यदि तेजसा न शोष्यन्ते। नितरां च तेजसा शोष्यमाणास्वप्सु देहभावेन परिणममानासु पातुमिच्छा पुरुषस्य जायते तदा पुरुषः पिपासति नाम तदेतदाह। तेज एव तत्तदा पीतमबादि शोषयद्देहगतलोहितप्राणभावेन नयते परिणमयति। तद्यथा गोनाय इत्यादि समानमेवं तत्तेज आचष्टे लोक उदन्येत्युदकं नयतीत्युदन्यम्। उदन्येतीति च्छान्दसं तत्रापि पूर्ववत्। अपामप्येतदेव शरीराख्यं शुङ्गं नान्यदित्येवमादि समानमन्यत् ॥५॥

काले भवतीति योजना। कथं पिपासतीत्येतन्नाम पुरुषस्य गौणमित्याशङ्क्याऽऽह—द्रवीकृतस्येति। भवत्वपां तेजसा शोष्यमाणत्वं किं तावतेत्याशङ्क्याऽऽह—नितरां चेति। तदा पानेच्छावस्थाया-मित्यर्थः। तेजसो यदुदकनेतृत्वमुक्तं तत्र श्रुतिमवतार्य व्याचष्टे—तदेतदाहेति। उदन्यमिति वक्तव्ये कथमुदन्येत्युक्तं तत्राऽऽह—उदन्येतीति। तत्रापि तेजस्यपीत्येतत्। यथाऽशनायेति [1]च्छान्दसं तथा तेजस्युदन्येत्यपि च्छान्दसमेवेत्याह—पूर्ववदिति। अन्नद्वारा सतो मूलस्याधिगमवदम्बुद्वाराऽपि तस्या-धिगतिरस्तीत्याह—अपामपीति ॥५॥

को ले जाने वाला जल अन्न के कार्य देह को गीला करते हुए कमजोर कर दे क्योंकि शरीर में जल की बहुलता है। तेज के द्वारा पूरी तरह सुखा दिए जाने पर देहभाव में परिणत जल को पीने की इच्छा पुरुष को होती है, तब पुरुष का "पिपासति" (पीने की इच्छा करता है) ऐसा नाम होता है। तेज उदक को ले जाता है—इसे श्रुति कहती है। यह पीए हुए जल को सुखाकर शरीर में स्थित रक्त को प्राणभाव से परिणत करता है। मन्त्र में "गोनाय" इत्यादि का अर्थ पूर्व मन्त्र के समान है। इसलिए जल को ले जाने के कारण लोक में तेज को "उदन्या" कहते हैं। 'अशनाया, तेजस्या' की तरह 'उदन्या' भी छान्दस प्रयोग है। अन्नद्वारा मूलतत्त्व के ज्ञान कराने के समान उदक द्वारा भी उसकी उपलब्धि की जाती है, जलरूप मूल से यह शरीररूपी कार्य उत्पन्न हुआ है, अन्य किसी से संभव नहीं। मन्त्र की शेष व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान कर लेनी चाहिए॥ ५॥

---

१. छान्दसम् - मलोपश्छान्दस इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो

हे सोम्य ! उस भौतिक शरीर का जल के सिवा और कहाँ मूल हो सकता है ? हे प्रियदर्शन! जलरूप अंकुर से तू तेजरूप मूल का अन्वेषण कर और हे प्यारे ! तेजोरूप अंकुर से सद्रूप मूल का अनुसन्धान कर, हे सोम्य ! यह सभी प्रजा सन्मूलक है, सद्रूप आयतन वाला है और सत् ही इसका

सामर्थ्यात्तेजसोऽप्येतदेव शरीराख्यं शुङ्गम् । अतोऽप्शुङ्गेन देहेनाऽऽपो मूलं गम्यते । अद्भिः शुङ्गेन तेजो मूलं गम्यते । तेजसा शुङ्गेन सन्मूलं गम्यते पूर्ववत् । एवं हि तेजोबन्नमयस्य देहशुङ्गस्य वाचारम्भणमात्रस्यान्नादिपरम्परया परमार्थसत्यं सन्मूलमभयसंत्रासं निरायासं सन्मूलमन्विच्छेति पुत्रं गमयित्वाऽशिशिषति पिपासतीति

तेजःशुङ्गद्वाराऽपि सतो मूलस्य प्रतिपत्तिरस्तीत्याह—सामर्थ्यादिति । त्रिवृत्करणवशादिति यावत् । शरीरस्य भूतत्रयकार्यत्वमतःशब्दार्थः । यथा पूर्वमन्नशुङ्गेन देहेनान्नाख्यं मूलं गम्यत इत्यादि व्याख्यातं तथा तेजःशुङ्गेन देहेन तेजो मूलं गम्यत इत्यादि व्याख्येयमित्याह—पूर्ववदिति । वृत्तानुवादपूर्वकं यथेत्यादिवाक्यमादत्ते—एवं हीति । उक्तया रीत्या नामद्वयप्रसिद्धिद्वारेण यथोक्तदेहाख्यशुङ्गस्यान्नादिकारणपरम्परया सदाख्यं मूलमुक्तविशेषणं सन्मूलमन्विच्छेत्युपदेशेन श्वेतकेतुं ज्ञापयित्वा [1]व्यवस्थया शरीरमेकैकभूतारब्धमित्याक्षेपे प्राप्ते यदस्मिन्प्रकरणे तेजःप्रभृतीनामुपयुज्यमानानां स्वस्वभावानुसारेण संघातस्योपचयकरत्वं वक्तव्यं प्राप्तं तदिह सर्वशरीरेषु सर्वभूतकार्योपलम्भाद्व्यवस्थायां प्रमाणाभावाद्दृश्यमाने संघाते कस्य भूतस्य कियत्कार्यमित्यपेक्षायामन्नमशितमित्यादावुक्तमेव द्रष्टव्यमिति पूर्वोक्तं व्यपदिशतीति योजना । सतो मूलस्य व्यवहारसत्यत्वं वारयति—परमार्थेति । वस्तुतो नाविद्यासंबन्धस्तस्यास्तीत्याह—अभयमिति । अविद्याकार्यसंबन्धोऽपि परमार्थतो न तस्यास्तीत्याह—असंत्रासमिति । उभयसंबन्धाभावे समुत्खातनिखिलदुःखत्वेन परमानन्दत्वं तस्य

त्रिवृत्करण सामर्थ्य से तेज का भी यही शरीरसञ्ज्ञक कार्य है । शरीर के भूतत्रय का कार्य होने से जल कार्य देह के द्वारा जल का मूल कारण जाना जाता है । जल के कार्य के द्वारा तेज के मूल का पता लगाया जा सकता है इसी प्रकार तेज कार्य के द्वारा सत्तत्त्व रूप मूल कारण का पता लग जाता है आगे की मन्त्र व्याख्या पूर्व मन्त्र के भाष्य के समान है । इस प्रकार तेज-जल-अन्नमय देहकार्य वाणी का विकार मात्र है, अन्नादि परम्परा से पारमार्थिक सत्यता सत्तत्त्व ही मूल कारण है, अविद्या का संबन्ध न होने से वह अभय है, अविद्या के कार्य का संबन्ध भी परमार्थतः न होने से वह असंत्रास है, दोनों प्रकार के संबन्धों से शून्य होने से समस्त दुःखों से परे वह परमानन्द स्थिति है,

---

१. व्यवस्थया पार्थक्येन ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम् ॥६॥

विलय स्थान भी है। हे प्रियदर्शन ! जैसे पृथिवी जल और तेजोरूप ये तीन देवता सच्चिदानन्द पुरुष को प्राप्त कर उनमें से प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाती है, उसे मैंने पहले ही कह दिया। हे प्यारे ! मरते समय इस पुरुष को वाणी मन में लीन हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परमात्मा में लीन हो जाता है ॥ ६ ॥

नामप्रसिद्धिद्वारेण यदन्यदिहास्मिन्प्रकरणे तेजोबन्नानां पुरुषेणोपयुज्यमानानां कार्यकरणसंघातस्य देहशुङ्गस्य स्वजात्यसांकर्येणोपचयकरत्वं वक्तव्यं प्राप्तं तदिहोक्तमेव द्रष्टव्यमिति पूर्वोक्तं व्यपदिशति। यथा नु खलु येन प्रकारेणेमास्तेजोबन्नाख्यास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यन्नमशितं त्रेधा विधीयत इत्यादि। तत्रैवोक्तमन्नादीनामशितानां ये मध्यमा धातवस्ते साप्तधातुकं शरीरमुपचिन्वन्तीत्युक्तम्। मांसं भवति लोहितं भवति मज्जा भवतीति ये त्वणिष्ठा धातवो मनः प्राणं वाचं देहस्यान्तःकरणसंघातमुपचिन्वन्तीति चोक्तं तन्मनो भवति स प्राणो भवति सा वाग्भवतीति।

लिप्यतीत्याह—निरायासमिति। पूर्वोक्तमेव व्यक्ती करोति—तत्रैवेति। किं तदन्नमशितमित्याशङ्क्य तत्राऽऽह—अन्नदीनामिति। साप्तधातुकं त्वगसृङ्मांसमेदोमज्जास्थिशुक्राख्याः सप्त धातवस्तेषां संहतिरूपमित्यर्थः।

उस सन्मूल की उपलब्धि करो। इस प्रकार पुत्र को 'अशिशिषति पिपासति' नाम की प्रसिद्धि निरूपण द्वारा इस प्रकरण में और भी जो कुछ कहना था कि पुरुष से सेवित तेज, जल व अन्न का देहेन्द्रियसंघात शरीरकार्य का स्वजाति से पार्थक्य होने से विकास होता है, यहाँ भी इस पूर्वोक्त प्रतिपादित सिद्धान्त की स्मृति दिलाते हैं। हे सोम्य ! जिस प्रकार तेज, जल और अन्न सञ्ज्ञक ये तीनों देवता पुरुष को पाकर इन पिण्डों से बाहर भी एक-एक करके त्रिवृत्-त्रिवृत् हैं, जिसे पहले कहा था कि खाया हुआ अन्न तीन प्रकार से परिणत हो जाता है इत्यादि। वहाँ यह भी स्पष्ट किया गया था, खाए हुए अन्न आदि की जो मध्यम धातुएँ हैं वे त्वक्, रक्त, माँस, मेद, मज्जा, अस्थि तथा वीर्य संज्ञक साप्तधातुक शरीर को पुष्ट करती हैं। इसी से श्रुति कहती है "मध्यम अंश से माँस होता है, रक्त होता है, मज्जा होती है"। एवं जो अणुतम अंश हैं वे देह के अन्तःकरणसंघात मन, प्राण और वाणी का पोषण करते हैं। इसी को श्रुति कहती है—"वह मन होता है, वह प्राण होता है, वह वाणी होती है"।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सोऽयं प्राणकरणसंघातो देहे विशीर्णे देहान्तरं जीवाधिष्ठितो येन क्रमेण पूर्वदेहात्प्रच्युतो गच्छति तदाहास्य हे सोम्य पुरुषस्य प्रयतो म्रियमाणस्य वाङ्मनसि संपद्यते मनस्युपसंह्रियते । अथ तदाऽऽहुर्ज्ञातयो न वदतीति । मनःपूर्वको हि वाग्व्यापारः । "यद्वै मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति" इतिश्रुतेः । वाच्युपसंहृतायां मनसि मनो मननव्यापारेण केवलेन वर्तते । मनोऽपि यदोपसंह्रियते तदा मनः प्राणे संपन्नं भवति सुषुप्तकाल इव तदा पार्श्वस्था ज्ञातयो न विजानातीत्याहुः । प्राणश्च तदोर्ध्वोच्छ्वासी स्वात्मन्युपसंहृतबाह्यकरणः संवर्गविद्यायां दर्शनाद्धस्तपादादीन्विक्षिपन्मर्मस्थानानि निकृन्तन्निव इवोत्सृजन्क्रमेणोपसंहृतस्तेजसि संपद्यते । तदाऽऽहुर्ज्ञातयो न चलतीति मृतो नेति वा विचिकित्सन्तो देहमा[१]लभमाना उष्णं चोपलभमाना देह उष्णो जीवतीति यदा तदप्यौष्ण्यलिङ्गं तेज उपसंह्रियते । तदा तत्तेजः परस्यां देवतायां

तेजोबन्नकार्यभूतदेहशुङ्गद्वारा सत्तत्त्वं निरूपितमिदानीं मरणद्वारेणापि तन्निरूपयितुमारभते—सोऽयमिति । तदाहेत्यत्र क्रमवद्गमनं तदित्युक्तम् । वाग्व्यापारस्य मनसि लये हेतुमाह—मनःपूर्वको हीति । प्राणसंपत्तिर्मनसस्तदधीनत्वम् । मनोव्यापारनिवृत्त्यवस्था तदेत्युच्यते । प्राणश्च तदेत्यविज्ञानावस्था कथ्यते । कथं प्राणस्य स्वात्मन्युपसंहृतबाह्यकरणत्वं तदाह—संवर्गविद्यायामिति । तत्र हि प्राणः संवृङ्क्ते वागादीनीति दृष्टमतो युक्तं तस्य स्वात्मन्युपसंहृतकरणत्वमित्यर्थः । तेजसीति [२]भौतिकमाध्यात्मिकं तेजो गृह्यते । जीवतीत्याहुरिति संबन्धः ।

(अभी तक तेज, जल एवं अन्न की कार्यभूत देह के द्वारा सत्तत्त्व का निरूपण हुआ, अब मृत्युतत्त्व के माध्यम से उसकी मीमांसा की जाएगी) इस प्राणेन्द्रिय संघात देह का नाश होता है, इसके पश्चात् देहान्तर में प्रतिष्ठित हो जाता है । पूर्व देह से पतित होकर जिस क्रम से जाता है उसे श्रुति कहती है—हे सोम्य ! मरणधर्मा मनुष्य के मर जाने पर वाणी का मन में लय हो जाता है। तब सगे-संबन्धी कहते हैं—यह बोल नहीं रहा है । वाणी और मन के संयुक्त रहने पर ही वाणी का बोलना संभव है । "जैसा मन चिन्तन करता है, वाणी उसे अभिलक्षित करती है" इत्यादि श्रुति भी इसका समर्थन करती है । वाणी के मन में लीन हो जाने पर मन केवल मननव्यापार करने के योग्य रह जाता है, वाणी कुण्ठित हो जाती है । जब मन का भी लय होता है तो मन सुषुप्तावस्था के समान प्राण में प्रतिष्ठित हो जाता है । ऐसे में समीप बैठे हुए सगे-संबन्धी कहते हैं अब यह कुछ भी जान नहीं पा रहा है । ऊपर की ओर श्वास लेने वाला प्राण अपने में बाह्य इन्द्रियों को लय करके संवर्ग-विद्या प्रकरण में प्रतिपादित हाथ-पैर को पटकता हुआ मर्मस्थलों को टूटी गाड़ी की तरह छोड़ता हुआ क्रम से लय हो तेज में प्रतिष्ठित होता है । 'चलता नहीं अथवा मरा नहीं' ऐसा संशय करते हुए शरीर को स्पर्श करते हुए उष्णता का अनुभव कर शरीर गर्म है, इसलिए जीता है ऐसा उस समय संबन्धी लोग कहते हैं—जब उस उष्णता दर्शक तेज का भी अवसान हो जाता है वह तेज परदेवता में लीन

---

१. आलभमानाः स्पृशन्तः । २. भौतिकमिति—भूतसूक्ष्मपञ्चकोपहितो जीव एवात्र तेज इति सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्य इति सूत्रे निर्णीतम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा

वह यह जो जगत् के मूल कारण में अणुता बतलायी गयी है, एतद्रूप ही सम्पूर्ण जगत् है। वह सत्य है, वही आत्मा है और हे श्वेतकेतो ! वही तू है। इस पर श्वेतकेतु ने कहा—भगवन् ! मुझे

प्रशाम्यति ।

तदेवं क्रमेणोपसंहृते स्वमूलं प्राप्ते च मनसि तत्स्थो जीवोऽपि सुषुप्तकालवन्निमित्तोपसंहारादुपसंह्रियमाणः सन्सत्याभिसंधिपूर्वकं चेदुपसंह्रियते सदेव संपद्यते न पुनर्देहान्तराय सुषुप्तादिवोत्तिष्ठति । यथा लोके सभये देशे वर्तमानः कथंचिदिवाभयं देशं प्राप्तस्तद्वत् । इतरस्त्वनात्मज्ञस्तस्मादेव मूलात्सुषुप्तादिवोत्थाय मृत्वा पुनर्देहजालमाविशति ॥ ६ ॥

यस्मान्मूलादुत्थाय देहमाविशति जीवः स यः सदाख्य एष उक्तोऽणिमाऽणुभावो जगतो मूलमैतदात्म्यमेतत्सदात्मा यस्य सर्वस्य तदेतदात्म तस्य भाव

सकरणस्य सप्राणस्य च भूतसर्गस्य परस्यां देवतायामुक्तक्रमेणोपसंहारेऽपि जीवस्य किमायातमित्याशङ्क्याऽऽह—तदेवमिति । तस्यां परस्यां देवतायामुक्तेन क्रमेण तेजस्युपसंहृते सतीति यावत् । स्वमूलं मनसो मूलं भूतपञ्चकम् । निमित्तोपसंहारादित्यत्र निमित्तं मनो विवक्षितम् । सत्संपन्नस्य सत्याभिसंधेर्न पुनरुत्थानमित्येतद्दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति । अभयं देशं प्राप्तो न पुनः सभयं देशं गन्तुमिच्छतीति शेषः । यस्त्वनृताभिसंधो यथोक्तया रीत्या न तत्संपन्नस्तं प्रत्याह—इतरस्त्विति ॥६॥

ही जाता है।

इन्द्रिय व मन सहित भूतसृष्टि का पर देवता में विलय होने पर जीव का क्या हुआ ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं—पर देवता में उपरोक्त क्रम से तेज के शान्त हो जाने पर मन के सूक्ष्म भूतपञ्चक प्राप्त होने पर मन उपहित जीव भी सुषुप्तावस्था के समान निमित्त मन के लय से अवसान हो सत्याभिसंधिपूर्वक यदि विलय होता है तो सत् में ही प्रतिष्ठित होता है पुनः सुषुप्तावस्था के समान देहान्तर गमन नहीं करता। जिस प्रकार लोक व्यवहार में भी भययुक्त स्थान से यदि कोई निर्भय स्थान की प्राप्ति कर ले तो वहाँ से पुनः भययुक्त स्थान में जाने की बिल्कुल इच्छा नहीं करता। किन्तु जिनकी मिथ्या पदार्थों में आसक्ति है, ऐसे अनात्मज्ञ उसी सन्मूल से सुषुप्तावस्था से उठने के समान देह त्यागकर पुनः देह जाल में प्रवेश कर लेता है ॥ ६ ॥

जिस मूल तत्त्व से ऊपर उठकर जीव देह में प्रवेश करता है, वह यह सत्सञ्ज्ञक कहा गया, अणुभाव सम्पन्न जगत् का मूल है, यह सदात्मा उस सर्व से है। अतः वह ऐतदात्म्य है। इस सत्सञ्ज्ञक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

फिर से समझावें। इस पर आरुणि ने कहा—हे सोम्य! अच्छी बात, ऐसा कहा अर्थात् इसके अभिप्राय को फिर से समझाता हूँ॥ ७॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

ऐतदात्म्यम्। एतेन सदाख्येनाऽऽत्मनाऽऽत्मवत्सर्वमिदं जगत्। नान्योऽस्त्यस्याऽऽत्मा संसारी। "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ नान्यदतोऽस्ति श्रोतृ" इत्यादिश्रुत्यन्तरात्। येन चाऽऽत्मनाऽऽत्मवत्सर्वमिदं जगत्तदेव सदाख्यं कारणं सत्यं परमार्थसत्। अतः स एवाऽऽत्मा जगतः प्रत्यक्स्वरूपं सतत्त्वं याथात्म्यम्। आत्मशब्दस्य निरुपपदस्य प्रत्यगात्मनि गवादिशब्दवन्निरूढत्वात्। अतस्तत्सत्त्वमसि भवसि हे श्वेतकेतो इत्येवं प्रत्यायितः पुत्र आह भूय एव मा भगवान्विज्ञापयतु यद्भवदुक्तं तत्संदिग्धं ममाहन्यहनि सर्वाः प्रजाः सुषुप्ते सत्संपद्यन्त इत्येतद्येन तत्संपद्य न विदुः सत्संपन्ना वयमिति। अतो दृष्टान्तेन मां प्रत्याययत्वित्यर्थः। एवमुक्तस्तथाऽतु सोम्येति होवाच पिता ॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

अस्येति षष्ठ्या सर्वं जगदुक्तम्। असंसारी संसारी वेति च्छेदः। मूलादेर्[1]विशेषं दर्शयति-परमार्थेति। कल्पितस्य जगतः स्वरूपं प्रत्यग्भूतमतात्त्विकमिति शङ्कां वारयति—सतत्त्वमिति। तत्त्वेन सहितमपि सतत्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—याथात्म्यमिति। कथमेवमर्थत्वमात्मशब्दस्य लभ्यते तत्राऽऽह—आत्मशब्दस्येति। सतो भवत्वात्मत्वं मम तु किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—अत इति। संदेहास्पदमेव विशिनष्टि—अहन्यहनीति। संदेहे हेतुमाह—येनेति। तेन संदिग्धमेतदिति पूर्वेण संबन्धः। संदेहव्यावृत्तिस्तर्हि कथमित्यत आह—अत इति। पुत्रस्य प्राप्तसंदेहापोहार्थमुत्तरग्रन्थमुत्थापयति—एवमिति॥७॥

इति षष्ठाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

आत्मा से आत्मा के सदृश ही समस्त जगत् है, इस समस्त जगत् की आत्मा कोई अन्य संसारी या असंसारी नहीं है। "इसे छोड़कर अन्य कोई द्रष्टा नहीं है, इसे छोड़ कर अन्य कोई श्रोता नहीं है" इत्यादि दूसरी श्रुतियों में भी कहा है। यह समस्त जगत् उस आत्मा से आत्म सदृश है, वह सत् सञ्ज्ञक कारण घट में मृत्तिका की तरह परमार्थतः सत्य है, इसलिए वही आत्मा कल्पित जगत् का प्रत्यक्स्वरूप तत्त्व सहित यथार्थ आत्मा है क्योंकि गवादि शब्द की तरह उपपद रहित 'आत्मा' शब्द प्रत्यक्स्वरूप अर्थ में रूढ है। अतः हे श्वेतकेतु! वह सत् आत्मा तुम ही हो। इस प्रकार विश्वास दिलाये जाने पर पुत्र बोला—हे भगवन्। मुझे इसमें अभी भी सन्देह बना हुआ है जो आपने कहा कि दिन-प्रतिदिन सभी प्रजाएँ सुषुप्ति में सत् में प्रतिष्ठित होती रहती हैं क्योंकि उस स्थिति का लाभ कर

१. मूलादेः—मृदादिलौकिकोपादाननिमित्तादेः सकाशादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ।)

यथा सोम्य मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳ रसान्समवहारमेकताꣳ रसं गमयन्ति ॥१॥

मधुमक्खियों के दृष्टान्त से सौषुप्त पुरुष का ज्ञान

हे प्रियदर्शन ! लोक में जैसे मधुमक्खियाँ तत्परता से मधु को तैयार करती हैं, उस समय वे नाना दिशाओं में स्थित वृक्षों के रस लाकर उन रसों का मधुरूप से एकता प्राप्त करा देती हैं॥ १ ॥

यत्पृच्छस्यहन्यहनि सत्संपद्य न विदुः सत्संपन्नाः स्म इति तत्कस्मादित्यत्र शृणु दृष्टान्तम् । यथा लोके हे सोम्य मधुकृतो मधु कुर्वन्तीति मधुकृतो मधुकरमक्षिका मधु निस्तिष्ठन्ति मधु निष्पादयन्ति तत्पराः सन्तः । कथम् । नानात्ययानां नानागतीनां नानादिक्कानां वृक्षाणां रसान्समवहारं समाहृत्य समाहृत्यैकतामेकभावं मधुत्वेन रसान्गमयन्ति मधुत्वमापादयन्ति ॥१॥

यथेत्यादिदृष्टान्तमवतारयति—यत्पृच्छसीति । प्रत्यहं सुषुप्ते सर्वाः प्रजाः सत्संपद्य सत्संपन्नाः स्मो वयमिति यन्न विदुस्तदज्ञानं कस्मात्कारणादिति यन्मां पृच्छसि तत्र सुषुप्तादावज्ञाने कारणभूतं दृष्टान्तमुच्यमानं शृणु त्वमिति योजना । यथा स दृष्टान्तः स्पष्टो भवति तथोच्यत इत्याह—यथेति । पुनर्मधुपदं क्रियापदेन संबन्धप्रदर्शनार्थम् । मधुकृतां मधुनिष्पादकत्वमाकाङ्क्षापूर्वकं दर्शयति—कथमित्यादिना । नानागतीनां नानाफलानामित्येतत् । बहूनां रसानां कथमेकतेत्याशङ्क्याऽऽह—मधुत्वेनेति तदेव स्पष्टयति—मधुत्वमिति ॥१॥

हम नहीं जान पाते कि हम सत् में प्रतिष्ठित हैं । इसलिए दृष्टान्त के द्वारा पुनः बताइएगा जिससे मुझे विश्वास हो जाए । पुत्र के ऐसे सन्देह को सुन कर उसे निराकरण करने के उद्देश्य से पिता आरुणि बोले—हे सोम्य ! ठीक है (तो सुनो) ॥ ७ ॥

'सुषुप्ति में प्रतिदिन सब प्रजाएँ सदुपलब्धि करती हैं परन्तु यह अज्ञान क्यों है, जिससे वे सत् में पूर्णता का अपने में अनुभव नहीं करतीं' ऐसा जो तुमने पूछा था, उसे दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं । हे सोम्य ! जिस प्रकार लोकव्यवहार में मधुमक्खियाँ मधु संग्रह करने में संलग्न रहती हैं । किस प्रकार करती हैं ? नाना दिशाओं के नाना फल वाले वृक्षों से रस इकट्ठा कर-करके उन रसों को मधुरूप से एकीभाव प्राप्ति कराती हैं ॥ १ ॥

---

१. मूले रसमिति च्छान्दसो वचनव्यत्ययः इत्याशयेनाह—रसानिति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ते यथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति सपद्यामह इति ॥२॥

त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा

(मधुरूप से एकता को प्राप्त हुए) वे रस उस मधु में इस प्रकार का विवेक नहीं कर सकते कि मैं उस वृक्ष का रस हूँ या मैं इस वृक्ष का रस हूँ। ठीक ऐसे ही ये सम्पूर्ण प्रजा सुषुप्ति काल में सत् को प्राप्त कर भी यह नहीं जानतीं, कि हम सत् को प्राप्त हो रही हैं॥ २॥

वे इस लोक में व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, सूकर, कीट पतंग, डाँसे या मच्छर जो भी सुषुप्ति में

ते रसा यथा मधुत्वेनैकतां गतास्तत्र मधुनि विवेकं न लभन्ते। कथम्, अमुष्याहमाम्रस्य पनसस्य वा वृक्षस्य रसोऽस्मीति। यथा हि लोके बहूनां चेतनावतां समेतानां प्राणिनां विवेकलाभो भवत्यमुष्याहं पुत्रोऽमुष्याहं नप्ताऽस्मीति। ते च लब्धविवेकाः सन्तो न संकीर्यन्ते न तथेहानेकप्रकारवृक्षरसानामपि मधुराम्लतिक्त-कटुकादीनां मधुत्वेनैकतां गतानां मधुरादिभावेन विवेको गृह्यत इत्यभिप्रायः। यथाऽयं दृष्टान्त इत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजा अहन्यहनि सति संपद्य सुषुप्तकाले मरण-प्रलययोश्च न विदुर्न विजानीयुः सति संपद्यामह इति संपन्ना इति वा॥२॥

यस्माच्चैवमात्मनः सद्रूपतामज्ञात्वैव सत्संपद्यन्ते। अतस्त इह लोके यत्कर्म-

---

ते यथेत्यादि व्याचष्टे—ते रसा इति। उक्तमर्थं वैधर्म्यदृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथा हीत्यादिना। इहेति प्रकृतदृष्टान्तोक्तिः। दृष्टान्तमनूद्य दार्ष्टान्तिकमाह—यथेति॥२॥

रसानामचेतनत्वेन विवेकानर्हत्वात्कथं चेतनावतामेवं दृष्टान्तः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—यस्मा-च्चेति। एवं यथोक्तरसदृष्टान्तवशेनेति यावत्। चेतनानामपि सुषुप्त्यादौ जाड्यास्कन्दिततया रस-

---

वे रस जिस प्रकार मधुरूप से एकीभाव को प्राप्त हो जाते हैं किन्तु मधु में परिणत हो जाने पर वे अपनी-अपनी वहाँ पृथक् प्रतीति नहीं कर पाते कि मैं आम अथवा पनस वृक्ष का रस हूँ। जिस प्रकार लोक व्यवहार में होता है कि कभी (उत्सवों एवं अन्य अवसरों पर प्रायः) बहुत से लोगों के एकत्रित होने पर एक-दूसरे का परिचय होता है कि "मैं अमुक का पुत्र हूँ, मैं अमुक का नाती हूँ" इत्यादि; एक दूसरे का ज्ञान होने पर वे मिश्रित नहीं होते किन्तु मधु दृष्टान्त में अनेक प्रकार के वृक्षों का मधुर अम्ल, तीखा, कड़वा आदि रस मधुरूप से एक होकर मधुरादि भाव का ही ज्ञान होता है। हे सोम्य! ठीक इसी दृष्टान्त की तरह ये समस्त प्रजाएँ दिन-प्रतिदिन सदुपलब्धि कर सुषुप्त अवस्था अथवा मरण-प्रलय काल में नहीं ज्ञान पातीं कि हम सत् से युक्त हो गई हैं॥ २॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भ-वन्ति तदाभवन्ति ॥३॥

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय

पूर्व विद्यमान होते हैं, पुनः वे ही हो जाते हैं। अर्थात् सहस्र कोटि युगों का अन्तर पड़ जाने पर भी अज्ञानी जीवों को पूर्व भावित वासना उद्बुद्ध होकर अभिनिवेश करा देती है ॥ ३ ॥

वह यह जो अणुरूप पदार्थ है, एतद्रूप ही यह सब कुछ है, वही सत्य है; वही आत्मा है,

---

निमित्तां यां यां जातिं प्रतिपन्ना आसन्व्याघ्रादीनां व्याघ्रोऽहं सिंहोऽहमित्येवं ते तत्कर्मज्ञानवासनाङ्किताः सन्तः सत्प्रविष्टा अपि तद्भावेनैव पुनराभवन्ति पुनः सत आगत्य व्याघ्रो वा सिंहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दंशो वा मशको वा यद्यत्पूर्वमिह लोके भवन्ति बभूवुरित्यर्थः। तदेव पुनरागत्य भवन्ति युगसहस्रकोटयन्तरिताऽपि संसारिणो जन्तोर्या पुरा भाविता वासना सा न नश्यतीत्यर्थः। "यथाप्रज्ञं हि संभवाः" इति श्रुत्यन्तरात् ॥३॥

ताः प्रजा यस्मिन्प्रविश्य पुनराविर्भवन्ति। ये त्वितोऽन्ये सत्सत्यात्माभिसंधा यमणुभावं सदात्मानं प्रविश्य नाऽऽवर्तन्ते स य एषोऽणिमेत्यादि व्याख्यातम्।

तुल्यत्वात्तेषां विवेकानर्हावस्थापत्तिमात्रे प्रकृतमुदाहरणमविरुद्धमिति भावः। सता संपन्नानामपि पुनरुत्थाने मुक्तानामपि तत्स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—संसारिण इति ॥३॥

स य एषोऽणिमेत्याद्यवतारयति—ताः प्रजा इति। इतः सद्विज्ञानरहितेभ्यः सकाशादिति

(रस अचेतन होने से विवेकशून्य हैं चेतन प्राणियों से कैसे दृष्टान्त संभव होगा अतः कहते हैं—) क्योंकि सद्रूपता की उपलब्धि बिना जाने ही हो जाती है, इसलिए वे इस लोक में जिस कर्म के कारण जिस-जिस व्याघ्रादि जाति को प्राप्त थे, अपने उस कर्म के ज्ञान की वासना से प्रेरित सत् में प्रविष्ट हुए भी "मैं व्याघ्र हूँ, मैं शेर हूँ" इस प्रकार उसी भाव से भावित हो जाते हैं। इसके पश्चात् सत् से पुनः आकर व्याघ्र, सिंह, भेड़िया सूकर, कीट, पतंग डाँस अथवा मच्छर जो-जो सुषुप्ति से पूर्व इस लोक में होते हैं, वे-वे हो जाते हैं। पुनः आकर भी वही होने से सिद्ध होता है कि सहस्र करोड़ युगों का अन्तर पड़ जाने पर भी संसारी जीव की पूर्वजन्म कृत वासना का नाश नहीं होता। "वे जीव पूर्व प्रज्ञा के अनुरूप उत्पन्न होते हैं" ऐसी दूसरी श्रुति भी है ॥ ३ ॥

सद्विज्ञान से रहित वे प्रजाएँ जिसमें प्रविष्ट होकर पुनः आविर्भूत हो जाती हैं तथा इसके विपरीत सत्य में दृढ निष्ठा वाली ये प्रजाएँ जिस अणु भाव सत्तत्त्व में प्रविष्ट हो पुनः जन्म नहीं लेतीं; वह तत्त्व सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, ऐसी व्याख्या की जा चुकी। इस पर श्वेतकेतु अन्य दृष्टान्त के बल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः।)

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चा- त्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र

किंबहुना हे श्वेतकेतो ! तू भी वही है। आरुणि के उपदेश को सुनकर श्वेतकेतु ने कहा–भगवान्! मुझे पुनः समझावें। तत्पश्चात् आरुणि ने कहा, हे सोम्य ! अच्छी बात ॥४॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

नदी के दृष्टान्त से ब्रह्म आत्मा की एकता का वर्णन

हे प्रियदर्शन ! ये पूर्व की ओर बहने वाली (गङ्गा-यमुनादि) नदियाँ पूर्वदिशा की ही ओर बहती हैं (सिन्धु आदि) पश्चिमवाहिनी होकर पश्चिमदिशा की ओर बहती हैं। वे जल निधि समुद्र से (मेघों द्वारा आकृष्ट होकर वृष्टि रूप से बरस कर गंगादिरूप में बहती हुई) पुनः समुद्र में मिल जाती

यथा लोके स्वकीये गृहे सुप्त उत्थाय ग्रामान्तरं गतो जानाति स्वगृहादागतोऽस्मीत्येवं सत आगतोऽस्मीति च जन्तूनां कस्माद्विज्ञानं न भवतीति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्वित्युक्तस्तथा सोम्येति होवाच पिता ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

शृणु तत्र दृष्टान्तं यथा सोम्येमा नद्यो गङ्गाद्याः पुरस्तात्पूर्वां दिशं प्रति प्राच्यः

यावत्। ते यमणुभावमिति 'तच्छब्दोऽध्याहर्तव्यः। प्रश्नान्तरं दृष्टान्तबलादुत्थापयति—यथेति। सतोऽहमागतोऽस्मीत्युत्थितस्य ज्ञानाभावं दृष्टान्तेनोपपादयितुमुत्तरग्रन्थमुत्थापयति—इत्युक्त इति ॥४॥

इति षष्ठाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

आगमनावध्यपरिज्ञानं तत्रेत्युक्तम् ॥१॥

से पुनः प्रश्न करता है। जिस प्रकार लोक व्यवहार में अपने घर सोया हुआ उठकर जब किसी दूसरे ग्राम में जाता है तो इतना जानता है कि मैं अपने घर से आया हूँ, इस प्रकार प्राणियों को ज्ञान क्यों नहीं होता कि मैं सत्तत्त्व से आया हूँ ? हे भगवन् ! मुझे पुनः इसका विशद वर्णन कीजिए। इसे दृष्टान्त से समझाने के लिए पिता ने कहा—हे सोम्य ! ठीक है, अब इसे बतलाता हूँ ॥४॥

सत्तत्त्व से आने की अज्ञता के संबन्ध में दृष्टान्त सुनो—हे सोम्य ! जिस प्रकार पूर्व दिशा की

---

१. तच्छब्द इति—तथा च ये त्वितोऽन्ये यथोक्तविशेषणास्ते यमणुभावमित्यन्वय इति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति ॥१॥

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति ॥२॥

हैं और वह समुद्र ही हो जाता है। जैसे समुद्र के साथ एकता को प्राप्त हुई वे सब यह नहीं जानतीं कि यह मैं गङ्गा हूँ या यह मैं यमुना हूँ यह मैं हूँ, यही मैं हूँ ॥ १ ॥

हे सोम्य ! ठीक इसी प्रकार ये सम्पूर्ण प्रजायें उस सत् से आने पर यह नहीं जानतीं कि हम सत् से निकल कर आयी हैं, (सुषुप्ति से पूर्व जो प्राणी जिस शरीर में थे सुषुप्ति से उठने पर भी पुनः) इस लोक में वे व्याघ्र, सिंह, कीट, पतंग, डाँसे या मच्छर जो भी होते हैं, वे ही फिर हो जाते हैं ॥२॥

प्रागञ्चनाः स्यन्दन्ते स्रवन्ति। पश्चात्प्रतीचीं दिशं प्रति सिन्ध्वाद्याः प्रतीचीमञ्चन्ति गच्छन्तीति प्रतीच्यस्ताः समुद्रादम्भोनिधेर्जलधरैराक्षिप्ताः पुनर्वृष्टिरूपेण पतिता गङ्गादिनदीरूपिण्यः पुनः समुद्रमम्भोनिधिमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता नद्यो यथा तत्र समुद्रे समुद्रात्मनैकतां गता न विदुर्न जानन्तीयं गङ्गाऽहमस्मीयं यमुनाऽहमस्मीति ॥१॥

एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजा यस्मात्सति संपद्य न विदुस्तस्मात्सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह आगता इति वा। त इह व्याघ्र इत्यादि समानमन्यत्। दृष्टं लोके जले वीचीतरङ्गफेनबुद्बुदादय उत्थिताः पुनस्तद्भावं गता विनष्टा

प्रश्नान्तरं व्याचष्टे—दृष्टमिति। विनष्टा इति लोके दृष्टमिति संबन्धः। जीवास्तु प्रत्यहं सुषु-

---

ओर बहने वाली ये गङ्गा-यमुनादि नदियाँ निरन्तर पूर्व दिशा की ओर बहती रहती हैं। पश्चिम की ओर बहने वाली सिन्धु शतद्रु आदि नदियाँ निरन्तर पश्चिम दिशा की ओर बहती रहती हैं। वे समुद्र से बादलों द्वारा जल को खींच कर पुनः वर्षा रूप में बरस कर गङ्गादि रूप में बहती हुई पुनः समुद्र में मिलती हैं, वह सब जल समुद्र रूप ही हो जाता है। जिस प्रकार समुद्र से मिल जाने पर एकीभाव को प्राप्त हुई वे नदियाँ समुद्र के जल में यह नहीं जान पातीं कि यह गङ्गा में यहाँ हूँ, यह यमुना मैं यहाँ हूँ ॥ १ ॥

हे सोम्य ! इसी प्रकार सभी प्रजाएँ सत् की उपलब्धि कर लेने पर अपनी पहचान नहीं कर पाती कि हम सत् में आ गई हैं। आगे "त इह व्याघ्रो" की व्याख्या पूर्व मन्त्र के समान है। (दूसरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वꣳ तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

(अथ षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।)

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्या-

वह जो यह अत्यन्त सूक्ष्मरूप है एतद्रूप ही सब है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु ! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा—) भगवन् ! मुझे फिर से समझाइए। (आरुणि ने कहा—) हे सोम्य ! अच्छी बात फिर समझाता हूँ ॥ ३ ॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

वृक्ष के दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश

हे सोम्य ! सामने स्थित अनेक शाखादि से युक्त इस महान् वृक्ष के मूल में यदि कोई आघात करे तो वह (एक ही आघात से सूख नहीं जाता किन्तु) जीवित रहते हुए ही केवल रसस्राव करे

इति। जीवास्तु तत्कारणभावं प्रत्यहं गच्छन्तोऽपि सुषुप्ते मरणप्रलययोश्च न विनश्यन्तीत्येतत्। भूय एव मा भगवान्विज्ञापयतु दृष्टान्तेन। तथा सोम्येति होवाच पिता ॥२॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

शृणु दृष्टान्तमस्य हे सोम्य महतोऽनेकशाखादियुक्तस्य वृक्षस्यास्येत्यग्रतः स्थितं

प्यवस्थायां मरणप्रलययोश्च कारणभावं गच्छन्तोऽपि न विनश्यन्तीति यदेतत्तदिति योजना। जीवविनाशं शङ्कमानस्य प्रतिबोधनार्थमुत्तरं वाक्यमुत्थापयति—तथेति ॥२॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

जीवस्य नाशाभावं वक्तुमादौ दृष्टान्तमाह—शृण्विति ॥१॥

प्रश्न से स्पष्ट करने को कहते हैं—) लोक प्रसिद्ध है कि जल में उठने वाली लहर, तरङ्ग, फेन और बुद्बुद आदि उठकर पुनः जल भाव को प्राप्त होकर विनष्ट हो जाती हैं। जीव तो अपने कारण में प्रतिदिन लीन होने पर सुषुप्त और मरण-प्रलयकाल नष्ट नहीं होते हैं। अतः हे भगवन् ! मुझे पुनः दृष्टान्त के द्वारा इसे अच्छी तरह समझाओ। पिता ने कहा—हे सोम्य ! सुनो ! मैं उसे कहता हूँ ॥२॥३॥

अपने समक्ष खड़े हुए अनेक शाखादि से युक्त वृक्ष को दिखाते हुए आरुणि कहते हैं—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रभूतः पेपीय-
मानो मोदमानस्तिष्ठति ॥१॥

अस्य यदेकाँ शाखां जीवो जहात्यथ सा
शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति
तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः
शुष्यति ॥२॥

लग जाता है। यदि मध्य में कुठाराघात किया जाय तो भी यह वृक्ष जीवित रहते हुए केवल रसस्राव ही करेगा और यदि कोई उसके अग्रभाग में आघात करे तो भी यह जीवित रहते हुए ही रसस्राव करता रहेगा, क्योंकि यह वृक्ष जीवात्मा से ओत-प्रोत है और केवल जलपान करता हुआ (तथा अपनी जड़ों से पृथिवी के रसों को ग्रहण करता हुआ) सानन्द स्थित रहता है ॥ १ ॥

यदि इस वृक्ष की रोगग्रस्त किसी एक शाखा को जीव छोड़ देता है, तो वह शाखा सूख जाती है। यदि दूसरी को छोड़ देता है, तो वह सूख जाती है और यदि तीसरी को छोड़ देता है तो वह भी सूख जाती है। ऐसे ही यदि सम्पूर्ण वृक्ष को जीव छोड़ देता है, तो सम्पूर्ण वृक्ष सूख जाता है (इन युक्तियों से वृक्षादि में सजीवता सिद्ध होती है) ॥ २ ॥

वृक्षं दर्शयन्नाह। यदि यः कश्चिदस्य मूलेऽभ्याहन्यात्परश्वादिना सकृद्घातमात्रेण न शुष्यतीति जीवन्नेव भवति तदा तस्य रसः स्रवेत्। तथा यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीव-न्स्रवेत्तथा योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष वृक्ष इदानीं जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रभूतोऽनुव्याप्तः पेपीयमानोऽत्यर्थं पिबन्नुदकं भौमांश्च रसान्मूलैर्गृह्णन्मोदमानो हर्षं प्राप्नुवंस्तिष्ठस्ति ॥१॥

तस्यास्य यदेकां शाखां रोगग्रस्तामाहतां वा जीवो जहात्युपसंहरति शाखायां विप्रसृतमात्मांशम्। अथ सा शुष्यति। वाङ्मनःप्राणकरणग्रामानुप्रविष्टो हि जीव

ननु रोगग्रस्तायां वातोपहतायां वा शाखायां प्राणोपसंहारेऽपि कुतो जीवोपसंहारः संभवति तत्राऽऽह—वागिति। ननु वृक्षे जीवस्य सद्भावे तत्रोपसंहारानुपसंहारौ वक्तव्यौ तत्र तस्य सत्त्वं तु

सोम्य! कोई इस वृक्ष के मूलभाग में कुल्हाड़े आदि से काटे तो चोट लगने मात्र से ही वह वृक्ष नहीं सूखता, हरा भरा ही रहता है, तब उसका रस बहने लगता है। इसी प्रकार यदि इस वृक्ष को कोई मध्य भाग में चोट लगाये, तब भी यह हरा-भरा रहता हुआ रस बहाता है। पुनः यदि कोई ऊपर के भाग को कुल्हाड़े से काटे, तो भी हरा भरा रहता हुआ वृक्ष रस बहाता है। यह वृक्ष इस जीवात्मा से ओत-प्रोत है, केवल जल का ग्रहण करता हुआ एवं जड़ों से पृथिवी के रसों को ग्रहण करता हुआ हर्षित हुआ स्थित रहता है ॥ १ ॥

यदि उस वृक्ष की एक शाखा को रोग ग्रस्त अथवा आघात लगने से जीव शाखा में फैले हुए आत्मांश को छोड़ देता है तो वह सूख जाती है। वाणी, मन, इन्द्रिय समूह में प्रविष्ट जीव है, उनके लीन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवा-

हे सोम्य ! ठीक इसी प्रकार तू जान ले कि जीव से रहित हुआ यह शरीर ही मरता है, जीव

इति तदुपसंहार उपसंह्रियते । जीवेन च प्राणयुक्तेनाशितं पीतं च रसतां गतं जीवच्छरीरं वृक्षं वर्धयद्रसरूपेण जीवस्य सद्भावे लिङ्गं भवति । अशितपीताभ्यां हि देहे जीवस्तिष्ठति ते चाशितपीते जीवकर्मानुसारिणी इति तस्यैकाङ्गवैकल्पनिमित्तं कर्म यदोपस्थितं भवति तदा जीव एकां शाखां जहाति शाखाया आत्मानमुपसंहरति। अथ तदा सा शाखा शुष्यति । जीवस्थितिनिमित्तो रसो जीवकर्माक्षिप्तो जीवोपसंहारे न तिष्ठति । रसापगमे च शाखा शोषमुपैति । तथा सर्वं वृक्षमेव यदाऽयं जहाति तदा सर्वोऽपि वृक्षः शुष्यति । वृक्षस्य रसस्रवणशोषणादिलिङ्गाज्जीववत्त्वं दृष्टान्तश्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति बौद्धकाणादमतमचेतनाः स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति ॥२॥

यथाऽस्मिन्वृक्षदृष्टान्ते दर्शितं जीवेन युक्तो वृक्षोऽशुष्को रसपानादियुक्तो जीवती-

---

कुतस्त्यमत आह—जीवेन चेति । रसरूपेण वर्धयदिति संबन्धः । वृक्षशरीरे जीवस्य सत्त्वेऽपि किमि-त्यसौ कदाचित्तदीयामेकां शाखां जहातीत्याशङ्क्याऽऽह—अशितेति । जीवोपसंहारेऽपि किमिति शाखा शुष्यति तत्राऽऽह—जीवस्थितीति । जीवस्य स्थितिर्निमित्तं यस्येति विग्रहः । तथा शाखायामुक्तप्रका-रेणेति यावत् । यत्तु वैशेषिकवैनाशिकाभ्यां स्थावराणां निर्जीवत्वेनाचेतनत्वमुक्तं तदेतन्निरस्तमित्याह-वृक्षस्येति । आदिशब्दो वृद्धिमोदादिसंग्रहार्थः । स एष वृक्षो जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रभूत इति दृष्टान्त-श्रुतिः ॥२॥

श्रुतिदृष्टान्ते विवक्षितमंशमनूद्य दार्ष्टान्तिकमाह—यथेत्यादिना । जीवस्य सुषुप्ते नाशाभावे

हो जाने पर उसका भी लय हो जाता है। वृक्ष में जीव की सत्ता में प्रमाण यह है कि प्राण संयुक्त जीव के द्वारा खाया-पीया रस भाव को प्राप्त हुआ जीते हुए वृक्ष शरीर को बढ़ाता हुआ रस रूप से जीव की सत्ता की अभिव्यक्ति करता है। खाते-पीते रहने पर ही शरीर में जीव स्थित रहता है, खान-पान जीव को उसके कर्मों के अनुसार मिलता है, उसके किसी अङ्ग के टूटने-अलग होने का कर्म जब उसे आ घेरता है तो जीव एक शाखा को छोड़ देता है, उस शाखा से अपनापन हटा लेता है। तब वह शाखा जीवविहीन हो सूख जाती है। रस जीव की स्थिति रहते-रहते संभव है, जीव के कर्मानुसार जुड़ा रहता है, जीव के अलगाव कर लेने पर वह नहीं रहता। रस निकलने पर शाखा भी सूख जाती है। जब पूर्ण वृक्ष को जीवात्मा छोड़ देती है तो सारा ही वृक्ष सूख जाता है। वृक्ष के रसस्राव एवं सूख जाने से उसमें जीव की सत्ता सिद्ध हो जाती है, वह जीवात्मा स्थावर होता हुआ भी चेतनायुक्त है, यह दृष्टान्त श्रुति बौद्ध एवं काणाद के मत को मिथ्या सिद्ध करती है कि स्थावर सृष्टि सजीव नहीं होती ॥ २ ॥

इस वृक्ष दृष्टान्त में दिखाया गया जीवयुक्त हरा भरा वृक्ष रस पीता हुआ जीवित कहा जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ।.६।।

इति षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।।११।।

नहीं मरता है। ऐसा आरुणि ने कहा—यह जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म चेतनतत्त्व है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है, हे श्वेतकेतु ! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा—) हे भगवन् ! (किसी अन्य दृष्टान्त द्वारा) मुझे फिर भी इस तत्त्व को समझाइए। तब आरुणि ने कहा—हे सोम्य ! अच्छी बात ।। ३ ।।

।। इत्येकादशः खण्डः ।।

त्युच्यते तदपेतश्च म्रियत इत्युच्यते। एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच—जीवापेतं जीववियुक्तं वाव किलेदं शरीरं म्रियते न जीवो म्रियत इति। कार्यशेषे च सुप्तोत्थितस्य ममेदं कार्यशेषमपरिसमाप्तमिति स्मृत्वा समापनदर्शनात्। जातमात्राणां च जन्तूनां स्तन्याभिलाषभयादिदर्शनाच्चातीतजन्मान्तरानुभूतस्तन(न्य)पानदुःखानुभवस्मृतिर्गम्यते। अग्निहोत्रादीनां च वैदिकानां कर्मणामर्थवत्त्वान्न जीवो म्रियत इति। स य एषोऽणिमेत्यादि समानम्। कथं पुनरिदमत्यन्तस्थूलं पृथिव्यादि नामरूपवज्जगद-

---

हेत्वन्तरमाह—कार्यशेषे चेति। तस्मिन्सति सुषुप्तो भूत्वा पुनरुत्थितस्य कार्यस्य शेषोऽस्ति यस्मिन्कर्मणि तदिदं ममासमाप्तमिति स्मृत्वा तस्य समापनदर्शनान्न स्वापे जीवो नश्यतीत्यर्थः। मरणकाले तन्नाशाभावे हेत्वन्तरमाह—जातमात्राणामिति। आद्यश्चकारः समुच्चये द्वितीयोऽवधारणे। जीवस्य प्रलयादावविनाशे कारणान्तरमाह—अग्निहोत्रादीनामिति। इतिशब्दो जीवस्य नित्यत्वोपसंहारार्थः। यदुक्तं सन्मूलाः सोम्येत्यादि तत्र चोदयति—कथं पुनरिति। विलक्षणयोर्न कार्यकारणत्वमिति

है, रसविहीन हो जाने पर मरा हुआ कहा जाता है, ठीक इसी प्रकार हे सोम्य ! तुम्हें समझना चाहिये, ऐसा पिता ने कहा। जीवात्मा से विरहित यह शरीर मर जाता है, जीवात्मा कभी नहीं मरता। सुषुप्ति में जीव की सत्ता में यह भी ज्ञापक है—कर्तव्यशेष रहने पर निद्रा से उठने पर जीव स्मरण करता है कि मुझे यह अधूरा कार्य पूरा करना है, इस प्रकार उस कर्तव्य कर्म की पूर्ति करता है। मरणकाल में जीव के नाश न होने में यह प्रमाण है कि पैदा होते ही बालक को माता के स्तनपान की अभिलाषा, उसमें भय का दर्शन होता है; जिससे सिद्ध होता है कि इस जीवात्मा को पिछले जन्मों के

---

१. गच्छतीति—जगत्सद्विलक्षणमिति भावः। २. ज्ञापकान्तरम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ।)

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना

वटवृक्ष के दृष्टान्त से सत्यात्मा का उपदेश

इस महान् वटवृक्ष से बरगद का एक फल ले आओ, (इसे सुनकर श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया और बोला--) भगवन् ! मैं यह फल ले आया हूँ (पिता ने कहा)—इसे फोड़ो। (श्वेतकेतु बोला-) हे भगवन् ! फोड़ दिया है। आरुणि ने कहा—इसमें क्या देखते हो। श्वेतकेतु ने कहा—भगवन्! इसमें ये अणुपरिमाण के समान दाने हैं। आरुणि ने कहा—अच्छा बेटा ! इन दानों में से एक को

त्यन्तसूक्ष्मात्सद्रूपान्नामरूपरहितात्सतो जायत इत्येतद्दृष्टान्तेन भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच पिता ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

यद्येतत्प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छस्यतोऽस्मान्महतो न्यग्रोधात्फलमेकमाहरेत्युक्तस्तथा चकार स इदं भगव उपहृतं फलमिति दर्शितवन्तं प्रत्याह फलं भिन्द्धीति। भिन्नमित्याहेतरः। तमाह पिता किमत्र पश्यसीत्युक्त आहाण्व्योऽणुतरा इवेमा धाना बीजानि पश्यामि

शङ्कमानं प्रतिबोधयितुमुत्तरं वाक्यमुपादत्ते—तथेति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

स्थूलस्य कार्यस्य सूक्ष्ममुख्यकारणत्वमेतदित्युच्यते[1]। अस्य सोम्य महतो वृक्षस्येति प्रकृतं वृक्षं

स्तनपान एवं दुःख को अनुभव करने की स्मृति बनी है। अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म भी निष्प्रयोजन नहीं हैं, उनसे भी सिद्ध होता है कि नित्य जीवात्मा का प्रलयादि में नाश नहीं होता। "वह सत्तत्त्व सूक्ष्म अणुभाव युक्त है"—इत्यादि मन्त्र की व्याख्या पूर्वमन्त्रों के भाष्य की तरह ही समझ लेनी चाहिए। श्वेतकेतु पूछता है—भगवन् ! अत्यन्त सूक्ष्म नामरूप से विलक्षण सत्तत्त्व से यह अत्यन्त स्थूल नामरूप उपाधि वाला पृथिव्यादि जगत् कैसे हुआ, यह पुनः दृष्टान्त से समझाइए। विलक्षण का कार्य-कारण-भाव कैसे हो सकता है। इस पर पिता बोले—हे सोम्य ! सुनो ॥ ३ ॥

ऐसे स्थूल कार्य को जिसका मुख्य कारण सूक्ष्म है, यदि उस सूक्ष्म तत्त्व को प्रत्यक्ष करना चाहते हो तो सामने लगे विशाल बरगद के पेड़ से एक फल ले आओ। श्वेतकेतु उसी समय वह फल ले आया। लाकर बोला—भगवन् यह देखिए ! फल ले आया हूँ। देखते-देखते पिता बोले—इस फल के टुकड़े कर दो। पुत्र बोला—लीजिए, टुकड़े कर दिए। पिता ने पूछा—इसमें तुम क्या देख

---

१. सूक्ष्मं मुख्यं कारणं यस्य तत्त्वम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भगव इति किमत्र पश्यसीति न किंचन भगव इति ॥१॥

त७ होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं निभालयस एतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व सोम्येति ॥२॥

छोड़ो। तब श्वेतकेतु ने उसे फोड़ दिया (और उसने कहा—) इसे फोड़ दिया, भगवन् ! आरुणि ने कहा—इसमें क्या देखते हो ? श्वेतकेतु बोला—कुछ नहीं भगवन् ! ॥ १ ॥

श्वेतकेतु से पिता ने कहा—हे प्रियदर्शन ! इस वटवृक्ष की जिस सूक्ष्मता को तुम नहीं देखते हो, हे सोम्य ! उस अणिमा का ही कार्यभूत इतना बड़ा यह वटवृक्ष खड़ा है। हे प्यारे ! (हमारे इस वचन में) तुम श्रद्धा करो ॥ २ ॥

भगव इति। आसां धानानामेकां धानामङ्ग हे वत्स भिन्द्धीत्युक्त आह भिन्ना भगव इति। यदि भिन्ना धाना तस्यां भिन्नायां किं पश्यसीत्युक्त आह न किंचन पश्यामि भगव इति ॥१॥

तं पुत्रं होवाच वटधानायां भिन्नायां यं वटबीजाणिमानं हे सोम्यैतं न निभालयसे न पश्यसि। तथाऽप्येतस्य वै किल सोम्यैष महान्यग्रोधो बीजस्याणिम्नः सूक्ष्मस्यादृश्यमानस्य कार्यभूतः स्थूलः शाखास्कन्धफलपलाशवांस्तिष्ठत्युत्पन्नः सन्नुत्तिष्ठ-

---

तरामृशति—अत इति ॥२॥

यमेतमणिमानं न पश्यस्येतस्याणिम्नो बीजस्येति संबन्धः। तथाऽपीत्यत्यन्ताणुत्वाददर्शने-

---

रहे हो ? पुत्र बोला—हे भगवन् ! इनमें मैं बहुत सूक्ष्म-सूक्ष्म बीज देख रहा हूँ। तब पिता बोले—हे वत्स ! इन बीजों में से एक बीज लेकर उसके टुकड़े करो। पुत्र बोला—हे भगवन् ! इस एक बीज के भी टुकड़े कर दिए। पिता ने पूछा—यदि उस बीज के तुमने टुकड़े कर दिए तो बताओ, अब उस टुकड़े किए हुए बीज में तुम क्या देख रहे हो ? पुत्र बोला—हे भगवन् ! इसमें तो मुझे कुछ भी नजर नहीं आ रहा है ॥ १ ॥

पिता ने पुत्र श्वेतकेतु से कहा—हे सोम्य ! भिन्न किए हुए बरगद के बीज की सूक्ष्मता को तुम नहीं देख पा रहे हो। अत्यन्त अणु होने से दर्शन न कर पाने के कारण भी हे सोम्य ! यह बीज कितना अणु सूक्ष्म अदृश्यमान है किन्तु इसी का कार्य भूत अत्यन्त विशाल बरगद का पेड़ है, जो शाखा, तने फल पत्तों से युक्त होकर ऊँचा खड़ा है। मन्त्र में 'उत्' शब्द का अध्याहार कर लेना

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भग-

वह जो यह अत्यन्त सूक्ष्मतत्त्व है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वही आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। (इस पर श्वेतकेतु ने कहा—) भगवन्! दृष्टान्त द्वारा

तीति वोच्छब्दोऽध्याहार्योऽतः श्रद्धत्स्व सोम्य सत एवाणिम्नः स्थूलं नामरूपादिमत्कार्यं जगदुत्पन्नमिति। य पि न्यायागमाभ्यां निर्धारितोऽर्थस्तथैवेत्यवगम्यते तथाऽप्यत्यन्तसूक्ष्मेष्वर्थेषु बाह्यविषयासक्तमनसः स्वभावप्रवृत्तस्यासत्यां गुरुतरायां श्रद्धायां दुरवगमत्वं स्यादित्याह श्रद्धत्स्वेति। श्रद्धायां तु सत्यां मनसः समाधानं बुभुत्सितेऽर्थे भवेत्ततश्च तदर्थावगतिः। "अन्यत्रमना अभूवम्" इत्यादिश्रुतेः ॥२॥

स य इत्याद्युक्तार्थम्। यदि तत्सज्जगतो मूलं कस्मान्नोपलभ्यत इत्येतद्दृष्टान्तेन

ऽपीत्यर्थः। अत्यन्तसूक्ष्माद्बीजादत्यन्तस्थूलस्य वृक्षस्योत्पत्त्युपलम्भोऽतःशब्दार्थः। सन्मूलाः सोम्येत्यादिश्रुत्या 'दृश्यते त्विति न्यायेन च जगतः सत्कार्यत्वे सिद्धे श्रद्धामन्तरेणापि तन्निर्णयसंभवात्किमिति श्वेतकेतुः श्रद्धत्स्वेति पित्रा नियुज्यते तत्राऽऽह—यद्यपीति। सत्यामपि श्रद्धायां कथं बाह्यविषयासक्तमनसोऽत्यन्तसूक्ष्मेष्वर्थेष्ववगमः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—श्रद्धायां त्विति। मनः समाधानवशाद्बुभुत्सितस्यावगतिरित्यत्र बृहदारण्यकश्रुतिं संवादयति—अन्यत्रेति ॥२॥

प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानत्वान्नास्तीति मन्वानः शङ्कते—यदीति। अनुपलभ्यमानस्यापि सत्त्वमाशङ्क्याऽऽह—इत्येतदिति। अप्रत्यक्षस्यापि जगन्मूलस्यास्तित्वं प्रतिपादयितुमुत्तरग्रन्थमवतारयति—

चाहिए। हे सोम्य! मेरे उपदेश पर श्रद्धा करो कि अत्यन्त सूक्ष्म सत्तत्त्व से नाम रूपादियुक्त स्थूल कार्यरूप जगत् उत्पन्न हुआ है। यद्यपि "सन्मूलक जगत् है" इस आगम से एवं "दृश्यते तु" (ब्र. सू. २।१।६) इस न्याय से जगत् का सत्कार्यत्व सिद्ध कर दिया है तथापि अत्यन्त सूक्ष्म अर्थों को समझना उसके लिए तो अत्यन्त कठिन है; जिसका मन बाह्य विषयों में फँसा हुआ है, जो स्वाभाविक गुणों में पड़ा हुआ है, जिसमें अत्यधिक श्रद्धा का अभाव है; इसलिए मेरे वचनों में श्रद्धा करो। (इस पर शङ्का होती है—श्रद्धा होने पर भी यदि मन बाह्य विषयों में संसक्त रहा तो अत्यन्त सूक्ष्म अर्थों का ज्ञान कैसे होगा; इस पर कहते हैं—) श्रद्धा होनें पर जिज्ञासित अर्थ में मन का समाधान हो जाएगा, मन के समाधान होने से सूक्ष्म अर्थों का सम्यक् ज्ञान हो जाएगा। बृहदारण्यक श्रुति में आत्मा के तीन अन्नों की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए कहा है—"मन, वाणी और प्राण को प्रजापति ने अपने लिए सुरक्षित रखा। मेरा मन कहीं अन्यत्र था अतः देख न सका"। इससे निश्चित होता है, मन से ही देखता है, मन से ही सुनता है ॥ २ ॥

---

१. बृ. उ. १।५।३। २. "दृश्यते तु" (ब्र० सू० २।१।६) चेतनात्पुरुषादचेतनानां नखलोमादीनामचेतनाच्च गोमयाच्चेतनवृश्चिकादीनामुत्पत्तिर्दृश्यत इति सूत्रार्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।)

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳ होवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद ॥१॥

...र से मुझे इस तत्त्व को समझाइए। तब आरुणि ने कहा—हे सोम्य ! अच्छी बात ॥ ३ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

लवण दृष्टान्त से सत्य आत्मा का उपदेश

इस नमक की डली को जल में डालकर कल प्रातः काल मेरे पास आना। इस प्रकार पिता के कहने पर सत्य के जिज्ञासु श्वेतकेतु ने वैसा ही किया (दूसरे दिन सबेरे ही) आरुणि ने श्वेतकेतु से कहा-हे वत्स ! रात्रि में जो तुमने लवण पानी में डाला था, उसे ले आओ ! इस प्रकार पिता के कहने से उसने जल में नमक को टटोला, पर ढूंढने पर भी जल में विद्यमान भी लवण को वह प्राप्त न कर सका ॥१॥

...वा भगवान्भूय एव विज्ञापयत्विति। तथा सोम्येति होवाच पिता ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

विद्यमानमपि वस्तु नोपलभ्यते प्रकारान्तरेण तूपलभ्यत इति शृण्वत्र दृष्टान्तम्। यदि चेममर्थं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छसि पिण्डरूपं लवणमेतद्घटादावुदकेऽवधाय प्रक्षिप्याथ

...यत्विति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

नोपलभ्यते स्वेन प्रकारेणेति शेषः। इतीममर्थं प्रत्यक्षीकर्तुं यदीच्छसि तर्हि दृष्टान्तमत्र शृण्विति योजना। रात्रेरत्ययानन्तर्यमथशब्दार्थः। जगन्मूलं स्वतोऽप्रत्यक्षमपि प्रत्यक्षमुपायान्तरेणेति पित्रोक्तो-...र्थस्तं प्रत्यक्षीचिकीर्षुर्घटादावुदके पिण्डरूपं लवणं रात्रौ प्रक्षिप्य तदत्ययानन्तरं प्रातःकाले पितृ-

---

वह सत्तत्त्व अणुभाव सम्पन्न है इत्यादि व्याख्या पूर्ववत् है। जब जगत् के मूल सत् की प्रत्यक्ष उपलब्धि नहीं हो सकती तो कैसे मानें; अतः हे भगवन् ! प्रत्यक्ष दृष्टान्त से मुझे पुनः बताने की कृपा करें। पिता बोला—हे सोम्य ! सुनाता हूँ सुनो ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष विद्यमान वस्तु भी अपने स्वरूप से उपलब्ध नहीं होती, दूसरे रूप में दीखती है, इसे दृष्टान्त से सुनो। इस अर्थ को यदि प्रत्यक्ष करना चाहते हो तो लवण के एक टुकड़े को (रात्रि को) घटादि में स्थित जल में डाल देना और प्रातः मेरे पास चले आना। पिता के द्वारा उस अर्थ का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्य-न्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ

जैसे वह नमक उसी जल में विलीन हो गया है, (इसलिये तू उसे जान नहीं सकता) फिर तू इस जल को ऊपर से आचमन कर (उसके वैसा करने पर पिता ने पूछा) कैसा है! (श्वेतकेतु ने कहा) नमकीन है। बीच में से आचमन कर, अब कैसा मालूम पड़ता है? नमकीन है। नीचे से आच-मन कर। अब कैसा है? नमकीन है। आरुणि ने कहा—यदि ऐसा है तो इस जल को फेंक कर (आच-

---

मा मां श्वः प्रातरुपसीदथा उपगच्छेथा इति। स ह पित्रोक्तमर्थं प्रत्यक्षीकर्तुमिच्छंस्तथा चकार। तं होवाच परेद्युः प्रातर्यल्लवणं दोषा रात्रावुदकेऽवाधा निक्षिप्तवानस्यङ्ग हे वत्स तदाहरेत्युक्तस्तल्लवणमाजिहीर्षुर्ह किलावमृश्योदके न विवेद न विज्ञातवान्यथा तल्लवणं विद्यमानमेव सदप्सु विलीनं संश्लिष्टमभूत् ॥१॥

यथा विलीनं लवणं न वेत्थ तथाऽपि तच्चक्षुषा स्पर्शनेन च पिण्डरूपं लवणम-गृह्यमाणं विद्यत एवाप्सूपलभ्यते चोपायान्तरेणेत्येतत्पुत्रं प्रत्याययितुमिच्छन्नाहाङ्गा-स्योदकस्यान्तादुपरिष्टाद् गृहीत्वाऽऽचामेत्युक्त्वा पुत्रं तथाकृतवन्तमुवाच कथमितीतर आह लवणं स्वादत इति। तथा मध्यादुदकस्य गृहीत्वाऽऽचामेति कथमिति लवणमिति।

समीपं श्वेतकेतुर्गतवानित्याह—स हेति। यथा तत्पिण्डरूपं लवणं प्रक्षेपात्प्रागभूत्तथा न विज्ञात-वानिति संबन्धः। उदके प्रक्षिप्तं लवणं विमृश्यापि न विज्ञायते चेदसदेव तर्हि तदित्याशङ्क्याऽऽह—विद्यमानमेवेति। किमिति तर्हि चक्षुषा स्पर्शेन वा नोपलभ्यते तत्राऽऽह—अप्स्विति ॥१॥

कथं तर्हि तस्य विद्यमानत्वमवगतं तत्राऽऽह—यथेति। यद्यपि पिण्डरूपं लवणमुदके क्षिप्तमव-

---

प्रत्यक्ष करने की इच्छा से सत्यकेतु ने वैसे ही किया। अगले दिन प्रातः पिता ने उसे कहा—हे वत्स! रात्रि को जो लवण तूने जल में डाला था, उसे ले आओ। यह सुनकर पुत्र ने उस लवण को जलयुक्त घट से निकाल लाने की इच्छा से उसे जल में अच्छी प्रकार देखा परन्तु उसकी उस रूप में उपलब्धि न कर सका क्योंकि सत्तत्त्व की तरह वह लवण उसमें विद्यमान होता हुआ भी जल में घुल मिल जाने के कारण नेत्र या स्पर्श से नहीं उपलब्ध हो रहा था ॥ १ ॥

जिस प्रकार जल में इस घुले हुए नमक को तुम नहीं जानते हो तथापि चक्षु एवं स्पर्श से ग्रहण न कर सकने के कारण वह लवण तो उसमें है ही, इसे अन्य उपायों से पुत्र को आश्वस्त करने की इच्छा से आरुणि बोले—हे वत्स! इस जल में से ऊपर के भाग से जल लेकर आचमन करो। उस जल के आचमन कर लेने पर पुत्र से पिता ने पूछा—कैसा है? पुत्र बोला—नमकीन है। तब मध्यम जल के स्वाद लेने को कहा। आचमन कर लेने पर पूछा—हे वत्स! कैसा स्वाद है? पुत्र ने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्ततेऽ-तꣳ होवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालय-सेऽत्रैव किलेति ॥२॥

मन करने के बाद) मेरे पास आओ। उसने वैसा ही किया और कहा उस जल में लवणखण्ड सदा ही विद्यमान था, (क्योंकि रात्रि में मैंने उसमें लवण डाला था) तब श्वेतकेतु से आरुणि ने कहा। हे प्रियदर्शन! ऐसा ही वह सत्य भी निश्चय करके यहाँ पर ही विद्यमान है। यद्यपि तू उसे नहीं देखता है फिर भी वह यहाँ विद्यमान है ही (जिसे तुमने रसनेन्द्रिय से उपलब्ध किया वैसे ही सर्वत्र विद्यमान सत्य की उपलब्धि उपायान्तर से हो सकती है) ॥२॥

तथाऽन्तादधोदेशाद्गृहीत्वाऽऽचामेति कथमिति लवणमिति। यद्येवमभिप्रास्य परित्यज्यैत-दुदकमा[1]चम्याथ मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार लवणं परित्यज्य पितृसमीपमाजगा-मेत्यर्थ इदं वचनं ब्रुवंस्तल्लक्षणं तस्मिन्नेवोदके यन्मया रात्रौ क्षिप्तं शश्वन्नित्यं संवर्तते विद्यमानमेव तत्सम्यग्वर्तते। इत्येवमुक्तवन्तं तं होवाच पिता। यथेदं लवणं दर्शन-स्पर्शनाभ्यां पूर्वं गृहीतं पुनरुदके विलीनं ताभ्यामगृह्यमाणमपि विद्यत एवोपायान्तरेण जिह्वोपलभ्यमानत्वात्। एवमेवात्रैवास्मिन्नेव तेजोबन्नादिकार्ये शुङ्गे देहे। वाव किलेत्याचार्योपदेशस्मरणप्रदर्शनार्थौ। सत्तेजोबन्नादिशुङ्गकारणं वटबीजाणिमवद्विद्य-मानमेवेन्द्रियैर्नोपलभसे न निभालयसे। यथाऽत्रैवोदके दर्शनस्पर्शनाभ्यामनुपलभ्यमानं

मृश्यापि चक्षुस्पर्शनाभ्यां न त्वं वेत्थ तथाऽपि तत्तत्र विद्यत एव यतस्ताभ्यामगृह्यमाणमपि तत्रोपा-यान्तरेणोपलभ्यत इत्येतमर्थं पुत्रं प्रत्याययितुमुत्तरं वाक्यमित्यर्थः। यथाशब्दो यद्यपीत्यर्थे। तद्धेत्यादि व्याचष्टे—लवणमिति। संवर्तत इतीदं वचनं ब्रुवन्नाजगामेति संबन्धः। दृष्टान्तमनूद्य दार्ष्टान्तिक-माह—इत्येवमुक्तवन्तमित्यादिना। सतो जगन्मूलस्यास्मिन्देहे सत्त्वं त्वया कथमवगतमत आह—वावेति। अत्र वावेत्यादिनाऽत्रैव किलेत्यस्य पौनरुक्त्यमाशङ्क्यार्थविशेषं दर्शयति—यथाऽत्रेत्यादिना ॥२॥

कहा—नमकीन है। इसके पश्चात् नीचे के भाग से जल लेकर आचमन करने को कहने पर पुत्र ने वैसा ही किया। पिता ने पूछा—कैसा स्वाद है? पुत्र बोला—नमकीन है। तब पिता ने कहा—इस जल को अलग रखकर शुद्ध जल का आचमन करके मेरे पास आओ। वह लवण वाले जल को छोड़कर आचमन कर पिता के समीप आया और बोला—रात्रि को जो नमक मैंने जल में छोड़ा था, वह उसमें हमेशा विद्यमान रहता हुआ अच्छी प्रकार घुल मिल गया है। पुत्र के इस प्रकार कहने पर पिता ने दार्ष्टान्त कहा—जिस प्रकार उदक में दर्शन स्पर्श से पूर्व इस लवण का प्रत्यक्ष हो रहा था, जल में विलीन हो जाने पर दर्शन और स्पर्श से उपलब्ध न होता हुआ भी अन्य उपाय जिह्वा से स्वाद लेकर वह उपलब्ध हो जाता है; इसी प्रकार इस तेज, जल और अन्नादि के कार्य वटवृक्ष देह में समझना चाहिए। मन्त्र में "वाव' और 'किल' आचार्य के उपदेश के स्मरण प्रदर्शन करने के

१. शुद्धोदकेनाचम्येत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0: In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

वह जो यह सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व है, एतद्रूप ही यह सब हैं। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु ! वही तू है। तब श्वेतकेतु ने कहा—हे भगवन् ! मुझे फिर से अन्य दृष्टान्त द्वारा उस तत्त्व को समझावें ! अच्छा सोम्य ! ऐसा आरुणि ने कहा ॥३॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

लवणं विद्यमानमेव जिह्वयोपलब्धवानसि। एवमेवात्रैव किल विद्यमानं सज्जगन्मूलमुपायान्तरेण लवणाणिमवदुपलप्स्यस इति वाक्यशेषः ॥२॥

स य इत्यादि समानम्। यद्येवं लवणाणिमवदिन्द्रियैरनुपलभ्यमानमपि जगन्मूलं सदुपायान्तरेणोपलब्धुं शक्यते यदुपलम्भात्कृतार्थः स्यामनुपलम्भाच्चाकृतार्थः स्यामहं तस्यैवोपलब्धौ क उपाय इत्येतद्भूय एव मा भगवान्विज्ञापयतु दृष्टान्तेन तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

उपायान्तरजिज्ञासया पृच्छति—यद्येवमिति। तर्हीत्यध्याहृतस्य तस्येत्यादिना संबन्धः। सतो मूलस्योपलम्भेऽनुपलम्भे वा किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—यदुपलम्भादिति। बुभुत्सितमुपायमुपदर्शयितुमुत्तरग्रन्थमुपादत्ते—तथेति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

लिए निपात हैं। तेज, जल अन्नादि वटवृक्ष का कारण सत्, वट बीज की सूक्ष्मता की तरह विद्यमान रहता हुआ भी इन्द्रियों से नहीं उपलब्ध होता। यहाँ भी तो तू जल में लवण को दर्शन, स्पर्श से उपलब्ध नहीं कर पाया, उस विद्यमान लवण को तूने जिह्वा से स्वाद लेकर जाना, इसी प्रकार जगत् का मूल कारण सत् जगत् में व्याप्त है, उसे लवण उपलब्धि के समान अन्य उपायों से उपलब्ध कर सकते हो ॥ २ ॥

"वह सत्तत्त्व अणुभाव सम्पन्न है"—इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के भाष्य के समान समझ लेनी चाहिए। लवण की सूक्ष्मता की तरह इन्द्रियों से यदि वह जगन्मूलक सत्तत्त्व उपलब्ध नहीं होता तो जिस अन्य उपाय से प्राप्त किया जा सके, वह क्या है ? उसके उपलब्ध होने पर कृतार्थ हो जाऊँगा; यदि उसकी उपलब्धि न हो पाई तो जीवन वृथा ही अकृतार्थ रह जाएगा, अतः हे भगवन् ! उस सूक्ष्म तत्त्व 'सत्' की प्राप्ति का उपाय दृष्टान्तपूर्वक बतलाने की कृपा करें। पिता ने कहा—हे सोम्य ! सुनो ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।)

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ्वो-दङ्वाऽधराङ्वा प्रत्यङ्वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः ॥१॥

तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं

विवेकी पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश

हे सोम्य ! जैसे लोक में कोई चोर किसी पुरुष की आँख में पट्टी बाँधकर उसे गान्धार देश से लाकर अत्यन्त जनशून्य स्थान में छोड़ देवे तो जैसे उस जगह दिग्भ्रान्त हुआ वह पुरुष पूर्व, उत्तर दक्षिण वा पश्चिम की ओर मुख करके चिल्लावें कि मुझे गान्धार देश से आँखे बाँधकर चोरों ने लाया है और आँखें बँधे हुए ही छोड़ दिया है ।।१।।

उस पुरुष के बन्धन को खोलकर जिस प्रकार कोई कृपालु पुरुष कहे कि इस दिशा में गान्धार

यथा लोके हे सोम्य पुरुषं यं कंचिद्गन्धारेभ्यो जनपदेभ्योऽभिनद्धाक्षं बद्धचक्षुष-मानीय द्रव्यहर्ता तस्करस्तमभिनद्धाक्षमेव बद्धहस्तमरण्ये ततोऽप्यतिजनेऽतिगतजनेऽत्य-न्तविगतजने देशे विसृजेत्स तत्र दिग्भ्रमोपेतो यथा प्राङ्वा प्रागञ्चनः प्राङ्मुखो वेत्यर्थः। तथोदङ्वाऽधराङ्वा प्रत्यङ्वा प्रध्मायीत शब्दं कुर्याद्विक्रोशेत्। अभिनद्धा-क्षोऽहं गन्धारेभ्यस्तस्करेणाऽऽनीतोऽभिनद्धाक्ष एव विसृष्ट इति ॥१॥

एवं विक्रोशतस्तस्य यथाभिनहनं यथाबन्धनं प्रमुच्य मुक्त्वा कारुणिकः

यथाऽयमुपायः शक्यो ज्ञातुं तथा लोके प्रदृश्यते दृष्टान्त इत्याह—यथेति। तमेव दृष्टान्तं व्याचष्टे—हे सोम्येति। यथा दिग्भ्रमोपेतो यत्किंचिद्दिगभिमुखो विक्रोशति तथा स तत्र विजने देशे शब्दं कुर्यादिति संबन्धः। प्राङित्यस्यार्थमाह—प्रागञ्चन इति। तस्यैव विवक्षितमर्थं कथयति—प्राङ्मुख इति। वक्ष्यमाणप्रकारैर्विकल्पार्थो वाशब्दः ॥१॥

यथाबन्धनं बन्धनमनुसृत्येति यावत्। पण्डितो मेधावीतिविशेषणद्वयस्य व्यवच्छेद्यं दर्शयति—

हे सोम्य ! लोक व्यवहार में जिस प्रकार द्रव्य का हरण करने वाला चोर (द्रव्य प्राप्ति की इच्छा से) किसी सम्भ्रान्त पुरुष को (समृद्ध) कन्धार के आस-पास के प्रदेश से आँखों में पट्टी बाँध कर लाए और उसे बँधी हुई आँखों के साथ-साथ हाथ बाँध कर जन शून्य घनघोर जंगल भाग में छोड़ दे, तो वह दिशा ज्ञान से भ्रमित होकर कभी पूर्व की ओर मुख करके, कभी उत्तर की ओर मुख करके, कभी दक्षिण और कभी पश्चिम की ओर मुख करके जोर-जोर से चिल्लावे कि मुझे आँखों में पट्टी बाँधकर चोर ने कन्धार के आसपास के प्रदेश से लाया है और पट्टी बाँधे ही यहाँ छोड़ दिया है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन्पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंपद्येतैवमेवेहाऽऽचार्यवान्पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य इति ॥२॥

देश है। अतः इस दिशा की ओर तू जा, तो वह मेधावी विवेकशील एक गाँव से दूसरे गाँव को पूछता हुआ गान्धार देश में ही पहुँच जाता है। वैसे ही इस लोक में आचार्यवान् पुरुष ही सत्य को जानता है। उस तत्त्ववेता के लिए विदेह कैवल्य प्राप्त करने में उतनी देर है जब तक कि वह (प्रारब्ध कर्म को भोगकर वर्तमान देह बन्धन से) मुक्त नहीं हो जाता। उसके बाद तो वह सत्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता ही है ॥२॥

कश्चिदेनां दिशमुत्तरतो गन्धारा एतां दिशं व्रजेति प्रब्रूयात्स एवं कारुणिकेन बन्धनान्मोक्षितो ग्रामाद्ग्रामान्तरं पृच्छन्पण्डित उपदेशवान्मेधावी परोपदिष्टग्रामप्रवेशमार्गावधारणसमर्थः सन्गन्धारानेवोपसंपद्येत नेतरो मूढमतिर्देशान्तरदर्शनतृड्वा। यथाऽयं दृष्टान्तो वर्णितः स्वविषयेभ्यो गन्धारेभ्यः पुरुषस्तस्करैरभिनद्धाक्षोऽविवेको दिङ्मूढोऽशनायापिपासादिमान्व्याघ्रतस्कराद्यनेकभयानर्थव्रातयुतमरण्यं प्रवेशितो दुःखार्तो विक्रोशन्बन्धनेभ्यो मुमुक्षुस्तिष्ठति स कथंचिदेव कारुणिकेन केनचिन्मोक्षितः स्वदेशान्गन्धारानेवाऽऽपन्नो निर्वृतः सुख्यभूत्। एवमेव सतो जगदात्मस्वरूपात्तेजोबन्नादिमयं देहारण्यं वातपित्तकफरुधिरमेदोमांसास्थिमज्जाशुक्रकृमिमूत्रपुरीषवच्छीतोष्णाद्यनेकद्वंद्व-

---

नेतर इति। व्याख्यातं दृष्टान्तं सोपस्कारमनुवदति—यथेत्यादिना। दार्ष्टान्तिकं व्याचष्टे—एवमिति। आदिशब्देन वाय्वाकाशौ गृह्येते। मयड्विकारार्थः। देहारण्यस्यानेकानर्थसंकटत्वं कथयति—वातेति। शीतोष्णादीत्यादिपदेन रागद्वेषादिद्वंद्वं गृहीतं तेनानेकेन द्वंद्वेन जातं सुखं दुःखं च तदुपेतमिदं देहारण्य-

---

इस प्रकार चिल्लाते हुए इसे बन्धन से छुड़ाकर कोई दयालु राहगीर कहता है, यह उत्तर दिशा है इस ओर कन्धार के आसपास का प्रदेश गन्धार है, उधर चले जाओ। उस करुणाशील द्वारा बन्धन से छुड़ाए जाने पर उपदेशयुक्त एवं दूसरे के द्वारा बतलाए गए ग्राम प्रदेश सेमार्ग निश्चय करने में समर्थ वह मेधावी एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाता है, गन्धार देश को प्राप्त कर लेता है, दूसरा देशान्तर दर्शन की इच्छा वाला भ्रमित बुद्धि वाला अभीष्ट प्रदेश में नहीं जा सकता। जिस प्रकार इस दृष्टान्त में वर्णन किया है—कि अपने भूभाग कन्धार के आसपास के प्रदेशों के किसी पुरुष को चोर ने आखों में पट्टी बाँध दी, वह विवेकशून्य हो गया, उसे दिशाओं का जरा भी ज्ञान नहीं रहा, भूख-प्यास से युक्त शेर चोरादि अनेक भय अनर्थ समूहों से युक्त जंगल में आ फँसा, दुःख से व्याकुल होकर वह चिल्लाने लगा, बन्धन से छुड़वाने का इच्छुक वह बैठा था, सौभाग्य से किसी करुणाशील

---

१. सोपस्कारम्—स वाक्याध्याहारमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुखदुःखवच्चेदं मोहपटाभिनद्धाक्षो भार्यापुत्रपशुबन्ध्वादिदृष्टानेकविषयतृष्णापाशितः पुण्यापुण्यादितस्करैः प्रवेशितोऽहममुष्य पुत्रो ममैते बान्धवाः सुख्यहं दुःखी मूढः पण्डितो धार्मिको बन्धुमाञ्जातो मृतो जीर्णः पापी पुत्रो मे मृतो धनं मे नष्टं हा हतोऽस्मि कथं जीविष्यामि का मे गतिः किं मे त्राणमित्येवमनेकशतसहस्रानर्थजालवान्विक्रोशन्कथंचिदेव पुण्यातिशयात्परमकारुणिकं कंचित्सद्ब्रह्मात्मविदं विमुक्तबन्धनं ब्रह्मिष्ठं यदाऽऽसादयति तेन च ब्रह्मविदा कारुण्याद्दर्शितसंसारविषयदोषदर्शनमार्गो विरक्तः संसारविषयेभ्यो नासि त्वं संसार्यमुष्य पुत्रत्वादिधर्मवान्किं तर्हि सद्यत्तत्त्वमसीत्यविद्यामोहपटाभिनहनान्मोक्षितो गन्धारपुरुषवच्च स्वं सदात्मानमुपसंपद्य सुखी निर्वृतः स्यादित्येतमेवार्थमाहाऽऽचार्यवान्पुरुषो वेदेति तस्यास्यैवमाचार्यवतो मुक्ताविद्याभिनहनस्य

मित्येतत् । बन्ध्वादीत्यादिशब्दो मित्रक्षेत्रादिविषयः । पुण्यापुण्यादीत्यादिपदमविद्याकामवासनासंग्रहार्थम् । देहारण्यं प्रविष्टस्य जन्तोर्विक्रोशनप्रकारं सकारणं सूचयति—अहमित्यादिना । तस्य सदा दुःखित्वशङ्कां वारयति कथंचिदेवेति । आपाततो ब्रह्मवित्त्वमात्रेण मुक्तबन्धनत्वासिद्धेर्विशिनष्टि—ब्रह्मिष्ठमिति । यदाऽऽसादयति तदा सुखी स्यादित्युत्तरत्र संबन्धः । संसारविषयं दोषदर्शनं तस्य क्षयिष्णुत्वादिज्ञानं तस्य मार्गो विवेकः स यस्याऽऽचार्येण दर्शितो विद्यते स दर्शितसंसारविषयदोषदर्शनमार्गः । आचार्येण साधनचतुष्टयसंपन्नस्याधिकारिणः संसारान्मोक्षितत्वप्रकारं दर्शयति—नासीति ।

मनुष्य ने वहाँ पहुँचकर उसे बन्धन से मुक्त कर दिया, वह कन्धार के आसपास के प्रदेश अपने निवासस्थान में पहुँच गया और सुख से रहने लगा। इसी प्रकार जगदात्मस्वरूप सत् से तेज-जल-पृथिवी-वायु आकाशमय शरीररूपा जंगल है, इसमें अनेक अनर्थ संकट हैं जैसे वात, पित, कफ, खून, मेद, माँस, अस्थि, मज्जा, शुक्र, कीट, मूत्र, विष्टा हैं, शीत-उष्ण, राग द्वेषादि अनेक सुख-दुःखमय द्वन्द्वों से घिरा है, मोह रूपी वस्त्र से इसकी आँखें बँधी हुई हैं; भार्या, पुत्र, पशु, वन्धु, मित्र, खेत आदि दृष्टाद्ष्ट अनेक विषयों की तृष्णा में फँसा हुआ है, पुण्य-पाप, अविद्या, काम, वासना आदि चोरों द्वारा इसे देहारण्य में प्रवेश करा दिया गया है, जहाँ "मैं इसका पुत्र हूँ—ये मेरे निज जन हैं, मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ, पण्डित, धार्मिक, बन्धुयुक्त हूँ, उत्पन्न हुआ, मर गया, बूढ़ा हुआ हूँ, पापी हूँ, मेरे पुत्र नहीं रहा, मेरा धन नहीं रहा, हाय ! मैं मर गया, कैसे जीऊँगा, कैसे करूँ, कहाँ जाऊँ" इत्यादि अनेक सैकड़ों-हजारों अनर्थ-समूह की चिन्ता में चिल्लाता रहता है, इसके अत्यधिक पुण्य जाग्रत् हो जाने पर जब कोई इसे ब्रह्मात्मतत्त्ववेत्ता परम दयालु, बन्धनमुक्त ब्रह्मनिष्ठ महात्मा मिलता है तो उस करुणाशील ब्रह्मनिष्ठ तत्त्ववेत्ता से इसे मार्ग दर्शाया जाता है कि हे पथिक ! संसार के सभी विषय नाशवान् होने के कारण दोषमय हैं, तुम संसार के विषयों से विरक्ति धारण करो, तुम संसारी नहीं हो, तुम पुत्रादि धर्मों से युक्त नहीं हो, तुम तो साक्षात् ब्रह्म ही हो; जो सत्तत्त्व है, वही हो। इस प्रकार अविद्या मोह रूपी पट्टी के हट जाने पर मुक्त जीव गन्धारदेशीय पुरुष की तरह अपनी सत् स्वरूप आत्मा की प्राप्ति कर चिर शान्ति का लाभ करता है। इसी अर्थ को श्रुति कहती है—आचार्य से भली भाँति उपदिष्ट साधनचतुष्टय संपन्न अधिकारी ही उस तत्त्व को जानता है, इस आचार्य धारण करने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तावदेव तावानेव कालश्चिरं क्षेपः सदात्मस्वरूपसंपत्तेरिति वाक्यशेषः। कियान्कालश्चिरमित्युच्यते यावन्न विमोक्ष्ये न विमोक्ष्यत इत्येतत्पुरुषव्यत्ययेन। सामर्थ्यात्। येन कर्मणा शरीरमारब्धं तस्योपभोगेन क्षयाद्देहपातो यावदित्यर्थः। अथ तदैव सत्संपत्स्ये संपत्स्यत इति पूर्ववत्। न हि देहमोक्षस्य तत्संपत्तेश्च कालभेदोऽस्ति येनाथशब्द आनन्तर्यार्थः स्यात्।

ननु यथा सद्विज्ञानानन्तरमेव देहपातः सत्संपत्तिश्च न भवति कर्मशेषवशात्तथाऽप्रवृत्तफलानि प्राग्ज्ञानोत्पत्तेर्जन्मान्तरसंचितान्यपि कर्माणि सन्तीति तत्फलोपभोगार्थं पतितेऽस्मिञ्शरीरेशरीरान्तरमारब्धव्यम्। उत्पन्ने[1] च ज्ञाने यावज्जीवं विहितानि प्रतिषिद्धानि वा कर्माणि करोत्येवेति तत्फलोपभोगार्थं चावश्यं शरीरान्तरमारब्धव्यं

यद्यपि वाक्यार्थज्ञाने वाक्यमेवोपायस्तथाऽप्याचार्योपदेशजनितातिशयदर्शनात्तदुपदेशोऽवगत्यन्तवाक्यार्थज्ञाने प्रथमो हेतुरुपदेशमात्राद्यस्य नावगत्यन्तवाक्यार्थधीस्तस्य प्रमाणाद्यसंभावनानिरसनसमर्थो विचारो मेधाविशब्देन विहितस्तस्य प्रज्ञातिशयवति प्रयोगादिति भावः। पुरुषव्यत्यये हेतुमाह—सामर्थ्यादिति। अस्मद्युपपदेऽसत्युत्तमपुरुषप्रयोगानुपपत्तेर्देहादिस्थित्यनुपपत्तेर्वेत्यर्थः। यावदित्यादिवाक्यार्थं स्पष्टयति—येनेति। पूर्ववदिति सामर्थ्यात्पुरुषव्यत्ययं लक्षयति। अथशब्दस्य सत्संपत्तेर्देहमोक्षादानन्तर्यमर्थो भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—न हीति।

अथ संपत्स्य इति विदेहमुक्तिमुक्तामाक्षिपति—नन्विति। अप्रवृत्तफलानीति च्छेदः। उत्पन्ने चेति चकारोऽप्यर्थः। विमतानि कर्माणि ब्रह्मज्ञानेन न क्षीयन्ते कर्मत्वात्प्रवृत्तफलकर्मवदित्यर्थः।

वाले अधिकारी के अविद्या का पर्दा खुल जाता है। उसके स्वात्म स्वरूप उपलब्धि में कितना समय शेष है? जब तक उसका शरीर नहीं छूटता, बस! केवल इतना ही समय शेष है। यहाँ पुरुष व्यत्यय हुआ है, क्योंकि ब्रह्मनिष्ठ में ऐसी सामर्थ्य है। देहारम्भक कर्म का क्षय उसके उपभोग करने से ही होगा, अतः कम के क्षय पूर्वक देह के विनष्ट न होने तक ही उसका सारा खेल है, शरीर के चले जाते ही उसे स्व स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ भी पुरुष व्यत्यय सामर्थ्य के कारण हुआ है। देह विसर्जन एवं सत्तत्त्वोपलब्धि के काल में जरा भी अन्तर नहीं है, अतः मन्त्र में 'अथ' शब्द आनन्तर्य वाची नहीं होगा।

(इस पर विदेहमुक्ति पर आक्षेप करते हैं—) जिस प्रकार सत्तत्त्व के ज्ञान होने के एकदम बाद देह का छूटना एवं सत्तत्त्वप्राप्ति नहीं होती क्योंकि अब कुछ कर्मों का भोग शेष रहता है, इसी प्रकार अप्रवृत्त फल वाले अन्यान्य जन्मों में संचित किये हुए कर्म भी ज्ञान उत्पत्ति से पूर्व रहते ही हैं, उनके फलों का उपभोग देह का नाश हो जाने पर शरीरान्तर में अवश्य होना चाहिए। उत्पन्न शरीर में ज्ञान हो जाने पर भी जीवन्पर्यन्त जो भी शास्त्र विहित अथवा शास्त्र प्रतिषिद्ध कर्मों को करता है, उन कर्मों के फलों को भोगने के लिए अवश्य ही अन्य शरीर का आरम्भ होना चाहिए, फिर उस शरीर में भी कर्म होंगे और फिर जन्म होगा इस प्रकार बेचारे ज्ञान की सार्थकता क्या रही,

---

१. शरीरे। २. अनेनैव तावच्चिरत्वे हेतुं विवक्षित्वार्थान्तरमाह—देहादीति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ततश्च कर्माणि ततः शरीरान्तरमिति ज्ञानानर्थक्यं कर्मणां फलवत्त्वात् । अथ ज्ञानवतः क्षीयन्ते कर्माणि तदा ज्ञानप्राप्तिसमकालमेव ज्ञानस्य सत्संपत्तिहेतुत्वान्मोक्षः स्यादिति शरीरपातः स्यात् । तथाचाऽऽचार्याभाव इत्याचार्यवान्पुरुषो वेदेत्यनुपपत्तिर्ज्ञानान्मोक्षाभावप्रसङ्गश्च । देशान्तरप्राप्त्युपायज्ञानवदनैकान्तिकफलत्वं वा ज्ञानस्य । न । कर्मणां प्रवृत्तप्रवृत्तफलवत्त्वविशेषोपपत्तेः । यदुक्तमप्रवृत्तफलानां कर्मणां ध्रुवफलवत्त्वाद्ब्रह्मविदः शरीरे पतिते शरीरान्तरमारब्धव्यमप्रवृत्तकर्मफलोपभोगार्थमित्येतदसत् । विदुषस्तस्य तावदेव चिरमिति श्रुतेः प्रामाण्यात् ॥

ननु "पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति" इत्यादिश्रुतेरपि प्रामाण्यमेव । सत्यमेवम् । तथाऽपि प्रवृत्तफलानामप्रवृत्तफलानां च कर्मणां विशेषोऽस्ति । कथम् ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणीत्यादिश्रुतिस्मृतिविरोधात्कालात्ययापदिष्टतेति शङ्कते—अथेति । अतिप्रसङ्गान्न श्रुतिस्मृत्योर्यथाश्रुतार्थतेति परिहरति—तदेति । ज्ञानस्याऽऽनर्थक्यमुक्त्वा पक्षान्तरमाह—देशान्तरेति । ग्रामप्राप्त्युपायोऽश्वो रथो वेति ज्ञाने सत्यसत्यन्तराये कस्यचिदेव ग्रामप्राप्तिर्भवति न त्वन्तरायवतस्तज्ज्ञानेऽपि तत्प्राप्तिर्यथा तथा समुत्पन्नज्ञानस्यापि कस्यचिदेव भोगेन क्षीणकर्माशयस्य मोक्षो न ज्ञानमात्रादित्यनियतफलत्वमित्यर्थः । कर्मत्वहेतोरप्रयोजकत्वं वदन्नुत्तरमाह—न कर्मणामिति । संग्रहवाक्यमेव प्रपञ्चयन्नादौ नञर्थं स्फुटयति—यदुक्तमिति । तत्र हेतुमाह—विदुष इति । प्रामाण्याद्देहान्तरारम्भे तद्विरोधप्रसङ्गादिति शेषः ।

श्रुत्यन्तरमाश्रित्य शङ्कते—नन्विति । तथा चानारब्धकर्मवशाद्विदुषोऽपि देहान्तरमारब्धव्यमिति शेषः । तत्प्रामाण्यमङ्गी करोति—सत्यमेवमिति । तर्हि विदुषोऽपि देहान्तरमनारब्धकर्मवशादारब्धव्यं नेत्याह—तथाऽपीति । विशेषमेवाऽऽकाङ्क्षाद्वारा विशदयति—कथमित्यादिना । प्रवृत्तफलत्व-

---

इसके विपरीत कर्मों की ही प्रधानता रही क्योंकि उनका फल भोगना जरूरी है । यदि इस श्रुति को प्रमाण मान कर चलो कि "ज्ञानी के फल क्षीण हो जाते हैं" तव तो ज्ञान प्राप्ति होते ही मोक्ष हो जाएगा, शरीर नष्ट हो जाएगा क्योंकि ज्ञान सत्तत्त्व उपलब्धि में हेतु है । इस प्रकार आचार्य धारण की मान्यता का अभाव हो जाएगा एवं इस श्रुति की प्राप्ति ही नहीं होगी कि आचार्य की शरण जाने से पुरुष को तत्त्व ज्ञान होता है, कहीं ज्ञान हो भी गया तो उससे मोक्ष प्राप्ति ही दुष्कर है । ऐसा भी मान लो कि देशान्तर गमन के उपाय के ज्ञान के समान ज्ञान भी बहु फल वाला हो—ऐसी कल्पना करना ठीक नहीं है क्योंकि कर्म प्रवृत्त फल वाले एवं अप्रवृत्त फल वाले देखे जाते हैं । किन्तु ऐसा जो कहा गया कि अप्रवृत्त फल वाले कर्मों के भी फल भी निश्चित भोगने पड़ते हैं, तथा शरीर के नाश हो जाने पर अप्रवृत्त फल को भोगने के लिए ब्रह्मतत्त्ववेत्ता ज्ञानी को भी दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है—वह शास्त्र दृष्टि से असंगत है क्योंकि विद्वान् का अन्य शरीर धारण करना श्रुति विरुद्ध है । "उसे शरीर छोड़ने भर की देर है" ऐसी श्रुति इसमें प्रमाण है ।

अन्य श्रुति कहती है, "पुण्य कर्मों से पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है" इससे अनारब्ध कर्मों के कारण विद्वान् का अन्य शरीर धारण करना सिद्ध होता है । यह श्रुति तो इसमें प्रमाण है ही किन्तु प्रवृत फल वाले एवं अप्रवृत्त फल वाले कर्मों में परस्पर भेद है । वह कैसे ? उन प्रवृत्त फल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यानि प्रवृत्तफलानि कर्माणि यैर्विद्वच्छरीरमारब्धं तेषामुपभोगेनैव क्षयः। यथाऽऽरब्धवेगस्य लक्ष्यमुक्तेष्वादेर्वेगक्षयादेव स्थितिर्न तु लक्ष्यवेधसमकालमेव प्रयोजनं नास्तीति तद्वत्। अन्यानि त्वप्रवृत्तिफलानीह प्राग्ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वं च कृतानि वा क्रियमाणानि वाऽतीतजन्मान्तरकृतानि वाऽप्रवृत्तफलानि ज्ञानेन दह्यन्ते प्रायश्चित्तेनेव। "ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा" इति स्मृतेश्च। "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" इति चाऽऽथर्वणे। अतो ब्रह्मविदो जीवनादिप्रयोजनाभावेऽपि प्रवृत्तफलानां कर्मणामवश्यमेव फलोपभोगः स्यादिति मुक्तेषुवत्तस्य तावदेव चिरमिति युक्तमेवोक्तमिति

मेव स्फुटयति—यैरिति। उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति। लक्ष्यस्य वेधो भेदनं तत्समकालमेवेष्वादे[1]रूर्ध्वं गतिप्रयोजनं नास्तीति न स्थितिर्लक्ष्यमुद्दिश्य मुक्तस्य तस्याऽऽरब्धवेगस्याप्रतिबन्धेन [2]तदासादितस्य वेगक्षयादेव स्थितिर्दृष्टा तद्वद्विद्यार्थे देहे विद्यालाभान्तरं फलं नास्तीति न कर्माणि निवर्तन्ते किंतु भोगक्षयादेव [3]तस्य लब्धवृत्तित्वादित्यर्थः। प्रवृत्तफलेभ्योऽप्रवृत्तफलानां कर्मणां विशेषमाह—अन्यानि त्विति। न चाप्रवृत्तफलानां कर्मणां क्षयोऽप्रसिद्धस्तथाविधस्येव पापस्य प्रायश्चित्तेन प्रक्षयोपगमादित्याह—प्रायश्चित्तेनेवेति। आरब्धफलातिरिक्तानां कर्मणां ज्ञानाग्निवृत्तौ श्रुतिस्मृती दर्शयति—ज्ञानाग्निरित्यादिना। प्रवृत्ताप्रवृत्तफलेषु कर्मसु सिद्धे विशेषे फलितमाह—अत इति। जीवनादीत्यादिशब्देन पुत्रकलत्रादि गृह्यते। मुक्तस्याप्रतिबद्धेष्वादेर्यावद्वेगक्षयं गतिध्रौव्यवदारब्धकर्मणां फलभोगोऽवश्यमेव स्यादिति संबन्धः। यतश्चाऽऽब्धकर्मणां भोगादेव क्षयस्ततस्तस्येत्यादिना यच्चिरत्वं सत्संपत्तेरुक्तं तद्युक्तमेवेति कृत्वा यथोक्तस्य दोषस्य सद्यःशरीरपातादिलक्षणस्याऽऽशङ्कानुपपत्तिरित्युपसंहरति—इतीति। आद्यस्येतिशब्दस्य तस्येत्यनेन संबन्धः। यत्तूत्पन्नेऽपि ज्ञाने यावज्जीवं विहितानि

वाले कर्मों को जिनसे विद्वान् का शरीर हुआ है, भोगने से ही नाश किया जा सकता है। जिस प्रकार लक्ष्य को भेदन करने के लिए लक्ष्य के प्रति छोड़े हुए बाणादि का आरम्भ में वेग होता है, लक्ष्य भेद करने पर वेग क्षय होने पर स्थित हो जाता है, लक्ष्य भेद होने पर गति विहीन हो जाता है क्योंकि फिर कोई प्रयोजन नहीं रह जाता; इसी प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर कोई फल नहीं है, इससे कर्म की निवृत्ति नहीं होती किन्तु भोगक्षय होने तक ही उनकी स्थिति रहती है। अप्रवृत्त फल वाले कर्मों में यह विशेषता है कि ज्ञान उत्पत्ति से पूर्व अथवा पश्चात् किये गए अथवा करने योग्य अप्रवृत्त फल वाले कर्मों का अथवा पूर्वजन्म में किए हुए अप्रवृत्त फल वाले कर्मों का नाश न हो पाने से ज्ञान से उनको भस्म किया जा सकता है अथवा शास्त्र प्रतिपादित प्रायश्चित्त के अनुष्ठान द्वारा पाप का नाश हो सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—"जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्मसात् कर देती है, उसी प्रकार ज्ञान की प्रज्ज्वलित अग्नि की लपट में सब कर्म नष्ट हो जाते हैं"। "उस परम तत्त्व का ज्ञान होने पर तो इस विद्वान् के सब कर्म क्षीण हो जाते हैं" ऐसी आथर्वण श्रुति है। प्रवृत्त और अप्रवृत्त फल वाले कर्मों के सिद्ध होने पर उनमें क्या विशेषता है, उसे दिखाते हैं—जीवन, पुत्र-कलत्रादि के प्रयोजन न होने पर भी ब्रह्मवेत्ता को भी प्रवृत्त फल वाले कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा, अतः छूटे हुए तीर की तरह उसके विदेह

१. ऊर्ध्वमनन्तरम्। २. तदासादितस्येति—तेन वेगेनासादितस्याक्रान्तस्येत्यर्थः। तल्लक्ष्यमासादितस्य प्राप्तस्येति वा। ३. तस्य भोगस्य लब्धवृत्तित्वादप्रतिलब्धेन लब्धसत्ताकत्वादित्यर्थः। यद्वा तस्य कर्मवृन्दस्येत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।)

पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि

वह जो यह अणिमा है; एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु ! वही तू है। तब श्वेतकेतु ने कहा—भगवन् ! मुझे फिर से उस सत्यतत्त्व को समझाइये। अच्छा सोम्य! ऐसा आरुणि ने कहा ॥३॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

मरणासन्न पुरुष के दृष्टान्त से सत्य का उपदेश

हे सोम्य ! ज्वरादि से अत्यन्त संतप्त हुए मरणासन्न पुरुष को परिवारवाले चारों ओर से

यथोक्तदोषचोदनानुपपत्तिः । ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वं च ब्रह्मविदः कर्माभावमवोचाम ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेतीत्यत्र तच्च स्मर्तुमर्हसि ॥२॥

स य इत्यद्युक्तार्थम् । आचार्यवान्विद्वान्येन क्रमेण सत्संपद्यते तं क्रमं दृष्टान्तेन भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति । तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

पुरुषं हे सोम्योतोपतापिनं ज्वराद्युपतापवन्तं ज्ञातयो बान्धवाः परिवार्योपासते

करोत्येवेति तत्राऽऽह—ज्ञानोत्पत्तेरिति ॥२॥

ज्ञानस्य नाऽऽनर्थक्यमविद्यातत्कार्यनिवर्तनेन सत्संपत्तिहेतुत्वान्नाप्यनैकान्तिकफलत्वमन्तराया-भावादित्युक्तमिदानीमर्चिरादिमार्गप्राप्त्या वाऽत्रैवाविद्यानिवृत्तिमात्रेण वा सत्संपत्तिरिति संदिहानः पृच्छते—आचार्यवानिति । संशयानस्य संबोधनार्थमुत्तरं वाक्यमवतारयति—तथेति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

कैवल्य में इतनी ही देर है, जब तक वह शरीर नहीं छोड़ता; यह श्रुति युक्तियुक्त ही है, इससे पूर्वोक्त दोषों का निरूपण असंगत सिद्ध हो जाएगा। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर तो ब्रह्मतत्त्ववेत्ता के लिए कर्म का विधान ही नहीं है, ऐसा कह चुके हैं, इस विषय में उस श्रुति को भी स्मरण किया जा सकता है कि ब्रह्म में संस्थिति वाला विद्वान् अमृतत्व लाभ करता है ॥ २ ॥

वह सत्तत्त्व अणुभाव सम्पन्न है, इत्यादि अर्थ कह चुके हैं। इस पर श्वेतकेतु जिज्ञासा प्रकट करता है—हे भगवन् ! आचार्य से दीक्षित जिस क्रम से वह सत् की उपलब्धि करता है, उसे दृष्टान्त से पुनः बतलाने का कष्ट करें। इस पर पिता बोले—हे सोम्य ! तो सुनो ॥ ३ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मां जानासि मामिति तस्य यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति ॥१॥

अथ यदाऽस्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति ॥२॥

घेरकर पूछा करते हैं—क्या तू मुझे (पिता, पुत्र या भाई को) पहचानता है ! क्या तू मुझे पहचानता है ? उस मुमूषु की वाणी जब तक मन में लीन नहीं हो जाती और मन प्राण में, प्राण तेज में, तथा तेज परदेवता में लीन नहीं हो जाता, तब तक वह पहचानता रहता है ॥१॥

फिर जिस समय उस मरणासन्न पुरुष की वाणी (आदि इन्द्रियाँ) मन में लीन नहीं हो जाती है, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन हो जाता है। उसके बाद वह किसी को पहचानता नहीं ॥२॥

मुमूर्षुं जानासि मां तव पितरं पुत्रं भ्रातरं वेति पृच्छन्तस्तस्य मुमूर्षोर्यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामित्येतदुक्तार्थम् ॥१॥

संसारिणो यो मरणक्रमः स एवायं विदुषोऽपि सत्संपत्तिक्रम इत्येतदाह परस्यां देवतायां तेजसि संपन्नेऽथ न जानाति । अविद्वांस्तु सत उत्थाय प्राग्भावितं

॥१॥

नन्वेष संसारिणो मरणक्रमो नतु विदुषः सत्संपत्तिक्रमस्तयोर्विशेषस्य वक्तव्यत्वादत आह—संसारिण इति । करणोपरमे तेजःसहचरितभूतसूक्ष्मोपसंहारे च विशेषविज्ञानाभावः समान एव विद्वदविदुषोरित्यर्थः । कस्तर्हि तयोर्विशेषस्तत्राऽऽह—अविद्वानिति । सतस्तस्मादज्ञानात्सदात्मनः

हे सोम्य ! ज्वरादि से अत्यन्त व्याकुल मरणासन्न पुरुष को चारों ओर से घेर कर उसके बन्धु-बान्धव पूछते हैं—"मैं तुम्हारा पिता हूँ, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ अथवा मैं तुम्हारा भाई हूँ" क्या तुम हमें पहचानते हो ? वह मरणासन्न पुरुष तब तक उन्हें पहचानता रहता है, जब तक उसकी वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज पर देवता में लीन नहीं हो जाता है ॥ १ ॥

संसारी जीवों के मरण का जो क्रम है, सत् उपलब्धि का वही क्रम इस विद्वान् का भी है, इसे श्रुति कहती है। जब वह पर देवता तेज में विलीन हो जाता है, तब वह किसी संबन्धी को नहीं पहचान पाता। (अविद्वान् और विद्वान् में भेद स्पष्ट करते हैं—) अविद्वान् सत् से उत्क्रमण कर पूर्वभावित व्याघ्रादि भाव अथवा देव-मनुष्यादि भाव की प्राप्ति करता है। विद्वान् के हृदय में शास्त्र एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स

वह जो यह अणुतत्त्व है, एतद्रूप ही यह सम्पूर्ण जगत् है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे

व्याघ्रादिभावं देवमनुष्यादिभावं वा विशति। विद्वांस्तु शास्त्राचार्योपदेशजनितज्ञान-दीपप्रकाशितं सद्ब्रह्मात्मानं प्रविश्य नाऽऽवर्तत इत्येष सत्संपत्तिक्रमः। अन्ये तु मूर्धन्यया नाड्योत्क्रम्याऽऽदित्यादिद्वारेण सद्गच्छन्तीत्याहुस्तदसत्। देशकालनिमित्त-फलाभिसंधानेन गमनदर्शनात्। न हि सदात्मैकत्वदर्शिनः सत्याभिसंधस्य देशकाल-निमित्तफलाद्यनृताभिसंधिरुपपद्यते। विरोधात्। अविद्याकामकर्मणां च गमननिमित्तानां सद्विज्ञानहुताशनविप्लुष्टत्वाद्गमनानुपपत्तिरेव। "पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्त्विहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः" इत्याद्याथर्वणे। नदीसमुद्रदृष्टान्तश्रुतेश्च ॥२॥

स य इत्यादि समानम्। यदि मरिष्यतो मुमुक्षतश्च तुल्या सत्संपत्तिस्तत्र

प्रकाशादिति यावत्। एकदेशिमतमुत्थाप्य प्रत्याचष्टे—अन्ये त्विति। भवतु विदुषोऽपि तदभिसंधि-पूर्वकं गमनमित्याशङ्क्याऽऽह—न हीति। आदिशब्देन गत्यागती गृह्येते। सद्विज्ञानवतो गमनायोगे हेत्वन्तरमाह—अविद्येति। विदुषोऽविद्याकामकर्मणामभावे प्रमाणमाह—पर्याप्तकामस्येति। ननु कामप्रविलय एवात्र श्रूयते नाविद्यामकर्मनिर्मोकस्तत्राऽऽह—नदीति। यथा नद्यो गङ्गाद्या नामरूपे विहाय समुद्रं प्रविशन्ति तथा विद्वान्नामरूपे हित्वा परं पुरुषमुपैतीतिदृष्टान्तपूर्विकायाः श्रुतेर्नामरूप-बीजावस्थाविद्याया लयो गम्यते नचाविद्याकामयोरभावे कर्मोपपत्तिस्तस्मान्न विदुषो गतिपूर्विका सत्संपत्तिरित्यर्थः ॥२॥

विमतः सत्संपन्नः पुनरावृत्तिमर्हति सत्संपन्नत्वान्मरणकाले सत्संपन्नवद्विमतो वा विशेष-विज्ञानाभावो नाऽऽत्यन्तिको विशेषविज्ञानाभावत्वान्मरणकालीनविशेषविज्ञानाभाववदित्यनुमाना-द्विद्वदविदुषोरविशेषं मन्वानः शङ्कते—यदीति। तत्रानृताभिसंधत्वं तादृगभिसंधिमन्निष्ठत्वं चोपाधि-

---

आचार्य के उपदेश से ज्ञान का दीप प्रकाशित हो जाता है, सद्ब्रह्मात्मा में प्रवेश कर जाता है, जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता, यही सत् तत्त्व उपलब्धि का क्रम है। (एकदेशी मत को प्रस्तुत कर उसका निषेध करते हैं—) किन्तु जो ऐसा कहते हैं कि मूर्धन्या नाडी से उत्क्रमण कर आदित्यादि मार्ग से सत् प्राप्ति करते हैं, वह अनुचित है। गमन तो देश काल निमित्त से फल को लक्ष्य करके ही होता है। सद् आत्मा के एकत्व दर्शन करने वाले विद्वान् जिनका लक्ष्य केवल सत्य ही है, उन्हें देश काल निमित्त फल गति-आगति रूप मिथ्या लक्ष्य से क्या प्रयोजन है क्योंकि इसमें शास्त्र विरोध आता है। सत्तत्त्व के विज्ञानशील होने के गमनावरोध में अन्य कारण यह है कि गमननिमित्तक अविद्या काम कर्म सद्विज्ञान रूपी अग्नि में भस्म हो जाते हैं, जिससे फल भोग के लिए उसका आवागमन समाप्त हो जाता है। इसमें आथर्वण श्रुति प्रमाण है कि "आप्तकाम एव कृतार्थ ब्रह्मज्ञानी की सभी कामनाएँ यहीं समाप्त हो जाती हैं"। "जिस प्रकार नदियाँ अपना नाम-रूप त्यागकर समुद्र में विलीन हो जाती हैं, इसी प्रकार यह विद्वान् नाम-रूप को छोड़ कर परम पुरुष को प्राप्त करता है"

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

(अथ षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः।)

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानयन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता

श्वेतकेतु ! वही तू है। इस पर श्वेतकेतु ने कहा, भगवन् ! मुझे उस तत्त्व को फिर से समझाइये। अच्छा सोम्य ! ऐसा पिता ने कहा ॥३॥

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

चोर के द्वारा तप्त परशु को ग्रहण कराकर सत्य का उपदेश

हे सोम्य ! चोरी के सन्देह से किसी पुरुष को हाथ बाँधकर (राजपुरुष) लाते हैं (और उससे कहते हैं) इस व्यक्ति का धन चुराया है, चोरी की है (न्यायाधीश के पूछने पर भी जब वह चोर अन्ततक अपने अपराध को छिपाना ही चाहता है तब न्यायाधीश कहता है) इसके लिये फरसे को

विद्वान्सत्संपन्नो नाऽऽवर्तते आवर्तते त्वविद्वानित्यत्र कारणं दृष्टान्तेन भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

शृणु यथा सोम्य पुरुषं चौर्यकर्मणि संदिह्यमानं निग्रहाय परीक्षणाय वोतापि हस्तगृहीतं बद्धहस्तमानयन्ति राजपुरुषाः। किं कृतवानयमिति पृष्टाश्चाऽऽहुरपहार्षीद्धन-

---

रित्यनुमानद्वयं दूषयितुमुत्तरं ग्रन्थमुत्थापयति—तथेति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

परीक्षणाय परीक्षाद्वारेण रक्षणार्थमिति यावत्। परस्वग्रहणमात्रेण बन्धने प्रतिग्रहीतुरपि

यह श्रुति भी प्रमाण है ॥ २ ॥

मन्त्र में 'स य' इत्यादि का भाष्य पूर्व मन्त्र में कर दिया है, उसी के समान समझना चाहिए। यदि मरणासन्न एवं मोक्षाभिलाषी जीव की सदुपलब्धि का क्रम एक-सा है तो ऐसा क्यों कहते हैं, विद्वान् तो पुनर्जन्म नहीं लेता और अज्ञानी पुनर्जन्म लेता है। श्वेतकेतु बोला—हे भगवन् ! मुझे इसका स्पष्ट कारण दृष्टान्त सहित बतलाने की कृपा करें। तब आरुणि बोले—हे सोम्य ! सुनाता हूँ, सुनो ॥ ३ ॥

हे सोम्य ! जिस प्रकार चोरी करने में संदेहयुक्त पुरुष को पकड़कर राजकर्मचारी परीक्षण करने के लिए हाथों में हथकड़ी बाँध कर लाते हैं। जब राजा पूछता है कि इसने क्या किया है तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसंधोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते ॥१॥

अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं

तपाम्रो, यदि वह उसका चुराने वाला है, तो अपने को मिथ्यावादित्व सिद्ध करता है। वह मिथ्याभिनिवेश वाला पुरुष अपने चौर्य को छिपाता हुआ तपे हुये परशु को पकड़ता है, मोह वश ऐसा करने पर वह तप्त परशु से जल जाता है और राजपुरुषों द्वारा मारा जाता है ॥१॥

और यदि वह चोरी का करने वाला नहीं होता, तो उस परीक्षा में वह अपने को सत्य प्रमा-

---

मस्यायम् । ते चाऽऽहुः किमपहरणमात्रेण बन्धनमर्हति । अन्यथा दत्तेऽपि धने बन्धनप्रसङ्गादित्युक्ताः पुनराहुः स्तेयमकार्षीच्चौर्येण धनमपहार्षीदिति । तेष्वेवं वदत्स्वितरोऽपह्नुते नाहं तत्कर्तेति । ते चाऽऽहुः संदिह्यमानं स्तेयमकार्षीस्त्वमस्य धनस्येति । तस्मिंश्चापह्नुवान आहुः परशुमस्मै तपतेति शोधयत्वात्मानमिति । स यदि तस्य स्तैन्यस्य कर्ता भवति बहिश्चापह्नुते स एवंभूतस्तत एवानृतमन्यथाभूतं सन्तमन्यथाऽऽत्मानं कुरुते स तथाऽनृताभिसंधोऽनृतेनाऽऽत्मानमन्तर्धाय व्यवहितं कृत्वा परशुं तप्तं मोहात्प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते राजपुरुषैः स्वकृतेनानृताभिसंधिदोषेण ॥१॥

अथ यदि तस्य कर्मणोऽकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्येन तया

बन्धप्रसङ्गान्न तन्मात्रं बन्धनकारणमित्याह—अन्यथेति । तत एवानृताभिसंधत्वादेवेत्यर्थः ॥१॥

राजकर्मचारी कहते हैं—इसने यह धन चुराया है। वे पूछने लगे—धन के अपहरण मात्र से कारावास दिया जा सकता है। तो राजा ने कहा—ऐसे में तो दिए हुए धन को भी ले जाने में जेलयात्रा का प्रसङ्ग आ जाएगा। राजकर्मचारी बोले—इसने तो इस धन को चोरी से अपहरण किया है। राजा एवं राजकर्मचारी के इस प्रकार वार्तालाप को सुनकर चोर अपने अपराध को छिपाते हुए कहता है—मैंने यह चोरी नहीं की है। उस पर ही राजकर्मचारियों का पूर्ण सन्देह था, वे बोले—इस धन की चोरी तो तुमने ही की है। उसके चोरी छिपाने पर वे बोले—तपाया हुआ फरसा लाकर इसे तपाया जाए ताकि अपनी बुद्धि की परीक्षा कर सके। यदि उसने चोरी की हुई होती है किन्तु बाहर से छिपाता है इस प्रकार अपनी आत्मा को मिथ्यावादी करता है। मिथ्याभिनिवेश से अपनी आत्मा को युक्त करके मोहवश तपे हुए फरसे को ग्रहण कर लेता है और जल जाता है, दिव्य परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने से मिथ्याभिनिवेश के कारण उसकी चोरी सत्य होती है और वह राजपुरुषों द्वारा मार दिया जाता है ॥ १ ॥

यदि उसने उस धन की चोरी नहीं की होती तो वह अपनी आत्मा को सत्य प्रमाणित करता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कुरुते स सत्याभिसंधः सत्येनाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते ॥२॥ स यथा तत्र नादाह्येत स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

इति छान्दोग्योपनिषदि षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

ग्गित करता है। सत्याग्रही वह सत् पुरुष सत्य से अपने को आवृत करके उस तप्त परशु को पकड़ लेता है, वह उससे जलता नहीं (तत्पश्चात् मिथ्याभियोग लगाने वाले पुरुष के द्वारा) वह तत्काल ही छोड़ दिया जाता है ॥२॥

सत्याग्रही वह पुरुष जैसे उस परीक्षा में जलता नहीं (वैसे ही तत्त्वज्ञान प्रारब्धक्षय के अनन्तर विदेहकैवल्य को प्राप्त कर लेता है और फिर लौटता नहीं, किन्तु नामरूप अनृत विकार में अभिनिवेश करने वाला अविद्वान् मरकर पुनर्जन्म ग्रहण करता है।) यह सब एतद्रूप ही है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतु! वही तू है। इस प्रकार पिता से नौबार उपदेश सुनकर वह श्वेतकेतु ब्रह्म और आत्मा की एकता को जान गया। उसे जान लिया।।३॥

॥ इति षष्ठाध्यायः, षोडशः खण्डः ॥

स्तैन्याकर्तृं तयाऽऽत्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स सत्याभिसंधः सन्न दह्यते सत्यव्यवधानादथ मुच्यते च मृषाभियोक्तृभ्यः। तप्तपरशुहस्ततलसंयोगस्य तुल्यत्वेऽपि स्तेयकर्त्रकर्त्रोरनृताभिसंधो दह्यते न तु सत्याभिसंधः ॥२॥

स यथा सत्याभिसंधस्तप्तपरशुग्रहणकर्मणि सत्यव्यवहितहस्ततलत्वान्नादाह्येत न दह्येतेत्येतदेवं सद्ब्रह्मसत्याभिसंधीतरयोः शरीरपातकाले च तुल्यायां सत्संपत्तौ

तत एवेति। स्तैन्यस्य कर्मणोऽकर्तृत्वादेवेत्यर्थः। दृष्टान्ते विवक्षितमंशमनुवदति—तप्तेति॥२॥

है। उस सत्य के प्रभाव से वह तपे हुए फरसे को ग्रहण करने से सत्याभिनिवेश के कारण नहीं जलता क्योंकि वह सच बोलता है कि मैंने चोरी नहीं की है। इस प्रकार उसकी सत्यता सिद्ध हो जाने से मिथ्या अभियोग चलाने वाले राजकर्मचारी उसे छोड़ देते हैं। तपे हुए फरसे को हथेली से दोनों ने स्पर्श किया किन्तु चोरी करके झूठ बोल कर अपने को उसका अकर्ता कहने वाले को वह जला देता है, सत्याभिनिवेश वाले को नहीं जलाता ॥ २ ॥

जिस प्रकार तपे हुए फरसे को ग्रहण करने पर सत्याभिनिवेश वाले पुरुष की सत्य के प्रभाव से हथेली होने के कारण नहीं जलती, इसी प्रकार सद्ब्रह्म के प्रति सत्य निष्ठा वाले एवं अन्य जीव के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विद्वान्सत्संपद्य न पुनर्व्याघ्रदेवादिदेहग्रहणायाऽऽवर्तते । अविद्वांस्तु विकारानृताभिसंधः पुनर्व्याघ्रादिभावं देवतादिभावं वा यथाकर्म यथाश्रुतं प्रतिपद्यते । यदात्माभिसंध्यनभिसंधिकृते मोक्षबन्धने यच्च मूलं जगतो यदायतना यत्प्रतिष्ठाश्च सर्वाः प्रजा यदात्मकं च सर्वं यच्चाजममृतमभयं शिवमद्वितीयं तत्सत्यं स आत्मा तदतस्तत्त्वमसि हे श्वेतकेतो इत्युक्तार्थमसकृद्वाक्यम् । कः पुनरसौ श्वेतकेतुस्त्वंशब्दार्थः । योऽहं श्वेतकेतुरुद्दालकस्य पुत्र इति वेदाऽऽत्मानमादेशं श्रुत्वा मत्वा विज्ञाय चाश्रुतममतमविज्ञातं विज्ञातुं पितरं पप्रच्छ कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति । स एषोऽधिकृतः श्रोता मन्ता विज्ञाता तेजोबन्नमयं कार्यकरणसंघातं प्रविष्टा परैव देवता नामरूपव्याकरणायाऽऽदर्श इव पुरुषः सूर्यादिरिव जलादौ प्रतिबिम्बरूपेण स आत्मानं कार्यकरणेभ्यः प्रविभक्तं सद्रूपं सर्वात्मानं प्राक् पितुः श्रवणान्न विजज्ञौ । अथेदानीं पित्रा प्रतिबोधितस्तत्त्व-

---

तदनुवादपूर्वकं दार्ष्टान्तिकमाह—स यथेति । स य एषोऽणिमेत्यादि व्याचष्टे—यदात्मेति । त्वं तदसीति त्वमर्थोद्देशेन तदर्थभावो विधीयते तत्रोद्देश्यस्य शरीरद्वयविशिष्टस्य विरोधादशरीरब्रह्मात्मत्वं विधातुमशक्यमिति मन्वानश्चोदयति—कः पुनरिति । त्वंपदेन वाच्यस्य लक्ष्यस्य वा ब्रह्मत्वायोगस्त्वयोच्यते नाऽऽद्योऽनङ्गीकारान्न द्वितीयः शरीरद्वयवैशिष्ट्योपलक्षितस्य श्रोतृत्वाद्यध्यासास्पदस्य त्वंपदलक्ष्यस्य ब्रह्मत्वविधाने विरोधास्फुरणादिति परिहरति—योऽहमिति । विज्ञाय च वेदेति पूर्वेण सह संबन्धः । तस्य सतः सकाशादौपाधिको भेदो वस्तुतस्त्वैक्यमिति मत्वाऽऽह—तेजोबन्नमयमिति । त्वंपदार्थं श्वेतकेतुं निर्धार्य तद्वास्येत्यादि व्याचष्टे—आत्मानमिति ।

शरीर पात में समानता होने पर भी सत्तत्त्व की उपलब्धि दशा में विद्वान् सत्तत्त्व की प्राप्ति कर पुनः शेर, देवादि शरीर ग्रहण के लिए आवृत्ति नहीं करता । ब्रह्म ज्ञान से विरहित अविद्वान् नाम-रूपादि अनृत विकारों में अनुरक्त चित्त वाला पुनः व्याघ्रादि भाव अथवा देवतादिभाव को अपने कर्म एवं श्रवण के अनुसार प्राप्त करता है । जिस आत्मा के प्रति निष्ठा है अथवा विरति है, मोक्ष और बन्धन हैं, जो आत्मा जगत् का मूल है, समस्त प्रजाएँ जिसके आश्रित एवं जिसमें प्रतिष्ठित हैं, सब कुछ आत्मा से ही है, जो अजन्मा, अमृत, अभय, कल्याणस्वरूप, अद्वितीय है, वह सत्य है, वही तुम्हारी आत्मा है, अतः हे श्वेतकेतु ! वह तुम्हीं हो, इस प्रकार महावाक्य का अर्थ कहा गया । वह श्वेतकेतु कौन है जो त्वं शब्द का अर्थ है मैं जो आरुणि उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु हूँ जिसने 'आत्मा को जानो' उपदेश सुनकर उसका मनन कर, अश्रुत, अमत और अविज्ञात को जानने के लिए पिता से पूछा—हे भगवन् ! वह उपदेश क्या है मुझे बतलाइए । पिता के उपदेश श्रवण के पूर्व वह नहीं जान पाया कि वह यह अधिकृत श्रोता मन्ता विज्ञाता तेज, जल एवं पृथिवीमय देहेन्द्रियसंघात में प्रवेश करने वाला परमात्मा देवता है, वह दर्पणस्थ पुरुष की तरह जलादि से सूर्यादि के समान नाम-रूप विकार हेतुक प्रतिविम्ब रूप से आत्मा को देह इन्द्रिय से विभाग किया हुआ है वस्तुतः वह आत्मा सद्रूप एवं सर्वात्मा है । पिता द्वारा दृष्टान्तों एवं युक्तियों द्वारा 'तत्त्वमसि' महावाक्य से जगाये गये श्वेतकेतु को अब ज्ञान हो गया । पिता द्वारा उपदिष्ट त्वं पदार्थ का निश्चय हो जाने पर "मैं सत् स्वरूप आत्मा ही हूँ" ऐसा उसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मसीतिदृष्टान्तैर्हेतुभिश्च तत्पितुरस्य ह किलोक्तं सदेवाहमस्मीति विजज्ञौ विज्ञातवान्। द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम् ।

किं पुनरत्र षष्ठे वाक्यप्रमाणेन जनितं फलमात्मनि, कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरधिकृतत्वविज्ञाननिवृत्तिस्तस्य फलं यमवोचाम त्वंशब्दवाच्यमर्थं, श्रोतुं मन्तुं चाधिकृतमविज्ञातविज्ञानफलार्थम्। प्राक्चैतस्माद्विज्ञानादहमेव करिष्याम्यग्निहोत्रादीनि कर्माण्यहमत्राधिकृतः। एषां च कर्मणां फलमिहामुत्र च भोक्ष्ये कृतेषु वा कर्मसु कृतकर्तव्यः स्यामित्येवं कर्तृत्वभोक्तृत्वयोरधिकृतोऽस्मीत्यात्मनि यद्विज्ञानमभूत्तत्तस्य यत्सज्जगतो मूलमेकमेवाद्वितीयं तत्त्वमसीत्यनेन वाक्येन प्रतिबुद्धस्य निवर्तते। विरोधात्। न ह्येकस्मिन्नद्वितीय आत्मन्ययमहमस्मीति विज्ञाते ममेदमनेन कर्तव्यमिदं कृत्वाऽस्य फलं भोक्ष्य इति वा भेदविज्ञानमुपपद्यते। तस्मात्सत्सत्याद्वितीयात्मविज्ञाने विकारानृतजीवात्मविज्ञानं निवर्तत इति

अज्ञातार्थप्रकाशनं मानफलं तस्य स्वप्रकाशे ब्रह्मणि नोपपत्तिरिति मन्वानश्चोदयति—किं पुनरिति। अत्राऽऽत्मनीति संबन्धः। स्वप्रकाशे प्रकाशातिशयस्य मानफलस्यासंभवेऽप्यध्यस्तव्यावृत्तिस्तत्फलं भविष्यतीत्युत्तरमाह—कर्तृत्वेति। [1]अश्रुतस्य श्रवणायामतस्य मननायाविज्ञातस्य विज्ञानफलसिद्धये चाधिकृतं यमर्थं त्वंपदवाच्यमवोचाम तस्य स्वात्मनि क्रियाकर्तृत्वे फलभोक्तृत्वे च यन्मिथ्याधिकृतत्वविज्ञानं तन्निवृत्तिर्मानफलमिति योजना। यथोक्तं मानफलमेव प्रपञ्चयति—प्राक्चेति। अहमेवात्राधिकृतश्चेति चकारस्य संबन्धः। तस्येत्यज्ञस्येत्यर्थः। विरोधमेव स्फोरयति—न हीति। प्रमाणफलमुपसंहरति—तस्मादिति। तत्त्वमसीति वाक्यं मुख्यैकत्वपरमिति स्वपक्षमुक्त्वा परपक्षं

ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान हो गया। मन्त्र में "विजज्ञाविति" की दो बार आवृत्ति अध्याय की समाप्ति की सूचक है।

(प्रमाण द्वारा किसी वस्तु की सिद्धि का फल यही हुआ करता है कि अज्ञात अर्थ का बोध हो सके, स्वयंप्रकाश ब्रह्म में ऐसा होना संभव नहीं अतः कहते हैं—) षष्ठाध्याय में आत्मा में वाक्य प्रमाण के द्वारा होने वाला फल आत्मा में ही हुआ, इससे क्या लाभ ? अश्रुत के श्रवण, अमत के मनन, अविज्ञात के विज्ञान फल सिद्धि के लिए जिस अर्थ को त्वं पद वाच्य कहा, उसके स्वात्मा में क्रिया कर्तृत्व एवं फलभोक्तृत्व रूप मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति रूप फल ही इसमें प्रयोजन है। मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति होने से पूर्व "मैं ही अग्निहोत्रादि कर्म करूँगा, मैं इसके लिए यहाँ अधिकृत हूँ" ऐसा अज्ञानावस्था में होता है। इन कर्मों का फल मैं इस लोक और परलोक में भोगूँगा क्योंकि मेरे द्वारा यह कर्म सम्पादित किए गए हैं, मुझे क्रिया कर्तृत्व एवं फलभोक्तृत्व में अधिकृत किया गया है, इस प्रकार उस अज्ञ को जो आत्मा में विज्ञान हुआ; वह 'तत्त्वमसि' महावाक्यों से जगत् का मूल सत्तत्व जानने से एक और अद्वितीय आत्मा का स्वरूप का ज्ञान होने से निवृत्त हो जाता है। एक, अद्वितीय आत्मा में 'मैं वही हूँ' ज्ञान हो जाने पर मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है, अतः इसके द्वारा करना चाहिए,

---

१. श्रोतुं मन्तुमविज्ञातविज्ञानफलार्थं चाधिकृतमित्येवमन्वयमाश्रित्य श्रोतुमित्येतद्व्याचष्टे—अश्रुतस्य श्रवणायेति। मन्तुमिति व्याख्याति—अमतस्य मननायेति। अविज्ञातेत्यादेरर्थमाह— अविज्ञातस्येति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

युक्तम् । ननु तत्त्वमसीत्यत्र त्वंशब्दवाच्येऽर्थे सद्बुद्धिरादिश्यते यथाऽऽदित्यमनआदिषु ब्रह्मादिबुद्धिः । यथा च लोके प्रतिमादिषु विष्ण्वादिबुद्धिस्तद्वन्नतु सदेव त्वमिति यदि सदेव श्वेतकेतुः स्यात्कथमात्मानं न विजानीयाद्येन तस्मै तत्त्वमसीत्युपदिश्यते । न । आदित्यादिवाक्यवैलक्षण्यात् । आदित्यो ब्रह्मेत्यादावितिशब्दव्यवधानान्न साक्षाद्ब्रह्मत्वं गम्यते । रूपादिमत्त्वाच्चाऽऽदित्यादीनामाकाशमनसोश्चेतिशब्दव्यवधानादेवाब्रह्मत्वमिह तु सत एवेह प्रवेशं दर्शयित्वा तत्त्वमसीति निरङ्कुशं सदात्मभावमुपदिशति ।

ननु पराक्रमादिगुणैः सिंहोऽसि त्वमितिवत्तत्त्वमसीति स्यात् । न । मृदादि-

---

शङ्कते—नन्विति । आध्यासिकमेकत्वं सामानाधिकरण्यालम्बनमिति स्वपक्षं दृष्टान्तेनोक्त्वा सिद्धान्तं दूषयति—नन्विति । श्वेतकेतोः सन्मात्रत्वे तदज्ञानायोगादसकृदुपदेशासिद्धिरित्यर्थः । किमध्यासवाक्यसामान्यादाध्यासिकमेकत्वं सामानाधिकरण्यालम्बनं किं वा मुख्यैकत्वे बाधकसद्भावादिति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—नेत्यादिना । यथा लोके शुक्तिकां रजतमिति प्रत्येतीत्यादावितिशब्दपरं सामानाधिकरण्यं न वस्तुनिष्ठं दृष्टं तथाऽध्यासवाक्यानामप्यादित्यो ब्रह्मेत्यादेश इत्यादीनामितिशब्दपरसामानाधिकरण्यवशादवस्तुनिष्ठत्वं गम्यते न तथा तत्त्वमसिवाक्यस्यावस्तुनिष्ठत्वमितिशब्दपरत्वाभावेन सामानाधिकरण्यस्य स्वरूपपर्यवसायित्वनिश्चयादित्यर्थः । इह त्विति प्रकरणोक्तिः । इह प्रवेशं दर्शयित्वेत्यत्र तेजोबन्नमयं संघातमिहेति व्यपदिशति ।

जीवब्रह्मणोर्भेदग्राहिप्रमाणविरोधान्न मुख्यमेकत्वं किं तु चैतन्यगुणयोगाद्गौणमिति द्वितीयं शङ्कते—नन्विति । यथा मृदादि कारणमेव घटादि कार्यं न पृथगस्ति तथा सर्वमिदमाकाशादिकार्यं

इसे करके यह फल भोगूँगा इत्यादि भेद विज्ञान सिद्ध नहीं होता। इसलिए यह उचित ही है कि सत्य, अद्वितीय सत्तत्त्व आत्मविज्ञान हो जाने पर नामरूप विकारयुक्त मिथ्या जीवात्म विज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। स्वपक्ष कहकर परपक्ष में शङ्का करते हैं—"तत् त्वम् असि" इस महावाक्य में 'त्वं' शब्द के वाच्य अर्थ में सद् भावना की जाती है, जिस प्रकार आदित्य मन आदि में ब्रह्मादि की भावना की जाती है। अथवा जिस प्रकार लोक व्यवहार में प्रतिमा में विष्णु आदि की भावना की जाती है, इसी प्रकार यह भी भावना ही है न कि वास्तव में तुम सत्तत्त्व हो। यदि श्वेतकेतु सत्तत्त्व ही होता तो आत्मा को जाना होता, उसे 'तत्त्वमसि' महावाक्य से उपदेश देना न पड़ता। ऐसा कहना ठीक नहीं है। आदित्यादि वाक्यों से महावाक्य में विलक्षणता है। 'आदित्य ब्रह्म है' इत्यादि वाक्यों में अवस्तुनिष्ठ होने से शब्द के व्यवधान से आदित्य का साक्षात् ब्रह्म में परम तात्पर्य नहीं है। इसके अतिरिक्त आदित्यादि आकाश मन का रूपादिवान् होने से एवं शब्द के आश्रित होने से भी ब्रह्म होना संभव नहीं। किन्तु प्रस्तुत प्रकरण में सत् का तेज, जल और पृथिवी में प्रवेश दिखा कर "वह तुम ही हो" इस महावाक्य से निरपेक्ष सत्तत्त्व ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान का उपदेश किया जाता है।

इस पर दूसरा शङ्का करता है—(जीव ब्रह्म में अभेद होने मुख्य-गौण भाव तो रहेगा) जैसे किसी बालक के अतिशय पराक्रम आदि गुणों से युक्त होने के कारण उसे "तू शेर है" ऐसा कहते हैं, ठीक इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' महावाक्य में भी समझ लो। ऐसा कहना ठीक नहीं है, जिस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्त्सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमित्युपदेशात् । न चोपचारविज्ञानत्तस्य तावदेव चिरमिति सत्संपत्तिरुपदिश्येत । मृषात्वादुपचारविज्ञानस्य । त्वमिन्द्रो यम इतिवत् । नापि स्तुतिरनुपास्यत्वाच्छ्वेतकेतोः । नापि सच्छ्वेतकेतुत्वोपदेशेन स्तूयेत । न हि राजा दासस्त्वमिति स्तुत्यः स्यात् । नापि सतः सर्वात्मन एकदेशनिरोधो युक्तस्तत्त्वमसीति देशाधिपतेरिव ग्रामाध्यक्षस्त्वमिति । न चान्या गतिरिह सदात्मत्वोपदेशादर्थान्तरभूता संभवति । ननु सदस्मीति बुद्धिमात्रमिह कर्तव्यतया चोद्यते न त्वज्ञातं सदसीति ज्ञाप्यत इति चेत् । नन्वस्मिन्पक्षेऽप्यश्रुतं श्रुतं भवतीत्याद्यनुपपन्नम् । न । सदस्मीतिबुद्धिविधेः स्तुत्यर्थत्वात् । नाऽऽचार्यवान्पुरुषो वेद । तस्य तावदेव चिरमित्युपदेशात् । यदि हि सदस्मीति बुद्धिमात्रं कर्तव्यतया विधीयते न तु त्वंशब्दवाच्यस्य

सन्मात्रं [1]तत्र सर्वप्रकारभेदरहितमेकरसमबाधितमित्युपदेशदर्शनान्न गौणमेकत्वमित्युत्तरमाह—नेत्यादिना । इतश्च नोपचरितमेकत्वमित्याह—न चेति । औपचारिकविज्ञानस्य मृषात्वे दृष्टान्तमाह—त्वमिति । किं च गौणमेकत्वं वदता स्तुत्यर्थत्वं विधिपरत्वं वा वाक्यस्य वक्तव्यमाद्येऽपि श्वेतकेतोः सतो वा वस्तुनः स्तुतिरिति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—नापीति । उपास्यत्वात्सतोऽस्तु स्तुतिरिति द्वितीयमाशङ्क्य दूषयति—नापि सदिति । इतश्च श्वेतकेतुत्वोपदेशेन सतो न स्तुतिरित्याह—नापि सत इति । श्वेतकेतोरनुपास्यत्वेन स्तुत्यसंभवेऽपि कर्तृत्वात्कर्मसु तत्स्तावकत्वं वाक्यस्य युक्तमित्याशङ्क्य कर्मविध्यसंनिधानात्सदात्मत्वमात्रप्रतीतेश्च नैवमित्याह—न चेति । विकल्पान्तरमुद्भावयति—ननु सदस्मीतीति । एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानवचनविरोधान्न दृष्टिविधिपरत्वमित्युत्तरमाह—नन्विति । गौणपक्षेऽपि तुल्याऽनुपपत्तिरित्यपेरर्थः । एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतेर्न विरोधोऽस्तीति पूर्ववाद्याह—नेति । नेदमेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं दृष्टिविधिस्तुतिः कार्यकारणानन्यत्वादियुक्तिभिरुपपादितत्वाद्विधिपक्षे चासंभावनादिनिराससमर्थाचार्यवत्त्वोपदेशानर्थक्यादौपदेशिकज्ञानमात्रेण विध्यनुष्ठानसिद्धे विध्यपेक्षितस्य च तेनैवाऽऽक्षेपादित्युत्तरमाह—नाऽऽचार्यवानिति । तदेव विवृणोति—यदि हीति । आचार्यवत्त्वमिति नोप-

---

मृत्तिका कारण से घट कार्य पृथक् नहीं है, इसी प्रकार आकाश कार्य सन्मात्र ही है वह तत्त्व एक अद्वितीय एवं सत्य है ऐसा उपदेश किया गया है, अतः उसमें गौण मुख्य भाव संभव नहीं है। यदि गौण का अभेद विज्ञान श्रुति को अभीष्ट होता तो श्रुति ऐसा उपदेश न करती, "सत्तत्त्व विज्ञानी को विदेह कैवल्य प्राप्ति के लिए केवल देह छूटने भर की देरी है"। इसलिए औपचारिक विज्ञान मिथ्या है। जिस प्रकार किसी की स्तुति की जाए तुम देवाधिदेव इन्द्र हो, सर्वलोकनियन्ता यम हो। यह महावाक्य श्वेतकेतु अथवा सत्तत्त्व की स्तुति भी नहीं है क्योंकि वह उपास्य नहीं है। श्वेतकेतुत्व उपदेश के द्वारा सत् की स्तुति हो, ऐसा भी नहीं है। तुम दास हो इस प्रकार कोई राजा स्तुत्य नहीं हो सकता। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि सर्वात्मा सत्तत्त्व के द्वारा तत्त्वमसि महावाक्य से एक देश का निरोध हो; जैसे किसी देश के राजा को तुम ग्राम के प्रधान हो ऐसा कहना। प्रकृत में सदात्म तत्त्व उपदेश को छोड़ कर किसी अन्य अर्थ में तात्पर्य संभव नहीं है। (विकल्पान्तर को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—) यदि ऐसा मानें कि यहाँ "मैं सत्तत्त्व हूँ" इसी भावना को कर्तव्य रूप से कहा जाता है न कि "तू सत्तत्त्व है" इस प्रकार अज्ञात का ज्ञापन है तो इसमें श्रुति विरोध का भी प्रसंग नहीं

---

१. तत्र—आकाशादिकार्ये ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सद्रूपत्वमेव तदा नाऽऽचार्यवान्वेदेति ज्ञानोपायोपदेशो वाच्यः स्यात् । यथाऽग्निहोत्रं जुहुयादित्येवमादिष्वर्थप्राप्तमेवाऽऽचार्यवत्त्वमिति तद्वत् । तस्य तावदेव चिरमिति च क्षेपकरणं न युक्तं स्यात् । सदात्मतत्त्वेऽविज्ञातेऽपि सकृद्बुद्धिमात्रकरणे मोक्षप्रसङ्गात् । न च तत्त्वमसीत्युक्ते नाहं सदितिप्रमाणवाक्यजनिता बुद्धिर्निवर्तयितुं शक्या नोत्पन्नेति वा शक्यं वक्तुम् । सर्वोपनिषद्वाक्यानां तत्परतयैवोपक्षयात् । यथाऽग्निहोत्रादिविधिजनिताग्निहोत्रादिकर्तव्यताबुद्धीनामतथार्थत्वमनुत्पन्नत्वं वा न शक्यते वक्तुं तद्वत् ।

दिश्यत इति शेषः । इतश्च नेदं वाक्यं दृष्टिविधिपरमेष्टव्यमित्याह—तस्येति । सदात्मत्वसाक्षात्कारादृतेऽपि सकृदनुष्ठितपरोक्षबुद्धिमात्रान्मोक्षसंभवाद्विलम्बाभिधानमनर्थकमापद्येत यथा सकृदनुष्ठितादपि यागाद्भवति स्वर्गस्तद्वदिह च चिरमिति क्षेपकरणं मोक्षस्येति तस्मान्नेदं दृष्टिविधिपरमित्यर्थः । किंच विधिवादिना प्रतीयमानेऽर्थे वाक्यस्याप्रामाण्यं विपर्यासलक्षणमनुत्पत्तिलक्षणं वा वाच्यं तदुभयं दुर्वचमित्याह—न चेति । तत्त्वमसीत्यधिकारिणं प्रत्युक्ते सति प्रमाणभूतेन तेन वाक्येन जनिता सद्ब्रह्माहमिति या तस्य बुद्धिस्तां निवर्तयितुं नाहं सदिति बलवती बुद्धिरुत्पन्नेति न शक्यते वक्तुं विवेकवतः श्रुतवाक्यस्य तथाविधबुद्ध्यनुत्पादान्न चाधिकारिणः श्रुतवाक्यस्य सद्ब्रह्माहमिति बुद्धिर्नोत्पन्नेति वक्तुं शक्यमधिकारिणः प्रमितिजनको वेद इति न्यायात् । न च भेदप्रत्ययो यथोक्ताया बुद्धेर्बाधकस्तस्य स्वाप्नभेदप्रत्ययवन्मिथ्यात्वानुमानादित्यर्थः । इतश्च तत्त्वमसिवाक्यं वस्तुपरमेवेत्याह—सर्वोपनिषदिति । तत्त्वमसिवाक्यान्नायथार्था बुद्धिर्नापि न भवत्येव बुद्धिरित्येतमर्थं दृष्टान्तेनाऽऽह—यथेति ।

जाएगा कि अश्रुत श्रुत हो जाता है । इस पर कहते हैं—ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि "मैं सत् स्वरूप हूँ" यह भावना दृष्टिविधि की स्तुति के लिए है । "आचार्यवान् पुरुष ही जानता है" इस श्रुति की सार्थकता नहीं रहेगी । तत्त्वविज्ञानी के विदेहकैवल्य होने मैं देह छूटने भर की देर है, ऐसा उपदेश किया हुआ है । (इसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—)"मैं सत्तत्त्व रूप हूँ" इसकी भावनामात्र को यदि कर्तव्यरूप से विधान किया जाता है, 'त्वं' शब्द वाच्य की सद्रूपता के लिए नहीं तो "आचार्यवान् पुरुष ही ज्ञानी हो पाता है" इस श्रुति के अनुसार ज्ञान प्राप्ति के उपाय का उपदेश करना नहीं बनेगा । जिस प्रकार स्वर्गाभिलाषी अग्निहोत्र से याग करे इत्यादि विनियोग मन्त्रों का स्वभावतः प्राप्त है वहाँ आचार्यवत्त्व की आवश्यकता नहीं, इसी प्रकार यहाँ भी उपदेश नहीं किया गया है । "उसके विदेहकैवल्य में देर नहीं है" इससे विलम्ब करना युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता । सदात्मतत्त्व के साक्षात्कार हुए बिना भी एक बार अनुष्ठित अप्रत्यक्ष भावना मात्र से मोक्ष होने लग जाएगा, जिस प्रकार एक बार याग करने से भी स्वर्ग मिलता है । 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य के कहने पर "मैं सद् हूँ" इस प्रतीयमान अर्थ में वाक्य का अप्रामाण्य कहना इस आधार पर संभव नहीं कि 'सद्ब्रह्माहं' बुद्धि की निवृत्ति हो जाती है अथवा उत्पत्ति हो जाती है । केवल 'तत्त्वमसि' महावाक्य का ही नहीं, उपनिषदों के सभी वाक्यों का वस्तुपरक रूप में ही चरम तात्पर्य है । 'तत्त्वमसि' महावाक्य के श्रवण से न ही अयथार्थ बुद्धि की कल्पना न ही अनुत्पन्न बुद्धि की कल्पना संभव है, जिस प्रकार अग्निहोत्रादि के अनुष्ठान रूप विधान से होने वाली अग्निहोत्रादि करने की बुद्धि अयथार्थ नहीं और न ही उसे 'वह बुद्धि ही नहीं हुई' ऐसे कहा जा सकता है ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यत्तूक्तं सदात्मा सन्नात्मानं कथं न जानीयादिति। नासौ दोषः। कार्यकरणसंघातव्यतिरिक्तोऽहं जीवः कर्ता भोक्तेत्यपि स्वभावतः प्राणिनां विज्ञानादर्शनात्किमु तस्य सदात्माविज्ञानम्। कथमेवं व्यतिरिक्तविज्ञाने सति तेषां कर्तृत्वादिविज्ञानं संभवति दृश्यते च। तद्वत्तस्यापि देहादिष्वात्मबुद्धित्वान्न स्यात्सदात्मविज्ञानम्। तस्माद्विकारानृताभिसंधिकृतजीवात्मविज्ञाननिवर्तकमेवेदं वाक्यं तत्त्वमसीति सिद्धमिति ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे षष्ठोऽध्यायः संपूर्णः ॥६॥

जीवे भासमानेऽप्यनवभासमानत्वान्न स्वभावो ब्रह्मेत्युक्तमनूद्य दूषयति—यत्तूक्तमिति। लोकायतातिरिक्तानां देहादतिरेको जीवस्य स्वाभाविकोऽपि नावभासते तथा ब्रह्मभावोऽपि तस्यानाद्यनिर्वाच्याज्ञानसामर्थ्यादेव नावभासिष्यते। तथाच तस्मिन्भासमानेऽप्यनवभासमानत्वान्न स्वभावो ब्रह्मेत्युक्तं व्याप्त्यभावादित्याह—कार्येति। ननु देहव्यतिरिक्तात्मवादिनामात्मनि भाति देहव्यतिरेकोऽपि भात्येवेति व्याप्तिसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—कथमिति। देहादिसंघातादतिरिक्तोऽहमित्येवं व्यतिरिक्तविज्ञाने सति कथं तेषां कर्तृत्वादिविज्ञानं संभवति। न हि संघाताभिमानविगमे तद्युज्यते। न च तन्नास्त्येव दृश्यमानत्वादित्यर्थः। सिद्धे दृष्टान्ते दार्ष्टान्तिकमाह—तद्वदिति। देहाद्व्यतिरिक्तस्य सतोऽप्यप्रतिभानवत्सदात्मकस्यापि श्वेतकेतोर्देहादिष्वात्माभिमानित्वात्सदात्मनि ब्रह्मणि विज्ञानं न स्यादतस्तत्स्वभावस्यापि ब्रह्मभावस्याप्रतिभानमज्ञानकृतमित्यर्थः। वाक्यस्यार्थान्तरपरत्वासंभवे फलितमुपसंहरति—तस्मादिति। महावाक्यस्योक्तया विधयाऽर्थान्तरपरत्वासंभवाद्विकारेऽनृताभिसंधिकृतमहं जीवात्मेत्येवंरूपं यन्मिथ्याज्ञानं तस्य सनिदानस्य निवर्तकमेवेदं तत्त्वमसिवाक्यं न त्वभूतप्रादुर्भावफलमित्येवं जीवब्रह्मणोरैक्यं सर्वोपनिषत्सारभूतं स्थितमित्यर्थः ॥३॥

इति षष्ठाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकश्रीशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां श्रीशङ्करभगवत्कृतच्छान्दोग्यभाष्यटीकायां षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥६॥

(जीव के भासते हुए भी न भासने के कारण वह ब्रह्म का स्वभाव नहीं है—इसका खण्डन करते हैं) यह जो कहा गया कि जीव के स्वभाव का ही भास नहीं होता फिर ब्रह्म भाव भी उसके अनादि, अनिर्वचनीय सामर्थ्य से भी नहीं भासेगा, यदि वह सदात्मा है तो आत्मा उसे क्यों नहीं भासता ? (इसका परिहार करते हुए कहते हैं—) इसमें कोई दोष नहीं है। देहेन्द्रिय संघात से भिन्न मैं जीवात्मा कर्ता और भोक्ता हूँ, यह भी स्वभावतः प्राणियों को नहीं भासता फिर सदात्म विज्ञान का स्वभावतः भासना कैसे बनेगा। ऐसा होने पर "मैं देहेन्द्रियसंघात से भिन्न हूँ" इस प्रकार व्यतिरेक विज्ञान होने पर उन्हें कर्तृत्वाभिमान रूप विज्ञान कैसे होगा। जब देहेन्द्रिय संघात का अभिमान ही नष्ट हो गया तो कर्तृत्वाभिमान कैसे होगा। वह सर्वथा नष्ट नहीं होता क्योंकि उसको प्रायः देखा जाता है। इसी प्रकार उस श्वेतकेतु को भी देहादि में आत्मा का अभिमान होने के कारण सदात्मा ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ अर्थात् उस स्वाभाविक ब्रह्मभाव का न भासना अज्ञान के कारण ही है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।)

अधीहि भगव होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तँ होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ॥१॥

सनत्कुमार के पास जाकर नारद का उपदेश ग्रहण

हे भगवन् ! मुझे उपदेश करें ऐसा कहते हुए नारद जी (शिष्य भाव से ब्रह्मनिष्ठ योगीश्वर सनत्कुमार के पास गये। नियमानुसार आये हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा—तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश करूँगा। ऐसा सुनकर नारद ने कहा ॥१॥

परमार्थतत्त्वोपदेशप्रधानपरः षष्ठोऽध्यायः सदात्मैकत्वनिर्णयपरतयैवोपयुक्तः। न सतोऽर्वाग्विकारलक्षणानि तत्त्वानि निर्दिष्टानीत्यतस्तानि नामादीनि प्राणान्तानि क्रमेण निर्दिश्य तद्द्वारेणापि भूमाख्यं निरतिशयं तत्त्वं निर्देक्ष्यामी'ति शाखाचन्द्रदर्शन-

---

षष्ठसप्तमयोरध्याययोः संबन्धं वक्तुकामः षष्ठे वृत्तं कीर्तयति—परमार्थेति। उत्तमाधिकारिणं प्रत्यबाधिततत्त्वबोधनं प्रधानं तत्परोऽतीतोऽध्यायः स सतो ब्रह्मणः प्रत्यङ्निश्चयपरत्वेनैव व्याख्यात इत्यर्थः। अध्यायान्तरभूमिकामारचयति—न सत इति। मध्यममधिकारिणं प्रति परम्परया ब्रह्मात्मत्वमुपदेष्टुं सप्तमप्रपाठकप्रवृत्तिरित्यर्थः। नन्वत्रापि ब्रह्मात्मत्वमेवोपदेष्टुमिष्टं चेत्किमिति तर्हि

इससे सिद्ध हुआ कि 'तत्त्वमसि' यह महावाक्य विकार में मिथ्याभिनिवेश "मैं जीवात्मा हूँ" इस मिथ्या ज्ञान को निदानपूर्वक निवृत्त करता है भावाशय यह है कि जीव-ब्रह्म का ऐक्य ही सभी उपनिषदों का सारभूत सिद्धान्त है ॥ ३ ॥

इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् षष्ठ अध्याय शाङ्कर भाष्य की डा० उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ ६ ॥

(सप्तम अध्याय की पूर्व अध्याय से संगति बतलाते हुए भगवान् भाष्यकार षष्ठ अध्याय का सारांश कहते हैं—) उत्तम अधिकारी के लिए षष्ठ अध्याय में आत्यन्तिक सत्यत्व रूप तत्त्वज्ञान का उपदेश किया गया है, सत् ब्रह्म के एकत्व का प्रत्यक्ष निश्चय कराना ही मुख्य प्रयोजन है। मध्यम अधिकारी के लिए परम्परा से ब्रह्मात्मैक्य दर्शन कराने हेतु सप्तम अध्याय का आरम्भ किया जाता है।

सत् से पूर्व विकारसञ्ज्ञक तत्त्वों का निर्देश नहीं किया गया अतः नाम से लेकर प्राण पर्यन्त सभी का क्रमशः निर्देशकर उसी के माध्यम से ही भूमा सञ्ज्ञक निरतिशय तत्त्व बतलाना है, जिस प्रकार द्वितीया के चन्द्रमा का शुभ दर्शन कराने के लिए वह शाखा के पार है, ऐसा आश्रय लिया जाता

---

१. इतिशब्दोऽयमधिकः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वदितीमं सप्तमं प्रपाठकमारभते। अनिर्दिष्टेषु हि सतोऽर्वाक्तत्त्वेषु सन्मात्रे च निर्दिष्टेऽन्यदप्यविज्ञातं स्यादित्याशङ्का कस्यचित्स्यात्सा मा भूदिति वा तानि निर्दिदिक्षति। अथवा सोपानारोहणवत्स्थूलादारभ्य सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं च बुद्धिविषयं ज्ञापयित्वा तदतिरिक्ते स्वाराज्येऽभिषेक्ष्यामीति नामादीनि निर्दिदिक्षति। अथवा नामाद्युत्तरोत्तरविशिष्टानि तत्त्वान्यतितरां च तेषामुत्कृष्टतमं भूमाख्यं तत्त्वमिति तत्स्तुत्यर्थं नामादीनां क्रमेणोपन्यासः। आख्यायिका तु परविद्यास्तुत्यर्था। कथम्। नारदो देवर्षिः कृतकर्तव्यः सर्वविद्योऽपि सन्ननात्मज्ञत्वाच्छुशोचैव किमु वक्तव्यमन्योऽल्पविज्जन्तुरकृतपुण्यातिशयोऽकृतार्थ इति। अथवा नान्यदात्मज्ञानान्निरतिशयश्रेयःसाधनमस्तीत्येतत्प्रदर्शनार्थं

नामादीनि तत्त्वानि निर्दिश्यन्ते तत्राऽऽह—अनिर्दिष्टेष्विति। वाशब्दः शङ्कानिरासार्थः। यद्वा द्वयोरध्याययोरद्वितीयब्रह्मात्मविषयत्वाविशेषेऽपि साक्षात्पारम्पर्याभ्यामपौनरुक्त्यमुक्तं संप्रति नामादीनामुत्तरोत्तरभूयस्त्वविशिष्टानां सन्मात्रविज्ञानेनाविज्ञानादेकविज्ञानेन सर्वविज्ञानमयुक्तमित्याशङ्क्य ब्रह्मविदः सर्वज्ञत्वं स्पष्टीकर्तुमुत्तरग्रन्थारम्भ इत्याह—अनिर्दिष्टेष्विति। नामादिसंकीर्तनस्य तात्पर्यान्तरमाह—अथवेति। अधमोऽधिकारी नामादीनि ब्रह्मत्वेनोपास्य तत्फलं च भुक्त्वा क्रमेण साक्षाद्ब्रह्मभावं प्राप्नोतीति प्रदर्शयितुमुत्तरो ग्रन्थ इत्यर्थः। शाखाचन्द्रनिदर्शनन्यायेन मध्यमस्याधिकारिणो ब्रह्मसिद्धिस्वीकारार्थं मध्यमस्याधिकारिणो ध्यानार्थं वा नामादिसंकीर्तनमित्युक्तमिदानीमुत्तममेवाधिकारिणमधिकृत्य भूमस्तुत्यर्थं नामादिवचनमिति मतान्तरमाह—अथवा नामादीति। अध्यायसंबन्धमुक्त्वाऽऽख्यायिकासंबन्धमाह—आख्यायिका त्विति। स्तुत्यर्थत्वमेव प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कथमित्यादिना। तथा च परविद्यया कृतार्थत्वात्तस्याः स्तुतिरत्र विवक्षितेति शेषः। अतीताध्यायादिष्टसदात्मत्वविज्ञानादन्यदेव देवतोपासनं मोक्षसाधनमित्याशङ्क्य तन्निषेधेन सदात्मविज्ञानस्यैव मोक्षसाधनत्वं दृढीकर्तुमाख्यायिका प्रवृत्तेति पक्षान्तरमाह—अथवेति। द्वितीयमाख्यायिकातात्पर्यं

है। सत् से पूर्व किन्हीं तत्त्वों का प्रतिपादन न कर सत् मात्र का निर्देश करने से कोई ऐसा न समझ बैठे कि इसके अतिरिक्त कुछ भी जानने योग्य नहीं है इसलिए उन्हें भी श्रुति बताना चाहेगी। अथवा अधम अधिकारी के लिए सीढ़ी दर सीढो चढ़ते हुए के समान स्थूल प्रपञ्च से प्रारम्भ कर सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतर बुद्धिगम्य विषयों को समझाकर उससे परे स्वाराज्य पद में अभिषिक्त कराऊँगी, ऐसा विचार कर श्रुति नामादि का प्रतिपादन करेगी। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि मध्यम अधिकारी द्वारा ध्यान करने के लिए तथा ब्रह्मसिद्धि स्वीकार करने के लिए नामादि उत्तरोत्तर विशिष्ट तत्त्वों का निरूपण कर उनमें उत्कृष्टतम भूमा तत्त्व ही है—ऐसी स्तुति के लिए नामादि का क्रमशः वर्णन है। सनत्कुमार और नारद संवादरूप आख्यायिका पर विद्या की स्तुति के लिए है क्योंकि कृतकृत्य एवं समस्त विद्याओं के ज्ञाता होते हुए भी देवर्षि नारद अनात्मज्ञ होने के कारण शोकाकुल हुए, फिर ऐसे अकृतार्थ पुरुष का कहना ही क्या है जो अल्पज्ञ है और जिन्होंने किसी पुण्य विशेष का अर्जन भी नहीं किया है। इस सनत्कुमार-नारद आख्यायिका के प्रारम्भ में दूसरा यह भा प्रयोजन हो सकता है कि "आत्मज्ञानसे बढ़कर आत्म कल्याण का कोई साधन नहीं है" इसे प्रदर्शित करना हो। कहीं तो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं

हे भगवन् मैं ऋग्वेद पढ़ा हूँ, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा आथर्वणवेद भी जानता हूँ।

सनत्कुमारनारदाख्यायिकाऽऽरभ्यते। येन सर्वविज्ञानसाधनशक्तिसंपन्नस्यापि नारदस्य देवर्षेः श्रेयो न बभूव येनोत्तमाभिजनविद्यावृत्तसाधनशक्तिसंपत्तिनिमित्ताभिमानं हित्वा प्राकृतपुरुषवत्सनत्कुमारमुपससाद श्रेयःसाधनप्राप्तयेऽतः प्रख्यापितं भवति निरतिशयप्राप्तिसाधनत्वमात्मविद्याया इति। अधीह्यधीष्व भगवो भगवन्निति किलोपससाद। अधीहि भगव इति मन्त्रः। सनत्कुमारं योगीश्वरं ब्रह्मनिष्ठं नारद उपसन्नवान्। तं न्यायत उपसन्नं होवाच यदात्मविषये किंचिद्वेत्थ तेन तत्प्रख्यापनेन मामुपसीदेदमहं जान इति ततोऽहं भवतो विज्ञानात्ते तुभ्यमूर्ध्वं वक्ष्यामीत्युक्तवति स होवाच नारदः ॥१॥

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि स्मरामि यद्वेत्थेति विज्ञानस्य पृष्टत्वात्। तथा

प्रपञ्चयति—येनेत्यादिना। सर्वस्यापि ज्ञेयस्य यद्विज्ञानं तस्य साधनमुत्पादकं तत्र शक्त्या संपन्नो वेद-वेदाङ्गाभिज्ञस्तस्यापीति यावत्। अस्ति हि नारदस्योत्तमाभिजने जन्म। ब्रह्मणो मानसपुत्रत्वादस्ति चोत्तमकर्मविद्याऽस्ति च वृत्तं सदाचरणमिति च श्रवणध्यानादि साधनशक्तीनां धर्माधर्मसाधनस्य वा शरीरस्य शक्तेः संपत्तिश्च जन्मादयो निमित्तमस्याभिमानस्य तं त्यक्त्वेति यावत्। इतिशब्दोऽध्या-याख्यायिकयोः संबन्धोक्तिसमाप्त्यर्थः। अध्ययनेन ज्ञानं लक्ष्यते तथा चाधीष्व ज्ञापयेत्यर्थः। मन्त्र उपसदनस्येति शेषः। न्यायतः समित्पाणिरित्यादिशास्त्रोक्तविधिवशादिति यावत् ॥१॥

अध्ययनवाचि पदं स्मरणपरतया कथं व्याख्यातमित्याशङ्क्याऽऽह—यद्वेत्थेति। गन्धयुक्तिः

देवर्षि नारद जो समस्त वेद और वेदाङ्ग के ज्ञाता हैं किन्तु उनको कल्याण प्राप्ति न हो सकी तभी तो वे ब्रह्मा के मानसपुत्र होने, विद्या व सदाचार श्रवण-ध्यानादि साधन शक्ति, जन्मादि निमित्तक सम्पत्ति के अभिमान को छोडकर अत्यन्त साधारण जीव की तरह कल्याण साधन प्राप्ति के लिए भगवान् सनत्कुमार के पास गये। इससे आत्मविद्या का उत्कृष्ट श्रेय प्राप्ति का साधन होना सिद्ध हो जाता है। नारद किस प्रकार कहते हुए भगवान् सनत्कुमार के शरणापन्न हुए......"हे भगवन्! मुझे उपदेश कीजिए"। "अधीहि भगव इति" यहीं से सप्तम अध्याय का प्रथम मन्त्र प्रारम्भ होता है। नारद जी ब्रह्मनिष्ठ, योगियों में श्रेष्ठ सनत्कुमार की शरण गए। शास्त्र विधि के अनुसार हाथों में समिधा लिए समीप आए हुए को वे बोले—हे नारद! आत्मा के विषय में तुम जो भी कुछ थोड़ा बहुत जानते हो उसी को मुझे बतला दो कि मैं इतना जानता हूँ फिर मैं तुम्हारे ज्ञान के अतिरिक्त जो तुम्हें बतलाना होगा उसे कहूँगा। ऐसा सुनकर नारद जी बोले ॥ १ ॥

जहाँ तक अध्ययन का प्रश्न है महाराज! तो मेरा ज्ञान इतना ही है—मैंने ऋग्वेद का

---

१. ननु विज्ञापय भगवन्नित्येव कुतो नोक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—अधीहि भगव इति मन्त्र इति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ॥२॥

सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि नाऽऽत्मविच्छ्रुतꣳ ह्येव

(सिवाय इनके) इतिहास पुराणरूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, महाकालनिधि शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र निरुक्त, शिक्षा,कल्प छन्द और चितिरूप ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुडविद्या, नृत्य संगीतादि विद्या, हे भगवन्! यह सब मैं जानता हूँ ॥२॥

हे भगवन्! यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूँ, आत्मा को मैं

यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थं वेदं वेदशब्दस्य प्रकृतत्वादितिहासपुराणं पञ्चमं वेदं वेदानां भारतपञ्चमानां वेदं व्याकरणमित्यर्थः। व्याकरणेन हि पदादिविभागश ऋग्वेदादयो ज्ञायन्ते। पित्र्यं श्राद्धकल्पम्। राशिं गणितम्। दैवमुत्पातज्ञानम्। निधिं महाकालादिनिधिशास्त्रम्। वाकोवाक्यं तर्कशास्त्रम्। एकायनं नीतिशास्त्रम्। देवविद्यां निरुक्तम्। ब्रह्मण ऋग्यजुःसामाख्यस्य विद्या ब्रह्मविद्यां शिक्षाकल्पच्छन्दश्चितयस्ताः। भूतविद्यां भूततन्त्रम्। क्षत्त्रविद्यां धनुर्वेदम्। नक्षत्रविद्यां ज्यौतिषम्। सर्पदेवजनविद्यां सर्पविद्यां गारुडं देवजनविद्यां गन्धयुक्तिनृत्यगीतवाद्यशिल्पादिविज्ञानानि। एतत्सर्वं हे भगवोऽध्येमि ॥२॥

सोऽहं भगव एतत्सर्वं जानन्नपि मन्त्रविदेवास्मि शब्दार्थमात्रविज्ञानवानेवास्मीत्यर्थः। सर्वो हि शब्दोऽभिधानमात्रमभिधानं च सर्वं मन्त्रेष्वन्तर्भवति। मन्त्रविद-

---

कुङ्कुमादिसंपादनम् ॥२॥

तर्हि सर्वज्ञः स्वतन्त्रस्त्वं कृत्यकृत्योऽसीत्याशङ्क्याऽऽह—सोऽहमिति। कथं मन्त्रविदित्यत्र

अध्ययन अवश्य किया है तथा यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का भी मुझे ज्ञान है। पञ्चम वेद के रूप में मुझे इतिहास और पुराण भी स्मरण है, महाभारत को पाँचवा वेद कहा है, व्याकरण शास्त्र पर भी अधिकार रखता हूँ क्योंकि व्याकरण शास्त्र में प्रवेश होने से ही पद-प्रकृति आदि विभागपूर्वक ऋग्वेदादि जाने जाते हैं। हे भगवन्! अन्य शास्त्रों में मैंने श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, महाकालादिनिधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, ऋक्, यजुः, सामाख्य विद्या के अंग शिक्षा, कल्प, छन्द, चिति, भूततत्त्व धनुर्वेद, ज्योतिष, सर्पविद्या, कुङ्कुमादि सम्पादनविद्या, नृत्य, गीत, वाद्य, शिल्प आदि सभी शास्त्रों को पढ़ा है ॥ २ ॥

हे भगवन्! इतना सब जानते हुए भी मैं केवल शब्दों के अर्थ का ज्ञाता होने से मन्त्रवेत्ता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳ होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत् ॥३॥

नहीं जानता। मैंने आप पूज्यजनों के जैसे महापुरुषों से सुना है, आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है और हे भगवन्! मैं तो शोक करता हूँ। ऐसे शोकग्रस्त मुझे शोक से पारकर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त करा देवें ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा—अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो वह नाममात्र ही है ।३॥

वास्मि मन्त्रवित्कर्मविदित्यर्थः। मन्त्रेषु कर्माणीति हि [1]वक्ष्यति। नाऽऽत्मविन्नाऽऽत्मानं वेद्मि। नन्वात्माऽपि मन्त्रैः प्रकाश्यत एवेति कथं मन्त्रविच्चेन्नाऽऽत्मवित्। न। अभिधानाभिधेयभेदस्य विकारत्वात्। न च विकार आत्मेष्यते। नन्वात्माऽप्यात्मशब्देनाभिधीयते। न। "[2]यतो वाचो निवर्तन्ते"। "[3]यत्र नान्यत्पश्यति" इत्यादिश्रुतेः। कथं तर्ह्यात्मैवाधस्तात्स आत्मेत्यादिशब्दा आत्मानं प्रत्याययन्ति। नैष दोषः। देहवति

कर्मविदिति व्याख्यानमित्याशङ्क्याऽऽह—मन्त्रेष्विति। मन्त्रविदेव नाऽऽत्मविदित्यत्र विरोधं चोदयति—नन्विति। मन्त्रवित्त्वे तत्प्रकाश्यात्मवित्त्वमपि स्यात्तदभावे मन्त्रवित्त्वमपि न युक्तमित्यर्थः। अभिधानमभिधेयमित्येवंरूपस्य भेदस्य विकारत्वेन मिथ्यात्वादात्मनश्च विकारत्वानङ्गीकारान्मन्त्रप्रकाश्यत्वाभावान्न विरोध इति परिहरति—नाभिधानेति। आत्मनो विकारत्वाभावेऽप्यभिधेयत्वमेष्टव्यमिति शङ्कते—नन्विति। श्रुत्यन्तरावष्टम्भेन निराचष्टे—नेत्यादिना। आत्मशब्देनाऽऽत्मनोऽभिधेयत्वाभावे वाक्यशेषादिविरोधः स्यादित्याशङ्कते—कथं तर्हीति। आत्मशब्देनावाच्यस्याऽऽत्मनस्तेन लक्षणया प्रतिपत्तिसंभवान्नोपक्रमोपसंहारविरोधोऽस्तीत्युत्तरमाह—नैष दोष इति। विशिष्टे [4]गृहीतशब्दो विशेषणे

ही रह गया हूँ (सर्वज्ञ स्वतन्त्र एवं कृतकृत्यता की मञ्जिल अभी बहुत दूर नजर आ रही है)। सभी शब्द अभिधान मात्र होते हैं, अभिधाशक्ति का सभी मन्त्रों में अन्तर्भाव होता है। श्रुति में 'मन्त्रविदेवास्मि' का अर्थ कर्मविद् ही समझना चाहिए। श्रुति भी इसी का अधिकांशतः समर्थन करती है "वेदमन्त्रों में कर्मों का ही विधान है"। आत्मा का ज्ञान तो नहीं हो पाया है मुझे प्रभो! यहाँ शङ्का होती है कि श्रुतिमन्त्रों में ही आत्मा का भी निरूपण है फिर केवल अपने को मन्त्रवेत्ता मात्र क्यों कहा है, नारद जी अपने आपको आत्मवेत्ता क्यों नहीं कह रहे हैं। ऐसी बात नहीं है क्योंकि अभिधान और अभिधेय रूप भेद विकारात्मक होने से मिथ्या है, आत्मा तो अविकारी है इसलिए इसे मन्त्र प्रकाशित नहीं कर सकते। यदि कहो, आखिर आत्मा भी 'आत्मा' शब्द से पुकारी जाती है तो ऐसा आग्रह भी समुचित नहीं भासता क्योंकि अन्य श्रुतियाँ इसमें प्रमाण हैं..."जहाँ वाणी बिना कुछ प्राप्त किए लौट आती है" "जहाँ केवल अद्वैत ही रह जाता है" इत्यादि। उन श्रुतियों का समन्वय कैसे करोगे—"आत्मा ही नीचे है" "वह आत्मा है" इत्यादि आत्मा का विश्वास दिलाने वाले शब्दों का

१. छा० उ० ७।४।१। २. छा० उ० ७।२४।१। ३. छा० उ० ७।२५।१। ४. गृहीतसङ्कक इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्यगात्मनि भेदविषये प्रयुज्यमानः शब्दो देहादीनामात्मत्वे प्रत्याख्यायमाने यत्परिशिष्टं सदवाच्यमपि प्रत्याययति। यथा सराजिकायां दृश्यमानायां सेनायां छत्रध्वजपताकादिव्यवहितेऽदृश्यमानेऽपि राजन्येष राजा दृश्यत इति भवति शब्दप्रयोगस्तत्र कोऽसौ राजेति राजविशेषनिरूपणायां दृश्यमानेतरप्रत्याख्यानेऽन्यस्मिन्नदृश्यमानेऽपि राजनि राजप्रतीतिर्भवेत्तद्वत्। तस्मात्सोऽहं मन्त्रवित्कर्मविदेवास्मि कर्मकार्यं च सर्वं विकार इति विकारज्ञ एवास्मि नाऽऽत्मविन्नाऽऽत्मप्रकृतिस्वरूपज्ञ इत्यर्थः। अत एवोक्तमाचार्यवान्पुरुषो वेदेति। "यतो वाचो निवर्तन्ते" इत्यादि[1]श्रुतिभ्यश्च। श्रुतमागमज्ञानमस्त्येव हि यस्मान्मे मम भगवद्दृशेभ्यो युष्मत्सदृशेभ्यस्तरत्यतिक्रामति शोकं मनस्तापमकृतार्थबुद्धितामात्मविदित्यतः। सोऽहमनात्मवित्त्वाद्धे भगवः शोचाम्यकृतार्थबुद्ध्या संतप्ये

प्रत्युक्ते यत्सन्मात्रं परिशिष्टं तदवाच्यमपि लक्षणया बोधयतीत्यर्थः। केवलात्मविषयस्याऽऽत्मशब्दस्य तद्दर्शनमन्तरेण विशिष्टात्मदृष्टिमात्रेण कथं प्रयोगः कथं वा तत्प्रयोगेऽपि ततो विवक्षितात्मधीरित्याशङ्क्य दृष्टान्तेन परिहरति—यथेत्यादिना। आत्मनो मुख्यवृत्त्या मन्त्रप्रकाश्यत्वाभावे फलितमाह—तस्मादिति। शब्दार्थज्ञानमात्रेणाऽऽत्मवित्त्वं न भवतीत्यनेनाऽऽचार्योपदेशजनितज्ञानवत एवाऽऽत्मवित्त्वमित्युक्तं तत्र प्रमाणमाह—अत एवेति। औपदेशिकज्ञानविषयत्वं तर्हि स्वीकृतमित्याशङ्क्याऽऽह—यत इति। मा तर्हि तवाऽऽत्मविद्या भूदित्याशङ्क्य शोकनिवृत्त्युपायत्वेन तदपेक्षां सूचयति—श्रुतमिति।

जहाँ प्रयोग है। इसमें भी कोई दोष नहीं है। यहाँ तो देह उपाधियुक्त प्रत्यगात्मा भेदविषयक प्रयुक्त शब्द देहादिकों से आत्मा का निरास करता है, इस प्रकार लक्षणा से अवाच्य आत्मा के प्रति निश्चय कराना ही तात्पर्य है, ऐसा ही तत्तन्मन्त्रों में उपक्रम और उपसंहार से सिद्ध होता है। इसमें दृष्टान्त भी है—जिस प्रकार राजा से सुशोभित दृश्यमान सेना में छत्र, ध्वज पताकादि से भिन्न राजा के न दिखाई देने पर भी ऐसा लोक व्यवहार में शब्द प्रयोग होता है "यह राजा दीख रहा है"। जब कोई पूछता है कहाँ है, कौन-सा है राजा? तो राजा की विशेषताओं का निरूपण करते हुए दूसरों का निषेध करते हुए मुख्यवृत्ति से राजा के दिखलाई न देने पर भी वैसी प्रतीति होती है, इसी प्रकार यहाँ समझना चाहिए। इसी से नारद जी कहते हैं मैं कर्मवेत्ता ही हूँ। संसार में सब विकारी वस्तुएँ कर्म परिणामी हैं अतः मैं विकारी पदार्थों का जानने वाला हूँ आत्मा के स्वाभाविक रूप को नहीं जानता हूँ। तभी श्रुति बल देती हुई कहती है—आचार्यवान् पुरुष ही आत्मज्ञान लाभ कर सकता है। 'वाणी तो वहाँ तक बिना पहुँचे लौट आती है" ऐसा श्रुतियों में कहा है। (आत्मविज्ञान न हो तो क्या हानि है ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं—) मुझे तो केवल वेदों का ज्ञान है इससे मुझे कोई सन्तोष नहीं है क्योंकि मैंने आप जैसे महापुरुषों के श्री मुख से सुना है अकृतार्थबुद्धि रूप मन के ताप को आत्मवेत्ता ही दूर कर पाता है। इसलिए हे भगवन्! आत्मज्ञान से शून्य मैं अपनी अपूर्णता पर पश्चात्ताप करते हुए

---

१. श्रुतिभ्यश्चेति—नौपदेशिकज्ञानविषयत्वमप्यात्मन इति शेषः। अनेन च फलविषयत्वमात्रमत्र निरस्तम् इति बोध्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्यां क्षत्त्रविद्या नक्षत्रविद्या सर्पदेवजनविद्या नामैवैतन्नामोपास्स्वेति ॥४॥

क्योंकि ऋग्वेद नाम है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा आथर्वण वेद, पाँचवाँ वेद इतिहास पुराण, व्याकरण श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष गारुड, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र—ये सब भी नाम ही हैं। (अतः प्रतिमा में विष्णु बुद्धि के समान) तुम नाम को ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो ॥४॥

सर्वदा तं मा मां शोकस्य शोकसागरस्य पारमन्तं भगवांस्तारयत्वात्मज्ञानोडुपेन कृतार्थबुद्धिमापादयत्वभयं गमयत्वित्यर्थः। तमेवमुक्तवन्तं होवाच यद्वै किंचैतदध्यगीष्ठा अधीतवानसि। अध्ययनेन तदर्थज्ञानमुपलक्ष्यते ज्ञातवानसीत्येतन्नामैवैतत्। "वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयम्" इति श्रुतेः ॥३॥

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेद इत्यादि नामैवैतत्। नामोपास्स्व ब्रह्मेति ब्रह्मबुद्ध्या। यथा प्रतिमां विष्णुबुद्ध्योपास्ते तद्वत् ॥४॥

आत्मज्ञानोडुपेनाऽऽत्मज्ञानाख्येन प्लवेनेति यावत्। कथं मदीयमर्थज्ञानं सर्वं नाममात्रमित्याशङ्क्याऽऽह—वाचाऽऽरम्भणमिति ॥३॥

उक्तमुपपादयति—नाम वा इति। तदुपसंहरति—नामैवेति। केन रूपेणेदं नामाऽऽदर्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—नामेति। उपास्तिप्रकारं दृष्टान्तेन स्फुटयति—यथेति ॥४॥

सदा दुःखित हो रहा हूँ, शोक सागर में फंसे हुए को आत्मज्ञान रूपी नय्या से पार कराईये जिससे मैं कृतकृत्यता लाभ कर सकूँ, अभय पद की प्राप्ति कर सकूँ। देवर्षि नारद द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर भगवान् सनत्कुमार ने कहा—हे देवर्षे! अभी तक अपने जितना अध्ययन किया है, वह सब नाम मात्र ही तो है। अध्ययन से यहाँ उसके अर्थ का ज्ञान भी उपलक्षित होता है। श्रुति भी कहती है......"जितना भी नामरूप विकारात्मक जगत् है...सब वाणी का विलास मात्र ही है" ॥ ३ ॥

'नाम वा' इत्यादि मन्त्र में ऋग्वेद, यजुर्वेद से लेकर सर्पदेवजनविद्या तक सभी विद्याएँ नाम ही हैं। हे देवर्षे! नाम की भी ब्रह्मबुद्धि से उसी प्रकार उपासना करनी चाहिए जिस प्रकार मूर्ति में भगवान् विष्णु के दिव्य, चिन्मय विग्रह की भावना की जाती है ॥ ४ ॥

Rajguru Math Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥५॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

'वह जो नाम ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, जहाँ तक नाम की गति है, वहाँ तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवन्! क्या नाम से बढ़ कर भी कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) नाम से बढ़कर वस्तु है। (तब नारद ने कहा—)भगवन्! मुझे उसका ही उपदेश करें। ॥५॥

॥इति प्रथमः खण्डः॥

स यस्तु नाम ब्रह्मेत्युपास्ते तस्य यत्फलं भवति तच्छृणु यावन्नाम्नो गतं नाम्नो गोचरं तत्र तस्मिन्नामविषयेऽस्य यथाकामचारः कामचरणं राज्ञ इव स्वविषये भवति। यो नाम ब्रह्मेत्युपास्त इत्युपसंहारः। किमस्ति भगवो नाम्नो भूयोऽधिकतरं यद्ब्रह्मदृष्ट्यर्हमन्यदित्यभिप्रायः। सनत्कुमार आह नाम्नो वाव भूयोऽस्त्येवेत्युक्त आह यद्यस्ति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥५॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

नाम्नि ब्रह्मदृष्टयोपास्यमाने किं स्यादित्याह—स यस्त्विति। यो नामेत्यादिवाक्यस्य पौनरुक्त्यमित्याशङ्क्याऽऽह—यो नामेति ॥५॥

इति सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः॥१॥

जो भी कोई (अधम या मध्यमाधिकारी) नाम की ब्रह्मबुद्धि से उपासना करता है, उसका फल कहते हैं, सुनो। जितने भी नाम के गोचर अर्थ हैं, उस नाम रूपी अर्थ के साम्राज्य में उसी प्रकार स्वतन्त्रता से विचरता है, जिस प्रकार राजा अपने जनपद के लोगों में सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होता है। ऐसा फल उसी को मिलता है जिसकी नाम में ब्रह्म भावना है, इसी में श्रुति का उपसंहृत अर्थ है। इस पर नारद जी ने पूछा—नाम से भी अधिक श्रेष्ठ क्या है, जिसमें ब्रह्मदृष्टि की जाए। सनत्कुमार जी बोले—नाम से श्रेष्ठ भी अन्य है। देवर्षि नारद बोले—वह जो कुछ है उसका उपदेश मुझ शिष्य के प्रति करें ॥५॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः।)

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्श्वाप-

नाम की अपेक्षा वाणी की श्रेष्ठता

निश्चय ही नाम से बढ़कर वाक् है (कण्ठादि आठ स्थानों में स्थित वर्णाभिव्यञ्जक इन्द्रिय को वाणी कहते हैं और वर्ण को नाम कहते हैं) वाणी ही ऋग्वेदरूप नाम को बतलाती है। यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वणवेद, इतिहास पुराण पंचमवेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातशास्त्र, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्विद्या, ज्योतिष, गारुड़, संगीत शास्त्र, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति हिंसक जन्तु, कीट, पतंग, पिपीलकापर्यन्त प्राणी, धर्म

वाग्वाव। वागितीन्द्रियं जिह्वामूलादिष्वष्टसु स्थानेषु वर्णानामभिव्यञ्जकम्। वर्णाश्च नामेति नाम्नो वाग्भूयसीत्युच्यते। कार्याद्धि कारणं भूयो दृष्टं लोके यथा पुत्रात्पिता तद्वत्। कथं च वाङ्नाम्नो भूयसीत्याह—वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयत्ययमृग्वेद इति। तथा यजुर्वेदमित्यादि समानम्। हृदयज्ञं हृदयप्रियम्। तद्विपरीतमहृदयज्ञम्।

वाग्वाव नाम्नो भूयसीत्युक्तं वाङ्नाम्नोरेकत्वाद्व्याप्यव्यापकत्वानुपपत्तिरित्याशङ्क्य व्याचष्टे—वागितीन्द्रियमिति। जिह्वामूलादिष्वित्यादिशब्देनोरःकण्ठशिरोदन्तौष्ठनासिकाताळूनि गृह्यन्ते। वर्णाभिव्यञ्जकत्वेऽपि नाम्नस्तु भूयस्त्वं कुतस्त्यमित्याशङ्क्याऽऽह—वर्णावागिन्द्रियस्य वर्णेभ्योऽभिव्यङ्ग्येभ्यो भूयस्त्वेऽपि नाम्नस्तु भूयस्त्वं कुतस्त्यमित्याशङ्क्याऽऽह—कार्याद्धीति। वाचो श्चेति। तयोर्व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावेऽपि कथं व्याप्यव्यापकत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—कार्याद्धीति। इतश्च वाचो भूयस्त्वमेष्टव्यमित्याह—नाम्नो भूयस्त्वं प्रश्नपूर्वकं प्रपञ्चयति—कथं चेत्यादिना।

'वाग्वाव' मन्त्र की व्याख्या की जाती है। वाणी ही नाम से प्रशस्त मानी गयी है। जिह्वामूलादि आठ स्थानों में स्थित वाक् इन्द्रिय है जो वर्णों की अभिव्यक्ति कराती है। ये वर्ण ही नाम हैं इससे नाम की वाणी से अधिक प्रतिष्ठा है—ऐसा कहा जाता है। लोकव्यवहार में यह स्पष्ट ही देखा जाता है कि कारण से कार्य होता है, जैसे कार्य पुत्र की सत्ता में कारण पिता की कल्पना अपरिहार्य है। वाणी को नाम से श्रेष्ठ क्यों कहा गया है इस पर श्रुति कहती है—वाणी ही 'यह ऋग्वेद है' इस प्रकार ऋग्वेद-का ज्ञान कराती है। इसी प्रकार यजुर्वेद आदि सभी शास्त्रों का ज्ञान भी वाणी से होता ही होता है। हृदय को प्रिय लगने वाले एवं अप्रिय लगने वाले विषयों का ज्ञान भी वाणी से होता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं नानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति ॥१॥

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ, जो कुछ भी है (सभी वाणी के विषय हैं) यदि वाणी न होती, तो न धर्म का, न अधर्म का ही ज्ञान होता तथा न सत्य का, न असत्य का, न साधु का, न असाधु का, न मनोज्ञ का और न ही अमनोज्ञ का ही ज्ञान हो पाता। शब्द उच्चारण द्वारा वाणी ही इन सबको विज्ञापन करती है। अतः नाम से श्रेष्ठ इस वाणी की 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार से उपासना करो ॥१॥

'यह ब्रह्म है' इस प्रकार वह जो कोई वाणी की उपासना करता है, उस उपासक की वहाँ तक स्वेच्छा से गति होती है, जहाँ तक वाणी की गति है। जो पुरुष 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार से वाणी की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवन्! क्या वाणी से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ, वाणी से भी बढ़कर वस्तु है। (नारद ने कहा—) भगवन्! तब तो उसे ही मुझे बतलायें ॥ २ ॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

यद्यदि वाङ्नाभविष्यद्धर्मादि न व्यज्ञापयिष्यद्वागभावेऽध्ययनाभावोऽध्ययनाभावे तदर्थश्रवणाभावस्तच्छ्रवणाभावे धर्मादि न व्यज्ञापयिष्यन्न विज्ञातमभविष्यदित्यर्थः। तस्माद्वागेवैतच्छब्दोच्चारणेन सर्वं विज्ञापयत्यतो भूयसी वाङ्नाम्नस्तस्माद्वाचं ब्रह्मेत्युपास्स्व ॥१॥

यद्यदीति। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां तस्या भूयस्त्वे सिद्धे फलितमाह—तस्मादिति ॥१॥

है। यदि वाणी न होती तो धर्मादि का ज्ञान नहीं कराया जा सकता था। वाणी न होने से अध्ययन होना संभव नहीं, अध्ययन के बिना उसके अर्थ श्रवण का भी अभाव बना रहेगा, उसके श्रवण के अभाव में धर्मादि का भी ज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार (अन्वय-व्यतिरेक से वाणी की अधिक प्रतिष्ठा सिद्ध होने पर) सिद्ध हुआ कि वाणी ही शब्द उच्चारण के द्वारा यह सब कराती है, इसलिए नाम से वाणी प्रशस्ततर है। अतः वाणी की ब्रह्म भावना से उपासना करे ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः।)

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वाऽऽमलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राꣳश्च पशुꣳश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च

वाणी से मन की श्रेष्ठता का वर्णन

मन ही वाणी से श्रेष्ठ है, (क्योंकि मननं व्यापार विशिष्ट मन ही वाणी को बोलने में प्रेरित करता है) जैसे दो आँवले, दो बेर, या दो बहेड़े मुट्ठी में आ जाते हैं, वैसे ही वाणी और नाम का मन में अन्तर्भाव हो जाता है। जब यह पुरुष मन से विचार करता है कि "मैं मन्त्र का उच्चारण करूँ" तभी वह मन्त्र पाठ करता है, जब सोचता है "मैं कर्म करूँ" तभी वह कर्म करता है, जब

समानमन्यत् ॥२॥

इति सप्तमध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

मनो मनस्यनविशिष्टमन्तःकरणं वाचो भूयः। तद्धि मनस्यनव्यापारवद्वाचं वक्तव्ये प्रेरयति। तेन वाङ्मनस्यन्तर्भवति। यच्च यस्मिन्नन्तर्भवति तत्तस्य व्यापकत्वात्ततो भूयो भवति। यथा वै लोके द्वे वाऽऽमलके फले द्वे वा कोले बदरफले द्वौ वाऽक्षौ विभीतकफले मुष्टिरनुभवति मुष्टिस्ते फले व्याप्नोति स्पृष्टौ हि ते अन्तर्भवतः। एवं वाचं च नाम चाऽऽमलकादिवन्मनोऽनुभवति स यदा पुरुषो यस्मिन्काले मनसाऽन्तः-

---

स यो वाचमित्याद्यन्यदित्युच्यते ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

मनःशब्दस्य वृत्तिमात्रविषयत्वं व्यावर्तयति—मन इति। कथं तस्य वाचो भूयस्त्वं तदाह—तद्धीति। वाचो मनस्यन्तर्भावेऽपि कुतो मनसस्तस्या भूयस्त्वं तत्राऽऽह—यच्चेति। मनसो वागादेर्व्याप्तिं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। इतश्च मनसोऽस्ति भूयस्त्वमित्याह—यदेति। विवक्षाबुद्धिस्तां

इस फल श्रुति का भी अर्थ सप्तम अध्याय प्रथम खण्ड के पाँचवे मन्त्र के अर्थ के समान है ॥२॥

वाणी से मन की प्रतिष्ठा अधिक है। मन शब्द से मन में अविशिष्ट अन्तःकरण वृत्तिमात्र का विषय नहीं समझना चाहिए। वही मन में निर्व्यापार वाणी को वक्तव्य विषय में प्रेरित करता है। इससे वाणी का मन में अन्तर्भाव सिद्ध हो जाता है। जिसका जिसमें अन्तर्भाव होता है, वह उससे अधिक व्यापक होने के कारण उससे श्रेष्ठ होता है। जिस प्रकार लोक व्यवहार में आँवले के दो फलों या बेर के दो फलों अथवा विभीतक के दो फलों को मुट्ठी के अन्दर लिया जा सकता है, वे दोनों फल मुष्टिका को व्याप्त कर लेते हैं क्योंकि मुष्टिका में उन दोनों का अन्तर्भाव है। ठीक इसी प्रकार आँवले आदि की तरह मन वाणी और नाम का अनुभव करता है। वह पुरुष जिस समय अन्तःकरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति ॥१॥

स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

विचार करता है "मैं पुत्र और पशुओं की इच्छा करूँ" तभी उनकी इच्छा करता है और जब विचारता है कि "मैं इस लोक और परलोक की कामना करूँ" तभी उनकी इच्छा करता है। अतः मन ही आत्मा है, मन ही लोक है, मन ही ब्रह्म है। मन की उपासना करो ॥ १ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो वह मन को उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है, जहाँ तक मन जाता है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार मन की जो उपासना करता है (नारद ने कहा—) भगवन्। क्या मन से भी श्रेष्ठ कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ, मन से भी बढ़कर वस्तु है। (नारद ने कहा—) भगवन्। तब तो मुझे उसी को बतलावें ॥ २॥

। इति तृतीयः खण्डः ॥

करणेव मनस्यति मनस्यनं विवक्षाबुद्धिः कथं मन्त्रानधीयीयोच्चारयेयमित्येवं विवक्षां कृत्वाऽथाधीते तथा कर्माणि कुर्वीयेति चिकीर्षाबुद्धिं कृत्वाऽथ कुरुते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छेयेति प्राप्तीच्छां कृत्वा तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानेनाथेच्छते पुत्रादीन्प्राप्नोतीत्यर्थः। तथेमं च लोकममुं चोपायेनेच्छेयेति तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानेनाथेच्छते प्राप्नोति। मनो ह्यात्माऽऽत्मनः कर्तृत्वं भोक्तृत्वं च सति मनसि नान्यथेति मनो ह्यात्मेत्युच्यते। मनो हि लोकः सत्येव हि मनसि लोको भवति तत्प्राप्त्युपायानुष्ठानं चेति मनो हि लोको यस्मात्तस्मान्मनो हि ब्रह्म। यत एवं तस्मान्मन उपास्स्वेति ॥१॥

करोतीति शेषः। इच्छेयेतीच्छां कृत्वेति शेषः। तस्याऽऽत्मत्वमुपपादयति—आत्मन इति। तस्य लोकत्वं साधयति—सत्येवेति ॥१॥

से विवक्षाबुद्धि करता है कि कैसे मन्त्रों का उच्चारण करूँ, ऐसा विचार कर पढ़ता है, कैसे कर्म करूँ ऐसा करने की इच्छा करके कर्म में प्रवृत्त होता है, कैसे पुत्रों और पशुओं को प्राप्त करूँ, ऐसी इच्छा कर उनकी प्राप्ति के उपायों के अनुष्ठान की इच्छा करता है, तब पुत्रादिकों की प्राप्ति कर लेता है। इसी प्रकार इस लोक को उस उपाय से प्राप्त करूँ, इसे भी उपाय के अनुष्ठान की इच्छा पूर्वक प्राप्त कर लेता है। मन ही आत्मा है, आत्मा का कर्तृत्व भोक्तृत्व होना कहा है मन का भी ऐसा ही स्वरूप है। मन के होने पर ही लोक होता है, जिसकी प्राप्ति के उपाय का अनुष्ठान होता है। क्योंकि मन लोक है, इसलिए मन ही ब्रह्म है। अतः मन की ब्रह्म भावना से उपासना करनी चाहिए ॥ १॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः।)

संकल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥१॥

मन की अपेक्षा संकल्प की श्रेष्ठता का वर्णन

संकल्प ही मन से श्रेष्ठ है (कर्तव्याकर्तव्य विषयों के विभाग पूर्वक समर्थन को संकल्प कहते हैं)। इस प्रकार पुरुष जब संकल्प करता है, तभी वह चिकीर्षा बुद्धि रूप मनन करता है और पुनः वाणी को वक्तव्य विषयों की ओर प्रेरित करता है। उसे वह नाम के प्रति प्रवृत्त करता है। नाम में सब मन्त्र एक रूप हो जाते हैं और मन्त्रों में सब कर्म एकरूप हो जाते हैं ॥ १ ॥

स यो मन इत्यादि समानम् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥४॥

संकल्पो वाव मनसो भूयान्। संकल्पोऽपि मनस्यनवदन्तःकरणवृत्तिः कर्तव्याकर्तव्यविषयविभागेन समर्थनम्। विभागेन हि समर्थिते विषये चिकीर्षाबुद्धिर्मनस्यनानन्तरं भवति। कथम्। यदा वै संकल्पयते कर्तव्यादिविषयान्विभजत इदं कर्तुं युक्तमिति, अथ मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यादि। अथानन्तरं वाचमीरयति मन्त्राद्युच्चारणे।

॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

संकल्पशब्दार्थमाह—संकल्पोऽपीति। का सान्तःकरणवृत्तिर्या संकल्पशब्दितेत्याशङ्क्याऽऽह—कर्तव्येति। द्विविधे विषये विभागेन समर्थितेऽपि कथं यथोक्तस्य संकल्पस्य मनसो भूयस्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—विभागेन हीति। संकल्पस्य कारणत्वान्मनसश्च कार्यत्वादतो भूयस्त्वमित्यर्थः। कार्यकारणभावं तयोराकाङ्क्षापूर्वकं व्यक्ती करोति—कथमित्यादिना। मनसः सकाशाद्वाचोऽनन्तरभावित्वे

जो साधक अधिकारी मन की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करता है इत्यादि मन्त्र की व्याख्या ७।१।५ के व्याख्यान के समान समझनी चाहिए ॥ २ ॥

मन से संकल्प की अधिक प्रतिष्ठा है। संकल्प भी मन से भिन्न अन्तःकरण वृत्ति है। यह कर्तव्य और अकर्तव्य कर्मों का विभागपूर्वक समर्थन करती है। द्विविध विभाग समर्थित विषयों को करने की इच्छा मन में बाद में होती है (इसलिए संकल्प के कारण रूप एवं मन के कार्य रूप होने के कारण संकल्प की श्रेष्ठता सिद्ध होती है)। इसकी प्रक्रिया बतलाई जाती है—जब संकल्प करता है तब कर्तव्य-अकर्तव्यादि विषयों का विभाग होने लगता है कि यह करना ठीक है अथवा यह करना अनुचित है फिर मन करता है वेद मन्त्रों का अध्ययन करूँ इत्यादि। इसके पश्चात् मन्त्रादि का उच्चारण करने में वाणी का प्रयोग करता है। (मन से वाणी का बाद में होना विशेषतः प्रदर्शित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तानि ह वा एतानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकानि संकल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाऽऽकाशं च समकल्पन्ताऽऽपश्च

वे ये मन आदि संकल्पैकायन हैं, अर्थात् इनका प्रलय स्थान एकमात्र संकल्प ही है। ये उत्पत्ति के समय संकल्पमय हैं और स्थिति के समय संकल्प में ही प्रतिष्ठित हैं। द्युलोक और पृथिवी ने मानो संकल्प किया, (क्योंकि ये निश्चल दिखायी देते हैं) वायु और आकाश ने संकल्प किया है,

---

तां च वाचमु नाम्नि नामोच्चारणनिमित्तं विवक्षां कृत्वेरयति नाम्नि नामसामान्ये मन्त्राः शब्दविशेषाः सन्त एकं भवन्त्यन्तर्भवन्तीत्यर्थः। सामान्ये हि विशेषोऽन्तर्भवति। मन्त्रेषु कर्माण्येकं भवन्ति। मन्त्रप्रकाशितानि कर्माणि क्रियन्ते नामन्त्रकमस्ति कर्म। यद्धि मन्त्रप्रकाशनेन लब्धसत्ताकं सत्कर्म ब्राह्मणेनेदं कर्तव्यमस्मै फलायेति विधीयते। याऽप्युत्पत्तिर्ब्राह्मणेषु कर्मणां दृश्यते साऽपि मन्त्रेषु लब्धसत्ताकानामेव कर्मणां स्पष्टीकरणम्। न हि मन्त्राप्रकाशितं कर्म किंचिद्ब्राह्मण उत्पन्नं दृश्यते। त्रयीविहितं कर्मेति प्रसिद्धं लोके। त्रयीशब्दश्च ऋग्यजुःसामसमाख्या। मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्निति चाऽऽथर्वणे। तस्माद्युक्तं मन्त्रेषु कर्माण्येकं भवन्तीति ॥१॥

विशेषं दर्शयति—तां चेति। नाम्नि मन्त्राणामन्तर्भावं समर्थयति—सामान्ये हीति। कथं मन्त्रेष्वनुपलब्धकर्मणामन्तर्भावस्तत्राऽऽह—मन्त्रेति। कथं कर्म नामन्त्रकमस्तीत्युच्यते ब्राह्मणविहितस्यापि कर्मणो दर्शनादित्याशङ्क्याऽऽह—यद्धीति। ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वादतिस्पष्टमन्त्रानुपलम्भेऽपि कल्प्यते मन्त्रोक्तत्वमित्यर्थः। एतदेव प्रपञ्चयति—याऽपीत्यादिना। एकस्यां शाखायां यत्कर्म मन्त्रेष्वनुपलब्धं तच्छाखान्तरीयमन्त्रप्रकाशितं भविष्यतीत्यत्र हेत्वन्तरमाह—त्रयीति। तथाऽपि कथं मन्त्रप्रकाशितत्वं तत्राऽऽह—त्रयीशब्दश्चेति। मन्त्रेषु कर्माण्यन्तर्भवन्तीत्यत्र श्रुत्यन्तरानुमतिं कथयति—मन्त्रष्विति ॥१॥

करते हैं—) नाम के उच्चारण की विवक्षा से वाणी का व्यापार होता है, नामसामान्यमें शब्दात्मक मन्त्रों का अन्तर्भाव है क्योंकि सामान्य का विशेष में अन्तर्भाव होता है, कर्म मन्त्रों में अन्तर्भूत रहते हैं। (मन्त्रों में अनुपलब्ध कर्मों का अन्तर्भाव कैसे है—इस पर कहते हैं) मन्त्र से प्रकाशित कर्म किए जाते हैं, मन्त्ररहित तो कोई कर्म ही नहीं है। ब्राह्मणग्रन्थों में जहाँ कर्म का विधान है, 'यह करने से यह फल होगा' वह भी मन्त्रों का प्रकाशन है। ब्राह्मण भाग में जिन कर्मों का विनियोग दर्शाया गया है, वह किन्हीं अपूर्व कर्मों का नहीं है बल्कि वेदमन्त्रों में प्रतिपादित कर्मों का ही स्पष्टीकरण है। ऐसा नहीं हुआ कि मन्त्रों से सर्वथा भिन्न कर्मों का ब्राह्मणग्रन्थों में समावेश किया गया हो। यह लोक व्यवहार में प्रसिद्ध ही है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद रूप वेदत्रयी में ही सब कर्मों के विधान का पर्यवसान हो जाता है। आथर्वण श्रुति में भी आया है कि मन्त्रद्रष्टा कवियों ने मन्त्रों में कर्मों को देखा है। इसलिए यह कहना उचित है कि ऋक्मन्त्रों में कर्मों का अन्तर्भाव है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तेजश्च तेषाᳶ संक्लृप्त्यै वर्षᳶ संकल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नᳶ संकल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते प्राणानाᳶ संक्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते मन्त्राणाᳶ सक्लृप्त्यै कर्माणि संकल्पन्ते कर्मणाᳶ संक्लृप्त्यै लोकः संकल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वᳶ संकल्पते स एष संकल्पः संकल्पमुपास्स्वेति ॥२॥

जल और तेज ने संकल्प किया है। उनके संकल्प के लिये वर्षा समर्थ होती है, अर्थात् द्युलोकादि के समर्थ होने से वर्षा होती है। वर्षा के संकल्प के लिये अन्न समर्थ होता है (क्योंकि वर्षा से अन्न होता है)। अन्न के संकल्प के लिये प्राण समर्थ होता है (क्योंकि प्र ण अन्न के आश्रित है) प्राणों के संकल्प के लिये मन्त्र समर्थ होते हैं (क्योंकि बलवान् हीं मन्त्र को पढ़ सकता है)। मन्त्रों के संकल्प के लिये कर्म समर्थ होते हैं (क्योंकि फल सहित कर्मों का बोध मन्त्रों से ही होता है) कर्मों के संकल्प के लिए लोक समर्थ होता है। (क्योंकि कर्मों से ही लोक की प्राप्ति होती है) और लोकों के संकल्प के लिए सम्पूर्ण जगत् समर्थ होता है। वह यह सम्पूर्ण जगत् संकल्प मूलक ही है। अतः तुम संकल्प की उपासना करो ॥ २ ॥

तानि ह वा एतानि मनआदीनि संकल्पैकायनानि संकल्प एकोऽयनं गमनं प्रलयो येषां तानि संकल्पैकायनानि संकल्पात्मकान्युत्पत्तौ संकल्पे प्रतिष्ठितानि स्थितौ समक्लृपतां संकल्पं कृतवत्याविव हि द्यौश्च पृथिवी च द्यावापृथिवी द्यावापृथिव्यौ निश्चले लक्ष्येते। तथा समकल्पेतां वायुश्चाऽऽकाशं चैतावपि संकल्पं कृतवन्ताविव। तथा समकल्पन्ताऽऽपश्च तेजश्च स्वेन रूपेण निश्चलानि लक्ष्यन्ते यतस्तेषां द्यावापृथिव्या-

---

तथाऽपि कथं संकल्पस्य भूयस्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—तानीति। अयनपर्यायत्वेनोक्तगमनस्य क्रियात्वं व्यावर्तयति—प्रलय इति। इतश्च संकल्पस्याप्यस्ति महत्त्वमित्याह—समक्लृपतामिति। यतो द्यावापृथिव्यादिषु महत्स्वपि संकल्पानुवृत्तिर्दृश्यतेऽतोऽपि तस्य महत्त्वं गम्यते न केवलं कारणत्वा-देवेत्यर्थः। इतश्च तस्य महत्त्वमेष्टव्यमित्याह—तेषामिति। वृष्टेर्द्युलोकादिकार्यत्वात्तदीयसंकल्पस्य

(संकल्प की श्रेष्ठता में क्या कारण है इस पर कहते हैं—)

क्योंकि मन आदि का केवल संकल्प में लय होता है, इनकी उत्पत्ति संकल्पात्मक है, स्थिति भी संकल्प में है, संकल्प किए हुए के समान द्युलोक और पृथिवी लोक निश्चल देखे जाते हैं। इसी प्रकार वायु और आकाश भी संकल्प किए हुए के समान देखे जाते हैं (इनमें महान् होने पर भी संकल्प की अनुवृत्ति देखी जाती है, केवल कारण रूप से संकल्प की महत्ता नहीं है)। इसी प्रकार जल और तेज भी संकल्प के कारण अपने स्वरूप में स्थित देखे जाते हैं। द्युलोक पृथिवी आदि लोक से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै स लोका-न्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानान-

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई संकल्प की उपासना करता है। विधाता द्वारा रचे नित्य लोकों को स्वयं नित्य होकर, प्रतिष्ठित लोकों को स्वयं प्रतिष्ठित होकर और स्वयं व्यथित न

दीनां संक्लृप्त्यै संक्लृप्तेः संकल्पनिमित्तं वर्षं संकल्पते। समर्थो भवति। तथा वर्षस्य संक्लृप्त्यै संकल्पनिमित्तमन्नं संकल्पते। वृष्टेर्ह्यन्नं भवत्यन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः संकल्पन्ते। अन्नमया हि प्राणा अन्नोपष्टम्भकाः। "अन्नं दाम" इति हि श्रुतिः। तेषां संक्लृप्त्यै मन्त्राः संकल्पन्ते। प्राणवान्हि मन्त्रानधीते नाबलः। मन्त्राणां हि संक्लृप्त्यै कर्माण्यग्निहोत्रादीनि संकल्पन्तेऽनुष्ठीयमानानि मन्त्रप्रकाशितानि समर्थो भवन्ति फलाय। ततो लोकः फलं संकल्पते कर्मकर्तृसमवायितया समर्थो भवतीत्यर्थः। लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वं जगत्संकल्पते स्वरूपावैकल्याय। एतद्धीदं सर्वं जगद्यत्फलावसानं तत्सर्वं संकल्पमूलम्। अतो विशिष्टः स एष संकल्पः। अतः संकल्पमुपास्स्वेत्युक्त्वा फलमाह तदुपासकस्य ॥२॥

तन्निमित्तत्वोपचारात्तस्य भूयस्त्वसिद्धिरित्यर्थः। वृष्टिवशादन्नं समर्थो भवतीत्यत्र प्रसिद्धिं प्रमाणयति—वृष्टेर्हीति। अन्नाधीनं प्राणसामर्थ्यमित्यत्र हेतुमाह—अन्नमया हीति। आपोमयः प्राण इत्युक्तत्वात्कथमन्नमयत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—अन्नोपष्टम्भका इति। तत्र वाजसनेयकश्रुतिं प्रमाणयति—अन्नमिति। प्राणानां मन्त्राध्ययनकारणत्वं व्युत्पादयति—प्राणवानिति। ततो मन्त्रप्रकाशितकर्मवशादिति यावत्। कर्मफलवशाज्जगतः सर्वस्यावैकल्येऽपि कथं संकल्पस्य महत्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—एतद्धीति। तन्महत्त्वे फलितमाह—अत इति ॥२॥

वृष्टि होना भी संकल्प के कारण है। वर्षा होने से ही अन्न होता है, यह भी संकल्प का परिणाम है। वृष्टि से अन्न एवं इससे प्राणों का संकल्प होता है। (आपोमय प्राण की प्रसिद्धि होने पर भी) अन्न के अधीन प्राणों का सामर्थ्य होने से अन्नमय प्राण है। वाजसनेयक श्रुति में भी कहा है "अन्न ही प्राणों का बन्धन है"। उनके संकल्प से मन्त्र संकल्प करते हैं। प्राणयुक्त ही मन्त्रों का अध्ययन कर सकता है; प्राणशक्तिविहीन नहीं। वेदोक्त मन्त्रों के संकल्प से अग्निहोत्रादि कर्म होते हैं, मन्त्र से प्रकाशित अनुष्ठान किए गए वही कर्म फल सम्पादन में समर्थ होते हैं। इससे जोव फल की कर्म-कर्तृ समवाय रूप से कल्पना करनी संभव होती है। लोक के संकल्प से समस्त जगत् का संकल्प हो पाता है, स्वरूप से विचलित न होने के लिए यह सब है। इस प्रकार जो फल पर्यन्त यह जगत् है, समस्त संकल्प मूलक है। इसलिए संकल्प की श्रेष्ठता है। संकल्प की उपासना करनी चाहिए इतना कह कर उसके उपासक को जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे कहा जाता है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यथमानोऽभिसिध्यति यावत्संकल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः संकल्पाद्भूय इति संकल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

होता हुआ शत्रु आदि के भय से रहित लोकों को सभी प्रकार से प्राप्त कर लेता है। जहाँ तक संकल्प की गति है, वहाँ तक उसकी स्वच्छन्द गति हो जाती है। "यह ब्रह्म है" जो इस प्रकार संकल्प की उपासना करता है। (नारद ने कहा–) भगवान्! क्या संकल्प से भी श्रेष्ठ कोई वस्तु है। (सनत्कुमार ने कहा–) हाँ, संकल्प से भी बढ़कर वस्तु है (नारद ने कहा–) भगवान्! मुझे उसी तत्त्व को बतलावें ॥३॥

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

स यः संकल्पं ब्रह्मेति ब्रह्मबुद्धयोपास्ते क्लृप्तान्वै धात्राऽस्येमे लोकाः फलमिति क्लृप्तान्समर्थितान्संकल्पितान्स विद्वान्ध्रुवान्नित्यानत्यन्ताध्रुवापेक्षया ध्रुवश्च स्वयम्। लोकिनो ह्यध्रुवत्वे लोके ध्रुवक्लृप्तिर्व्यर्थेति ध्रुवः सन्प्रतिष्ठितानुपकरणसंपन्नानित्यर्थः। पशुपुत्रादिभिः प्रतितिष्ठतीति दर्शनात्स्वयं च प्रतिष्ठित आत्मीयोपकरणसंपन्नोऽव्यथमानानमित्रादित्रासरहितानव्यथमानश्च स्वयमभिसिध्यत्यभिप्राप्नोतीत्यर्थः। यावत्संकल्पस्य गतं संकल्पगोचरस्तत्रास्य यथाकामचारो भवति आत्मनः संकल्पस्य न तु सर्वेषां

आत्मातिरिक्तानां लोकानां कथं नित्यत्वमत आह—अत्यन्तेति। लोकानामेव ध्रुवत्वमुच्यतां किमिति लोकिनस्तदुच्यते तत्राऽऽह—लोकिनो हीति। कथमुपकरणसंपन्नेषु प्रतिष्ठितशब्दो भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—पशुपुत्रादिभिरिति। यावत्संकल्पस्येत्यादिश्रुतेर्विषयसंकोचं दर्शयति—आत्मन इति। संकल्पस्य यावद्गोचरस्तत्रास्य कामचारो भवतीति संबन्धः। निरङ्कुशे संकल्पशब्दे का हानिरित्या-

---

जो भी कोई उपासक ब्रह्म दृष्टि से संकल्प की उपासना करता है, परमेश्वर उसे अभीष्ट समर्थ अनित्य की अपेक्षा नित्य लोकों की प्राप्ति कराता है। यद्यपि अनित्य लोकों में नित्यता की कल्पना करनी व्यर्थ है, किन्तु उपकरण सम्पन्न प्रतिष्ठित लोकों की प्राप्ति करता है, यह इस श्रुति का अर्थ है। पशु-पुत्रादि से संपन्न होता है, ऐसा मन्त्र होने के कारण लोक स्थिति के साधनों से संपन्न होता है, शत्रुओं से पीडित नहीं होता है। जिस-जिस संकल्प को करता है उसे सहज ही प्राप्त कर लेता है। (यहाँ इतना ध्यान देना अनिवार्य है कि) केवल अपने द्वारा किए हुए संकल्पों की पूर्ति ही उपासक करता है, विश्व के संकल्पों की नहीं; अन्यथा उत्तर फल में विरोध आने लगेगा। जो संकल्प की ब्रह्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।)

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि ॥१॥

संकल्प की अपेक्षा चित्त की श्रेष्ठता

चित्त ही संकल्प से श्रेष्ठ है। जब पुरुष चेतनायुक्त होता है, तभी वह (भूत एवं भविष्यत् विषयों के प्रयोजन में समर्थ) संकल्प करता है, फिर मनन करता है, उसके बाद वाणी को बोलने के लिए प्रेरित करता है, वाणी को नाम में लगाता है, क्योंकि नाम में मन्त्र एकरूप होते हैं और मन्त्रों में कर्म विद्यमान होते हैं ॥ १ ॥

संकल्पस्येति । उत्तरफलविरोधात् । यः संकल्पं ब्रह्मेत्युपास्त इत्यादि पूर्ववत् ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

चित्तं वाव संकल्पाद्भूयः । चित्तं चेतयितृत्वं प्राप्तकालानुरूपबोधवत्त्वमतीतानागतविषयप्रयोजननिरूपणसामर्थ्यं च तत्संकल्पादपि भूयः । कथम् । यदा वै प्राप्तं

शङ्कयाऽऽह—उत्तरेति । यदि संकल्पमात्रस्य गोचरे संकल्पोपासकस्य कामचारो भवति तर्हि सर्वसंकल्पस्य विचित्रतया सर्वगोचरत्वसंभवाद्यावच्चित्तस्य गतमित्यादिना वक्ष्यमाणफलं विरुध्येत न हि संकल्पोपासनादेव सर्वस्मिन्फले सिद्धे चित्ताद्युपासनं तत्फलं वा पृथक्कथयितुमुचितमतो यावत्संकल्पस्येत्याविध्,तेरुक्तः संकोचो युक्त इत्यर्थः ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

चित्तशब्दस्य मनःशब्देन पुनरुक्तिं परिहरति—चित्तं चेतयितृत्वमिति । तस्याऽऽत्मत्वं व्यावर्तयति—प्राप्तेति । इदं वस्त्वेवं प्राप्तकालवस्तुनो वस्त्वनुरोधी चेतनाख्यो वृत्तिविशेषस्तद्वत्त्वं चित्तत्वमित्यर्थः । अतीतं भोजनं तृप्तिसाधनं दृष्टं भोजनत्वादागामिनोऽपि तस्य तदेव प्रयोजनमिति निरूपणसामर्थ्यं चित्तमिति प्रसिद्धमित्याह—अतीतेति । यथोक्तस्य चित्तस्य संकल्पाद्भूयस्त्वं प्रश्नपूर्वकं

भावना से उपासना करता है इत्यादि व्याख्या पूर्व मन्त्र के समान है ॥ ३ ॥

संकल्प से चित्त का प्राशस्त्य है। चित्त का चिन्तन करना धर्म है, 'यह वस्तु इस प्रकार प्राप्त हुई' इस प्रकार प्राप्त वस्तु की वस्तु-अनुरोधी चेतनाख्य वृत्ति विशेष धर्म वाला चित्त है, अतीत विषयों के अनुसार आगामी विषयों में भी प्रयोजन निरूपण करने का सामर्थ्य भी चित्त में है अतः चित्त की संकल्प से अधिक प्रतिष्ठा है। जब प्राप्त की हुई वस्तु के बारे में सोचा जाता है कि यह 'इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳ ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति ॥२॥

वे ये (संकल्प से लेकर कर्म फल पर्यन्त सभी) एक मात्र चित्तरूप लयस्थान वाले, चित्त से उत्पन्न होने वाले तथा चित्त में ही स्थित रहने वाले हैं। इसीलिये यद्यपि कोई पुरुष बहुत से शास्त्रादि का ज्ञान रखता हो, फिर भी यदि वह अचित्त रहता है, तो लोग कहने लग जाते हैं कि "यह तो कुछ भी नहीं जानता (मूर्ख है) यदि यह कुछ जानता या विद्वान् होता तो ऐसा मूर्ख न होता" और यदि कोई अल्पज्ञ होने पर भी चिन्तन शील हो, तो उससे ही ये सभी लोग श्रवण करना चाहते हैं (क्योंकि चिन्तन सामर्थ्य से दूसरे के हृदय में अपने अभिप्राय को वह पुरुष उतार देता है)। अतः चित्त ही उनका एकमात्र आधार है चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है इसलिये तू चित्त की उपासना कर॥ २ ॥

वस्त्विदमेवं प्राप्तमिति चेतयते तदादानाय वाऽपोहाय वाऽथ संकल्पयतेऽथ मनस्यतीत्यादि पूर्ववत् ॥१॥

तानि संकल्पादीनि कर्मफलान्तानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्तोत्पत्तीनि चित्ते प्रतिष्ठितानि चित्तस्थितानीत्यपि पूर्ववत्। किंच चित्तस्य माहात्म्यम्। यस्माच्चित्तं संकल्पादिमूलं तस्माद्यद्यपि बहुविद्बहुशास्त्रादिपरिज्ञानवान्सन्नचित्तो भवति प्राप्तादि-

---

व्युत्पादयति—कथमित्यादिना। संकल्पप्रकरणं परामृशति—पूर्ववदिति ॥१॥

यथा संकल्पस्य निमित्तत्वे सति स्तुत्यर्थमधिकरणत्वमुक्तं तथा चित्तस्य विभक्तस्य संकल्पादिषु निमित्तत्वेऽपि स्तुत्यर्थमेव तदधिकरणत्वमाह—तानीति। इतश्च चित्तस्यास्ति वैशिष्ट्यमित्याह—किंचेति। यद्यपि बहुशास्त्रार्थपरिज्ञानवान्संस्तथाऽपि यद्यचितो भवतीति योजना। अचित्तस्यासत्समत्वं

प्राप्त हुई तभी उसके दान अथवा हटाने के लिए संकल्प किया जाता हैं, उसके बाद मनन करता है, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है॥ २ ॥

संकल्प से लेकर कर्म फल पर्यन्त सभी चित्त से उत्पन्न होता है एवं चित्त में स्थित रहता हैं, इत्यादि व्याख्या पूर्वमन्त्र के समान है। इसके अतिरिक्त चित्त का यह भी माहात्म्य है—चित्त ही संकल्प का प्रभव स्थान है। चेतन विहीन होने पर समस्त शास्त्रों में पारङ्गत भी बिना चित्त का हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान्ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति यावच्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई चित्त की उपासना करता है, वह चित्त से युक्त हो बुद्धि युक्त गुणों से उपचित ध्रुव लोक को चित्तोपासक स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकों को स्वयं प्रतिष्ठित होकर और अव्यथित लोकों को स्वयं अव्यथित हुआ सभी प्रकार से प्राप्त कर लेता है। उस उपासक की वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक चित्त की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो चित्त की उपासना करता है। (नारद ने कहा–) भगवान्! क्या चित्त से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ, चित्त से भी बढ़कर वस्तु लोक में है, (नारद ने कहा—) भगवान्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें॥ ३ ॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

चेतयितृत्वसामर्थ्यविरहितो भवति तं निपुणा लौकिका नायमस्ति विद्यमानोऽप्यसत्सम एवेत्येनमाहुः। यच्चायं किंचिच्छास्त्रादि वेद श्रुतवांस्तदप्यस्य वृथैवेति कथयन्ति। कस्मात्। यद्ययं विद्वान्स्यादित्थमेवमचित्तो न स्यात्तस्मादस्य श्रुतमप्यश्रुतमेवेत्याहुरित्यर्थः। अथाल्पविदपि यदि चित्तवान्भवति तस्मा एतस्मै तदुक्तार्थग्रहणायैवोतापि शुश्रूषन्ते श्रोतुमिच्छन्ति। तस्माच्च चित्तं 'ह्येवैषां संकल्पादीनामेकायनमित्यादि पूर्ववत् ॥२॥

श्रुतवैयर्थ्यं चेत्युक्तं प्रश्नद्वारा विवृणोति—कस्मादित्यादिना। श्रुतमपीत्यपिशब्देन सत्त्वं गृह्यते। चित्तविलीभावे श्रुतादेर्वैयर्थ्योक्त्या तद्वैशिष्ट्यमादिष्टमिदानीं तद्वैशिष्ट्ये हेत्वन्तरमाह—अथेति। चित्तवतोक्तार्थग्रहणार्थं श्रोतुमिच्छा लोकस्य भवतीत्यत्र हेतुमाह—तस्मादिति ॥२॥

जाता है, तब निपुण महानुभाव कहते हैं इसका चित्त यहाँ नहीं है, स्थिर नहीं है। इसका शास्त्रों का ज्ञाता होना सब वृथा है। यदि यह निष्ठापूर्वक विद्वान् होता तो इस प्रकार उन्मना न होता। इसका वेदों का ज्ञाता होना वृथा है यहाँ तक भी कह देते हैं। भले ही थोड़ा जानकार हो किन्तु चित्त स्थिर हो तो उसकी ग्रहण की हुई बुद्धि को सुनने की इच्छा करते हैं। इसलिए चित्त ही इन संकल्प आदि का आश्रय है इत्यादि व्याख्या पूर्व मन्त्र के समान है॥ २ ॥

---

१. हि यस्मादेकायनं तस्माच्च श्रोतुमिच्छन्तीति संबन्धः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः)

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवाऽऽपो ध्यायन्तीव पर्वता ध्यायन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति ॥१॥

चित्त की अपेक्षा ध्यान का महत्त्व

चित्त से बढ़कर ध्यान है, ध्यान ही चित्त से श्रेष्ठ है (ध्यान को एकाग्रता भी कहते हैं)। पृथिवी मानो ध्यान करती है, अन्तरिक्ष मानो ध्यान करता है, द्युलोक मानो ध्यान करता है, (क्योंकि ये सब अचल दीखते हैं) जल मानो ध्यान करते हैं, पर्वत मानो ध्यान करते हैं। देव तुल्य मनुष्य भी मानो ध्यान करते हैं। अतः जो भी कोई मनुष्यों में महत्त्व प्राप्त करते हैं, वे मानो ध्यान का ही अंशतः लाभ करते हैं। पर जो क्षुद्र विचार वाले होते हैं, वे कलह पारायण, निन्दक, दूसरों के दोषों को सामने ही कह देने वाले तथा समर्थ होते हैं। वे पुरुष भी ध्यान के ही लाभ को अंशतः प्राप्त करते हैं, अतः तुम ध्यान की ही उपासना करो ॥ १ ॥

चित्तानुपचितान्बुद्धिमद्गुणैः स चित्तोपासको ध्रुवानित्यादि चोक्तार्थम् ॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयः। ध्यानं नाम शास्त्रोक्तदेवताद्यालम्बनेष्वचलो भिन्नजातीयैरनन्तरितः प्रत्ययसंतानः। एकाग्रतेति यमाहुः। दृश्यते च ध्यानस्य माहात्म्यं फलतः।

॥३॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

किं तद्ध्यानमित्यपेक्षायामाह—ध्यानं नामेति। अचलत्वं साधयति—भिन्नजातीयैरिति। कथं तस्य चित्ताद्भूयस्त्वमित्याशङ्क्याचानेकाग्रतादोषोपहतस्यातीतादिफलनिरूपणे सामर्थ्यादर्शनादेकाग्रतारूपो ध्यानपदार्थश्चेतयितृत्वस्य कारणत्वात्ततो भूयानेवेत्यभिप्रेत्याऽऽह—एकाग्रतेति। इतश्चास्ति तस्य भूयस्त्वमित्याह—दृश्यते चेति। फलद्वारा तन्माहात्म्यं प्रश्नपूर्वकं दृष्टान्तेन स्पष्टयति —कथमित्या-

---

चित्त में समाविष्ट बुद्धिपूर्वक गुणों के द्वारा वह चित्तउपासक (सापेक्ष) ध्रुव लोकों की प्राप्ति करता है, इस अर्थ का प्रतिपादन उपरोक्त मन्त्र में है॥ ३ ॥

चित्त से ध्यान की अधिक प्रतिष्ठा है। सच्छास्त्र प्रतिपादित देवता आदि के आलम्बन में स्थिर भिन्न जातियों से अव्यवहित विश्वास की परम्परा का नाम ध्यान है। इसी को एकाग्रता भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो ध्यान की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है जहाँ तक ध्यान की गति मानी गई है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार ध्यान की जो उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवान्! क्या ध्यान से भी उत्कृष्ट वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ! ध्यान से भी बढ़कर लोक में वस्तु है (नारद ने कहा–) तब तो भगवान्! मुझे उसी का उपदेश करें ॥ २ ॥

॥ इति षष्ठः खण्डः ॥

कथम्। यथा योगी ध्यायन्निश्चलो भवति ध्यानफललाभे। एवं ध्यायतीव निश्चला दृश्यते पृथिवी। ध्यायतीवान्तरिक्षमित्यादि समानमन्यत्। देवाश्च मनुष्याश्च देवमनुष्या मनुष्या एव वा देवसमा देवमनुष्याः शमादिगुणसंपन्ना मनुष्या देवस्वरूपं न जहतीत्यर्थः। यस्मादेवं विशिष्टं ध्यानं तस्माद्य इह लोके मनुष्याणामेव धनैर्विद्यया गुणैर्वा महत्तां महत्त्वं प्राप्नुवन्ति धनादिमहत्त्वहेतुं लभन्त इत्यर्थः। ध्यानापादांशा इव ध्यानस्याऽऽपादनमापादो ध्यानफललाभ इत्येतत्तस्यांशोऽवयवः कला काचिद्ध्यानफल-

---

दिना। गौरवपरिहारार्थं पक्षान्तरमाह—मनुष्या एवेति। मनुष्याणामेव सतां कुतो देवत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—शमादीति। ध्यानफलं नैश्चल्यं तन्महत्सु पृथिव्यादिषु दृष्टं तथाच तद्वै शिष्टचमित्यर्थः। तत्रैव हेत्वन्तरमाह—यस्मादिति। धनादिभिर्महत्त्वे हेतुमुत्कृष्टं कर्मेति यावत्। ध्यानस्याऽऽपादनमनु-

---

कहते हैं। फल को देखते हुए भी ध्यान का माहात्म्य स्पष्ट ही है। इसमें दृष्टान्त भी हैं—जिस प्रकार ध्यान योग का अनुष्ठान करने वाला अन्ततः निश्चलता रूप फल की प्राप्ति करता है। इसी प्रकार पृथिवी ध्यान करती हुई-सी ही निश्चल दिखाई देती है, ध्यान करते हुए अन्तरिक्ष भी निश्चल दिखाई देता है इत्यादि व्याख्या अन्य मन्त्रों के समान है। यह ध्यान का ही प्रताप है कि शमादि गुण युक्त मनुष्य देवताओं सदृश स्वभाव को नहीं छोड़ते। इसीलिए इस संसार में धन, विद्या एवं गुणों से मनुष्यों की महत्ता होती है अथवा महत्त्व के हेतु धनादि को प्राप्त करते हैं। ध्यान के फल के लाभ की कला के समान हो जाते है। स्थिर की तरह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।)

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदꣳ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं

ध्यान से विज्ञान की श्रेष्ठता

शास्त्र विषयक विज्ञान ही ध्यान से श्रेष्ठ है। विज्ञान से ही पुरुष (यह ऋग्वेद है, इस प्रकार प्रमाणरूप से) ऋग्वेद को जानता है तथा विज्ञान से ही यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वणवेद, वेदों में पंचमवेद इतिहासपुराण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति, निरुक्त,

---

लाभकलावन्त इवैवेत्यर्थः। ते भवन्ति निश्चला इव लक्ष्यन्ते न क्षुद्रा इव। अथ ये पुनरल्पाः क्षुद्राः किंचिदपि धनादिमहत्त्वैकदेशमप्राप्तास्ते पूर्वोक्तविपरीताः कलहिनः कलहशीलाः पिशुनाः परदोषोद्भासका उपवादिनः परदोषं सामीप्ययुक्तमेव वदितुं शीलं येषां त उपवादिनश्च भवन्ति। अथ ये महत्त्वं प्राप्ता धनादिनिमित्तं तेऽन्यान्प्रति प्रभवन्तीति प्रभवो विद्याचार्यराजेश्वरादयो ध्यानापादांशा इवेत्याद्युक्तार्थम्। अतो दृश्यते ध्यानस्य महत्त्वं फलतोऽतो भूयश्चित्तादतस्तदुपास्स्वेत्याद्युक्तार्थम् ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः। विज्ञानं शास्त्रार्थविषयं ज्ञानं तस्य ध्यानकारणत्वा-

---

ध्यानं तेन तत्फललाभो लक्ष्यते तस्यांशो येषामस्ति ते तथा। ध्यानफललाभकलावत्त्वमेव स्फुटयति—निश्चला इति। एवकारार्थमाह—नेति। महत्सु पुरुषेषु ध्यानफलानुवृत्तिर्दृष्टेत्यन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह—अथेति। व्यतिरेकं दर्शयित्वाऽन्वयमुपसंहरति—अथ ये महत्त्वमिति। महत्सु नैश्चल्यदर्शनमतःशब्दार्थः। [1]महत्त्वफलमाह—अत इति ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

दिखाई देते हैं, अस्थिर नहीं। निकृष्ट लोगों का स्वभाव है कि धनादि की गरिमा थोड़ी कम हुई कि ध्यानयोगारूढ साधकों से विपरीत कलह, दूसरों के दोष को निरूपण करने का सिलसिला चल पड़ता है। (व्यतिरेक दृष्टान्त प्रदर्शित कर अन्वय दृष्टान्त कहते हैं—) धनादि के प्राप्त होने से विद्यागुरु एवं राजराजेश्वर होना ध्यान के अवयव की तरह ही समझना चाहिए। इस प्रकार यह प्रत्यक्षसिद्ध है कि चित्त से ध्यान का महत्त्व है अतः ब्रह्मबुद्धि से ध्यान की उपासना करनी चाहिए ॥१॥२॥

विज्ञान की ध्यान से अधिक प्रतिष्ठा है। शास्त्रविषयक ज्ञान का नाम विज्ञान है, ध्यान का

---

१. महत्त्वेति—भूयश्चित्तादित्युक्तभूयस्त्वेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याँ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाँसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥१॥

ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड विद्या, शिल्पविद्या, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद तथा कीट, पतंग, पिपीलिकापर्यन्त, सम्पूर्ण जीव, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, हृदयज्ञ और अहृदयज्ञ, अन्न, रस, एवं इस लोक और परलोक को जानता है। अतः तू विज्ञान की उपासना कर ॥ १ ॥

ध्यानाद्भूयस्त्वम्। कथं च तस्य भूयस्त्वमित्याह—विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानात्ययमृग्वेद इति प्रमाणतया यस्यार्थज्ञानं ध्यानकारणम्। तथा यजुर्वेदमित्यादि। किंच पश्वादींश्च धर्माधर्मौ शास्त्रसिद्धौ। साध्वसाधुनी लोकतः स्मार्ते वाऽदृष्टविषयं च सर्वं विज्ञानेनैव विजानातीत्यर्थः। तस्माद्युक्तं ध्यानाद्विज्ञानस्य भूयस्त्वम्। अतो विज्ञानमुपास्स्वेति ॥१॥

विज्ञानस्योक्तभूयस्त्वं प्रश्नपूर्वकं दर्शयति—कथं चेत्यादिना। यद्यपि प्रमाणतया तज्ज्ञानं शास्त्रार्थज्ञानपूर्वकं तथाऽपि कथं तस्य ततो भूयस्त्वं तत्राऽऽह—यस्येति। इतश्च तस्य ध्यानाद्भूयस्त्वमित्याह—किंचेति। भूयस्त्वफलमाह—अत इति ॥१॥

कारण विज्ञान होने से उसकी ध्यान से श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। प्रश्नोत्तर प्रकार से उसकी श्रेष्ठता स्पष्ट करते हैं। विज्ञान से ही ऋग्वेद को जानता है, जिसका प्रामाणिक रूप से अर्थ का ज्ञान ध्यान करने में हेतु हुआ करता है। इसी प्रकार विज्ञान ही यजुर्वेद के अर्थ के ज्ञान में हेतु है। इसके अतिरिक्त पशु आदि, शास्त्रप्रतिपादित धर्माधर्म, लोकव्यवहार एवं स्मृतिप्रोक्त साधु एवं असाधु कार्य, सर्वविध अदृष्ट विषयों को विज्ञान से ही जानता है। इसलिए ठीक ही है ध्यान से विज्ञान श्रेष्ठ है। अतः विज्ञान की उपासना करनी चाहिए ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

(अथ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।)

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवता-

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई विज्ञान की उपासना करता है, उसे विज्ञानवान् एवं ज्ञानवान् लोकों की प्राप्ति होती है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है जहाँ तक विज्ञान की गति है, जो विज्ञान की "यह विज्ञान है" इस प्रकार उपासना करता है। (नारद ने कहा–) भगवान्! क्या विज्ञान से भी कुछ श्रेष्ठ है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ! विज्ञान से भी श्रेष्ठ अवश्य है। (नारद ने कहा—) तब तो भगवान् मुझे उसी को बतलावें ।। २ ।।

।। इति सप्तमः खण्डः ।।

विज्ञान से बल की महत्ता

बल ही विज्ञान से श्रेष्ठ है, क्योंकि सौ विज्ञानवानों को भी एक बलवान् कँपा देता है। जब

शृणूपासनफलं विज्ञानवतो विज्ञानं येषु लोकेषु तान्विज्ञानवतो लोकाञ्ज्ञानवतश्चाभिसिध्यत्यभिप्राप्नोति । विज्ञानं शास्त्रार्थविषयं ज्ञानमन्यविषयं नैपुण्यं तद्वद्भिर्युक्तांल्लोकान्प्राप्नोतीत्यर्थः । यावद्विज्ञानस्येत्यादि पूर्ववत् ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

ज्ञानविज्ञानशब्दयोरर्थभेदं कथयति—विज्ञानमिति । तथाऽपि लोकानामचेतनानां कुतस्तद्वुणाश्रयत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—तद्वद्भिरिति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७।।

उपासना का फल कहते हैं, सुनो विज्ञाता विज्ञानयुक्त लोकों को प्राप्त करता है। शास्त्र विषयक ज्ञान एवं अन्य विषयों में निपुणता का नाम विज्ञान है ऐसे विज्ञान से युक्त लोकों को प्राप्त करता है। विज्ञानवान् अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करता है, इत्यादि व्याख्या पूर्व मन्त्रों के समान है ।। २ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्त्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳ सर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाऽऽकाशं चापश्च तेजश्च देवाꣳश्च मनुष्याꣳश्च पशूꣳश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ॥१॥

ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड विद्या, शिल्पविद्या, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद तथा कीट, पतंग, पिपीलिकापर्यन्त, सम्पूर्ण जीव, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, हृदयज्ञ और अहृदयज्ञ, अन्न, रस, एवं इस लोक और परलोक को जानता है। अतः तू विज्ञान की उपासना कर ॥ १ ॥

ध्यानाद्भूयस्त्वम्। कथं च तस्य भूयस्त्वमित्याह—विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानात्ययमृग्वेद इति प्रमाणतया यस्यार्थज्ञानं ध्यानकारणम्। तथा यजुर्वेदमित्यादि। किंच पश्वादींश्च धर्माधर्मौ शास्त्रसिद्धौ। साध्वसाधुनी लोकतः स्मार्ते वाऽदृष्टविषयं च सर्वं विज्ञानेनैव विजानातीत्यर्थः। तस्माद्युक्तं ध्यानाद्विज्ञानस्य भूयस्त्वम्। अतो विज्ञानमुपास्स्वेति ॥१॥

विज्ञानस्योक्तभूयस्त्वं प्रश्नपूर्वकं दर्शयति—कथं चेत्यादिना। यद्यपि प्रमाणतया तज्ज्ञानं शास्त्रार्थज्ञानपूर्वकं तथाऽपि कथं तस्य ततो भूयस्त्वं तत्राऽऽह–यस्येति। इतश्च तस्य ध्यानाद्भूयस्त्वमित्याह—किंचेति। भूयस्त्वफलमाह—अत इति ॥१॥

कारण विज्ञान होने से उसकी ध्यान से श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है। प्रश्नोत्तर प्रकार से उसकी श्रेष्ठता स्पष्ट करते हैं। विज्ञान से ही ऋग्वेद को जानता है, जिसका प्रामाणिक रूप से अर्थ का ज्ञान ध्यान करने में हेतु हुआ करता है। इसी प्रकार विज्ञान ही यजुर्वेद के अर्थ के ज्ञान में हेतु है। इसके अतिरिक्त पशु आदि, शास्त्रप्रतिपादित धर्माधर्म, लोकव्यवहार एवं स्मृतिप्रोक्त साधु एवं असाधु कार्य, सर्वविध अदृष्ट विषयों को विज्ञान से ही जानता है। इसलिए ठीक ही है ध्यान से विज्ञान श्रेष्ठ हैं। अतः विज्ञान की उपासना करनी चाहिए ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकाञ्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

(अथ सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः।)

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवता-

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई विज्ञान की उपासना करता है, उसे विज्ञानवान् एवं ज्ञानवान् लोकों की प्राप्ति होती है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है जहाँ तक विज्ञान की गति है, जो विज्ञान की "यह विज्ञान है" इस प्रकार उपासना करता है। (नारद ने कहा–) भगवान्! क्या विज्ञान से भी कुछ श्रेष्ठ है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ! विज्ञान से भी श्रेष्ठ अवश्य है। (नारद ने कहा—) तब तो भगवान् मुझे उसी को बतलावें ॥ २ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

विज्ञान से बल की महत्ता

बल ही विज्ञान से श्रेष्ठ है, क्योंकि सौ विज्ञानवानों को भी एक बलवान् कँपा देता है। जब

शृणूपासनफलं विज्ञानवतो विज्ञानं येषु लोकेषु तान्विज्ञानवतो लोकाञ्ज्ञानवतश्चाभिसिध्यत्यभिप्राप्नोति। विज्ञानं शास्त्रार्थविषयं ज्ञानमन्यविषयं नैपुण्यं तद्वद्भिर्युक्ताँल्लोकान्प्राप्नोतीत्यर्थः। यावद्विज्ञानस्येत्यादि पूर्ववत् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

ज्ञानविज्ञानशब्दयोरर्थभेदं कथयति—विज्ञानमिति। तथाऽपि लोकानामचेतनानां कुतस्तदुभयाश्रयत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—तद्वद्भिरिति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

उपासना का फल कहते हैं, सुनो विज्ञाता विज्ञानयुक्त लोकों को प्राप्त करता है। शास्त्र विषयक ज्ञान एवं अन्य विषयों में निपुणता का नाम विज्ञान है ऐसे विज्ञान से युक्त लोकों को प्राप्त करता है। विज्ञानवान् अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करता है, इत्यादि व्याख्या पूर्व मन्त्रों के समान है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मेको बलवानाकम्पयते स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन्परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन्द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ॥१॥

यह पुरुष बलवान् होता है—तभी उठने वाला भी होता है, उठने वाला होने पर ही गुरुजनों की परिचर्या करने वाला होता है और परिचर्या करने वाला होने पर ही उनका अन्तरंग होता है और उपसदन करने वाला ही दर्शन करने वाला होता है। तत्पश्चात् श्रवण करने वाला होता है, मनन करने वाला होता है, बोध वाला होता है, कर्ता होता है और विज्ञाता होता है। बल से ही पृथिवी ठहरी हुई है, बल से ही अन्तरिक्ष; बल से ही द्युलोक, बल से ही पर्वत, बल से ही देवता और मनुष्य, बल से ही पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद और कीट, पतंग एवं पिपीलिका पर्यन्त सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। बल से ही लोक स्थित हैं। अतएव तुम बल की उपासना करो ॥ १ ॥

बलं वाव विज्ञानाद्भूयः। बलमित्यन्नोपयोगजनितं मनसो विज्ञेये 'प्रतिभानसामर्थ्यम्। अनशनादृगादीनि न वै मा प्रतिभान्ति भो इति श्रुतेः। शरीरेऽपि तदेवोत्थानादिसामर्थ्यं यस्माद्विज्ञानवतां शतमप्येकः प्राणी बलवानाकम्पयते यथा हस्ती मत्तो

यथोक्ते बलशब्दार्थे श्वेतकेतुवाक्यं प्रमाणयति—अनशनादिति। कथं तर्हि शरीरसामर्थ्ये बलशब्दप्रयोगस्तत्राऽऽह—शरीरेऽपीति। तदेवेत्यन्नोपयोगजनितमेवेत्यर्थः। न केवलं कारणत्वादेव बलं विज्ञानाद्भूयः किंतु प्रत्यक्षं च तस्य ततो भूयस्त्वमित्याह—विज्ञानवतामिति। तस्माद्बलस्य

विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, अन्न सेवन से मन के विज्ञेय होने पर स्फुरणा की सामर्थ्य का नाम बल है। इसमें श्वेतकेतु से प्रोक्त श्रुति वाक्य प्रमाण है कि "भूखे रहने से ऋगादि की स्फुरणा नहीं हो पाती"। (देह सामर्थ्य में बल शब्द का प्रयोग क्यों होता है, इस पर कहते हैं—) शरीर में उत्थान आदि का सामर्थ्य भी बल के कारण है तभी तो सैंकड़ों विज्ञानवान् में एक बलवान् प्राणी का भय रहता है जिस प्रकार इकट्ठे हुए सैंकड़ों मनुष्यों को एक मत्त हाथी का भय रहता है। अन्नादि सेवन के बल का इतना माहात्म्य है कि वह बली बल से युक्त होता है, उठने की सामर्थ्य आती है, विश्राम

---

१. प्रतिभानं विज्ञानम् तदनुकूलसामर्थ्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यो बलं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई बल की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक बल की गति है। जो व्यक्ति (यह बल है) इस प्रकार बल की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवान् ! क्या बल से भी कोई वस्तु उत्कृष्ट है ? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ; बल से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ जरूर है। तब (नारद ने कहा—) भगवान् ! मुझे उसका ही उपदेश करें ॥ २ ॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

मनुष्याणां शतं समुदितमपि । यस्मादेवमन्नाद्युपयोगनिमित्तं बलं तस्मात्स पुरुषो यदा बली बलेन तद्वान्भवत्यथोत्थातोत्थानस्य कर्तोत्तिष्ठंश्च गुरूणामाचार्यस्य च परिचरिता परिचरणस्य शुश्रूषायाः कर्ता भवति परिचरन्नुपसत्ता तेषां समीपगोऽन्तरङ्गः प्रियो भवतीत्यर्थः । उपसीदंश्च सामीप्यं गच्छन्नेकाग्रतयाऽऽचार्यस्यान्यस्य चोपदेष्टुर्गुरोर्द्रष्टा भवति । ततस्तदुक्तस्य श्रोता भवति । तत इदमेभिरुक्तमेवमुपपद्यत इत्युपपत्तितो मन्ता भवति मन्वानश्च बोद्धा भवत्येवमेवेदमिति । तत एवं निश्चित्य तदुक्तार्थस्य कर्ताऽनुष्ठाता भवति विज्ञाताऽनुष्ठानफलस्यानुभविता भवतीत्यर्थः । किंच बलस्य माहात्म्यं बलेन वै पृथिवी तिष्ठतीत्याद्यृज्वर्थम् ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायाष्टमः खण्डः ॥८॥

विज्ञानाद्भूयस्त्वमिति शेषः । समुदितमपि कम्पयते तथाऽन्यत्रापि द्रष्टव्यमिति संबन्धः । यस्मादेवं बलस्य कारणत्वं विज्ञानस्य च कार्यत्वं तस्मात्ततस्तद्भूयस्त्वमित्येतस्मिन्नर्थे कार्यकारणभावमेतयोरुपपादयति—यस्मादित्यादिना । इतश्च बलस्य भूयस्त्वमेष्टव्यमित्याह—किंचेति ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

लेते हुए गुरु जी की सेवा करने में तत्पर होता है, अत्यन्त निकटता का लाभ कर उनका अन्तरङ्ग प्रिय बन जाता है। गुरुजी के समक्ष जाकर अन्य को उपदेश करते हुए उनके दर्शन का प्रत्यक्ष आनन्द लेता है, उपदेश श्रवण करता है। इन गुरु महाराज द्वारा उपदिष्ट को समझता है, विचार कर मनन करता है, मनन कर बोद्धा होता है। तत्पश्चात् निश्चय कर उस अर्थ का अनुष्ठान करता है अर्थात् वह विज्ञाता अनुष्ठान के फल का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त बल का माहात्म्य प्रतिपादन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।)

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दश रात्रीर्नाश्नीयाद्यद्यु ह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽकर्ताऽविज्ञाता भवत्यथान्नस्याऽऽयै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

बल से अन्न श्रेष्ठ है

(बल का कारण) अन्न ही बल से श्रेष्ठ है। अतएव यदि कोई दश दिन भोजन न करे और जीवित रह भी जाय तो भी वह अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता तथा अविज्ञाता निश्चय हो जाता है, (क्योंकि भोजन के अभाव में देखने, सुनने, मनन करने, जानने आदि व्यापार में वह असमर्थ हो जाता है) पुनः अन्न मिलने पर वह पुरुष देखता है, सुनता है, मनन करता है, बोद्धा होता है, कर्ता और विज्ञाता होता है। इसलिये तू अन्न की उपासना कर ॥ १ ॥

अन्नं वाव बलाद्भूयः। बलहेतुत्वात्। कथमन्नस्य बलहेतुत्वमित्युच्यते। यस्माद्बलकारणमन्नं तस्माद्यद्यपि कश्चिद्दश रात्रीर्नाश्नीयात्सोऽन्नोपयोगनिमित्तस्य बलस्य हान्या म्रियते न चेन्म्रियते यद्यु ह जीवेत्। दृश्यन्ते हि मासमप्यनश्नन्तो जीवन्तः। अथवा स जीवन्नप्यद्रष्टा भवति गुरोरपि तत एवाश्रोतेत्यादि पूर्वविपरीतं सर्वं भवति। अथ यदा बहून्यहान्यनशितो दर्शनादिक्रियास्वसमर्थः सन्नन्नस्याऽऽयी। आगमनमायोऽन्नस्य

अथवा यदि सोऽभुञ्जानोऽपि कथंचिज्जीवेत्तदा जीवन्नपि सोऽद्रष्टेति संबन्धः। कथमशनशून्यस्य जीवनमित्याशङ्क्याऽऽह—दृश्यन्त इति। अन्नोपयोगाभावे बलहानिरिति व्यतिरेकमुक्त्वा तदुपयोगे बलं भवतीत्यन्वयं व्याचष्टे—अथेति। अथान्नस्स्याऽऽय इत्यपि पाठोऽस्ति तत्रान्नस्याऽऽय इत्येतदेव

करती हुई श्रुति कहती है "बल से ही पृथिवी स्थित है" इत्यादि मन्त्र का अर्थ सरल ही है इसलिए विस्तृत भाष्य नहीं किया गया ॥ १ ॥ २ ॥

बल में कारण होने से अन्न की बल से अधिक प्रतिष्ठा है। किस प्रकार अन्न बल सम्पादन करता है इस पर कहते हैं—यदि कोई दश दिन-रात अन्न ग्रहण न करे तो अन्न प्रयुक्त बल की क्षति हो जाने से वह मर जाता है, यह अन्न का प्रभाव है। कभी-कभी यदि वह जीता रहता है क्योंकि मास पर्यन्त बिना अन्न ग्रहण किए जीवित रहते देखे जाते हैं अथवा जीते हुए भी वास्तव में वह दर्शन श्रवण आदि क्रियाओं के करने में पूर्ण समर्थ नहीं हो पाता। (व्यतिरेक दृष्टान्त का प्रतिपादन कर अन्वय दृष्टान्त कहते हैं)। बहुत दिनों तक अन्न ग्रहण न करने से दर्शनादि क्रिया में असमर्थ हुआ इसके पश्चात् जब अन्न को प्राप्त करता है तो द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बोद्धा और विज्ञाता लाभ करता है। मन्त्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्न ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

"यह ब्रह्म है" इसप्रकार वह जो कोई पुरुष अन्न की उपासना करता है, उसे प्रभूत अन्नवाले तथा प्रभूत जलवाले लोकों की प्राप्ति होती है। जहाँतक अन्न की गति है, वहाँतक उस उपासक की स्वच्छन्द गति होती है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो इसकी उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवान्! क्या अन्न से भी बढ़कर कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा–) हाँ, अन्न से भी बढ़कर लोक में वस्तु अवश्य है। (नारद ने कहा—) भगवान्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें ॥ २ ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

प्राप्तिरित्यर्थः। सा यस्य विद्यते सोऽन्नस्याऽऽयी। आय इत्येतद्वर्णव्यत्ययेन। अथान्नस्याऽऽया इत्यपि पाठ एवमेवार्थः। द्रष्टेत्यादिकार्यश्रवणात्। दृश्यते ह्यन्नोपयोगे दर्शनादिसामर्थ्यं न तदप्राप्तावतोऽन्नमुपास्स्वेति ॥१॥

फलं चान्नवतः प्रभूतान्नान्वै स लोकान्पानवतः प्रभूतोदकांश्चान्नपानयो[1]र्नित्य-

---

पदमन्नप्राप्तिपरतया व्याख्येयमेकारमीकारत्वेन विपरिणमय्य वर्णव्यत्ययाङ्गीकारादित्याह—आय-इत्येतदिति। द्रष्टा श्रोतेत्याद्यन्नकार्यस्य श्रवणादपि पाठान्तरमन्नप्राप्तिपरतया व्याख्येयमित्याह—द्रष्टे-त्यादीति। कथं तदन्नकार्यमित्याशङ्क्यान्वयव्यतिरेकौ दर्शयति—दृश्यते हीति ॥१॥

के "आयै" का विवेचन करते हैं—आय आगमन अथवा अन्न की प्राप्ति का नाम है जिसमें यह हो, उसे आयी कहते है। एकार का ईकार विपरिणाम वर्णव्यत्यय से हुआ है। "अन्नस्य आया" ऐसा भी पाठ है जिसका अर्थ भी यही है क्योंकि द्रष्टा आदि कार्य का मन्त्र में श्रवण है। अन्न ग्रहण से ही दर्शनादि की सामर्थ्य होती है इसके बिना नहीं अतः अन्न की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करे ॥ १ ॥

जो अन्न की ब्रह्म भावना से उपासना करता है, उसे पर्याप्त अन्न की प्राप्ति होती है वह पेय द्रव्य प्राप्त होने वाले लोकों की प्राप्ति करता है। अन्न और पान का नित्य सम्बन्ध होने के कारण

---

१. नित्यसंबन्धाद् पानग्रहणमिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।)

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति ॥ १ ॥

अन्न की अपेक्षा जल की श्रेष्ठता

(अन्न का कारण होने से) जल ही अन्न की अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसीलिये जब अच्छी वृष्टि नहीं होती, तो प्राण दुःखी हो जाते हैं कि (इस वर्ष) अन्न थोड़ा हो गया और जब वृष्टि अच्छी होती है तब अन्न खूब होगा, ऐसा समझ कर प्राण प्रसन्न होता है (क्योंकि यह जो मूर्तिमती पृथिवी है) वह मूर्तिमान् जल ही तो है, तथा जो अन्तरिक्ष, जो द्युलोक, जो पर्वत, जो देवता एवं मनुष्य और जो पशु और पक्षी, जो तृण, वनस्पति, स्वापद और कीट, पतंग, पिपीलिका पर्यन्त प्राणी हैं वे भी मूर्तिमान् जल ही हैं। अतएव तू जल की ही उपासना कर ॥ १ ॥

संबन्धाल्लोकानभिसिध्यति । समानमन्यत् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

आपो वावान्नाद्भूयस्योऽन्नकारणत्वात् । यस्मादेवं तस्माद्यदा यस्मिन्काले सुवृष्टिः सस्यहिता शोभना वृष्टिर्न भवति तदा व्याधीयन्ते प्राणा दुःखिनो भवन्ति । किंनिमित्तमित्याहान्नमस्मिन्संवत्सरे नः कनीयोऽल्पतरं भविष्यतीति । अथ

॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

अपां कारणत्वेनान्नाद्भूयस्त्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यां साधयति— यस्मादित्यादिना । अपां सर्व-

---

लोकों की सिद्धि कर लेना स्वाभाविक ही है। अन्य अर्थ पिछले मन्त्रों के भाष्य के अर्थ के समान है अतः पृथक् अर्थ नहीं किया गया ॥ २ ॥

अन्न में हेतु होने के कारण जल की अन्न से अधिक प्रतिष्ठा है क्योंकि जब धान्य के उत्कर्ष में कारणभूत पर्याप्त वृष्टि नहीं होती तब प्राणों को दुःख होता है कि इस वर्ष तो अन्न उत्पादन बहुत कम होगा, किन्तु जब सुन्दर वृष्टि होती है तो सुखी हुए प्रसन्न लोग कहते हैं इस वर्ष अधिक अन्न

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामाꣳस्तृप्तिमान्भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई जल की उपासना करता है, वह उपासक सम्पूर्ण काम्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है और तृप्त होता है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है जहाँ तक जल की गति है। (नारद ने कहा–) भगवन्! क्या जल से भी श्रेष्ठ वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा–) जल से भी श्रेष्ठ वस्तु अवश्य है। (नारद ने कहा—) भगवन्! तब मुझे उसी का उपदेश करें॥ २॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

पुनर्यदा सुवृष्टिर्भवति तदाऽऽनन्दिनः सुखिनो हृष्टाः प्राणाः प्राणिनो भवन्त्यन्नं बहु प्रभूतं भविष्यतीति। अप्संभवत्वान्मूर्तस्यान्नस्याऽऽप एवेमा मूर्ता मूर्तिभेदाकारपरिणता इति मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षमित्यादि। आप एवेमा मूर्ता अतोऽप उपास्स्वेति ॥१॥

फलं–स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामान्काम्यान्मूर्तिमतो विषयानित्यर्थः। अप्संभवत्वाच्च तृप्तेरम्बूपासनात्तृप्तिमांश्च भवति। समानमन्यत् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

जगदात्मकत्वाच्चान्नाद्भूयस्त्वमुचितमित्याह—अप्संभवत्वादिति। दधिपयःप्रभृत्याहुतिपरिणामत्वादन्तरिक्षादेरप्संभवत्वमवसेयम्। अपां सर्वमूर्तात्मकत्वमुपसंहरति—इत्यादीति ॥१॥

॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

का उत्पादन होगा। जल के सर्व जगदात्मक होने के कारण मूर्त रूप में परिणत हुए सभी पदार्थ जल ही है। दूध दही रूप आहुति का परिणाम होने से पृथिवी एवं अन्तरिक्षादि भी जल ही है। जल सभी मूर्त पदार्थों में समाया हुआ है अतः जल की ब्रह्म भावना से उपासना करे॥ १॥

जल की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करने वाले को यह फल मिलता है कि वह मूर्तिमान् सभी काम्य विषयों को प्राप्त कर लेता है। जल से ही तृप्ति होती है अतः जल की उपासना से तृप्ति से युक्त होता है। शेष मन्त्र का अर्थ विगत मन्त्रों के अर्थ की तरह है॥ २॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।)

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याऽऽकाशमभितपति तदाऽऽहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति ॥ १ ॥

जल की अपेक्षा तेज की श्रेष्ठता

(जल का कारण होने से) जल की अपेक्षा तेज ही श्रेष्ठ है। क्योंकि यह तेज जब वायु को निश्चल करके आकाश को सभी ओर से संतप्त करता है, तब लोग कहते हैं, जगत् सामान्यरूप से संतप्त हो रहा है, बडा ताप है। अतः वर्षा होगी। इस प्रकार तेज ही पहले अपने को उद्भूत हुआ दिखलाकर फिर जल की सृष्टि करता है। यह तेज ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यग्गामिनी विजलियों के सहित गड़गड़ाहट का शब्द फैला देता है। अतएव लोग कहते हैं, विजली चमकती है, बादल गरजता है, वर्षा अवश्य होगी। इस प्रकार तेज ही पहले अपने को उक्त रूपों में दिखलाकर फिर जल बरसाता है। इसीलिये तू तेज की उपासना कर ॥ १ ॥

तेजो वावाद्भ्यो भूयः। तेजसोऽप्कारणत्वात्। कथमप्कारणत्वमित्याह। यस्मादद्योनिस्तेजस्तस्मात्तद्वा एतत्तेजो वायुमागृह्यावष्टभ्य स्वात्मन निश्चलीकृत्य वायुमाकाशमभितपत्याकाशमभिव्याप्नुवत्तपति यदा तदाऽऽहुर्लौकिका निशोचति संतपति सामान्येन जगन्नितपति देहानतो वर्षिष्यति वा इति। प्रसिद्धं हि लोके कारणमभ्युद्यतं दृष्टवतः कार्यं भविष्यतीति विज्ञानम्। तेज एव तत्पूर्वमात्मानमुद्भूतं दर्शयित्वाऽथानन्तरमपः

इतिशब्दस्तदाहुरित्यनेन संबध्यते। वैशब्दार्थं दर्शयति—प्रसिद्धमिति। अप्तेजसोरुक्तं कार्यकारणत्वमुपजीव्य फलितमाह—तेज एवेति। अप्तेजसोर्विधान्तरेण कार्यकारणभावं दर्शयति—

जल से तेज की अधिक प्रतिष्ठा है क्योंकि जल की सत्ता में तेज कारण है। जल में तेज क्यों हेतु है ? इस पर कहते हैं। जल का हेतुभूत यह तेज जब वायु से मिलकर अपने को निश्चल कर आकाश को अभिव्याप्त कर तपता है तो लोग कहते हैं यह तेज सारे जगत् को तपा रहा है, शरीर को भयानक गर्मी से कष्ट पहुँचा रहा है अतः निश्चित ही वृष्टि होगी। लोकव्यवहार से सिद्ध है कारणरूप पुरुषार्थ का कार्यरूप फल अवश्य देखा जाता है,। तेज ही इसी प्रकार अपने पूर्व उद्भूत रूप को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान्भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई पुरुष तेज की उपासना करता है, वह निश्चय ही तेजस्वी होकर तेज:सम्पन्न प्रकाशमान् और बाह्य एवं आभ्यन्तर तम से रहित लोकों को प्राप्त करता है। उस उपासक की वहाँ तक गति हो जाती है, जहाँ तक तेज की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो तेज की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवन् ! क्या तेज से भी बढ़कर कोई चीज है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ, तेज से बढ़कर कोई वस्तु है ही। (नारद ने कहा—) तब तो भगवान् ! मुझे उसी तत्त्व का उपदेश करें ॥ २ ॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

सृजतेऽतोऽप्स्रष्टृत्वाद्भूयोऽद्भ्यस्तेजः। किंचान्यत्तदेतत्तेज एव स्तनयित्नुरूपेण वर्षहेतुर्भवति। कथम्। ऊर्ध्वाभिश्चोर्ध्वगामिनीभिर्विद्युद्भिस्तिरश्चीभिश्च तिर्यग्गताभिश्च सहाऽऽह्लादाः स्तननशब्दाश्चरन्ति। तस्मात्तद्दर्शनादाहुर्लौकिका विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इत्याद्युक्तार्थम्। अतस्तेज उपास्स्वेति ॥१॥

तस्य तेजस उपासनफलं—तेजस्वी वै भवति। तेजस्वत एव च लोका-

किंचान्यदिति। तदेवोपपादयति—ऊर्ध्वाभिरिति। तेजसो भूयस्त्वफलमाह—तेज इति ॥१॥

तमःशब्दार्थमाह—बाह्येति। बाह्यं तमः शार्वरं प्रसिद्धमाध्यात्मिकमज्ञानरागादि तदुभयम-

---

दिखाकर बाद में जल रूप में परिणत हो जाता है, इस प्रकार जल की सृष्टि होने से पुन: जल से तेज होता है। (जल एवं तेज का प्रकारान्तर से कार्य-कारण भाव प्रदर्शित करते हैं—) इसके अतिरिक्त तेज ही स्तनयित्नु रूप से वर्षा होने में कारण है। इसकी प्रक्रिया इस प्रकार है। ऊपर की ओर जाती हुई एवं टेढे-मेढ़े विचरण करती हुई बिजली के साथ घनघोर घटा का नाद होता है, जिसे देखकर सामान्य लोग अनुमान करते हुए कहते हैं बिजली चमक रही है मेघ गर्जन सुनाई दे रही है, वर्षा अवश्य होगी, इत्यादि मन्त्र का अर्थ है। अत: तेज की उपासना करनी चाहिए ॥ १ ॥

'वह तेजस्वी हो जाता है' जो ब्रह्म की तेज रूप से उपासना करता है। उसे तेजस्वी लोकों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाऽऽह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

तेज की अपेक्षा आकाश की श्रेष्ठता

(वायु सहित तेज का कारण होने से) आकाश ही तेज से श्रेष्ठ है। आकाश में ही सूर्य-चन्द्र ये दोनों तथा बिजली, नक्षत्र और अग्नि स्थित हैं, आकाश से ही एक व्यक्ति दूसरे को पुकारते हैं, आकाश से ही सुनते हैं, आकाश के द्वारा ही प्रतिश्रवण करते हैं, आकाश में ही दूसरे के साथ रमण करते हैं, आकाश में ही रमण नहीं करते, आवरण शून्य आकाश में ही सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं और आकाश की ओर ही (सब जीव तथा अंकुरादि) बढ़ते है। अतः तुम आकाश की उपासना करो ॥ १ ॥

न्भास्वतः प्रकाशवतोऽपहततमस्कान्बाह्याध्यात्मिकाज्ञानाद्यपनीततमस्कानभिसिध्यति। ऋज्वर्थमन्यत् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

आकाशो वाव तेजसो भूयान्। वायुसहितस्य तेजसः कारणत्वाद्व्योम्नो वायुमा गृह्येति तेजसा सहोक्तो वायुरिति पृथगिह नोक्तस्तेजसः कारणं हि लोके कार्याद्भूयो दृष्टम्। यथा घटादिभ्यो मृत्तथाऽऽकाशो वायुसहितस्य तेजसः कारणमिति ततो भूयान्।

पहततमस्कानित्यत्र तमःशब्दितमित्यर्थः। अपहतशब्दार्थमाह—अपनीतेति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

वायोः सकाशादाकाशो भूयानिति वक्तव्ये कथं तेजसो भूयानित्युक्तमत आह—वाय्विति। कारणत्वेऽपि कथमाकाशस्य वायुसहितात्तेजसो भूयस्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—कारणं हीति। तेजसो

की प्राप्ति होती है, अन्धकार से शून्य प्रकाशमान् लोकों में उसकी प्रतिष्ठा होती है। अज्ञान एवं रागादि अज्ञान अन्धकार से विमुक्ति होती है। अवशिष्ट मन्त्र का अर्थ सरल एवं स्पष्ट है ॥ २ ॥

तेज से आकाश की अधिक प्रतिष्ठा है। वायु के सहित तेज के कारण होने से आकाश वायु को ग्रहण करता हुआ स्वीकार कर लेने से तेज के साथ ही वायु का प्रतिपादन हो जाता है, इसीलिए तेज से पृथक् वायु का यहाँ मन्त्र में वर्णन नहीं किया गया। लोक व्यवहार से यह प्रत्यक्षसिद्ध ही है कि कार्य से कारण श्रेष्ठ होने से उसका महत्त्व होता है। जैसे घटादि कार्य की अपेक्षा मृत्तिका

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसबाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई व्यक्ति आकाश की उपासना करता है, वह विस्तार युक्त प्रकाशवान् पीड़ादि दुःख रहित और विस्तार वाले लोकों को प्राप्त करता है। उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है, जहाँ तक आकाश की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो आकाश की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) हे भगवन्! क्या आकाश से बढ़कर भी कोई वस्तु है? (सनत्कुमार ने कहा—) हाँ! आकाश से भी बढ़कर कोई वस्तु है। (नारद ने कहा—) भगवन्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें॥ २॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

कथम्। आकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ तेजोरूपौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निश्च तेजोरूपाण्याकाशेऽन्तः। यच्च यस्यान्तर्वर्ति तदल्पं भूय इतरत्। किंचाऽऽकाशेनाऽऽह्वयति चान्यमन्य आहूतश्चेतर आकाशेन शृणोत्यन्योक्तं च शब्दमन्यः प्रतिशृणोत्याकाशे रमते क्रीडत्यन्योन्यं सर्वस्तथा न रमते चाऽऽकाशे बध्वादिवियोग आकाशे जायते न मूर्तेनावष्टब्धे। तथाऽऽकाशमभिलक्ष्याङ्कुरादि जायते न प्रतिलोमम्। अत आकाशमुपास्स्व ॥१॥

फलं शृण्वाकाशवतो वै विस्तारयुक्तान्स विद्वाँल्लोकान्प्रकाशवतः। प्रकाश-

---

वायुसहितादाकाशस्य भूयस्त्वं प्रश्नपूर्वकं प्रकारान्तरेण दर्शयति—कथमित्यादिना। इतश्चाऽऽकाशस्यास्ति भूयस्त्वमित्याह—किंचेति। तद्भूयस्त्वफलमाह—अत इति ॥१॥

कारण की प्रधानता होती है, इसी प्रकार वायु सहित तेज का कारण आकाश होने से वही उससे बड़ा है। ऐसा कहने में क्या हेतु है? तेजस्वी रूप वाले सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही आकाश में हैं, बिजली, नक्षत्र एवं अग्नि भी तेजोमय हैं तथा आकाश के अन्तर्गत ही हैं। जो जिसके अन्तर्गत होता है, वह उससे छोटा होता है, जिसे जो अपने में समा लेता है, वह उससे बड़ा होता है। इतना ही नहीं; यह आकाश तत्त्व की ही कृपा है जो एक दूसरे को बुलाता है, प्रथम के आह्वान ध्वनि को आकाश के द्वारा ही श्रवण करता है उसके उत्तर रूप में कहे हुए वचन को पुनः सुनता है, परस्पर आनन्दोत्सव का मनाना भी आकाश के कारण होता है। सुरूपा पत्नी आदि का वियोग आकाश की महिमा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।)

स्मरो वावाऽऽकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कंचन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति ॥ १ ॥

आकाश की अपेक्षा स्मरण की श्रेष्ठता

(अन्तःकरण का धर्मरूप) स्मरण ही आकाश से श्रेष्ठ है। अतएव यद्यपि एक स्थान में बहुत से लोग। (परस्पर भाषण करते हुये) बैठे हों, तथापि स्मरण न करने पर वे न कुछ श्रोतव्य बात सुन सकते हैं, न मन्तव्य बात का मनन कर सकते हैं और न ज्ञातव्य वस्तु को जान ही सकते हैं। पर जिस समय स्मरण करते हैं, उस समय श्रोतव्य को सुनते हैं, तभी मन्तव्य को मनन भी करते हैं और उसी समय विज्ञातव्य को जान सकते हैं। (ऐसे ही मेरे पुत्र हैं, ये मेरे पशु हैं,) इस प्रकार स्मरण करने से ही पुरुष पुत्रों को जानता है और स्मरण से पशुओं को पहचानता है। इसलिये तू स्मरण की उपासना कर ॥ १ ॥

काशयोर्नित्यसंबन्धात्प्रकाशवतश्च लोकानसंबाधान्संबाधनं संबाधः संबाधोऽन्योन्यपीडा तद्रहितानसंबाधानुरुगायवतो विस्तीर्णगतीन्विस्तीर्णप्रचारांल्लोकानभिसिध्यति । यावदाकाशस्येत्याद्युक्तार्थम् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

स्मरो वावाऽऽकाशाद्भूयः । स्मरणं स्मरोऽन्तःकरणधर्मः । स आकाशाद्भूयानिति

कथमाकाशोपासकस्य प्रकाशव्याप्तलोकप्राप्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—प्रकाशाकाशयोरिति ।।२।।

इति सप्तमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः॥१२॥

से होता है; रुके हुए मूर्त के कारण नहीं। इसी प्रकार आकाश के होने पर ही अङ्कुरादि की उत्पत्ति होती है, इसके बिना कदापि संभव नहीं इसलिए महामहिम आकाश की उपासना करे ॥ १ ॥

आकाश की उपासना करने वाले का फल कहा जाता है—सुनिए। विस्तीर्ण प्रकाशयुक्त लोकों की वह विद्वान् प्राप्ति करता है। प्रकाश और आकाश का नित्य संबन्ध हुआ करता है, ऐसे प्रकाशमान लोकों को प्राप्त अच्छी तरह कष्ट पहुँचाना संबाध को कहते हैं, जहाँ एक दूसरे को पीड़ा हो वह संबाध स्थान है इस प्रकार की परेशानियों से रहित स्थान को प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, वह विस्तीर्ण गति वाले लोकों को प्राप्त कर लेता है। आकाश के समान विस्तृत लोक की प्राप्ति कर लेता है, यही इस मन्त्र का भावार्थ है ॥२॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार वह जो कोई पुरुष स्मरण की उपासना करता है, उसकी वहाँ तक स्वच्छन्द गति हो जाती है, जहाँ तक स्मरण की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो कोई स्मरण की उपासना करता है। (नारद ने कहा—) भगवन्! क्या स्मरण से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ है ? सनत्कुमार ने कहा—हाँ ! स्मरण से भी श्रेष्ठ वस्तु अवश्य है। (नारद नें कहा—) भगवन्! तब तो मुझे उसी का उपदेश करें ॥ २ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

द्रष्टव्यं लिङ्गव्यत्ययेन। स्मर्तुः स्मरणे हि सत्याकाशादि सर्वमर्थवत्स्मरणवतो भोग्यत्वात्। असति तु स्मरणे सदप्यसदेव। सत्त्वकार्याभावात्। नापि सत्त्वं स्मृत्यभावे शक्यमाकाशादीनामवगन्तुमित्यतः स्मरणस्याऽऽकाशाद्भूयस्त्वम्। दृश्यते हि लोके स्मरणस्य भूयस्त्वं यस्मात्तस्माद्यद्यपि समुदिता बहव एकस्मिन्नासीरन्नुपविशेयुस्ते तत्राऽऽसीना

नपुंसकलिङ्गं श्रुतं पुंलिङ्गत्वेन कथं व्याख्यातमित्याशङ्क्य पुंल्लिङ्गोपक्रममाश्रित्याऽऽह—लिङ्गव्यत्ययेनेति। कथं पुनः स्मरणस्याऽऽकाशाद्भूयस्त्वमित्याशङ्क्याऽऽह—स्मरणे हीति। अन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकं दर्शयति—असतीति। आकाशादेः स्मरणाभावेऽपि सत्त्वमङ्गीकृत्य भोग्यत्वाभावादानर्थक्यमुक्तं संप्रत्यस्मरणे सत्त्वमेव नास्तीत्याह—नापीति। स्मरणस्य भूयस्त्वमनुभवानुसारेण साधयति—दृश्यते हीति। हिशब्दार्थो यस्मादित्युक्तः। स्मरणाभावे श्रवणाद्यभावं व्यतिरेकमुक्त्वा

स्मृति की प्रतिष्ठा आकाश से भी अधिक है। अन्तःकरण का धर्म स्मरण ही स्मृति है। वह आकाश से भी बड़ा है। मन्त्र में स्मर शब्द पुंलिङ्ग है भाष्य में उसका नपुंसकलिङ्ग के रूप में ही व्याख्यान है, यह लिङ्गव्यत्यय के कारण समझना चाहिए। स्मरणकर्ता के स्मरण करने पर ही आकाशादि सभी भूतों की सार्थकता होती है क्योंकि स्मरणकर्ता के द्वारा ये सेवित हुआ करते हैं। यदि किसी वस्तु का स्मरण न हो तो उसकी विद्यमानता में भी वह वस्तु अविद्यमान ही रहती है क्योंकि विद्यमानता की प्रतीति कराने वाले कार्य का वहाँ अभाव है। ऐसा भी संभव नहीं है कि स्मृति के विना भी आकाशादि की विद्यमानता की प्रतीति हो जाए इसलिए स्मरण की महिमा आकाश से अधिक है। (अनुभवसिद्ध भी है—) लोक व्यवहार में भी क्योंकि स्मरण को अधिक महत्त्व दिया जाता है। जैसे किसी स्थान में बहुत से व्यक्ति यदि इकट्ठे बैठे हों, वहाँ बैठे हुए एक दूसरे से बात-चीत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ।)

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राꣳश्च पशूꣳश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति ॥ १ ॥

स्मरण से आशा की श्रेष्ठता

(अप्राप्तवस्तु की इच्छारूप) आशा ही स्मरण से श्रेष्ठ है। आशा से प्रदीप्त हुआ स्मरण करके ही ऋगादि मन्त्रों का पाठ करता है, फलाशा से ही कर्म करता है, एवं पुत्र और पशुओं को चाहता है तथा (आशा से समृद्ध हुआ ही वह पुरुष) इस लोक और परलोक की कामना करता है। अतः तू आशा की उपासना कर ॥१॥

अन्योन्यभाषितमपि न स्मरन्तश्चेत्स्युर्नैव ते कंचन शब्दं शृणुयुस्तथा न मन्वीरन्मन्तव्यं चेत्स्मरेयुस्तदा मन्वीरन्स्मृत्यभावान्न मन्वीरंस्तथा न विजानीरन् । यदा वाव ते स्मरेयुर्मन्तव्यं विज्ञातव्यं श्रोतव्यं चाथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन् । तथा स्मरेण वै मम पुत्रा एत इति पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून् । अतो भूयस्त्वात्स्मरमुपास्स्वेति । उक्तार्थमन्यत् ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

आशा वाव स्मराद्भूयसी । आशाऽप्राप्तवस्त्वाकाङ्क्षाऽऽशा तृष्णा काम इति

तद्भावे तद्भावमन्वयमाह—यदेति । इतश्चास्ति स्मरणस्य भूयस्त्वमित्याह—तथेति । तद्भूयस्त्वे फलितमाह—अत इति ॥१॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

करते हुए भी यदि स्मरण शक्ति का प्रयोग न करते हों तो वे कुछ भी न सुन सकेंगे तथा कुछ भी मनन न कर सकेंगे न ही कुछ जान सकेंगे। हाँ! यदि उनमें स्मरणशक्ति की तन्निष्ठता बनी रहती है तो वे सब कुछ श्रवण कर मनन कर सकेंगे और स्पष्ट ज्ञान उन्हें हो पाएगा। इससे सिद्ध हो जाता है कि यह स्मरणशक्ति का ही प्रभाव है जो मनुष्य पुत्र होने पर जानता है कि ये मेरे पुत्र हैं, पशुओं के होने पर जानता है कि ये मेरे पशु हैं। अतः स्मृति के उत्कर्ष को जानता हुआ उसकी उपासना करे। अवशिष्ट मन्त्र का अर्थ पूर्व के मन्त्रों के समान समझ लेना चाहिए ॥ १ ॥ २ ॥

हे नारद जी! स्मृति से आशा स्थान बड़ा कहा जा सकता है। जो वस्तु प्राप्त न हुई हो, उसे प्राप्त करने की इच्छा ही आशा है। काम, तृष्णा आदि अनेक पर्यायों से इसे कहा जाता है अतः स्मृति से इसका महत्त्व अधिक है। ऐसा कहना इसलिए संभव है क्योंकि अन्तःकरण में स्थित आशा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयाऽस्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा हास्याऽऽशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

"यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो वह पुरुष आशा की उपासना करता है, उस उपासक की सब कामनाएँ आशा से समुन्नत हो जाती हैं। उसकी सब प्रार्थनाएँ सफल होती हैं। उस उपासक की वहाँ तक स्वच्छन्द गति होती है जहाँ तक आशा की गति है। "यह ब्रह्म है" इस प्रकार जो आशा की उपासना करता है (नारद ने कहा–)क्या आशा से भी कोई वस्तु श्रेष्ठ है? (सनत्कुमार के कहा–) हाँ! आशा से भी बढ़कर कोई वस्तु है ही (नारद ने कहा—)तब तो भगवन्! मुझे उसी का उपदेश करें ॥२॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

यामाहुः पर्यायैः सा च स्मराद्भूयसी। कथम्। आशया ह्यन्तःकरणस्थया स्मरति स्मर्तव्यम्। आशाविषयरूपं स्मरन्नसौ स्मरो भवत्यत आशेद्ध आशयाऽभिवर्धितः स्मरभूतः स्मरन्नृगादीन्मन्त्रानधीतेऽधीत्य च तदर्थं ब्राह्मणेभ्यो विधींश्च श्रुत्वा कर्माणि कुरुते तत्फलाशयैव पुत्रांश्च पशूंश्च कर्मफलभूतानिच्छतेऽभिवाञ्छत्याशयैव तत्साधनान्यनुतिष्ठति। इमं च लोकमाशेद्ध एव स्मरँल्लोकसंग्रहहेतुभिरिच्छते। अमुं च लोकमाशेद्धः स्मरंस्तत्साधनानुष्ठानेनेच्छतेऽत आशारशनावबद्धं स्मराकाशादिनामपर्यन्तं जगच्चक्रीभूतं प्रतिप्राणि। अत आशायाः स्मरादपि भूयस्त्वमित्यत आशामुपास्स्व ॥१॥

यस्त्वाशां ब्रह्मेत्युपास्ते शृणु तस्य फलम्। आशया सदोपासितयाऽस्योपासकस्य

आशाया भूयस्त्वमाकाङ्क्षाद्वारा व्युत्पादयति—कथमित्यादिना ॥१॥

से ही स्मरण करने योग्य पदार्थों का स्मरण करता है। आशा के विषय के मनोहारी चित्र की स्मृति करता हुआ यह स्मृतियुक्त होता है। ऋगादि मन्त्रों के अध्ययन में प्रवृत्ति तभी होता है जब स्मृतिरूप आशा प्रदीप्त होती है, इसके बाद ऋक्मन्त्रों के अर्थों को विद्वान् के मुख से विधानसहित सुनकर तत्प्रतिपादित कर्मों को करता है। फल की आशा से ही कर्मफल के मूर्त स्वरूप पुत्र एवं पशुओं की इच्छा करता है, आशा ही से उन विषयों की प्राप्ति कराने वाले साधनों का सेवन करता है। आशा से प्रेरित हुआ ही स्मरण करता हुआ लोक संग्रह के कारणों द्वारा इस लोक की प्राप्ति की इच्छा करता है। आशा के ही प्रदीप्त होने पर परलोक प्राप्ति के साधनों का अनुष्ठान करते हुए स्मरण

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।)

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वꣳ समर्पितं प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः ॥ १ ॥

आशा की अपेक्षा प्राण की श्रेष्ठता

आशा की अपेक्षा निःसन्देह प्राण श्रेष्ठ है। जैसे रथ के चक्के की नाभि में अरे लगे होते हैं, वैसे ही इस प्राण में सारा जगत् ओत-प्रोत हो रहा है। प्राण ही (अपनी शक्ति) प्राण के द्वारा गमन करता है, प्राण-प्राण को देता है और प्राण के लिए ही देता है। प्राण ही पिता है, प्राण ही माता है, प्राण भ्राता है, प्राण बहिन है, प्राण आचार्य है और प्राण ही ब्राह्मण है ॥ १ ॥

सर्वे कामाः समृध्यन्ति समृद्धिं गच्छन्ति । अमोघा ह्यस्याऽऽशिषः प्रार्थनाः सर्वा भवन्ति यत्प्रार्थितं सर्वं तदवश्यं भवतीत्यर्थः । यावदाशाया गतमित्यादि पूर्ववत् ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

नामोपक्रममाशान्तं कार्यकारणत्वेन निमित्तनैमित्तकत्वेन चोत्तरोत्तरभूयस्त-

---

॥२॥

इति सप्तम ध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥४॥

प्राणस्य सर्वास्पदत्वेन भूयस्त्वं कथयति—नामोपक्रममिति। प्रकृतश्रुतिवशात्तदुपक्रमे यस्य जगतोऽस्ति तत्तथा पाठक्रममेवाऽऽश्रित्याऽऽशा चान्ते यस्यास्ति तज्जगत्तथेति विग्रहः। कार्यकारणत्वं क्वाचित्कमुपादानोपादेयत्वं निमित्तनैमित्तिकत्वमपि क्वाचित्कमेव। उत्तरोत्तरभूयस्तया पूर्वस्मात्पूर्व-

---

करता हुआ उसकी इच्छा करता है। इस प्रकार आशा रूपी रस्सी से बँधा हुआ स्मृति आकाशादि नाम पर्यन्त समग्र जगत् एवं हर एक मानव चक्र की तरह है। इसलिए आशा का स्मृति से अधिक महत्त्व रखना सिद्ध हो जाता है। इसे मन में विचार कर ब्रह्मभावना से आशा की उपासना करे ॥१॥

ऐसा तो नहीं कहीं आशा की ब्रह्मभावना से उपासना करने वाले की कोई गति न हो अतः उस उपासना का फल कहते हैं, सुनिए। जो आशा की सदा उपासना करता है उसकी सभी कामनाएँ समृद्धि को प्राप्त होती हैं, उसके द्वारा की गई कोई भी प्रार्थना निष्फल नहीं जाती। जिस-जिस पदार्थ के लिए यह प्रार्थना करता है, वह पदार्थ उसे अवश्य प्राप्त हो जाता है। जहाँ तक आशा का कार्य-क्षेत्र है वहाँ तक सरलता से वह पहुँच जाता है, इत्यादि अर्थ पूर्वमन्त्र के भाष्य की तरह है ॥ २ ॥

(प्राण में ही सबकी प्रतिष्ठा है इससे प्राण की महत्ता को बतलाते हुए श्रुति कहती है–) नाम से लेकर आशा पर्यन्त कार्य कारण भाव एवं निमित्त-नैमित्तिक भाव से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ सिद्ध किए

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राऽवस्थितं स्मृतिनिमित्तसद्भावमाशारशनापाशैर्विपाशितं सर्वं सर्वतो बिसमिव तन्तुभिर्यस्मिन्प्राणे समर्पितम् । येन च सर्वतो व्यापिनाऽन्तर्बहिर्गतेन मणिगणा इव सूत्रेण ग्रथितं विधृतं च । स एष प्राणो वा आशाया भूयान् । कथमस्य भूयस्त्वमित्याह दृष्टान्तेन समर्थयंस्तद्भूयस्त्वम् । यथा वै लोके रथचक्रस्यारा रथनाभौ समर्पिताः संप्रोताः संप्रवेशिता इत्येतत् । एवमस्मिँल्लिङ्गसंघातरूपे प्राणे प्रज्ञात्मनि दैहिके मुख्ये यस्मिन्परा देवता नामरूपव्याकरणायाऽऽदर्शादौ प्रतिबिम्बवज्जीवेनाऽऽत्मनाऽनुप्रविष्टा । यश्च महाराजस्येव सर्वाधिकारीश्वरस्य । "कस्मिन्न्वहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति स प्राणमसृजत" इति श्रुतेः । यस्तु च्छायेवानुगत ईश्वरम् । तद्यथा "रथस्यारेषु नेमिरर्पितो नाभावरा अर्पिता एवमेवैता भूतमात्राः

नामाद्युत्तरोत्तरवागादिभूयस्त्वेनेति यावत् । स्मृतिनिमित्तः सद्भावो यस्य तत्तथा । आशाख्यं रशनापाशैः सर्वतो विपाशितमित्यत्र दृष्टान्तमाह—बिसमिवेति । बिसशब्दो मृणालविषयः । यथोक्तं जगद्यस्मिन्नर्पितं स एष भूयानिति संबन्धः । सर्वस्य जगतस्तस्मिन्नर्पितत्वमेव दृष्टान्तद्वारा स्पष्टयति—येन चेति । सर्वतो व्यापिनेत्यस्यैव स्फुटीकरणमन्तर्बहिर्गतेनेति । प्राणस्याऽऽशायाः सकाशाद्भूयस्त्वमाकाङ्क्षापूर्वकं समर्थयते—कथमित्यादिना । लिङ्गानां व्यष्टीनां संघातः समुदायस्तद्रूपे समष्ट्यात्मनीति यावत् । उपाधितद्वतोरैक्यमभिप्रेत्य विशिनष्टि—प्रज्ञात्मनीति । तस्यैवाध्यात्ममधिभूतमधिदैवं चावस्थानं सूचयति—दहिक इति । प्राणान्तरं व्यावर्तयति—मुख्य इति । यथोक्तेऽस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितमित्युत्तरत्र संबन्धः । प्रज्ञात्मनीति परमात्मोपाधित्वं प्राणस्योक्तं तदुपपादयति—यस्मिन्निति । तस्मिन्सर्वं समर्पितमिति पूर्ववत्संबन्धः । किमिति चक्षुरादिषु विद्यमानेषु मुख्यस्यैव प्राणस्य परमात्मोपाधित्वमुपगतमित्याशङ्क्याऽऽह—यश्चेति । प्राणस्येश्वरं प्रति सर्वाधिकारित्वे श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—कस्मिन्निति । ईश्वरं प्रति प्राणस्यैवोपाधित्वे हेत्वन्तरमाह—यस्त्विति । अत्रापि पूर्ववदन्वयः । प्राणच्छायावदीश्वरमनुगच्छतीत्यत्र श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—तद्यथेति । भूतमात्राः शब्दादयः पृथिव्यादयश्च

गए । स्मृति निमित्तक सभी विद्यमान पदार्थों की सत्ता वाला जगत् आशा रूपी रस्सी के पाशों से सब तरह जकड़ा हुआ प्राणों में समर्पित है, जैसे तन्तुओं के द्वारा मृणाल । धागे में पिरोए हुए मणियों के समूह की तरह अन्दर-बाहर सब ओर व्याप्त रहने के कारण सब का विधारक यह प्राण आशा से महान् है । इसकी महानता किस प्रकार है, इसे दृष्टान्त के द्वारा सुस्पष्ट करते हुए इसको महत्ता सिद्ध करते हैं । जिस प्रकार लोक व्यवहार में रथ के पहिए के अरे उसकी नाभि में अच्छी तरह फसकर प्रविष्ट रहते हैं, इसी प्रकार लिङ्गसंघातरूप प्रज्ञात्मा दैहिक मुख्य प्राण में जिसमें परम देव नाम रूप विकार के लिए दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह जीवात्मा से प्रविष्ट है, वह महाराज तथा ईश्वर की तरह सर्वाधिकारी है । इसमें श्रुति भी प्रमाण है । "किसके निकल जाने पर मैं निश्चेष्ट हो जाऊँगा, किसके प्रतिष्ठित रहने पर मेरी स्थिति बनी रहेगी, ऐसा सोचकर उसने प्राण की सृष्टि की" । (ईश्वर के प्रति प्राण के ही औपाधिक होने में अन्य हेतु कहते हैं—) वह प्राण ईश्वर में छाया की तरह अनुगत है । जिस प्रकार रथ के अरों में नेमि लगी रहती है नाभि में अरे लगे रहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं

यदि कोई पुरुष अपने पिता, माता, भ्राता, बहिन, आचार्य या ब्राह्मण के प्रति (त्वंकारादि

प्रज्ञामात्रास्वर्पिताः प्रज्ञामात्राः प्राणेऽर्पिताः । स एष प्राण एव प्रज्ञात्मा" इति कौषीतकिनाम् । अत एवमस्मिन्प्राणे सर्वं यथोक्तं समर्पितम् । अतः स एष प्राणोऽपरतन्त्रः प्राणेन स्वशक्त्यैव याति नान्यकृतं गमनादिक्रियास्वस्य सामर्थ्यमित्यर्थः । सर्वं क्रियाकारकफलभेदजातं प्राण एव न प्राणाद्बहिर्भूतमस्तीति प्रकरणार्थः । प्राणः प्राणं ददाति । यद्ददाति तत्स्वात्मभूतमेव । यस्मै ददाति तदपि प्राणायैव । अतः पित्राद्याख्योऽपि प्राण एव ॥१॥

कथं पित्रादिशब्दानां प्रसिद्धार्थोत्सर्गेण प्राणविषयत्वमिति । उच्यते—सति प्राणे

विषयाः प्रज्ञामात्रासु शब्दादिबुद्धिषु तज्जनकेन्द्रियेषु वेत्यर्थः । भवतु तासां प्राणेऽर्पितत्वं तथाऽपि कथं प्राणस्य च्छायावदीश्वरं प्रत्यनुगतिस्तत्राऽऽह—स एष इति । कौषीतकिनां श्रुतिरिति शेषः । प्राणस्य यथोक्तविशेषणवैशिष्ट्यमतःशब्दार्थः । व्याख्यातं भागमनूद्यावशिष्टमंशं व्याकरोति—एवमिति । प्राणः प्राणेन यातीत्यस्यार्थमाह—अत इति । सर्वास्पदत्वादिति यावत् । प्राणः प्राणेन यातीत्यादेः प्राणो ह्येतानि सर्वाणि भवतीत्यन्तस्य तात्पर्यार्थं संक्षिप्य कथयति—सर्वमिति । दातुर्देयस्य संप्रदानस्य च प्राणाभिन्नत्वं प्रकटयति—प्राण इति । तदपीति दीयमानमुच्यते । [1]स्वस्य संप्रदानस्य च प्राणाभिन्नत्वात्प्राणायैवेत्युक्तम् । प्राणस्य सर्वात्मत्वमतःशब्दार्थः ॥१॥

प्रसिद्धिरनतिक्रमणीयेति शङ्कते—कथमिति । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पित्रादिशब्दानां प्राणविषयत्वान्न प्रसिद्धेरुल्लङ्घनमित्याह—उच्यत इति । अन्वयव्यतिरेकावेव प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति–

हैं इसी प्रकार शब्दादि एवं पृथिव्यादि विषय, शब्दादि बुद्धि एवं उसके जनक इन्द्रियों में अनुगत रहते हैं, शब्दादि बुद्धि एवं उसकी जनक इन्द्रियाँ प्राणों के अनुगत रहती हैं। कौषीतकि उपनिषद् में भी कहा गया है ..."वह यह प्राण ही प्रज्ञात्मा" है। प्राणों के यथोक्त विशेषणों से विशिष्ट होने से उसी में सब कुछ समर्पित है। इसलिए यह प्राण किसी अन्य की अपेक्षा के विना ही अपनी शक्ति भूत प्राण के द्वारा ही जाता है, इसकी गमनादि क्रिया की सामर्थ्य स्वतः चालित है। इस सारे प्रकरण का सारांश यह है कि जो भी क्रिया, कारक फल भेद समूह देखने में आता है वह सब प्राण ही है उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। प्राण ही दाता है, प्राण ही ग्रहीता है। जो कुछ दिया जाता है वह भी प्राणात्मक

१. ननु दातुः प्राणाभिन्नत्वं नोक्तमत आह—स्वस्येति । दातुरित्यर्थः । प्राणायैवेत्येव तस्य तदभिन्नत्वं विवक्षितमिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वाऽऽचार्यं वा ब्राह्मणं वा किंचिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति ॥ २ ॥

उनके अननुरूप कोई) अनुचित बात कहता है, (उसके समीपवर्ती विचारशील लोग) उससे कहते हैं—तुझे धिक्कार है। निश्चय ही तू पिता का हत्यारा है, तू तो माता का हत्यारा है, तू तो भाई को मारने वाला है, तू ता बहिन की हत्या करने वाला है, तू तो आचार्य का घातक है तथा निश्चय ही तू ब्रह्मघाती है ॥ २ ॥

पित्रादिषु पित्रादिशब्दप्रयोगात्तदुत्क्रान्तौ च प्रयोगाभावात्। कथं तदित्याह। स यः कश्चित्पित्रादीनामन्यतमं यदि भृशमिव तदननुरूपमिव किंचिद्वचनं त्वंकारादियुक्तं प्रत्याह तदेनं तं पार्श्वस्था आहुर्विवेकिनो धिक्त्वाऽस्तु धिगस्तु त्वामित्येवम्। पितृहा वै त्वं पितुर्हन्तेत्यादि ॥२॥

कथमित्यादिना। पित्रादिषु प्राणे सति पित्रादिशब्दानां प्रयुज्यमानत्वमन्यथा चाप्रयुज्यमानत्वं तदिद्युच्यते। त्वंकारादित्युक्तमित्यादिपदेन तिरस्कारप्रभेदो गृह्यते। पित्रादिष्वप्रियवादिनं प्रति विवेकिनां धिक्कारवचने हेतुमाह—पितृहेति ॥२॥

ही है। जिसे दिया जाता है वह भी प्राण को ही दिया जाता है। इसीलिए मन्त्र में "पिता, माता, भाई, बहिन, आचार्य एवं ब्राह्मण भी प्राण ही है" बतलाया गया है ॥ १ ॥

पिता, माता, भाई आदि का लोकव्यवहार में प्रसिद्ध अर्थ न लेकर सभी का प्राण अर्थ कैसे कर रहे हो—इस पर कहा जाता है। प्राण के संचरित रहते पिता माता आदिकों में पिता माता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है और जब प्राण निकल जाने पर निश्चेष्ट हो जाता है तो उसमें पिता, माता आदि का प्रयोग देखने में नहीं आता। ऐसा निष्कर्ष कैसे निकाला……इसे श्रुति स्वयं प्रतिपादित करती है। यदि पिता, माता आदि में से किसी को भी उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध कोई अनुचित सी बात तू-तू मैं-मैं आदि बोल दे तो पास में खड़े बुद्धिमान् लोग कहते हैं "तुम्हें धिक्कार हो जो तुम इस प्रकार पिता के प्रति अशिष्ट वचन कहते हो"। सचमुच इस कुत्सित आचरण से तुमने पिता जी की हत्या कर दी है ॥ २ ॥

---

१. एनमित्यस्य व्याख्यानं तमिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिसंदहेन्नैवैनं ब्रूयुः पितृहाऽसीति न मातृहाऽसीति न भ्रातृहाऽसीति न स्वसृहाऽसीति नाऽऽचार्यहाऽसीति न ब्राह्मणहाऽसीति ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति

किन्तु प्राण के निकल जाने पर उन्हीं पिता आदि को यदि वह शूल से एकत्रित और छिन्न-भिन्न करके जला देवें तो भी तू पितृहत्यारा है, तू मातृघाती है, तू भ्रातृहा है, तू बहिन को मारने वाला है, तू आचार्य का घातक अथवा तू ब्रह्मघाती है ऐसा कोई भी उससे कुछ नहीं कहते है॥३॥

(चराचर सम्पूर्ण जगत्) ये सब प्राण ही हैं, वह जो इस प्रकार चिन्तन करता हुआ और इस प्रकार जानता हुआ अतिवादी हो जाता है। उससे यदि कोई कहे कि तू तो अतिवादी है, तो उस

अथैतानेवोत्क्रान्तप्राणांस्त्यक्तदेहनाथान्यद्यपि शूलेन समासं—समस्य व्यतिसंदहेद्व्यत्यस्य संदहेदेवमप्यक्रूरं कर्म समासादिप्रकारेण दहनलक्षणं तद्देहसंबद्धमेव कुर्वाणं नैवैनं ब्रूयुः पितृहेत्यादि। तस्मादन्वयव्यतिरेकाभ्यामवगम्यत एतत्पित्राद्याख्योऽपि प्राण एवेति ॥३॥

तस्मात्प्राणो ह्येवैतानि पित्रादीनि सर्वाणि भवति चलानि स्थिराणि च।

सति प्राणे पित्रादिषु पित्रादिशब्दानां प्रयुज्यमानत्वमित्यन्वयमुक्त्वा व्यतिरेकमाह—अथैनानेवेति। समत्य पुञ्जीकृत्य व्यत्यस्यावयवान्विभज्येत्यर्थः। यद्यपीत्युपक्रमादेवमपीत्येतत्तथाऽपीत्यस्मिन्नर्थे द्रष्टव्यम्। तदेवातिक्रूरं कर्म विशिनष्टि—समासेति। अवयवविभजनमादिशब्दार्थः। तद्देहसंबद्धमित्यत्र तच्छब्दः पित्रादिविषयः। यद्यपि त्यक्तप्राणेष्वपि देहेषु पित्रादिशब्दो दृष्टस्तथाऽपि नासौ मुख्यः। तद्विषये क्रूरकर्मानुष्ठानेऽपि शिष्टगर्हादृष्टेरिति भावः। उक्तान्वयव्यतिरेकफलमुपसंहरति—तस्मादिति ॥३।

प्राणस्यैव पित्रादिसंज्ञकत्वे किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—तस्मात्प्राणो हीति। प्राणस्य भूयस्त्व-

---

(अन्वय मुख से प्रतिपादन कर अब व्यतिरेक मुख से प्राणों की महत्ता का प्रतिपादन किया जाता है—) पिता-माता आदि के देहाधिपति प्राणों के निकल जाने पर यदि वह शूल के द्वारा एकत्रित करके सभी अवयवों को विभागपूर्वक अच्छी प्रकार जला देवे, इस प्रकार एकत्रित एवं विभागपूर्वक जला देना भी उसी पिता माता के देह को होता है, इतना क्रूर कर्म करने पर भी कोई इसे पितृघाती नहीं कहता। (यद्यपि प्राणशून्य देह में भी पिता आदि शब्द का प्रयोग होता है किन्तु वह गौण रूप में होता है) इसलिए अन्वय एवं व्यतिरेक से सिद्ध हुआ कि लोक में जिसे पिता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत ॥ ४ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥ ४ ॥

उपासक को यही कहना चाहिए कि हाँ ! मैं अतिवादी हूँ, उसे छिपाना नहीं चाहिए ॥ ४ ॥

॥ इति पञ्चदशः खण्डः ॥

स वा एष प्राणविदेवं यथोक्तप्रकारेण पश्यन्फलतोऽनुभवन्नेवं मन्वान उपपत्तिभिश्चिन्तयन्नेवं विजानन्नुपपत्तिभिः संयोज्यैवमेवेति निश्चयं कुर्वन्नित्यर्थः । मननविज्ञानाभ्यां हि संभूतः शास्त्रार्थो निश्चितो दृष्टो भवेत् । अत एवं पश्यन्नतिवादी भवति नामाद्याशान्तमतीत्य वदनशीलो भवतीत्यर्थः । तं चेद्ब्रूयुस्तं यद्येवमतिवादिनं सर्वदा सर्वैः शब्दैर्नामाद्याशान्तमतीत्य वर्तमानं प्राणमेव वदन्तमेवं पश्यन्तमतिवदनशीलमतिवादिनं ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तस्य हि जगतः प्राण आत्माऽहमिति ब्रुवाणं ब्रूयुरतिवाद्यसीति । बाढमतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत । कस्माद्ध्यसावपह्नुवीत । यत्प्राणं सर्वेश्वरमयमहमस्मीत्यात्मत्वेनोपगतः ॥४॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

मित्थं व्युत्पाद्य तद्विज्ञानफलमाह—स वा इति । प्राणविदतिवादी भवतीति संबन्धः । कथं प्राणवित्त्वमित्यपेक्षायामाह—एवमिति । सर्वात्मत्वं यथोक्तप्रकारः फलतोऽनुभवः स्वरूपत्वेन साक्षात्कारः । तदनुदर्शनेनैव प्राणवित्त्वे सिध्यति सति किमिति मननविज्ञाने पृथगुपन्यस्येते तत्राऽऽह—मननविज्ञानाभ्यां हीति । उक्तान्वयव्यतिरेकाख्योपपत्तिसहकृताद्वाक्याद्यत्प्राणविषयं ज्ञानं जायते तदत्र विज्ञानं विवक्ष्यते । [1]तत्फलसाक्षात्करणं दर्शनमिति भेदः । मननविज्ञाने विना दर्शनासंभवोऽतःशब्दार्थः । एवं मननादिद्वारेणेति यावत् । अतिवादित्वं व्युत्पादयति—नामादीति । नापह्नुवीतेत्युक्तं व्यक्ती करोति—कस्मादिति । यद्यस्मादयं विद्वानात्मत्वेन सर्वेश्वरं प्राणोऽस्मीत्युपगतवांस्तस्मादपह्नवे हेत्वभावादात्मनोऽतिवादित्वं नापह्नुवीतेति(त्यर्थः) ॥४॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥१५॥

आदि कहते हैं, वह प्राण ही है ॥ ३ ॥

इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि इन पिता आदि एवं नाम से आशा पर्यन्त सभी जड़ चेतन पदार्थों में प्राण ही है । प्राणोपासक को चाहिए कि पूर्वोक्त मन्त्रों में प्रतिपादित फल का अनुभव करके, युक्तियों के द्वारा उसका चिन्तन कर, उपपत्तियों से मन लगाकर निश्चय करले क्योंकि मनन और विज्ञान द्वारा निकला हुआ शास्त्र का अर्थ निश्चित साक्षात्कार किया हुआ होता है । इस प्रकार प्राणों की महिमा का साक्षात्कार कर नाम से लेकर आशा पर्यन्त सभी पदार्थों को लाँघकर वदनशील हो जाता है । ऐसा भी हो सकता है कि उसे कुछ लोग वृथा ही ज्यादा बोलने वाला कहें क्योंकि वह तो सदा ही सभी प्रयुक्त शब्दों में नाम से लेकर आशा पर्यन्त कुछ भी पदार्थ न देखकर प्राण को ही

---

१. तत्फलरूपं साक्षात्करणमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ।)

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

सत्य ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) परमार्थ सत्य आत्मा के विज्ञान से जो अतिवदन करता है वही वास्तव में अतिवादी होता है। (नारद ने कहा—) भगवन्! (आपकी शरणापन्न हुआ) मैं तो परमार्थ सत्य वस्तु के विज्ञान से ही अतिवदन करता हूँ। (सनत्कुमार ने कहा—) तब तो सत्य को ही विशेषरूप से जिज्ञासा तुझे करनी चाहिए। (नारद ने कहा—) भगवन्! मैं विशेषरूप में आपके द्वारा सत्य को ही जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इति षोडशः खण्डः ॥

स एष नारदः सर्वातिशयं प्राणं स्वमात्मानं सर्वात्मानं श्रुत्वा नातः परमस्तीत्युपरराम। न पूर्ववत्किमस्ति भगवः प्राणाद्भूय इति पप्रच्छ यतस्तमेवं विकारानृतब्रह्मविज्ञानेन परितुष्टमकृतार्थं परमार्थसत्यातिवादिनमात्मानं मन्यमानं योग्यं शिष्यं मिथ्याग्रहविशेषाद्विप्रच्यावयन्नाह भगवान्सनत्कुमारः। एष तु वा अतिवदति यमहं

अत्र प्राणान्तमुपदेशं श्रुत्वा नारदस्य तूष्णींभावे किं कारणमित्याशङ्कायामाह—स एष इति। कथं तस्योपरतिरवगतेत्याशङ्क्याऽऽह—न पूर्ववदिति। किमिति तर्हि प्राप्तायामुपेक्षायां स्वयमेवाऽऽचार्यो व्युत्पादयतीत्याशङ्क्याऽऽह—तमेवमिति। एतस्माज्जायते प्राण इति श्रुत्यन्तरात्प्राणस्य विकारत्वेनानृतत्वं वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमित्युक्तम्। तस्मिन्ननृते प्राणे ब्रह्मणि विज्ञानं तेनेति यावत्। परितुष्टत्वे कथमकृतार्थत्वमित्याशङ्क्य मिथ्याज्ञानशालित्वादित्याह—परमार्थेति। न च तस्योपेक्षाऽर्हत्वमित्याह—योग्यमिति। मिथ्याग्रहविशेषो नास्ति प्राणात्परमित्यभिमानः। कथं तर्हि प्राणविदोऽति-

---

विद्यमान कहता है। इस प्राणदर्शी को "ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त जगत की आत्मा मैं प्राण ही हूँ" ऐसी साक्षात् अनुभूति होती है। उन लोगों की आशंका के उत्तर में उसे उनका खण्डन नहीं करते हुए कहना चाहिए, हाँ! ठीक है, मैं अतिवादी हूँ। जब उसे सर्वेश्वरमय प्राण की आत्मा रूप से उपलब्धि हो गई तो वह उनकी सही बात का खण्डन क्यों करेगा ॥ ४ ॥

(प्राण तक उपदेश करने पर नारद जी चुप शान्त हो गए, इसे बतलाया जाता है—) सर्वश्रेष्ठ प्राण को अपनी एवं सबकी आत्मा सुनकर नारद जी ने विचार किया कि अब इससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है इसलिए पुनः प्रश्न करने से विरत हो गए। पहले की तरह "हे भगवन्! क्या प्राण से भी श्रेष्ठ कुछ है" ऐसा प्रश्न नहीं पूछा। (शिष्य की कृतार्थता जानकर स्वयं कहते हैं—) "इससे प्राण उत्पन्न होता है' इस श्रुतिवचन से प्राण विकारयुक्त एवं "बाकी सब वाणी का विकार है, मूल कारण

---

१. आचार्यकर्तृकायाम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ।)

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं

विज्ञान ही ज्ञातव्य है

निश्चय ही जब पुरुष परमार्थ सत्य को विशेषरूप से जान लेता है तभी वह (मिथ्या विकार

वक्ष्यामि न प्राणविदतिवादी परमार्थतः । नामाद्यपेक्षं तु तस्यातिवादित्वम् । यस्तु भूमाख्यं सर्वातिक्रान्तं तत्त्वं परमार्थसत्यं वेद सोऽतिवादीत्यत आह—एष तु वा अतिवदति यः सत्येन परमार्थसत्यविज्ञानवत्तयाऽतिवदति । सोऽहं त्वां प्रपन्नो भगवन्सत्येनातिवदानि । तथा मां नियुनक्तु भगवान्यथाऽहं सत्येनातिवदानीत्यभिप्रायः । यद्येवं सत्येनातिवदितुमिच्छसि सत्यमेव तु तावद्विजिज्ञासितव्यमित्युक्त आह नारदः । तथाऽस्तु तर्हि सत्यं भगवो विजिज्ञासे विशेषेण ज्ञातुमिच्छेयं त्वत्तोऽहमिति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

यदा वै सत्यं परमार्थतो विजानातीदं परमार्थतः सत्यमिति, ततोऽनृतं

वादित्वमुक्तं तत्राऽऽह—नामादीति । कस्तर्हि परमार्थतोऽतिवादीत्याशङ्क्याऽऽह—यस्त्वति । सोऽतिवादीति यतः सनत्कुमारस्याभिप्रायोऽत एवाऽऽहेति योजना । ननु नारदस्य नाद्यापि सत्यविज्ञानमुत्पन्नं कथं सत्येनातिवदानीति पृच्छति तत्राऽऽह—तथेति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य षोडशः खण्डः ॥१६॥

यदा वै विजानातीत्यादिवाक्यं व्याकुर्वन्नुत्तरमाह—यदेति । यदि विश्वं सद्रूपादनुगताद्भिन्नमसदेव स्याद्यदि त्वभिन्नं सन्मात्रमेव परमार्थसत्यं सिध्येदिति परमार्थतः सत्यं यदैव विजानातीत्यर्थः । विज्ञानप्रकारमभिनयति—इदमिति । ततस्तदाऽनृतं विकारजातं हित्वा सदेव सत्यमिति कृत्वा यद्वदति

मृत्तिका ही सत्य है" इस श्रुति वाक्य से अमृत प्राण में ब्रह्म भावना से सन्तुष्ट अकृतार्थ परमाथ तत्त्व प्राण को अपनी आत्मा मानने वाले अतिवादी योग्य शिष्य का "प्राण से परे कुछ नहीं है" ऐसे मिथ्याग्रह विशेष को छुड़ाने के लिए भगवान्सनत्कुमार जी नारद से बोले। पारमार्थिक दृष्टि से प्राणवेत्ता अतिवादी नहीं है, अतिवादी वह है जिसके विषय में मैं आगे कहूँगा। प्राणवेत्ता का जो अतिवादी होना कहा गया है, वह नाम आदि की अपेक्षा से है। वस्तुतः अतिवादी तो वह है, जो भूमा तत्त्व को सर्वोत्कृष्ट तत्त्व एवं पारमार्थिक दृष्टि से सत्य मानता है, इसी को श्रुतिमुख से कहते हैं। वही सचमुच अतिवादी है जो परमार्थ सत्य विज्ञान रूप से उसके विषय में वदनशील होता है। हे भगवन् ! मैं आपकी शरणागत शिष्य हूँ मैं ब्रह्मविज्ञान से ही अतिवादी होना चाहता हूँ। मुझे ऐसा मार्गदर्शन करें, जिससे मैं पारमार्थिक सत्य ब्रह्मज्ञान के द्वारा अतिवादी बन जाऊँ। यदि तू पारमार्थिक सत्य द्वारा अतिवादी होना चाहता है तो तुझे सत्य ब्रह्म तत्त्व को भली प्रकार जानना चाहिए। सनत्कुमार जी के इस प्रकार कहे जाने पर नारद बोले—ऐसा ही कीजिए। हे भगवन् ! सत्य को ही विशेषरूप से जानना चाहता हूँ। अपना शिष्य जानकर मुझे उपदेश कीजिए ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥ १७ ॥

जात के भीतर विद्यमान) सत्य को कहता है। बिना जाने सत्य नहीं बोलता, किन्तु विशेषरूप से जानता हुआ ही सत्य का वर्णन करता है। अतः (सत्य की अपेक्षा भी श्रेष्ठ) विज्ञान को ही विशेषरूप से जिज्ञासा करनी चाहिए। (नारद ने कहा—) भगवन्! आपके द्वारा विज्ञान को मैं विशेषरूप से जानना चाहता हूँ, इस प्रकार सत्य से लेकर अग्रिम बाइसवें मन्त्र के "करोति" पर्यन्त उत्तरोत्तर पदार्थों को पूर्व-पूर्व पदार्थों का कारण समझना चाहिए॥ १ ॥

॥ इति सप्तदशः खण्डः ॥

विकारजातं वाचारम्भणं हित्वा सर्वविकारावस्थं सदेवैकं सत्यमिति तदेवाथ वदति यद्वदति। ननु विकारोऽपि सत्यमेव। [1]नामरूपे सत्यं ताभ्यामयं प्राणश्छन्नः। "[2]प्राणा वै सत्यं [3]तेषामेष[4] सत्यम्" इति श्रुत्यन्तरात्। सत्यमुक्तं सत्यत्वं श्रुत्यन्तरे विकारस्य न तु परमार्थापेक्षमुक्तं किं तर्हीन्द्रियविषयाविषयत्वापेक्षं सच्च त्यच्चेति सत्यमित्युक्तं तद्द्वारेण

तत्तदेव वदतीति योजना। सत्यविज्ञानस्य तद्वदनं प्रति हेतुत्वद्योतनार्थोऽथशब्दः। श्रुत्यन्तरावष्टम्भेन [5]भेदाभेदवादी शङ्कते—नन्विति। किं बृहदारण्यकश्रुत्या विकारस्य सत्यत्वमुक्तमित्येतावन्मात्रमुच्यते किंवा परमार्थसत्यत्वमिति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति। द्वितीयं दूषयति—न त्विति। भेदाभेदयोर्विरोधादेको[6]पाधावयोगाद्विकारस्य च रज्जुसर्पवन्मिथ्यात्वानुमानादत्यन्ताबाध्यत्वाभिप्रायेण सत्यत्वं श्रुत्यन्तरेणैवोक्तमित्यर्थः। कथं तर्हि प्राणादिषु सत्यत्वमुक्तमित्याशङ्क्याङ्गीकारं स्फोरयति—किं तर्हीति। इन्द्रियजनितसद्बुद्धिविषयत्वापेक्षं भूतत्रयं सदित्युच्यते। तदविषयत्वापेक्षं भूतद्वयं त्यदिति व्यवह्रियते। तथा च भूतपञ्चकं सच्च त्यच्चेति व्युत्पाद्य सत्यमिति यथोक्तं तथा तद्बीजभूतयोर्नामरूपयोस्तदात्मकत्वाच्च प्राणानां सत्यत्वं व्यावहारिकमिष्टमित्यर्थः। इतश्च प्राणादिषु मिथ्याभूतेष्वपि सत्यश्रुतिरविरुद्धेत्याह—तद्द्वारेणेति। प्राणादीनां व्यावहारिकसत्यत्वानुवादद्वारेणा-

---

जब परमार्थ सत्य को भली भाँति जान लेता है कि यह पारमार्थिक सत्य है तो मिथ्या विकार समूह जो केवल वाणी का विकार है, उसे छोड़कर सब विकारों में मूलभूत सत् ही एक मात्र सत्य है ऐसा जानकर जो कुछ बोलता है, केवल वही बोलता है। (इस पर भेदाभेदवादी शङ्का करता है—) क्यों जी विकार वस्तु भी तो परमार्थतः सत्य है क्योंकि नाम और रूप सत्य हैं, उन्हीं से यह प्राण आवृत है। इसे ही एक अन्य श्रुति कहती है—"प्राण ही सत्य है उनमें यह सत्य है"। बृहदारण्यक श्रुति को स्वीकार करते हुए कहते हैं—) अन्यत्र श्रुति में जो विकार की सत्यता दर्शायी गई है, वह पारमार्थिक दृष्टि की अपेक्षा से नहीं है। तो क्या है? इसे कहते है—वहाँ इन्द्रियजनित बुद्धि विषय

---

१. बृ० उ० १।६।३। २. बृ० उ० २।१।२०। ३. बृ० उ० २।३।६। ४. एष परमात्मा। ५. भेदाभेदवादीति—नामरूपे सदभिन्नाभिन्ने इति वदनशीलः सर्वसङ्करवादीत्यर्थः। ६. एकोपाधावेकाधिकरणे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

च परमार्थसत्यस्योपलब्धिर्विवक्षितेति। प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यमिति चोक्तम्। इहापि तदिष्टमेव। इह तु प्राणविषयात्परमार्थसत्यविज्ञानाभिमानाद्व्युत्थाप्य नारदं यत्सदेव सत्यं परमार्थतो भूमाख्यं तद्विज्ञापयिष्यामीत्येष विशेषतो विवक्षितोऽर्थः। नाविजानन्सत्यं वदति यस्त्वविजानन्वदति सोऽग्न्यादिशब्देनाग्न्यादीन्परमार्थसद्रूपा-न्मन्यमानो वदति न तु ते रूपत्रयव्यतिरेकेण परमार्थतः सन्ति। तथा तान्यपि रूपाणि सदपेक्षया नैव सन्तीत्यतो नाविजानन्सत्यं वदति। विजानन्नेव सत्यं वदति। न च तत्सत्यविज्ञानमविजिज्ञासितमप्रार्थितं ज्ञायत इत्याह—विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासित-व्यमिति। यद्येवं विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति। एवं सत्यादीनां चोत्तरोत्तराणां

ध्यारोपापवादन्यायेन परमार्थसत्यस्य ब्रह्मणोऽवगतिर्विवक्षितेति कृत्वा तेष्वपि सत्यत्वश्रुतिरविरु-द्धेत्यर्थः। यथोक्तोऽर्थो विवक्षितो बृहदारण्यकश्रुतावित्यत्र गमकमाह—प्राणा वा इति। ननु श्रुत्य-न्तरे विकारस्यापि व्यावहारिकं सत्यत्वमिष्टं प्रकृते तु न तदिष्यते भूम्न एव सत्यत्वाङ्गीकारात्तथा च विरोधतादवस्थ्यमत आह—इहापीति। यदि प्राणस्यापि व्यवहारतः सत्यत्वमुपगतं किं तर्हि सनत्कु-मारस्य विवक्षितमित्याशङ्क्याऽऽह—इह त्विति। यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदतीति यद्व्याख्यातं तदन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्फुटयन्नादौ व्यतिरेकमाह—नाविजानन्निति। परमार्थसत्यमविजानन्नपि वदत्य-ग्न्यादीनित्याशङ्क्याऽऽह—यस्त्विति। तर्हि कथं सदेव परमार्थसत्यमिति वदतोऽभीष्टसिद्धिरित्या-शङ्क्याऽऽह—न त्विति। तान्येव तर्हि रूपाणि पृथग्विद्यन्ते नेत्याह—तथेति। अतोऽस्य नास्ति सत्य-वादित्वं किंत्वसत्यवादित्वमेवेत्युपसंहरति—इत्यत इति। व्यतिरेकं दर्शयित्वाऽन्वयमन्वाचष्टे—विजानन्नेवेति। अस्तु तर्हि सत्यविज्ञानपूर्वकमतिवादित्वमित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति। यद्येवं जिज्ञासा-द्वारा सत्यविज्ञानं ज्ञेयमित्येवमिष्टं चेदित्यर्थः। सत्यवदनं प्रति सत्यविज्ञानस्य यथा कारणत्वमुक्तं तथा पूर्वस्य पूर्वस्योत्तरमुत्तरं कारणत्वेन द्रष्टव्यमित्यतिदिशति—एवमिति॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः॥१७॥

की अपेक्षा तीनों भूतों को वहाँ सत् कहा है, उनके विषय की अपेक्षा से दो भूत 'त्यत्' से कहे हैं। पाँच भूतों को सत् और 'त्यत्' कहकर व्यावहारिक दृष्टि से प्राण को सत्य कहा है। (इसमें श्रुति विरोध नहीं होगा क्योंकि) व्यावहारिक सत्य के अनुवाद द्वार से अध्यारोप अपवाद न्याय से परमार्थ सत्य ब्रह्मज्ञान को जानना इष्ट है, इसी से कहा है प्राण सत्य हैं, उनमें यह सत्य है। वहाँ भी वह श्रुति इष्ट ही है। यहाँ तो प्राण में पारमार्थिक सत्य विज्ञान की भावना के अभिमान से ऊपर उठाकर नारद को यह बतलाऊँगा कि भूमासंज्ञक परमार्थ सत्य ही आत्यन्तिक सत्य है, यही इस मन्त्र का विशिष्ट अर्थ है। (व्यतिरेक मुख से कहते हैं—) सत्य को न जानता हुआ पारमार्थिक सत्य को किसी प्रकार भी नहीं कह सकता है। जो सत् को सम्यक् जानकर कहता है, वह अग्न्यादिशब्द से व्यावहारिक दृष्टि से अग्नि आदि की सत्यता मानता हुआ कहता है वस्तुतः वे रूपत्रय भिन्न पार-मार्थिक दृष्टि से नहीं है। इसी प्रकार वे रूप भी सत् की अपेक्षा से नहीं हैं अतः बिना जाने सत्य का भाषण नहीं हो सकता; साक्षात् अनुभूति कर ही सत्य को कह सकता है। ऐसे तो सत्य विज्ञान को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ।)

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति मतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

(अथ सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः ।)

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति श्रद्धां भगवो

मति ही जानने योग्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) जब पुरुष मनन करता है तभी वह विशेष रूप से जानता है। मनन किये बिना कोई भी किसी वस्तु को विशेषरूप से नहीं जानता किन्तु मनन करके ही जानता है। अतः मनन की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करो, (नारद ने कहा—) भगवन्! मैं मति को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इत्यष्टादशः खण्डः ॥

श्रद्धा ही जानने योग्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) जब मनुष्य आस्तिक्य बुद्धिरूप श्रद्धा करता है, तभी वह मनन करता है। श्रद्धा किये बिना कोई भी किसी वस्तु का मनन नहीं करता किन्तु श्रद्धालु ही मनन करता

करोत्यन्तानां पूर्वपूर्वहेतुत्वं व्याख्येयम् ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य सप्तदशः खण्डः ॥१७॥

यदा वै मनुत इति। मतिर्मननं तर्को मन्तव्यविषय आदरः ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः ॥१८॥

विज्ञानकारणीभूतां मतिं व्याचष्टे—मतिरिति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायष्टादशः खण्डः ॥१८॥

न जानना अभीष्ट नहीं लगेगा। ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि श्रुति कहती है कि उस ब्रह्म विज्ञान को भली भाँति जानना चाहिए। तब नारद ने भगवान् सनत्कुमार से कहा—हे भगवन्! मैं उस विज्ञान को जानना चाहता हूँ। सत्यवदन के प्रति जिस प्रकार सत्यविज्ञान कारण है, इसी प्रकार पूर्व-पूर्व के प्रति उत्तर-उत्तर कारण है, ऐसी व्याख्या समझ लेनी चाहिए ॥ १ ॥

जब कोई निश्चय करके मनन करता है तब सत्य तत्त्व को जानता है। विज्ञान में कारणीभूत मति मनन ही है मन्तव्य विषय में आदर तर्क है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ।)

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्दधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥

है। अतः तुझे श्रद्धा को ही विशेष रूप से जानना चाहिए । (नारद ने कहा—) भगवन् ! तब तो मैं श्रद्धा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इत्येकोनविंशः खण्डः ॥

निष्ठा ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) जब पुरुष में भी गुरु-शुश्रूषादिरूप निष्ठा होती है तभी वह श्रद्धा करता है। निष्ठा के बिना कोई भी पुरुष किसी के प्रति श्रद्धा नहीं करता, किन्तु निष्ठावान् ही श्रद्धा करता है। अतः तुम निष्ठा की ही विशेष रूप से जानने की इच्छा करो । (नारद ने कहा–) भगवन् ! तब तो मैं आपके द्वारा निष्ठा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इति विंशः खण्डः ॥

आस्तिक्यबुद्धिः श्रद्धा ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः ॥१९॥

निष्ठा गुरुशुश्रूषादिस्तत्परत्वं ब्रह्मविज्ञानाय ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ॥२०॥

मननहेतुभूतां श्रद्धां व्याकरोति—आस्तिक्येति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकोनविंशतितमः खण्डः ॥१९॥

श्रद्धाहेतुं निष्ठां व्याचष्टे—निष्ठेति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य विंशतितमः खण्डः ॥२०॥

इस लोक और परलोक में विश्वास रखने वाली बुद्धि ही श्रद्धा है ॥ १ ॥

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव की सेवा आदि करना निष्ठा है। श्री गुरुदेव को ब्रह्मविज्ञान प्राप्ति के लिए सर्वं समर्पण करना चाहिए ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः।)

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति कृतिं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥ २१ ॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः।)

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति

कृति ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) जिस समय पुरुष (इन्द्रिय संयम और चित्त की एकाग्रतारूप) कृति करता है, उस समय वह निष्ठा भी करने लग जाता है। बिना कुछ किये कहीं पर किसी को निष्ठा नहीं होती। कुछ करने पर ही मनुष्य निष्ठावान् होता है। अतः कृति की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करो (नारद ने कहा—) भगवन्! मैं आपके द्वारा कृति को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इत्येकविंशः खण्डः ॥

सुख ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा—) जिस समय मनुष्य को सुख मिलता है, उसी समय वह कुछ करता

यदा वै करोति। कृतिरिन्द्रियसंयमश्चित्तैकाग्रताकरणं च। सत्यां हि तस्यां निष्ठादीनि यथोक्तानि भवन्ति विज्ञानावसानानि ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

साऽपि कृतिर्यदा सुखं लभते सुखं निरतिशयं वक्ष्यमाणं लब्धव्यं मयेति मन्यते

निष्ठानिदानं कृतिं विभजते—कृतिरिति। कथं पुनरेतेषामुत्तरमुत्तरं पूर्वस्य पूर्वस्य कारणं भवति तत्राऽऽह—सत्यां हीति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्डः ॥२१॥

कृतिस्तर्हि कुतो भवतीति तत्राऽऽह—साऽपीति। यदा सुखं लभते तदा भवतीति संबन्धः। ननु सुखलाभस्येन्द्रियसंयमादिव्यतिरेकेणाभावात्कथं सुखलाभाधीना कृतिरित्याशङ्क्याऽऽह—सुखमिति।

मन्त्र में "जब वह करता है" से अभिप्राय है इन्द्रिय संयम तथा चित्त की एकाग्रता को करना। उसके होने पर निष्ठा से लेकर विज्ञान पर्यन्त उत्तर-उत्तर के प्रति पूर्व-पूर्व कारण होते हैं ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्य-मिति सुखं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥ २२ ॥

है। सुख मिले बिना कोई भी कुछ करता नहीं, किन्तु सुख मिलने पर ही करता है। अतः तुझे सुख की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए (नारद ने कहा—) भगवन् ! तब तो मैं सुख को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ॥ १ ॥

॥ इति द्वाविंशः खण्डः ॥

तदा भवतीत्यर्थः। यथा दृष्टफलसुखा कृतिस्तथेहापि नासुखं लब्ध्वा करोति। भविष्यदपि फलं लब्ध्वेत्युच्यते। तदुद्दिश्य प्रवृत्त्युपपत्तेः। अथेदानीं कृत्यादिषूत्तरोत्तरेषु सत्सु सत्यं स्वयमेव प्रतिभासत इति न तद्विज्ञानाय पृथग्यत्नः कार्य इति प्राप्तं तत इदमुच्यते सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमित्यादि। सुखं भगवो विजिज्ञास इत्यभिमुखीभूतायाऽऽह ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

वक्ष्यमाणसुखलब्धकत्वाभिमानादेव यथोक्ता कृतिः सिध्यतीत्यर्थः। सुखं लब्ध्वा करोतीत्येतद्दृष्टान्तेन साधयति—यथेति। दृष्टं फलं पुत्रपश्वादि तज्जन्यसुखोद्देशपूर्विका लोके कृतिर्दृष्टा तथाऽऽत्मन्यपि सुखं लब्ध्वैव करोति न तु विना तदुद्देशमित्यर्थः। नन्विन्द्रियाणां मनसश्च संयमपूर्वकं सुखं भवति तथा च कथं तल्लब्ध्वा करोतीत्युच्यते तत्राऽऽह—भविष्यदपीति। उत्तरग्रन्थमाकाङ्क्षापूर्वकमुत्थापयति—अथेत्यादिना ।१॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ॥२२॥

(इन्द्रिय संयम और चित्त की एकाग्रता के लिए अनुष्ठान हेतु प्रेरणा कैसे मिलती है, इस पर कहते हैं—) 'जिस निरतिशय सुख की मुझे चाहना है वह निश्चय ही प्राप्त होगा' इस प्रकार जब मान लेता है तभी वह क्रिया हो पाती है। इसी को दृष्टान्त मुख से कहते हैं—) जैसे लोक व्यवहार में दृष्टफल वाले पुत्र-पशु आदि के लिए कर्म उनसे प्राप्त होने वाले सुख को लेकर होती है, इसी प्रकार यहाँ भी यदि आत्मा में सुखानुभूति न होगी तो इन्द्रियसंयम, चित्तैकाग्रता रूप अनुष्ठान भी नहीं होगा। आगे होने वाले सुख को पाकर भी कर्म होता है क्योंकि उसके उद्देश्य से कर्म में प्रवृत्ति होना युक्ति संगत है। (मन्त्र के अग्रिम भाग में हेतु कहते है—) कृत्य आदि के उत्तर-उत्तर में होने पर तत्र सत्य तो स्वयं ही प्रतिभासित होगा उसे जानने के लिए अलग में प्रयत्न करने की क्या आवश्यकता है; ऐसी प्राप्ति न हो जाए, अतः श्रुति कहती है। सुख ही अच्छी प्रकार से जानने योग्य है। 'मुझे उस सुख को जानने की इच्छा है' शरणागत नारद जी के द्वारा यह पूछने पर भगवान् सनत्कुमार ने कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ।)

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति ॥ १ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥ २३ ॥

(अथ सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।)

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स

भूमा ही ज्ञातव्य है

(सनत्कुमार ने कहा–) निश्चय ही जो भूमा (महान्) है वही सुख रूप है । अतिशय एवं अल्प में सुख नहीं है भूमा ही सुख रूप है । अतः तुझे भूमा की ही विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिये (नारद ने कहा—)भगवन् ! तब तो मैं आपके द्वारा भूमा को ही विशेष रूप से जानना चाहता हूँ ।१॥

॥इति त्रयोविंशः खण्डः॥

भूमा के स्वरूप का वर्णन

(सनत्कुमार ने कहा—) जिस समय भूमा तत्त्व में द्रष्टा किसी भी अन्य दृश्य को देखता नहीं,

---

यो वै भूमा महन्निरतिशयं बह्विति पर्यायास्तत्सुखम् । ततोऽर्वाक्सातिशयत्वादल्पम् । अतस्तस्मिन्नल्पे सुखं नास्ति । अल्पस्याधिकतृष्णाहेतुत्वात् । तृष्णा च दुःखबीजम् । न हि दुःखबीजं सुखं दृष्टं ज्वरादि लोके । तस्माद्युक्तं नाल्पे सुखमस्तीति । अतो भूमैव सुखम् । तृष्णादिदुःखबीजत्वासंभवादभूम्नः ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

भूम्नोऽर्वागपि वैषयिकं सुखमस्तीत्याशङ्क्याऽऽह—ततोऽर्वागिति । कथमल्पत्वेऽपि सुखत्वं वार्यते तत्राऽऽह—अल्पस्येति । दुःखरूपां तृष्णां प्रत्यल्पस्य सुखस्य हेतुत्वेऽपि कथं स्वयं सुखं न भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—न हीति । अल्पस्य सुखस्य दुःखान्तर्भावे सिद्धे फलितमाह—अत इति ॥१॥

इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः ॥२३॥

महान् निरतिशय अधिक का पर्याय जो 'भूमा' है वही वह सुख है । भूमा से भिन्न वैषयिक सुख सातिशय होने के कारण अल्प है । इसलिए उस (अपूर्ण) अल्प में सुख नहीं है । अल्प अधिक तृष्णा हेतुक है । दुःख का बीज ही तृष्णा है । दुःख की बीज तृष्णा संसार में ज्वरादि को दे सकती है, सुख को नहीं । अतः भूमा ही सुख है (अल्प सुख तो दुःख ही है) । भूमा में तृष्णा व दुःख बीज संभव नहीं है ॥ १ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूमाऽथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यꣳ स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति ॥ १ ॥

अन्य किसी को सुनता नहीं और न अन्य किसी को जानता है; वह भूमा है; किन्तु जहाँ पर द्रष्टा अपने से भिन्न वस्तु को देखता है, अन्य को सुनता है एवं अन्य को जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है (नारद ने कहा—) भगवन्। वह भूमा किसमें प्रतिष्ठित है? (सनत्कुमार ने कहा—) भूमा अपनी महिमा में प्रतिष्ठित है अर्थात् भूमा किसी के आश्रित नहीं है ॥ १ ॥

किंलक्षणोऽसौ भूमेत्याह—यत्र यस्मिन्भूम्नि तत्त्वे नान्यद्द्रष्टव्यमन्येन करणेन द्रष्टाऽन्यो विभक्तो दृश्यात्पश्यति तथा नान्यच्छृणोति। नामरूपयोरेवान्तर्भावाद्विषयभेदस्य तद्ग्राहकयोरेवेह दर्शनश्रवणयोर्ग्रहणमन्येषां चोपलक्षणार्थत्वेन। मननं त्वत्रोक्तं द्रष्टव्यं नान्यन्मनुत इति। प्रायशो मननपूर्वकत्वाद्विज्ञानस्य। तथा नान्यद्विजानाति। एवं लक्षणो यः स भूमा। किमत्र प्रसिद्धान्यदर्शनाभावो भूम्न्युच्यते नान्यत्पश्यतीत्यादिना। अथान्यन्न पश्यत्यात्मानं पश्यतीत्येतत्। किंचातः। यद्यन्यदर्शनाद्यभावमात्र-

---

भूम्नः सविशेषत्वं निर्विशेषत्वं वेतिप्रश्नपूर्वकं निर्विशेषत्वं निर्धारयति—किमित्यादिना। नान्यच्छृणोति स भूमेति संबन्धः। किमिति स्पर्शनादिष्वपि सत्सु दर्शनश्रवणयोरेव निषेध्यत्वेनात्र ग्रहणमित्याशङ्क्याऽऽह—नामेति। अनुक्तानां स्पर्शादीनामुपलक्षणार्थत्वेनात्र द्वयोर्ग्रहणं स्पर्शनाद्यविषयत्वस्यापि भूम्नि भावादित्याह—अन्येषामिति। अत्रेति लक्षणवाक्योक्तिः। तत्र हेतुमाह—प्रायश इति। यस्मिन्नधिकरणे तत्त्वविचारणायामन्योऽन्यं न पश्यति न शृणोति न मनुते न विजानाति स भूमेति द्रष्टृदृश्याविविकल्पनिषेधेनाध्यासाधिकरणत्वोपलक्षितस्य विकल्पाविषयत्वमेव भूमलक्षणमित्युपसंहरति—एवमिति। उक्तमेव लक्षणं स्फुटयितुं विमृशति—किमत्रेति लोकप्रसिद्धदर्शनादिविषयत्वाभावमात्रं भूम्नो लक्षणं तन्निषेधेन स्वज्ञेयत्वं वेति विमर्शार्थः। कस्मिन्पक्षे को लाभः को वा दोष इति शिष्यः पृच्छति—

भूमा का कैसा स्वरूप है, सविशेष अथवा निर्विशेष? ऐसी शङ्का होने पर निर्विशेष की पुष्टि करते हुए कहते हैं—जिस भूमा तत्त्व में अन्य वस्तु को नहीं देखता है, न ही अन्य वस्तु का श्रवण करता है। अन्य इन्द्रिय के द्वारा द्रष्टव्य विषय को द्रष्टा दृश्य से दूसरा विभक्त देखता है। यहाँ दर्शन श्रवण का ग्रहण नाम-रूप में ही आ जाता है। विषय के भेद से ही उसके ग्राहक भिन्न होते हैं, अन्य स्पर्शादि विषयों का यह उपलक्षण है। इसी प्रकार उक्त द्रष्टव्य को अन्य रूप से मनन नहीं करता क्योंकि विज्ञान प्रायः मननपूर्वक हुआ करता है। इसी प्रकार उस भूमा तत्त्व में अन्य वस्तु को नहीं जानता है। इस प्रकार भूमा का स्वरूप निर्विशेष है। इस पर शङ्का होती है क्या भूमा लोक प्रसिद्ध दर्शनादि विषय का अभाव मात्र है जैसा कि 'अन्य कुछ नहीं देखता है' श्रुति में कहा है अथवा उसका निषेध कर स्वज्ञेयत्व ही भूमा का लक्षण है अर्थात् और कुछ न देखकर केवल आत्मा को देखता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मित्युच्यते तदा द्वैतसंव्यवहारविलक्षणो भूमेत्युक्तं भवति । अथान्यदर्शनविशेषप्रतिषेधेनाऽऽत्मानं पश्यतीत्युच्यते तदैकस्मिन्नेव क्रियाकारकफलभेदोऽभ्युपगतो भवेत् । यद्येवं को दोषः स्यात् । नन्वयमेव दोषः संसारानिवृत्तिः । क्रियाकारकफलभेदो हि संसार इति । आत्मैकत्व एव क्रियाकारकफलभेदः संसारविलक्षण इति चेत् । न । आत्मनो निर्विशेषैकत्वाभ्युपगमे दर्शनादिक्रियाकारकफलभेदाभ्युपगमस्य शब्दमात्रत्वात् । अन्यदर्शनाद्यभावोक्तिपक्षेऽपि यत्रेत्यन्यन्न पश्यतीति च विशेषणे अनर्थके स्यातामिति चेत् । दृश्यते हि लोके यत्र शून्ये गृहेऽन्यन्न पश्यतीत्युक्ते स्तम्भादीनात्मानं च न न पश्यतीति

किंचात इति । आद्यमनूद्य तत्र लाभं दर्शयति—यदीति । अन्यस्य प्रसिद्धस्य दर्शनादेर्विषयत्वं भूम्नि नास्तीत्येतावन्मात्र तस्य लक्षणमित्युच्यते चेत्सर्वविकल्पातीतः प्रत्यगात्मा भूमेत्यस्मत्पक्षसिद्धिरित्यर्थः । द्वितीयं पक्षमनूद्य तस्मिन्दोषं सूचयति—अथेत्यादिना । तमेव दोषं प्रश्नपूर्वकं स्फुटयति—यद्येवमित्यादिना । सति क्रियाकारकफलभेदे कथं संसारानिवृत्तिस्तत्राऽऽह—क्रियेति । सति भेदे क्रियादेः संसारत्वं लोके दृष्टं तद्वैलक्षण्यादेकस्मिन्नेव क्रियाकारकभावस्य न संसारतेति चोदयति—आत्मैकत्व इति । एकस्मिन्क्रियादिभेदस्यासंभवं दर्शयन्नुत्तरमाह—नाऽऽत्मन इति । द्वितीयपक्षस्य दुष्टत्वे स्पष्टीकृते प्रथमपक्षस्यापि समानं दुष्टत्वमिति शिष्यः शङ्कते—अन्येति । आद्यपक्षेऽपि न पश्यतीत्येतावतैव दर्शनाद्यभावलाभाद्यत्रेत्यन्यदिति च विशेषणे व्यर्थे स्यातामित्यर्थः । व्यर्थमेवेदृशं वचनमित्याशङ्क्य शिष्यः स्वयमेव ब्रूते—दृश्यते हीति । लोके हि यत्र शून्ये गृहे नान्यत्पश्यति तद्देवदत्तीयमिति प्रयोगो दृश्यते न च तस्य नैरर्थक्यमिष्टं व्यवहाराङ्गत्वात् । यथाच तस्मिन्यथोक्ते धनधान्याद्यदर्शनेऽपि स्तम्भादीनूह्य च न न पश्यतीति श्रुतस्य नैरर्थक्यं न गम्यते । किंतु तत्र स्तम्भादीनां तस्य च दर्शनमिष्टं तथा यत्र नान्यत्पश्यतीत्यत्रापि विशेषणवैयर्थ्ये समाधानं वक्तव्यमित्यर्थः । किं विशेषणार्थवत्त्वानुपपत्त्या भूम्न्यधिकरणाधिकर्तव्यभावः स्वात्मदर्शनं च वाच्यमित्युच्यते किं वा श्रुतस्य गतिर्वक्तव्येति पृच्छ्यते तत्रा-

---

दोनों पक्षों की कल्पना में क्या लाभ व क्या हानि है । यदि अन्य वस्तु के दर्शन का अभाव मात्र कहा जाएगा तो सर्वविध द्वैत कल्पना से अतीत भूमा होगा जो हमें इष्ट हैं । दूसरे पक्ष के स्वीकार लेने पर कि अन्य दर्शन विशेष के प्रतिषेध द्वारा केवल आत्म दर्शन में अभिप्राय है, यह दोष आता है कि एक ही तत्त्व में क्रिया, कारक एवं फल का भेद सिद्ध होने लगेगा । यदि ऐसा होता भी है तो इसमें क्या बुराई है । इस दोष के कारण ही संसार की निवृत्ति होना संभव न हो सकेगा । यह संसार का ही स्वरूप है जो क्रिया, कारक फलभेद दृष्टिगोचर होता है । यदि कहो कि एक आत्मा के होने पर क्रिया कारक फल भेद संसारता ही न होगी, ऐसा कहना ठीक नहीं है । (एक होने पर क्रियादि भेद कैसे संभव है) आत्मा के निर्विशेष एवं अद्वितीय स्वीकार कर लेने पर दर्शनादि क्रिया कारक फल भेद की सिद्धि शब्दमात्र ही है । तब तो अन्य दर्शनादि का अभाव रूप उक्ति पक्ष में भी "जिस भूमा तत्त्व में" एवं "अन्य वस्तु नहीं देखता है" ये विशेषण भी व्यर्थ हो जाएँगे । ऐसी आशङ्का होने पर कहते हैं— लोक व्यवहार में भी देखा जाता है 'जहाँ शून्य घर में अन्य कुछ नहीं देखता है' ऐसा कहने पर स्तम्भादि एवं आत्मा को नहीं देखता है ऐसा माना जाता है । यहाँ भी ऐसा मान लेना ठीक नहीं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गम्यते। एवमिहापीति चेत्। न। तत्त्वमसीत्येकत्वोपदेशादधिकरणाधिकर्तव्यभेदानुपपत्तेः। तथा सदेकमेवाद्वितीयं सत्यमिति षष्ठे निर्धारितत्वात्। "अदृश्येऽनात्म्ये" "न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य" "विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" इत्यादिश्रुतिभ्यः स्वात्मनि दर्शनाद्यनुपपत्तिः। यत्रेति विशेषणमनर्थकं प्राप्तमिति चेत्। न। अविद्याकृतभेदापेक्षत्वात्। यथा सत्येकत्वाद्वितीयत्वबुद्धिं प्रकृतामपेक्ष्य सदेकमेवाद्वितीयमिति संख्याद्यनर्हमप्युच्यते। एवं भूम्न्येकस्मिन्नेव यत्रेति विशेषणम्। अविद्यावस्थायामन्यदर्शनानुवादेन च भूम्नस्तदभावत्वलक्षणस्य विवक्षितत्वान्नान्यत्पश्यतीति विशेषणम्। तस्मात्संसारव्यवहारो भूम्नि नास्तीति समुदायार्थः। अथ यत्राविद्याविषयेऽन्योऽन्येनान्यत्पश्यतीति तदल्पमविद्याकालभावीत्यर्थः। यथा स्वप्नदृश्यं वस्तु प्राक् प्रबोधात्तत्कालभावीति तद्वत्। तत एव तन्मर्त्यं विनाशि स्वप्नवस्तुवदेव तद्विपरीतो भूमा यस्तदमृतम्।

ऽद्यं दूषयति—नेत्यादिना। तथा तत्त्वमसीतिवदित्यर्थः। निर्धारितत्वादधिकरणाधिकर्तव्यभेदानुपपत्तिरिति शेषः। यच्चान्यन्न पश्यतीति विशेषणादात्मनः स्वदर्शनं वाच्यमिति तत्राऽऽह—अदृश्य इति। द्वितीयमनूद्य गतिमाह—यत्रेत्यादिना। परिहारभागं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति। एकस्मिन्नेव भूम्नि यत्रेति विशेषणमनर्हमपि प्रयुज्यते प्रसिद्धानुवादेनाधिकरणादिविकल्पाविषयत्वलक्षणस्य भूम्नो लक्षणस्य विवक्षितत्वादित्याह—एवमिति। यदविद्यावस्थमन्यदर्शनादि तदनुवादेन नान्यत्पश्यतीति विशेषणं च भूम्नि न विरुध्यते, दर्शनाद्यविषयत्वलक्षणस्य भूम्नो लक्षणस्य विवक्षितत्वादित्याह—अविद्येति। लक्षणवाक्यार्थमुपसंहरति—तस्मादिति। दर्शनादिसकलसांसारिकव्यवहाराभावोपलक्षितं तत्त्वं भूमेत्यर्थः। अथ यत्रेत्यादिवाक्यं व्याकरोति—अथेति। परिच्छिन्नस्याविद्याकालभावित्वं दृष्टान्तेन विवृणोति—यथेति। तत एव परिच्छिन्नत्वादिति यावत्। कथं तदमृतमिति भूम्नि तच्छब्दप्रयोगस्त-

---

है क्योंकि "तत्त्वमसि" इस श्रुति में एकत्व का उपदेश होने से आधार एवं आधारनिष्ठ वस्तु का भेद सिद्ध नहीं हो सकता। छान्दोग्य उपनिषत् के षष्ठ अध्याय में सत् तत्त्व एक और अद्वितीय है, वही सत्य है ऐसा निश्चय किया गया है। स्वात्मा में दर्शनादि की सिद्धि नहीं होती है इसे श्रुतियों में भी बतलाया गया है यथा" अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन में" "इसका रूप द्वितीयभावापन्न संदृश में नहीं स्थित रहता", "उस विज्ञाता तत्त्व को किसके द्वारा सम्यक् जाना जाए" इत्यादि। मन्त्र में "अन्य नहीं देखता है" "जहाँ" विशेषण लगाना अनर्थक लगता है, ऐसा कहना ठीक नहीं है। वहाँ अविद्याकृत भेद की अपेक्षा से वह विशेषण दिया है। जैसे प्रकृत श्रुति में एकत्व अद्वितीय बुद्धि की अपेक्षा से "सत् एक और अद्वितीय है" इसे संख्यादि के योग्य न होने पर भी विशेषण कहा जाता है। इसी प्रकार एक भूमा में ही "जहाँ" विशेषण दिया गया है। अविद्या अवस्था में अन्य दर्शन के पुनः कथन से दर्शनादि के अभाव वाले भूमा का वर्णन होने से "अन्य वस्तु को नहीं देखता है" यह विशेषण मन्त्र में दिया गया है। सारांश यह है कि संसार का द्वैत व्यवहार भूमा में नहीं है। किन्तु जहाँ अविद्या अवस्था में अन्य अन्य के द्वारा अन्य को देखता है, वह अल्प है क्योंकि ऐसा सब कुछ अविद्यावस्था में ही होता है। जिस प्रकार स्वप्न में देखी गई वस्तु जागने से पूर्व केवल स्वप्न के समय रहती है, इसीप्रकार स्वप्न की वस्तु की तरह अल्प मर्त्य है विनाशशील है, इसके विपरीत जो भूमा है वह अमृतधर्मा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥ २४ ॥

इस लोक में गौ, अश्वादि को महिमा कहते है, हाथी, सोना, दास, भार्या, क्षेत्र और घर, इन्हें भी महिमा कहते हैं। किन्तु मैंऐसा नहीं कहता क्योंकि अन्य पदार्थ ही अन्य में प्रतिष्ठित होता है। मैं तो ऐसा कहता हूँ, ऐसा सनत्कुमार ने कहा ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्विंशः खण्डः ॥

तच्छब्दोऽमृतत्वपरः । स तह्येंवंलक्षणो भूमा हे भगवन्कस्मिन्प्रतिष्ठित इत्युक्तवन्तं नारदं प्रत्याह सनत्कुमारः । स्वे महिम्नीति स्व आत्मीये महिम्नि माहात्म्ये विभूतौ प्रतिष्ठितो भूमा यदि प्रतिष्ठामिच्छसि क्वचिद्यदि वा परमार्थमेव पृच्छसि न महिम्न्यपि प्रतिष्ठित इति ब्रूमः । अप्रतिष्ठितोऽनाश्रितो भूमा क्वचिदपीत्यर्थः॥१॥

यदि स्वमहिम्नि प्रतिष्ठितो भूमा कथं तर्ह्यप्रतिष्ठ उच्यते । शृणु । गोअश्वादीह महिमेत्याचक्षते । गावश्चाश्वाश्च गोअश्वं द्वंद्वैकवद्भावः । सर्वत्र गवाश्वादि महिमेति प्रसिद्धम् । तदाश्रितस्तत्प्रतिष्ठश्चैत्रो भवति यथा नाहमेवं स्वतोऽन्यं महिमानमाश्रितो

आऽऽह—तच्छब्द इति । भूम्नः सुखत्ववचनात्तस्य चाऽऽश्रयं पृच्छति—स तर्हीति । व्यवहारदृष्ट्या प्रश्नो वस्तुदृष्ट्या वेति विकल्प्याऽऽद्यं प्रत्याह—इत्युक्तवन्तमिति । द्वितीयमनूद्य निराकरोति—यदीति ॥१॥

पूर्वापरविरोधमाशङ्क्य परिहरति—यदीत्यादिना । भूम्नः स्वतोऽन्यस्मिन्प्रतिष्ठितत्वाभावो-

---

मन्त्र में 'तत्' शब्द अमृतत्व का बोधक है। नारद जी ने पूछा–हे भगवन् ! इस प्रकार निर्विशेष लक्षण वाला भूमा किसमें प्रतिष्ठित है ? ? भगवान् सनत्कुमार बोले, वह भूमा अपने विभूतियुक्त माहात्म्य में प्रतिष्ठित है। यदि कहीं प्रतिष्ठा की इच्छा करते हो अथवा यदि परमार्थ को ही पूछते हो तो महिमा में प्रतिष्ठित नहीं होता ऐसा भी मन्त्रद्रष्टा कहते हैं। कहीं-कहीं भूमा (ज्ञान क्रिया का कर्ता व विषय न होने से) विभूति से पृथक् अप्रतिष्ठित एवं अनाश्रित भी है ॥१॥

(पूर्व एवं पर श्रुतिभाग में विरोध की आशङ्का का परिहार किया जाता है)—यदि भूमा अपने माहात्म्य में प्रतिष्ठित रहता है तो ऐसा क्यों कहा जाता है कि उसकी कहीं प्रतिष्ठा नहीं है? संसार में जिसके पास गो अश्वादि होते हैं, उसकी महिमा की चर्चा होती है। गो और अश्वों का समाहार रूप गो अश्व में द्वन्द्व समास का एकवद्भाव कर दिया गया है। दूध के लिए गो एवं आवागमन के लिए अश्व के होने से महिमा को सर्वत्र मान्यता दी जाती है। चैत्र, उसके आश्रित होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ।)

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳ सर्वमित्यथातो-ऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चा-दहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳ सर्व-मिति ॥ १ ॥

भूमा की सर्वव्यापकता

वह भूमा ही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दाहिनी ओर है, वही बायीं ओर है, (विशेष क्या कहें—)वही सब कुछ है (उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, जिसमें वह प्रतिष्ठित होवे) अब उसी में अहंकाररूप से उपदेश किया जाता है—मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ, मैं ही दाहिनी ओर हूँ, मैं ही बाँयी ओर हूँ और मैं ही यह सब कुछ हूँ (इस प्रकार द्रष्टा के साथ भूमा का अभेद बतलाया गया है) ॥ १ ॥

भूमा चैत्रवदिति ब्रवीम्यत्र हेतुत्वेनान्यो ह्यन्यस्मिन्प्रतिष्ठित इति व्यवहितेन संबन्धः। किन्त्वेवं ब्रवीमीति होवाच स एवेत्यादि ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

कस्मात्पुनः क्वचिन्न प्रतिष्ठित इत्युच्यते। यस्मात्स एव भूमाऽधस्तान्न तद्व्यति-रेकेणान्यद्विद्यते यस्मिन्प्रतिष्ठितः स्यात्। तथोपरिष्टादित्यादि समानम्। सति भूम्नोऽन्य-स्मिन्भूमा हि प्रतिष्ठितः स्यान्न तु तदस्ति। स एव तु सर्वम्। अतस्तस्मादसौ न क्वचित्प्रतिष्ठितः। यत्र नान्यत्पश्यतीत्यधिकरणाधिकर्तव्यतानिर्देशात्स एवाधस्तादिति

ऽत्रेत्युच्यते तत्रान्यो हीत्यादिवाक्यस्य हेतुत्वेन हेतुना तेन व्यवहितेन नाहमेवं ब्रवीमीत्यस्य संबन्ध इति योजना। कथं तर्हि ब्रवीति भवानित्याशङ्क्याऽऽह—किंत्विति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ॥२४॥

अवतारितमेव वाक्यं प्रश्नपूर्वकमवतार्य व्याचष्टे—कस्मादित्यादिना। उक्तमेवार्थं व्यतिरेक-द्वारा विवृणोति—सतीति। अहंकारात्मत्वोपदेशस्याभिप्रायमाह—यत्रेति। कोऽसावहंकारेणाऽऽदिश्यत

से उनमें उसकी प्रतिष्ठा रहती है। ये वस्तुएँ एक दूसरे के आश्रित रहते हैं, चैत्र की तरह ऐसी महिमा को मैं नहीं कहता हूँ, पारमार्थिक दृष्टि से भूमा पूर्ण होने के कारण कहीं नहीं रहता है। जो अन्य के आश्रय रहता है, वह ही (अल्प होने के कारण) दूसरे में प्रतिष्ठित रहता है मैं तो उस भूमासञ्ज्ञक ब्रह्म की महिमा को कहता हूँ इस प्रकार नारदजी को समझा बुझाकर अग्रिम मन्त्र में 'स एव' से सनत्कुमारजी ने उपदेश किया ॥२॥

वह भूमा कहीं भी प्रतिष्ठित नहीं होता है, इस पर श्रुति कहती है—वह भूमा ही नीचे स्थित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथात आत्मादेश एवाऽऽत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टा-दात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मो-त्तरत आत्मैवेद७ सर्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन

अब आगे शुद्धरूप से ही भूमा का उपदेश किया जाता है। आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दाहिनी ओर है, आत्मा ही बाँयी ओर है (विशेष क्या कहें—) यह सब कुछ आत्मा ही है, वही यह इस प्रकार देखता हुआ, इस प्रकार मनन करता हुआ तथा इस प्रकार विशेषरूप से जानता हुआ आत्मरमणरूप आभ्यन्तर क्रीड़ा देह भिन्न

च परोक्षनिर्देशाद्द्रष्टुर्जीवादन्यो भूमा स्यादित्याशङ्का कस्यचिन्मा भूदित्यथातोऽनन्तर-महंकारादेशोऽहंकारेणाऽऽदिश्यत इत्यहंकारादेशः। द्रष्टुरनन्यत्वदर्शनार्थं भूमैव निर्दिश्य-तेऽहंकारेणाहमेवाधस्तादित्यादिना ॥१॥

अहंकारेण देहादिसंघातोऽप्यादिश्यतेऽविवेकिभिरित्यतस्तदाशङ्का मा भूदित्यथा-नन्तरमात्मादेश आत्मनैव केवलेन सत्स्वरूपेण शुद्धेनाऽऽदिश्यते। आत्मैव सर्वतः सर्वमित्येवमेकमजं सर्वतो व्योमवत्पूर्णमन्यशून्यं पश्यन्स वा एष विद्वान्मननविज्ञानाभ्या-

---

इत्याशङ्क्य प्रयोजनानुवादपूर्वकमाह—द्रष्टुरिति ॥१॥

अहंकारादेशात्पृथगात्मादेशस्य तात्पर्यमाह—अहंकारेणेति। उक्तात्मविज्ञानवतः कृत-कृत्यतामाह—आत्मैवेति। एकमिति सजातीयभेदराहित्यस्योक्तिः। अन्यशून्यमिति विजातीयभेद-

---

है उससे भिन्न तो कुछ भी नहीं है, जिसमें उसे प्रतिष्ठित किया जा सके। इसी प्रकार वह ऊपर भी स्थित है इत्यादि मन्त्र की व्याख्या पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। हाँ, यदि कोई दूसरा भूमा होता, तो इस भूमा की उसमें प्रतिष्ठा हो जाती किन्तु ऐसा द्वैत नहीं है। वही भूमा ही तो सर्वत्र व्याप्त है। इसलिए उसके कहीं भी प्रतिष्ठित होने की गुँजाइश नहीं रह जाती है। एक श्रुति तो "जहाँ अन्य कुछ भी नहीं देखता है" से आधार आधेय भाव का निर्देश करती है, दूसरी ओर श्रुति "वह भूमा ही नीचे ऊपर पीछे आगे दक्षिण उत्तर "सर्वत्र व्याप्त है" से अप्रत्यक्ष निर्देश से द्रष्टा जीवात्मा से भूमा अन्य है, ऐसी शंका किसी को न हो जाए। अतः श्रुति के अग्रिम भाग में अहंकार से आदेश दिया जाता है कि वह भूमा मेरा ही स्वरूप है। द्रष्टा से अभिन्नता प्रदर्शित करने के लिए अहंकार के द्वारा भूमा का ही निर्देश किया जाता है कि "मैं ही नीचे हूँ मैं ही ऊपर हूँ" इत्यादि ॥१॥

देहादिसंघात में भी अविवेकियों द्वारा अहंकार से निर्देश किया जाता है, इस शङ्का से मुक्ति पाने के लिए श्रुति कहती है—यहाँ आत्मा का आदेश है, अद्वितीय सत्स्वरूप शुद्ध आत्मा से ही निर्देश दिया जाता है। आत्मा ही सर्वत्र व्याप्त है। इसप्रकार उस एक, अजन्मा, आकाश के समान सर्वत्र

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति । अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषाꣳ सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ॥ २५ ॥

पदार्थों के साथ बाह्य आत्मक्रीड़ा, मित्रादि के साथ आत्ममिथुन और आत्मानन्द वाला होता रहता है। वह स्वराट् है, सम्पूर्ण लोकों में (प्राणादि पूर्व भूमिकाओं में) उसी की स्वेच्छा गति होती है। पर जो इस प्रकार से नहीं जानते, वे अन्य शासकों के अधीन होने से अन्यराट् हाते हैं और वे नश्वर लोकों को प्राप्त करते हैं। उनकी उक्त सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छागति नहीं होती ॥ २ ॥

॥ इति पञ्चविंशः खण्डः ॥

मात्मरतिरात्मन्येव रती रमणं यस्य सोऽयमात्मरतिः। तथाऽऽत्मक्रीडः। देहमात्रसाधना रतिर्बाह्यसाधना क्रीडा। लोके स्त्रीभिः सखिभिश्च क्रीडतीति दर्शनात्। न तथा विदुषः, किं तर्ह्यात्मविज्ञाननिमित्तमेवोभयं भवतीत्यर्थः। मिथुनं द्वंद्वजनितं सुखं तदपि द्वंद्वनिरपेक्षं यस्य विदुषः। तथाऽऽत्मानन्दः शब्दादिनिमित्त आनन्दोऽविदुषां न तथाऽस्य विदुषः किं तर्ह्यात्मनिमित्तमेव सर्वं सर्वदा सर्वप्रकारेण च। देहजीवितभोगादिनिमित्तबाह्यवस्तुनिरपेक्ष इत्यर्थः। स एवंलक्षणो विद्वाञ्जीवन्नेव स्वाराज्येऽभिषिक्तः पतितेऽपि देहे

शून्यत्वमुच्यते। रतिक्रीडयोरवान्तरभेदं दर्शयति—देहमात्रेति। क्रीडा बाह्यसाधनेत्यत्र लोकसंमतिमाह—लोक इति। देहस्य जीवते च भोगत्यागयोश्च निमित्तं बाह्यवस्तु तत्र सर्वत्र निरपेक्षो यदृच्छालाभेष्वासङ्गवर्जितो विद्वानित्याह—देहेति। जीवन्मुक्तिमुक्त्वा विदेहमुक्तिं दर्शयति—स इति।

पूर्ण, विजातीय भेद से शून्य आत्मा को देखता हुआ वह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् मनन और विज्ञान के द्वारा आत्मा में रति करता है। आत्मा में ही रमण करने वाले को आत्मरति कहते हैं। वह आत्मा में ही क्रीड़ा करता है। (रति और क्रीड़ा के भेद को स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं)—रति देहमात्र की साधना है एवं बाह्य साधना क्रीड़ा है। लोक व्यवहार में भी प्रयोग देखा जाता है कि अमुक कामी स्त्रियों एवं सखियों से क्रीड़ा करता है। विद्वान् के विषय में ऐसा नहीं समझना चाहिए क्योंकि उसकी रति और क्रीड़ा तो आत्म विज्ञान विषयक ही होती है। सामान्यतः स्त्री पुरुष से होने वाले सुख को मिथुन कहते हैं परन्तु मिथुन भी किसी जोड़े की कल्पना की बिना अपेक्षा किए उस विद्वान् को होता है। इसी लोक में प्रसिद्ध शब्दादि विषयों से होने वाले आनन्द तो विषयासक्त विषयी अविद्वान् जन को होता है, इस ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् को सर्वदा सब प्रकार से केवल आत्म विषयक आनन्द ही होता है। देह,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वराडेव भवति। यत एवं भवति तत एव तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। प्राणादिषु पूर्वभूमिषु तत्रास्येति तावन्मात्रपरिच्छिन्नकामचारत्वमुक्तमन्यराजत्वं चार्थप्राप्तं सातिशयत्वाद्यथाप्राप्तस्वाराज्यकामचारत्वानुवादेन तत्तन्निवृत्तिरिहोच्यते स स्वराडित्यादिना। अथ पुनर्येऽन्यथाऽत उक्तदर्शनादन्यथा वैपरीत्येन यथोक्तमेव वा सम्यङ्न विदुस्तेऽन्यराजानो भवन्ति अन्यः परो राजा स्वामी येषां तेऽन्यराजानस्ते। किंच क्षय्यलोकाः क्षय्यो लोको येषां ते क्षय्यलोकाः। भेददर्शनस्याल्पविषयत्वादल्पं च तन्मर्त्यमित्यवोचाम। तस्माद्ये द्वैतदर्शिनस्ते क्षय्यलोकाः स्वदर्शनानुरूप्येणैव भवन्त्यत एव तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ॥२५॥

स्वाराज्यं निमित्तीकृत्य फलान्तरमाह—यत एवमिति। स्वाराज्यसर्वलोककामचारयोस्तात्पर्यमाह—प्राणादिष्विति। यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवतीत्यादिना परिच्छिन्नं परतन्त्रं च पूर्वभूमिषु फलमुक्तमत्र तु परमानन्दप्राप्तौ तद्व्यावृत्तिरुच्यते न तु सोपाधिकं रूपमित्यर्थः। फलप्रदर्शनद्वारेण स्तुत्वा विद्यामविद्वन्निन्दाद्वाराऽपि तां स्तौति—अथेत्यादिना। ते क्षय्यलोका भवन्तीति संबन्धः। भेददर्शिनां विनाशिफलवत्त्वे हेतुमाह—भेददर्शनस्येति। परिच्छिन्नस्य विनाशित्ववचनं तस्मादिति परामृशति ॥२॥

इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ॥२५॥

प्राण भोग और त्याग की निमित्त बाह्यवस्तु से सर्वत्र निरपेक्ष वह विद्वान् जो कुछ अयाचित मिल जाए उसी में सन्तुष्ट एवं आसक्ति से रहित रहता है (वह जीवन्मुक्त हो जाता है)। इस प्रकार साधन-सम्पत्ति वाला वह विद्वान् जीते हुए ही स्वाराज्य में अभिषिक्त देह के नाश होने पर सुखाधिपति हो जाता है उसे विदेह कैवल्य पद की प्राप्ति हो जाती है। (फलान्तर की प्राप्ति भी होती है)—ऐसा होने पर उसके लिए सर्वत्र सभी लोकों में स्वेच्छा से गमन सुलभ हो जाता है। (मन्त्र में स्वाराज्य एवं यथाकामचार से क्या तात्पर्य है, इसे बतलाया जाता है)—प्राणादि तत्त्वों के उपासना के फल में परिच्छिन्न कामचारिता प्राप्ति सम्भव है, इसी प्रकार उनसे स्वराड् प्राप्ति न होकर सातिशय परतन्त्र रूप फल पूर्वभूमि में कहा गया, परमानन्द प्राप्ति के लिए उसकी निवृत्ति होनी चाहिए वह सोपाधिक रूप से संभव नहीं। अतः आत्मनिष्ठ सुखाधिपति होता है, ऐसा श्रुति प्रतिपादित करती है। जो द्वैतदर्शी उपरोक्त आत्मदर्शन के प्रति निष्ठा सम्पादित न कर इसके विपरीत आचरण कर उसे अच्छी प्रकार नहीं जानते वे परतन्त्र होकर कालयापन करते हैं, उन पर नियन्त्रण करने वाला उनका कोई न कोई स्वामी होता है। भेददर्शी की दुनिया सीमित रहने से उसे नश्वर लोकों की प्राप्ति होती है। पहले भी श्रुति में कह आये हैं कि भूमा से भिन्न सब अल्प है और मर्त्य है। अतः द्वैतवादी अपनी दृष्टि के अनुरूप नाशवान् लोकों को प्राप्त करते हैं, उनको उन सभी लोकों में न चाहते हुए भी जाना पड़ता है ॥ २ ॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथ सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ।)

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावावात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित्तमात्मतः संकल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामाऽऽत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳ सर्वमिति ॥१॥

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताꣳ सर्वꣳ ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश

इस प्रकार जानने वाले के लिए फल का वर्णन

निश्चय ही उस इस प्रकार देखने वाले, इस प्रकार मनन करने वाले तथा इस प्रकार जानने वाले, इस प्राकृत विद्वान् के लिए आत्मा से प्राण, आत्मस्वरूप से आशा, आत्मरूप से स्मृति, आत्मरूप से आकाश, आत्मरूप से जल, आत्मरूप से आविर्भाव तथा तिरोभाव, आत्मरूप से अन्न, आत्मरूप से बल, आत्मरूप से ध्यान, आत्मरूप से मन, आत्मरूप से वाणी, आत्मरूप से नाम, आत्मरूप से मन्त्र, आत्मरूप से कर्म और आत्मरूप से ही यह सब कुछ हो जाता है ॥ १ ॥

इस संबन्ध में यह मन्त्र है। तत्ववेत्ता न मृत्यु को देखता है, न रोग को न दुःखित्व को ही देखता है किन्तु वह विद्वान् सबको, (आत्मरूप से ही) देखता है। इसीलिए वह सबको प्राप्त हो जाता

तस्य ह वा एतस्येत्यादि स्वाराज्यं प्राप्तस्य प्रकृतस्य विदुष इत्यर्थः। प्राक्सदात्मविज्ञानात्स्वात्मनोऽन्यस्मात्सतः प्राणादेर्नामान्तस्योत्पत्तिप्रलयावभूतां सदात्मविज्ञाने तु सतीदानीं स्वात्मत एव संवृत्तौ तथा सर्वोऽप्यन्यो व्यवहार आत्मत एव विदुषः ॥१॥

उक्तविद्यास्तुत्यर्थमेव विदुषः स्रष्टृत्वमाह—तस्येति। तथा विदुषः स्रष्टृत्वव्यवहारवदित्यर्थः। क्रीडादिरन्यो व्यवहारः ॥१॥

सनत्कुमार जी नारद से कहते हैं वह ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् अपने आपको ही देखता है। यहाँ मन्त्र में 'तस्य' पद से तात्पर्य उस विद्वान् से है जिसे स्वाराज्य की प्राप्ति हो गई हो। यह विद्वान् समस्त नामरूपात्मक सृष्टि कार्य करने की सामर्थ्य रखता है। सत् आत्मविज्ञान से पहले स्वात्मा से अन्य प्राण से नाम पर्यन्त की उत्पत्ति प्रलय सत् से होती है। सदात्मविज्ञान हो जाने के पश्चात् स्वात्मा से ही वे कार्य हो जाते हैं। इसलिए विद्वान् के आत्मा से ही ये सब अन्य व्यवहार होते हैं ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विꣳशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते तꣳ स्कन्द इत्याचक्षते ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ॥ २६ ॥

इति सप्तमः प्रपाठकः ॥ ७ ॥

है, वह एक हो जाता है, वही तीन, पाँच, सात, नौ रूप हो जाता है, फिर वही ग्यारह रूप भी कहा गया है, वही सौ, दश, एक सहस्र और बीस भी हो जाता है। शब्दादि विषयोपलब्धि रूप आहार की शुद्धि होने पर मन की शुद्धि होती है, मन की शुद्धि होने पर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृति की शुद्धि हो जाने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों का विमोक हो जाता है। इस प्रकार हो गए वासना वाले उस तत्त्ववेत्ता नारद को भगवान् सनत्कुमार ने अज्ञानरूप अन्धकार से पार कर दिया। इसलिए उन सनत्कुमारों को "स्कन्द" ऐसा कहते हैं, "स्कन्द" ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥

॥ इति सप्तमाध्याये षड्विंशः खण्डः ॥

किंच तदेतस्मिन्नर्थ एष श्लोको मन्त्रोऽपि भवति। न पश्यः पश्यतीति पश्यो यथोक्तदर्शी विद्वानित्यर्थः मृत्युं मरणं रोगं ज्वरादि दुःखतां दुःखभावं चापि न पश्यति। सर्वं ह सर्वमेव स पश्यः पश्यत्यात्मानमेव सर्वं ततः सर्वमाप्नोति, सर्वशः

न केवलं ब्राह्मणोक्तमिह विद्याफलं किंतु मन्त्रोक्तं चेत्याह—किंचेति। तच्छब्दार्थः सप्तम्या निर्दिश्यते। स च विद्याफलरूपः। न पश्य इति मन्त्रमादाय व्याचष्टे—पश्यतीत्यादिना। सर्वमाप्नोतीति पूर्णता परिच्छेदभ्रमव्यावर्तनेन विवक्षिता न तु क्रिमिकीटकादिभावोऽपुरुषार्थत्वप्रसङ्गादिति

इतना ही नहीं, इसी अर्थ में यह मन्त्र भी है। आत्मदर्शी पूर्वोक्त विद्वान् मरण, ज्वरादि तथा दुःख को कभी प्राप्त नहीं करता। वह तत्त्वदर्शी तो सर्वत्र सभी स्थितियों में केवल आत्मा को ही देखता है, इसी से सब कुछ प्राप्त कर लेता है। वह निर्गुण ब्रह्मज्ञानी सगुण ब्रह्मोपासक सृष्टि के प्रभेद से पूर्व एकरूप होता हुआ सृष्टि के समय त्रिरूप एवं अनन्त रूपों वाला हो जाता है। इसके

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वप्रकारैरिति। किंच स विद्वान्प्राक्सृष्टिप्रभेदादेकधैव भवत्येकधैव च संस्त्रिधादिभेदैरनन्तभेदप्रकारो भवति सृष्टिकाले। पुनः संहारकाले मूलमेव स्वं पारमार्थिकमेकधाभावं प्रतिपद्यते स्वतन्त्र एवेति विद्यां फलेन प्ररोचयन्स्तौति। अथेदानीं यथोक्ताया विद्यायाः सम्यगवभासकारणं मुखावभासकारणस्येवाऽऽदर्शस्य विशुद्धिकारणं साधनमुपदिश्यते—आहारशुद्धौ। आह्रियत इत्याहारः शब्दादिविषयविज्ञानं भोक्तुर्भोगायाऽऽह्रियते तस्य विषयोपलब्धिलक्षणस्य विज्ञानस्य शुद्धिराहारशुद्धी रागद्वेषमोहदोषैरसंसृष्टं विषयविज्ञानमित्यर्थः। तस्यामाहारशुद्धौ सत्यां तद्वतोऽन्तःकरणस्य सत्त्वस्य शुद्धिर्नैर्मल्यं भवति। सत्त्वशुद्धौ च सत्यां यथावगते भूमात्मनि ध्रुवाऽविच्छिन्ना स्मृतिरविस्मरणं भवति। तस्यां च लब्धायां स्मृतिलम्भे सति सर्वेषामविद्याकृतानर्थपाशरूपाणामनेकजन्मान्तरानुभवभावनाकठिनीकृतानां हृदयाश्रयाणां ग्रन्थीनां विप्रमोक्षो विशेषेण प्रमोक्षणं विनाशो भवतीति। यत एतदुत्तरोत्तरं यथोक्तमाहारशुद्धिमूलं

द्रष्टव्यम्। विद्यास्तुतिपौष्कल्यार्थं सगुणविद्याफलमपि निर्गुणब्रह्मविदाप्नोतीत्याह—किंचेति। त्रिधा तेजोबन्नरूपेण। शब्दस्पर्शादिरादिशब्दार्थः। विद्यां तत्फलं तदपेक्षितां स्तुतिं चाभिधायाऽऽहारशुद्धावित्यादेस्तात्पर्यमाह—अथेति। रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्नित्यादिस्मृतिमाश्रित्याऽऽहारशब्दं व्याकरोति—आह्रियत इतीति। कथं तस्याऽऽह्रियमाणत्वं तत्राऽऽह—भोक्तुरिति। कीदृशी तस्य शुद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—रागेति। आहारशुद्धिफलमाह—तस्यामिति। अन्तःकरणशुद्धिफलं कथयति—सत्त्वेति। स्मृतिलाभफलं दर्शयति—तस्यां चेति। भवतीत्याहारशुद्धिरपेक्षितेति शेषः। प्रकृतवाक्यतात्पर्यमुपसंहरति—यत इति। तस्मै मृदितकषायायेत्यादिवाक्यमवतार्य व्याचष्टे—

पश्चात् जब सृष्टि का संहार होने लगता है तो वह अपने पारमार्थिक मौलिक रूप एकधा भाव को प्राप्त हो जाता है, इसमें किसी के आश्रय की आवश्यकता नहीं पड़ती, इस प्रकार फल का प्रलोभन देते हुए विद्या की स्तुति की जाती है। जिस प्रकार अपने मुख को स्वच्छ दर्पण में स्पष्ट देखा जा सकता है उसी प्रकार इस विद्या की भली प्रकार प्राप्ति जिन साधनों से होती है, उनमें विशुद्धि का हेतु साधन बतलाया जाता है। ('आहार' शब्द का अर्थ करते हुए भगवान् भाष्यकार गीता के श्लोक को प्रधानता देते हैं—जिसका मन राग-द्वेष से रहित है, उनकी इन्द्रियाँ विषयों में रमती हुई अपने वश में रहती हैं) आहरण करने का नाम आहार है। शब्दादि विषयों का विज्ञान भोक्ता को तज्जन्य भोगों की ओर ले जाता है, जो विषयों के सेवन से हुआ करती है, उस विज्ञान की शुद्धि ही आहारशुद्धि है। भाव यह है कि वह विषय जन्य विज्ञान राग, द्वेष, मोह रूप दोषों से सर्वथा अछूता हो। ऐसी आहारशुद्धि होने पर ही विशुद्ध अन्तःकरण के सत्त्व की निर्मलता सम्पादित होती है। सत्त्वबुद्धि से ही पूर्वज्ञात भूमा तत्त्व में निरन्तर दृढ स्मृति होती है। अविस्मृति के प्राप्त हो जाने पर अविद्या कृत समस्त अनर्थों का जो पाश की तरह है एवं अनेक जन्मान्तरों के अनुभव भावना से सुदृढ की हुई हृदय की ग्रन्थियाँ हैं उनका पूर्ण रूप से विनाश हो जाता है। क्योंकि हृदय की ग्रन्थियों को खोलने के लिए प्रथम मौलिक साधन आहार शुद्धि है। इसलिए प्रथम साधन से उत्तरोत्तर सभी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मात्सा कार्येत्यर्थः । सर्वं शास्त्रार्थमशेषत उक्त्वाऽऽख्यायिकामुपसंहरति श्रुतिः—तस्मै मृदितकषायाय वार्क्षादिरिव कषायो रागद्वेषादिदोषः सत्त्वस्य रञ्जनारूपत्वात्तस्य ज्ञानवैराग्याभ्यासरूपक्षारेण क्षालितो मृदितो विनाशितो यस्य नारदस्य तस्मै योग्याय मृदितकषायाय तमसोऽविद्यालक्षणात्पारं परमार्थतत्त्वं दर्शयति दर्शितवानित्यर्थः। कोऽसौ, भगवान् ।

"उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥"

एवंधर्मा सनत्कुमारः । तमेव सनत्कुमारं देवं स्कन्द इत्याचक्षते कथयन्ति तद्विदः । द्विर्वचनमध्यायपरिसमाप्त्यर्थम् ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ॥ २६ ॥

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य
श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्विवरणे
सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

सर्वमिति । आगतिं गतिं मायव्ययौ । तस्य वैशिष्ट्यान्तरमाह—तमेवेति ॥ २ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य षड्विंशः खण्डः ॥ २६ ॥

इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यभगवदानन्दज्ञानकृतायां
छान्दोग्यभाष्यटीकायां सप्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

साधनों का अनुष्ठान करना चाहिए । शास्त्र का परम प्रयोजन पूर्ण रूप से निरूपण कर आख्यायिका का उपसंहार करते हुए श्रुति कहती है—राग-द्वेषादि ही कषाय है जैसे भालु-बन्दर कषाय रंग के होते हैं सत्त्व को रंग में परिणत कर देते हैं, ज्ञान वैराग्य और अभ्यास रूप नमक से उस कषाय रंग को छुड़ाना आवश्यक है । नारद जी के इस (अन्तःकरण के) कषाय को छुड़ाकर अपने योग्य शिष्य को भगवान् सनत्कुमार ने अविद्यासञ्ज्ञक अन्धकार से परे परमार्थतत्त्व का दर्शन करा दिया। वह भगवान् कौन है ?

"भगवान् उसे कहना चाहिए जो संसार के प्राणियों की उत्पत्ति एवं प्रलय का नियमन करता हो, सभी के आय-व्यय का हिसाब रखता हो, विद्या एवं अविद्या के क्षेत्र को समझता हो" ।

सनत्कुमार जी उपरोक्त सभी गुणों से सम्पन्न होने से भगवान् है । उनकी महिमा को जानने वाले उन्हीं सनत्कुमार को स्कन्द देव भी कहते हैं । "उन्हीं सनत्कुमार को स्कन्ददेव भी कहते हैं" इस प्रकार मन्त्र में यह द्विरुक्ति अध्याय की पूर्णता का द्योतक है ।

इसप्रकार छान्दोग्य उपनिषद् सप्तम अध्याय के शाङ्करभाष्य की डॉ. उमेशानन्द शास्त्री कृत 'कुमुदतोषिणी' टीका पूर्ण हुई ॥ ७॥

---

१. आयव्ययाविति—आगामिन्यौ संपदापदावित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।)

यद्यपि दिग्देशकालादिभेदशून्यं ब्रह्म सदेकमेवाद्वितीयमात्मैवेदं सर्वमिति षष्ठसप्तमयोरधिगतं तथाऽपीह मन्दबुद्धीनां दिग्देशादिभेदवद्वस्त्वित्येवं भाविता बुद्धिर्न शक्यते सहसा परमार्थविषया कर्तुमित्यनधिगम्य च ब्रह्म न पुरुषार्थसिद्धिरिति तदधिगमाय हृदयपुण्डरीकदेश उपदेष्टव्यः । यद्यपि सत्सम्यक्प्रत्ययैकविषयं निर्गुणं चाऽऽत्मतत्त्वं तथाऽपि [1]मन्दबुद्धीनां गुणवत्त्वस्येष्टत्वात्सत्यकामादिगुणवत्त्वं च वक्तव्यम् । तथा यद्यपि ब्रह्मविदां स्त्र्यादिविषयेभ्यः स्वयमेवोपरमो भवति तथाऽप्यनेकजन्मविषयसेवाभ्यासजनिता विषयविषया तृष्णा न सहसा निवर्तयितुं शक्यत इति ब्रह्मचर्यादिसाधनविशेषो विधातव्यः । तथा यद्यप्यात्मैकत्वविदां गन्तृगमनगन्तव्या-

---

पूर्वस्मिन्नध्यायद्वये निर्विशेषमात्मतत्त्वमनवच्छिन्नं सदानन्दैकतानमावेदितं तथा चोपनिषदारम्भे चरितार्थे किमवशिष्यते यदर्थमध्यायान्तरमित्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपीति । कर्तुमिति तदधिगमाय विशिष्टो देश उपदेष्टव्य इति संबन्धः । मन्दबुद्धीनां तर्हि परमार्थवस्तुनो ब्रह्मणोऽधिगतिरपेक्षितेत्यर्थः । न केवलं मन्दाधिकारिणां ब्रह्माधिगमशेषत्वेन हृदयदेशोपदेश एवात्र कर्तव्यः किं तु पूर्वत्रानुक्तगुणाद्यर्थान्तरोपदेशश्च कार्य इत्याह—यद्यपीति । अवशिष्टमर्थान्तरमुपदेष्टव्यमन्वाचष्टे—तथेति । मन्दधियां ब्रह्मधीशेषत्वेन देशविशेषवद्गुणविशेषवच्च ब्रह्मचर्यादिसाधनविशेषो विधातव्य इति संबन्धः । शब्दोत्थब्रह्मज्ञानवतां विधिं विनाऽपि विषयवैमुख्यसंभवात्किं विधिनेत्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपि ब्रह्मविदामिति । यथा साधनविशेषो वक्तव्योऽवशिष्यते तथोपासकानां गतिश्च वक्तव्येत्यवशिष्टमर्थान्तरमाह—तथेति । एकत्वदर्शिनां गन्त्रादिसर्वभेदप्रत्ययास्तमयादविद्यादिशेषस्य देहस्थितिनिमित्तस्य क्षये सति स्वात्मन्येव निवृत्तिसंभवात्कुतो गतिर्वक्तव्येत्याशङ्क्याऽऽह—यद्यप्यात्मैकत्वविदामिति । अविद्यादिशेषस्थितिनिमित्तक्षये स्वात्मन्येव निवृत्तिरित्युत्तरेण संबन्धः । स्वात्मनिर्वाणेऽपि

छान्दोग्योपनिषद् के छठे और सातवें अध्याय में बतला दिया गया था कि ब्रह्म दिक्-देश-कालादि भेद से शून्य है, वह सत्, एक, अद्वितीय है, आत्मा ही सब कुछ है फिर अष्टम अध्याय के प्रारम्भ की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि यहाँ उन मन्दबुद्धियों के कल्याण हेतु मार्गदर्शन किया गया है उन्हें तो दिशा देश कालादि में द्वैत बुद्धि बनी रहती है, एकदम परमार्थ विषयिणी भावना॰सम्पादन करना कठिन है, विना ब्रह्म ज्ञान के पुरुषार्थ लाभ कैसे होगा, उसे जानने के लिए हृदय कमल देश का उपदेश किया जाना चाहिए। यद्यपि वह आत्मतत्त्व सत्, अद्वैतनिष्ठा से जाना जाने योग्य एवं निर्गुण है तथापि मन्द अधिकारी को सगुण चर्चा प्रिय होने के कारण सत्यकामादि गुणों वाले आत्मा का उपदेश करना चाहिए। यद्यपि ब्रह्मवेत्ता स्त्री आदि विषयों से स्वयं उपरत हो जाता है तथापि विषयों के प्रति तृष्णा सहसा निवृत्त नहीं होती क्योंकि अनेक जन्मों का अभ्यास पड़ा हुआ है, सेवा के वशीभूत स्त्री आदि विषयों से आसक्ति इसे बनी रहती है, इसलिए ब्रह्मचर्यादि विशिष्ट साधनों का विधान करना चाहिए। यद्यपि आत्मनिष्ठ सर्वत्र एकत्व दर्शन करने वाले विद्वान् के लिए न कोई

---

1. अनधिगम्य चेत्यादिभाष्यस्य तात्पर्यार्थमाह—मन्दबुद्धीनामिति ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हरिः ॐ ।

अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥१॥

दहर कमल में ब्रह्म की उपासना

अब इस शरीररूप ब्रह्मपुर के भीतर जो यह कमल के आकार का छोटा सा स्थान है, इसमें जो सूक्ष्म आकाश है, उस आकाश नामक तत्त्व के भीतर जो वस्तु है, उसका अन्वेषण करना चाहिए तथा उसी की विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए (गुरु के द्वारा श्रवणादि उपायों से उक्त तत्त्व का साक्षात्कार कराने में श्रुति का तात्पर्य है) ॥ १ ॥

भावादविद्यादिशेषस्थितिनिमित्तक्षये गगन इव विद्युदुद्भूत इव वायुर्दग्धेन्धन इवाग्निः स्वात्मन्येव निवृत्तिस्तथाऽपि गन्तृगमनादिवासितबुद्धीनां हृदयदेशगुणविशिष्टब्रह्मोपासकानां मूर्धन्यया नाड्या गतिर्वक्तव्येत्यष्टमः प्रपाठक आरभ्यते । दिग्देशगुणगतिफलभेदशून्यं हि परमार्थसदद्वयं ब्रह्म मन्दबुद्धीनामसदिव प्रतिभाति । सन्मार्गस्थास्तावद्भवन्तु ततः शनैः परमार्थसदपि ग्राहयिष्यामीति मन्यते श्रुतिः ।

अथानन्तरं यदिदं वक्ष्यमाणं दहरमल्पं पुण्डरीकं पुण्डरीकसदृशं वेश्मेव वेश्म

कृतकरूपत्यागेन स्वाभाविकस्वरूपावस्थानमित्यत्र दृष्टान्तानाह—गगन इवेति । अनेकोदाहरणोपादानं बुद्धिसौकर्यार्थम् । उक्तमेवाध्यायतात्पर्यं संक्षिप्य दर्शयति—दिग्देशेति । दिशा देशेन गुणैर्गत्या फलभेदेन शून्यं तदनवच्छिन्नमिति यावत् । तस्य दिगाद्यनवच्छिन्नत्वे हेतुमाह—अद्वयमिति । तर्हि तेषां भ्रमापोहार्थं परमार्थसदद्वयं ब्रह्म ग्राहयितव्यं किमित्यन्यथोपदिश्यते तत्राऽऽह—सन्मार्गस्था इति । अध्यायतात्पर्यं संक्षेपविस्तराभ्यां दर्शयित्वा श्रुत्यक्षराणि व्याकरोति—अथेत्यादिना । उत्तमबुद्धीन्प्रति निर्विशेषब्रह्मोपदेशानन्तरं मन्दबुद्धीन्प्रति सविशेषमुपदिश्यते ब्रह्मेत्यर्थः । तत्र तावदुपास्यायतनं निर्दिशति—यदिदमिति । हृदयपुण्डरीकस्य वेश्मसादृश्ये हेतुमाह—द्वारपालादीति । तस्य ह वा

गन्ता, न गमन और न ही गन्तव्य है, अविद्यादि काल में प्रतिबन्ध के नाश के लिए गगन में बिजली के समान अथवा उद्भूत में वायु के समान, जली हुई लकडी में अग्नि के समान अपनी आत्मा में ही निवृत्ति होती है तथापि गन्ता गमन आदि अध्यासित बुद्धि वाले हृदय देश में कमल गुण विशिष्ट ब्रह्म के उपासकों को मूर्धन्या नाडी के द्वारा गति बतलानी चाहिए, इसलिए आठवें अध्याय का प्रारम्भ किया जाता है। ब्रह्म दिशा, देश, गुण, गति, फल और भेद से शून्य तथा परमार्थतः सत् व अद्वय है किन्तु वह मन्दाधिकारियों को असत् की तरह भासता है। वे भी भटकना छोड़कर धीरे-धीरे सन्मार्ग प्रवृत्त हो जाएँ, उन्हें भी परमार्थ सद् तत्त्व का अवलम्बन करवाऊँगी ऐसा श्रुति मानती है।

उत्तम अधिकारियों के प्रति निर्विशेष ब्रह्म का उपदेश कर मन्दबुद्धि जिज्ञासुओं के लिए सविशेष ब्रह्म का उपदेश आरम्भ किया जाता है। मन्त्र में 'दहर' सूक्ष्म छोटे को कहते हैं। जैसे महल

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

द्वारपालादिमत्त्वात् । अस्मिन्ब्रह्मपुरे ब्रह्मणः परस्य पुरं राज्ञोऽनेकप्रकृतिमद्यथा पुरं तथेदमनेकेन्द्रियमनोबुद्धिभिः स्वाम्यर्थकारिभिर्युक्तमिति ब्रह्मपुरम् । पुरे च वेश्म राज्ञो यथा तथा तस्मिन्ब्रह्मपुरे शरीरे दहरं वेश्म ब्रह्मण उपलब्ध्यधिष्ठानमित्यर्थः । यथा विष्णोः शालग्रामः । अस्मिन्हि [1]स्वविकारशुङ्गे देहे नामरूपव्याकरणाय प्रविष्टं सदाख्यं ब्रह्म जीवेनाऽऽत्मनेत्युक्तम् । तस्मादस्मिन्हृदयपुण्डरीके वेश्मन्युपसंहृतकरणै-र्बाह्यविषयविरक्तैर्विशेषतो ब्रह्मचर्यसत्यसाधनाभ्यां युक्तैर्वक्ष्यमाणगुणवद्ध्यायमानै-र्ब्रह्मोपलभ्यत इति प्रकरणार्थः । दहरोऽल्पतरोऽस्मिन्दहरे वेश्मनि वेश्मनोऽल्पत्वात्त-दन्तर्वर्तिनोऽल्पतरत्वं वेश्मनः । अन्तराकाश आकाशाख्यं ब्रह्म । आकाशो वै नामेति हि वक्ष्यति । आकाश इवाशरीरत्वात्सूक्ष्मत्वसर्वगतत्वसामान्याच्च । तस्मिन्नाकाशाख्ये यदन्तर्मध्ये तदन्वेष्टव्यम् । तद्वाव तदेव च विशेषेण जिज्ञासितव्यं गुर्वाश्रयश्रवणाद्युपायैर-

---

[2]एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषय इत्यादिश्रुतेरुक्तहेतुसिद्धिः । तस्याऽऽश्रयं दर्शयति—अस्मिन्निति । शरीरस्य ब्रह्मपुरत्वं दृष्टान्तेन साधयति—राज्ञ इति । तत्रोक्तं वेश्म दृष्टान्तेन स्पष्टयति—पुरे चेति । कथं पुनः सर्वगतस्य निरवयवस्य ब्रह्मणो यथोक्तवेश्मनिष्ठत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—ब्रह्मण इति । ननु संसारिणो ब्रह्मातिरिक्तस्य स्वकर्मोपार्जितेन शरीरेण स्वामित्वसंबन्धो न ब्रह्मणस्तदसंबन्धिनः कथं तत्रोपलब्धिरत आह—अस्मिन्हीति । ब्रह्मणो जीवात्मना सृष्टे कार्ये जलार्कवत्प्रवेशे हृदय-पुण्डरीकस्य ब्रह्मोपलब्ध्यधिष्ठानत्वं पूर्वोक्तमविरुद्धमित्याह—तस्मादिति । अन्तराकाशस्यात्यल्पत्वे हेतुमाह—वेश्मन इति । आकाशशब्दस्य भूताकाशविषयत्वं व्यावर्तयति—आकाशाख्यमिति । कथं वाक्यशेषेऽप्याकाशशब्दो ब्रह्मणि वर्तते तत्राऽऽह—आकाश इवेति । तस्मिन्यदन्तस्तदाश्रयेण सहा-न्वेष्टव्यं तस्मिन्वा स्वे महिम्नि यदन्तस्तदाकाशाख्यं ब्रह्म तदन्वेष्टव्यं तस्मिन्वा हृदयपुण्डरीकावच्छिन्ने

में द्वारपालादि रहते हैं उसी प्रकार कमल सदृश महल के समान है, जैसे राजा का पुर भिन्न-भिन्न
स्वभाव वाले स्वामी मन्त्री कार्यकर्ताओं से युक्त है उसी प्रकार शरीररूपी ब्रह्मपुर अनेक इन्द्रियों मन-
बुद्धि से युक्त है। जिस प्रकार पुर में राजा का महल है उसी प्रकार शरीर रूपी ब्रह्मपुर में ब्रह्म का
सूक्ष्म महल है यही वह अधिष्ठान है जिसे प्राप्त करना है। जैसे भगवान् विष्णु की प्राप्ति हेतु उन्हीं के
प्रतीक शालग्राम का आश्रय लिया जाता है। अपने कर्म से उपार्जित इस विकारी देह में नाम-रूप
विश्लेषण के लिए जीवात्मा रूप से वह सत् ब्रह्म प्रविष्ट हुआ है ऐसा कहा गया। इसलिए इस हृदय
कमलरूपी महल में इन्द्रिय संयम, बाह्य विषयों से विरक्ति पूर्वक विशेष रूप से ब्रह्मचर्य, सत्य साधनों
से युक्त होकर वक्ष्यमाण गुणों से युक्त ब्रह्म का ध्यान करने पर उसका साक्षात्कार किया जाता है,
यही इस प्रकरण का अर्थ है। इस महल के अन्दर बहुत सूक्ष्म मन्दिर है, महल ही सूक्ष्म है, उसका
अन्तवर्ती अधिष्ठान तो और भी सूक्ष्म होगा। आकाशसञ्ज्ञक ब्रह्म ही अन्तराकाश है; भूताकाश
नहीं। आगे श्रुति में भी आकाश ब्रह्म ही है, कहा जाएगा क्योंकि उस ब्रह्म का भी आकाश के समान
कोई शरीर नहीं है, सूक्ष्म, सर्वव्यापक दोनों में समान है। उस आकाशाख्य ब्रह्म के आश्रित जो अन्दर

---

१. स्वविकारस्तेजोऽबन्नं तत्कार्यं इत्यर्थः । २. छा० उ० ३।१३।१ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात् ॥२॥

इस प्रकार उस उपदेशक आचार्य से शिष्य कहें कि इस परिच्छिन्न ब्रह्मपुर में जो सूक्ष्म कमलाकार गृह है, उसके अन्तवंर्ती जो आकाश है उस अल्पतर आकाश में क्या वस्तु है जिसकी जिज्ञासा करनी चाहिये ? (इस प्रकार शंका करने वाले शिष्यों से) वह आचार्य इस प्रकार कहे ॥२॥

न्विष्य च साक्षात्करणीयमित्यर्थः ॥ १ ॥

तं चेदेवमुक्तवन्तमाचार्यं यदि ब्रूयुरन्तेवासिनश्चोदयेयुः, कथं, यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे परिच्छिन्नेऽन्तर्दहरं पुण्डरीकं वेश्म ततोऽप्यन्तरल्पतर एवाऽऽकाशः । पुण्डरीक एव वेश्मनि तावत्किं स्यात् । किं ततोऽल्पतरे खे यद्भवेदित्याहुः । दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते न किंचन विद्यत इत्यभिप्रायः । यदि नाम बदरमात्रं किमपि विद्यते किं तस्यान्वेषणेन विजिज्ञासनेन वा फलं विजिज्ञासितुः स्यात् । अतो यत्तत्रान्वेष्टव्यं विजिज्ञासितव्यं वा न तेन प्रयोजनमित्युक्तवतः स आचार्यो ब्रूयादिति श्रुतेर्वचनम् ॥२॥

नभसि यदन्तराकाशाख्यं ब्रह्म तदन्वेष्टव्यमिति योजना ॥ १ ॥

दहरोऽस्मिन्नित्यादिवाक्यस्य यथाश्रुतमर्थं गृहीत्वा चोद्यमुत्थापयति—तं चेदिति । तदेव चोद्यमाकाङ्क्षाद्वारा विवृणोति—कथमित्यादिना । भवतु परिच्छिन्ने शरीरे पुण्डरीकाकारस्य हृदयस्याल्पत्वं तदन्तर्वर्तिनश्चाऽऽकाशस्य ततोऽप्यल्पतरत्वं तथाऽपि प्रकृते किं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—पुण्डरीक एवेति । किं शब्दस्य प्रश्नविषयत्वं व्यावर्तयति—न किंचनेति । हृदयपुण्डरीकान्तर्वर्तिनमाकाशमुपेत्याऽऽद्यं दूषयति—यदि नामेति । फलानुपलम्भोऽतःशब्दार्थः । तत्रेत्यन्तर्वर्त्याकाशोक्तिः । शिष्याचार्यव्यतिरिक्तस्यात्राप्रस्तुतत्वात्कस्येदं नियोगवचनमित्याशङ्क्याऽऽह—इति श्रुतेरिति ॥ २ ॥

है उसे आश्रय के सहित खोजना चाहिए। उसका ही गुरु की शरणागत होकर श्रवण मननादि उपायों द्वारा ढूंढकर साक्षात्कार करना चाहिए ॥ १ ॥

आचार्य द्वारा इस प्रकार प्रतिपादन किए जाने पर यदि शिष्य कहने लगें कि जो इस परिच्छिन्न ब्रह्मपुर के अन्दर सूक्ष्म कमल के समान घर है उससे भिन्न अत्यन्त सूक्ष्म ही आकाश है। कमल के सदृश घर में क्या होगा, उससे भी सूक्ष्मतर आकाश में जो होगा, उसे कहें। सूक्ष्म घर है, इसमें अन्तराकाश क्या वहाँ रहता है अर्थात् वहाँ कुछ नहीं विद्यमान है। यदि वहाँ बेर के फल के परिणाम के समान कुछ रहेगा, उसके ढूंढने और जानने से जानने वाले को क्या लाभ होगा। इसलिए वहाँ जो कुछ वास्तव में खोजना अथवा जानना है, उसे बतलाएँ, अन्य से क्या प्रयोजन है; इस प्रकार शिष्यों द्वारा पूछे जाने पर आचार्य जैसा उत्तर दे उसे श्रुति स्वयं अग्रिम मन्त्र में कहती है ॥ २ ॥

---

१. आद्यमाद्यवाक्यार्थम् ।

RajGuru Math, Shivala,, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥३॥

जितना बड़ा यह भौतिक आकाश है, उतना ही परिमाण का हृदयान्तर्गत आकाश भी है। इस बुद्धि उपाधि से विशिष्ट ब्रह्माकाश के भीतर ही द्युलोक और पृथिवी ये दोनों भली प्रकार से स्थित हैं, ऐसे ही अग्नि और वायु ये दोनों भी सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों तथा बिजली और नक्षत्र ये दोनों भी सम्यक्‌रूप से स्थित हैं। किंबहुना इस आत्मा का इस लोक में आत्मीयरूप से जो कुछ पदार्थ है और जो कुछ आत्मीयरूप से नहीं है (नष्ट हो गया या भविष्य में होगा नहीं) वह सब कुछ सम्यक् प्रकार से इसी हृदयाकाश में स्थित है ॥ ३ ॥

शृणुत । तत्र यद्ब्रूथ पुण्डरीकान्तःखस्याल्पत्वात्तत्स्थमल्पतरं स्यादिति । तदसत् । न हि खं पुण्डरीकवेश्मगतं पुण्डरीकादल्पतरं मत्वाऽवोचं दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश इति । किं तर्हि पुण्डरीकमल्पं तदनुविधायि तत्स्थमन्तःकरणं पुण्डरीकाकाशपरिच्छिन्नं तस्मिन्विशुद्धे संहृतकरणानां योगिनां स्वच्छ इवोदके प्रतिबिम्बरूपमादर्श इव च शुद्धे

किमाचार्यो ब्रूयादित्यपेक्षायां वक्ष्यमाणेऽर्थे शिष्याणां मनःसमाधानमादौ प्रार्थयत इत्याह—शृणुतेति । श्रोतव्यमेव दर्शयितुं शिष्यैरुक्तमनुवदति—तत्रेति । किमाकाशस्य स्वाभाविकं दहरत्वमुपेत्य चोद्यते किं वा परोपाधिनिमित्तमिति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—तदसदिति । ततश्च तस्य स्वाभाविकं दहरत्वमाश्रित्य चोद्यं निरवकाशमिति शेषः । कथं तर्हि दहरत्वोक्तिराकाशस्येत्याशङ्क्याऽऽह—किं तर्हीति । तस्मिन्विशुद्धे तावन्मात्रं ब्रह्म यथोक्तविशेषणं योगिनां विषयेभ्यो विमुखीकृतान्तःकरणानामुपलभ्यत इति संबन्धः । अन्तःकरणस्य शुद्धत्वे दृष्टान्तमाह—स्वच्छ इवेति । ब्रह्मणस्तस्मिन्नुप-

---

(शिष्यों के समाधान के लिए आचार्य बोले—) सुनिए। आपने जो कहा था कि कमल के अन्तराकाश के सूक्ष्म होने से उसमें विराजने वाला तो और भी सूक्ष्मतर होगा, ऐसा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि जब श्रुति कहती है "इस कमल सदृश गृह में सूक्ष्म अन्तर्वर्ती आकाश है" तो उसका ऐसा मानना कदापि नहीं समझना चाहिए कि आकाश कमलाकार गृह में प्रवेश होने से कमल से भी सूक्ष्मतर है। (उसके स्वाभाविक सूक्ष्मत्व का आश्रय कर निरवकाश कहा गया है) कमल सूक्ष्म है उसी में कमलाकाश से परिच्छिन्न उतना ही अन्तःकरण है, उस विशुद्ध सूक्ष्मतर अन्तराकाश में संयमपरायण योगियों को उसी प्रकार उतने ब्रह्म का साक्षात्कार होता है जिस प्रकार स्वच्छ जल में अपना प्रतिबिम्ब अथवा शुद्ध दर्पण में अपना रूप; ऐसे ही स्वच्छ विज्ञान ज्योति स्वरूप की प्रतीति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वच्छं विज्ञानज्योतिःस्वरूपावभासं तावन्मात्रं ब्रह्मोपलभ्यत इति दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश इत्यवोचामान्तःकरणोपाधिनिमित्तम्। स्वतस्तु यावान्वै प्रसिद्धः परिमाणतोऽयमाकाशो भौतिकस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाशो यस्मिन्नन्वेष्टव्यं विजिज्ञासितव्यं चावोचाम। नाप्याकाशतुल्यपरिमाणत्वमभिप्रेत्य तावानित्युच्यते। किं तर्हि ब्रह्मणोऽनुरूपस्य दृष्टान्तान्तरस्याभावात्। कथं पुनर्नाऽऽकाशसममेव ब्रह्मेत्यवगम्यते। "येनाऽऽवृतं खं दिवं महीं च"। "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" "एतस्मिन्नु खल्वक्षरे गार्ग्याकाशः" इत्यादिश्रुतिभ्यः। किंचोभे अस्मिन्द्यावापृथिवी ब्रह्माकाशे बुद्ध्युपाधिविशिष्टेऽन्तरेव समाहिते सम्यगाहिते स्थिते। यथा वा अरा नाभावित्युक्तं हि।

लभ्यमानत्वे प्रतिबिम्बरूपमिवेत्युदाहरणम्। प्रतिपत्तिसौकर्यार्थमुदाहरणान्तरम्। ब्रह्मणो नैसर्गिकमागन्तुकं च व्यवधानं [1]नास्तीत्युपलब्धिसिद्ध्यर्थं विशिनष्टि—स्वच्छमिति। तादृगेव दहरत्वमादायोच्यते चेदनौपाधिकं महत्त्वमुपेत्य समाधिः संभवतीति कल्पान्तरं निरस्यति—स्वतस्त्विति। यस्मिन्नन्वेष्टव्यमाश्रयेण सहेति शेषः। यावांस्तावानिति वचनादाकाशेन तुल्यपरिमाणत्वं ब्रह्मणोऽभिप्रेतं तथा च [2]ज्यायानाकाशादित्यादि विरुद्धमित्याशङ्क्याऽऽह—नापीति। केनाभिप्रायेण तर्हि तावानित्युक्तमत आह—किं तर्हीति। [5]न तस्य प्रतिमाऽस्तीति श्रुतेरिति भावः। [6]आकाशादि येन व्याप्तं लोकोऽनुभवति तस्मिन्नक्षरे सर्वमृगादि समाहितमित्यर्थः। कार्यकारणयोरतुल्यपरिमाणत्वप्रसिद्धेश्च नाऽऽकाशसमता ब्रह्मणोऽस्तीत्याह—तस्मादिति। आधाराधेययोरतुल्यपरिमाणत्वाच्चैवमित्याह—एतस्मिन्निति। इतश्चाऽऽकाशस्य न स्वाभाविकं दहरत्वमित्याह—किंचेति। कार्यं हि द्यावापृथिव्यादि कारणे समाहितं तच्च हृदये ध्येयमित्यभिप्रेत्य बुद्ध्युपाधिविशिष्ट इत्युक्तम्। आकाशे द्यावापृथिव्यादेः समाहितत्वे भूमविद्यासंवादं दर्शयति—यथा वेति। न विद्यते सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति

होती है। इसलिए मन्त्र में "इस कमल के समान घर में सूक्ष्म अन्तराकाश है" यह अन्तःकरण की उपाधि की अपेक्षा से कहा गया है। वैसे तो जितने प्रसिद्ध परिमाण वाला भौतिक आकाश है, उतने ही परिमाण वाला यह हृदयस्थ आकाश है जिसे श्रुति अन्वेषण एवं जानने को कहती है। श्रुति में जितना और उतना आकाश के बिल्कुल समान परिमाण को दृष्टि में रखते हुए नहीं कहा गया है क्योंकि ब्रह्म के सदृश रूप वाला कोई अन्य दृष्टान्त उपलब्ध ही नहीं है। व्यापक आकाश के समान ब्रह्म को कहने में क्या आपत्ति है। क्योंकि श्रुतियाँ कहती हैं "उस परब्रह्म से आकाश, द्युलोक और पृथिवीलोक व्याप्त है" "उस आत्म तत्त्व से ही आकाश की सृष्टि हुई" "हे गार्गी! यह आकाश इसी अक्षर में ओत-प्रोत है" इत्यादि। इसके अतिरिक्त द्युलोक और पृथिवीलोक इस ब्रह्माकाश में बुद्धिरूप उपाधि से विशिष्ट अन्तःकरण में अच्छी प्रकार से अवस्थित हैं जैसे भूमा विद्या में बतलाया गया "नाभि में प्रतिष्ठित अरों की भाँति भूमा में सब कुछ प्रतिष्ठित है"। मन्त्र में अग्नि और वायु की भी

१. पृथिव्याद्यपेक्षयाऽऽकाशस्य मनागानुरूप्यमालक्ष्य दृष्टान्तान्तरस्येत्युक्तम्। २. छां० उ० ७।१५।१। ३. तस्कृतः। ४. छां० उ० ३।१३।२। ५. ब्रह्मणोऽनुरूपदृष्टान्ताभावे प्रमाणमाह—न तस्येति। ६. येनावृतमित्यादिश्रुतेरर्थमाह—आकाशादिति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं चेद्ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳ समाहितꣳ सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाऽऽप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति॥४॥

यदि इस प्रकार कहने वाले उस आचार्य से शिष्यगण कहें—कि यदि इस ब्रह्मपुर उपलक्षित अन्तराकाश में ये सब सम्यक् प्रकार से स्थित हैं एवं सम्पूर्ण भूत और समस्त कामनाएँ भी समाहित हैं। तो जिस समय यह ब्रह्मपुर जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त होता है या नष्ट हो जाता है, उस समय (घट के नाश होने पर घट में स्थित दुग्ध नष्ट होने के समान इस ब्रह्मपुर में) क्या शेष रह जाता है? ॥ ४ ॥

तथोभावग्निश्च वायुश्चेत्यादि समानम्। यच्चाऽऽत्मन आत्मीयत्वेन देहवतोऽस्ति विद्यत इह लोके। तथा यच्चाऽऽत्मीयत्वेन न विद्यते। नष्टं भविष्यच्च नास्तीत्युच्यते। न त्वत्यन्तमेवासत्। तस्य हृद्याकाशे समाधानानुपपत्तेः ॥ ३ ॥

तं चेदेवमुक्तवन्तं ब्रूयुः पुनरन्तेवासिनोऽस्मिश्चेद्यथोक्ते चेद्यदि ब्रह्मपुरे ब्रह्म-पुरोपलक्षितान्तराकाश इत्यर्थः। इदं सर्वं समाहितं सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाः। कथमाचार्येणानुक्ताः कामा अन्तेवासिभिरुच्यन्ते। नैष दोषः। यच्चास्येहास्ति यच्च नास्तीत्युक्ता एव ह्याचार्येण कामाः। अपि च सर्वशब्देन चोक्ता एव कामाः।

संबन्धः। नास्तिशब्दस्यात्यन्तासद्विषयत्वं व्यावर्तयति—नष्टमिति॥३॥

आश्रयनाशादाश्रितनाशः स्यादिति न्यायमाश्रित्य शङ्कते—तं चेदिति। यद्यस्मिन्सर्वं समाहितं ततो देहनाशे किम'वशिष्यत इति संबन्धः। शिष्याणामधिकावापं दोषमाशङ्कते—कथमिति। शङ्कितं दोषं परिहरति—नैष दोष इति। सर्वं तदस्मिन्समाहितमित्यत्रोक्तेन सर्वशब्देनेति शेषः। शिष्याणा-

---

इसी प्रकार स्थिति समझ लेनी चाहिए। इस लोक में जो भी आत्मीय रूप से शरीरधारी है तथा जो भी आत्मीय रूप से अविद्यमान है, वह सब कुछ इसमें अवस्थित है। नष्ट हुआ भी भविष्य में होना संभव होनें से वर्तमान में अभाव से 'नास्ति' शब्द का प्रयोग मन्त्र में आया है। 'आत्यन्तिक रूप से अविद्यमान रहना' इसका भावाशय नहीं है उसकी तो हृद्याकाश में स्थिति होनी संभव न हो सकेगी। ३ ॥

गुरु जी के इस प्रकार कहे जाने पर शिष्यों को इस प्रकार पूछना चाहिए—यदि ब्रह्मपुर से उपलक्षित आकाश में ये सभी दृश्यमान वस्तुएँ, सभी भूत प्राणी एवं सभी कामनाएँ अवस्थित हैं। शिष्य आचार्य द्वारा अप्रतिपादित सभी कामनाओं की अवस्थिति की जिज्ञासा क्यों कर रहे हैं, ऐसी शङ्का करना निराधार है। यहाँ जो विद्यमान है और जो विद्यमान नहीं है, ऐसा कहने से आचार्य

---

१. अतिशिष्यत इति युक्तम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो

(शिष्य के उक्त शून्यत्व की शंका की निवृत्ति के लिए) आचार्य को कहना चाहिए कि इस देह की जरावस्था से (यह अन्तराकाश संज्ञक ब्रह्म) जीर्ण नहीं होता, शस्त्रादि के प्रहार से इस देह के वध कर देने पर भी उसका नाश नहीं होता। यह ब्रह्मपुर सत्य है, इसमें सभी कामनाएँ समाहित है। यह आत्मा धर्माधर्म से शून्य, जरावस्था से रहित, मृत्युहीन, शोकरहित, क्षुधा से रहित, पिपासा-शून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है (संसारियों की तरह असत्य कामना और असत्य संकल्प वाला

यदा यस्मिन्काल एतच्छरीरं ब्रह्मपुराख्यं जरा वलीपलितादिलक्षणा वयोहानिर्वाऽऽप्नोति शस्त्रादिना वा [1]वृक्णं प्रध्वंसते विस्रंसते विनश्यति किं ततोऽन्यदतिशिष्यते। घटाश्रितक्षीरदधिस्नेहादिवद्घटनाशे देहनाशेऽपि देहाश्रयमुत्तरोत्तरं पूर्वपूर्वनाशान्नश्यतीत्यभिप्रायः। एवं प्राप्ते नाशे किं ततोऽन्यद्यथोक्तादतिशिष्यतेऽवतिष्ठते न किंचनावतिष्ठत इत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥

एवमन्तेवासिभिश्चोदितः स आचार्यो ब्रूयात्तन्मतिमपनयन्। कथम्। अस्य देहस्य जरयैतद्यथोक्तमन्तराकाशाख्यं ब्रह्म यस्मिन्सर्वं समाहितं न जीर्यति देहवन्न विक्रियत

मधिकावापं दोषं परिहृत्य प्रकृतं चोद्यं विवृणोति—यदेत्यादिना। आकाशस्य शिष्यमाणत्वमाशङ्क्याऽऽह—घटेति। ततो यथोक्तान्नाशादिति संबन्धः ॥४॥

कया पुना रीत्या शून्यविषया शिष्यमतिरपनेतव्येति प्रश्नपूर्वकं विवृणोति—कथमित्यादिना।

काम को भी इंगित कर रहे हैं। इतना ही नहीं, श्रुति में सर्व शब्द से भी काम ध्वनित हो जाता है। जब ब्रह्मपुरसञ्ज्ञक यह शरीर बूढ़ा हो जाता है, इसे झुरियाँ पड़ जाती हैं, इसके बाल पक जाते हैं शस्त्रादि के द्वारा इसका शरीर नष्ट हो जाता है, तब फिर क्या अवशिष्ट रहता है। लोक व्यवहार में देखा जाता है कि मिट्टी का घड़ा टूट जाए तो उसमें रखा दूध, दही और घी आदि सब नष्ट हो जाता है, इसी प्रकार देह के नाश होने पर देह के आश्रित एक-एक के नाश होने पर दूसरी-दूसरी चीज भी नष्ट हो जाती है। इस प्रकार देह का नाश हो जाने पर इससे विशिष्ट क्या कोई चीज अवशिष्ट रहती है, अर्थात् कुछ भी तो बाकी बचता हुआ नहीं दीखता ॥ ४ ॥

शिष्यों के इस निर्णय को अशास्त्रीय बतलाते हुए आचार्य उनकी बुद्धि इस प्रकार बदले। कैसे? इस देह में पूर्वमन्त्र प्रतिपादित अन्तराकाश सञ्ज्ञक ब्रह्म अवस्थित है, देह के जीर्ण-शीर्ण होने पर देही में कोई विकार नहीं आता। शरीर की हत्या कर देने से अथवा शस्त्रादि के द्वारा मार

---

१. वृक्णं छिन्नं सदित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभाग तं तमेवोपजीवन्ति ॥५॥

नहीं)। जैसे इस लोक में प्रजा स्वामी की आज्ञा का अनुवर्तन करती है सो वह जिस-जिस सन्निहित वस्तु को चाहती है और जिस-जिस देश या भूमि खण्ड को चाहती है, उसी-उसी को प्राप्त कर जीवन धारण करती है ॥ ५ ॥

इत्यर्थः। न चास्य वधेन शस्त्रादिघातेनैतद्धन्यते यथाऽऽकाशं किमु ततोऽपि सूक्ष्मतरमशब्दमस्पर्शं ब्रह्म देहेन्द्रियादिदोषैर्न स्पृश्यत इत्यर्थः। कथं देहेन्द्रियादिदोषैर्न स्पृश्यत इत्येतस्मिन्नवसरे वक्तव्यं प्राप्तं तत्प्रकृतव्यासङ्गो मा भूदिति नोच्यते। इन्द्रविरोचनाख्यायिकायामुपरिष्टाद्वक्ष्यामो युक्तितः। एतत्सत्यमवितथं ब्रह्मपुरं ब्रह्मैव पुरं ब्रह्मपुरं शरीराख्यं तु ब्रह्मपुरं ब्रह्मोपलक्षणार्थत्वात्। तत्त्वनृतमेव। "वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयम्" इति श्रुतेः। तद्विकारेऽनृतेऽपि देहगुहे ब्रह्मोपलभ्यत इति ब्रह्मपुरमित्युक्तं व्यावहारिकम्। सत्यं तु ब्रह्मपुरमेतदेव ब्रह्म।

देहादिविक्रियया ब्रह्मणो न विक्रियाऽस्तीत्येतत्कैमुतिकन्यायेन साधयति—न चेति। देहादिषु तादात्म्येन स्थित चेद्ब्रह्म दोषैरसंस्पृष्टमित्ययुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—कथमिति। प्रकृतं दहरोपासना तत्र व्यासङ्गो विक्षेपः। यदि देहादिदोषैरसंस्पृष्टत्वं ब्रह्मणो न क्वचिदुपपाद्यते तर्हि तदविवक्षितमेव स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—इन्द्रेति। नास्येत्यादिनोऽक्तेऽर्थे हेतुमाह—एतदिति। कथं यथोक्त ब्रह्मणः पुरमवितथं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—ब्रह्मैवेति। सत्यशब्दसामानाधिकरण्यादुक्तसमाससिद्धिरित्यर्थः। कथं तर्हि शरीरं ब्रह्मपुरमित्युक्तमत आह—शरीराख्यं त्विति। तदेव स्फुटयितुं शरीरस्य मिथ्यात्वं सप्रमाणं दर्शयति—तत्त्विति। अथ मिथ्याभूतस्य तस्य कथं ब्रह्मपुरत्वमत आह—तद्विकार इति। किं च व्यावहारिकं सत्यमिदं शरीरं तद्युक्तं तस्यानृतस्यापि ब्रह्मोपलब्ध्यधिष्ठानस्य ब्रह्मपुरत्वमित्याह—व्यावहारिकमिति।

देने से ब्रह्म में कोई विकार नहीं होता। जब आकाश निर्लेप रहता है तब उससे भी सूक्ष्मतर शब्दातीत स्पर्शातीत ब्रह्म को देह-इन्द्रियादि के दोषों का स्पर्श होना समुचित नहीं भासता। देहादि में तादात्म्य भाव से रहने पर तो ब्रह्म में देहेन्द्रियादि जन्य दोषों का स्पर्श होने लगेगा तब तो प्रकृत दहरोपासना में भी विक्षेप आने लगेगा, ऐसा न हो इसलिए श्रुति निषेध करती है। इसे युक्तिपूर्वक इन्द्रविरोचन आख्यायिका में सिद्ध किया जाएगा। ब्रह्म के उपलक्षणार्थक होने से इस शरीरसञ्ज्ञक ब्रह्मपुर को सत्य कहा जाता है। शरीर तो वस्तुतः मिथ्या ही है। श्रुति समर्थन करती है—"नाम रूपादि सभी वाणी का विकार मात्र है, मृत्तिका ही सत्य है। ब्रह्म के मिथ्या भूत देह कार्य रूप विकार में उसका साक्षात्कार किया जा सकता है इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से उसे ब्रह्मपुर कह दिया गया। पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्मपुर ब्रह्म होने से सत्य है। क्योंकि लोक में सभी व्यवहार इस ब्रह्मपुर के कारण ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वव्यवहारास्पदत्वात् । अतोऽस्मिन्पुण्डरीकोपलक्षिते ब्रह्मपुरे सर्वे कामा ये बहिर्भवद्भिः प्रार्थ्यन्ते तेऽस्मिन्नेव स्वात्मनि समाहिताः । अतस्तत्प्राप्त्युपायमेवानुतिष्ठत बाह्यविषयतृष्णां त्यजतेत्यभिप्रायः । एष आत्मा भवतां स्वरूपम् ।

शृणुत तस्य लक्षणम् । अपहतपाप्मा । अपहतः पाप्मा धर्माधर्माख्यो यस्य सोऽयमपहतपाप्मा । तथा विजरो विगतजरो विमृत्युश्च । तदुक्तं पूर्वमेव न वधेनास्य हन्यत इति । किमर्थं पुनरुच्यते । यद्यपि देहसंबन्धिभ्यां जरामृत्युभ्यां न संबध्यते । अन्यथाऽपि संबन्धस्ताभ्यां स्यादित्याशङ्कानिवृत्त्यर्थम् । विशोको विगतशोकः । शोको नामेष्टादिवियोगनिमित्तो मानसः संतापः । विजिघत्सो विगताशनेच्छः । अपिपासोऽपानेच्छः । नन्वपहतपाप्मत्वेन जरादयः शोकान्ताः प्रतिषिद्धा एव भवन्ति । कारण-

---

ब्रह्म तु परमार्थसत्यमतश्चैतदेव सत्यमुक्तं ब्रह्मपुरमित्याह—सत्यं त्विति । ब्रह्मणः सत्यत्वेऽपि पुरत्वायोगात्कुतो ब्रह्मपुरत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—सर्वव्यवहारेति । दहराकाशस्याल्पत्वं विनाशित्वमित्याशङ्कितं दोषं परिहृत्योपास्यत्वसिद्धयर्थं पातनिकां करोति—अत इति । अस्मिन्सर्वकामसमाधाने फलितमुपासनमुपदिशति—अतस्तदिति । यथोक्ते दहराकाशे कीदृगुपासनं कर्तव्यमित्यपेक्षायामहंग्रहेणेत्याह—एष इति ।

पुनरुक्तिं शङ्कते—तदुक्तमिति । तां परिहरति—यद्यपीति । अन्यथा देहसंबन्धं विना स्वभावतोऽपीत्यर्थः । निवृत्त्यर्थं पुनरुच्यत इति पूर्वेण संबन्धः । प्रकारान्तरेण पुनरुक्तिं चोदयति—नन्विति । शोकस्यान्ता[1] किंचिद्व्यवधाय पिपासा येष्वस्ति ते शोकान्तास्तेषां जरादीनामपहतपाप्मत्वेन प्रतिषिद्धत्वे हेतुमाह—कारणेति । कथं धर्माधर्मप्रतिषेधे जरादिविकारप्रतिषेधस्तत्राऽऽह—धर्मेति । इति

युरू होते हैं । आपके द्वारा जो भी बाहर की कामनाएँ इस कमल सदृश ब्रह्मपुर में अभियाचित की जाती हैं वे इसी ही स्वात्मा में अवस्थित हैं । अतः उसकी प्राप्ति रूप उपाय का अनुष्ठान करना चाहिए । भावाशय यह है कि ब्रह्म से विमुख कराने वाली बाह्य विषयों की तृष्णा को छोड़ देना चाहिए उपासना को इस प्रकार करें कि यह आत्मा आपका अपना स्वरूप है ।

•आत्मा का क्या स्वरूप है इसे सुनिए । इसमें धर्म-अधर्म सञ्ज्ञक कोई पाप न होने से अपहतपाप्मा है, जरारहित होने से विजर है मृत्युविहीन है । पहले भी कह चुके हैं कि शरीर के वध हो जाने पर इसका वध नहीं होता । पुनरुक्ति में हेतु है—यद्यपि देह से संबन्धित जरा, मृत्यु इस आत्मा को बाधित नहीं करते, अन्य किसी प्रकार से संबन्ध उन दोनों के न हों इस शंका की निवृत्ति के लिए पुनः कथन किया है । उसमें किसी प्रकार का शोक नहीं है । इष्टादि के दूर हो जाने पर मानसिक पीड़ा को शोक कहते हैं । इस आत्मा को खाने की इच्छा नहीं होती । इसमें पीने की भी इच्छा नहीं है । पुनरुक्ति को शंका पुनः की जाती है—आत्मा को अपहतपाप्मा कह देना काफी है, जरा से लेकर शोक पर्यन्त तो अपने आप प्रतिषिद्ध हो जाते हैं क्योंकि कारण के प्रतिषेध होने से धर्म-अधर्म के कार्य का

---

१. अन्ता—समीपे वर्तमाना ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

धर्माधर्मकार्या हि त इति । जरादिप्रतिषेधेन वा धर्माधर्मयोः कार्याभावे प्रतिषेधात् । धर्माधर्मकार्यानयोरप्यसत्समत्वमिति पृथक्प्रतिषेधोऽनर्थकः स्यात् । सत्यमेवं तथाऽपि धर्मकार्याविद्यमानन्दव्यतिरेकेण स्वाभाविकानन्दो यथेश्वरे विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेति श्रुतेः । तथाऽधर्मकार्यंजरादिव्यतिरेकेणापि जरादिदुःखस्वरूपं स्वाभाविकं स्यादित्याशङ्क्यते । अतो युक्तस्तन्निवृत्तये जरादीनां धर्माधर्माभ्यां पृथक्प्रतिषेधः । जरादिग्रहणं सर्वदुःखोपलक्षणार्थम् । पापनिमित्तानां तु दुःखानामानन्त्यात्प्रत्येकं च तत्प्रतिषेधस्याशक्यत्वात्सर्वदुःखप्रतिषेधार्थं युक्तमेवापहतपाप्मत्ववचनम् । सत्या अवितथाः कामा यस्य सोऽयं सत्यकामः । वितथा हि संसारिणां कामाः । ईश्वरस्य तद्विपरीताः । तथा कामहेतवः संकल्पा अपि सत्या यस्य स सत्यसंकल्पः । संकल्पाः कामाश्च शुद्धसत्त्वोपाधिनिमित्ता ईश्वरस्य । चित्रगुवत् ।

पृथक्प्रतिषेधोऽनर्थकः स्यादिति संबन्धः । जरादिप्रतिषेधस्यार्थवत्त्वमङ्गीकृत्य पाप्मप्रतिषेधस्य नैरर्थक्यमिति पक्षान्तरमाह—जरादीति । धर्मादेर्जरादेर्वा निषेधादितरनिषेधः सिध्यतीत्यङ्गी करोति—सत्यमेवमिति । तर्हि किमित्यपहतपाप्मेत्युक्त्वा विजरो विमृत्युरित्याद्युच्यते तत्राऽऽह—तथाऽपीति । तथाऽपि [1]दुःखे [2]प्रतिषिद्धे [3]किमिति [4]जरादि प्रतिषिध्यते तत्राऽऽह—जरादीति । यत्तु कार्याभावे सतोरपि धर्माधर्मयोरुत्खातदन्तोरगवदकिंचित्करत्वादपहतपाप्मेति न पृथग्वक्तव्यमिति तत्राऽऽह—पापनिमित्तानामिति । ईश्वरस्य सत्यकामत्वं साधयति—वितथा हीति । यथेश्वरस्यावितथाः कामास्तथा संकल्पाश्चेत्याह—तथेति । अभावरूपाणां धर्माणामद्वैता[5]विघातकत्वेन संभावितत्वेऽपि कथं भावरूपा धर्माः संभवेयुरित्याशङ्क्याऽऽह—संकल्पा इति । शुद्धसत्त्वं रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं त्रिगुणायां मायाया अंशभूतं तदेवोपाधिस्तन्निमित्तं येषां ते तथा । अस्वाभाविकानां संकल्पादीनामीश्वरविशेषणत्वे दृष्टान्तमाह—चित्रगुवदिति । यथा चित्रा गावोऽस्वाभाविकाश्चित्रगोर्देवदत्तस्य विशेषणं तथा ब्रह्मणोऽपि कामादय

प्रतिषेध हो जाता है । मान लें कार्य जरादि का निषेध करना उपयोगी है तो धर्माधर्म रूप पाप्म का प्रतिषेध निरर्थक होगा इसलिए पृथक् प्रतिषेध करना असङ्गत है । यद्यपि शङ्का में कुछ सत्यता अवश्य है किन्तु धर्म कार्य आनन्द से भिन्न ईश्वर में स्वाभाविक आनन्द की अनुभूति होने लगेगी । श्रुति भी कहती हैं "वह आत्मा विज्ञान स्वरूप आनन्दात्मक है" । तथा अधर्म कार्य जरादि के दुःख के स्वरूप की भी स्वाभाविक उपलब्धि होने की शङ्का होने लगेगी । अतः उसकी निवृत्ति के लिए जरादि का धर्म और अधर्म से पृथक् प्रतिषेध करना युक्तिसंगत है । सभी दुःखों के प्रतीक के रूप में, जरादि का मन्त्र में ग्रहण हुआ है । पापके कारण सभी दुःख होते हैं, दुःखों की विविधता की कोई गिनती नहीं, प्रत्येक का प्रतिषेध करना संभव नहीं है, इसलिए सब दुःखों के प्रतिषेध करने के लिए मन्त्र में अपहतपाप्मा का ग्रहण युक्तिसंगत है । ईश्वर सत्यकाम है क्योंकि उसकी कामनाएँ सत्य हैं । संसारी जीवों के काम असत्य भूमिका पर टिके हैं । ईश्वर के काम इससे विपरीत हैं । काम के हेतु भी सत्य होने से

---

१. दुःखे—दुःखसामान्ये । २. प्रतिषिद्धे—विवक्षिते सति । ३. किमिति किमर्थम् । ४. जरादि दुःखविशेषः प्रतिषिध्यत इत्यर्थः । ५. अविघातकत्वेनेति—अभावस्याधिकरणानतिरिक्तत्वोपगमादविरोधित्वेनेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहाऽऽत्मानमननुविद्य

कर्मफल की अनित्यता

जैसे इस लोक में सेवादि कर्म से प्राप्त किया हुआ लोक क्षीण हो जाता है, वैसे ही अग्निहोत्रादि पुण्यकर्म से प्राप्त हुआ परलोक में पदार्थ काल पाकर नष्ट हो जाता है। जो लोग इस कर्म-

---

न स्वतो नेति नेती त्युक्तवात्। यथोक्तलक्षण एवाऽऽत्मा विज्ञेयो गुरुभ्यः शास्त्रतश्चाऽऽत्मसंवेद्यतया च स्वाराज्यकामैः। न चेद्विज्ञायते को दोषः स्यादिति। शृणुतात्र दोषं दृष्टान्तेन। यथा ह्येवेह लोके प्रजा अन्वाविशन्त्यनुवर्तन्ते यथानुशासनं, यथेह प्रजा अन्यं स्वामिनं मन्यमानाः स्वस्य स्वामिनो यथा यथाऽनुशासनं तथा तथाऽन्वाविशन्ति। किम्। यं यमन्तं प्रत्यन्तं जनपदं क्षेत्रभागं चाभिकामा अर्थिन्यो भवन्त्यात्मबुद्ध्यनुरूपं तं तमेव च प्रत्यन्तादिमुपजीवन्तीति। एष दृष्टान्तोऽस्वातन्त्र्यदोषं प्रति पुण्यफलोपभोगे ॥ ५ ॥

अथान्यो दृष्टान्तस्तत्क्षयं प्रति तद्यथेहेत्यादिः। तत्तत्र यथेह लोके तासामेव

इत्यर्थः। किमिति कामादयो ब्रह्मणि स्वाभाविका न भवन्ति धर्मधर्मिणोरेवो[2]पचारादद्वैतश्रुतेरुपपत्तेरित्याशङ्क्याऽऽह—न स्वत इति। वाक्यान्तरमवतारयितुं पातनिकां करोति— यथोक्तेति। ज्ञानप्रकारं निमित्ताधिकारिप्रदर्शनपूर्वकं दर्शयति—गुरुभ्य इति। प्रश्नपूर्वकं यथा हीत्यादिवाक्यमाह—न चेदिति। यथोक्ताकाशात्मापरिज्ञानमत्रेति परामृष्टम्। अक्षरोत्थमर्थं यथा ह्येवेत्यनेन दृष्टान्तेन दर्शयित्वा वाक्यार्थं कथयति—यथेहेति। अमुमर्थं प्रश्नपूर्वकमन्वाचष्टे—किमित्यादिना। उक्तदृष्टान्तेन विवक्षितमंशमनूद्य [3]दृष्टान्तान्तरस्य तात्पर्यमाह—एष इति ॥५॥

वह सत्यसंकल्प है। ईश्वर के संकल्प और काम शुद्ध सत्त्व उपाधि से प्रेरित होकर होते हैं। जैसे चितकबरी गौएं अस्वाभाविक हैं, चित्रगु विशेषण देवदत्त का है, इसीप्रकार ईश्वर के सत्यकाम आदि विशेषण हैं। यह ब्रह्म में स्वाभाविक रूप से स्थित नहीं है क्योंकि श्रुति उसके विषय में नेति-नेति उद्घोष करती है। स्वाराज्य की कामना करने वाले आत्मनिष्ठ को चाहिए कि गुरुजन, शास्त्र एवं आत्मसंवेद्य के माध्यम से उपरोक्त लक्षणों वाले आत्मा को जानना चाहिए। यदि उसे जानने के लिए प्रवृत्ति न की जाए तो क्या हानि है। जो हानि होगी उसे दृष्टान्त के द्वारा कहते हैं, सुनिए। जैसे संसार में प्रजा राजा की आज्ञा के अनुकूल आचरण करती हैं। प्रजा अन्य किसी राजा को अपना स्वामी मानती है, अपने उस स्वामी का जैसा-जैसा आदेश होता है, उसका पालन करती है। जिसे जिस जनपद या क्षेत्र में अर्थ प्राप्ति की कामना के वशीभूत भेजा जाता है वे अपनी बुद्धि के अनुरूप वहाँ जाकर, जीविका अर्जन करते हैं। पराधीनता में क्या दोष है इसे सिद्ध करने के लिए पुण्य फल के

---

१. उक्तत्वादिति—स्वतो निर्विशेषत्वस्य श्रुत्यन्तरेण निश्चितत्वादित्यर्थः। २ उपचारादभेदोपचारादित्यर्थः। ३. दृष्टान्तान्तरस्येति—तद्यथेह कर्मजित इत्यादिना वक्ष्यमाणदृष्टान्तस्येत्यर्थः। आह—अथान्यो दृष्टान्तस्तत्क्षयं प्रतीत्यनेन भाष्येणाहेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्रजन्त्येतांश्च सत्यान्कामांस्तेषांँ सर्वेषु लोकेष्व-कामचारो भवत्यथ य इहाऽऽत्मानमनुविद्य व्रजन्त्ये-तांश्च सत्यान्कामांस्तेषाँ सर्वेषु लोकेषु काम-चारो भवति ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

धिकारी मनुष्यलोक में आत्मा को और इन (सत्यसंकल्प से प्राप्त होने वाले अन्तःकरण में स्थित) सत्य कामनाओं को न जानकर परलोक-गामी होते हैं, सम्पूर्ण लोकों में उन आत्मवेत्ताओं की यथेच्छ गति नहीं होती और जो इस लोक में आत्मा को तथा सत्यकामनाओं को जानकर परलोक-गामी होते हैं, उनकी सभी लोकों में यथेच्छ गति होती है ॥ ६ ॥

॥ इति प्रथमः खण्डः ॥

स्वाम्यनुशासनानुवर्तिनीनां प्रजानां सेवादिजितो लोकः पराधीनोपभोगः क्षीयतेऽ-न्तवान्भवति । अथेदानीं दार्ष्टान्तिकमुपसंहरति—एवमेवामुत्राग्निहोत्रादिपुण्यजितो लोकः पराधीनोपभोग क्षीयत एवेति । उक्तो दोष एषामिति विषयं दर्शयति—तद्य इत्यादिना । तत्त्रेहास्मिँल्लोके ज्ञानकर्मणोरधिकृता योग्याः सन्त आत्मानं यथोक्तलक्षणं शास्त्राचार्योपदिष्टमननुविद्य यथोपदेशमनु स्वसंवेद्यतामकृत्वा व्रजन्ति देहादस्मात्प्रयन्ति । य एतांश्च यथोक्तान्सत्यान्सत्यसंकल्पकार्यांश्च स्वात्मस्थान्कामा-

---

केषामेष दोषो भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—उक्त इति । कर्मसाध्यस्य पारतन्त्र्यं क्षयिष्णुत्वं च ज्ञानहीनकर्मसाध्यविषयः । अब्रह्मोपासकानामेष दोषो भवतीति दर्शयत्युत्तरं वाक्यमित्यर्थः ।

उपभोग में यह दृष्टान्त है ॥५॥

"तद्यथेह" श्रुति से ब्रह्मनिष्ठा सम्पादित न करने से क्या दोष है, इसे दृष्टान्त द्वारा निरूपित करते हैं। जिस प्रकार इस लोक में स्वामी की आज्ञा की वशवर्ती होकर प्रजा (श्ववृत्ति) सेवादि से जो भोग्य सामग्री प्राप्त करती है, वह नष्ट हो जाती है, इसे ही दार्ष्टान्तिक रूप में उपसंहार करते हुए श्रुति कहती है—इसी प्रकार अग्निहोत्रादि कर्म के पुण्य से प्राप्त यह भोग्य सामग्री पराधीता से उपभोग कर नष्ट हो जाती है। दृष्टान्त द्वारा द्वारा दोष का निरूपण कर 'तद्य इह' इत्यादि से श्रुति ब्रह्मज्ञान विरहित की गति का निरूपण करती है। इस लोक में ज्ञान और कर्म में प्रवृत्त हुए अधिकारी उपरोक्त स्वरूप विशिष्ट आत्मा को शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश से न जानकर उपदेश के अनुरूप स्वसंवेद्यत्व लाभ किए बिना ही इस संसार से इस शरीर का त्याग करते हैं वे सत्यकाम, सत्यसंकल्प स्वात्मा में स्थित सत्कामनाओं को बिना प्राप्त किये हुए जाते हैं, उन्हें उन सभी लोकों में स्वतन्त्रता से विचरण

---

१. योक्तो दोष इति शेषः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ।)

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ १ ॥

अथ यदि मातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ २ ॥

दहर ब्रह्म की उपासना का फल

(मरने के बाद) यदि वह पितृलोक को चाहता है, तो उसके संकल्प से ही पितृगण वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं, वह उपासक उस पितृलोक से सम्पन्न हो महनीय हो जाता है अर्थात् अपनी महिमा का अनुभव करता है ॥ १ ॥

और यदि वह मातृलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से माताएँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस मातृलोक से सम्पन्न हो वह पुरुष महिमान्वित होता है ।। २ ।।

नननुविद्य व्रजन्ति तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारोऽस्वतन्त्रता भवति । यथा राजानुशासनानुवर्तिनीनां प्रजानामित्यर्थः । अथ येऽन्य इह लोक आत्मानं शास्त्राचार्योपदेशमनुवि स्वात्मसंवेद्यतामापाद्य व्रजन्ति यथोक्तांश्च सत्यान्कामांस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति राज्ञ इव सार्वभौमस्येह लोके ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥ १ ॥

कथं सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीति, उच्यते—य आत्मानं यथोक्तलक्षणं हृदि साक्षात्कृतवान्वक्ष्यमाणब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नः संस्तत्स्थांश्च सत्यान्कामान्स त्यक्तदेहो

अविदुषामेवास्वातन्त्र्यदोषमुक्त्वा विदुषां स्वातन्त्र्यफलं कथयति—अथेत्यादिना ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ॥१॥

उक्तमेवार्थमाकाङ्क्षापूर्वकमुपपादयति—कथमित्यादिना ॥१॥

करने की शक्ति सुलभ नहीं होती । जैसे राजाज्ञा के वशीभूत प्रजा स्वतन्त्र नहीं होती । इसके विपरीत जो आत्मदर्शी इस लोक में शास्त्र एवं आचार्य मुख से आत्मा को जानकर स्वसंवेद्यता लाभ कर देह का त्याग करते हैं वे आत्मा के स्वरूप सत्यकामादि की प्राप्ति करते हैं । उनका समस्त लोकों में स्वेच्छा से गमन होता है, जिसप्रकार सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् की मान्यता इस लोक में होती है ॥६॥

सभी लोकों में स्वच्छन्द गति किस प्रकार होती है, इस पर श्रुति कहती है—जिसे आत्मा के यथार्थस्वरूप का हृदय में साक्षात्कार हो जाता है, जो वक्ष्यमाण ब्रह्मचर्य आदि साधनों से सम्पन्न,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ३ ॥

अथ यदि स्वसृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ४ ॥

अथ यदि सखिलोककामो भवति संकल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ५ ॥

और यदि वह भ्रातृलोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प से भ्रातृगण उपस्थित हो जाते हैं वह उस भ्रातृलोक से सम्पन्न हो महिमान्वित होता है ॥ ३ ॥

और यदि वह भगिनीलोक की कामना करता है, तो उसके संकल्प से ही बहिनें वहाँ उपस्थित हो जाती हैं, उस स्वसृलोक से सम्पन्न हो वह महिमान्वित होता है ॥ ४ ॥

एवं यदि वह मित्रों के लोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही मित्र सब उस लोक में उपस्थित हो जाते हैं। मित्रों के उस लोक से समृद्ध हो वह महिमान्वित होता है ॥ ५ ॥

यदि पितृलोककामः पितरो जनयितारस्त एव सुखहेतुत्वेन भोग्यत्वाल्लोका उच्यन्ते तेषु कामो यस्य तैः पितृभिः संबन्धेच्छा यस्य भवति तस्य संकल्पमात्रादेव पितरः समुत्तिष्ठन्त्यात्मसंबन्धितामापद्यन्ते। विशुद्धसत्त्वतया सत्यसंकल्पत्वादीश्वरस्येव तेन पितृलोकेन भोगेन संपन्नः संपत्तिरिष्टप्राप्तिस्तया समृद्धो महीयते पूज्यते वर्धते वा महिमानमनुभवति ॥ १ ॥

समानमन्यत्। मातरो जनयित्र्योऽतीताः सुखहेतुभूताः सामर्थ्यात्। न हि

सुखहेतुभूता इति कुतो विशेषणमित्याशङ्क्याऽऽह—सामर्थ्यादिति। तदेव स्फुटयति—न हीति।

यदि सत्यकाम में स्थिति रहते हुए उसका शरीर छूट जाता है, तो पितृलोक के अभिलाषी को पितर स्वयं आकर दर्शन देते हैं। पितर जन्म दिया करते है सुखपूर्वक भोगा जाने से वह पितृलोक है, यदि उनमें से किसी की इच्छा हो कि पितरों के दर्शन करन चाहिएँ तो उसके संकल्प मात्र से ही वे अपनापन दर्शाने के लिए सामने उपस्थित हो जाते हैं। जिस प्रकार ईश्वर विशुद्ध सत्त्व से युक्त सत्य संकल्प वाला है, इसी प्रकार वह पितृलोक की इष्टवस्तु प्राप्तिरूप भोग से समृद्ध हुआ, पूजा का पात्र बनता है, इस प्रकार आत्मनिष्ठ की महिमा का अनुभव करता है ॥१॥

द्वितीय मन्त्र से नवम मन्त्र के मातृलोक, भ्रातृलोक, स्वसृलोक, सखिलोक, गन्धमाल्यलोक,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ६ ॥

अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति संकल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन सपन्नो महीयते ॥ ७ ॥

अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति संकल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ८ ॥

अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति संकल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन संपन्नो महीयते ॥ ९ ॥

और यदि वह गन्धमाल्यलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प से ही गन्धमाल्य वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं। उस गन्धमाल्य लोक से युक्त हो वह पुरुष महिमा को प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

और यदि वह अन्नपान संबन्धी लोक को चाहता है, तो उसके संकल्प से ही अन्नपान उसके पास उपस्थित हो जाते हैं। उस अन्नपान लोक से सम्पन्न हो वह महिमान्वित होता है ॥ ७ ॥

और यदि वह गीतवाद्य संबन्धो लोक को चाहता है तो उसके संकल्प से ही गीतवाद्य वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। उस गीतवाद्य से सम्पन्न हो वह पुरुष महिमान्वित होता है ॥ ८ ॥

एवं यदि वह स्त्रीलोक की कामना वाला होता है तो उसके संकल्प मात्र से स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस स्त्रीलोक से युक्त हो वह पुरुष महिमा को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

दुःखहेतुभूतासु ग्रामसूकरादिजन्मनिमित्तासु मातृषु विशुद्धसत्त्वस्य योगिन इच्छा तत्संबन्धो वा युक्तः ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

अन्नपानलोक, गीतवादित्रलोक, स्त्रीलोक का भाष्य प्रथम मन्त्र के भाष्य के समान समझना चाहिए। माताएँ जन्म दाता हैं पूर्वकाल में सुख की कारणभूता हैं, क्योंकि माता में ही ऐसा सामर्थ्य है। विशुद्ध सत्त्व वाले योगी कब चाहेंगे ऐसी दुःख की कारण भूत माताओं का लोक मिले जिससे ग्रामसूकरादि योनियों की प्राप्ति हो ॥२-९॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते ॥ १० ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

(अथाष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ।)

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाꣳ सत्यानाꣳ सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते ॥ १ ॥

वह जिस-जिस प्रदेश की कामना वाला होता है और जिस-जिस भोग को चाहता है, वह सब उसके संकल्प से ही वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं। उससे सम्पन्न वह पुरुष महिमा को प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥

॥ इति द्वितीयः खण्डः ॥

असत् से ढके हुए सत् की और नामाक्षर की उपासना

वे ये सत्यकाम (स्त्री, अन्न, भोजन और बाह्य विषयों की कामनारूप) मिथ्या आच्छादन वाले हैं। सत्य होने पर भी उनका मिथ्यारूप अपिधान आच्छादन करने वाला है, क्योंकि इस जीव का जो-जो (पुत्र, भ्रातृ, इष्ट मित्रादि सम्बन्धी) यहाँ से मरकर जाता है, वह उसे पुनः देखने को भी यहाँ पर नहीं मिलता है ॥ १ ॥

यं यमन्तं प्रदेशमभिकामो भवति। यं च कामं कामयते यथोक्तव्यतिरेकेणापि सोऽस्यान्तः प्राप्तुमिष्टः कामश्च संकल्पादेव समुत्तिष्ठत्यस्य। तेनेच्छाऽविघाततयाऽभिप्रेतार्थप्राप्त्या च संपन्नो महीयत इत्युक्तार्थम् ॥ १० ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्ड ॥ २ ॥

यथोक्तात्मध्यानसाधनानुष्ठानं प्रति साधकानामुत्साहजननार्थमनुक्रोशन्त्याह—

तेन ज्ञानमाहात्म्येनेति यावत् ॥१०॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयः खण्डः ॥२॥

त इमे सत्याः कामा इत्यादेस्तात्पर्यमाह—यथोक्तेति। आह समनन्तरा श्रुतिरिति शेषः।

वह ब्रह्मतत्त्वनिष्ठ जिस-जिस लोक की प्राप्ति की इच्छा करता है, जो-जो कामना करता है, उसके अन्तःकरण में उद्भूत वही अभीष्ट काम संकल्पमात्र से ही प्राप्त हो जाता है। उसकी कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रहती, मनोवाञ्छित प्रयोजन की प्राप्ति से समृद्ध होकर अपनी महिमा को प्राप्त होता है ॥१०॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथाऽपि हिरण्यनिधिं

और इस लोक में अपने जिन जीवित या जिन मरे हुए पुत्रादि को एवं जिन अन्य पदार्थों को चाहता हुआ भी यह प्राप्त नहीं कर पाता; उन सबको यह पुरुष इस हृदयाकाश में स्थित ब्रह्म में जाकर प्राप्त कर लेता है, क्योंकि यहाँ पर इसके ये सत्यकाम मिथ्यारूप आच्छादन से आच्छादित रहते हैं। इस संबन्ध में यह दृष्टान्त है—जैसे पृथिवी में गड़े हुए सोने के खजाने को उस स्थान के

कष्टमिदं खलु वर्तते यत्स्वात्मस्थाः शक्यप्राप्ता अपि त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषामात्मस्थानां स्वाश्रयाणामेव सतामनृतं बाह्यविषयेषु स्त्र्यन्नभोजनाच्छादनादिषु तृष्णा तन्निमित्तं च स्वेच्छाप्रचारत्वं मिथ्याज्ञाननिमित्तत्वादनृतमित्युच्यते। तन्निमित्तं सत्यानां कामानामप्राप्तिरित्यपिधानमिवापिधानम्। कथमनृतापिधाननिमित्तं तेषामलाभ इति, उच्यते—यो यो हि यस्मादस्य जन्तोः पुत्रो भ्राता वेष्ट इतोऽस्माल्लोकात्प्रैति प्रगच्छति म्रियते तमिष्टं पुत्रं भ्रातरं वा स्वहृदयाकाशे विद्यमानमपीह पुनर्दर्शनायेच्छन्नपि न लभते ॥ १ ॥

अथ पुनर्ये चास्याऽविदुषो जन्तोर्जीवा जीवन्तीह पुत्रा भ्रात्रादयो वा ये च प्रेता

तमेवानुक्रोशं दर्शयति—कष्टमिति। अनृतमपिधानमिवापिधानं तेषामिति संबन्धः। किं तदनृतं तदाह—बाह्येति। कथं तदपिधानमात्मस्थानां कामानामित्याशङ्क्याऽऽह—तन्निमित्तमिति। उक्तमर्थमाकाङ्क्षापूर्वकमुत्तरं वाक्यमवतार्योपपादयति—कथमित्यादिना। त हृदयाकाशे स्वात्मनि सन्तमपि द्रष्टुमिच्छन्नपि यस्मान्न लभते तस्मादनृतापिधानं निमित्तं कृत्वा तदलाभो भवतीति योजना ॥१॥

इतश्च तेषामलाभे निमित्तमनृतापिधानमेवेत्याह—अथ पुनरिति। यथोक्तेन विधिनेत्युपासि-

---

सत्यकामादि गुण सम्पन्न आत्मा के ध्यान साधना अनुष्ठान हेतु साधकों में उत्साह का संचार करने हेतु दया के अधीन शोक करती हुई श्रुति कहती है—कितने कष्ट की बात है कि सरलता से प्राप्त अपनी आत्मा में स्थित ये सत्य कामनाएँ अविद्या से ढकी हुई हैं। आत्मनिष्ठ अपने में स्थित रहते हैं; सत्यकाम होते हुए भी उनकी स्त्री, अन्न भोजन वस्त्रादि हेतु तृष्णा एवं उसके लिए स्वेच्छाचारिता मिथ्याज्ञान से प्रेरित होने से इसे अनृत कहा जाता है। अनृत के लिए सत्य कामनाओं की अप्राप्ति ढक्कन की तरह ढकी हुई है। अविद्या से आवृत्त वस्तु की उन्हें प्राप्ति क्यों नहीं होती है, इस पर कहा जाता है।/इस संसारी जीव का प्रिय पुत्र या भ्राता इस मृत्युलोक से शरीर छोड़ कर चला जाता है, हृदयाकाश में उसके विराजमान होते हुए भा पुनर्दर्शन की इच्छा करने से भी वह नहीं मिलता।१।

इस विद्वान् के जो भी इष्ट जन पुत्र भ्रातादि इस संसार में हैं, जो इष्ट-मित्र इस लोक को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि संचरन्तो न विन्देयुरेव-मेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ॥ २ ॥

अनभिज्ञ पुरुष ऊपर-ऊपर घूमते हुए भी उसे जानता नहीं। ऐसे ही यह सम्पूर्ण प्रजा प्रतिदिन ब्रह्म-लोक को जाते हुए भी उसे नहीं जान पाते, क्योंकि यह ब्रह्मलोक पूर्वोक्त अनृत-अविद्यादि आच्छादन के द्वारा हर ली गई है ॥ २ ॥

मृता इष्टाः संबन्धिनो यच्चान्यदिह लोके वस्त्रान्नपानादि रत्नादि वा वस्त्विच्छन्न लभते तत्सर्वमत्र हृदयाकाशाख्ये ब्रह्मणि गत्वा यथोक्तेन विधिना विदन्ते लभते। अत्रास्मिन्हार्दाकाशे हि यस्मादस्यैते यथोक्ताः सत्याः कामा वर्तन्तेऽनृतापिधानाः। कथमिव तदन्याय्यमित्युच्यते—तत्तत्र यथा हिरण्यनिधिं हिरण्यमेव पुनर्ग्रहणाय निधातृभिर्निधीयत इति निधिस्तं हिरण्यनिधिं निहितं भूमेरधस्तान्निक्षिप्तमक्षेत्रज्ञा निधिशास्त्रं निधिक्षेत्रमजानन्तस्ते निधेरुपर्युपरि संचरन्तोऽपि निधिं न विन्देयुः शक्यवेदनमपि। एवमेवेमा अविद्यावत्यः सर्वा इमाः प्रजा यथोक्तं हृदयाकाशाख्यं ब्रह्मलोकं ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोकस्तमहरहः प्रत्यहं गच्छन्त्योऽपि सुषुप्तकाले न विन्दन्ति न लभन्त

प्रकारोक्तिः। आत्मस्थानां कामानामनृतापिधानत्वमुक्तं निगमयति—अत्रेति। यस्मादविद्वद्भिरलभ्या विद्वद्भिश्च लभ्याः सत्याः कामाः सर्वाधारे जगन्मूलकारणे ब्रह्मणि स्वात्मभूते वर्तन्ते तस्मात्ते भवन्त्यनृतापिधानाः। सत्यामविद्यायामनुपलम्भाद्विद्यया तत्प्रशमने चोपलम्भादित्यर्थः 'यदुक्तं ब्रह्मणि स्वात्मनि कामाः सन्तोऽपि नोपलभ्यन्त इत्यन्याय्यमिति तत्र दृष्टान्तं प्रश्नपूर्वकमुत्थाप्य व्याचष्टे—कथमिवेत्यादिना। तत्र स्वायत्तस्याप्यप्राप्तौ दृष्टान्तो निर्दिश्यत इति शेषः। दार्ष्टान्तिकं व्याकरोति—एवमेवेति। अलाभप्रकारमभिनयति—एषोऽहमिति। तत्र हेतुमाह—अनृतेनेति। यथोक्तेन मिथ्याज्ञान-

---

छोड़ चले गए हैं, और कुछ अन्य जो इस लोक के वस्त्र अन्न-पान, रत्नादि वस्तु की इच्छा करते हुए वे नहीं प्राप्त करते, वे सभी वस्तुएँ हृदयाकाश ब्रह्म की प्राप्ति कर अनायास ही प्राप्त कर लेता है। आत्मा में स्थित विद्वानों के लिए सत्यकाम सर्वदा प्राप्त है क्योंकि सर्वाधार जगत्कर्ता स्वात्मभूत ब्रह्म में इनका वास है, अतः ये अनृत से आवृत्त हैं। विद्या से अविद्या की निवृत्ति होने पर वे मिलते हैं। होते हुए भी प्राप्त नहीं होते ऐसा कहना अनुचित है, इसे दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं—किसी कृषक की भूमि में सुवर्ण गड़ा हुआ हो, निधिशास्त्र के न जानने से वह भूमि के ऊपर-ऊपर ही हल जोतता रहेगा किन्तु उसके हाथ सुवर्ण नहीं लगेगा, अपने अधीन होते हुए भी उसे इस निधि की प्राप्ति नहीं होती। इसी प्रकार अविद्या में निमग्न यहाँ के सभी प्राणी पूर्वोक्त हृदयाकाश सञ्ज्ञक ब्रह्मलोक में

---

१. यदुक्तमिति—कष्टमिदं खलु वर्तत इति भाष्ये तात्पर्यगत्योक्तमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳ हृदय-मिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ।३।

निश्चय ही वह यह आत्मा हृदय में है। 'हृदि अयम्' (हृदय में यह आत्मा है) यही इसकी व्युत्पत्ति है, इसी से यह 'हृदय' ऐसा कहा गया है। इस प्रकार जानने वाला पुरुष स्वर्गलोक को प्राप्त होता है अर्थात् देहपात होने पर भी विद्या का फल सुनिश्चित है ।। ३ ।।

एषोऽहं ब्रह्मलोकभावमापन्नोऽस्म्यद्येति । अनृतेन हि यथोक्तेन हि यस्मात्प्रत्यूढा हृताः स्वरूपादविद्यादिदोषैर्बहिरपकृष्टा इत्यर्थः । अतः कष्टमिदं वर्तते जन्तूनां यत्स्वायत्तमपि ब्रह्म न लभ्यत इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

स वै य आत्माऽपहतपाप्मेति प्रकृतो वैशब्देन तं स्मारयत्येष विवक्षित आत्मा हृदि हृदयपुण्डरीक आकाशशब्देनाभिहितः । तस्यैतस्य हृदयस्यैतदेव निरुक्तं निर्वचनं नान्यत् । हृद्ययमात्मा वर्तत इति यस्मात्तस्माद्धृदयं हृदयनामनिर्वचनप्रसिद्ध्याऽपि स्वहृदय आत्मेत्यवगन्तव्यमित्यभिप्रायः । अहरहर्वै प्रत्यहमेवंविद्धृद्ययमात्मेति जानन्स्वर्गं लोकं हार्दं ब्रह्मेति प्रतिपद्यते । नन्वनेवंविदपि सुषुप्तकाले हार्दं ब्रह्म प्रतिपद्यत एव

शब्दितानाद्यनिर्वाच्याज्ञानकृतेन तृष्णाप्रभेदेन तन्निमित्तेनेच्छाप्रचारेणेत्यर्थः । तस्मात्प्रजानां स्वात्मभूतब्रह्मलोकालाभ इति शेषः । स्वरूपादनृतेन हृतत्वमेव स्फोरयति—अविद्यादीति । प्रकृतमाक्रोशमुपसंहरति—अत इति ।।२।।

अनुक्रोशद्वारा यथोक्तब्रह्मध्यानानुष्ठाने प्रयत्नस्य कर्तव्यतोक्ता, संप्रति नामादाविव हृदये ब्रह्मदृष्टयारोपमात्रमिति शङ्कां वारयितुमनन्तरवाक्यमवतार्य व्याकरोति—स वा इत्यादिना । कथमात्मा यथोक्तो हृदयेऽस्तीति गम्यते तत्राऽऽह—तस्येति । यथोक्तावगतिफलमाह—अहरहरिति । एवंविदिति विशेषणममृष्यमाणः शङ्कते—नन्विति । अनेवंविदोऽपि सुषुप्तिकाले ब्रह्मप्राप्तिमङ्गी करोति—

दिन-प्रतिदिन जाते हुए भी सुषुप्तकाल में अनुभूति नहीं करते कि मैं आज ब्रह्मीभूत हो गया हूँ क्योंकि अविद्यादि दोषों के द्वारा अपने स्वरूप से विचलित हुए वे मिथ्याज्ञान से आवृत्त हैं, कितने दुःख की बात है कि अपना स्वरूप होते हुए भी प्राणियों को ब्रह्मभाव की उपलब्धि नहीं होती ।।२।।

पूर्वमन्त्र में आत्मा के स्वरूप "अपहतपाप्मा" का यहाँ 'वै' शब्द से पुनः स्मरण किया जाता है। वह यह विवक्षित आत्मा हृदय में स्थित है। हृदय कमल आकाश शब्द से कहा गया है। उस हृदय का यही एक निर्वचन है; दूसरा नहीं। हृदय में यह आत्मा रहता है इसी से हृदय नाम पड़ा, इस निरुक्ति की प्रसिद्धि होने पर भी "अपना हृदय आत्मा ही है" ऐसा जानना चाहिए। 'यह हृदय आत्मा है' इस प्रकार दिन-प्रतिदिन जानने वाला स्वर्गलोक हृदयस्थ ब्रह्म को प्राप्त करता है। इस पर शंका होती है कि इस प्रकार न जानने वाला भी सुषुप्तकाल में हृदयस्थ ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, इसमें श्रुति प्रमाण है—"हे सोम्य ! सुषुप्तकाल में ब्राह्मी स्थिति से युक्त हो जाता है" । श्रुति का प्रमाण देते से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति

यह जो (सुषुप्ति अवस्थारूप) संप्रसाद है, वह (इस संप्रसाद से उपलक्षित आत्मा) इस शरीर से आत्मबुद्धि का परित्याग कर परम ज्योति को प्राप्त हो निजरूप से अभिसम्पन्न हो जाता है।

सुषुप्तकाले सता सोम्य तदा संपन्न इत्युक्तत्वात्। बाढमेवं तथाऽप्यस्ति विशेषः। यथा जानन्नजानंश्च सर्वो जन्तुः सद्ब्रह्मैव तथाऽपि तत्त्वमसीति प्रतिबोधितो विद्वान्सदेव नान्योऽस्मीति[1] जानन्सदेव भवति। एवमेव विद्वानविद्वांश्च सुषुप्ते यद्यपि सत्संपद्यते तथाप्येवंविदेव स्वर्गं लोकमेतीत्युच्यते। देहपातेऽपि विद्याफलस्यावश्यंभावित्वादित्येष विशेषः ॥३॥

सुषुप्तकाले स्वेनाऽऽत्मना सता संपन्नः सन्सम्यक्प्रसीदतीति जाग्रत्स्वप्नयोर्विषयेन्द्रियसंयोगजातं कालुष्यं जहातीति संप्रसादशब्दो यद्यपि सर्वजन्तूनां साधारणस्तथाऽप्येवंवित्स्वर्गं लोकमेतीति प्रकृतत्वादेष संप्रसाद इति संनिहितवद्यत्न-

---

बाढमेवमिति। तर्हि किमित्येवंविदिति विशेषणमित्याशङ्क्याऽऽह—तथाऽपीति। विद्वदविदुषोर्विशेषमेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति। त्वं तदसीत्याचार्येण प्रतिबोधितो विद्वान्सदेव भवत्यन्यस्त्वविद्वान्स्मीति देहादिकमेव जानन्न सदेव भवतीति योजना। देहपातेऽपीत्यपिशब्देन जीवदवस्था दृष्टान्तिता ॥३॥

संप्रसादस्य विदुषो यन्मुक्त्यालम्बनं शुद्धं ब्रह्म तत्तादात्म्योपदेशेनोपास्यं स्तोतुं संप्रसादशब्दार्थं कथयति—सुषुप्तेति। सम्यक्प्रसीदतीति संप्रसादो विद्वानिति शेषः। स्वाभाविकमेवाऽऽत्मनः स्वास्थ्यं कथं सुषुप्ते प्रसीदतीति विशेष्यते तत्राऽऽह—जाग्रदिति। जहातीति सुषुप्तः पुरुषः संप्रसाद इति विशेषः। व्युत्पत्तिबलेन संप्रसादशब्दः सौषुप्तसर्वजीवसाधारणस्तत्कथमेष संप्रसाद इति संनिहितविद्वत्परामर्शस्तत्राऽऽह—संप्रसादशब्द इति। तस्य सौषुप्तसर्वजीवसाधारण्येऽपि प्रक्रमवशाद्विद्वानेवैष संप्रसाद इति व्यपदिश्यते। यथा संनिहितोऽर्थो यत्नविशेषादेष इतिशब्दशक्तिवशादुच्यते तथेहापीत्यर्थः।

आपकी बात तो मान लेते हैं, परन्तु यहाँ विशेषता इतनी है कि जिस प्रकार कोई जाने अथवा न जाने सभी जीवात्मा का स्वरूप सद् ब्रह्म ही है तो भी जब 'तत्त्वमसि' महावाक्य से बार-बार सचेत कराया हुआ विद्वान् यह अनुभव करता है "मैं सत् स्वरूप हूँ अन्य कुछ नहीं हूँ" इतना जानने से वह सन्मय हो जाता है। इसी प्रकार विद्वान् हो या मूर्ख, यद्यपि सुषुप्त काल में सत्संपत्ति की उपलब्धि होती है किन्तु विद्वान् ही हृदयाकाशस्थ ब्रह्म की प्राप्तिरूप स्वर्गलोक में जाता है। विद्या का जो फल है वह देह के नाश होने पर भी अवश्य ही होकर रहता है, यही मन्त्र में विशेषता है।३॥

सुषुप्तकाल अपनी आत्मा से सत् तत्त्व युक्त होकर अत्यन्त प्रसन्न होता है, जाग्रत्स्वप्नकालीन विषय इन्द्रिय के सम्पर्क से होने वाली कालिमा को छोड़ देता है। मन्त्र में 'संप्रसाद' शब्द समस्त

---

१. अस्मीति प्रतीत्या देहादिकमेव विषयीकुर्वन्नित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ॥ ४ ॥

यह आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है और यही ब्रह्म है। ऐसा गुरु ने कहा, उस ही इस ब्रह्म का 'सत्य' ऐसा नाम है ॥ ४ ॥

विशेषात्सोऽथेदं शरीरं हित्वाऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय शरीरात्मभावनां परित्यज्येत्यर्थः। न त्वासनादिव समुत्थायेतीह युक्तम्। स्वेन रूपेणेति विशेषणात्। न ह्यन्यत उत्थाय स्वरूपं संपत्तव्यम्। स्वरूपमेव हि तन्न भवति प्रतिपत्तव्यं चेत्स्यात्। परं परमात्मलक्षणं विज्ञप्तिस्वभावं ज्योतिरुपसंपद्य स्वास्थ्यमुपगम्येत्येतत्। स्वेनाऽऽत्मीयेन रूपेणाभिनिष्पद्यते प्रागेतस्याः स्वरूपसंपत्तेरविद्यया देहमेवापरं रूपमात्मत्वेनोपगत इति तदपेक्षयेदमुच्यते स्वेन रूपेणेति। अशरीरता ह्यात्मनः स्वरूपं यत्स्वं परं ज्योतिःस्वरूपमापद्यते संप्रसाद एष आत्मेति होवाच। स ब्रूयादिति यः श्रुत्या नियुक्तोऽन्तेवासिभ्यः। किंचैतदमृतम-

---

य एष एवंवित्प्रकृतः संप्रसादः स विद्वानिति यावत्। [2]विवेकानन्तर्यमथशब्दार्थः। समुत्थानशब्दस्य मुख्यार्थत्वं वारयति—न त्विति। देहादुत्थितस्यापि स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिर्भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—न हीति। [3]कुतोऽयं स्वरूपेऽभिनिष्पत्तिप्रयोगस्तत्राऽऽह—प्रागिति। एतच्छब्दः सम्यग्ज्ञानविषयः। अनात्मस्वरूपप्रतिपत्तिभ्रान्तिनिवृत्त्यपेक्षया स्वरूपसंपत्तिरुपचरितेत्यर्थः। किं तत्स्वरूपमिति तदाह—अशरीरता हीति। यथा मिथ्यारूप्यतादात्म्यनिवृत्तौ स्वाभाविकेनारूप्यात्मना शुक्तिरवतिष्ठते तथा शरीरतादात्म्यभ्रान्तिनिवृत्तौ तदभावोपलक्षितं स्वच्छं स्वरूपमेवावस्थितं भवतीत्यर्थः। एष आत्मेति होवाचेत्यत्रैषशब्दार्थमाह—यत्स्वमिति। कोऽसावुक्तिकर्तेत्याकाङ्क्षायामाह—स ब्रूयादिति। न केवलमात्मत्वमेव प्रकृतस्य ज्योतिषः किंतु रूपान्तरत्वमस्तीत्याह—किंचेति। अविनाशित्वे हेतुमाह—

प्राणियों के लिए सामान्य प्रयोग है तथापि 'ऐसा जानने वाला विद्वान् स्वर्गलोक की प्राप्ति करता है' यह प्रकरण होने से सर्वाधिक प्रसन्नता की स्थिति है, ऐसा कहा। प्रकरणस्थ विद्वान् इस शरीर को छोड़ कर, इस शरीर से आत्मा की भावना का परित्याग करके स्व स्वरूप की प्राप्ति करे। मन्त्र में "उठ करके" से आसनादि से उठने जैसा तात्पर्य नहीं है क्योंकि 'अपने रूप की प्राप्ति करे' ऐसा फल निरूपण मन्त्र में ही प्रदर्शित किया है। और किसी प्रकार से उठकर स्व स्वरूप की प्राप्ति होना संभव नहीं है। अर्थान्तर से यदि और कुछ प्राप्त हो भी गया तो वह स्व स्वरूप ही नहीं होगा। परमात्मसञ्ज्ञक विज्ञप्तिस्वभाव स्वस्थता लाभकर स्व स्वरूप में स्थित हो जाता है। जब तक इस स्वरूप में स्थिति नहीं होती, तब तक अविद्या के कारण देह को आत्मरूप से समझने लगता है। इसकी अपेक्षा से कहा है कि निज स्वरूप लाभ करता है। (शरीर से तादात्म्य की भ्रान्ति निवृत्त होने पर) अशरीरता ही आत्मा का स्वरूप है, ऐसा अनुभव होता है। इसीसे श्रुति कह रही है; उत्कृष्ट ज्योति स्वरूप प्राप्त

---

१. स्वात्मत्वेन साक्षात्कृत्येति यावत्। २. विवेको विद्वदविद्वद्विषयः। ३. कुत इति—स्वरूपस्य प्रतिपत्तव्यत्वासंभवे कथं तथा प्रयोग इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे

वे ये 'स' 'ती' तथा 'यम्' अर्थात् सकार, तकार और यम् ऐसे तीन अक्षर हैं (यहाँ पर तकार उत्तरवर्ती ईकार उच्चारण मात्र के लिए है, क्योंकि पहले ह्रस्व इकार से ही सम्बोधित किया गया है) उनमें जो सकार है; वह अमृत है, जो तकार है; वह मर्त्य है और जो यम् है, उससे वह

विनाशि भूमा यो वै भूमा तदमृतमित्युक्तम्। अत एवाभयं भूम्नो द्वितीयाभावावत एतद्ब्रह्मेति। तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नामाभिधानम्। किं तत्सत्यमिति। सत्यं ह्यवितथं ब्रह्म। तत्सत्यं स आत्मेति ह्युक्तम्। अथ किमर्थमिदं नाम पुनरुच्यते। तदुपासनविधिस्तुत्यर्थम् ॥ ४ ॥

तानि ह वा एतानि ब्रह्मणो नामाक्षराणि त्रीण्येतानि सतीयमिति सकारस्तकारो यमिति च। ईकारस्तकार उच्चारणार्थोऽनुबन्धः। ह्रस्वेनैवाक्षरेण पुनःप्रतिनिर्देशात्तेषां तत्र यत्सत्सकारस्तदमृतं सद्ब्रह्मामृतवाचकत्वादमृत एव सकारस्तकारान्तो निर्दिष्टः।

भूमेति। तथाऽपि कथमविनाशित्वं तत्राऽऽह—यो वा इति। इतिशब्दो हेत्वर्थः। यस्माद्यथोक्तलक्षणं ब्रह्म तस्मात्तदुपासनामर्हतीत्यर्थः। उपास्यस्य ब्रह्मणो नाम निर्दिशति—तस्येति। उक्तस्य पुनरुक्तिर-र्थिकेत्याशङ्क्य परिहरति—किमर्थमित्यादिना ॥४॥

उपास्यस्तुत्यर्थं नामोक्त्वा तादर्थ्येनैव नामाक्षराणि प्रस्तौति—तानीति। तानि कानीत्यपेक्षा-यामाह—एतानीति। कथं तकार इत्युच्यत ईकारस्यापि तत्र भावादित्याशङ्क्याऽऽह—ईकार इति। तत्र हेतुमाह—ह्रस्वेनेति। दीर्घमीकारमुद्दिश्य ह्रस्वं पुनरनुवदन्नविवक्षितत्वमेव नामाक्षरेषु तस्य सूचय-तीत्यर्थः। त्रयाणामक्षराणामवान्तरभेदं दर्शयति—तेषामिति। [1]निर्धारणे षष्ठी। वर्णविभागानन्तर्य-

---

करता है अत्यधिक प्रसन्न रहता है यही आत्मा है। श्रुतिमुख से आचार्य अपने शिष्यों को इस प्रकार उपदेश करे। इतना ही नहीं, वह आत्मा अमृत अविनाशी 'भूमा है, जो भूमा है उसका त्रिकाल में नाश नहीं होता; ऐसा कहा गया। जहाँ द्वितीय हो, वहीं भय होता है, भूमा अद्वितीय होने से अभय है, यही ब्रह्म है। उसी ब्रह्म का यह एक नाम है। क्या ? सत्य। ब्रह्म सत्य है, मिथ्या नहीं है। वह सत्य ही आत्मा है, ऐसा कहा गया। उस ब्रह्म की उपासना के विधान की प्रशंसा के लिए ब्रह्म के सत्य संज्ञा की श्रुति में पुनरुक्ति की गई ॥४॥

इस ब्रह्म के 'सत्य' नाम में तीन अक्षर हैं सकार, तकार और यम्। मन्त्र में दूसरे अक्षर 'ती' में ईकार उच्चारण के लिए अनुबन्ध मात्र है क्योंकि ह्रस्व अक्षर से उन तीनों का प्रतिपादन हुआ है। 'सत्यम्' में जो 'सकार' है वह अमृत है। सद् ब्रह्म अमृत का वाची होने अमृत ही सकार है; तकारान्त

---

१. तत्रेत्यस्यैव व्याख्यानं तेषामितीत्याशयेनाह—निर्धारणे षष्ठीति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेति ॥ ५ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

पुरुष दोनों का नियमन करता है। इसीलिए 'यम्' इस प्रकार जानने वाला पुरुष प्रतिदिन स्वर्गलोक को प्राप्त कर लेता है ॥ ५ ॥

॥ इति तृतीयः खण्डः ॥

अथ यत्ति तकारस्तन्मर्त्यम्। अथ यद्यमक्षरं तेनाक्षरेणामृतमर्त्याख्ये पूर्वे उभे अक्षरे यच्छति यमयति नियमयति वशी करोत्यात्मनेत्यर्थः। यद्यस्मादनेन यमित्येतेनोभे यच्छति तस्माद्यम्। संयते इव ह्येतेन यमा लक्ष्येते। ब्रह्मनामाक्षरस्यापीदममृतत्वादिधर्मवत्त्वं महाभाग्यं किमुत नामवत इत्युपास्यत्वाय स्तूयते। ब्रह्मनामनिर्वचनेनैवं नामवतो वेत्तैवंवित्। अहरहर्वा एवंवित्स्वर्गं लोकमेतीत्युक्तार्थम् ॥ ५ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥ ३ ॥

मर्त्यशब्दार्थः। तकारस्याक्षरसामान्यान्मर्त्यत्वम्। कथमक्षरे पूर्वे यमित्यक्षरेण प्रयोक्ता नियमयतीत्याकाङ्क्षायां नियमनस्वाभाव्येनेत्याह—आत्मनेति। यमित्यक्षरस्य नियमनस्वाभाव्यमेव साधयति—यद्यस्मादिति। तस्य तत्स्वभावत्वेऽनुभवमनुकूलयति—संयते इवेति। यमा यमित्यक्षरेणेत्यर्थः। तस्य पूर्वाभ्यामुपरिष्टाद्भावित्वं तन्नियामकत्वे हेतुरिति मत्वाऽऽह—एतेनेति। लक्ष्येते पूर्वे अक्षरे इति शेषः। ब्रह्मणः सत्यमिति नाम तस्य यन्निर्वचनं कृतं तस्य प्रयोजनमाह—ब्रह्मेति। फलवाक्यस्थमेवंविदर्थं व्याकरोति—एवमिति। वाक्यं तु न व्याख्येयं प्रागेव व्याख्यातत्वादित्याह—अहरिति ॥५॥

इत्यष्टमाध्यायस्य तृतीयः खण्डः ॥३॥

है जो 'सत्यम्' में तकार है वह मर्त्य है एवं जो इसमें 'यम्' अक्षर है, इससे यह अमृत और मर्त्य पूर्व के दोनों अक्षरों का नियमन करता है, अपने वश में करता है। दोनों अक्षर इस 'यम्' के वशीभूत हैं। 'यम्' इस अक्षर से वे दोनों संयम से प्रतीत होते हैं। ब्रह्म के सत्य नाम के निर्वचन करने का प्रयोजन यह है कि इसके एक-एक अक्षर भी अमृतधर्मा होने से महाभाग्यशाली है फिर जिस ब्रह्म का यह नाम है, उसका तो कहना ही क्या? इसलिए उसकी उपासना के लिए स्तुति की जा रही है। 'सत्य' नाम के निर्वचन पूर्वक ब्रह्म को जो दिन-प्रतिदिन जानता है वह स्वर्गलोकात्मक ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त होता है, ऐसा श्रुति का अर्थ है ॥५॥

---

१. एतेन—उपरिष्टाद्भाविनेत्यर्थः। हेतुगर्भं विशेषणम्। २. अक्षरसामान्यादिति—मर्त्यशब्दघटकतकाराक्षरतुल्यत्वादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः)

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसंभेदाय नैतꣳ सेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳ सर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मलोकः ॥ १ ॥

सेतु स्वरूप आत्मोपासना का फल

(उक्त लक्षण वाला संप्रसाद स्वरूप) जो आत्मा है, वह इन लोकों को विशेष रूप से सेतु के सदृश धारण करने वाला है, जिससे कि इनका परस्पर संघर्ष न हो जाय। इस सेतुरूप आत्मा को दिन-रात प्राप्त नहीं करते (क्योंकि यह काल से परिच्छिन्न नहीं है) इसे न जरा, न मृत्यु, न शोक और न पुण्य तथा पाप ही प्राप्त होते हैं। प्रत्युत सम्पूर्ण पाप इससे निवृत्त हो जाते हैं, क्योंकि यह ब्रह्मलोक स्वरूप है तथा पाप-शून्य है ॥ १ ॥

अथ य आत्मेति। उक्तलक्षणो यः संप्रसादस्तस्य स्वरूपं वक्ष्यमाणैरुक्तै रनुक्तैश्च गुणैः पुनः स्तूयते ब्रह्मचर्यसाधनसंबन्धार्थम्। य एष यथोक्तलक्षण आत्मा स सेतुरिव सेतुः। विधृतिर्विधरणः। अनेन हि सर्वं जगद्वर्णाश्रमादिक्रियाकारकफलादिभेदनियमैः

वाक्यान्तरमादत्ते—अथेति। तस्य तात्पर्यमाह—उक्तलक्षण इति। प्रकारान्तरेण स्तुतिप्रारम्भार्थो वाक्यस्थोऽथशब्दः। किमिति स्तुतिरित्यपेक्षायां स्तुत्ये 'ब्रह्मण्याधारे ब्रह्मचर्याख्यस्य साधनस्य 'संबन्धविधानार्थमित्याह—ब्रह्मचर्येति। यथा मृदादिमयः सेतुर्व्यवस्थाहेतुरस्येदं क्षेत्रमिति तथाऽयमपि व्यवस्थाहेतुरित्याह—सेतुरिवेति। सेतुत्वं साधयति—विधृतिरिति। विधारकत्वमुपपादयति—अनेनेति। वर्णाश्रमादीत्यादिशब्दो वयोवस्थाविषयः। फलादीत्यादिशब्दस्तु तदवान्तरजातीयविषयः। कर्त्रनुरूपक्रियादिभेदविषयनियमैः सह वर्णादि व्यवस्थापयता परमेश्वरेण सर्वं जगद्विधृतमिति संबन्धः। अन्वय-

---

"यह जो आत्मा है, वही इन सब लोकों की स्थिति के लिए सेतु है" इस श्रुति में जो सम्प्रसाद गुणयुक्त आत्मा है, उसका स्वरूप पूर्व कथित अथवा गुणों से प्रकारान्तर से पुनः कहा जाता है, इससे ब्रह्मचर्य साधन से सम्बन्ध अभिलक्षित होता है। जो यह पूर्वोक्तलक्षण वाला आत्मा है, लोकों को धारण कर रखने के लिए सेतु के समान सेतु है। परमेश्वर ने कर्ता के अनुरूप क्रिया-कारक-फलादि भेद नियमों के द्वारा वर्ण-आश्रम की व्यवस्था करते हुए जगत् की सृष्टि की है। (व्यतिरेक मुख से

---

१. ब्रह्मणि—उक्तसंप्रसादस्वरूपे। २. ब्रह्मचर्येति—ब्रह्मणि चर्यमनुष्ठेयमिति व्युत्पत्त्या ब्रह्मण्याधारेऽस्य संबन्धः। स च साध्यसाधनभावात्मक एव तत्संबन्धघटितमेव च ब्रह्मण आधारत्वम्। तथा चैवंविधमहामहिमब्रह्मोपलब्धये दुरनुष्ठानमपि ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयमेवेत्युपास्यस्तुतिरपि साधनविधाने उपयुज्यत इत्यवधेयम्।
३. संबन्धेति—स्तुत्यस्य ब्रह्मचर्यस्य स्तुत्येनैव संबन्धुमर्हत्वादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्तुरनुरूपं विदधता विधृतम् । अध्रियमाणं हीश्वरेणेदं विश्वं विनश्येद्यतस्तस्मात्स सेतुर्विधृतिः । किमर्थं स सेतुरित्याह—एषां भूरादीनां लोकानां कर्तृ कर्मफलाश्रयाणाम-संभेदायाविदारणायाविनाशायेत्येतत् । किंविशिष्टश्चासौ सेतुरित्याह—नैतम् । सेतुमा-त्मानमहोरात्रे सर्वस्य जनिमतः परिच्छेदके सती नैतं तरतः । यथाऽन्ये संसारिणः कालेनाहोरात्रादिलक्षणेन परिच्छेद्या न तथाऽयं कालपरिच्छेद्य इत्यभिप्रायः । यस्मादर्वाक्संवत्सरोऽहोभिः 'परिवर्तत इति' श्रुत्यन्तरात् । अत एवैनं न जरा तरति न प्राप्नोति । तथा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतं सुकृतदुष्कृते धर्माधर्मौ । प्राप्तिरत्र तरणशब्देनाभिप्रेता नातिक्रमणम् । कारणं ह्यात्मा । न शक्यं हि कारणातिक्रमणं कर्तुं कार्येण । अहोरात्रादि च सर्वं सतः कार्यम् । अन्येन ह्यन्यस्य प्राप्तिरतिक्रमणं वा क्रियेत । नतु तेनैव तस्य । न हि घटेन मृत्प्राप्यतेऽतिक्रम्यते वा । यद्यपि पूर्वं य

मुखेनोक्तमेव व्यतिरेकमुखेनाऽऽ(णाऽऽ)ह—अध्रियमाणं हीति । उक्तमेवार्थं प्रश्नपूर्वकं विशदयति—किमर्थमित्यादिना । नैतमिति प्रतीकग्रहणं तद्व्याचष्टे——सेतुमित्यादिना । तदेव वैधर्म्यदृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना । परमात्मनो न कालपरिच्छेद्यतेत्यत्र ऽऽथर्वणश्रुतिं प्रमाणयति—यस्मादिति । तरतेरतिक्रमणार्थो नाऽऽत्मनि संभवतीत्यत्र हेतुमाह—कारणं हीति । कार्यस्य कारणाति-क्रमणं मा भूदहोरात्रादेस्त्वात्मातिक्रमणं किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—अहोरात्रादि चेति । तरतेरति-क्रमणार्थत्वमङ्गीकृत्यापि निषेधे हेतुमाह—अन्येनेति । तरतिवाक्यस्यापहतपाप्मादिवाक्येन पौनरुक्त्य-माशङ्क्य परिहरति—यद्यपीति । विशेषणानामानन्त्यात्प्रत्येकं प्रतिषेधवचनासंभवमभिप्रेत्याऽऽह—

उसी का प्रतिपादन करते हैं—) यदि ईश्वर इस जगत् को धारण न करता तो आधारक के बिना संसार नष्ट हो जाता । इसलिए वह धारण करने के लिए सेतु है । उसे सेतु क्यों बना दिया, इस पर श्रुति कहती है—क्योंकि पृथिवी आदि लोकों में कर्ता, कर्म व फल के आश्रित होने में कोई दरार न पड़ जाए । यह सेतु किस प्रकार का है, इस पर श्रुति कहती है—इस सेतु को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । आत्मा रूप सेतु को सर्व प्राणियों के परिच्छेदक रूप में स्थित दिन रात कुछ नहीं कर सकते । जिस प्रकार अन्य संसारी लोक अहोरात्र संज्ञक काल के चक्कर में रहते हैं, इस प्रकार यह काल के वन्धन में नहीं रहता । आर्थवण श्रुति कहती है—दिन ही पूर्ण संवत्सर व्याप्त हुआ करता है किन्तु परमात्मा के विषय में ऐसा नहीं । इसलिए इसको जरावस्था प्राप्त नहीं करती । इसी प्रकार मृत्यु, शोक, धर्म-अधर्म इसे प्राप्त नहीं हो सकते । 'तरण' शब्द मन्त्र में प्राप्ति के लिए आया है, लाँघने के लिए नहीं आया है । यहाँ आत्मा ही कारण है, उसमें लाँघना अर्थ सिद्ध नहीं होता । कार्य के द्वारा कारण का अतिक्रमण करना संभव नहीं है । दिन और रात इत्यादि उस सत् आत्मा का ही कार्य है । किसी एक द्वारा दूसरे की प्राप्ति या लाँघना होता है, उसी से उसी की प्राप्ति या लाँघना सम्भव नहीं है । घट के द्वारा मृत्तिका की प्राप्ति या लंघन संभव नहीं है । पूर्व मन्त्र में 'अपहतपाप्मा' इत्यादि से

---

१. परिवर्तत इति—तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतमिति श्रुतिशेषः । २. बृ० उ० ४।४।१६ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्माद्वा एतꣳ सेतु तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳ सेतु तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभि-निष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥

इसलिए सेतुरूप इस आत्मा को पारकर जाने पर (अज्ञानावस्था में पुरुष) अन्धा होने पर भी ज्ञानोत्तर काल में अन्धा नहीं होता, वैसे ही विद्ध होने पर भी अविद्ध हो जाता है। उपतापी होने पर भी रोगादि उपताप से रहित हो जाता है। इसलिए इस सेतु को प्राप्त कर तमोरूपा रात्रि भी दिन हो जाती है, क्योंकि यह ब्रह्मलोक स्वभाव से सदा प्रकाश स्वरूप है ॥ २ ॥

आत्माऽपहतपाप्मेत्यादिना पाप्मादिप्रतिषेध उक्त एव तथाऽपीहायं विशेषो न तरतीति प्राप्तिविषयत्वं प्रतिषिध्यते। तत्राविशेषेण जराद्यभावमात्रमुक्तम्। अहोरात्राद्या उक्ता अनुक्ताश्चान्ये सर्वे पाप्मान उच्यन्तेऽतोऽस्मादात्मनः सेतोर्निवर्तन्तेऽप्राप्यैवेत्यर्थः। अपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्मैव लोको ब्रह्मलोक उक्तः ॥ १ ॥

यस्माच्च पाप्मकार्यमान्ध्यादि शरीरवतः स्यान्न त्वशरीरस्य तस्माद्वा एतमात्मानं सेतुं तीर्त्वा प्राप्यानन्धो भवति देहवत्त्वे पूर्वमन्धोऽपि सन्। तथा विद्धः सन्देहवत्त्वे स देहवियोगे सेतुं प्राप्याविद्धो भवति। तथोपतापी रोगाद्युपतापवान्सन्ननुपतापी भवति। किंच यस्मादहोरात्रे न स्तः सेतौ तस्माद्वा एतं सेतुं तीर्त्वा प्राप्य नक्तमपि तमोरूपं

अहोरात्राद्या इति। पाप्मकार्याणामात्मानमप्राप्यैव निवृत्तौ हेतुमाह—अपहतेति ॥१॥

यथोक्तसेतुप्राप्तौ फलितमाह—यस्मादिति। 'स्वाभाविकमस्यानन्धत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—देहवत्त्व इति। विद्धो दुःखादिसंबन्धी। इतश्चाऽऽत्मसेतोरस्ति महाभागधेयत्वमित्याह—किंचेति।

पाप का निषेध किया ही गया है, तथापि इस मन्त्र में यह विशिष्टता है कि उस आत्मा (सेतु) का "नहीं लंघन करता है" इससे प्राप्ति का निषेध किया है। वहाँ सामान्य रूप से जरादि का अभाव मात्र कहा है। (विशेषणों के असीम होने से प्रत्येक का उपपादन संभव न होने से) अहोरात्रादि कहे हैं, अन्य अनुक्त ही रहने देकर सब पाप कहे हैं। इससे ये सब आत्मा के सेतु को बिना प्राप्त किए हुए ही लौट आते हैं। पाप से विनिर्मुक्त ब्रह्म ही है, उसके लोक को ब्रह्मलोक कहा है ॥१॥

पाप का कार्य अन्धापन आदि शरीरधारी को ही होता है; अशरीरी को नहीं होता। इसलिए इस आत्मा रूप सेतु की प्राप्ति कर अन्धा नहीं रह जाता, चाहे पहले देहधारी अन्धा भी क्यों न हो। इसी तरह प्राणी दुःखादि से युक्त हो परन्तु प्राणों के उत्क्रमण होने पर सेतु की प्राप्ति होने से दुःख से छूट जाता है। रोगादि से पीड़ित रोग की पीड़ा से मुक्त हो जाता है। इतना ही नहीं; क्योंकि सेतु में अहोरात्र की गति नहीं है, इसलिए इस सेतु की प्राप्ति कर तमो रूपी रात्रि भी पूर्ण प्रकाशयुक्त

---

1. स्वाभाविकमिति—सेतुतरणात्प्रागपि स्वतःसिद्धमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाᳬ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।३।

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ।। ४ ।।

ऐसा होने के कारण जो इस पूर्वोक्त ब्रह्मलोक को अष्ट मैथुन त्यागरूप ब्रह्मचर्य के द्वारा शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश के अनन्तर जानते हैं, ऐसे उपासक को ही यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उनकी सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छागति हो जाती है ।। ३ ।।

॥ इति चतुर्थः खण्डः ॥

रात्रिरपि सर्वमहरेवाभिनिष्पद्यते । विज्ञप्त्यात्मज्योतिःस्वरूपमहरिवाहः सदैकरूपं विदुषः संपद्यत इत्यर्थः । सकृद्विभातः सदा विभातः सदैकरूपः स्वेन रूपेणैष ब्रह्मलोकः ॥ २ ॥

तत्तत्रैवं सत्येतं यथोक्तं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येण स्त्रीविषयतृष्णात्यागेन शास्त्राचार्योपदेशमनुविन्दति स्वात्मसंवेद्यतामापादयन्ति ये तेषामेव ब्रह्मचर्यसाधनवतां ब्रह्मविदामेष ब्रह्मलोकः, नान्येषां स्त्रीविषयसंपर्कजाततृष्णानां ब्रह्मविदामपीत्यर्थः । तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवतीत्युक्तार्थम् । तस्मात्परममेतत्साधनं ब्रह्मचर्यं ब्रह्मविदामित्यभिप्रायः ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

कथं सर्वमपि तमोरूपमहरेव विदुषः स्यान्नहि विद्ययापि विरुद्धोऽर्थः सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—विज्ञप्तीति । तत्र हेतुमाह—सकृदिति । ब्रह्मलक्षणोऽवेद्यो लोकः स्वप्रकाशचिदेकतानो यतोऽवतिष्ठतेऽतस्तद्रूपत्वाद्विदुषो यथोक्तरूपत्वमविरुद्धमित्यर्थः ॥२॥

विद्याफले यथोक्तरीत्या व्यवस्थिते सत्येतत्फलं विद्यावत्त्वेन केषां सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेति । ब्रह्मचर्यवतां विद्याद्वारा ब्रह्माख्यो लोकः फलतीत्यर्थः । तेषामेवेत्येवकारद्योतितमर्थमाह—नान्येषामिति । ब्रह्मविदामपीति वाङ्मात्रब्रह्मवित्त्वमुच्यते । तेषां ब्रह्मचर्यवतां ब्रह्मविदामिति यावत् । ब्रह्मचर्यसाधनवतामेव ब्रह्मवित्त्वेन ब्रह्माख्यो लोको भवतीति स्थिते फलितमाह—तस्मादिति । साधनं ब्रह्मविद्यायामिति शेषः । ब्रह्मविदामिति भाविनीं वृत्तिमाश्रित्योक्तम् ॥३॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्थः खण्डः ॥४॥

दिन में परिवर्तित हो जाती है। वह विद्वान् (विद्या के द्वारा) विज्ञप्ति आत्मज्योति स्वरूप दिन की तरह प्रकाशमान् सत् अद्वितीय रूप की प्राप्ति करता है। अपने रूप से ही सदा प्रकाशमान् सत् अद्वितीय स्वरूप यह ब्रह्मलोक है ॥२॥

उपरोक्त रीति से विद्या का फल सुनिश्चित हो जाने पर किन्हें इस फल की प्राप्ति होती है ऐसी शंका होने पर कहते हैं—जो शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश से स्त्री विषयक तृष्णा के त्याग से स्वात्मसंवेद्यता रूप इस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं, उन ब्रह्मचर्यादि साधनसम्पन्न ब्रह्मात्मवेत्ताओं के लिए ही यह ब्रह्मलोक है, स्त्री विषयक आनन्द में तृष्णा वाले, केवल वाणी मात्र से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ।)

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वाऽऽत्मानमनुविन्दते ॥ १ ॥

यज्ञादि में ब्रह्मचर्य दृष्टि

अब लोक में (परम पुरुषार्थ का साधन होने के कारण) जिसे यज्ञ कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जो ज्ञानवान् हैं, वे ब्रह्मचर्य से ही उस ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं और जिसे "इष्ट" ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। क्योंकि ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही पूजन या आत्मविषय एषणा कर उस आत्मा को शास्त्र एवं आचार्य के उपदेशानुसार साक्षात् जान लेता है ॥ १ ॥

य आत्मा सेतुत्वादिगुणैः स्तुतस्तत्प्राप्तये ज्ञानसहकारिसाधनानन्तरं ब्रह्मचर्याख्यं विधातव्यमित्याह। यज्ञादिभिश्च तत्स्तौति कर्तव्यार्थम्—

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते लोके परमपुरुषार्थसाधनं कथयन्ति शिष्टास्तद्ब्रह्मचर्यमेव। यज्ञस्यापि यत्फलं तद्ब्रह्मचर्यवाँल्लभतेऽतो यज्ञोऽपि ब्रह्मचर्यमेवेति प्रतिपत्तव्यम्। कथं

अथ यथोक्तपरमात्मप्राप्तिसाधने ज्ञाने सहकारिब्रह्मचर्यं 'प्रागेवो'क्तं तथाच कृतं ब्रह्मचर्यविषयेणोत्तरग्रन्थेनेत्याशङ्क्याऽऽह—य आत्मेति। शमाद्यपेक्षयाऽन्तरशब्दः। उक्तमपि ब्रह्मचर्यं 'विधातुमनन्तरग्रन्थप्रवृत्तिरित्यर्थः। किमिति तर्हि तस्य स्तुतिरित्याशङ्क्य तस्या विधिशेषत्वं दर्शयति—यज्ञादिभिश्चेति। श्रुतिराहोत्तरं वाक्यमित्युक्तं तदादाय व्याकरोति—अथेत्यादिना। ब्रह्मचर्यस्योक्तरीत्या विधित्सितत्वे तदीयस्तुतिप्रारम्भार्थोऽथशब्दः। यज्ञस्य ब्रह्मचर्येऽन्तर्भावं साधयति—यज्ञस्यापीति। न केवलं उक्तमेवार्थमाकाङ्क्षाद्वारा समर्थयते—कथमित्यादिना। पारम्पर्येण चित्तशुद्धिद्वारेणेत्यर्थः।

ब्रह्मज्ञानी कहलाने वालों के लिए यह ब्रह्मलोक नहीं है। ब्रह्मचर्यादि साधनों से युक्त ब्रह्मज्ञानी के लिए ही श्रुति कहती है कि उनका सब लोकों में स्वच्छन्द विचरण हो जाता है। इसलिए ब्रह्मविद्या के लिए ब्रह्मचर्य सर्वश्रेष्ठ साधन है, इसके बिना ब्रह्मात्म विज्ञान असंभव है, यह अर्थ है ॥२॥

चतुर्थ खण्ड के प्रथम मन्त्र में आत्मा की सेतुत्व आदि गुणों से स्तुति की गई। परमात्मा की प्राप्ति के साधन ज्ञान के साथ-साथ शम-दमादि एवं ब्रह्मचर्य संज्ञक अन्य साधनों का विधान भी श्रुति ने किया। कर्तव्य सम्पादन के लिए यज्ञादिकों द्वारा उसकी स्तुति की जाती है—

संसार में परम पुरुषार्थ का साधन जिस यज्ञ को विद्वान् लोग कहते हैं, वह ब्रह्मचर्य ही है। यज्ञ से जो फल मिलना होता है, वह ब्रह्मचर्य से मिल जाता है, इसलिए यज्ञ को भी ब्रह्मचर्य ही है

---

१. छा० उ० ८।५।१। २. उक्तं ब्रह्मचर्येणानुविन्दती त्युक्तमित्यर्थः। ३. विधातुमिति—तथा च पूर्वोक्तिर्न विधिरूपेति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवाऽऽत्मानमनुविद्य मनुते ॥ २ ॥

तथा जिसे "सत्त्रायण" ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि पूर्वोक्त (यज्ञ और इष्ट के समान) ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही सत्स्वरूप परमात्मा से अपनी रक्षा करता है (अत: सत्त्रायण नामवाला भी ब्रह्मचर्य ही है) और जिसे "मौन" ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्यरूप साधन से ही साधन आत्मा को जान करके ध्यान करता है (अत: मौन नाम वाला भी ब्रह्मचर्य ही है) ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्यं यज्ञ इत्याह—ब्रह्मचर्येणैव हि यस्माद्यो ज्ञाता स तं ब्रह्मलोकं यज्ञस्यापि पारम्पर्येण फलभूतं विन्दते लभते ततो यज्ञोऽपि ब्रह्मचर्यमेवेति । यो ज्ञातेत्यक्षरानुवृत्तेर्यज्ञो ब्रह्मचर्यमेव । अथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत् । कथम् । ब्रह्मचर्येणैव साधनेन तमीश्वरमिष्ट्वा पूजयित्वाऽथवैषणामात्मविषयां कृत्वा तमात्मानमनुविन्दते। एषणादिष्टमपि ब्रह्मचर्यमेव ॥ १ ॥

अथ यत्सत्त्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तथा सतः परस्मादात्मन आत्मन-

---

फलद्वारा यज्ञो ब्रह्मचर्येऽन्तर्भवति किंतु यकारज्ञकारसंस्पर्शादपीत्याह—यो ज्ञातेति । इष्टस्य ब्रह्मचर्यान्तर्भावमाकाङ्क्षाद्वारा स्फोरयति—कथमित्यादिना । पूजयित्वा तमात्मानमनुविन्दत इति सबन्धः। ब्रह्मचर्येणाऽऽत्मविषयैषणं निष्पाद्यत इष्टेनापि तदेव संपाद्यते तस्मादेषणा[1]दुभयसादृश्यादिष्टमपि यज्ञवद्ब्रह्मचर्यमेवेत्याह—एषणादिति ॥१॥

बहुयजमानकं वैदिकं कर्म सत्त्रायणम् । तथा यज्ञवदिष्टवच्चेत्यर्थः । कथं सत्त्रायणं ब्रह्मचर्येऽन्तर्भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—सत इति ॥२॥

ऐसा समझना चाहिए। यज्ञ का ब्रह्मचर्य में अन्तर्भाव कैसे है, इस अर्थ को श्रुति आकांक्षा द्वारा समर्थन करती है—क्योंकि ब्रह्मचर्य के द्वारा जिस ब्रह्मलोक को जो ज्ञाता प्राप्त करता है, यज्ञ के द्वारा भी चित्तशुद्धि हो जाने से परम्परया उस लोक को प्राप्त करता है, अत: यज्ञ भी ब्रह्मचर्य ही है। 'यज्ञ' शब्द के यकार और ज्ञकार के आपस में संस्पर्श होने भी यज्ञ का ब्रह्मचर्य में अन्तर्भाव सिद्ध हो जाता है। इतना ही नहीं, यज्ञादि कर्मानुष्ठान रूप जिसे 'इष्ट' कहते हैं, वह भी ब्रह्म ही है। यह कैसे ? क्योंकि ब्रह्मचर्य रूप साधन से ही उस ईश्वर का पूजन कर अथवा उसे आत्मविषयिणी एषणा बनाकर आत्मोपलब्धि की जा सकती है। ब्रह्मचर्य से भी आत्मविषयिणी एषणा निष्पादित की जाती है यज्ञादिकर्मानुष्ठान रूप इष्ट भी उसी उद्देश्य को लेकर होता है, अत: एषणा रूप सादृश्य इष्ट भी यज्ञ की तरह ब्रह्मचर्य ही है ॥१॥

---

१. उभयेति—फलवर्णोभयेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै

जिसे "अनाशकायन" (अविनाशी) कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य है, क्योंकि जिस आत्मा को ब्रह्मचर्य से प्राप्त करता है; वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता और जिसे "अरण्यायन" ऐसा कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि इस ब्रह्मलोक में ब्रह्मचारी पुरुष 'अर' और 'ण्य' नाम वाले दो समुद्रों

त्राणं रक्षणं ब्रह्मचर्यसाधनेन विन्दते। अतः सत्त्रायणशब्दमपि ब्रह्मचर्यमेव तत्। अथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येणैव साधनेन युक्तः सन्नात्मानं शास्त्राचार्याभ्यामनुविद्य पश्चान्मनुते ध्यायति। अतो मौनशब्दमपि ब्रह्मचर्यमेव ॥ २ ॥

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्। यमात्मानं ब्रह्मचर्येणानुविन्दते स एष ह्यात्मा ब्रह्मचर्यसाधनवतो न नश्यत्यतोऽनशनादनाशकायनमपि ब्रह्मचर्यमेव। अथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्। अरण्यशब्दयोरर्णवयोर्ब्रह्मचर्यवतोऽयनादरण्यायनं ब्रह्मचर्यम्। यो ज्ञानाद्यज्ञ एषणादिष्टं सतस्त्राणात्सत्त्रायणं

उपवासपरायणत्वमनाशकायनं तत्कथं ब्रह्मचर्येऽन्तर्भवतीत्याशङ्क्याऽऽह—यमात्मानमिति। अरण्यायनमरण्यवासस्तत्कथं ब्रह्मचर्यान्तर्भूतमित्याशङ्क्याऽऽह—अरण्यशब्दयोरिति। विस्तरेणोक्तमर्थं संक्षिप्याऽऽह—यो ज्ञानादित्यादिना। यो ब्रह्मचर्येणाऽऽत्मनो ज्ञानादात्मानं विदन्ते स ब्रह्मलोकं

यजमानों से विभूषित 'सत्त्रायण' रूप वैदिक कर्म जिसे कहते हैं, वह भी यज्ञ और इष्ट की तरह ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य साधन से परमात्मतत्त्व से जीव की रक्षा होती है, अतः 'सत्त्रायण' में 'सत्' और त्रायण शब्द भी ब्रह्मचर्य को अभिलक्षित करते हैं। श्रुति में जिसे मौन कहा गया है, वह भी ब्रह्मचर्य ही है क्योंकि ब्रह्मचर्य रूप साधन से युक्त हुआ ही शास्त्र एवं आचार्य से आत्मज्ञान प्राप्त कर उसका मनन (ध्यान) करता है। अतः 'मौन' शब्द भी ब्रह्मचर्य ही है ॥२॥

जिसे 'अनाशकायन' (उपवास परायणता) कहते हैं, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य रूप साधन से जिस आत्मा की उपलब्धि होती है, उस ब्रह्मचर्य साधन सम्पन्न की जीवात्मा का नाश नहीं होता, अतः न खाने से अनाशकायन का भी ब्रह्मचर्य में अन्तर्भाव है। (वन में रहना रूप) जिस अरण्यायन कहा जाता है, वह भी ब्रह्मचर्य ही है। अरण्य शब्दों का (समुद्रों) का ब्रह्मचर्य से सम्पन्न प्रमाता के अधीन रहने के कारण अरण्यायन ब्रह्मचर्य है। परम पुरुषार्थ के साधन इस ब्रह्मचर्य की ही विभिन्न रूपों में मान्यता दी गई है। ज्ञान से यज्ञ, आत्मविषयिणी एषणा से इष्ट, सत्तत्त्व की रक्षा से सत्त्रायण, आत्मा के मनन से मौन, उपवास के अभ्यास से अनाशकायन, वन गमन के कारण अरण्यायन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं-मदीयꣳ सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳ हिरण्मयम् ॥ ३ ॥

को प्राप्त करता है। यहाँ से तीसरे द्युलोक में ऐरंमदीय (हर्षोत्पादक) सरोवर है वहाँ पर सोम सवन नामवाला अश्वत्थ वृक्ष है, वहाँ हिरण्यगर्भ की अपराजित नामवाली पुरी है तथा ब्रह्मारूप प्रभु के द्वारा विशेषरूप से निर्मित स्वर्णमय मण्डप है ॥ ३ ॥

मननान्मौनमनशनादनाशकायनमरण्ययोर्गमनादरण्यायनमित्यादिभिर्महद्भिः पुरुषार्थ-साधनैः स्तुतत्वाद्ब्रह्मचर्यं परमं ज्ञानस्य सहकारिकारणं साधनमित्यतो ब्रह्मविदा यत्नतो [1]रक्षणीयमित्यर्थः। तत्तत्र हि ब्रह्मलोकेऽरश्चह वै प्रसिद्धौ ण्यश्चार्णवौ समुद्रौ समुद्रोपमे वा सरसी तृतीयस्यां भुवमन्तरिक्षं चापेक्ष्य तृतीया द्यौस्तस्यां तृतीयस्यामितोऽस्माल्लोका-दारभ्य गण्यमानायां दिवि। तत्तत्रैव चैरमिराऽन्नं तन्मय ऐरो मण्डस्तेन पूर्णमैरंमदीयं तदुपयोगिनां मदकरं हर्षोत्पादकं सरः। तत्रैव चाश्वत्थो वृक्षः सोमसवनो नामतः सोमोऽमृतं तन्निःस्रवोऽमृतस्रव इति वा। तत्रैव च ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्यसाधनरहितैर्ब्रह्म-चर्यसाधनवद्भ्योऽन्यैर्न जीयत इत्यपराजिता नाम पूः पुरी ब्रह्मणो हिरण्यगर्भस्य। ब्रह्मणा च प्रभुणा विशेषेण मितं निर्मितं तच्च हिरण्मयं सौवर्णं प्रभु विमितं मण्डपमिति वाक्यशेषः ॥ ३ ॥

लभते तस्माद्यज्ञो ब्रह्मचर्यमिति योजना। आदिशब्देन [2]स्वस्य परमपुरुषार्थसाधनत्वं गृह्यते ॥३॥

ब्रह्मचर्य ही है, ज्ञान का सर्वश्रेष्ठ सहकारी साधन ब्रह्मचर्य है। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को सर्वविध यत्न कर इसकी रक्षा करनी चाहिए। उस ब्रह्मलोक में 'अर' और 'ण्य' सञ्ज्ञक दो समुद्र हैं अथवा समुद्र की तरह विशाल दो सरोवर हैं। भुव और अन्तरिक्ष की अपेक्षा तीसरे द्युलोक में अर्थात् यहाँ से लेकर द्युलोक में 'ऐरम्मदीय' नामक सरोवर है। 'इरमिरा' अन्न से जो युक्त है, 'ऐर' मण्ड कहता है 'ऐर' मण्ड से पूर्ण ऐरम्मदीय कहलाता है क्योंकि इस सरोवर में स्नान करने से मस्ती आ जाती है तथा खुशी ही खुशी अङ्ग-अङ्ग में व्याप्त हो जाती है। वहीं पर सोमसवन नाम का 'अश्वत्थ' वृक्ष है इसमें से हर समय अमृत टपकता रहता है। वहीं पर ब्रह्मलोक में हिरण्यगर्भ ब्रह्म की अपराजिता नाम की पुरी है जो कि ब्रह्मचर्य में निष्ठावान् के अतिरिक्त ब्रह्मचर्य साधन शून्य द्वारा जीता नहीं जा सकता। सर्वसमर्थ ब्रह्म ने वहाँ सुवर्णजटित मंडप विशेष रूप से बनाया हुआ है ॥ ३ ॥

---

१. स्तुत्या कल्प्यमानं विधिं दर्शयति—रक्षणीयमिति। २. स्वस्य ब्रह्मचर्यस्येत्यर्थः। तथा च परम-पुरुषार्थसाधनत्वेनापि स्तुतत्वादिति विभज्य योज्यम्। पुरुषार्थसाधनैरित्यनेनादिशब्दार्थस्य यथोक्तस्य सामाना-धिकरण्यासंभवादित्यवधेयम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाँ सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

उस ब्रह्मलोक में जो ये 'अर' और 'ण्य' नामवाले दो समुद्र कहे गए हैं, ब्रह्मचर्य द्वारा 'अर' और 'ण्य' नामवाले उन दोनों समुद्रों को प्राप्त करते हैं, उन्हीं को वह ब्रह्मलोक मिलता है। उनकी सम्पूर्ण लोकों में स्वेच्छा गति हो जाती है ॥ ४ ॥

॥ इति पञ्चमः खण्डः ॥

तत्त्रैव ब्रह्मलोक एतावर्णवौ यावरण्याख्यावुक्तौ ब्रह्मचर्येण साधनेनानुविन्दन्ति ये तेषामेवैष यो व्याख्यातो ब्रह्मलोकस्तेषां च ब्रह्मचर्यसाधनवतां ब्रह्मविदां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। नान्येषामब्रह्मचर्यपराणां बाह्यविषयासक्तबुद्धीनां कदाचिदपीत्यर्थः। नन्वत्र त्वमिन्द्रस्त्वं वरुण इत्यादिभिर्यथा कश्चित्स्तूयते महार्हं एवमिष्टादिभिः शब्दैर्न स्त्र्यादिविषयतृष्णानिवृत्तिमात्रं स्तुत्यर्हं किं तर्हि ज्ञानस्य मोक्षसाधनत्वात्तदेवेष्टादिभिः स्तूयत इति केचित्। न। स्त्र्यादिबाह्यविषयतृष्णापहृतचित्तानां प्रत्यगात्मविवेकविज्ञानानुपपत्तेः। "पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरात्मन्"

ब्रह्मचर्यस्य स्तुतत्वात्तद्विषयं विधिमुक्त्वा तत्सहकृतविद्यासाध्यफलं कथयति—तत्त्रैवेति। ब्रह्मचर्यस्यात्यल्पसाधनत्वान्महती स्तुतिरयुक्ता तद्ब्रह्मचर्येण ज्ञानमुपलक्ष्य तदेव स्तूयत इति मतमुत्थापयति—नन्वत्रेति। तस्य क्षुद्रसाधनत्वमसिद्धं दुरनुष्ठेयत्वात्तद्व्यतिरेकेण ज्ञानासंभवाच्चेन्युत्तरमाह—नेत्यादिना। विषयापहृतचित्तानां नराणां विवेकासंभवे प्रमाणमाह—पराञ्चीति। ध्यायतो

ब्रह्मलोक में 'अर' और 'ण्य' नाम वाले दो समुद्र हैं उसे जो ब्रह्मचर्य साधन से प्राप्त करते हैं, उनके लिए ब्रह्मलोक के स्वरूप का निरूपण कर दिया गया। ब्रह्मचर्य साधन सम्पन्न ब्रह्मतत्त्ववेत्ता सभी लोकों में स्वेच्छा से विचरण करते हैं। दूसरे बाह्य विषयों में आसक्त चित्तवाले व ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करने वालों को वह स्थिति कदापि नहीं होती। (इस पर शंका होती है–) इस छोटेसे ब्रह्मचर्य साधन की इतनी बड़ी स्तुति करना ठीक नहीं जैसे किसी महा पूजनीय की स्तुति की जाती है– 'तुम इन्द्र हो, तुम यम हो, तुम वरुण हो' इत्यादि। इस प्रकार यहाँ ब्रह्मचर्य की इष्टादि शब्द से स्तुति की गई है वह स्त्री आदि विषयों की तृष्णा निवृत्ति के लिए ही है ऐसा नहीं तो किस लिए? ज्ञान ही मोक्ष का साधन होने से इष्टादि के द्वारा ज्ञान की ही स्तुति है–ऐसा किन्हीं-किन्हीं का मत है। ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि (ब्रह्मचर्य कोई क्षुद्रसाधन नहीं है, इसका अनुष्ठान उतना सरल नहीं है, इसके बिना ज्ञान होना संभव नहीं) स्त्री आदि बहिर्मुख करने वाले विषयों की तृष्णा से जिनका चित्त विक्षुब्ध रहता है, वह ब्रह्मात्मविज्ञान की उपलब्धि कैसे करेगा? "स्वयंभू परमेश्वर ने शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इत्यादिश्रुतिस्मृतिशतेभ्यः। ज्ञानसहकारिकारणं स्त्र्यादिविषयतृष्णानिवृत्ति[1]साधनं विधातव्यमेवेति युक्तैव तत्स्तुतिः। ननु च यज्ञादिभिः स्तुतं ब्रह्मचर्यमिति यज्ञादीनां पुरुषार्थसाधनत्वं गम्यते सत्यं गम्यते। न त्विह ब्रह्मलोकं प्रति यज्ञादीनां साधनत्वमभिप्रेत्य यज्ञादिभिर्ब्रह्मचर्यं स्तूयते किं तर्हि तेषां प्रसिद्धं पुरुषार्थसाधनत्वमपेक्ष्य। यथेन्द्रादिभी राजा न तु यत्रेन्द्रादीनां व्यापारस्तत्रैव राज्ञ इति तद्वत्।

य इमेऽर्णवादयो ब्राह्मलौकिकाः संकल्पजाश्च पित्रादयो भोगास्ते किं पार्थिवा आप्याश्च यथेह लोके दृश्यन्ते तद्वदर्णववृक्षपूःस्वर्णमण्डपान्याहोस्विन्मानसप्रत्यय-

---

विषयानित्याद्या स्मृतिरत्र विवक्षिता। ब्रह्मचर्यस्योत्तमसाधनत्वे सिद्धे फलितमाह—ज्ञानेति। ब्रह्मलोकप्राप्तिसाधनस्य ब्रह्मचर्यस्य यज्ञादिभिः स्तुतत्वात्तेषामपि तत्प्राप्तिसाधनत्वं श्रुत्याऽभिप्रेतमिति शङ्कते—नन्विति। किं तेषां पुरुषार्थसाधनत्वं प्रस्तुतश्रुत्या प्रतीतं किं वा ब्रह्मलोकसाधनत्वमिति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति। न द्वितीयो वाक्यभेदप्रसङ्गादित्याह—न त्विति। कथं तर्हि यज्ञादिभिर्ब्रह्मचर्यस्तुतिस्तत्राऽऽह—किं तर्हीति। उक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति। त्वमिन्द्रस्त्वं विष्णुरित्यादिना विप्रादिभी राजा स्तूयते तथाऽपि न तस्येन्द्रादिव्यापारे निरङ्कुशं कर्तृत्वमस्तीति यथेष्यते तथा यज्ञादिभिर्ब्रह्मचर्यस्य स्तुतस्यापि नास्ति तुल्यफलत्वमित्यर्थः।

ब्रह्मलोकस्थान्पदार्थान्निर्णेतुं विचारमवतारयन्नादौ तद्विषयमाह—य इम इति। तत्रैकं पक्षमुत्थाप्य दृष्टान्तेन तदुत्थितिप्रकारमाह—ते किमिति। पक्षान्तरं स्वप्नदृष्टान्तवशाद्दर्शयति—आहोस्वि-

---

लिए प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों को बहिर्मुख करके उनका हनन कर दिया है, अतः जीव सर्वदा अनात्मभूत बाह्य विषयों को ही देखता है, अन्तरात्मा को नहीं" इत्यादि सैंकड़ों श्रुति-स्मृतियाँ इसमें प्रमाण हैं। ज्ञान के सहकारी कारण ब्रह्मचर्य जो स्त्री आदि विषयों से तृष्णा का निवृत्त्यात्मक साधन है, (उत्तम साधन होने से) उसका अनुष्ठान करना चाहिए, इसलिए उसकी स्तुति करना उचित ही है। इस पर शंका होती है–श्रुति में यज्ञादि के द्वारा ब्रह्मचर्य की स्तुति की गई है, इससे तो यज्ञादिकों का परम पुरुषार्थ का साधन होना जाना जाता है। उत्तर देते हुए कहते हैं–ठीक है किन्तु यहाँ यज्ञादि के द्वारा ब्रह्मचर्य की स्तुति, ब्रह्मलोक के प्रति यज्ञादि साधन है, इस कारण से नहीं की जाती बल्कि उनका केवल पुरुषार्थ का साधन मात्र दृष्टिपथ में रखते हुए की जाती है। जिस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा राजा की स्तुति करते हुए कहा जाता है, 'तुम इन्द्र हो, तुम विष्णु हो'। इससे वह इन्द्र एवं विष्णु आदि की तरह स्वतन्त्र व्यापार वाला नहीं हो जाता, इसी प्रकार यहाँ भी यज्ञादि के द्वारा ब्रह्मचर्य की स्तुति करने पर दोनों का समान फल नहीं।

ब्रह्मलोक में स्थित ये समुद्रादि पदार्थ, संकल्प से होने वाले पित्रादि भोग क्या उसी तरह पार्थिव और प्राप्त हो सकने वाले पदार्थ हैं जिस प्रकार संसार में दीखने वाले, सागर, वृक्ष, पुरी एवं स्वर्णमण्डप होते हैं अथवा स्वप्न दृष्टान्त के समान, मन की कल्पना मात्र है। किस पक्ष को मानने से क्या

---

१. निवृत्त्यात्मकं साधनमित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मात्राणीति । किंचातः, यदि पार्थिवा आप्याश्च स्थूलाः स्युर्हृद्याकाशे समाधानानुपपत्तिः । पुराणे च मनोमयानि ब्रह्मलोके शरीरादीनीति वाक्यं विरुध्येत । "अशोकमहिमम्" इत्याद्याश्च श्रुतयः । ननु समुद्राः सरितः सरांसि वाप्यः कूपा यज्ञा वेदा मन्त्रादयश्च मूर्तिमन्तो ब्रह्माणमुपतिष्ठन्त इति मानसत्वे विरुध्येत पुराणस्मृतिः । न । मूर्तिमत्त्वे प्रसिद्धरूपाणामेव तत्र गमनानुपपत्तेः । तस्मात्प्रसिद्धमूर्तिव्यतिरेकेण सागरादीनां मूर्त्यन्तरं सागरादिभिरुपात्तं ब्रह्मलोकगन्तृ कल्पनीयम् । तुल्यायां च कल्पनायां यथाप्रसिद्धा एव मानस्य आकारवत्यः पुंस्त्र्याद्या मूर्तयो युक्ताः कल्पयितुं मानसदेहानुरूप्यसंबन्धोपपत्तेः । दृष्टा हि मानस्य एवाऽऽकारवत्यः पुंस्त्र्याद्या मूर्तयः स्वप्ने ।

दिति । कस्मिन्पक्षे को लाभः को वा दोष इति पृच्छति—किंचेति । आद्यपक्षे दोषदर्शनान्मानसत्वेन सौक्ष्म्ये च पुराणानुग्रहसंभवात्ते मानसा एवेत्याह—यदीति । न केवलं तेषां स्थौल्ये सत्युभे अस्मिन्नित्यादिश्रुत्या पुराणस्मृत्या च विरोधः किं त्वशोकं संतापवर्जितमहिमं शीतस्पर्शशून्यं ब्रह्मलोकमुपयन्तीत्याद्याश्च श्रुतयो ब्रह्मलोकं निरूपयन्त्यस्तत्रत्यानामर्थानां स्थौल्ये विरुध्येरन् । स्थूलानां पदार्थानां तत्र सत्त्वे शीतस्पर्शादेरवर्जनीयत्वादित्याह—अशोकमिति । ब्राह्मलौकिकपदार्थानां मानसत्त्वे पुराणस्मृत्यन्तरविरोधं शङ्कते—नन्विति । किं दृश्यमानरूपेण समुद्रादीनां ब्रह्मलोकगमनस्मृत्यर्थः किं वा स्वरूपान्तरेणेति विकल्प्याऽऽद्यं दूषयति—न मूर्तिमत्त्व इति । [1]उभयत्रानुपलम्भप्रसङ्गादित्यर्थः । प्रथमपक्षायोगे द्वितीयं पक्षं परिशिष्टमाचष्टे—तस्मादिति । अस्तु द्वितीयो विकल्पः का नो हानिरित्याशङ्क्य [2]ब्रह्मलोके मानसेन देहेन मानसानामेव सागरादीनां मानसरूपेण सह संबन्धोपपत्तेर्मानस्य एव मूर्तयस्तेषां ब्रह्मलोकस्थाः कल्पयितुं युक्ता इत्याह—तुल्यायां चेति । तर्हि मनोरथकल्पितवदतिचञ्चलत्वाद्भोगयोग्याकारत्वं [3]सागरादीनां न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—दृष्टा हीति ।

लाभ और क्या हानि है ? यदि ब्रह्मलोकस्थ पदार्थ पार्थिव एवं प्राप्य हैं तो स्थूल होंगे इससे हृद्याकाश में समाधान होना संभव नहीं होगा । पुराण में ब्रह्मलोक मानसी सूक्ष्म सृष्टि है इससे शरीरादि को वहाँ मानने से श्रुति-स्मृति वाक्यों में विरोध आने लगेगा । श्रुतियाँ कहती हैं ब्रह्मलोक संताप वर्जित है, शीत स्पर्श से शून्य है" । इस पर पुनः शंका होती है—"समुद्र, नदियाँ, तालाब, वापी, कूप, यज्ञ, वेद एवं मन्त्रादि मूर्तिमान् विग्रह धारण कर ब्रह्म के पास आते हैं" इस प्रकार पुराण और स्मृति में अन्तर्द्वन्द्व चलने लगेगा क्योंकि मानसत्व का विरोध करने वाले वाक्य उपलब्ध होते हैं । ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि मूर्तिमान् रूप अपने लोकप्रसिद्ध व्यापक स्थूल रूप को लेकर वहाँ नहीं जाता । इस-लिए जब सागरादि की ब्रह्म के पास ब्रह्मलोक में जाने की इच्छा होती है तो वह सागरादि से भिन्न मूर्ति को धारण कर ब्रह्मलोक में जाता है, ऐसी कल्पना करनी चाहिए । समान कल्पना होने पर लोक प्रसिद्ध परिमाण और आकार वाली पुरुष-स्त्री आदि को मूर्तियों की कल्पना करना युक्तिसंगत है क्योंकि मानसी देह के द्वारा मानसिक सागरादि का मानस रूप से एकसाथ सम्बन्ध सिद्ध होने से देहानु-

---

१. इह ब्रह्मलोके च । २. ब्रह्मलोकें मानसेन देहेन वर्तमानानामत एव मानसानामेव तत्रत्यानां सागरादीनामित्यन्वयः । ३. तत्रत्यानाम् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ननु ता अनृता एव । त इमे [1]सत्याः कामा इति श्रुतिस्तथा सति विरुध्येत । न । मानसप्रत्ययस्य सत्त्वोपपत्तेः । मानसा हि प्रत्ययाः स्त्रीपुरुषाद्याकाराः स्वप्ने दृश्यन्ते । ननु जाग्रद्वासनारूपाः स्वप्नदृश्या न तु तत्र स्त्र्यादयः स्वप्ने विद्यन्ते । अत्यल्प[2]मिदमुच्यते । जाग्रद्विषया अपि मानसप्रत्ययाभिनिर्वृत्ता एव सदीक्षाभिनिर्वृत्ततेजोबन्नमयत्वाज्जाग्रद्विषयाणाम् । संकल्पमूला हि लोका इति चोक्तम् "[3]समक्लृपतां द्यावापृथिवी" इत्यत्र । सर्वश्रुतिषु च प्रत्यगात्मन उत्पत्तिः प्रलयश्च तत्रैव स्थितिश्च "[4]यथा वा अरा नाभौ" इत्यादिनोच्यते । तस्मान्मानसानां बाह्यानां च विषयाणामितरेतरकार्यकारणत्वमिष्यत

स्वप्नतुल्यत्वे मिथ्यात्वप्रसक्तिरिति शङ्कते—नन्विति । प्रसङ्गस्येष्टत्वमाशङ्क्य श्रुतिविरोधमाह—त इम इति । ये स्वप्ने दृष्टास्ते न सन्ति न तु दृष्टा इति दर्शनं बाध्यते तथा च स्वाप्नसंवेदनस्य सत्यत्वमिष्टं तथैव ब्राह्मलौकिकानां पदार्थानाम् । मानस्य इति दृष्टान्तं विवृणोति—मानसा हीति । जागरिते संविदतिरिक्ताः सन्ति पदार्थास्तद्वासनारूपास्ते स्वप्ने भान्ति न तु संविदात्मकत्वं तेषामिति शङ्कते—नन्विति । जागरितस्यापि संविद्विवर्तत्वान्न पृथगस्ति सत्त्वमित्युत्तरमाह—अत्यल्पमिति । भूमविद्यालोचनायामपि जाग्रद्विषयाणां संविद्विवर्तत्वं सेत्स्यतीत्याह—संकल्पमूला हीति । इतश्च जाग्रद्विषयाणां संविद्विवर्तत्वमित्याह—सर्वश्रुतिषु चेति । ननु कुलालो घटं चिकीर्षुर्मनसि संकल्पितमाकारं बहिर्निर्मिमीते तत्र संकल्पो बाह्याकारस्य निमित्तं संकल्पश्च पूर्वानुभूतसजातीयगोचरः पूर्वानुभूतोऽपि पूर्वतरसंकल्पनिमित्त इति निमित्तनैमित्तिकभावः सर्वस्य संविद्विवर्तत्वे [5]कथमुपपद्यते तत्राऽऽह—तस्मादिति । यस्मात्सतः सर्वस्येक्षणं पूर्वकल्पीयसदृशगोचरं पूर्वकल्पीयास्ततः पूर्वतरेक्षणनिमित्ता

रूपी नाप की मूर्तियां ब्रह्मलोक में मान लो । ऐसा तो स्वप्न में स्पष्ट देखा जाता है भोगयोग्य मान की आकार वाली पुरुष-स्त्री आदि की मूर्तियाँ ही आँखों के सामने चलती फिरती दीखती हैं ।

इस पर शंका होती है—स्वप्न की तो सारी सृष्टि ही मिथ्या है । श्रुति कहती है—"वे ये सत्यकाम (स्त्री, अन्न, भोजन और बाह्य विषयों की कामना रूप) मिथ्या आच्छादन वाले हैं" ऐसा होने पर विरोध का प्रसङ्ग आ जाएगा । समाधान देते हुए कहते हैं—ऐसा कहना ठीक नहीं है । मानसी सृष्टि की सत्ता सिद्ध ही है स्त्री पुरुषादि आकार वाले मानसिक पदार्थ स्वप्न में देखे जाते हैं । इस पर कहते हैं—जागरित अवस्था में संविद् से अतिरिक्त पदार्थ होते हैं, वही वासना रूप से स्वप्न में दीखने वाले स्त्री-पुरुषादि वहाँ विद्यमान नहीं रहते । स्वप्नदृश्यों का वासनात्मक होना तो बहुत छोटी सी बात है । जाग्रद् अवस्था के विषय भी मानसी कल्पना से निष्पादित होते हैं, जैसे सद् के विचार मात्र से तेज, जल और पृथिवीमय जाग्रद् विषयों का उत्पन्न होना श्रुति स्वीकृत करती है । जाग्रद्विषय संवित् के विवर्ती होने से ये सब दृश्यमान लोक संकल्पमूलक हैं "द्युलोक और पृथिवी ने मानो संकल्प किया क्योंकि ये निश्चल दिखाई देते हैं" इस श्रुति में यह निष्कर्ष निकाला है । समस्त श्रुतियों का यह डिण्डिम घोष है कि प्रत्यगात्म से ही दृश्यमान जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होते हैं, उसी में इसकी

१. छा० उं० ८।३।१ । २. इदम्—स्वप्नदृश्यानामेवं वासनात्मकत्वम् । ३. छा० उ० ७।४।२ । ४. छा० उ० ७।१५।१ । ५. कथमुपपद्यत इति—चिद्विवर्तरूपस्वाप्नार्थानां निमित्तनैमित्तिकभावादृष्टेरिति भावः ।

RajGuru-Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एव बीजाङ्कुरवत् । यद्यपि बाह्या एव मानसा मानसा एव च बाह्या नानृतत्वं तेषां कदाचिदपि स्वात्मनि भवति ।

ननु स्वप्ने दृष्टाः प्रतिबुद्धस्यानृता भवन्ति विषयाः । सत्यमेव । जाग्रद्बोधापेक्षं तु तदनृतत्वं न स्वतः । तथा स्वप्नबोधापेक्षं च जाग्रद्दृष्टविषयानृतत्वं न स्वतः । विशेषाकारमात्रं तु सर्वेषां मिथ्याप्रत्ययनिमित्तमिति वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयमनृतं

इति संविदेवेत्थं [1]स्वाविद्यया विवर्तते निरवयवस्य सन्मात्रस्य [2]स्वारस्येनेक्षणाद्यनुपपत्तेस्तस्मात्सर्वस्य संविद्विवर्तत्वेऽपि निमित्तनैमित्तिकभावोऽयमनिर्वाच्यो न विरुध्यत इत्यर्थः । अथ सच्छब्दवाच्यायाः संविदोऽनिर्वाच्यस्पन्दनकाले ये विषया बाह्यतया भासन्ते तेषां कदाचिदपि संविदतिरेकेण सत्त्वानङ्गीकारादत्यन्तादसत्त्वलक्षणमनृतत्वमापद्येत तथा च व्यवहारभङ्गप्रसङ्गस्तत्राऽऽह—यद्यपीति । तथाऽपि नानृतत्वमित्यध्याहारः । अध्यस्तस्याधिष्ठानमेव स्वात्मा तस्मिन्न कदाचिदप्यत्यन्तासत्त्वं तादात्म्येनैव स्फुरणादतो न व्यवहारभङ्गप्रसङ्ग इति भावः ।

कदाचिदपि नानृतत्वमिति वदता प्रतीतिकालात्कालान्तरेऽपि विषयाणां नासत्त्वमित्युक्तं तत्रानुभवविरोधं शङ्कते—नन्विति । स्वप्नदृष्टानां समीहितमेव कालान्तरे मिथ्यात्वमित्यङ्गी करोति—सत्यमिति । तर्हि तेषामसत्त्वमेव स्वीकृतमित्याशङ्क्याऽऽह—जाग्रदिति । तथाऽपि जाग्रद्बोधेनाविषयीकरणादसत्त्वं स्वप्नदृष्टानामेष्टव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—तथेति । यदि जाग्रद्बोधेनाविषयीकरणमात्रेणासत्त्वं स्वप्नदृष्टानां पदार्थानामिष्टं तर्हि जाग्रद्विषयाणामपि स्वप्नबोधेनाविषयीकरणादसत्त्वप्रसङ्गस्तन्न कदाचिदपि संविदि विषयाणामत्यन्तासत्त्वमित्यर्थः । कथं तर्हि वाचारम्भणश्रुतिरित्याशङ्क्याऽऽह—विशेषेति । त्रयाणां रूपाणां सत्यत्वे विशेषाकारमात्रं मिथ्येत्युक्तमयुक्तं तेष्वपि विशेषाकारस्य सत्त्वा-

स्थिति भी है । "जैसे रथ के चक्के की नाभि में अरे लगे होते हैं वैसे ही इस प्राण में सारा जगत् ओत प्रोत हो रहा है" इस श्रुति से भी कहा जाता है । इस प्रकार मनः संकल्पित आकार एवं बाहर निर्मित पदार्थों में निमित्त-नैमित्तिक भाव बीज-अंकुर दृष्टान्त के समान है, अनिर्वाच्य होने के कारण इसमें कोई विरोध नहीं है । यद्यपि बाह्य रूप में भासने वाले मानस पदार्थ ही हैं एवं मानस पदार्थ ही वाह्य हैं तथापि उनमें अनृतत्व प्रसक्ति संभव नहीं क्योंकि अध्यस्त पदार्थ का अधिष्ठान ही आत्मा है, तादात्म्य स्फुरण से उसमें कदापि अत्यन्ताभाव नहीं है । इससे व्यवहार की सिद्धि हो जाएगी ।

इस पर शंका होती है स्वप्न में देखे हुए विषय जागने पर मिथ्या हो जाते हैं । यह ठीक ही है किन्तु उनका अनृतत्व जागने पर ज्ञान होने की अपेक्षा को लेकर है. प्रतीति काल में उन्हें अनृत नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार जाग्रत् कालीन देखे हुए पदार्थ स्वप्न काल में ज्ञान की अपेक्षा से मिथ्या हैं. प्रतीतिकाल में उनकी सत्ता स्पष्ट विषयीकृत होती है । किन्तु सभी पदार्थों का केवल आकार विशेष ही मिथ्या कल्पना के कारण होता है, इसी से श्रुति स्पष्ट उद्घोष करती है, "नाम रूपादि तो वाणी का विकार मात्र है, तीन रूप ही हैं, इतना ही सत्य है" वे तीनों रूप आकाश विशेष से मिथ्या

१. स्वाविद्यया विवर्तत इत्यत्र हेतुमाह—निरवयवस्येत्यादिना । २. स्वारस्येन स्वरूपेणाविद्यामन्तरेणेति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।)

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ

हृदयस्थ नाड़ी तथा आदित्य रश्मि की उपासना

इसके बाद (व्यष्टि-समष्टि की अभिन्नता बतलाते हुए ब्रह्म उपासना कहते हैं—) ये जो हृदय की नाड़ियाँ हैं, वे पिंगलवर्ग तथा सूक्ष्म रस की हैं। इसी प्रकार वे नाड़ियाँ शुक्ल, नील, पीत और

त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। तान्यप्याकारविशेषतोऽनृतं स्वतः सन्मात्ररूपतया सत्यम्। प्राक्सदात्मप्रतिबोधात्स्वविषयेऽपि सर्वं सत्यमेव स्वप्नदृश्या इवेति न कश्चिद्विरोधः। तस्मान्मानसा एव ब्राह्मलौकिका अरण्यादयः संकल्पजाश्च पित्रादयः कामाः। बाह्यविषयभोगवदशुद्धिरहित्वाच्छुद्धसत्त्वसंकल्पजन्या इति निरतिशयसुखाः सत्याश्चेश्वराणां भवन्तीत्यर्थः। सतसत्यात्मप्रतिबोधेऽपि रज्ज्वामिव कल्पिताः सर्पादयः सदात्मस्वरूपतामेव प्रतिपद्यन्त इति सदात्मना सत्या एव भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥ ५ ॥

द्वित्याशङ्क्याऽऽह—तान्यपीति। कथं तर्हि तेषु सत्यपदं प्रयुक्तमित्याशङ्क्याऽऽह—स्वत इति। तर्हि तत्सत्यमित्येतावत्प्रयोक्तव्यं किमिति त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमित्युक्तं तत्राऽऽह—प्रागिति। प्रकृतमुपसंहरति—तस्मादिति। प्रथमपक्षवद्द्वितीयपक्षे दोषाभावादिति यावत्। यद्यैहिकविषयवद्ब्राह्मलौकिका अपि विषया विचार्यमाणाः सत्यास्तर्हि कस्तत्र विशेषो येनैतत्परित्यागेन तत्कामिनां विद्याविधानं तत्राऽऽह—बाह्येति। जन्या ब्रह्मलोके विषया इति शेषः। [1]प्रकृतायाः फलश्रुतेरित्यध्याहारः। ननु तेषामविद्यादशायामर्थक्रियाकारित्वरूपसत्यत्वसंभवेऽपि कुतो विद्यावस्थायां सत्यत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—सत्सत्येति। यथा रज्ज्वां कल्पितसर्पादयो रज्जुतत्त्वबोधे तदात्मतामेवाऽऽपद्यन्ते विवेचनात्तथा सर्वेऽपि विषया विद्यावस्थायामन्वयव्यतिरेकाभ्यां परिहाय विशेषाकारं सन्मात्रत्वमेव प्राप्नुवन्तीति तत्सत्यत्वमविरुद्धमित्यर्थः ॥४॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चमः खण्डः ॥५॥

हैं, वस्तुतः स्वयं में तो सन्मात्रात्मक होने से सत्य है। सत्तत्त्व का सम्यक् ज्ञान होने से पूर्व आत्मविषय में भी सभी कुछ स्वप्नदृश्यों की तरह सत्य ही है, इसमें विरोध का प्रसङ्ग नहीं आएगा। प्रथम और द्वितीय पक्ष में दोषाभाव होने से सिद्ध हो गया कि ब्रह्म लोक के अरण्यादि संकल्प से होने वाले पदार्थ एवं पित्रादि कामनाएँ मानसिक हैं। ब्रह्मलोक के विषय सांसारिक विषय भोगों की तरह अशुद्धि रहित होने से शुद्धसत्त्व संकल्प से होते हैं, क्योंकि सर्वसमर्थ महाभाग्यशाली ईश्वरों के विषय अत्यन्त सुख देने वाले एवं सत्य होते हैं। जिस प्रकार रज्जु में कल्पित सर्पादि रज्जु के वास्तविक ज्ञान होने पर तदाकारता को प्राप्त हो जाते हैं इसी प्रकार विचार मन्थन से यही निष्कर्ष निकला कि सभी विषय विद्यावस्था में अन्वय व्यतिरिक्त से विशेषाकार का त्यागकर सन्मात्रत्व को प्राप्त हो जाते हैं, उस सदात्मा से सत्य स्वरूप ही हो जाते हैं ॥ ४ ॥

---

१. प्रकृतायाः तद्य एवैता वरं च ण्यं चेत्यादिरूपाया इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः ॥१॥

लोहित रस से भी पूर्ण हैं, क्योंकि यह आदित्य पिंगलवर्ण वाला है, यह शुक्ल है, यह नील है, यह पीत है और यह लाल वर्ण हैं (आदित्य से सम्बद्ध होने के कारण ये नाड़ियाँ भी वैसे ही वर्ण विशेष वाली हो जाती हैं) ॥ १ ॥

यस्तु हृदयपुण्डरीकगतं यथोक्तगुणविषिष्टं ब्रह्मचर्यादिसाधनसंपन्नस्त्यक्तबाह्यविषयानृततृष्णः सन्नुपास्ते तस्येयं मूर्धन्यया नाड्या गतिर्वक्तव्येति नाडीखण्ड आरभ्यते—

अथ या एता वक्ष्यमाणा हृदयस्य पुण्डरीकाकारस्य ब्रह्मोपासनस्थानस्य संबन्धिन्यो नाड्यो हृदयमांसपिण्डात्सर्वतो विनिःसृता आदित्यमण्डलादिव रश्मयस्ताश्चैताः पिङ्गलस्य वर्णविशेषविशिष्टस्याणिम्नः सूक्ष्मरसस्य रसेन पूर्णास्तदाकारा एव तिष्ठन्ति वर्तन्त इत्यर्थः। तथा शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्य च रसस्य पूर्णा इति सर्वत्राध्याहार्यम्। सौरेण तेजसा पित्ताख्येन पाकाभिनिर्वृत्तेन कफेनाल्पेन संपर्कात्पिङ्गलं

सगुणविद्याफलस्वरूपमित्थमुपपाद्य तत्प्राप्तये गतिर्वक्तव्येति नाडीखण्डमवतारयति—यस्त्विति। यथोक्तो गुणः सत्यकामत्वादिः। ब्रह्मचर्यादीत्यादिशब्दः शमदमादिसंग्रहार्थः। तमेवाऽऽदिशब्दार्थं स्पष्टयति—त्यक्तेति। अधिकारिणः सफलोपास्तिविध्यानन्तर्यमथशब्दार्थः। रसेनान्नस्येति शेषः। तदाकारा इति तच्छब्दोऽन्नरसविषयः। शुक्लस्येत्यादिषष्ठी[1] पूर्ववत्। श्रुताविविति शब्दोऽध्याहारद्योतनार्थः। कथं पुनरन्नरसस्य पिङ्गलादिविचित्रो वर्णविशेषः सिध्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—सौरेणेति। यत्पित्ताख्यं सौरं तेजस्तेन पाकोऽशितस्य पीतस्य च जायते तेनाभिनिर्वृत्तेनाल्पेन कफेन संपर्कात्तदेव

सत्यकामत्वादि-गुणविशिष्ट हृदय कमल में प्रतिष्ठित ब्रह्म की जो ब्रह्मचर्य, शम-दमादि साधन सम्पन्न बाह्य विषयों की मिथ्या तृष्णा रहित हुआ उपासना करता है उसे मूर्धन्या नाडी के द्वारा यह जो गति होती है, वह बतलानी चाहिए, इसलिए नाडी खण्ड का आरम्भ किया जाता है।

आगे कही जाने वाली ब्रह्मोपासना के स्थान कमल के आकार वाले हृदय की नाडियाँ, उसी प्रकार मांस पिण्ड से चारों ओर निकली हुई हैं जिस प्रकार सूर्यमण्डल से उसकी किरणें निकलती हैं। यह पिङ्गलवर्ण से युक्त, अन्न के सूक्ष्म रस से पूर्ण अन्न रस के आकार में ही स्थित रहती हैं। अन्न के शुक्ल, नील, पीत एवं लोहित रस से पूर्ण हैं, ऐसा सर्वत्र अध्याहार कर लेना चाहिए। पित्ताख्य सौर तेज के द्वारा खाए एवं पीए हुए पदार्थ पचते हैं, उससे अभिनिष्पन्न अल्प कफ के संपर्क

---

१. पूर्ववदिति—तृतीयार्थं इति यावत्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भवति सौरं तेजः पित्ताख्यम् । तदेव च वातभूयस्त्वान्नीलं भवति । तदेव च कफभूयस्त्वाच्छुक्लम् । कफेन समतायां पीतम् । शोणितबाहुल्येन लोहितम् । वैद्यकाद्वा वर्णविशेषा अन्वेष्टव्याः कथं भवन्तीति । श्रुतिस्त्वाहाऽऽदित्यसंबन्धादेव तत्तेजसो नाडीष्वनुगतस्यैते वर्णविशेषा इति । कथम् । असौ वा आदित्यः पिङ्गलो वर्णत एष आदित्यः शुक्लोऽप्येष नील एष पीत एष लोहित आदित्य एव ॥ १ ॥

पित्ताख्यं सौरं तेजो भवति पिङ्गलं तेन संपर्काद्रसस्य नाडीनां च जायते पिङ्गलत्वमित्यर्थः । तदेव च पित्ताख्यं सौरं तेजो यथोक्तपाकाभिनिर्वृत्तेन प्रभूतेन वातेन संबन्धात्तद्भूयस्त्वाद्भवति नीलं तेन च संपर्कादन्नरसस्य नाडीनां च जायते नैल्यमित्याह—तदेवेति । प्रकृतमेव पित्ताख्यं सौरं तेजो यथोक्तपाकवशादभिनिर्वृत्तकफस्य स्वसंबन्धिनो भूयस्त्वाद्भवति शुक्लं तेन च संपर्कादन्नरसस्य नाडीनां च शौक्ल्यं भवतीत्याह—तदेव चेति । उक्तपाकाभिनिर्वृत्तेन कफेन तदभिनिर्वृत्तस्यैव वातस्य समतायां तदेव तेजस्तत्संबन्धि पीतं जायते तत्संबन्धाच्चान्नरसस्य च नाडीनां च पीतत्वं भवतीत्याह—कफेनेति । यदा तु यथोक्तपाकाभिनिष्पन्नं शोणितं बहुलं भवति तदा [1]तस्य नाडीनां च लौहित्यं भवतीत्याह—शोणितेति । [2]पक्षान्तरमाह—वैद्यकाद्वेति । अन्वेषणप्रकारमाह—कथमिति । नाभेरूर्ध्वं हृदयादधस्तादामाशयमाचक्षते । तद्गतं तेजः सौरं पित्तमित्युच्यते । तच्चान्नरसस्य धात्वन्तरसहकारिवशाद्वर्णविशेष कारणम् "आमाशयगतं पित्तं रञ्जकं [3]रसरञ्जनात्" इत्यादिवचनादित्यर्थः । कथं तर्हि पिङ्गलस्येत्याद्या श्रुतिरित्याशङ्क्याऽऽह—श्रुतिस्त्विति । उक्तमर्थमाकाङ्क्षाद्वारा स्फोरयति—कथमित्यादिना । आदित्यस्य पैङ्गल्यादयो वर्णविशेषाः शास्त्रप्रामाण्यादेव प्रत्येतव्याः ॥१॥

से वह पित्ताख्य सौर तेज पिङ्गलवर्ण का हो जाता है । उसके संबन्ध से नाडी का रस भी पिङ्गल हो जाता है । वही पित्ताख्य सौर तेज पाचन क्रिया से निष्पन्न हो अधिक वायु के सम्पर्क से नील हो जाता है उसके संबन्ध से नाड़ियों के अन्नरस का नीलवर्ण हो जाता है । वही पित्ताख्य सौर तेज पाचन क्रिया से निष्पन्न हो कफ की बहुलता से शुक्ल वर्ण का हो जाता है, उसके सम्पर्क से नाडियों के अन्न रस का नील वर्ण हो जाता है । कफ की समता से वही सौर तेज पीला हो जाता है, उसके सम्पर्क से नाड़ियों के अन्नरस का पीला रङ्ग होता है । जब उपरोक्त पाचन क्रिया से निष्पन्न रक्त की बहुलता होती है; तब पित्ताख्य सौर तेज लाल रङ्ग का होता है अथवा आयुर्वेद शास्त्रों से इन वर्ण विशेषों के कारण का अनुसन्धान कर लेना चाहिए कि रस धात्वन्तर में किस प्रकार परिणत होते हैं । श्रुति तो कहती है कि पिङ्गलादि ये वर्णविशेष सूर्य के तेज के संबन्ध से नाडियों में व्याप्त होने के कारण होते हैं । किस प्रकार यह क्रिया होती है ? शास्त्र प्रमाण से यह विश्वास कर लेना चाहिए कि आदित्य ही पिङ्गल वर्ण वाला होता है, यही आदित्य शुक्ल वर्ण वाला होता है यही नीला, पीला एवं लाल वर्ण का होता है ॥ १ ॥

---

१. तस्य पित्तस्यान्नरसस्य चेत्यर्थः । २. पक्षान्तरेति—पक्षान्तरत्वं चास्य पित्तसहकारि धात्वन्तरापेक्षयाऽवगन्तव्यम् । ३. रसरञ्जनात्—रसो धात्वन्तरं तदुपरागादित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः ॥२॥

उस विषय में यह दृष्टान्त समझना चाहिए, जैसे लोक में कोई विस्तीर्ण मार्ग इस समीपस्थ और उस दूरस्थ दोनों ग्रामों को जाता है। वैसे ही ये आदित्य किरणें इस पुरुष में और उस आदित्य मण्डल में दोनों ही लोकों में जाती हैं। वे निरन्तर इस आदित्य से ही निकलती हैं और इन शरीरस्थ नाड़ियों में व्याप्त हैं। ऐसे ही जो इन नाड़ियों से निकलकर फैलती हैं, वे इस आदित्य मण्डल में प्रवेश करती हैं ॥ २ ॥

तस्याध्यात्मं नाडीभिः कथं संबन्ध इत्यत्र दृष्टान्तमाह—तत्तत्र यथा लोके महान्विस्तीर्णः पन्था महापथ आततो व्याप्त उभौ ग्रामौ गच्छतीमं च संनिहितममुं च विप्रकृष्टं दूरस्थमेवं यथा दृष्टान्तो महापथ उभौ ग्रामौ प्रविष्ट एवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकावमुं चाऽऽदित्यमण्डलमिमं च पुरुषं गच्छन्त्युभयत्र प्रविष्टाः। यथा महापथः। कथम्। अमुष्मादादित्यमण्डलात्प्रतायन्ते संतता भवन्ति। ता अध्यात्ममासु पिङ्गलादिवर्णासु यथोक्तासु नाडीषु सृप्ता गताः प्रविष्टा इत्यर्थः। आभ्यो नाडीभ्यः प्रता-

---

आदित्यस्य तेजसो नाडीष्वनुगतस्य पैङ्गल्यादयो वर्णविशेषा भवन्तीत्युक्तं तदेव प्रश्नद्वारा दृष्टान्तावष्टम्भेन स्पष्टयति—तस्येत्यादिना। उभयत्राऽऽदित्यमण्डले पुरुषे चेत्यर्थः। तत्र पूर्वोक्तमेव दृष्टान्तमनुवदति—यथेति। उभौ ग्रामौ महापथो यथा गच्छति तथोभयत्राऽऽदित्यस्य रश्मयः प्रविष्टा इत्यर्थः। तमेव प्रवेशं प्रश्नद्वारा प्रकटयति—कथमित्यादिना। कथं नाडीनां पिङ्गलादिवर्णत्वमित्याशङ्क्य सौरेण तेजसेत्यादिनोक्तं स्मारयति—यथोक्तास्विति। अमुष्मिन्नादित्ये सृप्ता इति संबन्धः।

आदित्य के तेज का शरीरस्थ नाड़ियों में व्याप्त पिङ्गलादि वर्ण कैसे हो जाता है, इस पर श्रुति दृष्टान्त कहती है—जिस प्रकार लोक व्यवहार में अत्यन्त विस्तीर्ण राजपथ में यह विशिष्टता होती है, कि वह समीपस्थ एवं दूरस्थ ग्राम को अपने से जोड़ता रहता है उसी प्रकार सूर्य की किरणें दोनों लोकों में प्रविष्ट रहती हैं अर्थात् आदित्य मण्डल एवं आदित्य मण्डलस्थ पुरुष में उसी प्रकार प्रविष्ट रहती हैं जैसे राजपथ (महापथ) दोनों ग्रामों में जाता है। महापथ का दृष्टान्त आदित्य की रश्मियों में कैसे संभव है। क्योंकि आदित्य की किरणें इस आदित्य मण्डल से फैलती हैं। सूर्य की वही किरणें सौर तेज से शरीरस्थ 'पिङ्गलादि वर्ण की नाड़ियों में प्रविष्ट हो जाती हैं एवं जो इन नाड़ियों से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा संपन्नो भवति ॥३॥

ऐसा होने से जिस समय यह जीव सोया हुआ संप्रसन्न (सम्यक् प्रकार से प्रसन्न) हो स्वप्न नहीं देखता, उस समय (सूर्य के तेज से पूर्ण हुई) इन पूर्वोक्त नाड़ियों में प्रविष्ट हो जाता है, तब इस जीव को कोई पाप स्पर्श नहीं करता, क्योंकि उस समय यह जीव आदित्य तेज से व्याप्त हो जाता है ॥ ३ ॥

यन्ते प्रवृत्ताः संतानभूताः सत्यस्तेऽमुष्मिन् । रश्मीनामुभयलिङ्गत्वात्त इत्युच्यन्ते ॥ २ ॥

तत्त्रैवं सति यत्र यस्मिन्काल एतत्स्वपनमयं जीवः सुप्तो भवति । स्वापस्य द्विप्रकारत्वाद्विशेषणं समस्त इति । उपसंहृतसर्वकरणवृत्तिरित्येतत् । अतो बाह्यविषयसंपर्कजनितकालुष्याभावात्सम्यक् प्रसन्नः संप्रसन्नो भवति । अत एव स्वप्नं विषयाकारभासं मानसं प्रत्ययं न विजानाति नानुभवतीत्यर्थः । यदैवं सुप्तो भवत्यासु

कथं स्त्रीलिङ्गेन निर्दिष्टानां रश्मीनां पुंलिङ्गेन निर्देशस्तत्राऽऽह—रश्मीनामिति ॥२॥

नाडीस्वरूपमुक्त्वा विज्ञानात्मस्वापाधिकरणत्वेन ताः स्तोतुमादौ स्वापं प्रस्तौति—तत्त्रेति। सप्तम्यर्थमेव स्फुटयति—एवं सतीति । नाडीस्वरूपे पूर्वोक्तरीत्या निरूपिते सतीत्यर्थः । एतत्स्वपनमिति क्रियाविशेषणम् । समस्तविशेषणस्यार्थवत्त्वमाह–स्वापस्येति । 'दर्शनवृत्तिरदर्शनवृत्तिश्चेति द्विप्रकारत्वं स्वापस्येष्टम् । तत्र दर्शनवृत्तेः स्वापस्य व्यावृत्त्यर्थं समस्त इति विशेषणम् । तस्य संपिण्डितमर्थमाह–उपसंहृतेति । विशेषणान्तरमुत्थाप्य व्याकरोति—अत इति । उपसंहृतसर्वकरणत्वादिति यावत्। उक्तं विशेषणद्वयमुपजीव्य स्वप्नमित्यादि व्याचष्टे—अत एवेति । नाडीषु प्रविष्टो भवतीति यदुक्तं

निकल कर सन्तति परम्परा से फैलती हैं वे इस सौर मण्डल में प्रवेश करती हैं। मन्त्र में स्त्रीलिङ्ग रश्मि शब्द को 'ते' पुल्लिङ्ग प्रयोग कर दिया गया है क्योंकि रश्मि शब्द का दोनों लिङ्गों में प्रयोग देखा जाता है ।।२।।

नाड़ी स्वरूप का सम्यक् निरूपण हुआ । जिस समय यह जीव लेटा हुआ सो जाता है। शयन दो प्रकार का होने से पूर्ण रूप से सोने के लिए मन्त्र में 'समस्त' विशेषण दिया गया है। यह वो अवस्था है जब इस जीव की समस्त इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से हटकर अपने में केन्द्रित हो जाती हैं, उस समय बाह्य विषयों के संसर्ग से होने वाली मलिनताओं का उसमें सर्वथा अभाव होने से वह अत्यन्त प्रसन्न होता है, अतः विषयाकार की तरह भासने वाले मानसिक प्रत्यय रूप स्वप्न को नहीं अनुभव

---

१. दर्शनमेव वृत्तिर्व्यापारो यस्मिन्स दर्शनवृत्तिस्तद्भिन्नोऽदर्शनवृत्तिः स्वापः । स्वप्नः सुषुप्तिश्चेत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सौरतेजःपूर्णासु यथोक्तासु नाडीषु तदा सुप्तः प्रविष्टो नाडीभिर्द्वारभूताभिर्हृदयाकाशं गतो भवतीत्यर्थः। न ह्यन्यत्र सत्संपत्तेः स्वप्नादर्शनमस्तीति सामर्थ्यान्नाडीष्विति सप्तमी तृतीयया परिणम्यते। तं सता संपन्नं कश्चन न कश्चिदपि धर्माधर्मरूपः पाप्मा स्पृशतीति स्वरूपावस्थितत्वात्तदाऽऽत्मनः। देहेन्द्रियविशिष्टं हि सुखदुःखकार्यप्रदानेन पाप्मा स्पृशति नतु सत्संपन्नं स्वरूपावस्थं कश्चिदपि पाप्मा स्प्रष्टुमुत्सहते। अविषयत्वात्। अन्यो ह्यन्यस्य विषयो भवति न त्वन्यत्वं [1]केनचित्कुतश्चिदपि सत्संपन्नस्य। स्वरूपप्रच्यवनं त्वात्मनो जाग्रत्स्वप्नावस्थां प्रति गमनं बाह्यविषयप्रतिबोधोऽविद्याकामकर्मबीजस्य ब्रह्मविद्याहुताशादाहननिमित्तमित्यवोचाम षष्ठ एव तदिहापि प्रत्येतव्यम्। यदैवं सुप्तः सौरेण तेजसा हि नाड्यन्तर्गतेन सर्वतः संपन्नो व्याप्तो भवति। अतो

तदयुक्तं [2]'य एषोऽन्तर्हृदय [3]आकाशस्तस्मिञ्शेत इत्यङ्गीकारादित्याशङ्क्याऽऽह—नाडीभिरिति। नाडीष्विति श्रुता सप्तमी कथं नाडीभिरिति तृतीयया व्याख्यायते तत्राऽऽह—न हीति। तदेति सुषुप्त्यवस्थोच्यते। तस्यामवस्थायां कर्माभावे कथं पुनरुत्थानमित्याशङ्क्याऽऽह—देहेति। सुखदुःखानुभवाभावात्पाप्मासंस्पर्शोऽत्र विवक्षितो न तु कर्माभावादित्यर्थः। अविषयत्वं साधयति—अन्यो हीति। सुषुप्ते स्वरूपावस्थस्य कथं प्रच्यवनमित्याशङ्क्याऽऽह—स्वरूपेति। अविद्याकामकर्मणां बीजमनाद्यज्ञानं तस्य ब्रह्मविद्याख्येनाग्निना न स्वापे दाहस्तन्निमित्तं सुषुप्तस्य पुनः स्वरूपप्रच्यवनमिति संबन्धः। तदेव व्याचष्टे—जाग्रदिति। कीदृग्गमनमित्यपेक्षायामाह—बाह्येति। एतच्च सति [4]'सपद्य न विदुरित्यांदावुदितमित्याह—इत्यवोचामेति। तेजसा हीति [5]'पाप्मास्पर्शे श्रौतो हेतुस्त हेतुं व्याचष्टे—यदेति।

करता। इस प्रकार शयनावस्था से सौर मण्डल के तेज से पूर्ण रञ्जित नाड़ियों में प्रवेश करता है अथवा द्वार के समान नाड़ियों के द्वारा हृदयाकाश में चला जाता है। मन्त्र में 'नाडीषु' में सप्तमी है, भाष्य में "नाडिभिः" तृतीया प्रयोग करने का प्रयोजन यह है कि नाड़ियों की यह सामर्थ्य है जो सत्तत्त्व उपलब्धि को छोड़कर सर्वत्र स्वप्न दर्शन होता है। सत्तत्त्व से परिपूर्ण इस जीव को कोई भी धर्माधर्म रूप पाप स्पर्श नहीं करता क्योंकि उस समय आत्मा स्वरूप में स्थित रहती है। देह और इन्द्रियों से विशिष्ट जीव को सुख-दुःख रूप कार्य प्रदान कर पाप स्पर्श करता है, सत्तत्त्व से परिपूर्ण स्वरूप में प्रतिष्ठित को कोई भी पाप स्पर्श करने का उत्साह नहीं करता क्योंकि पाप स्वरूपस्थिति का विषय नहीं है। कोई दूसरा ही किसी दूसरे का विषय हुआ करता है किन्तु सत्तत्त्व स्वरूप लाभ वालें के लिए किसी तरह कहीं भी दूसरा नहीं रह जाता। अपने स्वरूप से तभी गिरता है जब जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्था की ओर जाता है, जहाँ बाह्य विषयों की चेष्टा रहती है जो अविद्या, काम एवं कर्म के बीज का कारण अनादि अज्ञान है उस अज्ञान का ब्रह्मविद्या सञ्ज्ञक अग्नि से स्वप्न में दाह नहीं हो पाता इसे हम षष्ठ अध्याय में कह आये है, उसे यहाँ भी समझ लेना चाहिए। इसीलिए सोया हुआ जीव सौर मण्डल के तेज के द्वारा नाड़ियों के अन्तर्गत पूर्णरूप से व्याप्त रहता है। इस व्याप्ति से विशेषतया

---

१. केनचित्प्रकारेण। २. बृ० उ० २।१।१७। ३. बृ० उ० ४।४।२२। ४. छा० उ० ६।६।२।
५. पाप्मास्पर्शे—तत्कार्यानुत्पादे इत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति ॥४॥

और जिस समय यह जीव (रोगादि तथा जरादि के कारण) देह की दुर्बलता को प्राप्त होता है उस समय उसके चारों ओर बैठे हुए सगे सम्बन्धी कहते हैं क्या तुम मुझ अपने पुत्र को जानते हो? क्या तुम मुझ अपने पिता को पहचानते हो ? वह मुमुर्षु जीव जब तक इस शरीर से निकलकर बाहर नहीं जाता, तब तक उन्हें पहचानता रहता है ॥ ४ ॥

विशेषेण चक्षुरादिनाडीद्वारैर्बाह्यविषयभोगायाप्रसृतानि करणान्यस्य तदा भवन्ति। तस्मादयं करणानां निरोधात्स्वात्मन्येवावस्थितः स्वप्नं न विजानातीति युक्तम् ॥ ३ ॥

तत्रैवं सत्यथ यत्र यस्मिन्कालेऽबलिमानमबलभावं देहस्य रोगादिनिमित्तं जरादिनिमित्तं वा कृशीभावमेतन्नयनं नीतः प्रापितो देवदत्तो भवति मुमूर्षुर्यदा भवतीत्यर्थः। तमभितः सर्वतो वेष्टयित्वाऽऽसीना ज्ञातय आहुर्जानासि मां तव पुत्र जानासि मां पितरं वेत्यादि । स मुमूर्षुर्यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तोऽनिर्गतो भवति तावत्पुत्रादीञ्जानाति ॥ ४ ॥

तद्व्याप्तिकार्यमाह—अत इति । कार्यकरणसंस्पर्शाभावफलं दर्शयति—तस्मादिति ॥३॥

नाडीरेवं स्तुत्वा ताभिरूर्ध्वगमनं प्रदर्शयितुं मरणकालं प्रसञ्जयति—तत्रेति । तस्यैवार्थमाह-एवं सतीति । नाडीनामुक्तरीत्या प्राशस्त्ये सतीत्यर्थः । ताभिरूर्ध्वगमनप्रदर्शनप्रारम्भार्थोऽथशब्दः। रोगादित्यादिपदमागन्तुकसर्वनिमित्तसंग्रहार्थम् । जरादीत्यादिपदं तु नैसर्गिकसर्वनिमित्तद्योतनार्थमिति भेदः । एतन्नयनमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ४ ॥

चक्षु आदि नाड़ी द्वारों से बाह्य विषयों के भोग से पराङ्मुख हुई इन्द्रियाँ उस समय इस जीव की हो जाती हैं। कार्य और करण के आपस में न मिल पाने के कारण इन्द्रियों के निरोध से अपने स्वरूप में स्थित हुआ यह जीव स्वप्न नहीं देखता; यह कहना युक्तिसंगत है ॥३॥

नाड़ी की इस प्रकार स्तुति करके, उनके द्वारा ऊर्ध्वगति प्रदर्शित करने के लिए मरणकाल को प्रस्तुत किया जाता है—जब देवदत्त संज्ञक जीव देह के रोगादि के कारण अथवा स्वाभाविक बुढ़ापे आदि के कारण शक्ति विहीन हो कृशता को प्राप्त हो मरणासन्न हो जाता है, उस समय उसके सगे सम्बन्धी उसे चारों ओर से घेर कर पूछते हैं—मुझे जानते हो मैं आपका पुत्र हूँ अथवा मुझे जानते हो मैं तुम्हारा पिता हूँ…इत्यादि । मरणासन्न व्यक्ति तब तक पुत्र-पितादि को पहचानता रहता है, जब तक इस शरीर से उत्क्रमण नहीं हो जाता ॥४॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभि-रूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स याव-त्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम् ॥५॥

फिर जब यह इस शरीर से निकल जाता है तब वह उन्हीं आदित्य रश्मियों से ऊपर की ओर जाता है। वह 'ओं' ऐसा स्मरण कर ऊर्ध्वलोक अथवा अधोलोक को जाता है। जितने देर में वह मन जाता है, उतनी ही देर में वह उपासक आदित्य लोक में पहुँच जाता है। निःसन्देह आदित्य ही लोकद्वार है, यह ब्रह्मोपासकों के लिए ब्रह्मलोक प्राप्ति का प्रशस्त द्वार है और अज्ञानियों के लिए यह निरोध स्थान है ॥ ५ ॥

अथ यत्र यदैतत्क्रियाविशेषणमित्यस्माच्छरीरादुत्क्रामति । अथ तदैतैरेव यथोक्ताभी रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते यथाकर्मजितं(त) लोकं प्रत्यविद्वान् । इतरस्तु विद्वा-न्यथोक्तसाधनसंपन्नः स ओमित्योंकारेणाऽऽत्मानं ध्यायन्यथापूर्वं वा हैव, उद्वोर्ध्वं वा विद्वांश्चेदितरस्तिर्यङ्वेत्यभिप्रायः । मीयते प्रमीयते गच्छतीत्यर्थः । स विद्वानुत्क्रमिष्य-न्यावत्क्षिप्येन्मनो यावता कालेन मनसः क्षेपः स्यात्तावता कालेनाऽऽदित्यं गच्छति

प्रारब्धकर्मावसानार्थोऽथशब्दः । एतदिति क्रियाविशेषणमेतदुत्क्रमणं यथा स्यात्तथेत्यर्थः । यथोक्ताभिर्नाडीषु प्रसृताभिरादित्यमण्डलादागताभिरिति यावत् । कर्मणा जितं वशीकृतं स्वात्म-संबन्धितामापादितं लोकमनतिक्रम्य तं प्रत्यविद्वान्केवलकर्मवान्गच्छतीत्यर्थः । दहरविद्यावतो गतिं दर्शयति—इतरस्त्विति । यथोक्तसाधनं दहरविज्ञानं तेन संपन्नो विशिष्ट इत्यर्थः । स ध्यायन्गच्छती-त्युत्तरत्र संबन्धः । यथापूर्वं स्वस्थावस्थायामिव मरणावस्थायामपीत्यर्थः । वा हेतिनिपातद्वयस्याव-धारणरूपमर्थं कथयति—एवेति । उच्छब्दार्थमाह—ऊर्ध्वमिति । वाशब्देन द्योतितं विकल्पं दर्शयति—विद्वांश्चेदिति । यदि विद्वान्प्रमीयते तदोर्ध्वमेव गच्छति । यदि त्वविद्वान्प्रमीयते तदा तिर्यगेव गच्छतीति विभागः । विदुषस्त्यक्तदेहस्याऽऽदित्यप्राप्तावत्यन्तशैघ्र्यं दर्शयितुमनन्तरवाक्यमादत्ते—स विद्वानिति ।

इसके पश्चात् जब इसके प्रारब्ध कर्मों का अन्त हो जाता है तो इस शरीर से उत्क्रमण करता है। मन्त्र में 'एतद्' शब्द उत्क्रमण क्रिया का विशेषण है। तब कर्म के वशीभूत वह अविद्वान् नाड़ियों में व्याप्त आदित्य मण्डल से आई हुई किरणों से कर्मों से प्राप्त होने वाले लोकों में ऊपर जाता है। दहरविद्या का उपासक विद्वान् तो दहरविद्या के विज्ञान से सम्पन्न हुआ 'ॐ' इस प्रकार अपनी आत्मा का ध्यान करता हुआ स्वस्थावस्था के समान मरणावस्था में भी ऊर्ध्व उत्क्रमण करता है, दहरविद्या को न जानने वाले का तो अधःपतन होता है। वह विद्वान् आदित्य को अत्यन्त शीघ्रता से प्राप्त करता है. जितनी देर में मन आदित्य में जाता है, उतनी देर में पहुँच जाता है। आदित्य को क्यों प्राप्त करता है—इस पर श्रुति कहती है। यह आदित्य ब्रह्मलोक का प्रसिद्ध द्वार है, उस द्वारभूत आदित्य से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदेष श्लोकः ॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ॥ तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

इस विषय में यह मन्त्र है। माँस के पिण्डरूप हृदय से सम्बन्धित एक सौ एक नाड़ियां है, उनमें से एक नाड़ी ऊपर की ओर जाने वाली है, जीव उसके द्वारा जाकर अमृतत्व को प्राप्त करता है और इधर-उधर जाने वाली अन्य नाड़ियाँ केवल उत्क्रमण का कारण मात्र हैं अर्थात् उनके द्वारा निकलने पर जीव फिर से जन्म धारण कर लेता है॥ ६ ॥

॥ इति षष्ठ: खण्ड: ॥

प्राप्नोति क्षिप्रं गच्छतीत्यर्थो न तु तावतैव कालेनेति विवक्षितम्। किमर्थमादित्यं गच्छतीत्युच्यते—एतद्वै खलु प्रसिद्धं ब्रह्मलोकस्य द्वारं य आदित्यस्तेन द्वारभूतेन ब्रह्मलोकं गच्छति विद्वान्। अतो विदुषां प्रपदनं प्रपद्यते ब्रह्मलोकमनेन द्वारेणेति प्रपदनम्। निरोधनं निरोधोऽस्मादादित्यादविदुषां भवतीति निरोधः। सौरेण तेजसा देह एव निरुद्धाः सन्तो मूर्धन्यया नाड्या नोत्क्रमन्त एवेत्यर्थः। विष्वङ्ङन्या इति श्लोकात् ॥ ५ ॥

तदेतस्मिन्यथोक्तेऽर्थ एष श्लोको मन्त्रो भवति। शतं चैका चैकोत्तरशतं नाड्यो हृदयस्य मांसपिण्डभूतस्य संबन्धिन्यः प्रधानतो भवन्ति। आनन्त्याद्देहनाडीनाम्।

तद्व्याचष्टे—यावतेति। आदित्यप्राप्तौ किं स्यादित्यत आह—प्रत इति। अविदुषामपि तर्हि प्राप्तानामादित्यं ततो निरुद्धानां पुनर्ब्रह्मलोकाप्राप्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—सौरेणेति। देहे निरुद्धानां मूर्धन्यया नाड्या नोत्क्रमणमविदुषामित्यत्र लिङ्गं दर्शयति—विष्वङ्ङिति ॥५॥

यथोक्तोऽर्थो नाडीविभागलक्षणः। प्रधानत इति विशेषणतात्पर्यमाह—आनन्त्यादिति।

दहरविद्या का उपासक विद्वान् ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। मन्त्र में आदित्य को विद्वानों का 'प्रपदन' इसलिए कहा क्योंकि इसी द्वार से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है किन्तु जो अविद्वान् होते हैं, उनके लिए यहाँ से आगे जाने का द्वार बन्द हो जाता है। सौर तेज के द्वारा शरीर में निरोध हो जाने पर मूर्धन्या नाड़ी से अविद्वान् का उत्क्रमण नहीं होता, यही इसका अर्थ है। आगे श्लोक में कहा है—इधर-उधर जाने वाली अन्य नाड़ियाँ केवल उत्क्रमण का कारण मात्र हैं ॥ ५ ॥

मूर्धन्या नाडी से उत्क्रमण होने के अर्थ में यह श्लोक है। वैसे तो इस शरीर में असंख्य नाड़ियाँ हैं उनमें से हृदय के मांस पिण्ड से संबन्धित मुख्यत: एक सौ एक नाड़ियाँ हैं। उन एक सौ एक नाड़ियों में से एक नाड़ी मस्तिष्क की ओर निकली हुई है, उससे ऊपर गया हुआ जीव अमृतत्व को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तासामेका मूर्धानमभिनिःसृता विनिर्गता तयोर्ध्वमायन्गच्छन्नमृतत्वममृतभावमेति विष्वङ्नानागतयस्तिर्यग्विसर्पिण्य ऊर्ध्वगाश्चान्या नाड्यो भवन्ति संसारगमनद्वारभूता न त्वमृतत्वाय किं तर्ह्युत्क्रमण एवोत्क्रान्त्यर्थमेव भवन्तीत्यर्थः। द्विरभ्यासः प्रकरणसमाप्त्यर्थः॥ ६ ॥

इत्याष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

(अथाष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः।)

"अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्म" इत्युक्तम्। तत्र कोऽसौ संप्रसादः, कथं वा तस्याधिगमो यथा सोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते। येन स्वरूपेणाभिनिष्पद्यते स किंलक्षण आत्मा। संप्रसादस्य

प्रकरणं नाडीविषयं दहरविद्याविषयं वा ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ॥६॥

दहरविद्यायामुपास्यस्तुत्यर्थमुक्तमनुवदति—अथेति। [1]विवेकानन्तर्यमथशब्दार्थो [2]व्याख्यातः। शरीरात्समुत्थानं तस्मिन्नहंममाभिमानत्यागः। स्वरूपं विशिनष्टि—एष इति। उक्तकर्तृत्वमाचार्यस्य दर्शितमेव। प्राणो वा संप्रसादो विज्ञात्मा वेति संशयात्पृच्छति—तत्रेति। प्रकृतं वाक्यं सप्तम्यर्थः। तस्य च संप्रसादस्य परमात्मविषयं ज्ञानं केनोपायेन भवतीति प्रश्नान्तरमाह—कथं वेति। किं तस्य परमात्माधिगमेनेत्याशङ्क्याऽऽह—यथेति। तथा तस्याधिगमः कथमिति संबन्धः। अभिनिष्पद्यमानरूपश्चाऽऽत्मा सविशेषो निर्विशेषो वेति प्रश्नान्तरं करोति—येनेति। आत्मनो हि सच्चिदानन्दैकतानादर्थान्तराणि रूपाणि दृश्यमानानि शरीरसंबन्धप्रयुक्तानि। तथा च ततः शरीरादुपाधेर्यदन्यत्तस्य स्वरूपं तत्कथं सर्वप्रमाणाप्रतिपन्नमस्तीति प्रश्नान्तरमाह—संप्रसादस्य चेति। एतेषां प्रश्नानामुत्तर-

---

प्राप्ति कर लेता है। नाना और गतिशील, टेढ़ी-मेढ़ी ऊपर जाने वाली दूसरी नाड़ियाँ भी हैं, वे संसार प्राप्ति की मार्गभूता हैं, अमृतत्व प्राप्ति की साधिका नहीं। वे केवल उत्क्रमण की कारण भूता हैं, उनसे जन्म-मरण का चक्र मिटना संभव नहीं। "उत्क्रमणे भवन्ति" की मन्त्र में दो बार आवृत्ति दहरविद्या विषय अथवा नाड़ी विषय रूप प्रकरण की समाप्ति का सूचक है॥ ६ ॥

तृतीय खण्ड में दहरविद्या की स्तुति में कहा गया था "यह जो (सुषुप्ति अवस्था रूप) सम्प्रसाद है, इस सम्प्रसाद से उपलक्षित वह आत्मा इस शरीर से आत्म बुद्धि का परित्याग करके परम ज्योति को प्राप्त हो निज रूप से अभिसम्पन्न हो जाता है। यह आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है और यही ब्रह्म है" ऐसा गुरु ने कहा। यहाँ प्राण सम्प्रसाद है अथवा विज्ञानत्मा सम्प्रसाद है, उस सम्प्रसाद का परमात्म विषयक ज्ञान किस उपाय से होता है जब श्रुति तो कहती है "वह आत्मा इस शरीर से उत्क्रमण कर परम ज्योति को प्राप्त हो निज स्वरूप से अभिसम्पन्न हो जाता है"। जिस स्वरूप से अभिसम्पन्न होता है, वह आत्मा किस लक्षण वाला है? सम्प्रसाद रूप आत्मा तो सच्चिदानन्द

---

१. छा० उ० ८।३।४। २. संप्रसादशब्देन विद्वानेव गृह्यते न त्वविद्वानिति विद्वदविद्वद्विषयको विवेकः।
३. ६०८ पृष्ठे।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः

आत्मतत्त्व की जिज्ञासा से इन्द्र और विरोचन का प्रजापति के पास जाना

जो आत्मा धर्माधर्मादिरूप पाप से रहित, बुढ़ापे से रहित, मृत्यु से रहित, शोकरहित, भूख-प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है, उसकी (शास्त्र और आचार्य के उपदेशों से) खोजकर

च देहसंबन्धीनि पररूपाणि ततो यदन्यत्कथं स्वरूपमित्येतेऽर्था वक्तव्या इत्युत्तरो ग्रन्थ आरभ्यते। आख्यायिका तु विद्याग्रहणसंप्रदानविधिप्रदर्शनार्था विद्यास्तुत्यर्था च राजसेवितं पानीयमितिवत्।

या आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः। यस्योपासनायोपलब्ध्यर्थं हृदयपुण्डरीकमभिहितं यस्मिन्कामाः समाहिताः सत्या अनृतापिधाना यदुपासनसहभावि ब्रह्मचर्यं साधनमुक्तमुपासनफलभूतकामप्रतिपत्तये

त्वेनोत्तरग्रन्थमवतारयति—इत्येत इति। प्रजापतेरिन्द्रविरोचनयोश्च संवादरूपा याऽत्राऽऽख्यायिका दृश्यते सा किमर्थेत्याशङ्क्याऽऽह—आख्यायिका त्विति। शिष्यस्य विद्यया ग्रहणे गुरोस्तस्याः सम्यक्प्रदाने च यो विधिः श्रद्धालुत्वा[1]दिप्रकारस्तत्प्रदर्शनार्थेति यावत्। यद्वा विद्याया ग्रहणं स्वीकरणं यत्र संप्रदाने तद्दानपात्रे शिष्ये दृश्यते तस्य विधिर्ब्रह्मचर्यादिस्तत्प्रदर्शनार्थेत्यर्थः। आख्यायिकायास्तात्पर्यान्तरमाह—विद्येति। प्रजापतिना प्रोक्ता देवैरसुरैश्च प्रार्थितेन्द्रविरोचनाभ्यां देवासुराधिपतिभ्यामायासेन महता प्रेप्सिता देवराजेन च कथंचित्प्राप्ता तस्मान्महार्हेयं विद्येति तस्याः स्तुत्यर्थाऽऽख्यायिकेत्यर्थः। महद्भिरुपासितस्य महार्हत्वे दृष्टान्तमाह—राजसेवितमिति।

यन्मायोपाधि सविशेषं चैतन्यं तदेव निरुपाधि निर्विशेषमिति सविशेषनिर्विशेषयोरभेदाभिप्रायेण प्रजापतिवाक्यं व्याकर्तुमादत्ते—य आत्मेति। तत्र सोऽन्वेष्टव्य इति वाक्ये सशब्दार्थमाह—यस्येति। उपासनमपि किमर्थमित्यपेक्षायामाह—उपलब्ध्यर्थमिति। तस्यैतत्फलमिति संबन्धः। कथं

अद्वितीय है उससे भिन्न जो दृश्यमान रूप हैं, वे शरीर के संबन्ध को लेकर प्रयुक्त हुए हैं, शरीर उपाधि से भिन्न स्वरूप कैसा है? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आगे का ग्रन्थ प्रारम्भ किया जाता है, यहाँ प्रजापति और इन्द्र विरोचन की संवाद रूप जो आख्यायिका है, वह शिष्य द्वारा विद्या ग्रहण एवं गुरु जी द्वारा विद्या प्रदान की जो विधि है उसके प्रदर्शन के लिए है। बहुत प्रयत्न करने पर भी देवराज इन्द्र को पूर्णतः प्राप्त न हो सकने वाली इस बहुमूल्य विद्या की स्तुति भी इस आख्यायिका से ध्वनित होती है, जिस प्रकार राजा के द्वारा सेवित पेय बहुमूल्य हुआ करता है।

आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम सत्यसंकल्प है, जिसकी उपासना के लिए प्राप्ति के लिए हृदयकमल का वर्णन किया गया, जिसमें सत्य अनृत समस्त काम विलीन हो जाते हैं, जिसकी उपसना के साथ-साथ ब्रह्मचर्य साधन का निरूपण

---

१. आदिना—कृपालुत्वादिग्रहः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच ॥१॥

ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, वह विशेष रूप से जानने योग्य है। जो उस आत्मतत्त्व को शास्त्र एवं गुरु के उपदेश के द्वारा खोजकर विशेष रूप से जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोकों को और सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता हैं, ऐसी घोषणा प्रजापति ने की॥ १॥

च मूर्धन्यया नाड्या गतिरभिहिता सोऽन्वेष्टव्यः शास्त्राचार्योपदेशैर्ज्ञातव्यः स विशेषेण ज्ञातुमेष्टव्यो विजिज्ञासितव्यः स्वसंवेद्यतामापादयितव्यः। किं तस्यान्वेषणाद्विजिज्ञासनाच्च स्यादित्युच्यते—स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानं यथोक्तेन प्रकारेण शास्त्राचार्योपदेशेनान्विष्य विजानाति स्वसंवेद्यतामापादयति तस्यैतत्सर्वलोककामावाप्तिः सर्वात्मता फलं भवतीति ह किल प्रजापतिरुवाच। अन्वेष्टव्यो विजिज्ञासितव्य इति चैष नियमविधिरेव नापूर्वविधिः। 'एवमन्वेष्टव्यो विजिज्ञासितव्य इत्यर्थः। दृष्टार्थत्वादन्वेषण-

---

निर्गुणविद्यायाः सर्वलोककामावाप्तिः फलमित्याशङ्क्याऽऽह—सर्वात्मतेति। परिच्छेदभ्रमव्यावृत्त्या पूर्णस्वरूपेणावस्थितिरित्यर्थः। प्रजापतिवाक्यात्प्रतीयमानविधिस्वरूपमाह—अन्वेष्टव्य इति। एवकारव्यावर्त्यं दर्शयति—नापूर्वविधिरिति। शब्दादेव विद्योदये तदुत्पत्त्यर्थोऽपूर्वविधिरग्निहोत्रादि-विधिवन्न संभवतीत्यर्थः। 'कथमिह नियमविधिरपि स्यादवघात विधिवदित्याशङ्क्याऽऽह—एवमिति। 'मिथ्याज्ञानसंस्कारप्राबल्यादनात्माभिनिवेशस्य पक्षे प्राप्तौ शास्त्राचार्याभ्यामात्मान्वेषणमेव कार्यमिति नियम इत्यर्थः। इतश्च नियमविधिरेव नापूर्वविधिरित्याह—दृष्टार्थत्वादिति। अन्वेषणविजिज्ञासना-

---

किया गया, उपासना के फलस्वरूप अभीष्ट सिद्धि के लिए मूर्धन्या नाड़ी से गति का भी प्रतिपादन किया गया। उनका अन्वेषण करे, शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश से उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा करनी चाहिए स्वसंवेद्य रूप से उसकी उपलब्धि करनी चाहिए। उसका अन्वेषण करने एवं उसको भली भाँति जानने से क्या फल मिलेगा, इसे श्रुति कहती है। जो उस आत्मा को शास्त्र तथा आचार्य के उपदेश से खोज करके जानता है, स्वसंवेद्यता को प्राप्त करता है, उसकी समस्त लोकों में गति हो जाती है, उसकी सभी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। उस उपासक के लिए सब लोकों के पदार्थ सुलभ हैं, वह सर्वात्मा होने से पूर्ण स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है, ऐसा फल है जिसका उपदेश प्रजापति ने किया। प्रजापति के वाक्य होने पर भी "अन्वेषण करना चाहिए, भली भाँति जानना चाहिए" यह नियम का विधान है, अपूर्व विधान नहीं है अर्थात् शास्त्र से ही ज्ञान हो जाने पर उसके लिए

---

१. एवमिति—शास्त्राचार्योपदेशद्वारैव न तु स्वबुद्ध्यैव केवलेन वा तर्केणेत्यर्थः। २. वस्तुतस्तु शास्त्राचार्योपदेशमन्तरेणात्मान्वेषणे स्वतन्त्रोपायान्तराभावादेवाभिप्रेतं नियमस्वरूपं दर्शयति—मिथ्येत्यादिना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मा-नमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वाꣳश्च लोकाना-

प्रजापति के इस वाक्य को देव और असुर दोनों ही ने कर्ण परम्परा से जाना। दोनों ही ने (अपनी-अपनी सभा में विद्यमान सदस्यों से) कहा—यदि आप लोगों की अनुमति हो तो हम उस आत्मा को जानना चाहते हैं, जिसे जान लेने पर जीव सम्पूर्ण लोकों और सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर

विजिज्ञासनयोः। दृष्टार्थत्वं च दर्शयिष्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्यनेनासकृत्। पररूपेण च देहादिधर्मैरवगम्यमानस्याऽऽत्मनः स्वरूपाधिगमे विपरीताधिगमनिवृत्तिर्दृष्टं फलमिति नियमार्थतैवास्य विधेर्युक्ता न त्वग्निहोत्रादीनामिवापूर्वविधित्वमिह संभवति ॥ १ ॥

तद्धोभय इत्याद्याख्यायिकाप्रयोजनमुक्तम्। तद्ध किल प्रजापतेर्वचनमुभये देवासुरा देवाश्चासुराश्च देवासुरा अनु परम्परागतं स्वकर्णगोचरापन्नमनुबुबुधिरेऽनुबुद्धवन्तः। ते चैतत्प्रजापतिवचो बुद्ध्वा किमकुर्वन्नित्युच्यते—ते होचुरुक्तवन्तोऽन्योन्यं देवाः

भ्यां ज्ञानसाधनमुक्तं तस्य च विद्याद्वाराऽविद्यानिवृत्तिर्दृष्टमेव फलमन्वयव्यतिरेकाभ्यां तद्धेतुत्वावग-मात्तथा च तत्र नापूर्वविधेरवकाशोऽस्तीत्यर्थः। तयोर्दृष्टफलत्वे वाक्यशेषमनुकूलयति—दृष्टार्थत्वं चेति। कथमसकृत्प्रयुक्तेन न पश्यामीति वर्तमानोपदेशेनान्वेषणादेर्दृष्टफलतेत्याशङ्क्य देहातिरिक्तात्मवादिनां वाक्योत्थज्ञानादनुमानाच्च मनुष्यत्वादिभ्रमनिवृत्तिप्रसिद्धेर्मैवमित्यभिप्रेत्याऽऽह—पररूपेणेति। अन्वे-षणादेर्दृष्टफलत्वे फलितमाह—इति नियमार्थतेति। अपूर्वविधित्वं तद्विषयत्वमिति यावत्। इहेत्यन्वे-षणादेरुक्तिरग्निहोत्रादिवदन्वेषणादेरत्यन्ताप्राप्त्यभावस्योक्तत्वादित्यर्थः ॥१॥

इदानीमाख्यायिकां व्याख्यातुमाख्यायिका तु विद्याग्रहणसंप्रदानविधिप्रदर्शनार्थेत्यादिनोक्तं स्मारयति—तद्धेति। अवतारिताख्यायिकाक्षराणि व्याचष्टे—तद्धेत्यादिना। किमितीन्द्रविरोचनौ

अग्निहोत्रादि विधान की तरह अपूर्व विधान संभव नहीं है। शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश के बिना अन्वेषण एवं विजिज्ञासा अपने आप होनी संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त अन्वेषण एवं विजिज्ञासा ज्ञान का साधन है, इससे विद्या द्वारा अविद्या की निवृत्ति हो जाना साक्षात् देखा जाता है। इससे अपूर्व विधि के विषय का अवकाश नहीं है। इसे श्रुति बाद में आगे प्रदर्शित करेगी "मैं यहाँ फल को नहीं देखता हूँ"। देह से भिन्न आत्मा को मानने वाले के मत में विभिन्न रूप से देहादि धर्मों का ज्ञान होने से आत्मा का स्वरूपावबोध हो जाने पर मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है। यहां इष्ट फल है अपूर्वविधि की यही नियमाथता यहाँ उचित प्रतोत होती है, अग्निहोत्रादिकों के समान अन्वेषण एवं विजिज्ञासा में अपूर्व विधान का विषय संभव नहीं है ॥१॥

'प्रजापति की इस घोषणा को देवता और असुरों ने जाना' इस मन्त्र वाक्य से आख्यायिका का प्रयोजन कहा गया। प्रजापति की यह मार्मिक वाणी परम्परा से प्राप्त होते-होते देवता और असुरों को कर्ण परम्परा से सुनने को मिली, जिससे उन्हें ज्ञान हुआ। उन्होंने प्रजापति की इस अमृत वाणी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्नोति सर्वाꣳश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रव-व्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासंविदानावेव समित्पाणी प्रजापतिसकाशमाजग्मतुः ॥२॥

लेता है। ऐसा निश्चय कर देवताओं का राजा इन्द्र और असुरों का राजा विरोचन (अपनी सम्पूर्ण भोग सामग्री आत्मीयजनों को सौंपकर शरीरमात्र से) ये दोनों परस्पर प्रतिस्पर्धा (ईर्ष्या) करते हुए ही दोनों हाथों में समिधाओं का भार लेकर प्रजापति के पास गए ॥ २ ॥

स्वपरिषद्यसुराश्च हन्त यद्यनुमतिर्भवतां प्रजापतिनोक्तं तमात्मानमन्विच्छामोऽन्वेषणं कुर्मो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानित्युक्त्वेन्द्रो हैव राजैव स्वयं देवानामि[1]तरान्देवांश्च भोगपरिच्छदं च सर्वं स्थापयित्वा शरीरमात्रेणैव प्रजापतिं प्रत्यभिप्रवव्राज प्रगतवांस्तथा विरोचनोऽसुराणाम्। विनयेन गुरवोऽभिगन्तव्या इत्येतद्दर्शयति। त्रैलोक्यराज्याच्च गुरुतरा विद्येति। यतो देवासुरराजौ महार्हभोगार्हौ सन्तौ तथा गुरुमभ्युपगतवन्तौ। तौ ह किलासंविदानावेवान्योन्यं संविदमकुर्वाणौ विद्याफलं प्रत्यन्योन्यमीर्ष्यां दर्शयन्तौ समित्पाणी समिद्भारहस्तौ प्रजापतिसकाशमाजग्मतुरागतवन्तौ ॥ २ ॥

विद्यार्थिनावपि परिकरं परित्यज्य शरीरमात्रेण प्रजापतिं प्रगतवन्तौ तत्राऽऽह—विनयेनेति। तयोरुक्तरूपगतिवशादेव दर्शितमर्थान्तरं कथयति—त्रैलोक्येति। विद्येति दर्शयतीति पूर्वेण संबन्धः। तस्या गुरुतरत्वे हेतुमाह—यत इति। संविदं मैत्रीम् ॥२॥

को जानकर क्या किया इसे श्रुति कहती है। देवता और असुरों ने अपनी-अपनी परिषत् में एक-दूसरे से कहा—हे परिषद् के सदस्यो ! आपकी यदि आज्ञा हो तो हम प्रजापति द्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्व का अन्वेषण करना चाहते हैं जिसके अन्वेषण कर लेने पर सभी लोकों की प्राप्ति हो जाती है तथा सभी कामनाएँ भी पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार देवताओं के राजा इन्द्र और असुरों के अधिपति विरोचन अपने देवसुलभ एवं असुरसुलभ भोग सामग्रियों को वहीं छोड़कर अकेले शरीर मात्र से ही प्रजापति की शरणापन्न हुए। इससे श्रुति यह सिद्ध कर रही हैं कि गुरु जी की शरण विनयावनत होकर जाना है, तभी तो धन, जन एवं सभी प्रकार की भोग सामग्री से संपन्न राजा इन्द्र और विरोचन भी विद्या की प्राप्ति के लिए सब कुछ छोड़कर गुरु जी की सन्निधि में आए। तीनों लोकों का राज्य भी मिल जाए तो भी विद्या की उपमा उससे नहीं की जा सकती क्योंकि भोगों की महिमा अधिक होती तो देवता और असुरों के अधिपति उन्हें तृण के समान छोड़कर गुरु जी की शरण में क्यों जाते ? वे दोनों एक-दूसरे से शत्रुभाव को सर्वथा नष्ट न करते हुए भी विद्या के फल प्राप्ति की इच्छा से एक दूसरे से ईर्ष्या प्रदर्शित करते हुए हाथों में समिधा लिए प्रजापति के समीप में गए ॥२॥

---

१. प्रवव्राजेति—संन्यासच्छायवचनाभिप्रायमन्वाचष्टे—इतरानित्यादिना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तौ ह द्वात्रिꣳशत वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्य स विजिज्ञासितव्यः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति ॥३॥

वहाँ जाकर उन दोनों ने ही बत्तीस वर्ष तक आचार्य शुश्रूषा एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक वास किया (तत्पश्चात् उनके अभिप्राय को समझने वाले) प्रजापति ने उनसे कहा—तुम लोग किस चीज की इच्छा करते हुए यहाँ पर रह रहे हो ? उन्होंने कहा—(किसी समय आपने घोषणा की थी) जो आत्मा पापरहित, बुढ़ापे से रहित, मृत्यु से हीन, शोक से रहित, क्षुधा से रहित, प्यास से रहित, सत्यकाम और सत्य संकल्प है; उसका अन्वेषण करना चाहिए, उसकी विशेषरूप से जिज्ञासा करनी चाहिए, क्योंकि जो उस आत्मतत्त्व की खोजकर उसे विशेषरूप से जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोकों तथा सम्पूर्ण भोगों को प्राप्त कर लेता है। ऐसा आपके वाक्य को शिष्ट पुरुष परम्परा से बतलाते हैं। (यद्यपि यहाँ आने से पूर्व हम दोनों विद्वेष करते थे, किन्तु सम्प्रति उस परस्पर ईर्ष्या का त्याग कर हमने) उसी को जानने की इच्छा से यहाँ पर ब्रह्मचर्यपूर्वक वास किया है ॥ ३ ॥

तौ ह गत्वा द्वात्रिंशतं वर्षाणि शुश्रूषापरौ भूत्वा ब्रह्मचर्यमूषतुरुषितवन्तौ। अभिप्रायज्ञः प्रजापतिस्तावुवाच किमिच्छन्तौ किं प्रयोजनमभिप्रेत्येच्छन्ताववास्तमुषितवन्तौ युवामितीत्युक्तौ तौ होचतुः। य आत्मेत्यादि भगवतो वचो वेदयन्ते शिष्टा अतस्तमात्मानं

तमात्मानं ज्ञातुमिच्छन्ताववात्स्वेति वक्तव्येऽप्यवास्तमिति [1]प्रजापतिवचोनुकर्षणमात्रं [2]मत

देवराज इन्द्र और राक्षसराज विरोचन ने प्रजापति की शरण में जाकर बत्तीस वर्ष तक एकाग्रमन से उनकी सेवा की एवं निरन्तर बत्तीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए वहाँ वास किया। इतने लम्बे समय तक न तो इन्द्र-विरोचन ने अपने निवास का प्रयोजन बताया और न ही गुरु महाराज ने ही उनसे इस विषय में कुछ पूछना उचित समझा, परन्तु इतनी अवधि के बाद एक दिन अभिप्राय को जानते हुए भी प्रजापति ने उन दोनों से पूछा—किस स्वार्थ की पूर्ति के लिए आप यहाँ इतने दिनों से वास कर रहे हो ? (अपनी तपस्या फलवती होते जान) वे दोनों बोले—"जो आत्मा निष्पाप, अजर, अमृत्यु, शोकरहित, क्षुधा-पिपासा रहित सत्यकाम एवं सत्यसंकल्प है, उसका

---

१. अवात्तमिति वक्तव्ये अवास्तमिति च्छान्दसम्। २. प्रजापति वचोनुकर्षणेति—संरंभात्स्ववक्तव्यं विस्मृत्य प्रजापत्युक्तमेव पदमनूदितवन्ताविर्त्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष

प्रजापति ने (विशुद्धान्त:करण समझ कर) उनसे कहा—'यह जो पुरुष नेत्र में दीखता है; यह आत्मा है, यह अमर है, यह अभय है, यह ब्रह्म है"। (प्रजापति के इस वाक्य से दोनों ही ने नेत्रस्थ छाया को ही आत्मा समझकर कहा—) हे भगवन्! यह जो पुरुष जल में सभी ओर से दिखाई पड़ता है और जो दर्पण में पुरुष दीखता है, उनमें से आत्मा कौन है? इस पर प्रजापति ने कहा—मैंने

ज्ञातुमिच्छन्तावववास्तमिति। यद्यपि प्राक्प्रजापतेः समीपागमनादन्योन्यमीर्ष्यायुक्तावभूतां तथाऽपि विद्याप्राप्तिप्रयोजनगौरवात्त्यक्तरागद्वेषमोहेर्ष्यादिदोषावेव भूत्वोषतुर्ब्रह्मचर्यं प्रजापतौ। तेनेदं प्रख्यापितमात्मविद्यागौरवम् ॥ ३ ॥

तावेवं तपस्विनौ शुद्धकल्मषौ योग्यावुपलक्ष्य प्रजापतिरुवाच ह—य एषोऽक्षिणि पुरुषो निवृत्तचक्षुर्भिर्मृदितकषायैर्दृश्यते योगिभिर्द्रष्टा, एष आत्माऽपहतपाप्मादिगुणो यमवोचं पुराऽहं यद्विज्ञानात्सर्वलोककामावाप्तिरेतदमृतं भूमाख्यमत एवाभयमत एव ब्रह्म

द्रष्टव्यम्। अथेन्द्रविरोचनयोर्मिथो वैरिणोः कथमेकत्रावस्थानं चिरमासीदित्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपीति। देवासुरराजयोः स्वभावतो वैरिणोरपि विद्यार्थित्वेन चिरमेकत्र ब्रह्मचर्यवासेन सूचितमर्थं दर्शयति—तेनेति ॥२॥

शुद्धकल्मषौ प्रक्षालितदोषाविति यावत्। पुरुषो द्रष्टेति संबन्धः। अस्मदादिभिस्तत्र द्रष्टा दृष्टो नास्तीत्याशङ्क्याऽऽह—निवृत्तेति। इन्द्रियाणां विषयेभ्यो वैमुख्ये हेतुमाह—मृदितेति। योगिभिः समाधिनिष्ठैरन्तर्दृष्टिभिरिति यावत्। य आत्मेत्यादिवाक्येनास्यैकवाक्यतां दर्शयति—एष इति। भूमविद्यया चास्यैकवाक्यत्वं सूचयति—भूमाख्यमिति। इतिशब्दो वाक्यसमाप्त्यर्थः। उक्तेऽर्थे वाक्यं पातयति

अन्वेषण करना चाहिए, उसी की जिज्ञासा करनी चाहिए" ऐसे आपके वचनों को हमने शिष्टजनों के मुख से सुना हैं इसलिए हम उस आत्मतत्त्व को जानने की इच्छा से आपकी ही शरण में आ पड़े हैं। यद्यपि प्रजापति का शरण में आने से पूर्व दोनों में स्वाभाविक द्वेष था किन्तु उनकी सन्निधि में रह कर विद्या प्राप्ति रूप प्रयोजन के गौरव को समझते हुए उन्होंने पारस्परिक राग-द्वेष मोह-ईर्ष्यादि दोषों का त्यागकर ब्रह्मचर्यव्रतपूर्वक बत्तीस वर्षों तक वास किया। इससे आत्म विद्या का उत्कृष्ट अलौकिक गौरव अभिलक्षित होता है ॥३॥

प्रजापति ने विचार किया ये दोनों बत्तीस वर्षों से तपस्या करते चले आ रहे हैं, इनके हृद्गत दोष सर्वथा धुल चुके हैं, अत: आत्म विद्या के अधिकारी हैं। ऐसा समझकर वे बोले—इन्द्रियों के विषय से सर्वथा उपराम हुए नेत्र मूंदकर समाधिनिष्ठ योगियों के द्वारा जिस द्रष्टा पुरुष को अन्तर्दृष्टि के द्वारा आँखों में देखा जाता है, वही आत्मा पाप रहित आदि गुणों से युक्त है, जिसका मैंने पहले उपदेश किया था, तथा जिसके जानने से सब लोकों की प्राप्ति एवं सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच ॥४॥

इत्यष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

जिस नेत्रस्थ पुरुष को बतलाया है, वही इन सबमें प्रतीत होता है ॥ ४ ॥

॥ इति सप्तमः खण्डः ॥

वृद्धतममिति । अथैतत्प्रजापतिनोक्तमक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति वचः श्रुत्वा छायारूपं पुरुषं जगृहतुः । गृहीत्वा च दृढीकरणाय प्रजापतिं पृष्टवन्तौ । अथ योऽयं हे भगवोऽप्सु परिख्यायते परिसमन्ताज्ज्ञायते यश्चायमादर्श आत्मनः प्रतिबिम्बाकारः परिख्यायते खड्गादौ च कतम एष एषां भगवद्भिरुक्तः किंवैक एव सर्वेष्विति । एवं पृष्टः प्रजापतिरुवाच—एष उ एव यश्चक्षुषि द्रष्टा मयोक्त इति । एतन्मनसि कृत्वैषु सर्वेष्वन्तेषु मध्येषु परिख्यायत इति होवाच ।

ननु कथं युक्तं शिष्ययोर्विपरीतग्रहणमनुज्ञातुं प्रजापतेर्विगतदोषस्याऽऽचार्यस्य

—अथ योऽयमिति । प्रश्नार्थोऽथशब्दः । इतिशब्दः समाप्त्यर्थः । यश्चक्षुरुपलक्षितो द्रष्टैष एव मयोक्तोऽपहतपाप्मादिधर्मवानात्मा युवाभ्यां पुनरन्यथा गृहीतमिति निपातेन सूचयन्नुक्तवान्प्रजापतिरित्याह—एवमिति । प्रजापतिश्चेदेवमुक्तवान्कथं तर्हि तयोर्वैमुख्यं न निवृत्तमित्याशङ्क्याऽऽह—एतदिति । यथोक्तवचोरूपं वस्त्विति यावत् ।

यत्प्रजापतिना मनसि निहितं तत्प्रकटीकर्तुं चोदयति—नन्विति । शिष्यगतं विपरीतग्रहणा-

---

है, यह भूमासञ्ज्ञक अमृत है अतः भयरहित है इसी से सबसे वृद्ध होने के कारण यही ब्रह्म है। देवताओं के राजा इन्द्र एवं असुराधिपति विरोचन ने उपदेष्टा प्रजापति के 'नेत्र में दीखने वाला पुरुष आत्मा है' इन वचनों को सुनकर छायात्मा पुरुष को वह आत्मा समझ लिया। अपनी समझ की बलिहारी की पुष्टि करने के लिए उन्होंने प्रजापति से पूछा—हे भगवन्! यह जो पुरुष जल में सब ओर से दिखाई पड़ता है एवं जो दर्पण में तथा खड्गादि में आत्मा का प्रतिबिम्बाकार दिखलाई पड़ता है, इनमें कौन सा आत्मा है, क्या वही एक आत्मा ही इन सभी में अभिलक्षित होता है जिसका आपने उपदेश किया था। उनके द्वारा अन्यथा ग्रहण को समझते हुए प्रजापति ने कहा—मैंने जो चक्षु से उपलक्षित द्रष्टा आत्मा पापरहित अमृतादि गुणों वाला कहा था, यह वही है। उनको विपरीत ग्रहण को मन में विचार कर प्रजापति बोले—वह नेत्रस्थ आत्मा ही इन सबके अन्दर प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार मल, विक्षेप व आवरण दोष से रहित प्रजापति जैसे आचार्य के होते हुए इन्द्र और विरोचन दोनों शिष्यों को उनके उपदेश का सही अर्थ न लगकर विपरीत ज्ञान कैसे हो गया,

---

१. वैमुख्यं विपरीतग्रहणमिति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सतः। सत्यमेवं, नानुज्ञातम् । कथम् । तथाप्यात्मन्यध्यारोपितपाण्डित्यमहत्त्वबोद्धृत्वौ हीन्द्रविरोचनौ तथैव च प्रथितौ लोके। तौ यदि प्रजापतिना मूढौ युवां विपरीतग्राहिणावित्युक्तौ स्यातां ततस्तयोश्चित्ते दुःखं स्यात्तज्जनिताच्च चितावसादात्पुनःप्रश्नश्रवणग्रहणावधारणं प्रत्युत्साहविघातः स्यादतो रक्षणीयौ शिष्याविति मन्यते प्रजापतिः। गृह्णीतां तावत्तदुदशरावदृष्टान्तेनापनेष्यामीति च। ननु न युक्तमेष उ एवेत्यनृतं वक्तुम्। न चानृतमुक्तम्। कथम्। आत्मनोक्तोऽक्षिपुरुषो मनसि संनिहिततरः शिष्यगृहीताच्छायात्मनः। सर्वेषां चाभ्यन्तरः "सर्वान्तरः" इति श्रुतेः। तमेवावोचदेष उ एवेत्यतो नानृतमुक्तं प्रजापतिना। तथा च तयोर्विपरीतग्रहणनिवृत्त्यर्थं ह्याह ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

आचार्येणानुज्ञातुमयुक्तमित्यङ्गीकृत्य प्रजापतेरभिप्रायमाह—सत्यमेवमिति । कथं तर्हि तयोर्विपरीतग्रहणमपनेतव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—गृह्णीतां तावदिति। तावद्विपरीतमिति शेषः। चकारेण क्रियापदमनुकृष्यते। यद्यदाचरति श्रेष्ठ इति न्यायेन सर्वेषां मृषावादित्वं स्यादिति शङ्कते—नन्विति। प्राजापत्यमभिप्रायमेव प्रकटयन्नतिप्रसङ्गं परिहर्तुं तदीयमनृतवादित्वं दूषयति—न चेति। तदेवाऽऽकाङ्क्षापूर्वकं स्फुटयति—कथमित्यादिना । शिष्याभ्यां गृहीतो योऽयमात्मा ततः सकाशादात्मना स्वेनैव प्रजापतिनोक्तो योऽस्त्यक्ष्युपलक्षितो द्रष्टा स मनसि प्रजापतेः संनिहिततरोऽतः स एव तेनोक्त इत्यर्थः। इतश्च द्रष्टा प्रजापतेर्मनसि संनिहिततर इत्याह—सर्वेषां चेति। प्रजापतेर्मनसि द्रष्टुः संनिहितत्वेऽपि कथं तस्य न मृषावादित्वमत आह—तमेवेति। इतश्च प्रजापतेर्न मृषावादित्वमित्याह—तथा चेति ॥४॥

इत्यष्टमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ॥७॥

इस शंका का समाधान देते हुए कहते हैं—यद्यपि यह ठीक ही है कि उन्हें सही ज्ञान नहीं हो पाया तथापि आत्मा में अध्यारोपित विद्वत्ता की महानता को जानने वाले इन्द्र और विरोचन हैं, वे इसी रूप में लोक में प्रसिद्ध हैं। यदि आचार्य प्रजापति ने उन्हें "तुम दोनों विपरीत ग्रहण करने वाले मूर्ख हो" ऐसा कह दिया होता तो उनके दिल को ठेस पहुँचती, उससे उनकी चित्त की खिन्नता यहाँ तक बढ़ जाती कि दुबारा उनसे कोई प्रश्न ही न बन पड़ता; श्रवण, ग्रहण और निश्चय को करने का उत्साह भी फीका पड़ जाता। अतः प्रजापति ने विचार किया कि शरणागत इन दोनों शिष्यों की रक्षा करनी चाहिए। अभी तक मेरे उपदेश का जैसा अर्थ इन्होंने समझा, उस विपरीत ग्रहण को मैं जल से भरे कसोरे वाले दृष्टान्त से दूर करूँगा। आचार्य प्रजापति को तो धर्म से विचलित नहीं होना चाहिए फिर उन दोनों शिष्यों से उन्होंने असत्य भाषण क्यों किया कि जलस्थ और दर्पणस्थ प्रतिबिम्ब भी वही आत्मा है, ऐसी शङ्का होने पर उसका निरास किया जाता है, कि छायात्मा को आत्मा कहने से सर्वथा असत्य भी नहीं कहा। क्योंकि नेत्र से उपलक्षित द्रष्टा आत्मा का उपदेश प्रजापति ने किया वह आत्मा प्रजापति के मन में अत्यन्त समीप है, शिष्यों ने भी समीपतर छायात्मा का ग्रहण किया। इसमें श्रुति भी प्रमाण है कि वह सर्वान्तर्यामी आत्मा सबके भीतर है? उसी को मन में रखते

१. मन्यत इति। २. छायात्मा।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।)

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथ-स्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्व-मेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूपमिति ॥ १ ॥

जलपूर्ण सकोरे में आत्मप्रतिबिम्ब का दर्शन

(प्रजापति ने कहा—) जल से भरे हुए सकोरे में अपने को देख कर आत्मा के विषय में जो तुम लोग न समझ सको, वह मुझसे बतलाना। ऐसा सुनकर दोनों ही ने जल से भरे सकोरे में देखा, तत्पश्चात् प्रजापति ने कहा—तुम लोग क्या देखते हो? दोनों ही ने कहा—हे भगवन्! हम अपने आपको नख से लेकर लोम पर्यन्त जैसे के तैसे प्रतिबिम्ब को देखते हैं ॥ १ ॥

उदशराव उदकपूर्णे शरावादावात्मानमवेक्ष्यानन्तरं यत्तत्राऽऽत्मानं पश्यन्तौ न विजानीथस्तन्मे मम प्रब्रूतमाचक्षीयाथामित्युक्तौ तौ ह तथैवोदशरावेऽवेक्षांचक्राते अवेक्षणं चक्रतुः। तथा कृतवन्तौ तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति। ननु तन्मे प्रब्रूतमित्युक्ताभ्यामुदशरावेऽवेक्षणं कृत्वा प्रजापतये न निवेदितमिदमावाभ्यां न विदितमित्यनिवेदिते चाज्ञानहेतौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तत्र कोऽभिप्राय

आत्मानमुदशरावेऽवेक्ष्य तं तत्राऽऽत्मानं पश्यन्तौ सन्तावनन्तरं यदात्मनो न विजानीथो युवां तन्मे प्रब्रूतमिति संबन्धः। प्रजापतिवचनमुपक्रमानुकूलं न भवतीति शङ्कते—नन्विति। उपक्रम-

---

हुए प्रजापति ने इसमें क्या झूठ बोला कि वह छायात्मा भी द्रष्टा आत्मा ही है। पुनः अग्रिम श्रुति से उनके विपरीत ग्रहण की निवृत्ति करने के लिए प्रजापति बोले ॥४॥

जल से भरे हुए सकोरे में अपने को देखो, उसमें देखकर भी यदि आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं हो तो मुझे बतला देना। प्रजापति आचार्य की इस वाणी में श्रद्धा रखते हुए देवराज इन्द्र और राक्षसराज विरोचन ने अपने प्रतिबिम्ब को जल से भरे हुए सकोरे में देखा। वे दोनों जब इस क्रिया से निवृत्त हुए तो प्रजापति ने उनसे पूछा—इसमें क्या देख रहे हो? इस पर शङ्का होती है कि प्रजापति ने उन्हें परामर्श दिया था कि जल से भरे सकोरे में देखकर जैसी अनुभूति हो मुझे बतलाना किन्तु उन्होंने स्वयं कुछ भी निवेदन नहीं किया क्योंकि वे इसका रहस्य ही नहीं समझ पाये, इस प्रकार कुछ भी न कह सकने की स्थिति को अज्ञानता का कारण जानकर प्रजापति ने ही (उनकी बुद्धि को प्रयोग करने के आशय से) पूछा—इसमें क्या देख रहे हो? प्रजापति के वचन उपक्रम के अनुकूल न होने का क्या अभिप्राय है? इसका समाधान करते हुए कहा जाता है—इन्द्र और विरोचन के न बोलने का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ

फिर दोनों से प्रजापति ने (छायात्मा में आत्मत्व निश्चय निवृत्ति के लिए) कहा—तुम दोनों

इति। उच्यते—नैव तयोरिदमावयोरविदितमित्याशङ्काऽभूच्छायात्मन्यात्मप्रत्ययो निश्चित एवाऽऽसीत्। येन वक्ष्यति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुरिति। न ह्यनिश्चितेऽभिप्रेतार्थे प्रशान्तहृदयत्वमुपपद्यते। तेन नोचतुरिदमावाभ्यामविदितमिति। विपरीतग्राहिणौ च शिष्यावनुपेक्षणीयाविति स्वयमेव पप्रच्छ किं पश्यथ इति, विपरीतनिश्चयापनयाय च वक्ष्यति साध्वलंकृतावित्येवमादि। तौ होचतुः—सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूपमिति, यथैवाऽऽवां हे भगवो लोमनखादिमन्तौ स्व एवमेवेदं लोमनखादिसहितमावयोः प्रतिरूपमुदशरावे पश्याव इति ॥ १ ॥

तौ ह पुनः प्रजापतिरुवाच च्छायात्मनिश्चयापनयाय, साध्वलंकृतौ यथा स्वगृहे

मतिक्रम्य व्याख्यानस्य प्रजापतेरभिप्रायमाह—उच्यत इति। तत्र प्रथममिन्द्रविरोचनाभ्यामावाभ्यामिदमविदितमिति प्रजापतिं प्रत्यवचने कारणमाह—नैवेति। छायात्मनि च्छायायां तद्धेतौ शरीरे चेन्द्रविरोचनयोर्यथाक्रममात्मधीरियं निश्चिता प्रवृत्तेत्यर्थः। तयोस्तत्राऽऽत्मप्रत्ययस्य निश्चितत्वे गमकमाह—येनेति। प्रव्रजनेऽपि शान्तहृदययोस्तयोरात्मप्रत्ययस्य कथं निश्चितत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—न हीति। तेन विपरीतग्राहित्वेनेति यावत्। उक्तमगृहीत्वा विपरीतं गृहीतवन्तौ तर्हि प्रजापतिनोपेक्षणीयौ कुबुद्धित्वादित्याशङ्क्य प्राजापत्यमभिप्रायमाह—विपरीतग्राहिणौ चेति। कथमिदं प्रजापतेरभिमतमित्यधिगतमत आह—विपरीतेति। प्राजापत्ये प्रश्ने देवासुरराजयोर्विपरीतग्रहणमनुवदति—तौ हेति ॥१॥

तदपनयनप्रकारं सूचयति—तौ ह पुनरिति। छायायां तद्धेतौ च देहे तयोरात्मनिश्चयो

कारण "इसका हमें ज्ञान नहीं है" यह आशङ्का भी नहीं थी क्योंकि इससे पूर्व उन्हें छायात्मा में आत्मा के स्वरूप का निश्चय हुआ ही था। इसी की पुष्टि तीसरे मन्त्र से भी की जा सकती है, जहाँ श्रुति कहेगी 'तत्पश्चात् वे दोनों शान्ति लाभ करके चल दिए।" यदि अभीष्ट अर्थ में निश्चय नहीं हुआ होता तो हृदय का शान्त होना कैसे कहा जा सकता था। इसलिए विपरीत ग्रहण के कारण इसका हमें ज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं बोले। विपरीत ग्रहण होने पर भी उन्हें कुबुद्धि मानकर सर्वथा उपेक्षा करना ठीक नहीं है, अतः प्रजापति आचार्य ने स्वयं ही पूछा कि "इस जल से पूर्ण सकोरे में आप दोनों क्या देख रहे हो"। अग्रिम मन्त्र में श्रुति विपरीत ग्रहण की निवृत्ति के लिए कहेगी—"तुम अच्छी प्रकार सज धज कर सुन्दर वस्त्रों से विभूषित होकर जलपूर्ण सकोरे में अपने को देखो" इत्यादि। देवराज इन्द्र और राक्षसराज विरोचन बोले—हे भगवन्! हम दोनों ही इस जलपूर्ण पात्र में नख से लेकर लोम पर्यन्त अपने प्रतिबिम्ब को देखते हैं अर्थात् जिस प्रकार, नख और लोम से युक्त हमारा शरीर है, उस नख और लोमादि से युक्त अपनी प्रतिमूर्ति को जल भरे सकोरे में देख रहे हैं ॥१॥

इन्द्र और विरोचन का छाया में तथा उसके हेतु देह में आत्मनिश्चय का निरास करने के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षांचक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति ॥ २ ॥

अच्छी प्रकार से अलंकार से युक्त हो, सुन्दर वस्त्र धारण कर और लोम नखादि को कटवा कर परिष्कृत हो जल से पूर्ण सकोरे में देखो। तब उन्होंने भली प्रकार अलंकार से युक्त हो सुन्दर वस्त्र धारण कर, परिष्कृत होकर जलपूर्ण सकोरे में देखा (किसी प्रकार इनकी छाया में आत्मत्व निश्चय निवृत्त हो जावे इसी अभिप्राय से) प्रजापति ने पुनः उनसे पूछा—तुम लोग क्या देखते हो ? ॥ २ ॥

सुवसनौ महार्हवस्त्रपरिधानौ परिष्कृतौ छिन्नलोमनखौ च भूत्वोदशरावे पुनरीक्षेथामिति। इह च नाऽऽदिदेश यदज्ञातं तन्मे प्रब्रूतमिति। कथं पुनरनेन साध्वलंकारादिकृत्वोदशरावेऽवेक्षणेन तयोश्छायात्मग्रहोऽपनीतः स्यात्। साध्वलंकारसुवसनादीनामागन्तुकानां छायाकरत्वमुदशरावे यथा शरीरसंबद्धानामेवं शरीरस्यापि च्छायाकरत्वं पूर्वं बभूवेति गम्यते। शरीरैकदेशानां च लोमनखादीनां नित्यत्वेनाभिप्रेतानामखण्डितानां छायाकरत्वं पूर्वमासीत्। छिन्नेषु च नैव लोमनखादिच्छाया दृश्यतेऽतो लोमनखादिवच्छरीरस्याप्यागमापायित्वं सिद्धमित्युदशरावादौ दृश्यमानस्य तन्निमित्तस्य च

यस्तस्य निरासायेति यावत्। इह चेति पर्यायोक्तिः। नाऽऽदिदेश तत्प्रयोजनाभावादित्यर्थः। उक्तोदाहरणेन च्छायायां देहे चेन्द्रविरोचनयोरात्मप्रत्ययो नापनीतो भवतीति शङ्कते—कथमिति। छायायास्तत्कारणस्य चाऽऽगन्तुकत्वादनात्मत्वमत्र विवक्षितमित्युत्तरमाह—साध्वलंकारेति। पूर्वमुदकादिसंबन्धावस्थायामिति यावत्। व्यभिचारित्वाच्च च्छायातत्कारणयोरनात्मत्वमित्याह—शरीरकदेशानामिति। उपपत्तिभ्यां सिद्धमर्थं निगमयति—इत्युदशरावादाविति। न केवल छायातत्कारणयोरेवा-

---

लिए पुनः आचार्य प्रजापति बोले—(गुरुकुल की आश्रमोचित वेशभूषा को छोड़कर) अपने घर में पहनने लायक सुन्दर अलंकारों से युक्त बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित पश्चकेश एवं नखों को काटकर जल से पूर्ण सकोरे में अपने को देखो। इस मन्त्र में प्रजापति ने पूर्व मन्त्र की तरह यह आदेश नहीं दिया कि यदि तुम कुछ भी जान न सको तो मुझे बतलाना। तो फिर प्रजापति द्वारा यह आशा कैसे की जा सकती थी कि सुन्दर वस्त्र अलंकारों से सुसज्जित होकर देखने से उनका छायात्मा वाला विपरीत ग्रहण निवृत्त हो जाएगा। जिस प्रकार शरीर से संबद्ध होने पर सुन्दर वस्त्र अलंकारों से अलंकृत बदन नवीन आगन्तुक उपाधियों को जल से पूर्ण सकोरे में छायात्मा देखा जाता है, इसी प्रकार यह शरीर भी जल के सम्पर्क से पूर्व छायात्मा ही था। शरीर के एकदेश में रहने वाले लोम और नखों का छायात्मा से एकभाव रहना पहले से हमेशा अभीष्ट था। लोम और नाखूनों से रहित हो जाने पर उनकी छाया भी नहीं दीखेगी। इसलिए लोम और नखादिकों की तरह शरीर का भी आना-जाना,

Raj Guru Math, Sarvada, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलंकृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलंकृतौ

इन्द्र और विरोचन दोनों ने कहा—हे भगवन् ! जैसे हम दोनों उत्तम अलंकार से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए और परिष्कृत हैं, हे भगवन् ! वैसे ही जलपूर्ण सकोरे के भीतर दीखने वाले

देहस्यानात्मत्वं सिद्धम् । उदशरावादौ छायाकरत्वाद्देहसंबद्धालंकारादिवत् । न केवलमेतावदेतेन यावत्किंचिदात्मत्वाभिमतं सुखदुःखरागद्वेषमोहादि च कादाचित्कत्वान्नखलोमादिवदनात्मेति प्रत्येतव्यम् । एवमशेषमिथ्याग्रहापनयनिमित्ते साध्वलंकारादिदृष्टान्ते प्रजापतिनोक्ते श्रुत्वा तथा कृतवतोरपि च्छायात्मविपरीतग्रहो नापजगाम यस्मात्तस्मात्स्वदोषेणैव केनचित्प्रतिबद्धविवेकविज्ञानाविन्द्रविरोचनावभूतामिति गम्यते । तौ पूर्ववदेव दृढनिश्चयौ पप्रच्छ किं पश्यथ इति ॥ २ ॥

तौ तथैव प्रतिपन्नौ यथैवेदमिति पूर्ववद्यथा साध्वलंकारादिविशिष्टावावां स्व

नात्मत्वं किं तूक्तन्यायेनाहंकारादीनां तद्धर्माणां चात्माऽऽत्मीयत्वं प्रत्युक्तमिति प्रसङ्गाद्वर्तिविशति—न केवलमिति । आत्मत्वाभिमतमहंकारादीति शेषः मोहाद्यात्मीयत्वाभिमतमित्यध्याहार्यम् । एतेनेति सूचितमेव हेतुं दर्शयति—कादाचित्कत्वादिति । 'अनात्मेत्यनात्मत्वमनात्मीयत्वोपलक्षणार्थम् । तर्हि तयोर्यथोक्तरीत्या विपरीतग्रहणस्यापगतत्वात्किमुत्तरेण प्रजापतिवाक्येनेत्याशङ्कयाऽऽह–एवमिति ॥२॥

तथैवेत्यस्य व्याख्यानं पूर्ववदिति । यथैवेदमिति प्रतीकग्रहणं तद्व्याचष्टे—यथेति । आवां स्व इतीदमुदाहरणं यथैवेति संबन्धः । अक्षिवाक्यादुदशराववाक्यात्साध्वलंकारवाक्याच्च च्छायातद्दे-

---

बढ़ना-घटना सिद्ध हो गया। इससे निष्कर्ष यह निकला कि जल से पूर्ण सकोरे में दीखने वाले प्रतिबिम्ब एवं उसके कारण देह का अनात्मा होना सिद्ध है। देह से संबद्ध अलंकारादि के समान मिट्टी से पूर्ण सकोरे आदि में छायात्मा ही है। छाया अथवा उसका कारण देह की अनात्मा नहीं है बल्कि जो कुछ भी आत्मा से अभिमत अहंकारादि तथा सुख-दुःख, राग-द्वेष मोहादि है; अनात्म विषयों के कारण होने से नख-लोमादि की तरह आत्मा से संबद्ध नहीं है। प्रजापति ने सुन्दर वस्त्रों व अलंकारों से सुसज्जित होकर सकोरे में देखने वाले दूसरे दृष्टान्त का प्रतिपादन कर सोचा था कि इन्द्र और विरोचन का मिथ्या ग्रहण अब तो पूर्णतः समाप्त हो जाएगा, उन्होंने आचार्य की बात सुनकर वैसे ही अलंकृत होकर सकोरे में देखा भी किन्तु कुछ हाथ न लगा, उनको छायात्मा के दर्शन हुए जो मात्र विपरीत ग्रहण ही था, इस विपरीत ग्रहण की निवृत्ति नहीं हो पाई। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्र और विरोचन को किसी प्रबल दोष के कारण ही आचार्य की सन्निधि एवं दृष्टान्त प्रतिपादन द्वारा विवेक विज्ञान नहीं हो पाया। वह अपने दृढ़ निश्चय में पूर्ववत् जरा भी टस से मस नहीं हुए। तब आचार्य प्रजापति ने पूछा—आप दोनों ने सकोरे में क्या देखा ? ॥२॥

इन्द्र और विरोचन बोले—जैसे हम दोनों सुन्दर अलंकारादिकों से युक्त थे, वैसे ही हमने

---

१. अनात्मेत्यनात्मत्वमिति—अनात्मेत्यनेनानात्मत्वमुक्तं तच्चानात्मीयत्वोपलक्षणार्थमिति योज्यम् । वस्तुतस्त्वनात्मत्वमित्यनावश्यकमेव ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतम-भयमेतद्ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः ॥ ३ ॥

ये दोनों भी उत्तम अलंकार से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए और परिष्कृत हैं। तब प्रजापति ने (अपने मन में अभिमत आत्मा का ही निश्चय कर पहले की तरह) कहा—यह आत्मा है, अभय है तथा यही ब्रह्म है। तत्पश्चात् वे दोनों शान्तचित्त हो चले गए, (दीर्घ काल ब्रह्मचर्य वास से, नेत्रस्थ पुरुष का उपदेश श्रुति से तथा उदशरावादि की युक्ति से ये दोनों संस्कार युक्त हो चुके हैं। अब मेरे उपदेश का बारम्बार मनन कर इन्हें स्वयं ही आत्मबोध हो जाएगा, ऐसा समझकर प्रजापति ने अपने को कृतार्थ मानकर जाते हुए उन दोनों की उपेक्षा कर दी) ॥ ३ ॥

एवमेवेमौ छायात्मानाविति सुतरां विपरीतनिश्चयौ बभूवतुः। यस्याऽऽत्मनो लक्षणं य आत्माऽपहतपाप्मेत्युक्त्वा पुनस्तद्विशेषमन्विष्यमाणयोर्य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति साक्षादात्मनि निर्दिष्टे तद्विपरीतग्रहापनयायोदशरावसाध्वलंकारदृष्टान्तेऽप्यभिहित आत्मस्वरूपबोधाद्विपरीतग्रहो नापगतः। अतः स्वदोषेण केनचित्प्रतिबद्धविवेकविज्ञानसामर्थ्याविति मत्वा यथाभिप्रेतमेवाऽऽत्मानं मनसि निधायैष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति प्रजापतिः पूर्ववत्। न तु तदभिप्रेतमात्मानम्। य आत्मेत्याद्यात्मलक्षणश्रवणेनाक्षिपुरुषश्रुत्या चोदशरावाद्युपपत्त्या च संस्कृतौ तावत्। मद्वचनं सर्वं पुनः पुनः स्मरतोः प्रतिबन्धक्षयाच्च स्वयमेवाऽऽत्मविषये विवेको भविष्यतीति मन्वानः पुनर्ब्रह्मचर्या-

---

त्वोरन्यतरस्यैवाऽऽत्मत्वमभ्यासादिति भ्रमातिशयः सुतरामित्युक्तः। प्रजापतिवाक्यमुत्थापयति—यस्येत्यादिना। वाक्यव्याख्यानमतिदिशति—पूर्ववदिति। एषशब्देन तयोरभिप्रेतमेवाऽऽत्मानं छायाख्यं देहाख्यं च परामृश्य प्रजापतिरनुमोदितवानित्याशङ्क्याऽऽह—न त्विति। तौ ह शान्तहृदयावित्यादिवाक्यस्य तात्पर्यमाह—य आत्मेत्यादीति। संस्कृतौ तावद्भूवतामिति शेषः। संस्कृतयोरपि तयोरात्मविषये कथं विवेको भविष्यतीत्याशङ्क्याऽऽह—मद्वचनमिति। उपेक्षायां कारणान्तरमाह—पुनरिति।

अपने प्रतिबिम्बों को जल से पूर्ण सकोरे में देखा। इस प्रकार वस्तुतः उन्हें पूर्णरूप से भ्रम ही हुआ। आचार्य प्रजापति तो दृष्टान्त द्वारा उस आत्मा का स्वरूप समझाने का प्रयत्न कर रहे थे जो निष्पाप, अमृत, अजर, निष्कल है, इसी में प्रथम नेत्र उपलक्षित आत्मा का दृष्टान्त बतलाया, उसमें उन्हें छायात्मा का विपरीत ग्रहण हुआ। इस विपरीत ग्रहण को बुद्धि से हटाने के लिए आचार्य ने जल से पूर्ण सकोरे का दृष्टान्त देकर उसमें सुन्दर अलंकारों से सुसज्जित होकर देखने को कहा, किन्तु दोनों शिष्यों को आत्मज्ञान नहीं हो पाया फिर मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति कैसे हो जाती। अतः आपने ही किसी दोष से विवेक विज्ञान अवरुद्ध हो जाने पर वे विपरीत ग्रहण वाले हैं, ऐसा मानकर प्रजापति ने कहा—हे शिष्यो! यह आत्मा अमृत, अभय एवं ब्रह्म है। प्रजापति ने अपनी इस पूर्ववत् वाणी में अभीष्ट आत्मा का मन में निर्धारण करते हुए ही ऐसा कहा, उनके द्वारा मिथ्या ज्ञान वाली अनभीष्ट आत्मा का ध्यान करके नहीं। इस प्रकार इन्द्र और विरोचन निष्पाप आत्मा के स्वरूप का अक्षिपुरुष

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE, Grant-2

तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्याऽऽत्मानमननु-विद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय

प्रजापति ने दूर गए उन दोनों को देखकर यह वाक्य इसलिए कहा—(जिसमें पूर्व उपदेश की भाँति यह निम्नाङ्कित वाक्य भी उनके कानों में पढ़ जाएगा) ये दोनों आत्मा को उपलब्ध न करके ही, उसे जाने बिना ही (विपरीत निश्चय वाले होकर) जा रहे हैं। देवता हों या असुर हों, जो भी कोई व्यक्ति ऐसे निश्चय वाले होंगे, वे निश्चय हारेंगे। वह विरोचन शान्त हृदय से असुरों के पास

देशे च तयोश्चित्तदुःखोत्पत्तिं परिजिहीर्षन्कृतार्थबुद्धितया गच्छन्तावप्युपेक्षितवान्प्रजापतिः। तौ हेन्द्रविरोचनौ शान्तहृदयौ तुष्टहृदयौ कृतार्थबुद्धी इत्यर्थः। न तु शम एव, शमश्चेत्तयोर्जातो[1] विपरीतग्रहो विगतोऽभविष्यत्प्रवव्रजतुर्गतवन्तौ ॥ ३ ॥

एवं तयोर्गतयोरिन्द्रविरोचनयो राज्ञोर्भोगासक्तयोर्यथोक्तविस्मरणं स्यादित्याशङ्क्याप्रत्यक्षं प्रत्यक्षवचनेन तयोश्चित्तदुःखं परिजिहीर्षुस्तौ दूरं गच्छन्तावन्वीक्ष्य प्रजापतिः य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादिवचनवदेतदप्यनयोः श्रवणगोचरत्वमेष्यतीति

किमिति शान्तहृदयत्वं तुष्टहृदयत्वेन व्याख्यायते हृदयगतः शम एव किं न विवक्ष्यते तत्राऽऽह—न त्विति ॥३॥

यदि प्रजापतिस्तावुपेक्षितवान्किमिति तर्हि तौ हान्वीक्ष्येत्यादिवाक्यमित्याशङ्क्याऽऽह—एवं तयोरिति। प्रजापतिरुवाचेति संबन्धः। तर्हि किमिति तावाहूय नोक्तवानित्याशङ्क्याऽऽह—प्रत्यक्षवचनं-

---

श्रुति एवं जल पूरित सकोरे के दृष्टान्त आदि से उपपत्ति द्वारा प्राप्त ज्ञान से युक्त हुए। प्रजापति ने विचार किया कि यदि ये मेरे उपदेशामृत का बार-बार स्मरण करते रहे तो प्रतिबन्ध का नाश हो जाने पर इन्हें अपने आप ही विवेक हो जाएगा। एक बार तो आचार्य के मन में हुआ कि इन्हें रोक लें और ब्रह्मचर्य व्रत के अनुष्ठान के लिए आदेश दें किन्तु इतनी लम्बी तपस्या के बाद पुनः उसी में लगाने से इनके चित्त में क्लेश होगा, अतः कृतकृत्य हुए से जाते हुए उन्हें न रोककर प्रजापति ने उनकी उपेक्षा कर दी। इन्द्र और विरोचन उस गुरु सन्निधि के स्वल्प लाभ में भी सन्तुष्ट हुए अपने को कृतार्थबुद्धि मानने लगे। 'शान्त हृदय से' श्रुति का तात्पर्य वासना त्याग में नहीं हैं, क्योंकि यदि शमरूप वासना त्याग उन्हें प्राप्त हो गया होता तो उनका विपरीत ज्ञान निश्चित रूप से मिट जाता परन्तु वे मात्र सन्तोष लाभ कर चले गये ॥३॥

इन्द्र और विरोचन के इस प्रकार चले जाने पर पुनः उनके बारे में कुछ आशंका होने लगी कि ये घर जाकर राजोचित भोगों में आसक्त होकर मेरी विद्या को भूल जाएँगे। प्रत्यक्ष वचन से उनके चित्त की व्याकुलता को दूर करने की इच्छा से दूर जाते हुए उनको देखकर उन्हें अभिलक्षित

---

१. जातोऽभविष्यदिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति ॥४॥

गया और उनसे देहात्म बुद्धिरूप यह आत्मविद्या सुनाई। अतः इस लोक में देहयुक्त आत्मा ही पूजनीय है और आत्मा ही सेवनीय है। इस देहरूप आत्मा की पूजा और परिचर्या करने वाला पुरुष इस लोक और परलोक दोनों लोकों को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥

मत्वोवाच प्रजापतिः। अनुपलभ्य यथोक्तलक्षणमात्मानमननुविद्य स्वात्मप्रत्यक्षं चाकृत्वा विपरीतनिश्चयौ च भूत्वेन्द्रविरोचनावेतौ व्रजतो गच्छेताम्। अतो यतरे देवा वाऽसुरा वा किं विशेषिता एतदुपनिषद आभ्यां या गृहीताऽऽत्मविद्या सेयमुपनिषद्येषां देवानामसुराणां वा त एतदुपनिषद एवंविज्ञाना एतन्निश्चया भविष्यन्तीत्यर्थः। ते किं, पराभविष्यन्ति श्रेयोमार्गात्पराभूता बहिर्भूता विनष्टा भविष्यन्तीत्यर्थः। स्वगृहं गच्छतोः सुरासुरराजयोर्योऽसुरराजः स ह शान्तहृदय एव सन्विरोचनोऽसुराञ्जगाम। गत्वा च तेभ्योऽसुरेभ्यः शरीरात्मबुद्धिर्योपनिषत्तामेतामुपनिषदं प्रोवाचोक्तवान्। देहमात्रमेवाऽऽत्मा पित्रोक्त इति। तस्मादात्मैव देह इह लोके महय्यः पूजनीयस्तथा परिचर्यः परिचरणी-

---

नेति। कर्तृत्वेन संबन्धार्थ[1]मुक्तमेव पुनरनुवदति—प्रजापतिरिति। किमसावूचिवानित्यपेक्षायामाह—अनुपलभ्येति। यथोक्तं प्रजापतिवाक्यं श्रुत्वाऽपि गच्छतोरिन्द्रविरोचनयोर्विरोचनगतमवान्तरविशेषमाह—स्वगृहमिति। पित्रा तथोक्तत्वेऽपि किमस्माभिस्तत्र कर्तव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—तस्मादिति। तथा पूजनीयत्ववदिति यावत्। तथेत्युक्तप्रकारोक्तिः। तथाऽपि प्रार्थिता सर्वलोककामावाप्तिरसिद्धेत्या-

---

करते हुए प्रजापति बोले ताकि उनके प्रथम उपदेश "यह आत्मा निष्पाप है" इत्यादि की तरह यह वाणी भी दूर से ये श्रवण करते हुए चले जाएँ। पूर्वोक्त लक्षण से युक्त आत्मा के स्वरूप की उपलब्धि न कर विपरीत ग्रहण से युक्त हो इन्द्र और विरोचन ने जाते-जाते सुना—जो भी देवता अथवा असुर हमारे द्वारा उपदिष्ट इस आत्मविद्या रूपी उपनिषद् को सुनकर इन्द्र विरोचन की तरह निश्चय वाले होंगे; वे कल्याण पथ से विचलित होकर सर्वथा भ्रष्ट हो जाएँगे। देवराज इन्द्र और असुरराज विरोचन अपने घर की ओर बढ़ते चलते; उनमें असुरों का राजा विरोचन मन में प्रसन्न होता हुआ आखिर असुरों के समीप पहुँचा, उन असुरों को शरीरात्म-बुद्धि रूप उपनिषत् कह सुनाई। उसने उन्हें स्पष्ट कहा कि प्रजापति ने यह ज्ञान दिया है कि आत्मा तो शरीर मात्र ही है। इसलिए इस संसार में देहात्मा की ही सदा पूजा करनी चाहिए तथा इसी की सेवा करनी चाहिए। इस प्रकार इस संसार में देह रूपी आत्मा की पूजा एवं सेवा करने से इस लोक और परलोक को प्राप्ति होती है। राजा विरोचन

---

१. उक्तमेव प्रजापतिपदं कर्तृत्वेनोवाचेति क्रियापदेन सह अन्वयार्थं पुनराहेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तस्मादप्यद्य हाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाꣳ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालंकारेणेति सꣳस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यते ॥५॥

इत्यष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

इसी से (उन असुरों का सम्प्रदाय इस समय भी विद्यमान है, अतः) इस लोक में जो दान न देने वाला, श्रद्धा न करने वाला और यथाशक्ति यजन न करने वाला पुरुष होता है, उसे शिष्ट पुरुष कहते हैं कि अरे ! यह तो आसुरी स्वभाव वाला है। इस प्रकार की आत्मविद्या असुरों की ही है, वे ही मृतक पुरुष के शव को गन्ध, पुष्पादि, भिक्षा, वस्त्र और अलंकार से सजाते हैं और इसके द्वारा हम परलोक प्राप्त करेंगे, ऐसा भी मानते हैं ।। ५ ॥

॥ इत्यष्टमः खण्डः ॥

यस्तथाऽऽत्मानमेवेह लोके देहं महयन्परिचरंश्चोभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं च । इहलोकपरलोकयोरेव सर्वे लोकाः कामाश्चान्तर्भवन्तीति राज्ञोऽभिप्रायः ॥ ४ ॥

तस्मात्तत्संप्रदायोऽद्याप्यनुवर्तत इह लोकेऽददानं दानमकुर्वाणमविभागशीलमश्रद्दधानं सत्कार्येषु श्रद्धारहितं यथाशक्त्ययजमानमयजनस्वभावमाहुरासुरः खल्वयं यत एवंस्वभावो बतेति खिद्यमाना आहुः शिष्टाः । असुराणां हि यस्मादश्रद्दधानतादिलक्षणैषोपनिषत् । तयोपनिषदा संस्कृताः सन्तः प्रेतस्य शरीरं कुणपं भिक्षया गन्धमाल्यान्ना-

---

शङ्कयाऽऽह—इहलोकेति ॥ ४ ॥

विरोचनसंप्रदायस्याविच्छिन्नत्वं दर्शयति—तस्मादिति । देहात्मवादस्याऽऽसुरत्वादिति यावत् । तत्संप्रदायस्तेषां विरोचनप्रभृतीनामसुराणां संप्रदायो देहात्मत्वोपदेशः । किमितिदानादिरहितमासुरमाहुरित्यपेक्षायामाह—असुराणां हीति । प्रकृतोपनिषत्कार्यं कथयति—तयेति ॥५॥

इत्यष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥८॥

के कथन का अभिप्राय यह है कि इस लोक और परलोक में ही सब लोकों एवं उनके भोगों का अन्तर्भाव हो जाता है ॥४॥

इसी से विरोचन का सम्प्रदाय आज तक भी चलता आ रहा है तभी तो आज भी इस संसार में किसी को धर्म का विभागपूर्वक दान न करते देख, अपनी सामर्थ्य के रहते हुए भी सत्यकार्यों में श्रद्धा विहीन तथा देवपूजनादि कर्मों से विरत स्वभाव वाले को देखकर लोग कहते हैं यह आसुरी स्वभाव वाला है। सभ्य लोग उसके इस आचरण से खेद प्रकट करते हैं। यह उपनिषत् दानादि के प्रति अरुचि प्रदर्शित करने वाली एवं असुरों के स्वभाव अश्रद्धा आदि का प्रतिपादन करने वाली है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।)

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥१॥

प्रजापति के पास फिर से इन्द्र का आना

पर इन्द्र ने देवताओं के पास बिना पहुँचे ही इसमें भय का अनुभव किया । जैसे इस शरीर के भली प्रकार अलंकृत होने पर यह छायारूप आत्मा भी भली प्रकार अलंकृत हो जाता है। सुन्दर वस्त्र धारण करने पर छायात्मा सुन्दर वस्त्रधारी और (नख लोमादि को निवृत्त कर) परिष्कृत होने पर छायात्मा भी परिष्कृत हो जाता है । ठीक ऐसे ही इस शरीर के अन्धे होने पर छायात्मा अंधा हो जाता है, (चक्षुनासिकादि के बहनारूप) स्राम होने पर छायात्मा स्राम हो जाता है और हाथ पैर के कट जाने पर छायात्मा भी नष्ट हो जाता है । इस देहात्मदर्शन में मैं कोई फल नहीं देखता ॥ १॥

दिलक्षणया वसनेन वस्त्रादिनाऽऽच्छादनादिप्रकारेणालंकारेण ध्वजपताकादिकरणेनेत्येवं संस्कुर्वन्त्येतेन कुणपसंस्कारेणामुं प्रेत्य प्रतिपत्तव्यं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते ॥ ५ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

अथ ह किलेन्द्रोऽप्राप्यैव देवान्दैव्याऽक्रौर्यादिसंपदा युक्तत्वाद्गुरोर्वचनं पुनः पुनः स्मरन्नेव गच्छन्नेतद्वक्ष्यमाणं भयं स्वात्मग्रहणनिमित्तं ददर्श दृष्टवान् । उदशरावदृष्टान्तेन

एवं विरोचनगतं विशेषं दर्शयित्वा देवराजगामिनं विशेषमाह—अथेत्यादिना । द्वयोस्तुल्येऽपि प्राजापत्यवाक्यश्रवणे देवराजस्यैव कथं पथि तदनुसंधानं वृत्तमित्याशङ्क्याऽऽह—दैव्येति । स्मरणफलमाह—स्मरन्नेवेति । प्रजापतिवचनं स्मरतोऽपि कथमिन्द्रस्य च्छायात्मग्रहणे दोषदर्शनमित्याशङ्क्याऽऽह—उदशरावेति । यदर्थो देहादेरनात्मत्वज्ञापनायेति यावत् । कादाचित्कत्वव्यभिचारित्वा-

---

इस आत्मविद्या से संस्कृत वे लोग मृतक पुरुष के शव को गन्ध मालादि संज्ञक भिक्षा द्वारा वस्त्र और आच्छादन रूप अलंकार एवं ध्वज-पताकादि के द्वारा अच्छी प्रकार सजाते हैं । उनका ऐसा विश्वास है कि शव को इस प्रकार सजाने संवारने से प्राप्तव्य लोक को हम पहुँच जाएँगे ॥५॥

विरोचन के सहाध्यायी देवराज इन्द्र ने मार्ग में चलते-चलते विचार किया क्योंकि वह अक्रूरता आदि दैवी गुणों से युक्त था, गुरु के वचनों को पुनः पुनः स्मरण करने लगा, जिस आत्मा के स्वरूप का उसने मिथ्याग्रहण किया था, उसके सम्बन्ध में (द्वैत से युक्त होने से) उसे भय लगने लगा । देहादि में अनात्मत्व ज्ञापन के लिए प्रजापति ने जल से पूर्ण सकोरे के दृष्टान्त से जो विवेचन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरेयाय

(इस प्रकार देहात्मदर्शन में दोष निश्चय कर) वह इन्द्र समित्पाणि होकर पुनः प्रजापति के

प्रजापतिना यदर्थो न्याय उक्तस्तदेकदेशो मघवतः प्रत्यभाद्बुद्धौ। येन च्छायात्मग्रहणे दोषं ददर्श। कथम्। यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते छायात्माऽपि साध्वलंकृतो भवति सुवसने च सुवसनः परिष्कृते परिष्कृतो यथा नखलोमादिदेहावयवापगमे छायात्माऽपि परिष्कृतो भवति नखलोमादिरहितो भवति। एवमेवायं छायात्माऽप्यस्मिञ्छरीरे नखलोमादिभिर्देहावयवत्वस्य तुल्यत्वादन्धे चक्षुषोऽपगमेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः। स्रामः किलैकनेत्रस्तस्यान्धत्वेन गतत्वात्। चक्षुर्नासिका वा यस्य सदा स्रवति स स्रामः। परिवृक्णश्छिन्नहस्तश्छिन्नपादो वा। स्रामे परिवृक्णे वा देहे छायात्माऽपि तथा भवति। तथाऽस्य देहस्य नाशमन्वेष नश्यति ॥ १ ॥

नाहमत्रास्मिंश्छायात्मदर्शने देहात्मदर्शने वा भोग्यं फलं पश्यामीत्येवं दोषं

दिर्णयः। तदेकदेशो व्यभिचारिणोऽनात्मत्वम्। न्यायैकदेशदृष्टिफलमाचष्टे—येनेति। दोषदर्शनमेवाऽऽकाङ्क्षाद्वारा स्फोरयति—कथमित्यादिना। उदाहृते वाक्ये विवक्षितमर्थं कथयति—यथेति। परिष्कृतो भवतीत्येतद्व्याचष्टे—नखेति। एवमेव देहस्य नखाद्यपगमे छायात्मनोऽपि तदपगमवदित्यर्थः। शरीरेऽस्मिन्नन्धे सति च्छायात्माऽप्यन्धो भवतीति संबन्धः। किमिति देहस्याऽऽन्ध्ये छायात्मनस्तदिष्टमित्याशङ्क्याऽऽह—नखलोमादिभिरिति। तैः सह चक्षुरादीनां तुल्यत्वाद्देहावयवत्वस्य देहे नखाद्यभावे छायायामपि तदभावाभ्युपगमाद्देहे चक्षुराद्यभावेऽपि च्छायायां तदभावो युक्त इत्यर्थः। स्रामशब्दस्यापुनरुक्तमर्थं कथयति—स्रामः किलेति पदार्थमुक्त्वा वाक्यार्थमाह—स्राम इति। पारतन्त्र्यादनात्मत्वं छायाया दर्शयित्वा तत्रैव हेत्वन्तरमाह—तथेति ॥१॥

विनाशित्वादियुक्तिदर्शनफलमुपसंहरति—अत इति। दोषं दृष्ट्वा यथोक्तरीत्या किं कृतवानित्यपेक्षायामाह—इत्येवमिति। सर्वज्ञो हि प्रजापतिरिन्द्राभिप्रायं जानन्नेव किमर्थं प्राकृतवत्पृच्छ-

---

किया था, इन्द्र की बुद्धि में उसका व्यभिचारी अनात्मा रूप एकदेश ही स्फुरित हुआ। तभी उसने छायात्मा को आत्मा समझने का अपना मिथ्याज्ञान रूप दोष जान लिया। दोष दृष्टि में हेतु प्रस्तुत किया जाता है—जिस प्रकार शरीर को सुन्दर अलंकृत कर लेने पर यह छायात्मा भी सुन्दर अलंकृत होता है; सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित करने पर यह भी सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित दीखता है; नख-लोमादि देह के अवयवों को साफ कर लिया जाए तो छायात्मा भी नख-लोमादि से रहित परिष्कृत दीखता है। इस प्रकार शरीर और छायात्मा में नख-लोमादि शरीर के अवयवों में समानता ही है। आँखों से अन्धा होने पर अन्धा दीखता है, काना होने पर काना दीखता है। एक आँख वाले को 'स्राम' कहते हैं, इसका अर्थ अन्ध में ही गतार्थ है। अथवा जिसकी आँख व नाक सदा बहती रहती है उसे भी 'स्राम' कहते हैं। टूटे हाथ अथवा टूटे पाँव वाले को 'परिवृक्ण' कहते हैं। शरीर के काना लूला एवं लंगड़ा होने पर छायात्मा भी वैसा ही दीखता है। छायात्मा सदा ही शरीर के अधीन है तभी तो अन्त में देह के नाश हो जाने पर इसका भी नाश हो जाता है ॥१॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलंकृते साध्वलंकृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥२॥

पास आया। प्रजापति ने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र ! तू तो विरोचन के साथ शान्त हृदय होकर चला गया था, अब क्या चाहता हुआ पुनः आया है ? इन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! जैसे इस शरीर के भली प्रकार अलंकारयुक्त होने पर यह छायात्मा भली प्रकार अलंकृत होता है, सुन्दर वस्त्र धारण करने पर सुन्दर वस्त्रधारी हो जाता है और परिष्कृत होने पर परिष्कृत स्राम होने पर स्राम और खण्डित होने पर खण्डित भी हो जाता है। अतः मैं इसमें कोई फल नहीं देखता। २॥

देहच्छायात्मदर्शनेऽध्यवसाय स समित्पाणिर्ब्रह्मचर्यं वस्तुं पुनरेयाय। तं ह प्रजापतिरुवाच—मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः प्रगतवानसि विरोचनेन सार्धं किमिच्छन्पुनरागम इति। विजानन्नपि पुनः पप्रच्छेन्द्राभिप्रायाभिव्यक्तये यद्वेत्थ तेन मोपसीदेति यद्वत्। तथा च स्वाभिप्रायं प्रकटमकरोद्यथैव खल्वयमित्यादि, एवमेवेति चान्वमोदत प्रजापतिः।

तीत्याशङ्क्याऽऽह—विजानन्नपीति। **आचार्यस्य ज्ञानवतोऽपि शिष्यं प्रत्यभिप्रायं विशेषेण ज्ञातुं प्रश्नोपपत्तौ दृष्टान्तमाह**—यद्वेत्थेति। **तथाच प्रजापतिप्रश्नानुरोधेनेति यावत्। इन्द्रविषयः स्वशब्दः।**

इसलिए जल से पूर्ण सकोरे में छायात्मा के दर्शन अथवा पृथक् से भी देहात्म दर्शन का "मैं यहाँ कोई फल नहीं देखता हूँ" इस प्रकार देवराज इन्द्र शरीर के छायात्मा दर्शन में आत्मतत्त्व के निर्णयाभाव रूप दोष का निश्चय कर हाथ में समिधा लिए ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर पुनः गुरु जी की शरणागति में आया। उसे पुनः आए देख प्रजापति बोले—तुम तो शान्तचित्त होकर असुरराज विरोचन के साथ चले गये थे पुनः लौटकर आने का क्या कारण है। जानते हुए भी पुनः पूछने का तात्पर्य यह था कि इन्द्र अपने अभिप्राय की अभिव्यक्ति दृष्टान्त के द्वारा करेगा। देवराज इन्द्र ने मार्ग में जिस प्रकार सोचा था, उसी प्रकार प्रजापति को निवेदन कर दिया—हे प्रभो ! जिस प्रकार इस शरीर को सुन्दर अलंकार से युक्त किया जाए तो यह छायात्मा भी सुन्दर अलंकृत हो जाता है, आकर्षक वस्त्र धारण करने पर आकर्षक वस्त्र धारण करने वाला हो जाता है, परिष्कृत होने पर परिष्कृत हो जाता है, इसी प्रकार अन्धा होने पर अन्धा, लुन्जा होने पर लुन्जा हो जाता है। प्रजापति ने उसकी बात का पूर्ण समर्थन किया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ननु तुल्येऽक्षिपुरुषश्रवणे देहच्छायामिन्द्रोऽग्रहीदात्मेति देहमेव तु विरोचनस्तत्कि-निमित्तम्। तत्र [1]मन्यते। यथेन्द्रस्योदशरावादिप्रजापतिवचनं स्मरतो देवानप्राप्तस्यैवाऽऽचार्योक्तबुद्धया छायात्मग्रहणं तत्र दोषदर्शनं चाभूत्। न तथा विरोचनस्य किं तर्हि देह एवाऽऽत्मदर्शनं नापि तत्र दोषर्शनं बभूव। तद्वदेव विद्याग्रहणसामर्थ्यप्रतिबन्धदोषाल्पत्व-बहुत्वापेक्षमिन्द्रविरोचनयोश्छायात्मदेहयोर्ग्रहणम्। इन्द्रोऽल्पदोषत्वाद्दृश्यत इतिश्रुत्यर्थ-मेव श्रद्दधानतया जग्राहेतरश्छायानिमित्तं देहं हित्वा श्रुत्यर्थं लक्षणया जग्राह प्रजापति-नोक्तोऽयमिति दोषभूयस्त्वात्। यथा किल नीलानीलयोरादर्शे दृश्यमानयोर्वाससोर्यन्नीलं तन्महार्हमिति च्छायानिमित्तं वास एवोच्यते न च्छाया तद्वदिति विरोचनाभिप्रायः।

शिष्ययोः श्रवणसाम्येऽपि प्रतिपत्तिवैषम्ये निमित्तं पृच्छति—नन्विति। आचार्यमतोपन्यास-द्वारा परिहरति—तत्रेति। तत्र प्रतिपत्तिविशेषे दृष्टान्तेन निमित्तविशेषं दर्शयति—यथेति। आचार्योक्त-बुद्धया तात्पर्येण प्रजापतिना छायात्मैवोक्त इति भ्रान्त्येत्यर्थः। विरोचनस्येन्द्रवच्छायात्मग्रहणमा-चार्योक्तबुद्धया नाभूदित्याह—न तथेति। कथं तर्हि तस्याऽऽत्मदर्शनमित्याशङ्क्याऽऽह—देह एवेति। आचार्येणाऽऽत्मा देह एवोक्त इति बुद्धया तत्रैव विरोचनस्याऽऽत्मज्ञानमासीदित्यर्थः। इन्द्रस्य च्छाया-त्मग्रहणे देवानप्राप्तस्यैव मार्गमध्ये दोषदर्शनवद्विरोचनस्यासुरानप्राप्तस्याध्वनि देहात्मदर्शने दोषदर्शनं न च प्रवृत्तमित्याह—नापीति। दृष्टान्तमुक्त्वा दार्ष्टान्तिकमाह—तद्वदेवेति। विद्याग्रहणोपयिकस्य सामर्थ्यस्य प्रतिबन्धभूतो यो रागादिदोषस्तदल्पत्वापेक्षमिन्द्रस्य च्छायायामात्मग्रहणमित्युक्तं व्यक्ती-करोति—इन्द्र इति। यथोक्तदोषभूयस्त्वापेक्षं गृह्णतो विरोचनस्याभिप्रायं दृष्टान्तेन दर्शयति—यथेत्या-

---

इस पर शंका होती है कि प्रजापति से उपदेश श्रवण दोनों शिष्यों ने एक साथ किया था किन्तु नेत्र से उपलक्षित पुरुष को इन्द्र ने देहच्छाया से आत्मा का ग्रहण किया किन्तु विरोचन ने देह मात्र ही समझा, ऐसा क्यों हुआ? इसमें किसी आचार्य का विचार है जिस प्रकार इन्द्र ने जल से पूर्ण सकोरे आदि में प्रजापति के वचन का स्मरण करते-करते देवताओं के पास न जाकर आचार्य द्वारा छायात्मा के ग्रहण में भ्रान्ति की अनुभूति की; इस प्रकार का विचार विरोचन के मन में नहीं उठा क्योंकि उसने तो शरीर में ही आत्मदर्शन कर लिया था, फिर उसे मिथ्या भ्रान्ति में दोषदृष्टि कैसे होती। दृष्टान्त का निरूपण पर दार्ष्टान्तिक रहस्य बतलाते हुए कहते हैं—इसी प्रकार ही विद्या ग्रहण के उपायभूत सामर्थ्य से रागादि दोष प्रतिबन्धक होकर विघ्न उपस्थित करते हैं। विरोचन को दोषों ने अधिक और इन्द्र को दोषों ने कम घेरा, तभी ग्रहण बुद्धि में देह और आत्मा रूप मे पृथक्-पृथक् प्रतीति हुई। दैवी वृत्ति से युक्त इन्द्र अल्पदोष वाला देखा जाता है, इसलिए उसने श्रुति के अर्थ को बड़ी श्रद्धा से ग्रहण किया, उधर विरोचन ने आसुरी वृत्ति से आक्रान्त दोष बाहुल्य के कारण लक्षणा से छायात्मा देह का ग्रहण किया श्रुति के तात्पर्य अर्थ जिसे प्रजापति बताना चाहते थे उसका ग्रहण नहीं किया। विरोचन के निश्चय का सारांश यह है कि दर्पण में नील और शुक्ल वस्त्रों के देखने वाले नीलाम्बर को बहुमूल्य कहा जाएगा, दर्पण के प्रतिबिम्ब को छायानिमित्तक वस्त्र समझते हुए भी उसे छाया न कहकर वस्त्र ही कहा जाता है, उसी प्रकार यहाँ जल में उन्हें देह का ही मिथ्या

---

1. मन्यते कश्चिदाचार्य इति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ६ ॥

हे इन्द्र ! तूने ठीक ही समझा है यह बात ऐसी ही है—ऐसा प्रजापति ने कहा, मैं तुझसे इसकी पुनः व्याख्या करूँगा । अब तुम बत्तीस वर्ष पुनः यहाँ पर निवास करो । इन्द्र ने पुनः वहाँ पर बत्तीस वर्ष निवास किया, तब प्रजापति ने उस इन्द्र से कहा ॥ ३ ॥

॥ इति नवमः खण्डः ॥

स्वचित्तगुणदोषवशादेव हि शब्दार्थावधारणं तुल्येऽपि श्रवणे ख्यापितं दाम्यत दत्त दयध्वमिति दकारमात्रश्रवणाच्छ्रुत्यन्तरे । निमित्तान्यपि तदनुगुणान्येव सहकारीणि भवन्ति ॥ २ ॥

एवमेवैष मघवन्सम्यक्त्वयाऽवगतं न च्छायात्मेत्युवाच प्रजापतिर्यो मयोक्त

दिना । उक्तमर्थं 'बृहदारण्यकश्रुत्यवष्टम्भेन स्पष्टयति—स्वचित्तेति । देवान्मनुष्यानसुरांश्च प्रजापतिना दकारोपदेशे साधारण्येन कृते तेषां तदीयश्रवणे तुल्येऽपि तदर्थविशेषावधारणं स्वचित्तगुणदोषवशादेव बृहदारण्यके ख्यापितं तथेहापीत्यर्थः । तत्र वा कथं तुल्येऽपि श्रवणेऽर्थविशेषबुद्धिस्तत्राऽऽह—दाम्यतेति । अदान्ता हि वयं स्वभावतस्तेन दाम्यतेत्यस्मान्प्रति पितोक्तवानिति देवानां मतिराविरासीत् । स्वभावतो लुब्धा वयं तेन दत्तेत्यस्मान्प्रत्युक्तवान्पितेति मनुष्याणां बुद्धिरासीत् । सुक्रूरा हि वयं स्वभावतस्तेन दयध्वमित्यस्मान्प्रति प्रजापतिरूचिवानित्यसुराणां प्रतिपत्तिर्बभूव । तदेवं दकारमात्रश्रवणादात्मचित्तानुरोधेन विचित्रा तेषां मनीषा प्रवृत्ता तथेन्द्रविरोचनयोरपि भविष्यतीत्यर्थः । अथेन्द्रविरोचनयोर्युक्तिदर्शनाविशेषादर्थप्रतिपत्तेरप्यविशेषः स्यादिति चेन्नेत्याह—निमित्तान्यपीति । युक्तिदर्शनान्यपि स्वचित्तगुणदोषाल्पत्वबहुत्वापेक्षाण्यतस्तयोस्तदपेक्षं प्रतिपत्तिवैषम्यमविरुद्धमित्यर्थः ॥२॥

इन्द्राभिप्रायं बुद्ध्वा प्रजापतिरनुमोदितवानित्युक्तमिदानीमनुमोदनवाक्यं व्याकरोति—एवमे-

---

ग्रह हुआ । बृहदारण्यक श्रुति में भी प्रजापति ने देव, मनुष्यों और असुरों को दकार मात्र का उपदेश दिया किन्तु अपने चित्त में संचित गुण दोषों के वशीभूत एक सा उपदेश श्रवण करने पर भी अर्थ में अलग-अलग प्रतीति हुई । देवताओं ने कहा—आपने 'इन्द्रिय दमन करो'—ऐसा हमें उपदेश दिया है । मनुष्यों ने कहा—आपने हमें 'दान करो' ऐसा उपदेश दिया है । असुरों ने कहा—आपने हमें 'दया करो' ऐसा उपदेश दिया है । युक्ति और दर्शन भी अपने चित्त के गुण-दोषों की न्यूनता या अधिकता से निमित्त भी यथार्थ और अयथार्थ ज्ञान में सहकारी होते हैं ॥२॥

इन्द्र के अभिप्राय को जानकर प्रजापति ने उसकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—हे

---

१. बृ० उ० ५।२।१ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ।)

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदꣳ शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥

इन्द्र को स्वप्न पुरुष का उपदेश

"जो यह स्वप्न में (स्त्री आदि से) पूजित हुआ विचरता है यही आत्मा है" ऐसा प्रजापति ने कहा। यह अमर है, यह अभय है और यही ब्रह्म है, ऐसा सुनकर वह इन्द्र शान्त चित्त हो चला गया। पर देवताओं के पास बिना पहुँचे ही उसने इस आत्मा में यह भय देखा। यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह (स्वप्न पुरुष) अन्धा नहीं होता, यदि यह स्राम होता है, तो भी वह स्राम नहीं होता। इस प्रकार शरीर के दोष से यह स्वप्न शरीर दूषित नहीं होता ॥ १ ॥

आत्मा प्रकृत एतमेवाऽऽत्मानं तु ते भूयः पूर्वं व्याख्यातमप्यनुव्याख्यास्यामि। यस्मात्सकृद्व्याख्यातं दोषरहितानामवधारणविषयं प्राप्तमपि नाग्रहीरतः केनचिद्दोषेण प्रतिबद्धग्रहणसामर्थ्यस्त्वमतस्तत्क्षपणाय वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणीत्युक्त्वा तथोषितवते क्षपितदोषाय तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

य आत्माऽपहतपाप्मादिलक्षणो य एषोऽक्षिणीत्यादिना व्याख्यात एष सः। कोऽसौ। यः स्वप्ने महीयमानः स्त्र्यादिभिः पूज्यमानश्चरत्यनेकविधान्स्वप्नभोगाननु-

---

वेति। इन्द्राभिप्रायविषय एषशब्दः। अनुव्याख्यास्यामीत्युक्तं श्रुत्वा श्रोतुकाममुपगतमिन्द्रं प्रत्याह—यस्मादिति ॥३॥

इत्यष्टमाध्यायस्य नवमः खण्डः ॥९॥

इन्द्र ! आपने ठीक ही समझा है। मैंने जिस आत्मा के विषय में उपदेश किया था वह प्रकृत आत्मा ही है, छायात्मा नहीं। उसी पूर्व उपदिष्ट आत्मा का व्याख्यान मैं तेरे प्रति पुनः करूँगा। क्योंकि तुम्हें एक बार निर्दोष आत्मतत्त्व का उपदेश किया था किन्तु निर्णय करने की सामर्थ्य रखते हुए तुम यथार्थ रूप में उसे ग्रहण नहीं कर सके। किस दोष के कारण तुम्हारी ग्रहण बुद्धि में अवरोध आ गया, उसको दूर करने के लिए तुम पुनः बत्तीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर निवास करो। प्रजापति का आदेश पाकर इन्द्र ने वैसा ही किया। इस प्रकार बत्तीस वर्ष ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करने से क्षीण दोष वाले इन्द्र से प्रजापति बोले— ॥३॥

'जो आत्मा निष्पाप, अमृत, अभय आदि लक्षणों से युक्त है, नेत्र से उपहित पुरुष है' इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैन विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ २ ॥

इस देह के वध से यह स्वप्नदेह नष्ट नहीं होता और न इसके स्राम भाव से यह स्राम हो होता है फिर भी इसे मानो कोई मारता हो, कोई विद्रावित (तांड़ित) करता हो, मानो अपने किसी अप्रिय वस्तु को जानता है और प्रिय के वियोग में खेद-सा करता हो, ऐसा प्रतीत होता है। अत: ऐसे आत्म-दर्शन में मैं कोई फल नहीं देखता ॥ २ ॥

भवतीत्यर्थः। एष आत्मेति होवाचेत्यादि समानम्। स हैवमुक्त इन्द्रः शान्तहृदयः प्रवव्राज। स हाप्राप्यैव देवान्पूर्ववदस्मिन्नप्यात्मनि भयं ददर्श। कथम्। तदिदं शरीरं यद्यप्यन्धं भवति स्वप्नात्मा योऽनन्धः स भवति। यदि स्राममिदं शरीरमस्रामश्च स भवति नैवैष स्वप्नात्माऽस्य देहस्य दोषेण दुष्यति ॥ १ ॥

नाप्यस्य वधेन स हन्यते छायात्मवन्न चास्य स्राम्येण स्रामः स्वप्नात्मा भवति। यदध्यायादावागममात्रेणोपन्यस्तं नास्य जरयैतज्जीर्यतीत्यादि तदिह न्यायेनोपपादयितुम-

---

पूर्ववच्छायात्मदर्शनवदित्यर्थः। अस्मिन्नप्यात्मनीति स्वप्नदृशीत्यर्थः। छायात्मनः शरीरानुविधायित्ववन्न स्वप्नदृशस्तदनुविधायित्वं तथाच कथं पूर्ववद्दोषदर्शनमित्याशङ्क्य परिहरति—कथमित्यादिना ॥१॥

स्राम्येण चक्षुरादिगतानवरतसलिल[१]गलनविषयत्वेनेति यावत्। देहदोषेणाऽऽत्मनो न दोषो भवतीति प्रागेवोक्तं तत्किमर्थमिह पुनरुच्यतेऽत आह—यदध्यायादावित्ति। न्यायोऽन्वयव्यतिरेकाख्यः। [२]एतद्देहाभिमाने हि सत्येव देहधर्मेण संयुज्यत इव द्रष्टा स्वप्ने त्वेतद्देहाभिमानाभावान्न तेन संसृज्यत इत्याह—तदिहेति। स्वप्नद्रष्टा चेद्देहदोषेण न युज्यते कथं तर्हि तस्मिन्दोषदर्शनमित्याशङ्क्याऽऽह—

प्रकार उपदिष्ट किया गया है, वही यह आत्मा है। वह कौन सा आत्मा है ? जो स्वप्न में सुरूपा स्त्रियों द्वारा पूजित भाँति-भाँति के भोगों का सेवन करता है, वही वह आत्मा है, इस प्रकार मन्त्र का अर्थ पिछले मन्त्रों की तरह ही समझ लेना चाहिए।

आत्मा का यह स्वरूप सुनकर इन्द्र का चित्त शान्त हो गया और वह पुन: प्रजापति के यहाँ से चल पड़ा। अभी वह देवताओं तक पहुँचा ही नहीं था कि इन्द्र को आत्मा में इस स्वरूप में भी भय प्रतीत होने लगा, जैसे छायात्मा के मिथ्या ग्रह में उसे भय लगा था। ऐसा क्यों लगा ? इन्द्र ने सोचा —यद्यपि यह देह अन्धा होता है किन्तु स्वप्न में दीखने वाला वही स्वाप्न पुरुष अन्धा नहीं होता। यदि यह शरीर स्राम होता है तो स्वप्न में दीखने वाला पुरुष स्राम नहीं होता। यह स्वप्नात्मा पुरुष तो इस देह के दोष से जरा भी दूषित नहीं होता ॥१॥

---

१. गलनविषयत्वेन तदाश्रयत्वेन तद्वत्त्वेनेति यावत्। २. उक्तं न्यायमेवाभिनयति—एतदित्यादिना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यतिं ॥ ३ ॥

अतः वह समित्पाणि होकर पुनः प्रजापति के पास आया। प्रजापति ने उससे कहा—हे इन्द्र ! तू तो शान्त हृदय हो चला गया था अब किस चीज की इच्छा से आये हो ? इन्द्र ने कहा—भगवन् ! यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है और यह स्राम होता है तो भी वह स्राम नहीं होता। इस प्रकार वह स्वप्नदेह इस देह के दोष से दूषित नहीं होता है ॥ ३ ॥

पन्यस्तम्। न तावदयं छायात्मवद्देहदोषयुक्तः किंतु घ्नन्ति त्वेवैनम्। एवशब्द इवार्थे। घ्नन्तीवैनं केचनेति द्रष्टव्यम्। न तु घ्नन्त्येवेति। उत्तरेषु सर्वेष्विवशब्ददर्शनात्। नास्य वधेन हन्यत इति विशेषणाद्घ्नन्ति त्वेवेति चेन्नैवम्। प्रजापतिं प्रमाणीकुर्वतोऽ-

---

न तावदिति। किमित्येवकारो यथाश्रुतो न व्याख्यायते तत्राऽऽह—न त्विति। इतिशब्दो द्रष्टव्यमित्यनेन संबध्यते। देहस्य वधेन नायं हन्यत इति विशेषणात्स्वतो वधः स्वप्नदृशो नियमतो विवक्षितः कस्मादेवशब्दो न यथाश्रुत एवेति शङ्कते—नास्येति। किमयं प्रजापतिमाप्तमनाप्तं वा मन्यते यद्यनाप्तं बुध्यते न तर्हि तं प्रत्युपगतिरिन्द्रस्य विद्याग्रहणार्थं संभवतीति मत्वाऽऽह—नैवमिति। विकल्पान्तरं प्रत्याह—प्रजापतिमिति। न स्वतो हननं स्वप्नदृशो विवक्षितमिन्द्रस्येति शेषः। उक्तमेव स्फोरयति—

इस शरीर के नष्ट होने पर छायात्मा की तरह यह स्वप्न पुरुष नष्ट नहीं होता। स्वप्नात्मा का स्राम हो जाना भी नहीं देखा जाता चाहे देह भले ही स्राम हो जाए। छान्दोग्योपनिषद् के अष्टमाध्याय के आदि (८. १-५) में जो श्रुति द्वारा प्रतिपादन किया गया था "शरीर को बुढ़ापा आने पर आत्मा को बुढ़ापा नहीं आता", उसे ही यहाँ अन्वय-व्यतिरेक सञ्ज्ञक न्याय से प्रतिपादन किया जाता है—देहाभिमान के होने पर ही देह के धर्मों से युक्त होता है, इस प्रकार द्रष्टा आत्मा स्वप्न में इस देह का अभिमानी न होने से उससे संसक्त नहीं होता इसी को पुनः बतलाया गया है। यदि स्वप्न-द्रष्टा देह के दोषों से दूषित नहीं होता तो फिर उसमें दोष दर्शन कैसे संभव है, इस पर कहते है—यह शरीर छायात्मा की तरह दोषयुक्त नहीं है फिर भी लगता है जैसे इसे कोई मारते हों। मन्त्र में 'एव' शब्द का 'इव' अर्थ में तात्पर्य है। ऐसा लगता है मानो इसे कुछ लोग मारते हों। वास्तव में तो मारते नहीं ही हैं। श्रुति मन्त्र में बाद में सर्वत्र ही तो 'इव' शब्द का प्रयोग देखा जाता है।

इस पर शंका होती है स्वप्नात्मा पुरुष में "देह के नष्ट होने पर यह नष्ट नहीं होता" यह विशेषण होने से, अपने आप वध तो स्वप्नद्रष्टा को नियमतः होगा ही ऐसा कहना ठीक नहीं है क्योंकि इन्द्र प्रजापति को आप्त पुरुष मान रहा है तभी तो मिथ्या ग्रहण की निवृत्ति के लिए उनकी शरण में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति

न इस देह के वध से उसका वध होता है और न इसकी स्रामता से वह स्राम होता है फिर भी मानो उसे कोई मारता हो कोई ताड़ित करता हो, इसीलिए वह मानो अपने अनिष्ट का अनुभव करता हो और रोता हो। ऐसा अनुभव के कारण इस स्वप्न देहात्मज्ञान में मैं कोई फल नहीं देखता। तब

नृतवादित्वापादनानुपपत्तेः। एतदमृतमित्येतत्प्रजापतिवचनं कथं मृषा कुर्यादिन्द्रस्तं प्रमाणीकुर्वन्।

ननु च्छायापुरुषे प्रजापतिनोक्तेऽस्य शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यतीति दोषमभ्यदधात्तथेहापि स्यात्। नैवम्। कस्मात्। य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति न च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते मघवान्। कथम्। अपहतपाप्मादिलक्षणे पृष्टे यदि च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते तदा कथं प्रजापतिं प्रमाणीकृत्य पुनः श्रवणाय समित्पाणिर्गच्छेत्। जगाम च। तस्मान्न च्छायात्मा प्रजापतिनोक्त इति मन्यते। तथा

एतदिति।

दृष्टान्तेन शङ्कते—नन्विति। दृष्टान्तं विघटयति—नैवमिति। तद्विघटनप्रकारं प्रश्नपूर्वकं प्रकटयति—कस्मादित्यादिना। एतदेवाऽऽकाङ्क्षापूर्वकं प्रपञ्चयति—कथमित्यादिना। अथेन्द्रो दृश्यत इति श्रुत्यर्थं गृहीत्वा छायात्मानमेव गृहीतवानित्युक्तं कथमिदानीमन्यथोच्यते तत्राऽऽह—तथेति। यथेदं वाक्यमक्ष्युपलक्षितद्रष्टृपरं तथा प्रागेव व्याख्यातं 'न तु स्वप्नद्रष्टरि च्छायात्मनीव स्रष्टा

आता है। प्रजापति ने तो आत्म स्वरूप के विषय में कहा था—यह अमृत तत्त्व है, इसे प्रामाणिक करते हुए इन्द्र मिथ्या सिद्ध नहीं कर सकता।

पुनः शंका होती है—पूर्व प्रतिपादित छायात्मा तो शरीर के नष्ट हो जाने पर नष्ट हो जाता है, वह दोष यहाँ भी उपस्थित हो जाता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि प्रजापति ने जो नेत्र उपलक्षित आत्मा कहा था, वह छायात्मा पुरुष नहीं था, इसे तो इन्द्र ने ऐसा समझ लिया था। ऐसा क्यों कहते हो क्योंकि यदि निष्पाप आत्मा के पूछने पर प्रजापति ने छायात्मा का उपदेश दिया होता तो उसे पद-वाक्य-प्रमाण पारावारीण आचार्य मानकर पुनः श्रवण करने के लिए इन्द्र उनके पास पास हाथ में समिधा लिए कैसे आते। उनका पुनः-पुनः प्रजापति की शरण में आना इस बात का प्रतीक है कि प्रजापति द्वारा छायात्मा पुरुष के बारे में उपदेश करना इष्ट नहीं था। तभी तो कहा गया है कि जो इस नेत्र उपलक्षित आत्मा में द्रष्टा दिखाई देता है। यह वाक्य द्रष्टा परक है, इसमें

---

१. ननु च्छायेत्यादिशङ्कापरिहारं नैवमित्यादिनोक्तमुपसंहरति—न त्वित्यादिना। इन्द्रस्य च्छायात्मनि यथा स्रष्टा विनाशदृष्टिर्युज्यते तत्र स्रष्टविनाशदर्शनेऽपि यथोक्तरीत्या प्रजापतेरनाप्तत्वप्रसङ्गाभावात् न तथा स्वप्नद्रष्टरि सा युज्यते यथोक्तदोषप्रसङ्गादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हाऽपराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

प्रजापति ने कहा—हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है, मैं तुझसे इस आत्मतत्त्व को पुनः बतलाऊँगा। अतः तू बत्तीस वर्ष फिर ब्रह्मचर्य वास कर। इन्द्र ने वहाँ पर प्रजापति के सन्निधान में पुनः बत्तीस वर्ष (गुरुशुश्रूषा तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक) वास किया, तब उस इन्द्र से प्रजापति ने कहा ॥ ४ ॥

॥ इति दशमः खण्डः ॥

च व्याख्यातं द्रष्टाऽक्षिणि दृश्यत इति। तथा विच्छादयन्तीव विद्रावयन्तीव तथा च पुत्रादिमरणनिमित्तमप्रियवेत्तेव भवति। अपि च स्वयमपि रोदितीव। नन्वप्रियं वेत्त्येव कथं वेत्तेवेति। उच्यते—नामृताभयत्ववचनानुपपत्तेः। ध्यायतीवेति च श्रुत्यन्तरात्। ननु प्रत्यक्षविरोध इति चेत्। न। शरीरात्मत्वप्रत्यक्षवद्भ्रान्तिसंभवात्। तिष्ठतु तावदप्रियवेत्तेव न वेति। नाहमत्र भोग्यं पश्यामि। स्वप्नात्मज्ञानेऽपीष्टं फलं नोपलभ इत्यभि-

---

विनाशदृष्टिरित्यर्थः। यथा [1]तदुपगम्य स्वप्नद्रष्टारं घ्नन्तीव तथेति यावत्। इवशब्दमाक्षिपति—नन्विति। वेत्तृत्वं विकारश्चेदमृतत्वं न स्यान्मृदादिवद्विनाशित्वप्रसङ्गात्तस्मादिवशब्दो युक्त इत्युत्तरमाह—उच्यत इति। अहं वेद्मीतिविक्रियाश्रयत्वप्रत्यक्षविरोधादिवशब्दो न युक्त इति शङ्कते—नन्विति। अध्यासादपि प्रत्यक्षोपपत्तेर्न विकारित्वं सिध्यतीति परिहरति—नेत्यादिना। नाहमित्यादि वाक्यमवतारयति—तिष्ठत्विति। न वेत्यप्रियवेत्तैव भवतीत्यर्थः। इष्टं सर्वलोककामावाप्तिलक्षणं [2]विधेये ब्रह्मभावे तत्पुनर्हृद्देशेऽप्यागतमतस्त्वदभिप्रायेणाप्रियवेत्तेव। स्वप्ने नाऽऽध्यासिकमप्यप्रियवेत्तृत्वादिकमस्ति

स्वप्न द्रष्टा एवं छायात्मा की तरह विनाश दर्शन संभव नहीं। प्रजापति के पास जाकर इन्द्र ने कहा—स्वाप्न शरीर इस देह के दोष से दूषित नहीं होता है तो भी मानो उसे कोई ताडित करता हो तथा जैसे पुत्रादि के मरण से अप्रिय का अनुभव करता है और लगता है स्वयं भी रुदन करता हो। इस पर शंका होती है—मन्त्र में "अनिष्ट का-सा अनुभव करता ही है" ऐसा है; अनुभव करने वाला उसके समान अनुभव क्यों करता है। ऐसा कहना ठीक नहीं है अन्यथा आत्मा के अमृतत्व, अभयत्व वचनों की असिद्धि होने लग जाएगी। अन्यत्र बृहदारण्यक श्रुति में भी मन्त्र है—"ध्यान करता हुआ-सा प्रतीत होता है"। "मैं जानता हूँ" इस अनुभूति में आभास होना प्रत्यक्ष विरोध है, ऐसी शंका करना ठीक नहीं है। आत्मा और शरीर के प्रत्यक्ष के समान भ्रान्ति संभव है। तो क्या हो गया यदि अपने अनिष्ट का मानो अनुभव करता है। ऐसा रहने देना ठीक नहीं। इसे इन्द्र समझते हुए कहता है—ऐसे

---

१. तदुपगम्येति—प्रजापतिराप्तत्वमभ्युपगम्येति यावत्। २. विधेये इति एतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेत्यनेन विधित्सिते इत्यर्थः। तत्र आध्यासिकमप्यप्रियवेत्तृत्वादिकम्। हृदयं देशो यस्य तस्मिन्नात्मनि त्वदर्थेऽपि हृदयाख्योपाधिसंबन्धादेव प्राप्तमागन्तुकमेवेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ।)

तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजाना-त्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳ संप्रत्यात्मानं जानात्यय-

इन्द्र के प्रति सुषुप्त पुरुष का उपदेश

जिस अवस्था में यह सोया हुआ पुरुष दर्शन वृत्ति से रहित और अत्यन्त आनन्दित होकर स्वप्न को नहीं जानता, वही आत्मा है यह अमृत है, यह अभय है और यही ब्रह्म है, ऐसा प्रजापति ने कहा। इसे सुनकर शान्त हृदय हो इन्द्र चला गया, पर देवताओं के पास पहुँचे बिना ही उसने यह भय देखा, यह सुषुप्ति अवस्था में पुरुष निश्चय ही अपने को नहीं जानता कि "यह मैं हूँ" और न यह

प्रायः। एवमेवैष तवाभिप्रायेणेति वाक्यशेषः। आत्मनोऽमृताभयगुणवत्त्वस्याभि-प्रेतत्वात्। द्विरुक्तमपि न्यायतो मया यथावन्नावधारयति। तस्मात्पूर्ववदस्याद्यापि प्रतिबन्धकारणमस्तीति मन्वानस्तत्क्षपणाय वसापराणि द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्य-मित्यादिदेश प्रजापतिः। तथोषितवते क्षपितकल्मषायाऽऽह ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥ १० ॥

पूर्ववदेतं त्वेव त इत्याद्युक्त्वा तद्यत्रैतत्सुप्त इत्यादि व्याख्यातं वाक्यम्। अक्षिणि

द्रष्टा न तु मदभिप्रायेणेति विशिनष्टि—तवेति। तत्र हेतुमाह—आत्मन इति। वसापराणीत्यादि-वाक्यतात्पर्यमाह—द्विरुक्तमपीति। तथा प्रजापतिवाक्यानुसारेणेति यावत् ॥२॥३॥४॥

इत्यष्टमाध्यायस्य दशमः खण्डः ॥१०॥

यथा पूर्वमेतं त्वेव त इत्याद्युक्त्वा य एष स्वप्ने महीयमान इत्याद्युक्तं तथेहाप्येतं त्वेवेत्युक्त्वा तद्यत्रैतदित्याद्याह विशिष्टाधिकारिणे प्रजापतिरिति योजना। व्याख्यातस्यैव वाक्यस्यार्थं संक्षिप्य

अनुभव के कारण इस स्वप्न देहात्मज्ञान में मैं कोई फल नहीं देखता। अर्थात् इसके ज्ञान से समस्त लोकों की कामनाएँ मिल जाना संभव नहीं। इस प्रकार प्रजापति के अभिप्राय को न समझने से ही ऐसा हुआ क्योंकि उनके द्वारा आत्मा का अमृतत्व अभयत्वादि गुण प्रतिपादन करना अभीष्ट था। प्रजापति ने विचार किया मैंने दो बार इन्द्र को उपदेश किया किन्तु दोनों बार इसने मेरे उपदेश को नहीं समझा, इससे अभी इसमें दोष पूर्ववत् विद्यमान ही है जो ज्ञान होने में प्रतिबन्धक है। इसलिए हे इन्द्र! तुम शुश्रूषा करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर बत्तीस वर्ष और गुरुकुलवास करो। प्रजापति के वचनों में अटूट श्रद्धा से युक्त इन्द्र ने इस प्रकार बत्तीस वर्ष व्यतीत किये, तब दोष नष्ट हुए। प्रजापति ने इन्द्र को आत्मतत्त्व का उपदेश करना प्रारम्भ किया ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

नवम खण्ड के तीसरे मन्त्र में प्रजापति ने इन्द्र को कहा था—इस आत्मा का मैं पुनः तेरे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति ॥ १ ॥

स समित्पाणिः पुनरेयाय तँ ह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन्पुनरागम इति स होवाच नाह खल्वयं भगव एवँ संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति।२।

इन अन्य भूतों को ही जानता है (जैसा कि यह जाग्रत् और स्वप्न में जानता था) अतः उस समय तो मानो यह विनाश को प्राप्त हो जाता है। अतएव इसमें भी मैं इष्ट फल को नहीं देखता हूँ ॥ १ ॥

वह इन्द्र पुनः समित्पाणि होकर प्रजापति से पास आया, प्रजापति ने उससे कहा—हे इन्द्र ! तू तो शान्त हृदय हो चला गया था, अब किस वस्तु को चाहता हुआ आया है ? इन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! निश्चय ही मैं इस अवस्था में अपने को नहीं जानता कि "मैं यही हूँ" और न यह इन अन्य भूतों को ही जानता है उस समय तो यह विनाश को प्राप्त हुआ-सा हो जाता है। अतः इसमें भी मैं इष्ट फल देखता नहीं ॥ २ ॥

यो द्रष्टा स्वप्ने च महीयमानश्चरति स एष सुप्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स्वाभिप्रेतमेव। मघवांस्तत्रापि दोषं ददर्श। कथम्। नाह नैव सुषुप्तस्थोऽप्यात्मा खल्वयं संप्रति सम्यगिदानीं चाऽऽत्मानं जानाति नैवं जानाति। कथम्। अयमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि चेति। यथा जाग्रति

दर्शयति—अक्षिणीति। तत्रापि सुषुप्तदर्शनेऽपीत्यर्थः। तदेव दोषदर्शनं प्रश्नद्वारा स्फोरयति—कथमित्यादिना। स्वात्मानं न जानातीत्युक्तमेवाऽऽकाङ्क्षाद्वारेणाभिनयति—कथमिति। तत्र वैधर्म्यदृष्टान्तमाह—यथेति। स्वपरविवेकाभावे दोषमाह—अत इति। घ्नन्ति त्वेवेत्यत्रोक्तं लक्षयति—पूर्ववदिति।

प्रति उपदेश करूँगा। ऐसा कहकर प्रकृत मन्त्र में "जिस अवस्था में यह सोया हुआ पुरुष—स्वप्न को नहीं जानता" इत्यादि उपदेश किया। नेत्रों से उपहित जो द्रष्टा है स्वप्न में स्त्रियों आदि से अभिपूजित होता है, वही सोया हुआ पुरुष दर्शनवृत्ति से शून्य, परम आनन्द की अनुभूति कर स्वप्न को नहीं जानता, वही आत्मा है, यह अमृत, अभय है और यही प्रतिपाद्य अभीष्ट ब्रह्म है। इन्द्र को सुषुप्त आत्मा में भी दोष दीखने लगा। हे प्रजापति ! यह सुषुप्ति अवस्था में दीखने वाला पुरुष निश्चय ही अपने को नहीं जानता कि "यह मैं हूँ" और न ही अन्य भूतों को जानता है। जिस प्रकार जाग्रत् एवं स्वप्ना-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳ संपेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳ ह वै वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

हे इन्द्र ! यह बात ऐसी ही है, ऐसा प्रजापति ने कहा। मैं इसकी व्याख्या पुनः तुम्हारे प्रति करूँगा। आत्मा इससे भिन्न नहीं है (किन्तु कुछ दोष अभी शेष रह गए हैं, उसकी निवृत्ति के लिए अभी पाँच वर्ष पुनः ब्रह्मचर्य वास करो। इन्द्र ने फिर से पाँच वर्ष वहाँ निवास किया, वे सब मिलाकर एक सौ एक वर्ष हो गए। इसी से लोक में शिष्ट जन ऐसा कहते हैं कि इन्द्र ने प्रजापति के पास ब्रह्मचर्य वास किया (तब कहीं जाकर देवराज इन्द्र को आत्मज्ञान हुआ)। तदनन्तर इन्द्र से प्रजापति ने कहा ॥ ३ ॥

॥ इत्येकादशः खण्डः ॥

स्वप्ने वा। अतो विनाशमेव विनाशमिवेति पूर्ववद्द्रष्टव्यम्। अपीतोऽपिगतो भवति, विनष्ट इव भवतीत्यभिप्रायः। ज्ञाने हि सति ज्ञातुः सद्भावोऽवगम्यते नासति ज्ञाने। न च सुषुप्तस्य ज्ञानं दृश्यतेऽतो विनष्ट इवेत्यभिप्रायः। न तु विनाशमेवाऽऽत्मनो मन्यतेऽमृताभयवचनस्य प्रामाण्यमिच्छन् ॥ १ ॥ २ ॥

पूर्ववदेवमेवेत्युक्त्वा यो मयोक्तस्त्रिभिः पर्यायैस्तमेवैतं नो एवान्यत्रैतस्मादात्मनोऽन्यं कंचन किं तर्ह्येतमेव व्याख्यास्यामि। स्वल्पस्तु दोषस्तवावशिष्टस्तत्क्षपणाय

कुतो ज्ञानाभावमात्रेण विनष्टत्वमित्याशङ्क्योक्तमभिप्रायं स्पष्टयति—ज्ञाने हीति। एवकारो यथाश्रुत एव किं न स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—न त्विति ॥१॥२॥

पूर्ववद्ब्रह्मचर्यादेशाभावे हेतुमाह—स्वल्पस्त्विति। आख्यायिकातोऽपसृत्य श्रुतिरस्मभ्यं किम-

---

वस्था में सभी पदार्थ स्पष्ट अनुभव होते हैं, उस प्रकार सुषुप्त अवस्था में नहीं होते। अपने और पराये का जरा भी ज्ञान वहाँ नहीं रहता अतः पूर्वप्रतिपादित "मानो कोई मारता हो" के समान विनाश को प्राप्त हुआ सा हो जाता है। ज्ञान के होने पर ही वस्तु का सद्भाव लक्षित होता है, ज्ञान के न होने पर तो कुछ भी जानना असम्भव है। सुषुप्त अवस्था वाले को ज्ञान होते नहीं देखा जाता अतः वह विनाश को प्राप्त हुआ सा हो जाता है। आत्मा को अमृत अभय जानने की इच्छा वाला आचार्य आत्मा को विनाश को प्राप्त हुआ सा कैसे मान सकता है ॥ १ ॥ २ ॥

हे इन्द्र ! जैसा तुम सोच रहे हो, वह आत्मा मेरे द्वारा पूर्वोक्त तीन पर्यायों से उपदिष्ट किया

---

१. एकाधिकं शतमिति विग्रहः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः।)

मघवन्मर्त्यं वा इदँ शरीरमात्तं मृत्युना तदस्या- मृतस्याशरीरस्याऽऽत्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः

मरण-धर्मा देहादि का उपदेश

हे इन्द्र! यह शरीर निश्चय ही मरणशील है, क्योंकि यह मृत्यु से सर्वदा ही ग्रस्त है। यह तो इस प्रकार अमर अशरीरी आत्मा का उपलब्धि स्थान है, सशरीर आत्मा निश्चय ही प्रिय और

वसापराण्यन्यानि पञ्च वर्षाणीत्युक्तः स तथा चकार। तस्मै मृदितकषायादिदोषाय स्थानत्रयदोषसंबन्धरहितमात्मनः स्वरूपमपहतपाप्मत्वादिलक्षणं मघवते तस्मै होवाच। तान्येकशतं वर्षाणि संपेदुः संपन्नानि बभूवुः। यदाहुर्लोके शिष्टा एकशतं ह वै वर्षाणि मघवान्प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवासेति। तदेतद्द्वात्रिंशतमित्यादिना दर्शितमित्याख्यायिकातोऽपसृत्य श्रुत्योच्यते। एवं किलैतदिन्द्रत्वादपि गुरुतरमिन्द्रेणापि महता यत्नेनैकोत्तर- वर्षशतकृतायासेन प्राप्तमात्मज्ञानमतो नातः परं पुरुषार्थान्तरमस्तीत्यात्मज्ञानं स्तौति ॥ ३ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

मघवन्मर्त्यं वै मरणधर्मीदं शरीरम्। यन्मन्यसेऽक्ष्याधारादिलक्षणः संप्रसादलक्षण

र्थमित्थमुपदिशतीत्याशङ्क्याऽऽह—एवमिति ॥३॥

इत्यष्टमाध्यायस्यैकादशः खण्डः ॥११॥

कार्यकारणपरिवेष्टितौ विश्वतैजसावुक्तौ कारणमात्रबद्धश्च प्राज्ञो व्याख्यातः संप्रत्यशरीरं तुरीयमुपदेष्टुं सशरीरतां निन्दति—मघवन्निति। शरीरवदात्मनोऽपि विनाशित्वमवस्थाविशेषं दर्शितमित्याशङ्क्याऽऽह—यन्मन्यस इति। सशरीरो विशेषविज्ञानवान्भवत्यशरीरस्य तु विशेषविज्ञानाभावा-

---

गया है। आत्मा इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। इसी आत्मा की मैं तुम्हारे प्रति पुनः व्याख्या करूँगा। छयानवें वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने एवं आचार्य सन्निधि में रहने से अब थोड़े ही दोष तुम्हारे में रह गये हैं इसलिए अब केवल पाँच वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करो। इन्द्र ने आचार्य की आज्ञा मान कर वैसा ही किया। पाँच वर्ष की तपस्या में उसके कषायादि दोष सर्वथा नष्ट हो चुके थे, तीन स्थानों के संबन्धों एवं दोषों से रहित आत्मा का निष्पाप अमृत अभयादि स्वरूप प्रजापति ने इन्द्र को बतलाया। गुरु सन्निधि में इन्द्र ने सब मिलाकर एक सौ एक वर्ष पूर्ण कर दिये। तभी तो सभ्य लोग कहते हैं कि इन्द्र ने प्रजापति से ज्ञान प्राप्ति के लिए एक सौ एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। इस बत्तीस-बत्तीस वर्षों की आख्यायिका से अलग हटकर अब श्रुति के द्वारा कहा जाता है। इस प्रकार यह आत्मविद्या इन्द्र के पद से भी श्रेष्ठ है जिसे इन्द्र ने स्वयं अत्यन्त प्रयत्न से एक सौ एक वर्षों की लम्बी तपस्या के द्वारा प्राप्त किया। इससे बढ़कर कोई भी परम पुरुषार्थ नहीं है, इस प्रकार इस आख्यायिका में आत्मज्ञान की स्तुति है ॥३॥

हे देवराज इन्द्र! यह शरीर मरणधर्मा है। मेरे द्वारा उपदिष्ट नेत्र से उपलक्षित आत्मा एवं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रियाप्रियाभ्यां न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ १ ॥

अप्रिय से ग्रस्त रहता है। अतः शरीर रहते हुए इष्टानिष्ट का नाश सर्वथा हो नहीं सकता, इसके विपरीत अशरीर होने पर प्रिय और अप्रिय इसे स्पर्श नहीं करते (अतः आत्मा में अशरीरता स्वाभाविक है और सशरीरता प्रतीति औपाधिक है) ॥ १ ॥

आत्मा मयोक्तो विनाशमेवापीतो भवतीति। शृणु तत्र कारणम्। यदिदं शरीरं वै यत्पश्यसि तदेतन्मर्त्यं विनाशि। तच्चाऽऽत्तं मृत्युना ग्रस्तं सततमेव। कदाचिदेव म्रियत इति मर्त्यमित्युक्ते न तथा संत्रासो भवति यथा ग्रस्तमेव सदा व्याप्तमेव मृत्युनेत्युक्त इति वैराग्यार्थं विशेष इत्युच्यत आत्तं मृत्युनेति। कथं नाम देहाभिमानतो विरक्तः सन्निवर्तेत इति। शरीरमित्यत्र सहेन्द्रियमनोभिरुच्यते तच्छरीरमस्य संप्रसादस्य त्रिस्थानतया गम्यमानस्यामृतस्य मरणादिदेहेन्द्रियमनोधर्मवर्जितस्येत्येतत्। अमृतस्येत्यनेनैवाशरीरत्वे सिद्धे पुनरशरीरस्येति वचनं [1]वाय्वादिवत्सावयवत्वमूर्तिमत्त्वे मा भूतामित्यात्मनः।

विनाशभ्रमो न पुनरसौ वस्तुतो विनश्यति स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत इति संप्रसादस्याविनाशित्ववचनादित्यभिप्रेत्य कारणमेव स्पष्टयन्नक्षराणि व्याचष्टे—यदिदमित्यादिना। ननु मर्त्यमित्येतावतैव मृत्युव्याप्तत्वे शरीरस्य सिद्धे किमित्यात्तं मृत्युनेति पुनरुच्यते तत्राऽऽह—कदाचिदेवेति। वैराग्यार्थं विशेषवचनमित्युक्तं यत्तदेव [2]वैराग्यं किमर्थमित्याशङ्क्याऽऽह—कथमिति। निवर्तने विशेषवचनं फलवदिति शेषः। तदस्येत्यत्र तच्छब्दार्थमाह—शरीरमित्यत्रेति। मघवन्नित्यादिवाक्यं सप्तम्यर्थः। त्रिस्थानतया जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ताख्यस्थानत्रयसंबन्धित्वेनेति यावत्। अमृतत्वं [3]षडूर्मिवर्जितत्वम्। अशरीरत्वं

सुषुप्ति में भली भाँति आनन्दमग्न आत्मा को जो तुम मानते हो कि उस समय तो यह विनष्ट हुआ सा हो जाता है, इसका कारण कहते हैं, सुनो! जिस पाञ्चभौतिक शरीर को तुम देख रहे हो वह मरणशील एवं नाशवान् है। वह तो मृत्यु से हमेशा ग्रस्त रहता है। कभी भी मर सकता है इस प्रकार मर्त्य मात्र कहने से उतना डर नहीं लगता जितना मृत्यु से हमेशा ग्रस्त है, मृत्यु हमेशा इस पर मंडराती रहती है इसे वैराग्य के लिए विशेषतः कहते हैं—यह शरीर मृत्यु से सदा व्याप्त है। देहाभिमान से विरक्त होना रूप वैराग्य ही आखिर किस लिए है। मन्त्र में शरीर से अभिप्राय इन्द्रियों और मन के सहित ही कहा जाता है। इस सम्यक् आनन्द की स्थिति में यह शरीर जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीन प्रकार से जाना जाता है। यह अमर अशरीरी आत्मा का उपलब्धि स्थान है। अमर उस का नाम है जिसमें देह, इन्द्रिय, मन के मरणादिधर्म वर्जित हों, अमृतत्व से स्वतः ही अशरीरी होना सिद्ध होता है फिर भी मन्त्र में इसका पुनः प्रयोग अग्रिम मन्त्र के वायु अभ्रादि, सावयव मूर्तियों में

---

१. वाय्वादीत्यादिना—८।१२।२ इति वक्ष्यमाणमभ्रादिकं गृह्यते। २. इति यद्वैराग्यमुक्तं तदिति योजना।
३. जरामरणक्षुत्पिपासाशोकमोहाः षडूर्मयः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्मनो भोगाधिष्ठानम् । आत्मनो व सत ईक्षितुस्तेजोबन्नादिक्रमेणोत्पन्नमधिष्ठानम् । जीवरूपेण प्रविश्य सदेवाधितिष्ठत्यस्मिन्निति वाऽधिष्ठानम् ।

यस्येदमीदृशं नित्यमेव मृत्युग्रस्तं धर्माधर्मजनितत्वात्प्रियाप्रियवदधिष्ठानं तदधिष्ठितस्तद्वान्सशरीरो भवति । अशरीरस्वभावस्याऽऽत्मनस्तदेवाहं शरीरं शरीरमेव चाहमित्यविवेकतः । अत एव सशरीरः सन्नात्तो ग्रस्तः प्रियाप्रियाभ्याम् । प्रसिद्धमेतत् । तस्य च न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोर्बाह्यविषयसंयोगवियोगनिमित्तयोर्बाह्यविषयसंयोगवियोगौ ममेति मन्यमानस्यापहर्तिर्विनाश उच्छेदः संततिरूपयोर्नास्तीति ।

स्वाभाविकसावयवत्वादिराहित्यम् । आत्मनोऽधिष्ठानमित्यत्र भोगेत्यपेक्षितपूरणं कृतम् । भोक्तृभोगायतनं शरीरमिति [1]विशेषणार्थमुक्त्वा तस्यैवार्थान्तरमाह—आत्मनो वेति । अधिष्ठानं जनयितुस्तस्योपलब्धेरधिकरणमिति यावत् । अधिष्ठानशब्दस्यार्थान्तरमाह—जीवरूपेणेति ।

उत्तरवाक्यस्थं सशरीरशब्दं व्याचष्टे—यस्येति । ईदृशं मर्त्यत्वादिविशेषणवदित्यर्थः । तद्यथोक्तं शरीरमधिष्ठितम[2]नेनेति व्युत्पत्त्या तदधिष्ठितः स तद्रूपः पुरुष इत्यर्थः । तस्यैव संपिण्डितमर्थमाह—तद्वानिति । उक्तेऽर्थे विशेषणं पातयति—सशरीर इति । अशरीरस्य कथं सशरीरत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—अशरीरेति । अविवेकतः शरीरो भवतीति पूर्वेण संबन्धः । यतः सशरीरोऽत एव प्रियाप्रियाभ्यामात्तो वै पुरुष इति योजना । वैशब्दार्थमाह—प्रसिद्धमिति । [3]एतच्छब्दार्थमेवोत्तरवाक्यव्याख्यानेन स्फोरयति—सशरीरस्येति । तौ ममेति मन्यमानस्य सतः स्वस्य तयोः संततिरूपयोरपहतिर्नास्तीति संबन्धः । प्रियाप्रिययोः स्वारस्येन विनाशोऽस्ति क्षणिकत्वादित्याशङ्क्य संततिरूपयोरित्युक्तम् । इतिशब्दो वाक्यसमाप्त्यर्थः । अज्ञस्य देहसंबन्धद्वारा संसारित्वमुक्त्वा तस्यैव विद्यावतो देह-

ग्रहण न हो इसलिए अशरीरी आत्मा कहा है । यह शरीर आत्मा का भोगायतन है । अथवा सत् द्रष्टा आत्मा का तेज, जल, अन्नादि क्रम से उत्पन्न अधिकरण है । अथवा अधिष्ठान इसलिए नाम पड़ा क्योंकि जीव रूप से प्रविष्ट होकर सत् ही इसके आश्रित रहता है ।

जो यह सशरीर इस प्रकार मर्त्यत्वादि विशेषणों के समान हमेशा ही मृत्यु से आक्रान्त है, धर्म और अधर्म से होने वाले प्रिय और अप्रिय के समान शरीर से तादात्म्य अभिमान करने वाला शरीर के आश्रित रहने के कारण सशरीरी कहा जाता है । अशरीरी आत्मा में शरीरीभाव की शंका कैसे हुई, इसकी निवृत्ति करते हुए कहते हैं आत्मा का परमार्थतः अशरीरी स्वभाव है किन्तु अविद्या से "वही मैं शरीर हूँ, शरीर ही मैं हूँ" शरीरी होने का भान होता है । जब आत्मा को सशरीरी समझ लेता है तभी अनुकूल और प्रतिकूल विषयों में फँस जाता है । मन्त्र में "वै" शब्द प्रसिद्ध अर्थ है । इस शरीर में तद्रूपता के अभिमानी पुरुष को जब बाह्य विषयों से संयोग होता है तो उन विषयों को अपने लिए प्राप्त समझकर इसे अच्छा लगता है किन्तु उन्हीं बाह्य विषयों के जब पार्थक्य होने की नौबत आती है तो यह उदास हो जाता है, उनसे अपनापन होने के नाते उनकी अबाध परम्परा से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है । इसी पुरुष को विद्या प्राप्त हो जाती है तो देहाभिमान की निवृत्ति

१. विशेषणस्य अर्थमित्यर्थः । २. अनेन स इति व्युत्पत्त्या तदधिष्ठितः तद्रूपस्तत्तादात्म्याभिमानवान् पुरुष इत्यर्थ इति योजना । ३. एतच्छब्दार्थमिति प्रसिद्धमेतदित्युक्तैतच्छब्दार्थं सशरीरस्य प्रियाप्रियाभ्यां ग्रस्तत्वमित्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं पुनर्देहाभिमानादशरीरस्वरूपविज्ञानेन [1]निर्वतितताविवेकज्ञानमशरीरं सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः। स्पृशिः प्रत्येकं संबध्यत इति प्रियं न स्पृशत्यप्रियं न स्पृशतीति वाक्यद्वयं भवति। न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेतेति यद्वत्। धर्माधर्मकार्ये हि ते अशरीरता तु स्वरूपमिति तत्र धर्माधर्मयोरसंभवा[2]त्तत्कार्यभावो दूरत एवेत्यतो न प्रियाप्रिये स्पृशतः।

ननु यदि प्रियमप्यशरीरं न स्पृशतीति यन्मघवतोक्तं सुषुप्तस्थो विनाशमेवापीतो भवतीति तदेवेहाप्यापन्नम्। नैष दोषः। धर्माधर्मकार्ययोः शरीरसंबन्धिनोः प्रियाप्रिययोः प्रतिषेधस्य विवक्षितत्वात्। अशरीरं न प्रियाप्रिये स्पृशत इति। आगमापायिनोर्हि स्पर्शशब्दो दृष्टो यथा शीतस्पर्श उष्णस्पर्श इति न त्वग्नेरुष्णप्रकाशयोः स्वभावभूत-

---

निवृत्तिद्वारेण मुक्तिं दर्शयति—तं पुनरिति। मुक्ते पुंसि प्रियाप्रिययोर्मिलितयोरस्पर्शेऽप्येकैकस्य स्पर्शः स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—स्पृशिरिति। प्रत्येकं संबन्धमभिनयति—प्रियमिति। समस्ततया श्रुतस्यानेकस्य प्रत्येकं क्रियासंबन्धे दृष्टान्तमाह—नेति। प्रियाप्रिययोर्मुक्तात्मन्यसंस्पर्शं पातनिकापूर्वकं कैमुतिकन्यायेन दर्शयति—धर्माधर्मेति। तत्रेत्यशरीरताख्यं स्वरूपमुच्यते।

प्रियस्पर्शाभावं श्रुत्वा मोक्षस्यापुमर्थत्वं शङ्कते—नन्विति। इहापीति मुक्तो गृह्यते। स्वाभाविकप्रियाप्रतिषेधान्नापुमर्थत्वं मुक्तेरित्युत्तरमाह—नैष दोष इति। प्रतिषेधमेवाभिनयति—अशरीरमिति। कादाचित्कयोरेव प्रियाप्रिययोरेष निषेध इत्यत्र नियामकमाह—आगमापायिनोरिति। कादाचित्के स्पर्शशब्दवन्न स्वात्मन्येतच्छब्दोऽस्तीत्याह—न त्विति। आत्मनि तर्हि कादाचित्कमेव प्रियमिति

होने से आत्मा के अशरीरी स्वभाव का ज्ञान हो जाने से उसका अविवेक से हुआ भ्रम ज्ञान निवृत्त हो जाता है, अशरीरी स्वरूप का ज्ञान हो जाने से प्रिय और अप्रिय विषय स्पर्श ही नहीं करते। (मुक्त पुरुष को प्रिय और अप्रिय का अस्पर्श मिलने से एक-एक का स्पर्श होने पर कहते हैं—) मन्त्र में "स्पृशतः" का संवन्ध प्रिय और अप्रिय दोनों से है उसे प्रिय विषय भी स्पर्श नहीं करता और अप्रिय विषय भी नहीं करता। जैसे "म्लेच्छ, अपवित्र और अधार्मिक लोगों के साथ वार्तालाप नहीं करना चाहिए" इस स्मृति वाक्य में म्लेच्छ, अपवित्र एवं अधार्मिक लोगों का 'वार्तालाप' क्रिया के साथ संबन्ध है। प्रिय और अप्रिय विषयों का संस्पर्श धर्म-अधर्म के कारण है। मुक्तात्मा तो अशरीरी स्वभावतः ही है। आत्मा के अशरीरी स्वरूप में धर्म और अधर्म नहीं रह सकने के कारण उसका कार्य कैसे हो पाएगा। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को देह के रहते हुए भी इष्ट और अनिष्ट पदार्थ स्पर्श नहीं करते। (यदि प्रिय विषयों का स्पर्श नहीं होता तब तो मोक्ष भी अभीष्ट है इसकी चाहना क्यों कर होगी इस शङ्का को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं—) यदि अशरीरी आत्मा को इष्ट वस्तु का स्पर्श नहीं होता तब तो इन्द्र द्वारा अनुभव कर कही हुई यह वात "सुषुप्ति में स्थित पुरुष विनाश को प्राप्त हुआ सा हो जाता है" मुक्त पुरुष के लिए भी सत्य हो जाएगी। इसका परिहार करते हुए कहते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि स्वाभाविक प्रिय का प्रतिषेध न होने की मुक्ति परम पुरुषार्थता ती सिद्ध ही है। धर्म

---

१. निर्वतितादशरीरं सन्तमिति युक्तः पाठः। यथा श्रुते तु पुनर्देहाभिमानात् प्रियाप्रिये न स्पृशत इति योज्यम्।
२. तत्कार्यभावः दूरतो निरस्त इति शेषः। कार्याभाव इति वा पाठस्तत्र दूरत इत्यस्य सुतरामित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योरग्निना स्पर्श इति भवति [1]तथाऽग्नेः [2]सवितुर्वोष्णप्रकाशवत्स्वरूपभूतस्याऽऽनन्दस्य प्रियस्यापि नेह प्रतिषेधः "विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" "आनन्दो ब्रह्म" इत्यादिश्रुतिभ्यः । इहापि [3]भूमैव सुखमित्युक्तत्वात् ।

ननु भूम्न प्रियस्यैकत्वेऽसंवेद्यत्वात्स्वरूपेण वा नित्यसंवेद्यत्वान्निर्विशेषतेति नेन्द्रस्य तदिष्टम् । "नाह खल्वयं संप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामि" इत्युक्तत्वात् । तद्धीन्द्रस्येष्टं यद्भूतानि चाऽऽत्मानं च जानाति न चाप्रियं किंचिद्वेत्ति स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्येन ज्ञानेन । सत्यमेतदिष्टमिन्द्रस्येमानि भूतानि मत्तोऽन्यानि लोकाः

तन्मात्रप्रतिषेधात्तदवस्थमपुमर्थत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—सवितुरिति । भूमविद्यालोचनायामपि सुखमात्र-स्याऽऽत्मनि न प्रतिषेधोऽस्तीत्याह—इहापीति ।

तथाऽपि विषयविषयिभावेन भेदाभावात्तदवस्थमपुरुषार्थत्वमिति शङ्कते—नन्विति । भेदो न पुमर्थत्वोपयोगी केवलव्यतिरेकाभावात्सुखसाक्षात्कारस्तु पुरुषार्थः स चाभेदेऽपि विद्यत इत्याशङ्क्या-ऽऽह—स्वरूपेणेति । आत्मनि विशेषज्ञानराहित्यमिन्द्रस्य नेष्टमित्यत्र हेतुमाह—नाहेति । किं तर्हीन्द्रस्ये-ष्टमित्याशङ्क्याऽऽह—तद्धीति । येन ज्ञानेनाऽऽप्नोति तदिष्टमिन्द्रस्येति पूर्वेण संबन्धः । किमिदं विशेष-विज्ञानमिन्द्रस्येष्टमित्युच्यते किंवा हितमिति विवक्ष्यते तत्राऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति । द्वितीयं

और अधर्म कार्य शरीर से संबन्धित हैं इसलिए प्रिय और अप्रिय का प्रतिषेध श्रुति द्वारा प्रतिपादित किया गया है । शरीर ही नहीं होगा तो इष्ट और अनिष्ट विषयों का स्पर्श ही किसे होगा फिर किसका प्रतिषेध किया जाए । स्पर्श शब्द का प्रयोग उत्पन्न और नाश स्वभाव वाला देखा जाता है जैसे शीत और उष्ण स्पर्श । अग्नि और सूर्य स्वभाव से ही उष्ण एवं प्रकाश स्वरूप हैं इसलिए उनसे स्पर्श नहीं होता ऐसा व्यवहार होता है; इस प्रकार आत्मा के स्वरूपभूत आनन्द और प्रिय के स्पर्श का श्रुति प्रतिषेध नहीं कर रही है । तभी तो श्रुतियाँ बार-बार घोषणा कर रही हैं कि "विज्ञान एवं आनन्द स्वरूप वह ब्रह्म है" "ब्रह्म को आनन्दमय जाने" इत्यादि । छान्दोग्य उपनिषद् में भी भूमविद्या को निरूपण करते हुए श्रुति आत्मा में सुख का प्रतिषेध नहीं करती है क्योंकि वहाँ कहा है "जो भूमा (महान्) है वही सुख रूप है, अल्प में सुख नहीं है" ।

विषय-विषयी भाव से भेद न होने से मोक्ष की अपुरुषार्थता की शङ्का तो ज्यों की त्यों बनी रही क्योंकि प्रिय भूमा तत्त्व के एक होने पर असंवेद्य है, जहाँ भेद है वहीं पुरुषार्थता संभव है । अथवा स्वरूपतः नित्य संवेद्य होने से आत्मा में विशेष ज्ञान का अभाव इन्द्र को अभीष्ट नहीं है । एकादश खण्ड के दूसरे मन्त्र में इन्द्र ने कहा था—हे भगवन् ! निश्चय ही मैं इस सुषुप्त अवस्था में अपने को नहीं जानता कि "मैं यही हूँ" और न यह इन अन्य भूतों को जानता है, उस समय तो यह विनाश को प्राप्त हुआ सा हो जाता है । अतः इसमें भी मैं इष्ट फल नहीं देखता" । इन्द्र को तो वह ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट था, जिस ज्ञान से अनुष्ठाता सब भूतों को आत्मा में जानता है, अप्रिय कुछ भी नहीं प्राप्त

१. तथाऽग्नेस्ताभ्यां स्पर्श इति न तु भवति व्यवहार इति योजना । २. यथोक्तव्यवहाराभावे दृष्टान्तमुक्त्वा स्वरूपभूतस्य प्रतिषेधाभावे दृष्टान्तमाचष्टे—सवितुर्वेति । वाशब्दश्चार्थे । ३. छा० उ० ७।१३।१।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कामाश्च सर्वे मत्तोऽन्येऽहमेषां स्वामीति । न त्वेतदिन्द्रस्य हितम् । हितं चेन्द्रस्य प्रजापतिना वक्तव्यम् । व्योमवदशरीरात्मतया सर्वभूतलोककामात्मत्वोपगमेन या प्राप्तिस्तद्धितमिन्द्राय वक्तव्यमिति प्रजापतिनाऽभिप्रेतम् । न तु राज्ञो राज्याप्तिवदन्यत्वेन । तत्रैवं सति कं केन विजानीयादात्मैकत्व इमानि भूतान्ययमहमस्मीति ।

नन्वस्मिन्पक्षे "[1]स्त्रीभिर्वा यानैर्वा" "[2]स यदि पितृलोककामः" "[3]स एकधा भवति" इत्याद्यैश्वर्यश्रुतयोऽनुपपन्नाः । न । सर्वात्मनः सर्वफलसंबन्धोपपत्तेरविरोधात् ।

दूषयति—न त्विति । द्वितीयाद्वै भयं भवतीत्यादिश्रुतेरित्यर्थः । तथाऽपीष्टमेवेन्द्राय प्रजापतिनोपदेष्टव्यमित्याशङ्क्याऽऽह—हितं चेति । किं तर्हि तस्य हितमिति चेत्तदाह—व्योमवदिति । हितं वक्तव्यमिति संबन्धः । [4]हितमेव न त्विष्टमिति स्थिते फलितमाह—तत्रेति ।

सर्वेषां भूतानां लोकानां कामानां चाऽऽत्मा सच्चिदानन्दमात्रं तद्रूपत्वं चेन्मुक्तस्येष्यते कथं तर्हि तस्यैश्वर्यश्रुतयो निर्वहन्तीति चोदयति—नन्विति । सगुणविद्यावतां यदैश्वर्यं तन्निर्गुणविद्यास्तुत्यर्थं संकीर्त्यते । ब्रह्मीभूतस्य मुक्तस्य सगुणविद्याया अपि प्रत्यग्भूतत्वात्फलस्य तत्रोपचरितुं युक्तत्वा-

करता, सभी लोकों एवं सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। ठीक है, इन्द्र को विशेष विज्ञान ही इष्ट था कि ये सभी भूत प्राणी मुझसे भिन्न हैं, सभी लोक और कामनाएँ मुझसे पृथक् हैं, एवं मैं इनका मालिक हूँ। इन्द्र को अपना हित सम्पादन करवाना था इसमें इन्द्र का कोई कल्याण नहीं हो सकता था क्योंकि श्रुति भय का कारण एकमात्र द्वैत बुद्धिको मानती है। प्रजापति को इन्द्र के कल्याण होने का उपदेश करना चाहिए। आकाश के समान व्यापक अशरीरी आत्मा से समस्त प्राणी लोक और काम आत्मा रूप से प्राप्त हो जाने का उपदेश इन्द्र को बतलाना चाहिए, इसी उपदेश में इन्द्र का हित है और प्रजापति को अभीष्ट है। राजा के राज्याभिषेक की तरह अन्य वस्तु की प्राप्ति का उपदेश करना यहाँ अभीष्ट नहीं है। (हित का उपदेश करे शिष्य जो चाहे उसका नहीं) ऐसा होने पर श्रुति कहती है—"तब कौन किसके द्वारा किसे जाने" "आत्मा के एकत्व विज्ञान हो जाने पर यह सब भूत प्राणी मैं ही हूँ" ऐसा भासने लगता है।

पुनः शङ्का होती है कि यदि आत्मा सच्चिदानन्द मात्र है, मुक्त पुरुष का भी वही स्वरूप है तो उसका ऐश्वर्य प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ निरर्थक हो जाएँगी यथा "यह जीव शरीर से समुत्थान कर परम ज्योति को प्राप्त कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, वह उत्तम पुरुष है। उस समय वह हँसता, क्रीड़ा करता, स्त्री, यान अथवा सम्बन्धियों के साथ रमण करता, अपने साथ उत्पन्न हुए इस शरीर को स्मरण न करता हुआ सभी ओर घूमता रहता है" "मरने के बाद यदि वह पितृलोक को चाहता है तो उसके संकल्प से ही पितृगण वहाँ पर उपस्थित हो जाते हैं, वह अपनी महिमा का अनुभव करता है" "तत्त्ववेता न मृत्यु को देखता है, न रोग को, न दुःख को ही देखता है किन्तु वह विद्वान् सबको आत्मरूप से ही देखता है इसलिए सबको प्राप्त हो जाता है, वह एक हो जाता है" इत्यादि। ऐसा कहना ठीक नहीं है। सगुण विद्या के उपासकों के लिए जो आत्मा का ऐश्वर्य

१. छा० उ० ८।१२।३। २. छा० उ० ८।२।१। ३. छा० उ० ७।२६।२। ४. हितमेव वक्तव्यमिति शेषः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मृद इव सर्वघटकरककुण्डाद्याप्तिः। ननु सर्वात्मत्वे दुःखसंबन्धोऽपि स्यादिति चेन्न। दुःखस्याप्यात्मत्वोपगमादविरोधः। आत्मन्यविद्याकल्पनानिमित्तानि दुःखानि रज्ज्वामिव सर्पादीनि कल्पनानिमित्तानि। सा चाविद्याऽशरीरात्मैकत्वस्वरूपदर्शनेन 'दुःखनिमित्तो-च्छिन्ने'ति दुःखसंबन्धाशङ्का न संभवति। शुद्धसत्त्वसंकल्पनिमित्तानां तु कामानामी-श्वरदेहसंबन्धः सर्वभूतेषु मानसानां पर एव सर्वसत्त्वोपाधिद्वारेण भोक्ते'ति सर्वाविद्या-कृतसंव्यवहाराणां पर एवाऽऽत्मास्पदं नान्योऽस्तीति वेदान्तसिद्धान्तः।

दिति परिहरति—नेत्यादिना। सर्वात्मत्वे निन्दाऽपि प्राप्नोतीति शङ्कते—नन्विति। दुःखस्य दुःखित्वा-भाववत्तस्याऽऽत्मा विद्वानपि न दुःखी भविष्यतीति समाधत्ते—न दुःखस्येति। तर्हि दुःखिनामात्मा मुक्त इति दुःखी स्यात्तत्राऽऽह—आत्मनीति। न तावदात्मनः स्वभावतो दुःखित्वं किंत्वाविद्यकं सा च मुक्तस्य दग्धेति दुःखित्वाप्रसक्तिरित्यर्थः। तर्हि विद्यया दग्धायामविद्यायां तद-ध्यारोपितमैश्वर्यमपीश्वरस्य सगुणविद्याफलभूतं दग्धमेवेति कथं स्तुत्यर्थमिह तदुपदेशसिद्धिरित्याश-ङ्कयाऽऽह—शुद्धे'ति। शुद्धं सत्त्वं रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं तस्मान्मायैकदेशाज्जाताः संकल्पा निमित्तानि येषां कामानामैश्वर्यभेदानां ते तथोक्तास्तेषां सर्वेषु भूतेषु [2]विषयेषु मनोमात्रेणेश्वराभिध्यानरूपेण सिद्धानामीश्वराख्येन (ण) स्वभावेनभिसंबन्धो मायावस्थायां सिध्यतीत्यर्थः। ननु जीवानामेवाविद्या-तत्कार्यसंबन्धो नेश्वरस्येति चेन्नेत्याह—पर एवेति।

कहा जाता है, वह निर्गुण विद्या की स्तुति के लिए ही है। ब्रह्मीभूत हुए मुक्त के लिए सगुण विद्या भी आत्म स्वरूप होने के कारण सर्वात्मा का सर्वविध फलों से सम्बन्धित होना कोई विरोध उत्पन्न नहीं करता। यह उसी प्रकार समझना चाहिए जिस प्रकार सभी घट, सकोरे, कुण्ड आदि मिट्टी से ही बनते हैं। श्रुतियों में सर्वात्मा की निन्दा होने से भी उसका दुःखी होना कहो तो यह भी उचित नहीं है। अविद्या से ही आत्मा में दुःख का आरोप होता है; दुःख में दुःखाभाव होने से विद्वान् भी दुःखी नहीं होगा। आत्मा में सभी दुःख उसी प्रकार अविद्या के द्वारा कल्पित किए हुए हैं जैसे रज्जु में सर्पादि केवल कल्पना मात्र हैं। दुःख की निमित्तभूता वह अविद्या अशरीरी आत्मा के एकत्व विज्ञान से तो समाप्त हो जाती है फिर आत्मा के दुःखी होने की आशंका करनी कठिन है। इस पर शंका होती है—यदि विद्या के कारण अविद्या के नाश हो जाने पर अविद्या से आरोपित ईश्वर का सगुण विद्या-जनित ऐश्वर्य भी नष्ट हो जाता है तो उसकी स्तुति के प्रयत्न करने से क्या लाभ? इस पर कहते हैं—शुद्ध सत्त्व रजोगुण और तमोगुण से सर्वथा अछूता रहता है तो भी शुद्ध सत्त्व से होने वाले संकल्प माया के एकदेश से उत्पन्न होते हैं, उन संकल्पों से होने वाली कामनाएँ मन मात्र से सब भूतों में ईश्वर संज्ञक स्वभाव से युक्त मायावस्था में रहती हैं। यदि कहो जीव ही अविद्या के कार्यों से संसक्त रहता है परमात्मा नहीं तो ऐसा कहना ठीक नहीं, परमात्मा ही समस्त सत्त्व की उपाधि के माध्यम से भोक्ता है, अविद्याकृत सब व्यवहारों का परमात्मा ही अधिष्ठान है, दूसरा कोई नहीं, यही वेदान्त का अटल सिद्धान्त है।

---

१. दुःखस्य निमित्ता दुःखनिमित्ता। निमित्तशब्दो भावप्रधानः सन्नर्श आद्यजन्तोऽव्याख्येयः। २. विशेष्य-ताख्यविषयतावत्सु।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत इति च्छायापुरुष एव प्रजापतिनोक्तः। स्वप्न सुषुप्तयोश्चान्य एव। न परोऽपहतपाप्मत्वादिलक्षणो विरोधादिति केचिन्मन्यन्ते। छायाद्यात्मनां चोपदेशे प्रयोजनमाचक्षते। आदावेवोच्यमाने किल दुर्विज्ञेयत्वात्परस्याऽऽत्मनोऽत्यन्तबाह्यविषयासक्तचेतसोऽत्यन्तसूक्ष्मवस्तुश्रवणे व्यामोहो मा भूदिति। यथा किल द्वितीयायां सूक्ष्मं चन्द्रं दिदर्शयिषुर्वृक्षं कंचित्प्रत्यक्षमादौ दर्शयति पश्यामुमेष चन्द्र इति, ततोऽन्यं ततोऽप्यन्यं गिरिमूर्धानं च चन्द्रसमीपस्थमेष चन्द्रं इति, ततोऽसौ चन्द्रं पश्यति, एवमेतद्य एषोऽक्षिणीत्याद्युक्तं प्रजापतिना त्रिभिः पर्यायैर्न पर इति। चतुर्थे तु

चतुर्ष्वपि पर्यायेषु त्वमर्थानुवादेन तस्य तदर्थत्वं विधेयमिति स्वाभिप्रायेण प्रजापतिवाक्यं व्याख्यातं संप्रति स्वयूथ्यमतमुत्थापयति—य एष इति। प्रथमपर्यायस्य च्छायात्मविषयत्ववद्द्वितीयतृतीयपर्याययोरपि विज्ञानात्मविषयत्वमित्याह—स्वप्नेति। अन्य एव परस्मादुक्त इति संबन्धः। चतुर्थपर्यायवत्पर्यायत्रयेऽपि परमात्मैव कस्मान्नोच्यते तत्राऽऽह—न पर इति। अपहतपाप्मत्वादेरवस्थावत्त्वस्य च मिथो विरोधो हेत्वर्थः। नन्वन्तिमे पर्याये परस्योपदेशो युज्यते तज्ज्ञानस्य मुक्तिफलत्वात्किमिति पूर्वेषु पर्यायेषु च्छायादयो निर्दिश्यन्ते तत्फलाभावादत आह—छायाद्यात्मनां चेति। तत्र प्रथमं छायात्मोपदेशस्य प्रयोजनमाह—आदावेवेति। परस्यातिसूक्ष्मत्वेन दुर्विज्ञेयत्वात्तस्मिन्नेवाऽऽदावुच्यमाने सति तस्यातिसूक्ष्मस्य श्रवणेऽपि श्रोतुरनात्मनिष्ठस्य किल व्यामोहः स्यात्स मा भूदिति पृथक्छायात्मोपदेशः कृत इति संबन्धः। स्वप्नसुषुप्तयोर्विज्ञानात्मोपदेशस्य प्रयोजनं दर्शयन्नुक्तमर्थं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेत्यादिना। इतिशब्द[1]स्तङा संबध्यते। पर्यायान्तरस्य तात्पर्यमाह—चतुर्थे

सप्तम खण्ड के चतुर्थ मन्त्र में जो प्रजापति ने कहा था "यह जो पुरुष नेत्र में दीखता है, यह आत्मा है, यह अमर है, यह अभय है, यह ब्रह्म है" यहाँ छायात्मा पुरुष का ही उपदेश था। चारों पर्यायों में "त्वम्" अर्थ का अनुवाद कर उसका "तत्" अर्थ विधान करना इष्ट था। प्रथम पर्याय के छायात्मा विषय कहने पर दूसरे और तीसरे पर्याय में भी स्वप्न और सुषुप्त अवस्था को विज्ञानात्मा कहा जो परमात्मा से भिन्न है। चौथे पर्याय की तरह प्रथम तीनों पर्यायों में परमात्म तत्त्व का उपदेश क्यों नहीं मान लें, इस पर कहते हैं—उन तीनों पर्यायों में परमात्म तत्त्व का उपदेश नहीं है अन्यथा आत्मा के "अपहतपाप्मा" इत्यादि स्वरूप में विरोध आने लगेगा, ऐसा कुछ मानते हैं। (इस पर शंका होती है—अन्तिम पर्याय में परमात्म तत्त्व का उपदेश युक्तिसंगत लगता है, उस ज्ञान का फल मोक्ष है, ऐसे में प्रथम तीन निष्फल पर्यायों का क्या प्रयोजन था इसका परिहार करते हुए कहते हैं—) छायात्मा, स्वप्न एवं सुषुप्तस्थ विज्ञानात्मा के उपदेश में भी प्रयोजन है। परमात्म तत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म एवं अत्यन्त कठिनाई से समझ में आ पाता है, यदि उसका प्रथम उपदेश किया जाता तो बाह्य विषयों में सर्वथा आसक्त चित्त वालों को अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व सुनकर समझने में परेशानी होती, ऐसा न हो इसलिए छायात्मा आदि का प्रथम उपदेश किया गया। जिस प्रकार लोक व्यवहार में किसी को द्वितीया के (मांगलिक दर्शन वाले) सूक्ष्म चन्द्रमा को दिखाने की इच्छा से प्रथम किसी प्रत्यक्ष वृक्ष को दिखाया जाता है और कहा जाता है कि देखो यह वृक्ष यह चन्द्रमा है फिर दूसरी वस्तु फिर अन्य वस्तु को दिखाकर चन्द्र का संकेत किया जाता है अन्त में चन्द्रमा के समीप वाले पर्वत के शिखर को

---

१. तिङा आहु रित्यनेनोत्तरत्र पठितेनेत्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पर्याये देहान्मर्त्यात्समुत्थायाशरीरतामापन्नो ज्योतिःस्वरूपम् । अस्मिन्नुत्तमपुरुषे स्त्र्यादिभिर्जक्षत्क्रीडन्रममाणो भवति स उत्तमः पुरुषः पर उक्त इति चाऽऽहुः।

सत्यं, रमणीया तावदियं व्याख्या श्रोतुम् । नत्वर्थोऽस्य ग्रन्थस्यैवं संभवति । कथम् । अक्षिणि पुरुषो दृश्यत इत्युपन्यस्य शिष्याभ्यां छायात्मनि गृहीते तयोस्तद्विपरीतग्रहणं मत्वा तदपनयायोदशरावोपन्यासः किं पश्यथ इति च प्रश्नः साध्वलंकारोपदेशश्चानर्थकः स्यात् । यदि च्छायात्मैव प्रजापतिनाऽक्षिणि दृश्यत इत्युपदिष्टः । किंच यदि स्वयमुपदिष्टग्रहणस्याप्यपनयनं कारणं वक्तव्यं स्यात् । स्वप्नसुषुप्तात्मग्रहणयोरपि

त्विति । मरणधर्मकाद्देहात्पृथग्भूत्वा ज्योतिःस्वरूपमशरीरत्वं प्राप्तो यद्यपि चतुर्थे पर्याये कथ्यते तथाऽपि कथमसौ परमात्मा स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—यस्मिन्निति । स संप्रसादान्यः संप्रसादश्च विद्वान्कर्तृत्वेन विवक्षितः ।

किमिदं व्याख्यानं शब्दानुसारि किंवाऽर्थानुसारीति विकल्प्याऽऽद्यमङ्गी करोति—सत्यमिति । द्वितीयं दूषयति—न त्विति । असंभवमेवाऽऽकाङ्क्षाद्वारा स्फुटयति—कथमित्यादिना । यद्याद्ये पर्याये छायात्मोपदिश्येत तर्हीन्द्रविरोचनयोः सम्यग्दर्शित्वाद्विपरीतग्रहापोहार्थं प्रजापतेरायासो वृथा स्यात् । तेन नेदं व्याख्यानमर्थानुसारीत्यर्थः । इतश्च नाऽऽद्ये पर्याये छायात्मोपदेशोऽस्तीत्याह—किंचेति । प्रजापतिनोपदिष्टस्यापि च्छायात्मनो ग्रहणं न मृष्यतीत्याशङ्क्य हेत्वन्तरं स्पष्टयति—यदीति । तेन च्छाया-

---

दिखाकर कहा जाता है यह चन्द्रमा है तब वह चन्द्रमा के दर्शन करता है; इसी प्रकार प्रजापति ने "यह जो पुरुष नेत्र में दीखता है" इत्यादि तीन पर्यायों में परतत्त्व का उपदेश नहीं किया । चौथे पर्याय में मरणधर्मा शरीर से ऊपर उठकर अशरीरी भाव से परम ज्योति को प्राप्त कर यह जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । उस समय वह उत्तम पुरुष हँसता, क्रीड़ा करता, स्त्री, यान अथवा सम्बन्धियों के साथ रमण करता इस शरीर का विस्मरण कर सभी ओर घूमता रहता है । संप्रसाद अवस्था को प्राप्त वह उत्तम पुरुष ही परमात्मा है ऐसा विद्वान् कहते हैं ।

क्या यह व्याख्यान शब्दानुसारी है अथवा अर्थानुसारी है, इन विकल्पों में इसे शब्दानुसारी कहना तो ठीक है, सचमुच यह व्याख्या सुनने में अत्यन्त सुन्दर लगती है । किन्तु इस ग्रन्थ का यह अर्थ करना अप्रासङ्गिक है । ऐसा क्यों कहते हो ? आचार्य प्रजापति ने इन्द्र विरोचन को उपदेश दिया "यह नेत्र में पुरुष दीखता है" इत्यादि से छायात्मा को शिष्यों ने समझ लिया । उनके के द्वारा विपरीत ग्रहण हुआ है, ऐसा मानकर प्रजापति ने उसको उनके मन से हटाने के लिए जल पूरित सकोरे का दृष्टान्त देकर पूछा—इसमें क्या देख रहे हो ? पुनः प्रजापति बोले—अब तुम अच्छी प्रकार वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर इसमें देखो । इस प्रकार यह उपदेश करना निष्प्रयोजन हो जाएगा यदि प्रजापति ने "यह जो आँख में पुरुष दीखता है" इस प्रथम उपदेश से छायात्मा का ही उपदेश किया होता । इसके अतिरिक्त यदि स्वयं ही छायात्मा का ग्रहण करने के लिए उपदेश किया तो उसको निवृत्त करने का कारण

---

१. छा० उ० ८।१२।३ । २. कारणमिति तर्हि तत्रेत्यादिः । ३. जक्षणादिक्रियाकर्तृत्वेनेत्यर्थः । ४. न मृष्यति न सहते अपनिनीषतीति यावत् प्रजापतिरिति शेषः ।

Jangamwadi Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तदपनयकारणं च स्वयं ब्रूयात् । न चोक्तं तेन तेन मन्यामहे नाक्षिणि च्छायात्मा प्रजापतिनोपदिष्टः । किं चान्यदक्षिणि द्रष्टा चेद्दृश्यत इत्युपदिष्टः स्यात्तत इदं युक्तम् । एतं त्वेव त इत्युक्त्वा स्वप्नेऽपि द्रष्टुरेवोपदेशः ।

स्वप्ने न द्रष्टोपदिष्ट इति चेन्न । अपि रोदितीवाप्रियवेत्तेवेत्युपदेशात् । न च द्रष्टुरन्यः कश्चित्स्वप्ने महीयमानश्चरति । अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिरिति न्यायतः श्रुत्यन्तरे सिद्धत्वात् । यद्यपि स्वप्ने सधीर्भवति तथाऽपि न धीः स्वप्नभोगोपलब्धिं प्रति करणत्वं भजते । किं तर्हि [1]पटचित्रवज्जाग्रद्वासनाश्रया दृश्यैव धीर्भवतीति न द्रष्टुः

स्वग्रहणापयनकारणावचनेनेति यावत् । तेन प्रजापतिनेत्येकस्तच्छब्दो योज्यः । इतश्च प्रथमे पर्याये द्रष्टुरेवोपदेशो न च्छायापुरुषस्येत्याह—किंचान्यदिति । एतच्छब्देन संन्निहितावलम्बिना छायात्मानमनुकृष्य स्वप्ने द्रष्टुरुपदेशः (शे) प्रजापतेर्मृषावादित्वं प्रसज्येत तथा च प्रथमेऽपि पर्याये द्रष्टैवोपदिष्ट इत्यर्थः ।

स्वप्नावस्थाविशिष्टस्य स्थानान्तरे बाध्यत्वान्न तत्र द्रष्टुरुपदेशोऽस्तीति शङ्कते—स्वप्न इति । अनुभवानुसारेणोत्तरमाह—नेत्यादिना । किंच प्रकाशकारणानामुपरमे यः प्रकाशः स नैसर्गिक इति न्यायेन प्रतीचः स्वयंज्योतिष्ट्वं बृहदारण्यके स्वप्नावस्थामाश्रित्योक्तं ततश्च तत्र द्रष्टुरुपदेशः सिध्यतीत्याह—न चेति । सूर्यादीनामुपरमे यः प्रकाशो दृश्यमानः स नैसर्गिक इत्ययुक्तं स्वप्नेऽप्यन्तःकरणस्य सत्त्वादित्याशङ्क्याऽऽह—यद्यपीति । करणत्वाभावे हेतुं पृच्छति—किं तर्हीति । नीलपीतादिजाग्रद्वासनाभिर्विवर्तमाना साक्षिणो वेद्यतामापद्यते । तथाच पटचित्रवद्विचित्रवासनामयचेतसः साक्षिगम्यत्वान्न स्वप्नोपलब्धौ करणं भवतीति तद्द्रष्टुः स्वयंज्योतिष्ट्वं न्यायसिद्धमित्याह—पटेति ।

बताना चाहिए । स्वप्न और सुषुप्त अवस्था में विज्ञानात्मा का ग्रहण होने पर उसकी निवृत्ति का भी कारण स्वयं बतलाना चाहिए । उन्होंने इसकी निवृत्ति करने के लिए कोई कारण नहीं प्रस्तुत किया, जिससे लगता है कि नेत्र से उपलक्षित छायात्मा का उपदेश देना प्रजापति को इष्ट नहीं था । हाँ ! प्रथम पर्याय में भी द्रष्टा आत्मा का उपदेश है, छायात्मा का नहीं । तब तो आँख में द्रष्टा दीखता है ऐसा उपदेश ही युक्तिसंगत है । "मैं इसकी व्याख्या पुनः तुम्हारे प्रति करूँगा" प्रजापति के इस कथन से स्वप्न में द्रष्टा आत्मा का उपदेश होना सिद्ध हुआ ।

यदि कहो स्वप्नावस्था में द्रष्टा का उपदेश नहीं है क्योंकि स्वप्नावस्था विशिष्ट अन्य स्थान में उसका बाध हो जाता है, इसका निरास अनुभव के आधार पर करते हुए कहते हैं कि ऐसा कहना अयुक्त है क्योंकि श्रुति में उपदेश है "इसलिए वह मानो अपने अनिष्ट का अनुभव करता हो और रोता हो" । "प्रकाश के कारण का अवरोध हो जाने पर भी जो प्रकाश रहता है वह स्वाभाविक है" इस लौकिक न्याय से स्वयं ज्योति स्वरूप द्रष्टा से अन्य स्वप्न में दूसरा नहीं है जो यह स्वप्न में स्त्री आदि से पूजित हुआ विचरता है । "वह यह स्वप्नस्थ पुरुष स्वयं ज्योति स्वरूप है" ऐसा बृहदारण्यक श्रुति एवं न्याय से सिद्ध है । यद्यपि स्वप्नावस्था में अन्तःकरण से युक्त होता है किन्तु वह अन्तःकरण स्वप्नकालीन भोग सामग्री के प्रति करण नहीं हुआ करता । करण न होने में हेतु क्या है ? चित्र में चित्रित वस्त्रों

१. पटचित्रवत्—चित्रपटवदित्यर्थः ।

Jangamwadi Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

स्वयंज्योतिष्ट्वबाधः स्यात् । किंचान्यत् । जाग्रत्स्वप्नयोर्भूतानि चाऽऽत्मानं च जानातीमानि भूतान्ययमहमस्मीति । प्राप्तौ सत्यां प्रतिषेधो युक्तः स्यान्नाह खल्वयमित्यादि । तथा चेतनस्यैवाविद्यानिमित्तयोः सशरीरत्वे सति प्रियाप्रिययोरपहतिर्नास्तीत्युक्त्वा तस्यैवाशरीरस्य सतो विद्यायां सत्यां सशरीरत्वे प्राप्तयोः प्रतिषेधो युक्तोऽशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशत इति । एकश्चाऽऽत्मा स्वप्नबुद्धान्तयोर्महामत्स्यवदसङ्गः संचरतीति श्रुत्यन्तरे सिद्धम् ।

यच्चोक्तं संप्रसादः शरीरात्समुत्थाय यस्मिन्स्त्र्यादिभी रममाणो भवति सोऽन्यः संप्रसादादधिकरणनिर्दिष्ट उत्तमः पुरुष इति । तदप्यसत् । चतुर्थेऽपि पर्याय एतं त्वेव त

प्रासङ्गिकं हित्वा द्रष्टैवोपदिष्ट स्वप्नावस्थायामित्यत्र हेत्वन्तरमाह—किंचेति । तथाच जाग्रदवस्थायामिव स्वप्नेऽपि द्रष्टैवोपदिष्ट इति शेषः । इतश्च द्रष्टुरेवोपदेशः स्वप्नदशायामित्याह—प्राप्ताविति । न केवलमुक्तसौषुप्तो निषेधो निषेध्यप्राप्तिसापेक्षत्वादवस्थाद्वये द्रष्टुरुपदेशमाकाङ्क्षति किंतु तुरीयगतो निषेधोऽपि निषेध्यमाकाङ्क्षन्नवस्थाद्वये द्रष्टुरुपदेशमाकाङ्क्षतीत्याह—तथेति । निषेधस्य प्राप्तिसापेक्षत्वात्प्रकृतस्यैव द्रष्टुरविद्यानिदाने सशरीरत्वे तन्निमित्तयोः स्थानद्वयगतयोर्न प्रियाप्रिययोरपहतिरस्तीति न ह वै सशरीरस्येत्यादिनोक्तं सशरीरत्वे प्राप्तयोः प्रियाप्रिययोस्तस्यैवावस्थात्रयातीतस्य सत्यां विद्यायामशरीरमित्यादिना प्रतिषेधो युक्त इति योजना । स्वप्ने द्रष्टुरुपदेशे हेत्वन्तरमाह—एकश्चेति ।

चतुर्थपर्यायस्य सौषुप्तादर्थान्तरविषयत्वमुक्तमनुभाष्य दूषयति—यच्चोक्तमित्यादिना । तदेव

की तरह नील-पीतादि जाग्रत् कालीन वासना से अभिवासित साक्षी को ज्ञान होता है, इसलिए विचित्र वासनामय अन्तःकरण साक्षिगम्य होने के कारण करण नहीं होता । इसलिए द्रष्टा आत्मा का स्वयं ज्योतिस्वरूप निर्बाध रूप से सिद्ध हुआ । स्वप्नावस्था में द्रष्टा के ही उपदिष्ट होने में अन्य हेतु यह भी है—क्योंकि जाग्रदवस्था और स्वप्नावस्था के प्राणियों व आत्मा को यह जानता है कि "ये प्राणी हैं, यह मैं हूँ" स्वप्नावस्था में द्रष्टा आत्मा के सिद्ध होने पर ही सुषुप्त अवस्था में इन्द्र का यह प्रतिषेध युक्तिसंगत लगता है "हे भगवन्! निश्चय ही मैं इस अवस्था में अपने को नहीं जानता कि मैं यही हूँ और न इन अन्य भूतों को ही जानता हूँ" । निषेध प्राप्ति सापेक्ष हुआ करती है तभी तो प्रकरणस्थ यही द्रष्टा अविद्या के हेतु भूत सशरीरी स्थिति में प्रिय और अप्रिय से ग्रस्त रहता है, ऐसा कहकर उसी द्रष्टा को तीनों अवस्थाओं से अतीत विद्यावस्था में अशरीरी भाव आ जाने पर पूर्व प्राप्त सशरीरी भाव का प्रतिषेध कर दिया जाता है, ऐसे में उस द्रष्टा को अशरीर होने पर और अप्रिय स्पर्श नहीं करते। स्वप्नावस्था से द्रष्टा आत्मा की विद्यमानता के उपदेश में एक और कारण यह भी है कि आत्मा एक ही है जो स्वप्न और जाग्रदवस्था में महामत्स्य की तरह असङ्ग होकर विचरण करती है–ऐसा बृहदारण्यक श्रुति से भी सिद्ध होता है।

चतुर्थ पर्याय में सुषुप्ति अवस्था के प्रकरण में कहा है—यह जीव इस शरीर से समुत्थान कर परम ज्योति को प्राप्त कर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, उस समय हँसता, क्रीड़ा करता, स्त्रियों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इति वचनात्। यदि ततोऽन्योऽभिप्रेतः स्यात्पूर्ववदेतं त्वेव त इति न ब्रूयान्मृषा प्रजापतिः। किंचान्यत्तेजोबन्नादीनां स्रष्टुः सतः स्वविकारदेहशुङ्गे प्रवेशं दर्शयित्वा प्रविष्टाय पुनस्तत्त्वमसीत्युपदेशो मृषा प्रसज्येत। तस्मिंस्त्वं स्त्र्यादिभी रन्ता भविष्यसीति युक्त उपदेशोऽभविष्यद्यदि संप्रसादादन्य उत्तमः पुरुषो भवेत्। तथा भूम्न्यहमेवेत्यादिश्याऽऽत्मैवेदं सर्वमिति नोपसमहरिष्यद्यदि भूमा जीवादन्योऽभविष्यत्। "नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा" इत्यादिश्रुत्यन्तराच्च। सर्वश्रुतिषु च परस्मिन्नात्मशब्दप्रयोगो नाभविष्यत्प्रत्यगात्मा चेत्सर्वजन्तूनां पर आत्मा न भवेत्तस्मादेक एवाऽऽत्मा प्रकरणी सिद्धः।

व्यतिरेकद्वारा स्फोरयति—यदीति। अधिकरणाधेयभावेन भेदः सत्यो नास्तीत्यत्र हेत्वन्तरमाह—किंचान्यदिति। जीवपरयोर्भेदस्य षष्ठप्रपाठकविरोधवत्सप्तमप्रपाठकविरोधोऽपि स्यादित्याह—तथेति। बृहदारण्यकश्रुत्यालोचनायामपि जीवेश्वरभेदो न संभवतीत्याह—नान्य इति। इतश्च जीवपरयोर्भेदो नास्तीत्याह—सर्वश्रुतिष्विति। श्रौतमर्थमुपसंहरति—तस्मादिति।

के साथ रमण करता हुआ घूमता है, वह संप्रसाद से अन्य अधिकरण में प्रतिपादित उत्तम पुरुष है। ऐसे कहना भी युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि चौथे पर्याय में इन्द्र को सान्त्वना दी है कि "मैं इसकी व्याख्या पुनः तुम्हारे प्रति करूँगा। आत्मा इससे भिन्न नहीं है"। यदि आत्मा उससे भिन्न बतलानी इष्ट होती तो पूर्व के समान "इसकी व्याख्या तुम्हारे प्रति पुनः करूँगा" इस प्रकार प्रजापति असत्य भाषण न करते। अधिकरण-आधेयभाव से भेद सत्य नहीं है इसमें अन्य हेतु बतलाते हैं—षष्ठ अध्याय में तेज, जल एवं पृथिवी आदि की रचना कर स्रष्टा सत् का अपने विकार देहकार्य में प्रवेश दिखलाकर प्रविष्ट हुए को पुनः तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश किया गया है, उस उपदेश की भी निरर्थकता सिद्ध होने लग जाएगी। उसी में तुम स्त्री आदि विषयों में रमण करने वाले होगे, यह उपदेश किया जाता यदि सम्प्रसाद अवस्था से भिन्न कोई उत्तम पुरुष होता। इसी प्रकार सप्तम अध्याय में भी जीव और परमात्मा की एकता सिद्ध करनी मुश्किल हो जाती जहाँ "भूमा ही सब कुछ है उससे भिन्न कोई वस्तु नहीं है जिस पर वह प्रतिष्ठित होवे वह भूमा मैं ही हूँ" इस प्रकार द्रष्टा के साथ भूमा का अभेद बतला कर "यह सब कुछ आत्मा ही है" इस प्रकार उपसंहार किया गया है। यदि भूमा जीव से भिन्न होता तो इस प्रकार अभेद का उपदेश न किया जाता। बृहदारण्यक उपनिषद् (३. ७. २३) भी इसी का समर्थन करते हुए कहती है—"जो प्रजनन इन्द्रिय में रहने वाला प्रजनन के भीतर रहता है, जिसे वीर्य जानता नहीं, वीर्य जिसका शरीर है जो वीर्य के भीतर रहकर वीर्य का नियमन करता है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी, अमृत है। वह दिखाई नहीं देता किन्तु देखता है; सुनाई नहीं देता किन्तु सुनता है; मनन का विषय नहीं होता किन्तु मनन करने वाला है, जो विशेषरूप से ज्ञात नहीं होता किन्तु विशेष रूप से जानता है।" यदि सब प्राणियों का परमात्मा होना सिद्ध न होता तो समस्त श्रुतियों में परमात्मा को लक्षित कर आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं होता। इसलिए जीव और परमात्मा में अभेद सिद्ध है वह एक ही है जिसका प्रकरण में निरूपण किया है।

---

१. छा० उ० ७।२५।२।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न चाऽऽत्मनः संसारित्वम्। अविद्याध्यस्तत्वादात्मनि संसारस्य। न हि रज्जुशुक्तिकागगनादिषु सर्परजतमलादीनि मिथ्याज्ञानाध्यस्तानि तेषां भवन्तीति। एतेन सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहतिर्नास्तीति व्याख्यातम्। यच्च स्थितमप्रियवेत्तेवेति नाप्रियवेत्तैवेति सिद्धम्। एवं च सति सर्वपर्यायेष्वेतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति प्रजापतेर्वचनम्। यदि वा प्रजापतिच्छद्मरूपायाः श्रुतेर्वचनं सत्यमेव भवेत्। न च तत्कुतर्कबुद्ध्या

आत्मैक्ये परस्यैव संसारित्वं सर्वदेहेषु स्यादिति चेन्नेत्याह—न चेति। आरोपितसंसारित्वं वस्तुतो नाऽऽत्मन्यस्तीत्येतद्दृष्टान्तेन स्पष्टयति—न हीति। मिथ्या च तदज्ञानं चेति मिथ्याज्ञानं तेनाध्यस्तान्यविद्यमानान्येव विद्यमानवत्प्रतीतिमापादितानीति यावत्। न ह वै सशरीरस्येत्यादि वदता वास्तवत्वं प्रियाप्रियसंबन्धस्य विवक्षितमिति शङ्कामुक्तन्यायातिदेशेन निरस्यति—एतेनेति। यावदध्यासभावित्वं प्रियाप्रिययोरपहत्यभावो न वास्तवत्वं शरीरसंबन्धस्यैव प्रियाप्रियमूलस्य दुर्निरूपत्वादित्यर्थः। स्वप्नद्रष्टा खल्वप्रियवेत्तेव भवति न त्वप्रियवेत्तैवेति यत्पूर्वत्र स्थितं तत्सिद्धम्। आत्मनि संसारस्य प्रसक्तिर्नेति यावत्। लाभान्तरमाह—एवं चेति। 'प्रजापतेर्वचनं सत्यं भवेदिति संबन्धः। अपौरुषेय्यां श्रुतौ कुतः प्रजापतेर्वचनं सावकाशमित्याशङ्क्याऽऽह—यदि वेति। सुखादयः साश्रया गुणत्वाद्रूपादिवदित्यनुमानात्तदाश्रयः परिशेषादात्मा भविष्यतीति वैशेषिकादितर्कविरोधादसत्यं श्रुतेर्वचनमित्याशङ्क्याऽऽह—न चेति। सुखादीनामुपाधिधर्मत्वेन सिद्धसाध्यत्वान्नास्ति श्रौतवचसो बाधक-

---

सब शरीरों में एक ही आत्मा मान लेने पर जीवात्मा को संसारी न कहकर परमात्मा को ही संसारी मानने लगेंगे इस शंका का परिहार करते हुए कहते हैं—आत्मा को ससारी कहते नहीं बनता। वास्तव में जो संसारीपना आत्मा में भास रहा है वह अविद्या से आरोपित मात्र है। इसी को दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं—रस्सी, सीप एवं गगनादि में साँप, चाँदी एवं मलिनता आदि मिथ्या अज्ञान से अविद्यमान बस्तु में विद्यमानता की तरह प्रतीति सम्पादन करते हैं, आत्मा में ऐसा आरोप संभव नहीं। इससे "सशरीर रहते हुए इष्ट-अनिष्ट का सर्वथा नाश नहीं हो सकता" इस श्रुति की वास्तविकता का व्याख्यान हो गया। और जो स्वप्न पुरुष के उपदेश को सुनकर इन्द्र ने लौटकर प्रजापति से कहा था "वह मानो अपने अनिष्ट का अनुभव सा करता हो और रोता हो" वह "अप्रिय वेत्ता होना" औपाधिक ही है, पारमार्थिक नहीं है क्योंकि स्वप्नद्रष्टा अनिष्ट के अभाव की तरह अनुभव करता है, वस्तुतः नहीं। इसके अतिरिक्त चारों पर्यायों में प्रजापति का यही उपदेश है—वह आत्मा अमृत है, अभय है, यही ब्रह्म है। प्रजापति को बहाना करके अपौरुषेयी श्रुति आत्मा में संसारी भाव की प्रसक्ति नहीं कहती तो वह सत्य ही है। वैशेषिक आदि तर्क दे सकते हैं कि सुखादि किसी के आश्रय में ही रहने संभव हैं क्योंकि सुख-दुःखादि गुण हैं जैसे रूपादि गुण किसी के आश्रित नहीं रहते हैं, अन्ततः सुख का आश्रय आत्मा होगी—इस प्रकार के कुतर्कों के द्वारा श्रुति वचनों को मिथ्या घोषित नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रुतियों को छोड़कर अन्य श्रेष्ठ प्रमाण मिलना संभव नहीं है।

---

१. प्रजापतेर्वचनमिति—प्रजापतिवचनस्य पौरुषेयत्वात् पौरुषेयत्वापौरुषेयत्वयोश्चैकत्र विरोधादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मृषा कर्तुं युक्तम् । ततो गुरुतरस्य प्रमाणान्तरस्यानुपपत्तेः । ननु प्रत्यक्षं दुःखाद्यप्रियवेत्तृत्वमव्यभिचार्यनुभूयत इति चेन्न । जरादिरहितो जीर्णोऽहं जातोऽहमायुष्मान्गौरः कृष्णो मृत इत्यादिप्रत्यक्षानुभववत्तदुपपत्तेः ।

सर्वमप्येतत्सत्यमिति चेदस्त्येवैतदेवं दुरवगमं येन देवराजोऽप्युदशरावादिदर्शिताविनाशयुक्तिरपि मुमोहैवात्र विनाशमेवापीतो भवतीति । तथा विरोचनो महाप्राज्ञः प्राजापत्योऽपि देहमात्रात्मदर्शनो बभूव । तथेन्द्रस्याऽऽत्मविनाशभयसागर एव वैनाशिका न्यमज्जन् । तथा सांख्या द्रष्टारं देहादिव्यतिरिक्तमवगम्यापि त्यक्तागमप्रमाणत्वान्मृत्यु-

---

मित्यर्थः । प्रत्यक्षमिति शङ्कते—नन्विति । तस्याऽऽभासत्वान्न बाधकत्वमिति परिहरति—नेत्यादिना ।

दृष्टान्तोऽपि संप्रतिपन्नो न भवतीति शङ्कते—सर्वमिति । जरादेः सत्यवचनं त्वदीयमेवमस्त्येवेत्यङ्गी करोति—अस्त्येवेति । अङ्गीकारे हेतुमाह—दुरवगममिति । अधिकारिणः प्रमितिजनको वेद इति न्यायात्त्वादृशानामनधिकारिणां दुर्ज्ञानमात्मतत्त्वम् । अतोऽस्त्येव जरादिसत्यववचनं न तावता वस्तुक्षतिरित्यर्थः । दुरवगमत्वे लिङ्गमाह—येनेति । अत्रेत्यात्मतत्त्वोक्तिः । तस्य दुर्ज्ञानत्वे लिङ्गान्तरमाह—तथेति । वैनाशिकभ्रान्तिरप्यात्मनो दुर्ज्ञानत्वं गमयतीत्याह—तथेन्द्रस्येति । सांख्यभ्रान्तिरपि दुर्ज्ञानत्वमात्मनो ज्ञापयतीत्याह—तथा सांख्या इति । तार्किकभ्रान्तिरपि तस्य दुर्ग्रहत्वे गमिकेत्याह—

सुखादि उपाधि के कारण प्रतीत होते हैं अतः श्रुति वचन सार्थक ही है। इस पर प्रत्यक्षदर्शी शंका करता है—दुःखादि तो अनिष्ट की तरह लगने वाले एवं सब प्रकार से सत्य प्रत्यक्ष अनुभव किये जाते हैं। उनका ऐसा लगंना आभास मात्र बतलाकर शंका का परिहार किया जाता है। दुःखादि का अनुभव उसी प्रकार प्रत्यक्ष होता है जैसे कोई कहे—मैं बुढ़ापे से रहित हूँ, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मैं दीर्घायु हूँ, गौर वर्ण वाला हूँ, कृष्ण वर्ण वाला हूँ, मैं मर गया इत्यादि, इनसे श्रुति वचनों की कोई निरर्थकता सिद्ध नहीं होती।

यदि आपके द्वारा प्रतिपादित दृष्टान्त को सही मान लें तो कोई हानि नहीं है किन्तु आत्मतत्त्व का ज्ञान होना इतना सरल नहीं है। देवराज इन्द्र को प्रजापति ने जल से पूर्ण सकोरे के दृष्टान्त से उपदेश दिया, अकाट्य युक्ति से समझाया फिर भी उन्हें मोह हो गया, वे सुषुप्त पुरुष के विषय में कहने लगे "उस समय यह विनाश को प्राप्त हुआ-सा हो जाता है"। आत्मतत्त्व के दुर्बोध होने में एक और प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—असुरों के अधिपति विरोचन महान् बुद्धिमान् थे प्रजापति की ही सन्तान थे किन्तु स्वयं प्रजापति को गुरु पाकर भी उन्हें "शरीर ही आत्मा है" ऐसा आत्मदर्शन ही हुआ। इसी प्रकार इन्द्र द्वारा अनुभूत "विनाश को प्राप्त हुआ-सा हो जाता है" आत्मा के नाश रूप भय के समुद्र में ही वैनाशिक गोते खा रहे हैं, उनकी भ्रान्ति भी आत्मज्ञान की दुर्बोधता सिद्ध करती है। इसी प्रकार सांख्यमतानुयायी द्रष्टा को देहादि से भिन्न स्वीकृत करके भी श्रुति प्रमाण को त्याग देने के कारण मरणधर्मा मानते हैं इस प्रकार भेद दर्शन में ही भटक कर रह जाते हैं। इसी प्रकार अन्य

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषय एवान्यत्वदर्शने तस्थुः । तथाऽन्ये काणादादिदर्शनाः कषायरक्तमिव क्षारादिभिर्वस्त्रं नवभिरात्मगुणैर्युक्तमात्मद्रव्यं विशोधयितुं प्रवृत्ताः । तथाऽन्ये कर्मिणो बाह्यविषयापहृतचेतसो वेदप्रमाणा अपि परमार्थसत्यमात्मैकत्वं विनाशमिवेन्द्रवन्मन्यमाना घटीयन्त्रवदारोहावरोहप्रकारैरनिशं बम्भ्रमति । किमन्ये क्षुद्रजन्तवो विवेकहीनाः स्वभावत एव बहिर्विषयापहृतचेतसः । तस्मादिदं त्यक्तसर्वबाह्यैषणैरनन्यशरणैः परमहंसपरिव्राजकैरत्याश्रमिभिर्वेदान्तविज्ञानपरैरेव वेदनीयं पूज्यतमैः प्राजापत्यं चेमं

तथाऽन्य इति । बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावना नवाऽऽत्मगुणाः । मीमांसकभ्रान्तिस्तस्य दुर्ग्रहत्वे गमिकेत्याह—तथाऽन्य इति । यदा परीक्षकाणामपीदृशी भ्रान्तिरात्मनो दुरवगमत्वं गमयति तदा विचारविधुराणां लौकिकानां भ्रान्तिस्तत्र प्रमाणयितव्येत्याह—किमन्य इति । अन्ये बम्भ्रमतीति किं वक्तव्यमिति संबन्धः । यदि लौकिकानां परीक्षकाणां चेदमात्मतत्त्वं दुर्ज्ञानं प्रतिज्ञायते केषां तर्हीदं सुज्ञानमित्याशङ्क्याऽऽह—तस्मादिति । एषणास्विवाऽऽत्मतत्त्वेऽपि तेषामौदासीन्यं वारयति—अनन्यशरणैरिति । तेषां कुटीचकादिभावं व्यासेधति—परमहंसेति । कर्मनिष्ठानामाश्रमानतीत्य नैष्कर्म्यप्राधान्येन वर्तमानत्वं दर्शयति—अत्याश्रमिभिरिति । अनन्यशरणैरित्युक्तं व्यनक्ति—वेदान्तेति । पूज्यतमैरिति नित्यानुवादः । तेषामात्मवेदनोपायं प्राक्तनमुपदिशति—प्राजापत्यं चेति । स्थानत्रयं

काणादादि दर्शन आत्मा में बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और भावना; ये नौ गुण मानते हैं, इन नौ गुणों से युक्त आत्मा द्रव्य को साफ करने में लगे हैं किन्तु नमक से कषाय रंग से रंगे कपड़े को साफ करने के समान वह राग तो और भी घना हो जाता है। (आत्मतत्त्व की दुर्बोधता सिद्ध करने में मीमांसक भी पीछे नहीं रहे हैं) मीमांसक वेदों को प्रमाण मानकर भी बाह्य विषयों के प्रति अपनी चित्त की आसक्ति को नहीं हटा सके हैं। परमार्थतः सत्य अद्वितीय आत्मा को इन्द्र की तरह विनाशी-सा मानते हैं, घटीयन्त्र में लगे घड़ों की तरह बार-बार ऊपर-नीचे चक्कर लगाते रहते हैं। जब इन महान् दार्शनिकों को आत्मतत्त्व समझने में असुविधा प्रतीत होती है तो अन्य विचार शून्य, बाहरी विषयों की ओर स्वभाव से संसक्त साधारण जीवों का कहना ही क्या है (यदि संसार में बड़े-बड़े विचारकों की बुद्धि भ्रमित हो गई है तो आत्म ज्ञान किन्हें सुलभ है; इस पर कहते हैं—) इसके लिए बाह्य समस्त एषणाओं का त्याग होना अत्यन्त आवश्यक है, सबको छोड़कर भी आत्म तत्त्व के प्रति उदासीन न होकर केवल आत्मचिन्तन परायण रहें, कुटिया आदि में संकुचित न रहकर परमहंस एवं परिव्रजनशील हों, कर्मनिष्ठा-परक सभी आश्रमधर्मों को छोड़कर नैष्कर्म्य प्रधान अत्याश्रमी होकर रहें, वेदान्त विज्ञान के सुनिश्चित अर्थों में रमणशील हों; ऐसे निष्पक्ष भाव से सर्वदा पूजनीय महापुरुषों द्वारा ही वह आत्मतत्त्व जाना जा सकता है, प्रजापति द्वारा उक्त इस आत्म ज्ञान के

---

१. कषायरक्तमिव वस्त्रमिति तस्य क्षारादिभिः क्षालनेऽपि कषायरागो यथा विरली भूय तिष्ठत्येव एवं नवभिर्गुणैर्युक्त एवात्मा द्रव्यान्तराद्गुणादिभ्यश्च विविच्यते तार्किकैरिति भावः । २. नित्यानुवाद इति—तेषु नित्यस्य सार्वदिकस्य पूज्यतमत्वस्यानुवाद एव न तु यथोक्तवेदने साधनत्वेन विधेयत्वमिति भावः ।

Rajguru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥

(हस्तपादादि अवयव के न रहने से) वायु अशरीर है, बादल, बिजली और मेघ ध्वनि ये सभी अशरीर हैं (फिर भी वर्षादि प्रयोजन के लिए) जिस प्रकार ये सब उस आकाश से समुत्थान कर सूर्य की परम ज्योति को प्राप्त हो अपने-अपने स्वरूप से अभिनिष्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

संप्रदायमनुसरद्भिरुपनिबद्धं प्रकरणचतुष्टयेन । [1]तथाऽनुशासत्यद्यापि त एव नान्य इति ॥ १ ॥

तत्राशरीरस्य संप्रसादस्याविद्यया शरीरेणाविशेषतां सशरीरतामेव संप्राप्तस्य शरीरात्समुत्थाय स्वेन रूपेण यथाऽभिनिष्पत्तिस्तथा वक्तव्येति दृष्टान्त उच्यते—अशरीरो वायुरविद्यमानं शिरःपाण्यादिमच्छरीरमस्येत्यशरीरः। किं चाभ्रं विद्युत्स्तनयित्नुरित्येतानि चाशरीराणि । तत्तत्रैवं सति वर्षादिप्रयोजनावसाने यथा । अमुष्मादिति भूमिष्ठा श्रुतिर्द्युलोकसंबन्धिनमाकाशदेशं व्यपदिशति । एतानि यथोक्तान्याकाशसमानरूपतामापन्नानि स्वेन वाय्वादिरूपेणागृह्यमाणान्याकाशाख्यतां गतानि यथा

तुरीयं चेत्येतद्विषयं प्रकरणचतुष्टयम् । यथोक्ताधिकारिणामेवाऽऽत्मवेदनमित्यत्र लिङ्गान्तरमाह–तथेति । अशरीरमित्यादिवाक्यव्याख्यानोपसंहारार्थमितिपदम् ॥१॥

सशरीरस्य बन्धो मुक्तिरशरीरस्येति स्थिते किमर्थमशरीरो वायुरित्यादिवाक्यमित्याशङ्क्याऽऽह—तत्रेत्यादिना । कथं वायोरशरीरत्वं तदाह—अविद्यमानमिति । एवं सति वाय्वादीनामशरीरत्वे सतीति यावत् । आकाशस्य सर्वत्रैकरूपत्वादमुष्मादिति कुतो व्यपदेशसिद्धिरित्याशङ्क्याऽऽह—अमुष्मादितीति । यथोक्तान्यशरीराणि वाय्वादीनि तेषामाकाशत्वापत्तौ दृष्टान्तमाह—यथेति । तथा

सम्प्रदाय का अनुसरण करने वालों को वह प्राप्त हो जाता है जिसका प्रकरणचतुष्टय से इस उपनिषद् में समावेश किया गया है । उपरोक्त योग्यता वाले परमहंस महात्माओं को आज भी इस प्रकार प्रजापति उपदेश देते हैं, विषयों में रत अन्य द्वैतमार्गियों को नहीं ॥ १ ॥

(सशरीरी होना बन्ध है, अशरीरी हो जाना मुक्ति है तो वायु अशरीर है यह मन्त्र किसलिए कहते हो, इस शङ्का का परिहार करते हुए कहते हैं–) संप्रसन्न अवस्था के अशरीर का अविद्या के द्वारा सामान्य सशरीरता प्राप्त हो जाने पर उस शरीर से उत्क्रमण कर अपने आत्म स्वरूप की जिस प्रकार प्राप्ति हो, उसे बतलाना चाहिए इसे दृष्टान्त द्वारा श्रुति कहती है । वायु अशरीरी है क्योंकि सिर, हाथ आदि अवयवों वाले शरीर की तरह इसका शरीर नहीं है । इसी प्रकार बादल, बिजली और मेघध्वनि भी अशरीरी है । वायु आदि के अशरीरी होते हुए भी वृष्टि आदि प्रयोजन के लिए ये सब उस आकाश से समुत्थान करते हैं । मन्त्र में "अमुष्मात्" पद से भूमि की वस्तुओं का प्रतिपादन करने वाली श्रुति

---

१. तथाऽनुशासत्युपदिशन्त्यपि ते यथोक्ताः परमहंसा एव । उपदेशश्च ज्ञातवद्भिरेव शक्यः कर्तुमिति भावः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्येति जक्षत्क्रीडन्रममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा

ठीक उसी प्रकार यह जीव इस शरीर मे समुत्थान कर परमज्योति को प्राप्त कर अपने स्वरूप से स्थित हो जाता है, वह उत्तम पुरुष है, उस समय वह हँसता, क्रीड़ा करता, स्त्री, यान अथवा

संप्रसादोऽविद्यावस्थायां शरीरात्मभावमेवापन्नः, तानि च तथाभूतान्यमुष्माद्द्युलोकसंबन्धिन आकाशदेशात्समुत्तिष्ठन्ति वर्षणादिप्रयोजनाभिनिर्वृत्तये । कथम् । शिशिरापाये सावित्रं परं ज्योतिः प्रकृष्टं ग्रैष्मकमुपसंपद्य सावित्रमभितापं प्राप्येत्यर्थः । आदित्याभितापेन पृथग्भावमापादिताः सन्तः स्वेन स्वेन रूपेण पुरोवातादिवायुरूपेण स्तिमितभावं हित्वाऽभ्रमपि भूमिपर्वतहस्त्यादिरूपेण विद्युदपि स्वेन ज्योतिर्लतादिचपलरूपेण स्तनयित्नुरपि स्वेन गर्जिताशनिरूपेणेत्येवं प्रावृडागमे स्वेन स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्ते ॥ २ ॥

यथाऽयं दृष्टान्तो वाय्वादीनामाकाशादिसाम्यगमनवदविद्यया संसारावस्थायां

वाय्वादीनि स्वेन रूपेणागृह्यमाणत्वदशायामाकाशाख्यतां गतानीति संबन्धः । तानि च वाय्वादीनि तथाभूतान्याकाशात्मत्वं प्राप्तानीत्येतत् । वर्षादिफलनिष्पत्त्यर्थं वाय्वादीनामाकाशदेशात्समुत्थानमुत्क्रमाकाङ्क्षाद्वारेण स्फुटयति—कथमित्यादिना । स्वेन स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यन्त इति संबन्धः । तत्र वायोरभ्रस्य विद्युतः स्तनयित्नोश्च स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिप्रकारं विवृणोति—पुरोवातादीति । स्तिमितभावं हित्वा वायुरिति शेषः ॥२॥

दृष्टान्तमनूद्य दार्ष्टान्तिकमाह—यथेति । वाय्वादीनामित्यस्य पुरस्तात्तथेत्यध्याहर्तव्यम् । तत्राऽऽदिशब्देनाभ्रविद्युत्स्तनयित्नवो गृह्यन्ते । आकाशादीत्यादिपदमभ्रमादिकारणसंग्रहार्थम् ।

द्युलोक संबन्धी आकाश देश का निरूपण करती है । ये सब आकाश की समानरूपता को प्राप्त करते हैं, अपने वायु आदि रूप को छोड़कर आकाशमय हो जाते हैं जिस प्रकार यह जीव अविद्या अवस्था में शरीर को आत्मभाव से प्राप्त करता है । वृष्टि आदि प्रयोजन को पूरा करने के लिए वायु आदि जो आकाशात्मा को प्राप्त हो जाते है, द्युलोक संबन्धी इस आकाश प्रदेश से ऊपर उत्क्रमण करते हैं। शिशिर ऋतु के चले जाने पर सूर्य अत्यन्त प्रखर गर्मी को पाकर अर्थात् सूर्य की तपन को पाकर उठते हैं । सूर्य की तपन से पृथग्भाव को प्राप्त हुए वायु शान्त भाव को छोड़ पुरोवातादि रूप से, बादल भी भूमि, पर्वत, हाथी आदि नाना आकृतियों के रूप से, बिजली भी अपने ज्योति, लतादि चञ्चल रूप से, मेघशब्द भी अपने गर्जते हुए बिजली की कौंध के रूप में वर्षा आने पर, अपने-अपने रूप को प्राप्त होते हैं ।। २ ॥

वायु आदि द्वारा आकाश का तादात्म्य प्राप्त करने वाले दृष्टान्त को इस जीवात्मा में भी घटाया जा सकता है; यह जीवात्मा अविद्या के द्वारा संसार को प्राप्त हुआ शरीर से तादात्म्य भाव कर लेता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳ स्मरन्निदꣳ शरीरꣳ स यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः ॥ ३ ॥

सम्बन्धियों के साथ रमण करता, अपने साथ उत्पन्न हुए इस शरीर को स्मरण न करता हुआ सभी ओर घूमता रहता है, जैसे घोड़ा या बैल गाड़ी में जुता रहता है, ठीक वैसे ही यह प्राण भी इस शरीर में जुता हुआ है ॥ ३॥

शरीरसाम्यमापन्नोऽहममुष्य पुत्रो जातो जीर्णो [1]मरिष्य इत्येवंप्रकारं प्रजापतिनेव मघवान्यथोक्तेन क्रमेण नासि त्वं देहेन्द्रियादिधर्मा तत्त्वमसीति प्रतिबोधितः सन्स एष संप्रसादो जीवोऽस्माच्छरीरादाकाशादिव वाय्वादयः समुत्थाय देहादिवैलक्षण्यमात्मनो रूपमवगम्य देहात्मभावनां हित्वेत्येतत् । स्वेन रूपेण सदात्मनैवाभिनिष्पद्यत इति व्याख्यातं [2]पुरस्तात्।

स येन स्वेन रूपेण संप्रसादोऽभिनिष्पद्यते प्राक्प्रतिबोधात्तद्भ्रान्तिनिमित्तात्सर्पो भवति यथा रज्जुः पश्चात्कृतप्रकाशा रज्ज्वात्मना स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते । एवं च स उत्तमपुरुष उत्तमश्चासौ पुरुषश्चेत्युत्तमपुरुषः स एवोत्तमपुरुषो [3]ऽक्षिस्वप्नपुरुषौ व्यक्ताव-

---

शरीरसाम्यमेव विशिनष्टि—अहमिति । प्रतिबोधने दृष्टान्तमाह—प्रजापतिनेति । यथोक्तेन क्रमेण पर्यायचतुष्टयोपदिष्टप्रकारेणेति यावत् । मघवान्प्रतिबोधित इति संबन्धः । दार्ष्टान्तिके प्रतिबोधनप्रकारं दर्शयति—नासीति । शरीराद्विदुषः समुत्थाने दृष्टान्तमाह—आकाशादिवेति । समुत्थानं विभजते—देहादीति । पुनरुक्तिं परिहरति—इति व्याख्यातमिति ।

उत्तरवाक्यस्थं सशब्दं व्याचष्टे—स येनेति । स उत्तमपुरुष इति संबन्धः । संप्रसादस्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पत्तिं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—प्रागित्यादिना । उक्तदृष्टान्तानुसारेणाविद्यादशायां शरीरात्मत्वमापन्नो जीवो विद्यया प्रकाशितब्रह्मसतत्त्वः स्वेन रूपेणाभिनिष्पन्नो भवतीति दार्ष्टान्तिकमाह—एवं चेति । पुरुषस्योत्तमविशेषणं पुरुषान्तरव्यवच्छेदार्थमित्यभिप्रेत्य पुरुषभेदं दर्शयति—अक्षीति । इति

है, उस समय "मैं उसका पुत्र हूँ, मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मैं मर जाऊँगा" इस प्रकार अनुभव करता है। जब इन्द्र को प्रजापति मिलने के समान कोई गुरु मिल जाता है तो वह चारों पर्यायों को क्रम से बतलाते हुए उपदेश करता है कि तुम देह-इन्द्रिय आदि धर्मों से विशिष्ट नहीं हो, तुम तो साक्षात् वही आत्मा हो, इस प्रकार उपदेश को हृदय में अनुशीलन कर यह जीव वायु आदि के आकाश से उत्क्रमण करने के समान इस शरीर से उत्क्रमण कर, देहादि से विलक्षण आत्मा का स्वरूप जानकर शरीर में आत्मभावना का त्याग कर अपने सदात्मा रूप को प्राप्त कर लेता है, इसी का व्याख्यान अष्टम अध्याय तृतीय खण्ड के चतुर्थ मन्त्र में भी किया गया है।

वह जीव जिस प्रकार अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, उसे दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं—

---

१. मरिष्यामीति युक्तम् । २. छा० उ० ८।३।४ । ३. अक्षिस्वप्नपुरुषौ विश्वतैजसौ । व्यक्तौ कार्योपाधी इत्यर्थः । अव्यक्तश्च सुषुप्तः कारणमात्रोपाधिः प्राज्ञ इत्यर्थः ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्यक्तश्च सुषुप्तः समस्तः संप्रसन्नोऽशरीरश्च स्वेन रूपेणेति । एषामेष स्वेन रूपेणावस्थितः क्षराक्षरौ [1]व्याकृताव्याकृतवपेक्ष्योत्तमपुरुषः कृतनिर्वचनो ह्ययं गीतासु स संप्रसादः स्वेन रूपेण तत्र स्वात्मनि स्वस्थतया सर्वात्मभूतः पर्येति क्वचिदिन्द्राद्यात्मना जक्षद्धसन्भक्षयन्वा भक्ष्यानुच्चावचानीप्सितान्क्वचिन्मनोमात्रैः संकल्पादेव समुत्थितैर्ब्राह्मलौकिकैर्वा क्रीडन्स्त्र्यादिभी रममाणश्च मनसैव नोपजनं स्त्रीपुंसयोरन्योन्योपगमेन जायत इत्युपजनमात्मभावेन वाऽऽत्मसामीप्येन जायत इत्युपजनमिदं शरीरं तन्न स्मरन् । तत्स्मरणे हि दुःखमेव स्यात् । दुःखात्मकत्वात्तस्य ।

चत्वारः पुरुषा इति शेषः । तत्र पूर्वेषां त्रयाणां व्यवच्छेद्यत्वं तुरीयस्य तूत्तमपुरुषत्वमित्याह—एषामिति । यथोक्तोत्तमपुरुषे भगवत्संमतिं संगिरते—कृतेति ।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः । यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।"

इति हि स भगवानूचिवान् । स तत्रेत्यादि व्याचष्टे—स संप्रसाद इति । क्वचिदिति स्वर्गलोकोक्तिः । क्वचिन्मनोमात्रैरित्यत्र क्वचिदिति ब्रह्मलोको गृह्यते । नोपजनमिति प्रतीकं गृहीत्वा व्याकरोति—स्त्रीपुंसयोरिति । तन्न स्मरन्पर्येतीति संबन्धः । यथोक्तदेहस्मृतौ काऽनुपपत्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—तत्स्मरणे हीति ।

ज्ञान होने से पूर्व रज्जु में सर्प की भ्रान्ति बनी रहती है, बाद में ज्ञान हो जाने से जब भ्रान्ति निवृत्त हो जाती है तो रज्जु का अपना रूप दीखने लग जाता है, इसी प्रकार वह उत्तम पुरुष विद्या से ब्रह्म तत्त्व को प्रकाशित कर अपने विशुद्ध आत्मरूप से अभिनिष्पन्न हो जाता है । मन्त्र में प्रतिपादित उत्तम पुरुष परमात्मा ही है, नेत्र उपलक्षित पुरुष और स्वप्नात्मा, विश्व और तैजस हैं कार्यरूप उपाधि से युक्त हैं, अव्यक्त सुषुप्त पुरुष कारण मात्र उपाधि से युक्त प्राज्ञ है; इस प्रकार ये चारों पुरुष आत्मा को प्राप्त होते हैं । जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्त इन तीन अवस्थाओं से विशिष्ट चतुर्थ उत्तम पुरुष, क्षर, अक्षर, व्यक्त, अव्यक्त, (कार्य-कारण उपाधि) की अपेक्षा से है, जो अपने रूप में सम्यक् रूप से स्थित है । इसी उत्तम पुरुष के विषय भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में भी कहा है । वह जीव स्व स्वरूप के द्वारा अपनी आत्मा में स्व स्वरूप लाभकर सर्वात्मा होकर विचरण करता है, कभी स्वर्गलोक में इन्द्र के समान हँसता अथवा विभिन्न प्रकार के मनोनुकूल व्यञ्जनों का स्वाद लेता है । कभी ब्रह्मलोक में मन के संकल्प से उद्भूत ब्रह्मलोक निवासियों के साथ क्रीड़ा करता हुआ स्त्री-आदिकों के साथ रमण करता है । ये क्रियाएँ केवल मन से करता है शरीर का स्मरण भी नहीं करता । स्त्री पुरुष जब एक-दूसरे से समागम करते हैं तब यह शरीर उत्पन्न होता है अथवा आत्मभाव से आत्मसन्निकटता के कारण होता है, इसलिए भी इसका नाम शरीर है । उस शरीर का बिना स्मरण किए विचरता रहता है क्योंकि उसके स्मरण से दुःख ही होगा । विचार करने से सिद्ध होता है कि यह शरीर दुःख रूप ही है ।

---

१. क्षराक्षरावित्युक्तमेव स्पष्टयति—व्याकृताव्याकृताविति । व्यक्ताव्यक्तौ—कार्यकारणोपाधी इति यावत् ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नन्वनुभूतं चेन्न स्मरेदसर्वज्ञत्वं मुक्तस्य। नैष दोषः। येन मिथ्याज्ञानादिना जनितं तच्च मिथ्याज्ञानादि विद्ययोच्छेदितमतस्तन्नानुभूतमेवेति न तदस्मरणे सर्वज्ञत्वहानिः। न ह्युन्मत्तेन ग्रहगृहीतेन वा यदनुभूतं तदुन्मादाद्यपगमेऽपि स्मर्तव्यं स्यात्तथेहापि संसारिभिरविद्यादोषवद्भिर्यदनुभूयते तत्सर्वात्मानमशरीरं न स्पृशति। अविद्यानिमित्ताभावात्। ये तूच्छिन्नदोषैर्मृदितकषायैर्मानसाः सत्याः कामा अनृतापिधाना अनुभूयन्ते विद्याभिव्यङ्ग्यत्वात्त एव मुक्तेन सर्वात्मभूतेन संबध्यन्त इत्यात्मज्ञानस्तुतये निर्दिश्यन्तेऽतः साध्वेतद्विशिनष्टि—'य एते ब्रह्मलोक इति। यत्र क्वचन भवन्तोऽपि

विदुषो मुक्तस्यानुभूतदेहास्मरणे दूषणमाशङ्कते—नन्विति। असर्वज्ञत्वदोषं निराकरोति—नैष दोष इति। अनुभूतार्थस्मृतौ हि सर्वज्ञ इति। न च शरीराद्यनुभूतं तस्याविद्याकामकर्मफलस्याज्ञानमात्रत्वात्तस्य च सकार्यस्य ज्ञानोदयमात्रेण नष्टत्वात् प्रागपि शरीरादेरनुभवविपरिवर्तितत्वानुपपत्तेरित्यर्थः। शरीरादि पूर्वं सम्यग्ज्ञानेनाविषयीकृतमपि सद्भ्रान्त्याऽनुभूतमेवेति विदुषामपि स्मर्तव्यमिति चेन्नेत्याह—न हीति। मुक्ते पुरुषे शरीरादयो न संबध्यन्ते चेत्कथं तर्हि तत्र कामाः संबध्येरन्नित्याशङ्क्याऽऽह—ये त्विति। किमिति सर्वैरेते कामा नानुभूयेरन्नित्याशङ्क्याऽऽह—अनृतापिधाना इति। इतश्च विदुषामेव तदभिव्यक्तिरित्याह—विद्येति। किमिति निर्गुणविद्याप्रकरणे विदुषि सत्यकामसंबन्धवचनं तत्राऽऽह—इत्यात्मज्ञानेति। आत्मविद्यास्तुत्यर्थं विदुषि सत्यकामसंबन्धवचनम्। 'मनसैतान्कामान्पश्यन्नित्यत्र विशेषश्रवणमपि युक्तमित्याह—अत इति। इन्द्रियादिषु भवतां कामानां कुतो ब्रह्मलोकभावित्वमित्याशङ्क्याऽऽह—यत्रेति।

इस पर शंका होती है कि यदि पूर्वानुभूत विषयों को स्मरण नहीं कर पाए तो मुक्तात्मा असर्वज्ञ कहलाने लग जाएगा। इसका परिहार करते हुए कहते हैं इसमें कोई दोष नहीं है क्योंकि वह पूर्वानुभूति तो मिथ्याज्ञानादि से उत्पन्न हुआ करती थी जिस मिथ्याज्ञानादि का विद्या से नाश कर दिया गया। अब यदि उन पूर्वानुभूत विषयों का स्मरण न आए तो इस विस्मृति में आत्मा के सर्वज्ञत्व होने में कोई अन्तर नहीं आएगा। किसी पागल अथवा ग्रह से आविष्ट व्यक्ति द्वारा जो कुछ उस अवस्था में अनुभव किया जाता है, पागलपन आदि के चले जाने पर उसे जरा भी वे बातें स्मरण नहीं रहतीं, इसी प्रकार यहाँ भी संसारी जीवों को अविद्या दोष से युक्त जो कुछ अनुभूति होती है वह सर्वात्मा अशरीरी आत्मा का स्पर्श नहीं करती क्योंकि अविद्या के कारण का सर्वथा अभाव है। (जब मुक्त पुरुष को शरीर से संबन्ध समाप्त हो जाता है तो कामनाएँ क्यों होती है इस शंका का परिहार करते हैं—) मल विक्षेप आवरण दोषों के नष्ट हो जाने पर विशुद्ध सत्त्व अन्तःकरण वालों को मानसिक सत्य कामनाएँ अनृत से आच्छादित प्रतीत होती हैं; विद्या से अभिव्यक्त होने के कारण वे ही कामनाएँ मुक्त पुरुष से सर्वात्मभाव से संबन्धित हैं। विद्वानों को कामनाओं का संबन्ध बाधित नहीं करता इसमें आत्मज्ञान की स्तुति अभिलक्षित होती है। इसलिए पाँचवें मन्त्र में इसकी विशिष्टता

---

१. छा० उ० ८।१२।५। २. इत्यभ्युपगतं प्रसिद्धमिति वा शेषः। ३. अनुभूतमिति—मुक्तपुरुषीयसम्यग्ज्ञानविषयीकृतमित्यर्थः। ४. प्रागपीति—ज्ञानोत्पत्तेः पूर्वमित्यर्थः। ५. अनुभवविपरिवर्तितत्वानुपपत्तेरिति—सम्यग्ज्ञानविषयत्वासंभवादित्यर्थः। ६. छा० उ० ८।१२।५।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ब्रह्मण्येव हि ते लोके भवन्तीति सर्वात्मत्वाद्ब्रह्मण उच्यन्ते ।

ननु कथमेकः सन्नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा कामांश्च ब्राह्मलौकिकान्पश्यन्रमत इति च विरुद्धम् । यथैको यस्मिन्नेव क्षणे पश्यति स तस्मिन्नेव क्षणे न पश्यति चेति । नैष दोषः । श्रुत्यन्तरे परिहृतत्वात् । द्रष्टुर्दृष्टेरविपरिलोपात्पश्यन्नेव भवति । द्रष्टुरन्यत्वेन कामानामभावान्न पश्यति चेति । यद्यपि सुषुप्ते तदुक्तं मुक्तस्यापि सर्वैकत्वात्समानो द्वितीयाभावः । केन कं पश्येदिति चोक्तमेव ।

मनसैतान्कामानित्यादिवाक्यं स्तुत्यर्थमपि प्रधानवाक्यविरुद्धत्वात्त्याज्यमिति शङ्कते—नन्विति । वाक्ययोर्मिथो विरोधे दृष्टान्तमाह—यथेति । यद्वैतन्न पश्यति पश्यन्वैतन्न पश्यति न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्न तु तद्द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येदिति बृहदारण्यकश्रुतिमाश्रित्य विरोधं धुनोति—नैष दोष इति । अथ यथोक्तं वाक्यं सुषुप्तमधिकृत्य प्रवृत्तं मुक्तविषयतयोदाहृतमत आह—यद्यपीति । सुप्तस्य मोक्षदृष्टान्तत्वात्तद्गतस्य च दार्ष्टान्तिकेऽनुगमाद्यदुक्तं सुषुप्ते तत्संबन्धो मुक्ते सिध्यतीत्यर्थः । किंच मुक्तमेवाधिकृत्य 'यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूदित्यादि तत्रैवोक्तमित्याह—केनेति ।

प्रतिपादन करना उचित ही है—"जो ये भोग स्वर्ण निधि के समान बाह्य विषयों की आसक्ति रूप अनृत से आच्छादित ब्रह्म लोक में हैं, उन्हें देखता हुआ रमण करता है" ॥ जहाँ कहीं इन्द्रियों में होने पर भी ये कामनाएँ ब्रह्मलोक में भी होती हैं, क्योंकि वह ब्रह्म सर्वात्मक होने से वे काम भी सर्वात्मक हैं ।

(मन से इन कामनाओं को करता है यह आत्मज्ञान की स्तुतिपरक होने से भी प्रधानवाक्य से इसका विरोध है अतः इसे छोड़ देना चाहिए) एक जगह श्रुति कहती है—"वह एक होने पर आत्मा में स्थित मुक्तपुरुष अन्य कुछ नहीं देखता, अन्य कुछ श्रवण नहीं करता अन्य कुछ नहीं जानता", इस श्रुति का 'वह भूमा ब्रह्मलोक की कामनाओं को देखता है, उनमें रमण करता है" इस श्रुति से विरोध होने लगेगा । एक ही समय में एक व्यक्ति किसी क्रिया का विधि-निषेध दोनों नहीं कर सकता, जिस क्षण में कोई देखता है उसी क्षण में वह नहीं भी देखता ऐसा कहना नहीं बनता । बृहदारण्यक श्रुति का स्मरण करते हुए कहते हैं इस विरोध में भी कोई दोष नहीं है क्योंकि बृहदारण्यकश्रुति में इसका समुचित समाधान दिया है । "वह जो सुषुप्ति में नहीं देखता है, निःसन्देह उस अवस्था में देखता हुआ ही नहीं देखता है क्योंकि द्रष्टा की दृष्टि का कभी लोप नहीं होता । वह तो अविनाशी है । उस अवस्था में उससे भिन्न कोई अन्य वस्तु नहीं रह जाती जिसे कि वह देखे" । द्रष्टा से भिन्न कामनाओं का अभाव हो जाने पर वह नहीं भी देखता । यद्यपि उपरोक्त श्रुतिवाक्य सुषुप्ति अवस्था के संबन्ध में है तो भी मुक्तपुरुष के विषय में कोई भेद न होने के कारण समान रूप से सत्य समझना चाहिए क्योंकि वह आत्मा सर्वत्र एक ही है । बृहदारण्यक श्रुति में ही कहा है—"जहाँ इस विद्वान् की दृष्टि में सब आत्मा ही हो गया, वहाँ पर किससे किसको देखे, किससे किसको सूँघे, किससे किसको चखे, किससे किसको कहे, किससे किसको सुने, किससे किसका मनन करे, किससे किसको छूए और किससे किसको जाने । पुरुष जिससे सबको जानता है भला उसे किसके द्वारा जाने" !

१. बृ० उ० ४।५।१५ ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अशरीरस्वरूपोऽपहतपाप्मादिलक्षणः सन्कथमेष पुरुषोऽक्षिणि दृश्यत इत्युक्तः प्रजापतिना। तत्र तथाऽसावक्षिणि साक्षाद्दृश्यते तद्वक्तव्यमितीदमारभ्यते। तत्र को हेतुरक्षिणि दर्शन इत्याह—स दृष्टान्तो यथा प्रयोग्यः प्रयोग्यपरो वा सशब्दः। प्रयुज्यत इति प्रयोग्योऽश्वो बलीवर्दो वा। यथा लोक आचरत्यनेनेत्याचरणो रथोऽनो वा तस्मिन्नाचरणे युक्तस्तदाकर्षणाय, एवमस्मिञ्छरीरे रथस्थानीये प्राणः पञ्चवृत्तिरिन्द्रिय-मनोबुद्धिसंयुक्तः प्रज्ञात्मा विज्ञानक्रियाशक्तिद्वयसंमूर्छितात्मा युक्तः स्वकर्मफलोपभोग-निमित्तं नियुक्तः। कस्मिन्न्वहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते

फलार्थवादस्याक्षिवाक्यस्य च मिथो विरोधं शङ्कते—अशरीरेति। दृश्यत इत्यस्य पदस्य चाक्षुष-दर्शने रूढत्वादशरीरस्य तदयोग्यत्वादशरीरात्मोक्तिर्दृश्यत इतिश्रुतिविरुद्धेत्यर्थः। आत्मत्वादि-ब्रह्मविषयानेकश्रुतिलिङ्गविरोधाद्दृश्यत इत्येकस्याः श्रुतेर्ज्ञानमात्रविषयनिरोधोऽस्तीत्यभिप्रेत्यानन्तर-वाक्यमुत्थापयति—तत्रेति। चाक्षुषदर्शनाविषयत्वे सति चक्षुषि दर्शने को हेतुरित्यपेक्षायां लिङ्गहेतुकं तावद्दर्शनं संभवतीति मत्वा दृष्टान्तमाह श्रुतिः। स दृष्टान्तो यथा भवति तथोच्यत इत्याह—तत्रेति। तमेव दृष्टान्तमनूद्य व्याचष्टे—यथेत्यादिना। अध्याहारराहित्यसिद्ध्यर्थं पक्षान्तरमाह—प्रयोग्येति। एवमित्यनेन द्वितीयो यथाशब्दः संबध्यते। शरीरस्य रथस्थानीयत्वं शरीरं रथमेव त्विति श्रुत्यन्तरा-न्मन्तव्यम्। अस्मिन्युक्तः स रथस्थानीय ईश्वरेण स्वकर्मफलोपभोगनिमित्तं प्राणो रथित्वेन नियुक्त इति संबन्धः। प्राणप्राणं व्यावर्तयति—पञ्चवृत्तिरिति।

"बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। इन्द्रियाणि हयानाहुः"

इतिश्रुत्यन्तरमाश्रित्याऽऽह—इन्द्रियेति। आत्मानं रथिनं विद्धीतिश्रुतिविरुद्धं प्राणस्य रथि-त्वमित्याशङ्क्य तस्योपाधेस्तदभेदाङ्गीकारान्मैवमित्याह—प्रज्ञात्मेति। तस्याध्यात्मसंतानद्वयविशिष्ट-त्वेन स्फुरितं स्वरूपं दर्शयति—विज्ञानेति। ईश्वरस्य यथोक्तप्राणोपाधिद्वारा भोक्तृत्वादिसंसारित्व-मित्यत्र श्रुत्यन्तरं प्रमाणयति—कस्मिन्निति। प्रतिष्ठास्यामीतीक्षित्वा स प्राणमसृजतेत्यादिश्रुतेरिति

प्रजापति ने फलार्थवाद के रूप में इन्द्र-विरोचन को कहा था—यह आत्मा धर्माधर्मादि पाप से रहित है, अशरीरी है। फिर "जो नेत्र से उपलक्षित पुरुष है" ऐसा क्यों उपदेश किया। जिस प्रकार वहाँ आँख के भीतर वह साक्षात् दिखाई देता है, उसी प्रकार कहना चाहिए, इसी को श्रुति स्वयं प्रस्तुत करती है। आँख में दर्शन होने का क्या प्रयोजन है इसे दृष्टान्त द्वारा प्रतिपादन करते हैं। मन्त्र में 'प्रयोग्य' शब्द जुते हुए अथवा सशब्द के अर्थ में है। क्योंकि अश्व और बैल रथ में जोते जाने से प्रयोग्य हैं। जिस प्रकार लोक व्यवहार अश्व अथवा बैल को रथ अथवा गाड़ी में जोता जाता है, वे उसको खींचते हैं इसी प्रकार इस रथस्थानीय शरीर में पाँच वृत्तियों वाला प्राण इन्द्रिय मन बुद्धि से युक्त प्रज्ञात्मा है। वह प्राण (ईश्वर) विज्ञान और क्रिया शक्तियों से स्फुरित कर अपने-अपने कर्मों के फलों को भोगने के लिए नियुक्त है। प्रश्नोपनिषद् में आता है—"उस षोडशकल पुरुष ने विचार किया

---

१. अनः शकटम्। २. य आत्माऽपहतपाप्मेत्यादिप्रजापतिवचनरूपः फलार्थवादः। ३. ज्ञानमात्रेति—ज्ञानसामान्यविषयो निरोधः ज्ञानसामान्यविषयत्वेन संकोच इति यावत्। सङ्कोचश्चात्र विशिष्टपरस्य विशेष्य-मात्रपरत्वकरणाभिप्रायेणेत्यवधेयम्। ४. अनुमानम्। ५. तस्योपाधेरिति—यस्तदुपाधिः स तदभिन्न इति नियमाभ्युपगमादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यत्रैदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माऽभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदꣳ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

जिस जाग्रदवस्था में चक्षु द्वारा उपलक्षित आकाश देहस्थ छिद्र से अनुगत है, वह चाक्षुष पुरुष है, रूप ग्रहण के लिए उसे नेत्र है। 'मैं इसे सूंघूं' ऐसा जो जानता है वह आत्मा है। गन्ध ग्रहण के लिए उसे नाक है। 'मैं यह शब्द बोलूं' ऐसा जो समझता है वही आत्मा है, शब्द उच्चारण के लिए उसे वाणी है। 'मैं सुनूं'—ऐसा जो जानता है वह आत्मा है, श्रवण करने के लिए उसे श्रोत्र है ॥ ४ ॥

प्रतिष्ठास्यामीति। ईश्वरेण राज्ञेव सर्वाधिकारी दर्शनश्रवणचेष्टाव्यापारेऽधिकृतः। तस्यैव तु मात्रैकदेशश्चक्षुरिन्द्रियं रूपोपलब्धिद्वारभूतम् ॥ ३ ॥

अथ यत्र कृष्णतारोपलक्षितमाकाशं देहच्छिद्रमनुविषण्णमनुषक्तमनुगतं तत्र स प्रकृतोऽशरीर आत्मा चाक्षुषश्चक्षुषि भव इति चाक्षुषस्तस्य दर्शनाय रूपोपलब्धये चक्षुः

श्लेषः। तथाच यथा राज्ञा सर्वाधिकारित्वेन सेनाध्यक्षः संधिविग्रहादौ नियुज्यते तथेश्वरेण सर्वचेष्टा-न्तराधिकृतः स्वकीयदर्शनादिव्यापारनिमित्तं नियुक्तो भवतीत्याह—राज्ञेति। प्राणः स्वविलक्षणेन चेतनेन नियुज्यते प्रयोज्यत्वादश्वादिवदित्यनुमानाद्देहसंहतात्प्राणादतिरिक्तोऽसंहतश्चेतनः सिध्यतीति समुदायार्थः। चक्षुरादिचेष्टा चेतननिमित्ता चेष्टात्वाद्रथादिचेष्टावदित्यनुमानान्तरं सूचयति—तस्यैवेति। प्रकृतप्राणविषयस्तच्छब्दः। मात्रेत्येतस्य व्याख्यानमेकदेश इति। प्राणसंवादे चक्षुरादीनां प्राणपारतन्त्र्यप्रतीतेस्तदेकदेशत्वं तेषामिति द्रष्टव्यम् ॥३॥

शरीराद्व्यतिरिक्तमात्मानं संभाव्य तस्यौपाधिकं द्रष्टृत्वमाचष्टे—अथेति। अतिरिक्तात्म-संभावनानन्तर्यमथशब्दार्थः। यत्र तत्रेतिसप्तमीभ्यां संसारदशोच्यते। अनुगतं चक्षुरिति संबन्धः। दर्श-

---

कि किस विशेष कर्ता के उत्क्रमण करने पर में भी शरीर से उत्क्रमण कर जाऊँगा, वैसे ही शरीर में किसके स्थित रहने पर मैं भी स्थित रहूँगा। जिस प्रकार राजा सेनाध्यक्ष को सब अधिकार देकर संधि-विग्रह आदि के लिए नियुक्त करता है, उसी प्रकार ईश्वर ने दर्शन, श्रवण, चेष्टा व्यापार के लिए प्राण को नियुक्त किया है। प्राण अपने से विलक्षण चेतन द्वारा नियुक्त किया जाता है। प्राण के अधीन ही चक्षु इन्द्रिय है जो रूप के ज्ञान कराने में द्वारभूत है ॥ ३ ॥

शरीरादि से पृथक् आत्मा की कल्पना कर उसके औपाधिक द्रष्टृत्व का व्याख्यान आरम्भ करते हैं। जहाँ संसार दशा में आँख की काली पुतली से उपलक्षित आकाश शरीर के छिद्र में अनुगत है, उस अवस्था में वह चक्षु में रहने वाला प्रकरणस्थ चाक्षुष अशरीरी आत्मा है, उसे रूप का ज्ञान कराने के लिए चक्षु इन्द्रिय प्राप्त है। (जो संयुक्त होता है वह अपने से विलक्षण अवशिष्ट रहते दिखाई देता है जैसे शयन-आसनादि) वह चक्षु भी देहादि से संपृक्त रहने के कारण जिसं विलक्षण पर द्रष्टा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

करणं यस्य तद्देहादिभिः संहतत्वात्परस्य द्रष्टुरर्थे सोऽत्र चक्षुषि दर्शनेन लिङ्गेन दृश्यते परोऽशरीरोऽसंहतः। अक्षिणि दृश्यत इति प्रजापतिनोक्तं सर्वेन्द्रियद्वारोपलक्षणार्थम्। सर्वविषयोपलब्धा हि स एवेति। स्फुटोपलब्धिहेतुत्वात्त्वक्षिणीति विशेषवचनं सर्वश्रुतिषु। अहमदर्शमिति तत्सत्यं भवतीति च श्रुतेः। अथापि योऽस्मिन्देहे वेद कथमिदं सुगन्धि दुर्गन्धि वा जिघ्राणीत्यस्य गन्धं विजानीयामिति स आत्मा तस्य गन्धाय गन्धविज्ञानाय घ्राणम्। अथ यो वेदेदं वचनमभिव्याहराणीति वदिष्यामीति स आत्माऽभिव्याहरणक्रियासिद्धये करणं वागिन्द्रियम्। अथ यो वेदेदं शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम् ॥ ४ ॥

नाय चक्षुरित्यस्यार्थं समर्थयते—यस्येति। यस्य परस्य द्रष्टुरर्थे करणं चक्षुरिष्टं स परश्चक्षुषि लिङ्गेन दृश्यत इति संबन्धः। पारार्थ्ये चक्षुषो हेतुमाह—देहादिभिरिति। यत्संहतं तत्स्वविलक्षणशेषं दृष्टं यथा शयनासनादि तथा तदपि चक्षुर्देहादिभिः संहतत्वाद्यस्य विलक्षणस्य शेषभूतं सोऽत्र दर्शनेन लिङ्गेन दृश्यते। [1]विमतं साश्रयं धर्मत्वाद्रूपादिवदित्यनुमानादित्यर्थः। दृश्यत इत्यस्याविरुद्धार्थमुक्त्वाऽक्षिणीत्यस्य विवक्षितमर्थमाह—अक्षिणीति। यथाऽक्षिद्वारा रूपोपलब्धा परस्तथा तत्तदिन्द्रियद्वारा तत्तद्विषयोपलब्धा पर एवेति कृत्वा युक्तमिदमुपलक्षणमिति साधयति—सर्वविषयेति। सर्वेन्द्रियैरुपलब्धृत्व[2]विशिष्टं चेत्कथं तर्हि सर्वास्वपि श्रुतिषु चक्षुष्येवात्मोपदिश्यते तत्राऽऽह—स्फुटेति। चक्षुषः स्फुटोपलब्धौ हेतुत्वे श्रुतिं संवादयति—अहमिति। यत्रादर्शमिति चाक्षुषः प्रत्ययस्तद्वस्तु सत्यं स्फुटोपलम्भादिति द्वयोर्विवदमानयोर्दृष्टमित्यर्थः। य एषोऽक्षिणीत्यत्र सर्वेन्द्रियद्वारोपलब्धा विवक्षित इत्युक्तं व्यक्तीकरोति—अथापीति। चक्षुषि स्फुटोपलम्भेऽपीति यावत्। योऽस्मिन्देहे येन केनापीन्द्रियेण यं कंचिद्विषयं वेद स आत्मेति संबन्धः। उक्तमेवार्थमाकाङ्क्षाद्वारा स्फोरयति—कथमित्यादिना। जिघ्राणीति यो वेदेत्युक्तमेव संक्षिपति—अस्येति ॥४॥

शेषभूत है, वह यहाँ चक्षु में दर्शन लिङ्ग के द्वारा देखा जाता है, वह परमात्मा तो अशरीरी और देहादि से पृथक् है। प्रजापति ने उपदेश दिया था—"यह जो पुरुष नेत्र में दीखता है" वह सब इन्द्रियों के द्वारों के लिए उपलक्षण मात्र है। जिस प्रकार आँख के द्वारा वह परमात्मा रूप का अनुभव करता है, इसी प्रकार अन्य-अन्य इन्द्रियों द्वारा उन-उन इन्द्रियों के विषयों का सेवन करता है। उपलब्धि में स्पष्ट हेतु होने के कारण सब श्रुतियों में चक्षु के लिए विशेष स्थान है। परस्पर दो में विवाद होने पर जहाँ मैंने देखा है ऐसा चाक्षुष प्रत्यय हो उसे ही स्पष्ट उपलब्धि होने के कारण सत्य कहते हैं, ऐसी श्रुति भी है। चक्षु के स्पष्ट उपलब्धि वाली इन्द्रिय होने पर भी इस देह में जिस किसी भी इन्द्रिय के द्वारा जिस किसी विषय को जो जानता है, वह आत्मा है। जैसे कोई सोचे "कैसे इस सुगन्धि या दुर्गन्धि को सूँघूँ, कैसे इस गन्ध को जानूँ" ऐसा जो जानता है, वह आत्मा है। इस गन्ध का विज्ञान कराने के लिए नासिका इन्द्रिय है। इसी प्रकार जो यह जानता है कि "मैं यह शब्द बोलूँगा" वह आत्मा है। बोलने की क्रिया की निष्पत्ति के लिए वाक् इन्द्रिय है। "मैं श्रवण करूँ" ऐसा जो जानता है वह आत्मा है। श्रवण क्रिया सम्पादित करने के लिए श्रोत्र इन्द्रिय है ॥ ४ ॥

---

१. विमतं दर्शनमित्यर्थः। २. अस्योपलब्धृत्वमित्यन्वयः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते य एते ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

और जो यह जानता है कि बाह्य इन्द्रियों के बिना ही 'मैं मन से मनन करूँ' वह आत्मा है मन तो उसका दिव्य नेत्र है, वही यह आत्मा इस दिव्यचक्षु से भोगों को देखता हुआ रमण करता है जो ये भोग (स्वर्ण निधि के समान बाह्य विषयों की आसक्तिरूप अनृत से) ब्रह्मलोक में आच्छादित हैं, उन्हें देखता हुआ रमण करता है ॥ ५ ॥

अथ यो वेदेदं मन्वानीति मननव्यापारमिन्द्रियासंस्पृष्टं मन्वानीति वेद स आत्मा मननाय मनः। यो वेद स आत्मेत्येवं सर्वत्र प्रयोगाद्वेदनमस्य स्वरूपमित्यवगम्यते। यथा यः पुरस्तात्प्रकाशयति स आदित्यो यो दक्षिणतो यः पश्चाद्य उत्तरतो य ऊर्ध्वं प्रकाशयति स आदित्य इत्युक्ते प्रकाशस्वरूपः स इति गम्यते। दर्शनादिक्रियानिर्वृत्त्यर्थानि तु चक्षुरादिकरणानि। इदं चास्याऽऽत्मनः सामर्थ्यादवगम्यते। आत्मनः

इन्द्रियैर्घ्राणादिभिरसंस्पृष्टं तत्तद्द्वारेणानिष्पन्नमिति यावत्। केवलं मनोमात्रजनितमित्येतन्मन्वानि संपादयानीत्यर्थः। यो वेदेत्यत्र प्रत्ययार्थभूतं कर्तृत्वं 'सापेक्षत्वान्मिथ्या प्रकृत्यर्थं (र्थं) रूपं तु संविन्मात्रमनपेक्षतया सत्यमात्मस्वरूपमित्याह—यो वेदेति। आत्मा संवेदनस्वभावश्चेत्तत्संसर्गादेव विषयसिद्धिसंभवाच्चक्षुरादिवैयर्थ्यं स्यादित्याशङ्क्याऽऽह—दर्शनादीति। अन्तःकरणवृत्तिर्दर्शनादिक्रिया। सा चाऽऽत्मनः संविदेकरसस्यासङ्गोदासीनस्य विषयसंसर्गभ्रमहेतुस्तन्निष्पत्त्यर्थानि चक्षुरादीनि भवन्ति सार्थकानीत्यर्थः। तेषामुक्तरीत्या सार्थकत्वे गमकमाह—इदं चेति। करणानामुक्तं सार्थकत्वं प्रकृतस्य संविन्मात्रस्यासङ्गत्वादेव स्वतो विषयसंबन्धानुपपत्त्या तत्संबन्धभ्रान्तिकारणान्तःकरणवृत्तिविशेषापेक्षया निर्धारितमित्यर्थः। आत्मनः संविन्मात्रस्वभावत्वे कथं कर्तृत्वव्यपदेश इत्याशङ्क्याऽऽह—आत्मन इति। य एषोऽक्षिणीत्यादि वाक्यं प्रपञ्चितं संप्रति स तत्रेत्यादि फलवाक्यं प्रपञ्च-

---

तथा जो यह जानता है कि घ्राणादि इन्द्रियों के सहयोग के बिना ही केवल मन से ही मनन व्यापार करूँ, वह आत्मा है मनन करने के लिए मन इन्द्रिय है। "जो जानता है, वह आत्मा है" इसका सर्वत्र प्रयोग होने से 'जानना' इसका स्वरूप ही है, यह सिद्ध होता है। जिस प्रकार जो पूर्व में प्रकाश करता है, वह सूर्य है; जो दक्षिण, पश्चिम, उत्तर एवं ऊपर प्रकाश करता है वह सूर्य है, ऐसे कहने से सूर्य की प्रकाशस्वरूपता सिद्ध होती है। यदि कोई शंका करे कि आत्मा का संवेदनशील होना स्वभाव ही है, उसके संसर्ग होने पर विषय बोध हो जाएगा फिर चक्षु आदि इन्द्रियों की क्या आवश्यकता है, इसका परिहार करते हुए कहते हैं। दर्शनादि क्रिया अन्तःकरण की वृत्ति है; संवित्स्वरूप, एकरस, असङ्ग व उदासीन आत्मा में भ्रम न हो अतः दर्शनादि क्रिया की निष्पत्ति के लिए चक्षु आदि इन्द्रियाँ हैं। उनकी सार्थकता आत्मा के सामर्थ्य के कारण होती है। यदि आत्मा का स्वरूप संवित् मात्र है तो उसमें कर्तापन कैसे कह सकते हो? इसका परिहार करते हुए कहते हैं—

---

१. करणोपाधिकत्वात्। २. छा० उ० ८।१२।३।

RajGuru.Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाᳫ

उस आत्मा की उपासना देवता करते हैं। इसी से उन देवों को सम्पूर्ण लोक और सम्पूर्ण

सत्तामात्र एव ज्ञानकर्तृत्वं न तु व्यापृततया। यथा सवितुः सत्तामात्र एव प्रकाशनकर्तृत्वं न तु व्यापृततयेति तद्वत्। मनोऽस्याऽऽत्मनो दैवमप्राकृतमितरेन्द्रियैरसाधारणं चक्षुश्चष्टे पश्यत्यनेनेति चक्षुः। वर्तमानकालविषयाणि चेन्द्रियाण्यतोऽदैवानि तानि। मनस्तु त्रिकालविषयोपलब्धिकरणं मृदितदोषं च सूक्ष्मव्यवहितादिसर्वोपलब्धिकरणं चेति दैवं चक्षुरुच्यते। स वै मुक्तः स्वरूपापन्नोऽविद्याकृतदेहेन्द्रियमनोवियुक्तः सर्वात्मभावमापन्नः सन्नेष व्योमवद्विशुद्धः सर्वेश्वरमनउपाधिः सन्नेतेनैवेश्वरेण मनसैतान्कामान्सवितृप्रकाशवन्नित्यप्रततेन दर्शनेन पश्यन्रमते। कान्कामानिति विशिनष्टि—य एते ब्रह्मणि लोके हिरण्यनिधिवद्बाह्यविषयासङ्गानृतेनापिहिताः संकल्पमात्रलभ्यास्तानित्यर्थः॥ ५॥

यस्मादेष इन्द्राय प्रजापतिनोक्त आत्मा तस्मात्ततः श्रुत्वा तमात्मानमद्यत्वेऽपि

यितुमिन्द्रियान्तरेभ्यो मनसो वैलक्षण्यं दर्शयति—मनोऽस्येति। तस्य चक्षुष्ट्वेऽपि कुतो दैवत्वमित्याशङ्क्याऽऽह—वर्तमानेति। आगन्तुकदोषराहित्यं मृदितदोषत्वम्। सर्वेश्वरो व्यज्यते यस्मिन्विशुद्धे मनसि तन्मनः सर्वेश्वरं तदुपाधिरस्येति तथोक्तः। ईश्वरेण तदभिव्यञ्जकेनेत्येतत्। अविद्यादिप्रतिबन्धकस्याभावान्मनसा नित्यं प्रततं दर्शनं नित्याभिव्यक्तस्वरूपं चैतन्यं तेन पश्यन्निति योजना॥५॥

तं वा एतमित्यादि व्याचष्टे—यस्मादिति। पदार्थमुक्त्वा वाक्यार्थमाह—यदर्थं हीति।[१] स

आत्मा में ज्ञान कर्तृत्व सत्ता मात्र होने पर ही हैं, कर्म में संसक्त रहते हुए नहीं। जैसे, सूर्य की स्थिति मात्र से ही प्रकाश होता है, इसके लिए उसे विशेष परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इस आत्मा का मन अन्य इन्द्रियों से विलक्षण दिव्य है, इसी के द्वारा चक्षु में देखने की सामर्थ्य आती है। किन्तु वर्तमानकालीन विषयों और इन्द्रियों को तो दिव्य नहीं कहेंगे। मन को आत्मा का दिव्य नेत्र कहा जाता है क्योंकि यह तीनों कालों में विषयों की उपलब्धि का द्वार है, आगन्तुक दोष से रहित है, सूक्ष्म एवं स्थूल सभी उपलब्धियों का साधन है। वह आत्मा स्वस्वरूप में स्थित मुक्त है अविद्याकृत देह, इन्द्रिय और मन से पृथक् है सर्वात्मभाव को नित्य प्राप्त है आकाश की तरह विशुद्ध है, मन से उस सर्वेश्वर की अभिव्यक्ति होती है तदभिव्यञ्जक ईश्वर के द्वारा सूर्य के प्रकाश की तरह मन से नित्य अभिव्यक्त स्वरूप चैतन्य के दिव्य चक्षु के द्वारा भोगों को देखता हुआ रमण करता है। किन भोगों में रमण करता है, इसे बतलाते हैं—ब्रह्मलोक में जो ये स्वर्णिम भोग बाह्य विषयों की आसक्ति रूप अनृत से आच्छादित संकल्प मात्र से प्राप्त होने वाले हैं॥ ५॥

प्रजापति ने इन्द्र को इस आत्मा का उपदेश दिया, इन्द्र से उस आत्मज्ञान को देवताओं ने सुना, यही कारण है कि आज तक भी देवता को उस आत्मा की उपासना से सब लोकों एवं सब

---

१. सति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वांꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वांꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

भोग प्राप्त हैं। जो कोई उस आत्मा को शास्त्र तथा आचार्य के उपदेश द्वारा जानकर साक्षात् अनुभव करता है, वह सम्पूर्ण लोक और समग्र भोगों को प्राप्त कर लेता है--ऐसा प्रजापति ने कहा। द्विरुक्ति प्रकरण समाप्ति के लिए है ॥ ६ ॥

॥ इति द्वादशः खण्डः ॥

देवा उपासते। तदुपासनाच्च तेषां सर्वे च लोका आत्ताः प्राप्ताः सर्वे च कामाः। यदर्थं हीन्द्र एकशतं वर्षाणि प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तत्फलं प्राप्तं देवैरित्यभिप्रायः। तद्युक्तं देवानां महाभाग्यत्वान्न त्विदानीं मनुष्याणामल्पजीवितत्वान्मन्दतरप्रज्ञत्वाच्च संभवतीति प्राप्त इदमुच्यते—स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानिदानींतनोऽपि। कोऽसौ। इन्द्रादिवद्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह सामान्येन किल प्रजापतिरुवाच। अतः सर्वेषामात्मज्ञानं तत्फलप्राप्तिश्च तुल्यैव भवतीत्यर्थः। द्विर्वचनं प्रकरणसमाप्त्यर्थम् ॥ ६ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

सर्वांश्चेत्यादिवाक्यमाशङ्कोत्तरत्वेनोत्थाप्य व्याचष्टे—तद्युक्तमित्यादिना। यथोक्तं फलं तच्छब्दार्थः। प्रकरणं निर्विशेषब्रह्मात्मैकत्वज्ञानविषयं दहरविद्याप्रकरणे 'उपास्यस्तुत्यर्थं प्रसङ्गादुक्तं तत्परिसमाप्त्यर्थम् ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वादशः खण्डः ॥१२॥

कामनाओं की प्राप्ति होती है। भावाशय यह है कि जिस प्रयोजन से इन्द्र ने एक सौ एक वर्ष तक प्रजापति के यहाँ ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर वास किया, उस आत्मज्ञान रूप फल को देवताओं ने प्राप्त किया। देवता तो महान् ऐश्वर्यशाली होते हैं उनके लिए यह सुलभ है किन्तु आजकल के मनुष्य जिनकी जीवनरेखा छोटी-सी है, मन्दतर बुद्धि हैं उन्हें यह फल मिलना संभव नहीं है, इस पर कहा जाता है—आज भी वह (आत्मज्ञानी) सब लोकों और सब कामनाओं को प्राप्त करता है। किसे यह महिमा प्राप्त होती है जो इन्द्रादि की तरह उस आत्मा को शास्त्र एवं आचार्य के उपदेश के द्वारा साक्षात् अनुभव करता है—ऐसा प्रजापति ने सर्वसाधारण के लिए कहा है। अतः सभी को आत्मज्ञान समान रूप से ही होता है एवं सब लोकों एवं कामनाओं की प्राप्ति भी होती है। मन्त्र में "प्रजापतिरुवाच" इसकी द्विरुक्ति निर्विशेष ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान विषयक प्रकरण की समाप्ति के लिए है ॥ ६ ॥

---

१. उपास्यस्तुत्यर्थं प्रसङ्गादुक्तमिति—उपास्यस्तुत्यर्थं तावद् "अथ य एष संप्रसाद इत्याद्युक्तम् (छा० उ० ८।२।४) तत्प्रसङ्गात् तत्र कोऽसौ संप्रसादः (छा० उ० ८।७।१) इत्यादि भाष्यप्रदर्शितप्रसङ्गादित्यर्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।)

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामी-त्यभिसंभवामीति ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

'श्यामाच्छबलम्' इत्यादि मन्त्र का जप के लिए उपदेश

(अत्यन्त दुर्गम होने के कारण हृदय में स्थित) श्याम ब्रह्म से मैं शबल ब्रह्म को प्राप्त होऊँ, तथा शबल से श्याम को प्राप्त होऊँ। जैसे घोड़ा शरीर को हिलाकर अपने रोओं को झाड़ कर शुद्ध हो जाता है, वैसे ही हार्द ब्रह्म के ज्ञान से मैं धर्माधमरूप पापों को झाड़ कर तथा राहु के मुख से छूटे हुए चन्द्र के समान (सम्पूर्ण अनर्थ के आश्रय भूत) शरीर को त्यागकर कृतार्थ हो नित्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ। ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ ॥ १ ॥

॥ इति त्रयोदशः खण्डः ॥

श्यामाच्छबलं प्रपद्य इत्यादिमन्त्राम्नायः पावनो जपार्थश्च ध्यानार्थो वा। श्यामो गम्भीरो वर्णः श्याम इव श्यामो हार्दं ब्रह्मात्यन्तदुरवगाह्यत्वात्तद्धार्दं ब्रह्म ज्ञात्वा ध्यानेन तस्माच्छ्यामाच्छबलं शबल इव शबलोऽरण्याद्यनेककाममिश्रत्वाद्ब्रह्मलोकस्य शाबल्यं तं ब्रह्मलोकं शबलं प्रपद्ये मनसा शरीरपाताद्वोर्ध्वं गच्छेयम्। यस्मादहं शबलाद्ब्रह्मलोकान्नामरूपव्याकरणाय श्यामं प्रपद्ये हार्दभावं प्रपन्नोऽस्मीत्यभिप्रायः।

प्रकृताया दहरविद्यायाः शेषभूतजपविधानार्थमारभते—श्यामादिति। अत्यन्तदुरवगाह्यत्वा-द्ध्यानहीनानामिति शेषः। कथं जीवतो ब्रह्मलोकप्राप्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—मनसेति। न तर्हि मुख्या तत्प्राप्तिरित्याशङ्क्याऽऽह—शरीरेति। विपरीतपाठं हेतुत्वेन व्याचष्टे—यस्मादिति। हेतुः प्रतिज्ञया

"मैं श्याम ब्रह्म से शबल ब्रह्म को प्राप्त होऊँ" इत्यादि मन्त्र दहरविद्या के जपविधान के लिए है। इसका जप अथवा ध्यान पुण्य का देने वाला है। श्याम वर्ण गम्भीरता का द्योतक है, हृदयस्थ ब्रह्म श्याम वर्ण के समान गम्भीर है क्योंकि ध्यान न करने वालों के लिए वह प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। उस हृदयस्थ ब्रह्म को ध्यान द्वारा जानकर श्याम वर्ण से रंग-बिरंगे ब्रह्मलोक को प्राप्त करूँ। अरण्यवासादि अनेक कामनाओं से युक्त होने के कारण चितकबरे रंग के समान ब्रह्मलोक की शबलता है, उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति केवल मन से, वह भी शरीर छूटने के बाद करूँ। (विपरीत पाठ का हेतु प्रतिपादन करते हैं—) उस शबल (रंग-बिरंगे) ब्रह्मलोक से नाम-रूप से व्याकृति के लिए श्याम ब्रह्म को प्राप्त करूँ अर्थात् हृदयस्थ ब्रह्म को प्राप्त करूँ। हेतु की प्रतिज्ञावाक्य से संगति मिलाते हैं—अतः उसी प्रकृति स्वरूप आत्मा की शबलरूपता को प्राप्त करूँ। शबल ब्रह्मलोक को कैसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः)

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतꣳ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म

आकाश नामक ब्रह्म का उपदेश

आकाश नामक प्रसिद्ध आत्मा नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है। वे नाम रूप जिसके मध्य में वर्तमान हैं, वह ब्रह्म है, वह अमृत है, वही आत्मा है। मैं प्रजापति के (प्रभु निर्मित नामक)

अतस्तमेव प्रकृतिस्वरूपमात्मानं शबलं प्रपद्य इत्यर्थः। कथं शबलं ब्रह्मलोकं प्रपद्य इत्युच्यते—अश्व इव स्वानि लोमानि विधूय कम्पनेन श्रमं पांस्वादि च रोमतोऽपनीय यथा निर्मलो भवत्येवं हार्दब्रह्मज्ञानेन विधूय पापं धर्माधर्माख्यं चन्द्र इव च राहुग्रस्तस्तस्माद्राहोर्मुखात्प्रमुच्य भास्वरो भवति यथैवं धूत्वा प्रहाय शरीरं सर्वानर्थाश्रयमिहैव ध्यानेन कृतात्मा कृतकृत्यः सन्नकृतं नित्यं ब्रह्मलोकमभिसंभवामीति। द्विर्वचनं मन्त्रसमाप्त्यर्थम् ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

आकाशो वा इत्यादि ब्रह्मणो लक्षणनिर्देशार्थमाध्यानाय आकाशो वै नाम श्रुतिषु प्रसिद्ध आत्मा। आकाश इवाशरीरत्वात्सूक्ष्मत्वाच्च। स चाऽऽकाशो नामरूपयोः स्वात्मस्थयोर्जगद्बीजभूतयोः सलिलस्येव फेनस्थानीययोर्निर्वहिता निर्वोढा व्याकर्ता। ते

योज्यते—अत इति। दृष्टान्तमाकाङ्क्षापूर्वकमवतार्य व्याचष्टे—कथमित्यादिना। शरीरस्य त्याज्यत्वे हेतुमाह—सर्वानर्थेति। इतिशब्दो ध्यानसमाप्त्यर्थः ॥१॥

इत्यष्टमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ॥१३॥

दहरोऽस्मिन्नन्तराकाश इति य आकाश उक्तस्तल्लक्षणार्थमुत्तरं वाक्यमित्याह—आकाश इति। लक्षणनिर्देशस्य प्रकृतोपयोगं दर्शयति—आध्यानायेति। 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्ति। आकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानित्याद्याः श्रुतयः[1]। आकाशशब्देनाऽऽत्मनः श्रुतिषु प्रसिद्धत्वे हेतुमाह—आकाश इवेति। ते यदन्तरेत्यत्र ते इति पदं प्रथमाद्विवचनान्तं

प्राप्त करूँ, इसे श्रुति स्वयं कहती है। जिस प्रकार घोड़ा अपने रोंओं को हिलाकर श्रम और धूलि को रोंओं से हटाकर निर्मल हो जाता है, इसी प्रकार हृदयस्थ ब्रह्म के ज्ञान से धर्माधर्म सञ्ज्ञक पापों को नष्ट कर राहु द्वारा ग्रस्त चन्द्रमा की राहु के मुख से मुक्ति के समान प्रकाशमान् हो जाता है, नाना अनर्थों के आश्रय इस शरीर को यहीं छोड़कर ध्यान के द्वारा कृतकृत्य हुआ मैं नित्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूँ। मन्त्र में "अभिसंभवामि" की दो बार उक्ति खण्ड समाप्ति के लिए है ॥ १ ॥

"आकाश नाम का प्रसिद्ध आत्मा है" इत्यादि वाक्य से ब्रह्म के लक्षण का निर्देश सम्यक् ध्यान के लिए है। "इस लोक का आकाश रूप परमात्मा ही आश्रय है क्योंकि यह समस्त भूत आकाश

---

१. छा० उ० १।९।१। २. आकाश इति—आकाशः परायणमित्यादिशब्दार्थः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशोराज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कꣳश्येतं लिन्दु माऽभिगां लिन्दु माऽभिगाम् ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

सभागृह को प्राप्त होऊँ। मैं ब्राह्मणों के यश, क्षत्रियों के यश और वैश्यों के यश स्वरूप आत्मा को प्राप्त करना चाहता हूँ। वह मैं यशों का यश हूँ, मैं बिना दाँतों के भक्षण करने वाले रोहित वर्ण, पिच्छल को प्राप्त न होऊँ, प्राप्त न होऊँ (क्योंकि स्त्री अपने सेवन करने वाले के तेज, बल, वीर्य, विज्ञान तथा धर्म का विनाश कर देती है) ॥ १ ॥

॥ इति चतुर्दशः खण्डः ॥

नामरूपे यदन्तरा यस्य ब्रह्मणोऽन्तरा मध्ये वर्तेते, तयोर्वा नामरूपयोरन्तरा मध्ये यन्नामरूपाभ्यामस्पृष्टं यदित्येतत्तद्ब्रह्म नामरूपविलक्षणं यद्यपि नामरूपाभ्यामस्पृष्टं तथाऽपि तयोर्निर्वोढृ वंलक्षणं ब्रह्मेत्यर्थः। इदमेव [1]मैत्रेयोब्राह्मणेनोक्तं चिन्मात्रानुगमात्सर्वत्र चित्स्वरूपतैवे[2]ति गम्यत एकवाक्यता। कथं तदवगम्यत इत्याह—स आत्मा। आत्मा हि नाम सर्वजन्तूनां प्रत्यक्चेतनः स्वसंवेद्यः प्रसिद्धस्तेनैव स्वरूपेणोन्नीयाशरीरो

गृहीत्वा व्याख्याय द्वितीयाद्विवचनान्तं षष्ट्यर्थमादाय व्याचष्टे—तयोर्वेति। यदन्तरेति समस्तं पदं पूर्वत्र व्याख्यातमधुना तु व्यस्तं [3]व्याकृतं तदेव [4]व्याकरणं संक्षिपति—नामरूपाभ्यामिति। ताभ्यामस्पृष्टं चेत्कथं तन्निर्वाहकमित्याशङ्क्याऽऽह—नामरूपाभ्यामस्पृष्टमिति। मायावशादिति शेषः। आत्मत्वेऽपि कथं करतलामलकवद्ब्रह्मणोऽपरोक्षत्वमत आह—आत्मा हीति। तेन स्वसंवेद्यत्वेनेति यावत्। [5]कुतो देहद्वयोपहितस्याऽऽत्मनः स्वसंवेद्यत्वं तत्राऽऽह—अशरीर इति। परिच्छिन्नस्याशरीरत्वमयुक्त-

---

परमात्मा से उत्पन्न होते हैं, आकाश में लीन होते हैं आकाश ही इनसे बड़ा है" इत्यादि श्रुतियों में आकाश को आत्मा ही माना हैं क्योंकि आकाश अशरीरी और सूक्ष्म है। वह आकाश अपने में स्थित जगत् के बीजभूत नाम और रूप का निर्वाह करने वाला है, जैसे जल में फेन। वे नाम और रूप जिस ब्रह्म में विद्यमान रहते हैं अथवा उन नाम और रूपों में जो नाम-रूप से अछूता तत्त्व है, वह नाम-रूप से विलक्षण ब्रह्म है। यद्यपि नाम और रूप से अछूता है तथापि माया के वशीभूत यह आकाशसंज्ञक ब्रह्म उन नाम और रूपों का निर्वहन करने वाला है। इसी को बृहदारण्यक उपनिषद् चतुर्थाध्याय के मैत्रेयी ब्राह्मण में स्पष्ट किया गया है—"हे मैत्रेयि! आत्मा ही दर्शनीय, श्रवण के

---

१. मैत्रेयीति—बृहदारण्यकीयचतुर्थाध्याये पञ्चमब्राह्मणेनेत्यर्थः। तत्र हि आत्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितं स्यात्। ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेदेत्याद्युक्तम्। वस्तुतस्तु इदमित्याद्येकवाक्यतेत्यन्तं प्रक्षिप्तं टीकयाऽनवतारितत्वादिति प्रतिभाति। २. इति। ३. व्याख्यातम्। ४. व्याख्यानम्। ५. कुत इति मनो वेद्यत्वसंभवादिति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

व्योमवत्सर्वगत आत्मा ब्रह्मे त्यवगन्तव्यम् । तच्चाऽऽत्मा ब्रह्मामृतममरणधर्मा । अत ऊर्ध्वं मन्त्रः । प्रजापतिश्चतुर्मुखस्तस्य सभां वेश्म प्रभुविमितं वेश्म प्रपद्ये गच्छेयम् । किंच यशोऽहं यशो नामाऽऽत्माऽहं भवामि ब्राह्मणानाम् । ब्राह्मणा एव हि विशेषतस्तमुपासते ततस्तेषां यशो भवामि । तथा राज्ञां विशां च । तेऽप्यधिकृता एवेति तेषामप्यात्मा भवामि । तद्यशोऽहमनुप्रापत्स्यनुप्राप्तुमिच्छामि । स ह्यहं यशसामात्मनां देहेन्द्रियमनो-बुद्धिलक्षणानामात्मा । किमर्थमहमेवं प्रपद्य इति, उच्यते—श्येतं वर्णतः पक्वबदरसमं रोहितम् । तदाऽदत्कं दन्तरहितमप्यदत्कं भक्षयितृ स्त्रीव्यञ्जनं तत्सेविनां तेजोबलवीर्य-विज्ञानधर्माणामपहन्तृ विनाशयित्रित्येतत् यदेवंलक्षणं श्येतं लिन्दु पिच्छिलं तन्माऽभिगां माऽभिगच्छेयम् । द्विर्वचनमत्यन्तानर्थहेतुत्वप्रदर्शनार्थम् ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

मित्याशङ्क्याऽऽह—व्योमवदिति । ब्रह्मैव प्रत्यक्षभूतमिति कथमवगतमित्याशङ्क्याऽऽह—आत्मेति । अनात्मत्वं चेद्ब्रह्मत्वप्रसङ्गात्प्रत्यग्भूतं ब्रह्म वक्तव्यमित्यर्थः । उपास्यस्वरूपं दर्शयित्वा तदुपासकस्य प्रार्थनामन्त्रमुत्थाप्य व्याकरोति—अत ऊर्ध्वमिति । प्रथमतो ब्राह्मणग्रहणे हेतुमाह—ब्राह्मणा एवेति । विशेष्यं निर्दिशति—स्त्रीव्यञ्जनमिति । योनिशब्दितं प्रजननेन्द्रियमित्यर्थः । कथं तद्भक्षयितृ भवे-त्तदाह—तत्सेविनामिति । तदभिगमनं नाम गर्भवासस्तस्यातिशयेनानर्थहेतुत्वं ज्ञापयितुं द्विर्वचन-मित्यर्थः ॥१॥

इत्यष्टमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः ॥१४॥

योग्य, मनन और ध्यान करने के योग्य है । आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन और विज्ञान हो जाने पर ये सभी विज्ञात हो जाते हैं क्योंकि अधिष्ठान आत्मा से भिन्न यह अध्यस्त वस्तु कुछ भी नहीं है" इस प्रकार चित्तत्त्व के ज्ञान हो जाने से सर्वत्र चित्स्वरूपता दर्शन होना एकवाक्यता सिद्ध करता है। वह किस प्रकार जाना जाता है इसे स्वयं श्रुति 'स आत्मा' से कहती है । सभी प्राणियों का प्रत्य-क्चेतन एवं स्वसंवेद्यत्व से ऊपर उठकर आकाश के समान सर्वव्यापक अशरीरी आत्मा ब्रह्म है, ऐसा जानना चाहिए । वह ब्रह्म मृत्यु से अतीत है । (उपास्य के स्वरूप को बतलाकर) उपासक जो प्रार्थना करता है जिसे मन्त्र के अग्रिम भाग में कहा है—मैं चतुर्मुख ब्रह्मा के ऐश्वर्यपूर्ण सभागृह को प्राप्त करूँ। इतना ही नहीं, मैं ब्राह्मणों की यश स्वरूप आत्मा को प्राप्त करूँ । ब्राह्मणों को मन्त्र में प्रथम ग्रहण में हेतु है क्योंकि ब्राह्मण ही उस परमात्मा की सर्वाधिक उपासना करते हैं अतः मैं ऐसे उन ब्राह्मणों का यश प्राप्त करूँ । इसी प्रकार राजाओं और वणिक्समुदाय का यश प्राप्त करूँ, वे भी आत्मा की उपासना के लिए अधिकृत हैं अतः उनकी यश रूप आत्मा प्राप्त करूँ । उगके यश को प्राप्त करने की इच्छा वाला मैं हूँ । वह मैं यश स्वरूप आत्माओं की जो देह इन्द्रिय मन बुद्धि संज्ञक हैं, यशोमय आत्मा हूँ । यह सब मैं क्यों प्राप्त करूँ इसे श्रुति कहती है—पके हुए बेर के फल के समान लाल रंग का, बिना दाँतों के होता हुआ भी भक्षण क्रिया करने वाला स्त्री का स्मर मन्दिर (प्रजननेन्द्रिय) है इसमें संवेशन क्रिया करने वालों का तेज, बल, वीर्य बुद्धि और धर्म नष्ट होता है । इस प्रकार के परिणाम वाली उस रक्तिम वर्ण की अत्यन्त कोमल योनि में संभोग कर गर्भवास न करूँ । "लिन्दु माऽभिगां" यह द्विरुक्ति 'गर्भवास अतिशय अनर्थ का कारण है', इसे प्रदर्शन करने के लिए है ।। १ ।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(अथाष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ।)

तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि

आत्मज्ञान का उपसंहार

उस इस आत्मज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति से कहा, प्रजापति ने मनु से कहा, मनु ने प्रजाओं से कहा। विधि विधान के अनुसार आचार्य के कर्तव्य कर्मों को समाप्त करके वेदाध्ययन कर आचार्य कुल से समावर्तन हो जाने पर स्त्री परिग्रह पूर्वक कुटुम्ब में स्थित हो पवित्र स्थान में स्वाध्याय करता हुआ, पुत्र एवं शिष्यों को धर्मात्मा बन ता हुआ, सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने अन्तःकरण में उपसंहार

तद्धैतदात्मज्ञानं सोपकरणमोमित्येतदक्षरमित्याद्यैः सहोपासनैस्तद्वाचकेन ग्रन्थेनाष्टाध्यायीलक्षणेन सह ब्रह्मा हिरण्यगर्भः परमेश्वरो वा तद्द्वारेण प्रजापतये कश्यपायोवाच। असावपि मनवे स्वपुत्राय। मनुः प्रजाभ्य इत्येवं श्रुत्यर्थसंप्रदायपरम्परयाऽऽगतमुपनिषद्विज्ञानमद्यापि विद्वत्स्ववगम्यते। यथेह षष्ठाद्यध्यायत्रये प्रकाशितात्मविद्या सफलाऽवगम्यते तथा कर्मणां न कश्चनार्थ इति प्राप्ते तदानर्थक्यप्राप्तिपरिजिहीर्षयेदं कर्मणोऽविद्वद्भिरनुष्ठीयमानस्य विशिष्टफलवत्त्वेनार्थवत्त्वमुच्यते—

उक्तविज्ञानस्यौत्प्रेक्षिकत्वशङ्कां व्युदस्यन्ननादिपारम्पर्यगतत्वं दर्शयति—तद्धैतदिति। सोपकरणमुपकरणैः शमादिभिः सहितमिति यावत्। तद्द्वारेण हिरण्यगर्भद्वारेणेत्यर्थः। विद्याप्रकरणं समाप्याविद्वदनुष्ठितस्य कर्मणः साफल्यमविद्वत्संतोषार्थं कथयति—यथेत्यादिना। इहेति प्रकृतोपनिष-

---

शम-दमादि साधनों सहित इस आत्मज्ञान का उपदेश "उद्गीथ शब्द वाच्य 'ओम्' इस अक्षर की उपासना करे" छान्दोग्य उपनिषद् के इस प्रथम मन्त्र से आरम्भ कर उपासनाओं का निरूपण करते हुए किया गया है। आठ अध्यायों के इस ग्रन्थ को सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ परमेश्वर के माध्यम से प्रजापति कश्यप ने जाना। कश्यप ने अपने पुत्र मनु को इस ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। मनु ने अपनी प्रजा को इसका उपदेश किया। इस प्रकार श्रुति के अर्थ की सम्प्रदाय परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। आज भी इस उपनिषत् के आत्मविज्ञान को विद्वानों से ग्रहण किया जा सकता है। (विद्या का प्रकरण समाप्त हुआ अब अविद्वानों द्वारा अनुष्ठित कर्मों की सार्थकता केवल अविद्वानों के सन्तोष के लिए करते हैं—) इस छान्दोग्यउपनिषद् में आदि के छः अध्यायों में से तीन अध्यायों में निरूपित आत्मविद्या की सफलता सिद्ध होती है, कर्मों की कोई भी प्रयोजनवत्ता सिद्ध नहीं होती ऐसी धारणा होने पर 'कर्म करना अनर्थक है', ऐसा निश्चय होने लगेगा। इस पर श्रुति कहती है— अविद्वानों द्वारा अनुष्ठान किये जाने वाले कर्म भी विशिष्ट फल के प्रदाता होने से सार्थक हैं अतः उनका अनुष्ठान निष्प्रयोजन नहीं है। आचार्य के गुरुकुल में अर्थसहित वेदों का अध्ययन करके स्मृति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संप्रतिष्ठाप्याहिँसन्त्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते ॥ १५ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

इति च्छान्दोग्योपनिषद्यष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

कर, शास्त्र की आज्ञा से विरुद्ध प्राणियों की हिंसा न करता हुआ, वह अधिकारी पुरुष निश्चय ही यावज्जीवन इस प्रकार बर्ताव करने वाला अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेता है और फिर लौटता नहीं (इस प्रकार अर्चिरादि मार्ग से कार्यब्रह्म लोक में गया हुआ उपासक ब्रह्मलोक की स्थिति पर्यन्त दिव्य भोगों को भोगता हुआ वहाँ रहता है और फिर वहाँ पर ही मुक्त हो जाता है। अतएव उसकी भी पुनरावृत्ति नहीं होती है ॥ १ ॥

॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य सहार्थतोऽध्ययनं कृत्वा यथाविधानं यथास्मृत्युक्तैर्नियमैर्युक्तः सन्नित्यर्थः। सर्वस्यापि विधेः स्मृत्युक्तस्योपकुर्वाणकं प्रति कर्तव्यत्वे गुरुशुश्रूषायाः प्राधान्यप्रदर्शनार्थमाह—गुरोः कर्म यत्कर्तव्यं तत्कृत्वा कर्मशून्यो योऽतिशिष्टः कालस्तेन कालेन वेदमधीत्येत्यर्थः। एवं हि नियमवताऽधीतो वेदः कर्मज्ञानफलप्राप्तये भवति नान्यथेत्यभिप्रायः। अभिसमावृत्य [1]धर्मजिज्ञासां समापयित्वा गुरुकुलान्निवृत्य न्यायतो दारानाहृत्य कुटुम्बे स्थित्वा गार्हस्थ्ये विहिते कर्मणि तिष्ठन्नित्यर्थः। तत्रापि गार्हस्थ्य-विहितानां कर्मणां [2]स्वाध्यायस्य प्राधान्यप्रदर्शनार्थमुच्यते—शुचौ विविक्तेऽमेध्यादिरहिते देशे यथावदासीनः स्वाध्यायमधीयानो नैत्यकमधिकं च यथाशक्ति ऋगाद्यभ्यासं च

दुक्तिः। प्राङ्मुखत्वपवित्रपाणित्वादयो नियमाः। भिक्षाशनस्नानाचमनादिविधिः। किमित्येष नियमोऽध्ययने कथ्यते तत्राऽऽह—एवं हीति। तत्रापीति सप्तम्या यथोक्तोऽधिकारी गृहीतः। एतत्सर्वं स्वयं

द्वारा प्रतिपादित 'पूर्वाभिमुख होकर प्रातः सन्ध्या करे, हाथ पैर पवित्र रखे" इत्यादि नियमों का आचरण करे। भिक्षा भोजन, स्नान, आचमन आदि सभी स्मृति प्रोक्त विधानों को ब्रह्मचारी द्वारा कर्तव्यभावना से करने में गुरुसेवा की प्रधानता प्रदर्शन करना है, इसी से श्रुति कहती है—गुरुदेव की सेवा सम्यक् सम्पादन कर अतिरिक्त समय में जब सेवादि का कोई काम न हो उस पूर्ण समय में वेदों का अध्ययन करे। इस प्रकार नियमपूर्वक पढ़ा हुआ वेद कर्म ज्ञान रूप फल की प्राप्ति के लिए हुआ करता है, सुविधा पूर्वक स्वेच्छा से स्वतन्त्र पढ़ा हुआ अध्ययन किसी लक्ष्य की पूर्ति नहीं करता जैमिनि प्रतिपादित पूर्व मीमांसासूत्रको सम्यक् अध्ययन कर धर्म की जिज्ञासा को पूर्णकर गुरुकुल से वापिस आकर शास्त्रविधि से कुलीन कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में रहकर गार्हस्थ्यधर्मानुकूल कर्मों का अनुष्ठान करे। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी गृहस्थोचित शास्त्रविहित कर्मों में स्वाध्याय की

---

१. धर्मजिज्ञासां समापयित्वेति जैमिन्युक्तदिशा पूर्णं कर्मविचारं कृत्वेत्यर्थः। सम्यङ् आपो यस्यास्सा समापाताम् कृत्वेति णिजन्तात् क्त्वाप्रत्ययः। २. मध्ये।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2.

कुर्वन्धार्मिकान्पुत्राञ्शिष्यांश्च धर्मयुक्तान्विदधद्धार्मिकत्वेन तान्नियमयन्नात्मनि स्वहृदये हार्दे ब्रह्मणि सर्वेन्द्रियाणि संप्रतिष्ठाप्योपसंहृत्य सर्वेन्द्रियग्रहणात्कर्माणि च संन्यस्याहिंसन्हिंसां परपीडामकुर्वन्सर्वभूतानि स्थावरजङ्गमानि भूतान्यपीडयन्नित्यर्थः। भिक्षानिमित्तमटनादिनाऽपि परपीडा स्यादित्यत आह—अन्यत्र तीर्थेभ्यः। तीर्थं नाम शास्त्रानुज्ञाविषयस्ततोऽन्यत्रेत्यर्थः। सर्वाश्रमिणां चैतत्समानं तीर्थेभ्योऽन्यत्राहिंसैवेति। अन्ये वर्णयन्ति कुटुम्ब एवैतत्सर्वं कुर्वन्स खल्वधिकृतो यावदायुषं यावज्जीवमेवं यथोक्तेन प्रकारेणैव वर्तयन्ब्रह्मलोकमभिसंपद्यते देहान्ते। न च पुनरावर्तते शरीरग्रहणाय। पुनरावृत्तेः प्राप्तायाः प्रतिषेधात्। अर्चिरादिना मार्गेण कार्यब्रह्मलोकमभिसंपद्य यावद्ब्रह्मलोकस्थितिस्तावत्तत्रैव तिष्ठति प्राक्ततो नाऽऽवर्तत इत्यर्थः। द्विरभ्यास

कुर्वन्ब्रह्मलोकमभिसंपद्यत इति संबन्धः। एवं वर्तयन्नित्यस्य व्याख्यानमेवं यथोक्तेन प्रकारेण कुर्वन्निति। अप्राप्तप्रतिषेधाशङ्कां वारयति—पुनरावृत्तेरिति। चन्द्रलोकादिव ब्रह्मलोकादपि [1]प्राप्ता पुनरावृत्तिस्तस्या न चेत्यादिना प्रतिषेधान्नाप्राप्तप्रतिषेधप्रसक्तिरित्यर्थः। अपुनरावृत्तिवाक्यस्थान्यक्षराणि व्याकरोति—अर्चिरादिनेति। प्रागिति महाप्रलयात्पूर्वकालोक्तिः। ततो ब्रह्मलोकादित्यर्थः॥१॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः॥१५॥

प्रधानता सिद्ध करने के लिए श्रुति कहती है–एकान्त और पवित्र स्थान में इधर-उधर के संकल्प को त्यागकर स्थिर बैठकर नित्य एवं यथाशक्ति उत्तरोत्तर बढ़ाते हुए ऋगादि वेद शास्त्रों का अभ्यास करे पुत्र एवं शिष्यों में भी धार्मिक भावना अनुप्राणित करे, सब इन्द्रियों का स्व हृदय में हृदयस्थ ब्रह्म में उपसंहार करे। मन्त्र में सर्वेन्द्रिय ग्रहण कर्मों से संन्यास अभिलक्षित करता है। जड़ चेतन किसी भी प्राणि को दुःख न पहुँचाये। भिक्षा के लिए घूमने आदि से भी दूसरों को पीड़ा होगी, इस पर श्रुति कहती है–शास्त्र की आज्ञा के क्षेत्र को छोड़कर दूसरों को पीड़ा न पहुँचाये। मन्त्र में तीर्थ शास्त्र विधान के विषय के लिए आया है। चारों आश्रमों में रहने वालों के लिए यह एक सा नियम है कि शास्त्र आज्ञा का सम्पादन करें भले उसमें प्रत्यक्ष सा परोक्ष रूप से किसी को पीड़ा होती दीखे, इसके अतिरिक्त किसी को दुःख न पहुँचाने का व्रत ले ले। अन्य विचारकों का मत है कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए ही उपरोक्त सभी विधानों का अनुष्ठान सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त करे, इस प्रकार अनुष्ठान करते रहने से शरीर छूटने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। वह अधिकारी शरीर ग्रहण करने के लिए पुनः जन्म धारण नहीं करता। अप्राप्त के निषेध की शंका का परिहार करते हुए कहते हैं–चन्द्रलोकादि की तरह ब्रह्मलोक से भी प्राप्त पुनरावृत्ति को "उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती" श्रुति से निषेध करते, अप्राप्त लोक का प्रतिषेध नहीं करते, इसलिए यहाँ प्राप्त ब्रह्मलोक मे पुनरावृत्ति का निषेध किया गया है। वह अर्चिरादि मार्ग से कार्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, जब तक उस ब्रह्मलोक की स्थिति रहती है, तब तक वह वहीं रहता है, महाप्रलय से पहले वह वहाँ से अन्यत्र कहीं

---

१. प्राप्तेति—वैदिकमार्गगतिलभ्यत्वहेतुनेति भावः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकारोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

मेरे अङ्ग पुष्ट होवें, मेरे वाक्, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, बल और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ पुष्ट (ब्रह्मबोध के योग्य) होवें। यह सब (दृश्यमान जगत्) उपनिषद् वेद्य ब्रह्म ही है। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूँ, और ब्रह्म मेरा निराकरण न करे (अर्थात् मैं ब्रह्म को सदा आत्मभावेन साक्षात् करूँ, उससे कभी भी विमुख न होऊँ और इसके लिए सर्वान्तर्यामी परमात्मा मुझे बल दे! वह मेरा त्याग न करे)। इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो, अनिराकरण हो। उपनिषदों में जो धर्म हैं वे आत्मबोध में लगे हुए मुझ साधक में होवें। वे सब मुझमें होवें। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

उपनिषद्विद्यापरिसमाप्त्यर्थः ॥ १ ॥

इत्यष्टमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः ॥ १५ ॥

इति श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतौ छान्दोग्योपनिषद्भाष्येऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

वियदादिजगज्जातं जातमज्ञानतो यतः ।
तदस्मि नामरूपादिविरहि ब्रह्म निर्भयम् ॥१॥
नमस्त्रय्यन्तसंदोहसरसीरुहभानवे ।
गुरवे परपक्षौघध्वान्तध्वंसपटीयसे ॥२॥

इति श्रीमत्परहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छुद्धानन्दपूज्यपादशिष्यश्रीभगवदानन्दज्ञानकृतायां छान्दोग्यभाष्यटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नहीं जाता। "न च पुनरावर्तते" (उसको पुनः शरीर धारण नहीं करना पड़ता) यह द्विरुक्ति छान्दोग्योपनिषद् प्रतिपादित विद्या की परिसमाप्ति के लिए है ॥२॥

इस प्रकार अष्टमाध्यायस्य शांकरभाष्य की डॉ० उमेशानन्द शास्त्रीकृत "कुमुदतोषिणी" टीका पूर्ण हुई ॥८॥

—◆—

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अथच्छान्दोग्योपनिषन्मन्त्राणां वर्णानुक्रमणिका

—★—

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठ संख्या:
अ.	
अग्निर्हिंकारो वायु:	१३६
अग्निष्टे पादं वक्तेति	२७९
अजा हिंकारोऽवय	१३४
अतो यान्यन्यानि	४०
अत्र यजमान० तस्मै रुद्रा:	१६५
अत्र यजमान० तस्मै वसव:	१६४
अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियं० वैश्वानरमुपास्ते पादौ	४०७
अत्स्यन्नं पश्यसि० वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष	४०३
अत्स्यन्नं पश्यसि० वैश्वानरमु-पास्ते वस्तिस्त्वेष	४०६
अत्स्यन्नं० मूर्धा त्वेष	३९९
अत्स्यन्नं० वैश्वानरमुपास्ते संदेहस्त्वेष	४०४
अथ खलु य उद्गीथ: स प्रण-वो० स उद्गीथ इति होतृषदनात्	५३
अथ खलु य उद्गीथ० इत्यसौ वा आदित्य:	५०
अथ खलु व्यानं	३८
अथ खलूद्गीथाक्षराणि	४१
अथ खल्वमुमादित्यं	११५
अथ खल्वात्मसंमित	१२१
अथ खल्वाशी:०	४३
अथ खल्वेतयर्चा	३४०
अथ जुहोति नम आदित्याय	१६६
अथ जुहोति नमोऽग्नये	१६३
अथ जुहोति नमो वायवे	१६५
अथ तत ऊर्ध्व:	१९०
अथ नु किमनुशिष्ट:	३४५
अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ	३३९
अथ य आत्मा स सेतु:	६११
अथ य इमे ग्रामे	३७०
अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं	४१७

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या
अथ य एतदेवं विद्वान्साम	६
अथ एषोऽन्तरक्षिणि	६
अथ य एष संप्रसाद:	६०
अथ यच्चतुर्थममृतं	१८
अथ यत्तदजायत	२४
अथ यत्तपो दानं	२३
अथ यत्तृतीयममृतं	१८
अथ यत्पञ्चमं	१८
अथ यत्प्रथमास्तमिते	१२
अथ यत्प्रथमोदिते	११
अथ यत्रैतत्पुरुषो	४८
अथ यत्रैतदबलिमानं	६
अथ यत्रैतदस्माच्छरीरात्	६
अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं	६८
अथ यत्रोपकृते	३
अथ यत्संगववेलायाᳬस	१
अथ यत्संप्रति मध्यंदिने	११
अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते	६
अथ यदत: परो	२
अथ यद नाशकायनमित्याचक्षते	६
अथ यदवोचं भुव: प्रपद्ये	२
अथ यदवोचं भू: प्रपद्ये	२
अथ वदवोचं स्व: प्रपद्ये	२
अथ यदश्नाति	२
अथ यदाऽस्य वाङ्मनसि	५
अथ यदि गन्धमल्यलोककाम:	६
अथ यदि गीतवादितलोककाम:	६
अथ यदि तस्याकर्ता	५
अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे	५
अथ यदि भ्रातृलोककाम:	६
अथ यदि महज्जिगमिषेत्	३

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
थ यदि मातृलोककामः	६००
थ यदि यजुष्टः	३१५
थ यदि सखिलोककामः	६०१
थ यदि सामतः	३१६
थ यदि स्त्रीलोककामः	६०२
थ यदि स्वसृलोककामः	६०१
यदु चैवास्मिन्	३०५
यदूर्ध्वमपराह्णात्	११९
यदूर्ध्वं मध्यंदिनात्	११८
यदेतदक्षणः	६२
यदेतदादित्यस्य	५६
यदेवैतदादित्यस्य	५७
यद्यन्नपानलोककामः	६०२
यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणान्	५६४
यद्यज्ञ इत्याचक्षते	६१५
यद्येनमूष्मसूपालभेत	१४३
यद्वितीयममृतं	१८२
यद्वसति	२३७
या एता हृदयस्य नाड्यः	६२४
यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि	२३२
यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि	२३३
यां चतुर्थीं जुहुयात्	४१४
यां तृतीयां जुहुयात्तां	४१४
यां द्वितीयां जुहुयात्तां	४१३
यां पञ्चमीं	४१५
ये चास्येह जीवाः	६०४
येऽस्य दक्षिणाः	१७३
येऽस्य प्रत्यञ्चः	१७५
येऽस्योदञ्चः	१७६
येऽस्योर्ध्वाः	१७७
यो वेदेदं मन्वानीति	६८७
योऽस्य दक्षिणः	२०५
योऽस्य प्रत्यङ्	२०६
योऽस्योदङ्	२०७
योऽस्योर्ध्वः सुषिः	२०८
सप्तविधस्य	११३

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
अथ ह चक्षुः	२७
अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्	३२७
अथ ह प्राणा अहंश्रेयसि	३२३
अथ ह मनः	२८
अथ ह य एतानेवं	३९१
अथ ह एवायं	२८
अथ ह वाचं	२७
अथ ह शौनकं च कापेयं	२६६
अथ ह श्रोत्रं	२७
अथ ह हंसा	२५३
अथ हाग्नयः	२९०
अथ हैन्द्रोऽप्राप्यैव	६५०
अथ हैनमन्वाहार्य०	२९१
अथ हैनमाहवनीयः	२९८
अथ हैनमुद्गाता	८८
अथ हैनमृषभः	२७७
अथ हैनं गार्हपत्यः	२९५
अथ हैनं प्रतिहर्ता	८९
अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद	८६
अथ हैनं यजमानः	८५
अथ हैनं वागुवाच	३२७
अथ हैनंश्रोत्रमुवाच	३२८
अथ होवाच जनं	४०४
अथ होवाच बुडिलं	४०५
अथ होवाच सत्ययज्ञं	४००
अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं	४०२
अथ होवाचोद्दालकं	४०७
अथात आत्मादेश एव	५८०
अथातः शौवः	९०
अथाधिदैवतं	३६
अथाध्यात्मं प्राणो वाव	२६५
अथाध्यात्मं य एवायं	५२
अथाध्यात्मं वागेव	६१
अथानेनैव	६६
अथाऽऽवृत्तेषु द्यौर्हिकारः	१०४
अथैतयोः पथोः	३८८

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या:
अथोताप्याहुः	१०१
अधीहि भगव इति होपससाद	५२१
अनिरुक्तस्त्रयोदशः	६७
अन्तरिक्षमेव	५५
अन्तरिक्षोदरः कोशः	२२५
अन्नमयꣳ हि सोम्य मनः	४६१
" "	४६४
अन्नमशितं त्रेधा विधीयते	४५८
अन्नमिति होवाच	८९
अन्नं वाव बलाद्भूयः	५४८
अन्यतरामेव वर्तनीं	३१०
अपाने तृप्यति	४१४
अपां का गतिः	७०
अपां सोम्य पीयमानानां	४६३
अभिमन्थति स हिंकारः	१२६
अभ्राणि संप्लवन्ते	१३१
अभ्रं भूत्वा मेघो भवति	३७९
अमृतत्वं देवेभ्यः	१४३
अयं वाव लोको हाउकारः	९५
अयं वाव स योऽयमन्तः पुरुष आकाशो	२०१
अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशः	२०१
अरिष्टं कोशं प्रपद्ये	२२७
अशनापिपासे मे सोम्य	४७६
अशरीरो वायुरभ्रं	६७८
असौ वा आदित्यः	१६९
असौ वाव लोको गौतमाग्निः	३५१
अस्य यदेकां शाखां	४६३
अस्य लोकस्य का गतिः	७४
अस्य सोम्य महतः	४६२
आ.	
आकाशो वाव तेजसः	५५४
आकाशो वै नाम	६९१
आगाता ह वै	३५
आत्मानमन्त	४६
आपयिता	१६

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या:
आदित्प्रत्नस्य रेतसः	
आदित्य इति होवाच	
आदित्य ऊकारः	
आदित्यमथ वैश्वदेवं	
आदित्यो ब्रह्म	
आदिरिति द्व्यक्षरं	
आपः पीतास्त्रेधा	
आपो वावान्नाद्भूय०	
आप्नोति हाऽऽदित्यस्य	
आशा वाव स्मराद्भूय०	
इ.	
इति तु पञ्चम्या०	
इदमिति ह प्रतिजज्ञे	
इदं वाव तज्ज्येष्ठाय	
इमाः सोम्य नद्यः	
इयमेवर्गग्निः साम	
उ.	
उदशराव आत्मानमवेक्ष्य	
उदाने तृप्यति	
उद्गीथ इति त्र्यक्षरं	
उद्गृह्णाति तन्निधनं	
उद्दालको हाऽऽरुणिः	
उद्यन्हिंकार उदितः	
उपकोसलो ह वै	
उपमन्त्रयते स	
ऋ.	
ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि	
ऋतुषु पञ्चविधं	
ए.	
एकविंशत्याऽऽदित्यं	
एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह	
एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस	
एतमु एवाहं० पुत्रमुवाच प्राणाꣳस्त्वं	
एममु एवाहं० पुत्रमुवाच रश्मीꣳस्त्वं	
एतमृग्वेदमभ्यतपꣳ	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
क्षेषां मे देहीति	७९
प्राꣳ संयद्वाम	३०४
वमेव खलु सोम्य	४६४
वमेव खलु सोम्यान्नस्य	४६३
वमेव खलु सोम्येमाः	४६१
वमेव प्रतिहर्ता	८४
वमेवैष मघवन्निति भूयोऽनुव्याख्यास्यामि	
ꣳ एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि	६६२
वमेवैष मघ० भूयोऽनुव्याख्यास्यामि	
सापराणि	६५४
वमेवैष संप्रसादः	६७९
वमेवोद्गातारं	८४
वमेषां लोकानां	३१७
वं यथाऽश्मानं	२९
वं सोम्य ते	४६९
ष उ एव भामनीरेष	३०४
ष उ एव वामनीरेष	३०५
ष तु वा अतिवदति यः	५६६
ष म आत्मा	२२१
ष वै यजमानस्य	१६६
ष ह वा उदक्प्रवणः	३१८
ष ह वै यज्ञो योऽयं	३०९
षां भूतानां	१०
ओ.	
मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत	७
मित्येतदक्षर०	४६
ओं३मदा३ मों३	९३
ओं समस्तस्य खलु	९९
औ.	
पमन्यव कं	३९८
क.	
तमा कतमर्क्	१२
ल्पयन्ते हास्मा ऋतवः	१०९
ल्पन्ते हास्मै लोकाः	१०५
ा साम्नो गतिरिति	९९

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ	४३१
कं ते काममागायानीति	६६
क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति	१६१
ग.	
गायत्री वा इदꣳ सर्वं भूतं	१९६
गोअश्वमिह महिमा	५७८
च.	
चक्षुरेव ब्रह्मणः	२४५
चक्षुरेवर्गात्मा	६१
खण्डविभागाद्यपानि ।	अध्यायादीनि ।
चक्षुर्होच्चक्राम	३२५
चित्तं वाव संकल्पाद्भूयः	५३८
ज.	
जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः	२५२
त.	
त इमे सत्याः कामा	६०३
त इह व्याघ्रो वा सिंहो वा	४८८
त एतदेव रूपमभि०	१८०
" "	१८२
" "	१८३
" "	१८७
" "	१८८
तत्रोद्गातॄन्	८२
तथाऽमुष्मिँल्लोके	७७
तथेति ह समुपविविशुः	६८
तदुताप्याहुः	१००
तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः	२५७
तदु ह० षट्शतानि	२५९
तदु ह शौनकः कापेयः	२६८
तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म	२४३
तदेतन्मिथुनम्	१५
तदेष श्लोकः । शतं चैका च हृदयस्य	६३२
तदेष श्लोको न पश्यो	५८३
तदेष श्लोको यदा	३४२
तदेष श्लोको यानि	१३९

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः	मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या
तदैक्षत बहु स्यां	४३७	तस्मिन्निमानि	११
तद्धैतत्सत्यकामो	३३६	तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं	३५
तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय	६९४	तस्मि० रेतो	३५
,, ,, ० तद्धैत	१९३	तस्मि० श्रद्धां	३५
तद्धैतद्घोर	२३८	तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं	३५
तद्धोभये देवासुरा	६३६	तस्मि० सोमं	३५
तद्य इत्थं विदुः	३६२	तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वा	३७
तद्य इह रमणीयचरणाः	३८६	तस्मै श्वा श्वेतः	६
तद्य एवैतं ब्रह्म	६१४	तस्य क्व मूलꣳ स्यादन्यत्रान्नादेवमेव	४७
तद्य एवैतावरं च ण्यं	६१९	तस्य० ह्वयोऽद्भिः	४८
तद्यत्प्रथमममृतं	१७९	तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम	२२
तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः० विजानात्यासु	६२८	तस्य यथा कप्यासं	५
तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः विजानात्येष	६६०	तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य	५०
तद्यथा महापथ आततः	६२७	तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता	१७
तद्यथा लवणेन	३१६	तस्यर्क्च साम च	५
तद्यथेषीका	४१७	तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य	२०
तद्यथेह कर्मजितो लोकः	५९८	तस्य ह वा एतस्याऽऽत्मनो	४१
तद्यभक्तं प्रथम०	४११	तस्य ह वा एतस्यैव	५८
तद्यदक्तो रिष्येद्भूः	३१५	तस्या ह मुखामुपोद्गृह्णन्नुवाच	२६
तद्यद्रजतं	२४८	तं चेदेतस्मिन्वयसि० प्राणा आदित्याः	२३
तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं	१६	तं० प्राणा रुद्राः	२३
तद्व्यक्षरत्तदादि० कृष्णं	१७५	तं० प्राणा वसवः	२३
तद्व्यक्ष० परं कृष्णं	१७६	तं चेद्ब्रूयुरस्मिंश्चेदिदं	५६
तद्व्यक्ष० मध्ये क्षोभत	१७८	तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे	५६
तद्व्य० रोहितं	१७२	तं जायोवाच	८
तद्व्य० शुक्लं	१७४	,, ,, तप्तो ब्रह्मचारी	२८
तमग्निरभ्युवाद	२८०	तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद	२८
तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वरे	२५४	तं वा एतं देवा	६८
तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा	२६०	तꣳ हꣳसमुपनिपत्याभ्युवाद	२८
तयोरन्यतरां मनसा	३१०	तꣳ ह चिरं वसेत्या०	३४
तस्मा आदित्याश्च	१६७	तꣳ ह प्रवाहणो	७
तस्मा उ ह यदुस्ते	२६९	तꣳ हाभ्युवाद रैक्वेदं	२६
तस्मादप्यद्येहाददान०	६४९	तꣳ ह शिलक	७
तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति	२३१	तꣳ हाङ्गिरा	३
तस्मादु हैवंविद्यद्यपि	४१८	तꣳ हैतमतिधन्वा	७
तस्माद्वा एतं सेतं तीर्त्वा	६१३	तꣳ होवाच किंगोत्रो नु	२७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या:
होवाच नैतदब्राह्म०	२७५
होवाच यथा सोम्यस्यैक०	४६८
होवाच यथा सोम्यस्यैको	४६७
होवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं	४६७
आप ऐक्षन्त	४४०
नि वा एतानि यजूंष्यभ्येत	१७४
नि० सामान्येतं	१७५
नि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि	६०६
नि० चित्तैकायनानि	५३६
नि० संकल्पैकायनानि	५३५
तत्र मृत्युर्यथा	४७
यभ्यतपत्तेभ्यो	१५६
होवाच प्रातर्वः	३६७
होवाचाश्वपतिर्वै	३६४
होवाचेहैव	६२
होवाचैते	४०८
ानस्य महिमा	२००
ां त्रिवृतं जीवेन	४४६
ां त्रिवृतं विजानीहि	४५०
सः सोम्याश्यमानस्य	४६४
वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा	५५२
ऽशितं त्रेधा	४६०
तंृ ह बको	३४
तंृ ह बृह०	३३
तंृ हाऽऽयास्य	३४
त्रयी	१८
भौ कुरुतः	१६
ह प्राप्तेभ्यः	३६५
था तत्र न विवेकं	५०४
एते गुह्या आदेशा	१७७
एतेऽथर्वाङ्गिरसः	१७६
एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः	२०६
एते रसानांृ रसा० वेदा	१७८
खल्वेषां	४४३
नासिक्यं	२४
प्राणाः प्रजापतिं	३२४

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्या:
ते ह यथैवेह	६३
ते ह संपादयांचक्रुरुद्दालकः	३६३
ते होचुरुपकोसलैषा	२६६
ते होचुर्येन	३६६
तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ	२६६
तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि	६३८
तौ ह प्रजाहतिरुवाच य एषो	६३६
तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलंकृतौ	६४३
तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाच	६४७
तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः	६४५
त्रयी विद्या हिंकारस्त्रय०	१३८
त्रयो धर्मस्कन्धाः	१४५
त्रयो होद्गीथे	६७
द.	
दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य	४६३
दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं० भवति य एतदेवं	११४
दुग्धेऽस्मै० भवति य एतामेवंृ	६७
देवा वै मृत्यो	४६
देवासुरा ह	२२
द्यौरेवर्गादित्यः	५५
द्यौरेवोदन्त०	४२
ध.	
ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो	५४१
न.	
नक्षत्राण्येव	५६
न वधेनास्य० भोग्यं पश्याभीति	६५६
न वधेनास्य० भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष	६५८
न वै तत्र न निम्लोच	१९२
न वै नूनं भगवन्तः	४२५
न वै वाचो न चक्षूंषि	३२८
न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा	८०
न ह वा अस्मै	१९२
न हाप्सु प्रैत्यप्सु०	१०८
नान्यस्मै कस्मैचन	२६४

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः	५२७
नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति	६५१
निधनमिति त्र्यक्षरं	१२३
नैवेतेन सुरभि	२०
न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं	४६६
प.	
पञ्च मा राजन्यबन्धुः	३४५
परोवरीयो हास्य	११२
पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः	३५४
पशुषु पञ्चविधं	११०
पुरा तृतीयसवनस्य	१६५
पुरा प्रातरनुवाकस्य	१६२
पुरा माध्यंदिनस्य	१६४
पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतं	५१२
पुरुषꣳ सोम्योतोपतापिनं	५०६
पुरुषो वाव गौतमाग्निः	३५७
पुरुषो वाव यज्ञः	२२६
पृथिवी वाव गौतमाग्निः	३५५
पृथिवी हिंकारोऽन्तरिक्षं	१३३
प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्यो	१५८
प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानां	३१३
प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो	४०१
प्रस्तोतर्या	८३
प्राचीनशाल औपमन्यवः	३६२
प्राण इति होवाच	८७
प्राण एव ब्रह्मणः	२४५
प्राणे तृप्यति	४१२
प्राणेषु पञ्चविधं	१११
प्राणो वा आशाया भूयान्यथा	५६०
प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि	५६४
प्राप हाऽऽचार्यकुलं	२८५
ब.	
बलं वाव विज्ञानाद्भूयो	५४५
ब्रह्मणश्च ते पादं	२७६

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
ब्रह्मणः सोम्य ते पादं० तस्मै होवाच पृथिवी	
ब्रह्म० कला	
ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्र० तस्मै होवाचं	
प्राण० कला	
ब्रह्मणः सोम्य ते० तस्मै होवाचाग्निः	
ब्रह्मवादिनो वदन्ति	
ब्रह्मविदिव वै सोम्य	
भ.	
भगव इति ह प्रतिशुश्राव	
भवन्ति हास्य पशवः	
भगवाꣳस्त्येव	
म.	
मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीर	
मटचीहतेषु	
मद्गुष्टे पादं	
मनो ब्रह्मेत्युपासीत	
मनोमयः प्राणशरीरो	
मनो वाव वाचो भूयो	
मनो होच्चक्राम	
मनो हिंकारो	
मानवो ब्रह्मैवैकः	
मासेभ्यः पितृलोकं	
मासेभ्यः संवत्सरं	
य.	
य आत्माऽपहतपाप्मा	
य एष स्वप्ने महीयमानः	
य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते	
यच्चन्द्रमसो रोहितं	
यत्र नान्यत्पश्यति	
यथा कृताय	
यथा कृताय विजिताय	
यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तात्	
यथा सोम्य पुरुषं	

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
सोम्य मधु मधुकृतो	४८७
सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन	४२४
सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन	४२३
सोम्यैकेन लोहमणिना	४२४
क्षुधिता बाला	४१९
ने रोहितं रूपं	४५१
दित्यस्य रोहितं रूपं	४५२
प उच्छुष्यन्ति	२६५
वा ऋचः	४८
वै करोत्यथ निस्तिष्ठति	५७२
वै निस्तिष्ठत्यथ	५७१
वै मनुतेऽथ विजानाति	५७०
वै विजानात्यथ सत्यं वदति	५६७
वै श्रद्दधात्यथ मनुते	५७०
वै सुखं लभतेऽथ करोति	५७२
इति स उद्गीथ	११४
रोहितमिवाभूदिति	४५७
ज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव	४५८
ग्युतो रोहितं रूपं	४५५
त्पुरुषे शरीरं	१९८
तद्ब्रह्मेतीदं	२०१
द्वेद स वेद	१४०
मृचि तामृचं	४४
मन्तमभिकामो भवति	६०३
ाक्सक्तस्मात्	४०
न्वा अयमाकाशः	५९१
सा गायत्रीयं	१९७
सा पृथिवीयं	१९८
दशमभिष्टोष्यन्	४५
छन्दसा	४४
श्रुतं श्रुतं	४२२
भूमा तत्सुखं	५७४
वाव गौतमाग्निः	३५८
वा आयतनं	३२३
वै ज्येष्ठं च	३२०

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
यो ह वै प्रतिष्ठां	३२२
यो ह वै वसिष्ठं	३२१
यो ह वै संपदं	३२२
र.	
रैक्वेमानि षट्शतानि	२९०
ल.	
लवणमेतदुदके	४९९
लोकेषु पञ्चविधं साम	१०२
लो३कद्वारम० त्वा वयँ्रा०	१६४
लो३कद्वारम० त्वा वयं वैरा०	१६४
लो३कद्वारमपावार्णू त्वा वयँ्स्वारा०	१६६
लोम हिंकारस्त्वक्प्रस्तावः	१३५
व.	
वसन्तो हिंकारः	१३२
वसिष्ठाय स्वाहा	३३९
वागेव ब्रह्मणः	२४४
वागेवक्प्राणः	१३
वाग्वाव नाम्ना भूयसी	५२९
वायुर्वाव संवर्गः	२६४
विनर्दि साम्नः	१४०
विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयः	५४४
वृष्टौ पञ्चविधं सामोपासीत	१०६
वेत्थ यथाऽसौ लोको न	३४४
वेत्थ यदितः	३४३
व्याने तृप्यति	४१३
श.	
श्यामाच्छबलं प्रपद्ये	३९०
श्रुतँ्ह्येव मे भगव०	२८६
श्रोत्रमेव ब्रह्मणः	२४५
श्रोत्रमेवङ्मनः	६२
श्रोत्रं होच्चक्राम	३२६
श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेय आस	४२०

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
श्वेतकेतुर्हाऽऽरुणेयः पञ्चालानाꣳ	३४२
ष.	
षोडशकलः सोम्य	४६५
स.	
स एतां त्रयीं विद्यां	३१४
स एतास्तिस्रो देवता	३१४
स एवाधस्तात्सः	५७६
स एष परोवरीयान्	७६
स एष ये चैतस्मात्	६५
स एष रसानाꣳ	११
स जातो यावदायुषं	३६१
सत्यकामो ह जाबालः	२७२
सदेव सोम्येदमग्र	४२६
स ब्रूयान्नास्य	५६४
समान उ एवायं	३७
समाने तृप्यति	४१५
स य आकाशं	५५५
स य आशां	५५६
स य इदमविद्वान्	४१६
स य एतदेवमृतं वेद मरुतां	१८७
स य एतदेवममृतं वेद रुद्राणां	१८२
स य एतदेवममृतं वेद वसूनां	१८१
स य एतदेवममृतं वेद साध्यानां	१८६
स य एतदेबममृतं वेदाऽऽदित्यानां	१८४
स य एतदेवं विद्वानक्षरं	४६
स य एतदेवं विद्वान्साधु	१०१
स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः	२८४
स य एतदेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः— प्रकाशवान्	२७८
स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो— ज्योतिष्मान्	२८२
स य एतमेवं विद्वाꣳश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः	२८१
स य एतमेवं विद्वानादित्यं	२५०
स य एतमेवं विद्वानुपास्ते	२६६
" " " "	२६७
" " " "	२६६

मन्त्रप्रतीकानि
स य एवमेतत्साम
स य एवमेतद्गायत्रं
स य एवमेतद्बृहदादित्ये
स य एवमेतद्यज्ञा०
स य एवमेतद्रथं०
स य एवमेतद्राजनं
स य एवमेतद्वैराजमृतुषु
स य एवमेतद्वैरूपं
स य एवमेतद्वामदेव्यं
स य एवमेता रेवत्यः
स य एवमेताः शक्वर्यो
स य एषोऽणिमा
" "
" "
स य एषोऽणिमैतदात्म्य
" "
" "
" "
" "
स यथा तत्र
स यथा शकुनिः
स यथोभयपात्
स यदवोचं प्राणं
स यदशिशिषति
स यदि पितरं
स यदि पितृलोककामो भवति
स यश्चित्तं
स यस्तेजो
स यः संकल्पं
स यः स्मरं
स यावदादित्य उत्तरत
स यावदादित्यः पश्चात्
स यावदादित्यः पुरस्तात्० द्विस्तावत्
" " " वसूनां
स यावदादित्यो दक्षिणतः
स यो ध्यानं
स यो नाम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
स योऽन्नं	५४६
स योऽपो	५५१
स यो बलं	५४७
स यो मनो	५३२
स यो वाचं	५३०
स यो विज्ञानं	५४५
सर्वकर्मा सर्वकामः	२२२
सर्वं खल्विदं ब्रह्म	२१५
सर्वास्वप्सु	१०७
सर्वे स्वरा इन्द्रस्याऽऽत्मनः	१४२
सर्वे स्वरा घोषवन्तो	१४४
स वा एष आत्मा	६०३
स समित्पाणिः पुनरेयाय	६५७
" " "	६६१
स ह क्षत्ताऽन्विष्य	२५८
स ह खादित्वाऽतिशेषान्	८१
स ह गौतमो	३४६
स ह द्वादशवर्ष उपेत्य	४२१
स ह पञ्चदशाहानि	४६६
स ह प्रातः संजिहान	८१
स ह व्याधिनाऽनशितुं	२८३
स ह शिलकः	६९

मन्त्रप्रतीकानि	पृष्ठसंख्याः
स ह संपादयांचकार	३९४
स ह हारिद्रुमतं	२७४
स हाऽऽशाथ हैनं	४६८
स हेभ्यं कुलमाषान्	७९
स होवाच किं मेऽन्नं	३३२
स होवाच किं मे वासः	३३४
स होवाच भगवन्तं	८५
स होवाच महात्मनः	२६७
स होवाच विजानाम्यहं	२९१
स संकल्पो वाव मनसः	५३६
स ह वागुच्चक्राम	६२४
सा हैनमुवाच	२७३
सेयं देवतैक्षत	४४५
सैषा चतुष्पदा	१९९
सोऽधस्ताच्छकटस्य	२५८
सोऽहं भगवो मन्त्रविदेवास्मि	५२४
स्तेनो हिरण्यस्य सुरां	३९०
स्मरो वावाऽऽकाशात्	५५६
ह.	
हन्ताहमेतद्भगवतो	७२
हꣳसस्ते पादं वक्तेति	२८१

समाप्तेयं छान्दोग्योपनिषन्मन्त्राणां वर्णानुक्रमणिका

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant 2

श्री कैलासपीठाधीश्वर अनन्त श्री विभूषित श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी विद्यानन्दगिरि जी महाराज एवं श्री कैलास आश्रम के पूर्वाचार्यों की अनुपम कृतियाँ

१. वेदान्त परिभाषा (अर्थदीपिका एवं सुबोधिनी व्याख्या सजिल्द) क्राउन साइज ८ पेजी पृष्ठ ३६०
२. वेदान्त रत्नाकर क्राउन १६ पेजी पृष्ठ ११६
३. वेदान्त डिण्डिम घोष (सानुवाद) पृष्ठ ५८
४. बृहदारण्यकोपनिषद् (सटिप्पणटीकाद्वय समलङ्कृत (शाङ्कर भाष्ययुता सजिल्द) क्राउन ८ पेजी २ खण्ड, पृष्ठ १६००
५. ब्रह्मसूत्र (सानुवाद–विद्यानन्द वृत्ति सजिल्द) डबल डिमाई साइज १६ पेजी पृष्ठ ५२०
६. ब्रह्मसूत्र (संस्कृत विद्यानन्दवृत्ति परीक्षोपयोगी) डबल डिमाई साइज १६ पेजी पृष्ठ २४७
७. ईशावास्योपनिषद् (सटिप्पणटीकाद्वय संवलित शाङ्करभाष्योपेता) क्राउन साइज ८ पेजी पृष्ठ ६८
८. ईशादि द्वादशोपनिषद् विद्यानन्दी मिताक्षरा (हिन्दी व्याख्या सजिल्द) डबल डिमाई १६ पेजी पृष्ठ ४६०
९. ईशावास्य प्रवचन सुधा, डबल डिमाई साइज १६ पेजी
१०. माण्डूक्य कारिका (सटिप्पण, हिन्दी, संस्कृत टीका सहित शाङ्करभाष्य सजिल्द) क्राउन ८ पेजी पृष्ठ २६०
११. माण्डूक्य कारिका (सानुवाद शाङ्करभाष्य) क्राउन १६ पेजी पृष्ठ २८८
१२. मुण्डकोपनिषद् (सटिप्पणटीकाद्वय समलङ्कृत शाङ्करभाष्ययुता) क्राउन ८पेजी पृष्ठ
१३. श्रुतिसार समुद्धरणम् (हिन्दी टीकायुतम्) क्राउन १६ पेजी पृष्ठ १५२
१४. शाङ्कर वचनामृत (हिन्दी व्याख्या) क्राउन ३२ पेजी
१५. हरिमीडे स्तोत्रम् (सानुवाद) पृष्ठ ७७
१६. गङ्गा लहरी (सानुवाद) पृष्ठ ५४
१७. सागरसेतु सजिल्द क्राउन साइज पृष्ठ ३२०
१८. कैलास आश्रम शताब्दी स्मारिका सजिल्द क्राउन साइज पृ० ४३४
१९. केनोपनिषद् (सटिप्पण टीकाद्वय संवलित शाङ्करभाष्ययुता) क्राउन साइज
२०. कठोपनिषद् „ „
२१. प्रश्नोपनिषद् „ „
२२. तैतिरीयोपनिषद् „ „
२३. ऐतरीयोपनिषद् „ „
२४. छान्दोग्योपनिषद् „ „

प्रकाशक :—श्री कैलास आश्रम शताब्दी समारोह महासमिति,
मुख्य कार्यालय :—श्री कैलासाश्रम, ऋषिकेश (उ० प्र०) पिनः २४६२०१

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection